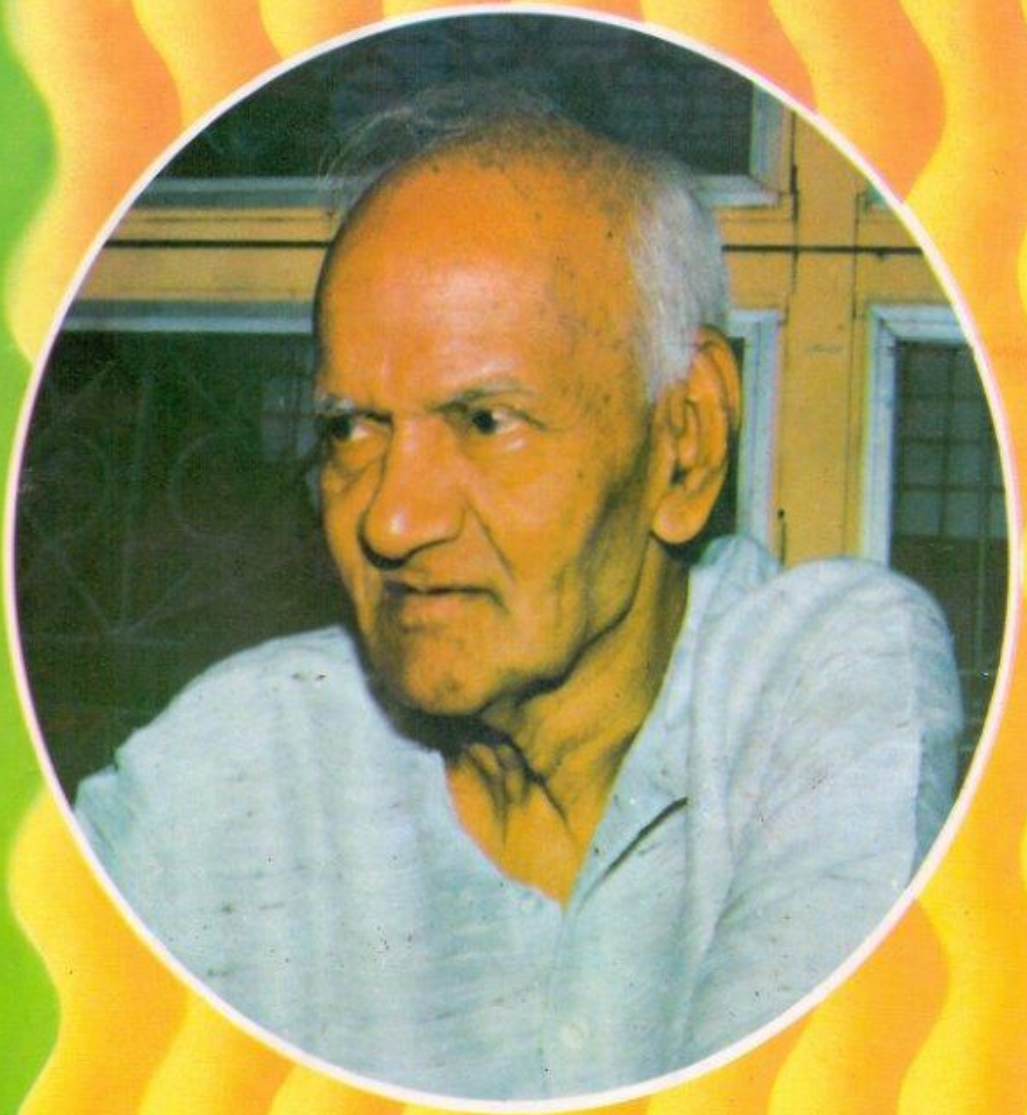
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

भव्य समाज का अभिनव निर्माण



www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भव्य समाज का अभिनव निर्माण

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org



प्रकाशक :

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❐
प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा-२८१ ००३

❐
© सर्वाधिकार सुरक्षित

❐
द्वितीय संस्करण १९९८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org



❐
मूल्य १२५)

❐
मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ।।

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ।।

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ।।

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ।।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है। परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है। परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी माँ शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही हैं। उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया। आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं हैं किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानीगणों के वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देखा सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये। इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबोकर लिखा गया हो। हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता, मन को व विचारों को बदलता चला जाता है। लाखों-करोड़ों के मनों के अंत:स्थल को छूकर उसने उनका कायाकल्प कर दिया। रूसो के प्रजातंत्र की, कार्लमार्क्स के साम्यवाद की क्रान्ति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है। उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्‌बोधन से एक विराट् गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े करते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाये, कैसे छन्दबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर, १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पन्द्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता। वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आप-पास के, दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्‌भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंत:करण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था। साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा। जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे, छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे। किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुत: अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी। जाति-पाँति का कोई भेद नहीं। जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला

की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवा कर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा। उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किंतु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभासम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजास्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में सम्पन्न क्रिया-कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषिसत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष्य के चौबीस महापुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रान्ति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्बाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक-दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था, जिसमें भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि- ''प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरुसत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गईं- संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।''

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने ताड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख-सुनकर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं; इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद

पैदल लम्बा रास्ता पार कर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल भी गये। छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई। जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अँग्रेजी सीखकर लौटे। आसनसोल जेल में वे श्री जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मदनमोहन मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से, मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना। यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान, बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जनआक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रान्तिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था। नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं। बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये। जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा झीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्तजी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्यमंत्री श्रीगोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधीजी के समक्ष पेश किये गये। बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए। कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुंज में सम्मानित किया। उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधानमंत्री राहत फण्ड के नाम समर्पित कर दीं। वैरागी जीवन का सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरू हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये। सांस्कृतिक, आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्रीकृष्णदत्तपालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रहकर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया। प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर- घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदयस्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ। स्थान बदला, आगरा से मथुरा आग गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे। पुस्तकों

का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंत:स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही। साथ देने आ गयीं परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दु:खी था- पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रान्ति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि-विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परमवंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५७ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्त्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देशभर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्राय: पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनने महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूलथाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञानसम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तप-पूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों के द्वारा विचार क्रान्ति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों को विशेष कार्य-भार सौंप परमवंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया-पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्तन, संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के

अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक, साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य, प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी-बूटी, यज्ञ विज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना, मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञानसम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का, एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युगशिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता व आस्तिकता संवर्धन एवं जन-जाग्रति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञासंस्थान, शक्तिपीठ, प्रज्ञामण्डल, स्वाध्याय-मण्डल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया-कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तपसाधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया-कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून, १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी के दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट-आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देवसंस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नवनिर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरुसत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युग संधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेध महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नवनिर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रान्ति ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर, १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद, दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु सम्पन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९४ में कार्त्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी गई। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो एक सौ आठ खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हुआ। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जाएँगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़-चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है। ❑❑❑

भूमिका

धरती पर स्वर्गीय परिस्थितियों के अवतरण में समाज व्यवस्था की प्रमुख भूमिका होती है। जनसमाज की मान्यताएँ, गतिविधियाँ, प्रथाएँ जिस स्तर की होती हैं, उसी प्रवाह में सामान्यजन बहते और ढलते जाते हैं। अनुकरणप्रिय मनुष्य का स्तर और रुझान प्रायः सामयिक प्रचलन एवं परिस्थितियों के अनुरूप बनता चला जाता है। यदि उनका स्तर उच्चस्तरीय हो तो व्यक्ति एवं समुदाय का चिन्तन भी उसी के अनुरूप ढलेगा और समाज में स्वर्गीय परिस्थितियाँ पैदा होंगी। जिस समाज में ऐसे लोगों का बाहुल्य होता है, जो परस्पर एक-दूसरे के दुःख-दर्द में सम्मिलित रहते हैं, दुःखों को बँटाते, सुखों को बाँटते हैं और उदार सहयोग-सहकार का, स्नेह-सौजन्य का, त्याग का परिचय देकर दूसरों को सुखी बनाने का प्रयत्न करते हैं, उसे 'देव समाज' कहते हैं। जब-जब जन-समूह इस प्रकार का सम्बन्ध बनाये रखता है तब-तब स्वर्गीय परिस्थितियाँ वहाँ विद्यमान रहती हैं। परमपूज्य गुरुदेव ने ऐसे ही सभ्य, भव्य एवं अभिनव समाज की परिकल्पना की है और कहा है कि आने वाले दिनों में व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज और समाज से राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया गतिशील होगी। संकीर्ण स्वार्थपरता-परमार्थ परायणता में बदलेगी और धरती पर स्वर्ग के दर्शन होंगे।

परमपूज्य गुरुदेव का यह आशावादी चिंतन वाङ्मय के इस खण्ड में स्थान-स्थान पर निर्झरित होता हुआ प्रकट हुआ है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त के आधार पर ''नया संसार बसायेंगे- नया इंसान बनायेंगे'' का उद्घोष करने वाले युग प्रवर्तक एवं महाकाल की युग प्रत्यावर्तन प्रक्रिया के सूत्रधार परमपूज्य गुरुदेव ने अन्यान्य अध्यात्मवादी तत्वदर्शकों, चिंतक मनीषियों की तुलना में सशक्त समाज के निर्माण की आवश्यकता को एवं श्रेष्ठ मानकों की भूमिका को स्थान-स्थान पर दुहराया है। न केवल यह एक तथ्य है, वरन् उसको एक सशक्त नमूना भी बनाकर उन्होंने खड़ा कर दिया है, जिसे अगले ही कुछ वर्षों में साकार होता हुआ देखा जा सकेगा।

प्राचीनकाल में जब भारत का सामाजिक स्तर ऊँचा था, तब यहाँ घर-घर में नर-रत्न जन्म लेते थे और हर क्षेत्र में महापुरुषों का बाहुल्य दृष्टिगोचर होता था। संसार में उनकी प्रतिष्ठा जगद्गुरु, चक्रवर्ती महाप्राज्ञ एवं सृजेता-प्रणेता के रूप में होती थी। उत्पादन, वैभव एवं वातावरण से यह समूचा देश ही तीर्थ बनाया और उसे वसुधा के हर कोने में बसने वालों ने शत्-शत् नमन किया था। उन नर-रत्नों ने ही अपने निवास भूमि को 'स्वर्गादपिगरीयसी' बनाया था। पर आज जब असुरता अपने चरम सीमा पर पहुँच कर जीवन-मरण का संघर्ष लड़ रही है, नीचता, दुष्टता और भ्रष्टाचरण का चहुँओर बोलबाला है, तो संतानें भी उच्छृंखल, उद्दंड, अस्वस्थ, अनैतिक मनोभूमि लेकर ही जन्म ले रही हैं। धन कमाने, पद प्रतिष्ठा प्राप्त करने का चातुर्य खुली सफलता का मापदंड ऐसे समाज में माना जा रहा है, परन्तु संवेदनहीन और कुसंस्कारी तथाकथित विकास कभी भी स्थायी आधार नहीं खड़ा कर सकता और न ही उससे देश, धर्म, समाज और संस्कृति का कुछ भला हो सकता है। सद्गुण समाज में बढ़ें, महापुरुष अधिक से अधिक संख्या में पैदा हों, इसके लिए आदर्शवादी आचरण में एक-दूसरे से आगे बढ़ने में प्रतिस्पर्द्धा तो तीव्र करनी ही चाहिए, पर यह है केवल सांस्कृतिक आधार पर ही संभव । इसके लिए व्यापक आन्दोलन के माध्यम से जन-मानस के निर्माण की आवश्यकता परमपूज्य गुरुदेव ने अनुभव की और युग निर्माण योजना- प्रज्ञा अभियान के माध्यम से विचारक्रान्ति अभियान की आधारशिला रखी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परमपूज्य गुरुदेव ने जाति-पाँति, ऊँच-नीच एवं वर्ग-भेद के विषवृक्ष को उखाड़ फेंककर एकता-समता से भरे समाज की कल्पना की, जो कि सर्वतोमुखी सहकारिता पर टिका हो। आज के रुग्ण समाज का कायाकल्प मूढ़मान्यताओं, अंधविश्वासों, कुप्रथाओं- कुप्रचलनों, अवांछनीयताओं से संघर्ष मोल लेने से ही संभव होगा। जाति-भेद, वर्ग-भेद, ऊँच-नीच जैसी मूढ़-मान्यताओं का उन्मूलन गुण, कर्म, स्वभाव को मान्यता प्रदान करने से संभव होगा। परमपूज्य गुरुदेव ने जिस आध्यात्मिक साम्यवादी समाज की कल्पना की, उसका प्रमाण भी उन्होंने अपने जीवन में प्रत्यक्ष कर दिखाया है कि किस प्रकार से सहयोग-सहकार पर टिके सुसंस्कारी समृद्ध समाज का निर्माण किया जा सकता है। इस संदर्भ में लिखा तो लोगों ने बहुत है, कुछ ने किया भी है, परन्तु पूज्य गुरुदेव ने लाखों व्यक्तियों की सृजन सेना लोकसेवियों के रूप में ढालकर समाज के अभिनव निर्माण के निमित्त नियोजित कर एक ऐसा आधार प्रस्तुत किया, जिसमें जाति नहीं,वर्ग- लिंग नहीं, ऊँच-नीच नहीं,वरन् मनुष्य के गुण- कर्म की प्रधानता को महत्व दिया गया। गायत्री परिवार में किसी की जाति नहीं पूछी जाती। हर व्यक्ति की एक ही जाति है और वह है मानव जाति। यह इस युग की सबसे बड़ी क्रान्ति है, जिसका तुमुलघोष हो चुका है।

सभ्य एवं सुविकसित-सुसंस्कृत अभिनव समाज की संरचना गायत्री परिवार की सामाजिक क्रान्ति का मूलभूत लक्ष्य है। यों तो किसी को भी लग सकता है कि हजारों वर्षों की लम्बी व्याधि से ग्रसित शरीर रूपी यह समग्र समाज कैसे इतनी जल्दी बदल जाएगा? किन्तु जब विराट् परिवर्तन होते हैं, तब महाकाल स्वयं युग प्रत्यावर्तन की प्रक्रिया को तीव्र कर देते हैं। मनुष्य समाज परायण कैसे बने और कैसे वह सारे विश्व को एकता-समता व सहयोग-सहकार के सूत्र में बाँधकर रखे, आज की परिस्थितियों में उसका युगधर्म क्या होना चाहिए? दुराग्रहमुक्त, औचित्यपूर्ण एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना के अनुरूप भव्य समाज कैसे बन सकता है? यह सारा विस्तृत विवेचन तर्कों, तथ्यों एवं प्रमाणों के साथ वाङ्मय के इस खण्ड में दिया गया है। अपने आप में विविधता से परिपूर्ण जो कुछ भी है, वह अद्भुत है एवं धरती पर स्वर्ग के अवतरण की परिकल्पना को साकार करने वाला श्रेष्ठतम तत्वदर्शन भी । निश्चित ही पाठकगण इससे लाभान्वित होंगे और अपने दृष्टिकोण को विकसित होता हुआ पायेंगे।

-ब्रह्मवर्चस

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय-सूची

१. सभ्य समाज की अभिनव संरचना १.१

सभ्य समाज का स्वरूप और आधार १.१
समाज का पुनर्निर्माण अत्यावश्यक १.७
समाज का अभिनव निर्माण कैसे ? १.६
राष्ट्र के नवनिर्माण के मूलभूत आधार १.११
सभ्य समाज का आधार : विवेक १.१३
भव्य समाज की पृष्ठभूमि और आधारशिला १.१३
समाज निर्माण का शुभारम्भ आत्म निर्माण से १.१७
सभ्य समाज इस प्रकार बन सकेगा १.१६
समाज की समग्र स्वस्थता की पृष्ठभूमि १.२०
नव्य समाज की पृष्ठभूमि और आधारशिला १.२१
प्रगतिशील समाज का आधार और स्वरूप १.२४
नवीन सामाजिक रचना कैसे हो ? १.२७
गाँधीजी के सपनों के रामराज्य का आदर्श १.२८
मानव में देवत्व से धरती पर स्वर्ग १.२८
सामाजिक प्रणालियों का पुनर्निर्धारण आवश्यक १.३०
नवनिर्धारण में विश्व मनीषियों के मत १.३५
भूत और वर्तमान का भविष्य में विलयन, नवयुग का आगमन १.३७
सामाजिकता के विस्तार में एक सार्वभौम भाषा की आवश्यकता १.३८
राष्ट्र निर्माण के लिये राष्ट्रभाषा की प्रगति भी अनिवार्य है १.४०
सभ्य समाज की सुसंस्कृत रचना और पुस्तकालय १.४१
समाज निर्माण में पुस्तकालयों की भूमिका १.४२
समाज सुधार के लिये सत्संग का महत्त्व १.४४
हम अपना भविष्य और चरित्र स्वयं बनाते हैं १.४७
वह प्रशिक्षण जो हर किसी को मिले १.४६
निजी जीवन के हर कोने में ठुँसी अनुपयुक्तता १.५२
अनुपयुक्त वातावरण को बदल दिया जाय १.५५
संगठन और समन्वय के दो प्रमुख सूत्र १.५७
रँगाई से पहले धुलाई आवश्यक १.६०
समाज को समुन्नत-सुसंस्कृत बनायें १.६२
समाज को समर्थ, समुन्नत बनाया जाय १.६५
समाज निर्माण का शुभारम्भ व्यक्ति एवं परिवार-निर्माण से १.६७
परिवार निर्माण एक पाठशाला, एक प्रयोगशाला १.७१
समाज निर्माण अनिवार्य कर्त्तव्य १.७५
सामाजिक प्रगति का एकमात्र आधार १.७७
इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं १.७६
हमारी आध्यात्मिक क्रान्ति और प्रबुद्ध व्यक्ति १.८२
धर्म शिक्षा का सर्वजनीन आधार—नैतिकता १.८३
सामाजिक सुधार और महापुरुष १.८४
मंजिल अधूरी न रह जाय १.८५
सामाजिक सुव्यवस्था का एकमात्र उपाय १.८६

२. नया संसार बसायेंगे, नया इन्सान बनायेंगे २.१

विश्व-मानव की अखण्ड अन्तरात्मा २.१
समाज और व्यक्ति का उत्कर्ष २.२
वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना २.३
वसुधैव कुटुम्बकम् का आदर्श व्यवहार में उतारें २.५
वसुधैव कुटुम्बकम् के सैद्धान्तिक आधार २.६
विश्व परिवार का सपना सहकारी प्रयत्नों से साकार होगा २.११
दुराग्रह त्यागें, औचित्य अपनावें २.१३
सन्मार्ग का राजपथ कभी भी न छोड़ें २.२१
काल्पनिक मतभेदों की हठवादिता २.२२
विवेक की कसौटी पर प्रतिपादनों को कसें २.२४
भिन्नता में एकता की तलाश २.२६
हम सब सत्य की शोध के विद्यार्थी २.२८
सहयोग और समन्वय का मार्ग अपनाएँ २.३०
क्षेत्रवाद और भाषावाद की संकीर्णता २.३२
विलगाव से एकीकरण की ओर २.३४
आर्थिक समानता की आवश्यकता २.३६
विषमता हर क्षेत्र से हटे २.३८
दुराग्रह मिटे, समन्वय स्थापित हो २.४०
आत्म-कल्याण बनाम विश्व-कल्याण २.४२
विश्व का कल्याण २.४४
विश्वशान्ति कैसे सम्भव हो ? २.४५
अन्तर्राष्ट्रीय तनाव के कारण एवं निवारण २.४७
बारूद के एक ढेर पर बैठी है यह दुनिया २.४८
विश्वशान्ति सृजन प्रयत्नों से ही सम्भव होगी २.५१
विश्व-राज्य की कल्याणकारी योजना २.५३
'नये संसार की रचना अनिवार्य' २.५६
शान्ति और प्रगति के लिए साधन शुद्धि आवश्यक २.५७
विश्व-समाज की नवीन रचना २.५८

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नये युग के दो आधार—अध्यात्म और विज्ञान २.६३
आध्यात्मिक साम्यवाद पर टिकी नवयुग की आधारशिला २.६६
विनाश लीला टाली जा सकती है २.७२
प्रस्तुत विश्व संकट में हमारा कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व २.७३

३. वर्गभेद एवं ऊँच-नीच के विष-वृक्ष को उखाड़ फेंका जाय ३.१

विभेद और विभाजन की दुःखद दीवारें ३.१
वर्गभेद की मान्यता अहितकर भी, अनुपयोगी भी ३.३
जाति-उपजातियों के सम्बन्ध में यों सोचें ३.४
भेद-भाव का उन्मूलन आवश्यक ३.६
वर्ग संघर्ष या वर्ग साम्य ३.८
विभेदों की दीवार गिरायें ३.१०
वर्गभेद के विष वृक्ष को उखाड़ फेंका जाय ३.१०
समझदारी विभाजन में नहीं एकीकरण में ३.११
विभेद और विलगाव देर तक न टिकेंगे ३.१३
सर्व-धर्म समभाव की रीति-नीति अपनायें ३.१५
पूर्वाग्रहों में बँधकर सत्य की उपेक्षा न करें ३.१७
दुराग्रह छोड़ने से ही सत्य के निकट पहुँचेंगे ३.१९
सत्य का आधार है विवेक ३.२०
पूर्वाग्रह छोड़ें, प्रगतिशीलता अपनायें ३.२५
हिन्दू-समाज की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा ऊँच-नीच ३.२६
ऊँच-नीच की मान्यता अवांछनीय और अन्यायमूलक ३.२९
ऊँच-नीच का भेदभाव एक भयानक खतरा ३.३१
जातिवाद का भयंकर अभिशाप ३.३३
भेदभाव की खाई पाटें ३.३४
हम अपनी इस दुर्बलता को मिटायें ३.३६
जाति-भेद हिन्दू समाज का घुन है ३.३७
समाज को शक्तिशाली बनाने वाली शुद्धि-प्रथा ३.३८
समाज को खोखला होने से बचाया जाय ३.४१
यह संकीर्णता हमें मार ही डालेगी ३.४३
संकीर्णता का भीषण दण्ड— इतिहास गवाह है ३.४४
हिन्दू जाति का कलंक—अस्पृश्यता ३.४६
अस्पृश्यता का पाप कुछ और भी कर सकता है ३.४७
सामाजिक कुरीतियों के घातक दुष्परिणाम ३.४८
हरिजनों का तिरस्कार—न्याय और विवेक का अपमान है ३.४८
रामायण में अछूत-समस्या ३.५०
इस अमानवीय प्रथा का अन्त होना ही चाहिए ३.५२
अनीति जनमत के सामने टिक नहीं सकती ३.५३
दास प्रथा के विरुद्ध सशक्त संघर्ष ३.५५
अछूतोद्धार कैसे व क्यों ? ३.५७
अस्पृश्यता का अभिशाप कैसे मिटाया ? ३.५९
यह काले गोरे की विडम्बना ३.६०
हरिजन उत्कर्ष के लिए बड़े कदम उठें ३.६०
धर्म भेद नहीं सिखाता ३.६१
इस कलंक को पूरी तरह मिटाना ही होगा ३.६२
हरिजन-उत्थान मानव-गरिमा की प्रतिष्ठा ३.७१
जन जातियों का भी उत्कर्ष हो ३.७२
जन जातियों के सुधार की मौलिक सूझ-बूझ ३.७४
शोषित जागें, ताकि शोषक दबें ३.७६
पिछड़े वर्गों में भी सुधार सम्बन्धी चेतना ३.७७
हरिजनों ने शराब तथा जुआ खेलना छोड़ा ३.७८
उपजातियों की संकीर्ण परिधि टूटी ३.७९
उपजातियों की संकीर्णता से एक कदम आगे बढ़ा ३.७९
हरिजन बच्चों के लिये पाठशाला की स्थापना ३.८१
सम्बन्धों का आधार जाति नहीं मनुष्यता ३.८१
थोड़ा इन छोटे भाइयों से भी सीखें ३.८२
उनकी पीड़ा को समझें और मानवीय दृष्टिकोण अपनायें ३.८३

४. एकता-समता की ओर ४.१

ऐक्य-भावना से ही कल्याण संभव है ४.१
स्वर्णिम युग के तीन आधार एकता, समता और सुव्यवस्था ४.३
समता और एकता अपनाएँ ४.५
अनेकता से एकता की ओर महायात्रा ४.६
एकता और समता को मान्यता मिले ४.८
एकता और समता का आदर्श ४.८
राष्ट्रीय एकता का चिन्तनीय अभाव ४.९
हम एकता और एकात्मता की दिशा में बढ़ चलें ४.११
सामाजिक एकता की ओर बढ़ें ४.१३
हम एकता की ओर अग्रसर हों ४.१४
एकता और अखण्डता की पृष्ठभूमि ४.१७
मानवी एकता के लिए प्रयत्नशील रहने में ही हमारा कल्याण है ४.१८
समाजव्यवस्था का आर्ष दृष्टिकोण ४.२१
समता में सबकी व्यवस्था है ४.२३
समता के सिद्धान्त का प्रतिपालन ४.२५
एकता, समता की पौध उगायें ४.२६
समतामूलक समाज की स्थापना कैसे हो ? ४.२८
एकता-सहकारिता ही एकमेव उपचार ४.३०
मिल-जुलकर आगे बढ़िए ४.३२

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संघे शक्तिः कलियुगे ४.३४
समाज को शक्तिशाली बनावें ४.३५
सहकारिता विकसित करें संघशक्ति सँजोयें ४.३६
एक साथ चलो, आगे बढ़ो ४.३८
संगठित होइए, एक रहिए ४.४०
संगठन में है, अपार बल ४.४०
हम सब संगठन सूत्र में आबद्ध हों ४.४१
संघ शक्ति सृजन प्रयोजनों के निमित्त लगे ४.४२
हम राष्ट्र निर्माण की दिशा में बढ़ चलें ४.४४
विग्रहों का कुचक्र और उसका निराकरण ४.४५
आपसी मतभेदों का कारण और निवारण ४.४६
संगठन तो बनें, पर सज्जनों के ही ४.४८
संगठनों के पतन का प्रमुख कारण ४.४९
सारा मानव समाज एक सूत्र में निबद्ध है ४.५०
सामूहिक जीवन ही प्रगति का एकमेव मार्ग है ४.५२
समर्थता से भी बढ़कर सामूहिकता ४.५४
सामूहिक चेतना की आवश्यकता ४.५५
सामूहिक हित चिन्तन का भी ध्यान रखें ४.५७
सामूहिकता ही मानवीय प्रगति का आधार है ४.५९
राष्ट्र के प्रति हमारे दायित्व ४.६०
स्वतन्त्रता का अर्थ उच्छृंखलता नहीं है ४.६२
सेवाभावी संगठन करें और दूसरा मार्ग अपनायें ४.६३
बुद्धिजीवी अपने महत्त्व और दायित्व को पहिचानें ४.६५
प्रतिभाएँ अपना ही नहीं, देश का भविष्य भी सोचें ४.६७
व्यक्तिवाद के ओछेपन से लड़ना ही पड़ेगा ४.६९
उत्कृष्टता का अभिनव उद्भव ४.७०
विषमता मिटेगी, समता का युग आएगा ४.७१

५. समग्र प्रगति सहयोग-सहकार पर निर्भर ५.१
जर्रा-जर्रा बोल रहा है—'जियो और जीने दो" ५.१
कर्मों का सामूहिक फल ५.३
समाज को उठाये बिना स्वयं उठे तो क्या उठे ? ५.४
दुनिया छोटी हो रही है—मनुष्य घनिष्ठ हो रहा है ५.६
सहयोग भावना मानवता की प्रतीक है ५.८
पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता ५.९
सहकारिता अर्थात् समृद्धि और प्रगति ५.१०
सहकारिता एक अमोघ शक्ति ५.१७
सहयोग अनिवार्य भी, आवश्यक भी ५.१९
सहकारिता में सुविधा भी, सफलता भी ५.२१
सहकार से ही उद्धार ५.२४
प्रगतिशीलता कार्यक्षेत्र में उतरे ५.२५
असुरता क्यों भारी पड़ती है ? ५.२८
संगठन का मेरुदण्ड स्वयं बनें ५.२९
सहकारी प्रयासों का अभिवर्धन किया जाय ५.३१
आप अकेले नहीं हैं, समाज की एक इकाई हैं ५.३२
सदाशयता का विकास ही दुर्बुद्धि का निवारण कर सकता है ५.३६
सहकारिता ही प्रगति का आधार खड़ा करती है ५.४०
सहयोग-सहकार की वृत्ति का विस्तार अत्यन्त अनिवार्य ५.४३
अनुदारता मिटेगी तो सभी समस्याएँ स्वतः हल होंगी ५.४८
सहकारी वृत्ति पनपे, लोकसेवी इसकी जिम्मेदारी अपने कन्धों पर लें ५.५१

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सभ्य समाज की अभिनव संरचना

सभ्य समाज का स्वरूप और आधार

जिस समाज में लोग एक दूसरे के दुःख-दर्द में सम्मिलित रहते हैं, सुख-सम्पत्ति को बाँटकर रखते हैं और परस्पर स्नेह, सौजन्य का परिचय देते हुये स्वयं कष्ट सहकर दूसरों को सुखी बनाने का प्रयत्न करते हैं, उसे देव-समाज कहते हैं। जब जहाँ जनसमूह इस प्रकार पारस्परिक सम्बन्ध बनाये रहता है तब वहाँ स्वर्गीय परिस्थितियाँ बनी रहती हैं। पर जब कभी लोग न्याय-अन्याय का, उचित-अनुचित का, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विचार छोड़कर उपलब्ध सुविधा या सत्ता का अधिकाधिक प्रयोग स्वार्थ साधन में करने लगते हैं तब क्लेश, द्वेष और असन्तोष की प्रबलता बढ़ने लगती है। शोषण और उत्पीड़न का बाहुल्य होने से वैमनस्य और संघर्ष के दृश्य दिखाई पड़ने लगते हैं। पाप, दुराचार, अनीति, छल एवं अपराधों की प्रवृत्तियाँ जहाँ पनप रही होंगी वहाँ प्रगति का मार्ग रुक जायेगा और पतन की व्यापक परिस्थितियाँ उत्पन्न होने लगेंगी। चातुर्य, विज्ञान एवं श्रम के बल पर आर्थिक स्थिति सुधारी जा सकती है, पर उससे उपभोग के साधन मात्र बढ़ सकते हैं। मनुष्य की वास्तविक प्रगति एवं शान्ति तो पारस्परिक स्नेह, सौजन्य एवं सहयोग पर निर्भर रहती है, यदि वह प्राप्त न हो सके तो विपुल साधन-सामग्री पाकर भी सुख-शान्ति के दर्शन दुर्लभ ही रहेंगे।

अच्छे व्यक्तित्व अच्छे समाज में ही जन्मते, पनपते और फलते-फूलते हैं। जिस समाज का वातावरण दूषित तत्वों से भरा होता है, उसकी अगली पीढ़ियाँ क्रमशः अधिक दुर्बल एवं पतित बनती चली जाती हैं। प्राचीन काल में जब भारत का सामाजिक स्तर ऊँचा था तो यहाँ घर-घर में नर-रत्न जन्मते थे और हर क्षेत्र में महापुरुषों का बाहुल्य दृष्टिगोचर होता था। आज जबकि नीचता और दुष्टता की परिस्थितियाँ जोर पकड़ रही हैं तो संतानें भी उच्छृंखल, अशिष्ट, अस्वस्थ, अर्ध विक्षिप्त एवं अनैतिक मनोभूमि वाली ही जन्मती हैं। बड़े होने पर उनमें से अधिकांश निकृष्ट स्तर का जीवन ही व्यतीत करते हैं। धन कमाने, पद प्राप्त करने या चातुर्य दिखाने में कोई व्यक्ति सफल हो जाये तो भी यदि वह भावना और कर्तृत्व की दृष्टि से गिरा हुआ है तो उसे सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय व्यक्ति ही माना जायेगा। उसकी सफलतायें उसके निज के लिये सुविधाजनक हो सकती हैं, पर उनसे देश, धर्म, समाज एवं संस्कृति का कुछ भी भला नहीं हो सकता।

नम्रता, सज्जनता, कृतज्ञता, नागरिकता एवं कर्त्तव्य-परायणता की भावना से ही किसी का मन ओत-प्रोत रहे ऐसे पारस्परिक व्यवहार का प्रचलन हमें करना चाहिये। दूसरों के दुःख-सुख को लोग अपना दुःख-सुख समझें और एक दूसरों की सहायता के लिये तत्परता प्रदर्शित करते हुये सन्तोष अनुभव करें, ऐसा जन मानस निर्माण किया जाना चाहिये। आदर्शवादी आचरण में एक दूसरे से आगे बढ़ने का प्रयत्न करें यह प्रतिस्पर्धा तीव्र की जानी चाहिये। पशु प्रवृत्तियों का उन्मूलन और मानवीय सभ्यता का अभिवर्धन निरन्तर होता रहे, ऐसी योजनायें प्रचलित करने पर ही हम नव-निर्माण का लक्ष्य प्राप्त कर सकेंगे। संस्कृति पर ही सम्पन्नता निर्भर रहती है, यह हमें कभी भी भूलना नहीं चाहिये।

नशेबाजी, फैशनपरस्ती, सिनेमा, शान-शौकत तथा विलासिता की अनेक वस्तुओं में लोग पैसे को पानी की तरह बहाते हैं और पीछे आर्थिक तंगी का रोना रोते हैं। आमदनी बढ़ाने के लिये सरकारी और गैर सरकारी योजनायें बन रही हैं, वेतन वृद्धि की माँग जोरों पर है पर जब तक मितव्ययिता और एक-एक पैसे का सदुपयोग की प्रवृत्ति न पनपेंगी तब तक आर्थिक संकट का निवारण किसी भी प्रकार सम्भव न हो सकेगा। अपव्ययी लोगों के लिये तो कुबेर जितनी सम्पदा भी कम ही पड़ती रहेगी।

अमीरी का सम्मान यह हमारा एक ऐसा दूषित सामाजिक दृष्टिकोण है, जिसके कारण लोग अनुचित रीति से भी धन कमाने में संकोच नहीं करते। धनी लोग अपने धन के द्वारा सुख भोगें इसमें हर्ज नहीं, पर उन्हें इसी कारण सम्मान-गौरव मिले कि वे धनी हैं तो यह अनुचित है। सम्मान केवल परमार्थी, सदाचारी लोगों के लिये सुरक्षित रहना चाहिये। उन बेचारों को यदि यह भी न मिल सका तो उन्हें प्रोत्साहन देने के लिये, तथा नये लोगों को श्रेष्ठता की ओर आकर्षण उत्पन्न करने के लिये कोई माध्यम न रह जायेगा। जिस समाज में मनुष्य की महत्ता का मूल्यांकन धन के आधार पर होता है, वह कभी उच्चस्तरीय प्रगति कर सकने में समर्थ नहीं हो सकता। आज हमारे समाज में लोकसेवी, आदर्शवादी मान नहीं पा रहे हैं और जिनके पास धन है वे उसकी मनमानी लूट मचा रहे हैं, इस स्थिति से समाज का स्तर गिर जाने का भारी खतरा विद्यमान है। हमें समय रहते इस ओर से सावधान हो जाना चाहिये।

समाज का छोटा रूप परिवार है। परिवार के रूप में समाज के एक छोटे अंग को सुविकसित करने का उत्तरदायित्व प्रत्येक गृहस्थ के कन्धे पर रखा हुआ है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

इसलिये जहाँ परिवार का भरण-पोषण करने का ध्यान रखा जाता है वहाँ उसके गुण, कर्म, स्वभाव को परिष्कृत करने का प्रयत्न भी गृहपति को करना ही चाहिये। आज इसी की सबसे अधिक उपेक्षा की जाती है। समाज के नव-निर्माण के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि अपने-अपने परिवार के नव-निर्माण कार्य में प्रत्येक गृहस्थ पूरी-पूरी रुचि लेने लगे। इसके लिये सर्वप्रथम पति-पत्नी को पतिव्रत और पत्नीव्रत की शपथ लेनी पड़ेगी। दोनों को दो शरीर एक प्राण होकर इतना आदर्श, इतना प्रेमपूर्ण, इतना सहयोग भरा जीवन बनाना पड़ेगा कि परिवार निर्माण की गाड़ी ठीक तरह लुढ़कने लगे। अपने अनुकरणीय आदर्श से ही पति-पत्नी सारे परिवार को प्रगतिशील बना सकते हैं। बालकों में भी सुसंस्कार पैदा करने हैं तो पहले माता-पिता को उन्हें अपने स्वभाव का अंग बनाना होगा तभी तो बच्चे उनका अनुसरण करते हुये वास्तविक प्रशिक्षण प्राप्त कर सकेंगे। समाज की नवरचना दम्पत्ति जीवन को परिष्कृत करने से होगी और इसके लिये पत्नी को सुधारने से पूर्व अपने को सुधारना होगा। इस प्रकार आत्मनिर्माण की प्रक्रिया आरम्भ करके परिवार, समाज एवं आगामी पीढ़ी को सुसंस्कृत, समुन्नत बना सकना सम्भव होगा, यह विचार हमें जन-मानस में भली प्रकार हृदयंगम करा देना चाहिये। समाज के नवनिर्माण का मूल आधार यही है।

समय की पाबन्दी, वचन का पालन, पैसे का विवेकपूर्ण सद्व्यय, सज्जनता और सहिष्णुता, श्रम का सम्मान, शिष्टाचारपूर्ण व्यवहार, ईमानदारी की कमाई, अनैतिकता से घृणा, प्रसन्नतापूर्ण मुखाकृति, आहार और विहार का संयम, समूह के हित में स्वार्थ का परित्याग, न्याय और विवेक का सम्मान, स्वच्छता और सादगी यह हमारे सामाजिक गुण होने चाहिये। जिस समुदाय में यह सद्प्रवृत्तियाँ राष्ट्रीय गुण का रूप धारण कर लेती हैं, उनका विकास स्वल्प साधनों से ही होता है किन्तु यदि इनका अभाव रहा तो प्रगति के अगणित साधन उपलब्ध होते हुये भी वह समाज दिन-दिन दुर्गति की ओर ही खिसकता जाता है।

सभ्य समाज वह है जिसमें हर नागरिक को अपना व्यक्तित्व विकसित करने एवं प्रगति पथ पर बढ़ने के लिये समान रूप से अवसर मिले। इस मार्ग में जितनी भी बाधायें हों, उन्हें हटाया जाना चाहिये। लिंग भेद के कारण स्त्रियों को, जाति भेद के कारण शूद्रों को, आर्थिक असमानता के कारण गरीबों को मन मारकर आगे बढ़ने की क्षमता होते हुये भी विवश रुक बैठना पड़ता है। हमें सामाजिक न्याय का ऐसा प्रबन्ध करना होगा कि हर व्यक्ति निर्बाध गति से प्रगति का समान अवसर प्राप्त कर सके। धन का वितरण इस प्रकार होना चाहिये कि किसी को न तो मुफ्तखोरी या आलस्य में पड़े-पड़े गुलछर्रे उड़ाने की सुविधा मिले और न कोई श्रम की चक्की में पिस जाने पर भी भोजन, वस्त्र से वंचित रह जाया करे। शोषक और शोषित का वर्ग भेद मिटना चाहिये और हर व्यक्ति को अपने श्रम का उचित लाभ मिलने की सुविधा रहनी चाहिये। ऐसा समाज ही सभ्य समाज कहलाने का अधिकारी बन सकता है।

वस्तुतः ऐसे सभ्य समाज में ही व्यक्ति सुखी रह सकता है। इस तरह का समुन्नत समाज भी अपने आप नहीं बन जाता, उसे उत्कृष्ट नेतृत्व में अग्रगामी सज्जनों का समूह विनिर्मित करता है। जब श्रेष्ठ व्यक्ति घट जाते हैं और सामाजिक वातावरण में उत्कृष्टता बनाये रखने के रचनात्मक प्रयास शिथिल हो जाते हैं तो समाज का स्तर गिर जाता है। समाज गिरेगा तो उस काल के व्यक्ति भी निकृष्ट, अधःपतित और दीन-दुर्बल बनते चल जायेंगे। अच्छा समाज—अच्छे व्यक्ति उत्पन्न करता है और अच्छे व्यक्ति अच्छा समाज बनाते हैं। दोनों अन्योन्याश्रित हैं। मुर्गी में से अण्डा या अण्डे से मुर्गी ? बीज में से वृक्ष अथवा वृक्ष में से बीज की तरह ही यह प्रश्न भी है कि व्यक्तियों से समाज अथवा समाज से व्यक्ति ? वस्तुतः दोनों इतने अविच्छिन्न हैं कि उन्हें पृथक् किया ही नहीं जा सकता है। अच्छे व्यक्तियों की आवश्यकता हो तो अच्छा समाज बनाने के लिये जुटना चाहिये। अच्छा समाज बनाने पर ही श्रेष्ठ व्यक्तित्व की आवश्यकता पूरी होगी। सुख-साधनों का अभिवर्धन और समुन्नत लोक-व्यवहार का प्रचलन ही सर्वतोमुखी सुख-शान्ति की आवश्यकता पूरी करता है और इस प्रकार का उत्पादन प्रखर प्रतिभासम्पन्न सुसंस्कृत व्यक्ति ही कर सकने में समर्थ होते हैं।

निजी स्वार्थ-सिद्धि की दृष्टि से विचारें अथवा परिवार के हित-साधन की दृष्टि से देखें—दोनों ही तरह यह आवश्यक हो जाता है कि सुसंस्कृत समाज में रहकर ही निर्वाह करने का अवसर मिले। बुरे लोगों के बीच, बुरे वातावरण में—अपनी तथा परिवार की प्रगति के लिये किये गये सारे प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं। जिस मुहल्ले में आग लगी हो, हैजा फैला हो—उसमें रहने वाले स्वच्छताप्रिय अथवा जागरूक लोगों की भी सुरक्षा नहीं होती। सूखे के साथ गीला जलने की कहावत चरितार्थ होती है। चोरों और दुष्टों के पड़ौस में रहकर कोई सज्जन भी चैन से नहीं बैठ सकता। बैठना चाहे तो भी दुष्ट लोग शान्त रहने न देंगे। उपद्रव खड़े करके सन्तुलन बिगाड़ेंगे। अपने परिवार को सुसंस्कृत बनाने के लिये कुछ भी क्यों न किया जाता रहे, पड़ौस की गन्दी हवा अपना प्रभाव छोड़ेगी और निकृष्टता का आकर्षण कुटुम्बियों में भी उसी प्रकार की दुर्बुद्धि के संस्कार पैदा करेगा। वेश्याओं के पड़ौस में रहकर—उनकी हरकतें भर देखते रहा जाय तो सदाचार की मानसिक मर्यादायें टूटे बिना न रहेंगी।

समाज में यदि अनैतिक, अवांछनीय, अपराधी-तत्व भरे पड़े हों तो उनकी हलचलें, हरकतें—किसी सन्त, सज्जन की उत्कृष्टता को सुरक्षित नहीं रहने दे सकतीं। विकृत समाज में असीम विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं और अनेक प्रकार के विग्रह उत्पन्न करती हैं। उनकी लपेट में आये

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बिना कोई नीतिवान् व्यक्ति भी रह नहीं सकता। उसे प्रत्यक्ष एवं परोक्ष आक्रमणों का शिकार होना पड़ेगा। जहाँ खाद्य पदार्थों में मिलावट का बोलबाला हो—वहाँ स्वास्थ्य-रक्षा पर ध्यान रखे रहने वाला व्यक्ति भी बीमार पड़े बिना नहीं रह सकता।

कुरीतियों और रूढ़ियों से भरे समाज में सामान्य मनोबल का सुधारवादी-चीं बोल जायेगा और उसे सिद्धान्तवाद ताक पर रखते हुये समूहगत प्रवाह में बहने के लिये बाध्य होना पड़ेगा। दहेज के विरोधी और आदर्श विवाहों के समर्थक को भी जब अपनी जवान कन्या के लिये विवाह का कोई सुयोग बनता नहीं दीखता तो जाति विरादरी वालों और दहेज-लोभियों के शरण में ही जाना पड़ता है और उनके इशारे पर चलने के लिये विवश होना पड़ता है। सुविस्तृत समाज के विरुद्ध एकाकी खड़े रहने वाले तो कोई बिरले ही सुस्साहसी होते हैं, सामान्य मनोबल के लोग तो लड़खड़ा ही जाते हैं।

शिक्षा में उद्दण्डता भरती चली जाय तो न तो अपनी लड़की का गृहस्थ चैन से बैठेगा और न बेटे की बहू घर में शान्ति रहने देगी। क्या जामाता, क्या पुत्र-वधू—निकले तो उसी शिक्षा-संस्था से हैं, जहाँ—उच्छृंखलता का निरन्तर बोलबाला रहता है। यह बच्चे जिस प्रकार का प्रशिक्षण पाते रहे हैं, उसका प्रभाव उनके गृहस्थ पर न पड़े—यह हो ही नहीं सकता। 'देश-शिक्षा-पद्धति से हमें क्या लेना-देना' कहकर काम नहीं चल सकता। उसका प्रभाव अपने बच्चों के गृहस्थ जीवन पर पड़ेगा ही और फलस्वरूप अपनी बेचैनी भी बढ़ेगी ही।

इसी प्रकार शासन की स्थिति—व्यापारियों की रीति-नीति, अपराधों और अनैतिकता की वृद्धि—साहित्य और कला-संगीत का प्रवाह-मूर्धन्य व्यक्तियों का कर्तृत्व, वर्ग-संघर्ष आदि की विषाक्तता—किसी सज्जन, सद्गृहस्थ को शान्तिपूर्वक जीवनयापन नहीं करने दे सकती। वास्तविकता यही है कि व्यक्ति एकाकी निर्वाह नहीं कर सकता, उसे समाज से प्रभावित होना ही पड़ता है। इतना ही नहीं, उस प्रवाह में जन-साधारण की पीढ़ियों का मनःस्तर अनायास ही ढलता चला जाता है। बुरे वातावरण में केवल बुराई ही पनपती है। बुरे लोग लड़ते हैं और उनके उपद्रवों से बुरी परिस्थितियाँ ही उफनती हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत रूप से किया गया स्वाध्याय, चिन्तन, मनन, पूजा, पाठ अथवा सज्जनोचित निर्वाह में कुछ सार नहीं रह जाता।

व्यक्ति-निर्माण और परिवार-निर्माण की तरह ही समाज-निर्माण भी हमारे अत्यन्त आवश्यक दैनिक कार्यक्रमों का अंग माना जाना चाहिये। अपने लिये हम जितना श्रम, समय, मनोयोग एवं धन खर्च करते हैं, उतना ही समाज को समुन्नत, सुसंस्कृत बनाने के लिये लगाना चाहिये। यह परोपकार परमार्थ की दृष्टि से ही नहीं विशुद्ध स्वार्थ-साधन और सुरक्षा की दृष्टि से भी आवश्यक है। अपनी क्षुद्रता की संकीर्णता को व्यापक आत्मीयता में विकसित करना ही अध्यात्म तत्व-दर्शन का मूलभूत प्रयोजन है। इस दृष्टिकोण को अपनाने पर ही संयम, सदाचार, सेवा एवं लोक-मंगल के लिये—संकल्प एवं उत्साह उत्पन्न होता है और उन्हें निरन्तर निबाहने के लिये साहस-विश्वास बढ़ता है। ईश्वर-भक्ति इस तात्विक दृष्टि का नाम है। सेवा-धर्म को अंगीकार किये बिना कोई व्यक्ति मात्र पूजा-पाठ की टण्टघण्ट अपनाये रहकर सच्चा अध्यात्मवादी नहीं बन सकता और न उसे आत्मिक प्रगति का लाभ मिल सकता है।

प्राचीनकाल में साधु और ब्राह्मण वर्ग अपना समस्त जीवन लोकमंगल के लिये समर्पित करते थे। वानप्रस्थ-आश्रम—स्वार्थ की परिधि से निकलकर परमार्थ की कक्षा में प्रवेश करने की सन्धि बेला ही तो है। क्षुद्रता-संकीर्णता को त्याग कर **आत्मवत् सर्वभूतेषु, वसुधैव कुटुम्बकम्** के देवत्व में विकसित, परिणित करने का व्यावहारिक कार्यक्रम वानप्रस्थ के रूप में आप्त-पुरुषों ने निर्धारित किया है। भारतीय संस्कृति की सुनिश्चित परम्परा है कि वैयक्तिक और पारिवारिक प्रयोजनों के लिये किसी को भी आधे से अधिक समय एवं मनोयोग नहीं लगाना चाहिये।

हमारे यहाँ तो आरम्भ में ही साधु-ब्राह्मण की परम्परा प्रचलित है। प्राचीनकाल में साधु-ब्राह्मण उन्हें कहते थे, जो लोकमंगल के लिये 'सर्वतोभावेन' आत्म-दान करके उसी में तन्मय-निमग्न हो जायें। उन दिनों देवालयों और तीर्थ-स्थानों का निर्माण—जन-कल्याण के लिये संचालित प्रवृत्तियों के केन्द्र संस्थान के रूप में होता था। उनका संचालन ऋषि-कल्प, देव-पुरुषों के हाथ में रहता था। जनता भी इस झंझट में नहीं पड़ती थी कि इन दिनों किन सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन को प्राथमिकता दी जाय ? यह निर्णय साधु-ब्राह्मणों की परिषद् ही करती थी।

धार्मिक जनता साधु-ब्राह्मणों को—तीर्थ-देवालयों को दान इसी के लिये देती थी कि उनके द्वारा समाज में सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन का प्रयोजन पूरा होता रहे। इन लोक-सेवा के निमित्त बने धर्म-केन्द्रों को भगवान का निवास-गृह माना जाता था और वहाँ जाकर लोग श्रद्धा से मस्तक नवाते थे एवं संचालित सत्प्रवृत्तियों में योगदान देने की प्रेरणा प्राप्त करते थे। तीर्थ में विशेष समारोह भी समय-समय पर इसी आह्वान के लिये होते थे कि इन अवसरों पर अधिक संख्या में, अधिक भावनासम्पन्न लोग एकत्रित हों और समाज-निर्माण के लिये, तत्कालीन योजनाओं को अग्रगामी बनाने के लिये व्यावहारिक मार्गदर्शन एवं अभीष्ट उत्साह प्राप्त करें। समयदान-श्रमदान-धनदान का एकमात्र उद्देश्य समाज के पिछड़ेपन को दूर करना—पिछड़े वर्गों को ऊँचा उठाना है—इस प्रयोजन को पूरा करने वाले व्यक्तियों तथा संगठनों का पोषण करना है।

पिछड़े वर्ग में अन्धे; कोढ़ी, अपंग, दीन, दुर्बल ही नहीं आते, वरन् ऐसे अज्ञानी, कुमार्गगामी, उद्दण्ड एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुराग्रही भी आते हैं—जो औचित्य एवं विवेक का तिरस्कार करके अवांछनीय लोक-प्रवाह में बहते हुये चले जा रहे हैं। अन्न-वस्त्र अन्धे-अपंगों को बाँटने भर से समाज-सेवा की इतिश्री नहीं हो जाती, वरन् उनकी सहायता का भी ध्यान रखना चाहिये—जो अविवेक का शिकार होकर घिनौना और दुराग्रही जीवन जी रहे हैं, वस्तुतः यह वर्ग और भी अधिक दया का पात्र है। सत्प्रेरणाएँ देकर यदि उन्हें सन्मार्गगामी बनाया जा सके तो गन्दे नाले में गिरकर नष्ट होने वाली महत्त्वपूर्ण शक्ति को बचाया और उपयोगी प्रयोजनों में लगाया जा सकता है। इससे उन भूले-भटकों का भी कल्याण होता है और समाज को ऊँचा उठने का भी अवसर मिलता है। विचार-क्रान्ति एवं ज्ञान-यज्ञ की पुण्य-प्रक्रिया ज्ञान-दान के जिस महान् उद्देश्य को पूर्ण करती है, उसे अन्न-वस्त्र दान की तुलना में लाख-करोड़ गुना अधिक श्रेयस्कर-सत्परिणामोत्पादक माना जायेगा।

अपने समाज में आज अगणित दुष्प्रवृत्ति संव्याप्त हैं। असंख्य उलझी हुई समस्यायें सामने हैं। कष्ट, कलह और शोक-सन्ताप के असीम कारण मौजूद हैं। इन विकृतियों के दुष्परिणाम पग-पग पर भुगतने पड़ रहे हैं। मनुष्य पतित और दुष्ट बनता जा रहा है। अपने और दूसरों के लिये विपत्तियाँ और विभीषिकायें उत्पन्न कर रहा है।

मनुष्य अपनी भीतरी दुर्बलताओं के कारण ही चिन्तित, परेशान और दुःखी रहता है। फिर ये सामाजिक कुरीतियाँ तो उसकी मानसिक शान्ति को नष्ट करने के लिये गर्म हवा उगलती रहती हैं। ऐसी स्थिति में मनुष्य शान्त और सुखी कैसे रह सकता है। हमारे हिन्दू समाज में सामाजिक कुरीतियों के कारण एक बड़ा सिर दर्द उत्पन्न हो गया है। कितनी ही प्रथाएँ ऐसी चल पड़ी हैं जो बहुत धन खर्च करने की माँग प्रस्तुत करती हैं। मध्यम श्रेणी का व्यक्ति ईमानदारी से उतना ही मुश्किल से कमा सकता है; जिससे उसके परिवार का गुजारा किसी प्रकार हो सकता है। इस महँगाई के जमाने में लम्बी-चौड़ी बचत कर सकना सर्वसाधारण के लिये सम्भव नहीं। आये दिन बहुत धन खर्च करने वाली कुरीतियों का भी यदि मुँह भरना है तो कोई बेईमानी के तरीके अपनाये बिना और रास्ता नहीं मिलता। एक रास्ता यह भी है कि पेट पर पट्टी बाँधकर, साग-सत्तू से गुजारा करते हुये, बच्चों के मुँह में जाने वाली दूध की बूँदें बचाकर कौड़ी-कौड़ी धन जोड़ा जाय और इन कुरीतियों की पिशाचिनी को तृप्त किया जाय। तीसरा तरीका है कि घर के बर्तन, किबाड़ बेचकर, मित्र, रिश्तेदारों से कर्ज लेकर तत्काल का काम तो चलाया जाय और पीछे भारी अभाव और तिरस्कार का जीवन बिताया जाय। कर्ज ब्याज सिर पर चढ़कर दौड़ती है और सीमित आमदनी में वह चुक नहीं पाती, तो जलील होना पड़ता है और परेशानी भी उठानी होती है।

यह परिस्थितियाँ मनुष्य को इस बात के लिये विवश करती हैं कि वह किसी भी प्रकार, कहीं से भी धन कमाये और जो कुरीतियाँ गले में फाँसी के फन्दे की तरह जकड़ी हुई हैं उनकी आवश्यकता पूरी करे। बेईमानी करने का हुनर चातुर्य और अवसर भी हर किसी को नहीं होता। कुछ लोग चाहते हुये भी वैसा नहीं कर पाते और किसी भी प्रकार आवश्यक धन नहीं जुटा पाते तो चिन्ता की आग में घुल-घुल कर अप्रत्यक्ष आत्महत्या करने के लिये मन्द गति से अकाल मृत्यु की ओर चलते रहते हैं। इतना सब होते हुये भी हमारी मानसिक दुर्बलता यह सोचने नहीं देती कि क्या यह सामाजिक कुरीतियाँ आवश्यक ही हैं ? क्या इन्हें सुधारा और बदला नहीं जा सकता ?

विवाह-शादी का प्रश्न लीजिये। उसमें कितना पैसा खर्च होता है ? धूमधाम, गाने-बजाने, आतिशबाजी, बरात, दावत, दहेज, जेवर आदि के लिये लोग इतना धन खर्च करते हैं जो उनकी हैसियत और औकात से बाहर होता है। एक दिन के धूम-धमाके में जितने धन की होली जल जाती है, उतने धन को लड़के-लड़की के स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यवसाय या बचत पूँजी के लिये सँभाल कर रखा गया होता तो उसका कैसा अच्छा उपयोग होता, कितना काम चलता। कुरीतियों की होली में जो गाढ़ी कमाई स्वाहा हो गई, वह तो किसी के भी काम न आई। फिर इस मूर्खतापूर्ण विडम्बना को खड़ा करने से क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ ? यह विचारणीय बात है।

गरीब लोग जिनके पास गुजारे के लिये आवश्यक साधन नहीं, अमीरों की नकल करके उन्हीं का स्वाँग बनावें तो यह उनकी मानसिक दुर्बलता ही कही जायेगी। इस दुर्बलता से पिण्ड छुड़ाये बिना सामाजिक कुरीतियों से पीछा छूटना कठिन है और जब तक यह कुरीतियाँ नष्ट न होंगी हमारी जीवन व्यवस्था अशान्ति में ही डूबी पड़ी रहेगी। बच्चे- बच्चियाँ हर गृहस्थ के घर में पैदा होने ही वाले हैं। जब पैदा होंगे तो उनका विवाह भी होगा, विवाह होगा तो धन चाहिये ही। धन चाहिये तो उसकी चिन्ता में निमग्न रहकर अनावश्यक बचत और अनुचित उपार्जन का मार्ग ग्रहण करना ही होगा। यदि इसमें भी सफलता न मिली उपयुक्त साधन न जुट सके तो सारी आन्तरिक शान्ति खोकर दिन-रात चिन्ता में जलते-जलते, अप्रत्यक्ष आत्महत्या करनी ही होगी। कितना बड़ा कुचक्र है यह ? इस कुचक्र में बँधा हुआ भारतीय जीवन किस प्रकार अस्त-व्यस्त हो रहा है ? यह विचार करते ही कलेजा टूटने लगता है और हृदय में एक हूक उठती है। हाय री, मानसिक दुर्बलता, काश हम तुझे छोड़ सके होते और यह विचार कर सके होते कि यदि यह कुरीतियाँ आवश्यक और उपयोगी नहीं, तो इन्हें छोड़ क्यों न दिया जाय, तो कितना अच्छा होता।

द्वापर युग में एक पूतना नाम की पिशाचिनी हुई थी। भागवत पुराण में वर्णन है कि वह बड़ी भयंकर और विकराल थी पर बाहर से बड़ा सुन्दर मायावी रूप बनाये फिरती थी। उसका काम था बालकों की हत्या करना, इसी में उसे आनन्द आता था; आखिर पिशाचिनी ही जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ठहरी। अन्त में उसका दमन कृष्ण भगवान ने किया और लोगों के सामने उसके विकराल भयंकर रूप का भण्डाफोड़ किया। आज सामाजिक कुरीतियों की अनेक पिशाचिनी चौंसठ मसानियों की तरह खूनी खप्पर भर-भर कर नाच रही हैं। इन सब में प्रमुख विवाहोन्माद डाकिनी है। यह देखने में बड़ी ही सुन्दर लगती है। शादी-विवाहों के दिनों बड़ी रौनक और धूम-धाम होती है, पर अन्त में जो दुष्परिणाम भुगतना पड़ता है उसे हममें से प्रत्येक जानता है। वह जिस घर में घुसती है, उसकी अर्थ व्यवस्था का सारा रक्त पी जाती है।

इन कुरीतियों पर ध्यान दें तो लगता है कि लोहे की गरम सलाखों से बनी हुई जंजीरों की तरह वे हमें जकड़े हुये हैं और हर घड़ी हमारी नस-नस को जलाती रहती हैं। घर में तीन-चार कन्यायें जन्म ले लें तो माता-पिता की नींद हराम हो जाती है। वे जैसे-जैसे बढ़ने लगती हैं, वैसे-ही-वैसे अभिभावकों का खून सूखता चला जाता है। विवाह-विवाह-विवाह कन्या का विवाह उनके माता-पिता के यहाँ डकैती, लूट, बर्बादी होने के समान है। आजकल साधारण नागरिकों की इतनी आमदनी ही मुश्किल से हो पाती है कि वे अपना पेट पाल सकें, जितना धन दहेज के लिये चाहिये उतना जमा करना तभी सम्भव है जब या तो कोई अपना पेट काटे, नंगा रहे, दवा-दारू के बिना भाग्य भरोसे बीमारी से निपटे, बच्चों को शिक्षा न दे या फिर कहीं से बेईमानी करके लावे। इन उपायों के अतिरिक्त सामान्य श्रेणी के नागरिक के लिये उतना धन जमा करना कैसे सम्भव हो सकता है, जितने की कन्या के विवाह में जरूरत पड़ती है—माँगा जाता है। यह संकट कौन कन्या का पिता किस पीड़ा और चिन्ता के साथ पार कर सकता है, इसके पीछे लम्बी करुण कहानी छिपी रहती है। कर्ज का ब्याज, भावी जीवन में अँधेरा, शेष बच्चों की शिक्षा एवं प्रगति में रुकावट जैसी आपत्तियों को कन्या का विवाह अपने पिता और छोटे भाईबहिनों के लिये छोड़ जाता है। विवाह का पत्थर छाती पर से हटा तो अर्थ संकट का आरा अपनी काट शुरू कर देता है। कई कन्यायें हैं तब तो जीवित ही मृत्यु है। मृत्यु एक दिन कष्ट देकर शान्ति की गोद में सुला देती है पर यह जीवित मृत्यु तो पग-पग पर काटती, नोंचती, छेदती और चीरती ही रहती है।

दहेज की असमर्थता के कारण अगणित बच्चियों को कुमारी रहना पड़ता है, बूढ़े या अयोग्यों के गले बँधना पड़ता है, वैधव्य भोगना पड़ता है, आत्महत्या करनी होती है, जीवन भर जलते रहना पड़ता है और भी न जाने क्या-क्या करना पड़ता है। बच्चों को पत्थर पर पटक-पटक कर यह पिशाचिनी भले ही न मारती हो पर उनका भविष्य अन्धकारमय जरूर बना देती है, बच्चों को ही नहीं, बच्चों के अभिभावकों को भी यह एक दो दिन नहीं वर्षों तक चिन्ता और व्यग्रता के एकान्त में आँसू बहाते रहने के लिये विवश करती रहती है। दुःख इसी बात का है कि पूतनाओं का छद्म वेश अभी हमारी समझ में नहीं आता, इन्हें अभी भी हम सुन्दर और ग्राह्य माने बैठे हैं।

दुःख इस बात का है कि कोई ऐसा कृष्ण उत्पन्न नहीं होता जो पूतना बध का वास्तविक अभिनय करे। यों रासलीलाओं में तो पूतना मरते हम रोज ही देखते हैं और कथा-वार्ताओं में पूतना-वध का प्रसंग सुनकर प्रसन्न भी होते हैं। पर असली पूतना तो हमारे चारों ओर नग्न नृत्य कर रही है। न जाने यह हत्यारी कब मरेगी ? न जाने इसे मारने वाला कब पैदा होगा। यही प्रश्न भारत की आत्मा हर घड़ी पूछती है पर अन्तरिक्ष से उत्तर कुछ नहीं मिलता।

विवाहों में होने वाला अपव्यय, मृत्यु-भोज में बाप-दादों के नाम पर लम्बी-चौड़ी दावतों का आयोजन, तीज-त्यौहारों पर भेजे जाने वाले अलग-अलग उपहार-भेंट, कितने खर्चीले सिद्ध होते हैं, इसे हर कोई जानता है। जनेऊ, मुण्डन, दस्टौन आदि के नाम पर लोग लम्बी-चौड़ी दावतें देने और उपहार बाँटने में अपनी सामर्थ्य से बाहर शेखीखोरी दिखाते हैं। वातावरण कुछ ऐसा बन गया है कि न किया जाय तो यह डर लगता है कि लोग क्या कहेंगे ? हमें गरीब या कञ्जूस मानेंगे। यह अपडर सर्वथा निरर्थक और भ्रमपूर्ण है। आज परिस्थिति यह है कि हर कोई इन बुराइयों से परेशान है और चाहता है कि ये जितनी जल्दी मिटें उतना ही अच्छा है। पर आश्चर्य तो यह है कि वह ऐसा सोचता है कि मैं अकेला ही इसके विरुद्ध हूँ अन्य लोग पक्ष में हैं। जबकि सही बात इससे उल्टी है। हर आदमी इन्हें समाप्त करने की इच्छा रखते हुये भी स्वयं पहल नहीं करना चाहता। इसमें उसे लगता है कि उसी को निन्दा और विरोध का पात्र बनना पड़ेगा। वास्तविकता यह है कि जो अपने विरोध को चरितार्थ करेगा, उसे आज नहीं तो कल समाज का उद्धारक और मार्गदर्शक माना जायेगा। प्रश्न पहल करने का है। पीव से भरा हुआ फोड़ा पूरी तरह पीला पड़ गया है और पिल-पिला रहा है, अब जरा सा छेद करना बाकी है। उसी में झिझक हो रही है। कोई साहसी आगे बढ़कर पहल करने लगे तो यह सारी सड़न भरी पीव निकल बाहर हो और हमारा सामाजिक शरीर शुद्ध और स्वच्छ बन जाये।

विवाहोन्माद जैसी अगणित कुरीतियाँ हमें घेरे हुए हैं। स्वास्थ्य सुधार, शिक्षा के लिये, मनोरंजन के लिये, दूसरों की भलाई के लिये, आत्म कल्याण के लिये हम कुछ कर नहीं पाते, आधी से अधिक कमाई उन व्यर्थ की बातों में बर्बाद हो जाती है, जिनका कोई प्रयोजन नहीं, कोई लाभ नहीं, कोई परिणाम नहीं। धर्म के नाम पर हमारे मनों में जो उच्च कोटि की भावनायें उठती हैं, दान देने की जो श्रद्धा उत्पन्न होती है, उनका लाभ ज्ञान और धर्म बढ़ाने वाले, पीड़ित-पतितों को राहत देने वाले कार्यों की वृद्धि के रूप में विकसित होना चाहिये था पर होता इससे सर्वथा विपरीत है। काल्पनिक सब्जबाग दिखाकर संडे-मुसंडे लाल-पीले कपड़े पहनकर लोगों को ठगते रहते हैं। भोले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोग समझते हैं धर्म हो गया, पुण्य कमा लिया, पर वास्तविकता ऐसी कहाँ होती है ? धूर्त लोगों को गुलछर्रे उड़ाने के लिये दिया हुआ धन भला धर्म कैसे हो जायेगा ? पुण्य कर्म कैसे माना जायेगा ? जिसका परिणाम न तो ज्ञान की सत्प्रवृत्तियों की अभिवृद्धि हो और न पीड़ितों को कोई राहत मिले, वह कार्य पाखण्ड ही रहेगा, धर्म नहीं। आज धर्म के नाम पर पाखण्ड का बोलबाला है और भोली जनता अपनी गाढ़ी कमाई का अरबों रुपया उसी पाखण्ड पर स्वाहा कर देती है। पाखण्डों पर खर्च होने वाला समय और धन यदि उपयोगी कार्यों में लगे तो उसका कितना बड़ा सत्परिणाम उत्पन्न हो। मृत्युभोज, पशुबलि, बाल विवाह, नीच-ऊँच, स्याने, दिवाने, भूत पलीत, कन्या-विक्रय, स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गंदे-गंदे गीत, पर्दा, होली में कीचड़ उछालना, दिवाली पर जुआ खेलना आदि अगणित ऐसी कुरीतियाँ हमारे समाज में प्रचलित हैं, जिनके कारण अनेक रोगों से ग्रसित रोगी की तरह हम सामाजिक दृष्टि से दिन-दिन दुर्बल होते चले जा रहे हैं।

धर्म और परम्परा की दुहाई देना बेकार है। हिन्दू समाज में आज भी इतनी परस्पर विरोधी प्रथायें चल रही हैं, जिनको देखते हुये इन रीति-रिवाजों को केवल क्षेत्रीय रस्म-रिवाज और भेड़िया-घसान मात्र ही कहा जा सकता है। हमारे राजस्थान के राजपूतों तथा उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश के कुछ रईस किस्म के लोगों में आज भी लम्बा घूँघट काढ़ने और पर्दे में स्त्रियों को बन्द रखने की प्रथा मौजूद है पर पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, दक्षिण भारत में पर्दा का कहीं नाम निशान भी है ! हिन्दू सभी हैं, हिन्दू धर्म सभी मानते हैं फिर पर्दा हिन्दू धर्म का अंग कैसे कहा जायेगा ? मध्यप्रदेश तथा राजस्थान की मीना आदि अविकसित जातियों में अभी भी चार-चार, छह-छह वर्ष के बच्चों के विवाह होते हैं। बाल-विवाह या वयस्क विवाह को धर्म-अधर्म की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता है।

ऊपर धार्मिक मान्यताओं के आधार पर प्रचलित कुरीतियों की कुछ चर्चा की गई है। राष्ट्रीय दृष्टि से स्वार्थपरता, व्यक्तिवाद, असहयोग, संकीर्णता हमारा एक प्रमुख दोष है। सारी दुनिया परस्पर सहयोग के आधार पर आगे बढ़ रही है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, वह परस्पर सहयोग के आधार पर ही बढ़ा और समुन्नत हुआ है। जहाँ प्रेम, ममता, एकता, आत्मीयता, सहयोग और उदारता है वहीं स्वर्ग रहेगा। समाजवाद और साम्यवाद की मान्यता यही है, कि व्यक्ति को अपने लिये नहीं समाज के लिये जीवित रहना चाहिये। सामूहिक सुख-शान्ति बढ़ाने के लिये अपनी समृद्धि और सुविधा का त्याग करना चाहिये। धर्म और अध्यात्म की शिक्षा भी यही है कि व्यक्ति अपने लिये धन-वैभव जमा न करके अपनी प्रतिभा, बुद्धि, क्षमता और सम्पदा को जीवन निर्वाह की अनिवार्य आवश्यकताओं के लिये ही उपयोग करे और शेष जो कुछ बचता हो सबको सामूहिक उत्थान में लगा दे। जिस समाज में ऐसे परमार्थी लोग होंगे वही फलेगा, फूलेगा और वही सुखी रहेगा। जहाँ स्वार्थपरता, जमाखोरी की प्रवृत्ति पनप रही होगी वहाँ अनैतिकता के सभी कुकर्म बढ़ेंगे और फैलेंगे। सामान्य नागरिकों के स्तर से अत्यधिक ऊँचे स्तर का सुखोपभोग करने की प्रवृत्ति जहाँ भी पनपेगी वहीं शोषण, अन्याय, दुराचार, द्वेष, संघर्ष, ईर्ष्या आदि बुराइयाँ विकसित होंगी। प्राचीनकाल में जिनकी प्रतिभा अधिक कमाने की होती थी, वे अपने राष्ट्रीय स्तर से अधिक उपलब्ध धन का लोक-हित के कार्यों में दान कर देते थे। जीवन की सार्थकता, सेवा कार्यों में लगी हुई शक्ति के आधार पर ही आँकी जाती थी।

इस प्रकार जीवन के हर क्षेत्र में—समाज के हर वर्ग में—दुष्प्रवृत्तियों ने गहराई तक जड़ें जमा ली हैं। फलस्वरूप हर दिशा में संकटों के दानव सर्वभक्षी नग्न-नर्तन कर रहे हैं। लड़ना हमें उस दुर्बुद्धि से है, जो समस्त विपत्तियों की जननी है। समाज-सेवा के यों छुट-पुट उपाय भी बहुत हैं और उन्हें खड़ा करने वाले को थोड़ा यश भी मिल जाता है, पर इससे संकट के मूल प्रयोजन कों टालने में रत्ती भर भी सहायता नहीं मिलती। अन्नक्षेत्र, सदावर्त, प्याऊ, धर्मशाला, दवाखाना, बगीचा, मन्दिर आदि स्थापित करने वाले 'धर्मात्मा' कहलाने की वाहवाही प्राप्त कर सकते हैं। आत्म-विज्ञापन का लाभ तो इसमें प्रत्यक्ष है, पर विश्व-संकट की छाई हुई घटाओं को खिसकाने में इससे तनिक भी सहायता नहीं मिलती। दुर्बुद्धि से लड़ने के लिये विचार-क्रान्ति का गांडीव उठाना पड़ेगा और पाँचजन्य बजाना पड़ेगा। परशुराम के कुल्हाड़े को सँभालकर निकृष्ट-चिन्तन के परिवार का सिर उतारना पड़ेगा। किसी समय रावण, कुम्भकरण, कंस, जरासन्ध, दुर्योधन, दुःशासन, महिषासुर, मधुकैटभ, वृत्रासुर, हिरण्यकश्यप आदि का दमन धर्म-स्थापना के लिये आवश्यक माना गया था। आज दुष्प्रवृत्तियों के परिपोषक ज्ञान का कलेवर ओढ़कर नग्न-नृत्य करने वाले अज्ञानरूपी महादैत्य का दमन करना पड़ेगा। विचार-क्रान्ति किये बिना समाज-निर्माण की आधार-शिला नहीं रखी जा सकेगी। ज्ञान-यज्ञ के बिना सुख-शान्ति एवं प्रगति की सर्वतोमुखी सम्भावनायें प्रस्तुत कर सकने वाले नव-युग का अवतरण नहीं हो सकेगा। हमें हनुमान आदि की तरह—पाण्डवों की तरह—धर्म की स्थापना कर सकने वाले अधर्म-विरोधी अभियान में अपने आप को झोंकना चाहिये। गोवर्धन उठाने में योगदान देने वाले ग्वाल-बालों की तरह अपनी भूमिका उत्साहपूर्वक सम्पन्न करनी चाहिये। भले ही वह देखने में कितनी ही नगण्य क्यों न हो।

सभ्य समाज की रचना के लिये कुरीतियों और अनैतिकताओं के दुहरे मोर्चे पर लड़ा जाना आवश्यक है। विवाहोन्माद में होने वाला अपव्यय दहेज-प्रचलन रोकने के लिये हमें युद्ध स्तर पर तीव्र आन्दोलन खड़ा करना चाहिये और देश को निरन्तर खोखला, अनैतिक और दरिद्र बनाते जाने वाले इस अनाचार का हर सम्भव उपाय से डटकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विरोध करना चाहिये। मृतक-भोज, भिक्षा-व्यवसाय, धर्म-क्षेत्र पर छाया हुआ पुरोहितवाद, भूत-पलीत, भाग्यवाद, धर्म के नाम पर पशु-बलि, बाल विवाह, अनमेल-विवाह, जन्म-जाति के नाम पर ऊँच-नीच की मान्यता, पर्दा-प्रथा, लड़की-लड़के की असमानता, स्त्री और शूद्रों के प्रति अमानवी प्रतिबन्ध ऐसे हैं, जिन्हें अविलम्ब हटाया जाना चाहिये। नैतिक क्षेत्र में माँसाहार, नशेबाजी, आलस्य-श्रम की अप्रतिष्ठा, पशुओं के साथ बरती जाने वाली निर्दयता, भ्रष्टाचार, चोरी, बेईमानी, रिश्वत, जमाखोरी, मुनाफाखोरी, सन्तान की अवांछनीय अभिवृद्धि, गन्दगी, फिजूलखर्ची, नागरिक कर्त्तव्यों की उपेक्षा, समय की बरबादी, उद्दण्ड उच्छृंखलता आदि अनेकों दुष्प्रवृत्तियाँ प्रचलित हैं, जिन्हें सहन किया जाता रहा तो इस नासूर से सारा समाज शरीर ही सड़ जायेगा।

अनाचार प्रायः हर क्षेत्र में अपनी जड़ें गहरी करता चला जा रहा है। इसके खतरों से जनसाधारण को सचेत किया जाना चाहिये। लोक-मानस में अवांछनीयता के प्रति विरोध, असहयोग एवं विद्रोह की भावनायें जगाई जानी चाहिये। कुड़कुड़ाते रहने की अपेक्षा अनीति से जूझने की संघर्षात्मक चेतना उभारी जानी चाहिये और उसका सजीव मार्गदर्शन हमें आगे बढ़कर करना चाहिये। ऐसे संघर्षों को आगे बढ़ाने वाले को प्रतिपक्षियों का आक्रमण सहना पड़ता है और तरह-तरह की क्षति उठानी पड़ती है। इसके सहने के लिये जिनमें धैर्य, शौर्य, सन्तुलन और साहस हो, उन्हें आगे बढ़कर संघर्ष का मोर्चा सँभालना चाहिये। कम से कम इतना तो संघर्ष मोर्चे पर हम में से हर किसी को करना चाहिये कि अनीति एवं अनौचित्य के साथ कोई सम्बन्ध न रखें—समर्थन न करें—सहयोग न दें। उससे पूरी तरह अलग रहें और समय-समय पर अपने असहयोग एवं विरोध को व्यक्त करते रहें। दुर्बल और असंगठित स्थिति में इस 'असहयोग' से भी काम चल सकता है। आगे बढ़ना हो तो विरोध व्यक्त करने के लिये लेखनी, वाणी और प्रदर्शन जैसे साधनों का उपयोग किया जा सकता है। सत्याग्रह, घिराव, भर्त्सना, धिक्कार और दूसरे प्रतिरोधात्मक उपाय भी काम में लाये जा सकते हैं। कहाँ, किस अनीति के विरुद्ध, क्या कदम उठाया जाय ? इसका निर्णय अपने पक्ष के साहस और संगठन पर निर्भर करता है। जहाँ, जो सम्भव हो—अनीति के विरुद्ध मोर्चा बनाया ही जाना चाहिये। ताकि आततायी, अनाचारियों को निर्भय होकर कुछ भी करते रहने की छूट न मिले।

समाज में पनपने वाली दुष्प्रवृत्तियों को रोकना केवल सरकार का ही काम नहीं है वरन् उसका पूरा उत्तरदायित्व सभ्य नागरिकों पर है। प्रबुद्ध और मनस्वी लोग जिस बुराई के विरुद्ध आवाज उठाते हैं, वह आज नहीं तो कल मिटकर रहती है। अँग्रेजों के फौलादी चंगुल में जकड़ी हुई भारत की स्वाधीनता को मुक्त कराने के लिये, गुलामी के बन्धन तोड़ने के लिये जब प्रबुद्ध लोगों ने आवाज उठाई तो क्या वह आवाज व्यर्थ चली गई ? देर लगी, कष्ट आये पर वह मोर्चा सफल ही हुआ। समाजगत अनैतिकता, अविवेक, अन्धविश्वास और असभ्यता इसलिये जीवित है कि उनका विरोध करने के लिये वैसी जोरदार आवाजें नहीं उठतीं, जैसी राजनीतिक गुलामी के विरुद्ध उठी थीं। यदि उसी स्तर का प्रतिरोध उत्पन्न किया जाय तो हमारी सामाजिक गन्दगी निश्चय ही दूर हो सकती है, सभ्य समाज के सभ्य नागरिक कहलाने का गौरव हम निश्चय ही प्राप्त कर सकते हैं।

सामाजिक कुरीतियों और सामूहिक दुष्प्रवृत्तियों का कायम रहना सज्जनों के लिये भी विपत्ति कारण ही रहेगा। व्यक्ति कितनी ही उन्नति कर ले, पतित वातावरण में यह उन्नति भी बालू की भीति की तरह अस्थिर रहेगी। जैसे हमें जितनी व्यक्तिगत उन्नति की चिन्ता है उतना ही सामाजिक उन्नति का भी ध्यान रखना होगा और उसके लिये हर सम्भव प्रयत्न करना होगा। इस दिशा में की हुई उपेक्षा हमारे अपने लिये ही घातक होगी। अपने समाज के सुधार पर ध्यान देना उतना ही आवश्यक है जितना अपने स्वास्थ्य एवं उपार्जन की समस्याओं को सुलझाना। समाजगत पापों से हम निर्दोष होते हुये भी पापी बनते हैं। भूकम्प, दुर्भिक्ष, युद्ध, महामारी आदि के रूप में भी ईश्वर हमें सामूहिक दण्ड दिया करता है कि हम अपने को ही नहीं सारे समाज को भी सुधारें। स्वयं ही सभ्य न बनें, समाज को भी सभ्य बनाने के लिये हम कटिबद्ध हों।

हमारी सामाजिक क्रान्ति का अर्थ देश में प्रचलित कुछ कुरीतियों का हटा देने मात्र तक सीमित नहीं रहना चाहिये, वरन् एक सभ्य, सुविकसित एवं सुसंस्कृत समाज की रचना होनी चाहिये। यदि अनैतिक दुष्प्रवृत्तियाँ प्रचलित रहीं तो कोई कुरीतियाँ मिटा भी दी जायँ तो अन्य प्रकार की अन्य तरीके की बुराइयाँ फिर उठ खड़ी होंगी किन्तु यदि सज्जनता को जन-मानस का सहज स्वभाव बनाया जा सका तो आज की भयंकर दिखाई देने वाली कुरीतियाँ अनायास ही नष्ट हो जायेंगी।

समाज का पुनर्निर्माण अत्यावश्यक

आज मनुष्य की जैसी कुछ दीन-हीन अवस्था होती जा रही है और वह उत्तरोत्तर पतन की ओर बढ़ता जा रहा है, उसका मूल कारण समाज की विकृत अवस्था ही हो सकती है। समाज विकृतियों और भ्रान्तियों का शिकार बना हुआ है। न परम्परायें सही हैं, न रीति-रिवाज। मनुष्य के सोचने-विचारने का दायरा इतना संकुचित हो गया है कि वह स्वार्थ के अतिरिक्त कुछ सोच ही नहीं पाता। सब तरफ अनुशासनहीनता और अपराधों की प्रवृत्ति बढ़ रही है। बेईमानी, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, व्यसन, व्यभिचार, फैशन, विलासिता, असंयम, अशिष्टता, उच्छृंखलता, चोरी, छल, विश्वासघात, कृतघ्नता आदि कितनी ही अनैतिक बुराइयाँ फैलती हुई चली जा रही हैं। एक व्यक्ति से बराबर दूसरे लोग प्रशिक्षण प्राप्त करते जा रहे हैं। प्रत्यक्ष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूप से अनैतिकता की शिक्षा देने वाली कोई पाठशाला नहीं दीखती तो भी लोग अनेक मूढ़ताओं से ग्रस्त होते चले जा रहे हैं।

चोरी के अपराध में एक व्यक्ति पकड़ा जाता है और उसे ही सजा होती है। मानवीय दृष्टि से देखा जाय तो चोर को चोरी की प्रवृत्ति डालने का दोष सारे समाज को है। बालकों की समुचित शिक्षा-दीक्षा न होना, उन्हें नैतिक ढाँचे में न ढालना, फिर धन का कहीं अत्यधिक संचय और मुनाफाखोरी, किसी को पेट भरने के लिये भी उचित साधनों का उपलब्ध न होना आदि अनेक कारण कम बुद्धि के लोगों में इस प्रकार की अनैतिकता की बातें भर देते हैं। दोषी एक व्यक्ति दिखाई देता है किन्तु उस अपराध के पीछे वस्तुतः सारा समाज जुड़ा हुआ होता है।

मनुष्य ने आज जितनी भी प्रगति की है उसका सम्पूर्ण श्रेय कुछ व्यक्तियों को नहीं सम्पूर्ण समाज को है। सृष्टि के दूसरे प्राणी तो जन्म के कुछ घण्टे बाद ही स्वावलम्बी हो जाते हैं किन्तु बेचारे मनुष्य में इतनी भी सामर्थ्य नहीं होती। कच्चा शरीर, कच्ची बुद्धि लेकर जन्मता है और समाज का रस पी पीकर बड़ा और प्रबुद्ध बनता है। माँ उसे दूध पिलाती है, पिता कपड़े पहनाता है, भाइयों से वह आदतें सीखता है, अध्यापक और गुरुजन उसे शिक्षा देकर सुसंस्कारवान् बनाते हैं। पुस्तकें उसकी प्रतिभा का विकास करती हैं। वह भी किन्हीं विद्वान् पुरुषों की ही लिखी हुई होती हैं। ऐसी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति जब समाज से हो जाती है, तो मनुष्य इस योग्य हो पाता है कि वह कुछ स्वतन्त्र चिन्तन, श्रेष्ठ कार्य अथवा अन्वेषण-आविष्कार करे। समाज के सहयोग के बिना वह एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता।

मनुष्य के निर्माण में अनेकों भौतिक एवं बौद्धिक उपलब्धियों में जो श्रेय सामाजिकता को दिया जा सकता है, पतन के लिये उतना ही उत्तरदायित्व भी उसी पर है। मनुष्य जन्म से खराब नहीं होता। जन्म लेने के बाद से उसे जो सिखाया जाता है, वही सीखने लगता है। जो खिलाया जाता है, खाने लगता है। वस्त्र पहनने की उसकी आदत बड़ों का अनुकरण करने के बाद ही पड़ती है। गुण, कर्म और स्वभाव का विकास कुटुम्ब और समाज में ही होता है। हिन्दुओं के घरों के लड़के जिनके माता-पिता अँग्रेजी जानते तक नहीं, उनके बच्चों को अँग्रेजी संस्कार नहीं पड़ सकते, उसी प्रकार अँग्रेज बच्चे अपने माता-पिता के ढंग के वस्त्रों तक का परित्याग कर भारतीय धोती और कुरते को पहनते नहीं देखे जाते। जैसा कुछ समाज का ढाँचा और स्तर होता है, उसके नागरिक उसी ढाँचे और स्तर में विकसित होते हैं और कुछ दिनों के ही अभ्यास के बाद वे उसमें पूर्ण और परिपक्व हो जाते हैं।

कदाचित् इस बात की सत्यता हमारे पूर्वजों ने अधिक गम्भीरता से अनुभव की थी। सामाजिकता ही मानवीय प्रगति की एकमात्र जननी है, इसे वे भलीभाँति समझते थे। मनुष्य के मनोविज्ञान का अध्ययन उन्होंने गहराई तक किया और समाज के द्वारा उन पर पड़ने वाले प्रभाव को भी उन्होंने पूरी तरह आँका। उसकी सत्प्रवृत्तियों को जाग्रत करने के लिये धर्म, अध्यात्म, संस्कृति, शासन तथा कानून की व्यवस्था को कठोर रूप देने के पीछे उनकी यही बौद्धिक चतुराई थी कि मनुष्य समाज से अच्छा ही अच्छा ग्रहण करे और स्वयं उच्चतर श्रेणी का नागरिक बने। इस सुव्यवस्था के फलस्वरूप ही किसी जमाने में भारत भूमि को "स्वर्गादपि गरीयसी" की गौरवपूर्ण गरिमा प्राप्त थी। तब यहाँ का मनुष्य देवता था, ऋषि था, भूसुर और ब्रह्म तत्ववेत्ता था। उस समय लोगों में सदाचरण और सच्चरित्रता की प्रतिद्वन्द्विता चलती थी, इसका एकमात्र कारण यही था कि उस समय के समाज ने सत्प्रवृत्तियों पर गहन शोध की थी और वह उन तत्वों से भरा पूरा था।

आज मनुष्य में बड़ी कमजोरियाँ आ गई हैं। उसका प्रत्येक क्षेत्र दोषपूर्ण है। खानपान, व्यवहार, विचार, रहन-सहन किसी में भी व्यवस्था, नियन्त्रण अथवा विवेक नहीं है। पर क्या इसके लिये एक व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सकता है ? जिस व्यक्ति को बाल्यावस्था से ही तीखे, चटपटे, वासी, बुसे, गरिष्ठ खाद्य पदार्थ खाने को मिले हों और इनके कारण उसका स्वास्थ्य, उसका मन विकृत हो रहा हो तो उसे कौन दोष दे सकता है ? जिन घरों के लोग बीड़ी, शराब, जुआ, चोरी, दलाली के व्यसन में डूबे हों, उनके बालकों को कोई सदाचारी देखना चाहे तो यह कैसे सम्भव हो सकता है। सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ में ही लागू की गई होती तो उससे कुछ लाभ भी होते पर एक व्यक्ति समाज के बुरे संस्कार लेकर बुरा बन गया तो उसे उतना दोष दिया जाना बुद्धिसंगत नहीं। यह दोष समाज का था, जिसने उसे आचरण को परिपक्व होने में सहयोग दिया।

मनुष्य जैसा देखता-सुनता है उसे ही उपयुक्त मान लेता है और उसी के अनुसार स्वयं भी व्यवहार करने लगता है। इसलिये उसके अपराध क्षम्य माने जा सकते हैं। महापुरुष ईसा, मन्सूर, सुकरात, बुद्ध, ज्ञानेश्वर, दयानन्द, गाँधी, मार्टिन लूथर, अब्राहम लिंकन प्रभृति जैसी विभूतियों ने अपना सारा जीवन समाज-सुधार में लगाया। ये महापुरुष इस बात को जानते थे कि कुछ व्यक्तियों के भले बन जाने से संसार नहीं बदला जा सकता। परिस्थितियों को बदलने और मनुष्य की प्रवृत्तियों को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिये सामाजिक संस्कार की आवश्यकता जैसे तब अनुभव की गई थी ठीक वैसी ही आज भी विद्यमान है।

एक व्यक्ति के सुधर जाने से संसार का कुछ भला नहीं हो सकता। थोड़े मुट्ठी भर आदमियों के द्वारा ईश्वर की उपासना करने, सत्य बोलने, धर्माचरण करने, चरित्रवान होने से पृथ्वी स्वर्ग नहीं बन सकती। जहाँ बुराइयों की भीषण आग लगी हुई हो, सत्प्रवृत्ति का एक लोटा जल उसे बिल्कुल भी नहीं बुझा सकता। वह भी उस आग में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भाप बनकर उड़ जायेगा। समाज की दुष्प्रवृत्तियों के बीच सदाचारी व्यक्तियों का ससम्मान जीवित रहना भी कठिन होता है। दुराचारी व्यक्ति न केवल अपने लिये अभिशाप होते हैं वरन् वे हर अच्छे-भले आदमियों को भी कठिनाई में डालते रहते हैं। इसलिये यदि समाज की स्थिति दुर्गन्धित, असभ्यतापूर्ण और बुराइयों से भरी हुई हो तो कुछ व्यक्तियों के निर्माण की बात सोचने से भी कुछ लाभ नहीं।

समाज अच्छा होगा तो व्यक्ति अच्छे बनेंगे। यह दोनों एक दूसरे पर टिके हुये हैं। हमारा देश एक हजार वर्षों की दासता में फँसकर ऐसी बुराइयों में डूब गया है कि वे बाहर से देखने पर तो सामान्य रीति-रिवाज जैसी लगती हैं किन्तु उनके परिणाम बड़े भयंकर हो रहे हैं। शादी-विवाह से लेकर पारिवारिक जीवन में जो विशृंखलता समायी हुई है उसे दूर किये बिना किसी भावी उन्नति की ठीक-ठीक कल्पना भी नहीं की जा सकती। राष्ट्र के सुख-सौभाग्य के सम्वर्द्धन के लिये समाज की गर्हित अवस्था को सुधारा जाना नितान्त आवश्यक हो गया है। समाज सुधर जायेगा तो उसमें से देव-पुरुषों का आविर्भाव स्वयमेव होने लगेगा तथा स्वर्गीय परिस्थितियाँ भी अपने आप विकसित होने लगेंगी।

मनुष्य के पुष्ट कुसंस्कारों को एकाएक परिवर्तित नहीं किया जा सकता। व्यक्ति की आन्तरिक अवस्थायें कानूनों से नहीं सुधारी जा सकतीं। आत्म-निर्माण की प्रक्रिया भाषणों और प्रवचनों से पूरा नहीं हो सकती वरन् मनुष्यों के जीवन-दर्शन बदलने की आवश्यकता है और इसके लिये समाज के पुनर्निर्माण का लक्ष्य बनाना उससे भी कहीं अधिक आवश्यक है। व्यक्ति निर्माण की प्रक्रिया के साथ-साथ समाज सुधार के लिये प्राचीनकाल जैसे धर्मोपचारों का प्रसार इन दिनों बहुत आवश्यक हो गया है।

आज का हमारा सारा समाज बुराइयों से घनीभूत हो रहा है। सामाजिक स्थिति इतनी दयनीय हो चुकी है कि अब उसके आगे बढ़ने पर मानव-संस्कृति का सर्वनाश ही सम्भव है। ऐसी विकृतियाँ, भ्रान्तियाँ और मूढ़ परम्परायें संसार के दूसरे देशों में भी भरी पड़ी हैं, पर हमें उनसे क्या मतलब। आज तो अपने आपको ठीक करने के लिये अवसर उपस्थित हुआ है। सच तो यह है कि दूसरों के अन्धानुकरण से ही हमारा समाज इस अधोगामी स्थिति को प्राप्त हुआ है। अब उन बुराइयों को अपने समाज में से उखाड़ फेंकने के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये, जो भूतकाल की लम्बी अवधि में हमारे सामाजिक जीवन में घटाटोप बनकर छा गई हैं।

समाज का अभिनव निर्माण कैसे ?

अनेक प्रथायें, अनेक प्रचलन, अनेक मान्यतायें, चिन्तन की अनेक दिशाधारायें मनुष्य की चिन्तन-चेतना को निखारती कम हैं और उसे भ्रम-जंजालों में अधिक भटकाती हैं। दार्शनिक और वैज्ञानिक विषयों में नये अन्वेषण करके, नये तथ्यों का पता लगाने की छूट है, किन्तु जहाँ तक जीवनयापन की शैली और पद्धति का सम्बन्ध है वह ऐसी रहे, जो सर्वसुलभ भी हो और विज्ञजनों द्वारा अनुमोदित। इस पद्धति में ऊँच-नीच की झलक न हो, किसी की अहमन्यता को पोषण न मिले, वर्जनाओं को तोड़ने का कोई साहस न करे, मर्यादाओं का पालन सभी हेतु अनिवार्य रूप से आवश्यक हो। सादा जीवन उच्च विचार का सिद्धान्त इसलिये अपनाया जाय कि इन दोनों में परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध हो। उच्च विचारों को प्रश्रय देना है, तो जीवन के हर पक्ष में सादगी और स्वस्थता को समुचित स्थान देना पड़ेगा। यदि सादगी अपना ली गयी और दरिद्रता की भौंड़ी प्रतिक्रिया नहीं है, तो फिर विवेकपूर्वक अपनायी गई सादगी के साथ उच्च विचार जुड़कर रहेंगे।

वस्त्र, आभूषण और शृंगार-प्रसाधनों की सजधज जहाँ ईर्ष्या, ललक, अनुकरण, विद्वेष का वातावरण बनाते हैं वहीं व्यक्ति को अपव्ययी भी सिद्ध करते हैं। नीतिमत्ता, ईमानदारी और मेहनत से उतना ही कमाया जा सकता है, जिससे औसत भारतीय स्तर का निर्वाह चल सके। यदि उसमें से भी कुछ बच जाता है, तो अपनी तथा परायी सत्प्रवृत्तियों के परिपोषण के निमित्त उसे मुक्त हस्त से खर्च किया जा सकता है। यह नीति अपना लेने के उपरान्त किसी के पास इतना पैसा नहीं बच सकता, जिसका उपयोग वह अपव्यय में, दुर्व्यसनों के लिये कर सके। दूसरों से अपने को अधिक अमीर सिद्ध करने के लिये ठाठ-बाट भरे प्रदर्शन खड़े कर सके।

अमीरी का पाखण्ड सबसे बुरे किस्म का पाखण्ड है। उसके साथ अनाचार जुड़ता है। कमाई का सही विभाजन करने पर अपनी, अपने परिवार की, समाज की पिछड़ेपन की समस्याओं के सुलझाने वाली बात को भी जीवन की महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं में ही सम्मिलित किया जाना चाहिये। इस क्षेत्र में आजीविका का सही वितरण और विभाजन कर लेने के उपरान्त और कुछ इतना नहीं बचता, जिसे कि अपव्यय में खर्चा जा सके। यदि किसी ने अपना खर्चीला ठाठ-बाट बढ़ाया है, तो उसके दो ही अर्थ निकलते हैं कि या तो उसने अनुचित उपार्जन का आश्रय लिया है या फिर उपयोग पक्ष की किसी आवश्यकता को समुचित पोषण प्रदान नहीं किया। इन दोनों ही दशाओं में मनुष्य मानवी गरिमा से गिरता है, भले ही वह शान-शौकत वाला अमीर ही क्यों न दीखता हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खर्चीले ठाठ-बाट या दुर्व्यसनों में मात्र धन ही खर्च नहीं होता। उनके जुगाड़ बिठाने में चिन्तन की ढेरों सारी क्षमता खप जाती है, जो किसी योजनाबद्ध उत्कृष्ट चिन्तन में लगकर उपलब्धियाँ और विभूतियाँ उत्पन्न कर सकती थी। इस जंजाल में श्रम और समय भी कम खर्च नहीं होता। तथाकथित बड़प्पन का एक चिन्ह यह भी है कि शारीरिक श्रम नौकरों से कराया जाय और कोई हल्का-फुल्का दिमागी काम स्वयं निपटा दिया जाय। इसे आरामतलबी कहते हैं। 'आराम हराम है' की उक्ति सारगर्भित है। इसे हृदयंगम कर लेने पर व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और आर्थिक दृष्टि से सुसम्पन्न बनता है, जबकि अमीरी के जनून में आरामतलबी और ठाठ-बाट का प्रदर्शन एक प्रकार से आवश्यक हो जाता है।

कोई समय था जब अमीर या अमीरी के पाखण्डियों को बड़ा आदमी समझा और सम्मान दिया जाता था। अब सिवाय स्वार्थ सिद्धि में कुशल घिनौने चापलूसों के अतिरिक्त ठाठ-बाट की प्रशंसा कोई नहीं करता, वरन् पीठ पीछे हर कोई यह कहता है कि यह बेईमानी से कमाने वाला, निष्ठुर हृदय और प्रदर्शन का भूखा है। उसे लोग एक प्रकार से अनैतिक, धूर्त, उद्धत या गये-गुजरे व्यक्तित्व का ही मानते हैं। पैसा और समय खर्च करने के उपरान्त यदि यही उपलब्धि हाथ लगती है, तो दुर्भाग्य ही माना जायेगा।

संस्कृति का मोटा तात्पर्य जीवनयापन की पद्धति से लिया जाता है। यों उसके और भी कई चित्र-विचित्र अर्थ हैं। हमारा सहज जीवनक्रम सादा, सौम्य, सात्विक हो, तो उस मार्ग पर चलने वाले को सुसंस्कृत कहा जायेगा।

गणितज्ञों का सामान्य अनुमान है कि सुनियोजित सादा जीवन में जितना पैसा, श्रम और समय लगता है, उसकी तुलना में इन दिनों तीन गुनी सामर्थ्य प्रदर्शन प्रयोजन के लिये खर्च की जाती है। गरीबी का एक बड़ा कारण यह भी है। यदि सभी लोग रेडीमेड स्तर के औसत दर्जे के एक फैशन के कपड़े पहनें, नर-नारी पोशाकों में असाधारण अन्तर न रखें, तो एक तिहाई कपड़े में काम चल सकता है और बचा हुआ उत्पादन उनके काम आ सकता है, जो तन ढकने के लिये, सर्दी से बचने के लिये, उचित मात्रा में कपड़ा प्राप्त नहीं कर पाते। यह समता के सिद्धान्त का कारगर प्रयोग है। यदि अहंता का उन्माद असाधारण रूप से न छाया रहे, तो सबकी दृश्यमान स्थिति और हैसियत एक जैसी प्रतीत हो सकती है। वह स्थिति बड़ी नयनाभिराम और प्रखर होगी।

अपराधों के बढ़ते हुये उभारों के गहरे कारण हैं—कामुकता, माँसाहार और मद्यपान। इनकी ओर बढ़ती हुई ललक समयानुसार अनेक प्रकार के ऐसे उन्मादों में उभरती है, जिन्हें प्रत्यक्ष रूप में अपराध कहा और गिना जा सके। यह निर्धारित मर्यादाओं का सीधा व्यतिक्रम है। अभ्यास में उतरने, स्वभाव के अंग बनने के उपरान्त लोभ परक प्रतिशोध के रूप में वे फूटते हैं और उनकी क्रिया-प्रतिक्रिया अनेकों को अपने परिकर में सम्मिलित करती है।

माँसाहार के पक्ष में दी जाने वाली दलीलें थोथी हैं। न उससे बल बढ़ता है, न खाद्य समस्या हल होती है। अन्न की तुलना में माँस महँगा है, दुष्पाच्य है। सबसे बड़ी बात यह है पशुवध के रूप में अपनायी गई नृशंसता। वह जब स्वाभाविक और आवश्यक लगती है, तो वैसा ही व्यवहार मनुष्य बिरादरी में से अपने-परायों के साथ करने में ग्लानि नहीं मानता वरन् कोई बड़ा दुस्साहस किया गया, ऐसा वर्ग उभरता है। मद्य के सम्बन्ध में यह सोचना गलत है कि उससे शरीर में फुर्ती और मस्ती आती है वरन् यथार्थ बात यह है कि चिन्तन के तन्तु भौंथरे और विकृत हो जाते हैं। आदत पड़ने पर वह छूटती है नहीं, उल्टे अर्ध-विक्षिप्त जैसी स्थिति बन जाती है। फिर व्यक्ति असमर्थ बनता है साथ ही संचित प्रतिभा खो बैठता है। जीवनी शक्ति घटती है। बीमारियाँ चढ़ती हैं और अकाल मृत्यु आ घेरती है। कामुकता की ललक चढ़ने पर माता, भगिनी और बेटी के रिश्ते समाप्त हो जाते हैं। वह न सगी को बख्शता है न पराई को। आदमी के दिमाग में शैतान रमणी बनकर नाचता है और घिनौनी प्रक्रिया में रस लेने की आदत डालता है। यह अप्रत्यक्षतः सभ्य समाज की वर्जनायें हैं, जो यदि लगातार तोड़ी-मरोड़ी जाती रहें तो व्यक्ति चोर, उचक्का, ठग, हत्यारा, आततायी आदि कुछ भी बन सकता है। यह दुष्प्रवृत्तियाँ जब अनियन्त्रित होती हैं, तो समाज का स्वरूप विकृत करके रख देती हैं। सौजन्य का स्थान अनाचार ले लेता है और बिगाड़ इस प्रकार बिखर पड़ता है कि फिर समेटने पर भी सिमटने में नहीं आता। विग्रहों, संकटों और अनाचारों के अम्बार खड़े करता है।

इक्कीसवीं सदी में इनके उत्पादन पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ेगा। विक्रय रोकने से तो पत्ते तोड़ने जैसा मन बहलाव होता है। उपरोक्त तीनों आदतों में से एक भी ऐसी नहीं है, जो दण्ड का भय बढ़ा देने या विकल्प खोजने से उनका समापन हो सके।

विवाह समस्या की पेचीदगी भी कम नहीं है। दहेज, बारात, जेवर, प्रदर्शन जैसे फूहड़पन तो इस बीसवीं सदी के अन्त तक ही समाप्त हो चलेंगे। अभिभावक पहले बच्चों को स्वावलम्बी बनावेंगे। इसके उपरान्त उन्हें विवाह का परामर्श देंगे। सबसे बड़ी बात है तलाक के उपरान्त अनाथ होते बच्चों की। उसका उपाय यह हो सकता है कि प्रजनन पर बीमा शुल्क लगे और तलाक होने पर वह राशि बच्चों के पोषण पर खर्च हो। इस दबाव से विवाह विच्छेद होने और बच्चे उत्पन्न करने में जो अड़चन आड़े आवेगी, वह किसी प्रकार काम चलाने के लिये बाधित करेगी। पारिवारिक समस्याओं को सुधारने के लिये ऐसी पंचायतों का गठन हो जो अनीति पर उतरने वाले पक्ष पर सामाजिक बहिष्कार, अर्थ दण्ड जैसा कोई सशक्त विधान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हाथ में लिये हों। कोर्ट-कचहरी का महँगा और लम्बा झंझट शुरू करने की अपेक्षा पंच लोग उन क्षेत्रों में ही जाकर पीड़ित पक्ष से समग्र जानकारी प्राप्त करें और समझौते से लेकर क्षतिपूर्ति तक के सभी उचित उपाय काम में लायें। विवाह की वर्तमान प्रणाली में जो दोष भर गये हैं, उनका निराकरण करते हुये भावी प्रचलन ऐसे हों जिनमें गठबन्धन मिलजुलकर समग्र जीवन जीने के आधार पर किये जायें। उनमें कामुकता की तृप्ति के लिये छूट तो रह सकती है, पर ऐसा नहीं हो सकता कि अनुबन्ध में यौनाचार या प्रजनन का अनिवार्य अनुबन्ध हो। किसी को अपना स्वावलम्बन एवं सम्मान खोने तक के लिये विवाह बाधित न करे। शिशु उत्पादन से ही शिक्षा टैक्स एक नये बीमे के रूप में वसूल करना आरम्भ कर दिया जाये ताकि कोई भी बालक अभिभावकों की उपेक्षा के कारण अशिक्षित, कुपोषण ग्रस्त न रह पाये। साज-सम्भाल के अभाव में उद्दण्ड-उच्छृंखल न बन पाये।

इन दिनों आर्थिक और सुरक्षा सम्बन्धी समस्याओं का समाधान और सुविधाओं का संवर्धन सरकार को अपना समग्र कर्त्तव्य प्रतीत होता है। अगले दिनों इसे तना और समाज गठन को जड़ें माना जायेगा। जड़ों को फैलने और खाद-पानी पाने का अवसर मिलेगा तो तना भी मोटा होगा और उस पर पल्लवों, फूल-फलों की भी भरमार रहेगी। पर जड़ खोखली हो गयी तो पेड़ सूखने-उखड़ने की स्थिति पकड़ लेगा। सामाजिकता सही रहने पर राजनीति का तीन-चौथाई कार्य पूरा हो जाता है। किन्तु यदि समाज में अनाचार बढ़ता-भरता रहा तो फिर शासन सत्ता द्वारा जुटाये हुये पुलिस, कचहरी, जेल जैसे सभी आधार खिलौने बनकर रह जायेंगे। जेल जाकर लौटने वाले अपराधों की भली प्रकार शिक्षा-दीक्षा लेकर वापिस लौटेंगे। इसलिये समाज का क्षेत्र व्यक्तिगत स्वतन्त्रता जैसा प्रतीत होते हुये भी उसे इस प्रकार विज्ञ समाज के हाथ सौंपा जाना चाहिये कि औचित्ययुक्त नागरिक स्वतन्त्रता का ही उपयोग कोई व्यक्ति कर सके। जब वह अपराधों की ओर बढ़े तो न केवल मौलिक अधिकारों से ही वंचित किया जाय वरन् उसे ऐसे शिकंजे में कसा जाय जिससे पुनरावृत्ति की हिम्मत ही न पड़े।

व्यक्ति और समाज के निर्माण का आधार शिक्षा है। इसे शासन, परिवार और समाज की सहमति से इस स्तर का बनाया जाय जिसमें शिक्षार्थी को जीवनयापन का प्रत्यक्ष पक्ष समझने और उसे सुनियोजित बनाये रखने की प्रेरणा मिले। उसके लिये नयी पीढ़ी शिक्षकों से आरम्भ होगी। पुराने जो इस झंझट भरे काम से बचना चाहेंगे, वे रिटायर होंगे और ऐसा व्यक्तित्ववान अध्यापन करेंगे जो समाज निर्माण की महती जिम्मेदारी को भली प्रकार वहन कर सकें।

राष्ट्र के नवनिर्माण के मूलभूत आधार

महात्मा गाँधी के जीवन की एक-एक घटना का विश्लेषण करने पर हमें वे सूत्र मिलते हैं जो किसी भी आदर्श राष्ट्र के निर्माण के लिये अनिवार्य माने जाने चाहिये। एक घटना का वर्णन करना यहाँ अप्रासंगिक न होगा। एक बार एक परिषद् की कार्यवाही आरम्भ करने में उन्हें ४५ मिनट लेट होना पड़ा। कारण था एक लोकप्रिय नेता जिन्हें उसकी अध्यक्षता करनी थी, का देरी से आना। मंच पर उनके आते ही गाँधीजी ने चुटकी लेते हुये कहा—"यदि हमारे अग्रगामी मार्गदर्शक नेतागणों की यही स्थिति रही तो स्वराज्य ४५ मिनट देरी से आयेगा।"

समय के पाबन्द, राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने की प्रबल जिज्ञासा हृदय में सँजोये कर्त्तव्यनिष्ठ बापू की यह अभिव्यक्ति सहज व अन्तः से प्रस्फुटित हुई थी। इसी वेदना के दुःख से उन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सभी महत्त्वपूर्ण नेताओं से पद लिप्सा से दूर रहकर लोकसेवी बनने का आग्रह किया था। यदि उनके १९२० से लेकर १९४८ तक सतत् अभिव्यक्त हुये उद्गारों पर दृष्टि डाली जाय तो ज्ञात होता है कि इस महामानव के मन में नवीन भारत के कैसे-कैसे सपने थे और हो क्या गया ?

अक्सर वे चीनी दार्शनिक कन्फ्यूशियस सम्बन्धी एक घटना साथियों को सुनाते थे। एक बार कन्फ्यूशियस के किसी शिष्य ने उनसे पूछा—"अच्छी सरकार किसे कहते हैं ?" महान् दार्शनिक का उत्तर था—"जिसके पास पर्याप्त अन्न हो, अस्त्र-शस्त्र हों तथा जिस पर जनता का विश्वास हो।" शिष्य ने पुनः पूछा—"मान लीजिये तीनों बातें न मिल सकें ? गुरु ने कहा—"इनमें से अस्त्र-शस्त्रों को गौण मान जा सकता है।"

शिष्य की जिज्ञासा शान्त न हुई उसने फिर प्रश्न किया—"यदि इन चीजों में से केवल एक ही रखना हो तो कौन-सी पसन्द करेंगे ?

दार्शनिक का गम्भीर मुद्रा में उत्तर था—"जनता का विश्वास। यदि यह न हो तो उस सरकार को रहने का, शासन करने का कोई अधिकार नहीं।"

प्रस्तुत जिज्ञासायें आज के परिप्रेक्ष्य में बिल्कुल सही उतरती हैं। आज जनता व शासन दोनों को परस्पर, एक दूसरे पर विश्वास होना चाहिये। लोकतान्त्रिक प्रणाली जहाँ अभी भी विद्यमान है, जबकि आस-पड़ौस के सभी देश तकरीबन सशस्त्र क्रान्ति के दौर से गुजर चुके हैं। शीत युद्ध के बादल जहाँ मँडरा रहे हैं—वहाँ इस विश्वास की कीमत तो बहुत ही अधिक है। यदि हमें अपने राष्ट्र को सशक्त, आत्म निर्भर एवं समर्थ बनाना है तो इस पारस्परिक विश्वास व समर्थ प्रजातन्त्र की जड़ों को और अधिक मजबूत बनाना होगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१.१२ भव्य समाज का अभिनव निर्माण

महात्मा गाँधी ने इस सम्बन्ध में अपने पत्र 'यंग इण्डिया' में लिखा था—"भारत में प्रजातन्त्र जब भी आयेगा, उसकी सफलता का आधार होगा मतदाता की देशभक्ति, दूरदर्शिता एवं नागरिक कर्त्तव्यों के प्रति जागरूकता। जब तक अभी से जनमानस में इन्हें विकसित नहीं किया जाता—श्रेष्ठ प्रजातन्त्र का सपना देखना नहीं चाहिये। श्रेष्ठ व्यक्तित्व ही किसी महत्त्वपूर्ण काम को ठीक तरह सँभाल सकते हैं। इनका चुनाव भी जागरूक जन-मानस ही कर सकता है। यह व्यवस्था अन्योन्याश्रित है। यदि अवांछनीय तत्वों ने शासन पर नियन्त्रण कर लिया तो उसका उपयोग के स्थान पर दुरुपयोग होगा—शासन भ्रष्ट होगा व सारे राष्ट्र को उसकी कीमत चुकानी होगी।"

'नवनिर्माण' शीर्षक से अपने अखबार में उन्होंने लिखा था—"स्वराज्य निर्भर करता है हमारी आन्तरिक शक्ति पर, बड़ी से बड़ी कठिनाइयों से जूझने की हमारी सामर्थ्य पर। सच पूछा जाय तो वह स्वराज्य जिसे पाने के लिये अनवरत प्रयास व बनाये रखने के लिये सतत् जाग्रति न हो वह स्वराज्य कहलाने लायक नहीं है। उसे पाने का वही श्रेष्ठ तरीका है जो एक-एक आदमी के आत्म स्वराज्य अथवा दूसरे शब्दों में आत्मसंयम का है।"

स्वराज्य की सफलता का आधार स्पष्ट करते हुये महात्मा गाँधी ने कहा था, "स्वराज्य की रक्षा केवल वहीं हो सकती है जहाँ देशवासी से ज्यादा देशभक्तों की संख्या हो, जिनके लिये दूसरी सब चीजों से, अपने निजी लाभ से भी देश की भलाई—उसका समग्र विकास अधिक महत्त्व रखता हो।"

भारतवर्ष के भविष्य के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द बड़े आशान्वित थे। उन्होंने कहा था—"इस राष्ट्र की भूमि अत्यन्त उर्वरा है। जहाँ से संस्कृति की प्रकाश किरणें सारे विश्व में फैली हों, जिस राष्ट्र में हर पीढ़ी में महामानवों ने जन्म लिया हो—उस राष्ट्र के चरित्र को दोष देना निरर्थक होगा। राष्ट्रीय चरित्र नहीं जनचेतना को जगाने वाले कर्णधारों पर यह दोषारोपण किया जाना चाहिये कि वे समाज को भ्रष्ट होने से रोकने में क्यों नहीं आगे आ पाते।"

लोकतन्त्र सही ढंग से चले इसके लिये महात्मा गाँधी ने अनुशासन को जीवन का एक अनिवार्य अंग बनाये जाने पर जोर दिया था। उन्होंने कहा था—"लोकतन्त्रवादी वह होता है जो अनुशासन का पालन करता है। जो अपने जीवन में सामान्य से मानवी नियमों तथा दैवी अनुशासनों का स्वेच्छापूर्वक पालन करने का अभ्यास कर लेते हैं, वे ही सच्चा लोकतन्त्र चलाने योग्य हैं। वस्तुतः कर्णधारों को तो इस आत्मानुशासन को और भी सख्ती से लागू करना चाहिये।"

सरदार बल्लभ भाई पटेल ने स्वराज्य प्राप्ति के उपरान्त अपने एक व्याख्यान में कहा था—"व्यक्ति और समाज को सुव्यवस्थित-समुन्नत स्थिति में रखने के लिये पाँच शक्तियों को प्रधान माना जाना चाहिये—शासन, धर्म, विद्या, कला, धन। जहाँ कहीं भी इनका सदुपयोग होगा वहाँ सुख-शान्ति का वातावरण होगा तथा जहाँ दुरुपयोग होगा वहाँ पतन और विनाश की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो रही होंगी। राजनेता, धर्माचार्य, बुद्धिजीवी, कलाकार, धनपति—ये पाँचों शक्तियों के अधिष्ठातागण हैं—जिस दिशा में ये चलते हैं समाज व संस्कृति का प्रवाह उसी दिशा में होने लगता है। जब भी ये पाँचों अनुशासित रहे हैं, इनने अपना स्तर ऊँचा रखा है, क्रियाकलापों में अपने गौरवपूर्ण उत्तरदायित्व को निभाया है, वहाँ स्वर्गीय वातावरण ही पैदा हुआ है। जब भी इन सत्ताधीशों ने अपनी क्षमता का दुरुपयोग किया है तो इस दुर्बुद्धि का परिणाम सारे समाज को भुगतना पड़ा है।"

गाँधीजी ने देश के बौद्धिक परावलम्बन को दृष्टिगत रख सन् १९४८ में अपनी शहादत के कुछ दिनों पूर्व ही अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये थे। यह मान लेना गलती होगी कि हम विदेशी प्रभुता से मुक्त हो गये हैं। पश्चिम का सूक्ष्म प्रभाव अभी भी भारतीय जनमानस पर है और वह कालान्तर में प्रगति को अवरुद्ध करेगा।"

कितने सही थे ये शब्द, जब आज के सन्दर्भ में हम गत वर्षों की राष्ट्र की प्रगति यात्रा पर एक दृष्टि दौड़ाते हैं। शिक्षा से लेकर दैनन्दिन जीवन के उपभोग की वस्तुओं तक हम परावलम्बी हैं। अपने देश की समृद्ध-समर्थ योग्यताओं को हम राष्ट्र में पाई शिक्षा को विदेश में भुनाते नित्य देखते हैं। देश को प्रगति के लिये उनकी आवश्यकता है पर उन्हें धन की आवश्यकता है। चिकित्सकों का कर्त्तव्य था जिस देश की माटी में पले-बढ़े हुये, वहीं रहकर अधिसंख्य ग्रामीण जनता के स्वास्थ्य की समस्याओं का निराकरण करते, पर उन्होंने शोध के नाम पर अट्टालिकाओं में रहना स्वीकार किया व देश से पलायन कर गये। वैज्ञानिक चाहते तो कृषि प्रधान-ग्रामीण अर्थव्यवस्था वाले इस देश के लिये कई वैकल्पिक समाधान दे सकते थे ताकि अपनी आवश्यकता की वस्तुओं के निर्माण के लिये यह आत्मनिर्भर हो पाता। पर ऐसा नहीं हुआ।

यदि हमें नया भारत बनाना है—इस राष्ट्र को विकासोन्मुख करना है तो राष्ट्र पिता तथा अन्य महामानवों के इस मार्गदर्शन को सामने रख अपनी कार्य विधि का निर्धारण करना होगा। हमें समय-समय पर आत्म-समीक्षा करनी होगी कि हम उनके सपनों को कितना साकार कर पाते हैं। मानवी मूल्यों की स्थापना तथा जनचेतना के जागरण के लिये हम सबको एक साथ आगे आना होगा—बिना इस नैतिक क्रान्ति के नवनिर्माण शक्य नहीं, देर तो पहले ही काफी हो गयी है। एकजुट हो लग भर जाना है। जैसे 1947 में स्वतन्त्रता अँग्रेजों से छीनी थी, वैसे ही बौद्धिक स्वतन्त्रता अब फिर से जनता को दिलानी होगी।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सभ्य समाज का आधार : विवेक

किसी भी समाज के सभ्य और असभ्य होने का अनुमान मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्तियों और जन्मजात प्रेरणाओं के आधार पर नहीं लगाया जा सकता। चूँकि हर समाज की अपनी-अपनी पृथक्-पृथक् विशिष्टतायें हुआ करती हैं। इसलिये उनकी गतिविधियों को समझ सकने का यह मापदण्ड अनुपयुक्त भी है और अनुपयोगी भी। समाज के सही सच्चे स्वरूप की जानकारी तो विवेक के अनुशासन का अवलम्बन लेकर ही आसानी से की जा सकती है।

भली-बुरी वस्तु को निरखने-परखने तथा उचित-अनुचित को जान सकने की शक्ति सामर्थ्य को विवेक के नाम से जाना जाता है। यद्यपि यह मनुष्य की आन्तरिक शक्ति है, फिर भी इसका अभिप्रायः यह नहीं समझ लेना चाहिये कि यह मनुष्य की जन्मजात अन्तःप्रवृत्ति है, जिसका बाह्य जगत से कोई सम्बन्ध नहीं है। वस्तुतः यह एक सामाजिक गुण है, जिसके रहते किसी भी व्यक्ति की गणना सभ्य समाज में की जा सकती है। विश्वप्रसिद्ध समाज मनोविज्ञानी मौरिस गिन्सवर्ग ने अपनी कृति 'द साइकोलॉजी ऑफ सोसाइटी' में लिखा है कि मानवी मस्तिष्क में विचारणायें अनायास नहीं फूट पड़तीं, वरन् बाह्य जगत की स्थिति को देख-सुनकर ही वैसी इच्छा-आकांक्षा और भाव-संवेदनाओं का उदय होता है। मानव विकास की प्रारम्भिक अवस्था पर ध्यान केन्द्रित किया जाय तो ज्ञात होता है कि ज्ञानार्जन में भी उसकी विवेक दृष्टि क्रियाशील रहती है।

विवेकहीन अनुभव तो व्यक्ति को दिग्भ्रान्त और दिशाहीन बनाकर छोड़ता है। विवेक के अनुशासन को जितनी मात्रा में अपनाया जाता रहेगा, उसी अनुपात से मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति का स्वरूप परिमार्जित एवं परिशोधित होता चला जायेगा।

व्यक्ति की विवेक दृष्टि के नष्ट होते ही समाज का स्वरूप अशिष्ट एवं असभ्य होने लगता है। समाज की स्थिरता, सुख और समृद्धि विवेक के अनुशासन पर ही निर्भर करती है। समाज के उद्देश्य और मान्यतायें भी इसी पर अवलम्बित हैं। सद् व्यवहार का उपक्रम इसी आधार पर निभता है। कभी-कभी ऐसा भी देखने को मिलता है कि धर्म क्षेत्र के प्रवक्ता और राजनेता विवेक का सम्बल लेकर ऐसे निर्णय ले बैठते हैं और 'धर्म' और देश खतरे में है' आदि का नारा देकर जनता को उत्तेजित करके स्वार्थ पूर्ति करते रहते हैं। इस तरह के उद्वेलित आन्दोलनों के पीछे दूरदर्शिता का अभाव रहने के कारण मात्र संवेग ही कार्यान्वित होते देखे जाते हैं, जो मानव समाज के लिये बड़े ही विनाशकारी परिणाम उत्पन्न करते हैं। इसके ठीक विपरीत जिन सामाजिक आन्दोलनों और जन जाग्रति अभियानों के अन्तर्गत तत्काल की मान प्रतिष्ठा के लाभ को अर्जित न करके दूरगामी सत्परिणामों को प्रमुखता दी जाती है, उनकी फलश्रुति भी सभ्य समाज की भव्य संरचना के रूप में उभरकर आती है।

गाँधी और बुद्ध जैसे महामानवों के सफल एवं सार्थक अभियानों का एक ही रहस्य सामने आया है कि उन्होंने समाज के भावी स्वरूप को सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाने वाली विवेक दृष्टि को ही अपनाया था। यदि उनकी विचारणाओं और भावनाओं में सामाजिक सूझ-बूझ की विवेकशीलता न रही होती तो इतना बड़ा और सशक्त संगठन कहाँ खड़ा कर पाते और सभ्य समाज की अभिनव संरचना में कैसे सफल रहे होते।

संसार में साम्यवाद, समाजवाद और प्रजातन्त्रवाद के सिद्धान्तों का क्रियान्वयन विवेक के अनुशासन का परिपालन करने से ही हुआ है। जिनमें व्यक्तिगत संकीर्ण स्वार्थपरता के स्थान पर समस्त मानव जाति के हित साधन को पूरा करने का ही लक्ष्य दृष्टिगोचर होता है। परमार्थ परायण भावनाओं से परिपूरित 'संसार के श्रमिक एक हों', 'विद्यार्थी समाज एक हों', 'आराम हराम है', 'जय जवान जय किसान' आदि के नारे इसीलिये प्रभावशील होते चले गये, क्योंकि इनके मूल में विवेक भरी परहित साधन वाली कल्पना काम करती रही है। विवेक जाग्रत हो जाने पर उसका अनुशासन एक भी अनर्थ नहीं करने देता और भविष्य सब प्रकार से उज्ज्वल बनता है। अतः विवेक का अवलम्बन ही सभ्य समाज की नव्य संरचना करने में समर्थ है और सक्षम भी।

भव्य समाज की पृष्ठभूमि और आधारशिला

आज व्यक्ति जिन परिस्थितियों में रह रहा है—समाज का ढाँचा जिस प्रकार का खड़ा है—उसमें किसी को चैन नहीं। क्या सम्पन्न क्या विपन्न, सभी अपने-अपने ढंग की समस्याओं में उलझे हुये हैं। भर्तृहरि के शब्दों में **'संसारे रे मनुष्या, वदति यदि सुख स्वल्प पश्यन्ति किंचित्।"**

अर्थात् हे—मनुष्यो, तुममें से किसी को भी तनिक भी चैन हो तो कहो ! 'बाहर से कोई कितनी ही सजधज में रहता हो, कितनी ही शेखी बघारता हो, पर वास्तविकता एक ही है कि हर किसी को उसके ढंग ढाँचे की गुत्थियाँ ही उलझाये हुये हैं। विक्षोभ से हर किसी को उद्विग्न, अशान्त और असन्तुष्ट देखा जा सकता।

समस्या आज की नहीं, चिरकाल से ऐसी ही चली आ रही है। सामयिक उपाय भी कुछ न कुछ होते रहते हैं पर उससे भी काम चलता नहीं। एक उलझन सुलझती नहीं कि दूसरी उठ कर खड़ी हो जाती है। दस मच्छर मारने का काम पूरा नहीं हो पाता कि सौ नये उपज कर उनका स्थान ग्रहण कर लेते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सभी किस प्रकार चैन से रहें ? आये दिन की विपत्तियों से कैसे पिण्ड छूटे ? वातावरण में आशा और उल्लास कैसे भरे ? उज्ज्वल भविष्य की संरचना किन परिवर्तनों के सहारे सम्पन्न हो ? अभावों का निराकरण करने के लिये क्या किया जाय ? पारस्परिक स्नेह-सौहार्द्र का निर्वाह एवं अभिवर्धन किस प्रकार सम्भव हो ? समाज का न्याय और औचित्य का प्रचलन किस प्रकार चले ? घुटन का स्थान उल्लास किस प्रकार ले ? जैसे मनुष्य के सामने खड़े ज्वलन्त प्रश्न सामने हैं। इनका समाधान करने के लिये अर्वाचीन और प्राचीन मनीषा समय-समय पर अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है।

नव सृजन की बेला में आज क्या करना है ? इसका निर्णय तो आज के दूरदर्शियों को ही करना पड़ेगा। पर इसमें उन मूर्धन्य विचारकों के निष्कर्षों पर भी विचार करना होगा। जो पिछले दिनों इन्हीं प्रश्नों के समाधान हेतु गहन चिन्तन करते रहे हैं और अपनी दृष्टि से जो सर्वोत्तम सूझा है, उसे जनसमाज के सम्मुख प्रस्तुत करते रहे हैं। निश्चय ही इन विचारकों के निष्कर्ष आज की युग मनीषा के भावी भविष्य को उज्ज्वल बनाने का उपाय खोजते समय बहुत ही सहायक सिद्ध हो सकते हैं। उपयोगी प्रस्तुतीकरणों में से कुछ का उल्लेख इस लेख माला में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाता है।

मनुष्य ने जो प्रगति की है, वह मानव मन, इच्छा शक्ति, आत्म शक्ति पर ही निर्भर है जीवविज्ञान पर नहीं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'जूलियन हक्सले' ने मानव विकास को 'साइकोलाजीकल विकास' कहा है। उन्होंने आगे स्पष्ट करते हुये कहा है—मानव की उपलब्धियाँ हस्तान्तरित होने के लिये केवल जेनेटिक उपकरण ही आवश्यक नहीं क्योंकि उनकी गति अतिमन्द होती है और हस्तान्तरित होने में सैकड़ों वर्ष लग सकते हैं। लेकिन मनुष्य ने हस्तान्तरण की एक ऐसी पद्धति का आविष्कार किया, जिससे यह कार्य तुरन्त सम्भव हो सकता है। शिक्षण और लेखन से मनुष्य केवल अपनी ही संतानों को नहीं लेकिन जो कोई इसमें रुचि लेता हो उसको हस्तान्तरित कर सकता है। श्री हक्सले ने आगे बताया है कि मानवीय विकास केवल बायोलोजीकल नहीं लेकिन संस्कार परम्परा क्रिया-विधि पर आधारित सोशोलोजीकल है।

रोनाल्ड नारड्रे और डी. मारिस ने 'दी नेकेड एप' नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसमें बट्रेन्ड रसेल और सिगमंड फ्रायड का उल्लेख करते हुये लिखा है—"मानव की उत्पत्ति वानरों से है और मानव स्वभाव आक्रमणशील है।"

श्री लुइस एण्ड टावर्स नामक दो वैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त का खण्डन करते हुये एक पुस्तक लिखी है—'नेकेड एप एण्ड होमोसैपियन्स' इसमें उन्होंने कहा है कि बन्दरों से मनुष्य की उत्पत्ति वाली बात निराशावादी दर्शन है क्योंकि उसमें मनुष्य अपने दुष्कृत्यों की जवाबदेही से बचने के लिये बहाना करता है कि क्या करें, वंशानुक्रम से चली आने वाली बात पर हमारा अधिकार नहीं हो सकता क्योंकि उसकी जड़ें इतनी गहरी हैं कि मानव स्वभाव का परिवर्तन नहीं हो सकता।

श्री लुइस एण्ड टावर्स का कहना है कि सौभाग्यवश यह बात सही नहीं क्योंकि मानव प्रकृति हर समय बदलती आयी है। मनुष्य अपने में अद्वितीय है और उसके स्वभाव वंशानुक्रम से नियन्त्रित नहीं होते। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड जिसने अपने ग्रन्थ 'सिविलीजेशन एण्ड इट्स डिसकन्टेन्ट्स' और बर्ट्रेन्ड रसेल जिन्होंने 'ओथोरिटी एण्ड इनडीविजुअल' पुस्तकों में जो विषय प्रतिपादित किये हैं उनके तर्कों के समुचित वैज्ञानिक आधार नहीं हैं।

श्री लुइस एण्ड टावर्स ने अपनी पुस्तक में वैज्ञानिक सिद्धान्त के आधार पर प्रतिपादित किया है कि निश्चित रूप से मानव की उत्पत्ति मानवाकार (एन्थ्रापोइड) बन्दर से नहीं हुई है। इसलिए हमारे कोई भी लक्षण बन्दरों से आने की कोई संभावना नहीं है।

बर्नाड कैम्पबैल ने 'न्यू साइन्टिस्ट्स' नामक पुस्तक १९७० में लिखी है, जिसमें उसने वैज्ञानिक आधार पर प्रतिपादित किया है कि "मनुष्य का स्वभाव लड़ाकू नहीं, इतना ही नहीं, वह स्वभाव से शिकारी भी नहीं है, लेकिन सामाजिक आवश्यकता पड़ने पर वह उसका विकास स्वयं कर लेता है। मानव शास्त्र ने पुरातन काल से इस सिद्धान्त को भी मान्यता दी है कि मनुष्य ने अनुकूलन का मुख्य साधन 'संस्कृति' रही है। संस्कृति का अभिप्राय, मान्यताओं, परम्पराओं में से श्रेष्ठ का विकास करना है।

कैम्पवेल का कहना है कि मनुष्य वंशानुक्रम से संभाव्य शक्तियों से ऊपर उठ जाता है। मानवीय बुद्धि कॉस्मिक इन्टेलीजेन्स से प्रेरणा प्राप्त कर लेती है। वंशानुगत संस्कारों से सामाजिक, सांस्कृतिक एवं टेक्नोलोजीकल विकास को भिन्न मान्यता देनी चाहिए। कैम्पवेल ने आगे कहा है कि कई वैज्ञानिक विकास क्रम में भूल की सम्भावना बताते हैं, परन्तु वास्तविकता यह है कि प्रकृति कभी भूल नहीं करती। अगर मनुष्य में कोई त्रुटि पायी जाती है, तो वह बायोलोजीकल नहीं-कल्चरल है। बायोलोजी को दोष देना भयंकर अनुत्तरदायित्व ही नहीं वरन् आधारहीन भी है। अगर दोष देना है तो अपनी त्रुटियों को मालूम कीजिये और उनमें सुधार कीजिए।

वंशानुगत असमर्थता को दूर करने के लिये मनुष्य ने विवाह परम्परा का विकास किया है। विभिन्न स्वभाव वाले नर-नारी के क्रोमोसोम्स के संयोग से जीन्स का पुनः

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वर्गीकरण होता रहता है, जिससे संस्कारों का अतिक्रमण सम्भव हो सकता है।

प्रो. एफ. सोरेकिन ने अपनी पुस्तक 'दी क्राइसिस ऑफ ओवर एज' में लिखा है कि आज की इन्द्रियजन्य सुख की दौड़धूप कम करके जीवन की उन्नति के रास्ते पर चलने की कोशिश करनी चाहिये। आज की निरन्तर बढ़ने वाली भौतिकवादी जीवनयापन शैली एक गलत दिशा है। ऐसी नयी संस्कृति के विकास की आवश्यकता है जो व्यक्ति की अन्तःशक्तियों को जाग्रत करके सरल एवं सन्तोषप्रद जीवनयापन शैली प्रदान कर सके।

आज के मनुष्य ने जानबूझ कर दैवी शक्तियों का निर्देश पाना छोड़ दिया है और केवल एकाकी रह गया है। आज तथाकथित धर्म की अवहेलना हो रही है। वास्तव में मनुष्य धर्म को अस्वीकार नहीं करता लेकिन पुजारी प्रपंच एवं सम्प्रदायवाद जैसे धर्म के विकृत कलेवर का परित्याग कर रहा है। अब समय आ रहा है कि वह अपने लिये वास्तविक धर्म की खोज करेगा।

पहले जो विश्वास धर्म में रखता था, उसको मनुष्य ने इन वैज्ञानिक एवं राजनेताओं पर स्थानान्तरित कर दिया है, जिन्होंने धरती पर स्वर्ग लाने का वचन दिया है। गत चार-पाँच शताब्दियों से मनुष्य की ये आशायें टूट रही हैं और वह सच्चे धर्म की खोज में है।

'इन्टैलीजैन्स कैम फर्स्ट' के सम्पादक ई. लेस्टर स्मिथ कहते हैं कि मानव विकास रुक गया है इसलिये नहीं कि आदमी की उत्पत्ति बन्दर से हुई है और पाशविक संस्कार आदमी को घसीटे जा रहे हैं। भावी सन्तुलन बैठाने के लिये अपनी जिम्मेदारी हमें स्वयं ही स्वीकार करनी होगी। वंशानुक्रम पर थोप कर अपना बचाव न करें और भावी प्रगति के लिये 'कॉस्मिक इन्टैलीजैंस' का सहयोग प्राप्त करें। इसी में यथार्थता है और दूरदर्शिता भी।

अपने समय के मूर्धन्य और आज के विश्वविख्यात यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने मानवीय आचरण को प्रभावित करने वाले तीन कारक माने हैं—(१) इच्छा (२) भावना और (३) ज्ञान। उन्होंने शक्ति के भण्डार केन्द्र को इच्छा माना है और रुचि, आवेग, सहज ज्ञान को उसी का पर्याय कहा है। इच्छा का अस्तित्व जंघाओं के मध्य बताया है जिसे मूलतः 'यौन' (काम या सेक्स) कहा जा सकता है। उन्होंने उसके मार्गान्तरीकरण अथवा परिशोधन की आवश्यकता पर जोर दिया है। भावना का निवास उनके हृदय में बताया है। वह रक्त-संचार और शक्ति में बसती है। मनोवेग, महत्वाकांक्षा एवं साहस को भावना का पर्याय मानते हुये उन्होंने उसे इच्छा और अनुभव की समन्वित ऐन्द्रिक प्रतिध्वनि कहा है। वे कहते हैं कि ज्ञान का निवास केन्द्र मस्तिष्क है। विचार, बुद्धि, तर्क, ज्ञान की परिधि के अन्तर्गत ही आते हैं। ज्ञान को इच्छा के नेत्र कहना भी समीचीन होगा।

इच्छा, भावना और ज्ञान की न्यूनाधिक मात्रा सभी व्यक्तियों में होती है। उसमें इच्छा की प्रधानता होती, किन्हीं में भावना की प्रमुखता होती है तो कुछ थोड़े से ज्ञान क्षेत्र में अत्यधिक अभिरुचि रखने वाले होते हैं। इच्छा प्रधान व्यक्ति संग्रह, भौतिक सुखों में आनन्द मानने वाले होते हैं। उनमें विलासिता, ठाठ-बाट, प्रदर्शन की बहुलता होती है तथा वस्तुओं के पीछे परस्पर लड़ने-झगड़ने में व्यस्त रहते देखे जाते हैं, इनमें वणिक वृत्ति अधिक होती है एवं ये उद्योगों का संचालन बड़ी चतुरता के साथ करते हैं। अर्थ एवं भौतिक उपलब्धियों के प्रति सदैव अतृप्त एवं असन्तुष्ट से बने रहते हैं।

भावना एवं साहस के धनी व्यक्ति अपरिग्रही वृत्ति सम्पन्न एवं मुक्तहस्त होते हैं। उनमें विजय प्राप्ति की अभिलाषा प्रमुख होती है। वस्तुओं पर अधिकार रखे रहने तक ही उनका काम नहीं चलता। ऐसे लोगों को युद्ध क्षेत्र में संघर्ष एवं प्रतिस्पर्धा में आनन्द आता है।

तीसरे प्रकार के व्यक्ति ज्ञान प्रधान होते हैं। उन्हें चिन्तन-मनन में रस आता है और ज्ञान की शोध में हमेशा आतुर रहते हैं। चिन्तन-मनन, स्वाध्याय, अध्ययन के लिये वे एकान्तप्रिय होते हैं उन्हें न रणक्षेत्र भाता है और न भीड़भाड़ कोलाहल से भरा हाट-बाजार। वे तो सदैव तत्व ज्ञान, सत्य की शोध में तत्पर रहते हैं। संसार के भ्रम जंजालों से दूर ही रहना पसन्द करते हैं।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर प्लेटो ने, सुव्यवस्थित राज्य के बारे में कल्पना की है, जिसमें सभी सुख-संतोष के साथ रह सकें, चैन की साँस ले सकें।

प्लेटो ने कहा है सुव्यवस्थित राज्य में शासन तन्त्र का नेतृत्व ज्ञान-विज्ञान एवं दर्शन क्षेत्र की शक्तियाँ करेंगी, औद्योगिक शक्तियाँ उत्पादन करेंगी और सैनिक शक्तियाँ रक्षा का कार्य-भार सँभालेंगी। यदि ज्ञान प्रधान शक्तियों द्वारा जनता का मार्गदर्शन नहीं होगा तो फिर या तो वह इच्छा प्रधान शक्तियों से होगा या भावना प्रधान शक्तियों से। यदि व्यापारी धन पिपासु-शोषक बन जाता है, तो विग्रह सुनिश्चित है और उसी प्रकार यदि युद्ध क्षेत्र में आनन्द मानने वाले व्यक्तियों के हाथ में शासन का नेतृत्व पहुँचता है तो भी विनाश होकर ही रहेगा।

प्लेटो ने यहाँ तक कहा है कि केवल एक दार्शनिक राजा ही राष्ट्र का सही पथ-प्रदर्शन करने योग्य होता है। जब तक दार्शनिक राजा नहीं होते अथवा इस संसार के राजाओं या राजकुमारों में दार्शनिक भावना एवं शक्ति नहीं होती, साथ ही ज्ञान तथा राजनीति का एक ही व्यक्ति में मिलन नहीं होता, तब तक राज्यों अथवा राष्ट्रों से न तो अव्यवस्था मिटेगी और न मानव जाति ही सुख-संतोष एवं चैन की साँस ले सकेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्लेटो ने आदर्श राज्य की स्थापना के लिये 'यूनीवर्सल एजूकेशन' को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना है। उन्होंने आरम्भ से हर बालक को शिक्षा का समान अवसर प्रदान करने का सुझाव दिया। उनके अनुसार बालकों की प्रारम्भिक दस वर्षों तक शिक्षा प्रमुख रूप से शारीरिक होनी चाहिये। व्यायाम, ड्रिल, खेल-कूद ही प्रथम दस वर्षों का पाठ्यक्रम हो। सुराज्य के स्वप्न को साकार करने के लिये उत्तम स्वास्थ्य होना अनिवार्य है। इसके लिये ही बच्चों के प्रारम्भिक दस वर्षों तक शारीरिक शिक्षा पर विशेष ध्यान देने की बात कही गयी है। जीवन के शुरू के १० वर्षों में स्वास्थ्य इतना अच्छा हो जाय कि बाद में उसे बनाये रहने के लिये दवाओं की कोई आवश्यकता नहीं रहे। दवाइयों की आवश्यकता प्रायः परिश्रमरहित विलासी जीवन व्यतीत करने के कारण अनुभव की जाती है। वर्तमान चिकित्सा विधि के बारे में कहा जाता है कि वह रोगों का अन्त करने के बजाय उन्हें पोषण देकर पालती एवं नये रोगों को जन्म देती है। अतः यही अधिक उपयुक्त होगा कि शिक्षा प्रणाली में आरम्भिक काल में ही इसका समुचित शिक्षण किया जाय, जिससे प्रकृति में विचरने वाले प्राणियों की भाँति बीमार पड़ने की स्थिति ही न आये।

उत्तम स्वास्थ्य के लिये मात्र खेल-कूद एवं व्यायाम और संतुलित आहार ही पर्याप्त नहीं, इसके लिये संगीतात्मक प्रशिक्षण भी जरूरी है। संगीत व्यक्ति के अन्तराल को सीधे प्रभावित करता है। 'इस सन्दर्भ में प्लेटो का कथन है कि व्यक्ति के चरित्र को ढालने में संगीत की महिमा असाधारण है। इसलिये सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में इसकी गरिमा समान रूप से मानी जानी चाहिये।'

संगीत का महत्त्व केवल इसलिये नहीं है कि इसके स्वर अन्तःकरण के मर्मस्थल में गुंजित होकर भावनाओं को उभारते और चरित्र में उत्कृष्टता का समावेश करते हैं वरन् इसलिये भी है कि यह सुगठित स्वास्थ्य प्रदान करता है और उसे बनाये रखने में उत्प्रेरक की भूमिका निभाता है। कुछ मानसिक रोगों का उपचार संगीत के माध्यम से ही शक्य होता है।

प्लेटो के अनुसार सोलह वर्ष की आयु के बाद व्यक्तिगत संगीत का अधिक अभ्यास छोड़ देना चाहिये। समूह गान-सामूहिक खेल-कूदों की तरह जीवनपर्यन्त चलते रह सकते हैं। साथ ही संगीत को थोथा संगीत ही नहीं होना चाहिये, वरन् गणित, इतिहास, विज्ञान जैसे शुष्क नीरस लगने वाले विषयों को भी आकर्षक रूप प्रदान कर मनोरंजक बनाने में सहयोगी होना चाहिये।

प्लेटो ने राष्ट्र के समर्थ, शक्तिशाली होने के लिये एक नैतिक आधार की व्यवस्था की अनिवार्यता बताई है। इसके लिये अलौकिक सत्ता में विश्वास, एक धर्म एवं ईश्वर में आस्था को विश्वासपूर्वक स्वीकारा है। समाज के विभिन्न सदस्यों के बीच एकता की भावना को स्थापित करने का और कोई तरीका ही नहीं हो सकता। अभी तक आविष्कृत सभी तरीकों में सर्वोत्तम तरीका मनुष्य समुदाय की नैतिक आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिये अलौकिक सत्ता की मान्यता ही हो सकता है। मात्र लौकिक शक्तियाँ समुदाय की नैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकने में सक्षम नहीं।

अपने 'रिपब्लिक' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में प्लूटो ने एक सभ्य एवं समुन्नत समाज की कल्पना इस प्रकार की है—

"समाज में स्त्री एवं पुरुष के संबन्ध का निर्धारण वैयक्तिक आधारों पर नहीं, सामाजिक एवं समूहगत हितों को ध्यान में रखकर होना चाहिये। सन्तानोत्पत्ति का अधिकार ऐसे नर-नारियों को हो जो शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक दृष्टि से स्वस्थ एवं समर्थ हों। सन्तान को राष्ट्र की सम्पत्ति माना जाय तथा उसका पालन-पोषण भी राजकीय संरक्षण में इस ढंग से हो कि उसके भीतर विश्व भ्रातृत्व की भावना का विकास हो। इस प्रकार स्त्री, पुरुष स्वतन्त्र प्रेम करने के अधिकारी तो हों पर सन्तानोत्पत्ति पर राजकीय नियमन हो।"

उनके अनुसार आदर्श समाज में पुरुष एवं स्त्रियों का ऐसा वर्ग होगा जो चरित्रवान होंगे। शारीरिक एवं बौद्धिक दृष्टि से समर्थ ऐसे चुने हुये व्यक्तियों को इस विद्वान ने 'किंग फिलॉसफर' (राज दार्शनिक) नाम दिया है। ये ही समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर संतानोत्पादन का निर्धारण करेंगे। कौन पुरुष किस स्त्री से किन परिस्थितियों में श्रेष्ठ संतान उत्पन्न करे, इसका निर्णय इन स्त्री-पुरुषों द्वारा नहीं, राजदार्शनिकों द्वारा लिया जायेगा।

प्लूटो का कहना है कि "अच्छे गेहूँ उगाने के लिये विज्ञ कृषक की आवश्यकता पड़ती है, उत्तम घोड़ों की नस्लें पैदा करने के लिये वैज्ञानिक समुदाय को चिन्तन कर जोड़ों का निर्धारण करना होता है, इसी प्रकार श्रेष्ठ मनुष्यों की उत्पत्ति के लिये भी समाज में विशिष्ट नर-नारियों की आवश्यकता होगी।"

जिस आदर्शमय समाज का चित्र प्लेटो ने खींचा है, वह इस प्रकार है—'इसमें सहस्त्रों मनुष्य होंगे जो न तो धनाढ्य होंगे, न ही दरिद्र। धन से विषयासक्ति, विलासिता पैदा होती है और निर्धनता से तुच्छता एवं अयोग्यता। जो बच्चे पैदा होंगे, उन्हें आरम्भिक बीस वर्षों तक एक समान ही शिक्षा दी जायेगी। सामान्य जानकारियों के साथ उसमें संगीत एवं व्यायाम की शिक्षा अनिवार्य रूप से जुड़ी होगी। व्यायाम शरीर के गठन के लिये तथा संगीत मन और आत्मा के स्वास्थ्य के लिये। जिस व्यक्ति का अन्तःकरण संगीत की संवेदनाओं से अप्रभावित है, वह शुष्क व्यक्ति मनुष्य कहने का अधिकारी नहीं है। ऐसे व्यक्ति में सामाजिकता की भावना विकसित नहीं हो सकती। इस आदर्श समाज में यह नैतिक शिक्षा प्रारम्भिक स्थिति में अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विशिष्ट शिक्षा का निर्धारण इसके बाद होना चाहिये। इसके लिये हर व्यक्ति की अभिरुचि एवं योग्यता की परख करनी होगी। उसी के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था एवं रुचि के अनुसार विषय के पारंगत-निष्णात तैयार किये जाने चाहिये। शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य-मानवोचित गुणों का विकास एवं सौन्दर्य बोध हो।

पचास वर्ष की आयु तक पर्याप्त अनुभव एवं ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद से स्त्री-पुरुषों के जिम्मे शासन की बागडोर सौंप दी जाये। आदर्श दार्शनिक जिनमें गुण कूट-कूट कर भरे होंगे ही आदर्श शासक की भूमिका निभा पाने में सक्षम होंगे। ऐसी शासन व्यवस्था निश्चित ही सुव्यवस्थित समाज की कल्पना को साकार कर सकेगी।"

प्लूटो के ये विचार शताब्दियों पुराने हो चले और नई परिस्थितियों के अनुरूप नये समाज की संरचना के लिये नये सूत्र ढूँढ़े जा रहे हैं, फिर भी इस महान दार्शनिक ने भावी मानव समाज की जो परिकल्पना दी है, उसमें अभी भी कितने ही ऐसे महत्त्वपूर्ण तथ्य हैं, जिन पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता प्रतीत होती है।

समाज निर्माण का शुभारम्भ आत्म निर्माण से

शरीर और मन स्वस्थ रहे तो अभीष्ट समर्थता प्राप्त हो सकती है। चिन्तन और चरित्र सही हो तो फिर सज्जनोचित व्यवहार भी बन पड़ता है। शिष्टाचार नियत और मित्रता का सहयोगी क्षेत्र सुविस्तृत होता है। ये बड़ी उपलब्धियाँ हैं। 'हम सुधरें तो जग सुधरे' की उक्ति छोटी होते हुये भी अत्यन्त मार्मिक और सारगर्भित है। दूसरों की सेवा-सहायता करने का आरम्भिक किन्तु अत्यन्त प्रभावी तरीका यह है कि जैसा दूसरों को देखना चाहते हैं, वैसा स्वयं बनकर दिखायें। दूसरे अपनी इच्छानुसार बनें या न बनें, चलें या न चलें, यह संदिग्ध है। क्योंकि सभी पर अपना प्रभाव, अधिकार कहाँ है ? पर अपना आपा तो पूर्णतया अपने अधिकार क्षेत्र में है। जब शरीर को इच्छानुरूप चलाया जा सकता है, जब अपने पैसे को इच्छानुरूप खर्च किया जा सकता है, तो कोई कारण नहीं कि अपने स्वभाव और क्रियाकलाप को इस ढाँचे में ढाला जा सके, जिसे शालीनता का प्रतीक प्रतिनिधि कहा जा सके। श्रेष्ठ शुभारम्भ अपने घर से ही किया जाना चाहिये।

घर में दीपक जलता है तो आँगन से लेकर पड़ौस तक में प्रकाश फैलाता है। दूसरों को प्रभावित करने, बदलने से पहले यदि उसी स्तर का खुद को बना लिया जाये तो निश्चित रूप से आधी समस्या हल हो जाती है। अपनी ओर से आँखें बन्द रखी जायें और दूसरों को सुधारने, समझाने के लिये निकल पड़ा जाय तो बात बनती नहीं, अभीष्ट सफलता मिलती नहीं। विफलता की ऐसी निराशा भरी घड़ी आने से पूर्व अच्छा यह है कि कम से कम अपने को तो उस स्तर का बना ही लिया जाये जैसा कि अन्यान्य लोगों को देखना चाहते हैं।

समाज सुधार एक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। जिस समुदाय में हम रहते हैं उसकी मान्यताओं और गतिविधियों को ध्यानपूर्वक देखा जाये तो प्रतीत होगा कि उनमें अधिकतर अवांछनीयतायें ही भरी पड़ी हैं। आस्थाओं, मान्यताओं, आकांक्षाओं का युग प्रवाह मानवी गरिमा के प्रतिकूल अनाचार का ही बाहुल्य कर रहा है। लोभ, मोह और अहंकार के आवेश में लोग प्रायः निरर्थक और अनर्थ भरी रीति-नीति अपनाये हुये दिगभ्रान्तों की तरह भूल-भुलैया में भटकते देखे जाते हैं। मानव जीवन जैसे अलभ्य अवसर का प्रायः दुरुपयोग ही होता रहता है। ऐसा कुछ बन नहीं पड़ता जिस पर सन्तोष और आनन्द से भरा पूरा गर्व किया जा सके। जिससे दूसरे कोई उपयोगी प्रेरणा या प्रकाश ग्रहण करें। इस अभाव का नाम ही भ्रष्टता और दुष्टता है। मान्यतायें और आकांक्षायें भी बुद्धि को प्रभावित करती हैं। वह उसी के समर्थन के लिये सहमत होती और तदनुरूप ताने-बाने बुनती देखी गयी है। इसलिये मात्र बौद्धिक समाधान कुछ विशेष काम नहीं आते। भाषणों और प्रवचनों की शक्ति सीमित है। लेखनी भी एक सीमा तक ही काम कर पाती है। क्योंकि पूर्वाग्रह ग्रस्त विचारधारा स्वभाव का अंग बन चुकी होती है और वह अभ्यास हठवादिता को छोड़ने के लिये सहज तैयार नहीं होता। व्यक्ति या समाज का सुधार करने के लिये परामर्श प्रतिपादनों को अन्तःकरण की गहराई तक पहुँचाना चाहिये। ऐसी प्रखर प्रतिभा का उत्पादन उत्कृष्ट व्यक्तियों में ही उग सकना सम्भव होता है। प्राथमिकता और प्रमुखता देने योग्य क्षेत्र यही है। विशेषतया उनके लिये जो दूसरों के समुदायों को सुधारने की आशा, अपेक्षा करते हैं और उसके लिये आतुर भी दीखते हैं। यह भावना एवं चेष्टा सराहनीय है, पर उसे प्रभावशाली बनाने के लिये यही सर्वसुलभ है कि आरम्भ अपने आप से किया जाय। यही वह बीजारोपण है जो आगे चलकर अंकुर, पौधा, वृक्ष बनते हुये फूल, फलों से लदता है। उसकी छत्रछाया में बैठकर अनेकों को राहत पाने का अवसर मिलता है।

यह ठीक है कि समाज से व्यक्ति प्रभावित होता है। वातावरण का प्रभाव एवं दबाव ऐसा है कि हल्के-फुल्के व्यक्तित्वों को अपने प्रवाह में बहा ले जाता है। अन्धड़ के साथ तिनके, पत्ते उड़ते देखे गये हैं। सामूहिक प्रथा, प्रचलनों का प्रभाव भी ऐसा ही है; वह दुर्बल मानस वाले अधिकांश लोगों को प्रचलनों का अनुसरण करने के लिये दबाव डालता है। देखा भी यही जाता है कि विनिर्मित वातावरण में रहने वाले लोगों का चिन्तन, चरित्र, स्वभाव, अभ्यास भी उसी स्तर का बन जाता है। इसलिये समाजविज्ञानी इस बात पर अधिक जोर देते हैं कि सामूहिक वातावरण के सर्वजनीन प्रचलन को सुधारने के लिये प्रबल प्रयत्नों का आश्रय लिया जाये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धुआँधार प्रचार से लेकर आन्दोलन करने, लोकमानस बदलने का प्रयत्न किया जाये। यथासम्भव असहयोग, विरोध या संघर्ष का भी आश्रय लिया जाय। आवश्यकतानुरूप शासन की शक्ति का भी इसके लिये उपयोग किया जाये। बन पड़े तो बहिष्कार या सत्याग्रह जैसे आयुधों का भी प्रयोग किया जाय। यह प्रतिपादन-परामर्श अपनी जगह पर सही हैं। उन्हें आजमाया और क्रियान्वित भी किया जाये। इन उपायों से वातावरण के बदलने में किसी कदर सहायता मिलती भी है।

यह सब कुछ आवश्यक होते हुये भी पर्याप्त नहीं है। प्रचारक कभी चिरस्थायी नहीं होते। वह अपने समय में अपनी प्रचण्डता का प्रदर्शन करके थोड़े ही समय में शान्त हो जाते हैं और प्रचार-प्रभाव से उत्पन्न हुआ आवेश कुछ ही देर में पानी के बबूले की तरह उछल-कूद कर समाप्त हो जाता है। स्थायित्व अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करने में है। यदि प्रचारकों का निजी व्यक्तित्व घटिया हो तो फिर यह आशा नहीं की जानी चाहिये कि मात्र वाचालता के सहारे किन्हीं को अभ्यस्त कुसंस्कारों का परित्याग करने और आदर्श पालन की व्रतशीलता धारण करने के लिये सहमत किया जा सकेगा। जले दीपक ही नये दीपकों को अपनी प्रज्ज्वलित लौ के सम्पर्क में लाकर उन्हें भी प्रकाशवान बनाते हैं। जो स्वयं बुझे पड़े हैं वे नये दीपकों को प्रज्ज्वलित कर सकेंगे, इसकी आशा नहीं ही करनी चाहिये। कीचड़ से कीचड़ कैसे धोयी जा सकती है ? जिसने अपने प्रतिपादनों से अपने आपको सहमत करने में सफलता नहीं पाई, वह दूसरों को सुधार के सन्मार्ग पर चला सकेगा ऐसी आशा किस प्रकार फलित हो ? जो अपने तक को नहीं सुधार सका, वह अपने अनुकरण का निमन्त्रण किसी को दे नहीं सकता। उसके वागजाल में लोग देर तक फँसे नहीं रह सकते। यथार्थता आज नहीं तो कल उजागर होकर रहती है। जब वस्तुस्थिति में, कथनी और करनी में भिन्नता देखी जाती है, तो उन सभी का विश्वास झूठा माना जाता है, जिन्हें परामर्शों की झड़ी लगाकर प्रभावित, सहमत करने में तात्कालिक सफलता दीख पड़ने लगी थी। ऐसों का आदर्शवादी उत्साह देखते-देखते ठण्डा पड़ जाता है।

कहने को कोई कुछ भी कहता रहे पर लोगों की जमी हुई मान्यता यह है कि इन दिनों आदर्शों का परिपालन सम्भव नहीं है। उन्हें कहने-सुनने का मनोविनोद भर समझा जा सकता है। कथा श्रवण से स्वर्ग मिलने जैसी मूढ़-मान्यताओं से भ्रान्त तो कितने ही लोग रहते हैं, पर उन भक्त श्रोताओं में से कदाचित् ही कोई ऐसे निकलते हैं, जो आदर्शों को व्यवहार में उतारने के लिये आवश्यक साहस दिखा सकें। जब उदाहरण ही दीख नहीं पड़ते तो कोई कैसे माने कि आदर्श का परिपालन व्यावहारिक एवं सम्भव भी है। यही एक चट्टान इतनी बड़ी है जिससे टकराकर सतह पर बहते हुये अनेकों जलते दीपक बुझ जाते हैं। छोटी डोंगियाँ भी इन्हीं अवरोधों से टकराकर प्रायः डूबती देखी जाती हैं। प्रामाणिक उदाहरणों के बिना लोगों को सन्मार्ग पर चलने के लिये विवश करना, इन दिनों इसलिये विशेष रूप से कठिन हो गया है कि निजी जीवन में उत्कृष्टता की कसौटी पर खरे सिद्ध होने वाले उपदेष्टा ढूँढ़े नहीं मिलते। यदि उनका ऐसा अकाल न पड़ा होता तो प्राचीनकाल के धर्म-प्रचारकों की तरह इन दिनों में समाज का उच्चस्तरीय निर्माण कर सकना सम्भव रहा होता। तब सतयुगी वातावरण सर्वत्र दिखाई देता था। उत्कृष्टता की पक्षधर भाव-चेतना भी एक प्रकार के कृषि कर्म एवं उद्यान आरोपण की तरह है। उसके लिये सिंचाई तथा रखवालों की सुव्यवस्था रखने वाला जागरूक संसार चाहिये। किसान या माली का स्वेद रस पाये बिना कोई फसल कभी फलती-फूलती और कोठे भरने में समर्थ होती नहीं। प्राचीनकाल में लोकमानस का स्तर ऊँचा उठाये रहने में, चिन्तन, चरित्र व्यवहार में शालीनता का गहरा पुट लगाये रहने में धर्म प्रचारकों का जो पुरोहित वर्ग निरन्तर कार्य संलग्न रहता था, उसका अब कहीं अता-पता भी नहीं दीख पड़ता। ऐसी दशा में खेत, उद्यानों को चौपट हुआ देखा जाता है तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

पानी का स्वभाव नीचे की ओर बहने का है। वस्तुयें सहज ही ऊपर से हटाने पर नीचे आ गिरती हैं। लोकचिन्तन और प्रचलन के सम्बन्ध में भी यही बात है। यदि उन्हें उत्कृष्टता की दिशा में उछालने वाला यन्त्र न हो तो पतन-पराभव के गर्त में उनका गिरते चला जाना सहज स्वाभाविक है। इन दिनों यही घटनाक्रम घटित हो रहा है। व्यक्तियों के समूह का नाम ही समाज है। व्यक्तियों का निजी स्तर जैसा भी भला-बुरा होता है। समाज भी ठीक उसी प्रकार बन जाता है। व्यक्तित्वों में निकृष्टता भरती बढ़ती चले और समाज राष्ट्र का स्तर ऊँचा बना रहे यह हो नहीं सकता। इसलिये देश, धर्म, समाज, संस्कृति की वास्तविक सेवा करने के इच्छुकों में से प्रत्येक को अपने प्रभाव क्षेत्र में व्यक्तित्वों का स्तर ऊँचा उठाने के लिये सच्चे अर्थों में ठोस प्रयत्न करने पड़ते हैं। इसके लिये सर्वप्रथम अपने को, अपने निजी परिवार को वैसा बनाना पड़ता है, जैसा कि अन्यान्यों को सुधारने के सम्बन्ध में सोचा जाता है। आत्म-निर्माण ही विकसित होकर समाज-निर्माण या विश्व-निर्माण जैसे महा-प्रयोजन में कुछ कहने लायक योगदान दे पाता है। उस प्रयत्न के लिये बनी सही योजना लक्ष्य तक पहुँचती और अभीष्ट परिणाम उत्पन्न करती है। समाज सुधार के क्षेत्र में जिनने भी कारगर उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं, उन सभी को सर्वप्रथम आत्म-निर्माण का कार्य हाथ में लेना पड़ा है। वही सनातन उपचार आज की परिस्थितियों में भी उतना ही सही और कारगर है।

प्रचलित और अभ्यस्त अवांछनीयता के घेरे को तोड़कर उत्कृष्टता के क्षेत्र में प्रवेश करना एक साहसिक कार्य है। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण को तोड़कर अन्तरिक्ष में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रवेश करने वाले राकेटों की तरह इसके लिये आन्तरिक ऊर्जा चाहिये। वह यदि समाज के शुभेच्छुकों के जीवन में है नहीं, तो उन्हें प्रचण्ड आत्मबल को उभारकर अपने भीतर से ही उपार्जित करनी चाहिये। एकाकी निश्चय करने और उस पर चल पड़ने के लिये अपना ही शौर्य-पराक्रम काम देता है। इसके लिये तथाकथित स्वजन सम्बन्धियों से प्रोत्साहन या सहयोग प्राप्त करने की आशा व्यर्थ है। सभी को ढर्रा पसन्द है, सभी सुविधा-संवर्धन चाहते हैं। सभी आदर्शों की उपेक्षा करते हैं। अपवाद तो इस क्षेत्र में कहीं-कहीं ही दीख पड़ते हैं। ऐसी दशा में लोगों का मुँह ताकने और अन्यों के प्रयोग करने को आगे आने की घटना देखने के लिये प्रतीक्षा में बैठे रहना व्यर्थ है। इतिहास के पृष्ठों पर जिन महामानवों की गुण गाथायें विद्यमान हैं, उन्हीं को मार्गदर्शन करने एवं प्रकाश-प्रेरणा देने के लिये पर्याप्त मान लिया जाना चाहिये।

प्रचलित अवांछनीयताओं से मुक्त अपने को करना चाहिये। अभीष्ट सत्प्रवृत्तियों को अपने स्वभाव एवं अभ्यास में उतारना चाहिये। इतना बन पड़ने पर लोगों को यह कहने में हिचक न रहेगी कि आदर्शवादिता का परिपालन असम्भव या व्यावहारिक है। अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हुये पस्त-हिम्मत लोगों में भी नये उत्साह का संचार किया जा सकता है। सामाजिक सर्वतोमुखी अभ्युदय का शुभारम्भ आत्मनिर्माण में किया जा सकता है।

सभ्य समाज इस प्रकार बन सकेगा

परस्पर दुर्भाव की धारणाओं के कारण ही पारस्परिक संघर्ष और विद्वेष की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। उनके फलस्वरूप अवांछनीय, अनैतिक और अशोभनीय घटनायें आये दिन घटित होती हैं। आज सर्वत्र अधिकारों की माँग प्रबल हो रही है, दूसरों से अधिक सुविधाएँ प्राप्त हों, यह अपेक्षा की जाती है, पर कर्त्तव्यों का किसी को ध्यान नहीं। कर्त्तव्यों की उपेक्षा करते हुये अधिकारों की माँग करने से कलह का जन्म होता है। शान्ति का तरीका यह है कि अधिकारों की उपेक्षा करते हुये कर्त्तव्यों का पूरी तरह पालन किया जाये।

नागरिक जीवन की सुव्यवस्था इस बात पर निर्भर है कि हर व्यक्ति दूसरों के प्रति अपने उत्तरादायित्वों का पूरी तरह पालन करे, अपनी नैतिक जिम्मेदारियों को तत्परता के साथ निभाने के लिये कटिबद्ध रहे। सामाजिक सुख, शान्ति और प्रगति का यही आधार है। जिस देश में नागरिक अपने कर्त्तव्यों का ठीक तरह पालन करते रहते हैं, वही राष्ट्र सबल माना जाता है। जिस समाज में चरित्रवान लोगों का बाहुल्य रहता है, वही सभ्य कहा जाता है। किसी व्यक्ति या समूह की उत्कृष्टता केवल इसी आधार पर नापी जा सकती है कि उसमें कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों के प्रति कितनी आस्था है। झूठे और लबार, चालाक और बेईमान, धूर्त और ढोंगी, आलसी और कायर लोग चाहे कितने ही साधन सम्पन्न क्यों न हों, उनका तथा उनके समूह का स्तर सदा गिरा हुआ ही रहेगा। चिरस्थाई उन्नति, सन्तुष्टि और प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकना उनके लिये कदापि सम्भव न हो सकेगा।

एक-दूसरे के प्रति सद्व्यवहार करने से परस्पर स्नेह, संतोष, सद्भाव और प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। प्रेम का उद्गम सज्जनता और सद्व्यवहार से होता है। दुष्टता और दुर्बुद्धि की भावनायें मन में रहें तो किसी के प्रति सच्चा सद्व्यवहार बन ही न पड़ेगा। नीति और चतुरता के माध्यम से जो नकली, बनावटी एवं झूठा शिष्टाचार बरता जाता है, वह देर तक किसी को भ्रम में नहीं रख सकता। उसकी कलई सहज ही खुल जाती है। किन्तु जहाँ स्वाभाविक, सरल एवं सच्ची सद्भावनायें रहती हैं, वहाँ प्रेम, विश्वास स्वयमेव उत्पन्न होता है। जब कुछ व्यक्तियों के बीच प्रेम और विश्वास का सम्बन्ध बन जाता है तो वे आपस में मित्र कहलाते हैं और सच्चे मित्रों द्वारा एक-दूसरे के प्रति बरते जाने वाले व्यवहार से जितना अधिक सुख मिलता है, उसकी तुलना संसार के और किसी सुख से नहीं की जा सकती। कुटुम्ब, रिश्तेदारी, मैत्री या विवाह अपने आप में कोई गुण-दोष नहीं रखते, निकट समीपता एवं सद्भावना से उत्पन्न प्रेम ही आत्मीयता का कारण बनता है। अनेकों कुटुम्बी ऐसे हैं जहाँ पिता-पुत्र में, भाई-भाई में जानी दुश्मनी देखी जाती है। पति-पत्नी के बीच कई बार इतना बढ़ा-चढ़ा मनोमालिन्य देखा जाता है कि एक-दूसरे के साथ रहने में दुःख ही अनुभव नहीं करते वरन् कई बार तो एक-दूसरे की जान के ग्राहक तक बन जाते हैं। रिश्तेदारों में भी कितनी ही जगह लोकाचार जितना ही दिखावटी व्यवहार पाया जाता है। मित्रों में अधिकांश मतलब के होते हैं। काम निकलते ही आँखें फेर लेते हैं। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि आन्तरिक सद्भावना के अभाव में जो पारस्परिक मैत्री सम्बन्ध, कुटुम्ब, विवाह, रिश्तेदारी आदि के माध्यम से बनते हैं वे भी अवास्तविक सिद्ध होते हैं। उसके विपरीत इन बन्धनों में बँधे हुये लोग भी केवल मानवता और सज्जनता के नाम पर एक-दूसरे के प्रति बहुत कुछ कर गुजरते हैं और इतना गहरा सद्व्यवहार रखते हैं कि उसकी तुलना में रिश्तेदारी आदि का सम्बन्ध बिल्कुल तुच्छ प्रतीत होता है। पारस्परिक सच्चे प्रेम से उत्पन्न होने वाला सुख निस्सन्देह इस संसार का सबसे बड़ा वरदान है। वह जिसे भी प्राप्त होता है, उसे निश्चय ही बड़भागी माना जायेगा। यह सौभाग्य प्राप्त करना या वंचित रहना किसी भी मनुष्य के लिये उसके अपने हाथ की बात है। अपने भीतर यदि दूसरों के साथ आत्मीयता और ममतापूर्ण सद्व्यवहार करने की प्रवृत्ति समुचित मात्रा में जाग्रत हो तो उसके फलस्वरूप जो भी व्यक्ति सम्पर्क में आवेगा, मिठास और सन्तोष अनुभव करेगा। उसके अभाव में बनावटी शिष्टाचार आसानी से ताड़ा जा सकता है। उसका प्रभाव उतना ही सीमित होता है जितना कि उथले मन से किये हुये व्यवहार का।

जो प्रेम-सद्भाव दाम्पत्य जीवन में, सन्तानं के साथ, रिश्तेदारी या मैत्री में बरता जाता है, उसे ही थोड़ा सा विकसित करके अपने सम्पर्क में आने वाले सभी लोगों के साथ व्यवहार में लाया जाय तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आदर्श पूरा करते हुये हम सच्चे अर्थों में, 'उदार चरित' वाले कहलाने के अधिकारी बन सकेंगे। जो सुख, साहस और विश्वास एक मित्र से दूसरे मित्र को या एक सम्बन्धी से दूसरे सम्बन्धी को प्राप्त होता है, वही सम्बन्ध विकसित होकर सारे समाज में व्यापक बन सके तो एक मनुष्य के सम्पर्क से दूसरा मनुष्य असाधारण प्रसन्नता और प्रफुल्लता अनुभव करेगा। एकता और आत्मीयता के स्नेह-सम्बन्ध जब लोगों की मनोभूमि में व्यापक रूप धारण कर रहे होंगे, तो इसका प्रतिफल इस धरती पर साकार स्वर्ग के प्रत्यक्ष दर्शन के रूप में ही परिलक्षित हो सकता है। इससे सारी दुनिया सुख-शान्ति से ओत-प्रोत बन सकती है।

कानून, शासन, समाज व्यवस्था का उद्देश्य यह है कि मनुष्य परस्पर टकराने की स्थिति से बचें और स्नेह सद्भाव की परिस्थितियाँ बढ़ावें, संस्थाओं और संगठनों का निर्माण इसी दृष्टि से होता है। सभा सम्मेलनों, प्रीतिभोज, गोष्ठी आदि का आयोजन यही सोचकर होता है कि एकत्रित लोगों के बीच सहयोग एवं निकटता के बीज उत्पन्न हों। सांस्कृतिक कार्यक्रम, क्लब, सहभोज, पार्टियाँ, प्रीतिभोज आदि जाने क्या-क्या कार्यक्रम परस्पर प्रेम भाव पैदा करने के लिये सोचे और किये जाते हैं। नागरिकता और शिष्टाचार का शास्त्र ही इस भावना को लेकर विकसित हुआ है कि मनुष्य एक-दूसरे के लिये हानिकारक क्षोभ करने वाले सिद्ध न हों वरन् परस्पर स्नेह, सहयोग, उदारता एवं सज्जनता का व्यवहार करते हुये उपयोगी और सहायक बनकर रहें।

आम शिकायतें यह सुनी जाती हैं कि लोग अपने नागरिक कर्त्तव्यों पर ध्यान नहीं देते, व्यक्ति का समाज के प्रति क्या उत्तरदायित्व है और उसे किस प्रकार निभाया जाना चाहिये, यह नहीं सोचते। सड़कों पर बाईं ओर न चलने, गलियों में घर का कूड़ा फेंक देने, रेलों में अनुचित परिमाण में स्थान घेर बैठने, वचन के अनुसार नियत समय पर उपस्थित न रहने, वस्तुयें लौटाने का वायदा न पूरा करने, अशिष्टता बरतने आदि बातें इस बात की प्रतीक मानी जाती हैं कि नागरिकता, सभ्यता की मर्यादाओं को तोड़ा जा रहा है। उठने, बैठने, बोलने, खाने, नहाने, कपड़ा पहनने, कुल्ला करने आदि में लोग असभ्यता बरतते हैं। अशिष्ट आचरण करने में गर्व अनुभव करते हैं। इन बुराइयों को दूर करने के लिये नागरिक शिक्षा और शिष्टाचार का प्रचलन करना आवश्यक समझा जाने लगा है।

इस संसार में सद्भाव और सौजन्य बढ़े, अपराधों और पापों की सत्ता घटे, इसका एक ही आधार हो सकता है, वह है सज्जनता की अभिव्यक्ति। सच्ची नागरिकता और वास्तविक नैतिकता इसी को कहते हैं। विश्व शान्ति की समस्या का हल इसी आधार पर सम्भव है। मनुष्य, मनुष्य के बीच पारस्परिक सद्भाव की अभिवृद्धि के लिये और उससे प्राप्त होने वाले आनन्द को बढ़ाने के लिये आत्मीयता को व्यापक बनाया जाना आवश्यक है। मानवीय सद्गुण ही बाह्य जीवन में सुख-शान्ति की परिस्थितियाँ उत्पन्न किया करते हैं।

समाज की समग्र स्वस्थता की पृष्ठभूमि

जीवन का सही रूप में सदुपयोग बन पड़े, उसका समुचित लाभ और आनन्द उठाया जा सके, इसके लिये स्वस्थता सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख आवश्यकता है। इसके बिना प्रगति पथ पर लम्बी दूरी तक चल सकना तो दूर उल्टे अनेकानेक त्रासदायक संकट खड़े होते रहते हैं, उनसे निपटने में शक्ति चुक जाती है। ऐसी दशा में कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण उत्पादन सम्भव नहीं हो पाता, जो अपने या दूसरों के काम आ सकने का श्रेय प्राप्त कर सके।

दुर्भाग्य इस बात का है कि स्वास्थ्य की महत्ता और आभास तब मिलता है, जब वह हाथ से चला जाता है। इस व्यथा से खोखले हो चुकने पर फिर पूरी तरह पूर्व स्थिति में पहुँच सकना भी सम्भव नहीं होता। कहा जाता है कि पाप करने के बाद परलोक में नरक मिलता है, पर इस तथ्य को यदि प्रत्यक्ष देखना हो तो अस्वस्थता को पाप माना और उसके कारण जिस प्रकार की व्यथा-अपंगता में जीना पड़ता है, निकटवर्ती की उपेक्षा जिस प्रकार बढ़ती है, उसे देखते हुये अनुभव किया जा सकता है कि नरक का छोटा किन्तु प्रत्यक्ष रूप क्या हो सकता है। इस दृष्टि से अस्वस्थता को एक बढ़ा-चढ़ा दुर्भाग्य और स्वस्थ रहने को सौभाग्य कहा जा सकता है। शर्त इतनी ही है कि स्वस्थता का सदुपयोग बन पड़े और दुष्प्रवृत्तियों में निरत होने से पूरी तरह रोका जा सके।

साधारणतया शारीरिक दुर्बलताओं और बीमारी से बचे रहने को ही अयोग्य समझा जाता है। माँसलता, सुगढ़ता और समर्थता को आरोग्यजन्य उपहार माना जाता है, पर वस्तुतः बात इतनी छोटी और सीमित है नहीं। मन—मस्तिष्क की काया का ही एक अंग-अवयव है, उसकी विचारणा, विवेकशक्ति और बुद्धिमत्ता भी समग्र आरोग्य की ही एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। मानसिक आकांक्षायें, भावनायें, आदतें इसी क्षेत्र की विभूतियाँ हैं। इनको भी अवांछनीयताओं से मुक्त होना चाहिये। दूरदर्शी विवेकशीलता को उथला नहीं होना चाहिये। समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, बहादुरी को विकसित कर सकने वाला मानस ही मानसिक स्वस्थता का परिचायक है। लोभ, मोह और अहंकार को कुपित वात, पित्त, कफ की तरह अनिष्ट कर ही माना जाना चाहिये, जबकि लोग इस सम्बन्ध में उदासीनता और उपेक्षा ही अपनाये रहते हैं। उन्हें यह समझ नहीं होती है कि शारीरिक आरोग्यता की तुलना में मानसिक सन्तुलन किसी भी प्रकार कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

बात इतने पर भी समाप्त नहीं होती। आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक स्वस्थता भी उतनी ही अधिक आवश्यक है। इन धाराओं के साथ भी जीवन सुविस्तृत रूप से जुड़ा है। शरीर सही हो, पर मन अर्ध-विक्षिप्तों, सनकियों, उद्दण्ड, असभ्यों की स्थिति में रह रहा हो तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझना चाहिये कि शरीर के नीरोग रहते हुये भी समग्र स्वस्थता का लाभ आनन्द मिल सकना सम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है। आर्थिक स्वस्थता की महिमा भी कम नहीं है। शरीर और परिवार की उचित आवश्यकताओं को पूरी करने के लिये ईमानदारी के साथ परिश्रमपूर्वक कमाया हुआ धन होना चाहिये। उसका अभाव रहे, तो अभावग्रस्त स्थिति में विक्षोभों के घुटन भरे दिन गुजारने पड़ेंगे। दरिद्रता के साथ दीनता भी सहचरी बन जायेगी। पुण्य-परमार्थ का सुयोग कदाचित् ही बन पड़ेगा। अत्यधिक व्यस्त, अभावग्रस्त और महत्त्वाकांक्षाओं की आग में जलते हुये लोग शरीर रोगियों की अपेक्षा अधिक गई-गुजरी स्थिति में होते हैं। इन सभी बातों पर दृष्टि रखने वाले आर्थिक स्वावलम्बन और उस स्तर की समर्थता पर समुचित ध्यान रखने के लिये जोर देते हैं।

पारस्परिक सुव्यवस्था भी समाज के आरोग्य का एक अविच्छिन्न अंग है। बड़ा परिवार यदि पारस्परिक मनोमालिन्य, असहयोग से ग्रसित हो, सभी को मनमर्जी चलाने और आपाधापी बरतने की लत पड़ी हो तो फिर सहयोग के आधार पर क्रमिक विकास की ओर चल सकना न तो संभव ही होगा, न सहजीवन का आनन्द ही किसी को मिल सकेगा। खाने, सोने की सुविधा तो सरायों, धर्मशालाओं और होटलों में भी मिल जाती है, परिवार की आवश्यकता तो इसलिये पड़ती है कि उसमें आत्मीयता, सद्भावना, सेवा, साधना और प्रफुल्लता, प्रसन्नता का आदान-प्रदान परिजनों के बीच निरन्तर चलता रहता है, जबकि मात्र भोजन, शयन जैसी सुविधायें मिलती हैं। अन्य स्थानों में भाव-संवेदना का दर्शन भी नहीं होता। जेलखानों के कैदी और बाड़े में बन्द जानवर भी शरीरगत सुविधायें प्राप्त कर लेते हैं, पर वहाँ पारिवारिकता का अभाव रहने से निवासियों को किसी आनन्द की अनुभूति नहीं होती। घर-परिवार को सर्व-साधारण के जीवन में उपलब्ध सौभाग्य कहा जा सकता है, जिसमें सद्गुणों और सत्प्रवृत्तियों को चरितार्थ करने का अभ्यास निरन्तर करते रहना बन पड़ता है। अवांछनीयताओं का उन्मूलन अपने निज के व्यक्तित्व के उपरान्त परिवार में ही कर सकना सरल पड़ता है। उस समुदाय पर दुलार के साथ-साथ सुधार करने की भी पूरी-पूरी गुञ्जायश रहती है। संयुक्त परिवार अगले दिनों की अनिवार्य आवश्यकता बनकर रहेगा। हर व्यक्ति स्त्री-बच्चों को लेकर एक पृथक् परिवार बसाने और डेढ़ चावल की अलग खिचड़ी पकाने, ढाई ईंट के महल जुटाने में सफल नहीं हो सकेगा। विश्व व्यवस्था भी पारिवारिकता के सिद्धान्त को लेकर ही बन या चल सकेगी। आर्थिक और पारिवारिक स्वस्थता की आवश्यकता सामने आ खड़ी होगी। यह सभी व्यक्तिगत जीवन से सम्बद्ध हैं। आत्म परिष्कार और व्यक्तित्व विकास के लिये निजी क्षेत्र में इन सभी पर ध्यान देने और समग्र प्रगति का प्रयास करने की आवश्यकता पड़ती है।

सामाजिक क्षेत्र को जीवन की बहुमुखी गतिविधियों को सुविस्तृत क्षेत्र में कार्यान्वित करने का कर्म क्षेत्र कह सकते हैं। मनुष्य की संरचना सामाजिक प्राणी के रूप में हुई है। आदिमकाल की अनगढ़ स्थिति से क्रमशः आगे बढ़ते-बढ़ते आज के सुविधासम्पन्न युग तक आ पहुँचने का श्रेय मनुष्य की बढ़ती हुई सहकारी प्रवृत्ति को ही दिया जा सकता है। यदि आदान-प्रदान का, एक की क्षमताओं से दूसरों को लाभान्वित होते रहने का राजमार्ग न बना होता, तो अन्य वन्य पशुओं की तरह उसे भी रहना पड़ता, वन-मानुषों और नर-वानरों से तनिक भी ऊँची अच्छी स्थिति उसे उपलब्ध न हुई होती। अभी वनवासी और घुमक्कड़ कबीले अपनी पिछड़ी हुई छोटी दुनिया में रहते और किसी प्रकार जीवित रहने के साधन हस्तगत कर पाते हैं। प्रगतिशीलता का दूसरा पक्ष सहकारिता है। दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। निपट एकाकी, सर्वथा व्यक्तिवादी, संकीर्ण स्वार्थपरता अपनाकर एकाकी जीवन कदाचित् ही कोई जी सके!

यह समाज के नाम से जाना जाने वाला संयुक्त क्षेत्र है। मछली सुविस्तृत जलाशय में ही प्रगति करती है और खुश रहती है। मनुष्य को भी सामाजिक आदान-प्रदान के लिये उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी पड़ती हैं। विषैले जलाशय की मछलियाँ मर जाती हैं या फिर कष्टपूर्वक विषैली होकर जीवन गुजारती हैं। सामाजिक अव्यवस्था और अराजकता की स्थिति में भी सर्व-साधारण का जीवन दूभर हो जाता है। शान्ति, समृद्धि, प्रगति और प्रसन्नता के सभी द्वार बन्द हो जाते हैं, इसलिये समाज में स्वस्थ परम्पराओं को प्रतिष्ठित करना, उन्हें समर्थ, समुन्नत बनाना कठिन हो जाता है। प्राचीनकाल के साधु-ब्राह्मण, परिव्राजक इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये निरन्तर जुटे रहते थे। शासन का नियन्त्रण तन्त्र भी इसी हेतु गढ़ा और खड़ा किया गया है।

इन दिनों समाज क्षेत्र में अपेक्षाकृत दुष्प्रवृत्तियों ने अधिक अधिकार और विस्तार कर लिया है। अवांछनीयताएँ, अनैतिकताएँ, मूढ़ मान्यताएँ, कुरीतियाँ, अनीतियाँ क्रमशः जड़ जमाती और विस्तार करती चली जाती हैं। उनकी चपेट में कोई भला जीवन जीने वाला भी अप्रभावित नहीं रह सकता। गुण्डागर्दी के बीच रहते हुये किसी की सुरक्षा नहीं। महामारी की चपेट में नियम, संयम पालने वाले भी आ जाते हैं। सामाजिक वातावरण अपने प्रभाव क्षेत्र के हर व्यक्ति को प्रभावित करता है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुये अपने नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिये। समान स्वस्थता का लाभ सबके लिये हो। शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक और सामाजिक स्वस्थता को अक्षुण्ण बनाये रहने के लिये समुचित प्रयत्न करना ही चाहिये।

नव्य समाज की पृष्ठभूमि और आधारशिला

अपने समय के मूर्द्धन्य विश्व-विचारक बर्टेण्ड रसेल ने सामाजिक विकृतियों के कारण और निवारण पर बहुत विचार किया है। इस सन्दर्भ में उन्होंने जो निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं वे सभी के लिये विचारणीय हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बर्टेण्ड रसेल के अनुसार, इन दिनों यह पूँजीवादी मान्यता अत्यन्त घातक है कि हर सम्भव उपाय से उत्पादन की मात्रा बढ़ाई जानी चाहिये। नई तरह की मशीनों से, औरतों और बच्चों से काम लेकर, काम के घण्टे बढ़ाकर विविध प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि की जानी चाहिये। उपयोगी चीजों का उत्पादन होता रहना चाहिये अन्यथा अभावजन्य अनेकानेक समस्यायें उत्पन्न होंगी।

आधुनिक सुविकसित साधनों के सहारे संसार की पूरी जनसंख्या का एक हिस्सा बिना अधिक समय तक काम किये वह सारा काम निबटा सकता है जो उपयोग की वस्तुयें पैदा करने के लिये सचमुच ही आवश्यक है। जो समय ऐश्वर्य को अनावश्यक साधनों को पैदा करने में खर्च किया जाता है, उसका कुछ भाग स्वस्थ मनोरंजन और सैर-सपाटे में खर्च करके शारीरिक एवं मानसिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। शिक्षा एवं सांस्कृतिक विकास कार्यों में भी उस महत्त्वपूर्ण समय का नियोजन हो सकता है। कला, साहित्य, गायन-वादन जैसे मनोविकास के साधनों का आविष्कार एवं विकास, अनुपयोगी वस्तुओं के उत्पादन से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

संसार की मौजूदा औद्योगिक व्यवस्था इसी अदूरदर्शी नीति पर चल रही है कि वस्तुओं का बिना उपयोगी-अनुपयोगी में भेद-भाव किये अधिक से अधिक उत्पादन हो। यह व्यवस्था इसी प्रकार चलती रही तो मानवी विकास का लक्ष्य अधूरा ही रह जायेगा। वर्तमान व्यवस्था में निरर्थक वस्तुओं के उत्पादन में क्षमता नियोजित होने से मानव बल का बहुत अपव्यय होता है।

कुछ व्यक्ति जी-तोड़ मेहनत करें और अपने स्वास्थ्य गँवा बैठें, यह जितना अहितकर है, उतना ही यह अन्यायपूर्ण है कि कुछ लोगों की आय अधिक हो और उन्हें न्यूनतम घण्टे काम करना पड़े। यह सच है कि शारीरिक श्रम की तुलना में बौद्धिक श्रम कम समय तक किया जा सकता है पर वह इतना कम नहीं होना चाहिये कि एक वर्ग आरामतलब बनता जाय।

सम्पत्ति के उत्तराधिकार के विषय में बर्टेण्ड रसेल का कहना है—'यह बात तो समझ में आती भी है कि जिस-जिस आदमी का काम असाधारण रूप से उपयोगी सिद्ध हुआ है—जैसे आविष्कर्ता का—उसे औसत नागरिक से थोड़ा अधिक आय का उपयोग करने दिया जाय, पर इसका कोई कारण समझ में नहीं आता कि सम्पत्ति का उत्तराधिकार, बेटों, पोतों को मिलना चाहिये। इसका परिणाम यह होता है कि एक ऐसा निकम्मा और असाधारण रूप से सौभाग्यशाली वर्ग पैदा हो जाता है, जो अपने पैसे के बल पर प्रभावशाली बन जाता है। विश्व में जहाँ भी यह उत्तराधिकार में धन मिलने की परम्परा विद्यमान हो, उसे अविलम्ब समाप्त किया जाना चाहिये।"

वितरण की वर्तमान व्यवस्था किसी सिद्धान्त पर आधारित नहीं है। इसकी उत्पत्ति एक ऐसी व्यवस्था से हुई जो देश विजय द्वारा थोपी गयी थी। विजेताओं ने जो व्यवस्था अपने हितों के लिये बनाई थी, उसे कानून का थोड़ा जामा पहनकर ढाल दिया गया। तब से अब तक कोई बुनियादी परिवर्तन उसमें नहीं हुआ। यह पुनर्निर्माण किन सिद्धान्तों एवं आधारों पर आधारित हो—यह एक ऐसा विचारणीय प्रश्न है जिसके उत्तर पर मानव जाति का भविष्य अवलम्बित है।

इस समय दो आन्दोलन ऐसे हैं जिनसे कुछ आशा बँधती है कि वे वर्तमान अव्यवस्था और टकराव को दूर करने में सहायक हो सकते हैं। उनमें से एक है 'सहकारिता आन्दोलन' तथा दूसरा है 'संघाधिपत्यवाद'। सहकारिता आन्दोलन बहुत बड़े क्षेत्र में मजदूरी देकर काम लेने की पद्धति का स्थान ले सका है एवं रेल्वे जैसे क्षेत्रों में संघाधिपत्यवाद के सिद्धान्तों को सबसे आसानी से लागू किया जा सकता है।

उपभोक्ता, उत्पादक और पूँजीपति के विभिन्न हितों के बीच जो अलगाव है—वही वर्तमान व्यवस्था की सारी बुराइयों की जड़ है। सहकारी व्यवस्था उपभोक्ता और पूँजीपति के हितों में सामंजस्य स्थापित करती है। संघाधिपत्यवाद उत्पादक के हितों में समन्वय स्थापित करता है, लेकिन इन दोनों में से कोई भी व्यवस्था अपने आप में परिपूर्ण नहीं है, तो भी मौजूदा व्यवस्था से दोनों ही व्यवस्थायें कहीं बेहतर सिद्ध होंगी। इन दोनों के सम्मिश्रण से एक तीसरी व्यवस्था भी निकल सकती है जो समस्त औद्योगिक समस्याओं को दूर कर सके।

बर्टेण्ड रसेल लिखते हैं कि यह बड़े आश्चर्य की बात है कि राजनैतिक क्षेत्र में लोकतन्त्र की स्थापना के लिये असंख्य नर-नारियों ने संघर्ष किया है, पर उद्योगों में लोकतन्त्र की स्थापना करने का प्रयास अत्यल्प हुआ है, जबकि युग की प्रधान आवश्यकता वही है।

राजनैतिक संस्थायें सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य यह पूरा कर सकती हैं कि वे व्यक्ति में सृजन की प्रवृत्ति, उमंग, उत्साह और जीवन का उल्लास बनाये रखें। लोगों में भरपूर उमंग बनाये रखने के लिये केवल सुरक्षा की ही नहीं बल्कि उत्साहवर्धक उल्लास भरे, सुअवसरों की भी आवश्यकता होती है। भय से मुक्ति का नाम सुरक्षा है। भयमुक्ति निषेधात्मक नहीं है। वरन् उसकी पूर्णता, उत्साह उमंग, आशा, सृजनशीलता और शालीनता के उदात्त अभिवर्द्धन के साथ जुड़ी हुई है।

'मार्क्सवाद' अर्थ को तो प्रधानता देता रहा है पर यह समझना एक भूल है कि समस्त समस्याओं का एक कारण आर्थिक विषमता है जैसा कि प्रायः मार्क्सवाद के व्याख्याकार कहते हैं। मार्क्सवाद का अभिन्न सहयोगी एन्जेल्स स्वयं स्पष्ट करते हुये लिखता है कि "नई पीढ़ी कभी-कभी आर्थिक पहलू पर जरूरत से अधिक जोर देती है, यह उचित नहीं है। यह सच है कि वस्तुओं का उचित परिणाम में उत्पादन और सही रीति से उसका वितरण समाज की सुव्यवस्था के लिये आवश्यक है पर इसका अर्थ यह नहीं है कि अर्थ ही एकमात्र मनुष्य जीवन का

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लक्ष्य है वरन् यह कहना चाहिये कि अर्थ भी जीवन के लिये प्रमुख कारक है। जो मार्क्स के सिद्धान्त की तोड़-मरोड़ करता और यह कहता है कि अर्थ का अनुकूलन ही एकमात्र समस्त समस्याओं का हल है, वे भारी गलती पर हैं। मनुष्य के चिन्तन-आचरण, दार्शनिक सिद्धान्तों, धार्मिक विचारों का भी समाज संरचना में असाधारण प्रभाव पड़ता है। ऐतिहासिक संघर्षों एवं परिवर्तनों में इनकी भी विशेष भूमिका होती है। अतएव समस्त इतिहास की अर्थ की भाषा में व्याख्या करना अनुचित ही नहीं हानिकारक भी है।"

दार्शनिक राबर्ट ओवेन का जन्म इंग्लैण्ड में हुआ। मालिक और मजदूर के बीच कैसा सम्बन्ध होना चाहिये। इसका एक प्रेरणाप्रद उदाहरण उसने युवावस्था में एक मिल की व्यवस्था हाथ में लेते ही प्रस्तुत किया। वह चिन्तक और व्यवस्थापक दोनों ही था। मानचेस्टर की एक मिल में उसने श्रमिकों के उत्थान के लिये जो भी कुछ किया, उसके लिये आज भी इंग्लैण्ड में उसका नाम श्रद्धापूर्वक श्रमिक वर्ग द्वारा लिया जाता है। मजदूरों के लिये उसने समग्र शिक्षा व्यवस्था बनाई। स्वास्थ्य की सुविधायें उपलब्ध करायीं। निकटवर्ती क्षेत्रों में शराब की दुकानें बन्द करा दीं। श्रमिकों को उनके उत्तम चरित्र और पदोन्नति के लिये पारितोषिक देने की व्यवस्था की। परिणाम यह हुआ कि स्वास्थ्य, स्वच्छता एवं शिक्षा का स्तर बढ़ते ही श्रमिकों की स्थिति दिन-प्रतिदिन सुधरती गयी। बाद में चिन्तन और लेखन उसकी प्रिय अभिरुचि के विषय बन गये। अपनी पुस्तक 'लाइफ ऑफ आवेन' में वे लिखते हैं कि समस्त मानवी हलचलों का मुख्य उद्देश्य सुख की प्राप्ति है पर सुख किसी व्यक्ति विशेष के लिये नहीं उपलब्ध कराया जा सकता। वरन् समस्त मनुष्य जाति को ध्यान में रखकर प्रयास करने से ही स्थाई सुख-शान्ति सम्भव है। उसके लिये सामूहिक विकास से सम्बन्धित उद्योगों को प्रोत्साहन देना होगा।

वह कहते हैं कि आदमी का व्यक्तित्व उस परिस्थिति से निर्मित होता है, जिसमें वह पैदा हुआ, जहाँ वह रहता और काम करता है। बुरी परिस्थितियाँ बुरे व्यक्तित्व पैदा करती हैं और अच्छी अच्छे को। परिस्थिति को अच्छा बनाने के लिये ओवेन कुछ प्रमुख बातों पर जोर देते हैं—(१) शिक्षा सार्वजनिक, सर्वसुलभ और हर व्यक्ति के लिये अनिवार्य होनी चाहिये तथा सदुद्देश्यपूर्ण हो। (२) सम्पत्ति इतनी होनी चाहिये कि हर व्यक्ति खुशहाली का जीवन जी सके। (३) बेकारी का डर नहीं होना चाहिये। उसके लिये उद्योगों का संचालन दूरदर्शी, उदारमना और सर्वहितैषी के हाथों में सौंपा जाना आवश्यक है।

उन्नीसवीं सदी के आरम्भ का ओवेन पहला व्यक्ति था, जिसने अपने ही विचारों को क्रियात्मक स्वरूप देने का प्रयास किया। 'सोशल सिस्टम' पुस्तक में उसने कम्यून व्यवस्था पर आधारित जिस समाज की परिकल्पना की थी, उसे प्रायोगिक रूप १८२४ में दिया। ३० हजार पौंड की राशि से उसने हार्मनी इण्डियाना में ३० हजार एकड़ जमीन खरीदी तथा न्यू हार्मनी के नाम से एक साम्यवादी उपनिवेश बसाया। जिसके सदस्यों की संख्या क्रमशः हजारों से बढ़ते हुये कुछ ही वर्षों में लाख तक जा पहुँची।

उपनिवेश का उद्घाटन करते हुये ओवेन ने कहा था कि "मैं एक बिल्कुल नयी सामाजिक व्यवस्था—नये प्रयोग का शुभारम्भ कर रहा हूँ ताकि दुनिया संकीर्णता के दलदल से निकले और समूह में भाई-भाई की भाँति रहना सीखे।"

'बावूफ' फ्रांस का एक समाजवादी विचारक था। (जीवनकाल १७६४ से १७६७ तक) फ्रांस की क्रान्ति को उसने ही दिशा दी। कार्लमार्क्स के पूर्व ही उसने साम्यवादी विचारधारा का उद्घोष किया था। पूँजीवादी सरकार के विरोध में आवाज उठाने के कारण उसे अन्ततः मात्र ३३ वर्ष की आयु में फाँसी पर लटका दिया गया।

बावूफ के अनुसार 'मानवी विकास का लक्ष्य होना चाहिये—एक ऐसे समाज की संरचना, जिसमें हर व्यक्ति सुख-शान्ति से भरा पूरा जीवन व्यतीत करे। पर यह तभी सम्भव है जब हर व्यक्ति समान हो। समान इस अर्थ में कि प्रत्येक को जीवनयापन की अनिवार्य सुविधायें मिलें।"

समाज के पुनर्निर्माण का 'बावूफ' ने जो आधार दिया वह यह था कि प्रकृति प्रदत्त समस्त सम्पदा का राष्ट्रीयकरण होना चाहिये। व्यक्ति को निजी सम्पत्ति रखने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिये। विरासत में किसी भी व्यक्ति को पैतृक सम्पत्ति न मिले। मरने के बाद उसकी सम्पत्ति सरकारी ट्रस्ट के हाथों सौंप दी जाये। सरकार तथा सरकारी अधिकारी जनता द्वारा सीधे चुने जायें। चुने हुये अधिकारियों की देखरेख में सारी उत्पादित वस्तुओं का वितरण व्यक्ति की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाय, न कि उसकी योग्यता को देखकर। प्रबन्धक और कर्मचारियों का स्थानान्तरण होते रहना आवश्यक है ताकि उनमें शक्ति के लोभ का भय नहीं रहे और भ्रष्टाचार पनपने की गुंजाइश कम रहे। वोट वही दे सकेंगे जो चरित्रवान हैं तथा समाज के लिये उपयोगी काम करने में विश्वास रखते हों। बच्चों को संकीर्ण स्वार्थपरता से ऊँचे उठकर समाज परायण, कर्त्तव्यनिष्ठ होने की शिक्षा आरम्भ से ही दी जानी चाहिये ताकि वे आगे चलकर सुयोग्य नागरिक सिद्ध हो सकें।

फ्रांस के प्रसिद्ध समाजशास्त्री और प्रजातन्त्र सिद्धान्त के जन्मदाता 'जीनजेक्स रूसो' ने भावी प्रगति के लिये बाल शिक्षा को प्रधानता देने की बात कही है। वे कहते हैं उज्ज्वल भविष्य की संरचना सुव्यवस्थित समाज से होगी। सुव्यवस्थित समाज के लिये नागरिकों को चरित्रनिष्ठ और समाजनिष्ठ बनना चाहिये। यह कार्य उपदेशों, परामर्शों, प्रदर्शनों से नहीं वरन् उस वातावरण के द्वारा सम्पन्न होना चाहिये, जो व्यक्तित्व को अपने ढाँचे में ढाल सके। यह ढलाई बड़ी आयु हो जाने पर बड़ी कठिनाइयों से ही हो सकती है, इसलिये जैसे भी खिलौने ढालने हों उसका प्रयास तभी होना चाहिये जब मिट्टी गिली हो। सूख जाने पर, पक जाने पर परिवर्तन का प्रयास अत्यन्त कष्टसाध्य है।

रूसो का इस सन्दर्भ में, लिखा आज एक उपन्यास 'इमिले' विश्वविख्यात है। इसमें उसने बाल-विकास के लिये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किस प्रकार का वातावरण आवश्यक है, यह बताया है। साथ ही यह भी सुझाया कि वैसा वातावरण बनाने के लिये न केवल अभिभावकों वरन् समूचे समाज को क्या प्रयत्न करना चाहिये।

वे कहते हैं कि बालकों पर किताबी बोझ न लादा जाय। दस वर्ष तक उनके शरीर को स्वस्थ और आदतों को शालीन बनाने पर पूरा ध्यान केन्द्रित किया जाये। उन्हें आरम्भ से ही संगीत की शिक्षा दी जाये, भावनात्मक विकास के लिये यह नितान्त आवश्यक है। उनकी दृष्टि में खेलकूद के विभिन्न आयोजनों द्वारा, मनोविनोद के विभिन्न उपकरणों द्वारा व्यक्तिवान् बनाया जा सकता है। छोटी आयु में बालकों के बहुत पढ़ाने को वे अत्याचार कहते और बताते हैं कि इससे व पढ़ाकू तो हो सकते हैं। पर व्यक्तित्व की दृष्टि से बुरी तरह कुचल जायेंगे। डरा धमका कर सुधारने की अपेक्षा उनको उपयोगी कार्यों में लगा देने और चिन्तन को रचनात्मक दिशा देने की बात पर उनने अधिक जोर दिया है। जो जिस विषय का विशेषज्ञ बनना चाहे वह उसमें प्रवीणता प्राप्त करने की सुविधा उपलब्ध करे यह एक बात है। किन्तु सामान्य जीवनयापन करने और उन्हें व्यावहारिक ज्ञान से वंचित रखकर पुस्तकी कीड़ा बना देने की वे अनुमति नहीं देते। नारी की प्रकृति की संरचना की ओर ध्यान दिलाते हुये और उसके मातृत्वपरक सहज उत्तरदायित्वों का स्मरण कराते हुये उनका मत है कि नारी शिक्षा का लक्ष्य पुरुष शिक्षा से कुछ भिन्न रखना आवश्यक है। सामान्य ज्ञान दोनों एक जैसा प्राप्त करें पर साथ यह भी न भूला जाय कि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की व्यावहारिक जीवन की समस्याओं का समाधान करना तथा सुख-शान्ति-प्रगति का पथ प्रशस्त करना है।

रूसो ने मानवी भविष्य को उज्ज्वल बनाने एवं सभ्य समाज के लिये—बालकों के व्यक्तित्व निर्माण को सर्वोपरि महत्त्व दिया है और कहा है कि सभ्य समाज की पृष्ठभूमि और आधारशिला उन्हीं के बलबूते विनिर्मित की जा सकती है।

प्रगतिशील समाज का आधार और स्वरूप

व्यक्ति निर्माण के लिये हमें गुण, कर्म, स्वभाव में घुसी हुई अवांछनीय दुष्प्रवृत्तियों को हटाना होगा। जीवन और उसके उद्देश्य को समझना होगा तथा किस आधार पर, किसलिये, किस प्रकार जिया जाय इस दर्शन दृष्टि को परिष्कृत करना होगा। आज पशु और पिशाचों जैसी जीवन दृष्टि बनती चली जा रही है, चिन्तन की प्रणाली ऐसी विकृत बन चली है कि अशुद्ध और अवांछनीय तत्व ही ग्राह्य दीखते हैं। महानता का अमृत पीने की रुचि नहीं रही, निकृष्टता का विष उल्लासपूर्वक पिया जा रहा है। घिनौने जीवनक्रम में सरसता लगती है।

आदर्शवादिता के आधार पर अनुकरणीय जीवन जीने के लिये किसी में उमंग नहीं दीखती। सोचने और प्रेरणा देने वाला अन्तःकरण मानो माया मूर्छा में ग्रस्त होकर एक प्रकार से दिग्भ्रान्त ही बन गया हो, ऐसी है आज के व्यक्ति की स्थिति। इसे बदले बिना कोई रास्ता नहीं। घटिया व्यक्ति घटिया परिस्थितियाँ पैदा करेंगे और उसके परिणाम दुःखदायी ही उत्पन्न होंगे। विश्व के सामने प्रस्तुत अगणित समस्यायें वस्तुतः एक ही विष बीज से उत्पन्न बल्लरियाँ हैं। मानवीय आदर्शों की मात्रा चिन्तन और कर्तृत्व में से जितनी घटती चली जायेगी, वातावरण उतना ही विषाक्त होता जायेगा और विपत्तियों का अन्धकार उतना ही सघन होता जायेगा। आज यही हो रहा है सो परिणाम भी सामने है।

संसार को सुखी बनाने के लिये उपार्जन, चिकित्सा, शिक्षा, वाहन, शिल्प, कला, विज्ञान, विनोद आदि के साधनों को बढ़ाया जाना चाहिये पर यह नहीं भूलना चाहिये कि कुबेर जैसी सम्पदा और इन्द्र जैसी सुविधा भी यदि हर व्यक्ति पीछे जुटा दी जाय तो भी भावनात्मक स्तर ऊँचा उठे बिना चैन से रहना और शान्ति से रहने देना सम्भव न हो सकेगा। चिन्तन में असुरता और कर्तृत्व में दुष्टता के अंश यदि बने रहे तो हर व्यक्तित्व अपने और दूसरों के लिये केवल संकट ही उत्पन्न करता रहेगा। इसलिये हमें मूल बात पर ध्यान देना चाहिये। जन-मानस के भावनात्मक परिष्कार को प्राथमिकता देनी चाहिये। यह एक ही उपाय है जिसके आधार पर विश्व शान्ति की आवश्यकता पूरा कर सकना वस्तुतः सम्भव एवं सुलभ हो सकता है। युग-निर्माण योजना ने सर्व-साधारण का ध्यान इसी ओर खींचा है और ऐसे प्रयोगात्मक प्रयत्न शुरू किये हैं जिन्हें यदि बड़े साधनों में, बड़े परिमाण में आरम्भ किया जा सके तो निर्माण की सही दिशा मिल सकती है और आज की नारकीय परिस्थितियों को कल सुख-शान्ति भरे वातावरण में परिवर्तित किया जा सकता है।

व्यक्ति का चिन्तन और कर्तृत्व किस आधार पर बदला जाय, इसकी संक्षिप्त चर्चा पिछले पृष्ठों में की जा चुकी है। दिशा यही है। जब विस्तार में जाना होगा और काम को हाथ में लेना होगा तब इसमें हेर-फेर भी किया जा सकता है। आज तो हमें इतना भर जानना है कि मनुष्यता के साथ घुल गये—पशुओं और असुरता के अंशों को बहिष्कृत करना और मानवीय चेतना में देवत्व का अधिकाधिक समावेश करना विश्व निर्माण का प्रथम चरण होगा। आज या आज से हजार वर्ष बाद जब भी हमें सही दिशा मिलेगी, श्रीगणेश यहीं से करना पड़ेगा। चिन्तन को प्रभावित करने वाले समस्त स्रोतों को हमें अपने अधिकार में करना चाहिये अथवा अलग से उन आधारों को उच्चस्तरीय प्रेरणा देने की सामर्थ्य सम्पन्न बनाकर खड़ा करना होगा ताकि उनकी तुलना में इन दिनों लोक चेतना को कुमार्गगामिता की ओर खींचने वाले माध्यम पिछड़ने और परास्त होने की स्थिति में चले जायें। इस खण्ड में इन्हीं प्रयत्नों की चर्चा की जा रही है।

व्यक्ति की तरह समाज का निर्धारण-निर्माण भी नये सिरे से करना होगा। पिछले अज्ञानान्धकार युग ने हमें अगणित ऐसी विकृत प्रथा, परम्परायें दी हैं जिनके कारण व्यक्तियों को कुमार्गगामी और पतनोन्मुख होने के लिये विवश होना पड़ रहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। यह ठीक है कि प्रखर व्यक्तित्व समाज को बदल सकते हैं पर यह उससे भी अधिक ठीक है कि समाज के प्रचलित ढर्रे के अनुरूप जन समूह ढलता चला जाता है। जो हो रहा है उसे देखते-देखते मनुष्य उसका अभ्यस्त हो जाता है और फिर उसे यही ढर्रा उचित एवं प्रिय लगने लगता है। तब उसका विरोध करते भी नहीं बनता। मनुष्य की प्रकृति कुछ ऐसी ही बनी है। आज अनेकों अवांछनीय प्रथा-परम्परायें हमारे समाज में प्रचलित हैं पर उनकी बुराई न तो सूझती है और न हटाने की जरूरत लगती है।

न्याय, औचित्य एवं विवेक द्वारा हमें समाज शरीर में प्रवृष्ट उन तत्वों पर दृष्टि डालनी होगी जो उसे निरन्तर विषैला और खोखला करते चले जा रहे हैं। खोजने पर यह तत्व आसानी से सामने आ जाते हैं। मनुष्य-मनुष्य के बीच उपस्थित की गई नीच-ऊँच की मान्यता ऐसी सामाजिक बुराई है, जिसके पीछे कोई तर्क, न्याय या औचित्य नहीं है। घोड़ा, गधा, बैल, हिरन आदि की तरह मनुष्य भी एक जाति है। देश, काल, प्रकृति, जलवायु के कारण रंग और आकृतियों में थोड़ा अन्तर आता है पर इससे उसकी जाति में अन्तर नहीं आता। भाषण, प्रकृति आदि के आधार पर सुविधा के लिये जाति भेद करने भी हों तो भी उनमें नीच-ऊँच ठहराये जाने का कोई कारण नहीं। दुष्ट-दुश्चरित्रों को नीच और श्रेष्ठ सज्जनों को ऊँच कहा जाय यहाँ तक तो बात समझ में आती है पर देश विशेष में पैदा होने के कारण किसी को नीच किसी को उच्च माना जाय यह मान्यता सर्वथा अन्यायमूलक है। इससे नीच समझे जाने वाले वर्गों का स्वाभिमान गिरता और प्रगति के स्वाभाविक अधिकारों से उन्हें वंचित रहना पड़ता है। कुछ लोग अकारण अपने को ऊँचे मानने का अहंकार करते हैं।

अपने देश में यह जन्म-जाति के साथ जुड़ी हुई ऊँच-नीच की मान्यता अविवेक के अन्तिम चरण तक पहुँच चुकी है। एक जाति के अन्तर्गत भी उपजातियों के भेद से लोग परस्पर ऊँच-नीच का भेद करते हैं। अछूत कहे जाने वाले लोग भी अपनी उपजातियों में ऊँच-नीच का अन्तर मानते हैं। इस मान्यता ने सारे समाज को विसंगठित कर दिया। नारंगी बाहर से एक दीखती है भीतर से उसमें फाँकों में से फाँकें निकलती चली जाती हैं, इसी प्रकार एक भारतीय समाज कहने भर को एक है, वस्तुतः यह जाति-भेद ऊँच-नीच अन्तर के कारण हजारों-लाखों टुकड़ों में बँटा हुआ विशृंखलित समाज है। ऐसे लोग कभी संगठित नहीं हो सकते। जहाँ संगठन न होगा वहाँ न समर्थता दिखाई देगी, न प्रगति की व्यवस्था बनेगी।

इस सामाजिक अन्याय का फल है कि नीच समझे जाने वाले लोग तेजी से हिन्दू धर्म छोड़ते चले जा रहे हैं और खुशी-खुशी विधर्मी बन रहे हैं। यही स्थिति रही तो छोटी कही जाने वाली तिरस्कृत जाति के लोग विधर्मी बन जायेंगे और अगले दिनों अपने देश में ही सवर्ण हिन्दू अल्प मत में होकर रहेंगे अथवा पाकिस्तान, नागालैण्ड जैसे टुकड़े कटते चले जायेंगे। समय रहते हमें जन्म-जाति के आधार पर प्रतिपादित की जाने वाली ऊँच-नीच की मान्यता के दुष्परिणामों को समझना चाहिये और उसके उन्मूलन का प्रबल प्रयत्न करना चाहिये।

स्त्रियों की पराधीनता अपने समाज का दूसरा अभिशाप है। नारी के रूप में आधी जनसंख्या आज पर्दा-प्रथा जैसी कुरीतियों ने अपंग बनाकर रख दी है। संसार में सर्वत्र नारी नर के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम कर रही है और अपने समाज को ऊँचा उठाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही है। एक हम हैं जो नारी को कैदी बनाकर उसे छोटे घरौंदों में कैद किये हुये हैं और मानवोचित सामान्य जीवन जीने में अगणित प्रतिबन्ध प्रस्तुत कर रहे हैं। शिक्षा, स्वावलम्बन, स्वास्थ्य, अनुभव सभी दृष्टि से भारतीय नारी पिछड़ी हुई है। इस दुर्दशा का कारण पुरुषों द्वारा नारी के प्रति अपनाया गया अनुदार एवं अनीतिमूलक दृष्टिकोण ही है। इस मान्यता ने राष्ट्र की आधी शक्ति नष्ट कर दी। आज की नारी जो नर के ऊपर भार बनी हुई है, असहाय स्थिति आने पर विवशता के आँसू भर बहाकर रह जाती है यदि पुरुष की तरह सक्षम रही होती तो उसने अपनी, अपने परिवार की और समाज की प्रगति में आशाजनक योगदान दिया होता और आज हम इस गिरी स्थिति में पड़े रहने की अपेक्षा न जाने कहाँ से कहाँ पहुँचे होते। नारी को दूसरे दर्जे का नागरिक, पद-दलित, असहायप्राणी नहीं रहने दिया जा सकता। उसे मानवीय अधिकार दिलाने के लिये हमें प्रतिगामी रूढ़िवादिता से डटकर मोर्चा लेना पड़ेगा।

काम करने वाले को छोटा मानना और हरामी को बड़ा मानना, श्रम से घृणा करना अपने समाज का एक ऐसा दोष है, जिसके कारण उत्पादन घटता जाता है और आलस्य बढ़ रहा है। देहाती लड़के पढ़-लिखकर शहरों में क्लर्की करने भागते हैं, कष्ट के साथ किसानी का कड़ा काम नहीं करना चाहते। धोबी, भंगी, चमार आदि श्रमजीवियों को जब सामजिक जीवन में नीचा माना जाता है तो उनके लड़के उन कामों को क्यों करेंगे और दूसरे सम्मान के धन्धे क्यों न अपनायेंगे ? ढलती उम्र के लोग, यदि लड़के कमाने लगें तो काम धन्धा करना इसलिये छोड़ देते हैं कि उन्हें-आराम के दिन काटने वाले को मिलने वाला सम्मान मिलने लगे। सन्त, महन्त, सेठ, साहूकार, राजा, रईस अपना बड़प्पन प्रदर्शित करने के लिये ही काम से हाथ नहीं लगाते। बड़े घरों की महिलाएँ हाथ से खाना बनाने, बर्तन साफ करने, झाड़ू लगाने, कपड़े धोने जैसे कामों के लिये भी नौकरों पर आश्रित रहती हैं। इसी में उन्हें अपना गौरव लगता है। हरामखोरों में बड़प्पन देखने की यह आदत हमारी समर्थता के लिये अभिशाप ही सिद्ध हो रही है। संसार के प्रगतिशील देशों और समाजों ने कठोर श्रम द्वारा ही उन्नति की है। अपने देश में ही हमें हरामखोरी का ढर्रा बदलकर कठोर श्रम का सम्मान स्थापित करना पड़ेगा। आलस्य को जन-जीवन में से जब तक बहिष्कृत न किया जायेगा, सम्पन्नता, शिक्षा, स्वस्थता, समर्थता जैसी विभूतियों का लाभ हम उठा न सकेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वच्छता, समय की पाबन्दी, व्यवस्था, सतर्कता व्यक्तिगत गुण हैं। इन्हें सामाजिक मान्यता मिलनी चाहिये। हर सामाजिक प्रक्रिया में इन प्रवृत्तियों को प्रमुखता मिलनी चाहिये, ताकि व्यक्तियों को अपनी रीति-नीति तदनुरूप ढालने के लिये विवश होना पड़े। दफ्तरों से लेकर विश्राम गृहों तक हर जगह समय पर काम हो, समय चूकने वाले अपने प्रमाद का समुचित दण्ड पायें ताकि वे हर-बार वैसी भूल न करें। गन्दगी और अव्यवस्था चाहे वह घरों में हो या सार्वजनिक स्थानों पर, व्यक्ति की दृष्टि में खटके और हर देखने वाले उसे हटाने का प्रयत्न करें। भीड़ लगाने के स्थान पर हर काम में लाइन लगाकर काम करने का अपना स्वभाव बन जाये। जिसने जिस समय, जिस काम को करने का वायदा किया है वह सामर्थ्य भर उस वचन की पाबन्दी का ध्यान रखे, ताकि किसी का समय बर्बाद न होने पावे। समय की बर्बादी को धन बर्बाद करने जैसा ही अनुचित माना जाय। प्रगतिशील वर्गों जैसे यह सद्गुण अपनी सामाजिकता के भी अंग बनने चाहिये।

एक दूसरे के प्रति शिष्ट, मधुर और सम्मानजनक व्यवहार करें। नम्रता और सज्जनता से भरा उत्तर दें। सहानुभूति, सद्भावना, शालीनता और उदारता का वैसा पुट हर किसी के व्यवहार में इतना जुड़ा रहे जिसे सभ्य एवं सज्जनोचित कहा जा सके। अधिक पारिश्रमिक या लाभ भले ही लिया जाय पर तौल-नाप में कमी करने, मिलावट, असली कहकर नकली देने जैसी मनुष्यता को कलंकित करने वाली धूर्ततायें न बरती जायँ। हर वस्तु के मूल्य निर्धारित रहें जिसमें घटा-बढ़ी की, मोल-भाव करने की गुंजायश न रहे। ऐसे चोरों-चाण्डालों को घृणित समझा जाय और ऐसे आचरण वाले अस्पर्श जैसे तिरस्कृत किये जाने लगें। व्यक्ति अपनी प्रतिभा और योग्यता के आधार पर कमाये, आगे बढ़े तभी उसे सामाजिक सम्मान मिले। अवांछनीय तरीके अपनाकर लाभ उठाने वाले न केवल कानून से दण्डित किये जायें, वरन् समाज में भी उन्हें हर जगह घृणा, तिरस्कार और असहयोग का ही सामना करना पड़े। ऐसी सामाजिक रीति-नीति, प्रथा-परम्परा हमें विकसित करनी चाहिये।

धन का मान घटाया जाय और मनुष्य का मूल्यांकन उसके उच्च चरित्र एवम् लोक-मंगल के लिये प्रस्तुत किये त्याग, बलिदान के आधार पर किया जाय। किसी को सम्मान इसी आधार पर मिले। कोई व्यक्ति कितना ही धनी क्यों न हो इस कारण सम्मान प्राप्त न कर सके कि वह दौलत का अधिपति है। उचित तो यह है कि ऐसे लोगों का मूल्य और सम्मान—लोकसेवियों की तुलना में बहुत घटाकर रखा जाय। धन के कारण सम्मान मिलने से लोग अधिक अमीर बनने और किसी भी उपाय से पैसा कमाने को प्रेरित होते हैं। यदि धन का सम्मान गिर जाय, संग्रह को कंजूसी और स्वार्थपरता का प्रतीक मानकर तिरस्कृत किया जाय तो फिर लोग धन के पीछे पागल फिरने की अपेक्षा सामाजिक सम्मान प्राप्त करने के लिये सत्कर्मों की ओर प्रवृत्त होने लगेंगे।

सादगी को सराहा जाय और उद्धत वेषभूषा एवम् भड़कीली शृंगार-सज्जा एवम् चित्र-विचित्र बनावट को ओछेपन का प्रतीक माना जाय और जो बचकानी शृंगारिकता, भौंड़ी फैशनपरस्ती, अर्द्ध नग्न हिप्पी साज-सज्जा पनपी है, उसे तिरस्कृत किया जाना चाहिये। इससे खर्चीली एवम् भौंड़ी कुरुचि को प्रश्रय न मिलेगा। शालीनता और सादगी ही सराही जाय तो निस्सन्देह शालीनता का गिरता हुआ स्तर फिर उठने लगेगा।

केवल सत्प्रवृत्तियाँ सराही जायँ, उन्हीं की चर्चा की जाय और उन्हें ही सम्मानित किया जाय। घृणित कर्म करने वाले, उद्धत और दुष्ट किसी की सहानुभूति प्राप्त न कर सकें। उनकी कोई सहायता न करे। बुराइयों का समर्थन और सहयोग परोक्ष रूप से करना भी एक सामाजिक अपराध माना जाय और ऐसे लोग भी अनैतिक अपराधियों की श्रेणी में गिने जाने लगें। समाज में सज्जनता की मान्यता इतनी प्रखर हो तो दुष्टता की आतंकवादी रीति-नीति अपनाने का कोई साहस ही न कर सके। धन का अनावश्यक एकत्रीकरण अनेक दुष्प्रवृत्तियों का जनक है। व्यसन, व्यभिचार, उद्धत आचरण, फिजूल-खर्ची, हरामखोरी जैसी प्रवृत्तियाँ वहाँ पनपेंगी और उनका बुरा प्रभाव हजारों पर पड़ेगा। दूसरे लोग वैसी अय्याशी के लिये लालायित होंगे और अनुचित तरीकों से धन कमाना चाहेंगे ईर्ष्या, द्वेष और अपराधी प्रवृत्ति को अमीरी ही जन्म देती है। इसलिये जो अधिक कमा सकते हैं, उन्हें संग्रही नहीं बनना चाहिये, वरन् उस उपार्जन को लोक-मंगल के लिये वापस करके अपनी गरिमा सिद्ध करनी चाहिये। सामाजिक कानून और दबाव इस आधार पर विकसित रहे कि धन का संग्रह और दुरुपयोग कर सकना किसी के लिये सम्भव न रहे। आर्थिक विषमता समाज की जड़ें खोखली करती है, इसलिये अमीर और गरीब का अन्तर मिटाने वाली सामाजिक परिस्थितियाँ ही हमें उत्पन्न करनी चाहिये। इसके लिये दान और परमार्थ की ओर हर सामर्थ्यवान को अधिकाधिक सम्मान रखने के लिये विवश किया जाये।

सहकारिता के आधार पर परस्पर सहयोग से चलने वाले उद्योग-धन्धे, व्यवसाय एवं सार्वजनिक कार्यों को अधिकाधिक प्रोत्साहन मिलना चाहिये। संगठन, सामूहिकता, एकता, कौटुम्बिकता और मिल-जुलकर रहने की अभिरुचि जितनी अधिक विकसित होगी, समाज की समर्थता, सभ्यता उसी क्रम से बढ़ती जायेगी। आज इन स्वस्थ परम्पराओं का भारी अभाव है, हमें समाज का नया निर्माण करने के लिये प्रचलित अवांछनीय प्रथाओं के विरुद्ध विरोध, संघर्ष का झंडा खड़ा करना पड़ेगा और स्वस्थ परम्पराओं को प्रतिष्ठापित करने का भागीरथ प्रयत्न करना पड़ेगा, तभी हम अपने समाज को देवोपम और सुख-शान्ति का केन्द्रबिन्दु बना सकने में समर्थ हो सकेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नवीन सामाजिक रचना कैसे हो ?

हमारे देश में स्वराज्य की स्थापना हुये बहुत वर्ष हो चुके, पर अभी तक यहाँ का राजनीतिक, सामाजिक ढाँचा नहीं बदल सका है। कुछ नाममात्र के सुधार, परिवर्तन अवश्य हुये हैं, पर अभी तक उस आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक क्रान्ति के लक्षण कहीं दिखलाई नहीं पड़ते जिसकी लोग पहले कल्पना किया करते थे। वही नौकरशाही, वही आतंक से काम लेने वाली पुलिस, वही लोगों को निकम्मा बनाने वाली शिक्षा और बी. ए., एम. ए. की निकम्मी डिगरियाँ, वे ही कारखानों में पिसने वाले मजदूर और वे ही अपनी थैलियों को प्रतिदिन बढ़ाते जाने वाले मालिक—सभी कुछ बदस्तूर कायम है। हम इससे इन्कार नहीं करते कि प्रत्येक क्षेत्र में सरकार ने सुधार की कोशिश की है और दो-दो, चार-चार तरह के सुधार कर दिखाये हैं, पर इन सबको क्रान्ति या कायापलट के नाम से नहीं पुकारा जा सकता, जिसकी कि आवश्यकता समाज हितैषी एक मुद्दत से अनुभव कर रहे थे। हम सोचा करते थे कि स्वराज्य प्राप्त होने पर गरीबों का शोषण पूर्णतः बन्द हो जायेगा, छोटे-बड़े का अन्तर लुप्त होने लगेगा, एक घर में बच्चे रोटी के लिये तरसें और दूसरे में कुत्तों को दूध, मलाई खिलाई जा रही हो, ऐसा दृश्य न दिखलाई पड़ेगा और सब लोग वास्तविक अर्थों में न्याययुक्त अधिकार पाकर भाइयों की तरह सौहार्द्रपूर्वक रहने लगेंगे। पर खेद है कि बहुत कुछ नई बातें देखने-सुनने पर, अरबों की लागत के पहाड़ सदृश्य बाँधों को तैयार होते देखकर, देश में मोटर, रेल्वे इंजिन, हवाई जहाज जैसी बड़ी चीजों के विशाल कारखाने खड़े होते देख लेने पर भी वह चीज नहीं दिखालाई पड़ रही है, जिससे मनुष्यों में घुसी हुई स्वार्थ और अन्याय की भावनायें दूर हो सकतीं और वे नैतिक और आध्यात्मिक मार्ग में अग्रसर होकर एक दूसरे के कल्याण के लिये प्रयत्नशील दिखलाई पड़ते।

इस परिस्थिति को देखकर देश के कितने ही विचारकों को बड़ी निराशा हो रही है और वे कहते हैं कि १५ अगस्त, १९४७ के दिन को हम 'स्वतन्त्रता दिवस' समझें या 'परतन्त्रता दिवस ?' क्योंकि इसके पहले तो हम अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिये प्रयत्न भी करते थे और सफलता के लिये त्याग तथा बलिदान करने को भी प्रस्तुत रहते थे। पर अब तो लोगों ने प्रत्येक बात की जिम्मेदारी सरकार पर ही छोड़ दी है और स्वयं स्वार्थ-साधन में फँसे हैं। यदि यही दशा बनी रही तो थोड़े समय बाद हम देखेंगे कि देश अग्रसर होने के बजाय पिछड़ता जा रहा है और अपने मानवोचित गुणों से वंचित होकर पूँजीवादी देशों का अनुकरण करते हुये शोषण के नये-नये मार्ग निकाल रहा है। इस सम्बन्ध में विचार करते हुये श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा है—

"गाँधीजी के विचार मानने वालों के दो पक्ष हो गये हैं। एक पक्ष राज्य-संचालन में लगा और दूसरे पक्ष के लोग अपनी-अपनी रचनात्मक प्रवृत्तियों में लगे रहे। केवल ऊपर से समाज बदलने की कोशिश की जाये तो शक्ति व्यर्थ जाती है और उसमें से नौकरशाही का निर्माण होता है। हमारे देश में कुछ उद्योगों का राष्ट्रीयकरण हुआ ही है। रेलें, सिन्द्री का खाद का कारखाना, चित्तरंजन ऐंजिन उद्योग आदि ये सब मुनाफे के लिये नहीं हैं, बल्कि जनता की सरकार के हाथों में है। परन्तु इनकी आन्तरिक व्यवस्था में कोई अन्तर नहीं है। पूँजीपतियों के पास संचालकों का बोर्ड होता है, वैसा ही इन कारखानों में सरकारी अफसरों का बोर्ड होता है, जो कारखाने की व्यवस्था करता है। ऊँचे अफसर हैं, ऊँची तनख्वाह है, मजदूर हैं, साधारण वेतन पाते हैं। पर यह हमारा भविष्य का नक्शा नहीं था। नक्शा यह था कि हमारे उद्योग मजदूर चलायेंगे, जनता चलायेगी। नीचे के मजदूर को कम तनख्वाह मिले और अफसर को उससे १०० गुना अधिक मिलेगा, यह नहीं सोचा था। वैधानिक भाषा में इसको राज्य-पूँजीवाद या 'स्टेट सोशलिज्म' कह सकते हैं। अब यह सोचना कि यह दोष उन लोगों का है, जो इस समय सत्ताधीश बने हैं तो यह ठीक नहीं। अगर शासनसत्ता समाजवादी पार्टी के हाथ आ जाय तो भी ऐसी ही विषमता मिलेगी। रूस परिसंघ में भी मजदूर और अन्य कई कार्यों के संचालकों के वेतन में ८० गुना अन्तर है।"

इस अवस्था का सुधार तभी सम्भव है, जबकि शासन सत्ता वास्तविक परिश्रम करने वालों के हाथ में आवे और प्रत्येक व्यक्ति को चाहे यह देश का राष्ट्रपति या प्रधानमन्त्री ही क्यों न हो परिश्रम करना अनिवार्य हो। ऐसा होने से वर्तमान वातावरण का अन्त होकर ऐसा नवीन वातावरण तैयार होगा, जिसमें मनुष्य अपनी मेहनत का पूरा फल प्राप्त कर सकेगा और उसे अन्न-वस्त्र की चिन्ता न रहेगी। इस सम्बन्ध में संत विनोबा ने लिखा है—

"अन्तिम आदर्श तो यह होना चाहिये कि देश का प्राइममिनिस्टर तीन या चार घंटे खेती का काम करे और बाकी बचे समय में दूसरा काम करे, जिस का जिम्मा उसने लिया है। इससे देश की पवित्रता बढ़ेगी, आरोग्यता बढ़ेगी। उच्च-नीचता का भाव मिट जायेगा, जमीन को अनेक सेवक मिलेंगे, सब की बुद्धिमत्ता का लाभ मिलेगा। सबको समान धर्म और संस्कृति का लाभ मिलेगा। यह तो अन्याय होगा कि कुछ लोगों से तो कहा जाता कि तुम खेती करो और कुछ लोगों से कहा जाये कि तुम अन्य काम करो। हमने अभ्यास के वास्ते आठ घंटे बुनाई, कताई आदि का काम किया था। पर यदि आज कोई मुझे आठ घंटा बुनने को मजबूर करे तो मैं अवश्य इन्कार करूँगा। मैं कहूँगा मैं इसके लिये तैयार नहीं हूँ कि एक कमरे में बन्द होकर, जहाँ हवा नहीं है, हाथ को कुछ खास व्यायाम न मिले और कमर भी टूट जाये, इसके लिये मैं तैयार नहीं हूँ। चार घण्टा मुझे आकाश सेवन का मौका मिलना चाहिये, उत्तम हवा मिलनी चाहिये, सूरज की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रोशनी मिलनी चाहिये, जमीन की सेवा करने का मौका मिलना चाहिये। यह मेरा हक है। मुझसे तो अगर कोई कहे कि तू प्रोफेसर बनकर छह घंटा काम कर, तुझे पाँच हजार रुपया तनख्वाह मिलेगी, परन्तु खेती पर काम करने का मौका नहीं मिलेगा, तो मैं स्वीकार नहीं करूँगा। मैं कहूँगा कि मुझे चार घंटा खेतों में काम करना है और बाकी बचे हुये समय में मैं शिक्षक का काम करूँगा। उसके लिये मुझे पैसा नहीं चाहिये। खेती में काम करके जो मिलेगा उतना ही मैं लूँगा।"

इन नेताओं ने देश को एक नई दिशा में कदम बढ़ाने का संकेत किया है। वास्तव में जब तक श्रम की महिमा बढ़ाई न जायेगी और सिक्के का चलन कम न किया जायेगा तब तक पूँजीवाद का घट सकना कठिन है। यद्यपि पहले जमाने में भारत में समाजवाद जैसा कोई आन्दोलन न था। पर न तो शोषण के लिये बहुत बड़े कारखाने खोले जाते थे और न सिक्के की ही भरमार थी इसलिये गरीबों का काम भी सुविधापूर्वक चल जाता था और अमीरों की संख्या भी नाममात्र को ही रहती थी। ज्यादातर व्यक्ति एक ही दर्जे के होते थे। अब भी यदि अधिकांश व्यक्ति खेती करके अपने खाने का अन्न पैदा कर लें और कपड़ा भी अपने गाँव या मौहल्ले में बनवा लें तो आर्थिक विषमता की समस्या बहुत कुछ हल हो सकती है और उसके हल हो जाने पर राजनीतिक और सामाजिक दशा में भी समुचित परिवर्तन हो सकता है।

गाँधीजी के सपनों के रामराज्य का आदर्श

महात्मा गाँधी ने जीवन भर स्वराज्य की साधना की। वे कैसा स्वराज्य चाहते थे इसका उत्तर एक शब्द में 'रामराज्य' है। रामराज्य ही उनका स्वराज्य था। केवल विदेशी शासकों को हटाकर देशी नौकरशाहों के हाथ में सत्ता चली जाय, तो इतने मात्र से देश का भला नहीं हो सकता। जनता को ऐसे ही राज्य की आवश्यकता है जो सुराज्य हो।

वाल्मीकि रामायण में रामराज्य काल की स्थिति का सविस्तार वर्णन मिलता है। उसका कुछ अंश नीचे देखिये—

"कौशल नाम का समृद्ध और प्रसन्न धन-धान्य से परिपूर्ण जनपद सरयू नदी के तट पर स्थित था। अयोध्या उसकी राजधानी थी। लता-पुष्पों से वही बड़ी शोभायमान कुशल कारीगरों द्वारा बनाई गई थी। शत्रुओं से रक्षा के लिये सैंकड़ों तोपें उसके परकोटे पर लगी हुई थीं। जंगली सिंहों से तलवार लेकर युद्ध करने वाले शूरवीर उसकी रक्षा में नियुक्त थे। नगरी के चारों ओर उद्यान और आम्रवन थे। अनेक प्रकार के वस्त्रों, अन्नों और रसों के भण्डार परिपूर्ण थे। मनोरंजन के लिये संगीत और अभिनय के कला-कौशल विद्यमान थे। सुन्दर वस्त्राभूषण से सुसज्जित स्त्रियाँ शोभा को बढ़ाती थीं।"

"रामराज्य के निवासी अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट थे। वे धर्मात्मा, बहुश्रुत, निर्लोभ और सत्यवादी थे। कोई कंगाल न था। कोई गृहस्थ ऐसा न था जो धन-धान्य, गौ और अश्व से रहित हो। कामी, कंजूस, क्रूर, चुगल और नास्तिक कोई भी दिखाई न पड़ता था। सब स्त्री-पुरुष पूर्ण सदाचारी थे। कानों में कुण्डल, सिर पर मुकट, गले में माला, शरीर पर चन्दनादि सुगन्धियों के लेप से रहित व्यक्तियों के दर्शन दुर्लभ थे। सब लोग अच्छा खाते थे और दान देकर खाते थे। उनमें कोई ओछी वृत्ति का, चोर, कर्त्तव्यहीन और वर्णशंकर न था। सभी लोग आस्तिक, सुशिक्षित, प्रसन्न, स्वरूप, रूपवान और देशभक्त थे।"

राजा राम की विशेषताओं का वर्णन करते हुये नारदजी कहते हैं—"राजा राम विद्वान हैं, संयमी हैं, बुद्धिवान हैं, वक्ता हैं। चौड़े कन्धों वाले, विशाल बाहु, सुदृढ़ शरीर तथा सुडौल अंगों वाले हैं। वे धर्म को जानते हैं, वचन को पूरा करते हैं, रात-दिन प्रजा के हित में लगे रहते हैं। वह साधु स्वभाव, मधुरभाषी, प्रियदर्शन, आर्य और प्रजा की भी धर्म रक्षा में प्रवृत्त रहने वाले हैं। समुद्र के समान गम्भीर, हिमालय के समान धैर्यवान, पृथ्वी के समान क्षमाशील और कालाग्नि के समान प्रतापी हैं।"

एक बार किसी पिता का पुत्र छोटी आयु में मर गया तो वह पिता, राम के द्वार पर आकर रोया कि—"हे राजन्! यह बड़ा अनर्थ है कि पिता के सामने पुत्र मर जाय। अवश्य ही तुम्हारे राज्य में पाप होता है तभी तो ऐसा हुआ।" यह सुनकर राम ने गम्भीरतापूर्वक उसके वचन में सच्चाई अनुभव की और धनुष बाण लेकर पुष्पक विमान में बैठकर राज्य भर में यह देखने निकल पड़े कि मेरे राज्य में कहाँ ऐसा पाप होता है।

"शासन अकेला राजा नहीं करता था वरन् आठ चुने हुये मन्त्री होते थे। जिनमें दो पुरोहित महर्षि वशिष्ठ और वामदेव भी थे। उनके गुण, कर्म तथा स्वभाव सब प्रकार उज्ज्वल और संदेह रहित होते थे।"

रामराज्य का यही चित्र है। ऐसे ही शासन की स्थापना करने के लिये महात्मा गाँधी स्वराज्य का राम-राज्य चाहते थे। आज स्वराज्य तो प्राप्त हो गया पर राम-राज्य के दर्शन कहीं नहीं हो रहे हैं। राष्ट्र के कर्णधारों का, शासकों का, नेताओं का, लोकसेवियों का, विचारकों का तथा सर्वसाधारण का कर्त्तव्य है कि वे रामराज्य को विशेषताओं वाला शासन स्थापित करने के लिये हर संभव उपाय करें तभी गाँधीजी की आत्मा को शान्ति मिलेगी और तभी स्वराज्य की सार्थकता सिद्ध होगी। सुखी प्रजा ही रामराज्य का प्रमाण हो सकता है।

मानव में देवत्व से धरती पर स्वर्ग

व्यक्तियों का समूह समाज है और समाज की इकाई व्यक्ति। समूह का उपयोगी और शक्तिशाली होना तभी सम्भव है, जब इकाई में शालीनता और शक्ति हो। यदि ईंटें कच्ची

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और बेडौल हों, तो मकान का खूबसूरत और मजबूत बनना सम्भव नहीं। यही दशा समाज की है, व्यक्तित्ववान लोगों के बिना यह भेड़ों का झुण्ड भर है, जिसे शेर जैसा कोई अकेला विरोधी तहस-नहस कर देता है।

वर्तमान शताब्दी में इस तथ्य को न समझने के कारण संघ की इतनी अधिक रट लगाई गई कि व्यक्ति की मौलिकता ही नष्ट होकर रह गयी। अधिनायकवादी देशों ने अपनी समूह शक्ति तो खूब विकसित की, पर व्यक्ति की अन्तरात्मा को विवशता की कातरता से बाँध कर पीस डाला, समाज हित का नारा लगाकर नैतिक मूल्यों को झुठला दिया। फलतः व्यक्ति की दुष्टता और भ्रष्टता ने समूह की पीठ पर चढ़कर विनाश के अनेकों सरंजाम जुटाये।

कत्लेआमों, जातीय विनाशों, सामूहिक अत्याचारों का इतिहास और भी रोमांचकारी है। व्यक्ति की दुष्टता तो समझ में आने की चीज है, पर समूह ने इस तरह की नृशंसता क्यों बरती ? यह आश्चर्य का विषय है। मनुष्यों एवं पशुओं का ही नहीं, निरीह वृक्ष-वनस्पतियों का भी सामूहिक संहार, सुविधा-संवर्धन, सांस्कृतिक विस्तार जैसे आकर्षक नामों की आड़ लेकर किया जाता रहा है। निश्चित ही सामूहिक विकास यदि व्यक्ति की गरिमा का अपहरण करके किया जाता है, तो उसमें पैदा हुई शक्ति का परिणाम सामूहिक विनाश के रूप में ही सामने आता है।

समूह शक्ति को विकसित करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिये कि उसे अव्यवस्थित उन्माद की तरह तो नहीं संघबद्ध किया जा रहा है। ईसा को फाँसी एक संघबद्ध सरकार ने ही दी थी। सरकारी लोगों ने ही भीड़ को ईसा के विरुद्ध भड़काया था एवं दर्शक उस संत की जान लेने को उतारू हो गये। मंसूर एवं सुकरात के विनाश के पीछे भी लगभग यही दास्तान है।

ऐसी बातें दूसरी जगहों में भी हुई हैं। यहूदी न तो नाजी दुःख स्वप्नों को भूले हैं और न जापानी अणु संहार की व्यथा के आँसुओं को सुखा पाये हैं। सामूहिक शक्ति की जो प्रशंसा है, वह तभी स्थिर रह सकती है, जब उसके पीछे नैतिक आदर्शों का समावेश बना रहे। ऐसा न होने पर अनीति के लिये खड़े किये संगठन तो बिखराव से भी महँगे पड़ेंगे। राजमहलों में दास-दासियों के लिये बनाये गये यन्त्रणागृह अभी भी याद दिलाते हैं कि शक्ति का केन्द्रीकरण, यदि न्याय के नियन्त्रण से बाहर चला गया, तो वह मनुष्य जाति के लिये और भी अधिक बढ़-चढ़ा अभिशाप सिद्ध होगा।

बड़ी बात व्यक्ति है—समाज नहीं। व्यक्तियों के समन्वय का नाम ही समाज है। समाज में से व्यक्ति नहीं टपकते। सिद्धान्त कितने ही बड़े-चढ़े क्यों न हों ? उन्हें कार्यान्वित करने के लिये चरित्रवान व्यक्ति चाहिये, अन्यथा समाज हित के नाम पर ऐसे काम होते रहेंगे, जो देखने में तो लोक-कल्याण के लिये किये गये प्रतीत होंगे, पर उनके पीछे दुरभिसन्धियाँ छिपी होंगी। फलस्वरूप उनसे अहित एवं विनाश के परिणाम ही सामने आयेंगे। सिद्धान्त अपने आप कार्यान्वित होने से तो रहे। उन्हें व्यवहार में उतारना ईमानदार व्यक्तियों के लिये ही सम्भव होता है। बेईमान तो सिद्धान्तों की आड़ लेकर वैसे अनर्थ करते हैं, जैसे खुली दुष्टता करने वाले अपराधी भी नहीं करते।

सिद्धान्तों के लेबिल लगाकर दुनिया में अनर्थ कम नहीं हुये हैं। जन-क्रान्तियों की आड़ में जनता से विश्वासघात कितने किये गये हैं, इसका विवरण तैयार किया जाय, तो समझना कठिन हो जायेगा कि क्रान्ति के नाम पर जो किया गया, वह प्रति-क्रान्ति तो नहीं था।

समाजवाद के नाम पर हंगरी पर, प्रजातन्त्र को बचाने के लिये जापान पर जो कहर बरपा, उससे इन सब पर से निष्ठा डगमगाने लगती है। स्वतन्त्रता के नाम पर भी गुलामी में बँध जाने वाले देशों की सूची काफी लम्बी है। सिद्धान्तों का सही पालन न होने के कारण नागरिक स्वतन्त्रता का हनन एवं स्वार्थपरता ही बढ़ी है। इन सबके मूल में उन व्यक्तित्वों का अभाव ही है, जिनकी कथनी-करनी एक है।

मानव जाति में न तो शौर्य-साहस की कमी है, न त्याग-बलिदान की। इन विशेषताओं के होते हुये उसे पतन और संकट के दलदल में फँसा रहना पड़ता है। इसका एकमात्र कारण है लक्ष्य एवं आदर्श का गलत निर्धारण। प्रत्यक्ष में तो जाति एवं संस्कृति की रक्षा के नाम पर रोज श्रोणित-तर्पण चलता रहता है। इसमें भागीदार भी अपने को शौर्यवान एवं साहसी समझते हैं। डाकू का जंगल में रहने वाला गिरोह भी एकाकी जीवन जीने, बीहड़ों-जंगलों में रहने के कारण तपस्वियों जैसा समझ बैठता है, पर इसे छल-छद्म एवं भ्रान्ति ही कहा जायेगा।

कारण स्पष्ट है—लक्ष्य, आदर्शविहीन रहने पर गुण एवं कर्म दोनों का स्तर कुछ भी क्यों न हो, उससे व्यक्ति एवं समाज की हानि होती है। दिशा, मार्गदर्शन तो आदर्शों से मिलता है। सर्वहित में आत्महित का ऊँचा लक्ष्य लेकर किया गया श्रम ही उत्कृष्टता के प्रशंसा योग्य स्तर तक पहुँचाने वाला सिद्ध होगा अन्यथा स्वार्थ सिद्धि में लगा रहने वाला व्यक्ति स्वयं भी डूबता है और अन्य अनेकों को इस कुटेव में फँसने का कुचक्र ही रचता है। दिशा उल्टी हो, तो लगातार चलते रहने पर भी मंजिल की दूरी क्रमशः बढ़ती ही जाती है, यह सर्वविदित है, अतः आत्महित में समाज हित देखने वाले को अपनी मान्यता बदलनी चाहिये।

आज की मानवी प्रकृति विलासिता के साधनों की आतुरता, अपव्यय के लिये प्रचुर धन की आवश्यकता, दर्प प्रदर्शन के लिये तरह-तरह के आडम्बर जैसे प्रयोजनों में अपने को बाँधती जा रही है। आदमी संकीर्ण स्वार्थ के छोटे दायरे में सिमटता जा रहा है। 'सर्वजन हिताय-सर्वजन सुखाय' की भावना का पलायन होने से आनन्द का भी पलायन होता जा रहा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति के इस तरह अस्त-व्यस्त जीवन के कारण उसके समूह रूप समाज की दशा भी शोचनीय है। यही कारण है कि सामाजिक परिवेश में पारस्परिक खींचतान, टकराहट, स्वार्थ-लिप्सा ही दिखाई देती है, भले ही यह सब जीवन में सुख पाने के लिये किया जा रहा है, पर सुख तो दूर होता चला जा रहा है।

रस्किन ने एक स्थान पर कहा है—"झूठ धोखे पर खड़ा है। वह शब्दों तक सीमित नहीं रहता। चुप रहकर, किसी बात पर विशेष जोर देकर, आँख मटकाकर भी झूठ बोला जा सकता है। इसकी ये सभी किस्में गलतबयानी से भी कहीं अधिक निकृष्ट एवं गिरी हुई हैं।" अल्डुअस हक्सले ने लिखा है—"कोई भी सुधारवादी आन्दोलन समाज में तब तक परिवर्तन नहीं ला सकता, जब तक कि उसमें चरित्रवान व दृढ़निष्ठ व्यक्ति न हों तथा उसका संचालन उचित वातावरण व उचित तरीकों से न किया जाय।"

व्यक्ति आदर्शवादी तथा चरित्रवान हों, तो सामान्य नीति-मर्यादा की छोटी-मोटी बातें जानने वाला शास्त्रों के पण्डित से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। ऋषियों ने ज्ञान व कर्म के युग्म को इसी कारण सराहा था। इसका भाव यही है कि पण्डित-विद्वान होने के साथ तदनुरूप आचरण में भी कुशल हो। समर्थ रामदास ने इसी को संतोचित भाषा में—'जैसा बोले-तैसा चाले" कहकर बताया है।

आज आवश्यकता ऐसे ही व्यक्तियों के गढ़ने की है। श्री अरविन्द ने सामाजिक परिवेश को टकसाल कहा है। यदि इसमें नीति-मर्यादाओं, आचरण की उत्कृष्टता को महत्त्वपूर्ण स्थान देकर इसके लिये प्रोत्साहन दिया जा सके, तो काम बन सकता है। यह जिम्मेदारी किसी एक की ही नहीं वरन् सभी की है। हर किसी को अपने-अपने स्तर पर प्रयास करना होगा। प्रयास का मतलब है—स्वयं अपने को सद्गुण सम्पन्न बनाना तथा दूसरों को ऐसा ही बनने में सहायक होना। श्री अरविन्द के अनुसार, यह कार्य साधारण ही है। इसमें जुट पड़ने का मतलब है, परमेश्वर का संकल्प पूरा करने में सहायक होना। अगले दिनों धरती का स्वर्गीकरण निश्चित है। इस भागवत बेला में अल्प प्रयास कर देवमानव बना जा सकता है। वे कहते हैं कि जो भी इस प्रयास में चूक गया, उसकी वही दशा होगी, जो बन्दर की मनुष्य के सामने है। अतएव किसी भी कीमत में इसमें चूकना नहीं चाहिये।

इस तरह के प्रयास में लगे व्यक्ति जहाँ होंगे, समाज के उसी क्षेत्र में सुख-शान्ति एवं प्रसन्नता ही रहेगी। आवश्यकता स्वयं के जीवन को उत्कृष्ट एवं प्रखर बनाने की है। इसके लिये प्रयत्न-पुरुषार्थ में कोई कोर-कसर न रख छोड़नी चाहिये।

सामाजिक प्रणालियों का पुनर्निर्धारण आवश्यक

नवयुग के आगमन एवं स्वर्गीय परिस्थितियों के नवनिर्माण के लिये मनुष्य के अन्तरंग को विकसित करने के साथ-साथ बाह्य तन्त्रों का भी सुनियोजन-पुनर्निधारण करना होगा, जिनके ऊपर समाज की सुव्यवस्था और उसके सुसंचालन की जिम्मेदारी है। समाज की अनिवार्य संरचना में शासन तन्त्र की सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ प्रणाली कौन-सी हो सकती है, इस सम्बन्ध में विश्व के मूर्धन्य समाजशास्त्रियों, विचारकों की विचारधारा में मतभेद है। यह दायित्व समाज का नेतृत्व करने वाले विश्व मनीषियों के ऊपर आता है कि वे विश्व की वर्तमान परिस्थितियों में उपरोक्त विषय पर अध्ययन, पर्यवेक्षण करें।

प्रचलित सामाजिक पुनर्निर्माण के सिद्धान्त सात हैं—(१) उपयोगितावाद, (२) साम्यवाद, (३) व्यक्तिवाद, (४) अराजकतावाद, (५) सामाजिक अनुबन्धवाद, (६) आदर्शवाद, (७) गाँधीवाद। इनके प्रणेता अपने-अपने वादों के समर्थन और प्रतिपादन में अनेकों प्रकार के तर्क, प्रमाण प्रस्तुत करते हैं और समाज के नवनिर्माण में उन्हें सर्वाधिक उपयोगी ठहराते हैं। उपयोगितावाद के जन्म देने वाले थे 'जेरेमी बेन्थम' जिनकी गणना प्रमुख समाजशास्त्रियों में की जाती है। उनके अनुसार, "किसी भी कार्य या वस्तु की उपयोगिता इसी आधार पर अवलम्बित है कि उसके द्वारा व्यक्ति को कितना सुख, आनन्द अथवा लाभ होता है।" उनके अनुसार, "अधिक कठोर दण्ड की व्यवस्था अपराधी को सुधारती नहीं बिगाड़ती है। शिक्षा का स्वरूप ऐसा हो जो जीवनोपयोगी हो और उसमें व्यावहारिक समस्याओं का समाधान सन्निहित हो। 'बेन्थम' की मान्यता है कि "व्यापार पर राज्य की ओर से कम से कम प्रतिबन्ध होना चाहिये। देश की आर्थिक प्रगति की दृष्टि से स्वतन्त्र व्यावसायिक नीति कहीं अधिक श्रेयस्कर है।" उपयोगितावाद के आलोचकों का कहना है कि इस पद्धति से पूँजीवाद को बढ़ावा मिलता है। राज्य का अंकुश न होने से व्यवसायी वर्ग शोषण और दमन की नीति अपनाता है। एक वर्ग धनवान होता जाता है दूसरा अत्यन्त गरीब। दण्ड की कठोरता न होने से अपराधों को और भी अधिक प्रोत्साहन मिलता है। बेन्थम की सामाजिक नवनिर्माण के लिये दी गई शासन की रूपरेखा स्वयं में अस्पष्ट है और उसमें सुनिश्चित आचार संहिता का अभाव है। कुछ विचारकों का मत है कि बेन्थम के सिद्धान्त व्यावहारिक कम हैं, सैद्धान्तिक अधिक।

दूसरा प्रमुख वाद है साम्यवाद। इसका उदय श्रमिकों, किसानों का पूँजीवाद के शोषण के विरुद्ध एक क्रान्तिकारी आन्दोलन—सिद्धान्त के रूप में हुआ। जन्मदाता थे—'कार्लमार्क्स'। 'साम्यवाद' का प्रमुख लक्ष्य है एक वर्गविहीन समाज का नवनिर्माण करना। पूँजीवाद का अन्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करके राष्ट्रीय सम्पत्ति या साधनों को व्यक्ति के हाथों से छीनकर समाज के अधिकार में रखना। समस्त आर्थिक असमानताओं को दूर करके नवीन वर्गहीन समाज व्यवस्था को जन्म देना। 'साम्यवाद' के अनुसार राज्य का प्रमुख कार्य होना—"भूमि के व्यक्तिगत स्वामित्व का अन्त, यातायात के साधनों का राष्ट्रीयकरण, कानून द्वारा मुद्रा का नियन्त्रण, सम्पत्ति के अधिकारों का उन्मूलन, व्यापार तथा वाणिज्य का नियमन, हर प्रकार के एकाधिकार अथवा विशेषाधिकार का अन्त करना।" इन व्यवस्थाओं के सहारे एक वर्गहीन समाज के निर्माण के लिये राज्य को अपने समस्त कार्यों को नियोजित करना होगा। जिससे शारीरिक एवं बौद्धिक कार्य में कोई भेद न हो और "प्रत्येक को उसी की क्षमता के अनुसार, प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार" साम्यवादी उद्देश्य की पूर्ति हो। मानवतावादी विचारकों का मत है कि सिद्धान्ततः साम्यवाद के सिद्धान्त ठीक हैं, किन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये जिस पद्धति-हिंसक क्रान्ति को प्रोत्साहन देता है उससे समाज में शान्ति और सुव्यवस्था कभी कायम नहीं रह सकती। परस्पर घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, भय और अविश्वास की भावना बढ़ेगी। अन्ततः क्रान्ति के फलस्वरूप एक ऐसा वर्ग बचेगा जो हृदय की दृष्टि से कठोर और बर्बर होगा। आवश्यक नहीं कि जिन उद्देश्यों के लिये क्रान्ति हुई थी वह पूरी हो। इस पद्धति में तानाशाही शासन की पूरी-पूरी गुंजायश है। विश्व की वर्तमान स्थिति को देखने से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है जिन देशों में कम्युनिज्म पनपा, फूला और फला है इन देशों की स्थिति आज सर्वाधिक गम्भीर है। हिंसक क्रान्ति कब फूट पड़े इसका कोई ठीक नहीं है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर सीमा से अधिक शासकीय अंकुश होने से मनुष्य के स्वतन्त्र और सर्वांगीण विकास की सम्भावना कम रहती है। अतएव साम्यवाद के सिद्धान्त जितने अच्छे हैं, व्यावहारिक दृष्टि से उनके लागू करने में खतरे उतने ही अधिक हैं। कई साम्यवादी देशों में मूर्धन्य विचारक इन खतरों के प्रति सतर्क हो रहे हैं और परिवर्तन की बात सोचने लगे हैं। अर्थतन्त्र एवं राजतन्त्र को सुव्यवस्थित बनाने एवं समाज की बाह्य परिस्थितियों के नवनिर्माण हेतु साम्यवादी विचारधारा उपयोगी होते हुये भी मनुष्य के अन्तरंग को विकसित करने के लिये कोई सुनिश्चित आधार नहीं देती। बाह्य परिस्थितियों का उपभोग, नियन्त्रण एवं सुनियोजन करने वाला तो मनुष्य ही है और जब तक मनुष्य का अन्तरंग पक्ष घटिया एवं हेय स्तर का बना रहेगा, सभ्य, शिष्ट और सुसंस्कृत समाज की कल्पना साकार नहीं हो सकती। मात्र बाह्य अंकुश एवं परिवर्तन की बात सोचने से काम नहीं चलेगा। यह प्रक्रिया एकांगी होगी। साम्यवाद में मनुष्य के अन्तरंग को विकसित करने, श्रेष्ठ, उदार और उदात्त बनाने वाले तत्व नहीं हैं। जब तक मनुष्य का भीतरी पक्ष समुन्नत नहीं होता शोषण, संग्रह और दमन की प्रक्रिया चलती रहेगी।

तीसरा वाद है व्यक्तिवाद। इस परिकल्पना के प्रणेता थे 'जान स्टुअर्ट मिल' और 'स्पेन्सर' जैसे विचारक। इनकी मान्यता थी कि सत्ता सर्वोच्च है और उसे सर्वोपरि स्थिति में रहना चाहिये। जीवन, बुद्धि, विचार अनुभूति आदि मनुष्य की विशेषतायें हैं। इन्हीं विशेषताओं के सहारे समाज एवं राष्ट्र का प्रत्येक कार्य होता है। इस कारण व्यक्ति को सभी क्षेत्रों में सर्वोच्च स्थान मिलना चाहिये। 'व्यक्तिवादी' विचारधारा के समर्थकों का कहना है कि सबसे अच्छी सरकार वह है जो कम से कम शासन करती है। राज्य का एकमात्र कर्त्तव्य यह होना चाहिये कि वह ऐसे वातावरण का निर्माण करे, जिसमें व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक अपने व्यक्तित्व का, चरित्र का, विचार और कार्यों का सुसंगठन एवं विकास कर सके।

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तभी उपयोगी एवं विकास में सहायक होती है, जबकि उस पर कठोर आत्म अंकुश हो। आत्मनियन्त्रण के अभाव में तो अनुशासनहीनता एवं उच्छृंखलता को ही बढ़ावा मिलता है। अतएव जब मनुष्य का व्यक्तित्व इतना परिष्कृत एवं समुन्नत हो जाय कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के दुरुपयोग की गुंजाइश न रहे तब तक एक सीमा तक बाह्य शासकीय नियन्त्रण बनाये रखना ही कहीं अधिक श्रेयस्कर है। गाँधीजी जैसे विचारकों का मत है कि "सभ्य-सुसंस्कृत मनुष्य ही स्वतन्त्रता का सही उपयोग कर सकता है।" अतएव व्यक्तिवाद के सिद्धान्त आदर्शवादी एवं श्रेष्ठ होते हुये भी व्यावहारिक नहीं। अविकसित, अशिष्ट समाज में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का सदुपयोग कम, दुरुपयोग अधिक होगा।

साम्यवाद का जिन परिस्थितियों में जन्म हुआ लगभग वही परिस्थितियाँ 'अराजकतावादी' परिकल्पना का कारण बनीं, इस कल्पना को जन्म देने वाले थे मास्को के 'प्रिन्सक्रोपाट किन' तथा 'माइकेल बाकुनिन'। इस प्रणाली को 'एनार्किज्म' के नाम से भी जाना जाता है। इन विचारकों के अनुसार क्रान्ति द्वारा पूँजीवाद का अन्त होने से राज्य का भी अन्त हो जायेगा। 'अराजकतावाद' से अभिप्राय अराजकतावादी तत्वों से युक्त शासन प्रणाली से नहीं वरन् राज्यविहीन समाज की स्थापना से है। 'प्रिन्स क्रोपाटकिन' के अनुसार, "अराजकतावाद जीवन तथा आचरण का वह नियम अथवा सिद्धान्त है जिनके अन्तर्गत समाज शासनविहीन होगा। समाज का संचालन सामाजिक नियमों द्वारा होगा। मनुष्य को इतना सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाया जाय कि उस पर किसी प्रकार के नियन्त्रण की आवश्यकता न पड़े और स्वयं अपने दायित्वों का भली-भाँति निर्वाह कर सके। संगठित छोटी-छोटी समितियाँ अपने-अपने विभागों का सुसंचालन करें। झगड़ों, विवादों का निपटारा पंचायत द्वारा किया जाना चाहिये।"

अराजकतावाद के अनुसार, "प्रत्येक व्यवसाय, व्यापार तथा विविध कार्यों के संचालन के लिये उसमें लगे हुये व्यक्तियों की एक समिति अथवा संघ होगा, जिनको 'कम्यून' कहा जायेगा। इस प्रकार शिक्षा, उत्पादन, उद्योग,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यवसाय आदि विभिन्न कार्यों में लगे व्यक्ति अपने-अपने कम्यून स्थापित करेंगे। कम्यून ऐच्छिक तथा पूर्ण स्वतन्त्र होंगे। प्रत्येक कम्यून स्वयं अपने पदाधिकारियों का चुनाव करेगा और अपनी नीति-निर्धारण करेगा। सभी समुदाय परस्पर एक दूसरे से गुँथे होंगे। एक ही विषय के जिले भर के कम्यूनों को मिलाकर इस विषय की जिला समिति बनेगी, जिला समितियों से प्रान्तीय समिति तथा प्रान्तीय समितियाँ राष्ट्रीय समिति के लिये प्रतिनिधि भेजेंगी। इस प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर एक राज्य द्वारा किये जाने वाले सभी कार्यों को ये समितियाँ बाँट लेंगी।

प्रचलित प्रणालियों में प्रजातन्त्र-लोकतन्त्र सर्वाधिक सफल रहा है। इसका प्रादुर्भाव सामाजिक अनुबन्ध के सिद्धान्त से हुआ है। समर्थकों में 'हाब्स', 'जान लाक' तथा रूसो जैसे विचारकों का नाम लिया जाता है। सामाजिक अनुबन्ध के सिद्धान्तों के अनुसार मानवी विकास की आरम्भिक अवस्था में लोग प्राकृतिक अवस्था में रहते थे। राज्य नाम की कोई संस्था न थी। कालान्तर में समस्याओं एवं असुविधाओं के बढ़ने से राज्य की आवश्यकता अनुभव की गई तथा राजा एवं प्रजा के बीच एक समझौता हुआ, जिसके फलस्वरूप राजा को शासन प्रबन्ध करने का अधिकार मिला। राजा प्रजा की सम्मति एवं स्वीकृत से ही शासन करता है। यदि वह अनुबन्धों को तोड़ता और अपने दायित्वों का निर्वाह नहीं करता तो प्रजा को अधिकार है कि उसे पदच्युत करके उसका शासक नियुक्त करे। रूसो की प्रजातान्त्रिक प्रणाली का जन्म इस परिकल्पना से हुआ।

समाजशास्त्रियों का मत है कि प्रजातन्त्र की सफलता सजग एवं नीतिवान जनता के ऊपर निर्भर करती है। जब तक नागरिक अपने सामाजिक एवं नैतिक दायित्वों के प्रति सजग नहीं होंगे, वे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का दुरुपयोग ही करेंगे। शासन तन्त्र का नेतृत्व, संचालन करने वाले व्यक्तियों का चुनाव जनमत के आधार पर होता है। जनता का जैसा स्तर होगा, उसी के अनुरूप व्यक्ति भी चुने जायेंगे। यदि उसका स्तर बौद्धिक एवं नैतिक दृष्टि से उँचा न हुआ तो चुने गये व्यक्ति भी सौंपे गये दायित्वों का निर्वाह नहीं कर सकेंगे और उल्टे अव्यवस्था, अराजकता को जन्म देंगे। यदि प्रजातन्त्र को सफल बनाना है तो जनता का स्तर ऊपर उठाने के लिये ठोस प्रयत्न करने होंगे और सत्ता ऐसे दूरदर्शी व्यक्तियों के हाथों सौंपनी होगी जो संकीर्ण स्वार्थपरता की सीमा से ऊपर उठ चुके हों, प्रामाणिक, चरित्रवान हों। आर्थिक दृष्टि से ही प्रजातन्त्र की सफलता विकेन्द्रीकरण की नीति पर निर्भर करती है। इसके, लिये कल-कारखानों, उद्योगों को छोटे पैमाने पर नगरों एवं देहातों दोनों ही क्षेत्रों में बिखेरना होगा।

शासनतन्त्र की वर्तमान प्रजातन्त्र पद्धति में कार्यपालिका एवं न्यायपालिका की कार्यविधियाँ इतनी लम्बी एवं पेचीदा हैं कि उसमें जनसाधारण को छोटे-छोटे कामों के लिये देर तक प्रतीक्षा करनी होती है। ढेरों पैसा खर्च करना होता है। जटिलता का लाभ अफसरों को मिलता है। इस सन्दर्भ में सरलता उत्पन्न करने के लिये नये सिरे से निर्धारण होने की आवश्यकता है। कर लगाने एवं वसूल करने की पद्धति भी ऐसी होनी चाहिये कि किसी को अनुचित लाभ उठाने का अवसर न मिल सके। प्रजातन्त्र का लाभ भी तभी मिल सकता है, जबकि उसकी प्रक्रिया का नये सिरे से निर्धारण किया जाय और उन सभी छिद्रों को ढूँढ़कर बन्द किया जाय, जो अवांछनीयता, अनाचार एवं अनैतिकता को बढ़ावा देते हैं।

आदर्शवादी व्यवस्था के जन्मदाता थे प्रसिद्ध दार्शनिक एवं विचारक 'प्लेटो'। उनका कहना था कि "मनुष्य एक राजनैतिक प्राणी है। हम अपनी स्वाभाविक मनोवृत्तियों से प्रेरित होकर राज्य को मान्यता देते हैं। राज्य का सच्चा स्वरूप यही है कि वह एक नैतिक संस्था हो। हमारी आत्मोन्नति में सहयोग करना ही उसका कार्य है। राज्य मनुष्यता को पूर्णता की ओर ले जाने में बाह्य परिस्थितियों का निर्माण एवं सुनियोजन करता है। अतएव वह श्रद्धा का पात्र है।" इस व्यवस्था के समर्थकों में 'हीगले' ग्रीन बासांके, काण्ट जैसे दार्शनिकों का नाम लिया जाता है।

प्लेटो की परिकल्पना दार्शनिक अधिक व्यावहारिक कम है। यह शासनतन्त्र सुनिश्चित प्रणाली एवं आचारसंहिता का निर्धारण नहीं करती। अस्तु, आदर्शवाद के सिद्धान्तों से शासन प्रणाली के निर्धारण में सुनिश्चित दिशाधारा नहीं मिलती।

महात्मा गाँधी ने भी आदर्शवादी राज्य की परिकल्पना की थी। संक्षेप में उनकी कल्पना निम्न सिद्धान्तों पर आधारित है—

"राज्य अपने को स्वयं साध्य मानकर, जनता के सर्वांगीण विकास का एक साधन मात्र बनकर अपनी नीतियों का निर्धारण उसके अनुरूप करे तथा उसके पथप्रदर्शक सिद्धान्त अहिंसा पर अवलम्बित हों। वह अपनी शक्ति का प्रयोग कम से कम करे और जनता को अधिक से अधिक आत्मनिर्भर बनाने का सुअवसर दे। ग्रामीण जीवन की सर्वांगीण प्रगति एवं उन्नति को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाय। प्रत्येक गाँव अपने में एक पूर्ण गणराज्य हो। राज्य की शक्ति का ही नहीं राष्ट्रीय सम्पत्ति और उत्पादनों के साधनों का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण किया जाये किन्तु यह कार्य अहिंसात्मक ढंग से व्यक्तियों के वैचारिक एवं भावनात्मक परिवर्तन द्वारा होना चाहिये। पीड़ित, पिछड़े, पददलित वर्ग के उद्धार के लिये विशेष व्यवस्था की जानी चाहिये। स्त्री जाति का विकास देश की प्रगति का मूलाधार है। राज्य को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। समस्त नागरिकों को शिक्षा सुविधा उपलब्ध हो किन्तु यह शिक्षा अक्षर ज्ञान तक सीमित न रहकर शरीर, मन और आत्मा तीनों के विकास के लिये होनी चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को औसत दर्जे के जीवनोपयोगी साधन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवनयापन के लिये उपलब्ध होना आवश्यक है। बड़े उद्योगों की नीति की अपेक्षा छोटे गृह उद्योगों को प्रोत्साहन मिलना चाहिये।"

समाज के नव-निर्माण के लिये शासन तन्त्र का स्वरूप क्या हो, इस सम्बन्ध में उपरोक्त मत हैं विश्व के मूर्धन्य विचारकों एवं समाजशास्त्रियों के। वर्तमान सामाजिक परिवेश में समस्त विश्व के लिए कौन-सी प्रणाली सर्वोत्तम और मनुष्य के विकास में सर्वाधिक सहायक सिद्ध होगी, इसके लिये गहन अध्ययन एवं पर्यवेक्षण की आवश्यकता होगी। यह जिम्मेदारी विश्व के मूर्धन्य मनीषियों के ऊपर है कि इस सम्बन्ध में पुनः निर्धारण करें कि क्या उपरोक्त प्रणालियों में से कोई ऐसी है, जो समस्त विश्व के लिये सर्वोपयोगी हो अथवा इनसे प्रेरणा लेकर किसी ऐसी सार्वभौम व्यवस्था का निर्धारण करें, जो समस्त मानव जाति के लिये उपयोगी एवं विकास में सहायक हो।

वायु, जल, प्रकाश, नदी, समुद्र, आकाश, धरती, सूर्य, चन्द्र जैसे प्राकृतिक स्रोत प्राणी मात्र की सार्वजनिक सम्पदा हैं। उपभोग के लिये सभी के लिये उपलब्ध हैं। इन पर किसी व्यक्ति विशेष अथवा राष्ट्र विशेष का व्यक्तिगत आधिपत्य नहीं है। समस्त मानव जाति के लिये विशेष रूप से उपलब्ध होने के कारण ही इन स्रोतों से सभी लाभ उठाते हैं। मनुष्य उपार्जित सम्पदा पर भी यही नियम लागू होता है। लगता भर है कि उत्पादन में किसी अमुक को श्रेय है किन्तु तथ्य यह है कि वह अगणित व्यक्तियों के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोग का ही प्रतिफल होता है। अब तक की सम्पूर्ण मानव प्रगति का अध्ययन, पर्यवेक्षण करने पर पता चलता है कि यह पारस्परिक सहयोग एवं सहकार की सत्प्रवृत्ति द्वारा ही सम्भव हो सका है। सम्पत्ति उपार्जन में भी असंख्यों मृत एवं जीवितों का सहयोग जुड़ा होता है।

कृषि जैसे छोटे व्यवसाय द्वारा अनाज कमाने वाला किसान भी परोक्ष रूप से असंख्य व्यक्तियों के सहयोग से उस उपार्जन का लाभ प्राप्त करने में समर्थ होता है। चिरकाल पूर्व से ही अनेकों पीढ़ियों ने अपने ज्ञान एवं पुरुषार्थ के द्वारा खेती करने, खाद, पानी, निराई, गुड़ाई आदि की विधि-व्यवस्थाओं द्वारा एक व्यवस्थित कृषि शास्त्र की रचना की। विकास की क्रमिक शृंखला में यह कला और भी अधिक विकसित होती चली गई, अनेकों का चिन्तन एवं पुरुषार्थ लगा एवं सम्बन्धित अनेकानेक नये कृषि संयन्त्रों का आविष्कार हुआ। आज भी जिन आधुनिक यन्त्रों द्वारा कृषि होती है, उनके निर्माण में कितने ही कारीगर, इन्जीनियर लगे हुये हैं। उनको प्रशिक्षित करने वाले अध्यापकों का मार्गदर्शन करने वाली पुस्तकों के लिखने में, पुस्तकों के लिये कागज की व्यवस्था करने में, प्रेस एवं छापने जैसे अनेकों कामों में असंख्यों व्यक्ति कार्यरत हैं। इस तरह प्रकारान्तर से लाखों-करोड़ों व्यक्तियों का श्रम, सहयोग कृषि उपकरणों के निर्माण में नियोजित रहता है। तब कहीं जाकर खेती के लिये आवश्यक उपकरण उपलब्ध हो पाते हैं। यह प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोग न मिले तो एकाकी प्रयत्नों द्वारा कृषि जैसा साधारण समझा जाने वाला काम भी सम्पन्न न हो सके।

यह तो कृषि की बात हुई, उपार्जन के अन्यान्य स्रोतों, व्यवसाय, उद्योग, नौकरी, दुकानदारी से होने वाले लाभों में अनेकों का सहयोग जुड़ा हुआ है। एकाकी मात्र अपने बलबूते कोई भी उपार्जन करने में समर्थ नहीं हो सकता। सहयोग की लम्बी शृंखला का अध्ययन करें तो स्पष्ट होगा कि समस्त समाज ही एक चक्र में बँधा हुआ है। यह नियम किसी समाज विशेष के लिये ही नहीं बल्कि देश और समस्त विश्व के लिये लागू होता है। एक देश में बनी हुई वस्तुयें दूसरे देश में पहुँचती हैं और दूसरे की तीसरे में। कहीं किसी वस्तु की बहुलता है तो कहीं किसी की। जो देश प्रगतिशील एवं भौतिक रूप से सम्पन्न हैं, उनकी सम्पन्नता का श्रेय अकेले उनको ही नहीं है। कोई भी देश ऐसा नहीं है जहाँ जीवनयापन के समस्त साधन मौजूद हों। यह तो परस्पर विनिमय द्वारा उपलब्ध हो पाते हैं।

वस्तुयें छोटी हों या बड़ी पर सहयोग तो हर देश को किसी न किसी प्रकार लेना ही पड़ता है। सम्पन्न राष्ट्र भी किसी न किसी वस्तु के लिये दूसरे देशों पर निर्भर हैं। अमेरिका को पेट्रोलियम, चीनी, फल, ऊन, टेक्सटाइल, कॉफी, विद्युत की छोटी-मोटी वस्तुओं के लिये अन्य देशों का मुँह ताकना पड़ता है। ब्रिटेन में दूध, मक्खन, कॉफी, फल, चीनी, चाय, कोका, तम्बाकू, कोयला, पेट्रोलियम, गैस, ऊन, कागज का आयात अन्य देशों से करना होता है। कनाड़ा पेट्रोलियम, लोहा, स्टील, कॉफी, कोका, चाय, सब्जी, रसायन, कोयला, फोटोग्राफिक पदार्थ जैसी चीजों के लिये आत्मनिर्भर नहीं है। जापान ईंधन, पेट्रोलियम, टेक्सटाइल, धागों, तेल के लिये विश्व के अन्य देशों पर निर्भर है। ये तो कुछ देशों के उदाहरण मात्र हैं। संसार के सभी देशों का अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट होगा कि हर देश किसी न किसी वस्तु के लिये दूसरे देश पर आश्रित है। वस्तुयें ही नहीं ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्रों में भी एक देश को दूसरे से सहयोग लेना होता है। इस प्रकार आदान-प्रदान एवं सहयोग से ही प्रगति क्रम आगे बढ़ता है।

अस्तु व्यक्ति, समाज अथवा कोई देश जो उपार्जन करता है वह समस्त मनुष्य जाति की सम्पत्ति है। उपलब्धियों में अनेकों का साझा है। सामने की वस्तुओं का एकांगी उपभोग अनैतिक माना गया है। दूसरों को भी इसका लाभ मिलना चाहिये। प्रकृति की व्यवस्था भी ऐसी है कि वह उतनी ही वस्तुयें उत्पन्न करती है जिससे सब लोग मिल-जुलकर आसानी से जीवन निर्वाह कर सकें। जिसने अधिक कमाने में अपनी सूझ-बूझ, पुरुषार्थ एवं दूरदर्शिता का परिचय दिया उसे सराहा जाय। इतने भर से उपार्जनकर्त्ता को सन्तुष्ट रहना चाहिये। स्वयं कमाया है इसलिये उपभोग भी स्वयं करेंगे यह नीति संकीर्णता युक्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है और समाज में अमीरी, गरीबी की खाई और भी गहरी करती है। एक स्थान पर धन का संग्रह, अपव्यय, विलास, व्यसन आदि अवांछनीय प्रवृत्तियों को बढ़ावा देता है। प्रकारान्तर से आर्थिक भ्रष्टाचार बढ़ता है। बढ़ती हुई अवांछनीयता-अपराध की घटनाओं में आर्थिक विषमता भी एक सीमा तक जिम्मेदार है। आँकड़े बताते हैं कि जिन देशों में लोकतन्त्र की आड़ में पूँजीवाद को प्रश्रय मिल रहा है, अपराध सर्वाधिक होते हैं। इसका एक उदाहरण यूरोप का सबसे समृद्ध देश अमेरिका है। जहाँ मानवी मूल्यों एवं जीवन का सर्वाधिक अवमूल्यन हुआ है।

यदि सभी समान अर्थ स्तर का सामान्य जीवनक्रम अपनायें तो परस्पर ईर्ष्या-द्वेष की—मनोमालिन्य की—अपराध-शोषण की—लालच-लिप्सा की गुंजाइश ही न रहेगी। अतएव धन संचय एवं उस पर एकाधिकार और स्वच्छन्द उपभोग की वर्तमान छूट पर नियन्त्रण किया जाना चाहिये। अतिरिक्त उपार्जन समाज में वापिस लौटाना चाहिये। धन की असमानता से समाज में अनेकों विकृतियाँ पैदा होती हैं और स्थिति असह्य होने पर साम्यवाद जैसी हिंसक क्रान्तियाँ फूट पड़ती हैं। वस्तुतः व्यक्ति की मौलिक स्वतन्त्रता को समाप्त करने वाली तथा स्वतन्त्रता का मार्ग अवरुद्ध करने वाली साम्यवादी हिंसक प्रणाली का प्रादुर्भाव ऐसी ही विषम आर्थिक परिस्थितियों में हुआ है। जिन देशों में साम्यवाद पनपा और फैला है, उसका कारण यह नहीं था कि वहाँ के नागरिकों ने साम्यवाद को सर्वश्रेष्ठ प्रणाली मानकर अपनाया था वरन् यह था कि वहाँ की जनता एक ऐसे क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिये इच्छुक थी जो आर्थिक विषमता को समाप्त करता हो। ऐसे अवसर पर साम्यवाद एक सशक्त हथियार के रूप में प्रस्तुत हुआ। निस्सन्देह साम्यवाद के अर्थ सिद्धान्त समाज के लिये उपयोगी हैं किन्तु इन सिद्धान्तों को लागू करने के लिये जिस हिंसक क्रान्ति का यह समर्थन करता है वह हर दृष्टि से हानिकारक और विकास में बाधक है।

प्राचीनकाल में अपने यहाँ की व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ थी। हर व्यक्ति औसत दर्जे के जीवनयापन को धर्म कर्त्तव्य मानता था। अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं के बाद जो धन शेष बचता था, उसे स्वेच्छापूर्वक हर व्यक्ति दान के रूप में समाज को लौटा देता था। जो संग्रह करता था उसे सामाजिक घृणा और तिरस्कार का भाजन बनना पड़ता था। आज की भाँति सम्पन्नों को सम्मान देने की ओछी एवं विकृत मनोवृत्ति न थी। दान की प्रतिस्पर्धा चला करती थी। जो सर्वाधिक समाज के प्रति सहिष्णु और उदार होता था उसे ही सम्मानित किया जाता था। संग्रह एवं उपभोग पर सामाजिक एवं नैतिक अंकुश रहने से सभी इसे हेय मानते थे ऐसी स्वप्रेरित उदारता एवं आत्म-अंकुश बना रहे तो किसी भी प्रकार के बाह्य प्रतिबन्ध की आवश्यकता न पड़े।

अच्छा तो यह होगा कि अपने पुराने श्रेष्ठ आदर्शों को पुनर्जीवित किया जाय। बाह्य परिस्थितियों की माँग है कि समाज में समानता स्थापित हो—अमीरी, गरीबी की खाई मिटे। स्वेच्छापूर्वक वह सम्भव न हो सका तो बाहरी दबाव मनुष्य को बाध्य करेगा। राजा, रजवाड़े, जमींदारों ने जब स्वतः उदारता की नीति नहीं अपनाई तो शासन एवं कानून ने जबरन उन्हें अतिरिक्त सम्पदा को समर्पित करने को बाध्य किया। अपने आप यह उदारता प्रदर्शित करने के लिये वे यदि तैयार हो गये होते, तो उन्हें श्रेय और सम्मान दोनों ही मिलता किन्तु उल्टे तिरस्कार का भाजन बनना पड़ा। सम्पत्ति और सम्मान दोनों ही हाथ से चले गये। अगले दिनों यही दुर्गति सम्पन्नों की भी होने वाली है। प्रजातान्त्रिक देशों में साम्यवाद को मान्यता भले ही न मिले किन्तु उसके आर्थिक समानता के सिद्धान्त को सर्वत्र सराहा गया है और देश के आर्थिक विकास में इसे उपयोगी ठहराया गया है। विश्व के लगभग आधे भाग में इन दिनों यही अर्थ पद्धति चल रही है। चीन, रूस, रूमानिया, बल्गेरिया, यूगोस्लाविया, हंगरी, पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, अलबानियाँ, पूर्वी जर्मनी, क्यूबा आदि देशों में इसी अवस्था द्वारा देश की आर्थिक व्यवस्था नियन्त्रित होती है। इन देशों में अमीरी-गरीबी की खाई जबरन पाट दी गई है और हर व्यक्ति औसत नागरिक स्तर का जीवनयापन करता है। फलतः विलासिता से होने वाले अपव्यय को अवसर नहीं मिलता।

एक ओर साम्यवादी अर्थदर्शन आँधी-तूफान की भाँति आ रहा है और हिंसा-अहिंसा, नीति-अनीति के द्वारा जैसे भी बने आर्थिक विषमता को विश्व से समाप्त करने के लिये प्रयत्नशील है। दूसरी ओर युग की माँग भी है कि अमीरी पर भी अंकुश लगाया जाय। मार्ग दोनों सामने प्रस्तुत हैं। अनास्था, निष्ठुरता, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, मौलिक अधिकारों को समाप्त करने वाली साम्यवादी अर्थ पद्धति को अपनाया जाय अथवा अपने देश के उस पुरातन आदर्श को जिसमें संचय को पाप समझा जाता था। उन दिनों स्वेच्छापूर्वक औसत नागरिक स्तर के जीवनयापन से अतिरिक्त बची सम्पत्ति को समाज के लिये समर्पित कर दिया जाता था, जिससे समाज में परस्पर स्नेह, सहयोग, सहकार, आत्मीयता बनी रहती थी। मानवी मूल्यों की रक्षा बड़ी कीमत चुकाकर भी की जाती थी। अधिकारों की बहुलता होते हुये भी कर्त्तव्यों के निर्वाह के लिये प्रतिस्पर्धा चला करती थी और अधिकारों का उपयोग भी व्यक्तिगत संकीर्ण स्वार्थों की पूर्ति के लिये नहीं कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिये किया जाता था।

दोनों व्यवस्थायें और उनसे जुड़ी भावी हानि-लाभ की सम्भावनायें हमारे सामने हैं। स्वेच्छा से उदारता का मार्ग नहीं अपनाया गया तो साम्यवाद की कठोरता निर्ममता से आर्थिक समता की स्थापना के लिये चढ़ दौड़ेगी और आँधी-तूफान से होने वाले तहस-नहस की भाँति समस्त मानवी मूल्यों को नष्ट कर डालेगी और तब मनुष्य मात्र मशीन की भाँति काम करने वाला एक यन्त्र भर बनकर रह जायेगा, जिसमें न तो संवेदना होगी और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न ही स्वतन्त्र विचारणा। इनके अभाव में उसकी चेतना का स्वतन्त्र और सर्वांगीण विकास अवरुद्ध हो जायेगा। ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित हों, इसे कोई भी विचारशील, भावनाशील नहीं पसन्द करेगा। विशेषकर भारतीय परिवेश में रहने एवं साँस लेने वाला कोई भी नागरिक नहीं स्वीकार कर सकेगा।

प्रजातन्त्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत सभी परस्पर समता, शुचिता, एकता एवं आत्मीयता के सूत्र में बँधे रहें, इसके लिये उन आदर्शों का ही पुनर्जागरण करना होगा, जो कभी स्वर्गोपम परिस्थितियों के लिये जिम्मेदार थे। विकास के लिये आवश्यक है कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता अक्षुण्ण बनी रहे।

भारत ही नहीं समस्त विश्व के लिये भी यही उदार अर्थनीति सर्वाधिक कल्याणकारी हो सकती है। अगले दिनों पूरे विश्व को एकता के सूत्र में आबद्ध होना है। अतएव नीतियों के निर्धारण में समस्त विश्व को ध्यान में रखकर चलना होगा। अभी तो देशों के बीच अमीरी-गरीबी की खाई अत्यधिक चौड़ी है। प्राप्त आँकड़ों के अनुसार सम्पूर्ण जनसंख्या का ३० प्रतिशत अर्थात् १२० करोड़ व्यक्तियों की प्रति व्यक्ति वार्षिक आय ३६ हजार रुपये प्रतिवर्ष है। इसके अन्तर्गत समस्त यूरोपीय देश रूस, जापान, अमेरिका आदि आते हैं। इसके अतिरिक्त ८५ करोड़ व्यक्ति उन राष्ट्रों में हैं जो तेजी से प्रगति कर रहे हैं। ब्राजील, मेक्सिको, ताईवान जैसे देश इसी के अन्तर्गत आते हैं। इनकी प्रति व्यक्ति आय ७६ सौ ५० रुपये है। प्रगति की गति यही रही तो सन् २००० तक इनकी प्रति व्यक्ति वार्षिक आय १० हजार तक जा पहुँचेगी। इसके बाद ७५ करोड़ व्यक्ति एशिया के साम्यवादी देशों के आते हैं। चीन, उ. कोरिया, इण्डोनेशिया आदि इसमें सम्मिलित हैं। इनकी प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष आय २२ सौ ५० रुपये है। १०० करोड़ व्यक्ति ऐसे हैं जो गरीबी की रेखा से भी नीचे हैं। उनकी प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष आय ६०० सौ रुपये वार्षिक है।

समस्त विश्व में सुख-शान्ति बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि इस विषमता को मिटाया जाय। विश्व में बढ़ते हुये तनावों, संघर्षों, मतभेदों को देखते हुये मूर्धन्य विचारक, अर्थशास्त्री चिन्तित हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि अर्थ की विषमता भी तनावों की बढ़ोत्तरी का एक कारण है। यह समस्या विश्व व्यापक सार्वभौम है। अतएव अब आवश्यक हो गया है कि समस्त विश्व के लिये अर्थनीति का निर्धारण किया जाय। 'वाशिंगटन इन्स्टीट्यूट फार पालिसी स्टडीज' के संस्थापक एवं सह निर्देशक मिस्टर रिचार्ड जे. बारनेट ने अपनी 'दिलीन इयर्स पॉलिटिक्स इन दि एज ऑफ स्केयर्सिटी' में लिखा है कि "मानव जाति अपना अस्तित्व बनाये रखने में असफल रहेगी, यदि विश्व में आर्थिक विषमता इसी प्रकार बढ़ती रही। किसी भी देश की सम्पदा विश्व की सम्पदा है। अतएव सम्पन्न देशों की प्रगति का लाभ गरीब देशों को भी मिलना चाहिये।" उन्होंने चेतावनी दी है कि "जब तक यह विषमता बनी रहेगी विश्वयुद्ध की विभीषिका टलने वाली नहीं है।"

श्रीमती वाइवेरा को भी एक प्रसिद्ध विचारक एवं अर्थशास्त्री के रूप में मान्यता मिली है। श्री वाईबेरा ने एक पुस्तक लिखी है 'प्रोग्रेस फार स्माल प्लेनेट'। इस पुस्तक में वे लिखती हैं कि "विश्वव्यापी तनावों का एक प्रमुख कारण आर्थिक विषमता है। यह निष्ठुरता एवं संकीर्णता का परिचायक है कि दुनिया की तीन चौथाई जनता को विश्व की एक तिहाई आय पर गुजारा करना पड़ता है, जबकि तीन चौथाई आमदनी का उपभोग मात्र एक तिहाई व्यक्ति करते हैं। अभी भी एक अरब व्यक्तियों को रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य, शिक्षा की अनिवार्य सुविधायें उपलब्ध नहीं हैं।

'स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी फूड रिसर्च इन्स्टीट्यूट' के डाइरेक्टर 'वाल्टर पी. फल्काना' के अनुसार, "वर्ष १९७८ में १३० लाख बच्चों की मृत्यु कुपोषण से उत्पन्न विभिन्न बीमारियों के कारण हुई। अपनी विलासिता में थोड़ी कटौती सम्पन्न देश कर सके होते तो उन्हें आकस्मिक मौत के चंगुल से बचाया जा सकता था।" उनके अनुसार "यह हृदय विदारक सिलसिला चलता रहेगा यदि पूरे विश्व के लिये उदारवादी अर्थनीति नहीं निर्धारित हुई।"

उचित साधनों द्वारा नीतिपूर्वक उपार्जन का अधिकार बना रहना किसी व्यक्ति विशेष अथवा राष्ट्र विशेष के लिये ही नहीं समस्त संसार के लिये श्रेयस्कर है किन्तु दो हाथ से कमाने और सौ हाथों से दान करने अर्थात् समाज—विश्वमानव के लिये बचे धन को समर्पित करने की उदारवादी भारतीय धर्म परम्परा को पुनः प्रचलित करना होगा। अपने देश के लिये तो यह श्रेयस्कर होगा ही, विश्व के लिये आर्थिक नवनिर्धारणों में भी सहयोग मिलेगा। प्रकृति प्रदत्त अन्यान्य सम्पदाओं वायु, जल, सूर्य, आकाश, धरती की भाँति उपार्जित धन को भी सम्पूर्ण मानव समाज की सम्पत्ति मानने और तदनुरूप ही उसे नियोजित करने से ही समाज में शान्ति, सुव्यवस्था और सुरक्षा बनी रह सकती है।

नवनिर्धारण में विश्व मनीषियों के मत

आज जो कुछ भी विश्व का स्वरूप दृष्टिगोचर हो रहा है, वह उस स्थिति से भिन्न है, जो आज से बीस वर्ष पूर्व था, सन् १९०० विज्ञान की जितनी भी उपलब्धियाँ थीं, उन्हें आज के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है तो प्रतीत होता है इन वर्षों में मानो एक युग ही बदल गया है। द्रुतगामी वाहनों का आविष्कार, चिकित्सा जगत में क्रान्ति एवं मनुष्य की अन्तरिक्ष गृह यात्रा गत कुछ दशाब्दियों की ही तो देन हैं। सन् १९०० में मात्र १ अरब ६५ करोड़ व्यक्ति पृथ्वी पर थे। अपनी सीमित् क्षमताओं में वे उपलब्ध संसाधनों का समुचित उपयोग तो न कर पाते थे पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संतुष्ट-प्रसन्न बने रहते थे। आज विश्व की जनसंख्या लगभग ६०० करोड़ है। इस नये दशक से, एक नये ही युग का सूत्रपात हो रहा है। यदि कोई विश्व स्तर पर युद्ध अथवा महामारी रोगों आदि के आक्रमण से नरसंहार न हुआ तो इन आँकड़ों में थोड़ी न्यूनाधिकता तो हो सकती है, पर वर्तमान स्थिति को देखते हुये एक कटु सत्य प्रतीत होता है।

सीमित स्थान, सीमित साधन एवं उस पर भी आवश्यकता से अधिक प्राणियों की इस 'ग्लोब' पर भीड़ ने कई चिन्तकों को भविष्य के सम्बन्ध में एक योजनाबद्ध कार्यक्रम बनाने को गत दिनों विवश किया है। यह विधा कोई नई तो नहीं है पर जिन परिस्थितियों में उच्चस्तरीय बुद्धिजीवियों द्वारा इस विषय में यह चिन्तन किया जा रहा है एवं सारे विश्व में इसकी चर्चायें हो रही हैं, उससे लगता है कि इसका महत्त्व एवं प्रयोजन कहीं अधिक विशिष्ट है।

'फ्यूचरोलोजी' नाम से प्रख्यात इस विज्ञान को भविष्य की सम्भावित स्थिति को जानने की प्राथमिक मूलभूत विद्या कहा जाता है। भविष्य का अनुभव कराने वाली प्रशाखा को इन भविष्य-विज्ञानियों ने "फ्यूचरिएस" नाम दिया है।

जुलाई १९८० की २४ व २५ तारीख को ५० राष्ट्रों के ६००० प्रतिनिधियों का टोरोण्टो कनाड़ा में एक विश्वस्तरीय समागम हुआ। जिसमें हर जाति, रंग, लिंग के व्यक्तियों ने भाग लिया। मूल नारा था 'थिंकिंग ग्लोबली एक्टिंग लोकली" अर्थात् स्थानीय प्रयासों के लिये विश्व स्तर पर सोचने वाली बुद्धिजीवियों की एक संस्था।" फर्स्ट ग्लोबल कान्फ्रेन्स ऑन फ्यूचर" नाम से आयोजित इस सम्मेलन में दुनिया के जाने-माने चिन्तकों व भविष्यविदों ने भाग लिया। इनमें से प्रमुख थे मार्गरिट मीड, हरमन कॉन, शान ब्रोमेन, एरिक एसिमोव, मारिस, स्ट्रांग, फ्रैंक फीदर, क्लाडियो गालियो, मेरी डेरोर्ड, स्टीफन क्रोजियर, जेफ बीन, हेजेल हेण्डरसन, टूवेर हेनकॉक एवं तिमोथी लियरी। ये वे वैज्ञानिक हैं जिन्होंने तर्क एवं तथ्यों के आधार पर आज सारे विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रखा है, आने वाले युग की समस्याओं व विभीषिकाओं के प्रति जनमानस को सचेत किया है।

इस समागम के सभापति थे कनाडियन इंपीरियल बैंक के अध्यक्ष कनाडियन फ्यूचर सोसायटी के उपाध्यक्ष श्री फ्रैंक फीदर। इनको चैयरमेन होने का सौभाग्य मिला। भारत के श्री रश्मि मयूर जो बम्बई में शहरी विकास संस्थान के अधिष्ठाता हैं, इन दोनों ने अपना मत व्यक्त करते हुये कहा कि—'भविष्य चिन्ताजनक है पर हम आशावादी हैं। अब कहने व सोचने का समय चला गया। अब तो कुछ कर गुजरने पर ही उतरना होगा।" दोनों ने युग परिवर्तन की (ट्रांसफॉर्मेशन) आवश्यकता एवं सम्भावनाओं पर बल दिया, यह कैसे हो कौन करे, यही था बहस का मूल मुद्दा।

इस अधिवेशन में हुये परस्पर परामर्श-डिस्कशन की एक प्रमुख विशेषता थी—इसके वक्ताओं की भविष्य के प्रति चिन्ता, पर साथ ही उनका आशावादी दृष्टिकोण से जुड़ा होना। 'ग्लोबल समाज' के अध्यक्ष श्री मॉरिस स्ट्रांग ने संवाददाताओं को बताया कि उनके पास निष्कर्षों के रूप में एक बुरी खबर है एवं एक अच्छी भी। "बुरी यह कि अगले दस वर्षों में संसार का अन्त समीप है। प्रकृति से खेल कर मानव ने स्वयं अपने हाथों अपनी कब्र खोद ली है। पर एक शुभ समाचार यह है कि ऐसे प्रयास जिनके द्वारा इस विभीषिका को नियन्त्रित किया जा सके, अब कार्यक्षेत्र में उतर रहे हैं। कोई कारण नहीं कि सुनियोजित क्रिया पद्धति विश्वस्तर पर एक उज्ज्वल भविष्य की रूपरेखा बनायी जा सके।" वस्तुतः यह एक सुनिश्चित तथ्य एवं ध्रुव सत्य है कि जिस घुटन भरे युग से हमें आज गुजरना पड़ रहा है, वह अधिक समय तक ऐसा ही नहीं बना रह सकता।

समष्टिगत विवेकपूर्ण चिन्तन 'ग्लोबल अण्डरस्टेण्डिग' इस सम्मेलन की विशेषता थी। पहली बार जनस्तर पर विभिन्न फैकल्टीज के विशेषज्ञों ने स्वार्थपरता त्याग कर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना के विस्तार का आह्वान किया। अपने ही क्षणिक स्वार्थों में लिप्त रहकर सन्तुष्ट बने रहने का समय अब नहीं रहा। अब या तो सभी एक साथ मरेंगे या जियेंगे, यदि विकसित देशों की ऐसी मान्यता है कि औद्योगीकरण एवं तकनीकी का विकास कर वे स्वयं समृद्ध हो जायेंगे भले ही अधिसंख्य जनता गरीब बनी रहे तो यह कोरा भ्रम ही है। उन्हें अब सबको साथ लेकर ही चलना होगा। भविष्यविदों का कथन था कि पर्यावरण किसी देश-विदेश की अमानत नहीं है। यदि इसमें असन्तुलन होता है तो वह अमेरिका एवं यूरोप को भी उतना ही प्रभावित करेगा जितना कि क्यूबा, फिलिपाइन्स, तैवान, कोरिया जैसे छोटे देशों को। अर्थ, प्राकृतिक संसाधनों एवं ऊर्जा के भण्डारों पर अब कोई कुण्डली मारकर नहीं बैठा रह सकता। सारी वसुधा को एक कुटुम्ब मानकर सारा विश्व एक व्यवस्था में चले—यही विधाता की इच्छा एवं यही मानव के अस्तित्व का एकमेव मार्ग है।

वर्ल्ड बैंक की नीति निर्धारण समिति के निर्देशक महबूब उलहक ने इस अवसर पर बोलते हुये कहा कि अब समय आ गया है कि गरीब राष्ट्रों को भी विकसित धनी राष्ट्रों की आय में से हिस्सा मिले ? इसके लिये उन्होंने एक सार्वभौम अर्थ व्यवस्था की वकालत की, जिसमें धनी देशों की कुल जमा पूँजी पर कर लगाया जा सके। इस कर की अतिरिक्त आय का उपयोग विकासशील गरीब राष्ट्रों के समग्र विकास हेतु किया जाय। उनके अनुसार आँकड़े बताते हैं कि विश्व के कुछ धनी माने जाने वाले राष्ट्रों के पास कुल जमा पूँजी जो कि सारे विश्व की दौलत का ७८ प्रतिशत है, ८४८७ अरब रुपये है। जबकि शेष राष्ट्रों के पास मात्र २३००० अरब रुपये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की राशि है। जबकि वे सारे विश्व की ८० प्रतिशत जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी राय थी कि वर्ल्ड बैंक की वित्तीय व्यवस्था में समुचित परिवर्तन किया जाये एवं एक कोष के माध्यम से तृतीय दुनिया के राष्ट्रों के विकास हेतु मद इन्हीं राष्ट्रों के बजट से निकाली जाये।

श्री हक के कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण सुझाव थे—प्राकृतिक संसाधनों का सुव्यवस्थित केन्द्रीय नियोजन, प्रदूषण रहित ऊर्जा कार्यक्रम, गरीबी उन्मूलन हेतु एक अन्तर्राष्ट्रीय फोरम, गरीब राष्ट्रों में जनसंख्या वृद्धि की रोकथाम, राष्ट्रों को विभाजित करने वाली सीमाओं के बन्धन खोलना एवं युद्धास्त्रों के निर्माण व दुरुपयोग पर एक सन्तुलित व्यवस्था का नियन्त्रण। भले ही ये कल्पनायें सत्य न हो पायें पर वे यह बताती हैं कि इन दिनों विश्व चिन्तन की दिशा क्या है।

फ्यूचर सोसायटी एवं इसके जैसी अन्य संस्थाओं के ये निर्धारण निश्चित समय के अनुकूल हैं एवं उस समष्टिगत चेतन प्रवाह के अंग प्रतीत होते हैं। जो ८० के इस दशक में सारी मानवता को प्रभावित कर रहा है। जिन्हें मूढ़ता घेरे रहती है, उनकी संख्या इस धरती पर कम नहीं। मरने के दिन अति निकट आ जाने और परिवार द्वारा अपमानित होते रहने पर भी अधिकांश वृद्ध मोह-माया के दलदल में बरबस फँसते चले जाते हैं। ऐसे लोग इस दुनिया में हैं जिन पर न ज्ञान का असर पड़ता है, न विवेक का प्रकाश पड़ता है। यदि ये न सुधरे तो महाकाल की प्रेरणायें इन गतिरोधों को अपनी लात से कुचलकर रख देने के लिये विवश हो जाती हैं। निष्कर्ष यही कि इस सन्धि बेला में मानव जाति का सद्भावना सम्पन्न वर्ग विशेष रूप से जागे और अपने विशिष्ट उत्तरदायित्वों को वहन करने के लिये तत्पर हो। यह सामान्य दशक नहीं—आपत्ति काल है। साधारण गतिविधियाँ ऐसी स्थिति में रोक दी जाती हैं एवं विवेकवान, जाग्रत आत्माओं से विशिष्ट पुरुषार्थ की अपेक्षा की जाती है। समय पुकार कर कह रहा है कि भविष्य का निर्धारण, सुनियोजन अब इसी वर्ग को करना चाहिये। वैसे प्रयास चल भी पड़े हैं। आशा रखनी चाहिये कि ऐसे प्रयत्नों के पीछे उद्देश्यों की पवित्रता एवं व्यापकता को दृष्टिगत रखकर जाति, वर्ण, लिंग, भेद से परे सारे विश्व के मानव युग निर्माण हेतु एक मंच पर शीघ्र ही एकत्रित होंगे।

भूत और वर्तमान का भविष्य में विलयन, नवयुग का आगमन

समाज में इन दिनों धन और शस्त्र की सामर्थ्य को प्रधानता मिल रही है। लालच का आकर्षण और आतंक का दबाव किसी से कुछ भी करा सकता है। यह बात लोगों के मनों में घर करती जा रही है। प्रत्यक्ष प्रचलन में ऐसा ही कुछ दीखता भी है।

कुछ समय पहले बलिष्ठता और बुद्धिमत्ता का बोलबाला था। शरीर बल जिसमें होता था वह मनमानी करता था और डरा-धमका कर दूसरों से भी मनमर्जी पूरी करा लेता था। यही बात बुद्धिमत्ता के सम्बन्ध में भी थी। वे कुछ भी कहते, लिखते और किसी को किसी भी दिशा में फुसलाकर धकेल देते थे। जनसाधारण को चतुरता के जाल में इस प्रकार फाँसते थे कि जाल में जकड़े हुये पक्षी की तरह न वे निकल सकते थे और न उस स्थिति में सन्तुष्ट रह सकते थे। बलिष्ठों को पंडित कहा जाता था। दोनों की पटरी मध्यकाल के अज्ञानान्धकार में खूब बैठी। उनने मिल-जुलकर भी और अलग-अलग से भी ऐसे माहौल खड़े किये कि जमाना कुछ से कुछ हो गया। सामन्तवादी युग की यह परिचर्चा है। उसमें किले भी खड़े हुये और स्वर्ण छत्र लगाकर चलने वाले महन्तों के ठाट-बाट भी उन्हीं जैसे हो गये। इन दोनों युगों का समाधान अभी भी नहीं हुआ है। वे जमे अभी भी हुये हैं और अपनी सामर्थ्य का परिचय देने के लिये मोर्चे पर डटे हैं। शासन के पास शासन बल और श्रीमन्तों के पास धन बल के भण्डार बढ़ते ही जा रहे हैं।

शरीर बल हेटा पड़ा है उसका स्थान सौन्दर्य श्रृंगार ग्रहण करता जा रहा है। अभिप्राय, गायन आदि की कलाओं को भी इसी आकर्षण में सम्मिलित कर लिया जाय तो अत्युक्ति न होगी। यह शरीर बल की बात हुई। बुद्धिमत्ता अब साहित्य क्षेत्र के ऊपर केन्द्रित हो रही है। पत्रकार-साहित्यकार, प्रकाशक एक सशक्त वर्ग के रूप में विकसित हो रहे हैं। वे शिक्षित समुदाय को अपने इच्छित तरीके से सोचने और ढलने के लिये सहमत या विवश कर रहे हैं। साहित्य में भी दबाव होता है। उससे भी बन्दूक की नली की तरह ही क्रान्तिकारी वातावरण बनता है। विज्ञान ने इस वर्ग को प्रेस के साथ-साथ फिल्म का भी एक नया आधार प्रदान किया है। इन दोनों के समन्वय से जनमानस को एक विशेष प्रकार के प्रवाह में बहने के लिये वांछित होना पड़ रहा है। आज के लोकचिन्तन पर लेखन और अभिनय की गहरी छाप है। लोग इस प्रवाह के साथ बहने के लिये सहज सहमत हो रहे हैं। आज के लोकमानस को इस वर्ग का विधाता भी कहा जा सकता है।

उपरोक्त शक्तियाँ अपनी सामर्थ्य का प्रभाव-परिचय भलीभाँति दे रही हैं। उनकी क्षमता के प्रभाव-परिणाम को हम सब आँखों से देख रहे हैं। शक्तियाँ पिछले दिनों की तुलना में प्रबल से प्रबलतर होती जा रही हैं। उनके प्रभाव-परिणाम को देखकर सभी चमत्कृत हैं। विज्ञान ने इन सभी को पूर्वकाल की तुलना में असंख्यों गुना समर्थ बना दिया है। लगता है इन क्षमताओं से सम्पन्न लोग भले ही मुट्ठी भर क्यों न हों, समय और प्रचलन को इच्छानुरूप ढालने में सफल होते चले जा रहे हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चिन्ता का विषय एक ही है कि सामर्थ्य-सम्वर्धन और प्रवाह, प्रचलन मानवी गरिमा के अनुरूप नहीं बन पड़ा। जान-बूझ कर या अनजाने उसने ऐसी दिशाधारा अपनाई जिससे मनुष्य उठा नहीं गिरा, बढ़ा नहीं उलटा। यदि ऐसा न हुआ होता तो आज की बढ़ी हुई सर्वांगीण समर्थता मानवी प्रगति, समृद्धि और सुख-शान्ति को न जाने कहाँ से कहाँ पहुँचा चुकी होती।

दुर्भाग्य की भी प्रतिक्रिया होती है। ध्वंस भी नये सृजन का उत्साह उत्पन्न करता है। अन्धकार का स्थान प्रकाश ग्रहण करे, ऐसी क्रिया-प्रतिक्रिया की व्यवस्था नियति के विधान में पहले से ही मौजूद है। पेण्डुलम की गति एक तथ्य है। उत्थान नहीं टिका तो पतन के ही पैर कैसे सदा जमे रह सकते हैं ? शक्तियों के स्रोत अपना चमत्कार दिखा चुके। वे खरे सिद्ध न हुये तो उनका स्थान ग्रहण करने के लिये अन्य तथ्य उभरकर आकर रहेंगे। सन्तुलन बिगड़े, विनाश जीते और शक्तियों का दुरुपयोग यथावत् चलता रहे, यह भी सम्भव नहीं। देखते हुये कुछ नई शक्तियों का उद्भव हो रहा है और वे विश्व के भाग्य भविष्य को नया मोड़ देने की तैयारी कर रही हैं।

देखने वाले देख सकते हैं कि एक शक्ति का उद्भव हो रहा है। उसका नाम है—भाव सम्वेदना। मनुष्य मूलतः दैवी कृति है। कषाय-कल्मषों के कुसंस्कार तो उस पर ऊपर से चढ़ते-लिपटते रहते हैं। बहुमूल्य स्फटिक मणियाँ भी कीचड़ में लिपटने से काली-कुरूप दीखती हैं। इतने पर भी अवसर मिलते ही वह अपने शुद्ध स्वरूप का परिचय देने लगती हैं। मनुष्य भावनाशील है। उसके अन्तराल की यह एक विशेष संरचना है। आत्मा का अपना अस्तित्व है और उद्देश्य, स्वरूप, पौरुष एवं प्रवाह भी। दबाव, आकर्षण, भटकाव उसे धकेलते-घसीटते तो हैं, परन्तु सतर्कता उदय होती है। उसमें इतनी क्षमता भी है कि अपने स्थान पर मजबूती से खड़ी हो सके और अपने रास्ते, अपने पैरों, अपने विवेक से स्वयं ही चल पड़े।

भाव संवेदना की शक्ति का उद्भव इसी स्थिति में समझा जा सकता है। इन दिनों अदृश्य के अन्तराल में कुछ ऐसा ही पक रहा है, जिससे भाव-शक्ति के उदय, उद्भव का पूर्वाभास मिलता है। ऊषाकाल की अरुणिमा देखकर यह अनुमान लगते देर नहीं लगती है कि अब व्यापक अन्धकार के पैर उखड़ने ही वाले हैं। अरुणोदय के साथ-साथ सारा वातावरण बदलने वाला है। उस माहौल से नव-जागरण का माहौल बनता है और निशाचरों की फौज को अपनी माँद से बिना भगाये ही घुसने-छिपने का मन करता है। ऐसे माहौल में पक्षियों की चहचहाहट ही नहीं प्राणि मात्र को कार्यरत होते और फूल-पल्लवों तक को खिलते, विकसित होते देखा जा सकता है। संक्षेप में भाव सम्वेदना के उदय-उद्भव का तात्पर्य यही है।

भावना अर्थात् मानवी गरिमा के अनुरूप उठती उत्कण्ठा। उसे उत्कृष्टता, आदर्शवादिता, श्रद्धा, शालीनता आदि नामों से भी जाना जा सकता है, यह अपने आप में एक बड़ी शक्ति है। इतनी बड़ी जिसके सम्मुख धन, शस्त्र, बल और कौशल की अवांछनीयता कितनी ही सशक्त होने पर भी टिक नहीं पाती। उसे दिशा बदलने के लिये विवश होना पड़ता है। सरकस के रिंग मास्टर का हन्टर बर्बर शेरों और उन्मत्त हाथियों को भी धरती से नाक रगड़ने के लिये विवश कर देता है। भाव शक्ति का उद्भव ऐसे ही हन्टर की भूमिका सम्पन्न करने लगे तो किसी को भी इसे अप्रत्याशित या असम्भव नहीं मानना चाहिये।

इन दिनों अदृश्य में मानवी गरिमा के साथ जुड़ी हुई मौलिक सामर्थ्य भाव श्रद्धा के रूप में प्रकट होने के लिये मचलती देखी जा सकती है। भीतर ही भीतर कुछ ऐसा उबल रहा है जिसे प्रसव पीड़ा की उपमा दी जा सकती है। न जाने कहाँ से—जाने कैसे-कैसे इतने व्यक्ति एक साथ भाव संवेदनाओं का प्रतिनिधित्व करने अनायास ही दीखने लगे हैं। उनकी उमंगें प्राचीनकाल के ऋषि, मनीषियों की तरह नाचने और देवताओं जैसे पराक्रम करने के लिये सन्नद्ध हो रही हैं। वातावरण बदलने का यह पूर्व संकेत है।

भाव शक्ति का जब भी उदय हुआ है, तो उसकी प्रखर-प्रचण्डता देखते ही बनी है। इतिहास साक्षी है कि कुछेक महामानवों ने समय के उल्टे प्रवाह को उलट कर सीधा कर दिया। इन दिनों भी भावनाशीलों की संख्या बढ़ रही है, उनके चिन्तन और पौरुष में भी प्रखरता का अनुपात बढ़ रहा है। प्रज्ञा परिजनों की गतिविधियों पर दृष्टिपात करने से इस भवितव्यता का पता सहज ही चल जाता है। इस आधार पर यह अनुमान लगाने में कठिनाई नहीं होनी चाहिये कि शक्तियों का उद्भव और दुरुपयोग का जो क्रम पिछले दिनों चलता रहा है, उससे भिन्न प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न होने में अब देर नहीं है।

सामाजिकता के विस्तार में एक सार्वभौम भाषा की आवश्यकता

वाणी अथवा लेखनी द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति में भाषा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। भाषा ने मानवी सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में असाधारण योगदान दिया है। विचारों एवं भावों को प्रकट न कर पाने के कारण मनुष्येत्तर जीवों को कितनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, यह सभी जानते हैं। यह कठिनाई आदि मानव के सामने भी थी। उसे अपना पिछड़ापन अच्छा न लगा। विकास की अन्तःप्रेरणा उठी और प्रयास चल पड़े। सबसे बड़ी समस्या आड़े आ रही थी विचारों को व्यक्त न कर पाने की। जिसके रहते परस्पर सहयोग-सहकार को अपनाकर प्रगति पथ पर आगे बढ़ना कठिन था।

इस दिशा में प्रयास चल पड़े और अनवरत प्रयत्नों के फलस्वरूप भाषा का विकास हुआ। निस्सन्देह वह मानव विकास के इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण दिन रहा होगा,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिस दिन उसे क्रमबद्ध भाषा का ज्ञान प्राप्त हुआ। विगत सदियों में समस्त संसार आज जैसा सिमटा हुआ नहीं था। विशाल भूभाग के कितने ही प्रदेश परस्पर एक दूसरे से अपरिचित थे। अपने सीमित क्षेत्र के अतिरिक्त भी दुनिया है इसका ज्ञान भी न था। वे अपने सीमित क्षेत्र में रहते—उसी परिधि में सोचते और सामुदायिक विकास के लिये प्रयत्न करते थे। अनेकानेक प्रकार की भाषाओं का विकास भी इसी कारण हुआ होगा। एक समुदाय—एक प्रदेश के लोगों ने अपनी सुविधानुसार भाषा विकसित कर ली और दूसरे ने दूसरी तरह की। इस प्रकार परस्पर एक-दूसरे से विलग रहने अथवा अपरिचित बने रहने से प्रायः जानकारियों का आदान-प्रदान न हो पाता था। विविध प्रकार की भाषाएँ विभिन्न सामाजिक परिवेश में विकसित होती चली गईं।

विकास के क्रमिक सोपान पर चढ़ते हुये आज मनुष्य वहाँ आ पहुँचा है, जिसे वैज्ञानिक युग कहा जाता है। विज्ञान के आश्चर्यजनक आविष्कारों ने एक से एक बढ़कर सुविधायें प्रदान की हैं। संचार, परिवहन, यातायात के नवीनतम साधन उपलब्ध हो जाने के कारण समस्त विश्व एक मौहल्ले की भाँति सिमट गया है। इतना होते हुये भी भाषाई भिन्नता के कारण एक समाज, एक देश के ज्ञान की जानकारी दूसरे को मिलने में वर्षों लग जाते हैं। ज्ञान-विज्ञान के इस युग में हर क्षेत्र में नित नये आविष्कार हो रहे हैं। एक भाषा रही होती तो समस्त संसार को उसका तत्काल लाभ मिलता किन्तु ऐसा नहीं हो पाता। वर्षों बाद दूसरी भाषाओं में विविध जानकारियों का रूपान्तर होता है, इस अवधि में तो वह ज्ञान पुराना पड़ जाता है और कितने ही उलट-फेर हो जाते हैं।

विश्व भर में अभी तक ज्ञात भाषायें तीन हजार के लगभग हैं। तेरह भाषाओं के माध्यम से संसार के लोगों से बातचीत की जा सकती है। विश्व की प्रमुख भाषायें हैं—डेनिस, स्वीडिश, नार्स, जर्मन, इटालियन, आइसलेण्डिस, पुर्तगाली, वेल्श, बल्गेरियन, आयरिश, पोलिश, हिन्दी, पर्शियन, चेक, फिनिश, अरेबियन, हिब्रू, उर्दू, वर्वर, सोमाली, टिवेटन, टर्कीज, बर्मीज, सियामिज, मन्चू, कोरियन, जापानी, स्वाहिली, उजवेक आदि।

अकेले भारत में एक सौ इक्यासी प्रकार की भाषायें और पाँच सौ चवालीस तरह की बोलियाँ बोली जाती हैं। भारत में छपने वाले दैनिक, साप्ताहिक, मासिक समाचार पत्रों की संख्या ८७०० है। अँग्रेजी के पत्र-पत्रिकायें दो हजार पाँच सौ साठ तथा हिन्दी के तीन हजार एक सौ बयालीस प्रकाशित होते हैं। शेष पत्र पंजाबी, गुजराती, मराठी, बंगाली, उर्दू, मलयाली आदि भाषाओं में छपते हैं। प्राप्त आँकड़ों के अनुसार प्रेस उद्योग के दैनिक प्रकाशनों में कुल पचपन करोड़ रुपये की धनराशि लगी हुई है। यह तो मात्र भारत के आँकड़े हैं। अन्यान्य देशों के अनुपलब्ध हैं। यूनाइटेड नेशन्स आर्गनाइजेशन द्वारा मान्यता प्राप्त देशों की कुल संख्या १५४ है। इन देशों का भी दैनिक प्रकाशनों में औसत व्यय भारत जितना ही माना जाय तो विश्व के दैनिक प्रकाशनों में प्रतिदिन खर्च ८४ अरब ७० करोड़ रुपये आते हैं। विविध विषयों पर विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं एवं पुस्तकों पर होने वाला व्यय इससे भी कई गुना अधिक है।

भाषा की अनेकता के कारण प्रकाशनों के लिये अनेकों प्रकार के 'टाइप' की व्यवस्था करनी पड़ती है। जिसे बनाने के लिये विपुल धनशक्ति और श्रमशक्ति लगी हुई है। अलग-अलग भाषाओं के लिये अलग व्यवस्था जुटाने में ढेरों समय, श्रम और धन की बर्बादी होती है। एक भाषा रही होती तो समय, श्रम और धन की बचत होती, जिसका नियोजन अन्यान्य रचनात्मक कार्यों के लिये किया जा सकता है।

यह तो अर्थ की बात हुई। भाषाओं की विविधता से परस्पर आपसी सम्बन्धों को मधुर एवं प्रगाढ़ बनाने में भी कठिनाई होती है। एक भाषा का जानकार दूसरी भाषा के जानकार से मिलता है तो परायापन जैसा लगता है। इसके विपरीत एक भाषा के बोलने वाले जब एकत्रित होते हैं तो अपनेपन की अनुभूति अपने आप होने लगती है। स्नेह और सहानुभूति के आदान-प्रदान का क्रम चल पड़ता है। विदेशों में अपने क्षेत्र के रहने वाले, अपनी भाषा बोलने वाले जब मिलते हैं तो सहज ही प्रसन्नता होती है और आत्मीयता बढ़ती है।

सूक्ष्मदर्शियों, विश्व के मूर्धन्य मनीषियों का कहना है कि अगले दिनों समस्त विश्व को एक राष्ट्र के रूप में विकसित होना होगा। इसके बिना अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बढ़ते हुये तनावों को कम नहीं किया जा सकेगा। अस्तु, योजनायें 'ग्लोवल' स्तर पर बनानी होंगी। विश्व-मानव की सुख-शान्ति का लक्ष्य लेकर चलना होगा। इस महान लक्ष्य की आपूर्ति में पहला कदम उठाना होगा, समस्त संसार के लिये एक भाषा के नवनिर्धारण का।

पिछली एक सदी में इस दिशा में कुछ छुट-पुट प्रयास भी चले हैं किन्तु सुव्यवस्थित न होने से उतने सफल न हो सके। कितने ही विद्वानों ने विश्व को एक स्थायी सार्वभौम भाषा देने के लिये अपने-अपने स्तर पर प्रयत्न किये हैं। सन् १८८७ में पोलैण्ड के 'डा. लूडाविक जेम्स हाफ' ने 'एस्पेरन्टी' भाषा का विकास किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने एक पुस्तक भी लिखी है—'टोकटोरोऐस्पेरेन्टो।' इस पुस्तक में कुल ९१२ शब्द हैं। जो विश्व की प्रमुख लिपियों से लिये गये हैं। आरम्भ में इस भाषा का प्रयोग ८३ देशों के एक लाख व्यक्तियों ने किया। ५० राष्ट्रीय एशोसिएशन, २२ अन्तर्राष्ट्रीय व्यावसायिक समुदाय और १२० से भी अधिक लोकल क्लब और संस्थाओं ने इसका प्रयोग किया। किन्तु विश्व राष्ट्रसंघ अथवा 'लीग ऑफ नेशन्श' द्वारा यह मान्यता प्राप्त न कर सकी। आरम्भ में जो उत्साह दिखाई पड़ा, लोगों में वह भाषा के प्रति बाद में समाप्त हो गया। अपनी कमियों के कारण यह भाषा विश्व-भाषा का रूप न ले सकी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसके पूर्व भी 'जोन मार्टिन स्केलेयर' नामक विद्वान ने अनेकों भाषाओं के सम्मिश्रण से १८८० में 'वोलापिक' नामक भाषा को विश्व-भाषा का स्वरूप देने का प्रयास किया किन्तु यह प्रयास असफल रहा। इसका कारण था उसका असम्बद्ध, अव्यवस्थित और अधूरा प्रयत्न।

सन् १९०७ में 'लायस डी. व्यूफ्रान्ट' नामक विद्वान ने एस्पेरन्टो भाषा से प्रेरणा लेकर नये सिरे से अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के लिये प्रयास किया। नव आविष्कृत भाषा का नाम उसने रखा—'इडो' किन्तु यह भी मात्र चर्चा तक सीमित रही और विश्व-भाषा का स्वरूप नहीं ग्रहण कर सकी। इस दिशा में सोचने और कुछ करने वाला चौथा व्यक्ति था—डेनमार्क का 'ओटोजेसपर्सन'। उसने १९२८ में 'नोवियल' नामक भाषा का आविष्कार किया किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इसे भी अपनी कमियों के कारण मान्यता न मिल सकी।

लेटिन भाषा को आधार मानकर गणितज्ञ 'गायस पी. पीयनो' ने १९०३ में 'इन्टरलिंगुआ' लेटिनोसाईनफलेक्सिन नामक भाषा का विकास किया। यह विभिन्न भाषाओं की खिचड़ी थी। इस तरह का दूसरा प्रयास करने वाला व्यक्ति था 'एडगर डी. वहल'। १९२२ में 'आक्सीडन्टल' नाम की भाषा को उसने विश्व-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया किन्तु विश्व-भाषा के लिये उपयोगी विशेषताओं के अभाव के कारण उसे असफलता ही हाथ लगी।

ब्रिटिश मनोवैज्ञानिक और शिक्षाशास्त्री 'चार्ल्स के. ओडगन' ने सन् १९३२ में अँग्रेजी की लोकप्रियता को देखते हुये 'बेसिक इंग्लिश' में ही आवश्यक हेरफेर करके अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। ८५० शब्दों का एक नया शब्दकोष तैयार किया गया किन्तु विश्व की प्रमुख भाषा को ही वरीयता और महत्त्व दिये जाने से बेसिक इंग्लिश को भी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में मान्यता न मिल सकी।

इन असफलताओं के बावजूद भी विश्व-भाषा की आवश्यकता सर्वत्र अनुभव की जा रही है। 'इनसाइक्लोपीड़िया ब्रिटेनिका' ने उपरोक्त प्रयासों पर अपनी टिप्पणी देते हुये लिखा है कि "विश्व में एक सार्वभौम भाषा की खोज जारी है। अब तक इस दिशा में पूर्ण सफलता नहीं मिल सकी, इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि भविष्य में खोज बन्द हो जायेगी। इसकी पूरी-पूरी सम्भावना है कि समय के विकास के साथ-साथ यह अनुभव किया जायेगा कि बहुत सारी भाषाएँ विस्तृत संसार और मानवी विकास में अवरोधक हैं। विविध भाषाओं के सीमित क्षेत्रों में प्रयोग की असुविधा के कारण अगले दिनों एक भाषा चुनने और विकसित करने की आवश्यकता पड़ेगी।" समस्त विश्व को भावनात्मक एकता के सूत्र में आबद्ध करने के लिये इस दिशा में अब मनीषियों को सोचना और नवनिर्धारण के लिये अविलम्ब कदम उठाना चाहिये।

राष्ट्र निर्माण के लिये राष्ट्रभाषा की प्रगति भी अनिवार्य है

बाबू राजेन्द्र प्रसाद का 'विद्यारम्भ संस्कार' उस जमाने के रिवाज के अनुसार एक मौलवी के पास उर्दू-फारसी में कराया गया था। नतीजा यह हुआ कि वे स्कूल और कालेज में भी इण्टर तक अँग्रेजी के साथ उर्दू—फारसी ही पढ़ते चले गये। पर जब वे कलकत्ता जाकर बी. ए. में भर्ती हुये तो उनके सामने कई भाषाओं में से एक को चुनने का प्रश्न उपस्थित हुआ। यद्यपि उन्होंने अभी तक हिन्दी नहीं पढ़ी थी और कालेज में हिन्दी के अध्ययन की व्यवस्था भी नहीं थी, तो भी उनका झुकाव विशेष रूप से हिन्दी की तरफ हुआ। सम्भवतः इसका कारण उनकी राष्ट्रीय और जातीय भावनायें ही थीं। उनके कई मित्रों ने कहा कि तुम हिन्दी लेकर बड़ी गल्ती करोगे। जब अभी तक तुमने उसे कभी नहीं पढ़ा तब एकाएक बी. ए. में उसे लेने का नतीजा यह होगा कि उसमें तुम्हें बहुत कम नम्बर मिलेंगे और तुम्हारा डिवीजन खराब हो जायेगा। पर राजेन्द्रबाबू ने उनका समाधान यह कहकर कर दिया कि "हिन्दी तो हमारी मातृभाषा है, उसके न सीखने या नम्बर कम आने का सन्देह करना व्यर्थ है। हमको आखिर अपनी मातृभूमि और मातृभाषा की सेवा करके अपना कर्त्तव्य पालन करना ही होगा। तब उसको बिना सीखे कैसे काम चल सकता है ?"

उन्होंने सब प्रकार शंकाओं को त्यागकर हिन्दी ही ली और घर पर निजी तौर पर अध्ययन करके बहुत अच्छे नम्बरों से पास हो गये।

राजेन्द्र बाबू ने जैसे सोचा था, वही कुछ समय पश्चात् सामने आया। राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ देश में राष्ट्रभाषा की आवश्यकता और उसके प्रचार के लिये प्रयत्न करने की तरफ नेताओं का ध्यान गया। श्री पुरुषोत्तमदासजी टण्डन तथा उनके सहयोगियों ने प्रयाग में, 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य राष्ट्रभाषा के रूप में समस्त भारत में हिन्दी का प्रचार करना था। सम्मेलन का तीसरा वार्षिकोत्सव सन् १९१३ में कलकत्ता में हुआ और राजेन्द्रबाबू को स्वागत समिति का प्रधानमन्त्री बनाया गया। उसी समय पटना में ऑल इण्डिया काँग्रेस का अधिवेशन हो रहा था, पर आप हिन्दी साहित्य सम्मेलन की व्यवस्था में इतने व्यस्त रहे कि पटना न जा सके। सन् १९२३ में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के सभापति भी बनाये गये। प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनों के कई अधिवेशनों में आपने अध्यक्षता की थी।

आपने जो हिन्दी प्रचार का कार्य १९१३ में उठाया था वह आजन्म चलता ही रहा। आगे चलकर आप ही सम्मेलन की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के अध्यक्ष बनाये गये और उसके द्वारा मद्रास तथा आसाम जैसे दूरवर्ती प्रान्तों में वर्षों तक हिन्दी के पठन-पाठन और प्रचार की व्यवस्था

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की गई। कुछ लोग उस समय इस प्रचार की उपयोगिता न समझकर उसकी विपरीत आलोचना करते थे। ऐसे लोगों को उत्तर देते हुये आपने लिखा था—

"राष्ट्र के लिये राष्ट्र भाषा आवश्यक है और वह भाषा हिन्दी ही हो सकती है। इसमें दक्षिण वालों ने पूरा सहयोग दिया। इधर कई वर्षों से इस कार्य में होने वाला वहाँ का सारा खर्च, वहाँ के लोगों से ही मिल जाता है और उत्तर भारत से धन नहीं भेजना पड़ता। मैं समझता हूँ कि इसी प्रकार अन्य हिन्दी प्रान्तों में भी कुछ दिनों काम करने के बाद हमारा वैसा ही अनुभव होगा।" "हिन्दी प्रचार को मैं भीख की झोली नहीं मानता और न यह मानता हूँ कि इसके पीछे कोई द्वेष बुद्धि है। इसका एक उद्देश्य है सारे देश के लिये एक राष्ट्र भाषा का प्रचार। किसी भी प्रान्तीय भाषा को मिटाने या कमजोर करने की इच्छा किसी के दिल में स्वप्न में भी नहीं आयी और न आवेगी। हम राष्ट्र के प्रति अपना कर्त्तव्य-मात्र कर रहे हैं और उसे करते रहने में ही हमारा और देश का कल्याण है।"

सभ्य समाज की सुसंस्कृत रचना और पुस्तकालय

रौम्यां रोलां ने एक बार भाषण में कहा—"किसी राष्ट्र का लोकतन्त्रात्मक जीवन विघटित और विश्रृंखलित हो जाता है तो उसे सभ्य और सुसंस्कृत बनाने के लिये मूक विचार क्रान्ति की आवश्यकता होती है।"

"मूक विचार क्रान्ति का तात्पर्य क्या है ?" यह पूछा गया तो उन्होंने उत्तर दिया—पुस्तकालय ! ऐसे पुस्तकालय जो ज्ञान के माध्यम से सामाजिक जीवन में व्याप्त बुराइयों, क्लेश और संतापों को मिटाने में योगदान दे सकते हों। पुस्तकालय धर्म, संस्कृति, सम्प्रदाय छोटे-बड़े, ऊँचे-नीचे से परे एक ऐसी संस्था है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी ज्ञानशक्ति और क्षमताओं का विकास कर सकता है।"

डा. एस. आर रंगनाथन् को पुस्तकालय विज्ञान पर लगभग ५० शोधग्रन्थ लिखने पर भारत सरकार ने पद्मश्री की उपाधि से विभूषित किया। ग्रन्थ लिखना अपने आप में उतना महत्त्वपूर्ण नहीं था, जितना अपने सिद्धान्त को व्यावहारिक सिद्धि प्रदान करना। श्री रंगनाथन् कोई उद्योगपति या साधनसम्पन्न नहीं हैं। इस युग में भारत में लेखक की आय ही कितनी होती है, तो भी उन्होंने पुस्तकालय विज्ञान विभाग के विकास के लिये अपनी कमाई का कण-कण जोड़कर १ लाख रुपये की पूँजी मद्रास विश्वविद्यालय को भेंट की। इस अनुपम त्याग के पीछे उनका एक ही संकल्प है कि राष्ट्र के बौद्धिक चरित्र का विकास हो। पुस्तकालय को उसका प्रमुख उपादान बताते हुये उन्होंने लिखा है—

"हम अपने समाज में जिन मानवीय, आदर्शों की स्थापना करना चाहते हैं, धर्म अध्यात्म, संस्कृति और नैतिकता का प्रकाश समुपलब्ध करना चाहते हैं, उसकी पूर्ति न तो कानून कर सकता है न प्रबुद्धतन्त्र। इसका आधार सामाजिक शिक्षा ही हो सकती है। एक ऐसी खिड़की होनी चाहिये जो भीतर बैठे हुये व्यक्ति को सूर्य का प्रकाश लाकर देती रहे। पुस्तकालय ही वह माध्यम हैं जो जिज्ञासा की अग्नि को प्रज्ज्वलित किये रह सकते हैं। सामाजिक शैक्षणिक संस्था के रूप में वे मानव हृदय को नैतिकता की दिशा देते रह सकते हैं।"

रूस की सामाजिक चेतना के विकास में पुस्तकालयों ने असाधारण रूप से काम किया है। स्टैलिन को हटे हुये अभी बहुत समय नहीं हुआ। इतने थोड़े से समय में आर्थिक, औद्योगिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक दिशा में जो भारी परिवर्तन हुये हैं, उनमें पुस्तकालयों का सर्वाधिक योगदान माना जाता है। उल्लेखनीय है कि दुनिया में सर्वाधिक पुस्तकालय रूस में हैं। किंवदन्ती है कि यदि रूस के पुस्तकालयों में लगी हुई आलमारियाँ एक पंक्ति में लगाई जायें तो मास्को और रोम को जोड़ा जा सकता है।

मनुष्य के विकास के लिये तथ्यों, घटनाओं, जीवन चरित्रों, प्रसंगों, निबन्धों का विविधतापूर्ण विचार-पुंज चाहिये। परिवर्द्धित ज्ञान ही बौद्धिक कार्य कुशलता को परिष्कृत बनाये रख सकता है। परिष्कृत ज्ञान और विवेक ही स्थायी प्रगति की ओर अग्रसर कर सकता है।

विद्यालयों में उतनी व्यवस्था सम्भव नहीं। वहाँ शिक्षा के सीमित उद्देश्य रहते हैं, इसलिये पाठ्यक्रम और विधियाँ भी सीमित रहती हैं। विद्यालय मनुष्य का विकास करने में समर्थ नहीं, वे केवल मनोभूमि की प्रारम्भिक तैयारी कर सकते हैं। किन्तु व्यावहारिक जीवन का मार्गदर्शन उतने से होना तो सम्भव नहीं। उसका क्षेत्र विशाल है। आवश्यकतायें विशाल हैं, उसी के अनुरूप ज्ञान का क्षेत्र भी विशाल और बहुमुखी होना चाहिये। तभी तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी विशेषता और आवश्यकता के अनुकूल अपना सही रास्ता चुन सकता है। यह सब सम्भव है पर जिस समृद्ध ज्ञान की कल्पना यहाँ दी जा रही है। वह वैयक्तिक रूप से नहीं जुटाई जा सकती, उसके लिये पुस्तकालय चाहिये। स्थान-स्थान पर, मुहल्ले-मुहल्ले, गाँव-गाँव और हर विद्यालय में पुस्तकालय चाहिये। पुस्तकालय ही एकमात्र मस्तिष्कीय पोषण प्रदान कर सकते हैं।

ज्ञान का विकास नियमित, शनैः-शनैः और आजीवन होता है। विद्यालय की शिक्षा प्रारम्भिक अवस्था में थोड़े दिन के लिये होती है, इसलिये मूल आवश्यकता की पूर्ति पुस्तकालय करते हैं विद्यालय सहायक मात्र हैं।

आर्थिक, औद्योगिक, वैज्ञानिक और मनुष्य जीवन की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये जहाँ सामान्य पुस्तकालयों की आवश्यकता है, वहाँ भारत की अपनी विशिष्टता का मान रखना भी आवश्यक है। हम एक ऐसे धार्मिक वातावरण में पले हैं कि वह हमारे रक्त में समा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गया है। जिस तरह सम्पूर्ण विश्व की व्यवस्था के लिये नैतिकता, भाईचारा, परस्पर सहयोग, प्रेम-आत्मीयता आदि मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा चाहिये, हमारी विशिष्टता को उसी प्रकार दर्शन, अध्यात्म अर्थात् जीव, आत्मा, परमात्मा का भावना-सम्मत पुष्ट ज्ञान भी चाहिये। हम इस विशिष्टता से बच नहीं सकते क्योंकि वही हमारा जीवन है, उसकी विश्व के लिये उपयोगिता भी है।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये पुस्तकालयों की रचना के लिये राजतन्त्र पर आधारित नहीं रहा जा सकता। उसके लिये अपनी ही सामाजिक व्यवस्था बनानी पड़ेगी, ऐसे पुस्तकालय स्थापित करने होंगे जो भारत की सांस्कृतिक परम्पराओं और सनातन सिद्धान्तों की रक्षा कर सकें। अज्ञान, भय, लोभ, स्वार्थ, हिंसा, प्रतिशोध, प्रतिकार की दुर्भावनाओं को नष्ट कर शोषणविहीन, अपरिग्रह, स्नेह और सहयोग से परिपूर्ण सुरक्षित समाज खड़ा करने का सन्देश दे सकें।

ज्ञान का उद्देश्य स्वार्थ से बदलकर परमार्थ होना चाहिये। जब तक मनुष्य का जीवन दर्शन दृष्टिकोण पारलौकिक नहीं होता, तब तक उद्देश्य नहीं बदलेंगे। ज्ञान और शिक्षा से समृद्ध होते हुये भी समाज की दिशा न बदलेगी। इसलिये हमें भारतीय पुस्तकालयों की अपनी विशिष्टता बनाये रखनी होगी। उन्हें वही रूप देना होगा जो हमारी दृष्टि से किसी तीर्थ स्थल या देवस्थान का होता है। भारतवर्ष में समाजवाद और लोकतन्त्र का यथार्थ विकास यहीं से प्रारम्भ होगा और इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है।

आज धन को ही प्रतिष्ठा, सम्मान, गौरव, ज्ञान एवं योग्यता का मापदण्ड मान लिया गया है। इसलिये धन एकत्र करने की भावना सर्वत्र घर करती जा रही है। जिसके पास धन है वही गुणों का भी अधिष्ठाता माना जाता है। उसमें ज्ञान, चरित्र, धर्म और नैतिकता का भले ही अभाव हो, यदि धन ही है तो सब कुछ है यह भावना हमारे समाज का बड़ा अहित कर रही है। पर यह मापदण्ड बदले कैसे यह विचारणीय प्रश्न है। इन बातों पर विचार करते हुये हम पुनः उसी स्थान पर लौटते हैं और यह अनुभव करते हैं कि यह कार्य ज्ञान आराधना की पूर्ति से सम्पन्न हो सकेगा। यह ज्ञानभौतिक और सामान्य विषयों तक तो दूसरे देशों में की है, हमें मनुष्य की फिलासफी में उतरना होगा। यह भी देखना होगा कि यह विश्व प्रपंच, कौतुक और चमत्कार क्या है जो विशाल ब्रह्माण्ड के रूप में खड़ा है।

इस जीवन-दर्शन के अनुरूप जो ज्ञान दे सकें, वही पुस्तकें और पुस्तकालय हमारे लिये उपयोगी साबित हो सकते हैं, उन्हीं से समाजवाद और लोकतन्त्र की सफलता मिल सकती है। उन्हीं की स्थापना के लिये प्रयत्नशील होने की आवश्यकता है। सभ्य और सुसंस्कृत समाज की रचना में इनसे भारी योगदान मिल सकता है।

समाज निर्माण में पुस्तकालयों की भूमिका

१९६५ की सर्वे रिपोर्ट के अनुसार भारतवर्ष के नगरों की कुल संख्या ३०१८ थी और गाँवों की ५५८०८६। १९५१ की जनसंख्या सारिणी बताती है कि उस समय भारतवर्ष की कुल आबादी ३५६८१४ थी, १९५६ तक वह ३८.६५ करोड़ हो चुकी थी, अनुमान है कि अब भारतवर्ष की कुल जनसंख्या लगभग ६५ करोड़ होगी। इस जनसंख्या का केवल १७.३ प्रतिशत भाग शहरों में रहते हैं, शेष लोग गाँवों में रहते हैं। ६.४४ करोड़ घरों में ५.४१ घर गाँवों में हैं। गाँव इस देश की आत्मा हैं। यहाँ के भाग्य बनने-बिगड़ने का उत्तरदायित्व इस प्रकार इन गाँवों पर ही है, जबकि अभी भी वहाँ अशिक्षितों की संख्या ८० प्रतिशत से अधिक है।

राजनीति की बात नहीं कहते, क्योंकि वह पंगु हो गई है। सरकारें अपने स्थायित्व और प्रभुत्व की समस्या से ही मुक्ति नहीं ले पा रही हैं। समृद्धि और सफलता के सही अर्थ को समझना इनके बूते की बात कहाँ ? ऐसे समय एक प्रश्न जो केवल शिक्षितों से ही किया जा सकता है ? यह है कि इस विशाल जनसंख्या के बौद्धिक स्तर को उठाये बिना क्या राष्ट्र की प्रगति हो सकती है ? सबसे बड़े वर्ग की सामाजिक, नैतिक, आर्थिक और मानसिक उन्नति किये बिना क्या राष्ट्र के भविष्य को समृद्धि और सफलता के द्वार तक पहुँचाया जा सकता है। यदि नहीं तो किन क्रान्तिकारी उपायों द्वारा इन अभावों को दूर किया जा सकता है।

इस प्रश्न का सही उत्तर प्राप्त करने के लिये इतिहास के पन्ने पलटने पड़ेंगे। हम समृद्ध और सफल देशों के इतिहास की गहराई में प्रवेश करते हैं तो पाते हैं कि जिन देशों ने भी क्रान्तिकारी सफलतायें पाई हैं, उनने पुस्तकालय स्थापना को आन्दोलन का रूप देकर ही प्रजा में प्रगतिशीलता के विचार और साहस जाग्रत किया है। १८७६ तक अमेरिका ने जो प्रगति की और उसके बाद की शताब्दी में उसने जो उपलब्धियाँ प्राप्त कीं, उनमें बाद की उपलब्धियों के आगे पिछली सारी समृद्धि और सफलता सूर्य के सम्मुख मिट्टी के दिये की तरह ही तुच्छ जान पड़ने लगती है।

१८७६ में केन्द्रीय सरकार ने पुस्तकालय आन्दोलन की सर्वसम्मत योजना बनाई और राज्य सरकारों के माध्यम से उनका तेजी से प्रसार किया। संचालन और व्यवस्था के लिये बड़े-बड़े कार्यक्रम बनाये गये। इस पर खर्च हुये धन को आज भी अमेरिका अपने विनियोग का सर्वोत्तम उपयोग मानती है। यहाँ के सभी सार्वजनिक संस्थानों के पास और कुछ हो या न हो पुस्तकालय अवश्य मिलेंगे, उनमें योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति की गई। पुस्तकालय को एक स्वतन्त्र विज्ञान मानकर उसके विकास के लिये जो भी सम्भव प्रयत्न थे किये गये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

डॉ. मेलविल ड्यूवी ने वैज्ञानिक लाइब्रेरी क्लासीफिकेशन' का आविष्कार किया, जिसमें यह अध्ययन किया जाता है कि किस क्षेत्र के लोगों के लिये किस प्रकार का साहित्य उपयुक्त रहेगा। ५००० जनसंख्या के लिये कम से कम एक पुस्तकालय की व्यवस्था अनिवार्य कर दी गई। पुस्तकालय आन्दोलन ने इतनी तीव्र प्रगति की कि अब यहाँ घर-घर 'ज्ञान-मन्दिरों' के प्रतीक पुस्तकालयों की स्थापना लोगों की व्यक्तिगत हैवी बन गई है। इस समय वहाँ के ८० प्रतिशत नागरिक निःशुल्क सार्वजनिक पुस्तकालयों का उपयोग करते हैं। १३६७६ पुस्तकालयों में ७५०० सार्वजनिक पुस्तकालय हैं, जिनकी १५०० शाखायें सारे अमेरिका में फैली हुई हैं।

इन पुस्तकों से ३७०००००० व्यक्ति लाभ उठाते हैं। प्रतिवर्ष १६११२७००० पुस्तकें वितरित की जाती हैं, पुस्तकों की खरीद में लगी पूँजी के अतिरिक्त केवल संचालन और व्यवस्था में अमेरिका प्रतिवर्ष १०६६२४०० डालर खर्च करता है। नई पुस्तकों की खरीद में १२०००००० डालर का व्यय इससे अतिरिक्त होता है। राष्ट्रीय स्मारक के रूप में वाशिंगटन में डी. सी. स्थित काँग्रेस पुस्तकालय सारे विश्व में एक उदाहरण है। यह पुस्तकालय ३६ एकड़ भूमि में बना है। इसमें १ करोड़ ३० लाख पुस्तकें, ३ करोड़ अन्य सामग्री जिसमें शोध ग्रन्थ, पाण्डुलिपियाँ मानचित्र और रिकार्ड पुस्तकें हैं। इसमें जितनी अलमारियाँ काम में ली गई हैं, यदि उन्हें एक सीध में खड़ा कर दिया जाय तो उनकी लम्बाई २७० मील होगी।

इतने धन की व्यवस्था, प्रबन्ध की जिम्मेदारी केवल इसलिये उठाई गई है कि अमेरिकन पुस्तकालय के महत्त्व को समझते हैं। विज्ञान के प्रति नित्य नई शोधों के लिये आवश्यक मस्तिष्क विद्यालयों ने ही तैयार किया है। यहाँ लोगों ने पुस्तकालयों की उपयोगिता समझी, इसका सबका बड़ा प्रमाण यही है कि पाठकों को पुस्तकों के लिये स्वयं आग्रह करना पड़ता है, उन्हें आकर्षित नहीं किया जाता। कई बार तो ऐसा भी होता है कि अपने नम्बर के लिये लोगोंको प्रतीक्षा भी करनी पड़ती है। लोग अनुभव करते हैं कि पुस्तकालय उनकी सम्पत्ति है और उनके जीवन के उत्थान में सबसे बड़ा सहयोग भी उन्हीं से मिल सकता है।

जन अभिरुचि और वहाँ के शिक्षितों के हार्दिक समर्थन का ही फल है कि सार्वजनिक पुस्तकालयों के अतिरिक्त अमेरिका में १४०० से अधिक कालेजों में, ६०० जूनियर कालेजों में तथा ४२००० सार्वजनिक स्कूलों में पुस्तकालय हैं। ३००० विशेष पुस्तकालय, १००० चिकित्सा सम्बन्धी, ७०० कानूनी, ६०० सेनाओं सम्बन्धी, ४०० सार्वजनिक प्रशासन सम्बन्धी पुस्तकालय हैं। अमेरिका के जन-जीवन में पुस्तकालयों के प्रभाव का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है।

जापान की औद्योगिक क्रान्ति में पुस्तकालयों के योगदान पर पहले चर्चा कर चुके हैं। रूस ने १९२१ में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य की, पर उन्होंने देखा कि इससे सामान्य जन-जीवन में विचार-क्रान्ति के आसार कम हैं, फलस्वरूप अनेक विद्वान् व्यक्तियों की एक कमेटी नियुक्त की गई, कमेटी ने अपनी योजना प्रस्तुत करते हुये बताया "व्यक्ति और समाज दोनों के हित की दृष्टि से हमारी यह मान्यता है कि सारे देश में पुस्तकालयों का जाल बिछा दिया जाना चाहिये। लोग अपने भीतर छिपे हुये वर्चस्व को जाग्रत करने के लिये, तब तक अवसर नहीं मिलता, जब तक मस्तिष्क में विचारों का कीड़ा निरन्तर घूमता न रहे। पुस्तकालय लोगों के मन जगा सकते हैं और उन्हें उन्नति की तीव्र आकांक्षा के साथ सामाजिक कर्त्तव्यों की भी प्रेरणा दे सकते हैं।" इस राय को सरकार ने स्वीकार कर लिया, उसी वर्ष पुस्तकालय सम्बन्धी कानून बनाकर उन्हें लागू भी कर दिया गया। आज संसार में सारे विश्व से अधिक पुस्तकालय रूस में हैं।

रूस में ३८१००० पुस्तकालय हैं। अधिकांश पुस्तकालय ग्रामीणों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर स्थापित किये गये हैं। यहाँ प्रत्येक १००० व्यक्तियों पर १ पुस्तकालय है, देहातों के लिये १ लाख ग्रामीण पुस्तकालयों की स्थापना की गई है। इन पुस्तकालयों में १८११ लाख पुस्तकें लोगों को टेक्नालोजी, सांस्कृतिक, बौद्धिक विकास की प्रेरणा देती रहती हैं।

अधिक से अधिक लोग पुस्तकालयों के सम्पर्क में आयें और उनसे लाभ प्राप्त करें, इसके लिये सोवियत संघ में नगरों, सार्वजनिक स्थानों, मेलों और पर्वों पर साहित्यिक प्रदर्शनियाँ आयोजित की जाती हैं। उनमें भाषणों की व्यवस्था रहती है, पुस्तकालय और स्वाध्याय के महत्त्व पर प्रकाश डाला जाता है, जिसके कारण आज वहाँ के पुस्तकालय लोगों के सामाजिक अंग बन चुके हैं।

अच्छा साहित्य सुनसान में जीवन ला देता है, इसका सबसे अच्छा उदाहरण है रूस। यहाँ की प्रगति देखकर कोई भी अनुमान कर सकता है कि लोगों के बौद्धिक स्तर को ऊँचा उठाने में पुस्तकालयों ने कितना योगदान दिया है।

ग्रेट ब्रिटेन की ३०००० से अधिक लाइब्रेरियों का प्रबन्ध वहाँ का शिक्षा विभाग करता है। पुस्तकें वितरित करने के लिये 'सर्विस पाइन्ट' तैयार किये गये हैं, जो लोगों की मानसिक स्थिति का अध्ययन और क्षेत्रीय आवश्यकता के अनुसार पुस्तकें मँगाते और लोगों को पढ़ाते हैं।

आज तो स्थिति कुछ और है पर कोई दिन था, जब भारतवर्ष में पुस्तकालयों की आवश्यकता को उसी प्रकार अनुभव किया गया था, जिस प्रकार आज के सभी प्रगतिशील देशों ने अनुभव की है। यहाँ ग्रामीण पुस्तकालयों के अतिरिक्त चलते-फिरते पुस्तकालय भी होते थे। मनीषियों, सन्तों, समाज सुधारकों के पास हस्तलिखित पुस्तकों के भण्डार हुआ करते थे। वे जहाँ भी जाते थे, लोगों को इन ज्ञान-दीपों का प्रकाश दिया करते थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुस्तकालयों से निरन्तर प्रेरणा मिलती रहने के कारण सामाजिक क्रियाशीलता जीवित थी। अनुशासन था, सामाजिकता थी, कर्त्तव्य पालन के भाव थे, पांडित्य था, दर्शन था और वह सब कुछ था, जो आज किन्हीं विज्ञान एवं टेक्नालॉजी में उन्नत देशों में उपलब्ध है।

राज्यपोषी पुस्तकालयों में नालन्दा व तक्षशिला के पुस्तकालयों की अभी भी ख्याति है। प्रसिद्ध चीनी यात्री व्हेनसांग और इत्सिंग ने नालन्दा के विश्वविद्यालय का वर्णन करते हुये लिखा है—"वहाँ का पुस्तकालय तीन विशाल इमारतों में स्थापित था। इनके नाम रत्नसागर, रत्नोदधि, रत्नरंजक थे।" रत्नसागर ९ मंजिला ऊँचा पुस्तकालय था, इनमें अर्थशास्त्र, वेद, उपनिषद्, दर्शन, योगविद्या के साथ यन्त्र-तन्त्र सम्बन्धी पुस्तकें भी थीं। इस देश के लोगों में ज्ञान प्राप्ति की अदम्य पिपासा भरी हुई है, ऐसा लगता है कि इस देश ने जो उन्नति की है, उसका कारण उनका बहुमुखी विकसित ज्ञान ही है।"

ज्ञान और विचार भी व्यक्तित्व के विकास का द्वार खोलते हैं, अज्ञानी व्यक्ति तो अधिक से अधिक पेट भर सकता है, बच्चे पैदा कर सकता है। आज हमारे देश में यही सब हो भी रहा है। हमारे ज्ञान-स्रोत सूखे पड़े हैं, यहाँ भी लोगों को निरन्तर ज्ञान का प्रकाश मिलता रहे, ऐसी कुछ भी व्यवस्था नहीं है। अमेरिका पुस्तकालय सेवा के लिये प्रति व्यक्ति ५ रु., ब्रिटेन तीन रुपया, चेकोस्लोवाकिया दो रुपया खर्च करता है। रूस में प्रति व्यक्ति २३ पुस्तकें आती हैं पर भारतवर्ष में कई हजार पर भी औसत १ रुपया पुस्तकालयों के लिये नहीं आता। यहाँ की सरकार भी इस दिशा में सुप्त है। पुस्तकालय जैसी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योजना के लिये तृतीय पंचवर्षीय योजना के ६३० पन्नों के इतिहास में कुल १५ लाइनें मिली हैं।

यही कारण है कि २२ वर्षों की स्वाधीनता के बाद भी भारतवर्ष की प्रगति के आँकड़े कछुये की गति से बढ़ रहे हैं। शहरों में तो कुछ शिक्षा के भी अच्छे प्रबन्ध है, पुस्तकालय भी हैं पर साढ़े पाँच लाख गाँव तो ज्ञान के प्रकाश से शून्य पड़े हैं। इनमें रहने वाले ग्रामीणों में आज साहस है न मनोबल, ज्ञान है न बुद्धि, विवेक है न समुचित महत्वाकांक्षायें। अंधविश्वास, रूढ़िवाद, सामाजिक कुरीतियों से घिरे जन-अन्तःकरण को आन्दोलित करने की आवश्यकता अधूरी पड़ी है।

हर शिक्षित व्यक्ति का यह उत्तरदायित्व होता है कि यह संसार को अच्छा बनाने का प्रयत्न करे। पर हमारे सामने तो आज अपने आप अच्छा बनने का ही उत्तरदायित्व बहुत काफी है। यदि इसे ही पूरा कर लें तो बहुत है। इतिहास के पृष्ठ पलटने और जन-क्रान्तियों को गहराई में पैठ करने से पता चलता है कि राष्ट्र के अभ्युत्थान की, सभ्य समाज के निर्माण की आकांक्षा पुस्तकालयों से ही पूरी होगी। उसके लिये सरकार का मुख नहीं देखा जा सकता। यह उत्तरदायित्व शिक्षितों का है, उन्हें ही इसे पूरा भी करना पड़ेगा।

समाज सुधार के लिये सत्संग का महत्त्व

व्यक्ति और समाज का पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि समाज समुन्नत और शिक्षित व चरित्रवान् है तो उसमें रहने वाला एक नवीन व्यक्ति भी उसी प्रकार बनने का प्रयत्न करेगा। इसके विपरीत यदि समाज में बुरे लोगों का बहुमत है तो हो सकता है कि वह सारा समाज ही एक न एक दिन शिष्ट व शिक्षित लोगों के द्वारा निन्दनीय बन जायेगा। जब हम वर्तमान समाज पर अपनी दृष्टि डालते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि आज मानवता की किरणें प्रकाशहीन-सी बन चुकी हैं। मानवता के स्थान पर दानवता ने अपना साम्राज्य कर लिया है।

जब किसी भी महापुरुष की दृष्टि समाज सुधार की ओर जाती है, तो उसके सामने दो ऐसी बड़ी कमियाँ आती हैं जो सामाजिक पतन का मुख्य कारण है। उनमें एक है—व्यक्तिगत स्वार्थ और दूसरी है—पुरुषार्थहीनता। व्यक्तिगत स्वार्थ की मात्रा यहाँ तक बढ़ चुकी है कि ऐसा व्यक्ति जो स्वार्थ साधन में लगा हुआ है, अपने कुटुम्ब अथवा सगे-सम्बन्धियों से भी इस कार्य में नहीं चूकता और इसके साथ ही साथ दानवता का इतना विकास हो चुका है कि हमारे व्यवहार से दूसरे का अहित भले ही हो जावे अथवा दूसरे को अपने प्राणों से ही हाथ धोना क्यों न पड़े किन्तु हमारे स्वार्थ की पूर्ति अवश्य होनी चाहिये। ब्लैक मार्केट, रिश्वतखोरी और मिलावट इसका छोटा किन्तु व्यापक उदाहरण है। इससे समाज का कितना प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष अहित होता है, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इन्हीं बातों से एक सबसे बड़े रोग की उत्पत्ति होती है, जिसे कहते हैं मानसिक चिन्ता। मानसिक चिन्ता का सारे शरीर पर कितना प्रभाव पड़ता है, इसे सीमाबद्ध करना कठिन है। हार्टफेल इस मानसिक चिन्ता की ही देन है। आज अधिकांश व्यक्ति हार्टफेल की बीमारी के शिकार बन जाते हैं।

कुछ वर्ष पूर्व की एक सत्य घटना है—एक सेठ ने ४२) प्रति मन के भाव से कई बोरे शक्कर खरीदी और जब ६२) भाव हुआ तो बेच दी। इसका मतलब हुआ कि उसे ५० प्रतिशत लाभ हो गया किन्तु दूसरे दिन जब उसके मुनीम ने उन्हें ये सूचना दी कि सेठजी शक्कर का भाव आज ८२) हो गया है। यह सूचना सुनते ही सेठजी का हार्टफेल हो गया। ऐसा क्यों हुआ ? वास्तव में उनके व्यक्तिगत स्वार्थ और मानसिक चिन्ता ने उनके हृदय को पहले से ही जर्जर कर दिया था, जो इस आघात को सहन नहीं कर सका। अहर्निश केवल अपने स्वार्थ चिन्तन में लगा मनुष्य मानसिक घात-प्रतिघातों का सामना करते-करते आन्तरिक संतुलन को स्वयं ही खो बैठता है। प्रत्येक व्यक्ति दम्भ-छल-कपट के द्वारा अपने को पूर्ण सच्चा बतलाकर अपने स्वार्थ की पूर्ति करना चाहता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसके बाद जो दूसरी कमी आती है वह है पुरुषार्थ हीनता। इसी कमी ने भारतवर्ष को अब तक परतन्त्र तथा पतनोन्मुख बनाये रखा। जब हमारी दृष्टि दूसरे देशों की ओर पड़ती है तो हमें उनमें सबसे पहली बात जो दिखाई पड़ती है, वह है उनका पुरुषार्थ एवं अथक् परिश्रम। अन्य देशों में पुरुषार्थ का जितना बोलबाला है, भारतवर्ष में उतना ही आलस्य का साम्राज्य है। यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति कम से कम पुरुषार्थ के द्वारा अधिक से अधिक धन प्राप्ति की चेष्टा करता है और यदि कहीं उसे बैठे ही बैठे सारी सामग्रियों की उपलब्धि हो जाती है तो वह अपने को बड़ा सौभाग्यशाली मानता है। मैंने ऐसे लोगों को भी देखा है जो शरीर से बिल्कुल स्वस्थ, पुष्ट एवं नवयुवक हैं किन्तु फिर भी दूसरों के सामने हाथ फैलाकर भीख माँगने से नहीं लजाते, क्योंकि वे अपने शरीर के द्वारा कुछ परिश्रम करना ही नहीं चाहते। एक तो लोगों में शारीरिक शक्ति ही नहीं है, किन्तु जो शरीर से कार्य कर सकते हैं, उन्हें हाथ से कार्य करने में अपना अपमान मालूम देता है, पोजीशन के भय से वे कार्य में हाथ ही नहीं लगाते। प्रायः ऐसे भी लोग देखे जाते हैं जो अपना छोटा सा हैण्डबैग लेकर भी नहीं चल सकते और स्टेशन पर कुली की राह देखा करते हैं। यहाँ के नौजवान लड़कों में विलासिता ने इतना घर कर लिया है कि उन्हें स्वयं अपना काम अपने हाथ से करने में शर्म आती है और थोड़े-थोड़े परिश्रम से भी जी चुरा कर भागना चाहते हैं।

इसी स्वार्थ और पुरुषार्थहीनता से आज प्रत्येक व्यक्ति का जीवन चिन्ताओं से ग्रस्त है। यूँ तो शरीर व्याधि मन्दिर ही होता है किन्तु चिन्तित पुरुष तो स्वयं ही अनेक रोगों का आह्वान करता है। कहावत है कि चिता तो मरने के बाद मनुष्य को जलाती है, किन्तु चिन्ता जीवित मनुष्य को ही जलाती रहती है। यदि मनुष्य के अन्दर चिन्तायें नहीं हैं किन्तु शरीर से निर्बल है तो उसे अधिक कष्ट प्रतीत नहीं होगा। किन्तु यदि किसी व्यक्ति का शरीर पुष्ट है लेकिन उसे मानसिक चिन्तायें घेरे हुये हैं, तो उसे रात में सुख की नींद नहीं आ सकती। उसे भोजन का स्वाद भी पूरा-पूरा नहीं आ सकता। यह मानसिक चिन्ताओं का प्रभाव है।

अब सब से बड़ी समस्या है समाज सुधार की। समाज का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर अलग-अलग पड़ता है। समाज सुधार के आज अनेक उपाय हो रहे हैं, किन्तु सुधार की आशा पूरी होती नहीं दीखती। इसका एक विशेष कारण है, वह यह कि मनुष्य के अन्दर प्रत्येक वस्तु को ग्रहण करने की दो शक्तियाँ हैं। वे हैं मस्तिष्क और हृदय। इन दोनों में भी हृदय शक्ति का विशेष स्थान है। जब तक मनुष्य का हृदय किसी वस्तु को ग्रहण करने की गवाही नहीं देता तब तक वह उसे ग्रहण नहीं करता। यद्यपि बहुत से लोग तर्क करके किसी बात को ग्रहण करते हैं। किन्तु यह बात भी हृदय पर आधारित है। तर्क के पश्चात् उनका हृदय उस वस्तु को ग्रहण करने के लिये बाध्य हो जाता है।

साधारण सी बात है, आज मादक वस्तुओं के परित्याग के लिये सरकार की ओर से कितने नये-नये कानून बनते हैं। किन्तु क्या वहाँ मादक वस्तुओं का प्रयोग बन्द हो गया ? यदि कानपुर में शराबबन्दी का कानून जारी हो जाता है तो लोग लखनऊ में जाकर शराब पीने के शौक को पूरा करते हैं। इन सब का कारण यही है कि कानून आज तक किसी के हृदय को बदल नहीं पाया। जिस दिन उनके हृदय में यह विश्वास हो जायेगा कि मादक वस्तु का सेवन बुरा है, उसी दिन से वे उनका उपयोग करना त्याग देंगे। इसकी कई एक घटनायें मेरे सामने की हैं—उनमें दो एक प्रमुख घटनायें हैं।

जब तक मनुष्य के हृदय का सुधार नहीं होता तब तक वास्तविक उन्नति दुर्लभ है। आज धनी-निर्धन, गरीब-अमीर, मिल-मालिक, नेता और जनता सभी के हृदयों में अशान्ति का साम्राज्य छाया हुआ है। एक पक्ष दूसरे पक्ष की कटु आलोचना करने में अपने कर्त्तव्य को अधिकांश पूरा हुआ मानता है, इस प्रकार अशान्ति के बीज बोकर वे शान्ति की नींद नहीं सो सकते। इन सब बातों को दूर करने के लिये एकमात्र हृदय का सुधार ही परमावश्यक है।

महात्मा गाँधीजी ने एक सज्जन के प्रश्नोत्तर में कहा था कि जिस प्रकार एक दूसरा व्यक्ति बिना भोजन किये जीवित नहीं रह सकता, उसी प्रकार बिना ईश्वर की प्रार्थना व सत्संग के मैं जीवित नहीं रह सकता। उनका कहना था कि जिस प्रकार अन्न शरीर का भोजन है, उसी प्रकार प्रार्थना व सत्संग हृदय और बुद्धि का भोजन है। महात्मा गाँधी की दैनिक प्रार्थना और प्रातःकाल उनका प्राइवेट सत्संग नित्य होता था।

मानव जीवन के सुधार के लिये सत्संग एक अनुभूत साधन है। जिस प्रकार जल, भोजन व वायु से शरीर की रक्षा होती है, उसी प्रकार बुद्धि को प्रबल व हृदय को पुष्ट बनाने के लिये सत्संग, प्रार्थना व स्वाध्याय की परमावश्यकता है। सत्संग ही एक ऐसा सुगम साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य के हृदय का पूर्व परिवर्तन हो सकता है। सत्संग से ही ऋषि वाल्मीकि की दानवता मानवता में बदल गयी। सत्संग से उनके हृदय में उस दानवता के प्रति घोर घृणा उत्पन्न हो गई। उन्होंने उसे त्याग दिया।

अधिकांश जन सत्संग का अर्थ भ्रम से प्रायः यह लगा लेते हैं कि जहाँ माला फेरने का उपदेश होता हो, जहाँ भक्ति की गंगा बह रही हो, वही सत्संग है। सत्संग का यह सीमित अर्थ है। वास्तव में सत्संग वह संग है, जहाँ महापुरुषों व सन्तों के द्वारा हमें अपनी धर्म-नीति, समाज-नीति व अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हो। इससे हमें उस सन्मार्ग का ज्ञान होता है, जिस पर चलकर हम सुख और शान्ति की प्राप्ति कर सकते हैं और दूसरों को भी सुख प्राप्ति में सहायता दे सकते हैं, इसके द्वारा मनुष्य को अपना जीवन उन्नत बनाने की प्रेरणा मिलती है। उसके अन्दर स्वार्थपरता के स्थान पर परोपकार की भावना जाग्रत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो जाती है। सारांश यह है कि यदि हमें अपना और अपने समाज का सुधार करना है, तो इसके लिये सर्वप्रथम हृदय सुधार की परमावश्यकता है और हृदय का सुधार सत्संग के द्वारा ही हो सकता है।

भौतिक जगत में हम देखते हैं कि जब एक वस्तु दूसरे के साथ रहती है, तब उन वस्तुओं में उनके गुणों का परस्पर आदान-प्रदान होता है। अग्नि जल को गर्म करती और जल अग्नि को ठंडा करता है। उसी प्रकार सत्संग द्वारा भी परस्पर गुणों का आदान-प्रदान होता है।

एक साधारण पुरुष जब महात्माओं के बीच में पहुँच जाता है तब वह क्रमशः शुद्ध होने लगता है। उसका वातावरण बदल जाता है और वह बदली हुई परिस्थिति में स्वयं भी बदल जाता है मनुष्य अपनी परिस्थितियों से प्रभावित रहता है। यदि वह छली, कपटी और धूर्त लोगों के बीच में पड़ गया है तो वह प्रत्येक व्यक्ति को सन्देह भरी दृष्टि से देखने वाला बन जावेगा। उसे सब लोग कपटी और स्वार्थी प्रतीत होंगे और वह किसी के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक व्यवहार न कर सकेगा। किन्तु यदि वही व्यक्ति महात्मा पुरुषों के बीच में रहने लगे तो उनके त्यागपूर्ण व्यवहारों से उसे यह अनुभव होगा कि मनुष्य का स्वभाव दिव्य है। उसे उनके साथ किसी तरह का सन्देह न होगा एवं वह सबके साथ खुलकर व्यवहार करेगा। इस तरह का वातावरण जीवन के लिये एक विडम्बना है और हम देखते हैं कि मनुष्य या इस तरह के लोगों के बीच में रहता है, उसकी धारणायें तदनुकूल हो जाती हैं और उसके व्यवहार से हम पता लगा सकते हैं कि वह किस प्रकार के वातावरण में पला है।

यदि कोई व्यक्ति ऐसे वातावरण में पहुँच जावे जहाँ लोग उसे मूर्ख, अस्पृश्य और घृणास्पद समझाने लगें तो उसके चित्त में आत्महीनता की ग्रन्थि का निर्माण होने लगेगा और उसकी शक्तियाँ कुंठित होने लगेंगी। वह अपना आत्म-विश्वास, आत्म-गौरव और निर्भीकता खो बैठेगा और दुखी बन जायेगा। भारतवर्ष के अछूतों का यही हाल हुआ है। उन्हें जन्म-जन्मान्तर से बुरे संकेत दिये गये हैं, जिन्हें हम पुनर्जन्म के सिद्धान्त की आड़ में उचित और पाप-परिक्षालक कहते रहे हैं। इन संकेतों ने ही उन्हें दास-स्वभाव वाला बनाया है। ऐसा वातावरण सचमुच जीवन के लिये एक अभिशाप है।

जिन्हें अपनी श्रेष्ठता का अभिमान होता है, उनके बीच में रहना मानो अपने जीवन को दुःखी बना लेना है। किन्तु यदि हम महात्माओं के बीच में रहें तो निश्चय ही हमारे अन्तस्तल में उनके सद्व्यवहारों के कारण आत्महीनता की ग्रन्थि का निर्माण नहीं हो सकता। उनके साथ रहने से तो उल्टे ही ये ग्रन्थियाँ मिट जाती हैं। जिस तरह कोई मनःशास्त्र विशेषज्ञ अपनी सहानुभूति के द्वारा चिकित्सा करते समय रोगी के गुप्त मनोभावों और रहस्यों को उससे कहलवा लेता है और ग्रन्थि पड़ने के कारण को जानकर उसका निराकरण कर देता है, उसी तरह सन्त-समाज में हमारे हृदय की ग्रन्थियाँ उनके प्रेमपूर्ण व्यवहार के कारण खुल पड़ती हैं और हम अनुभव करते हैं कि हमारा हृदय हल्का हो गया और हमारे दीर्घ रोग की चिकित्सा हो गई।

संतों के समागम में रहकर हमें जीवन के प्रति स्वास्थ्यप्रद दृष्टिकोण प्राप्त होता है। उद्देश्यहीन जीवन के स्थान में हमारा जीवन उद्देश्य-युक्त हो जाता है और हम दूसरों का अन्धानुकरण नहीं करते।

मनुष्य के आचार-विचार के लिये उसका वातावरण बहुत अधिक अंशों में उत्तरदायी है। अतएव यदि मनुष्य अपने वातावरण को बदल डाले तो उसके आचार-विचार और स्वभाव में परिवर्तन सहज ही हो जायेगा। किन्तु वातावरण को बदलना, कहने में जितना सरल है, वास्तव में वह उतना सरल नहीं। सच तो यह है कि वातावरण को बदलना ही परोक्ष रूप से अपने आचार-विचार को बदलना है, अतएव उसका बदलना उतना ही कठिन है जितना कि आचार विचारों का। उदार हृदय-सहृदय व्यक्तियों का संग सबके लिये सुलभ है। गीता आदि धर्म पुस्तकों का संग सबको सुलभ है। प्रत्येक व्यक्ति बेरोकटोक उनका सत्संग कर सकता है किन्तु फिर भी उनके सत्संग से अनेकों प्राणी वंचित रहते हैं। उनका चित्त ही उन्हें उस सत्संग से वंचित रखता है। उनके हृदय में जो पूर्व संस्कार हैं वे ही बाधा डालते हैं और उन्हें सत्संग रुचता नहीं। बिना आचार-विचार बदले न तो हम सत्संग के योग्य बनते हैं और न बिना संगी-साथियों को बदले हमारे आचार-विचार ही बदल सकते हैं। हमारे आचार-विचार और परिस्थितियाँ परस्पर एक दूसरे के परिणाम अथवा प्रतिबिम्ब हैं। अतएव अच्छे आचार-विचार वाला व्यक्ति ही सत्संग कर सकता है और हम कह सकते हैं कि जो महात्माओं का संग करता है, उसका मानसिक धरातल निश्चय ही उच्च होना चाहिये।

सत्संग द्वारा आचार-विचार बदलने से मनुष्य के जीवन का दृष्टिकोण भी बदलना अनिवार्य है। जो व्यक्ति आज प्रत्येक कार्य करते समय व्यक्तिगत लाभ का लेखा-जोखा करता है, वही व्यक्ति सत्संग के प्रभाव से उन्हीं कार्यों को सामाजिक लाभ अथवा लोकसंग्रह की दृष्टि से करने लगे, यह भी सम्भव है। गाँधीजी के प्रभाव में आकर अनेकों धनिकों ने अपने दृष्टिकोण को बदला यह तो सभी जानते हैं।

सत्संग से हमें अपने ध्येय की ओर तीव्रगति से बढ़ने के लिये प्रेरणा मिलती है। अपने आध्यात्मिक विकास के लिये साधन करना जिनका सहज स्वभाव हो गया है, उनके लिये सत्संग की आवश्यकता भले ही न हो किन्तु इतरजनों के लिये यह उत्साहवर्द्धक है। जिस विद्यार्थी ने व्यायाम करना अभी-अभी शुरू किया है वह घर पर नित्य नियमित रूप से अकेले ही कितने दिनों तक व्यायाम करेगा। किन्तु यदि वही विद्यार्थी, अन्य व्यायाम-प्रिय विद्यार्थियों का संग पा जावे, तो उसके उत्साह में शिथिलता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न आने पावेगी और धीरे-धीरे व्यायाम करना उसका सहज स्वभाव हो जायेगा और फिर वह अकेले रहने पर भी उसी उत्साह से व्यायाम करता जावेगा। अतएव यदि आरम्भिक अभ्यासी को तीव्रगति से उन्नति करनी है तो उसके लिये सत्संग अनिवार्य है।

जिस तरह कीड़े पर भृंगी का प्रभाव पड़ता है, उसी तरह सत्संग के द्वारा भी साधकों पर श्रेष्ठजनों का प्रभाव पड़ता है। यदि आप एक साधारण लौकिक प्राणी हैं और आपको किसी महात्मा-पुरुष की कृपा प्राप्त है तो उससे पत्र व्यवहार करने में और उसके दर्शन करने में आपको जो समय बिताना पड़ेगा, उसके कारण आपके विचार बहुत कुछ उसकी ओर खिंचे रहेंगे और आपके जीवन का एक पर्याप्त हिस्सा उनके सत्संग सम्बन्धी विषयों के विचार में ही व्यतीत होगा और आप भृंगी-कीट-न्याय की नाईं धीरे-धीरे उनके ढाँचे में ही ढलते चले जायेंगे। इसलिये कहा है— 'महत्संगो दुर्लभश्चामोधश्च'।

हम अपना भविष्य और चरित्र स्वयं बनाते हैं

मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता है। निज का उत्थान-पतन उसके वश की बात है। यह तथ्य जितना सच है उतना ही यह भी सही है कि वातावरण का प्रभाव अपने ऊपर भी पड़ता है और अपने व्यक्तित्व से परिवार एवं समाज का वातावरण भी प्रभावित होता है। बुरे वातावरण में रहकर कदाचित् ही कोई अपनी विशिष्टता बना सका हो, साथ ही यह भी सच है कि वातावरण का प्रभाव भी पड़े बिना नहीं रहता।

अधिक लोगों के—समर्थ लोगों के क्रियाकलाप ही वातावरण बनाते हैं। बहुसंख्यक होने पर और एक प्रकार की गतिविधियाँ अपना लेने पर दुर्बल स्थिति के लोग भी अपना एक विशेष प्रकार का माहौल बना लेते हैं। व्यसनी, अनाचारियों का समुदाय भी ऐसा प्रभाव उत्पन्न करता है जिससे सामान्य स्तर के लोग प्रभावित होने लगें। इसलिये अच्छे वातावरण में रहना और बुरे वातावरण से बचना भी उसी प्रकार आवश्यक है, जैसे स्वच्छ हवा में रहने और दुर्गन्ध से बचने का प्रयत्न किया जाता है। वह कहानी प्रसिद्ध है जिसमें एक ही घोंसले से पकड़े गये दो तोते के बच्चे दो भिन्न प्रकार के व्यवसायियों ने पाले। वहाँ की स्थिति के अनुसार ही वे बोलना सीख गये। संत के यहाँ पला तोता 'सीताराम-राधेश्याम' कहता था और चोर के यहाँ पला 'लूटो-खसोटो-मारो-काटो' की रट लगाता था, क्योंकि उन्हें यही सब दिनभर सुनने को मिलता था। मनुष्य के सम्बन्ध में भी यही बात है। वह जैसे लोगों के साथ रहता है, जैसी परिस्थितियों में रहता है, जो कुछ समीपवर्ती लोगों को करते देखता है उसी के अनुसार अपना स्वभाव भी ढाल लेता है। वह बन्दर की तरह अनुकरणप्रिय जो है।

ऐसा भी देखा गया है कि मनस्वी लोग अपनी आदर्शवादिता पर सुदृढ़ रहकर अनेकों का ध्यान अपनी ओर खींचते हैं। कितनों का ही अनुकरण की प्रेरणा देते हैं। अपने औचित्य के कारण उस मार्ग पर चलने के लिये अनेकों को आकर्षित करते हैं। आवश्यक नहीं कि वह मार्ग सरल या परम्परागत ही हो, नवीन विचार भी अपने औचित्य के कारण प्रतिभाशाली लोगों द्वारा अपनाये जाने पर एक मार्ग बन जाते हैं। सर्वसाधारण को तो परम्परायें ही सब कुछ प्रतीत होती हैं, पर विचारवान लोग औचित्यवान को देखते-परखते हैं, उसे ही चुनते-अपनाते हैं। काँच के मोती गरीब लोग भी खरीदते और पहनते हैं, पर असली बहुमूल्य मोतियों का कोई पारखी खरीददार न हो, ऐसी बात भी नहीं है। बुद्ध और गाँधी का मार्ग सर्वथा नया था, पर उनके प्रामाणिक व्यक्तित्व और औचित्य भरे प्रतिपादन का परिणाम था कि असंख्यों व्यक्ति उनके अनुयायी बने और एक नवीन वातावरण बना देने में सफल हुये पर ऐसा होता तभी है जब प्रतिभावान अग्रगामी बनकर किसी उपयुक्त मार्ग को अपनायें और अपनी बात को तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण समेत समझायें, स्वयं उस मार्ग पर सुदृढ़ रहकर अन्यान्यों में मनोबल उत्पन्न करें।

यह सही है कि मनुष्य बुद्धिमान प्राणी है। उसके पास समझने-सोचने की शक्ति है। दैनिक व्यवसाय इसी आधार पर चलता है। इतने पर भी वह परोक्ष रूप में प्रथा-परम्पराओं के अनुरूप अपने को भी उसी ढर्रे पर चलाता है। जिस पर समीपवर्ती लोग चलते हैं। उसी को वातावरण कहते हैं। यह बुरा भी होता है और भला भी। जिस भी प्रवाह में बहने लगा जाय अपना व्यक्तित्व या स्तर भी प्रायः उस ढाँचे में ढल जाता है। वातावरण बनाने वाले तो कोई बिरले ही होते हैं। अधिकांश ऐसे पाये जाते हैं जो प्रवाह में बहते हैं और जो कुछ हो रहा है, उसी का अनुगमन करने लगते हैं। परिणति तो क्रिया के अनुरूप ही होती है। मूढ़-मान्यताओं और अवांछनीयताओं के प्रवाह में बहकर मनुष्य ऐसी स्थिति में जा पहुँचता है, जिसमें व्यस्त होने का उसका अपना कोई पूर्व निश्चय नहीं था। इसलिये जहाँ तक अपने भविष्य निर्माण का सम्बन्ध है, वहाँ अपने पुरुषार्थ और दिशा निर्धारण का महत्त्व है वहाँ यह भी कम प्रभावशाली तथ्य नहीं कि किस समुदाय के साथ चल पड़ने का अवसर मिला, किन लोगों की गतिविधियाँ उसे किस सीमा तक प्रभावित करती रहीं ?

अपना समाज ऐसे लोगों से भरा है जिसमें भले लोगों की तरह बुरे भी भरे पड़े हैं। जहाँ आदर्शवादिता और सेवा भावना के अनेकों उदाहरण देखे जाते हैं। बहु दुर्व्यसनी, अपराधी और अनगढ़ स्तर के लोगों की भी कमी नहीं। दो प्रवृत्तियाँ पास-पास भी रहती हैं ,और घुली-मिली भी। इसलिये वातावरण के बीच भी यह पाया जाता है कि दूरदर्शी, विवेकवान अपनी रुचि के अनुरूप चयन कर लेते हैं। जिनका मनोबल या स्वतन्त्र चिन्तन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

काम नहीं करता, वे ही हवा के झोंके के साथ उड़ने वाले तिनके-पत्ते का उदाहरण बनते हैं। सामान्यजनों को वातावरण ही घसीटे-घसीटे फिरता और उस प्रभाव से प्रभावित होकर वे अनिश्चित भवितव्यता के चंगुल में फँसते हैं। इसलिये वातावरण की प्रबलता को स्वीकार करते हुये भी यह मानना पड़ता है कि मानवी विवेक और मनोबल सर्वोपरि है। वह वातावरण के प्रभाव को ग्रहण तो करता ही है पर यह भी संभव है कि वह उसे अस्वीकार कर दे और जो उचित है उसे करे। यह स्वतन्त्र चिन्तन ही वस्तुतः भाग्य का निर्माता है अन्यथा जिस नियति को सामान्यजनों द्वारा अपनाया जाता है, वही अपने गले भी बँधती है।

आमतौर से लोग परम्परागत प्रवाह में भी बहते हैं और उसी परिणाम को भुगतते हैं, जो उन सबके द्वारा भुगता जाता है। चिर पुरातन काल से सामयिक परिस्थितियों के अनुसार भारी हेर-फेर प्रचलनों में होते रहे हैं। उनके ध्वंसावशेष अभी भी विद्यमान हैं। यद्यपि वे खण्डहर हो जाने के कारण उपयोगी नहीं रहे। व्यर्थ ही जमीन घेरे पड़े हैं। उनको देखने और नमन करने तो जाया जा सकता है पर उनमें रहा नहीं जा सकता। रहने के लिये ऐसा स्थान-मकान चाहिये जो आज की परिस्थितियों के अनुकूल ही अपने काम करने के स्थान से निकट पड़ता हो।

प्रथा-परम्पराओं में से अधिकांश ऐसी हैं जो आज की स्थिति के अनुरूप नहीं रहीं। भले ही वे किसी जमाने में अपने समय के अनुरूप भूमिका निभाती रहीं हों। समय गतिशील है, वह आगे बढ़ता है पीछे नहीं लौटता। चरण सदा आगे बढ़ते हैं यदि कोई पीछे की तरफ उलटी गति से चलना आरम्भ करें तो विचित्र लगेगा। धीमे चलेगा। काँटे चुभने जैसे संकट में भी फँसेगा। फिर वापस लौटने में हाथ भी क्या लगेगा ? उसमें समय की बर्बादी ही पल्ले पड़ेगी। आदिमकाल से लोग जिस रहन-सहन को अपनाने के लिय विवश थे, वह उस समय की सही सूझ-बूझ हो सकती है पर अब न हम गुफाओं में घर बनाकर रह सकते हैं और न पत्ते लपेटकर ऋतु प्रभाव से बच सकते हैं। निर्वाह के लिये चिर पूर्वज जिन साधनों पर निर्भर थे, उन्हें अब इस प्रगतिशीलता के समय में कोई भी अपनाने के लिये तैयार न होगा। फिर भी हम पुरातन की दुहाई देते हैं और उन्हीं प्रचलनों की सराहना करते हैं, जो कभी परिस्थितिवश अपनाये जाते रहे हैं।

जिस प्रकार जराजीर्ण मनुष्य की आँखों में मोतियाबिन्द का परदा चढ़ जाता है और धुँधला दिखाई पड़ने लगता है, उसी प्रकार पुरातन काल के प्रचलन आज की स्थिति में अन्धपरम्परा या मूढ़ विश्वास भी बन सकते हैं। अस्तु, पुरातन प्रचलनों को अपनाने का आग्रह करके हम अन्धविश्वासी या दुराग्रही कहलाने का जोखिम सहन नहीं कर सकते, साथ ही यह भी तथ्य है कि आज जो कुछ हो रहा है जो बहुमत द्वारा अपनाया जा रहा है उसे भी यथावत् स्वीकार नहीं किया जा सकता। नशेबाजी जैसे कुप्रचलनों की इन दिनों भी कमी नहीं। दूसरों की देखा-देखी उन व्यसनों को अपना लिया जाय तो इससे हित साधन न होगा। अपने भाग्य के निर्माता आप बनने के लिये हमें न प्रचलनों पर निर्भर रहना चाहिये और न हवा के झोंकों के साथ उड़ना चाहिये। अपना रास्ता आप ही चुनना चाहिये। चुनाव इसलिये करना पड़ता है कि एक ही जंकशन से अनेक दिशाओं में गाड़ियाँ जाती हैं। स्टेशन पर उनकी पटरियाँ पास-पास ही होती हैं पर कुछ ही आगे अनेक मोड़ होते हैं। जिन पर तनिक-सा हटते ही दिशा बदल जाती है और रेलगाड़ियों के गन्तव्य में सैंकड़ों मील का अन्तर पड़ जाता है, यदि आस-पास स्टेशन पर खड़ी गाड़ियों में से बिना अपने अभीष्ट का चुनाव किये किसी भी डिब्बे में जा बैठे तो फिर कहीं भी जो पहुँचा जा सकता है। भाग्य निर्माण के लिये अपने चिन्तन और चरित्र का स्तर ऊँचा उठाना पड़ेगा। उन लोगों से बचना पड़ेगा, जो कुमार्ग अपना चुके हैं और किसी गर्त में गिरने जा रहे हैं। उचित और अनुचित, भले और बुरे में जो अपने को अभीष्ट हो पहचानना और अपनाना होगा। 'मनुष्य अपने भाग्य निर्माता आप है' इस कथन का अभिप्राय यह भी है कि अच्छे की तरह बुरा भविष्य भी बनाया जा सकता है। इसके लिये इच्छा या कल्पना मात्र ही पर्याप्त नहीं। मार्ग निर्धारण करने से लेकर कर्म का निर्धारण और उसमें जुट जाने का साहस भी स्वयं ही करना होगा। जो इतना कर गुजरते हैं, उनके लिये यह तथ्य मूर्तिमान होकर प्रकट होता है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है।

संसार में ऐसे अनेकानेक उदाहरण मौजूद हैं, जिनमें कितने ही लोग ऊँचे उठे, आगे बढ़े और महामानव स्तर तक जा पहुँचे हैं। इसके विपरीत ऐसे उदाहरणों की भी कमी नहीं कि साधन और सुविधा होते हुये भी उनका सदुपयोग न कर सके, कुमार्ग पर चले। बुरे लोगों के साथ रहे। बुरे वातावरण में फँसे और ऐसी परिस्थितियों में फँसे जिनमें अन्त खेदजनक एवं निन्दा-तिरस्कार भरा ही होता है। दोनों में से किसका चयन किया जाय यह अपनी विवेक बुद्धि के ऊपर अवलम्बित है।

परमेश्वर की इस सृष्टि में हर प्रकार के अवसर मौजूद हैं, यहाँ पैरों में चुभने वाले काँटे भी बहुत हैं और सुगन्ध-सुषमा से भरे-पूरे फूलों की भी कमी नहीं। हम किसके निकट पहुँचते हैं। यह निर्धारण करने का संकल्प प्रयास और अधिकार पूरी तरह अपने हाथ है। माना कि बुराइयाँ बहुत हैं, बुरे लोगों का भी बाहुल्य है, पर उनमें से इतनी शक्ति किसी में भी नहीं कि जो इच्छा के विपरीत किसी को अपनी ओर खींच सकें और बलात् बाधित या विवश कर सकें। किसी के आमन्त्रण को स्वीकार करना न करना अपने मन की बात है। परिस्थितियाँ लदती किसी के ऊपर भी नहीं उन्हें बुलाने और स्वीकार करने में अपनी ही प्रत्यक्ष या परोक्ष सहमति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होती है। जिस दिशा में कदम उठते हैं। उस गन्तव्य तक देर-सबेर में पहुँचा ही जाया जाता है। जिसको अस्वीकृत कर दिया जाता है वह खींचतान भले ही करता रहे पर यह सम्भव नहीं कि साहसपूर्वक विरोध करने वाले को कोई दबा या झुका सके।

कई व्यक्ति इस तलाश में रहते हैं कि कोई दूसरा कंधे पर बिठाकर इच्छित स्थान तक पहुँचाये, यह कठिन है। नदी पार करने में नाव का सहारा सहायक होता है पर साथ ही यह भी ठीक है कि घर से चलकर नाव तक पहुँचने का परिश्रम स्वयं ही करना पड़ता है। समय पड़ने पर छोटे बच्चों या अपंगों को कंधे पर बिठाया, पीठ पर लादा भी जाता है पर यह सुविधा कुछ ही देर तक पायी जा सकती है। ऐसा नहीं हो सकता कि जिन्दगी पूरी तरह दूसरों के सहारे ही कट जाये। सहायकों की सराहना की जा सकती है पर यह नहीं हो सकता कि पूरी तरह उन्हीं की कृपा पर निर्भर रहा जा सके। कोई भोजन भरी थाली परोस दे तो भी ग्रास को तोड़ने-चबाने का काम स्वयं ही करना पड़ेगा। पचावेगा उसे अपना पेट ही। दूसरों के खाये-पचाये भोजन से अपनी आवश्यकता पूरी नहीं की जा सकती। मनुष्य जिस दिशा में, जिस मार्ग पर आगे बढ़ता है, उस पर आगे चलने वाले और पीछे आने वाले पथिक, साथी-सहयोगी बनते रहते हैं। यह सुविधा हर प्रयत्नशील को मिलती रहती है पर चयन और आरम्भ अपने को ही करना पड़ता है। आत्मविश्वास और आत्मावलम्बन के लिये तत्पर हो जाने के उपरान्त यह आशा की जा सकती है कि उस मार्ग पर चलने वालों का परामर्श, साथ-सहयोग समयानुसार मिलता रहेगा। चोर, उचक्कों के गिरोह इसी आधार पर बनते हैं और सन्तों की मण्डलियाँ भी इसी सिद्धान्त के अनुरूप गठित होती हैं। यह कथन आंशिक ही सही है कि वातावरण हमें अपनी ओर खींचता है। यह कथन दुर्बल मनःस्थिति वालों पर ही लागू होता है। अधिक सही यह है कि हम अपने संकल्प एवं व्यक्तित्व को एक शक्तिशाली चुम्बक की तरह प्रयुक्त करते हैं। अपने स्तर के लोगों को प्रत्यक्ष या परोक्ष आमन्त्रण द्वारा अपने निकट खींच बुलाते हैं, भले और बुरे सर्वत्र मौजूद हैं। उनमें से किन्हें चुनें ? किनके साथ घनिष्ठता बनायें ? यह पूरी तरह अपनी मर्जी पर अवलम्बित है। जड़ पदार्थों को बटोरकर ले जाया जा सकता है। जानवरों को भी लाठी से हाँक कर ले जाया जा सकता है पर मनुष्य के लिये यह सम्भव नहीं कि उसे कोई दूसरा उठा या गिरा सके। इसमें व्यक्ति का निजी रुझान, अभिमत एवं सहयोग का सम्मिलित होना आवश्यक है। सशक्त रावण को मारीचि, कालनेमि, खरदूषण जैसे अपने स्तर के सहयोगी भी मिल गये थे। पर वह अपने सगे भाई विभीषण को अपने क्रियाकलाप में सहयोगी बनाना तो दूर उसका समर्थन तक प्राप्त न कर सका। हम जैसे कुछ स्वयं होते हैं वैसे ही साधन उपलब्ध होने लगते हैं। समर्थन एवं परामर्श मिलने लगते हैं। इसलिये किसी को भी यह नहीं सोचना चाहिये कि हमारी प्रगति या अवगति के लिये दूसरे उत्तरदायी हैं। किसी को भी यह नहीं कहना चाहिये कि हमें परिस्थितियों से, व्यक्तियों से विवश होकर यह करना पड़ा। वातावरण का प्रभाव अवश्य पड़ता है पर वह इतना प्रबल नहीं कि साहसी को बाधित कर सके। आदर्शों को तोड़ने-मोड़ने में समर्थ हो सके। अन्ततः यह निष्कर्ष अपनी यथार्थता सिद्ध करता है कि मनुष्य अपने भाग्य और भविष्य का निर्माता स्वयं है।

वह प्रशिक्षण जो हर किसी को मिले

विचार क्रिया के रूप में परिणत होते हैं। यद्यपि दोनों के प्रत्यक्ष रूप में अन्तर है तो भी उनके बीच अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। बीज गोल होता है, उसका रंग भी अपना होता है पर बो दिये जाने के उपरान्त अंकुर लम्बी आकृति का निकलता है और रंग का भी हरा होता है। दोनों की भिन्नता प्रत्यक्ष है पर इसमें सन्देह की गुंजायश नहीं कि बीज से ही अंकुर फूटता है और वही क्रमशः बढ़ते हुये पौधा-पौधे से वृक्ष बनता है। आश्चर्य लगता है कि नन्हा-सा बीज किस प्रकार विशालकाय वृक्ष बन गया। इतने पर भी इस सच्चाई को भूला नहीं जा सकता है कि बीज ही वृक्ष बनता है। विचार ही संकल्प बनते, क्रिया रूप में परिणित होते और व्यक्तित्व का अंग बनते हैं। इसलिये विचारों की सृजन शक्ति का जितना गुणगान किया जाय उतना ही कम है।

विचार अनायास ही नहीं उठते, वे उस समुदाय का प्रतिबिम्ब होते हैं, जिसमें कि हम रहते हैं। छोटा बच्चा चलने का प्रयत्न इसलिये करता है कि वह दूसरों को खड़े होकर चलते देखता है। बोलना भी वह इस आधार पर करता है कि जो सुनता है उसका तात्पर्य समझने का अनुमान लगा लेता है। यदि यह अनुकरण की सुविधा न मिले तो सम्भवतः एकाकी रहने की स्थिति में मनुष्य का बालक गूँगा-बहरा ही रहेगा। घिसटकर चलेगा या बन्दर की तरह हाथ-पैर का सम्मिश्रित चलने में करेगा। आहार-विहार के अनेकानेक तरीके सीखने में यों उनकी निजी जिज्ञासा और पूर्व संचित संस्कारों की शृंखला भी काम करती है पर अधिकांश क्रिया-कलाप का निर्धारण उस अनुकरण के आधार पर ही विनिर्मित होता है, जिसे प्रशिक्षित भी किया जा सकता है। जीवन शैली का जहाँ तक सम्बन्ध है, उसके लिये हर किसी शिक्षित अशिक्षित को किसी न किसी माध्यम से शिक्षण प्राप्त करना पड़ता है।

यह आरम्भिक शिक्षा की बात हुई। बालक में समझदारी आते ही उसे दूसरे प्रकार के शिक्षण मिलने आरम्भ होते हैं। अभिभावक पढ़ाने के लिये स्कूल भेजते हैं कि वह नौकरी करने, कमाने, खाने की योग्यता प्राप्त करेगा। मास्टर लोग इस दृष्टि से पढ़ाते हैं कि छात्रों का परीक्षाफल अच्छा रहने से उनके स्कूल का स्तर बढ़ेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सरकार स्कूलों को पैसा इसलिये देती है कि उसे जनता के सामने अपनी आवश्यकताएँ बताकर अधिक टैक्स लगाने का आधार मिलेगा। इसके अतिरिक्त लोग भी ऐसे हैं जो जनसाधारण को पढ़ाते-सिखाते रहते हैं। धर्मोपदेशक स्वर्ग-मुक्ति की बातें करते हैं। सुधारक सामाजिक बुराइयों को बताकर उनसे निपटने की प्रेरणा भरते हैं। राजनेता अपनी-अपनी पार्टियों का महत्त्व क्या है ? उनकी सेवा, उपयोगितायें क्या हैं और उनमें जनसाधारण को क्यों सम्मिलित होना चाहिये। सिनेमा, नाटक, नृत्य, वाद्य के साथ-साथ कहते तो बहुत कुछ हैं पर उस सबका उद्देश्य सरस उत्तेजनायें उत्पन्न करना भर होता है। शिक्षण की इन अनेकानेक विधाओं को बहुत कुछ सिखाया जाता है। शिल्पी, कलाकार, क्रियाकुशल, व्यवसायी, वैज्ञानिक, प्रशासक अपने-अपने ढंग की अपनी-अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रशिक्षितकर्मी तैयार करते हैं। इस प्रकार शिक्षण का बहुविधि प्रशिक्षण सर्वत्र चलता रहता है। सीखने और सिखाने वालों का बहुत सारा श्रम, समय और धन, साधन इन प्रयोजनों में खपते हैं। उनके उद्देश्यों के अनुरूप बहुत सीमा तक प्रयोजनों की पूर्ति भी होती है, किन्तु एक सबसे बड़ा कार्य ऐसा छूट जाता है जिसकी ओर कहीं भी ध्यान नहीं दिया जाता, कोई कारगर प्रयत्न नहीं होता। वह है—जीवन जीने की कला का प्रशिक्षण। इस अभाव के रहते, अन्य सभी शिक्षण आधे-अधूरे, काने-कुबड़े रह जाते हैं।

जीवन अपने आप में एक बहुमुखी कौशल है। इसके साथ अनेकानेक पक्ष जुड़े हुये हैं। शरीर को स्वस्थ कैसे रखा जा सकता है ताकि वह बिना दुर्बल बने, रोगी रहे, बिना अकाल मृत्यु से मरे समर्थतापूर्वक आवश्यक क्रियाकलापों को करता रहे। मन को सन्तुलित रखना, सही कल्पनायें करना भी उतना ही आवश्यक है। मन का शरीर पर नियन्त्रण रहता है। जो भी क्रियायें होती हैं, उनके पीछे मन की आकांक्षायें एवं योजनायें ही काम कर रही होती हैं। शास्त्रकारों ने ठीक ही कहा है कि "मन ही मनुष्य का शत्रु और वही मित्र है।" वही अनुकूल-प्रतिकूल दिशाधारा अपनाकर उत्थान-पतन का ताना-बाना बुनता है। सही दिशा अपनाकर सूझ-बूझ के साथ यदि वह निर्धारित क्रिया-कलाप में तत्परता, तन्मयतापूर्वक लगे तो समझना चाहिये कि अभीष्ट सफलता के समीप जा पहुँचने का पथ प्रशस्त हो गया।

जीवन की एक अपनी दुनिया है। वह है—परिवार। इसी समुदाय के बीच समय गुजारना पड़ता है। अधिकांश परिवार अंश-वंश से सम्बन्धित होते हैं और सहकारी संस्था के रूप में अपने क्रिया-कलापों का निर्धारण, संचालन करते हैं। अर्थ उपार्जन समर्थ लोग इसीलिये करते हैं कि उनका और उनके परिवार का निर्वाह ठीक प्रकार होता रहे। परिवार के साथ उतनी ही समस्यायें, आवश्यकतायें जुड़ी होती हैं जितनी किसी देश के साथ। शासनाध्यक्ष को जिस प्रकार अपने क्षेत्र के अनेकानेक प्रबन्ध में दत्तचित्त रहना पड़ता है, उसी प्रकार परिवार के समर्थ सदस्यों को अपनी-अपनी भूमिका इस प्रकार निभानी पड़ती है जिससे वह स्वयं सुखी-सन्तुष्ट रहे और साथियों की कठिनाई का समाधान, अभ्युदय का प्रावधान करते रहे। परिवार की जितनी साधन जुटाने सम्बन्धी समस्यायें होती हैं उससे अधिक भावनात्मक एकता को अक्षुण्ण बनाये रहने का भी जटिल प्रश्न सामने खड़ा रहता है। विभिन्न प्रकृति, स्वभाव एवं दृष्टिकोण स्तर वाले व्यक्ति एक साथ रहते तो हैं पर उनकी खींचतान अपने-अपने रुझान-स्वार्थ के अनुरूप चलने का प्रयत्न करती है। यदि उनकी भिन्नता हुई तो परस्पर मनोमालिन्य की, टकराव की स्थिति बन जाती है। इसका हल न ढूँढ़ा जा सके—तालमेल न बैठ सके तो उसका परिणाम ऐसा कष्टकर होता है कि साथ रहना, अलग रहने से भी अधिक महँगा पड़े।

दाम्पत्य जीवन की सफलता किसी बड़े मनोवैज्ञानिक प्रयोग से कम पेचीदा नहीं है। एक गाड़ी में जुते हुये दो बैल, दो पहिये समान स्तर के न हों तो मंजिल कठिन हो जाती है। अन्तर तो मनुष्य-मनुष्य के बीच रहता ही है। जिस प्रकार हर किसी का चेहरा किसी दूसरे से नहीं मिलता, उसी प्रकार स्वभाव भी ऐसा कहीं नहीं देखा गया कि वह सर्वथा साथी की इच्छानुरूप हो, ऐसी दशा में आकांक्षाएँ, रुचियाँ, आवश्यकतायें भिन्न-भिन्न हों तो इसे आश्चर्यजनक नहीं माना जा सकता। आश्चर्यजनक यही है कि इस भिन्नता को सहिष्णुता, उदारता, आत्मीयता के आधार पर इस प्रकार मोड़-मरोड़ लिया जाय कि भिन्नतायें यत्किंचित सुधर सकें अथवा सहन हो सकें। कामचलाऊ स्थिति को बनाये रह सकें, इसके लिये समर्थ पक्ष को कमजोर साथी को सुयोग्य बनाने के लिये समय निकालना पड़ता है, श्रम करना होता है और सीखने के लिये सहमत करना होता है। इतना ही नहीं वरन् वह भी करना होता है कि दोनों को थोड़ा-थोड़ा झुककर ऐसी स्थिति उत्पन्न की जाय कि विभेद रहते हुये भी बहुत अंशों में एक दूसरे के लिये अनुकूल एवं उपयोगी बन सकें। दाम्पत्य जीवन ही दोनों साथियों में एक-दूसरे की चरित्रनिष्ठा की चौकीदारी करता है और जो अनुभव-अभ्यास नहीं था उसे समझकर ऐसी क्षमता विकसित कररता है कि द्वैत को अद्वैत में विकसित किया जा सके।

अविवाहित एवं एकाकी लोग भी किसी न किसी समुदाय के बीच रहते हैं। यही उनका परिवार है। वानप्रस्थी, संन्यासी भी किसी जमात में रहकर संयुक्त जीवन जीते हैं। घर से दूर पढ़ने वाले विद्यार्थी छात्रावासों में रहते हैं। यह सब प्रकारान्तर में परिवार ही बन जाता है। साथियों के साथ तालमेल बिठाकर चलने की प्रवीणता इस स्थिति में भी आवश्यक होती है।

समझदारों को सन्तुष्ट रखने का शिष्टाचार परिपालन सहजीवन का आवश्यक अंग है। एक दूसरे के प्रति विनम्रता का, मृदुलता का, सहयोग का, उदार आत्मभाव का परिचय देना पड़ता है। आदान-प्रदान का ध्यान रखना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ता है। दूसरों का स्नेह-सद्भाव जितना मिलता है, उसकी तुलना में अपनी ओर से कम नहीं वरन् अधिक ही देने का प्रयत्न करना पड़ता है। दूसरों के प्रतिदान की प्रतीक्षा न करके अपना पक्ष, दायित्व निबाहने के लिये तत्पर रहना होता है। यह समझदारों का समझदारी के प्रति बरता जाने वाला बरताब हुआ।

घर के छोटे बच्चों को इस प्रकार ढालना पड़ता है जिससे कि वे भविष्य में सुयोग्य नागरिक बन सकें। अपने लिये प्रतिष्ठा अर्जित करें और दूसरों के सम्मुख उपयोगी, प्रमाणित हो सकें, इस ढाँचे में ढालना साधारण काम नहीं है। गीली मिट्टी तैयार होने पर भी कुम्हार का कौशल ही है, जो उसे इच्छानुरूप खिलौनों या बर्तनों में ढालता है। इसलिये अभिभावकों को अपना स्तर साँचे जैसा बनाना पड़ता है। जिसके सम्पर्क में आकर बालकों का व्यक्तित्व क्रमशः अधिकाधिक समुन्नत, सुसंस्कृत बन सके। यह कार्य साधारण नहीं असाधारण है। बच्चों को खिलाने, पहनाने, पढ़ाने का प्रबन्ध कर देना सुलभ है। आर्थिक साधन और सूझबूझ होने पर वह कार्य सरलतापूर्वक हो सकते हैं किन्तु स्वभाव, दृष्टिकोण, चिन्तन, चरित्र, व्यवहार को उच्चस्तरीय मानवी गरिमा के अनुरूप विनिर्मित कर सकना असाधारण काम है। इसमें बाहरी प्रयत्न उतना काम नहीं करते जितना कि परिवार संचालक का निजी स्तर काम करता है। बच्चों को बनाने से पूर्व अपने आप को एक नमूने के रूप में खड़ा करना पड़ता है। बालक देखने में नासमझ दिखाई पड़ते हैं किन्तु उनकी भाव-सम्वेदना इतनी तीक्ष्ण होती है कि गहराई में उतरकर वस्तुस्थिति को जान सकें। छल बड़ी आयु वालों के सामने तो चल जाता है, पर छोटे बालकों की अन्तःचेतना चरित्र की, चिन्तन की यथार्थता को समझने में भूल नहीं करती। उन्हें मात्र उपदेश देकर समुन्नत नहीं बनाया जा सकता है। उपदेशों की भाषा कदाचित् वे न समझ सकें पर उपदेष्टा के व्यक्तित्व की वास्तविकता को ताड़ने में उन्हें तनिक भी कठिनाई नहीं होती। बुराइयाँ सिखाने, गिरावट का मार्ग दिखाने में तो संसार का प्रचलन ही पर्याप्त है, पर उत्कृष्टता-सुव्यवस्था अपनाने के लिये कोई प्रत्यक्ष प्रमाण, उदाहरण सामने चाहिये। इस आवश्यकता की पूर्ति गृह संचालन, प्रभावशाली, प्रतिभावान अभिभावकों को ही करनी चाहिये। प्रयत्न यह होना चाहिये कि बालकों को अधिक सुविधायें प्रदान करने की अपेक्षा उन्हें चरित्रवान, सुसंस्कारी एवं स्वावलम्बी बनाया जाय। इस प्रयास में घर के सभी बच्चों को समान रूप से सम्मिलित करना चाहिये। अपने-पराये का भेदभाव करने से बात बनती नहीं, बिगड़ती है।

परिवार में फिजूलखर्ची, आवारागर्दी, अशिष्टता, आरामतलबी जैसी कुटेवों को नहीं ही पनपने देना चाहिये। उच्छृंखलता, धींगामुश्ती, स्वार्थपरता, आलस्य, प्रमाद, दुर्व्यसन आदि का प्रवेश नहीं होने देना चाहिए। इनकी छूत एक से दूसरे को लगती है। कुटेवें जड़ जमा लेती हैं, तो फिर आसानी से उखड़ती नहीं। इसलिये इस सन्दर्भ में आरम्भ से ही सतर्कता बरती जानी चाहिये।

जिस प्रकार शरीर को सर्दी-गर्मी से बचाया जाता है। घर के सामान को वर्षा में भीगने से बचाया जाता है। उसी प्रकार परिवार को हवा में उड़ती दुष्प्रवृत्तियों से बचाया जाना चाहिये। अपरिपक्व व्यक्तित्व समीपवर्ती सम्पर्क में, प्रचलन एवं उदाहरणों से अधिक प्रभावित होते हैं। श्रेष्ठता खोजने की, अपनाने की प्रज्ञा हर किसी में नहीं होती। पानी का स्वभाव ढलान की ओर बहना है। इसी प्रकार मनुष्य का स्वभाव भी समीपवर्ती गन्दगी को जल्दी पकड़ने का है। कपड़े और फर्श हवा में उड़ती धूल को पकड़ लेते हैं और कुछ ही समय में अनायास ही गन्दे हो जाते हैं, उसी प्रकार इर्द-गिर्द जो घटनायें घटित होती रहती हैं, चर्चायें चलती रहती हैं, उनमें अनौचित्य का पुट अधिक रहता है। वे बिना बुलाये छूत की बीमारी की तरह चढ़ दौड़ती हैं। इनसे बचाव करना, अपनी बुद्धिमत्ता पर यह निर्भर करता है कि अवांछनीयता से न केवल अपने को वरन् सारे परिवार को बचाकर रखें। विष बीज जहाँ भी उगता दिखाई पड़े उसे आरम्भ से ही सतर्कता के बल पर समझ लें और दूरदर्शिता का परिचय देते हुये उखाड़ फेंकने का प्रयत्न करें। वातावरण में बेईमानी, छल, प्रपंच, पाखण्ड, अनाचार का सर्वत्र बोलबाला है। ऐसे उदाहरण सर्वत्र बड़ी संख्या में मिल जाते हैं। दुर्गन्ध की तरह अनाचार भी दूर-दूर तक के क्षेत्र को प्रभावित करता है। दुर्व्यसनों, दुर्गुणों को पढ़ने-समझने के लिये कहीं कोई पाठशालायें नहीं खुली हैं। उन्हें सिखाने वाले शिक्षक ट्यूशन फीस देकर बुलाने नहीं पड़ते। वे खरपतवार की तरह चाहे जहाँ उग पड़ते हैं। मक्खी-मच्छरों की तरह चाहे जहाँ जा पहुँचते हैं। जुएँ, खटमल, कृमि कीटक जैसे स्वयमेव उपजते और बढ़ते रहते हैं। उसी प्रकार दुष्प्रवृत्तियों का आक्रमण भी स्वभाव पर, चरित्र पर समीपवर्ती वातावरण से ही होता रहता है। आवश्यकता इस विडम्बना से अपने को—परिवार को—सम्बद्ध लोगों को बचाये रहने की है। इसके लिये स्वजनों में ऐसा आत्मगौरव विकसित करना चाहिये, जिससे वे अपनी विशिष्टता, उत्कृष्टता और गरिमा का अनुभव करें। इस मान्यता से, भावना से भरे रहें कि हमें दूसरों के सामने अपने को एक उत्कृष्ट आदर्श के रूप में प्रस्तुत करना है। साबुन स्वयं स्वच्छ रहता है और जिसके साथ सम्पर्क साधता है, उसे स्वच्छ करता है। हमें साबुन की तरह रहना है, चन्दन की तरह अपना क्षेत्र सुगन्धित करना है। दीपक की तरह अन्धेरे में प्रकाश उत्पन्न करना है। यदि गौरव गरिमा अपनी-अपने परिकर की आस्था बनकर विकसित हो तो न केवल अवांछनीयता से आत्मरक्षा होगी वरन् सद्भावनाओं का, सद्गुणों का प्रसार भी बन पड़ेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निजी जीवन के हर कोने में ठुँसी अनुपयुक्तता

रेत में अनाज बिखर जाने पर उन्हें एक-एक करके बीनना पड़ता है। इन दिनों यथार्थता और प्रवंचना इस कदर आपस में घुलमिल गई हैं कि उस मिली-जुली स्थिति में से हित-अनहित का, औचित्य-अनौचित्य का वर्गीकरण-विश्लेषण अति कठिन हो गया है। यह कार्य कोई राजहंस जैसा नीर-क्षीर विवेक के कला-कौशल का धनी ही कर सकता है।

सायंकाल की सन्ध्या के उपरान्त सूर्य का प्रकाश धूमिल होता जाता है और अन्धकार के घिरते आने का माहौल बनता जाता है। कुछ देर में अन्ध तमिस्रा आ धमकती है और हाथ को हाथ नहीं सूझता। यही स्थिति मानवी चिन्तन चेतना की इन दिनों हो रही है। यों कहने को बुद्धिमत्ता बढ़ी है। शिक्षा में इजाफा हुआ। चतुरता-कुशलता की बढ़-चढ़कर डींगें हाँकी जाती हैं। इसके सबूत में प्रत्यक्षवादी भौतिक विज्ञान की उपलब्धियों को प्रस्तुत किया जाता है। प्रकृति के रहस्यों को जान लेने और उस पर आधिपत्य जमा लेने का दावा करने वाला मूर्ख कैसे कहा जा सकता है ? एक ओर जहाँ प्रस्तुत समझदारी की सराहना करनी पड़ती है। वहाँ दूसरे क्षेत्र उसकी स्थूल बुद्धि, अविवेकशीलता की पकड़ में आते हैं। उपलब्ध समझदारी को तात्कालिक लाभ पर अवलम्बित, अदूरदर्शिता ही कहा जा सकता है। विवेक की समग्रता इस बात पर निर्भर है कि दूरवर्ती परिणामों का सही अनुमान लगाते हुये किसी निर्णय-निष्कर्ष पर पहुँचा जाय। क्योंकि अदूरदर्शिता और दूरदर्शिता के आधार पर किये गये मूल्यांकनों में जमीन-आसमान जितना अन्तर होता है। तुरन्त की उपलब्धि को ही सब कुछ मान लेने पर चिड़िया और मछली जाल में फँसती और प्राण गँवाती है। मक्खी चासनी की कड़ाही से उठने वाली गन्ध और बहुलता को देखकर इतनी आतुर हो जाती है कि धैर्यपूर्वक किनारे पर बैठकर उसका स्वाद लेते हुये पेट भरना सम्भव नहीं रहता। वह एक बार में उस सारी सम्पदा को निगल जाना चाहती है। फल यह होता है कि पर और पैर दोनों ही चासनी में फँस जाते हैं। मजा उड़ाने के स्थान पर तड़पते हुये प्राण गँवाने पड़ते हैं। ऐसे ही प्रलोभनों में पतंग को दीपक को निगल जाने के लालच में दुर्गति करानी पड़ती है। समझदारी इसमें है कि दूरवर्ती परिणामों पर विचार किया जाय और जो अन्ततः हितकारी सिद्ध होता हो उसी को अपनाया जाय। इसके निमित्त यदि तात्कालिक लाभ छोड़ना पड़ता हो, तो संकोच नहीं करना चाहिये।

किसान आरम्भ के दिनों में बीज बोने, खाद, पानी देने, निराई-गुड़ाई में लगे रहने, रखवाली करने जैसे घाटे उठाता है। उसका विवेक कहता है कि समय आने पर अच्छी फसल उपलब्ध होगी। उसका अनुमान और अनुभव सही सिद्ध होता है। किसान घाटे में नहीं रहता। जो त्यागता है, उसकी तुलना में कहीं अधिक पाता है। व्यापारी व्यवसाय में पूँजी लगाकर आरम्भिक दिनों में पूरी तरह अपनी जेब खाली कर देता है, विद्यार्थी स्नातक बनने की प्रतीक्षा में चौदह वर्ष गुजारता है और इस बीच कड़ा परिश्रम करता है। फीस-पुस्तक, कापी, आवागमन आदि के कितने ही दायित्व वहन करता है, पर अन्ततः वह समूचा श्रम सार्थक होता है। उच्च शिक्षा प्राप्त करके जब वह मूर्धन्य मनीषियों की पंक्ति में बैठता है, कोई बड़ा अधिकारी—अफसर बनता है। पहलवान को भी दंगल पछाड़ने से पूर्व मुद्दतों अखाड़े में कड़ा अभ्यास करना पड़ता है। यदि उपरोक्त सज्जन अधीरता के वशीभूत होकर एक सोने का अण्डा रोज देने वाली मुर्गी के सारे अण्डे एक दिन में ही प्राप्त करने के लिये उसका पेट चीर डालें तो उस लालच का बुरा परिणाम ही विवशतापूर्वक सहन करेंगे।

अधीर लोग तात्कालिक लाभ देखते हैं और दूरगामी परिणामों पर नजर उठाकर भी नहीं देखते। इसी का परिणाम है कि जीभ के स्वाद को सब कुछ समझने वाले चटोरे व्यक्ति, अधिक मात्रा में अभक्ष्य उदरस्थ करते रहते हैं और पाचन तन्त्र को बिगाड़कर अनेकानेक रोगों के शिकार बनते हैं। कामुकता के वशीभूत लोगों को तात्कालिक रसास्वादन ही सब कुछ दीखता है। यौनाचार में अति बरतते हैं और जीवनी शक्ति गँवाकर खोखले हो जाते हैं। मस्तिष्कीय प्रतिभा पलायन कर जाती है। आलसी, प्रमादी तात्कालिक श्रम से बचे रहने में सुविधा समझते हैं फलतः योग्यताओं और सफलताओं से वंचित रहकर अपंग-अपाहिजों की स्थिति अपना लेते हैं। नशे जैसे दुर्व्यसनों के शिकार होकर अपनी स्वस्थता, अर्थव्यवस्था, प्रतिष्ठा, पारिवारिकता को भारी क्षति पहुँचाते हैं। प्रदर्शन प्रिय अपव्ययी भी यही करते हैं। सज-धज, ठाट-बाट, सस्ती वाह-वाही, नकली अमीरी के माध्यम से बड़े आदमी बनने की ललक में फँसते हैं, अन्ततः हर विचारशील की दृष्टि में ओछे-बचकाने, अप्रामाणिक बनते हैं। पैसा और समय अपना गँवाते साथ ही हर समझदार की दृष्टि में अपना मूल्य गिराते चले जाते हैं।

ऐसा लगता है इन दिनों अदूरदर्शिता का ही बोल-बाला है। अपराधी गतिविधियाँ अपनाकर लोग तुर्त-फुर्त धनी बनना चाहते हैं, पर साथ ही इतना गँवाते भी चलते हैं, जिसकी क्षतिपूर्ति किसी भी प्रकार नहीं हो सकती। प्रामाणिकता गँवा बैठने वाला अविश्वासी किसी का भी सच्चा सम्मान, विश्वास या सहयोग प्राप्त नहीं कर सकता। धूर्तता का प्रकट होकर रहना सुनिश्चित है। हींग की गन्ध बँधी पोटली को छेदकर भी हवा में फैलती है। कच्चे पारे को खाकर हजम नहीं किया जा सकता, वह शरीर के अनेक अंगों को छेदकर व्रण रूप में बाहर निकलता है। काठ की हाँडी दूसरी बार नहीं चढ़ती। कागज की नाव पानी में दूर तक नहीं तैरती। छल-प्रपंचों से भरा हुआ,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपराधी अनाचार करते रहने पर कोई देर तक अपनी वस्तुस्थिति छिपाये नहीं रह सकता। पर्दाफाश होने पर पूर्व परिचितों के सामने ठहरते नहीं बन पड़ता है। तब उसे अन्यत्र डेरा डालना पड़ता है। सारा जीवन इसी प्रकार उलट-पुलट में निकल जाता है। अन्ततः हिसाब लगाने पर प्रतीत होता है कि यदि कुटिलता का मार्ग न अपनाया होता, सीधे मार्ग पर चला गया होता तो अन्यान्य सज्जनों की तरह अपनी प्रतिष्ठा भी अक्षुण्ण रही होती और महामानवों की तरह लोक-सम्मान के आधार पर उच्च स्थिति उपलब्ध करते हुये उस स्थान तक पहुँच गया होता, जहाँ चोर-उचक्के लाख प्रयत्न करने पर भी, कभी भी हस्तगत नहीं कर सकते। छद्म अपनाया जाय या सत्य ! इनके चयन में अदूरदर्शिता छद्म का पक्ष लेती है। सत्य का अवलम्बन लेने का निर्णय तक पहुँचना मात्र दूरदर्शी विवेक के आधार पर ही सम्भव होता है। इतनी मोटी बात भी उनकी समझ में नहीं आती जो बिना प्रतीक्षा-परिश्रम किये, जैसे भी बने वैसे बढ़-चढ़कर लाभ प्राप्त करने के लिये आतुरता प्रदर्शित करते हैं। उन्हें कुमार्ग पर चलना और दुष्परिणाम भुगतना पड़ता है।

बुद्धि वैभव कितना ही क्यों न हो, चतुरता कितनी ही बढ़ी-चढ़ी हो, पर वह दूरदर्शिता अपनाये बिना अन्धेरे में ही भटकती है, पग-पग पर ठोकरें खाती है। इसलिये श्रेयस्कर एवं हित रक्षा इसी में है कि हर प्रसंग को विवेक की कसौटी पर कसा जाय कि किस मार्ग पर चलते हुये अन्ततः कहाँ पहुँचा जायेगा। लक्ष्य-निर्धारण को ही इष्ट देव कहते हैं। यह उच्चस्तरीय, उत्कृष्ट होना चाहिये। उसे प्राप्त करने के लिये आवश्यक त्याग, पुरुषार्थ करने के लिये अपने आप को तैयार करना चाहिये। सही स्तर की बढ़ी-चढ़ी सफलता का यही राजमार्ग है। इसे छोड़कर कँटीली पगडण्डी में हम पाते कम और गँवाते अधिक हैं।

लगता है इन दिनों अदूरदर्शिता ही सघन तमिस्रा बनकर हर दिशा में, हर क्षेत्र में छाई हुई है। लोग उसी के कुचक्र में दिग्भ्रान्त की तरह भटकते, ठोकरें खाते और एक-दूसरे से टकराते हुये देखे जाते हैं। पर्यवेक्षण करने पर प्रतीत होता है कि लोग वस्तुस्थिति समझने का प्रयत्न नहीं करते। अन्धी भेड़ों की तरह एक-दूसरे के पीछे चलते और बेहिचक, पंक्तिबद्ध होकर गहरे गर्त में गिरते हैं। बहुमत जिस समुदाय का होता है वही चुनाव जीतता है। लगता है अदूरदर्शिता का ही प्रबल बहुमत हो चला है। फलतः संचालन और नियन्त्रण भी इसी वर्ग का हो रहा है। व्यक्ति का, समाज का हर वर्ग इसी प्रक्रिया से प्रेरित नियन्त्रित हो रहा है। हम अदूरदर्शिता के दलदल में इतने गहरे घुस गये कि वस्तुस्थिति समझने और उबरकर नवजीवन प्राप्त तक नहीं कर पा रहे हैं। जो ढर्रा चल पड़ा है, उसी के साथ प्रवाह में बहते पत्ते की तरह निश्चेष्ट होकर किसी अविज्ञात दिशा अनिष्ट की ओर बहते जा रहे हैं।

एक-एक करके जीवन के सभी क्षेत्रों की परीक्षा करे तो सुविधा रहेगी। दिनचर्या पर दृष्टिपात करें तो प्रतीत होता है कि समय सम्पदा का मूल्यांकन कोई नहीं करता, यदि किया गया होता तो आजीविका उपार्जन ही नहीं योग्यता अभिवर्धन के लिये—सामाजिक हित साधना के लिये ढेरों समय निकल आता। सन्त विनोबा ने व्यस्त जीवन के बीच ही संसार की २३ भाषाओं का अध्ययन कर लिया था। अनेक सद्गृहस्थों ने समय का वर्गीकरण और सदुपयोग करके इतने महत्त्वपूर्ण कार्य कर डाले जिनकी यश गाथा सुनकर हर सुनने वाले को पुलकित होना पड़ता है। पर हममें से कितने हैं जो समय सारणी निर्धारित करते हैं, जिसकी प्रतिक्रिया से न केवल स्वयं लाभान्वित हों वरन् अनुकरणीय बनें।

जीवन का प्रमुख आधार आहार है। मनुष्य का प्राकृतिक आहार फल-शाक है। उसमें मसाले का, सफेद शक्कर का, खनिज नमक का, गरिष्ठ चिकनाई का, माँस का, कहीं कोई स्थान नहीं है ! फिर भी देखते हैं कि जो कुछ थाली में आता है, उसमें हितकर का अंश कम और अहितकर का अधिक होता है। स्वाद ही खाद्य के चयन का प्रमुख आधार बनकर रह गया है। स्वाद के लालच में मात्रा भी इतनी उदरस्थ की जाती है, जिसको पचा सकना सीमित सामर्थ्य वाले पेट के लिये असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। यही वह भूल है जो दुर्बलता, रुग्णता, अकाल-मृत्यु आदि अनेकानेक अभिशापों को लेकर सिर पर आ धमकती है।

मन-मस्तिष्क की उर्वरता, कल्पनाओं, विचारणाओं पर निर्भरता है। विचार ही कर्म बनते हैं। कर्म से परिस्थितियाँ विनिर्मित होती हैं और वे ही उत्थान-पतन का आधारभूत कारण बनती हैं। ऐसी बहुमूल्य सम्पदा को आमतौर से इतना उच्छृंखल-अनियन्त्रित बनाया जाता है कि कल्पना बेलगाम घोड़े की तरह किसी भी क्षेत्र में दौड़ती है। अपनी सामर्थ्य का अपव्यय करती है, इतना ही नहीं ऐसे प्रसंगों में रुचि लेने लगती है, जो खरपतवार की तरह असाधारण रूप में उगते और समूची फसल पर छा जाते हैं। कुकल्पनाओं का कारण ही है कि मनुष्य कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं कर पाता। शेखचिल्ली जैसे असम्भव, अनुपयुक्त सपने देखता है और वह करता है जो नहीं करना चाहिये। वह सोचता है जो नहीं सोचना चाहिये। विचार क्षेत्र में अराजकता छाई रहती है। फलतः सबसे मूल्यवान मस्तिष्कीय शक्ति का दुरुपयोग होता रहता है। व्यक्ति अपने ही पैरों आप कुल्हाड़ी मारता रहता है। यदि विचारों को आदर्शों के साथ जोड़कर रखा गया होता तो निश्चय ही कोई सामान्य परिस्थिति में जन्मा, अभावग्रस्त व्यक्ति भी अब्राहम लिंकन, जार्ज वाशिंगटन, गारफील्ड की तरह किसी बड़े राष्ट्र का राष्ट्रपति बनने की स्थिति तक पहुँच गया होता। उच्च कोटि का विद्वान, समाजसेवी, आदर्शवादी, महामानव बनकर रहा होता, पर अदूरदर्शिता को क्या कहा जाय जो न समय सारणी बनाने देती है, न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आहार का चयन करने देती है और न विचार प्रवाह को कोई उपयुक्त दिशाधारा में चलते रहने की स्थिति उत्पन्न होने देती है।

अर्थोपार्जन सर्वोपरि उद्देश्य बनकर रह रहा है। यह उचित भी है और आवश्यक भी। पर ध्यान यह भी तो रहना चाहिये कि पसीने का कमाया, ईमानदारी की कसौटी पर खरा कसा गया धन ही फलता-फूलता है। उसी का सदुपयोग बन पड़ता है। अनीतियुक्त, बिना परिश्रम का धन भले ही कितनी ही बड़ी मात्रा में जमा कर लिया गया हो, पर उसका उस संयम के साथ खर्च नहीं किया जा सकता है। जैसा कि सादा जीवन उच्च विचार का सिद्धान्त अपनाने वाले—औसत नागरिक स्तर अपनाने वालों को प्रयुक्त करना चाहिये। नितान्त आवश्यक उपयोग करने की बात को सदा ध्यान में रखने, उचित आत्मोत्कर्ष, परिवार के सुसंस्कारीकरण एवं लोकोपयोगी अंशदान में पैसा खर्च करने की सूझबूझ उन्हीं में रहती है जो उपार्जन एवं उपयोग के बीच आदर्शवादी औचित्य का ताल-मेल बिठाये रहते हैं। धन कमाना, श्रम एवं कौशल पर निर्भर है, पर उसका खर्च सही ढंग से कर पाना गहरी सूझ-बूझ का काम है। देखा जाता है कि लोग अनीतिपूर्वक कमाते हैं और इस तरह खर्च करते हैं मानो वह मुफ्त में कहीं पड़ा हुआ पाया गया हो। जिसका दुर्व्यसनों के अतिरिक्त और कोई उपयोग सूझता ही न हो। यदि धन की पवित्रता और उपयोगिता पर ध्यान रखा गया होता तो जितना पैसा लोगों के पास है, उतने से ही देवोपम जीवन जी सकना सम्भव हो गया होता और मिल बाँटकर खाने की प्रवृत्ति अपना लेने से वातावरण स्वर्गोपम सुख-शान्ति से परिपूर्ण बन गया होता। पर हो उलटा रहा है। अधिक कमाने की ललक किसी हद तक पूरी होते रहने पर भी उसे बजट बनाकर खर्च न पाने के कारण, फूटे-घड़े में भरे हुये पानी की तरह, उपार्जन अस्त-व्यस्त कार्यों में खर्च हो जाता है और दरिद्रता-अभावग्रस्तता यथावत् बनी रहती है। नजर पसारकर देखने पर यही स्थिति सर्वत्र दीख पड़ती है। धनी-निर्धन सभी अपने-अपने ढंग एवं कारणों से चिन्तित दिखाई पड़ते हैं। इस क्षेत्र में सुख-सन्तोष उपलब्ध करते किन्हीं बिरलों को ही देखा जा सकता है।

जीवन के साथ जुड़ा हुआ एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है परिवार। जो किया या कमाया जाता है वह शरीर के लिये ही नहीं होता। योजनाओं और गतिविधियों में बहुत बड़ा भाग परिवार पोषण का रहता है। पर यह कार्य किस प्रकार ठीक तरह किया जा सकता है, उसकी रूपरेखा बहुत कम लोगों के मस्तिष्क में रहती है।

उचित उपयुक्त यह है कि जिन परिजनों की उपस्थिति पहले से ही है उन्हें सन्तुष्ट—सुखी, समुन्नत, स्वावलम्बी, सुसंस्कृत बनाने के लिये सामर्थ्य भर प्रयत्न किया जाय। उनकी उचित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आवश्यक साधन जुटाये जायें। चूँकि मनुष्य परिवार के बीच ही पलता, बढ़ता है। इसलिये उस संस्था का अत्यधिक ऋण चढ़ा होता है। इस पारिवारिक ऋण को चुकाना आरम्भ करने के लिये प्रत्येक को समर्थता आरम्भ होते ही प्रयत्नरत होना चाहिये। वयोवृद्ध, जीर्ण-शीर्ण होने लगते हैं। उन्हें शारीरिक सहायता, मानसिक निश्चिन्तता और उचित प्रतिष्ठा की आवश्यकता रहती है।

अपने से छोटी आयु वाले, योग्यता की दृष्टि से पिछड़े हुये, बच्चे तथा महिलायें यह सभी वर्ग ऐसे हैं जिन्हें सुयोग्यों की सेवा-सहायता अनेक सन्दर्भों में चाहिये। अपनी सहायता जिनने भी की हो, वे ही उसका प्रतिफल प्राप्त करें। परिवार संस्था के किन्हीं सदस्यों ने जिस स्तर के अनुदान दिये थे, उन्हें दूसरे रूप में अन्य सदस्यों को चुकाया जा सकता है। हर संयुक्त परिवार में कई सदस्य होते हैं। उनकी आवश्यकतायें भी भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। इन साधनों के जुटने में अपने श्रम, समय और साधन लगे तभी परिवार ऋण से मुक्ति मिलती है।

पिछला ऋण चुकाये बिना नया उत्तरदायित्व ओढ़ना अनुचित है। विवाह करके एक नया सदस्य बढ़ाया जाता है। वह मेहमान बनकर ही आरम्भिक दिनों में आता है। उसकी मेहमानदारी में स्वभावतः घर के अन्य लोगों की तुलना में कुछ अधिक ही करना पड़ता है। समय भी लगता है। धन भी खर्च होता है और स्थान भी घिरता है। उसकी पूर्ति अन्य लोगों की सुविधा—आवश्यकताओं में कटौती करके ही की जाती है। विवाह की धूमधाम-दावत में, जेवर-वस्त्रों में पैसा उठता है सो अलग। विवाह के उपरान्त नये बच्चों का आवागमन शुरू हो जाता है। छोटे बच्चों पर, नवजात शिशु पर प्रायः उतना ही खर्च पड़ता है जितना बड़े आदमी पर। बच्चों की देखभाल, साज-सम्भाल में उससे अधिक समय खर्चा होता है। जितना कि घर के अन्य सदस्यों पर किया जाता है। पत्नी और बच्चे मिलकर एक नया गृहस्थ आरम्भ करते हैं। नये परिवार की व्यवस्था जिस चाव-उत्साह और खर्च के साथ जुटाई जाती हैं। उसकी व्यवस्था बनाते हुये इतना मनोयोग तथा साधन-संरजाम शेष नहीं बचता कि परिवार के पुराने सदस्यों के प्रति आवश्यक जिम्मेदारियाँ निभ सकें। दो दिशाओं में एक साथ नहीं चला जा सकता। दो घोड़ों पर एक साथ नहीं चला जा सकता। परिवार के पिछले सदस्यों के प्रति अपने कर्त्तव्य और दायित्व जब तक पूरे न हो जायें तब तक समझदार और जिम्मेदार लोगों को अपना विवाह करने में रुकना चाहिए। इतना न बन पड़े तो बच्चों का उत्पादन ही रोक रखना चाहिये। परिवार वृक्ष को सुविकसित किये बिना उसका काट-पीट आरम्भ नहीं ही करना चाहिये।

अभिभावकों को निजी व्यक्तित्व ऐसे साँचे की तरह विनिर्मित करना चाहिये, जिससे नये बच्चों की ढलाई उपयुक्त स्तर की हो सके। जब तक अपना शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, आर्थिक विकास पूरा नहीं हो पाया है, उससे पहले ही नये बच्चों की संरचना आरम्भ कर देना हर प्रकार से अनुचित है। पुराने परिवार की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यकताओं में कमी पड़ती है। साथ ही अपने ऊपर भी अतिरिक्त वजन लदता है। उसे यदि ठीक प्रकार वहन न किया जाय तो अभावों और विसंगतियों के बीच जन्मे और पले बालकों का भविष्य बिगड़ता है। हर बच्चे को खुली हवा और खेलने-कूदने के लिये जगह चाहिये। उसका प्रबन्ध पहले से ही न बन पड़ा हो तो एक ही छोटे बिल में रहने वाले चूहों के परिवार की तरह ऐसी घिचपिच और विपन्नता बनी रहती है, जिसमें न पलने वाले की खैर है न पालने वाले की।

फिर भी लोग ऐसा जीवनयापन करते हैं, जिसमें न परिवार के पुराने सदस्यों का ऋण चुकाते बन पड़ता है और न नये उत्पादन का सुसंगत परिपालन। लोग क्या करते हैं इसका पर्यवेक्षण करने से प्रतीत होता है कि अधिकांश को न अपने शरीर, मन, समय, धन का सदुपयोग करते बन पड़ता है और न परिवार के प्रति कर्त्तव्यों का निर्वाह। दूसरे अनुपयुक्त जीवन जीने के आदी हैं तो हम उनकी देखा-देखी अविवेकपूर्ण अनुसरण करें, यह उचित नहीं।

अनुपयुक्त वातावरण को बदल दिया जाय

पर्यावरण का प्रभाव दूर तक पड़ता है। रूस के उजबेकिस्तान क्षेत्र में सभी लोग सौ वर्ष से अधिक जीते हैं। यद्यपि उनका आहार-विहार अन्यत्र बसे लोगों जैसा होता है। सघन बसे, सीलन-कीचड़ वाले शहरों के निवासी धूलि-धुएँ से प्रभावित होकर प्रायः बीमार पड़ते हैं और बेमौत मरते हैं। भले ही वे अपने निजी आहार-विहार का कितना भी ध्यान क्यों न रखें। वनवासी, आदिवासी असुविधाओं से भरा जीवन जीते तो भी उनका शरीर हृष्ट-पुष्ट रहता है। यह वहाँ के खुले जलवायु का ही प्रभाव है। जो उस क्षेत्र के निवासियों को भरपूर जीवनी शक्ति प्रदान करता है।

जलाशय स्वच्छ रहने पर उसमें रहने वाले जल-जन्तु पनपते और बढ़ते हैं पर उसमें गन्दगी पड़ने से मछलियों का जीवन दुर्लभ हो जाता है। उष्ण कटिबन्ध के निवासी शीत प्रधान देशों की तुलना में अधिक अस्वस्थ पाये जाते हैं। यह वातावरण का ही प्रभाव है। व्यक्तिगत संयम और प्रयत्न किसी हद तक अपना काम तो करते हैं। पर चल रहे प्रवाह के सामने उन्हें भी नतमस्तक होना पड़ता है। अन्धड़ जब आते हैं तो पेड़-पत्तों को तोड़-मरोड़कर रख जाते हैं। छप्पर उड़ा ले जाते, घरों में धूलि-करकट भर जाते हैं। मनुष्य इस भवितव्यता को मूक दर्शक की तरह देखता रहता है। इसके विपरीत वर्षा के दिनों में सर्वत्र हरियाली उगती है और बसन्त की बेला में प्रकृति पुष्पों से लदी दीख पड़ती है। ठूँठों में कोंपल उगती हैं और बूढ़ों को मस्ती की अनुभूति होती है। गर्मी के दिनों में हर कोई थकान, बेचैनी अनुभव करता है। उसमें मनुष्य का अपना निजी हस्तक्षेप नहीं है। वातावरण का प्रभाव उसे अपनी प्रबलता की अनुभूति कराता है।

समाज के प्रचलनों का अपना एक विशिष्ठ वातावरण होता है। उसके प्रभाव क्षेत्र में रहने वाले उसी तरह सोचते, उसी तरह का आहार-विहार एवं रहन-सहन अपनाने पड़ते हैं। अनुकरणप्रिय स्वभाव वाला व्यक्ति अनायास ही उस ढाँचे में ढलता चला जाता है। क्षेत्रों, प्रदेशों की अपनी-अपनी बोली-भाषा और वेष-भूषा होती है। वहाँ रीति-रिवाज भी अपने-अपने स्तर के चलते हैं।

सम्बद्ध समाज को भी एक सीमित वातावरण माना जा सकता है। उसका अपना वातावरण, पर्यावरण होता है। उस प्रभाव को उस क्षेत्र के निवासियों द्वारा अनायास ही अपना लिया जाता है।

ऐसे मनस्वी बिरले ही होते हैं, जो अपने निजी प्रखर व्यक्तित्व से समाज को प्रभावित कर रहे और चल रहे अनुपयुक्त प्रवाहों को बदलते हैं। सामान्य तथा सर्वसाधारण की मनोदशा प्रवाह के साथ बहने वाले पत्ते जैसी होती है। इसलिये श्रेय या दोष व्यक्ति को देते हुये देखना यह भी होता है कि उपयुक्त या अनुपयुक्त गतिविधियाँ अपनाने में सामाजिक पर्यावरण का कितना योगदान, प्रभाव, दबाव रहा है।

देखा जाता है कि हर क्षेत्र में अपने-अपने ढंग से अवांछनीयता विद्यमान रहती और फलती-फूलती हैं। इससे उस क्षेत्र के निवासियों का चिन्तन, चरित्र, व्यवहार और कर्तृत्व प्रभावित होता है। जापान, जर्मनी, इसराइल जैसे कर्मनिष्ठ देशों के नागरिक जितने पुरुषार्थी, साहसी होते हैं। उतने विलासी, पिछड़े और आलसी देशों के नहीं होते। साधन रहते हुये भी अनगढ़ व्यक्तित्व हेय परिस्थितियों में पड़े रहते हैं। व्यक्ति एकाकी होता है। उसका साहस और विवेक भी सीमित होता है। बहुमत के आगे प्रायः वह दब जाता है और अधिकांश लोग जिस तरह सोचते, बरतते हैं उसी मार्ग पर व्यक्ति विशेष को भी चल पड़ते देखा जाता है। यदि प्रचलनों में अवांछनीयताएँ भरी हैं तो जनसाधारण को भी उसी राह पर चलते देखा जायेगा। क्षेत्र विशेष की आकृति-प्रकृति में समानता होती है। इतना ही नहीं वे दिशाधारा और रीति-नीति भी अन्यान्यों जैसी ही अपनाते हैं।

वस्तुस्थिति को समझते हुये व्यक्तिगत सुधार की तरह सामाजिक प्रचलनों को भी सही करने का प्रयत्न किया जाना चाहिये, यह नहीं सोचना चाहिये कि दूसरों पर हमारा क्या बस है। वे अपनी मर्जी में चलते हैं। उन पर अपना क्या प्रभाव है। वे क्यों अपना कहा मानेंगे। यह कथन एक सीमा तक ही सही है। सर्वसाधरण को प्रवाह में ही बहते देखा जाता है। पर कुछ मनस्वी, प्रतिभावान, संगठित एवं सशक्त साधनसम्पन्न व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जो समाज को प्रभावित करते हैं। जनमानस को दिशा देते हैं और पूर्व प्रचलनों को बहुत सीमा तक उलट देते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नये मार्ग पर प्रयाण करने-कराने वाली परिस्थितियाँ वे उत्पन्न करते हैं और प्रयासों में बहुत हद तक सफल भी होते हैं। ऐसे साधनों और प्रयासों को प्रचार कहते हैं। उसमें लोकमानस को इच्छित दिशा में मोड़ने की महती क्षमता देखी गई है।

इन साधनों में साहित्य, संगीत और कला को अतिशय शक्तिशाली माना गया है। पुराने समय में मात्र सत्संग ही माध्यम था। धर्मोपदेशक कथा-वार्ता, प्रवचन, सत्संग के माध्यम से गोष्ठियाँ लेते और आयोजनों में प्रवचन, उद्‌बोधन करते थे। उस जमाने में साहित्य दुर्लभ था। मुद्रण कला का विकास नहीं हुआ था। हस्तलिखित ग्रन्थ दुर्लभ भी होते थे और महँगे भी पड़ते थे। पर अब ऐसी बात नहीं रही। मुद्रण-कला का समुचित विकास हुआ है। साहित्य प्रकाशन एक अच्छा खासा व्यवसाय बन गया है। पुस्तकें तो छपती ही हैं। पत्र-पत्रिकाओं की भी प्रचुरता है। वे बड़ी संख्या में छपती हैं और शिक्षित जनों तक पहुँचती हैं। उनमें कुछ न कुछ उद्देश्य जुड़े होते हैं। शिक्षित व्यक्ति उन्हें पढ़ते हैं। आपस में चर्चा करते हैं। अशिक्षितों को सुनाते हैं। प्रकाशित साहित्य में यों घटनाओं का ही बाहुल्य रहता है। वे वास्तविक भी हो सकती हैं और काल्पनिक भी। पर उससे बहुत अन्तर नहीं पड़ता। उनके साथ जुड़े हुये उद्देश्य पाठक को प्रभावित करते हैं। भले वह प्रभाव सीमित मात्रा में ही क्यों न हो। थोड़ा-थोड़ा करके वह प्रभाव अपनी परतें जमाता जाता है और मजबूत चट्टान जैसा बनकर पाठकों के दृष्टिकोण में, अन्तराल में अपना स्थान बनाता जाता है। विचार ही व्यक्ति का ध्रुव-केन्द्र है। विचारों के साथ ही कर्तृत्व चलता है। उसी से व्यक्तित्व बनता है। स्वाध्याय और सत्संग को व्यक्ति निर्माण का महत्त्वपूर्ण माध्यम माना गया है। इसलिये उद्देश्यपूर्ण साहित्य को जनमानस को बदलने में, समाजगत प्रवाह को दिशा देने में महती भूमिका निभाते देखा गया है। प्रचलित कुरीतियों, मूढ़-मान्यताओं, दुष्प्रवृत्तियों, अवांछनीयताओं को सुधारकर यदि समाज को उपयुक्त बनाना है, तो साहित्य के लेखन, प्रकाशन का प्रयत्न होना चाहिये। इतना ही नहीं उसको अधिक संख्या में फैलाने के लिये विक्रय या वितरण का तन्त्र भी गतिशील होना चाहिये।

जो लोग संत्साहित्य निर्माण, प्रकाशन, विक्रय का प्रबन्ध कर सकते हों वे वैसा करें। अन्यथा इतना तो सरलतापूर्वक हो सकता है कि अपना निजी या सामूहिक पुस्तकालय स्थापित किया जाय। उसमें मात्र सामयिक, विचारोत्तेजक साहित्य का ही संकलन हो। देखा गया है कि जनसाधारण की उथली मनोवृत्ति, घटिया मनोरंजन का साहित्य ही पढ़ती है। इस कुटेव को स्तरीय अभ्यास में बदलने के लिये एक ही उपाय है कि झोला पुस्तकालय, ज्ञान-रथ जैसी योजना कार्यान्वित की जाय। हर शिक्षित के घर जाकर प्रेरणाप्रद पुस्तक देने और वापिस लेने का कार्यक्रम चलाया जाय। इसके लिये समय तो नियमित रूप से देना ही पड़ेगा। साथ ही कुछ पैसा भी नियमित रूप से लगाना पड़ेगा ताकि नया साहित्य खरीदा जाता रहे। एक पुस्तक एक बार पढ़ लेने के बाद दुबारा-तिबारा उसे पढ़ने की बात कथा-पुराण में तो चलती थी। पर विचारोत्तेजक साहित्य में वैसा नहीं बन पड़ता। नया पढ़ने को उत्सुकता रहती है। इसलिये जिन्हें स्वाध्याय का चस्का लगे उन्हें नियमित रूप से नया साहित्य पहुँचाने की भी व्यवस्था बनाई जाय। इसके लिये सार्वजनिक चन्दा भी हो सकता है पर उसकी प्रतीक्षा में बैठे रहने की अपेक्षा यही सरल है कि जितना अंशदान अपने से बन पड़े, उसमें नियमितता बनाये रखी जाये और जिस-तिस को छुट-पुट पढ़ाते रहने की अपेक्षा उसे अपने बल चलाया जाय और कुछ पाठकों को नियमित स्वाध्याय की आदत डाली जाय। यह छोटा, सीमित और व्यक्तिगत प्रयास है। इसे बड़े रूप में भी चलाया जा सकता है। हिटलर की 'मीन कैम्फ' माओ की 'लाल किताब', मार्क्स की 'कैपिटल' जैसी पुस्तकों का अत्यधिक प्रसार हुआ और उसके आधार पर व्यापक क्षेत्र में तदनुरूप मस्तिष्क की ढलाई में सफलता प्राप्त कर सकना सम्भव हुआ। यह एक माध्यम है जिससे जन-मानस को सड़ी-गली स्थिति से उबारकर नये प्रगतिशील ढाँचे में ढाला जा सकता है।

लेखनी के समान ही वाणी का भी प्रभाव होता है। छोटी गोष्ठियाँ, बड़े आयोजन आयोजित करके उनके प्रगतिशील सामयिक विचारों को प्रतिपादित किया जाय। यह कार्य सड़े-गले पौराणिक कथा-प्रसंगों के बलबूते सम्भव नहीं हो सकेगा। उसके लिये ऐसी तीखी विचारधारा चाहिये जो सड़े फोड़े का आपरेशन करने के साथ-साथ घाव भरने वाला मरहम भी लगाता चले। पूरे समय के, या आधे-अधूरे समय के युग प्रवक्ताओं की अत्यधिक आवश्यकता है। इस अभाव की पूर्ति नवसृजन में, सामाजिक परिष्कार में विश्वास रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं आगे आकर किसी रूप में आरम्भ करनी चाहिये। छोटी गोष्ठियों के लिये भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के जन्म-दिवसोत्सव मनाये जा सकते हैं। इस माध्यम से घर-घर में ज्ञान गोष्ठियाँ सम्पन्न होती रह सकती हैं। पर्व-त्यौहारों पर स्थानीय जनता को एकत्रित करके व्यक्ति एवं समाज के नवनिर्माण की प्रेरणा उत्पन्न की जा सकती है। साइकिलों पर तीर्थयात्रा करने का, दीवारों पर आदर्श वाक्य लिखने का प्रयास भी ऐसा है, जिससे जन-मानस के परिवर्तन का, समाज को परिष्कृत प्रकाश देने का उद्देश्य बड़ी सीमा तक पूरा किया जा सकता है।

लेखनी और वाणी स्वाध्याय और सत्संग के अतिरिक्त दूसरा कला पक्ष आता है संगीत और अभिनय का। पुराने समय में इसके अनेकानेक व्यक्तिगत एवं विकेन्द्रित माध्यम भी थे किन्तु अब तो फिल्म दूरदर्शन ही प्रमुख माध्यम रह गये हैं। वे धनाध्यक्ष और शासनाध्यक्षों के हाथ में हैं। दोनों के अपने-अपने लक्ष्य हैं। धनाध्यक्ष को फिल्मों के माध्यम से दर्शकों की जेबें खाली कराने,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनका पैसा बटोरने की धुन सवार है। शासनाध्यक्षों को अपने प्रयासों का गुणगान कराने की योजना है। दोनों अपने-अपने कार्यों में व्यस्त और मस्त हैं। उन्हें व्यक्तियों का परिष्कार एवं समाज के परिवर्तन में उतनी रुचि नहीं है। जिसे भाव भरी लगन कहा जाय। यदा-कदा छुट-पुट प्रसंगों के इस सन्दर्भ में चर्चा मात्र होती रहे तो उतने भर से कोई बड़ा प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इसके लिये उन्हें ही अग्रगामी होना और स्वयं कार्यक्षेत्र में उतरना पड़ेगा। इसके लिये यदि बड़े साधन जुटाना अपने बस की बात नहीं है, तो छोटे साधनों को अपनाकर भी उस प्रयोजन की पूर्ति की जा सकती है। स्लाइड प्रोजेक्टर के माध्यम से चित्र प्रदर्शन और टेपरिकार्डर के माध्यम से विचार प्रसारण का उद्देश्य बहुत अंशों तक पूरा किया जा सकता है। छोटी-छोटी संगीत मण्डलियाँ, कीर्तन मण्डलियाँ, अभिनय मण्डलियाँ गठित की जा सकती हैं और उनकी व्यवस्था जहाँ-तहाँ सार्वजनिक आयोजन सम्पन्न करके की जा सकती है।

दिवाली की रात्रि में सघन अन्धकार छाया हुआ था। न सूरज का पता था न चन्द्रमा का। तब छोटे-छोटे दीपकों ने संगठित होकर जलना आरम्भ किया और सम्मिलित प्रकाश से उस तमिस्रा भरी रात्रि को जगमगा दिया। जिनके मन में नवजागरण के प्रति उत्साह है वे उन दीपकों की रीति-नीति को अपना सकते हैं।

फैली हुई समाजगत अवांछनीयताओं के विरुद्ध वातावरण बनाने के लिये साहसी विचारशीलों का अपना कदम सर्वप्रथम आगे बढ़ाना चाहिये। दूसरों को उपदेश देने का यह सबसे अच्छा तरीका है कि अपनी मान्यताओं को क्रिया रूप में परिणित कर दिखाया जाय। अनुकरणप्रिय लोगों में इतना साहस नहीं होता कि जिन बातों को अनुचित समझते हैं, उनके विरुद्ध स्वयं आगे बढ़कर विरोध कर सकें। अपने को उनसे विरत कर सकें। वे यह प्रतीक्षा करते रहे हैं कि कोई और उनके लिये साफ-सुथरी सड़क बनाये जिस पर वे बिना किसी अवरोध या झंझट के सीधे चले जायँ। ऐसे लोगों के लिये उदाहरण प्रस्तुत करना आवश्यक है। इसके लिये एक दूसरे से आगे बढ़ने की प्रतीक्षा की जाती रहती है। कोई पहल नहीं करता तो गाड़ी बीच में रुकी की रुकी खड़ी रह जाती है। इस अवरोध को किसी को तो तोड़ना ही पड़ेगा। अच्छा हो, यह श्रेय हम स्वयं ही लें। इस साहस को अपनाने में हम स्वयं ही पहल करें।

अपने समाज में कुप्रचलनों की भरमार है। वे ही व्यक्ति की मानसिक, आर्थिक परिस्थिति को बिगाड़ने के जिम्मेदार हैं। पिछले दो हजार वर्षों में हमें मुट्ठी भर आक्रमणकारियों के पैरों तले रौंदे जाने का कलंक भरा अभिशाप सहन करना पड़ा। इसमें इस देश की समर्थता कारण नहीं थी। शक्ति भी कम न थी। पर बिखराव ने सभी को एक दूसरे से अलग कर रखा था। कुरीतियों के कुचक्र में पिसते हुये दुर्बल हो चले थे। दुर्बल काया पर तो नन्हें से मच्छर भी चढ़ दौड़ते हैं और ज्वर बुलाने से लेकर प्राणहरण तक का निमित्त कारण बनते हैं। जबकि भरपूर जीवनी शक्ति वाले अपनी आन्तरिक क्षमता के कारण भयानक विषाणुओं को भी मार भगाते हैं। समाज सुधार की प्रक्रिया को तेज करके इसी स्तर की समर्थता को फिर अर्जित करना है। तभी उस स्वराज्य का समुचित लाभ उठाया जा सकना सम्भव होगा। जिसे पिछली पीढ़ी ने बड़े त्याग और बलिदान के साथ अर्जित किया था।

समाज का चिन्तन बदला जाता है ताकि उसके प्रचलनों में औचित्य का समुचित समावेश हो सके। व्यापक वातावरण में, पर्यावरण में आवश्यक सुधार करने के लिये आवश्यकता तो बड़े लोगों द्वारा बड़े प्रयत्न किये जाने की है। पर यदि वह वर्तमान परिस्थितियों में सम्भव होता दीख न पड़े तो उन मनस्वियों को पहल करनी चाहिये जो आदर्शवादी साहसिकता के धनी हैं। भले ही उनके पास साधनों का अभाव हो। ऐसे प्रसंगों में एकाकी अग्रगमन भी पीछे चलने के लिये अनेकानेक अनुयायी आमन्त्रित करता और सफलता के लक्ष्य तक पहुँचता है।

संगठन और समन्वय के दो प्रमुख सूत्र

समाज की सुसंगठना के दो सूत्र हैं। व्यक्तिगत जीवन में **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'** की भावना और सामूहिक जीवन में **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की मान्यता है। हम जैसा व्यवहार दूसरों से अपने लिये चाहते हैं, वैसा ही स्वयं भी दूसरों के साथ करें। परिवार के बीच जिस तरह मिल-बाँट कर खाने की, पारस्परिक स्नेह-सौजन्य की परम्परा चलती है, उसी प्रकार सम्पर्क प्रभाव क्षेत्र में भी उसी प्रकार का बर्ताव बरतें।

सोने को आग पर तपाया तथा कसौटी पर कसा जाता है। दोनों पर खरा उतरने पर ही उसका सही मूल्यांकन होता है और उचित मूल्य मिलने अथवा सुन्दर आभूषण बनने की व्यवस्था बनती है। जिस समाज में हम रहते हैं, वह मानवीय स्तर का बन पाया या नहीं, इसकी जाँच-पड़ताल भी उपरोक्त दो आदर्शों के अपनाये जाने की न्यूनाधिकता को देखकर जाना, समझा जा सकता है।

जनमान्यता यह होनी चाहिये कि औसत नागरिक स्तर का निर्वाह किया जाय। इसके लिये कमाने की सामर्थ्य से कम में ही अपना काम चलाया जा सकता है। मितव्ययतापूर्वक बजट बनाने, खर्च चलाने के उपरान्त उपार्जन की परिधि छोटी हो जाती है और अन्यान्य उपयोगी कार्यों के लिये समय मिल सकता है। विलासिता में, प्रदर्शन की विडम्बना में, दुर्व्यसनों एवं कुप्रचलनों में जो राशि खर्च होती है, उसे औचित्य को देखते हुये सरलतापूर्वक बचाया जा सकता है। इस प्रकार उस ललक के लिये कोई स्थान नहीं रहेगा, जो बेईमानी से धन कमाने की अभिलाषा उत्पन्न करती है। उसी के कुचक्र में पड़कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति कम परिश्रम में अधिकाधिक धन कमाना चाहता है। फलतः अनेकानेक अनाचारों का प्रचलन होता एवं समाज का ढाँचा लड़खड़ाता है।

सरकारी अफसरों के साथ व्यवहार बनाने में रिश्वत के लेने-देने का माध्यम अपनाना पड़ता है। न देने पर काम नहीं होता और हैरान करने का दबाव पड़ता है। इस आम प्रचलन की कमर तोड़ने के लिये शोषित पक्ष को ही खड़ा होना होगा। रिश्वत लेने की तरह देने को भी अपराध मानना होगा। सही तरीके से काम कराने में भले ही समय लगता हो, हैरानी होती हो, किन्तु न्याय पक्ष पर अड़ ही जाना चाहिये। यहाँ तक कि काम बिगड़ने का जोखिम भी उठाना चाहिये। अनीति के साथ समझौता करने के लिये सहमत नहीं होना चाहिये। इस प्रकार दबाव की चुनौती स्वीकार करने के उपरान्त शोषकों को हौंसले भी पस्त होते हैं, उनकी बढ़ी-चढ़ी ललक पर अंकुश लगता है। यह प्रधान उपचार है कि न्याय के पक्ष में जनसमुदाय को संगठित किया जाये। वारडोली की लगानबन्दी, चम्पारन की नील खेती वाला माहौल शोषितों के संगठित आन्दोलन से ही अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकता था। यह प्रयोग छोटे रूप में कहीं भी आजमाया, काम में लाया जा सकता है। यों शासन की धुरी का भी कर्त्तव्य है कि अपने परिकर में चल रहे भ्रष्टाचार को रोके और बीन-बीनकर अपने तन्त्र की प्रतिष्ठा रखने के निमित्त निष्कासन करके रहे।

व्यापार क्षेत्र में मुनाफाखोरी, मिलावट, अच्छी का वायदा करके घटिया चीजें चपेटना, कम तौल, कम नाप, मूल्य को निश्चित न रखकर ग्राहक के भोलेपन से लाभ उठाना जैसे अनाचारों का हर जगह बोलबाला दीखता है। इन ठगी, बेईमानी से बचने का कारगर उपाय यह है कि सहकारी उपभोक्ता स्टोर खोले जायँ। बिचौलियों की जल्दी मालदार बनने की हविश पर अंकुश इसी प्रकार लग सकेगा। जो ईमानदार व्यापारी अपनी साख जमा सकेंगे वे बने भी रहेंगे। प्रतिष्ठा और सहयोग भी प्राप्त करेंगे। दुकानदार की लूट-खसोट से निपटने के लिये उन्हें कोसना ही पर्याप्त नहीं है। होना यह भी चाहिये कि संगठित होने और प्रतिद्वन्द्वी आधार खड़ा करने के लिये जब प्रयत्न भी गतिशील हों। विष बेल तभी बढ़ती है जब उसे खाद-पानी का पोषण मिलता रहे। यदि इन सम्भावना को बन्द कर दिया जाय तो उसके लिये मुरझाना और सूख जाना ही निश्चित हो जायेगा।

अफसरों और व्यापारियों के अतिरिक्त तीसरी पंक्ति है दुर्व्यसनों की। इसमें अधिक विघातक है—नशेबाजी। यह प्रचलन दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। पुराने भाँग, गाँजा, अफीम, तम्बाकू आदि के नशे भी बढ़ रहे हैं। साथ ही किस्म-किस्म के शराबों से लेकर हेरोइनें अपने चित्र-विचित्र रूपों में प्रकट होती जा रही हैं। उनके कारण शारीरिक रुग्णता, मानसिक मूढ़ता, आर्थिक दरिद्रता, परिवार की दुर्दशा, अपनी अप्रामाणिकता आदि अनेक विपत्तियाँ टूटती हैं और व्यक्ति सर्वत्र भर्त्सना सहता हुआ अकाल ही काल कवलित होता है। नशेबाजी की बुराई से उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों का भयावह चित्र जन-जन के सामने उसी प्रकार रखा जाय जैसा कि चौरासी नरकों की मर्मान्तक पीड़ाओं का स्वरूप पुराण वाचक सुनाते और चित्रकार छापते रहते हैं। नशे को सामाजिक प्रतिष्ठा न मिले। उसका उपयोग किसी सार्वजनिक समारोह में न हो। जिस प्रकार विष बेचने और खरीदने पर प्रतिबन्ध रहता है वैसा ही उनके उत्पादकों और विक्रेताओं पर भी लगे। यह प्रयोजन अधिक टैक्स वसूल करके अधिक महँगा कर देने से पूरा न होगा। जिन्हें लत लग जाती है वे घर के कपड़े-बर्तन बेचकर भी अपनी हविश पूरी करते हैं। महँगे नशे पीकर वे आर्थिक दृष्टि से और भी जल्दी खोखले हो जाते हैं। नशेबाजी के विरुद्ध एक समर्थ जनआन्दोलन की आवश्यकता है। उस पर इतनी भर्त्सना बरसे कि विचारशील अपनी बर्बादी के साथ सामाजिक अपमान, विरोध सहने की हिम्मत ही न कर पाये। उत्पादकों और विक्रेताओं को इस अनाचार में बड़ी भूमिका निभाने का साहस न करने दिया जाये।

व्यसनों में वेश्यावृत्ति का भी एक घिनौना स्वरूप सामने है। इसमें नारी की आर्थिक दयनीयता एक बड़ा कारण है। वहाँ पुरुषों की कामुक कुदृष्टि ही अधिक दोषी है। यों यह अनाचार चुपके-चुपके पनपता है तो भी इस लानत में लिप्त नर-नारियों को कुमार्गगामी बनने के कारणों की रोकथाम करने की आवश्यकता है। नारी को सम्मानपूर्वक आजीविका कमाने के साधन उपलब्ध कराये जायें, उन्हें गृहस्थ बसाने का उपयुक्त अवसर मिले तो प्रयत्नपूर्वक रोकथाम से, दुष्प्रवृत्ति में बहुत हद तक कमी हो सकती है। गृहस्थ जीवन को सुखद, आकर्षक, सन्तोषजनक बनाने का प्रशिक्षण यदि योजनाबद्ध रूप से चल सके। व्यभिचार के दूरगामी दुष्परिणामों को यदि अधिक विस्तारपूर्वक समझने-समझाने का प्रयत्न किया जाय तो जिस प्रकार आग से खेलने में लोग डरते हैं, उसी प्रकार इस कुमार्ग में कदम बढ़ाना भी रुक जाय।

अहंता और कामुकता बढ़ाने में शृंगारिकता की बड़ी भूमिका है। सौन्दर्य प्रसाधनों से शरीर को सजाना, कीमती कपड़े और जेवरों में पैसा व्यय करना एक प्रकार की आर्थिक बर्बादी ही तो है। इन मदों में खर्च हुआ पैसा फुलझड़ी की तरह अपनी तड़क-भड़क दिखाकर कुछ ही दिनों में बर्बाद हो जाता है। इन्हें धारण करने वाला अहंकार से इठलाता है। लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है और अनेकों के मन में ईर्ष्या-द्वेष का बीजारोपण करता है। सजधज कर निकलने में जहाँ लोगों की आँखों में अपनी अमीरी की चकाचौंध उत्पन्न करता है। वहाँ अपनी ओछी मनोवृत्ति का परिचय भी देता है। यह प्रकारान्तर से मनचले प्रतिपक्षी वर्ग को अपनी ओर से कामुक निमन्त्रण देना भी है। व्यभिचार-दुराचार के फलने-फूलने का अवसर इस प्रदर्शन की दुष्प्रवृत्ति के कारण भी मिलता है। ठाट-बाट, सजधज, अपव्यय का उद्धत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रदर्शन अपना समय और धन गँवाना तो है ही। इसके अतिरिक्त दर्शकों के मन पर भी बुरी छाप छोड़ता है। वे या तो आकर्षित होकर स्वयं भी वैसी ही साज-सज्जा बनाने के लिये अनुचित रीति से धन कमाते हैं—अपराधों का आश्रय लेते हैं अथवा ईर्ष्यावश निन्दा करते, हानि पहुँचाते देखे जाते हैं। हर हालत में अमीरी और सुन्दरता प्रदर्शित करने वाल आडम्बर व्यक्ति और समाज के लिये हानिकारक परिणाम ही उत्पन्न करते हैं। सादा जीवन उच्च विचार के सिद्धान्त को अपनाना ही शालीनता का चिन्ह है। जो सादगी से रह सकता है वही ईमानदारी को अक्षुण्ण रख सकता है। सजधज और ठाठ-बाट में जो अत्यधिक पैसा खर्चना पड़ता है उसकी पूर्ति ईमानदारी, समझदारी की कमाई से नहीं हो सकती।

सामाजिक दुष्प्रवृत्तियों में एक अतिशय भयावह है—इक्कड़पन—संकीर्ण-स्वार्थपरता। मात्र अपने ही आर्थिक स्वार्थों का ध्यान रखने, उसी प्रयास में संलग्न रहने से व्यक्ति सामाजिक कर्त्तव्यों को, दूसरों के हितों को प्रायः भूल ही जाता है। अपनी ही सुविधा, विलासिता, सम्पन्नता की जिन्हें असाधारण ललक रहती है। वे दूसरों की किसी प्रकार की सहायता तो कर ही नहीं पाते। उलटे जिसकी भी—जिस प्रकार की भी-लूट-खसोट सम्भव हो उसे करने में हिचकते नहीं। स्वार्थी को शोषक—असामाजिक बनना पड़ता है। ऐसे लोग सस्ती वाहवाही लूटने के लिये भी खर्चीले प्रदर्शनों में पैसा लुटाते, चापलूस चमचे को पालते भी देखे जाते हैं। दूसरों के हितों की उपेक्षा करके किसी के लिये स्वार्थ साधना में निरत रह सकना सम्भव हो सकता है। जिसे परमार्थ का ध्यान रहेगा उन्हें स्वार्थों में कटौती करनी पड़ेगी। जो दूसरों को श्रेय देना चाहते हैं, उन्हें पिछली पंक्ति में खड़ा होना और विनम्र रहना पड़ेगा।

उदारता अपनाकर ही व्यक्ति दूसरों का सम्मान-सहयोग अर्जित कर सकता है। जिन्हें आपाधापी का जुनून सवार है वे हर अवसर पर अनुदारता का ही परिचय देते हैं। फलस्वरूप उनका ओछा व्यक्तित्व हर किसी के मन में श्रद्धा-सद्भावना पैदा नहीं करता। स्वार्थी व्यक्ति अपने तनिक से लाभ के लिये दूसरों का बड़े से बड़ा अहित करने में नहीं हिचकते। उनका जीवन ऐसे ही दुष्प्रयत्नों की घटनाओं से घिरा हुआ विज्ञजनों की दृष्टि में घिनौना बना रहता है। ऐसे स्वार्थियों की कमाई मुफ्तखोरों द्वारा ही अनुपयुक्त मार्ग में उड़ाई जाती है। चापलूस मुँह सामने झूठी प्रशंसा भले ही कर दें, पर पीठ पीछे उनका अपयश ही फैलता रहता है। स्वार्थियों की स्वार्थपरता अन्ततः उनके लिये महँगी ही पड़ती है। वे उस यश-सन्तोष को प्राप्त नहीं कर सकते जो उदार लोगों के परमार्थ प्रयासों के साथ जुड़ा रहता है।

जिस समाज में स्वार्थियों का बाहुल्य होता है उसकी निरन्तर अवनति होती है। घटिया व्यक्तित्वों से घिरा-भरा समाज कभी फलता-फूलता नहीं। उसके सदस्य निरन्तर एक दूसरे की जेब काटते हैं। आपस में लड़ते-भिड़ते और ईर्ष्या-द्वेष की आग में जलते रहते हैं। प्रयत्न यह होना चाहिये कि बचपन से ही उदारता की शिक्षा दी जाय और परमार्थ परायणता के लिये दैनिक जीवन में नियत-नियमत स्थान रहे।

संकीर्णता मनुष्य के चिन्तन का, अपनत्व का दायरा छोटा करती है। वसुधैव कुटुम्बकम् की मान्यता में पग-पग पर बाधा उपस्थित करती है। धर्म, सम्प्रदाय, प्रान्त, भाषा आदि के विभेदों में बँटकर मनुष्य क्रमशः अधिकाधिक क्षुद्र होता जाता है। अपने वर्ग समुदाय तक अपने को सीमित मानता है। उतने छोटे दायरे में बँटकर, कटकर कोई समाज समर्थ नहीं रह सकता। प्रगति नहीं कर सकता।

कई प्रकार की भिन्नतायें, रुचियों और परिस्थितियों के अनुरूप पृथक्-पृथक् हो सकती हैं, किन्तु उनके बीच सामंजस्य रहना चाहिये। जिस प्रकार भोजन के सम्बन्ध में भिन्नतायें अपनाने पर भी किसी घर-परिवार के लोगों में विघटन, विद्वेष नहीं होता उसी प्रकार सम्प्रदाय, प्रान्त, भाषा आदि की भिन्नतायें रहने पर भी एकात्मता में—अपनेपन में अन्तर नहीं आना चाहिये।

सभी जानते हैं कि एकता की कितनी बड़ी शक्ति होती है। तिनकों से मिलकर रस्सा, धागों से मिलकर कपड़ा बनता है। सींक मिलकर बुहारी और ईंटें मिलकर इमारत बनती हैं। संगठित और एकजुट सेना सुरक्षा की जिम्मेदारी उठाती और शत्रु के छक्के छुड़ाती है, पर अगर इन सबको बिखेर दिया जाय तो उनकी तुच्छता ऐसी प्रतीत होगी जिसे निरर्थक ही कहा जा सके।

बात इतने तक ही समाप्त नहीं होती। जब पृथकतावाद कट्टरता का रूप धारण करता है, तो तनिक से विभेद असहिष्णुता के कारण विद्वेष स्तर तक जा पहुँचती है और परस्पर मनोमालिन्य से लेकर स्थिति मारकाट तक जा पहुँचती है। एक-दूसरे को गिराने की, नीचा दिखाने की प्रतिस्पर्द्धा चल पड़ती है। इस विघटन का परिणाम सदा विनाशकारी ही होता है।

विभाजन, बिखराव जितने अधिक होते हैं, उतनी ही उनमें कट्टरता बढ़ती है। टकराव होता है। गुटबन्दी बढ़ती है। इसमें कुछ कमी रहे तो भी उपेक्षा-उदासीनता का होना निश्चित है। किसी को किसी की परवाह नहीं रहती। एक दूसरे की सुविधा-संवेदना का ध्यान नहीं रखता। स्थिति ऐसी बन जाती है जैसी मुसाफिर खाने में ठहरी हुई भीड़ की मानसिकता अपने आपे तक ही सीमित रहती है। कोई किसी के साथ घुलता-मिलता नहीं। किसी के दुःख-दर्द में सम्मिलित नहीं होता और न इस प्रकार सोचता है कि मिल-जुलकर शक्ति उत्पन्न करें और उसके आधार पर कठिनाइयों से निपटने, सुविधाओं के बढ़ाने की बात सोचें। जिनका एक-दूसरे के प्रति लगाव नहीं। जो एक-दूसरे की सहायता करने, पारिवारिकता विकसित करने, घनिष्ठ बनने की बात नहीं सोच सकते उनका समुदाय झुण्ड में चलने वाली भेड़ों के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहिष्णुता-सद्भावना का स्वभाव होने पर भिन्नताओं को दरगुजर किया जा सकता है। अपनी मान्यता सच और सब झूठे, का दुराग्रह रखने पर विरोध-विग्रह ही बढ़ता है। होना यह चाहिये कि अपने विश्वासों पर भले ही दृढ़ रहा जाय, पर दूसरों की मान्यताओं का भी सम्मान किया जाय। समन्वय का यही मार्ग है। संगठन की दृढ़ता और समुदाय की समर्थता इसी प्रकार विकसित होती है।

समाज के विघटित, विशृंखलित, अव्यवस्थित, अस्तव्यस्त होने के कारण मानवी चिन्तन में अवांछनीयता का तत्व घुस पड़ता है। इसे संकीर्ण-स्वार्थपरता और दुराग्रह, हठवादिता भी कह सकते हैं। यदि दूसरे को देख सकने की उदारता का स्वभाव में समावेश हो तो आत्मवत् सर्वभूतेषु की मान्यता चरितार्थ होने लगे। पराये अपने प्रतीत होने लगें। वसुधैव कुटुम्बकम् की रीति-नीति अपनाने का आदर्श व्यवहार में आने लगे। ऐसी दशा में न्याय और औचित्य का अवलम्बन लेते हुये उलझी हुई समस्याओं का सहज समाधान निकल सके।

रँगाई से पहले धुलाई आवश्यक

कुरीतियाँ स्वभाव का अंग बन जाती हैं तो वे सुहाने भी लगती हैं और प्रचलन के प्रति पक्षपात बन जाने से उपयोगी मानने को भी मन करता है। कम से कम उनके विरोध के लिये साहस तो उठता-उमँगता ही नहीं जिनके कारण कुप्रथाओं का उन्मूलन सम्भव हो सके।

किसी जमाने में व्यवसायों को विशेष वर्गों में बाँट दिया गया था। पैतृक परम्परा से उनमें प्रवीणता भी आ जाती थी और विक्रेता, उपभोक्ता को उन्हें तलाश करने के लिये जहाँ-तहाँ, मारे-मारे फिरने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। अभ्यास में आने पर बच्चे और महिलायें भी अपने-अपने ढंग से योगदान देने लगते थे। अध्यापनकर्त्ता धर्मोपदेशक ब्राह्मण माने जाते थे। शासन के अंग बनकर पुलिस, फौज जैसे आधार अपनाकर सुरक्षा व्यवस्था सँभालने वाले क्षत्रिय कहलाते थे। कृषि, पशुपालन, व्यवसाय में निरत लोग वैश्य थे। अन्य सभी श्रमजीवी मजदूर या छोटे गृह उद्योगों में निरत लोगों की शूद्र श्रेणी थी। इसमें ऊँच-नीच कोई भेदभाव न था। एक ही परिवार के लोगों में उपरोक्त कार्यों में से कोई किसी को और कोई किसी को अपना सकता था। आवश्यकता पड़ने पर उन्हें छोड़ या बदल सकता था। इस निर्धारण में बाधित-प्रतिबन्धित कुछ भी न था। इस प्रकार की समाज व्यवस्था चिरकाल तक चलती रही और उस निर्धारण के आधार पर सभी को निश्चिन्तता मिलती रही।

किन्तु सामन्तवाद के अन्धकार में उस व्यवसाय विभाजन में भी ऊँच-नीच की भावना घुस पड़ी। ब्राह्मण ऊँचा और शूद्र नीचा माना गया। जबकि ऊँच-नीच का वास्तविक आधार मनुष्य का व्यक्तित्व, चरित्र, गुण, कर्म, स्वभाव हो ही सकता है। कलक्टर का बेटा चपरासी हो तो उसे पूर्वजों के कर्तृत्व को देखते हुये कलक्टर कौन कहेगा ? इसी प्रकार छोटे व्यवसाय करने वाले भी अपनी प्रतिभा विशेषता के कारण ही उच्च पदासीन एवम् प्रतिष्ठित हो सकते हैं।

जातिगत ऊँच-नीच की मान्यता ऐसी है, जिसके पीछे तर्क या औचित्य का कोई आधार नहीं है। इस प्रचलन ने एक कदम मूढ़ता की दिशा में और बढ़ाया कि एक ही जाति के लोग उपजातियों में बँट गये और परस्पर छोटा-बड़ा मानने लगे। उदाहरणार्थ, ब्राह्मण वर्ग में १३० उपजातियाँ हैं ये आपस में एक दूसरों को ऊँचा-नीचा ही नहीं मानतीं वरन् परस्पर रोटी-बेटी का व्यवहार भी नहीं करतीं। यही प्रचलन क्षत्रिय-वैश्य व्यवस्था आदि में भी है। यह ही नहीं जो अनुसूचित जनजाति के लोग यह शिकायत करते हैं कि उन्हें सवर्ण वर्ग के लोग अछूत मानते हैं, नीच समझते हैं। उनके परिकर में भी इसी प्रकार का विभाजन है और ऊँच-नीच की मान्यता है। लगता है इस अनर्थमूलक भ्रान्ति ने पूरे समाज पर कब्जा कर रखा है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि समूचा समाज अपनी एकता खोकर छिन्न-भिन्न हो गया है। छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटकर रह रहा है। एक टुकड़े की दूसरे टुकड़े के साथ सहानुभूति नहीं। एकात्मकता नहीं। संविधान में कानूनी एकता का आधार, स्वीकार कर लिया जाने पर उसका असर शिक्षितों और शहरों में तो हुआ है, पर पिछड़े देहातों में वही पुराना प्रचलन अपने ढर्रे पर चल रहा है। इस विभाजन की जड़ें इतनी गहरी हैं, इसका परिचय तब मिलता है, जब विवाह-शादियों की समस्या सामने आती है। हर छोटा वर्ग अपनी उपजाति में ही शादी करना चाहता है। यही कारण है कि सुयोग्य लड़के तलाश करने में भारी कठिनाई का सामना करना पड़ता है और दहेज का लेन-देन भी इसी विवशता में चलता है।

पिछड़े वर्ग के लोग योग्यता न बढ़ा पाने, सभ्य समाज की रीति-नीति अपनाने का समुचित अवसर उपलब्ध न होने के कारण कुरीतियों के गर्त में अपेक्षाकृत और भी अधिक फँस गये हैं। साथ ही दरिद्रता की गई-गुजरी स्थिति में भी रह रहे हैं। नवजागरण की इस बेला में आवश्यक है कि इस भेदभाव का अन्त किया जाय। सभी मनुष्य एक स्तर के बनकर, एक समाज के सदस्य, एक परिवार के परिजन बनकर रहें। सभी को मानवी मौलिक अधिकारों का लाभ मिले।

अपने समाज में इतनी ही भयंकर दूसरी बुराई है, नर-नारी के बीच बरता जाने वाला भेद-भाव। मनुष्य जाति के दो स्वाभाविक वर्ग हैं, दोनों गाड़ी के दो पहियों की तरह दो हाथों और दो पैरों की तरह एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों के कर्त्तव्य और अधिकार समान होने चाहिये। दोनों को प्रगति के अवसर समान मिलने चाहिये। दोनों पर प्रतिबन्ध, अवरोध समान रूप से लागू होने चाहिये। प्राचीन काल में ऐसा ही था। नारी को अपेक्षाकृत अधिक सम्मान और गौरव उपलब्ध था। गायत्री, सावित्री, सरस्वती, दुर्गा,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लक्ष्मी आदि के रूप में देव वर्ग में उनका स्तर अन्यान्यों की अपेक्षा ऊँचा है। राधेश्याम-सीताराम, लक्ष्मी-नारायण उमा-महेश आदि युग्म नामों में नारी को प्रथम और नर को द्वितीय स्थान प्राप्त है। नारी मात्र जननी ही नहीं निर्मात्री भी है।

किन्तु मध्यकालीन अनाचार ने नारी को दासी, वन्दिनी मात्र बना दिया। उसे घूँघट-पर्दे में कैद करके छोटे घरों की परिधि में पिंजड़े की तरह जकड़ दिया गया। वह रसोईदारिन, चौकीदारिन, धोबिन मात्र बनकर रह गई। उसे गुड़िया की तरह सजाया तो अवश्य गया पर उसका प्रयोजन भी रमणी, कामिनी, भोग्या की तरह उसकी क्षमताओं का शोषण करना मात्र रहा। विधवाओं पर जो प्रतिबन्ध हैं वह विधुरों पर नहीं हैं। नारी को नर का, ससुराल का नियन्त्रण पूरी तरह मानना पड़ता है पर वह नर को सही मार्ग पर चलने का परामर्श-दबाव भी नहीं दे सकती। इन्हीं कारणों से वह अपनी प्रतिभा, क्षमता गँवा बैठी। शिक्षा और योग्यता की दृष्टि से पिछड़ गई। स्वावलम्बन की दृष्टि से वह असहाय है। जिनके पति गरीबी के बीच उठ गये उनके छोटे बच्चों का निर्वाह करने के लिये विधवा माता को कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं, इस व्यथा को भुक्तभोगी ही जानते हैं।

देश की आधी जनता नारी के रूप में है। यह यदि गई-गुजरी स्थिति में भी रहे तो उसका भार पुरुष को ही वहन करना पड़ता है। अपना और परिवार का भार वहन करने के कारण पुरुष में इतनी सामर्थ्य ही नहीं बचती कि प्रगति के लिये कुछ काम कर सके। यह अर्धांग पक्षाघात पीड़ित जैसी स्थिति है। इस माहौल में समूचे समाज पर दबाव पड़ता है और स्थिति दयनीय हो जाती है।

प्रयास यह होना चाहिये कि जिन वर्गों को अनीति-पूर्वक दबाया और धकेला गया है, उन्हें सुधारने में नये सिरे से ध्यान दिया जाय और उत्कर्ष का इतना प्रयास किया जाय तो वे समता की स्थिति में आ सकें। भरे ऊँचे तालाब को नाली काटकर छोटे नीचे तालाब के साथ जोड़ दिया जाता है, तो कुछ ही समय में दोनों ही सतह एक हो जाती हैं। स्त्रियों और शूद्रों के दो वर्ग सामान्य स्तर की अपेक्षा बहुत पिछड़ गये है। उन्हें ऊँचा उठाने, समान बनाने के लिये चरम स्तर के प्रयत्न करने होंगे। जिस प्रकार शरीर के किसी अंग को चोट लग जाने पर उसे अच्छा करने के लिये समूचा ध्यान और प्रयत्न एकाग्र हो जाता है, उसी प्रकार उपरोक्त दोनों वर्गों पर विशेष रूप से इनका पिछड़ापन दूर करने के लिये समाज के प्रत्येक उत्तरदायी सदस्य को प्रयत्न करना चाहिये।

तीसरी बड़ी कुरीति है विवाह-शादियों में होने वाली धूम-धाम, बारात का दिखावा, दहेज, जेवर जैसी खर्चीली गतिविधियों का अपनाया जाना। इस प्रसंग में इतना खर्च होता है, जिसमें दोनों ही परिवार खोखले हो जाते हैं। बेटी वालों को घर के बर्तन बेचकर उस महँगी धूमधाम का सरंजाम जुटाना पड़ता है। दूसरा पक्ष भी कम जंजाल में नहीं फँसता। उसे भी कम खर्च नहीं उठाना पड़ता है। वधू के जेवर, कपड़े, प्रीतिभोज, बारात, चढ़ावा आदि में वह भी अपना घर खाली कर बैठता है। दहेज में जो सामान मिलता है वह या तो सौगात में बँट जाता है या फिर निरर्थक कबाड़े की तरह घर घेरता है। बेचा वह भी नहीं जाता ताकि उसकी बिक्री से नकदी मिले और कुछ काम आये।

औसत गृहस्थ बड़ी मुश्किल से जो थोड़ी बहुत पूँजी एकत्रित कर पाता है, वह शादियों में खर्च होती रहती है। कोई संयुक्त परिवार ऐसा नहीं जिसे साल दो साल में एक विवाह न करना पड़ता हो। इसका परिणाम यह होता है कि घर में खुशहाली कभी टिक ही नहीं पाती। चाहे जितना कमाया या परिश्रम किया जाय, विवाहों का इतना बड़ा छेद है जिसके रहते यह आशा नहीं की जा सकती कि कभी कोई परिवार खुशहाल या हँसती-हँसाती प्रगतिशील परिस्थिति में रह पायेगा। समृद्धि सम्वर्धन के लिये अनेकानेक उपाय होते हैं पर गरीबी रेखा से ऊपर उठ सकना सम्भव नहीं हो पाता। बच्चों की शिक्षा, स्वस्थता, व्यवसाय के साधन बढ़ाने जैसा कुछ प्रबन्ध बन ही नहीं पड़ता।

वस्तुस्थिति को देखते हुये हमें विवाहों को इस धूमिल रूप से उबारकर साधारण पारिवारिक उत्सव जैसे हल्के-फुल्के स्तर पर लाना होगा। उनका ऐसा संक्षिप्त और सरल स्वरूप निर्मित करना होगा जो किसी के लिये भारी न पड़े। कन्या का जन्म इसलिये दुर्भाग्यपूर्ण न माना जाय कि उसके विवाह में लड़का ढूँढ़ने की दौड़-धूप करनी होगी। पैसे की फुलझड़ी जलाने का फूहड़पन जब तक बन्द नहीं हो जाता तब तक देश से गरीबी हटाने की कोई सूरत नहीं है। भले ही सुविधा-सम्वर्धन के छुटपुट प्रयास अपने ढंग से चलते रहें।

इस कार्य में पुरानी दकियानूस पीढ़ी को समझाने से काम चलने वाला नहीं है। विवाह योग्य लड़की-लड़कों से यह प्रतिज्ञा कराई जानी चाहिये कि बिना खर्च के ही शादी करेंगे अन्यथा कुमारे रहेंगे। अलग-अलग विवाह आयोजन करने की अपेक्षा उसे सामूहिक आयोजन के रूप में सम्पन्न किया जाय तो बड़े उत्सव का रूप भी बन जाता है। उपस्थित लोगों को वैसा करने की प्रेरणा भी मिलती है। इस सन्दर्भ में शान्तिकुञ्ज हरिद्वार ने अपने आश्रम में ऐसी व्यवस्था की है कि प्रज्ञा परिवार के परिजनों के विवाह यहाँ अत्यन्त सुविधापूर्वक बिना किसी खर्च के हो सकें। यह प्रक्रिया अन्यत्र भी चलनी चाहिये और ऐसी व्यवस्था बननी चाहिये कि इस मद में किसी भी गरीब-अमीर का धूमधाम भरा अपव्यय करने की हिम्मत न पड़े। उपयुक्त वर-वधू ढूँढ़ने के लिये आवश्यक है कि उपजातियों के बन्धन तो अनिवार्यतः तुरन्त ही तोड़े जायें। इसके उपरान्त जातियों को भी ऐसा निर्दोष बना दिया जाय कि उसमें व्यवसाय के आधार पर वर्ण बनने जैसी व्यवस्था यदि उचित समझी जाय तो बना रखी जाय। अन्यथा वर्गविहीन समाज बनने में हिन्दू समाज अग्रगामी बने, क्योंकि यह कलंक संसार भर में इस रूप में अन्यत्र कहीं भी नहीं है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मृतक भोज कुछ दिन पहले बड़े रूप में था पर अब उसका अन्त बढ़ती हुई महँगाई और समझदारी की बजह से अपने आप ही हो रहा है। ईंधन की कमी पड़ते जाने से गरीबों को मुर्दे जलाना अत्यन्त महँगा और कठिन होता जा रहा है। इसके लिये मुर्दे को लिटाकर जलाने की अपेक्षा जमीन, गड्ढा खोदकर, बैठाकर मुर्दे को ऊपर से आग जलाने की पद्धति क्रियान्वित की जानी चाहिये। अन्तिम शुद्धि के लिये यज्ञ कर लिया जाय। ब्रह्मभोज प्रीतिभोज वाले पूर्ववर्ती रिवाज को समाप्त होने दिया जाय। क्योंकि मृतक का संस्कार करना भी प्रायः उतना ही महत्त्वपूर्ण हो गया है जितना कि छोटा-मोटा विवाह करना।

भिक्षा व्यवसाय पिछले दिनों बहुत जोरों पर था। ६० लाख के करीब साधुबाबा भजन के नाम पर आवारा फिरते और जनता में अपने तथा अपने परिवारों को माध्यम बनाकर पैसा बनाते थे। इस वर्ग पर दबाव डाला जाना चाहिये कि उन्हें समाज के नवनिर्माण में सेवाभावी कार्यकर्त्ता की तरह जुटाया जाय। देश में प्रायः सात लाख गाँव हैं और ६० लाख साधु बाबा। एक गाँव पीछे वे ९ के करीब बैठते हैं। यदि वे शिक्षा सम्वर्धन, कुरीति उन्मूलन, नशा विरोध, वृक्षारोपण, स्वच्छता अभियान, सामूहिक श्रमदान जैसी सत्प्रवृत्तियाँ करने में लग सकें तो इस समर्थ सेना का मानव हितसाधन में, सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन में उत्साहवर्धक उपयोग हो सकता है। जो भजन-पूजन द्वारा स्वर्ग मुक्ति की कमाई करना चाहते हैं, उन्हें कहा जाय कि दान के धन पर नहीं निजी उपार्जन के बलबूते अपने निजी काम के उस प्रयोजन को पूरा करें।

तीर्थों का पुनरुद्धार होना चाहिये। पुरातन काल में तो गुरुकुल, वानप्रस्थाश्रम सर्वसाधारण को जीवन साधन सिखाने के लिये अति महत्त्वपूर्ण शिक्षण संस्थाओं के रूप में विनिर्मित हुये थे और उद्देश्यों की पूर्ति के लिये भावना पूर्वक चलते थे। इसी प्रशिक्षण का लाभ लेने के लिये विभिन्न वर्गों के लोग योजनाबद्ध रूप से वहाँ पहुँचते और ठहरते थे। धर्मशालायें भी तीर्थों में धर्मधारणा को बलवान बनाने के लिये ही प्रतिष्ठापित हुई थीं। तब वास्तव में तीर्थयात्रा पुण्यफलदायक थी।

आज तो स्थिति ही बदल गई है। लोग जलाशय में डुबकी लगाते, प्रतिमाओं की झाँकी करते, धक्के खाते, जेब कटाते, थके-माँदे घर लौटते हैं। जिस श्रद्धा को लेकर आये थे उसे स्थानीय परिस्थितियों को देखते हुये गँवा कर वापिस जाते हैं।

तीर्थों की गतिविधियों में असाधारण परिवर्तन होना चाहिये। उन्हें प्राचीनकाल की तरह उद्देश्यपूर्ण बनना चाहिये। जहाँ से सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन का कार्य उसी तत्परता के साथ होता रहे जैसा पूर्वकाल में होता था। तीर्थयात्रा का महात्म्य पदयात्रा के साथ जुड़ा हुआ है। लम्बी यात्रा में अनेकों गाँव बीच-बीच में आते थे। वहाँ रात्रि में निवास करते हुये तीर्थयात्रा मण्डली जनजागरण के निमित्त आयोजन करती थी। सामयिक समस्याओं का स्वरूप और समाधान सुझाती थी। मनीषियों की इस प्रकार की तीर्थयात्रा उतनी ही उपयोगी सिद्ध होती थी, जितनी वर्षा ऋतु में बरसने वाली घटा सर्वत्र हरियाली भर देती और बिना परिश्रम के फसल उगाने का आधार बनाती है। ऐसी उद्देश्यपूर्ण तीर्थयात्राओं को ही सराहा जा सकता है। इन दिनों साइकिलों की पदयात्रा भी विभिन्न क्षेत्रों में चल पड़े तो जनजागरण का एक बड़ा कार्य हो सकता है।

कपड़े को धोने के उपरान्त उसकी रँगाई होती है। समाज को सुसम्पन्न, समुन्नत बनाना है तो इसके लिये अवांछनीयताओं, मूढ़ मान्यताओं, कुरीतियों, अन्धविश्वासों, अनैतिकताओं को हटाना होगा। उद्यान लगाने से पूर्व भूमि को समतल एवम् झाड़-झंखाड़ों से रहित बनाना होता है। अच्छा यही है कि अपने सम्बद्ध समाज में घुसी हुई उन दुष्प्रवृत्तियों को हटायें, जो घुन की तरह मजबूत शहतीर को भी खोखला बनाने में लगी हुई हैं। किसी को परिपुष्ट पहलवान तभी बनाया जा सकता है, जब उसके रक्त में घुसे हुये विकृत विषाणुओं को हटा सकने में सफल हुआ जा सके।

समाज को समुन्नत-सुसंस्कृत बनायें

गाय-घोड़ा आदि पालने वाले उनकी समुचित देखभाल रखते हैं। कठिनाइयों को सुलझाते और सुविधाओं को बढ़ाते हैं तो वे हृष्ट-पुष्ट भी रहते हैं और मालिक की देखभाल पर प्रसन्नता भी व्यक्त करते हैं किन्तु उनकी उपेक्षा बरती जाय तो न केवल उदास रहते हैं वरन् क्षीण भी होने लगते हैं। राजाओं के निजी हाथी-घोड़े उन्हें अन्यों की तुलना में अधिक अच्छी तरह पहचानते थे और उनका आदेश पालने, वफादारी दिखाने में पीछे नहीं रहते थे। इसका कारण यह था कि वे स्वामी विशेष रूप से उनके पास आते-जाते, हाथ फिराते और अनुभव कराते थे कि वे उनके हिमायती एवं साथी हैं। इसका परिणाम-प्रतिदान और जानवरों की ओर से भी वैसा ही दिया जाता था। लड़ाई के मैदान में वे मालिक के इशारे पर जान तक होमने को तैयार रहते थे।

समाज भी ऐसा ही महागज है, उसके ऊपर उसके सदस्यों की पूरी देखभाल रहनी आवश्यक है। जो व्यक्ति अपने शरीर और मन के परिपोषण-अभिवर्धन का ध्यान रखता है उसकी काया सुदृढ़ बनी रहती है और दीर्घायुष्य जीने की सुविधा भी मिलती है। ठीक यही बात समाज के ऊपर लागू होती है। उसके सदस्यगण यदि सर्वजनीन उत्कर्ष का ध्यान रखते हैं। सामाजिक वातावरण को उच्चस्तरीय बनाये रखने में पूरा-पूरा ध्यान देते हैं तो उसका अभ्युदय, उत्कर्ष, परिष्कृतीकरण स्वाभाविक है। उपेक्षा का बरताब भी ऐसा है, जिसका परिणाम सडाँध बढ़ते जाने और अनेकानेक विकृतियों के घुस पड़ने के रूप में दृष्टिगोचर होता है। यह न होने पाये इसके लिये उन सभी विचारवानों को समुचित ध्यान रखना चाहिये जो अपने आप को समाज का जिम्मेदार सदस्य मानते हैं। अपनी नागरिक जिम्मेदारी और समाजनिष्ठा के प्रति निरन्तर सतर्क रहते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाज का आकार-प्रकार बहुत बड़ा है। उसकी शाखा-प्रशाखायें तो अनेकानेक हैं पर साथ ही वैसे कोतर भी कम नहीं हैं जो थोड़ी सी खाली जगह होते ही पक्षियों द्वारा गहरी लम्बाई में पोले-खोखले कर दिये जाते हैं। इससे पेड़ कुरूप भी होता है और कमजोर भी। जहाँ मालिकों की देखभाल रहती है, माली साज-संभाल करते रहते हैं, वहाँ ऐसी दुर्गति बनने नहीं पाती।

प्रत्येक जिम्मेदार नागरिक को शरीर, परिवार, उपार्जन की तरह ही समाज व्यवस्था के हर पक्ष पर ध्यान रखना चाहिये। जहाँ गड़बड़ी पल रही है, उसे उखाड़ने के लिये प्रयत्न किया जाना चाहिये। जहाँ उत्कर्ष की गुंजायश है वहाँ मिलजुल कर उसकी पूर्ति करनी चाहिये। यहाँ यह आवश्यक है कि समाज-सुधार एवं सामूहिक अभ्युदय का कार्य मिलजुल कर संगठित रूप से ही हो सकता है। कोई प्रतिभावान कितना ही समर्थ, चतुर क्यों न हो पर एकाकी प्रयास से कुछ सीमित कार्य ही कर सकता है। इसलिये समाज के प्रति सच्ची निष्ठा रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्रभाव परिचय के क्षेत्र में समाज सेवा संगठन खड़े करने और मजबूत बनाने के प्रयत्न करने चाहिये। रामकृष्ण, गाँधी, बुद्ध आदि अवतारी महामानव थे फिर भी उन्होंने अपने-अपने कार्य प्रयोजनों के लिये साथियों के बड़े-बड़े समुदाय एकत्रित किये थे। यह कार्य अपने समय में भी अनिवार्य रूप से आवश्यक है। समाज सेवा के एक एक पक्ष को लेकर कतिपय अन्यान्य संस्थायें भी काम कर रही हैं पर जिसने हर पहलू पर व्यापक दृष्टि से सोचा और नवनिर्माण का समग्र ढाँचा बनाया हो वह युग-निर्माण योजना या प्रज्ञा अभियान अपने ढंग का अनौखा है। उसकी गतिविधियाँ इतनी लोकप्रिय हुई हैं कि समर्थक और सहायकों की श्रृंखला में भावभरी कड़ियाँ निरन्तर जुड़ती जा रही हैं और संगठन सुदृढ़ ही नहीं सुविस्तृत भी हो जाता है। स्थान-स्थान पर अलग-अलग नाम, रूप, उद्देश्य और कार्यक्रमों के छुटपुट ढाँचे खड़े करने की अपेक्षा यही उत्तम है कि इसी संगठन के अन्तर्गत काम किया जाय। अनेकानेकों की प्राणशक्ति के सम्मिलित ऊर्जा भण्डार का जो उद्भव हो रहा है, उसी महाप्रयास में अपना योगदान जोड़ देना चाहिये।

हम सब को यह स्मरण रखना चाहिये कि विनाश तो एक जलती तीली या चिन्गारी भी कर सकती है, पर उठाने-बढ़ाने के लिये संयुक्त जनशक्ति का उद्भव किये बिना काम नहीं चल सकता। इसके लिये आर्थिक क्षेत्र को प्रधान मानकर सरकार की ओर से सहकारी संगठनों का विभाग बनाया गया है। उससे सम्बन्धित अनेकानेक समितियाँ बन रही हैं। सहकारी बैंक-सहकारी स्टोर आदि खुल रहे हैं। यदि उस संगठन के सभी सदस्य देव भावना से भरे-पूरे हों और मिल-जुलकर काम करने की आदत डालें तो आर्थिक उत्कर्ष के अनेक साधन बन सकते हैं और छोटे-छोटे विभाजनों का एक बड़ा स्वरूप बन सकता है। समस्यायें भी बड़े पैमाने पर हल हो सकती हैं।

इसी स्तर का दूसरा सरकारी प्रयास है ग्राम पंचायतों का—मण्डल पंचायतों का संस्थापन। उनके माध्यम से अनेकों स्थानीय झगड़े, झंझट सुलझ सकते हैं। निर्माण के कतिपय प्रयोजन पूरे हो सकते हैं।

यह सभी उपयोगी संस्थायें हैं पर उनमें लोगों की व्यक्तिगत प्रतिभा, प्रामाणिकता, आदर्शवादिता, कर्त्तव्य परायणता विकसित करने जैसे दार्शनिक प्रयासों का एक अति महत्त्वपूर्ण पक्ष बच जाता है। इसे भी हाथ में लिया जाना चाहिये अन्यथा आध्यात्मिकता का पुट लगाये बिना मात्र भौतिक प्रयत्नों की भाग-दौड़ अपने उद्देश्य को पूरा न कर सकेगी। इसके लिये धर्म-तन्त्र के माध्यम से लोकशिक्षण ही सबसे सरल और प्रभावी तरीका है। जन्म दिवसोत्सवों और संस्कार आयोजनों के लिये हर घर में ऐसी विचार गोष्ठी भी हो सकती है, जिसमें पड़ोसी, सम्बन्धी, इष्ट-मित्र शामिल होते रहें और नवसृजन की प्रेरणा पाते रहें। पर्व-त्यौहारों पर, महामानव जयन्तियों पर, गायत्री यज्ञ और प्रज्ञा प्रयोजनों के रूप में ऐसे समारोह होते रह सकते हैं जिसमें बड़े क्षेत्र की अधिकाधिक जनता को आमन्त्रण देकर बुलाया जाय। इन सभी छोटे-बड़े समारोहों का उद्देश्य व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण और समाज निर्माण से सम्बन्धित सभी समस्याओं का स्वरूप एवं समाधान बनाने का प्रयत्न किया जाय। संगठित होने, परस्पर सम्पर्क साधने और मिलजुल कर किसी योजना को कार्यान्वित करने के लिये प्रथम चरण के रूप में यह सरल एवं कारगर चरण है। सरकारी पंचायतों एवं सहकारी समितियों को भी योगदान देना चाहिये ताकि वे अधिक फलें-फूलें और सुदृढ़ हों।

स्मरण रखने योग्य बात यह है कि विकृतियों का अधिक विस्तार चिन्तन, दृष्टिकोण, व्यक्तित्व का स्तर गिर जाने से हुआ है। इस क्षेत्र की सफाई और रँगाई करने के लिये लोकमानस का परिष्कार नितान्त आवश्यक है। जनमानस में घुसी हुई अवांछनीयताओं का उन्मूलन और सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन आवश्यक है। इसके लिये जितने भी उपाय-उपचार हो सकते हैं, उन्हें संगठित रूप से करने का प्रयत्न होना चाहिये।

संगठन का आरम्भ करने के लिये आरम्भ में ही बड़ी संख्या में लोग जमा करने की आवश्यकता नहीं है। यह कार्य कम से कम तीन से भी आरम्भ किया जा सकता है। तीन व्यक्ति प्रयत्नशील रहें, अपना सम्पर्क क्षेत्र बढ़ायें तो उस संगठन की छत्रछाया में क्रमशः अनेकानेक लोग सम्मिलित होते चल सकते हैं। संख्या तीन से बढ़कर तीन सौ या तीन हजार भी हो सकती है। युग निर्माण मिशन का विस्तार इसी प्रकार हुआ है। एकाकी सूत्र-संचालक का संकल्प मत्स्यावतार की तरह बढ़ता चला गया। उसने सारा देश ही नहीं—विश्व का एक बड़ा भाग भी अपने दायरे में समेट लिया। सदुद्देश्यों में क्षेत्र विस्तार की ऐसी ही अद्भुत शक्ति है। यदि उसके कार्य संचालक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रामाणिक और लगनशील हैं तो उसका आलोक व्यापक क्षेत्र में विकसित हुये बिना न रहेगा।

इस सम्बन्ध में एक ठोस कार्य यह होना चाहिये कि विज्ञजनों द्वारा समाज सेवा के हेतु से समय एवं साधन दान की प्रक्रिया नियमित रूप से चलनी चाहिये। भले ही वह न्यूनतम एक घण्टा या दस पैसा नित्य जितना ही स्वल्प क्यों न हो। यह समय और साधन के अनुदान की सम्मिलित शक्ति इतनी अधिक हो जाती है कि उसके एकत्रित होने पर अनेकों सत्प्रवृत्तियों का संचालन भली प्रकार हो सकता है।

समाज के नवनिर्माण हेतु समर्थ गुरु रामदास ने एक चारसूत्री कार्यक्रम बनाया था। पहला महावीर मन्दिरों की स्थापना जहाँ से गतिविधयों का सूत्र-संचालन होता रहे। दूसरा निकट ही व्यायामशाला की स्थापना—जिसमें हर आयु एवं हर वर्ग के लोग स्वस्थता अर्जित का लाभ सोचकर परस्पर घुलते-मिलते रहें। संगठन की सूत्र श्रृंखला में आबद्ध होते रहें। तीसरा था—शिक्षा संवर्धन। प्रौढ़ पाठशाला का—महिलाओं का—बालकों का आदर्शवादी प्रशिक्षण। चौथा था—नियमित कथा-कीर्तन होते रहें और उनमें अधिकाधिक लोग सम्मिलित होते रहें। कथाओं से यदि महापुरुषों की आदर्शवादी जीवन गाथायें किसी रूप में स्मरण कराई जाती रहें तो उससे उस अभाव की पूर्ति होती है जो आज समाज उच्चस्तरीय जीवन जीने वालों के घटनाक्रम में देखने को नहीं मिलता। फलतः उनका अनुकरण भी नहीं बन पड़ता। कथाओं में दिवंगत लोग जीवित की तरह अपनी गरिमा को प्रदर्शित करते हुये भाव नेत्रों के सामने आ खड़े होते हैं। गान्धीजी राजा हरिश्चन्द्र का नाटक देखकर ही सत्यनिष्ठा के लिये प्रयत्नशील हुये थे। उपरोक्त चारों कार्यक्रम जिस क्षेत्र में आरम्भ हुये उनमें से अनेकों स्वतन्त्रता संग्राम में विविध विधि सहायता करने वाले भावनाशील उभरे।

इन दिनों भी उपरोक्त योजना का एक बड़ा अंश समाजसेवी योजना की दृष्टि से कार्यान्वित हो सकता है। जहाँ जैसी परिस्थितियाँ हों वहाँ उनके अनुरूप कार्यों का शुभारम्भ करना चाहिये।

दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन एक कार्य है उसके विषवृक्ष की जड़ें उखाड़ना प्रमुख है। किन्तु इतने से ही काम नहीं चलता। होना यह भी चाहिये कि झाड़-झंखाड़ उखाड़ने, रोड़े-कंकड़ बीनने के उपरान्त जमीन को जोता-बोया जाय। उसमें फसल या उद्यान लगाने का कार्य आरम्भ किया जाय। मात्र रोग कीटाणु मारने से ही स्वास्थ्य-सम्वर्धन की पूरी समस्या हल नहीं हो जाती। आहार-विहार की उपयुक्तता के साधन भी जुटाने पड़ते हैं। लंकादहन तो एकांगी था। समग्रता के लिये रामराज्य की स्थापना भी उत्तरार्द्ध में आवश्यक हुई। आपरेशन पूर्ण नहीं है। उसके बाद टाँके लगाने और घाव भरने का दूसरा कार्य भी उतनी ही निष्ठा से करना पड़ता है। अँधेरा दूर करने के लिये प्रकाश जलाने तक की बात अच्छी होते हुये भी अधूरी है। पूर्णता तब बनती है जब उस प्रकाश की परिधि में कुछ उपयोगी कार्य भी ऐसे चल पड़ें जो रचनात्मक हों।

कुरीति उन्मूलन को एक महत्त्वपूर्ण पक्ष तो माना जाय पर यह न भुला दिया जाय कि उसके साथ ही सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के निमित्त भी जुटने की आवश्यकता है। परशुरामजी ने झाड़-झंखाड़ का उच्छेदन किया और उसके उपरान्त वे उद्यान आरोपण में शेष आधे जीवन को नियोजित किये रहे। अँग्रेजी सरकार को भगा देने के उपरान्त अब हमें अनेकों सृजन योजनाओं के विकास कार्यक्रम पूरे करने पड़ रहे हैं।

सृजनात्मक प्रवृत्तियों में अर्थ उपार्जन को प्रथम दर्जा दिया जाता है। 'गरीबी हटाओ' का नारा उसी उद्देश्य से दिया गया है। पर संतोष की बात इतनी ही है कि रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकतायें शरीर के साथ इततनी सघनतापूर्वक जुड़ी हुई हैं कि व्यक्ति हर स्थिति में, हर उपाय से इन्हें इस स्तर पर अर्जित कर लेता है कि वह जीवित रह सके।

जिसके बिना प्रगति रुकती है वह है— शिक्षा। शिक्षा का अर्थ सामान्यतया न्यूनतम साक्षरता और अधिकतम नौकरी में काम आने वाले प्रमाण-पत्र तक सीमित समझा जाता है। पर असल में शिक्षा वह है जिसके आधार पर व्यक्तित्व को सुसंस्कृत, परिष्कृत एवं प्रतिभावान बनाया जा सके। यह प्रयोजन स्कूली पढ़ाई से पूरा नहीं होता क्योंकि उसमें जीवन कला से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण बारीकियों का समावेश नहीं है। यह कार्य धार्मिक एवं सामाजिक सेवा भावी संस्थाओं को अपने जिम्मे लेना चाहिये। इस निमित्त स्वतन्त्र कक्षायें और परीक्षायें चलनी चाहिये। अशिक्षितों को भी कहने-सुनने के आधार पर यह ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। स्कूली बच्चों को पाठ पूरा करने के अतिरिक्त नागरिकता एवं सामाजिकता के हर पक्ष की शिक्षा दी जानी चाहिये। इसके लिये बाल संस्कारशाला जैसी संस्थाओं की सेवाभावी अध्यापकों द्वारा ऐसे समय में व्यवस्था की जानी चाहिये, जो स्कूली पढ़ाई से बचता हो। सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयोग इस सम्बन्ध में हो सकता हैसद्ज्ञान पुस्तकालय। इसमें मात्र उन्हीं विषयों की पुस्तकें रहें जो व्यक्तित्व के सर्वतोमुखी विकास एवं समाज में संव्याप्त समस्याओं के स्वरूप और समाधान को समय के अनुरूप एवं आदर्शवादी आधार पर सर्वसाधारण के सन्मुख प्रस्तुत कर सकें।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कला के कई पक्षों को भी काम में लाया जा सकता है। संगीत, गायन, अभिनय के माध्यम से भी विचारणा एवं भावना को दिशा दी जा सकती है। कठिनाई यह है कि घटिया स्तर का मानस उथली और बचकानी प्रवृत्तियों को भड़काने वाले माध्यम ही पसंद करता है। आदर्शवाद उसके गले नहीं उतरता। ऐसी दशा में यह एक विशेष आवश्यकता सामने आ पड़ती है कि सर्वसाधारण की रुचि को निकृष्टता से विरत

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करके उत्कृष्टता के साथ किस प्रकार जोड़ा जाय ? इसका उपचार वही है जो दुर्व्यसनी अपने साथी बनाने-बढ़ाने के लिये करते हैं। वे सम्पर्क साधते हैं। घनिष्ठता बढ़ाते हैं। अपने प्रिय आधारों के साथ उनका रिश्ता जोड़ते हैं। चस्का लगाते हैं। इसके बाद चिड़िया फँसती है और फिर पिंजड़े में ही जिन्दगी बिताती है। नशेबाजी का तौर-तरीका यही है। सत्प्रवृत्ति संवर्धन में भी समाजनिष्ठ लोगों को यही करना चाहिये। उन्हें जीवन साहित्य को पढ़ने-सुनने तथा इसी स्तर की कला में रस लेने की आदत डालनी चाहिये। इसके लिये जनसम्पर्क साधने और रचनात्मक कार्यक्रमों के आकर्षक दृश्य दिखाने की आवश्यकता है।

शरीर के लिये रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकता पूरी करने के लिये आम लोगों द्वारा जिस प्रकार प्रयास किये जाते हैं, उसी प्रकार चेतना की अन्तरात्मा की तुष्टि, तृप्ति एवं शान्ति के लिये शिक्षा की आवश्यकता है। उसके लिये धर्म, दर्शन, नीतिशास्त्र, समाज विज्ञान जैसे विषयों में भी प्रवीणता प्राप्त करनी चाहिये। समाज निर्माण के अन्यान्य अनेक कार्यों में आजीविका की तरह जीवन शिक्षा को भी अतीव आवश्यक माना गया है।

समाज को समर्थ, समुन्नत बनाया जाय

शरीरगत लाभों का अनुचित रीति से संचय करना स्वार्थ कहलाता है। शरीर की तनिक-सी आवश्यकतायें हैं। चार मुठ्ठी अनाज, छह गज कपड़े और एक बिस्तर भर की छाया मिल जाने से उसका काम चल जाता है। इतने साधन जुटाने के लिये दो घण्टे नित्य का कड़ा परिश्रम काफी हो सकता है पर मनुष्य की लिप्सा, लालसा, तृष्णा, अहंता का कौतुक देखिये कि वे इतनी अधिक इच्छा-आकांक्षायें बटोरकर सिर पर लाद लेती हैं, जिनकी खाई में पर्वत भी समा सके और जो समुद्र उड़ेल देने पर भी खाली रहे। इसी ललक की पूर्ति के लिये किये गये प्रयास को स्वार्थ कहते हैं। उसमें अपना-अपना लाभ ही ध्यान में रहता है। साथ ही इतना जल्दी वैभव बटोरने की अकुलाहट होती है कि औचित्य अपनाने के लिये धैर्य नहीं रहता। उतावली यह रहती है कि जितना जल्दी, जितना अधिक विलास-वैभव हस्तगत किया जा सके उसे बिना शर्त मर्यादा का विचार किया बटोरते चला जाय। जितनी बड़ाई, जितनी अमीरी, जितनी असीमता की परिधि तक संचय किया जाय। यह दूसरी बात है कि भाग्य साथ न दे। पात्रता, योग्यता और परिस्थिति उतना न मिलने दे जितना कि चाहा गया था।

स्वार्थी व्यक्ति प्रयत्नशील तो होता है, पर औचित्य की मर्यादाओं को भुला देता है। उपलब्धियों को विलासी साज-सज्जा में खर्च करता है। व्यसन, व्यभिचार जैसी अनेकों दुष्प्रवृत्तियाँ पाल लेता है। जिन मुठ्ठी भर आदमियों को अपने परिवारी कहता है, उन्हीं के लिये कटता-खटता रहता है। जो कमाता है उसका उपयोग स्वयं तो कर नहीं सकता क्योंकि हर व्यक्ति के उपभोग की एक छोटी सीमा निर्धारित है, उससे अधिक जो बटोरा गया है उसे कहीं तो फेंकना ही पड़ेगा। इसके लिये परिवार की छोटी परिधि ही आत्मीयता के दायरे में आती है। उन्हीं के लिये कमाई को निछावर करता है। उन्हीं के लिये इतनी जमा पूँजी छोड़ मरने की बात सोचता है जिसे वे सात पुश्त तक बैठे खाते रहें, पर होता यह है कि जैसा चाहा गया था, वैसा करने के लिये धैर्य रखने की दूरदर्शिता उनमें भी नहीं होती। जो मेहनत से कमाया गया जिसमें औचित्य का समावेश किया गया है, वह थोड़ी मात्रा में ही हो सकता है। इतना जिसमें अपना और परिवार का औसत भारतीय स्तर का निर्वाह हो सके, पर जो तुर्त-फुर्त अत्यधिक मात्रा में संचित किया गया है, उसे देर तक रोककर नहीं रखा जाता है। वह सम्पदा पर लगाकर पक्षी की तरह उड़ना चाहती है और बदले में चित्र-विचित्र दृश्य देखने, चित्र-विचित्र स्वाद चखने के लिये इतनी जल्दी में होती है, एक अपव्यय के हजार रास्ते निकालती है। अनेक दुर्व्यसनों को न्यौत बुलाती है। मुफ्त का धन प्रायः इसी प्रकार खर्च होता है। वह इतने दिन के लिये नहीं रुकता कि अगली पीढ़ियाँ उसे समझदारी से खर्च करें और सुखपूर्वक जिन्दगी काटें। स्वार्थी स्वयं तो बुरी तरह खटता है। कमाता भी अधिक है, पर उस पर शैतान की तरह ममता हावी रहती है। तथाकथित अपनों के लिये उसे लुटाता रहता है। अपनी ही तरह अमीरी का चस्का उन्हें भी लगा देता है। अमीरी का शौक तो फूटे घड़े की तरह है जिसमें पानी डालकर पूरी तरह भर दिया जाय तो भी वह कुछ ही समय में खाली हो जाता है। अमीरी का नशा जिस पर सवार हुआ उसे स्वार्थी बनाया और उसकी ममता की परिधि में जो भी आया वह आलसी, प्रमादी, अपव्ययी, दुर्व्यसनी बना। पैतृक उत्तराधिकार या उपहार के रूप में जो मिला था फुलेल की गन्ध की तरह कुछ ही समय में उड़ जाती है। छूँछ भी हाथ न लगने का पश्चाताप हाथ लगता है। जिन्हें अनावश्यक दुलार देकर सजाया-उछाला गया था वे बड़े होने पर इन स्थिति में नहीं रहते, जिनके उपहारों का मजाक उड़ाया जाता था उसके प्रति कृतज्ञता के भाव रख सकें या आड़े वक्त में सहायता दे सकें। हराम की पाई-विपुल कमाई उन स्रोतों के साथ इसलिये लड़ाई बन बैठी रहती है कि जो मिला कम मिला उन्हें अधिक मिलना चाहिये था और अधिक।

स्वार्थ-परायणता ईश्वर के साथ विश्वासघात है। मनुष्य का अनेक सुविधाओं से भरा-पूरा शरीर, अद्भुत सूझ-बूझ, बल, मस्तिष्क, साधनों से भरा हुआ संसार मिला है। यह अन्य किसी प्राणी को नहीं मिला। मनुष्य के साथ सृष्टा ने पक्षपात नहीं किया है। वरन् उस दिव्य धरोहर के रूप में अपनी सर्वश्रेष्ठ कलाकृति किसी उद्देश्य विशेष के लिये दी है। बैंक के खजान्ची के पास बड़ी धनराशि होती है, पर वह बैंक की अमानत है। निजी खर्च के लिये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो उसे थोड़ा सा वेतन मिलता है। सेनापति के अधिकार में हथियारों के गोदाम रहते हैं, पर उनका उपयोग वह राष्ट्र रक्षा के लिये ही कर सकता है। शासनाध्यक्षों, अफसरों के पास विपुल अधिकार होते हैं, पर उन्हें वह सब जन-कल्याण के लिये ही खर्च करने की छूट है। जो हाथ आया उसे अपने निजी स्वार्थ साधन के लिये खजान्ची, सेनाध्यक्ष या शासनाध्यक्ष उपयोग करने लगे। उस अमानत को काटकर अपना घर भरने लगे। परिवार वालों को अमीर बनाने लगे तो उनका यह कृत्य अमानत में खयानत कहा जायेगा और दण्डनीय अपराध कहा जायेगा। मनुष्य के पास जमा हुई सम्पदा, विद्या, कला, कुशलता आदि के सम्बन्ध में भी यही बात है। वह लोकमंगल के निमित्त दी हुई सृष्टा की पवित्र धरोहर है। उसे जिस हेतु सौंपा गया है। उसे उसी निमित्त खर्च किया जाना चाहिये।

वैभव-वर्चस मनुष्य ने भले ही अपनी मेहनत या बुद्धिमत्ता से कमाया हो, पर उस पर अधिकार समूची विश्व वसुधा का है। जो शरीर और मस्तिष्क पास में है वह किसी का निज का बनाया हुआ नहीं है। वह सृष्टा ने बनाया और उसी ने दिया है, पर साथ ही यह अनुबन्ध भी रखा है कि उस महती उपलब्धि का उपयोग मात्र उसके विश्व उद्यान को सींचने-सँजोने एवं सुसंस्कारित बनाने में ही खर्च किया जाय। यही परम स्वार्थ है। इसी को परमार्थ कहते हैं।

स्वार्थ शरीर द्वारा, शरीर के लिये, उतावली में, अनीतिपूर्वक कमाया जाता है किन्तु परमार्थ में आत्मा की आकांक्षा, भावना, आवश्यकता तथा कल्याण की सम्भावना जुड़ी होती है। आत्मा शरीर नहीं है। शरीर की अधिष्ठात्री है। वह ईश्वर की अंशधर है। देवत्व से भरी-पूरी। उसके अपने स्वार्थ हैं। ईश्वर के आदेशों का परिपालन। लोकमंगल के लिये अधिकाधिक साहस और त्याग का प्रदर्शन। इसमें शरीर और अन्तःकरण दोनों का ही वास्तविक हित साधन होता है। दोनों ही फलते-फूलते हैं। किन्तु स्वार्थ संचय की ललक भरी व्यस्तता ऐसी होती है, जिसके कारण आत्म कल्याण के लिये न कुछ सोचते बन पड़ता है न करते-धरते। ऐसी दशा में आत्मा की स्थिति भूखे, प्यासे, दीन-दरिद्र जैसी ही हो जाती है। शरीर भले ही किसी अंश में फूले पर आत्मा तो निरन्तर क्षीण होती जाती है, उसे आत्महनन करना पड़ता है और आत्म प्रताड़ना सहनी पड़ती है। शरीर जिसकी सुख-सुविधा के लिये समूचा जीवन खपा दिया गया वह भी देर तक साथ नहीं देता। विलासिता में अतिवाद का समावेश करने से वह दिन-दिन क्षीण होने लगता है। दुर्बल तथा दोषी बनता है। बुढ़ापा जवानी में ही आ घेरता है और अकाल मृत्यु का ग्रास बनना पड़ता है। स्वार्थी अपनी निष्ठुरता एवं लिप्सा के कारण बदनाम भी होता है। चरित्र को सुरक्षित नहीं रख पाता। अकरणीय कार्य करने से लोकनिन्दा, आत्मप्रताड़ना और अनुचित रीति अपनाने की दण्ड विधा उसका पीछा नहीं छोड़ती। उसका परिवार भी उसी ढाँचे में ढल जाता है। जो सीखा है उसका प्रथम प्रयोग उसी पर होता है जिसने सिखाया है। शरीर और परिवार दोनों ही स्वार्थी को पीसते-निचोड़ते हैं। क्रिया की प्रतिक्रिया जब सामने आती है, तब पता चलता है कि स्वार्थपरता के प्रगाढ़ बन्धनों में अपने आप को जकड़ना ऐसा ही है जैसा कि जानबूझकर किसी गहरे दलदल में फँस जाना। इस अनुपयुक्त मार्ग पर चलने वाले काँटों में उलझते, ठोकरें खाते, थकान से ग्रसित होते और भूल पर असाधारण रुदन जैसा पश्चात्ताप करते हैं।

जिसने सही राह ढूँढ़ी या पाई है। उन्हें एकमात्र परमार्थ पक्ष ही चुनना होता है। शरीर की आवश्यकतायें उतनी सीमित रखते हैं जिनमें औसत नागरिक को निर्वाह करना पड़ता है। परिवार को बढ़ाते नहीं। जितना है उतने भर को सुयोग्य, सुसंस्कृत एवं स्वावलम्बी बनाने के लिये उनके साथ रहकर सद्गुणों को सिखाते-सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाते हैं। ऐसे परिजन भले ही उत्तराधिकार में विपुल धन न पा सकें-भले ही अमीरी के ठाठ-बाट से वंचित रहें किन्तु उनकी शालीनता, संयमशीलता, सुसंस्कारिता आरम्भ से ही अंकुरित होने, पल्लवित होने और फलने-फूलने लगती है। ऐसी परिस्थितियों में पलने का जिन्हें अवसर मिला है वे पुरुषार्थी भी होते हैं और साहसी, स्वावलम्बी भी। वे अपने सद्गुणों के आधार पर व्यक्तित्व को प्रखर, प्रामाणिक बनाते हैं, अपनी प्रतिष्ठा के आधार पर अनेकों का सम्मान-सहयोग अर्जित करते हुये आगे बढ़ते हैं। परिवार को इस मार्ग पर धकेल सकना-घसीट सकना किसी भी सुयोग्य परिवारी की गौरव गाथा समझी जाती है।

शरीर की अमीरी महत्त्वाकांक्षायें और परिवार की अनेकानेक तृष्णायें मिलकर इतनी भारी हो जाती हैं कि उनके ढोने में व्यक्तित्व का कचूमर निकलता है। वह ओछा, घटिया, बचकानी, छछोरा, अनगढ़, असभ्य माना जाता है। भले ही पैसे की दृष्टि से उसने कुछ सम्पन्नता भले ही संचित कर ली हो। प्रशंसा और प्रतिष्ठा उनकी होती है—जो परमार्थी हैं। आत्म-संतोष और सम्मान, जन-सहयोग ही नहीं उन्हें दैवी अनुग्रह भी मिलता है। महामानव, सिद्ध पुरुष, देवात्मा, ऋषि-मनीषी एवं भगवान का पार्षद, विशेष अंशधर उन्हें ही माना जाता है, जिन्होंने परमार्थ को ही अपना सच्चा स्वार्थ माना। जिन्होंने लोकमंगल में रस लिया, उसके लिये समय निकाला और श्रम किया-समझना चाहिये कि उनने सही मार्ग पाया और जीवनरथ को उस राह पर चलाया, जिस पर कि दूरदर्शी स्वयं चलते तथा दूसरों को चलाते हैं। स्वयं पार उतरते और दूसरों को अपने कन्धों पर बिठाकर पार उतारते हैं।

परमार्थ के पथ पर चलते हुये यह देखना होता है कि क्या कार्यविधि अपनाई जाये ? इसके लिये दो ही निर्विवाद मार्ग हैं। एक प्रत्यक्ष दूसरा परोक्ष। प्रत्यक्ष में अपंग, असहाय, असमर्थ, मुसीबतग्रस्त, पिछड़े, अनगढ़ लोग आते हैं उन्हें मार्गदर्शन तथा आर्थिक सहयोग देकर किस प्रकार स्वावलम्बी बनाया जाय, इसका हर सम्भव प्रयास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करना चाहिये। इस हेतु आर्थिक आधार पर आवश्यक साधन खड़े किये जा सकते हैं। कोई सेवाभावी इन कार्यों में श्रम, समय का भी योगदान कर सकते हैं। यदि उनके लिये निर्वाह की आवश्यकता हो तो उसे भी दुखियारों की सेवा में ही गिना जाना चाहिये। चिकित्सालय, विद्यालय, पाठशाला, उद्योगगृह आदि की स्थापना के लिये धन ही नहीं योग्य कार्यकर्त्ताओं की भी आवश्यकता पड़ती है। उनके लिये निर्वाह जुटाना भी प्रत्यक्ष परमार्थ मार्ग में ही आता है।

दूसरा इससे ऊँचा प्रयास है—लोकमानस का परिष्कार, सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन। इसे मानवी व्यक्तित्व में दबी चेतना का प्राण फूँकना कह सकते हैं, जिन्हें यह सुयोग उपलब्ध हो समझना चाहिये कि उनका कल्याण ही होगा। मनुष्य में स्वयं इतनी शक्ति सामर्थ्य है कि अपने दोष, दुर्गुणों, अभाव-दारिद्र्यों, कष्ट-संकटों से स्वयं जूझ सके, उनसे निबट सके, निरस्त कर सकें। कमी केवल प्रकाश मिलने की रहती है। मार्गदर्शन का यदि मनुष्य सही उपयोग कर सके। आदर्शों को गले उतार सके एवं पचा सके तो समझना चाहिये कि विपत्तियों से ही छुटकारा नहीं मिला वरन् प्रगति का पथ भी प्रशस्त हो गया। मनुष्य न पराधीन है न परावलम्बी, उसमें सामर्थ्य के इतने विपुल भण्डार भरे पड़े हैं कि प्रतिकूलताओं को मोड़-मरोड़ सकता है और परिस्थितियों को अनुकूल बना सकता है। कठिनाई एक ही है कि वह आत्मा को समझने, उसके स्वरूप, उद्देश्य को चेतना के अन्तराल तक पहुँचा नहीं पाता। वह अपने शरीर को, परिवार को ही सब कुछ मानता रहता है। उसी के लिये मरता-खपता रहता है। मृत्यु तक को भूल जाता है। न कर्म की स्मृति ध्यान में रहती है और न परलोक में भगवान के सम्मुख उपस्थित होने की। जिस कार्य के लिये जीवन मिला था, उसका उपयोग कितना सम्भव हो सका इसका विवरण तैयार करने की अभिलाषा नहीं उठती। इस अर्धमूर्छित स्थिति में नशे की गहरी खुमारी से उबारना-उबरना ही नहीं बन पड़ता है। इस तत्व ज्ञान को, जीवन दर्शन को जनमानस में उतारा जा सके तो इन्हीं सामान्य मनुष्यों में से अनेकों ऐसे नर रत्न निकल सकते हैं, जो मानवी गरिमा को उच्चस्तरीय बनाने के अतिरिक्त समाजगत प्रचलन में भी उच्चस्तरीय आदर्शवादिता भर सकें।

विचारणा को मस्तिष्क तक पहुँचाने में लेखनी-वाणी का उपयोग किया जाता है। रचनात्मक-प्रदर्शनात्मक उत्सव आयोजन भी इस निमित्त किये जाते हैं। इन सबका भी जनमानस पर प्रभाव पड़ता है। पर सबसे अधिक प्रभाव आदर्शवादिता के ढाँचे में अपने जीवन को ढाल लेने वाले का होता है। नशेबाज, व्यभिचारी, जुआरी, व्यसनी जब मन और कर्म की एकता रहने के कारण अपने जैसे अनेकों दुर्जन उत्पन्न कर लेते हैं। तो कोई कारण नहीं कि मन, वचन, कर्म की उत्कृष्टता अपने सम्पर्क क्षेत्र में सज्जनों की नई पंक्ति खड़ी न कर सके। बहुमत अल्पमत को अपनी ओर खींचता है। हवा के साथ तिनके-पत्ते भी उड़ते हैं। यदि सत्प्रवृत्तियों के उन्नयन हेतु वातावरण बनाया जाय तो कोई कारण नहीं कि उस अनुकरण के लिये अनेकों लोग सहमत-कटिबद्ध न हो सकें।

जहाँ सज्जनता की प्रतिष्ठापना लोकमंगल के लिये आवश्यक है। वहाँ इस प्रयास की भी आवश्यकता है कि दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन हेतु असहयोग, विरोध, संघर्ष का वातावरण बनाया जाय। इस अभ्युदय और उन्मूलन प्रक्रिया को कार्यान्वित करने के लिये सज्जनों का संगठन किया जाना आवश्यक है। संगठित दस्यु एवं तस्कर बड़े-बड़े षड्यन्त्रों को अग्रगामी बनाते रहते हैं कि संयुक्त योजना का प्रभावशाली परिणाम सामने प्रस्तुत न हो।

जिस प्रकार टिड्डी दल हरी-भरी फसल को कुछ ही देर में चट कर जाती हैं और पौधों को डण्ठल बना देती हैं, उसी प्रकार कुरीतियों से ग्रसित कोई भी समाज खोखला हो जाता है। अपने समाज में जाति-पाँति के नाम पर चलाई ऊँच-नीच की भावना ऐसी भयानक है कि उसने एक जाति को हजारों टुकड़ों, वर्गों में बाँट दिया है। घेरे-बिखरे समाज की वैसी ही दुर्गति होती है जैसी कि बुहारी की सींकें अलग-अलग बिखर जाने पर उससे कुछ काम करना तो दूर अपना अस्तित्व तक नहीं बचा पातीं। अन्य धर्म सम्प्रदाय जहाँ तेजी से बढ़ रहे हैं, वहाँ अपने समुदाय की संख्या बराबर घटती जा रही है। विसंगठित लोग हर मोर्चे पर हारते हैं।

समाज निर्माण का शुभारम्भ व्यक्ति एवं परिवार-निर्माण से

कहना न होगा कि भव्य समाज के अभिनव निर्माण का श्रीगणेश अपने आप से शुरू किया जाना है। दुष्प्रवृत्तियों का उन्मूलन साधना है और सत्प्रवृत्तियों का संस्थापना उपासना। असुरता का उन्मूलन और देवत्व का परिपोषण यही धर्मधारणा है और यही ईश्वर आराधना। यह तथ्य यदि गहराई से समझ लिया जाय तो तत्व दर्शन के उस मूल प्रयोजन को समझ जायें, जिसके लिये आस्तिकता और धार्मिकता का विशालकाय कलेवर दूरदर्शी ऋषियों ने खड़ा किया है। आत्मिक प्रगति की दिशा में हम इन्हीं दो कदमों को क्रमबद्ध रूप से आगे बढ़ाते हुये अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। यह तो हुआ सनातन और शाश्वत सत्य। यदि सामयिक परिस्थितियों की दृष्टि से भी सोचें तो लोकमानस को निकृष्टता से उत्कृष्टता की ओर मोड़ने के लिये भी इसी उपाय का तात्कालिक उपचार के रूप में भी प्रयोग करना पड़ेगा। विचारक्रान्ति इस युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। यह विचार-क्रान्ति इतनी सजीव होनी चाहिये कि उसकी कमर में नैतिक क्रान्ति और सामाजिक क्रान्ति भी बँधी और खींची चली आये। इस समग्र विचार क्रान्ति का शुभारम्भ अपने आप से ही हो सकता है। दूसरों को शिक्षा देने के लिये वाणी और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेखनी एक हद तक ही काम करती है। असली प्रभाव तो उपदेशक के चरित्र का ही पड़ता है। अनुकरण के लिये जब तक आदर्श सामने न हो तब उस कष्टसाध्य मार्ग पर चलने का लोगों में साहस ही नहीं होता।

नवनिर्माण की सीढ़ियाँ हैं (१) आत्म निर्माण (२) परिवार निर्माण (३) समाज निर्माण। इसमें से क्रमशः एक के बाद दूसरी पर चढ़ने के लिये अधिक योग्यता और समर्थता चाहिये। सबसे सरल और सबसे आवश्यक आत्मनिर्माण है। प्रत्येक स्थिति के व्यक्ति इस दिशा में निरन्तर आगे बढ़ते रह सकते हैं। घोर व्यस्त, सर्वथा अयोग्य, असमर्थ यहाँ तक कि रुग्ण-अपंग व्यक्ति भी इसी मार्ग पर उपयोगी कदम बढ़ा सकते हैं। आत्म-निरीक्षण करके गुण, कर्म, स्वभाव में भरे हुये दोष-दुर्गुणों को ढूँढ़ा जा सकता है और उन्हें निरस्त करने का प्रयास आरम्भ किया जा सकता है। लोहे से लोहा कटता है और विचारों से विचारों की काट की जाती है। हेय आदतें, इच्छायें और मान्यतायें जो अपने मनःक्षेत्र में जड़ जमाये बैठी हों, उन्हें आत्म-निरीक्षण की टार्च जलाकर बारीकी से तलाश करना चाहिये और निश्चय करना चाहिये कि उनका उन्मूलन करके ही रहेंगे। प्रत्येक निकृष्ट विचार के विरोधी विचारों की एक सुसज्जित सेना खड़ी करनी चाहिये। उन्हें नोट करना चाहिये और बार-बार उन पर मनन, चिन्तन करते हुये मनःक्षेत्र में गहराई तक प्रतिष्ठापित करना चाहिये।

यथा अपने भीतर यदि कामुक दृष्टि ने जड़ें जमा रखी हों, मानसिक अथवा शारीरिक व्यभिचार होता रहता हो तो उस अपव्यय से होने वाली शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक हानियों की लम्बी सूची नोट करनी चाहिये। कामुकता की दुष्प्रवृत्ति कितनी मूर्खतापूर्ण और कितनी अहितकर है, इस सन्दर्भ में यदि देर तक चिन्तन-मनन करते रहा जाय तो बुद्धि इतने तर्क और प्रमाण प्रस्तुत कर देगी कि इस दिशा में बना हुआ रुझान प्रत्येक दृष्टि से अवांछनीय प्रतीत होगा। मल-मूत्र, अस्थि-मज्जा जैसी घृणित वस्तुओं के ऊपर जो चिकनी चमड़ी चिपकी हुई है, उनमें सौन्दर्य निहारना और मुग्ध होना कितना उपहासास्पद है किसी रूपवान की काया की चमड़ी उखाड़कर चिन्तन के सम्मुख रखा जाय तो प्रतीत होगा कि सुन्दर दीखने वाली काया वस्तुतः घोर घृणास्पद वस्तुओं से ही भरी पड़ी है। उसका सौन्दर्य सर्वथा दिखावटी है। फिर उस दुष्प्रवृत्ति को अपनाकर हम पाते कुछ नहीं खोते ही खोते हैं। अपने बहुमूल्य वस्त्रों में आग लगाकर थोड़ी देर तापना बुद्धिमत्ता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। हम अपना ही तेज, ओजस्, बल वर्चस्व जलाकर, गलाकर कुछ क्षण का घिनौना मनोरञ्जन करें, इससे क्या बनेगा ? क्या मिलेगा ? दूसरे से कुछ पाने में लाभ की बात सोची जा सकती है। चोरी-उठाईगीरी आदि से कुछ तो लाभ होता है पर व्यभिचार में तो अपनी वह बहुमूल्य सामर्थ्य जो शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी थी, गन्दी नाली में बहा दी जाती है। कुत्ता सूखी हड्डी चबाकर अपने ही जबड़े छील लेता है और उसमें से बहने वाले रक्त को सूखी हड्डी का रस समझकर स्वाद लेता है। इस मूर्खता में कुत्ता अपने ही जबड़े घायल करता है और देर तक उनकी पीड़ा सहता है। कामुकता के प्रयास लगभग इसी स्तर के हैं। इसके अतिरिक्त समाज में जो अव्यवस्था फैलती है, मर्यादाएँ टूटने से पारिवारिक विशृंखलता उत्पन्न होती है, उसकी हानियाँ अलग हैं। ऐसे-ऐसे अनेकों आधार कामुकता की दुष्प्रवृत्ति के विरुद्ध सोचे जा सकते हैं और हर दिन कई बार गम्भीरतापूर्वक उनका चिन्तन-मनन किया जा सकता है।

ऊपर की पंक्तियों में काम विकार की चर्चा की गई। अन्यान्य कुविचारों के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। क्रोध, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, आलस्य, प्रमाद, अपव्यय आदि के विरुद्ध भी प्रतिपक्षी विचारधारा की ईंटें जमाते हुये ऐसी दीवार खड़ी की जा सकती है, जिससे सिर पटक कर मनःक्षेत्र पर आधिपत्य जमाने वाले असुर विचारों को निराशा और असफलता के साथ वापिस लौटना पड़े। असुरता की अपने ऊपर विजय केवल इसलिये होती है कि हम उन्हें सहन करते हैं और पोषण समर्थन प्रदान करते हैं। पाप नहीं जीतता हमारा अवसाद हारता है। विरोध-प्रतिरोध का सामना न करने पड़े तो छोटे-छोटे कीड़े तक बहुमूल्य वस्तुओं को, सुदृढ़ शरीरों को खोखला कर देते हैं फिर मनोविकार वस्तुतः कितने ही दुर्बल क्यों न हों-प्रतिरोधरहित मनःक्षेत्र पर कब्जा कर ही लेंगे। इसमें उनकी समर्थता एवं प्रबलता कारण नहीं वरन् अपनी उपेक्षा, मूर्छा, कायरता को ही दोष दिया जायेगा। सतर्कता, जागरूकता एवं प्रतिरोध करने की क्षमता जिसने भी विकसित की है, उसे मनोविकारों से परास्त होने का दुर्दिन नहीं देखना पड़ेगा।

सत्प्रवृत्ति का अभिवर्धन आत्म निर्माण का, आत्म विकास का दूसरा चरण है। सद्गुणों के अभाव में हम निस्तेज जीवन जीते हैं। समृद्धि, सशक्तता, विभूति, प्रतिभा एवं सफलता किसी के पास आसमान से नहीं टपकती। उन्हें सद्गुणों की प्रतिक्रिया ही कह सकते हैं। क्या बुरे क्या भले, हर स्तर के लोग सफलतायें अपने सद्गुणों के आधार पर ही प्राप्त करते हैं। डाकू तक तभी सफल होते हैं जब उनमें शौर्य, साहस, निर्भीकता और सतर्कता जैसे गुणों का बाहुल्य हो। यह गुण न हों तो डकैती करते बन ही नहीं पड़ेगी। चोर जेबकट की चतुरता एवं कुशलता उच्च स्तर की होती है।

यह सब तो हेय प्रयोजनों के लिये सद्गुणों के उपयोग की बात हुई। सदुद्देश्यों की पूर्ति के लिये सफलता प्राप्त करना तो व्यक्तित्व में उपयोगी सद्गुणों की स्थापना किये बिना सम्भव ही नहीं हो सकता। दुर्गुणी व्यक्ति तो उपलब्ध सम्पदा की रक्षा तक नहीं कर सकते। सहज ही जो कुछ उन्हें मिला हुआ है, उस तक का समुचित लाभ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उठा सकना उनके लिये सम्भव न होगा। कितने ही दुर्गुणी अपने बाप-दादों की छोड़ी हुई प्रचुर सम्पदा को कुछ ही दिनों में बारूद की तरह फूँककर समाप्त कर देते हैं। सुविधा और सम्मान भरी उपलब्धियों से देखते-देखते हाथ धो बैठते हैं। इनके विपरीत गरीबी और कठिनाइयों की अभावग्रस्त असुविधा भरी परिस्थितियों में जन्मे बालक अपनी उत्कट इच्छा शक्ति, श्रमसाधना, अध्यवसाय एवं तलाश-प्रयास को अपनाते हुये उन्नति के उच्च शिखर पर जा पहुँचते हैं। अपने हाथों अपना मार्ग बनाते हैं और प्रगति के उच्च शिखर पर जा पहुँचते हैं।

धर्म और अध्यात्म के विशालकाय-कलेवर का एक ही उद्देश्य है—व्यक्तित्व को उत्कृष्टता के, सज्जनोचित शालीनता के, प्रतिभा और कर्म कौशल के उच्च शिखर तक पहुँचाना। इस प्रयोजन के लिये जिस उत्कृष्ट चिन्तन और आदम कर्तृत्व की आवश्यकता है, उसे जुटाने के लिये अनवरत अथ्क प्रयत्न करना इसी का नाम तप साधना है। स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन का इसके अतिरिक्त और कोई उद्देश्य नहीं। ईश्वर प्राप्ति, आत्म साक्षात्कार, स्वर्ग उपलब्धि और जीवन मुक्ति का तात्विक स्वरूप यही है कि व्यक्ति अपनी समस्त क्षुद्रताओं और निकृष्टता को निरस्त करके सदुद्देश्यपूर्ण सत्प्रयोजनों में निरत रहने का अभ्यस्त बन जाय। परिष्कृत आत्मा का नाम ही परमात्मा है। अपने कषाय-कल्मषों का निराकरण करना ही तप साधना है। ईश्वर प्रेम का सहारा लेकर अन्तःकरण में अपार प्रेम निष्ठा की धारणा और उसका लाभ उदार सेवा प्रवृत्ति के रूप में प्राणिमात्र को देना, ईश्वर भक्ति हमें इसी लक्ष्य की ओर ले जाती है।

मनोविकारों को ढूँढ़ निकालने और उनके विरुद्ध मोर्चा खड़ा कर देने में सांसारिक कोई विघ्न-बाधा अवरोध उत्पन्न नहीं कर सकती। दैनिक जीवन में निरन्तर काम आने वाली आदतों को परिष्कृत बनाने का प्रयास भी ऐसा है जिनके न बन पड़ने का कोई कारण नहीं। आलस्य में समय न गँवाना—हर काम नियत समय पर नियमित रूप से उत्साह और मनोयोगपूर्वक करने की आदत डाली जाय तो प्रतीत होगा कि अपना क्रिया-कलाप कितना उत्तम, कितना व्यवस्थित, कितना अधिक सम्पन्न हो रहा है। प्रातःकाल अपनी दिनचर्या का निर्धारण कर लेना और पूरी मुस्तैदी से उसे पूरा करना-आलस्य, प्रमाद को आड़े हाथों लेना-व्यक्तित्व निर्माण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। जल्दी सोने जल्दी उठने की एक छोटी सी ही आदत को लें तो प्रतीत होगा कि प्रातःकाल का कितना बहुमूल्य समय मुफ्त ही हाथ लग जाता है और उसका जिस भी कार्य में उपयोग किया जाय, उसमें सफलता का कैसा स्वर्ण अवसर मिलता है। क्या व्यायाम, क्या अध्ययन, क्या भजन, कुछ भी कार्य प्रातःकाल किया जाय चौगुना प्रतिफल उत्पन्न करेगा। जो लोग देर में सोते और देर में उठते हैं वे यह नहीं जानते कि प्रातःकाल का ब्रह्ममुहूर्त इतना बहुमूल्य है जिसे हीरे-मोतियों से भी नहीं तौला जा सकता, नियमित दिनचर्या का निर्धारण और उस पर हर दिन पूरी मुस्तैदी के साथ आचरण, देखने में यह बहुत छोटी बात मालूम पड़ती है पर यदि उसका परिणाम देखा जाय तो प्रतीत होगा कि हमने एक चौथाई जिन्दगी को बर्बादी से बचाकर कहने लायक उपलब्धियों में नियोजित कर लियाा।

स्वच्छता और व्यवस्था ऐसा गुण है जिसमें किसी की सुरुचि का सहज ही परिचय प्राप्त किया जा सकता है। गन्दगी से घृणा और स्वच्छता से प्रेम रखा जाय तो वह उत्साह सहज ही बना रहेगा, जिसके आधार पर शरीर, वस्त्र, फर्नीचर, पुस्तकें, स्टेशनरी, बर्तन, फर्श, चित्र, साइकिल आदि सम्बन्धित सामान को स्वच्छ एवं सुव्यवस्थित रखा जा सके। सफाई की यह आदत हिसाब-किताब पर, लेन देन पर भी लागू होती है। घर-दफ्तर को—बच्चों को—वस्तुओं को साफ-सुथरा रखकर न केवल आगन्तुकों को अपनी सुरुचि का परिचय देते हैं वरन् अपने स्वभाव में अनौखी विशेषता उत्पन्न करते हैं। यह विशेषता पारस्परिक व्यवहार की सफाई से लेकर, रुके-उलझे कामों को निपटाने से लेकर वहाँ तक विकसित होती जहाँ तक मन में गाँठें बाँधने और दुराव-दुर्भाव की जड़ें जमना भी असम्भव हो जाय।

धन अपव्यय पर्याप्त आजीविका रहते हुये भी मनुष्य को दरिद्र ही बनाये रहेगा। वह कर्ज करेगा, जलील होगा, ब्याज भरेगा और महत्त्वपूर्ण आवश्यकतायें सामने आ खड़ी होने पर बगलें झाँकेगा। आमदनी से कम खर्च करने के बजट बनाकर चलना आवश्यक होता है। जेब में पैसे भरे फिरना और चाहे जिस काम के लिये खर्च करते रहना कुबेर को भी दरिद्र बना देगा।

जिसे ईमानदारी का जीवन जीना हो उसे पूर्व तैयारी मितव्ययी रहने की—सादा जीवन जीने की करनी चाहिये, जो कम में गुजारा करता है उसी के लिये यह सम्भव है कि कम आमदनी से सन्तोषपूर्वक निर्वाह कर ले। ईमानदारी से आय सीमित रहती है—उतनी नहीं हो सकती जितनी बेईमानी अपनाने से। जिसने खर्च बढ़ा रखे हैं उनकी पूर्ति के लिये बेईमानी का रास्ता ही अपनाना पड़ेगा। फिजूलखर्ची यों निर्दोष भी मालूम पड़ सकती है। अपना कमाना अपना उड़ाना इसमें किसी को क्या ऐतराज होना चाहिये। परन्तु बात इतनी सरल नहीं है। प्रकारान्तर से फिजूलखर्ची बेईमानी अपनाने के लिये बाध्य करती है, अनियन्त्रित खर्च करने की आदत बढ़ती ही जाती है और देखते-देखते उस सीमा को छूती है जहाँ न्यायोचित आमदनी कम पड़े और घटोतरी की पूर्ति के लिये बेईमानी पर उतारू होना पड़े। जिसने आमदनी और खर्च का ताल-मेल बिठाना सीखा है वही कुछ सत्कर्मों के लिये भी बचा सकता है। अन्यथा सदुद्देश्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य भी आर्थिक तंगी के कारण रुके पड़े रहेंगे।

दूसरों का आदर करना—सद्व्यवहार का अभ्यस्त होना—सज्जनोचित शिष्टाचार बरतना—मधुर वचन बोलना यह व्यक्तित्व की गरिमा बढ़ाने वाली साधना है। मनुष्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामाजिक प्राणी है। उसे दूसरों के साथ मिलजुल कर रहना पड़ता है। स्नेह-सौहार्द्र का वातावरण तभी बना रह सकता है जब दूसरों के साथ शालीनता का व्यवहार किया जाय। अहंकारी व्यक्ति दूसरों को तुच्छ समझते हैं और कटुवचन एवं दुर्व्यवहार पर उतारू रहते हैं। क्रोधी, अशिष्ट, उच्छृंखल व्यक्ति अपना मान बढ़ाने की बात सोचता है पर वस्तुतः उसे निरन्तर खोता चला जाता है। कुसमय में अपने को एकाकी अनुभव करता है, स्नेह-सहयोग से वंचित होकर वह भूत-बेताल की अशांत, अतृप्त मनःस्थिति में जा फँसता है।

ईर्ष्या, द्वेष, झूठ, छल, प्रपंच दुरभिसन्धि, षड़यन्त्र, शोषण, अपहरण, आक्रमणों की आसुरी मनोवृत्ति अपनाकर मनुष्य अपराधी आचरण ही करता है। उसकी गतिविधियाँ ऐसी हो जाती हैं जिससे मनुष्य सबकी आँखों में गिरता है यहाँ तक कि अपनी आँखों में भी। धन या पद पाने की अपेक्षा लोक-श्रद्धा का प्राप्त करना अधिक मूल्यवान है। दुष्ट, दुराचारी बनकर कोई साधन सम्पन्न बन जाय तो यही कहा जाना चाहिये कि उसने खोया बहुत और पाया कम। व्यसनी, व्यभिचारी, आलसी और प्रमादी—आतंकवादी, अत्याचारी—उस सुखद उपलब्धि से वंचित ही रहते हैं, जिसे पाने के लिये यह कुमार्ग अपनाया। दुर्भावनाओं और दुष्प्रवृत्तियों का आश्रय लेकर मनुष्य दूसरों की जितनी हानि करता है, उसकी तुलना में अपनी असंख्य गुनी हानि कर लेता है। उद्धत आचरण के परिणामों पर यदि गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय तो उसे परले सिरे की मूर्खता ही कहा जायेगा।

समय को नियमितता के बन्धनों में बाँधा जाना चाहिये। चौबीस घण्टे की निर्धारित दिनचर्या बनानी चाहिये और उस पर तत्परतापूर्वक चलते जाना चाहिये। समय ही सबसे बड़ी सम्पदा है, उसका एक क्षण भी बर्बाद नहीं होना चाहिये। शरीर की क्षमता के अनुरूप श्रम किया जाय—काम का स्तर और सिलसिला बदलते रहा जाय तो थकान नहीं चढ़ेगी। हर काम में दिलचस्पी पैदा की जाय—उसे खेल समझते हुये पूरे मनोयोग के साथ करना चाहिये। यह आदत पड़ जाय तो दुर्बल शरीर वाला व्यक्ति भी बिना थके बहुत काम करता रह सकता है। आहार-विहार विवेकपूर्ण और क्रमबद्ध होना चाहिये। समयानुसार काम बदलने से विश्राम और विनोद का उद्देश्य पूरा हो सकता है। नियमबद्ध एवं क्रमबद्ध होकर हम जो बन्धन अपने ऊपर लगाते हैं, वे बन्दूक की सीमित नली में बारूद भरकर चलाने की तरह प्रचण्ड शक्ति के स्रोत बनते हैं और हमारी भौतिक एवं आत्मिक प्रगति के अवरुद्ध द्वारों को खोलते हैं।

मन को, मस्तिष्क को अस्तव्यस्त उड़ानें उड़ने की छूट नहीं देनी चाहिये। शरीर की तरह उसे भी क्रमबद्ध और उपयोगी चिन्तन के लिये सधाया जाना चाहिये। कुसंस्कारी मन जंगली सुअर की तरह कहीं भी इधर-उधर दौड़ लगाता रहता है, शरीर भले ही विश्राम करे पर मन तो कुछ सोचेगा ही। यह सोचना भी शारीरिक श्रम की तरह ही उत्पादक होता है। समय की बर्बादी की तरह ही अनुपयोगी और निरर्थक चिन्तन भी हमारी बहुमूल्य शक्ति को नष्ट करता है। दुष्ट चिन्तन तो आग से खेलने की तरह है। आज परिस्थितियों में जो सम्भव नहीं वैसी आकाश-पाताल जैसी कल्पनायें करते रहने—योजनायें बनाते रहने से मनुष्य अव्यावहारिक बनता जाता है। मनोनिग्रह का योगाभ्यास में बहुत माहात्म्य गाया गया है। इस चित्त निरोध का व्यावहारिक स्वरूप यही है कि जिस दिशा को हम उपयोगी मानते हैं और जिस सन्दर्भ में सोचना आवश्यक समझते हैं, उसी निर्देश पर हमारी विचारणा गतिशील रहे। वैज्ञानिकों, बुद्धिजीवियों और योगाभ्यासियों में यही विशेषता होती है कि वे अपने मस्तिष्क को निर्धारित प्रयोजन पर ही लगाये रहते हैं। अस्तव्यस्त उड़ानों में उसे तनिक भी नहीं भटकने देते। यह आदत हमें डालनी चाहिये और जानना चाहिये कि चिन्तन का क्षेत्र निर्धारित करके—उस पर मन को केन्द्रित करने की आदत यदि डाली जा सके तो मस्तिष्कीय प्रखरता का—मनोबल सम्पादन का द्वार खुल जायेगा और मन्द बुद्धि जैसे मस्तिष्कीय बनावट रहते हुये भी अपने चिन्तन क्षेत्र में निष्णात बन जायेंगे। समुन्नत जीवन विकास में यह शरीर और मन पर प्रबन्ध लगाने की साधना सही रूप से तप-तितीक्षा का—व्रत संयम का उच्चस्तरीय लाभ दे सकती है।

ऊपर की पंक्तियों में कुछ मोटे सुझाव-संकेत भर हैं। विचार करने पर अनेकों ऐसे प्रसंग सामने आते हैं जिनमें विधि निषेध की आवश्यकता पड़ती है। क्या छोड़ना क्या अपनाना इसका महत्त्वपूर्ण निर्णय हर चरण पर करना पड़ता है।

आत्म निर्माण के मूलभूत चार दार्शनिक सिद्धान्तों पर हर दिन बहुत गम्भीरता के साथ बहुत देर तक मनन-चिन्तन करना चाहिये। जब भी समय मिले चार तथ्यों को, चार वेदों का सार तत्व मानकर समझाना और हृदयंगम करना चाहिये। यह तथ्य जितनी गहराई तक अन्तःकरण में प्रवेश कर सकेंगे, प्रतिष्ठित हो सकेंगे उसी अनुपात से आत्मनिर्माण के लिये आवश्यक वातावरण बनता चला जायेगा।

आत्मदर्शन का प्रथम तथ्य है—आत्मा को परमात्मा का परम पवित्र अंश मानना और शरीर एवं मन का उससे सर्वथा भिन्न मात्र वाहन अथवा औजार भर समझना। शरीर और आत्मा के स्वार्थों का स्पष्ट वर्गीकरण करना। काया के लिये उससे सम्बन्धित पदार्थों एवं व्यक्तियों के लिये हम किस सीमा तक क्या करते हैं ? इसकी लक्ष्मण रेखा निर्धारित करना और आत्मा के स्वार्थों की पूर्ति के लिये अपनी क्षमताओं का एक बड़ा अंश बचाना—उसे आत्म कल्याण के प्रयोजनों में लगाना।

दूसरा आध्यात्मिक तथ्य है—मानव जीवन को ईश्वर का सर्वोपरि उपहार मानना। इसे लोकमंगल के लिये दी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुई परम पवित्र अमानत स्वीकार करना। स्पष्ट है कि प्राणी मात्र ईश्वर की संतान हैं। निष्पक्ष न्यायकारी पिता समान रूप से ही अपने सब बालकों को अनुदान देता है। मनुष्य को इसने सुविधा-साधन वह विलासिता और अहंता की पूर्ति के लिये देकर पक्षपाती और अन्यायी नहीं बन सकता। जो मिला वह खजांची के पास रहने वाली बैंक अमानत की तरह है। संसार को सुखी-समुन्नत बनाने के लिये ही मनुष्य को विभिन्न सुविधायें मिली हैं। उनमें से निर्वाह के लिये, न्यूनतम भाग अपने लिये रखकर शेष को लोकमंगल के लिये, ईश्वर के इस सुरम्य उद्यान को अधिक सुरम्य सुविकसित बनाने के लिये खर्च किया जाना चाहिये।

तीसरा महासत्य है—अपूर्णता को पूर्णता तक पहुँचाने का जीवन लक्ष्य प्राप्त करना। दोष-दुर्गुणों का निराकरण करते चलने और गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता बढ़ाते चलने से ही ईश्वर और जीवन के बीच की खाई पट सकती है। इन्हीं दो कदमों को साहस और श्रद्धा के साथ अनवरत रूप से उठाते रहने पर जीवन लक्ष्य तक पहुँचाना सम्भव हो सकता है। उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व की नीति अपनाकर ही आत्मा को परमात्मा बनने और नर को नारायण स्तर तक पहुँचाने का अवसर मिल सकता है। स्वर्ग, मुक्ति, आत्म दर्शन, ईश्वर प्राप्ति आदि इसी अपूर्णता के निराकरण का नाम है।

चौथा महासत्य है—इस विश्व ब्रह्माण्ड को ईश्वर की साकार प्रतिमा मानना। श्रम सीकरों और श्रद्धा-सद्भावना के अमृत जल से उसका अभिषेक करने की तप साधना करना। दूसरों के दुःख बाँटाने और अपने सुख बाँटने की सहृदयता विकसित करना। आत्मीयता का अधिकाधिक विस्तार करना। अपनेपन को शरीर-परिवार तक सीमित न रहने देकर उसे विश्व सम्पदा मानना और अपने कर्त्तव्यों को छोटे दायरे, थोड़े लोगों तक सीमित न रखकर अधिकाधिक व्यापक बनाना।

यह चार सत्य—चार तथ्य ही समस्त अध्यात्म विज्ञान के—साधना विधान के केन्द्र बिन्दु हैं। चार वेदों का सार तत्व यह है। महासत्यों के हृदयंगम करने और उन्हें उतारने से परम लक्ष्य की प्राप्ति होती है। जीवनोद्देश्य पूर्ण होता है। इन महासत्यों को जितनी श्रद्धा और जागरूकता के साथ अपनाया जायेगा, आत्मनिर्माण उतना ही सरल और सफल होता चला जायेगा। युग निर्माण की दिशा में बढ़ते हुये हमें सर्वप्रथम आत्मनिर्माण पर ही ध्यान केन्द्रित करना चाहिये।

परिवार निर्माण एक पाठशाला, एक प्रयोगशाला

युग निर्माण अभियान का प्रथम चरण आत्म-निर्माण है जिस पर प्रकाश डाला जा चुका है। अभियान का दूसरा चरण है—परिवार निर्माण। आमतौर से हर मनुष्य परिवार बनाकर रहता है, जो लोग विवाह नहीं करते वे भी माँ-बाप, बहिन-भाई आदि के साथ रहते हैं यह भी परिवार ही तो हुआ। स्त्री-बच्चों तक ही तो परिवार की सीमा अवरुद्ध नहीं की जा सकती। इतना ही नहीं वैरागी, सन्त, महात्मा तक जमात-संगत बनाकर रहते हैं। आश्रम, सम्प्रदाय, मण्डली बनाते हैं। गुरु-शिष्यों की परम्परा चल पड़ती है और परिवार बन जाता है। कोई उद्योग, व्यवसाय यदि आत्मीयता के साथ उच्च आदर्शों को सामने रखकर चलाये जायें तो साथ काम करने वाले भी परिवार ही बन जाते हैं। छात्र और अध्यापकों का सम्बन्ध वस्तुतः एक परिवार ही है। प्राचीनकाल में गुरुकुल इसी आदर्श पर चलते थे। थोड़ी और उदार दृष्टि का विकास हो तो यह परिधि देश, धर्म आदि की सीमा लाँघती हुई विश्व परिवार पर जा टिकती है, तब वसुधैव कुटुम्बकम् एक कल्पना नहीं—व्यावहारिक सत्य दृष्टिगोचर होता है। युग निर्माण की क्षमता विकसित करने के लिये हमें परिवार निर्माण की पाठशाला में प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिये। भोजन-वस्त्र की, शौक-मौज की, शिक्षा-सुविधा की, व्यवस्था बनाये रहने से ही परिवार की आवश्यकता पूर्ण नहीं हो जाती वरन् उस छोटे क्षेत्र में ऐसा वातावरण बनाना पड़ता है, जिसमें पलने वाले प्राणी हर दृष्टि से समुन्नत-सुसंस्कृत बन सकें। अधिक खर्च करने, अधिक सुविधा साधन रहने से—नौकर, चाकरों की व्यवस्था रहने से घर साफ-सुथरा और सुसज्जित रह सकता है। सम्पन्नता के आधार पर बढ़िया भोजन, वस्त्र ऐश-आराम-विनोद-मनोरंजन के साधन मिल सकते हैं। किन्तु व्यक्तित्व को समग्र रूप में विकसित कर सकने वाले सुसंस्कार केवल उपयुक्त वातावरण में ही सम्भव हो सकते हैं। ऐसा वातावरण कहीं बना बनाया नहीं मिलता—न कहीं खरीदा जा सकता है, उसे तो स्वयं ही बनाना पड़ता है।

प्राचीनकाल के गुरुकुलों की बात दूसरी थी वहाँ उत्कृष्टता का वातावरण बना हुआ रहता था, घर-परिवार में जो कमी रहती थी, उसकी पूर्ति वहाँ हो जाती थी, ऋषि, तपस्वी अपने ज्ञान, कर्म और प्रभाव से विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण की आवश्यकता पूरी किया करते थे। पर अब वैसे गुरुकुल, विद्यालय भी कहाँ हैं ? अब तो वह आवश्यकता प्रत्येक सद्गृहस्थ को स्वयं ही पूरी करनी पड़ेगी। इसे यदि पूरा न किया गया, घर में सुसंस्कृत वातावरण न बनाया जा सका, परिष्कृत परम्पराओं का प्रचलन न किया जा सका तो उस घर में रहने, पलने वाले लोग भूत-बेताल बन कर ही रहेंगे। स्वास्थ्य, शिक्षा, चतुरता की दृष्टि से वे कितने ही अच्छे क्यों न हों, मानवीय सद्गुणों से वंचित ही रहेंगे। कोई कितना कमाता है—कितना बड़ा कहलाता है यह बात अलग है और किसका व्यक्तित्व कितना समुन्नत है, यह प्रश्न बिल्कुल अलग है। बड़ा अदमी बनना सरल है—श्रेष्ठ, सज्जन बनना कठिन है। सुख-शान्तिपूर्वक रहने और अपने साथियों को प्रसन्न-संतुष्ट रखने के लिये बड़प्पन की नहीं महानता की आवश्यकता पड़ती है। उसी का उपार्जन मानव जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। कोई परिवार इस दिशा में जितना सफल होता है, उसकी उतनी ही सार्थकता मानी जा सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अवांछनीय वातावरण में पलने वाले प्राणी हेय और गई-गुजरी स्थिति में ही जिन्दगी गुजारते हैं। अधिक पैसा, अधिक ठाट-बाट और अधिक वैभव पाकर आदमी दूसरों को आकर्षित-आतंकित कर सकता है, पर उसकी सुख-शान्ति में तनिक भी वृद्धि नहीं होती। आनन्द और उल्लास तो केवल सुसंस्कारी व्यक्तियों के हिस्से में ही आता है। वे ही स्वयं सन्तुष्ट रहते हैं और साथियों को आनन्द देते हैं। प्रसन्न रहने और प्रसन्न रखने की विशेषता ही देव-प्रकृति कहलाती है। वस्तुतः यही सबसे बड़ी दौलत है। अभागे लोग पैसे को ही सब कुछ मानते और उसी के लिये मरते-खपते हैं। विवेकवान् जानते हैं कि परिष्कृत दृष्टिकोण से, सद्भावनाओं से बढ़कर और कोई आनन्ददायक वस्तु इस संसार में नहीं है इसलिये वे इसके उपार्जन-अभिवर्धन पर ध्यान देते हैं ? भले ही पैसे की दृष्टि से उन्हें गरीबों की श्रेणी में ही क्यों न रहना पड़े।

परिवार निर्माण का अपना प्रयोजन इतना भर ही नहीं है जितना कि गृह-विज्ञान की प्रचलित पुस्तकों में बताया-पढ़ाया जाता है। उसे गृहसज्जा भर कहा जा सकता है। परिवार निर्माण की दृष्टि से यह आरम्भिक और उचित कदम है। आवश्यकता उसकी भी है। पर उतना भर कर लेने पर भी कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। वस्तुतः कूड़ा-करकट तो दिमागी गन्दगी का नाम है, फूहड़ प्रकृति ही घर में सर्वत्र अव्यवस्था फैलाये रहती है। कामों को आधा-अधूरा छोड़ने की आदत का नाम ही गन्दगी है। जिसकी प्रकृति में पूरा काम निपटाकर ही आगे बढ़ने की आदत जुड़ गई है, उसे कुछ सिखाना नहीं पड़ता। ऐसी प्रकृति घर की हर वस्तु को सुन्दर, सुव्यवस्थित बनाये रहती है। घर का सामान, बर्तन, फर्नीचर, दीवारें, छतें, कमरे, कोठरी, नाली, पखाने, कपड़े, पुस्तकें, खाद्य पदार्थ आदि किस तरह सँभाले-सजाये जायें इसकी शिक्षा का नाम ही इन दिनों स्कूलों में 'गृह विज्ञान' के नाम से पढ़ाया जाता है। वह व्यवहार ज्ञान है। इतना सब कुछ जान लेने पर भी यदि आलसी और फूहड़ प्रकृति स्वभाव का अंग बनी रहे तो फिर सारा पढ़ा-पढ़ाया बेकार है। गृह-सज्जा जैसा छोटा विषय भी मूलतः घर के सदस्यों की प्रकृति से जुड़ा है। उसका स्तर यदि सुधरा हुआ हो तो कोई बिना पढ़ी महिला लैक्चर देना भले ही न जानती हो, व्यवहार रूप से इतना कुछ करके दिखा सकती है कि गृह विज्ञान पढ़ाने वाली प्रोफेसर भी सिर झुका के रह जाय। हमें इसी सुरुचि के विकास को घर की सुव्यवस्था का मूलभूत कारण मानकर चलना चाहिये और उसी के विकास का उपयुक्त वातावरण तैयार करना चाहिये।

परिवार निर्माण वस्तुतः एक दर्शन है—क्रियाकलाप तक उसे सीमित नहीं रखा जा सकता। जिस प्रकार की व्यवस्था अभीष्ट हो उसके लिये परिवार के लोगों की मनःस्थिति का निर्माण किया जाना चाहिये। यह प्रयोजन तभी सफल हो सकता है, जब अपना मनोयोग, समय और श्रम उसके लिये नियमित रूप से लगाया जाय। यह अभिरुचि, तत्परता एवं संलग्नता तब उत्पन्न हो सकती है जब परिवार निर्माण की आवश्यकता को गम्भीरतापूर्वक समझा जाय और यह सोचा जाय कि इस महान् उत्तरदायित्व का निर्वाह करना कितना अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह काम नौकरों से, बाहर के आदमियों से कराने का नहीं है। अन्यान्य लोग बता-सिखा सकते हैं, परिवार के लोगों में घुल-मिल नहीं सकते, घनिष्ठ आत्मीयता का अपनापन ही आन्तरिक आदान-प्रदान का माध्यम होता है। मनःस्थिति पर प्रभाव डालने की क्षमता केवल उन्हीं में होती है, जो अन्तःक्षेत्र का स्पर्श करें। विशेषता स्वभाव एवं दृष्टिकोण में परिष्कृत परिवर्तन करने के लिये तो ऐसे ही शिक्षक की आवश्यकता पड़ती है। ऐसा शिक्षक बाहर से ढूँढ़ना बेकार है, यह कार्य हमें स्वयं ही करना पड़ेगा। भोजन, स्नान, निद्रा, विनोद आदि की आवश्यकतायें पूरी करने के लिये श्रम हमें स्वयं ही करना होता है, यह प्रयोजन दूसरों के द्वारा पूरे नहीं कराये जा सकते।

प्रश्न इतना भर नहीं है कि परिवार का वातावरण अच्छा बनाया जाय और परिजनों को सुसंस्कृत स्तर तक पहुँचाया जाय। यह केवल एक पक्ष है। परिवार निर्माण का दूसरा पक्ष और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। वह है—अपनी निज की आदतों, आस्थाओं और गतिविधियों का निर्माण-नियन्त्रण करना। यह कार्य परिवार की प्रयोगशाला में ही सम्भव हो सकता है। जलाशय में घुसे बिना तैरना कहाँ आता है। व्यायामशाला में प्रवेश किये बिना पहलवान कौन बनता है ? पाठशाला में भर्ती हुये बिना सुशिक्षित कौन बनाता है ? व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर ही अपने गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता का अभ्यास किया जाता है। एकाकी चिन्तन, मनन, अध्ययन, प्रवचन करते रहने से केवल बौद्धिक समाधान मिलता है। सत्प्रवृत्तियाँ परिपक्व तो अभ्यास से होती हैं। अभ्यास के लिये उपकरण चाहिये। इस प्रयोजन के लिये परिवार से बढ़कर और कोई उपयुक्त माध्यम हो ही नहीं सकता। परिवार निर्माण के लिये प्रयास करना वस्तुतः अपनी श्रेष्ठ मान्यताओं को मूर्त रूप देने के लिये प्रयोगशाला में प्रवेश करना है। परिजनों के माध्यम से अपनी शालीनता एवं क्रियाकुशलता को विकासोन्मुख बनाना है। इस प्रकार परिवार निर्माण की दिशा में किये गये प्रयास केवल कुटुम्बियों की सार्थक सेवा ही सम्पन्न नहीं करते, वरन् अपने व्यक्तित्व को भी निखारते हैं, अपनी आदतों में भी उत्कृष्टता का समुचित समावेश करते हैं, यह दुहरे लाभ की प्रक्रिया सर्वथा अपनाये जाने ही योग्य है।

आजीविका उपार्जन के अतिरिक्त कुछ समय हमें परिवार-निर्माण के लिये भी नियमित रूप से देना चाहिये। यह एक उच्चकोटि का मनोरंजन है—ताश, शतरंज, गपशप, सिनेमा, मटरगश्ती, यारवासी, आलस्य, अनुत्साहपूर्वक काम करने की मन्दगति आदि व्यसनों और प्रमादों में हमारा बहुत-सा समय नष्ट होता है। हिसाब लगाया जाय तो प्रतीत होगा कि समय की यह बर्बादी बहुत बड़ी है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतनी अधिक है कि उसे बचाकर ही परिवार निर्माण के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य करने का अवसर प्राप्त किया जा सकता है और फुरसत न मिलने का बहाना सर्वथा निरर्थक सिद्ध हो सकता है। मनोरंजन में सबसे बढ़िया, सबसे सार्थक, सबसे हल्का और सबसे सरल परिवार निर्माण ही है।

परिवार निर्माण के दो पक्ष हैं—एक व्यावहारिक क्रिया-परक और दूसरा दार्शनिक दृष्टिकोण-परक। हमें दोनों ही तथ्यों का अपनी क्रिया-प्रक्रिया में समुचित समावेश करके चलना होगा। व्यावहारिक कार्यक्रम में घर की सुव्यवस्था, सुन्दरता एवं सुसज्जा पर ध्यान दिया जाना चाहिये। उसके लिये अकेले ही नहीं लगना चाहिये, वरन् क्रमशः सभी लोगों को साथ लगाना चाहिये। स्वयं साथ लगने से दूसरों में उत्साह पैदा होता है, अन्यथा सृजनात्मक कार्यों में रूखापन समझा जाता है और उसे भार-बेकार समझकर कन्नी काटने की मनोवृत्ति रहती है। आदेश-निर्देश देते रहने से बात बनती नहीं। प्रयोजन तब पूरा होता है, जब स्वयं आगे चला जाय और कन्धे से कन्धा लगाकर काम करने के लिये दूसरों को आमन्त्रण दिया जाय। 'अपने मरे बिना स्वर्ग नहीं दीखता' वाली कहावत ऐसे हर काम पर लागू होती है। जिसमें कितनों ही का सहयोग अभीष्ट होता है। इञ्जन आगे चलता है तो डिब्बे पीछे लुढ़कने लगते हैं। परिवार-निर्माण के लिये बताये गये व्यवस्था-क्रम में हमें स्वयं ही इंजन की भूमिका सम्पादित करनी चाहिये।

आजीविका उपार्जन और सार्वजनिक सेवा के अतिरिक्त शेष समय घर पर रहते हुये भी व्यतीत करना चाहिये और उसे परिवार निर्माण में लगना चाहिये। इस समय का क्रियात्मक उपयोग यह है कि सफाई-सुव्यवस्था एवं सुसज्जा के कार्यों में हर दिन कुछ न कुछ कार्य निर्धारित रखा जाय। काम को आधा-अधूरा छोड़ने और चीजों को अस्त-व्यस्त पड़ी रहने देने की बुरी आदत घर में प्रायः सभी को किसी न किसी मात्रा में होती है। बच्चों में तो यह दोष आमतौर से पाया जाता है। टूट-फूट भी होती ही रहती है। टूटे बर्तन, फटे कपड़े, छोली-छितरी पुस्तकों की जिल्दें यह माँग करती हैं कि उन्हें सुधारा-सँभाला जाय। मरम्मत में कुशल होना सद्गृहस्थ का आवश्यक क्रिया-कौशल है। जब जो वस्तु टूटती-फूटती दिखाई पड़े, उसे अविलम्ब सुधार-सँभाल देना चाहिए। कपड़ा जहाँ से फटा है, वहाँ तुरन्त सीं दिया जाय तो वह हानि न होगी, जो कई दिन उपेक्षा करते रहने से उसकी जिन्दगी ही समाप्त हो जाने के रूप में सामने आती है।

स्वच्छता से प्रेम करना उसी का सार्थक है, जो गन्दगी हटाने को उत्साह का परिचय दे सके। घर के सभी लोगों में यह प्रवृत्ति पैदा करनी चाहिये। गन्दगी एवं कुरूपता विरोधी मोर्चे पर लड़ने के लिये घर के हर सदस्य में शौर्य, साहस उत्पन्न करना चाहिये। क्या शरीर, क्या वस्त्र, क्या सामान, क्या घर सब कुछ ऐसा सुन्दर सुव्यवस्थित रखा जाय, मानो कोई बड़ा अफसर आज इन सब चीजों का मुआयना करने के लिये आ रहा हो। सफाई और सुरुचि सम्वर्धन इसी अभियान का दूसरा पक्ष है। मकान की दीवारें अपने हाथों आसानी से पोती जा सकती हैं। मेजपोश, पर्दे आदि रँगने में कहाँ अधिक देर लगती है'। घर के लोगों को साथ में लगाकर स्वच्छता और सुसज्जा में हर दिन एक घण्टा भी लगाया जाय तो उसकी हर वस्तु सुरुचिपूर्ण रह सकती है और वहाँ सुसंस्कृत वातावरण का आभास मिलता रह सकता है।

बात सफाई और शोभा सुन्दरता भर की नहीं हो रही है, वरन् यह कहा जा रहा है कि परिवार के हर सदस्य में सुव्यवस्था के लिये तत्परता बरतने की आदत होनी चाहिये। यह आदत वस्तुओं को सुन्दर ढंग से रखने तक सीमित नहीं रह सकती, वरन् चिन्तन एवं कर्तृत्व के अन्यान्य क्षेत्रों तक विकसित होकर मनुष्य को जागरूक और तत्पर बनाये रखने में असाधारण रूप से सहायता करती है। छोटे कामों से घृणा न करना, सुव्यवस्था को उत्पादक, मनोरंजन मानना, खाली समय का उपयोग करना, आलस्य, प्रमाद को हावी न होने देना, काम को अधूरा न छोड़ना, सुसज्जा की अभिरुचि बढ़ाना जैसे अनेकों ऐसे गुण परिवार में बढ़ते हैं, जो देखने में छोटे लगते हैं, पर प्रकृति के अंग बनकर सामने प्रस्तुत कार्यों को सही ढंग से करने पर मिलने वाली महत्त्वपूर्ण सफलता का अंग बनते है। टूटी चीजों की मरम्मत करना यों एक गृहशिल्प भी है, उससे आर्थिक बचत भी है। पर आदत के रूप में बड़ा लाभ यह है कि बर्बादी तनिक भी न होने दी जाय। वस्तुओं से अधिकाधिक काम लिया जाय। कहावत है कि "जो टूटे को बनाना और रूठे को मनाना जानता है, वह बुद्धिमान् है।" निर्माण, सृजन और सुधार की मनोवृत्ति टूटी वस्तुओं की मरम्मत करने और भदरंग चीजों को चमकाने के प्रयास के साथ-साथ विकसित होती है। घर-आँगन में, गमलों में, टोकरी और पेटियों में फल-फूल एवं शाकभाजी लगाये जा सकते हैं। इससे शोभा भी है और आर्थिक लाभ भी। इससे भी बड़ा लाभ उत्पादन, पोषण और संरक्षण की मनोवृत्ति विकसित होने का है, सद्गुणों को ऐसे छुट-पुट प्रयास के सहारे ही विकसित किया जा सकता है।

परिवार में सद्ज्ञान की अभिवृद्धि की आवश्यकता पूरी की जानी चाहिये। परिजनों को कूप-मण्डूक नहीं रहने देना चाहिये। जीवन की—समाज की समस्याओं से अपरिचित रहना ऐसी भूल है, जिसके कारण कभी-कभी ऐसी ठोकरें खानी पड़ती हैं, जो आदमी को चित्त-पट्ट करके रख दें। अवकाश के समय में समाचारों एवं कथा, संस्मरणों के माध्यम से उपयोगी जानकारी बढ़ाने का कार्य हर सद्गृहस्थ को हाथ में लेना चाहिये। रुखे, नीरस और निर्देशात्मक उपदेशों को प्रायः व्यंग्य, उपहास एवं अवज्ञा में धकेल दिया जाता है। कथा-कहानी के माध्यम से घुमा-फिराकर शिक्षा दी जाय तो उसमें मनोरञ्जन आकर्षण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी रहता है और परोक्ष रूप से दी गई शिक्षा का चित्त पर प्रभाव भी पड़ता है। अखबारों में से ऐसे समाचार चुने जा सकते हैं, जिनमें कुछ शिक्षा सामग्री हो। उनकी समीक्षा, विवेचना करते रहें तो ऐसे ज्ञान की वृद्धि हो सकती है, जो जीवन विकास में—लोक व्यवहार में उचित मार्गदर्शन कर सके। पञ्चतन्त्र और हितोपदेश नामक संस्कृत के कथा-ग्रन्थों ने उद्दण्ड राजकुमारों को सुयोग्य बना दिया था। हम भी उसी रीति-नीति को अपनाकर परिवार के लोगों के लिये उपयोगी दिशा-निर्देश करते रह सकते हैं। जो पढ़े-लिखे हैं, उन्हें पुस्तकें पढ़ते रहने के लिये भी कहा, समझाया और प्रोत्साहित किया जा सकता है। स्वाध्याय के लिये सामग्री और समय की व्यवस्था बनाकर हम घर के पढ़े-लिखे सदस्यों के लिये बौद्धिक एवं भावनात्मक उत्कर्ष का द्वार खोल सकते हैं। पढ़े सदस्य प्रतिदिन अवकाश वाले निर्धारित समय में निर्दिष्ट पुस्तक प्रसंग पढ़कर सुनाया करें तो आगे चलकर वही आदत परिवार प्रशिक्षण में अभिरुचि बनकर विकसित हो सकती है। सुनाते रहने वालों को सुयोग्य वक्ता बनने का—झेंप झिझक से पिण्ड छुड़ाने का—सुअवसर प्रदान कर सकती है।

घर में आस्तिकता का वातावरण रहना चाहिये। हर सदस्य को भगवान का स्मरण और नमन करने की आदत होनी चाहिये। चाहे उसके लिये दो मिनट का ही समय लगे, पर लगना अवश्य चाहिये। आस्तिकता के साथ अनेक श्रेष्ठ मान्यतायें जुड़ी रहती हैं। सुसंस्कृत व्यक्तित्व विकसित करने की दृष्टि से दैनिक जीवन में आस्तिकता को परिपुष्ट बनाने वाली उपासना के लिये कुछ न कुछ स्थान होना ही चाहिये। किसी उपयुक्त स्थान पर गायत्री माता का चित्र टाँगा जाय और यह नियम बनाया जाय कि दैनिक कार्य आरम्भ करने से पूर्व उस प्रतिमा का अभिनन्दन करके—कम से कम पाँच मन्त्र मन ही मन जप करके तब आगे बढ़ा जाय। इसमें स्नान आदि का बन्धन नहीं है। बच्चे स्कूल जाते समय, यह नमन-अभिनन्दन चित्र के सामन खड़े होकर कर सकते हैं। इसमें दो मिनट का समय लगता है। नियमित परम्परा को अनिवार्य बनाये रखने की दृष्टि से इतना थोड़ा समय भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उससे आस्तिकता के संस्कार जमते और बढ़ते हैं। इसका परिणाम दृष्टिकोण में उच्चस्तरीय आदर्शों को समाविष्ट रहने का लाभ मिलता है। सायंकाल सामूहिक रूप से आरती करने की—संगीत-सहगान की परम्परा डाली जाय तो एक उत्साह एवं सद्भाव-सम्वर्द्धक वातावरण बनता है।

घर के सदस्य अपने-अपने कामों में ही व्यस्त न रहें, वरन् एक दूसरे को सुझने-समझने तथा सहयोग देने लेने की स्थिति में भी रहें, ऐसी परम्परायें पुनः प्रचलित करनी चहिये। अधिक पढ़े—कम पढ़ों को पढ़ायें। साथ खेलें, साथ टहलें, जिसको जो आता हो—वह दूसरों को सिखायें। तेल-मालिस आदि में एक दूसरे की सहायता करें। भोजन साथ-साथ बैठकर करें। कभी-कभी रसोई बनाने भी सब लोग साथ-साथ जुट जायें। कपड़े धोने में एक साबुन लगाये तो दूसरा धोये। इस प्रकार छोटे-बड़े कामों में सर्वथा एकाकीपन रखने की अपेक्षा मिल-जुलकर करने की सहयोगी-सहकारी प्रवृत्ति पनपेगी और उसका अच्छा परिणाम सामने आयेगा। बच्चों को ऐसी आदत डालनी चाहिये कि कोई मिठाई आदि आवे तो मिल-बाँटकर खायें, एकाकी अथवा अधिक खाने का आग्रह न करें। ऐसी आदत डालने के लिये उन्हीं के हाथ से बाँटने का कार्य करना चाहिये। भोजन परोसने में रुचि लेने से भी उदारता के बीज जमते हैं। खिलौनों से दूसरों को भी खिलाने की आदत डाली जाय। अपने को हथियाये रहना और दूसरे का छीनने का प्रयत्न करना—जैसी संकीर्णता पनपने नहीं देना चाहिये। जेवर भी एक से दूसरी स्त्रियों में उलटते-पलटते रहें तो इससे विषाक्त आपाधापी की जड़ कटती है। हारी-बीमारी में—हर दुःख-सुख में एक दूसरे का पूरा ध्यान रखें। किसी के खिन्न, उदास, रुष्ट होने पर उपेक्षा न बरती जाय, वरन् कारण जानने और समाधान ढूँढ़ने का प्रयत्न किया जाय। हर सदस्य एक दूसरे को शिष्ट सम्बोधन के साथ पुकारे। 'तू' को असभ्य बोली माना जाय। बड़े भी छोटों को 'तू' न कहें। 'तुम' एवं 'आप' का सम्बोधन और नाम के आगे 'जी' लगाने का प्रचलन किसी परिवार को सभ्यतानुयायी सिद्ध करता है। गाली-गलौज, कटु वचन, व्यंग्य, उपहास, चीखना-चिल्लाना, रूठना, क्रोधावेश में भरना, मार-पीट करना, अपना सिर धुनना-असभ्य और अवांछनीय व्यवहार घोषित किया जाय और वैसा आचरण करने वाले की भर्त्सना की जाय। वैसा बार-बार न होने पाये, इस पर कड़ा प्रतिबन्ध लगाया जाय और ऐसी उद्दण्डता की पूरे परिवार द्वारा चेष्टा की जाय। मतभेद और विरोध, संघर्ष के अवसर आने पर भी शिष्टाचार का उल्लंघन न होने दिया। बुराई रोकने के लिये अशिष्टता बरती जाय तो फिर सुधार कम और बिगाड़ ही अधिक होगा।

अपव्यय किसी को न करने दिया जाय। उचित आवश्यकताओं की पूर्ति की जानी चाहिये, पर पैसे को उलीचने और फूँकने की आदत नहीं पड़ने देनी चाहिये। लाड़चाव में बच्चों को अपव्ययी बना देना—उन्हें भावी जीवन में दुःख-दारिद्र्य भुगतने का शाप देना है।

परिवार को एक सहयोग-समिति के रूप में विकसित करना चाहिये। जिसका हर सदस्य अपने कर्त्तव्य और अधिकार की मर्यादा को समझे। न तो कोई पिसता रहे और न किसी को मटरगस्ती करने दी जाय। बड़े-बूढ़े भी ठाली बैठना अपना अधिकार एवं सम्मान न समझें, वरन् सामर्थ्य भर श्रम करते हुये परिवार के विकास में समुचित योगदान करें। विचार स्वतन्त्रता का सम्मान किया जाय। न किसी पर अवांछनीय प्रतिबन्ध लगे और न कोई उद्धत-उच्छृंखलता बरते, तभी परिवार में सुसन्तुलन बना रह सकता है। हराम की कमाई खाने का लालच किसी में पैदा न होने दिया जाय। परिवार के हर सदस्य को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वावलम्बी बनाया जाय। पूर्वजों की संचित सम्पत्ति पर गुजारा करना अशक्तता एवं लोलुपता को लज्जास्पद कृत्य माना जाय। हर व्यक्ति स्वावलम्बनपूर्वक कमाये पूर्वजों की संचित पूँजी सामाजिक सत्कार्यों के लिये दान कर दी जाय। यही श्राद्ध की परम्परा है। उत्तराधिकार में प्रचुर सम्पदा छोड़ मरना—अपने बच्चों का पतन-हनन करना है। उन्हें सुयोग्य-स्वावलम्बी बनाया जाय और अपने परिश्रम की कमाई पर गुजारा करने में स्वाभिमान अनुभव करने दिया जाय। औलाद सात पीढ़ी तक बैठकर खाती रहे, ऐसा संचय करना—वस्तुतः समाज का हक मारना है। अतिरिक्त सम्पदा पर तत्वतः समाज का ही अधिकार होना चाहिये, उसे लोकमंगल में ही खर्च होना चाहिये। समर्थ बालकों को हराम की कमाई न तो खानी चाहिये और न उन्हें दी जानी चाहिये। इस तथ्य को जिस परिवार में समझ लिया जायेगा, वह सम्पन्न भले ही न हो सुसंस्कृत अवश्य माना जायेगा।

हमें समझना चाहिये कि परिवार एक पूरा समाज, एक पूरा राष्ट्र है। भले ही उसका आकार छोटा हो, पर समस्यायें वे सभी मौजूद हैं—जो किसी राष्ट्र या समाज के सामने प्रस्तुत रहती हैं। प्रधानमन्त्री अथवा राष्ट्रपति को जो बात अपने देश को समुन्नत बनाने के लिये सोचनी करनी चाहिये, वही सब कुछ किसी सद्गृहस्थ को परिवार निर्माण के लिये करना चाहिये। एक कुशल माली जिस तरह अपने उद्यान को सुरम्य, सुविकसित बनाने के लिये अथक् परिश्रम करता है—हर पौधे पर पूरा ध्यान रखता है, उसे सींचता छाँटता है, उसी प्रकार परिवार के हर सदस्य को सुसंस्कृत बनाने के लिये, उसके साथ नरम-कठोर व्यवहार करते रहना चाहिये। उपार्जन और यारबाजी में ही आमतौर से लोग अपना अधिकांश समय गुजारते हैं। फलतः परिवार की उपेक्षा होती रहती है और उसमें ऐसे बीज पनपते रहते हैं, जिनके कारण आगे चलकर कुटुम्ब दुष्प्रवृत्तियों का, फूट-फिसाद का शिकार होकर नष्ट-भ्रष्ट ही हो जाय।

अपने समग्र व्यक्तित्व का विकास करने के लिये—गुण, कर्म, स्वभाव को परिष्कृत करने के लिये—परिवार निर्माण के कार्यक्रम को एक उपयोगी-प्रयोग प्रकरण मानना चाहिये। यह छोटे रूप में देश सेवा विश्व सेवा ही है। अपना और परिवार के सदस्यों का कल्याण तो इसमें ही है। कहना न होगा कि इस प्रयोग में सफलता प्राप्त करने के लिये अपना निर्माण भी करना है। इस प्रकार युग-निर्माण का दूसरा चरण—परिवार निर्माण—अभीष्ट लक्ष्य की पूर्ति में एक अति महत्त्वपूर्ण कड़ी सिद्ध होती है।

समाज निर्माण अनिवार्य कर्त्तव्य

युग निर्माण योजना का अगला चरण समाज-निर्माण का है। आत्मनिर्माण और परिवार-निर्माण के समान ही उसकी भी महत्ता-उपयोगिता है। संगठनात्मक, प्रचारात्मक, रचनात्मक और संघर्षात्मक कार्यक्रमों के अन्तर्गत समाज निर्माण की जो सुव्यवस्थित क्रिया-प्रक्रिया प्रस्तुत की गई है, उसमें उन सभी तत्वों का समावेश है—जो आज की स्थिति में समाजोत्थान के सुनिश्चित आधार बन सकते हैं। विचार-विस्तार जैसा व्यापक और महान् प्रयोजन संगठित संस्थान ही कर सकते हैं। वह मिल-जुलकर करने का काम है। एक व्यक्ति चाहे कितना ही प्रतिभाशाली क्यों न हो, जन-सम्पर्क का कार्य बड़े पैमाने पर नहीं कर सकता। इस युग की सबसे बड़ी सामर्थ्य 'संघशक्ति' ही है। जहाँ भी युग निर्माण विचारधारा से परिचित, प्रभावित लोग हों, वहाँ उन्हें संघबद्ध होना चाहिये और युग-निर्माण शाखा-संगठन खड़ा कर लेना चाहिये। प्रतिदिन १० पैसा और एक घण्टा समय नव-निर्माण आन्दोलन के लिये नियमित रूप से देते रहने वाला कोई भी व्यक्ति इस शाखा-संगठन का सदस्य बन सकता है। पदाधिकारी एक ही होता है, जिसे कार्यवाहक कहते हैं।

संगठन का प्रथम और प्रमुख कार्य विचार-क्रान्ति की भूमिका प्रस्तुत करना है। इसके लिये झोला-पुस्तकालय, ज्ञान-रथ, विज्ञप्ति वितरण, पोस्टर चिपकाना, दीवार-लेखन आदि कार्य हाथ में लेने होते हैं। साप्ताहिक-सत्संग, कथा, कीर्तन, विचार-गोष्ठियाँ, युग-निर्माण सम्मेलन, कविता सम्मेलन, संगीत-सम्मेलन, गायत्री-यज्ञ, जन्म दिन, विवाह-दिन संस्कार, पर्व आयोजन आदि के माध्यम से जनसम्मेलनों के प्रचार अभियान को आगे बढ़ाया जाता है। पढ़े-लिखों को साहित्य पढ़ाकर और बिना पढ़ों को प्रतिपादनों को सुनाकर विचार परिष्कार का प्रयास किया जाता है। 'मस्तिष्कीय धुलाई' का नाम ही ज्ञान-यज्ञ है। पिछले अज्ञानन्धकार-युग की अनैतिकतायें, कुरीतियाँ, मूढ़तायें, संकीर्णतायें अभी भी हमारे मस्तिष्कों में कूट-कूट कर भरी हैं। मनुष्य बेतरह व्यक्तिवादी और स्वार्थान्ध बना हुआ है। लोकमंगल, परमार्थ-प्रयोजन एवं समाज उत्थान में हमारा क्या योगदान होना चाहिये ? यह बात एक तरह से भुला ही दी गई है। अध्यात्म दर्शन तक सिद्धि-चमत्कार, स्वर्ग मुक्ति और मनोकामना पूर्ति की सड़ी दुर्गन्ध में फँसकर रह गया है। लोकमंगल के उद्देश्य से यह ढाँचा खड़ा किया गया था, यह किसी को ध्यान ही नहीं। प्रातः स्नान करके पाप-फल से बचाव और सस्ते कर्मकांड करके स्वर्ग का अक्षय पुण्य प्राप्त करने के लालच में जैसे-जैसे लोग कुछ धार्मिक टण्ट-घण्ट करते हैं। संयम-सेवा की कर्त्तव्यनिष्ठा तो एक प्रकार से धर्म प्रयोजनों में से हटा दी गई है। जब धर्म-अध्यात्म का यह हाल है, तो अन्य क्षेत्र में अनाचार की सड़ाँध जितनी कुछ पनपे—कम है। इस स्थिति को बदलने के लिये क्रान्तिकारी विचारधारा का लोक-मानस में प्रवेश कराया जाना आवश्यक है। उखाड़ने के साथ साथ उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श-कर्त्तव्य को प्रेरणा भरने वाले तत्वज्ञान की स्थापना भी आवश्यक है। युग-निर्माण साहित्य द्वारा इन्हीं प्रयोजनों की पूर्ति की जा रही है। लेखनी और वाणी के दोनों माध्यमों के ज्ञान यज्ञ को ज्योतिर्मय बनाने के लिये प्रयुक्त किया जा रहा है। हम में से प्रत्येक को इस संगठनात्मक और प्रचारात्मक कार्यक्रमों में उत्साहपूर्वक अपना भावभरा योगदान देना चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाज निर्माण का आधार बनाने वाले संगठनात्मक और प्रचारात्मक पूर्वार्ध की जहाँ जड़ जमाने लगे, वहाँ अभियान का उत्तरार्ध कार्यान्वित किया जाना चाहिये। युग निर्माण पाठशाला, शिल्पशाला, प्रौढ़-शिक्षा, पुस्तकालय, व्यायामशाला आदि की स्थापना और संचालन व्यवस्था बनाई जानी चाहिये। शाखाओं की समर्थता सिद्ध करने वाले ज्ञान-रथ, लाउड्स्पीकर, स्लाइड प्रोजेक्टर, टैप-रिकार्डर, यज्ञ आच्छादन आदि उपकरण एकत्रित करने चाहिये और उनके माध्यम से जन-जागरण का अभियान तीव्र करना चाहिये। सामूहिक श्रमदान की परम्परा जहाँ भी चल पड़ेगी, वहाँ अनेकों रचनात्मक कार्य सहज ही बढ़ने लगेंगे। सहकारी आन्दोलन को प्रोत्साहित किया जा सके तो सृजन की असंख्य वृत्तियाँ सहज ही सामने खड़ी हो सकती हैं।

संघर्षात्मक आन्दोलन में कुरीतियों और अनैतिकताओं के दुहरे मोर्चे पर लड़ा जाना आवश्यक है। विवाहोन्माद में होने वाला अपव्यय दहेज-प्रचलन रोकने के लिये हमें युद्ध स्तर पर तीव्र आन्दोलन खड़ा करना चाहिये और देश को निरन्तर खोखला, अनैतिक और दरिद्र बनाये जाने वाले इस अनाचार का हर सम्भव उपाय से डटकर विरोध करना चाहिये। मृतक-भोज, भिक्षा-व्यवस्था, धर्म-क्षेत्र पर छाया हुआ पुरोहितवाद, भूत-पलीत, भाग्यवाद, धर्म के नाम पर पशु-बलि, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, जन्म-जाति के नाम पर ऊँच-नीच की मान्यता, पर्दा-प्रथा, लड़की-लड़के की असमानता, स्त्री और शूद्रों के प्रति अमानवी प्रतिबन्ध ऐसे हैं, जिन्हें अविलम्ब हटाया जाना चाहिये। नैतिक क्षेत्र में माँसाहार, नशेबाजी, आलस्य, श्रम की अप्रतिष्ठा, फिजूलखर्ची, नागरिक कर्त्तव्यों की उपेक्षा, समय की बरबादी, उद्दण्ड उच्छृंखलता आदि अनेकों दुष्प्रवृत्तियाँ प्रचलित हैं, जिन्हें सहन किया जाता रहा तो इस नासूर से सारा समाज शरीर ही सड़ जायेगा।

समाज-निर्माण के लिये हमें सृजन सेना का सैनिक बनकर संगठनात्मक, प्रचारात्मक, रचनात्मक और संघर्षात्मक मोर्चे सँभालने चाहिये। इसके लिये अपने समय और साधनों का अधिकाधिक अनुदान विश्व-मानव के चरणों पर समर्पित करना चाहिये। साधारणतया आठ घण्टे आजीविका उपार्जन के लिये, सात घण्टा शयन-विश्राम के लिये, पाँच घण्टा घरेलू और शारीरिक कार्मों के लिये, कुल मिलाकर २० घण्टे निजी कार्मों में खर्च करने चाहिये और ४ घण्टे समाज-निर्माण की उपर्युक्त चार क्रिया-प्रक्रियाओं में लगाने चाहिये। एक घण्टा समय और दस पैसा प्रतिदिन विचार-क्रान्ति के लिये लगाना तो आरम्भिक सदस्यता शर्त है। कर्मठ कार्यकर्त्ताओं को एक न्यूनतम अनुदान तक सीमित न रहकर बढ़े-चढ़े त्याग, बलिदान का आदर्श प्रस्तुत करना चाहिये। महीने में एक दिन की आजीविका समाज-निर्माण के लिये हर उदार व्यक्ति आसानी से खर्च कर सकता है। यों यदि हृदय में विशालता हो तो घर-परिवार के एक सदस्य के रूप में युग परिवर्तन के देवता को, महाकाल को गिना जा सकता है। समझा जा सकता है यदि एक सन्तान और होती तो उसका भी किसी प्रकार भरण-पोषण करना ही पड़ता। वैसा मानकर चला जाय तो निर्धन व्यक्ति भी इसी महान् प्रयोजन के लिये अपना अनुकरणीय अनुदान आर्थिक स्तर पर भी प्रस्तुत कर सकता है। समय, श्रम, प्रभाव, मनोयोग एवं धन जैसे समस्त साधनों की बढ़ी-चढ़ी मात्रा हमें युग देवता के सम्मुख प्रस्तुत करनी चाहिये। पेट और प्रजनन के लिये, लोभ और मोह के लिये ही सारी शक्तियाँ लगी रहें तो यह किसी आदर्शवादी और विचारशील व्यक्ति के लिये लज्जा की बात ही समझी जा सकती है।

जिनके पारिवारिक उत्तरदायित्व हल्के हो गये हैं। बड़े बच्चे कमाऊ हो गये हैं और अपने छोटे बहिन-भाइयों को सम्भालने की स्थिति में आ गये हैं अथवा पूर्व संचित सम्पत्ति के सहारे वे स्वावलम्बी बनने तक अपना निर्वाह कर सकते हैं, उन्हें अपना पूरा समय लोक-मंगल के लिये समर्पित करना चाहिये। रिटायर लोग, पेन्शन, फण्ड आदि इतना पा लेते हैं कि उनके पीछे यदि पत्नी आदि की जिम्मेदारी रह गई हो तो उसकी पूर्ति होती रहे। जिनके बच्चे नहीं हैं, उन्हें तो मानो भगवान ने इसी प्रयोजन के लिये आरम्भ से ही परोपकारी, पुण्यात्मा के रूप में पैदा किया है। उन्हें अपने को ऐसा सौभाग्यशाली मानना चाहिये। जिनके सामने परमार्थी-जीवन जीने का द्वार खुला पड़ा है। जिन्हें केवल कन्यायें दी हैं, वे भी कम सौभाग्यवान नहीं हैं। बच्चियों का विवाह करके वे समाज-निर्माण के मोर्चे पर निरन्तर जुटे रह सकते हैं। साधु और ब्राह्मणों की प्राचीन परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिये हम में से प्रत्येक को जीवन का उत्तरार्ध—वानप्रस्थ प्रयोजन के लिये समर्पित करने की तैयारी करनी चाहिये। समाज-निर्माण का व्यापक और महान् प्रयोजन ऐसा दुस्साहस कर गुजरने वाले ही सम्पन्न करते हैं। जिनकी अन्तरात्मा में आदर्शवादी विचारणायें उमगती हों—लोकमंगल के लिये कुछ अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करने की महत्त्वाकांक्षा जागती हो—उन्हें युग की पुकार सुननी चाहिये और स्वार्थपरता को—परमार्थ-परायणता में परिवर्तित करके अपनी महानता का परिचय देना चाहिये।

युग निर्माण जैसे गुरुतर कार्य की सम्भावना के सम्बन्ध में विचार करते हैं तो मन में प्रश्न उठता है कि ऐसा सम्भव कैसे होगा ? किन्तु जब इसके एक-एक चरण-आत्म-निर्माण, परिवार निर्माण और समाज निर्माण की यह समग्र रूपरेखा सामने आ जाती है, तो इसकी सम्भावना के सम्बन्ध में भी कोई शंका नहीं रह जाती और न इस विषय में ही कुछ सोचना शेष रह जाता है कि हमारी भूमिका इस महान् अभियान में क्या हो, कैसी हो ?

कहने की आवश्यकता नहीं कि आज हर व्यक्ति यह चाहता है कि जैसा कुछ ढर्रा इस दुनिया का चल रहा है, इसे बदले जाने में ही हित है और बदला ही जाना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिये। पर उनके सामने प्रश्न एक ही आ खड़ा होता है कि यह हो कैसे ? जिन्हें इस प्रश्न का उत्तर उपयुक्त रूपरेखा के रूप में मिल जाता है, वह सहज ही इस अभियान का एक सेनानी बन जाता है और अपनी भूमिका को बढ़ चढ़ कर निभाना चाहता है। इस अभियान का यों द्रुतगति से बढ़ते जाना और देश-विदेश में हजारों शाखाओं का स्थापित हो जाना तथा उनका दिन पर दिन प्रगति करते हुये प्रचारात्मक, रचनात्मक और संघर्षात्मक गतिविधियों को तीव्रतर करना इस प्रकार सहज सम्भव हुआ है।

ये गतिविधियाँ दिन पर दिन और तीव्र होंगी, इसमें कोई दो मत नहीं हो सकते। मार्ग हमें मिला गया अब तो चलने भर की देर है। नव-निर्माण की सम्भावना तक पहुँचने के लिये जो तीन चरण—तीन सोपान बताये गये हैं। इन पर चढ़ने और 'मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण' के चरम लक्ष्य तक पहुँचने के लिये जितना साहस, जितना श्रम, जितनी निष्ठा और जितना उत्साह जुटाया जायेगा, उतनी ही यह कल्पना सत्य के निकटतर पहुँचती जायेगी।

व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण और समाज-निर्माण की त्रिविधि क्रिया-प्रक्रिया सम्पन्न करते हुये भव्य समाज के अभिनव निर्माण के लिये बढ़-चढ़कर शौर्य, साहस दिखाया जाय—इसी में हमारा गौरव है।

सामाजिक प्रगति का एकमात्र आधार

स्वार्थपरता की मात्रा जब मर्यादाओं का उल्लंघन करने लगती है, तब मनुष्य किसी भी मार्ग से अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये तत्पर हो जाता है। उचित-अनुचित का विचार छोड़कर जैसे भी बने वैसे अपना स्वार्थ सिद्ध करने की नीति जब अपनाई जाने लगती है तो मनुष्य का व्यक्तित्व असुरता से परिपूर्ण हो जाता है। असुरता की जहाँ वृद्धि होगी वहाँ सुख-शान्ति का ठहर सकना सम्भव न होगा। अनैतिक दृष्टिकोण अपनाये हुए व्यक्तियों का समाज असभ्य ही कहला सकता है। वहाँ निरन्तर क्लेश-कलह ही नहीं सर्वनाश के अवसर भी उपस्थित होते रहते हैं। आज हमारे समाज में अपराधों, क्लेशों, संघर्षों, अभावों; चिन्ताओं और समस्याओं का घटाटोप दिखाई पड़ता है उसका एकमात्र कारण व्यक्तियों के मन में बढ़ी हुई स्वार्थपरता, चरित्रहीनता एवं संकुचित दृष्टि ही है। आदर्शवाद का, धर्म नीति एवं मर्यादा का उल्लंघन अब कभी भी अधिक मात्रा में होने लगा है, तब उसका परिणाम सारे समाज को भुगतना पड़ता है।

स्वार्थ से मनुष्य कैसा निर्मोही हो जाता है, इसके अगणित उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है। स्वजन-सम्बन्धियों के रिश्ते भी स्वार्थपरता के तूफानों में नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। औरंगजेब अपने सगे भाई दारा को अपने मार्ग का काँटा समझता है और उसका सिर काटकर अपने बाप के आगे पेश करता है। सगे भाई के प्राण लेना और बाप को अपने प्राण प्यारे बेटे का कटा हुआ सिर दिखा कर मृत्यु से अधिक यन्त्रणा सहने को विवश करने वाली यह डाकिन स्वार्थपरता ही तो है। बालि ने अपने सगे भाई सुग्रीव की स्त्री का अपहरण कर लिया। रावण ने विभीषण को भरी सभा में सदुपदेश देने के कारण लात मारकर तिरस्कृत किया। कौरवों ने पाण्डवों को क्या-क्या दुःख नहीं दिये। एक ओर राम-लक्ष्मण और भरत का आदर्श प्रेम है, दूसरी ओर औरंगजेब, बालि, रावण और कौरवों के दुष्कृत्य हैं। इस अन्तर को प्रस्तुत करने का कारण धर्म और अधर्म की आस्था-अनास्था ही हो सकती है।

बाप-बेटे का कितना पवित्र सम्बन्ध है। पिता की आज्ञा पालन करने के लिये जहाँ राम, श्रवण कुमार, भीष्म, पुरु आदि ने अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किये वहाँ ऐसी भी परम्परा मौजूद हैं जिनमें बेटे ने बाप को तिरस्कृत, पददलित और मौत के मुँह में धकेल देने में कसर न रखी। जहाँगीर ने अकबर को कैद किया था। खुसरो ने जहाँगीर के खिलाफ बगावत की, औरंगजेब शाहजहाँ को कैद कर उसकी गद्दी पर आप बैठ गया और सलीम ने औरंगजेब के साथ वही व्यवहार किया। बेटों की बापों के प्रति की गई यह करतूतें किस समाज के लिये गौरवास्पद हो सकती हैं ?

कंस ने अपनी बहिन देवकी के आठ बच्चों को पत्थर पर पटककर मार डाला। गुरुभक्ति के स्थान पर उनके साथ अमानवीय व्यवहार करने वाले शिष्यों की भी कमी नहीं रही है। भस्मासुर अपने गुरु शिवजी पर उनके दिये हुये वरदान का उल्टा प्रयोग करने एवं उन्हें भस्म करके पार्वती का अपहरण करने को उतारू हो गया। गुरुगोविन्दसिंह की हत्या उनके एक शिष्य ने ही कर दी। दयानन्द को उनके प्रिय सेवक जगन्नाथ ने ही विष खिला दिया। ईसामसीह को उनके एक शिष्य ने ही कुछ रुपये के लोभ में गिरफ्तार करके फाँसी पर चढ़वा दिया। जहाँ गुरुभक्ति के एक से एक ऊँचे उदाहरण मौजूद हैं, वहाँ ऐसी निकृष्ट घटनायें भी कम नहीं हैं। अपने स्वामी की रक्षा के लिये बड़े से बड़ा त्याग वाले संयमराम, पन्ना धाय जैसे उदाहरण मौजूद है वहाँ सिराजुद्दौला से विश्वासघात करके उसके राज्य और जीवन को नष्ट करा देने वाले मीरजाफर जैसे नौकरों के कुकृत्य भी देखने को मिलते रहते हैं।

पतिव्रत भारतीय नारी की विशेषता रही है, पर सूर्पणखा जैसी भी नारियाँ हुई हैं जो अपने विवाहित पति को छोड़कर पर पुरुषों की कल्पना से स्वच्छन्द विचरण करती रहीं और समाज में भयंकर काण्डों की निमित्त बनीं। एक नारीव्रत का उल्लंघन जिन्होंने किया उन्होंने विपत्ति को ही आमन्त्रण किया है। उत्तानपाद ने एक स्त्री के रहते दूसरी से विवाह किया। उस ईर्षा से पहली रानी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के पुत्र ध्रुव का अपमान हुआ और बच्चे को घर ही छोड़ देना पड़ा। दशरथ ने तीन विवाह करके कौन शान्ति पाई ? पाण्डु ने कुन्ती के रहते माद्री से और विवाह कर लिया तो उन्हें क्षयग्रस्त होकर अकाल मृत्यु के मुख में जाना पड़ा। रावण ने सीता का अपहरण करके कई स्त्री घर में रखनी चाहीं। कीचक ने द्रौपदी पर कुदृष्टि डाली, अलाउद्दीन चित्तौड़ की रानी पद्मावती पर ललचाया। इन सबका क्या परिणाम हुआ ? यह किसी से छिपा नहीं है। कुमार्ग पर जिसने भी कदम बढ़ाया है, उसने अपने लिये ही नहीं वरन् दूसरों के लिये भी संकट उत्पन्न किया है।

रावण, कंस, जरासन्ध, हिरण्यकश्यप, चेन, नहुष, दुर्योधन, औरंगजेब, नादिरशाह आदि नृशंस शासकों ने अपने मुँह पर कालिख पोती और अन्य अगणित लोगों को उत्पीड़न एवं यन्त्रणा को सहने के लिये विवश किया। मुहम्मदगोरी अपनी महत्त्वाकांक्षायें पूरी करने के लिये क्या-क्या नहीं करता रहा ? क्या नेपोलियन और सिकन्दर ने असंख्यों अपराधों के खून से धरती नहीं रँगी। कुमार्ग पर चलने वाले व्यक्ति सारे समाज को ही दुःख देते हैं। जयचन्द ने देशद्रोह करके मुहम्मदगोरी को भारत पर आक्रमण करने के लिये बुलाया तो उस कुकृत्य का दुष्परिणाम राष्ट्र को अद्यावधि सहना पड़ रहा है। दूसरी ओर एक व्यक्ति की देशभक्ति के कारण इंग्लैण्ड के मालामाल और समुन्नत हो जाने का भी उदाहरण मौजूद है। शाहजहाँ की पुत्री जहाँआरा का इलाज एक अँग्रेज डाक्टर ने किया था। उससे जब बादशाह ने पूछा कि आपने मेरी बेटी की जान बचाई है आपको क्या पुरस्कार दूँ। तो उसने अपने लिये कुछ न माँगते हुये इतना ही कहा कि मेरे देश से आने वाले माल पर से चुंगी माफ कर दीजिये। शाहजहाँ ने उसे स्वीकार कर लिया और भारत के बाजार इंग्लैण्ड के माल से पट गये। उस लाभ से इंग्लैण्ड जैसा पिछड़ा हुआ देश संसार का अग्रणी बन गया।

यह दुर्बुद्धि किन्हीं श्रेष्ठ व्यक्तियों को अपने चंगुल में फँसा ले तो उन्हें भी पतन के गर्त में धकेल सकती है। विश्वामित्र ऋषि को प्रलोभन आया तो वे मैनका के जाल में फँस गये। पाराशर केवट कन्या पर मोहित हो गये और अपने को सँभाले न रह सके। चन्द्रमा ने गुरु पत्नी गमन का पाप कमाया और इन्द्र जैसे देवता अहिल्या का सतीत्व नष्ट करने के कुकर्म में प्रवृत्त हुये। भीष्म और द्रोणाचार्य जैसे विवेकशील दुर्योधन की अनीति का समर्थन करने लगे। इससे प्रतीत होता है कि कोई व्यक्ति अच्छा या बुरा तभी तक रह सकता है, जब तक कि उसकी धर्मबुद्धि सावधान रहे। पाप बुद्धि के प्रकोप से यदि मनुष्य सम्भल न सके तो वह स्वयं तो अन्धकार के गर्त में गिरता ही है और भी दूसरे अनेकों को अपने साथ पाप पंक में ले डूबता है।

धर्म बुद्धि के जाग्रत हाने पर फतेसिंह जोरावर जैसे छोटे-छोटे बालक दीवार में जीवित चुने जाना हँसी-खुशी स्वीकार कर सकते हैं। चोटी न कटने देने के बदले बोटी-बोटी कटवाने को प्रसन्नतापूर्वक तैयार होते हैं। स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिक बनकर असंख्यों व्यक्ति सब प्रकार की बर्बादी सहन करते हैं और फाँसी के तख्तों पर गीता की पुस्तकें छाती से चिपकाये हुये चढ़ते चले जाते हैं। राम की सेना में रीछ-बन्दर जैसे दुर्बल प्राणी अपने प्राणों की आहुति देने के लिये सम्मिलित होते हैं। एक छोटी गिलहरी तक अपने बालों में धूरि भर-भर कर उसे समुद्र में झाड़ देने का अनवरत श्रम करके समुद्र को उथला करके राम की सेना का मार्ग प्रशस्त करती है। धर्मबुद्धि से दुर्बल व्यक्तियों में हजार हाथ का बल आ जाता है। पर स्वार्थी बुद्धि तो सेनापतियों को भी कायर बना देती है। द्रौपदी को भरी सभा में नग्न किये जाते समय भीष्म और द्रोण जैसे योद्धा नपुंसक बने बैठे रहे। उनके मुख से एक शब्द भी विरोध का न निकला। थोड़े से मुट्ठी भर विदेशी आक्रमणकारी भारत में आये थे पर उनका संगठित मुकाबिला करने के लिये यहाँ के शासक तैयार न हुये और पददलित होते चले गये। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई सहायता और आश्रय प्राप्त करने के लिये समर्थ राजाओं के पास जाती है पर अँग्रेजों डर से वे उसे साफ इन्कार कर देते हैं। कितने ही भारतीय अँग्रेजों और मुसलमानों के नाक के बाल बने रहे और देश को गुलामी की जंजीरों से देर तक जकड़े रहने को अपनी स्वार्थ बुद्धि के कारण करने और न करने योग्य सब कुछ करते रहे। जहाँ राणा प्रताप और शिवाजी जैसे स्वाभिमानी जीवन भर भारतीय स्वतन्त्रता के लिये तिल-तिल लड़ते रहे वहाँ खुशी-खुशी अपनी बहिन-बेटियाँ देकर अपने लिये सुविधायें प्राप्त करने वाले भी कम न थे। राणा सांगा ८४ घाव होने पर भी युद्धरत् हैं पर दूसरे लोग शत्रु से मिलकर अपना स्वार्थ साधने में लगे रहते हैं।

मनुष्य हाड़-माँस का पुतला एक तुच्छ प्राणी मात्र है उसमें न कुछ विशेषता है न न्यूनता। उच्च भावनाओं के आधार पर वह देवता बन जाता है, तुच्छ विचारों के कारण वह पशु दिखाई पड़ता और निकृष्ट, पाप बुद्धि को अपनाकर वह असुर एवं पिशाच बन जाता है। इस लोक में जो कुछ सुख-शान्ति, समृद्धि और प्रगति दिखाई पड़ती है वह सब सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों का परिचय है, जितनी भी उलझनें, पीड़ायें और कठिनाइयाँ दीखती हैं उनके मूल में कुबुद्धि का विष बीज ही फलता-फूलता रहता है। सैंकड़ों-हजारों वर्ष बीत जाने पर भी पुरानी ऐतिहासिक इमारतें लोहे की चट्टान की तरह आज भी अडिग खड़ी हैं पर हमारे बनाये हुये बाँध, स्कूल, पुल, इधर बनकर तैयार नहीं हो पाते उधर बिखरने शुरू हो जाते हैं। सामान और ज्ञान दोनों ही आज पहले की अपेक्षा अधिक उच्चकोटि का उपलब्ध है पर उस लगन की कमी ही दिखाई पड़ती है, जिसके कारण प्राचीनकाल में लोग स्वल्प साधन होते हुये भी बड़ी-बड़ी मजबूत चीजें बनाकर खड़ी कर देते थे। कुतुबमीनार, ताजमहल, आबू के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जैन मन्दिर, मदुरा के मीनाक्षी के देवालय, अजंता की गुफायें, मिश्र के पिरामिड और चीन की दीवार समय के बौद्धिक ज्ञान का नहीं उत्कृष्ट वस्तु निर्माण करने की भावना का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

मशीनों, कारखानों, नहर, बाँध और सड़कों के आधार पर हमारी सुख-शान्ति नहीं बढ़ सकती। इनसे थोड़ी आमदनी बढ़ सकती है पर उसी बढ़ी आमदनी से अनर्थ ही बढ़ने वाला है। देखा जाता है कि कारखानों के मजदूर और दूसरे श्रमिक ४० फीसदी तक पैसा शराब, तमाखू सिनेमा आदि में खर्च कर डालते हैं। आमदनी बढ़ती चलने पर तरह-तरह की फिजूलखर्ची के साधन बढ़ते जाते हैं। जिन्हें ऊँची तनख्वाहें मिलती हैं वे भी अभाव और कमी का रोना रोते रहते हैं। धनी लोगों के व्यक्तिगत एवं पारिवारिक, सामाजिक जीवन में क्लेश और द्वेष से भरा रहता है। पैसे के साथ साथ दुर्गुण बढ़ते चलने पर वह दौलत और उलटी विपत्ति का कारण बनती चलती है। इसलिये आर्थिक उन्नति के साथ-साथ विवेकशीलता और सत्प्रवृत्तियों की अभिवृद्धि भी अवश्य रहेगी। यदि इस दिशा में उपेक्षा बरती गई तो प्रगति के लिये आर्थिक सुविधा बढ़ाने के जो प्रयत्न किये जा रहे हैं वे हमारी समस्याओं को सुलझा सकने में कदापि समर्थ न हो सकेंगे।

जब तक मजदूर ईमानदारी से काम न करेंगे कोई कारखाना पनप न सकेगा। जब तक चीजें अच्छी और मजबूत न बनेंगी, उससे किसी खरीदने वाले को लाभ न मिलेगा। जब तक विक्रेता और व्यापारी मिलावट, कम तौल-नाप, मुनाफाखोरी न छोड़ेंगे तब तक व्यापार की स्थिति दयनीय ही बनी रहेगी। सरकारी कर्मचारी जब तक अहंकार, रिश्वत, कामचोरी और घोटाला करने की प्रवृत्ति न छोड़ेंगे तब तक शासन तन्त्र का उद्देश्य पूरा न होगा। यह सत्प्रवृत्तियाँ इन वर्गों में अभी उतनी नहीं दिखाई देती जितनी होनी चाहिये। यही कारण है कि हमारी प्रगति अवरुद्ध बनी पड़ी है। साधनों की कमी नहीं है। आज जितना ज्ञान, धन और श्रम साधन अपने पास मौजूद है उसका सदुपयोग होने लगे तो सुख-सुविधाओं की अनेक गुनी अभिवृद्धि हो सकती है।

आत्म-कल्याण की लक्ष्य पूर्ति तो सर्वथा सत्प्रवृत्तियों पर ही निर्भर है। ईश्वर का साक्षात्कार, स्वर्ग एवं मुक्ति को प्राप्त कर सकना केवल उन्हीं के लिये सम्भव है जिनके विचार और कार्य उच्चकोटि के, आदर्शवादी एवं परमार्थ भावनाओं से ओतप्रोत हैं। कुकर्मी और पाप वृत्तियों में डूबे हुये लोग चाहे कितना ही धार्मिक कर्मकाण्ड क्यों न करते रहें, कितना भजन, पूजन कर लें, उन्हें ईश्वर के दरबार में प्रवेश न मिल सकेगा। भगवान घटघटवासी हैं, वे भावनाओं को परखते हैं और हमारी प्रवृत्तियों को भली प्रकार जानते हैं, उन्हें किसी बाह्य उपचार से बहकाया नहीं जा सकता। वे किसी पर तभी कृपा करते हैं, जब भावना की उत्कृष्टता को परख लेते हैं। उन्हें भजन से अधिक 'भाव' प्यारा है। भावनाशील व्यक्ति बिना भजन के भी ईश्वर को प्राप्त कर सकता है पर भावनाहीन व्यक्ति के लिये केवल भजन के बल पर लक्ष प्राप्ति सम्भव नहीं हो सकती।

लौकिक और पारलौकिक, भौतिक और आत्मिक कल्याण के लिये उत्कृष्ट भावनाओं की अभिवृद्धि नितान्त आवश्यक है। प्राचीनकाल में जब भी अनर्थ के अवसर आये हैं तब उनका कारण मनुष्यों की स्वार्थपरता एवं पाप बुद्धि ही रही है और जब भी सुख-शान्ति का आनन्दमय वातावरण रहा है, तब उसके पीछे सद्भावनाओं का बाहुल्य ही मूल कारण रहा है। आज भी हमारे लिये वही मार्ग शेष है। इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग न पहले था और न आगे रहेगा। सभ्य समाज की स्थिति जब-जब रही है तब धर्मबुद्धि की ही प्रधानता रही है, हमें वर्तमान दुर्दशा से ऊँचे उठने के लिये जनमानस में गहराई तक धर्मबुद्धि की स्थापना करनी होगी। इसी आधार पर विश्वव्यापी सुख-शान्ति का वातावरण बन सकना सम्भव न होगा।

इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं

देश, काल और पात्र की आवश्यकताओं को देखते हुये मानव जीवन की सार्थकता के लिये हमें आज क्या कार्यक्रम अपनाने चाहिये ? गम्भीरतापूर्वक यह विचार करने पर एक ही निष्कर्ष निकलता है कि दुर्भावना एवं दुष्प्रवृत्ति के बढ़े हुये प्रकोप के उन्मूलन के लिये हमें प्राण-पण से जुट पड़ना चाहिये। आज इसी ताड़का का उपद्रव इस ऋषि-भूमि में सबसे अधिक हो रहा है। जब तक सद्भावनाओं की प्रवृत्ति बढ़ेगी नहीं तब तक सुधार के सारे प्रयत्न निष्फल होते रहेंगे। ऊसर भूमि में बहुत वर्षा होने पर भी घास नहीं जमती, उसी प्रकार दुर्बुद्धि से भरे हुये व्यक्ति बहुत उपकार करने एवं सहयोग देने से भी ऊँचे नहीं उठ सकते।

भिक्षुकों को देखकर सहृदय व्यक्ति को दया आना स्वाभाविक है। सोचते हैं—इन बेचारों को सुखी बनाने के लिये शक्ति भर मदद करनी चाहिये। भावना से प्रेरित होकर—अपने बच्चों का पेट काटते हैं, भविष्य के लिये कुछ बचा कर रखा था, उसे समाप्त करते हैं और उसे भिखारियों में बाँट देते हैं। सोचते हैं यह बेचारे सुखी होंगे, जरूरत पूरी हो जाने पर आशीर्वाद देंगे, पर जब परिणाम देखते हैं तो दूसरा ही निकलता है। प्राप्त हुये पैसों पर वह भिखारी बीड़ी खरीदता है या जोड़ने के लिये जमा कर लेता है। आज का काम चल गया, कल फिर वही व्यवसाय चलाता है। इस प्रकार हमारे जैसे ढेरों दानी रोज ही उसकी सहायता करते हैं पर एक सामयिक-सी छोटी आवश्यकता मात्र वे पूरी कर पाते हैं। भिखारी आजीवन भिक्षा वृत्ति ही करता रहता है, उसके दुःख का कोई अन्त नहीं होता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्या यह अच्छा न होता कि उसे कुछ काम करने के लिये समझाया या दबाया जाता। उस दिशा में उसका सहयोग किया जाता। यदि यह प्रयोग सफल हो सकता तो वह भिखारी दूसरे अन्य लोगों की तरह ही अपने भुजबल से कमाता-खाता, स्वावलम्बी और स्वाभिमानी जीवनयापन करता। स्वयं माँगने की अपेक्षा दूसरों को देने की स्थिति में होता। दान देकर नहीं उसकी वृत्ति को बदलकर ही समस्या का हल हो सकना सम्भव है।

बीमारों को देखकर, उन्हें कष्ट से कराहते हुये, आर्थिक संकट में फँसते हुये देखकर सहृदय की भावना जगती है, वह सोचता है, ऐसे लोगों के लिये चिकित्सालय स्थापित कराना चाहिये। इस उदार भावना से प्रेरित होकर वह अपनी सारी सामर्थ्य खर्च करके औषधालय खुलवाता है। सोचता है इससे संसार की एक बड़ी कठिनाई दूर होगी। हर साल हजारों रोगी अच्छे हुआ करेंगे। औषधालय खुलता है, दवायें बँटती हैं, रोगी आते हैं और अच्छे भी होते हैं, पर आरोग्य रक्षा का उद्देश्य पूरा नहीं होता। आहार-विहार का असंयम करने वाले व्यक्ति रोगमुक्त होते-होते अपने पुराने ढर्रे पर फिर आ जाते हैं। फिर बीमार पड़ते हैं। फिर दवा लेने आते हैं। एक रोग से पीछा छूटा नहीं कि दूसरा आ घेरता है। ढेरों औषधियाँ खर्च होती हैं, बेचारे चिकित्सक का समय लगता है पर बीमारी की समस्या ज्यों की त्यों उलझी रहती है।

विचारशीलता कहती है कि लोगों को आदतें बदलने की प्रेरणा दिये बिना न काम चलेगा। नशेबाजी छूटेगी नहीं, असंयम घटेगा नहीं, अनियमितता घटेगी नहीं तो रोग भी कब छूटने वाला है। जलते तवे पर पानी के थोड़े से छींटे क्या प्रयोजन पूरा करेंगे। दवाओं से नहीं प्रवृत्ति बदलने से रोग छूटेंगे, लोगों को इसी का शिक्षण देना चाहिये।

कोई मित्र या सम्बन्धी कर्ज या गरीबी में फँसकर अपने पास आर्थिक सहायता को आता है। अपने को कठिनाई में डालकर उसकी वह आवश्यकता पूरी कर दी गई। सोचा था बेचारा बड़ी मुसीबत से निकल जायेगा। पर ऐसा हो नहीं सका। पिछला कर्ज तो उसने चुका दिया, रुका हुआ कारोबार भी चालू कर लिया, पर फिजूलखर्ची की आदत नहीं छोड़ी। अपनी हैसियत से अधिक, उचित-अनुचित कामों में फिर खर्च किया, लापरवाही बरती। थोड़े ही दिन बाद वही अर्थ संकट फिर सामने आ गया। अब फिर वही सम्बन्धी पहले की तरह दुबारा सहायता की याचना करता है। अब कहाँ से दिया जाय ? यदि देने की स्थिति भी हो तो बार-बार कब तक देते रहा जायेगा। ऐसे ही दस-बीस मित्रों को माँगें उठने लगीं तो अपनी रोटी भी कठिन हो जायेगी।

विवेक कहता है—आर्थिक तंगी की समस्या कठोर परिश्रम करने, मितव्ययिता बरतने और लापरवाही जरा भी न करने की आदत डालने से ही सुलझेगी। आर्थिक तंगी जिन कारणों से उत्पन्न हुई है, वे कारण यदि बने रहे तो कुबेर भी उनकी जरूरत पूरी न कर सकेगा। घाटा और तंगी बनी ही रहेगी। सामयिक सहायता का थोड़ा महत्त्व हो सकता है पर ठोस हल तो आदतें सुधारना ही है। इसी के लिये इस मित्र-स्वजनों को क्यों न समझाया, दबाया जाय ?

पुण्य-फल के अभाव में मनुष्य नाना प्रकार की आधि-व्याधियों से घिरे हुये पड़े हैं। एक तपस्वी सोचता है मैं कठोर तप करके आत्म-बल उपार्जित करूँ और उसका लाभ आशीर्वाद रूप से इन दीन-दुखियों को प्रदान करूँ। वह ऐसा ही करता भी है। निरन्तर कठोर तप में लगता है और कुछ पुण्य पूँजी जमा करता है। जो दुखिया सामने आता है उनके लिये अपनी कमाई दान करता है। कुछ का भला होता है। तप थोड़ा, आशीर्वाद माँगने वाले बहुत, कुछ ही दिन में यह सारी पूँजी समाप्त हो जाती है। पहले जिनका दुख दूर किया था वे अब और नये कष्टों की शिकायत लेकर फिर सामने आते हैं—उनसे प्रशंसा सुनकर और भी नये दुखियों की भीड़ जमा होती है। अब क्या किया जाय ? तप की पूँजी तो समाप्त हो चुकी। कष्ट तो पुण्य की पूँजी से दूर होते हैं। तप समाप्त हो गया, उसे बाँटना सम्भव न रहा तो आशीर्वाद कैसे फलित हो ? दुनिया की भीड़ जमा, तपस्वी खाली हाथ। जीवन भर की कठोर कमाई समाप्त हो गई पर एक भी दुखिया का कष्ट दूर न हुआ।

तपस्वी सोचता है यह तरीका गलत है। इन दुखियों को स्वयं ही तप करने और पुण्य उपार्जित करने की प्रेरणा देनी चाहिये ताकि अपने बलबूते पर ही यह लोग सुखी बन सकें। इनकी सच्ची सहायता प्रवृत्तियों के बदलने से ही हो सकती है। अपने ही पुण्य से कोई व्यक्ति सुखी और समुन्नत हो सकता है, अपनी मनोभूमि बदलने से ही तो दुःख-दारिद्र्य की स्थिति पलटती है।

एक व्यक्ति सोचता है, गरीबी ही सब दुःखों की जननी है। इसलिये लोगों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये उद्योग, उत्पादन, बाँध, बिजली, मिल, कारखाने आदि खोले जाने चाहिये, इसके लिये वह कई कम्पनियाँ बनाता है। सरकार के द्वारा ऐसी योजनायें चलवाता है। कितने ही लोग काम से लगते भी हैं। तनख्वाहें भी अच्छी मिलती हैं। अनुमान था कि अब यह कर्मचारी लोग अच्छी आजीविका पाकर सुखी रहेंगे, पर बारीकी से देखने पर कुछ दूसरी ही बात दीखती है। जुआ, शराब, सिनेमा, फिजूलखर्ची, व्यसन, बदमाशी जैसे कुसंस्कार उस पैसे को देखते ही भड़क उठते हैं। अधिकांश कमाई बुराइयों में खर्च करके वे तंगी और गरीबी में ही डूबे रहते हैं। वेतन बढ़ाने का आन्दोलन सफल होने पर बढ़ी आमदनी से जो सुख बढ़ने की सम्भावना थी वह भी सार्थक नहीं हुई। पैसा बढ़ा तो व्यसन भी बढ़े। वह लाभ नहीं ही मिला जो सोचा गया था।

इतने प्रयत्न करने के बाद देश में खुशहाली बढ़ाने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहने वाला सज्जन व्यक्ति इसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निष्कर्ष पर पहुँचता है कि आमदनी का लाभ तभी मिलेगा जब सद्गुण भी पनपें। दुर्गुणों के रहते बढ़ी हुई आमदनी चलनी में दूध दुहने की तरह कुछ भी लाभदायक न रहेगी। खुशहाली के लिये प्रवृत्तियाँ बदलने पर भी जोर देना आवश्यक है।

एक व्यक्ति सोचता है कि राजनीति में बड़ी शक्ति है। सरकारी प्रयत्नों के द्वारा—कानून के द्वारा—देश की कायापलट की जा सकती है। इसलिये चुनाव लड़ना चाहिये और सरकार में प्रवेश करना चाहिये। वह चुनाव में खड़ा होता है। पर वोटर तो जातिवाद के प्रलोभनों के चक्कर में फँसे पड़े हैं, उन्हें सिद्धान्तों और व्यक्तियों की अच्छाई-बुराई का, देश और समाज का ध्यान नहीं, वे तो अपने व्यक्तिगत सम्पर्क और स्वार्थ की बात सोचते हैं। अपने मिलने-जुलने वालों को किसी लाभ की आशा से वोट देते हैं। बेचारा ईमानदार देशभक्त हार जाता है। पैसा लुटाने वाला, तरह-तरह के हथकण्डे काम में लाने वाला दुश्चरित्र व्यक्ति जीत जाता है।

हारने के बाद वह सोचता है कि सरकार ने मनचाहे अच्छे काम कराना तब तक सम्भव नहीं जब तक कि वोटरों की प्रवृत्ति न बदले, अच्छे सदस्य ही अच्छी सरकार बनाते हैं और अच्छे सदस्यों का चुना जाना, अच्छे विचारों की जनता द्वारा ही सम्भव है। इसलिये पहला कार्य वोट देने वाली जनता को देशभक्ति, कर्त्तव्य पालन और वोट को राष्ट्रीय थाती मानने की शिक्षा देना है। जनता जितनी बदलेगी उतनी ही सरकार सुधरेगी। अच्छे दूध से ही तो अच्छा घी निकलेगा।

एक व्यक्ति सोचता है कि बड़ा अफसर या अधिकारी बनकर वह जनता का बड़ा हित साधन करेगा। इसके लिये वह उच्च शिक्षा प्राप्त करता है। घोर श्रम करके इस योग्य बनता है कि अधिकारी नियुक्त हो सके। सफलता मिलती है और वह पूरी ईमानदारी एवं लगन से जनहित का ध्यान रखते हुये व्यवस्था बनाता है। पर कुछ ही दिन में वह अपने को असफल और लाचार पाता है। निर्धारित सरकारी कार्य पद्धति की आड़ लेकर नीचे के कर्मचारी कामचोरी और रिश्वतखोरी की गुंजायश बनाये रहते हैं। बेईमान जनता और बेईमान अफसर की मिलीभगत से रिश्वत पकड़ी नहीं जाती। सताये हुये लोगों की शिकायत को बेकार बताने के लिये कर्मचारी अपने कानूनी दाँव-पेच पहले से ही ठीक रखते हैं। दण्ड देने की व्यवस्था बहुत ही जटिल होने के कारण वह अफसर अपने नीचे वालों का कुछ बिगाड़ भी नहीं सकता। सुधारवादी उत्साही अधिकारी हाथ मलकर रह जाता है।

इंजीनियर और ठेकेदार मिलकर निर्माण कार्यों में गड़बड़ी करें तो उनको कैसे पकड़ा जाय ? पुलिस और डाकू मिल-जुलकर षड़यन्त्र बना लें तो उनकी रोक-थाम कैसे हो ? रिश्वत लेने वालों और देने वालों के पारस्परिक स्वार्थ सधे रहें तो उन पर प्रतिबन्ध कैसे लगे ? व्यभिचारिणी और व्यभिचारी का परस्पर सहयोग रहने पर कानून क्या करे ? सरकारी टैक्सों की चोरी में अधिकारी और व्यापारी दोनों ही मिल जायें तो उनकी रोक कैसे हो ?

प्रकट पापों से गुप्त पापों को संख्या सैकड़ों गुनी अधिक होती है। जो पाप प्रकट भी हो जाते हैं, उनके लिये भी कानूनी पेचीदीगियों के कारण अपराधियों को दण्ड कहाँ मिलता है ? ऐसी दशा में यह आशा करना कि अधिकारी या मिनिस्टर बनकर कोई बड़ा काम किया जा सकेगा, निराधार और निरर्थक है। अच्छी-बुरी सरकारों में अन्तर तो अवश्य होता है पर समाज में फैले हुये अगणित अनाचारों को केवल सरकारी यन्त्र के आधार पर ही नहीं रोका जा सकता। इसलिये जनमानस में नैतिकता की, कर्त्तव्य भावना की, प्रवृत्तियों का जाग्रत रहना आवश्यक है। मनुष्य आत्मा की पुकार पर ही बुराइयों से रुक सकता है, पापों से बच सकता है अन्यथा सरकार के लिये विशेषतया आज जैसी प्रजातन्त्री सरकारों के लिये अपराधों को पूर्णरूपेण रोक सकना कठिन ही है।

स्थिति पर विचार करने से यह समझ में आता है कि कानून या प्रशासन के माध्यम से नहीं, धर्म और कर्त्तव्य की भावनायें जाग्रत करने से मनुष्य की दुष्प्रवृत्तियाँ नियन्त्रण में रह सकती हैं और तभी क्लेश, कलह, अभाव, अनाचार, उत्पन्न करने वाली अनेकों बुराइयों को हटाया जा सकता है।

गुण्डागर्दी मिटाने के लिये, अपराधियों को दण्ड दिलाने के लिये संघर्षात्मक जो प्रयोग किये जाते हैं, उनसे भी दुष्टता घटती नहीं बढ़ती है। चोर-ठग जेल में जाकर अन्य साथियों के सान्निध्य में अपनी कला में और भी अधिक पारंगत बनकर निकलते हैं। यदि उनका हृदय परिवर्तन न हुआ तो हर जेल जीवन के बाद अपराधी प्रवृत्ति के लोग और भी अधिक खतरनाक बनकर निकलते हैं। भावना बदलने से वाल्मीकि और अंगुलिमाल जैसे डाकू, आम्बपाली और गणिका जैसी शीलरहित, सूर और तुलसी जैसे कामुक बदल कर कुछ से कुछ हो सकते हैं। यह उद्देश्य दण्ड मात्र से पूरा नहीं होता। संसार से अपराधों को जड़ काटने के लिये जेल पर्याप्त नहीं, सुधारात्मक शिक्षण की उपयोगिता अधिक है।

एक भावुक व्यक्ति जो अपराधों की पैशाचिकता भरी घटनायें पढ़कर सिहर उठता है और उनका अन्त करने के लिये बड़ा त्याग करना चाहता है, उसके लिये एक ही मार्ग शेष रह जाता है कि लोगों की भावनायें बदले। बदला हुआ मनुष्य असुर से देवता में और हैवान से इन्सान में परिणत हो सकता है। दुष्ट की देह को मार डालने की अपेक्षा उसकी दुष्प्रवृत्ति को मार डालना अधिक महत्त्वपूर्ण है।

सुना है कि औषधियों द्वारा शरीर का कायाकल्प हो सकता है। पर ऐसे उदाहरण देखने में नहीं आये जिनमें जराजीर्ण मनुष्यों ने युवावस्था प्राप्त की है। किन्तु ऐसे असंख्य उदाहरण आये दिन सामने आते रहते हैं, जिनमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुष्ट-दुराचारियों का संत-सज्जन बनना प्रत्यक्ष दिखाई देता है। एक लोकसेवी व्यक्ति यह सोचता है तो उचित ही है कि "मैं मानसिक काया-कल्प करने का कार्यक्रम अपनाऊँ और अपना जीवन इसी कार्य में लगाऊँ।" दुर्बलों, दुखियों और पतितों को देखकर भावनाशील हृदयों में करुणा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। उनका यह सोचना उपयुक्त ही है कि अपने लिये सुख-समृद्धि जमा करने की अपेक्षा मैं दुर्बलों को सबल, दुखियों को सुखी, पतितों को समुन्नत बनाने में ही अपनी शक्तियाँ लगाकर जीवन को धन्य क्यों न बनाऊँ ? हर महापुरुष ने इसी ढंग से सोचा है और हर बुद्धिमान ने यही कार्यक्रम अपनाया है। जिन्होंने अपनी गतिविधियों को इस दिशा में मोड़ा है वे ही तो बुद्ध, ईसा, गाँधी, शंकराचार्य, दयानन्द, विवेकानन्द की तरह इतिहास के पृष्ठों पर अपनी अमर छाप छोड़ सके हैं।

दुखियों को सुखी बनाने का, दुर्बलों को सबल बनाने का एक ही मार्ग हो सकता है कि उनकी अंतःचेतना में प्रेरणा-पौरुष और उत्साह इतना भर दिया जाय कि वे अपनी प्रस्तुत शक्तियों को जाग्रत करके अपने पैरों खड़े हो सकें। बाहरी सहायता से सामयिक आवश्यकतायें पूरी हो सकती हैं, थोड़ी देर का सहारा लग सकता है। समस्याओं का वास्तविक हल तो मनुष्य को अपने प्रयत्न और पुरुषार्थ से, सुधार और परिवर्तन से ही सम्भव होता है। इसलिये इस भावना परिवर्तन के कार्य को ही सर्वश्रेष्ठ क्यों न माना जाय ? और तत्परतापूर्वक इसी एक कार्य में क्यों न लगा जाय ?

प्रत्येक दृष्टि से, प्रत्येक समस्या का हल खोजने का गम्भीर प्रयत्न करने पर सब का एक ही हल सूझ पड़ता है—'भावना परिवर्तन'। विश्व की-समाज की-समस्त उलझनें, समस्त विपत्तियाँ मानवीय दुर्बुद्धि के कारण उत्पन्न हुई हैं। उनका बाह्य कारण कुछ भी दिखाई दे, मूल में यही तथ्य छिपा हुआ होगा कि संकीर्णता और स्वार्थपरता की चिन्गारियाँ दावानल बनकर हाहाकारी उत्पातों का सृजन कर रही हैं। अग्निकाण्ड की उठती हुई लपटों को बुझाना ही उचित है। जिसे विश्वहित की चिन्ता है जो मानव-जीवन को परमार्थ में लगाने का ठोस आधार ढूँढ़ता है, उसके लिये एक ही मार्ग है कि—जनमानस में सद्प्रवृत्तियों के जागरण का कार्यक्रम बनाये और उसके लिये जितना भी सम्भव हो सके, उतना अपनी शक्तियों की श्रद्धांजलि समर्पित करे।

हमारी आध्यात्मिक क्रान्ति और प्रबुद्ध व्यक्ति

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद से ही भारतवर्ष में भी समाज-परिवर्तन की चर्चा तेजी से होने लगी है। बुद्धि-विनियोग से लेकर, शिक्षा-पद्धति, रहन-सहन, आचार-विचार, आज सभी अपभ्रंश दिखाई दे रहे हैं। कानूनी ढाँचा, आर्थिक स्तर, औद्योगिक उन्नति के सभी क्षेत्र विश्रृंखलित दिखाई दे रहे हैं, वैसी ही हमारी नैतिक प्रवृत्तियों में भी निरन्तर ह्रास हो रहा है। जहाँ व्यक्तिगत चरित्र दूषित हुये हैं वहाँ राष्ट्रीय आचरण भी पिछले बीस वर्षों में गिरा ही है।

समाज की सभ्य और सुसंस्कृत रचना प्रबुद्ध वर्ग के व्यक्तियों के हाथों ही सम्पन्न होती है, होनी है, पिछले लेख में यह स्पष्ट हो चुका है। ऐसी जन-क्रान्तियाँ भारतवर्ष में पहले भी हो चुकी हैं। यह कोई अनहोनी बात नहीं होने जा रही। बुद्ध, राम, कृष्ण, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द के काल में ऐसी क्रान्तियाँ हुई हैं और सामाजिक स्वरूप परिवर्द्धित हुआ। इतिहास उसकी पुनरावृत्ति करना चाहता है।

शिक्षित और विचारशील व्यक्तियों के संगठित प्रयत्नों के फलस्वरूप रूस परिसंघ, अमेरिका, क्यूबा, चीन, जापान में आर्थिक, औद्योगिक, वैज्ञानिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक क्रान्ति के मुख्य उद्देश्य पर काम करना सम्भव हो सका तो भारतवर्ष में भी वैसी क्रान्ति लाई जा सकती है। योजनाबद्ध क्रियाशीलता समाज के प्रबुद्ध व्यक्तियों के हाथ सौंप कर, उन्हें उद्देश्यपूर्णता का बल देकर समाज के रुग्ण रोग का उपचार किया जा सकता है, उसके लिये जनमानस बन भी रहा है।

स्वाधीनता संग्राम भी इन्हीं परिस्थितियों में लड़ा गया था। काँग्रेस आज देश की सर्वोच्च शक्तिशाली पार्टी के रूप में देश भर में कार्य कर रही है, वह भी थोड़े से प्रबुद्ध व्यक्तियों के संगठन पर इतना विशाल आकार ग्रहण कर सकी। इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि इटावा के कलक्टर सर ह्यूम ने जब काँग्रेस की नींव रखी थी तो उसके सदस्यों की जनसंख्या उँगलियों पर गिने जाने से भी कम थी, पर वह सभी विचारशील व्यक्ति थे, विचारों की आग फैलाकर ही इन थोड़े से लोगों ने एक विशाल संगठन पैदा कर लिया और राष्ट्र के राजनैतिक ढाँचे को बदल डाला।

अब जो परिस्थितियाँ अवशेष हैं उनमें आर्थिक और औद्योगिक युद्ध राजनैतिक स्तर पर लड़ा जा रहा है, प्रबुद्ध व्यक्तियों का एक बड़ा वर्ग उधर खिंच गया है। थोड़े से ऐसे कर्मठ व्यक्ति चाहिये जो राजनैतिक दिशा से मुख मोड़ कर अपनी नेतृत्व शक्ति का उपयोग जौज गार्डनर, बौव वुड चार्ली, हौर, कौन्सतान्तित-त्सियोल्कोव्स्को, इवान पावलोव, सनयात सेन और कागाबा की तरह नैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक क्रान्तियों में कर सकें। प्रभावशील जननेतृत्व और प्रबुद्ध व्यक्तियों के संगठित प्रयास राष्ट्र के वर्तमान ढाँचे को बदल डालने के लिये काफी हैं।

किन्तु इस घोषणा से पूर्व हमें भारत की विशिष्ट परम्पराओं, संस्कारों एवं मनोवृत्तियों, संस्कारों एवं मनोवृत्तियों का विस्तृत अध्ययन करना आवश्यक है। काँग्रेस ने राष्ट्र की उन्नति के लिये महत्त्वपूर्ण प्रयास किये हैं किन्तु उसकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिष्ठा गिर रही है, इसका एक कारण है। वह यह है कि—उसने देशवासियों के संस्कार और उनकी मनोवृत्ति को नहीं समझा या समझने की चेष्टा नहीं की। जो पार्टियाँ विजयी हो रही हैं, उनमें जिनका भविष्य उज्ज्वल है वे ऐसी ही होंगी जिन्होंने यहाँ की आत्मा का गहन अध्ययन किया होगा।

धर्म और अध्यात्म भारत की आत्मा है, प्राण है, सर्वस्व है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—'मैं तुम्हारी बात जानता हूँ, नास्तिकों जैसी बात करके भी तुम धर्म को नहीं ठुकरा सकते क्योंकि वह तुम्हारे संस्कारों में बस गया है।'

राजनीति हो अथवा शिक्षा-नीति हमारी मनोवृत्ति दार्शनिक है। हम धर्म और अध्यात्म को जीवन का पूर्ण उद्देश्य मानते हैं। अन्य किसी भी लक्ष्य के लिये उसे ठुकरा नहीं सकते। कोई भी सामाजिक क्रान्ति लाने के लिये इस मनोवृत्ति का ज्ञान होना परम आवश्यक है। राजनीतिक क्रान्ति भी महात्मा गाँधी के आध्यात्मिक मार्गदर्शन के साथ-साथ चल सकी थी। उसे हरगिज नहीं छोड़ा जा सकता है क्योंकि हमारी हर साँस धर्म है, हम धर्म खाते हैं, धर्म कमाते हैं, सोने, उठने, बैठने, बोलने, पढ़ने का सारा विकास क्रम धार्मिक मनोभूमि पर टिका है तो फिर उसे छोड़ा नहीं जा सकता। हमारा अस्तित्व ही धर्म है यों मानना चाहिये।

इसलिये भावी सामाजिक क्रान्ति में जिन लोगों को भाग लेना है, भारतवर्ष में उनकी विशिष्टता प्रबुद्ध होना ही काफी नहीं आध्यात्मिक होना भी आवश्यक है। उनका ज्ञान सामान्य स्थिति से आत्म-दर्शन, जीवन-कला, जीव विज्ञान और ब्रह्म-विद्या से जुड़ा हुआ हो तो समाज उनकी बात सुनने और मानने को तैयार होगा। प्रवर्त्तकों को इस विचारधारा के अनुरूप योजनायें और प्रशिक्षण देकर प्रबुद्ध व्यक्तियों को क्रान्तिकारी तैयार करने चाहिये। समाज के भावी निर्माण का कार्य केवल ऐसे ही व्यक्तियों द्वारा सम्भव होगा। भारतवर्ष की यह विशिष्टता उसके उज्ज्वल भविष्य के लिये बनी भी रहनी चाहिये। इसे भविष्यवाणी भी कह सकते हैं और देश पर परमात्मा की कृपा भी कह सकते हैं मूल बात एक ही है कि देह, मन और आत्माओं में बसे आध्यात्मिक संस्कारों को न तो राजनीति की ब्लीचिंग साफ कर सकती है और न अभारतीय शिक्षा और समाजवाद।

आज बड़े-बड़े कार्यकर्त्ताओं के सामने वह असमंजस उपस्थित है। तब यह सोचना आवश्यक है कि समाज के अभिनव निर्माण का स्वरूप किस तरह निर्मित किया जाय, उसे कौन-सा विनियोग प्रदान किया जाय।

अन्य राष्ट्रों के सामाजिक परिवर्तनों का संक्षिप्त इतिहास भी यों प्रस्तुत है और भारतीय परिस्थितियों का विश्लेषण भी। उसे देखकर यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि हम परिवर्तनों को ला सकते हैं यदि सूत्र संचालन के लिये थोड़े से प्रबुद्ध व्यक्ति उठ खड़े हों, जो आध्यात्मिक ज्ञान के साथ आध्यात्मिक उद्देश्य भी लिये हों। उनमें इतना गौरव रहना चाहिये कि वे देश के भावी निर्माण के लिये उच्चतम त्याग, अधिकतम परिश्रम, लगन और कर्मठता तथा आदर्श और सिद्धान्तों की शिला पर उद्देश्य प्राप्ति तक निष्ठापूर्वक सुदृढ़ बने रह सकते हैं।

सारा देश आज अपने आपको बदल डालने के लिये अकुला रहा है। वातावरण बदल रहा है, परिस्थितियाँ बदल रही हैं, दृष्टिकोण बदल रहे हैं। यह राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य का प्रतीक है पर यह भी नहीं भूलना चाहिये कि आदर्श दिशा और विश्वासों से विभ्रमित समाज रास्ते से कुरास्ते में भी चल पड़ सकता है। वर्तमान झुकाव है उसी ओर। उसे रोकने के लिये आध्यात्मिक क्रान्ति ही अब विकल्प रह गया है।

भारतीय संस्कृति के अध्यात्म स्तम्भों वाला दुर्ग लगभग ढह चुका है। आस्तिकता और कर्त्तव्य परायणता की नींव हिल चुकी है। नीति और सदाचरण की चौपाल फूट रही है। आदर्श और सिद्धान्तों के द्वार अस्त-व्यस्त हो चुके। स्वास्थ्य, मनोबल, सुदृढ़ गृहस्थ, जातीय संगठन का मसाला लगभग समाप्त-सा है। उस दुर्ग पर दखल देने के लिये बाह्य संस्कृतियाँ अवसर ढूँढ़ रही हैं। ऐसे समय प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति का यह कर्त्तव्य हो गया है कि वह देश की आध्यात्मिक क्रान्ति की भूमिका निभाने में हिस्सा ले। यह अन्तिम समय, अन्तिम चेतावनी है। अभी भी राष्ट्र सजग न हुआ हो भारतीय संस्कृति का सूर्य अस्त ही हुआ मानना चाहिये। उसके साथ-साथ हिन्दू जाति का अस्तित्व भी समाप्त हुआ समझना चाहिये।

धर्म शिक्षा का सर्वजनीन आधार—नैतिकता

जिस देश में अनेक धर्म प्रचलित हों और राज्य-व्यवस्था, धर्म-निरपेक्ष हो, वहाँ धार्मिक शिक्षा का स्वरूप नैतिक शिक्षा के रूप में उपयोगी व युगानुकूल हो सकता है। ऐसी नैतिक शिक्षा जो व्यक्ति और परिवार, समय एवं समाज को समुन्नत बना सके, ऊँचा उठा सके।

नैतिक शिक्षा देने का कार्य किसी एक व्यक्ति द्वारा सम्भव नहीं, यह पारस्परिक सहयोग से, पारिवारिक, सामाजिक वातावरण निर्माण से सरल और सम्भव है। इसके लिये अभिभावकों, नागरिकों एवं शिक्षकों का स्वयं का आचरण और व्यवहार अधिक शिक्षा और प्रेरणा देता है। सरकार आर्थिक भार उठाकर व्यवस्था बना तो सकती है, किन्तु व्यक्ति, परिवार और समाज पर इनके अनुकूल वातावरण विनिर्मित करने और अनुकरणीय आचरण प्रस्तुत करन का प्रथम उत्तरदायित्व आता है। इसीलिये आदिकाल में भगवान मनु ने व्यवस्था दी थी कि व्यक्ति के जीवन में नैतिक प्रभाव उत्पन्न करने वाली संस्था धर्म है। धर्म कितने ही प्रकार के होते हैं—वैयक्तिक धर्म, पारिवारिक धर्म, सामाजिक धर्म, राष्ट्र धर्म और युग धर्म। उनमें सन्निहित सिद्धान्तों के अनुकरण मात्र से नैतिक बने रहना सम्भव है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नीतिशास्त्रियों के अनुसार मनुष्य के हृदय में सत्, असत् दोनों प्रकार के संस्कार होते हैं। समय और वातावरण की अनुकूलता से वे उद्दीप्त होते हैं। इस प्रकार यदि आरम्भ से ही बालकों के विकास के लिये अनुकूल वातावरण बनाया जाय, तो उन्हें सुसंस्कारी बनाया जा सकता है। यही संस्कार उनके व्यावहारिक जीवन में उपयोगी बनते हैं। इसी स्तर की सार्वभौम धर्म की संज्ञा दी जानी चाहिये।

संसार न केवल वस्तुओं से बना है, वरन् विचारों, भावनाओं, आस्थाओं, कलाओं और व्यवस्थाओं का भी यहाँ महत्त्वपूर्ण स्थान है। मानव होने का अर्थ न्याय करना, अच्छाई ग्रहण करना, विवेकशील बनना है। संगठित रूप से रहने, परस्पर सहयोग-सहकार करने और उत्कर्ष की दिशा में साथ-साथ बढ़ने हेतु ही धार्मिक मूल्यों, नैतिक मर्यादाओं का संस्थापन सत्यता के आधार पर हुआ था। मनुष्य की अन्तर्दृष्टि का विकास उन्हीं मूल्यों को अपनाने से होता है, जिनकी स्थापना प्राचीन ऋषि-मनीषियों-सन्तों ने सत्य दर्शन के आधार पर की थी। तब धर्म को मात्र साधारण धारणा न समझकर सत्य की खोज करना माना जाता था। उसके प्रकटीकरण की शिक्षा-दीक्षा भी तदनुरूप ही मिलती थी। धर्म का अर्थ धार्मिक जीवन के सार्वभौमिक सिद्धान्तों को समझना और तदनुरूप आचरण और व्यवहार करने के रूप में था।

जनसाधारण में प्रचलित सम्प्रदायों को ही धर्मों के रूप में मान्यता मिली है। जो जिस संप्रदाय का अनुयायी है, वह उसी सिद्धान्तों तथा प्रतिपादनों के प्रति कट्टर बन कर रहता है। ऐसी दशा में स्वाभाविक है कि वह अन्य संप्रदायों के प्रतिपादन झूठे ठहराये और उन कथनों के प्रति विरोध भाव रखे। हो भी यही रहा है। धर्म के नाम पर आज आये दिन झगड़े होते हैं। अन्य धर्मावलम्बियों को अपने धर्म में दीक्षित करने के लिये प्रलोभन और दबाव का बढ़चढ़ कर प्रयोग किया जाता है। प्रतिशोध की प्रतिक्रिया चलती है और उस व्यक्तित्व-गठन के महत्त्वपूर्ण पक्ष के विपरीत माहौल बनता है जो कि धर्म का वास्तविक और मूल उद्देश्य था।

वस्तुतः मनुष्य का एक ही धर्म है—मानवता। इस आधार पर उसके आदेश एवं प्रतिपादन भी समूची मनुष्य जाति के लिये एक ही होने चाहिये, पर देखा इसके विपरीत जाता है। जहाँ सम्प्रदायों के बीच कुछ नैतिक नियम समान हैं, वहाँ दार्शनिक एवं परम्परागत मान्यताओं में असाधारण अन्तर भी है। ऐसी दशा में धर्म-धारणा या धर्म शिक्षा का ऐसा स्वरूप नहीं बन पाता, जो सार्वभौम या सर्वमान्य हो। विचारशीलता हमें इसी निष्कर्ष पर पहुँचाती है कि नैतिकता एवं सामाजिकता की संयुक्त एवं विवेकसंगत मान्यताओं को ही आज की परिस्थिति में धर्म कहा और उसी की शिक्षा पर जोर दिया जाय। इसी में मानवी हित साधन है। यही सच्चा धर्म है और समय की महती माँग भी। समाज का, देश का हित उसी में सन्निहित है।

सामाजिक सुधार और महापुरुष

महापुरुषों के वाक्य जाति की चिरस्थायी सम्पत्ति हैं। उनके चरित्र जाति के युवकों के सामने उचित मार्ग पर चलने के लिये उच्च आदर्श पेश करते हैं। उनके विचारों को जीवित रखना जाति का परम कर्त्तव्य है।

संसार में दो प्रकार के महापुरुष होते हैं। एक वे, जो किसी विचार की धुन में चल पड़ते हैं और उसके प्रचार में मस्त होकर सारे संसार को भूल जाते हैं। जान बूझकर अपने जीवन को संकीर्ण और अपूर्ण बना लेते हैं। उच्च आदर्श के अनुसार उनका जीवन प्रशंसा के योग्य नहीं होता, क्योंकि वे अपनी शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्तियों को पूर्ण रूप से बढ़ने नहीं देते। वे अपनी मानसिक उन्नति को तुच्छ समझते हैं। शरीर की ओर से तो बिल्कुल उदासीन हो जाते हैं। सभा और समाज के नियम, सभ्यतापूर्वक बात-चीत करने के ढंग, सांसारिक व्यवहार का अनुभव आदि बातें उनके लिये कोई आदरणीय वस्तु नहीं हैं। नंगधडंग, पागल, उजड्ड तथा असभ्य बनकर संसार से अलग रहकर लोगों के पथ-प्रदर्शक बनते हैं। सदा उन्हें एक ही विचार की लौ लगी रहती है, जिसे वे हर समय हर मनुष्य तक पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं। जीवन के दूसरे अंगों के विषय में पूछो तो उन्हें तनिक भी उनका पता नहीं। वे अपनी सम्पूर्ण शक्तियाँ जाति को एक ही मार्ग दिखलाने में खर्च कर देते हैं। जाति बड़ी बन जाती हैं परन्तु वे स्वयं मनुष्य नहीं रहते, कुछ और ही हो जाते हैं। कोई उन्हें पागल कहता है और कोई साधू। आधा संसार उन पर हँसता है और आधा उनकी पदरज को पवित्र समझकर सिर पर चढ़ाता है।

यह तो उन महापुरुषों का हाल है जो अपना सारा जीवन किसी एक सच्चाई के प्रचार में बिता देते हैं। वे उस ताड़ के वृक्ष की तरह होते हैं जो सीधा जाता है। न उसमें छाया होती है और न फूल। यह केवल आकाश से बातें करता है। उसकी चोटी को देखकर मनुष्य मूर्छित हो गिर पड़ता है। इस प्रकार के महापुरुष सदैव संसार से अलग, नैतिक धुन में लगे रहते हैं। उनसे मिलकर साधारण मनुष्य शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, परन्तु लाभ नहीं उठा सकते। उनको सभा, समाज, उत्सव, विवाह, मेला, त्यौहार इत्यादि का शौक नहीं होता। वे सबके कृपालु और सहायक बन सकते हैं परन्तु किसी के मित्र या लँगोटिये यार नहीं। वे दस आदमियों में बैठकर बातें भी नहीं कर सकते क्योंकि जहाँ जरा किसी बात ने उनके विचारों को एक निश्चित मार्ग से हटाया और उनका मन विचलित हुआ।

दूसरे प्रकार के महापुरुष ताड़ के वृक्ष के अनुसार नहीं, वरन् बरगद के वृक्ष के सदृश होते हैं, जिसकी शाखाओं में पक्षी बसेरा करते और जिसकी छाया से पथिक सुख उठाते हैं। जिसकी ओर देखकर दृष्टि आकाश

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक नहीं पहुँचती वरन् पत्तों ही में रह जाती है। सूरज की चमक से चौंधियाई हुई आँखों को हरियाली से शीतलता प्राप्त होती है। ऐसे महापुरुष संसार में रहकर और लोगों के सुख और दुःख, आनन्द और शोक में शामिल होकर घरबार के कर्त्तव्यों को पूरा करते हुये संसार के सामने व्यावहारिक धर्म का नमूना रखते हैं। वे अपने प्राकृतिक भावों को नहीं मारते, वे प्रेम के रक्त को नहीं बहाते फिरते। वे मानुषिक विशेषताओं और गुणों को नमस्कार करके विचार की मूर्ति बनने की कोशिश नहीं करते। परन्तु दूसरे भाइयों की तरह जीवन-मार्ग में प्रवेश करके इस प्रकार रहते हैं जैसे पानी में कमल। काम वैसे ही करते हैं, जैसे उनके पड़ौसी, परन्तु उद्देश्य का फर्क होता है। स्वार्थपरता नहीं वरन् परोपकार और कर्त्तव्य-परायणता उनके जीवन का लक्ष्य होता है।

महापुरुषों के जीवन का लोगों के मन पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है उन्हीं के जीवन को आदर्श मानकर लोग दूसरों के क्लेश और दुःखों को मिटाने और अपनी जिन्दगी के सुधार करने का प्रयत्न करते हैं।

हर महापुरुष के मन में एक बड़ा विचार होता है, जिस को वह व्यावहारिक रूप से संसार के सामने लाने का प्रयत्न करता रहता है। वही उसका धर्म होता है। वही उसके जीवन के चरित्र का प्राण होता है। वही उसके जीवन के चक्र का केन्द्र होता है। वही उसके कामों के मोतियों का माला की लड़ी हो जाती है। उससे बहुत से प्रश्नों का उत्तर मिलता है। उससे उस मनुष्य के कामों का भेद मालूम होता है। जिस प्रकार एक बड़े कारखाने में लोग सारी कलों को देखते हैं परन्तु इञ्जन, जिसके बल से सारा काम चलता है, नहीं देखते। उसी प्रकार जब तक हम किसी महापुरुष के मन तक पहुँचकर उसके बड़े विचार को न समझें तब तक हम उसके जीवन से ठीक शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह महापुरुष प्रत्येक समय और प्रत्येक काम में भाग लेने के पहिले इस विचार को प्रत्येक मनुष्य के सामने प्रकट करता रहे। कोई भी महापुरुष ओछे आदमियों की तरह सदैव अपने मन की बातें दूसरों के सन्मुख नहीं कहता रहता। अपनी तबियत के सम्पूर्ण अंगों को प्रत्येक भले-बुरे मनुष्य को नहीं दिखाता रहता। वह अपने दुःखी मन के भावों को हर समय मित्र और शत्रु के सामने नहीं खोलता रहता, ताकि असावधान मित्र उस पर ठट्ठे का नमक छिड़कें और सावधान शत्रु उसे और घायल करें। जो मनुष्य गम्भीर और बुद्धिमान होते हैं वे नीच और अदूरदर्शी मनुष्यों की भाँति अपने विश्वासों को पल-पल में वर्णन नहीं करते, परन्तु उन्हें व्यवहार में लाकर दूसरों को दिखा देते हैं कि तुम भी ऐसा करो।

महापुरुषों का जीवन हम लोगों के लिये उन्नति का मार्ग दिखलाने वाला होता है परन्तु वह हमारी बाढ़ रोकने वाला घेरा, जिसके पार जाना पाप कहा जाता है नहीं बन सकता। कोई महापुरुष नहीं चाहता कि उसके वाक्य और कार्य जातीय जीवन के लिये शृंखला बन जायें, जो युवा पुरुषों को आगे पैर रखने से रोकें। हम अपने महापुरुषों को अपना सहायक नहीं, बल्कि शत्रु बना देंगे, यदि हम सपूत होने के बदले कपूत होने ही को आज्ञापालन का लक्षण समझेंगे। जाति की उन्नति हर समय होती रहेगी। कौन है जो उसको रोक सके ? कौन है जो अपने कामों को जातीय प्रवाह की धार रोकने के लिये बाँध बनाना चाहता है ? कौन है जो स्वयम् इस बात को न माने कि उसने भी समय के साथ नये विचार प्राप्त किये हैं ? यदि कोई मनुष्य ऐसा है जो पत्थर के खम्भे की तरह एक ही स्थान पर खड़ा रहा हो और जातीय झुंड दूर निकल गया हो तो वह महापुरुष नहीं, वह कुम्भकरण है। वह 'दकियानूसी' समय का एक नमूना है। अजायबघर में रखे जाने के योग्य है। जातीय समाज में आने के योग्य नहीं।

मंजिल अधूरी न रह जाय

आशा यह थी कि राजनैतिक स्वतन्त्रता मिलने के बाद राष्ट्र-निर्माण के अनेक मोर्चों पर दस गुनी शक्ति से कार्य आरम्भ होगा और समान स्वाधीनता के अनेक पहलू, जो उज्ज्वल बनाये जाने शेष हैं, वे अधिक उत्साह और अधिक सुविधापूर्वक सँभाले जा सकेंगे। स्वराज्य का महत्त्व इसलिये होता है कि उसके उपरान्त प्रजा को अपने भाग्य को बनाने-बिगाड़ने की स्वाधीनता मिल जाती है। जिन लोगों ने स्वाधीनता संग्राम का यज्ञ रचा था, उनकी कल्पना यही थी कि—"भारतीय समाज सभी दिशाओं में गई-गुजरी स्थिति में पड़ा है, पर स्वराज्य के बाद उन सब को ठीक करना सरल हो जायेगा। जितना त्याग इस मोर्चे पर करना पड़ रहा है, इतना उन मोर्चों पर न करना पड़ेगा, इसलिये अब की अपेक्षा राष्ट्र निर्माण के उन हल्के-फुल्के कार्यों को करने के लिये अब की अपेक्षा अनेक गुने लोकसेवी मिल जायेंगे। प्रथम मोर्चे पर सफलता मिलने के उपरान्त लोगों का उत्साह भी बहुत बढ़ेगा और वे अधिक तत्परतापूर्वक देश को समुन्नत बनाने में लग जायेंगे।"

आज परिस्थिति बिल्कुल ही उलटी हो रही है। देशभक्ति के लिये—पिछड़े हुये राष्ट्र को ऊँचा उठाने के लिये—अधिक से अधिक त्याग करने की जो होड़ परस्पर लगी हुई थी, वह स्वराज्य के बाद और भी अधिक तीव्र होनी चाहिये थी, पर खेदपूर्वक स्वीकार करना पड़ता है कि वह पूरी तरह समाप्त नहीं तो बुरी तरह शिथिल अवश्य हो गई है। यह उन बलिदानी शहीदों के प्रति विश्वासघात है—जो हमारे ऊपर क्रान्ति एक भारी अंश को पूरा करने का उत्तरदायित्व सौंपकर गये हैं। उन्हें यह पक्का विश्वास था कि हमारे बाद की पीढ़ी हम से भी अधिक देशभक्त एवं भावनाशील होगी। जो कार्य हम से शेष रहेगा, उसे वह सहज ही पूरा कर लेगी और समुन्नत भारत का सुन्दर चित्र कल्पना मात्र न रहकर अगले दिनों साकार होकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहेगा। पर आज जबकि मंजिल का बहुत बडा भाग पूरा करने के लिये बाकी पड़ा है, इस प्रकार की शिथिलता कितनी दुखदायक प्रतीत होती है।

विचार क्रान्ति का महान कार्य अभी तक लगभग बिल्कुल अधूरा पड़ा है। सामाजिक क्रान्ति होनी शेष है। यह दो क्रान्तियाँ जब तक पूर्ण न हो जावें तब तक राजनैतिक क्रान्ति का उद्देश्य पूरा न हो सकेगा। सुख-समृद्धि बढ़ाने के लिये जितनी आर्थिक योजनायें बन रही हैं, उनका कुछ लाभ तभी मिल सकता है जब हम उस उपार्जित अर्थ का सदुपयोग करना जानें। एक ओर आर्थिक लाभ बढ़े, दूसरी ओर दुर्व्यसनों में अपव्यय की मात्रा बढ़ जाय, सामाजिक कुरीतियाँ विद्रूप धारण कर लें तो उस थोड़ी-सी बढ़ी हुई आय से भला कितना किसका कुछ भला हो सकेगा ?

स्वर्गीय शहीद जो जिम्मेदारियाँ छोड़ गये हैं, उनको पूरा करने के लिये अब किसी को जेल जाने, फाँसी खाने, घर छोड़ने या अपनी अर्थ-व्यवस्था बर्बाद करने की आवश्यकता नहीं है। केवल इतना करना है कि भावनायें प्रबुद्ध रखें, अपने व्यक्तिगत कार्यों में, व्यावसायिक, पारिवारिक कार्यों में, एक और कार्यक्रम लोक-कल्याण के लिये कुछ समय निरन्तर लगाते रहने का व्रत ग्रहण कर लें। जैसे दैनिक जीवन के अन्य कार्यों और उत्तरदायित्वों का निरन्तर ध्यान रखा जाता है, इसी प्रकार समाज के नवनिर्माण के लिये भी प्रयत्नशील रहा जाय। शरीर और मन की शक्तियों का कुछ अंश इस दिशा में भी हम लोग लगाये रहें तो हम इतना बड़ा कार्य कर सकते हैं कि बौद्धिक और सामाजिक अरमान लेकर विदा होने वाले, जीवित और स्वर्गीय स्वतन्त्रता सैनिकों की आत्मायें जहाँ कहीं भी हों, हमारे सत्प्रयत्नों को देखकर सन्तोष लाभ कर सकें।

सामाजिक सुव्यवस्था का एकमात्र उपाय

एक पेड़ पर सैंकड़ों, एक उद्यान में ढेरों पक्षी हिल-मिल कर रहते हैं। साथ-साथ उड़ते और वापिस लौटते हैं। कभी उनके बीच विग्रह खड़ा होते नहीं देखा गया। हिरनों, हाथियों, वन गायों के झुण्ड प्रेमपूर्वक विचरण करते हैं, चीटियाँ और मधुमक्खियाँ सद्भावना-सहकारिता और मिल जुलकर जीवनयापन करने की शालीनता का परिचय देती हैं फिर मनुष्य के ऊपर ही क्या आफत उतरी जो परस्पर बेतरह लड़ते देखा जाता है। लड़ना मारकाट को ही नहीं कहते। दूसरों का शोषण करके अपना उल्लू सीधा करने की दुष्प्रवृत्ति भी परोक्ष मारकाट की तरह ही है। आवश्यक नहीं किसी का सिर ही फोड़ा जाय, कुमार्ग पर भटकाने की दुरभिसन्धि भी किसी का जीवन और अधिक विपन्न-विकृत कर सकती है।

पूर्वजों की तुलना में अब असीम सुविधा साधन बढ़ें हैं। आवश्यकताओं को पूरा कर सकने जितनी सामिग्री की कोई कमी नहीं। जब पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों को यह धरती माता निर्वाह साधन-प्रदान करती है तो कोई कारण नहीं है तीन-तीन फुट लम्बी दो भुजाओं वाला बुद्धिमान मनुष्य छह इंच का पेट न भर सके। फिर क्या कारण है कि भूखे भेड़ियों की तरह एक दूसरे को चीर डालने की घात लगाई जाती है। जिसकी लाठी उसकी भैंस का, बड़ा पेड़ छोटे को न पनपने देने का—बड़ी मछली द्वारा छोटी को निगल लिये जाने का उदाहरण हिंस्र दुष्टों में पाया जाता है। मनुष्य उस श्रेणी का तो नहीं है। उससे मधुमक्खियों जैसी सद्भावना की आशा तो की ही जा सकती है।

मानवी गरिमा की मौलिक विशिष्टता है—सहकारिता, सद्भावना, उदारता और नीतिमत्ता। इनका परित्याग करने पर वह जो कुछ बनता है। उसका उल्लेख नर पशु-नर पिशाच जैसे शब्दों में ही किया जा सकता है। संकीर्ण स्वार्थपरता से प्रेरित आक्रामक प्रवृत्ति अपनाकर मनुष्य प्रायः इसी स्तर का बनता चला जा रहा है।

निर्वाह साधन संसार में इतने कम नहीं हैं। जिनके अभाव में एक दूसरे पर आक्रमण करने या शोषण की दुरभिसंधि रचने की आवश्यकता पड़े। मनुष्य की नैसर्गिक आवश्यकतायें अन्य प्राणियों से कम हैं। उसका पेट मुठ्ठी भर अनाज से भर जाता है। घोड़े, गधे, भैंसे, हाथी जितने बड़े पेट किसके हैं। फिर मनुष्य की काय संरचना और कौशल भरी बुद्धिमत्ता की भी तो विशेषता है, वह निर्वाह की सामग्री बिना कठिनाई के कमा सकता है। सघन वन प्रदेशों के निवासी उसी भूमि को खोदते-कुरेदते और बिना कोई अभाव अनुभव किये बिना लड़े-झगड़े जिन्दगी काटते रहते हैं। फिर सभ्य समुदाय पर ही क्या बीती जिसके कारण उसे अपने और दूसरों के लिये विनाश विग्रह रचे बिना काम नहीं चलता, चैन नहीं पड़ता, समय नहीं कटता।

नजर दौड़ा कर देखने पर सर्वत्र मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण-उत्पीड़न, पतन-विनाश करने वाली दुरभिसन्धियाँ रचने में ही संलग्न देखा जाता है। नशे के उत्पादन और प्रचलन में न जाने कितने लोग निरत हैं। आयुधों के निर्माण का उद्देश्य किन्हीं मानव शरीरों को क्षत-विक्षत कर डालना ही उद्देश्य है। कला और साहित्य के नाम पर ऐसे सरंजाम जुटाये जाते हैं जिनसे भला-चंगा आदमी अचिन्त्य चिन्तन की फिसलन और विनाश के गर्त में जा गिरे। अर्थ क्षेत्र में मिलावट, कम नाप-तौल, रिश्वत एवं तिल को ताड़ बनाने की प्रवृत्ति ने अनाचार को एक सर्वमान्य प्रचलन बना दिया है। कुरीतियों की भरमार पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि वे मात्र अन्धविश्वास ही नहीं हैं। उनके पीछे एक दूसरे के शोषण की दुष्प्रवृत्ति भी पूरी तरह उजागर होती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खर्चीली शादियाँ हमें दरिद्र और बेईमान बनाती हैं इस तथ्य की यथार्थता अनुभव करते हुये भी लोग डरते छोड़ते क्यों नहीं, छाती से क्यों लगाये फिरते हैं। इसके पीछे कोई विवशता नहीं है। शोषण और अहंकार का प्रदर्शन ही इन प्रचलनों के पीछे काम करता है। एक-दूसरे की जेब काटता है—दूसरा तीसरे की, तीसरा चौथे की यही कुचक्र खर्चीली और मोलभाव वाली शादियों के पीछे काम करता देखा जाता है। अनैतिकता की मान्यता ही चित्र-विचित्र सामाजिक कुप्रचलनों में दृष्टिगोचर होती है। मृतक भोज के समर्थक धर्मप्रेमी कम पर अपने चटोरेपन और दूसरे की बर्बादी में रस लेने वाले अधिक होते हैं। लड़की लड़कों में भेदभाव करने के पीछे कमाऊ और बिना कमाऊ की व्यवसाय बुद्धि ही काम करती है।

दुर्बल देखकर मनुष्य ने पशुओं को ही अपने शिकंजे में नहीं कसा है वरन् पिछड़ेपन की स्थिति का लाभ उठा कर स्त्रियों और अछूतों के साथ भी उसी नीति का अनुसरण किया है। पशुबलि के पीछे श्रद्धा कहाँ ? निष्ठुरता और नृशंसता ही नग्न नृत्य करती है।

समर्थों का संग्रह और अपव्यय ऐसा प्रचलन है, जिसने विषमता के विष बीज बोये हैं। चातुर्य और कौशल को यदि अनीति-उपार्जन में न लगाया गया होता तो उन विभूतियों के आधार पर असंख्यों का असीम हित साधन हो सकता था। आयुधों और सैन्य दलों पर जो खर्च किया जाता है, उसे यदि सिंचाई, शिक्षा जैसे साधनों में लगा दिया गया होता तो उस सम्पदा और कुशलता ने इस संसार का नक्शा ही बदल दिया होता।

नये बच्चे पैदा करने के आतुर व्यक्ति अभावग्रस्त, अनिश्चित बालकों का पालन करके वात्सल्य भावना का हजार गुना अधिक परिपोषण कर सकते हैं। आभूषणों और विलास साधनों में खर्च होने वाली राशि यदि शिक्षा चिकित्सा जैसे कार्मों में लग सके तो इस दुनिया का नजारा ही दूसरा हो। भव्य भवनों में सोने-चाँदी की ईंटें जड़ने की ललक यदि बदले और झोंपड़ियों का टपकना बन्द करने की ओर मुड़ सके तो फिर वह खाई इतनी भयावह न रहेगी, जिससे चतुरों को धन कुबेर और अविकसितों को धूलि कण बनकर रहना पड़ रहा है। यदि बड़े उद्योगों का गृह उद्योगों में केन्द्रीयकरण हो सके तो न बेकारों का नाम-निशान दीखे और न बड़े कारखानों के प्रदूषण से दम घुटने की नौबत आये।

सम्पदा, शिक्षा, कला, प्रतिभा की विभूतियाँ यदि प्रयोक्ताओं को इन्द्रासन दिलाने की अपेक्षा लोकमंगल की ओर मुड़ सकें तो यह संसार महामानवों और देवात्माओं से भरा पूरा दीखे और इसी धूलि-कंकड़ वाली जमीन पर स्वर्ग का आनन्द बिखरा-बिखरा फिरे। गिरने और निचोड़ने में लगने वाली समर्थता यदि गिरों को उठाने में लग पड़े तो फिर कहीं कोई दरिद्र, रोगी, अशिक्षित, अविकसित, पद-दलित एवं अनीति पीड़ित दिखाई न पड़े। मनुष्य में महत्वाकांक्षा भी है, हिम्मत और बहादुरी भी। यदि उनको शालीनता और समर्थता के संवर्धन की दिशा में उलट सकना सम्भव हो सके तो न कहीं विग्रह दिखाई पड़े, न अभाव, न अनाचार, न त्रास, न चीत्कार। सर्वत्र हँसता-हँसाता और खेलता-खिलाता सुख-शान्ति भरा बसन्त महकने लगे।

इस कुरूप दुनिया को सुन्दर बनाने के लिये करने को तो बहुत कुछ पड़ा है। किन्तु उन सब में प्राथमिकता प्रमुखता देने योग्य एक ही काम है कि लोकमानस में गहराई तक घुसी हुई अवांछनीयता की जड़ों पर लगातार फावड़ा चलाया जाय और उसे पूरी तरह उखाड़कर फेंक दिया जाय। जन-जन को मानवी गरिमा का स्वरूप समझाने, अभ्यास कराने और उसकी सुखद प्रतिक्रिया को प्रत्यक्ष करने के लिये ऐसा प्रयास किया जाय जैसा किसी समय भगवान परशुराम ने किया था। विचारक्रान्ति की आज सर्वोपरि आवश्यकता है। विचारक्रान्ति का तात्पर्य भ्रष्ट चिन्तन, दुष्ट आचरण का उन्मूलन स्नेह-सद्भाव से भरीपूरी उदार नीतिमत्ता का प्रचलन। यह ही है भव्य समाज के निर्माण का एकमात्र उपाय जिसके निमित्त विज्ञजनों को इन्हीं दिनों कटिबद्ध होना चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नया संसार बसायेंगे, नया इन्सान बनायेंगे

विश्व-मानव की अखण्ड अन्तरात्मा

विश्व मानव की आत्मा एक और अखण्ड है। समस्त जड़-चेतन उसी के अन्तर्गत अवस्थित हैं। इस आत्मा में अपनी एक दिव्य आभा, स्वर्गीय ज्योति जगमगाती है। अनेक मल आवरणों ने उसे ढक रखा है। यदि वह ज्योति इन आवरणों को चीरकर अपने शुद्ध स्वरूप में जगमगाने लगे तो उसका आलोक जहाँ भी पड़े वहीं आनन्द का परम आह्लादकारी दृश्य दिखाई दे सकता है। इस प्रकाश की सीमा में आने वाली हर वस्तु स्वर्गीय बन सकती है। ऐसी बहुमूल्य ज्योति हमारे अन्दर मौजूद है। स्वर्ग की सारी साज-सज्जा हमारे भीतर प्रस्तुत है, पर अविद्या के प्रतिरोधी तत्वों ने उसे भीतर ही अवरुद्ध कर रखा है। फलस्वरूप मानव प्राणी स्वयं नारकीय स्थिति में पड़ा हुआ है और वैसा ही नरकतुल्य वातावरण अपने चारों ओर बनाये बैठा है।

आत्मा स्वार्थ की संकुचित सीमा में अवरुद्ध होकर आज खण्डित हो रही है। हर व्यक्ति अपने को दूसरे से अलग खण्डित देखता है फलस्वरूप चारों ओर संघर्ष और कलह का वातावरण उत्पन्न होता है।

वस्तुतः हम सब एक हैं, अखण्ड हैं, सब एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, एक का सुख-दुःख दूसरे का सुख-दुःख है। उठना है तो सबको एक साथ उठना होगा, सुख ढूँढ़ना है तो सब को उसे बाँटना होगा। खण्डित व्यक्ति स्वार्थ की संकुचित सीमा में रहकर अपने शरीर के लिए कुछ भी–कितना ही इकट्ठी क्यों न कर ले, पर इससे उसे कोई चैन न मिलेगा। जब तक हम 'अपने को सबमें और सबको अपने में' न देखने लगेंगे तब तक मानव अपनी महानता से–मानवता से वंचित ही बना रहेगा।

एक-दूसरे के प्रति प्रेम, आत्मीयता, ममता, स्नेह, उदारता, क्षमा, करुणा की दृष्टि से देखें और जो कुछ अपने पास है उसका लाभ दूसरों को देने के लिए प्रस्तुत रहें तभी मनुष्य की मनुष्यता सार्थक हो सकती है। आध्यात्मिकता का संदेश है कि हम में से हर कोई अपने भीतर दृष्टि डाले, अन्तर्मुखी होकर देखे कि उसके भीतर कितनी प्रचुर मात्रा में दैवी सम्पत्ति भरी पड़ी है। यदि वह उसे जानले, देखले और उसका सदुपयोग करने लगे तो मरने के बाद नहीं–इसी जीवन में–आज ही स्वर्ग का आनन्द ले सकता है। यह कथा-कल्पना नहीं वरन् सुनिश्चित तथ्य है कि अपने आपको जान लेने पर मनुष्य सब कुछ जान सकता है। अपने आपको सुधार लेने पर संसार की हर बुराई सुधर सकती है। अपने को बना लेने पर बाहर के जगत में सब कुछ बन सकता है, अपने को विकसित कर लेने पर बाहर की सारी गिरावट उत्कृष्टता में परिणत हो सकती है। व्यक्ति महान बने, समाज महान बने तथा सारी वसुधा महानता से ओत-प्रोत हो, यह मिशन लेकर हमको उठना है। जब तक हम जीवित हैं तब तक इसी प्रयत्न में लगे रहेंगे।

दूसरे हम से भिन्न नहीं, हम दूसरों से भिन्न नहीं, इसी मान्यता में अध्यात्मवाद का सारा रहस्य सन्निहित है। दूसरों की पीड़ा जब पीड़ा लगने लगे, दूसरों को सुखी और समृद्ध देखकर जब अपने भीतर सन्तोष और हर्ष की लहर लहराये तब समझना चाहिए कि हम आध्यात्मिकता के वास्तविक स्वरूप को पहचानने और ग्रहण करने की स्थिति में पहुँच रहे हैं। जब तक व्यक्ति अपने को समाज से भिन्न समझता है, लोकहित से अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को अधिक महत्व देता है तब तक वह मानवीय आदर्शों से पतित ही माना जायेगा।

आत्मा अखण्ड है। हम सब एक ही नाव के यात्री, एक ही मंजिल के राही हैं, एक ही डाल पर रहने वाले पक्षी, एक ही बिल में रहने वाले चींटी-चींटे, परस्पर एक ही सूत्र में बँधे हुए हैं। सबका सुख-दुःख एक है। यदि संसार में पाप बढ़ेगा तो उसके बुरे प्रतिफलों से पुण्यात्माओं को भी कष्ट सहना पड़ेगा। पेड़ गिर पड़े तो उस पर रहने वाले सभी पक्षी आश्रयविहीन होंगे, बिल में पानी भर जावे तो उसमें रहने वाले सभी कीड़े संकट में पड़ेंगे। मानव जाति का भाग्य एक ही लिपि में लिखा गया है। यदि उत्थान होना है, सुख मिलना है तो वह सामूहिक ही हो सकता है। चोर लोग अमीर रहना चाहें और सब गरीबी भुगतें, वह स्थिति देर तक नहीं रह सकती। चाहे साम्यवाद हो चाहे अध्यात्मवाद, दोनों ही दृष्टिकोणों में यह गर्हित माना जायेगा और इसे बदलने का प्रयत्न किया जायेगा।

आत्मा एक व्यापक तत्व है यह अनन्त और अखण्ड है। पानी की हर लहर पर एक अलग सूरज चमकता दीखता है, पर वस्तुतः असंख्यों सूर्य कहाँ होते हैं ? एक ही सूर्य की आभा तो अगणित लहरों पर स्वतन्त्र प्रतिबिम्ब जैसी दीखती है। आत्मा भी एक है, उसकी अखण्ड-ज्योति एक है। हम लहरों पर चमकने वाले प्रतिबिम्बों की भाँति अलग भले ही दिखाई दें पर वस्तुतः हम सब एक हैं। एक ही ज्वाला की अगणित चिन्गारियाँ विभिन्न शरीरों में जलती दीखती हैं, एक ही बिजलीघर की प्रचण्ड धारा अनेक बल्बों में चमकती है, पर धारा का उद्गम एक है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस एकता को जितनी जल्दी हम समझ लें उतना ही उत्तम है। वेदान्त का अद्वैत सिद्धान्त ही सत्य है। द्वैत मिथ्या है। द्वैत को मिटाकर अद्वैत की प्राप्ति के लिए ही अध्यात्म-शास्त्र और साधना-विज्ञान का आविर्भाव हुआ है। जीव जब अपनी सत्ता को भुला करके ईश्वर में लीन हो जाता है तब समाधि का, मुक्ति का सुख मिलता है। लौकिक जीवन में भी सुख-शान्ति का यही मार्ग है। व्यक्ति अपने संकुचित स्वार्थों की शैली में सोचना छोड़कर समाज की, समूह की बात सोचने लगे तो सर्वांगीण मुक्ति का वातावरण विनिर्मित हो सकता है। राजनीतिक स्वतन्त्रता, आर्थिक स्वतन्त्रता, सामाजिक स्वतन्त्रता, धार्मिक स्वतन्त्रता आदि स्वतन्त्रता के विविध आन्दोलन चलते रहते हैं। आत्मा स्वतन्त्र है, वह बंधन में नहीं रहना चाहती। जब छोटी-सी चिड़िया तक पिंजड़े में बन्द रहने की पराधीनता स्वीकार नहीं करती और अवसर मिलते ही उन्मुक्त आकाश में उड़ जाती है तो आत्मा ही क्यों पराधीन रहे ? स्वाधीनता की उसकी भूख स्वाभाविक है। यह भूख आत्मिक स्वतन्त्रता में ही जाकर पूर्ण होती है। व्यक्ति छोटे से शरीर के लिए, छोटे से कुटुम्ब के लिए ही सब कुछ सोचे और सारे संसार की कठिनाई की ओर से आँखें बन्द कर ले, तो यह संकीर्णता, सीमाबद्धता, स्वार्थपरता ही कही जायेगी। इसी भव बन्धन में बँधा हुआ तो प्राणी जन्म-मरण की फाँसी में झूलता रहता है।

संकुचित स्वार्थों की सीमा में अवरुद्ध व्यक्ति तुच्छ है। जो अपनी ही बात सोचता है, अपने ही दुःख से दुःखी और अपने ही सुख से सुखी है, वह अभागा प्राणी पानी की एक बूँद की तरह है। जिसका अस्तित्व उपहासास्पद ही रहता है। समुद्र में अनेक बूँदों का समाज रहता है, इसलिए समुद्र भी महान है और उसकी हर बूँद भी धन्य है। सूर्य अपनी ज्योति को अपने घर में ही प्रकाशित नहीं रहने देता, वरन् उसकी किरणें लोक-लोकान्तरों तक निस्वार्थ भाव से बिखरी रहती हैं। इसी से सविता को देवता कहते हैं। वे मनुष्य भी देवता ही हैं, जो ससीमता के बन्धन तोड़कर असीम बनने जा रहे हैं, जिनने स्वार्थ को परमार्थ में परिणित करने का निश्चय कर लिया है।

इस संसार का भाग्य और भविष्य एक ही नाव में रखा हुआ है। विज्ञान की प्रगति ने इस एकता को और भी अधिक घनिष्ठ कर दिया है। इसलिए हमें सुख और दुःख की, लाभ और हानि की, उत्थान और पतन की, जीवन और मरण की समस्या पर व्यक्ति की दृष्टि से नहीं समूह की, समाज की दृष्टि से विचार करना चाहिए। जिसमें सबकी भलाई है उसी में अपनी भलाई हो सकती है, जिसमें सबका सुख और सन्तोष है उसी में हमें भी सुख-शान्ति मिल सकती है। अपने को सुखी बनाने की इच्छा करने वाले प्रत्येक को विस्तृत दृष्टि से देखना चाहिए और आत्मा की अखण्ड-ज्योति को एक सीमित क्षेत्र तक संकुचित न रखकर विस्तृत विशाल क्षेत्र में फैलने देना चाहिए। सबके सुख में ही हमारा सुख सन्निहित है।

समाज और व्यक्ति का उत्कर्ष

जिस समाज में परमार्थ वृत्ति नहीं होगी ? उसका अस्तित्व कायम रहना असम्भव होगा। अभिभावकों द्वारा बच्चों की सेवा, पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा का ध्यान न रखा जाय और यह वृत्ति समाज में व्यापक बन जाय तो मानव जाति का ह्रास होने लगेगा। परिवार, समाज, व्यावहारिक सम्बन्धों में परस्पर प्रेम और सहानुभूतिजन्य आत्मीयता की भावनाएँ नष्ट हो जायें तो समाज के अविकिसत, असमर्थ, अक्षम लोगों का जीवन निर्वाह कठिन ही होगा और वृद्ध, अपंग, अपाहिज, रोगी, दुःखी लोगों का जीवन दूभर हो जायेगा। मनुष्य की प्रवृत्तियाँ इस परमार्थ, परार्थवृत्ति से जितनी ही शून्य होती जायेंगी उतनी ही सामाजिक व्यवस्था दोषमुक्त बनती जायेगी। व्यक्तिगत लाभ, स्वार्थ सिद्धि, समृद्धि के लिए मनुष्य कितना भी क्यों न करे, वह कितना ही सम्पन्न और वैभवशाली क्यों न बन जाय किन्तु परमार्थ और दूसरों के प्रति प्रेम, सहानुभूति, सहायता, सौजन्य के अभाव में वह समाज के लिए किसी भी तरह उपयोगी सिद्ध नहीं होता। उससे समाज के विकास में कोई योग नहीं मिलता। साथ ही उसका स्वयं का भी विकास रुक जायेगा। क्योंकि समाज के साथ ही व्यक्ति और व्यक्ति के द्वारा ही समाज का विकास सम्भव है। ऐसे व्यक्ति के बारे में सोचकर वेद के ऋषि ने स्पष्ट कह दिया है–

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः
सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य
नार्यमणं पुष्यति नोसखाय
केवलाघो भवति केवलादी ।।

"स्वार्थपूर्ण, संकीर्ण मनोवृत्ति वाले व्यक्ति ने पास में संग्रहीत धन संग्रह नहीं किया वरन् अपनी मृत्यु को ही संग्रह कर लिया है। जो अपने भाई-बहिन को कुछ नहीं देता, जो अपना ही ख्याल रखता है अपने लिए ही संग्रह करता है, वह केवल पाप रूप है, वह चोर है," ऐसा वेद के ऋषि ने स्वार्थपरायण, अपने ही संग्रह में लीन व्यक्ति के लिए स्पष्ट शब्दों में कह दिया है।

स्वार्थ-प्रधान, निजी लाभ रखने के दृष्टिकोण द्वारा सुखी, सम्पन्न, विकसित समाज का निर्माण नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में मनुष्य आपापूती की भावना से प्रेरित होकर परस्पर छीना-झपटी, एक दूसरे के प्रति षड्यन्त्र, ईर्ष्या-द्वेष में लीन हो जायेगा। समाज में एक-दूसरे के प्रति अविश्वास, सन्देह, भय, शंका की वृद्धि होगी और इससे समस्त समाज में विकृतियाँ, दोष पैदा हो जायेंगे। धोखेबाजी, ठगी, भ्रष्टाचार, लूटखसोट, डकैती, शोषण जैसे भयंकर अपराधों का सूत्रपात मनुष्य की इस स्वार्थ प्रधान, निजी लाभ की संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण ही होता है। व्यक्ति अपने जीवन में कितना भी समृद्ध, शक्तिशाली, सम्पन्न क्यों न हो, सुख-शान्ति, आनन्द से वंचित रहेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्षण-क्षण, पल-पल उसे नई चिन्ता, षड़यन्त्र, संघर्ष, दूसरों के आक्रमण का सामना करना पड़ेगा। जीवन उसके लिए एक अभिशाप सिद्ध होगा।

समाज में परस्पर सहानुभूति, सौजन्य, सेवा, सहायता, सहयोग, संगठन आदि पर समाज का विकास निर्भर करता है। ये सब परमार्थ, परार्थ दूसरों के लिए जीवन-दान से ही सम्भव है। स्वार्थ और संकीर्णता से समाज में विघटन, संघर्ष आदि का ही पोषण होता है।

आवश्यकता इस बात की है कि हमारा जीवन, हमारे प्रत्येक कार्यकलापों का आधार व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत हो--सार्वभौमिक हो। रचनात्मक और दूसरों के लिए हितकारी हो। मनुष्य अपने लिए न जिए वरन् समाज के लिए, संसार के लिए जिए। इसी सत्य पर व्यक्ति का विकास, उत्थान सम्भव है और साथ ही समाज में परस्पर सहयोग, आत्मीयता, सौजन्य के सम्बन्ध कायम होते हैं। विश्व-यज्ञ में मनुष्य का प्रत्येक प्रयास आहुति डालने के सदृश्य हो तो धरती पर ही स्वर्ग की कल्पना साकार हो उठे।

मनुष्य द्वारा उपार्जित अर्थ, सामग्री उसके स्वयं के उपभोग अथवा संग्रह के लिए नहीं वरन् सदुपयोग के लिए होनी चाहिए। उसका आधार 'सर्वजनहिताय' होना चाहिए। इसीलिए वेद के ऋषि ने आदेश दिया है "सौ हाथों से कमा और हजार हाथों से दान कर।" आम्र वृक्ष कुछ ही व्यक्तियों से श्रम, सेवा और पोषण सामग्री प्राप्त करता है किन्तु जो प्राप्त करता है उसे असंख्यों मधुर फलों में जन-जन को लुटा देता है।

किसी क्षेत्र में शक्ति-सामर्थ्य अर्जित करके मिला हुआ उच्चपद, प्रतिष्ठा बुरी नहीं है। जीवन के सर्वांगीण विकास में इनकी आवश्यकता भी है, किन्तु शक्ति, सामर्थ्य पद, सत्ता का उपयोग गिरे हुओं को उठाने के लिए, जीवन पथ में भटके हुओं को निकालकर आगे बढ़ाने, आगे बढ़ने वालों को सहारा देने में हो तभी इनकी सार्थकता है। जो अपने सामर्थ्य, शक्ति, सत्ता, पद के अभिमान में चूर होकर दूसरों को गिराते हैं, दूसरों को हानि पहुँचाते हैं, दुःख-कष्ट देते हैं, मानव होकर भी मानवता पर अत्याचार करते हैं उन्हें सामाजिक व्यवस्थाओं ने क्रूरकर्मी, पापी, दुष्ट कहकर हेय बताया है। इससे समाज का अहित, विघटन होता है और परस्पर संघर्ष, अशान्ति, क्लेश को जन्म मिलता है।

आनन्दोपभोग करना, खुशियाँ मनाना, मनुष्य जीवन की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। धरती पर जीव का अवतरण ही यहाँ के सुरदुर्लभ मानवीय आनन्द की प्राप्ति के लिए होता है, किन्तु इस तरह के आनन्द उपभोग जन-जन के साथ मिलकर, समाज के साथ ही मनाये जाने चाहिए। भारतीय संस्कृति और धर्म में सामूहिक मेले, त्यौहार, पर्व, रीति-रिवाज इसी सत्य के प्रतीक हैं। नीतिकारों ने व्यक्तिगत, एकाकी आनन्दोपभोग को कोई स्थान नहीं दिया। हमारे पर्व, त्यौहार, मेले आदि अमीर-गरीब, छोटे-बड़े सबके लिए थे। सुख भी समाज के साथ, दुःख भी समाज के साथ, यही आनन्दोपभोग कर जीवन की कठिनाइयों में तर जाने का मूलमन्त्र है।

इस तरह हमारे जीवन की समस्त प्रवृत्तियों का आधार 'बहुजन हिताय', परमार्थ, परार्थ-परायणता ही होना चाहिए, स्वार्थ-परायणता नहीं। इसी में हमारे स्वयं के और समाज के जीवन के विकास प्रगति का मन्त्र सन्निहित है। सबका हित, सबका सुख, सबका लाभ, कल्याण हमारा जीवनदर्शन होना चाहिए। मन्त्र-दृष्टा ऋषि ने इसी सत्य की प्रेरणा देते हुए कहा है--

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्।।

"सभी सुखी हों। सभी निरामय हों। सब मंगलमय हों, कोई दुःखी न रहे।"

समूहगत प्रयत्नों में ही विकास, उन्नति, कल्याण का रास्ता निहित है। हमें अपने समस्त भेदभाव, स्वार्थ-प्रधान, लाभ-हानि अपनेपन की भावना छोड़, सम्मिलित प्रयत्नों से विकास यात्रा पर चलने के लिए दृढ़ प्रयत्न करना आवश्यक है तभी हमारा और समाज का उज्ज्वल भविष्य निर्मित होगा।

वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना

सूर्य की प्राण शक्ति प्रस्फुटित होकर जिस तरह वनस्पति जगत का विधान करती है, उसी प्रकार परमात्मा प्रकीर्ण होकर सम्पूर्ण संसार का सृजन करता है। यह जो कुछ दिखाई देता है उसी की रचना है। जो चेतना इस विश्व ब्रह्माण्ड में दिखाई देती है वह सब परमात्मा की ही चेतना है। सम्पूर्ण जीवधारी उसी के अंग मात्र हैं, उसी तत्व के सूक्ष्म परमाणु मात्र हैं। फिर बड़े खेद की बात है कि मनुष्य आपस में भेद-भाव, छल-कपट, धोखादेही की स्वार्थपूर्ण परम्परायें अपनाये बैठा है। इससे मानव जीवन का उद्देश्य पूरा नहीं होता है। जाति-पाँति, भाषा-विचार, वर्ण-भेद की जो विभिन्नता दिखाई देती हैं, उससे सत्य का वास्तविक स्वरूप छिपाया नहीं जा सकता। परमात्मा ने जीवन और मृत्यु के बीच जो आवश्यक साधन थे, उन्हें सबको समान रूप से वितरित करके यह सिद्ध किया है कि यह पृथ्वी और यहाँ के साधन व्यक्ति विशेष के लिये नहीं हैं। इनका उपभोग मिल-बाँटकर करने में ही मानव जीवन की सार्थकता है। आत्मा को इसी में सन्तोष मिलता है।

सारा विश्व एक प्रेम के सूत्र में बँध सकता है यदि सभी लोग संसार को एक कुटुम्ब के रूप में देखें और प्रत्येक मनुष्य से वैसे ही प्रेम करें, जैसे अपने परिवार के सदस्यों के साथ करते हैं। व्यवहार की सहृदयता, हृदय की विशाल भावनाओं से समुन्नत होती है। जितने उच्च विचार और उदार भावनायें होंगी उतना ही औरों को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता भी होगी। चिरस्थायी स्नेह मनुष्य की आन्तरिक उत्कृष्टता से ही प्राप्त होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाचालता और कपटपूर्ण व्यवहार में किसी को थोड़ी देर तक अपनी ओर लुभाया जा सकता है, पर स्थिरता का सूत्र तो प्रेम ही है। हमारे अन्तःकरण में दूसरों के लिये जितनी अधिक मैत्री की भावना होगी, उतना ही अपना व्यक्तित्व विकसित होगा, उतनी ही आत्म शक्तियाँ प्रबुद्ध होंगी।

पूर्ण कल्याण की भावना **"आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति सः पण्डितः"** इस एक वाक्य में ही निहित है। चरित्र की उदारता और सज्जनता का अर्थ ही एक है कि मनुष्य, मनुष्य को, जीव-जन्तुओं को भी उनके अधिकारों का उपयोग ठीक उसी तरह करने दे, जिस तरह हम अपने लिये औरों से अपेक्षा रखते हैं। गोस्वामी तुलसीदास की यह पंक्तियाँ मानवता शब्द को भली प्रकार अभिव्यक्त कर देती हैं।

आपु आपु कहँ सब भलो अपने कहँ कोय कोय।
तुलसी सब कहँ जो भलो, सुजन सराहिय सोय।।

अर्थात् सज्जन तथा सराहनीय वह है जो केवल स्वहित तक ही सीमित नहीं है। जो उदारतापूर्वक सब के हित की बात सोचता है वही मनुष्य श्रेय का अधिकारी हो सकता है।

अपने हित की साधना का भाव तो पशु-पक्षियों तक में पाया जाता है। अतः इसमें कोई बुद्धिमानी नहीं हो सकती कि मनुष्य सम्पूर्ण जीवन केवल अपनी ही स्वार्थपूर्ण प्रपंचनाओं में बितादे। इससे अन्त तक मानवीय शक्तियाँ प्रसुप्त बनी रहती हैं। प्रेम और आत्मीयता नहीं संकीर्णता के कारण मनुष्य का जीवन कितना दुःखमय, कितना कठोर हो सकता है यह सर्वविदित है।

हममें ईश्वर सदृश गुण और अनन्त शक्ति की योग्यता होने पर भी हमारा जीवन अर्द्ध विकसित क्यों है ? यह एक विचारणीय प्रश्न है। इससे यह मानना पड़ता है कि हमारी जीवनचर्या में कहीं कोई भूल हो रही है। यह देखना है कि क्या वस्तुतः हमारे आचरण भी दैवी-तत्वों के सदृश्य हैं। यहीं अपनी भूल पकड़ में आती है। परमात्मा अपने सभी पुत्रों के हित का समान रूप से ध्यान रखता है। सब पर उसकी कृपा है, सभी से वह प्रेम करता है। इसीलिए वह अनन्त शक्तिशाली है, अपराजेय है। हम भी अपना जीवन इसी साँचे में ढालने का प्रयत्न करें, सबके हित में अपना हित मानें, सबके साथ प्रेम करें तो अपनी शक्तियों का विस्तार न हो ऐसा नहीं हो सकता।

अन्य जीवधारियों के जीवन से अपनी तुलना करते हैं तो मालूम पड़ता है कि मनुष्य जीवन में विकास की सारी सम्भावनायें विद्यमान हैं। अपनी दिव्यता का अनुकरण करते जायेंगे तो अपनी सहायता की अभिलाषा भी पूर्ण होती चली जायेगी।

ईश्वर का आदेश भी ऐसा ही लगता है। यह आवाज प्रतिक्षण आती है उठो, मुझ जैसा पूर्ण और परिपक्व बनो। संकीर्णताओं में इन अमूल्य क्षणों को नष्ट न होने दो। यहं संसार निःसार है, इसकी सत्यता यदि कुछ है तो यही कि कुछ दिन इस धरती पर प्रेम और आत्मीयता का आनन्द प्राप्त कर लें। यही आत्मा की आध्यात्मिक प्यास है, किन्तु जब भौतिक सुखों के लिए आत्म कल्याण की इस भावना का परित्याग कर देते हैं तो यह बुझती नहीं और भी भड़क उठती है। आन्तरिक तड़पन, क्षोभ और अशान्ति इसी कारण होती है कि मनुष्य इन्द्रिय सुखों की लालसा में इतना छोटा बन गया है कि अपने वास्तविक स्वरूप को भी पहचानने में असमर्थ हो गया है।

विश्व प्रेम की भावना में जो रमणीयता, सौन्दर्य दर्शन तथा मोहकता होती है वही मनुष्य की सच्ची धार्मिक सम्पत्ति हो सकती है। इसी से पुण्य पथ प्रशस्त होता है, इसी से सर्वशक्तियाँ जाग्रत होती हैं। घृणा और क्रोध, वैर और बदले की भावना से मनुष्य का जीवन स्तर दिन-दिन गिरता चला जाता है, इससे सामूहिक तौर पर व्यक्ति और समाज दोनों का पतन होता है। समाज में सात्त्विकता का प्रकाश जिन सद्गुणों से फैलता है, उनकी ओर संकेत करते हुए भगवान् कृष्ण ने बताया है–

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः सम दुःख सुखः क्षमी।।

अर्थात् जो सम्पूर्ण प्राणियों को अद्वैत भावना से देखता है, सबके साथ मैत्री, करुणा, माया-मोह से रहित और नम्रतापूर्ण व्यवहार करता है, जो सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति क्षमा भाव रखता है, उनके साथ सुख और दुःखों में समान रहता है, वही पूर्ण पुरुष है। अर्थात् महानता का लाभ मनुष्य इन्हीं सद्गुणों के आधार पर पाता है।

हम लोग एक ही माता-पिता से उत्पन्न सन्तान को परस्पर भाई-बहिन समझते हैं। मानवीय दृष्टिकोण से यह सही भी है। व्यावहारिकता में इसी आधार कर्त्तव्य विभाजन और उसका क्षेत्र निर्धारित करने की सुविधा रहती है, किन्तु भावनात्मक दृष्टि से इतने से ही सन्तोष नहीं मिलता। तब हमें यह मानकर चलना पड़ता है कि एक परमात्मा से ही जीवात्मा उत्पन्न और उसी से सम्बद्ध है वही हमारा पिता, माता, सर्वस्व है। इस आधार पर संसार के सभी जीवधारियों को अपने से भिन्न नहीं कह सकते। एक पिता जिस तरह अपने बच्चों को प्रगाढ़ स्नेह और प्रेम के सूत्र में बँधा देखना चाहता है वैसी ही सदिच्छा परमात्मा को भी हम से हो सकती है। इस सत्य से ही एकता की वृद्धि होती है। समाज के पूर्ण विकसित रचना के उद्देश्य से महापुरुष सदैव इस बात पर जोर देते रहे हैं कि मनुष्य अपने आपको विश्व समाज का सदस्य माने। आज भी यह आवश्यकता ज्यों की त्यों विद्यमान है। युग परिवर्तन के लिये इसी योग का अभ्यास भी किया जाना है।

प्रेम का साम्राज्य सर्वत्र है। इसके बिना मानव जीवन में सरसता नहीं आती। मनुष्य सामाजिक प्राणी है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह जितने अधिक अंशों में समाज के प्रति आत्म विकास करता है, उसी के अनुपात में प्रेम की अन्तःज्योति मानवीय जीवन की मधुरता को उपलब्ध करता है। यह आत्म विकास की साधना जितनी अधिक तेज होगी समाज में सद्गुणों का प्रसार उसी गति से होता रहेगा और एक दिन मनुष्य पूर्ण विकास की अवस्था भी प्राप्त कर लेगा।

भावनाओं का विस्तार अपने आप से करना है। व्यक्तिगत चरित्र निर्माण से यह प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, धीरे-धीरे परिवार, गाँव, समाज, राष्ट्र और विश्व के साथ उसका सामंजस्य बढ़ता जाता है। इसी क्रम में व्यक्ति का निज का ज्ञान, बौद्धिक विकास और ईश्वर अनुभूति की सिद्धि प्राप्त होती है। यह आत्मयोग ही ब्रह्म ज्ञान का सबसे सीधा और सरल रास्ता है।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना आत्मा के पूर्ण विस्तार की प्रतीक है। ऐसे व्यक्तियों के सहृदयता, उदारता कष्ट-सहिष्णुता आदि सद्गुण पराकाष्ठा तक जा पहुँचते हैं, उनके लिये अपने पराये का भेद मिट जाता है। वह परमात्मा के प्रकाश में ऐसे असीमत्व का अनुभव करते हैं, जिससे उसके सम्पूर्ण दुःख, अभाव आदि नष्ट होते हैं और प्राणिमात्र की सेवा में सर्वस्व बलिदान करने की महानता जाग्रत होकर धरती को कृतार्थ कर देती है।

वसुधैव कुटुम्बकम् का आदर्श व्यवहार में उतारें

जिसका चिन्तन जितना सीमित है उसे उतना ही क्षुद्र कहा जाता है। जो अपनी लिप्साओं को पूरा करने में शरीर जैसे अनन्य सहचर तक को तोड़-मरोड़कर रख देते हैं। जिन्हें अपने स्वास्थ्य, यश, परिवार, धन तक की होली जलाने में देर नहीं लगती ऐसे निपट स्वार्थान्ध दूसरों के हित, अधिकार का ध्यान रखेंगे, ऐसी आशा कौन करे ? संकीर्णता जब तक स्वार्थ साधन के साथ मर्यादाओं की बनी रहे, तब तक उसे सही एवं क्षम्य स्तर की भी माना जा सकता है पर जब स्वार्थान्ध व्यक्ति दूसरों को बड़ी से बड़ी हानि पहुँचाकर अपने नगण्य से स्वार्थ की सिद्धि पर उतारू होता है तो उसका चिन्तन और व्यवहार नरपशुओं से भी नीचे गिरकर नरपिशाच स्तर तक जा पहुँचता है।

स्वार्थी समझता यह है कि अपने मतलब से मतलब रखकर वह दूसरों के लिए समय या धन न लगाकर नफे में रहेगा। अपनी कमाई में किसी को हिस्सा न देने पर–दूसरों की छीन-झपट करते रहने पर–प्रत्यक्ष दीखने वाला लाभ वस्तुतः असीम घाटे का कारण बनता है। जो किसी के काम नहीं आता, उसके काम कोई दूसरा क्यों आये ? नीति और धर्म का तत्व ज्ञान यह है कि दूसरों के हितसाधन को–कर्त्तव्य पालन को प्रमुखता दी जाय। भले ही इसमें अपने हित को अधिकार से छोड़ना भी पड़े। यह उदारता मानवी सद्गुणों की जननी है। इस आधार पर महानता विकसित होती है और व्यक्तित्व निखरता है। इसी सम्पदा के आधार पर मनुष्य प्रामाणिक बनता और सम्मान सहित विपुल सहयोग अर्जित करता है। संसार के श्रेष्ठ पुरुष प्रतिभा, पराक्रम के आधार पर ऊँचे उठे और आगे बढ़े हैं। इसके विपरीत पतन-पराभव के गर्त में गिरने वालों को स्वार्थान्धता का एक ही दुर्गुण ले डूबा है। उदारता के बीज बोने वाले महानता अर्जित करते हैं। इस तथ्य के प्रमाण शालीनता के इतिहास में पग-पग पर दृष्टिगोचर होते हैं।

आत्म संयम और उदार व्यवहार की उभयपक्षीय साधना परिवार क्षेत्र में घटती है। उसके उत्तरदायित्व ऐसी रीति-नीति अपनाने के लिए बाधित करते हैं। यह पारिवारिकता की सत्प्रवृत्ति ही आगे चलकर मनुष्य को समाजसेवी, देशभक्त, परमार्थ परायण स्तर का बनाती है। आपाधापी से ग्रसित, संकीर्ण, स्वार्थ परायण व्यक्ति नीरस, निष्ठुर, कुरूप जीवन जीते हैं। स्नेह-सौजन्य से वंचित रहकर भूत-पलीत जैसी जिन्दगी जीते हैं। उस स्नेह-सौजन्य का लाभ मिल ही नहीं पाता जिसके कारण अन्तःकरण की कली खिलती है और विभूतियों, सफलताओं से भरा-पूरा जीवन जी सकने का अवसर प्रदान करती है।

कूप-मण्डूकों का उपहास इसलिए उड़ाया जाता है कि वे विशालता के साथ सम्पर्क साधने से वंचित रहते हैं और एक बहुत छोटी दुनिया में गुजर करते हैं। यह कुएँ के मेढक का नहीं उस क्षुद्रता का उपहास है, जिसके कारण समीपता के–संकीर्णता के छोटे से दायरे में बँधकर रहना पड़ता है।

महानता और उदारता अन्योन्याश्रित हैं। जहाँ एक होगी वहाँ दूसरी सहेली भी साथ रहेगी। उदारता का वास्तविक और सही स्वरूप पारिवारिकता में ओत-प्रोत है। उसमें हिल-मिल कर रहने और मिल बाँटकर खाने का सिद्धान्त कूट-कूट कर भरा है। इसके लिए झुण्ड या समूह तो जुड़ सकता है परिवार नहीं बन सकता। भावुकता में किसी पात्र-कुपात्र को आँखें बन्द करके कुछ भी दे बैठना, उदारता नहीं, उसका आवेश भर है। तात्विक उदारता में आत्म-संयम के आधार पर अपने साधनों की बचत करनी पड़ती है और उसे सही व्यक्तियों को, सही रीति-नीति अपनाकर वितरित-विभाजित करने की सूझ-बूझ क्रियान्वित होती है।

आत्म विकास को मानव जीवन की सबसे बड़ी प्रगति एवं सफलता माना गया है। इसका आधार कैसे बने ? इस प्रश्न का उत्तर एक शब्द में देना हो तो उसे परिष्कृत दृष्टिकोण का उदात्त अवलम्बन कह सकते हैं। जिसका आत्म भाव जितना विकसित है, उसी अनुपात में उसे आत्म विकास का धनी कहा जा सकता है। इस स्थिति को प्राप्त करने-कराने में दो सूत्र काम करते हैं- एक है 'आत्मवत सर्वभूतेषु'–अपने समान सबको अनुभव करना। दूसरा है 'वसुधैव कुटुम्बकम्' विशाल समुदाय को अपना कुटुम्बी मानना और आत्म भाव से अपने सुख बाँटना उसके दुःख बँटाना। यह रीति-नीति जिसके जीवन में जितनी मात्रा में स्थान पाती है, उसी अनुपात में वह आत्म सम्पदा का धनी बन जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हमें व्यक्तिगत रूप से अपना दृष्टिकोण इतना विकसित करना चाहिए कि शरीर या पारिवार के पिंजड़े से निकलकर समस्त विश्व को अपना घर माना जा सके। जन-जन को आत्मीयता की दृष्टि से देखा जा सके और जो कुटुम्बियों के लिए किया जाता है, वही सर्वसाधारण के लिए भी किया जा सके। यह दृष्टि उपलब्ध होने पर व्यक्ति को ब्राह्मण जैसा संयमी और साधु जैसा लोकसेवी बनना पड़ता है। उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श जीवन जी सकने की स्थिति में इसी मनोभूमि के लोग होते हैं। सेवा धर्म सबसे बड़ा धर्म है। लोकसेवी को आत्म-कल्याण की सर्वोत्तम प्रक्रिया कहा गया है। विराट ब्रह्म का दर्शन होने लगे तो विश्व-वसुधा की सेवा-साधना में निरत होना पड़ता है। उदारचेता यही रीति-नीति अपनाते और पुण्य परमार्थ से भरा-पूरा जीवन व्यतीत करते हैं।

यह आत्म विकास की दृष्टि हुई। दूसरी आवश्यकता विश्व विकास की है। इसके लिए भी पारिवारिकता की सत्प्रवृत्ति को ही जन जीवन का अंग बनना पड़ेगा। संसार के सम्मुख इन दिनों अगणित समस्यायें हैं। वे आकाश से नहीं टूटीं। वरन् मनुष्यों की क्षुद्रता ने ही उन्हें भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण अपनाने के लिए बाधित किया है। उस कुचक्र में फँसे हुए लोग अवांछनीयता अपनाते और संकट खड़े करते हैं। इस सुन्दर विश्व उद्यान में जो अगणित संकट दृष्टिगोचर होते हैं, उनका यह एक ही कारण है। इसका निवारण सोचना हो तो पारिवारिकता की सत्प्रवृत्ति को मनुष्य के स्वभाव में अधिकाधिक गहराई तक प्रतिष्ठित करना होगा। विश्व व्यवस्था ऐसी बनानी पड़ेगी जिससे यह समूचा संसार एक विशाल परिवार की तरह रहे और सभी प्रचलन उसी स्तर के चलें।

विभाजन और बिखराव की प्रवृत्तियों को निरस्त करके अगले दिनों में एकता के सूत्र में बँधना होगा। निकटता और घनिष्ठता स्थापित करने के लिए नये उत्साह के साथ अग्रसर होना होगा। कभी जब जनसंख्या थोड़ी थी और यातायात के साधन नहीं थे तब क्षेत्रों और देशों में--जातियों और समुदायों की सीमा में यह संसार जकड़ा रहा होगा पर इन दिनों प्रगतिक्रम इतनी तेजी से चला है कि दुनिया एक नगर-मुहल्ले की तरह बन गई है। एक स्थान की घटनाओं एवं परिस्थितियों का प्रभाव दूर-दूर तक पहुँचता है और प्रकारान्तर से समूचे संसार को प्रभावित करता है। सब समस्याओं के क्षेत्रीय समाधान नहीं निकल सकते वरन् आत्यिन्तिक हल ढूँढ़ने के लिए व्यापक दृष्टिकोण अपनाने और व्यापक प्रतिक्रिया को ध्यान में रखकर चलने में ही बात बनती है।

विभाजन की रेखायें अब सिमटनी और टूटनी चाहिए। देश, धर्म, भाषा, वर्ण आदि के आधार पर बँटा हुआ संसार प्रस्तुत विग्रहों, संकटों और अवरोधों से त्राण पा नहीं सकेगा। उसे एकता की बात सोचनी होगी और एक केन्द्र पर केन्द्रित होने की मनोभूमि बनानी एवं तैयारी करनी पड़ेगी।

मानवी सत्ता और सभ्यता को जीवित रखना और प्रगतिक्रम भविष्य में भी गतिशील रखना हो तो विश्व राष्ट्र, विश्व भाषा, विश्व संस्कृति और विश्व व्यवस्था का केन्द्रीयकरण करना होगा, अलगाव की प्रवृत्ति छोड़नी होगी। अपना सही दूसरे का गलत कहते रहने से दुराग्रह बढ़ेगा, विग्रह खड़ा होगा और तथ्य तक पहुँच सकना, सत्य को प्राप्त कर सकना कभी भी सम्भव न हो सकेगा। शान्ति और प्रगति का आधार एक ही है कि एकता की बात सोची जाय। समता को महत्व दिया जाय। विवेक अपनाया जाय और न्याय के आधार पर औचित्य का निर्धारण किया जाय।

वसुधैव कुटुम्बकम् के सैद्धान्तिक आधार

मनुष्य को भगवान ने बहुत कुछ देकर इस पृथ्वी पर भेजा है। शारीरिक दृष्टि से वह कई प्राणियों की तुलना में कमजोर जरूर ठहरता है, पर बौद्धिक-दृष्टि से उसके पास जो सामर्थ्य संचित है, परमात्मा ने बुद्धि और ज्ञान का जो बहुमूल्य उपहार उसे प्रदान किया है, वह अपने-आप में इतना महत्वपूर्ण है कि एक इसी के बल पर उसने संसार के समस्त प्राणियों को पीछे छोड़ दिया। कोई व्यक्ति दूसरों से तुलना करके अपने को भले ही अभावग्रस्त और असहाय समझता रहे, लेकिन वास्तविकता यह है कि वह न अभावग्रस्त है, न निर्बल और न निर्धन। यों रोना ही रोना हो तो--सम्पन्न से सम्पन्न व्यक्ति भी अपने पास किन्हीं वस्तुओं के अभाव की बात सोचते हुए असन्तोष की आग में जलते रह सकते हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि दयनीय से दयनीय हालत में पड़ा रहने वाला मनुष्य भी न अभावग्रस्त है और न दयनीय।

अपनी महत्ता और सर्वोपरिता को प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार किये जाने के बाद भी मनुष्य की अन्तरंग चेतना में श्रेष्ठता का भाव छिपा हुआ है। यह इस बात से सिद्ध होता है कि दुःखी से दुःखी व्यक्ति भी अपने दुःखों से छुटकारा प्राप्त करने के लिए मरना पसन्द नहीं करते। भावावेश में आकर कोई व्यक्ति आत्महत्या कर ले, यह बात अलग है, किन्तु सच्चाई यह है कि लोगों की अन्तरंग चेतना में मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता का भाव इस प्रकार अपनी जड़ें जमाये हुए है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी परिस्थिति में अपने जीवन को खोना नहीं चाहता।

स्थिति और बाह्य उपलब्धियों की दृष्टि से कोई व्यक्ति भले ही साधनहीन दिखाई दे, पर यह सच है कि प्रत्येक व्यक्ति को जन्मजात रूप से सब कुछ न सही, तो भी बहुत कुछ अवश्य मिला है। साधन सम्पन्न मनोबल प्रत्येक मनुष्य के पास है। बुद्धि की चमत्कारी क्षमता उसे प्राप्त है। इस क्षमता से वह संसार में उपलब्ध अगणित विशेषताओं से सम्पन्न पदार्थों को अपने लिए प्रयुक्त करता और उन पर अपना स्वामित्व स्थापित कर लेता है। उसकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बौद्धिक क्षमता को, उसके चमत्कारों को देखते हुए कहा जा सकता है कि यह असीम साधन सम्पन्न संसार मानो उसी के लिए विनिर्मित किया गया है।

अपने बुद्धि-कौशल से उसने ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं का निर्माण किया है और अपनी सुविधा-सामग्री को असीम मात्रा में बढ़ाया है। इतना होने पर भी मनुष्य को सन्तोष नहीं हुआ, यह आश्चर्य की ही बात है। वह अधिकाधिक साधन-सुविधाएँ प्राप्त करने के प्रयत्न कर रहा है। उसके ये प्रयत्न अभी भी शिथिल नहीं हुए हैं, वरन् दिनों-दिन प्रखर ही होते चले जा रहे हैं। इससे सहज ही यह आशा बनती है कि अगले दिनों मनुष्य और भी अधिक साधन सम्पन्न होगा।

निस्सन्देह बुद्धि-कौशल से उपार्जित साधनों की अधिक मात्रा में प्राप्ति होने के कारण मनुष्य का वैभव अतिशय बढ़ता चला जा रहा है। यद्यपि इस वैभव को अपर्याप्त कहा जाता है, नगण्य समझा जाता है और अभाव माना जाता है। इसका कारण सोचने-समझने की पद्धति में आई त्रुटियाँ ही हैं। यह अलग विषय है। संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि मनुष्य विश्व के अन्यान्य प्राणियों की तुलना में भी अधिक साधनसम्पन्न है और यही नहीं, मनुष्य अपने पूर्वजों की तुलना में भी अधिक साधन प्राप्त करने की दिशा में निरन्तर प्रगति ही करता रहा है। प्रागैतिहासिक काल के मनुष्यों की स्थिति से आज के मनुष्य की उपलब्धियों की तुलना की जाय तो आकाश-पाताल का अन्तर प्रतीत होगा। यही नहीं, अभी सौ-दो-सौ वर्ष पूर्व के समाज की सम्पन्नता और साधन-सुविधाओं की दृष्टि से आज के समाज की तुलना की जाय तो यही कहना पड़ेगा कि वर्तमान स्थिति दो सौ वर्ष पूर्व के मनुष्य के लिए सर्वदा अकल्पनीय ही है। यह उपलब्धियाँ असाधारण ही नहीं, अद्‌भुत भी हैं और इन्हें प्राप्त करने में एक ही मानवी विशेषता सक्षम हो सकी है, वह है—मनुष्य का बुद्धि-कौशल तथा उसका पुरुषार्थ।

मनुष्य की उपलब्धियों की विपुलता की दृष्टि से देखा जाय तो वर्तमान स्थिति को निस्सन्देह सुखद सौभाग्य कहा जायेगा। लेकिन जब यह प्रश्न किया जाता है कि क्या इन उपलब्धियों का सदुपयोग किया गया तो उत्तर में निश्चित ही बगलें झाँकनी पड़ेंगी। जो प्राप्त किया गया है, उसका सदुपयोग किस प्रकार किया जाय, यह न जानने अथवा इस दिशा में कुछ न सोचने के कारण, जिस-तिस ढंग से जैसा, भी जो भी उपयोग किया जा रहा है, उससे कष्ट और विनाश की ही विभीषिकाएँ प्रस्तुत हुई हैं। विज्ञान को आज असीम शक्ति प्राप्त है। यदि उस शक्ति का उपयोग सृजनात्मक प्रयोजनों में किया जाय तो ऋतु-प्रभावों के नियन्त्रण, आँधी-तूफान से होने वाले विनाश की रोकथाम, वर्षा और बाढ़ का सन्तुलन, समुद्र के खारेपन का निराकरण, खाद्य-वस्तुओं का अभिवर्धन और उनके स्तर में सुधार, विद्युत-शक्ति की प्रखरता, थोड़े से व्यय से यातायात की सुविधाएँ तथा रोग-नियन्त्रण जैसे अनेकानेक उपयोगी कार्य किये जा सकते हैं और वर्तमान दुनिया को अधिक सुखी, अधिक सुन्दर तथा अधिक समुन्नत बनाया जा सकता है।

इन दिनों शिक्षा, शिल्प-कला, धन और शस्त्रास्त्रों के विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने तथा उनकी सामर्थ्य विकसित करने की ही बात सोची जा रही है। यह ध्यान देना लगभग अनावश्यक ही समझा जा रहा है कि इन उपलब्धियों का श्रेष्ठतम सदुपयोग किस प्रकार किया जाय तथा उन्हें किस प्रकार प्रयुक्त किया जाय कि उससे सुख-शान्ति की परिस्थितियाँ बढ़ाई जा सकें। यदि इस दिशा में आगे भी उपेक्षा बरती जाती रही तो उपलब्धियों का बढ़ता जा रहा भण्डार मनुष्य के लिए अगले दिनों विनाश की परिस्थितियाँ ही प्रस्तुत करेगा।

उदाहरण के लिए विज्ञान परमाणु रहस्यों को खोज लाने में समर्थ हुआ और एक बड़ा शक्ति भण्डार मनुष्य के हाथ में आ गया। पर इस उपलब्धि का सदुपयोग करने के स्थान पर दुरुपयोग करने की दिशा में ही अधिक प्रयास हुए हैं। अणुबम बना लिये गये हैं और उनका निर्माण इतनी विपुल संख्या में किया जा चुका है कि उससे समस्त धरती को क्षण भर में जला-भुनाकर भस्म कर दिया जाय। संयुक्त-राष्ट्र संघ द्वारा प्रकाशित विवरणों के अनुसार यह विदित होता है कि संसार के अणु शक्ति सम्पन्न देशों के पास अणुबम, परमाणु बम, उद्‌जन बम आदि विनाशकारी उपकरणों का इतना विपुल भण्डार भरा हुआ है कि इस पृथ्वी को एक बार नहीं सात-सात बार नष्ट किया जा सकता है।

इसी प्रकार विज्ञान की कृपा से पहले की अपेक्षा अधिक धन-सम्पत्ति उपार्जित की जा सकी है। सम्पन्नता के कई नये स्रोत हाथ लगे हैं। इन स्रोतों का सदुपयोग न किये जाने के कारण बढ़ा हुआ धन विलासिता और शोषण उत्पीड़न के नये आधार करने में लगा है। कला ने पशु-प्रवृत्तियों को भड़काकर उसे पतनोन्मुख तथा कुमार्गगामी बना दिया। शिक्षा ने मनुष्य का अहंकार बढ़ाया, धूर्तता ने अपने हथियार पैने किये और जन-साधारण को दिग्भ्रान्त करने की कुशलता बढ़ाई। यह अनर्थ किसी एक क्षेत्र विशेष में नहीं हुआ, वरन् इसकी व्यापकता सर्वग्राही बन गई है।

मनुष्य का शरीर ऐसी विशेषताओं और विभूतियों से सम्पन्न है कि यदि उनका सदुपयोग किया जाता तो इसी देह में देवत्व की झाँकी मिलती। उसकी मानसिक विशेषताएँ अद्‌भुत हैं और अद्‌भुत है उनकी सामर्थ्य। यदि उन्हें सृजनात्मक दिशा में लगाने और लोक-मंगल के लिए उपयोग की बात सोची जाती, तो इस धरती की गरिमा तथाकथित स्वर्ग से कहीं बहुत अधिक बढ़ी-चढ़ी हो सकती थी। लेकिन इस दुर्भाग्य को क्या कहा जाय कि सदुपयोग की बात सोचते, गले उतरते ही नहीं बनती है।

मनुष्य की प्रत्येक इन्द्रिय अपने विषय में रसानुभूति करती है और उसके माध्यम से जीवन-क्रम को सुव्यस्थित रीति से चलाती है। जीवन-निर्वाह के लिए यह आवश्यक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है और प्रकृति ने प्रत्येक मनुष्य को इसके लिये पर्याप्त सम्पदा दी है, जिसे जीवन-शक्ति के रूप में देखा जा सकता है। उसका एक थोड़ा-सा अंश ही इन्द्रियों के माध्यम से खर्च करना पर्याप्त है और उसी से काम चल जाता है। लेकिन लोग जीवन-शक्ति का इन्द्रिय लिप्सा के लिये इस बुरी तरह दुरुपयोग या अपव्यय करते हैं कि सारी जीवन शक्ति ही इन प्रयोजनों में खर्च हो जाती है और उच्च आध्यात्मिक प्रयोजनों के लिये कुछ भी नहीं बचता। इस विषय पर 'लगीफार स्पिरिचुअल डिस्कवरी' की इटली शाखा ने अन्तः चेतना का विस्तार और उसकी 'अभिव्यक्ति' पर एक शोधग्रन्थ प्रकाशित किया है। इस ग्रन्थ में अनेकों तर्क, प्रमाण और उदाहरण प्रस्तुत करते हुये बताया गया है कि "अर्थ-परायण स्वार्थपरता और इन्द्रिय प्रधान भोग-लिप्सा यदि प्रबल रहेगी तो मनुष्य अपनी अन्तरंग सामर्थ्य से वंचित हो जायेगा। इन दोनों प्रवृत्तियों में निम्न-स्तरीय आकर्षण इतना अधिक है कि वह मनुष्य को ऊँचा सोचने और ऊँचे आदर्शों को अपनाने का अवसर ही नहीं देती है।"

वस्तुतः यदि इन्द्रियों के माध्यम से अन्तः चेतना का उपयोग तुच्छ प्रयोजन में करके उनकी महान् शक्ति को बर्बाद होते रहने से रोका जा सके और उन्हें उद्देश्य युक्त दिशा में नियोजित किया जाय तो इस महान् शक्ति के सदुपयोग द्वारा साधारण स्थिति का मनुष्य भी अति उच्च स्थिति में पहुँच सकता है। प्रश्न उठता है कि बर्बादी को रोकने और उपलब्धियों को उच्च प्रयोजन में लगाने की बात मनुष्य को क्यों नहीं सूझती ? इसका एक ही उत्तर है कि मनुष्य ने धर्म, नीति और सदाचार के आदर्शों को महत्व देते हुए समाज का अति महत्त्वपूर्ण ढाँचा में भी संकीर्ण-स्वार्थपरता और पक्षपात की इतनी मात्रा भर दी गई कि वे उपयोगी आधार एक प्रकार से अनुपयोगी बनते जा रहे हैं और न्याय के स्थान पर अन्याय का ही अभिवर्धन करते हैं। मध्यकालीन सामन्तवादी परम्पराएँ इसी प्रकार की रही हैं। उस समय एक वर्ग दूसरे वर्ग को लूटने-मिटाने में अपनी बहादूरी मानता रहा है और इसी आधार पर समृद्धि ही नहीं वरन् प्रशंसा भी प्राप्त करता रहा है। मध्यकाल का इतिहास ऐसी ही काट से भरा पड़ा है और उसके पृष्ठों में आक्रमणकारियों को योद्धा के रूप में चित्रित किया जाता रहा है।

वीरता का यह कैसा मजाक है ? इस तरह धर्म नीति का वर्ग विशेष के लिए प्रचलन-प्रतिपादन करने पर भी उसकी महत्ता कोई बढ़ी नहीं वरन् उल्टे घटी ही है। पिछले दिनों दुमुँही नैतिकता का मापदण्ड भी चलता रहा है। अपनों के लिए और मापदण्ड तथा दूसरों के लिए और तरह के मापदण्ड इस तरह के तथाकथित धार्मिक और नैतिक प्रतिपादनों की इतनी भरमार है कि उसके उपदेशों में नीति, धर्म, उदारता, सहायता आदि का समावेश तो है, पर वह अपनों तक के लिए सीमित रखा जा सकता है। परायों में इस तरह के सद्व्यवहार की उतनी आवश्यकता नहीं समझी गई है। अपनों की परिधि से बाहर–भले ही वह पड़ोसी हो, उसे लूटना, ठगना या सताया जाना उतना बुरा नहीं समझा जाता। कई धर्मों में तो उस धर्म को न मानने वालों को म्लेच्छ और काफिर कहकर उन्हें लूटने की, उनसे दुर्व्यवहार करने की खुली छूट है।

कुछ व्यक्ति वर्तमान समस्याओं के समाधान और प्रगति के लिए सद्ज्ञान को पर्याप्त मानते हैं। उनकी मान्यता है कि शिक्षा ही मनुष्य को सभ्य बना सकती है। कुछ इस विचारधारा के भी हैं कि धर्म मान्यताएँ ही मनुष्य को उदात्त बना सकती हैं। लेकिन यह सभी मान्यताएँ एकांगी और अपूर्ण हैं। आवश्यकता इस बात की है कि समस्या की तह में पहुँचा जाय और तथ्यों पर विचार करते हुए यह देखा जाय कि जो ज्ञान, प्रचलन एवं साधन उपलब्ध हैं उनका सदुपयोग हो रहा है अथवा नहीं।

जब समाज का इतना विकास नहीं हुआ था। आज जैसे साधन उपलब्ध नहीं हुए थे और मनुष्य अविकसित स्थिति में पड़ा था तब कोई मनुष्य अपनी शक्ति से सीमित बुराई और सीमित हानि ही पहुँचा सकता था। लेकिन अब वह स्थिति नहीं। अब वह सुविधा-साधन उपलब्ध हैं, जिनकी सहायता से यदि वह चाहे तो असीम बुराई कर सकता है। यही बात अच्छाई के सम्बन्ध में भी है, साधनहीन, अविकसित स्थिति में हमारे पूर्वज अपनी श्रेष्ठता को भी सीमित मात्रा में, सीमित क्षेत्र में ही फैला सकते थे। इसी प्रकार पुरातन-युग में जब दुनिया बिखरी हुई थी और मनुष्य के साधन सीमित थे, तब उस समय के अवांछनीय कार्य भी सीमित हानि पहुँचाते थे और अनुचित दृष्टिकोण के कारण क्षति भी सीमित होती थी, लेकिन अब विज्ञान ने दुनिया को बहुत छोटा बना दिया। संचार और यातायात के साधनों ने दूरी समाप्त कर दी है और दुनिया के देश एक ही नगर के गली-मुहल्लों जैसे बन गये हैं।

ऐसी स्थिति में व्यक्ति या समुदाय अपनी उपलब्धियों का दुरुपयोग करना चाहे तो वह बहुत अधिक क्षति कर सकता है और पूरी मनुष्य जाति को हानि पहुँचा सकता है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति चाहे तो श्रेष्ठता को सारे संसार में बढ़ा और फैला सकता है। विज्ञान ने मनुष्य को इतने साधन और इतनी सुविधाएँ उपलब्ध करा दी हैं कि अब जाति, धर्म, रंग और सम्प्रदाय के आधार पर वर्गीय स्वार्थों को अलग रखकर सोचना सम्भव नहीं है, उसके लिए व्यापक दृष्टिकोण अपनाना पड़ेगा। दुनिया इतनी छोटी हो गई है और विज्ञान ने इतनी प्रगति कर ली है कि अब विश्व को एक इकाई मानकर ही चलना होगा। यह परिसीमन या विकास मनुष्य के अपने बुद्धि कौशल का ही परिणाम कहा जाना चाहिए, आवश्यकता इस बात की है कि अपनी उपलब्धियों का सदुपयोग विश्व की एक इकाई मानकर किया जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह सारी धरती एक देश है। सम्पूर्ण मनुष्य जाति का वंश एक है। प्रकृतिप्रदत्त साधनों पर सभी का समान अधिकार है। सभी एक परमात्मा की सन्तान हैं। वसुधैव कुटुम्बकम् के इस श्रेय आदर्श के कारण ही कभी समस्त मानव जाति एकता के सूत्र में आबद्ध थी। न सुविधाओं की कमी थी, न साधनों की, न संकट सताते थे, न विग्रह। किन्तु जब टूटने, बाँटने, विलग होने की प्रवृत्ति पनपी तो गँवाने-खोने और अभावग्रस्त रहने की परिस्थितियाँ ही दुखद दुर्भाग्य के रूप में सामने आती चली गईं। जातिवाद, वंशवाद, राष्ट्रवाद, सम्प्रदायवाद, भाषावाद जैसी संकीर्ण भावना नहीं थी। फलतः एकत्व के सूत्र में बँधे हुए सभी एकता, समता, सुचिता, स्नेह, सहयोग, आत्मीयता से भरी-पूरी स्वर्गोपम परिस्थितियों में निवास करते थे। सर्वत्र सुख-शान्ति का वातावरण ही दृष्टिगोचर होता था।

इस धारा पर प्राचीनकाल जैसी स्वर्गीय परिस्थितियों के नवनिर्माण के लिए हमें अनेकता से एकता की ओर बढ़ना होगा। इस सर्वोच्च लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए प्रस्तुत मार्ग के अनेकानेक अवरोधों को दूर करना होगा। विश्व मानव को विश्रृंखलित अलग-विलग, करने में अनेकों तत्वों की प्रधान भूमिका रही है। मोटे-तौर पर उन्हें तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है--(१) राष्ट्रवाद की साम्प्रदायिक भावना (२) धार्मिक मतभेद (३) भाषायी भिन्नता। परस्पर, एक समुदाय की दूसरे के प्रति-एक देश की दूसरे के प्रति, घृणा, द्वेष, अलगाव पैदा करने में इन तीन की ही प्रमुख भूमिका रही है। इनके रहते विश्वशान्ति के लिए किये जाने वाले प्रयासों की सफलता सदा संदिग्ध बनी रहेगी। शान्ति एवं सुरक्षा की स्थापना के लिए यू. एन. ओ., एमनेस्टी इन्टरनेशनल, इन्टरनेशनल पीस फाउण्डेशन जैसी कितनी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ पिछले कई वर्षों से प्रयत्नशील हैं किन्तु इनकी असफलताएँ किसी से छिपी नहीं। युद्धों, संघर्षों को रोकने के लिए निरस्त्रीकरण जैसे कितने ही समझौते हुए किन्तु उनमें से कोई भी अपने लक्ष्य को पूरा करने में सफल न हो सके। कागजों पर शान्ति एवं सुरक्षा की योजनाएँ बनती रहीं–प्रस्ताव पारित होते रहे–समझौते हुए किन्तु संघर्ष एवं तनाव की स्थिति में वे कारगर सिद्ध न हो सके। जिन देशों ने उन समझौतों को मानने के लिए अपने हस्ताक्षर किये वे स्वार्थों का टकराव होते ही भूल गये कि नैतिक दृष्टि से समझौते को मानने की उनकी जिम्मेदारी भी होती है। पिछला इतिहास इसी बात का साक्षी है कि गत दो दशकों में तो संघर्षों एवं युद्धों की संख्या सर्वाधिक बढ़ी है। कहा जा चुका है कि वर्तमान तनाव भरी परिस्थितियों के निर्माण में उपरोक्त तीन अवरोध ही प्रमुख कारण हैं। इनके रहते शान्ति स्थापना के लिए किये जा रहे प्रयास वृक्ष की जड़ के स्थान पर पत्तों के सींचने से फूल, फल प्राप्ति की उपहासास्पद कल्पना करने जैसे ही सिद्ध होंगे।

"हम अमुक देश के निवासी हैं। हमारे दायित्व देश की सीमा तक सीमित हैं। नीति-अनीति जैसे भी बने देश के हित के लिए किया जाना चाहिए।" देशों की इस साम्प्रदायिक नीति के कारण ही परस्पर विग्रह-तनाव बढ़ता है। स्वस्थ राष्ट्रीय भावना देश के विकास के लिए आवश्यक है और उपयोगी भी। जिस देश में जन्मे-पले, उनसे जुड़े सामाजिक एवं नैतिक दायित्वों का निर्वाह किया जाना चाहिए। देश के उत्थान के लिए कुछ सामाजिक मूल्यों एवं नियमों का निर्धारण होना भी महत्वपूर्ण है। किन्तु देशभक्ति जब साम्प्रदायिक रूप ले लेती है। तो विश्व शान्ति के ऊपर आघात पहुँचता है। राष्ट्रीय साम्प्रदायिकता को भड़काने में समय-समय पर अनेकों प्रकार के मनोवैज्ञानिक प्रयोग भी राजनेताओं एवं सत्ताधारियों द्वारा किये जाते रहे हैं। अठारहवीं शताब्दी में ब्रिटेनवासियों का नारा था कि "वे कभी दास नहीं होंगे, उनका जन्म शासन करने के लिए हुआ है। ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार इस नारे का ही प्रतिफल था। सदियों बाद भी यह श्रेष्ठता का दम्भ आज भी अँग्रेजों के मन में बना हुआ है। फ्रांसीसियों ने भी अपने देशवासियों को इसी नीति द्वारा भड़काया था। उनकी घोषणा थी कि "अशुद्ध रक्त से ही हमारी क्यारियों की सिंचाई हो।" यह अशुद्ध रक्त उनकी दृष्टि में आस्ट्रियावासियों का था। इसके विपरीत नेल्सन ने भी अपने सैनिकों से कहा था कि "फ्रांसीसी शैतान हैं। उसका आदेश था कि फ्रांसीसियों को समाप्त करना धर्म है।" इसका ही प्रतिफल था कि युद्ध के बारह वर्षों बाद तक भी उसके सैनिकों में फ्रांसीसियों के विरुद्ध आक्रोश बना रहा। जर्मनी में हिटलर ने भी इसी प्रकार का प्रचार किया था। उसका कहना था "जर्मनवासियों का जन्म विश्व पर शासन करने के लिए हुआ है।" कुछ ही वर्षों में उसने समस्त जर्मनी को नाजीवाद के रंग में रंग दिया। स्वयं तो वह नष्ट हुआ ही, राष्ट्र को भी युद्धोन्माद में ध्वस्त कर गया। आज भी यह प्रयोग जारी है। हाल ही में दो मुस्लिम देशों में छिड़े युद्धों को रोकने के लिए विभिन्न देशों द्वारा प्रयास किये गये हैं। एक देश के मूर्धन्य धर्म गुरु जिनके हाथों में शासन की बागडोर है, ने कहा कि "इस्लाम में दुश्मन से मैत्री करने का कोई प्रावधान नहीं है।" साम्प्रदायिकता को भड़काने के लिए जब धर्म, मजहब को भी दाँव पर लगाने की बात सोची जा रही है तो शान्ति स्थापना कर सकना कैसे सम्भव है ?

भौगोलिक दृष्टि से भी सभी देश बँटे हुए हैं। भू-भाग का क्षेत्र जितना जिसने कब्जा कर लिया, वह उस देश की सम्पत्ति है। किस देश को कितनी जमीन की आवश्यकता है, इस आधार पर तो कभी विभाजन हुआ ही नहीं। फलतः आबादी की दृष्टि से कम होते हुए भी अपने सैन्य बल से एक देश जरूरत से अधिक भूमि पर आधिपत्य बनाये हुए है। क्षेत्र विस्तार के लिए ही समय-समय पर युद्ध भड़कते हैं। देश की सीमाओं पर आये दिन घुसपैठ की घटनाएँ होती हैं और छिट-पुट गोली-बारी होती है। कितने ही व्यक्तियों की जानें जाती हैं। भू-भाग का विभाजन न होता ? उसे समस्त मानव जाति की सम्पत्ति माना गया होता तो यह स्थिति न आने पाती। प्रकृति प्रदत्त साधनों, तेल सम्पदा, खनिज सम्पदा की किसी देश में बहुलता है और किसी में न्यूनता। फलस्वरूप एक देश अत्यधिक सम्पन्न है और दूसरा साधनों की कमी के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कारण पिछडी स्थिति में पड़ा है–प्रगति नहीं कर पा रहा है। सब पर सबका आधिपत्य रहा होता तो यह विषमता की खाई नहीं दिखायी पड़ती।

देश की सुरक्षा के लिए प्रतिवर्ष प्रत्येक राष्ट्र द्वारा अपनी आय का एक बड़ा भाग खर्च करना पड़ता है। सभी देशों का यह खर्च जोड़ने पर यह राशि लगभग एक खरब, बहत्तर अरब, अठावन करोड़, बीस लाख डालर आती है। यह तो वे आँकड़े हैं जो व्यक्त हैं। अव्यक्त राशि इससे भी अधिक है। इतनी बड़ी धनराशि मात्र सुरक्षा के लिए खर्च हो रही है। जब तक भौगोलिक रूप से सभी राष्ट्र बँटे रहेंगे तब तक असुरक्षा बनी रहेगी।

इस समस्या का समाधान विश्व राष्ट्र के सपने को साकार करने से ही सम्भव है। जिस प्रकार एक देश के अन्तर्गत विभिन्न राज्य रहते हैं। सबके परस्पर सहयोग से देश की शासन व्यवस्था सुचारूपूर्वक चलती है। सभी प्रान्तों का सम्मिलित प्रयास एवं लक्ष्य देश की प्रगति का होता है। शासन की बागडोर एक के हाथों में होते हुए भी हर प्रान्त के लिए गवर्नर नियुक्त होते हैं, जो राज्य की व्यवस्था सँभालते हैं। प्रान्तों के बीच कभी आपसी टकराव अथवा संघर्ष की स्थिति नहीं आने पाती। ऐसे ही सम्पूर्ण विश्व के लिए एक शासन व्यवस्था बनानी होगी। समस्त विश्व एक राष्ट्र होगा, प्रान्तों की भाँति विभिन्न देश उसके हिस्से होंगे जो भौगोलिक दृष्टि से अलग-अलग दीखते हुए भी एक शासन तन्त्र से जुड़े होंगे। न्याय व्यवस्था एवं टैक्स की प्रणालियाँ एक जैसी होंगी। एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में आवागंमन की जिस प्रकार सुविधा रहती है, उसी तरह हर देश में जाने की छूट रहेगी। जो जहाँ बसना चाहेगा बस सकेगा। वस्तुओं का प्रत्यावर्तन एक देश से दूसरे देश में प्रतिबन्धित नहीं होगा। आजकल प्रगति एवं सम्पन्नता का एकांगी लाभ एक देश उठाता है। फलतः देशों के बीच अमीरी-गरीबी की खाई और भी अधिक चौड़ी होती जा रही है। जब समस्त विश्व एक राष्ट्र होगा तो प्रगति साधनों पर सम्पन्नता के उपयोग का एकांगी अधिकार किसी भी देश को न होगा।

विश्व सरकार एवं विश्व न्यायालय, शासन व्यवस्था सँभालेंगे। विश्व सरकार के नियन्त्रण में विश्व में सेना यदा-कदा उठने वाले संघर्षों पर नियन्त्रण रखेगी। प्रान्तीय पुलिस जिस तरह क्षेत्रीय अपराधों पर अंकुश रखती है, उसी तरह कार्य करती रहेगी। ऐसी स्थिति में युद्ध की परिस्थितियाँ नहीं आने पायेंगी। राष्ट्रवाद की स्वार्थपरता ही युद्धों को जन्म देती है। जब समस्त विश्व ही अपना देश है–एक परिवार है। तो कौन किससे युद्ध करेगा। विश्व राष्ट्र की यह कल्पना और उसके साकार होने से जुड़ी उपलब्धियों पर विचार करने मात्र से मन पुलकित हो उठता है।

विश्व एकता के मार्ग में दूसरा अवरोधक तत्व आड़े आता है धार्मिक एवं सांस्कृतिक मतभेदों का। प्राचीनकाल में एक ही सनातन और सार्वभौम धर्म था जो मत-मतान्तरों, साम्प्रदायिक भेदभावों से रहित होकर परस्पर एकता, समता, सद्भावना और आत्मीयता जैसे उदात्त भावों का प्रतिपादन करता था। नैतिक एवं सामाजिक दायित्वों का भली-भाँति परिपालन ही धर्म का प्रमुख लक्ष्य था। प्रचलित विभिन्न मत-मतान्तर तो कलेवर भर थे जो देश, काल की परिस्थितियों के अनुरूप बने थे। किन्तु अपने सांस्कृतिक परिवेश में रहते हुए भी वे इसी लक्ष्य की पूर्ति में संलग्न रहते थे। कालान्तर में विकृतियाँ आयीं और धर्म का स्थान सम्प्रदाय ने लिया। महान लक्ष्य गौण हो गया और कर्मकाण्ड ही प्रधान रह गये। फलस्वरूप धार्मिक क्रिया कृत्यों को ही सब कुछ माना जाने लगा, अमुक धर्म श्रेष्ठ है, अमुक छोटा, का अज्ञान एवं हठोन्माद पनपा। जिसने परस्पर द्वेष, घृणा और मतभेदों को जन्म दिया। जो कभी अलग-अलग संस्कृति के दीखते हुए भी नवनिर्माण में–मनुष्य के परिष्कार एवं विकास के महान लक्ष्य को पूरा करने में लगे रहते थे, अपने लक्ष्य को ही भूल बैठे। परिणाम सामने है धार्मिक सम्प्रदायवाद का विकृत स्वरूप।

विश्व राष्ट्र की भाँति विश्व धर्म का भी निर्धारण करना होगा। प्रत्येक धर्म के सनातन सिद्धान्त एक जैसे हैं। अन्तर मात्र उनके स्वरूप में है। स्वरूप की भिन्नता को न तो पूर्णतया समाप्त किया जा सकता है और न ही यह कहना श्रेयस्कर है क्योंकि उनके ऊपर उस देश की परिस्थितियों की भी छाप है। जो विकास में सहायक है। करना मात्र यह होगा कि सभी धर्मों, मजहबों को एक आदर्श, एक सिद्धान्त के नीचे लाना होगा जो देश, काल, जाति, वर्ण, रंग, वंश से परे हैं और मनुष्य को उदार, उदात्त, सद्भाव सम्पन्न बनाने में सहायक हैं।

अमुक सम्प्रदाय को मानने से ईश्वर प्रसन्न होता है और अमुक मत को मानने से अप्रसन्न, इस मान्यता में कोई तथ्य नहीं है। साथ ही अविवेकपूर्ण भी है। ईश्वर की प्रसन्नता, अप्रसन्नता सत्कर्मों अथवा कुकर्मों पर अवलम्बित है। न्याय नीति, सत्कर्म सद्भाव को अपनाकर ही उसका अनुग्रह प्राप्त किया जा सकता है। बिना गुण, कर्म, स्वभाव देखे किसी सम्प्रदाय विशेष को अपनाने मात्र से ईश्वर अपनी कृपा बरसाने लगे तो उसकी न्यायशीलता दूरदर्शिता कहाँ रही ? वस्तुतः सम्प्रदाय तो मनीषियों ने देश, काल की परिस्थितियों के अनुसार बनाये हैं। समयानुसार ही उनमें हेर-फेर भी होता है किन्तु शाश्वत धर्म तो मानवी कर्त्तव्य है, जिनका परिपालन हर कीमत पर होना चाहिए। इसी तथ्य को सभी धर्मावलम्बियों को न केवल हृदयंगम करना होगा वरन् परिपालन के लिए सहमत करना होगा। निस्सन्देह ऐसे सार्वभौम धर्म की आचार संहिता सर्वश्रेष्ठ आदर्शों एवं सिद्धान्तों का एक समन्वयात्मक स्वरूप होगा।

भाषाई भिन्नता के कारण परस्पर विचार-विनिमय में कितनी अधिक कठिनाई होती है, यह सर्वविदित है। यह वैज्ञानिक युग है। नित नये आविष्कार हो रहे हैं। ज्ञान की विविध धाराओं का प्रादुर्भाव होता है। किन्तु एक ही जानकारी दूसरे भाषाई क्षेत्र तक पहुँचने में वर्षों लग जाते हैं। फलस्वरूप आविष्कारों एवं उपलब्धियों का ठीक समय पर लाभ नहीं मिल पाता। समय ही नहीं अर्थ की दृष्टि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से भी ज्ञान के प्रसारण में भारी कठिनाई उठानी पड़ती है। भाषा की भिन्नता के कारण अलग प्रेस की व्यवस्था बनानी पड़ती है। टाईप, टाईपराइटर, मशीनें सभी भाषाओं के लिए अलग-अलग प्रकार की बनानी होती हैं। उनकी सीमित बिक्री होने के कारण वे महँगी भी पड़ती हैं। यदि एक लिपि को विश्व मान्यता प्राप्त हो जाय तो प्रेस तन्त्र की मशीनें सस्ती पड़ेंगी और पढंने-लिखने में भी सुविधा होगी।

भावनात्मक सम्बन्ध प्रगाढ़ बनाने में भी भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। एक भाषा के जानकार जब सुदूर क्षेत्रों में मिलते हैं तो शीघ्र ही घुल-मिल जाते हैं। भाषाओं की अनेकता एवं भिन्नता के कारण परस्पर दो भिन्न भाषाओं के जानकारों के बीच आत्मीयता के सूत्र सघन करने में भी कठिनाई होती है। परायापन जैसा लगता है। विश्व मानव के सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने में भी भाषा की एकरूपता विशेष रूप से सहायक सिद्ध होगी। ज्ञान की विविध धाराओं के प्रकाशन, अध्ययन, अध्यापन एवं शिक्षण एक भाषा के माध्यम से सुलभ हो जायें तो समस्त मानव जाति की प्रगति में भारी योगदान मिलेगा। विश्व के लिए ऐसी एक भाषा कौन-सी हो सकती है। जो सभी के लिए उपयोगी हो, उसके लिए गहन मन्थन, अन्वेषण करने की आवश्यकता होगी। विचारशील वर्ग, भाषाओं के विशेषज्ञों को इस निर्धारण के लिए प्रयास करने होंगे।

संसार के इतिहास में इससे पहले कभी शान्ति के लिए समष्टि मानव की इतनी तीव्र इच्छा और युद्ध के विरुद्ध ऐसी विस्तृत घृणा नहीं हुई है। यह एक संक्रान्ति काल है जिसमें मनुष्य जाति तीव्रतम परिवर्तन से होकर गुजर रही है। इतिहास ने वर्तमान पीढ़ी को एक ऐसे युग में लाकर छोड़ा है जिसमें यह आवश्यक है कि विचारशील वर्ग इस परिवर्तन को एक ऐसी दिशा में ले जायें जहाँ कि वह श्रेष्ठतम मानवी आदर्शों एवं विश्व मानव के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके। यह तभी सम्भव है जब सम्पूर्ण विश्व एवं सम्बन्धित मानव जाति को ध्यान में रखकर सोचा एवं निर्धारण किया जाय। जिसमें सर्वप्रथम आवश्यक है उपरोक्त तीनों अवरोधों को दूर करना।

विश्वराष्ट्र, विश्वधर्म, विश्व संस्कृति, विश्व भाषा के सपने को साकार करने से ही प्रस्तुत–अनेकानेक समस्याओं का समाधान सम्भव है। इन तीनों के समन्वय से विश्व मानव की एकता की स्थापना हो सकती है और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श केवल कल्पना न रहकर मूर्तिमान हो सकता है। परस्पर आपसी मतभेदों, विग्रहों, संघर्षों एवं युद्धों से बचाव इस अभिनव निर्धारण द्वारा ही सम्भव होगा। भेदभाव, पक्षपात और अलगाव की प्रवृत्तियों ने ही जन-जीवन को अगणित कठिनाइयों एवं उलझनों से भर दिया है और तृतीय विश्वयुद्ध की भयावह परिस्थितियाँ खड़ी कर दी हैं। एकता की दिशा में यदि मनुष्य जाति चल पड़े तो नर्क जैसा दिखायी पड़ने वाला यही संसार सुख-शान्ति से भरा-पूरा स्वर्गोपम बन सकता है। नव निर्माण की सार्वभौम भूमिका के लिए विश्व के हर विचारशील को आगे आना होगा।

विश्व परिवार का सपना सहकारी प्रयत्नों से साकार होगा

आर्थिक क्षेत्र में धीरे-धीरे यह मान्यता जड़ जमाती जा रही है कि सम्पदा उपार्जन में सहकारी सिद्धान्त ही अन्ततः फलप्रद सिद्ध होंगे। ग्रामीण क्षेत्रों में विकास के लिए सरकारी बैकों का तीव्रगति से विस्तार किया जा रहा है। बैंक प्रयत्नशील हैं कि सहकारी प्रयास से बचने वाले उत्पादनों में, पूँजी जुटाने में–उपार्जन को उचित मूल्य पर बिकवाने में–बिक्री न होने तक सामान को जमा रखने में वे अपनी पूँजी में सहकारी संगठनों की यथासम्भव सहायता करें। बड़े कारखाने भी एक प्रकार से श्रमिकों, कर्मचारियों के समन्वित प्रयत्नों के फलस्वरूप ही चल पाते हैं। मिल मालिकों का प्रयत्न रहता है कि श्रमिक यह अनुभव करें कि उनके प्रयास से उत्पन्न हुई उपलब्धियों के उपभोग का लाभ उन्हें भी मिलता है। इसके लिए वे सुविधाएँ बढ़ाने से लेकर-लाभांश को बोनस के रूप में बाँटने आदि का उपक्रम करते हैं।

साम्यवाद का प्रयोग और भी बड़ा है। उसमें समूचा उत्पादन शासन के स्वामित्व में जमा माना जाता है। किसे कितनी आवश्यकता है इसका निर्धारण करके उसे उतने सुविधा-साधन प्रदान कर दिये जाते हैं। साम्यवाद की शासन पद्धति के गुण-दोषों पर विचार न करके मात्र प्रयोग के सिद्धान्त की गहराई में प्रवेश किया जाय तो मालूम होगा कि साम्यवाद की सफलता का प्रमुख श्रेय सहकारिता के सिद्धान्त को ही है।

विश्व के अनेक देशों ने सहकारिता के सिद्धान्त को अपनाकर भौतिक क्षेत्र में असाधारण रूप से प्रगति की है। सहकारी संगठन कितने ही देशों में राष्ट्रीय उत्पादन का एक बड़ा भाग स्वयं पूरा कर रहे हैं। इजराइल जैसे छोटे से देश में कुल कृषि उत्पादन में सहकारी समितियों की भागीदारी ७५ प्रतिशत है। जापान में ये संगठन ३० प्रतिशत वस्तुओं के उत्पादन की आवश्यकता पूरी करते हैं। स्वीडन में भागीदारी का प्रतिशत २६ तथा टर्की एवं ताइवान में २० प्रतिशत है।

इजराइल में ६० प्रतिशत कृषि सहकारी संगठनों के हाथों में है। मिश्र में भूमि एवं कृषि सुधार योजना के अन्तर्गत ४० प्रतिशत कृषि सहकारी तन्त्रों के अधीन है। जर्मनी में कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी इस तरह की सहकारी समितियाँ क्रियाशील हैं। आवास एवं गृह निर्माण सम्बन्धी ११ प्रतिशत मामले सहकारी समितियाँ सँभालती हैं। ३५ प्रतिशत में सरकार का मिलाजुला योगदान है। नार्वे में २० प्रतिशत आवास व्यवस्था सहकारी संगठनों के जिम्मे है। उत्तरी योरोप में, औद्योगिक क्षेत्रों में सहकारी संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कृषि उद्योग तथा गृह निर्माण के क्षेत्र में ही नहीं वरन् शैक्षणिक प्रतिष्ठानों में भी सहकारी तन्त्रों को सक्रिय रूप में गतिशील रखा जा सकता है। अमेरिका, कनाडा के अतिरिक्त अन्य योरोपीय देशों में ऐसे अनेकों संगठन शिक्षा को लोकोपयोगी बनाने और विश्व बन्धुत्व की भावना विकसित करने के अपने स्तर प्रयत्नशील हैं। सन् १९५५ के एक आँकड़े के अनुसार २६ देशों में ऐसी समितियाँ थीं। ऐसा अनुमान है कि ८० देशों में छात्र सहकारी समितियाँ क्रियाशील हैं। इनमें से कुछ प्रमुख देश हैं– डेनमार्क, स्वीडन, यूनाइटेड किंगडम, फ्रांस, पोलैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, पाकिस्तान, जापान, श्रीलंका, मलेशिया, कोस्टरिका, रूस, वेल्जियम, यूगोस्लाविया, हंगरी तथा इजराइल। फ्रांस और पोलैण्ड में प्राथमिक एवं माध्यमिक शाखाओं को सुचारू रूप से चलाने में ये संगठन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सहकारिता की उपयोगिता एवं उपादेयता को समझने तथा जनजीवन में सहकारिता की प्रवृत्ति पैदा करने की दृष्टि से उपयोगी प्रशिक्षण के लिए कितने ही देशों में अनेकों कालेज सक्रिय हैं। 'कोआपरेटिव कालेज जापान' 'दि नेशनल एग्रीकल्चरल को आपरेटिव फैडरेशन कोरिया' एवं 'पोल्गोला' 'दि स्कूल ऑफ कोआपरेशन एवं एजूकेशन सेन्टर–जफना, 'श्रीलंका' 'इण्डोनेशिया' 'जाकार्ता स्कूल ऑफ एकोनॉमिक्स एण्ड विजनेस एडमिनिस्ट्रेशन' 'दि कोआपरेटिव ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट ऑफ थाईलैण्ड' आदि संस्थाओं में सहकारिता के प्रशिक्षण की सर्वांगीण व्यवस्था है।

जापान में घरेलू जीवन के विकास के लिए कितनी ही सहकारी समितियाँ क्रियाशील हैं। खाली समय के सदुपयोग द्वारा छोटे-मोटे कार्मों में प्रशिक्षण प्राप्त करके किस तरह घर की आर्थिक व्यवस्था अधिक अच्छी बनाई जा सकती है, उसकी ट्रेनिंग ये समितियाँ देती हैं। पाक विद्या, सिलाई, कढ़ाई, फलों एवं सब्जियों की सुरक्षा, आँगनवाड़ी, छतवाड़ी द्वारा शाग-सब्जी का उत्पादन, गुलदस्ते बनाना, फर्नीचर की टूट-फूट की मरम्मत, रेडियो, टेलीविजन आदि यन्त्रों का संचालन एवं गड़बड़ी को दूर करना, तेल, साबुन बनाना आदि दैनन्दिन जीवन में काम आने वाली जानकारियाँ गृहणियों को इन संगठनों के माध्यम से मिलती हैं।

सहकारिता का सबसे अधिक सफल प्रयोग बेल्जियम तथा अलवर्टा में हुआ है। इन देशों में ऐसी कोआपरेटिव इकाइयों का गठन हुआ है--जिसके सदस्य न केवल यहाँ के नागरिक हैं बल्कि अनेकों संस्थान भी उसके सदस्य के रूप में पंजीकृत हैं। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारें विभागीय प्रशासन भी गैर सरकारी सहकारी संगठनों के सदस्य हैं।

अपने देश में सहकारी आन्दोलन अभी शैशवावस्था में है। सरकार की देखरेख एवं नियन्त्रण में है। जहाँ तक वित्तीय सहायता का प्रश्न है पश्चिमी यूरोपीय देशों में ऐसी समितियाँ सरकार से किसी भी प्रकार की सहायता नहीं लेतीं। आपसी सहकार द्वारा उन्होंने अपना स्वतन्त्र अर्थतन्त्र विकसित कर लिया है। गैर सरकारी स्तर पर कितने ही सामूहिक प्रयोग किये जाने की अपने देश में भी गुंजाइश है। आर्थिक दृष्टि से पिछड़ापन शहरों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्र में अधिक है। आबादी की दृष्टि से ७५ प्रतिशत लोग अभी भी देहातों में रहते हैं। इनमें से ८० प्रतिशत की स्थिति अत्यन्त ही गई-गुजरी है। पचास प्रतिशत को एक समय ही रोटी मिल पाती है। नौकरी-धन्धे के लिए गाँव की युवा पीढ़ी नगरों की ओर भागती है। इसका कारण यह है कि शहरों में छोटे-मोटे काम रोजी-रोटी के लिए मिल जाते हैं। युवा श्रमशक्ति के नगरों की ओर पलायन से गाँवों की हालत और भी बदतर होती जा रही है। प्रतिभा, श्रमशक्ति तथा सम्पदा नगरों में केन्द्रित होती जा रही है। फलस्वरूप नगरों की समृद्धि तो बढ़ रही है पर गाँवों की गरीबी यथावत् है।

ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारिता के आधार पर कितने ही समृद्धि, सुख और शान्ति बढ़ाने वाले प्रयोग चल सकते हैं। देहातों की अर्थ व्यवस्था का प्रमुख स्रोत कृषि है। पर जनसंख्या के हिसाब से कृषि योग्य भूमि की मात्रा कम है। हर व्यक्ति किसान हो ऐसा सम्भव नहीं है। कृषि एवं लघु उद्योगों का समन्वित प्रयोग आसानी से चल सकता है। कम्युनिस्ट देशों में सरकारी फार्मों पर मिल-जुलकर सभी खेती करते हैं। छोटी-छोटी जोतें नहीं हैं। उन देशों में कृषि पर भी नियन्त्रण सरकार का है पर अपने यहाँ भी सहकारिता के आधार पर सामूहिक खेती का प्रयोग चल सकता है। छोटी जोतों के कारण समय, श्रम और धन तीनों की बर्बादी होती है। बड़ी जोतों के अपेक्षाकृत उनमें उत्पादन भी कम होता है। सामूहिक खेती करने की परम्परा चल पड़े तो इससे लाभ ही लाभ है। बर्बाद होने वाले समय, श्रम और धन की बचत होगी। अपनी जोत के हिसाब से हर व्यक्ति उत्पादन में भागीदार भी बन सकता है।

कृषि के साथ लघु उद्योगों को भी जोड़ दिया जाय तो गाँवों की बेकारी, बेरोजगारी का सर्वसुलभ हल निकल सकता है। मवेशियों का गोबर सस्ता और आसानी से देहातों में उपलब्ध होने वाला ऊर्जा स्रोत है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्पन्न हुई ऊर्जा संकट की गोष्ठियों में मूर्धन्य अर्थशास्त्रियों ने यह स्वीकार किया कि पशुओं के मल से बड़ी मात्रा में ऊर्जा की आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है। पशु धन भारत में सर्वाधिक है। लगभग २३ करोड़ गाय, बैल, भैंस आदि देश में हैं। उनके मल से गोबर-गैस प्लान्ट की स्थापना और उत्पन्न होने वाली ऊर्जा से घरेलू कामों के अतिरिक्त भी छोटे-छोटे उद्योगों को चलाने के लिए अभीष्ट परिमाण में ऊर्जा मिलती रह सकती है। कपड़ा, तेल, साबुन, खिलौने, मोमबत्ती, अगरबत्ती जैसी कितनी दैनन्दिन जीवन में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं का निर्माण कुटीर उद्योगों में हो सकता है। वस्तुओं, सामानों टूट-फूट की मरम्मत, आँगनबाड़ी, छतबाड़ी लगाने तथा छोटे उद्योगों को चलाने के लिए तकनीकी प्रशिक्षण की व्यवस्था भी देहातों में हो सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आर्थिक नहीं अन्य दृष्टियों से भी सहकारी जीवन का प्रयोग विशेष लाभकारी सिद्ध होगा। परस्पर मिलजुल कर रहने, साथ-साथ काम करने से आपसी स्नेह, सौहार्द्र विकसित होगा। सामाजिक जीवन में आधे से अधिक झगड़े तो मनुष्य की एकाकी जीवन जीने की प्रवृत्ति के कारण पैदा होते हैं। जमीन-जायदाद सम्बन्धी कितने ही मुकदमे न्यायालय में पहुँचते रहते हैं, जिससे आपसी मनमुटाव बढ़ने के साथ-साथ धन एवं समय की अत्यधिक हानि होती है। सहकारी जीवनक्रम में मतभेदों के पैदा होने की गुंजाइश कम रहेगी।

'ईच फार आल एण्ड ऑल फॉर ईच'–यह सिद्धान्त है सामूहिक जीवन का। अर्थात् प्रत्येक दूसरों के सुख-दुःख का ध्यान रखे, उनमें हिस्सा बँटाये और आवश्यकता पड़ने पर सहकार करे। सहकारी जीवन का प्रयोग सार्वभौमिक एवं सार्वजनीन होकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सपना चरितार्थ कर सकता है।

जेम्स पीटर वारबेसे नामक एक विद्वान अपनी पुस्तक 'ह्वाट इज कोआपरेशन" में लिखते हैं कि–"यदि सहकारी समितियाँ जीवन के हर क्षेत्र की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें तो शासनतन्त्र के ऊपर पड़ने वाला अनावश्यक दबाव कम होगा। इस तन्त्र में काम करने वाले अधिक कुशलता एवं जिम्मेदारी से प्रशासन एवं सुरक्षा के अन्य आवश्यक काम पूरा करते रह सकते हैं। अपनी एक अन्य पुस्तक 'कोआपरेटिव डैमोक्रेसी' में अपने मन्तव्य को उन्होंने और भी अच्छी तरह स्पष्ट किया है। उनका मत है कि परिपक्व सहकारी समितियाँ सरकार की विभिन्न शाखाओं का स्थान ग्रहण कर सकती हैं। उन्होंने सरकार एवं सहकारी समितियों के कार्यक्षेत्र का वर्गीकरण किया है कि सरकार को शासन एवं कानून व्यवस्था से सम्बन्धित होना चाहिए, जबकि सहकारी संगठनों को वस्तु व्यवस्था से।"

विश्व के मूर्धन्य अर्थशास्त्रियों एवं विचारकों का निष्कर्ष है कि समस्त मानव जाति की समृद्धि, सुख एवं शान्ति को बढ़ाने में सहकारी जीवन का सद्भाव भरा प्रयोग विशेष रूप से सफल सिद्ध हो सकता है। अन्यान्य देशों ने इस तरह के प्रयोग आरम्भ कर दिये हैं। अपने देश में सरकारी एवं गैर सरकारी दोनों ही स्तरों पर सहकारिता की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

दुराग्रह त्यागें, औचित्य अपनावें

जीवन सुखी तब होगा जब वह सरल और सुव्यवस्थित हो और ऐसा तब होगा जब विचारों में यथार्थता हो। हमारे उलझे हुए विचार सारे जीवन-क्रम को ही उलझा देते हैं और वह बौद्धिक उलझन, उद्विग्नता-खिन्नता एवं अस्त-व्यस्तता तथा अवास्तविकता हमें पग-पग पर अशान्त करती रहती है। यदि विचार पद्धित सही हो तो समस्याएँ ही उत्पन्न न हों और यदि उत्पन्न भी हों तो एक नहीं तो दूसरी तरह से हल हो जायँ। तब प्रसन्न, शान्त एवं सन्तुष्ट रहने में कोई विशेष बाधा न पड़े।

भ्रान्तियाँ हमारी शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों को बूरी तरह नष्ट करती हैं। जिस ईश्वर प्रदत्त सामर्थ्य का सदुपयोग करके हम प्रसन्नता एवं प्रफुल्लता का लाभ कर सकते हैं वे ही भ्रान्तियों के कारण बर्बाद होती रहती हैं। इस बहुमूल्य अवसर को हम पतंग की डोरी उलझने-सुलझने के गोरखधन्धे में समाप्त कर देते हैं और वह कुछ भी नहीं मिल पाता जो इस मानव-जीवन में मिलना चाहिए था। भ्रान्तियाँ हमारी सबसे बड़ी शत्रु हैं। अवास्तविक विचार हमें दिगभ्रान्त करते हैं। वे सच्चाई से दूर ऐसे कटीले झाड़-झंखाड़ों में घसीट ले जाते हैं जहाँ व्यथा एवम् परेशानियों के अतिरिक्त, क्लेश और कलह के अतिरिक्त, क्षोभ और असन्तोष के अतिरिक्त और कुछ मिलने वाला है ही नहीं। अतएव किसी विवेकशील व्यक्ति का प्रथम कर्त्तव्य यही है कि वह अपने विचार क्षेत्र में जड़ जमाये हुए वैसी भ्रान्तियों को समझे और उन्हें अपने मस्तिष्क में से उसी प्रकार उखाड़कर फेंक दें जिस प्रकार बुद्धिमान किसान अपने खेत में खरपतवार की जड़ें खोदकर भूमि की उर्वरता नष्ट होने से बचाता रहता है। यह मानसिक परिष्कार कर सकने में जिसे जितनी सफलता मिलती है, वह उतना ही सुखी और सन्तुष्ट रहता है।

मान्यताएँ और उनका निर्माण—अनेक स्तर के, अनेक परिस्थितियों के व्यक्तियों और समूहों ने देश, काल के अनुरूप समय-समय पर अनेक प्रकार के विचारों का विकास किया है। समय-समय पर उनमें सुधार भी होता रहा है। मनुष्य का सामाजिक एवम् बौद्धिक स्तर जिस हिसाब से घटा-बढ़ा है, उसी हिसाब से विचार-शैली में उतार-चढ़ाव आता रहा है। इन परिस्थितियों में जो विचारधारायें आज फैली हुई हैं वे सभी इस योग्य नहीं कि उन्हें उपयुक्त माना जा सके। इसी प्रकार प्राचीनकाल में भी जो विचारधाराएँ एवं मान्यताएँ प्रचलित थीं, वे आज की स्थिति में सही ही हों, यह कोई आवश्यक नहीं। अतएव वैयक्तिक एवं सामाजिक क्षेत्र में जो विविध मान्यताएँ प्रचलित हैं, उनमें से हमें उन्हें चुनना चाहिए जो सत्य के अधिकतम निकट और आज की परिस्थितियों के अधिकतम अनुकूल हों। यदि उस आधार पर विचारों का परिष्कार किया जा सका तो समझना चाहिए कि हमने अपने जीवन को सफल, समुचित एवं सुखी बनाने की एक बहुत बड़ी मंजिल पार कर ली।

जिस समाज या सम्प्रदाय में हम पैदा होते हैं उनमें कुछ मान्यताएँ वंश परम्परागत रूप से बनी चली आती हैं। जो जहाँ जन्मता है, बढ़ता और पलता है वहाँ की मान्यताओं को अपना लेता है, उनका अभ्यस्त और पक्षपाती बन जाता है। अनजाने ही वे उसे सत्य एवं अपरिहार्य प्रतीत होने लगती हैं। उसके प्रतिकूल जो कुछ है वह सर्वथा असत्य, अधर्म, अनुपयुक्त एवं अवांछनीय प्रतीत होता है यह पक्षपात जानबूझ कर भले ही पैदा न किया गया हो पर जिस वातावरण में वह रहता है, जो कुछ देखता है उसका अभ्यास अव्यक्त मन पर एक छाप छोड़ता है और वह धीरे-धीरे एक मान्यता बन जाता है। फिर उसे वही सत्य प्रतीत होने लगता है। मनुष्य में उचित, अनुचित के विवेचन की शक्ति तो है पर अक्सर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह जाग्रत तभी होती है जब कुछ नई बात सामने आती है। जब वही बात रोज-रोज सामने आती रहती है तो मन उसका ऐसा अभ्यस्त हो जाता है कि अनुचित होने पर भी उसका विरोध नहीं करता इतना ही नहीं वरन् उसका समर्थन भी करने लगता है।

आज विभिन्न व्यक्तियों एवं वर्गों की मान्यताएँ इसी आधार पर बनी और जमी हुई हैं। कोई यह नहीं सोचता हम कि जिन बातों के, जिस आचार-व्यवहार के, विचार-विश्वासों के आदी हो रहे हैं उनमें वास्तविकता का अंश कितना है और अवास्तविकता का कितना ? यह विवेचन तो तब हो सकता है जब मनुष्य का मस्तिष्क निष्पक्ष हो। जब मस्तिष्क में चिर अभ्यासों ने कोई बात जड़ जमाली है तो उसकी कमी कैसे समझ में आवे ? आमतौर से मनुष्य अपने को निर्दोष समझते हैं। किसी से उसकी त्रुटियाँ या कमियाँ कही जायँ तो आमतौर से वह उससे सहमत न होगा। इतना ही नहीं वरन् अपने ऊपर दोषारोपण करने, द्वेष रखने आदि के आरोप लगाकर उस बताने वाले से ही लड़ने-मरने को तैयार हो जायेगा। ऐसे कोई बिरले ही होते हैं जो दूसरों द्वारा बताई हुई अपनी दुर्बलताओं पर धैर्यपूर्वक, शान्तिपूर्वक, निष्पक्ष होकर विचार कर सकें और बताई हुई कमियों में, जो वस्तुतः हों उन्हें स्वीकार करें और सुधारने की तत्परता प्रकट करें। ऐसे लोग उँगलियों पर गिनने लायक ही होते हैं। अधिकांश की मानसिक बनावट अपने दोषों को स्वीकार न करने की होती है। कारण एक ही है कि उनका अन्तर्मन उन त्रुटियों का अभ्यस्त बना हुआ होता है, वे उन्हें न अखरती हैं और न बुरी लगती हैं, वे विस्मरण ही बनी रहती हैं, पक्षपाती मन ने जिन बातों को स्वीकार कर लिया है, अपने स्वभाव का एक अंग बना लिया है, वह उनमें न तो स्वयं दोष देख पाता है और न दूसरों द्वारा बताये जाने पर स्वीकार कर पाता है।

दुराग्रही मस्तिष्क—मस्तिष्क का दुराग्रही होना एक समस्या है और यह समस्या औसत दर्जे के हर आदमी के सामने रहती है। जिस तरह श्याम घटाओं के घनघोर घटाटोप में निकले हुए सूर्य पर चन्द्रमा के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं, उसी प्रकार मानसिक पक्षपात वास्तविकता को देखने-समझने में बुद्धि को असमर्थ बना देता है। इतना ही नहीं, मस्तिष्क में एक और विशेषता है कि वह अपनी मान्यताओं के समर्थन में अनेक तरह के तर्क, प्रमाण, उदाहरण ढूँढ़ लेता है, न मिलें तो तथ्यों को तोड़मरोड़ कर अपने अनुकूल बना लेता है।

देखा गया है कि वकील लोग अपने मुवक्किल को मुकद्मा जिताने के लिये अनेक तर्क न्यायाधीश के सामने प्रस्तुत करते हैं। इस सिलसिले में वे झूठे, तोड़े-मरोड़े हुए तर्कों का भी आश्रय लेते हैं। केवल उनकी एकपक्षीय बात ही सुनी जाय तो प्रतीत होगा कि वे जो कुछ प्रतिपादित कर रहे हैं वही सही है। सुनने वाला उन्हीं बातों से प्रभावित हो जाता है किन्तु जब दूसरा वकील उसके विपरीत पक्ष का प्रतिपादन करता है तब बात कुछ से कुछ, कई बार तो सर्वथा विपरीत दिखाई पड़ती है। यदि एकांगी एक पक्ष की बात ही सुनी-समझी गई होती तो न्यायाधीश का भी भ्रमित हो जाना सम्भव था, पर जब दोनों पक्षों की बात ध्यानपूर्वक वह सुन लेता है और अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से यह निष्कर्ष निकालता है कि दोनों पक्षों के प्रतिपादित तर्कों और तथ्यों में औचित्य कितना है। तभी वह ठीक नतीजे पर पहुँचता है और उचित फैसला सुनाता है। यह बात हर व्यक्ति के बारे में लागू होती है। यदि उसने अपने मस्तिष्क को एकांगी, पक्षपाती बना रखा है तो उसका प्रतिपादन कभी नहीं हो सकता। सच्चाई तक यदि पहुँचना हो तो वही तरीका है जो न्यायाधीश समझता है, दोनों पक्ष की दलील सुनने के बाद, दोनों में से किसी के प्रति भी झुकाव न रखकर जो निष्कर्ष निकाला जायेगा वास्तविकता उसी में होगी।

प्रचलित मान्यताओं और विचारधाराओं में से किसमें कितना सत्य और कितना असत्य है ? यह जानना हो तो एकपक्षीय नहीं वरन् उसी मान्यता से सर्वथा विपरीत तथ्यों को भी सामने रखना होगा। अन्यथा मस्तिष्क ऐसी दिलचस्प वकालत कर रहा होगा कि उसी की पूर्व मान्यताएँ जीतें, सही प्रतीत हों। आमतौर से हमारे मस्तिष्क पक्षपाती वकील की भूमिका प्रस्तुत करता रहता है, उसके प्रतिपादन कई बार बहुत जोरदार और विलक्षण होते हैं। यदि मस्तिष्कीय उर्वरता अधिक हुई, उसमें शिक्षा एवं भावुकता का भी समन्वय रहा तो प्रायः ऐसा होता है कि लगभग असत्य, अवास्तविक एवं अनुपयोगी तथ्य भी सत्य, वास्तविक एवं उपयोगी जैसे प्रतीत होते रहते हैं। पिछले दिनों विभिन्न क्षेत्रों में, विभिन्न स्तर के दिमागी उर्वरता वाले व्यक्ति हुए हैं और उन्होंने अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुरूप अनेक प्रतिपादन गढ़कर तैयार कर दिये हैं वे आज एक प्रकार से 'वाद' या 'शास्त्र' बने बैठे हैं। लाखों करोड़ों व्यक्ति उनके अनुयायी बनते हैं। कई बार उनमें परस्पर सर्वथा विपरीतता होती है। अनुयायी वर्ग अपने पक्षों को सही मानते रहते हैं और सामने वालों को गलत बताकर उनके साथ लड़ने-मरने को तैयार बने रहते हैं।

अनेक स्तर के पक्षपात—देश, धर्म, जाति, वर्ग, सम्प्रदाय, भाषा, प्रान्त आदि के आधार पर आज अनेक प्रकार के पक्षपात प्रचलित हैं। जो जिस वर्ग में है वह उसी को प्रधानता देता है। अपने पक्ष की अनुचित बातों का भी समर्थन करता है और प्रतिपक्षी की मान्यताओं को सुनने-समझने तक को तैयार नहीं होता। यहीं से द्वेष और संघर्ष की नींव जमती है। आये दिन संघर्ष और द्वेष इसी आधार पर होते रहते हैं। यदि यह विवेक जाग्रत हो जाय कि हम एकांगी एवं पक्षपातपूर्ण ढंग से सोचने की अपेक्षा प्रतिपक्षी विचारों, मान्यताओं और आदर्शों को भी सामने रखना सीख लें और उनका तुलनात्मक विश्लेषण करके तब दोनों में जो उचित हो उसका समर्थन करने लगें तो सत्य के निकट पहुँच सकना सम्भव हो सकता है। सत्य को समझने और अपनाने की स्थिति में यदि हम पहुँच जायें तो निःसन्देह आज की तीन-चौथाई समस्याओं का समाधान एवं कठिनाइयों का हल निकल सकता है। सामाजिक एवं वैयक्तिक प्रगति का अवरुद्ध मार्ग देखते-देखते खुल सकता है। द्वेष-दुर्भावों का स्थान प्रेम एवं सौजन्य ग्रहण कर सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हमें निष्पक्ष विचारक की दृष्टि रखकर प्रत्येक समस्या पर विचार करना चाहिए और सत्य के समीप पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रयास से ही यह मार्ग मिलेगा जो समाधानकारक एवं शान्तिदायक है। सामान्य लोगों से कुछ ऊँचे स्तर पर उठकर ही मान्यताओं की परख हो सकती है। इसके लिए विशाल दृष्टिकोण चाहिए, जिस सम्बन्ध में विचार करने को हों उसके पक्ष और विपक्ष सभी पहलू सामने रखने चाहिए और अपने निष्पक्ष-विवेक को न्यायाधीश बनाकर यह देखना चाहिए कि वास्तविकता कहाँ हो सकती है ? अपनी मान्यताओं के प्रति मोह और दूसरों की मान्यताओं के प्रति द्वेष यदि हम रखें रहेंगे तो वस्तुस्थिति को जानना कैसे सम्भव हो सकेगा।

प्रश्न सामने उपस्थित है कि भूत और उसके उपद्रवों में कितनी सच्चाई है ? इसका हल ढूँढ़ने के लिये यदि हम भूतों पर विश्वास करने वाले, उन्हें पूजने वाले लोगों के द्वारा कही हुई बातों और की हुई क्रियाओं पर ही भरोसा कर लें, तो फिर इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं कि उन मान्यता वाले लोगों ने जो कुछ कहा या माना है उसे ही आप भी स्वीकार कर लें। सच्चाई तक पहुँचने के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है। देखना यह होगा कि संसार के अन्य देशों में भी भूत की करतूत पर विश्वास किया जाता है या नहीं, लोग उन्हें मानते-पूजते हैं या नहीं, उन्हें भूतों के उपद्रवों का शिकार होना पड़ता है या नहीं ? इस सम्बन्ध में अधिक ढूँढ़-खोज करने पर पता चलेगा कि सभ्य, शिक्षित एवं विचारशील लोगों में न भूत माने जाते हैं, न पूजे जाते हैं, न उन्हें उनके उपद्रव सहने पड़ते हैं। यह बीमारी केवल अज्ञानी, अन्धविश्वासी एवं बहके हुए लोगों में ही पाई जाती है। वस्तुतः भूतों का यह अस्तित्व होता तो बुखार, खाँसी, दर्द, दस्त आदि की तरह उनका प्रकोप भी शिक्षित, अशिक्षित, सभ्य-असभ्य सभी को सहना पड़ता, किन्तु ऐसा होता नहीं। हिन्दुओं के अन्धविश्वासी वर्ग को छोड़कर यह व्यथा अन्य मजहब वालों में भी नहीं। ईसाई, मुसलमान, यहूदी, पारसी अपने धार्मिक विश्वास के कारण भूत का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते, फलस्वरूप उनको यह भूतवाद की बीमारी देखने को नहीं मिलती। कुछ है भी उतना ही जितना कि उनकी मान्यताओं के अनुकूल है। वे मान्यताएँ पिछड़े हिन्दुओं की मान्यताओं से सर्वथा भिन्न हैं। इस स्थिति पर विशाल दृष्टिकोण से विचार करने पर किसी विवेकशील को इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि भूत और कुछ नहीं, मान्यताओं का और विश्वासों का प्रतिफल मात्र है। यह स्वीकार करते समय सम्भव है अपनी अब तक की मान्यताओं के असत्य सिद्ध होने की बात सामने आये तो अपने आपको धक्का लगे, जिन्हें यह निष्कर्ष बताया जाय वे अप्रसन्न हों, विरोध करें, मूर्ख बतावें फिर भी सत्य के समीप पहुँचने के लिए जो वास्तविकता है, उसी को स्वीकार करने की दृढ़ता अपनानी चाहिए। यदि ऐसा साहस न किया जा सका तो हम भ्रान्त धारणाओं में ही विचरण करते रहेंगे और उस भ्रान्ति के कारण होने वाली हानियों को भी उठाते रहेंगे।

दूसरे पहलू पर भी सोचें—प्रश्न सामने है कि पर्दा में रहने से स्त्रियों का शील-सदाचार बना रहता है और घूँघट न मारने से शील चला जाता है। इस प्रश्न का सही उत्तर पर्दा समर्थक लोगों की मान्यताओं और तर्कों को सुनने मात्र से प्राप्त नहीं हो सकता वरन् यह देखना होगा कि जो स्त्रियों पर्दा नहीं करतीं क्या वे दुराचारिणी होती हैं। राजस्थान, उत्तरप्रदेश, बिहार की कुछ जातियों में सर्वत्र पर्दा होता है। इन प्रान्तों में भी अधिकांश जातियाँ ऐसी हैं जिनमें पर्दे का कोई रिवाज नहीं है। फिर बंगाल, गुजरात, आसाम, महाराष्ट्र, पंजाब, हिमाचल, मद्रास, आन्ध्र आदि प्रान्तों की स्त्रियाँ तो जानती भी नहीं कि पर्दा किस चिड़िया का नाम है ? कुछ मुसलिम देशों को छोड़कर संसार में कहीं भी स्त्रियाँ पर्दा नहीं करतीं। क्या यह ९१ फीसदी पर्दा न करने वाली महिलाएँ दुराचारिणी हैं ? क्या पर्दा करने वालियों में सभी सदाचारिणी हैं ? इस बात पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने ये यह बात सामने आ जाती है कि पर्दा करने का दुराचार से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो कुछ लोगों की मान्यता भर है। लाभ-हानि की दृष्टि से सोचा जाय तो भीं यही प्रतीत होता है कि स्वास्थ्य खराब होने से लेकर अनुभवहीन बने रहने तक हर प्रकार की उससे हानियाँ हैं। यदि इस तरह विवेकपूर्वक विशाल दृष्टिकोण से निष्पक्षतापूर्वक विचार कर सकना सम्भव हो तो ही पर्दा की मान्यता वाले परिवार का कोई व्यक्ति सत्य को समझने या स्वीकार करने के लिए तत्पर हो सकता है। अन्यथा उसके वंश में जो कुछ माना जाता है उसी का समर्थन करना होगा। जो कोई उसको गलत बताये उससे लड़ने-मरने को तैयार होना होगा। ऐसे व्यक्ति क्या कभी भी सत्य और तथ्य तक पहुँच सकेंगे ?

भारत में कितनी ही मान्यताएँ ऐसी हैं जो पत्थर की लकीर की तरह सच मानी जाती हैं। अमुक वंश में जन्म लेने वाले ऊँचे और अमुक वंश में जन्मने वाले नीचे होते हैं। अपनी जाति वाले के सिवाय और किसी के हाथ की छुई रोटी खा ले तो धर्म भ्रष्ट हो जायेगा' 'भाग्य में जो लिखा होगा वह होगा, 'बेचारे मनुष्य का उस पर कुछ वश नहीं। ग्रह, नक्षत्र मनुष्य को सुख-दुःख देते हैं—जैसी भ्रान्त मान्यताएँ औसत हिन्दू के मस्तिष्क में गहराई तक जड़ जमाएँ बैठी होती हैं। तर्क, विवेक, कारण, प्रमाण आदि के आधार पर इन मान्यताओं की समीक्षा की जाय तो आदि से अन्त तक निरर्थक सिद्ध होती हैं। संसार के अन्य देशों में कोई इन बातों पर विश्वास नहीं करता है। जो करते हैं वे विज्ञ व्यक्तियों की दृष्टि से उपहासास्पद एवम् मूढ़तावादी माने जाते हैं। पर इस तरह का प्रतिपादन कर सकना उन लोगों के लिए बहुत कठिन है जो इन्हीं मान्यताओं में पले हैं। जिन्होंने यही सब देखा और सुना है वे यह कैसे सहन करें कि उनकी अब तक की मान्यताओं को निरर्थक बताया जाय। इसमें तो उनकी मूर्खता सिद्ध होती है। लोग इन मान्यताओं को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेते हैं, जो इन बातों की निरर्थकता बतावे उसे द्रोही,

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नास्तिक आदि न जाने क्या-क्या बताते हैं। अपनी गलतियों को सुनना, समझना, स्वीकार करना और छोड़ना असाधारण बौद्धिक साहस का चिन्ह है। ऐसा साहस उन्हीं में हो सकता है जो निष्पक्षता एवम् विवेकशीलता को अपना अवलम्बन बनाते हैं। दुर्वीन के शीशे को आँख पर लगाने से ही उन बारीक कीटाणुओं को देखा जाना सम्भव हो सकता है जो खुली आँखों से नहीं दीखते। इसी प्रकार अपनी व्यक्तिगत या सामूहिक गलतियों को परखना केवल उन्हीं के लिए सम्भव है जो निष्पक्षता और विवेकशीलता के दो काँचों पर खुर्दवीन का सहारा लेते हुए सत्य की शोध के लिए आगे बढ़ते हैं।

कौन गलत कौन सही—हिन्दू की दृष्टि में मुसलमान के विचार गलत हैं और मुसलमान की दृष्टि में हिन्दू के। हिन्दू मुसलमान को म्लेच्छ कहता है और मुसलमान हिन्दू को काफिर। दोनों एक-दूसरे के अवतारों और शास्त्रों को अप्रामाणिक बताते हैं। ऐसी दशा में एक-दूसरे से घृणा ही कर सकते हैं, विरोधी ही रह सकते हैं। पिछले दिनों होता भी ऐसा ही रहा है। धार्मिक मतभेदों के कारण योरोप और एशिया में कितना भयानक रक्तपात हुआ है, इसे इतिहास के विद्यार्थी भली प्रकार जानते हैं। यदि जनता में इनता विवेक जाग्रत रहा होता कि इन धर्मों में से जो उपयोगी बातें हैं, उन्हें स्वीकार कर लें और जो विवादास्पद हैं उन्हें पीछे कभी निर्णय होने के लिए छोड़ दें तो घृणा और द्वेष न करने की समस्या आसानी से हल हो सकती है। यदि दोनों पक्ष अपनी-अपनी मान्यताओं को ही ईश्वर की बताई हुई, शास्त्र में लिखी हुई कहकर पत्थर की लकीर मानते रहे तो मतभेद का और इसके कारण उत्पन्न होने वाले द्वेष का कभी अन्त न होगा। विवेक की पहली माँग यह है कि कोई भी व्यक्ति अपनी या अपने परिवार की मान्यताओं को सर्वथा निर्भ्रान्त न माने, यह सोचकर चले कि मनुष्य अपूर्ण है, उसकी मान्यताएँ भी अपूर्ण हैं इसलिए सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागने के लिए सर्वथा उद्यत रहा जाय जो विवेक की इस पहली माँग को स्वीकार कर लेगा. वह इतना उदार भी होगा कि दूसरों द्वारा प्रतिपादित मान्यताओं के उपयोगी अंश को स्वीकार करे, अपने पक्ष में अनुपयोगी प्रतिपादन को स्वीकार करने के लिए साहस कर सके। इस प्रकार की मनोभूमि बनाने पर ही हम भावनात्मक एकता एवम् विश्व प्रेम की दिशा में आगे बढ़ सकेंगे।

संकीर्णतावादी राष्ट्रवाद की हानियों को लोग समझने लगे हैं। पिछले दिनों इसी भावना से प्रभावित लोग दूसरे देश या धर्म के लोगों पर आक्रमण करने को देशभक्ति मानते रहे हैं। लाखों, करोड़ों लोगों का खून इस संकीर्ण राष्ट्रवाद द्वारा उपजे हुए उन्माद ने बहाया है। इस तथ्य को समझते हुए अब लोग इस तरह सोचने लगे हैं कि राष्ट्रवाद के स्थान पर विश्ववाद माना जाय। प्रत्येक व्यक्ति अपने को विश्व नागरिक माने और सभी देश, अपने को एक विश्व परिवार का अंग या सदस्य समझें। राष्ट्रसंघ की स्थापना इसी उद्देश्य को लेकर हुई है। उद्देश्य यह है कि एक विश्व राष्ट्र बनाया जाय और विभिन्न देश उसके प्रान्त बनकर रहें। यह आदर्श बहुत ही उपयुक्त है। यह विचार जितना ही कार्यान्वित होगा, राष्ट्रवाद के नाम पर होने वाले संकटों से मानव जाति को उतनी ही सुरक्षा होगी। अभी राष्ट्रसंघ बहुत दुर्बल स्थिति में है पर जैसे-जैसे वह सबल होगा वैसे ही राष्ट्रों की एकता बढ़ेगी और विश्व-शान्ति का पथ प्रशस्त होगा।

ठीक उसी तरह हमें विश्वधर्म, विश्वदर्शन, विश्व-भ्रातृत्व, विश्व-संस्कृति या विश्वभाषा की स्थापना करनी होगी। मतभेदों में नष्ट होने वाली शक्ति की बचत इसी से होगी और उस बची हुई शक्ति को जब टकराने की अपेक्षा सहयोगपूर्वक प्रगति पथ पर अग्रसर होने में व्यय किया जायेगा तब संसार की स्थिति ही दूसरी होगी, आज का नरक कल स्वर्ग में परिणित होगा। युग निर्माण का आधार यही है। अनैक्य को हटाते हुए ऐक्य की ओर बढ़ने, द्वैत को समाप्त कर अद्वैत की स्थापना करने के लिये जब हम बढ़ने लगें तो समझना चाहिये कि नवयुग का, सतयुग का सूत्रपात हो गया।

संघर्षों का मूल कारण—दुराग्रह संघर्षों का मूल कारण है। अपने प्रतिपादन को ही हम समझते रहे और दूसरों के कथन को अमान्य ठहराते रहे तो कभी यह अवसर न आवेगा, जब दो भिन्न विचारधारा के लोग किसी निष्कर्ष पर पहुँच सकें, सच्चाई तलाश कर सकें और एकता का लक्ष्य प्राप्त कर सकें। यदि धर्म के नाम पर पले हुए राग-द्वेष को मिटाना हो तो उसका एक ही उपाय है कि हम अपना मस्तिष्क इतना चौड़ा करें जिसमें दूसरे पक्ष की बातें समझने और उनमें जो उपयुक्त हों उनका उदारतापूर्वक समर्थन करने का साहस कर सकें। इसी तरह अपनी मान्यताओं में जो त्रुटि दिखाई पड़े उसे एक सत्यशोधक की तरह हिम्मत के साथ स्वीकार कर सकें। यह उदारता, विशालता, दूरदर्शिता एवम् विवेकशीलता ही विश्वशान्ति का एकमात्र आधार हो सकती है। आये दिन किसी न किसी कारण टकराते रहने की प्रक्रिया का अन्त इसी रास्ते पर चलने से होगा।

विश्वधर्म का स्वरूप क्या हो ? इसका निर्धारण करने वाले किसी भी धर्म के प्रति राग-द्वेष न करने वाले होंगे और जहाँ कहीं भी अच्छी मान्यताएँ, भावनाएँ एवम् परम्परा देखेंगे वहीं से तिनके चुन-चुनकर वया पक्षी की तरह एक नया घोंसला बनायेंगे। यदि उस निर्धारण करने वाली सभा में ऐसे सदस्य हुए जो अपने धर्म की मान्यताओं को ही सत्य बतावें तो उनका पक्षपात ही उस विश्वधर्म के निर्माण का मार्ग अवरुद्ध कर देगा। इन लोगों को पूर्णतया निष्पक्ष रहना होगा और विवेक को ही सर्वोपरि आधार मानना होगा। हो सकता है कि किसी धर्म से अधिक, किसी से कम बातें इकट्ठी की जायें पर ऐसा किसी पक्षपात के कारण नहीं वरन् विशुद्ध विवेक के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आधार पर ही होगा। विश्वव्यापी नैतिकता की परिभाषा करते हुए भी तब यही ध्यान रखा जायेगा कि औचित्य एवम् तथ्य कहाँ कितना है ? नैतिकता के नाम पर संसार के विभिन्न क्षेत्रों में आज अगणित अवांछनीय मान्यताएँ फैली हैं। जिन बातों को लोग नैतिक माने बैठे हैं, उनमें से कितनी ही ऐसी हैं जिन्हें घोर अनैतिकता ही घोषित किया जा सकता है। माँसाहार आज अधिकांश देशों में नैतिक माना जाता है, उसे खाते हुए लोग कोई अनुचित बात नहीं मानते, मुसलमान कुर्बानी के नाम पर और हिन्दू बलिदान के नाम पर कितने ही निरीह प्राणियों का नृशंस बध कर डालते हैं और समझते हैं उसने धर्म कमाया, देवता को, ईश्वर को प्रसन्न किया। आज यदि इन बातों का विरोध किया जाय तो जिसकी मान्यता पर चोट पहुँचेगी वह तिलमिला उठेगा और लड़ने-मरने पर उतारू हो जायेगा, पर यदि विश्वधर्म बना और नैतिकता की परिभाषा विवेक एवं न्याय के आधार पर की गई तो मनुष्य हत्या की भाँति पशु हत्या को भी अनैतिक अपराध ठहराया जायेगा। जो अब तक उसे नैतिक मानते रहे हैं वे सम्भव है इसका विरोध करें, पर न्याय किसी विरोध की परवाह न करेगा। जो सत्य है, जो उपयुक्त है उसका ही समर्थन करेगा।

विश्व समाज का जब निर्णय होगा तब उससे किसी वंश में उत्पन्न होने के कारण किसी को ऊँचा या नीचा न ठहराया जा सकेगा। अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि देशों में गोरी चमड़ी वाले अपनी श्रेष्ठता इस आधार पर प्रतिपादित करते हैं कि वे गोरे हैं और उन देशों के मूल निवासियों के नागरिक अधिकारों का हनन इसलिये करते हैं कि वे काले रंग वंश में पैदा हुए हैं। जर्मनी के हिटलर ने जर्मन वंश को संसार के अन्य लोगों की अपेक्षा केवल जन्म वंश के आधार पर श्रेष्ठता प्रतिपादित की थी। भारत में करोड़ों किसान जो हर दृष्टि से एक-सी स्थिति में हैं अपने को जन्म वंश के कारण श्रेष्ठ या निकृष्ट मानते हैं विद्या, योग्यता, प्रतिभा, सेवा आदि के आधार पर किसी का ऊँचा-नीचा होना समझ में आता है, पर वंश मान्यता से किसी को ऊँचा-नीचा ठहराया जाय इसमें कोई तुक नहीं। जब विश्व समाज बनेगा तब मनुष्य मात्र का सम्मान एवम् अधिकार समान होगा। भले ही इस घोषणा को आज वंश श्रेष्ठता मानने वाले लोग कितना ही विरोध क्यों न करें, विवेक एवम् न्याय उन विरोधों की रत्ती भर परवाह न करेगा।

समान न्याय समान अधिकार—विश्व समाज में नर और नारी समान रूप से सम्मानित होंगे, दोनों समान सदस्य माने जायेंगे, दोनों को एक अधिकार मिलेंगे और दोनों को समान रूप में नियम एवं मर्यादाओं का पालन करना पड़ेगा। आज दोनों के अधिकारों में काफी अन्तर है। भारत जैसे रूढ़िवादी देशों में तो वह जमीन आसमान जैसा है। यौन सदाचार की मर्यादाएँ उल्लंघन करने में पुरुष अपने को पूर्ण स्वतन्त्र मानता है, पर स्त्री के सम्बन्ध में यदि सन्देह भी हो जाय तो उसकी जान की खैर नहीं। पुरुषों के लिये विधुर होने पर विवाह करने का छूट है, वे बहुपत्नी भी रख सकते हैं, परस्त्रियों के साथ अमानुषिक अत्याचार कर सकते हैं। मारना-पीटना, परित्याग कर देना, तरह-तरह से सताना अधिकार माना जाता है, पर स्त्रियाँ वैसा नहीं कर सकती हैं। उन्हें पुरुषों जैसे अधिकार नहीं हैं। इस भेद-भाव का कोई औचित्य नहीं। अन्याय, अत्याचार एवम् पक्षपात ही इस मान्यता के पीछे हुँकार करता है। जब विश्व समाज की रचना होगी तो विवेक एवम् न्याय दोनों के अधिकारों का समान रूप से समर्थन करेगा। यदि घूँघट मारना ही उचित होगा तो उसे स्त्रियाँ ही नहीं पुरुष भी मारेंगे। जो भी नियम, धर्म, कर्त्तव्य, प्रतिबन्ध होंगे दोनों पक्षों के लिये समान होंगे। आज जिस पुरुष समाज को विशेष अधिकार मिले हैं वे सम्भवतः अपनी मान्यताओं पर चोट पड़ते देखकर तिलमिलायें और कटु विरोध करें, किन्तु विश्व समाज की रचना करने वाले किसी का पक्षपात न करेंगे, न्याय ही उनका एकमात्र सम्बल होगा। उन्हें जो कुछ सोचना या करना होगा वह औचित्य, सत्य एवम् विवेक के आधार पर ही करना होगा।

परोक्ष मान्यताएँ और उनका आधार—अदृश्य एवं अप्रमाणित धार्मिक एवं दार्शनिक मान्यताओं के सम्बन्ध में भी ऐसी समन्वयात्मक विचार पद्धति का प्रयोग करना होगा। मरने के बाद क्या होता है ? देवताओं सम्बन्धी मान्यता, सृष्टि का निर्माण, अति भूतकाल का इतिहास, पौराणिक चमत्कारी गाथाएँ जैसे विषयों में संसार के विभिन्न भागों में विभिन्न धर्मों में विचित्र प्रकार की मान्यताएँ प्रचलित हैं। वे एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। उनके तर्क और निष्कर्ष भी ऐसे हैं जो उन पर विश्वास करने वालों की मान्यताओं की ही पुष्टि करते हैं। इन सबको एक जगह एकत्रित कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परीक्षण किया जाय तो लगता है कि यह सभी लगभग अनगढ़ हैं और उनके पीछे न कोई तर्क है और न प्रमाण है, चूँकि वे किम्बदन्तियाँ बहुत दिनों से प्रचलित हैं, पिछले लोगों द्वारा कही जाती रही हैं या कहीं लिखी हुई हैं इसलिए लोग उन पर विश्वास करते हैं। जाहिर है कि यदि यह मान्यताएँ साधारण रही होतीं तो उनमें भिन्नता न होती। बिजली कैसे उत्पन्न होती है, बादल कैसे बनते हैं, शरीर के कल-पुर्जे किस प्रकार क्या काम करते हैं, रोग कैसे उत्पन्न होते हैं, जैसे विषयों पर संसार भर में एक-सी मान्यताएँ हैं। सत्य सार्वभौम होता है उसे खण्डों में नहीं बाँटा जा सकता। उदारता, श्रमशीलता, ईमानदारी आदि गुण यदि अच्छे हैं तो सभी जगह उन्हें उचित बताया जायेगा। हिन्दू के लिए श्रमशीलता अच्छी और मुसलमान के लिए बुरी हो ऐसा नहीं हो सकता। इसी प्रकार उद्देश्य एवं अज्ञात दार्शनिक बातें जिनके पीछे कोई प्रमाण नहीं हैं, एक सुखद कल्पना ही मानी जा सकती है और वे चाहे कितनी ही पुरानी क्यों न हों, किसी भी व्यक्ति या पुस्तक द्वारा प्रतिपादित क्यों न हों।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जरूरी नहीं कि जिन अविज्ञात विषयों की जानकारी अभी पूरी तरह प्राप्त नहीं की जा सकी है, उनके सम्बन्ध में कोई उल्टे-सीधे उत्तर पढ़कर झूठा आत्म-सन्तोष किया जाय। मनुष्य की बुद्धि अल्प है। उसके द्वारा प्रकृति के रहस्यों का बहुत स्वल्प उद्घाटन अभी तक हुआ है, सारे रहस्यों को तो वह कभी भी न जान, सकेगा। इसलिए अच्छा यही है कि जिन्हें हम प्रामाणिक रूप से नहीं जानते उनके बारे में यही मानें कि अभी इन रहस्यों का उद्घाटन नहीं हुआ है। आकाश में अवस्थित ग्रह-नक्षत्रों की धरातल पर क्या स्थिति है, इसे हम नहीं जानते, क्योंकि मानव-बुद्धि की पहुँच अभी उतनी दूर तक नहीं हुई है। ऐसी दशा में कोई अनगढ़ कल्पनाएँ गढ़ने की अपेक्षा यही उचित है कि हम अपनी अल्पज्ञता स्वीकार करें और उस उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करें जबकि इन अदृश्य अभिमत रहस्यों की आज की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जानकारी प्राप्त की जा सकेगी। अतीत का इतिहास पौराणिक गाथाएँ, लोक-लोकान्तर की वार्ता, देव-दानवों की करतूतें, मरणोत्तर जीवन, ईश्वर, जीव, प्रकृति का निरूपण जैसे विषयों पर अभी बहुत शोध होनी बाकी है। इन विषयों पर विभिन्न धर्मों में कुछ कहा गया है वह इतना विचित्र, असम्बन्ध तथा परस्पर विरोधी है कि इन्हें इकट्ठा जमा करने पर यह कह सकना कठिन है कि इन कल्पनाओं के पीछे कुछ वास्तविकता भी है जिसे हम नहीं जानते, उसके लिए खुला मस्तिष्क रखना उचित है। मिथ्या कल्पनाओं के आधार पर कुछ समाधान कर लेने की अपेक्षा अपनी अनभिज्ञता स्वीकार करना लाख गुना अच्छा है। दिग्भ्रान्त व्यक्ति की अपेक्षा अनजान की स्थिति अच्छी होती है।

विवेक सबसे बड़ा शास्त्र है, विवेक सबसे बड़ा ऋषि है, वह हमारे अन्तरात्मा में ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में सर्वदा विद्यमान है। यह सोचना उचित नहीं कि हम अपने बलबूते सही निष्कर्ष पर न पहुँच सकेंगे। मस्तिष्क किसी का दुर्बल-सबल हो सकता है, पर आत्मिक स्तर का कोई न तो अयोग्य है और न असमर्थ। उचित-अनुचित का निर्णय ठीक प्रकार कर सकें इतनी शक्ति हर आत्मा में विद्यमान है, पर उस शक्ति का सञ्चय होना इस बात पर निर्भर है कि पक्षपात का पर्दा हटा दिया जाय, तभी शान्ति, न्याय एवम् औचित्य के आधार पर सोचा जाय। यदि ऐसा हो सका तो हमारे लिए जटिल प्रश्नों पर भी सही उत्तर दे सकना सम्भव हो सकता है। सभी दुरूह, अगम्य मार्ग हमारे लिए सरल हो उठेंगे और सफलता प्राप्त करने में कठिनाई न होगी।

सत्य उपासक का कर्त्तव्य—यदि हमें सत्य का उपासक बनना है तो अपने पूर्वाग्रहों को छोड़ना होगा, मस्तिष्क खुला रखना होगा और जो बात आधार सहित हो उसको श्रद्धा क्षेत्रों में प्रवेश करने देना होगा। अन्ध श्रद्धा से अश्रद्धा अच्छी। जिन तथ्यों पर हम श्रद्धा करें वे साधारण होने चाहिए। यह मानसिक स्थिर स्थिति जब अपनी होगी तभी यह सम्भव होगा कि हम निष्पक्षतापूर्वक, विवेकसम्मत तथ्यों को अपनाकर सही दिशा से परिचित हो सकें। भगवान् बुद्ध से एक जिज्ञासु ने ईश्वर, जीव, प्रकृति जैसे गहन दार्शनिक विषयों पर जिज्ञासा की तो उन्होंने यहाँ उत्तर दिया कि जब शरीर में तीर चुभा हुआ हो तब उसे निकालने पर ही सारा ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। तीर किसने बनाया, कहाँ बना, कितना भारी या कितना कीमती यह बातें जानने के लिए वह समय उपयुक्त नहीं। अभी तो हम विषमय विकारों के कारण जो शोक-सन्ताप सह रहे हैं उन्हें आत्मशोधन द्वारा दूर करें, पीछे इन अविज्ञात विषयों की खोज के लिए भी विचार किया जा सकता है। उत्तर कितना स्पष्ट और कितना महत्वपूर्ण है ! तात्कालिक समस्याएँ ही इतनी अधिक हैं कि उन्हें हल करने के लिए बहुत कुछ सोचना, समझना और करना शेष है। आवश्यक छोड़कर अनावश्यक के झंझट में क्यों पड़ा जाय ? ईश्वर हिन्दुओं की मान्यताओं के अनुसार क्षीरसागर में सर्प शैय्या पर सोता रहता है और मुसलमानों की मान्यताओं के अनुसार सातवें आसमान पर चार फरिश्तों द्वारा पकड़े हुए तख्त पर बैठा रहता है। इन बातों को असामयिक एवं अनावश्यक मान लिया जाय और उनकी चर्चा बन्द रखी जाय तो भी कुछ हर्ज नहीं, क्योंकि अभी हमारे सामने तात्कालिक समस्याओं को हल करने के लिए बहुत कुछ सोचना एवम् करना शेष है, इन बातों को लेकर लड़ना-झगड़ना तो सर्वथा व्यर्थ है। विश्व दर्शन की रचना इसी प्रकार होगी। लोग जब अपने अप्रमाणित, निराधार पूर्वाग्रहों पर जोर देना छोड़ देंगे और सार्वभौम सच्चाई जानने के लिए धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करेंगे तो वे निष्कर्ष भी निकालेंगे ही जिनसे हमारा दर्शन-भले ही वह छोटा क्यों न हो, निर्भ्रान्त कहा जा सके।

विश्व आचार की रचना में भी यही ध्यान रखना होगा कि अपनी प्रचलित प्रथा-परम्पराओं पर जोर देने की अपेक्षा सर्वोपयोगी आचरण पद्धति की मान्यता प्रदान करें। भोजन, वस्त्र, त्यौहार, उत्सव, रहन-सहन सम्बन्धी भिन्नताएँ स्वाभाविक हैं। देश और काल के अनुरूप इनमें थोड़ा फर्क रहे तो हर्ज नहीं, पर कितनी ही प्रथा-परम्पराएँ विभिन्न समाजों में ऐसी हैं जो मानव-समाज की सुव्यवस्था में भारी विघ्न उत्पन्न करती हैं। विश्व आचार का जब निर्धारण होगा तब उन्हें हटाना ही पड़ेगा। विवाह की प्रथाएँ तथा नर-नारी के बीच का सम्बन्ध विभिन्न वर्गों में असाधारण रूप से भिन्न देखा जाता है। अफ्रीका के कुछ क्षेत्रों में विवाह की योग्यता सिद्ध करने के लिए युवक को कितनी ही हत्याएँ करनी पड़ती हैं और मनुष्य तथा दूसरे जानवरों के सिर लाकर दिखाने पड़ते हैं। टिम्बकटू क्षेत्र में विवाहित पुरुषों को घूँघट मारकर उसी तरह रहना पड़ता है जैसे भारत की विवाहित महिलाओं को। सवर्ण हिन्दुओं में लड़की के विवाह में बहुत दहेज देना पड़ता है उसी तरह काँगों में पत्नी प्राप्त करने के लिए उनके अभिभावकों को कीमती उपहार देने होते हैं। पितरों की तृप्ति के लिए नर-बलि का-देना फिलीपाइन के जंगली लोगों में उसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकार प्रचलित है जैसे भारत के भैरव भवानी को मुर्गे, बकरे खा लेने पर सन्तोष होता है। इन पंक्तियों में संसार की उन विचित्र प्रथाओं का वर्णन कर सकने की गुञ्जायश नहीं जिन्हें पूर्णतया अनैतिक, अनुपयुक्त एवम् अविवेकपूर्ण सिद्ध किया जा सकता है। उस समाज के लोग इन्हीं बातों को शास्त्र वचन, ईश्वर आज्ञा की पुण्य परम्परा मानते हैं। यदि उन्हें इन बातों से विरत होने के लिए कहा जाय तो धर्म का अपमान बताते हैं और विरत होने का शिक्षण देने वाले की जान के ग्राहक बन जाते हैं। समय-समय पर सुधारकों को नृशंस उत्पीड़न इसीलिये सहने पड़े हैं कि उन्होंने जनसाधारण को उन दिनों प्रचलित कुरीतियों एवम् अनुपयुक्त मान्यताओं से विरत होने के लिए कहा था। ईसामसीह, सुकरात, मंसूर, गाँधी, दयानन्द, लिंकन आदि सहस्रों सुधारकों को अब तक इसी अपराध में अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा है।

उदार एवं विशाल दृष्टिकोण आवश्यक—इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति को टालने का और जनसाधारण को अपनी अनुपयुक्त मान्यताओं से विरत करने का एक ही उपाय है कि हर व्यक्ति के मस्तिष्क में इतनी विशालता, उदारता एवं विवेकशीलता उत्पन्न करनी चाहिए कि वह अपनी अवांछनीय गतिविधियों की व्यर्थता पर शान्तचित्त से विचार कर सके और दूसरों की अच्छाइयों को समझने, सराहने और स्वीकार करने की हिम्मत दिखा सके। जब तक वह स्थिति न आवेगी तब तक लोग एक-दूसरे के दुश्मन ही बने रहेंगे, एक-दूसरे से घृणा ही करते रहेंगे, मत-भेदों की खाई जब बनी ही रहेगी तो प्रेम और एकता का उद्देश्य भी प्राप्त न हो सकेगा। एकता और आत्मीयता का आधार ही जब द्वेष एवम् घृणा द्वारा नष्ट होता रहेगा तो लोग एक-दूसरे के समीप आवेंगे कैसे ? और स्नेह, सहयोग बढ़ाते हुए रचनात्मक कामों में लगेंगे कैसे ?

जिस प्रकार बेईमानी, स्वार्थपरता, लोभ, क्रोध, कामुकता प्रभृति बुराइयों ने मानव जाति का अत्यधिक अहित किया है और उसकी प्रगति को अवरुद्ध रखा है उसी प्रकार विचारों की संकीर्णता, एकांगीपन तथा पक्षपात ने इन्सान को दूर रखने और खाई चौड़ी करने में भयंकर विभीषिका का काम किया है। सत्य, न्याय और विवेक जैसी आध्यात्मिक महानताओं से यह पक्षपात ही मनुष्य को वञ्चित रखता है। भ्रान्तियों के जंजाल में इसी दुर्बलता के कारण मनुष्य जकड़ा रहता है। अपनी जिस विचारणा को वह रचनात्मक दिशा में संलग्न करके अपना तथा दूसरों का बहुत लाभ कर सकता था, वह सबका सब भ्रान्तियों में ही बर्बाद होता रहता है। इसलिए यह मानना ही पड़ता है कि "अपना जो कुछ भी हो सोना, दूसरे का जो कुछ भी हो मिट्टी, वाली नीति प्रत्येक दृष्टि से अवांछनीय है, उसका निवारण ही किया जाना चाहिए।

आर्थिक क्षेत्र में मनुष्य अपनी सुविधाएँ देखता है और वह कभी भी दूसरे की असुविधाओं का तनिक भी ध्यान नहीं रखता। मालिक अपना मुनाफा देखता है, मजदूरों की असुविधाओं को ध्यान में नहीं रखता। मजदूर अपना श्रम बचाना चाहता है, उत्पादन घटने से होने वाली सामाजिक हानि को नहीं सोचता। व्यापारी को अपने मुनाफे का ध्यान है, ग्राहक की सुविधा का नहीं, इस एकांगी पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण ने संसार में बेईमानी और अनीति को जन्म दिया है। यदि लोग अपनी ही तरह दूसरों के लाभ को भी समझें और उनका समन्वय करें तो संसार में जो कुछ मौजूद है, उसी का मिलजुलकर उपयोग करते हुए सब लोग हँसी का, सुविधा और सरलता से भरा हुआ आनन्दमय जीवनयापन कर सकते हैं।

धर्म का सार उदारता और निष्पक्षता में सन्निहित है। सत्य और न्याय यही तो धर्म के प्रधान अंग हैं, इसके लिए निष्पक्षता एवम् विवेकशीलता की प्राथमिक आवश्यकता है। यदि यह तत्व अपनी मनोभूमि में विकसित न हो सका तो कूपमण्डूक बने हुए अपनी लकीर के फकीर रूढ़िवादी और दुराग्राही बने रहेंगे। इस संकीर्णता से ग्रसित व्यक्ति को आत्म-विस्तार का—आत्म-कल्याण का लक्ष्य कैसे प्राप्त हो सकेगा ? ईश्वर सत्य का ही दूसरा नाम है, धर्म सत्य को ही कहते हैं, अध्यात्म का उद्देश्य सत् की प्राप्ति है यह तीनों ही तत्व कैसे प्राप्त होंगे ? जो किसी सम्प्रदाय, दल, वर्ग या वंश की निर्धारित विचार-पद्धति से ही बँधा या जकड़ा पड़ा है।

व्यक्तिगत जीवन की सुख-शान्ति—व्यक्तिगत जीवन में भी यही बात है। जो परिवार के हर सदस्य की इच्छा, आकांक्षा, आवश्यकता, रुचि एवं सुविधा का तालमेल नहीं बिठाता, अपने ही स्वार्थ या अहंकार की प्रधानता रखता है वह न तो परिवार में शान्ति रख सकेगा, न संगठन, सन्तोष, सामंजस्य। जिसका समन्वयात्मक दृष्टिकोण होगा, औचित्य का ठेकेदार अपने को ही न मानकर दूसरों को समझने की चेष्टा करेगा वही आध्यात्मिकता के प्रथम आदर्श का अनुयायी कहा जायेगा। श्रेष्ठ परिवार एवं श्रेष्ठ समाज का निर्माता भी वही बन सकेगा।

शरीर की इन्द्रियों में से जो पक्षपात करती हैं, अपनी ही आकांक्षाओं को पूरा करने में दत्त-चित्त रहती हैं, उसके स्वार्थ एवं असंयम का दूसरे अवयवों पर क्या असर पड़ेगा यह नहीं सोचती तो वही इन्द्रिय सारे शरीर को नष्ट करने वाली बन जाती है। अक्सर स्वादेन्द्रिय और कामेन्द्रिय में अधिक रस लेने वाला मन पक्षपाती बन जाता है और अवयवों की हानि का विचार छोड़ देता है। फलतः शरीर के रुग्ण, जीर्ण-शीर्ण एवम् अकाल में ही काल कवलित होने की स्थिति सामने आ पहुँचती है। यदि यहाँ विवेक को प्रधानता दी गई होती, न्याय को ध्यान में रखा गया होता, पक्षपात न किया होता तो जिह्वा इन्द्रिय की लिप्सा पर आमाशय के साथ अन्याय क्यों बरता जाता ? कामेन्द्रिय की माँग पर जीवनी शक्ति क्षय करके शरीर समाज का अहित क्यों किया गया होता ? असंयमी को इन्द्रिय संयम की शिक्षा दी जाये तो उसे बुरी लगेगी और उस सिखाने वाले को शत्रु तक मानने लगेगा, पर उससे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्या, अहित तो उसका होता ही रहेगा। हानि तभी रुकेगी जब उसमें यह विचारणा पैदा हो कि जिस अभिरुचि एवम् गतिविधि के साथ अपना मोह जुड़ गया है, उसके दोष को समझा जाय और अपने स्वभाव के विपरीत होने पर भी जो उपयोगिता है उसे स्वीकार किया जाय।

आत्म-निरीक्षण किये बिना अपने दोष कहाँ समझ में आते हैं और उन्हें समझे-सुधारे बिना आत्मनिर्माण कहाँ होता है ? अपनेपन की ही उधेड़बुन में संलग्न है, जिसे पराये में कोई दिलचस्पी नहीं, वह आत्म-विकास कैसे कर सकेगा ? जिसका आत्म-क्षेत्र विस्तृत, व्यापक नहीं हो सका, उसका आत्म-कल्याण कैसा ? परमात्मा की प्राप्ति का तात्पर्य इतना मात्र है कि संकीर्णता के—अहंता और स्वार्थपरता के दायरे में भवबन्धित प्राणी इस परिधि से बाहर निकलकर अपने आपको विश्व-मानव का अभिन्न अंग बना दे। परम् बड़े को, व्यापक को कहते हैं। जब संकीर्ण आत्मा अपने विशाल दृष्टिकोण के कारण अहित को सार्वभौम बना देने के कारण अपने को परम महान् विस्तृत बना देता है, तब वह परमात्मा कहलाता है। अपने आपको आत्मा जब परमात्मा के रूप में परिणित कर लेता है तभी यह कहा जाता है कि उसे परम् पद की प्राप्ति हो गई। यही तो ईश्वर प्राप्ति है। स्वार्थपरता, संकीर्णता, अहंता एवं वासना यह चार ही तो भव-बन्धन हैं। इनसे जिनने छुटकारा प्राप्त कर लिया समझना चाहिये कि मोक्ष का अधिकारी हो गया। मुक्ति के लिये शरीर छोड़ने की नहीं, पक्षपातपूर्ण अहंता त्यागने की आवश्यकता होती है। विराट ब्रह्म में, विश्वमानव में जिसने अपने आपको विलीन कर दिया समझना चाहिए कि उसे सायुज्य मुक्ति मिल गई।

समस्याओं के हल की पूर्व भूमिका—आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति, व्यक्तित्व का निर्माण, पारिवारिक सुव्यवस्था, समाज का निर्माण, आर्थिक उत्सर्ग, आरोग्य प्राप्ति, शान्तिदायक समृद्धि, मानसिक सन्तुलन, साथियों का स्नेह, सहयोग आदि जीवन की अनेक उपलब्धियाँ इस बात पर निर्भर हैं कि हमारा मनःक्षेत्र पक्षपात की जड़ता से ऊँचा उठकर विवेक एवं औचित्य की चेतना में प्रवेश करना आरम्भ करे। यदि मनोभूमि इतनी जड़ है कि जिससे ममता जुड़ गई है, उनसे पदार्थ या विचार को किसी भी शर्त पर न छोड़ा जा सके तो वह मोहग्रस्त स्थिति किसी भी दिशा में प्रगति न होने देगी। जो लड़की सयानी होने पर अपने पिता का घर न छोड़ना चाहे उसे गृहस्थ का आनन्द कहाँ मिलेगा, जो लड़का घर से निकल कर स्कूल जाता था नौकरी अथवा व्यापार के लिये बाहर रहने की हिम्मत न करे उसका भविष्य अन्धकारमय ही रहेगा। इसी प्रकार जिसने अपने पूर्वाग्रहों को कमर कसकर पकड़ रखा है उसके लिए कोई नया तथ्य उत्कृष्ट तथ्य, प्राप्त कर सकना सम्भव ही न होगा, जो फेफड़ों में भरी साँस को छोड़ना नहीं चाहता, उसे नई अच्छी वायु कहाँ से मिलेगी, जो पेट में भरा हुआ मल त्यागेगा नहीं, उसे नया भोजन ग्रहण करने का अवसर भी न मिलेगा।

कोई विचार इसलिये न अपनाये रखा जाय कि वह हमारा चिर अभ्यस्त है, वरन् उसे आद्यि से अन्त तक निष्पक्षतापूर्वक न्याय एवं विवेक के साथ परखा जाय और यदि वह उपयुक्त जँचे तो श्रद्धापूर्वक अपना लिया जाय। यदि वह अनुपयुक्त है तो फिर चाहे वह किसी भी व्यक्ति का कहा हुआ, किसी भी पुस्तक में लिखा हुआ, अथवा कितना ही पुराना क्यों न हो छोड़ देने में संकोच न किया जाय। अपने और पराये का पक्षपात मिटाकर विवेक औचित्य को अपना लेना ही ऋतम्भरा प्रज्ञा का लक्षण है। जिसे यह प्राप्त हुआ समझना चाहिए कि उसे दिव्य-दृष्टि प्राप्त हो गई। कहना होगा कि ईश्वर चमड़े की आँखों से नहीं, दिव्य-दृष्टि से ही देखा जाता है।

द्वैत से अद्वैत की ओर—माला में पिरोए हुए मनकों की तरह, एक ही शरीर में जुड़े हुए विभिन्न अवयवों की तरह समस्त मानव-जाति एक ही विश्व-मानव के साथ अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध है। कोई व्यक्ति एकाकी सुख या दुःख भोगता नहीं रह सकता, उसका प्रभाव दूसरों पर अनिवार्य रूप से पड़ेगा। लोहे की छड़ एक सिरे पर गरम की जाये तो उसकी गर्मी छड़ के अन्य भागों में पहुँचेगी। व्यक्ति की समस्याएँ, सारे समाज की समस्याओं के साथ जुड़ी हुई हैं। इसलिए व्यक्तिगत सुख या प्रगति की कामना करने वालों की भी इच्छा-पूर्ति तभी सम्भव है जब वे अपनी ही भाँति समस्त मानव जाति को सुखी एवं समृद्ध बनाने में योगदान दें। इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कदम यह हो सकता है कि पक्षपात को त्यागने और औचित्य को अपनाने के योग्य लोच मनोभूमि में तैयार किया जाय। पराई तरह अपनी भी समीक्षा कर सकने का दृष्टिकोण जब विकसित होने लगे तो समझना चाहिए हम अज्ञान से ज्ञान की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, असत से सत की ओर चलने के लिये तत्पर हो गये।

संसार के सामने समस्याएँ उपस्थित हैं, मानव-जीवन अनेक आपत्तियों और कठिनाइयों से ग्रसित हो रहा है। इसका प्रत्यक्ष तात्कालिक कारण कुछ भी क्यों न हो, वास्तविक कारण एक ही है—"वस्तुस्थिति को समझने और उसका अचित उपाय ढूँढ़ने की समर्थ निष्पक्षता का अभाव।" हर व्यक्ति अपने-अपने स्वार्थ, दृष्टिकोण एवं पूर्वाग्रहों के अनुरूप सोचता है, फलस्वरूप मस्तिष्क कहीं का कहीं ले पहुँचता है। परस्पर लड़ने-झगड़ने वाले दोनों पक्ष अपने को सही और दूसरे को गलत ठहराते हैं। यदि उनमें इतनी उदारता और दूरदर्शिता हो कि अपनी-अपनी गलती को समझ सकें और दूसरे की स्थिति में अपने को रखकर वस्तुस्थिति को सोच-समझ सकें तो गलतफहमी का अंश सहज ही दूर हो सकता है और थोड़ी-थोड़ी उदारता से काम लें तो बड़े झगड़ों का हल सहज ही निकल सकता है। अधिकांश झगड़े गलतफहमी के कारण होते हैं। लोग एक-दूसरे की नियत पर सन्देह करते रहते हैं, यदि परस्पर मिलें बैठें, और एक-दूसरे के सामने आवें, अपने विचार और सन्देह स्पष्ट रूप से जी खोलकर रख दें तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतीत होगा कि शत्रुता और मतभेद की जो खाई दुर्लंध्य प्रतीत होती है, वस्तुतः वह बहुत ही हलकी थी। लड़ाई में वास्तविक कारण कम और गलतफहमी का अंश अधिक रहता है। इस गलतफहमी को मिटाने के लिये हमारे सोचने का ढंग उदार, दूरदर्शितापूर्ण और निष्पक्ष हो तो व्यक्तिगत तथा सामूहिक सभी प्रकार की उलझनों तथा समस्याओं का हल निकल सकता है।

मनुष्य की आधी से अधिक शक्ति परस्पर टकराने और उन टकराव से उत्पन्न समस्याओं के सुलझने में लगती है। यदि दृष्टिकोण को उदार एवं निष्पक्ष रखते हुए उस संघर्ष से बचा जा सके और परस्पर प्रेम तथा सहयोग पूर्वक अपनी शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक शक्तियों को रचनात्मक कार्यों में लगाया जा सके तो संसार में इतनी अधिक सुख-समृद्धि बढ़ सकती है कि सबके लिए सब कुछ यहाँ उपलब्ध हो सके। टकराव हमारी आधी शक्ति नष्ट करता है, इसकी बचत निर्माणात्मक कार्य में यदि लग सकना सम्भव हो तो निश्चय ही इस धरती पर स्वर्ग अवतरित होता हुआ दृष्टिगोचर होगा।

सन्मार्ग का राजपथ कभी भी न छोड़ें

घने जंगलों में पशुओं और वनवासियों के इधर-उधर चलने से छोटी-छोटी पगडण्डियाँ बन जाती हैं। जहाँ से वे शुरू होती हैं वहाँ अक्सर ऐसी लगती हैं कि मानो ये कोई सुव्यवस्थित रास्ते हैं पर आगे कुछ दूर चलकर वे पगडण्डी समाप्त हो जाती हैं और सघन वन रास्ता रोककर खड़ा हो जाता है। कई बार इन वन प्रदेशों को पार करने वाले यात्री गलती से सही रास्ता छोड़कर इन ओछी पगडण्डियों पर चल पड़ते हैं तो आरम्भ में उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती है, वे सोचते हैं बड़ा रास्ता चक्करदार या उस पर चलते हुए देर में मंजिल पार होती पर यह सीधी पगडण्डी जल्दी पहुँचा देगी और जहाँ हम पहुँचना चाहते हैं वहाँ जल्दी पहुँच जावेंगे। वह प्रसन्नता देर तक नहीं रह पाती, कुछ आगे निकल जाने के बाद जब रास्ता बन्द हो जाता है और घनी कँटीली झाड़ियों के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं पड़ता तो भारी परेशानी का सामना करना पड़ता है। उन झाड़ियों में रहने वाले सिंह, व्याघ्र, रीछ, अजगर जब इधर-उधर फिरते देखते हैं तो प्राण सूखने लगते हैं। लम्बी मंजिल चलने पर लौटना भी तो काफी दुःखदायक होता है। पगडण्डी के लोभ में कितनी ही बार चतुर शिकारियों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है।

जीवन एक वन है, साधारण नहीं सघन, सुरम्य ही नहीं कँटीली झाड़ियों से भरा हुआ भी। इसे ठीक तरह पार करना काफी दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता द्वारा ही सम्भव है। सदाचार और धर्म की सीधी सड़क इसे पार करने के लिए बनी हुई है। उस पर चलते हुए लक्ष्य तक पहुँचना समय-साध्य तो है पर जोखिम उसमें नहीं है। इतनी बात न समझकर जल्दबाज लोग पगडण्डियाँ ढूँढ़ते हैं, जहाँ-तहाँ उन्हें वे दीखती भी हैं। बेचारों को यह पता नहीं होता कि यह अन्त तक नहीं पहुँचतीं, बीच में ही विश्वासघाती मित्र की तरह रास्ता छोड़ देती हैं और जल्दी काम बनने का लालच दिखाकर ऐसे दल-दल में फँसा देती हैं जहाँ से वापिस लौटना भी आसान नहीं रहता।

अनीति पर चलकर जल्दी काम बना लेने और अधिक कमा लेने का लालच एक छोटी सीमा तक ही ठीक सिद्ध होता है। आगे चलकर तो उसमें भारी विपत्तियाँ ही विपत्तियाँ आती हैं। आरम्भ में कई बात लाभदायक दीखती हैं पर अन्त इनका कैसा होगा ? यह सोचकर ही बुद्धिमान लोग उस आरम्भिक लालच को स्वीकार करते हैं। जहाँ अन्ततः जोखिम दीखती है, समझदार लोग उससे दूर ही रहते हैं। जानते हैं कि विनाश आरम्भ में आकर्षक ही लगता है। पाप के साथ आरम्भिक प्रलोभनों की एक लालच भरी गुदगुदी जुड़ी रहती है, उसी से तो मूर्खों को जाल में फँसाया जाता है। शैतान का नुकीला पंजा रेशम की टोपी से ढका रहता है। मछली को पकड़ने वाली डोरी के सिरे पर जरा-सा आटा लगा रहता है। चिड़ियों को पकड़ने वाले जाल के आस-पास अनाज के दाने फैले होते हैं, इस आरम्भिक लालच की व्यर्थता न समझ पाने के कारण ही तो मछली और चिड़ियाँ अपना जीवन संकट में डालती हैं।

पाप और अनीति का मार्ग ऐसा ही है जैसा सघन वन की पगडण्डियों पर चलना, ऐसा ही है जैसा मछली का काँटे समेत आटा निगलना और जाल में पड़े हुए दानों के लिये चिड़ियों की तरह आगा-पीछा न सोचना। अभीष्ट कामनाओं की जल्दी से जल्दी, अधिक से अधिक मात्रा में पूर्ति हो जाये, इस लालच में लोग वह काम करना चाहते हैं जो तुरन्त सफलता की मंजिल तक पहुँचा दें। जल्दी और अधिकता दोनों ही बातें अच्छी हैं पर यदि उनके लिए यात्रा का उद्देश्य ही नष्ट होता हो तब उन्हें बुद्धिमत्ता नहीं माना जायेगा।

चोरी, बेईमानी, झूठ, छल, विश्वासघात, अनीति, अपहरण, पाप, व्यभिचार आदि को आरम्भ करते समय यही सोचा जाता है कि एक बढ़िया लाभ तुरन्त प्राप्त होगा। ईमानदारी के राजमार्ग पर चलते हुए मंजिल देर में पूरी होती थी, उसमें सीमा और मर्यादाओं का बन्धन है, पर पाप मार्ग में चलते हुए ऐसा लगता है कि मनमाना लोगों को ठगने से, कमजोरों को डराने से सहज ही में बड़ा लाभ कमाया जा सकता है। अशक्त से उनकी वस्तुएँ छीन लेना थोड़ी-सी चालाकी से ही सुगम हो जाता है। लोगों की असावधानी या भलमनसाहत का चतुरतापूर्वक आसानी से भरपूर अनुचित लाभ उठाया जा सकता है। ऐसा सोचने से यह प्रतीत होता है कि अनीति का मार्ग अपना लेने में कोई हर्ज नहीं। कितने ही ऐसे उदाहरण भी सामने आते हैं कि अमुक व्यक्तियों ने अनीति का मार्ग अपनाया और जल्दी ही बहुत लाभ कमा लिया। फिर हम भी ऐसा ही क्यों न करें ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आरम्भिक लाभ को ही सब कुछ समझने वाले लोग मछली, चिड़ियों और पगडण्डी पर दौड़ पड़ने वाले लोगों की तरह दूसरों की अपेक्षा अपने को अधिक बुद्धिमान मानते हैं और अपनी चतुरता पर गर्व भी करते हैं, पर जल्दी ही यह स्पष्ट हो जाता है कि जैसा सोचा गया था वस्तुतः वैसी बात नहीं है। पाप का दुष्परिणाम आज नहीं तो कल सामने आने ही वाला है। पारा खाकर उसे कोई हजम नहीं करता, वह देर-सबेर में शरीर को फोड़कर बाहर ही निकलता है। इसी प्रकार पाप भी कभी पचता नहीं। हो सकता है कि आज का फल आज न मिले, पर कल तो वह मिलने ही वाला है। इस संसार में अनेक यातनाओं से ग्रसित व्यक्ति देखे जाते हैं, यदि उन पर ध्यान दिया जाय तो सहज ही जाना जा सकता है कि व्यथा और असफलता भी यहाँ कम नहीं है। कुमार्ग पर चलते हुए सामयिक सफलता भी सदा ही मिलती रहे ऐसी कोई बात नहीं, दण्ड का भी यहाँ समुचित विधि-विधान मौजूद है।

अस्पतालों में ध्यानपूर्वक निरीक्षण करें तो वहाँ कराहते हुए, चिन्तित, दुःखी और पीड़ित मनुष्यों की भारी संख्या पीड़ा से छटपटाती हुई मिलेगी। यह सभी करुणा के पात्र हैं और उनके प्रति शुभ कामना तथा सहायता की बुद्धि ही रखना हमारे लिये उचित है, पर विवेचना की दृष्टि से देखा जाय तो उनमें से अगणित ऐसे मिलेंगे जिन्होंने मर्यादाओं का उल्लंघन किया था, किसी भी प्रकार जल्दी क्षणिक लाभ प्राप्त करने की बात सोची थी। स्वास्थ्य और समय की मर्यादाओं का उल्लंघन किये बिना बीमार पड़ना कदाचित् ही कभी होता है। सृष्टि के कोई जीव प्रकृति की मर्यादाओं का पालन करते रहने के कारण जब बीमार नहीं पड़ते तो मनुष्य को ही क्यों पड़ना चाहिए ? बीमारों का घर-घर में बिस्तर हो रहा है, अस्पताल तो उस बिस्तर के एक नगण्य प्रतीक मात्र हैं। इनका निरीक्षण करके यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अनीति का आचरण, मर्यादाओं का उल्लंघन किस सीमा तक हमारे लिये अहितकर हो सकता है ?

जेलखानों में जाकर देखें तो प्रतीत होगा कि एक से एक चतुर और उद्दण्ड अपनी असफलता की करुण कहानी कह रहे हैं। फाँसी के फन्दे अनेक नृशंसों को करनी का फल चखा चुके हैं। जेल की कोठरियों की यदि जवान रही होती तो वह एक महापुराण सुनाती और बताती कि बदमाशी का फल तात्कालिक लाभ ही नहीं नारकीय यन्त्रणा भी है।

समाज में सर्वत्र बरसने वाली घृणा गुण्डापन की एक भारी सजा है। भोजन, वस्त्र, ऐश, आराम, जमीन-जायदाद, भोग-विलास छोटे दर्जे की चीजें हैं। समाज का सम्मान इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण और आनन्ददायक है। व्यक्ति गरीब रहकर यदि अपने चरित्र की रक्षा करता हुआ श्रद्धा और सम्मान का अनुकरणीय आदर्श जीवन व्यतीत करे तो उसे अपेक्षाकृत अधिक आनन्द मिलेगा। जिसके ऊपर सर्वत्र घृणा बरसती है, जिसे गुण्डा, उद्दण्ड पापी और कुकर्मी माना जाता है, वह कितनी ही कमाई करले, कितना ही ऐशो-आराम करले, एक निकृष्ट, पतित और क्षुद्र व्यक्तियों की तरह सदा नीची आँखें ही किये रहेगा। उसके लिये किसी स्वजन-परिजन की आँखों में सच्ची श्रद्धा और सच्ची सहानुभूति की एक बूँद भी न मिलेगी। ऐसा अतृप्त और असफल जीवन लेकर भी अनीतिवान् व्यक्ति यदि अपने को सफल और बुद्धिमान् मानें तो यह उनकी नासमझी कही जायेगी।

सबसे बड़ा दण्ड आत्म प्रतारणा का है। अनीति के मार्ग पर चलने वाले को उसकी अन्तरात्मा निरन्तर धिक्कारती रहती है। मानव जीवन सत्कर्मों द्वारा स्वयं शान्ति पाने और दूसरों को सुख देने के लिए मिला है। इसी में उसकी सफलता भी है, पर यदि उसके द्वारा दूसरों का अहित होता है और अपने को आत्म-प्रतारणा की अशान्ति भोगनी पड़ती है तो यही कहना होगा कि नर तन प्राप्त होने पर एक अमूल्य अवसर व्यर्थ ही हाथ से चला गया।

संसार का इतिहास साक्षी है कि सन्मार्ग को छोड़कर जिसने कुमार्ग को अपनाया है, नीति का परित्याग कर अनीति को पसन्द किया है, वह सदा क्षुद्र, पतित और घृणित होता रहा है। उसके द्वारा इस संसार में शोक-सन्ताप, क्लेश और द्वेष ही बढ़ा है। शूल हूलते रहने वाले काँटे तो यहाँ पहले से ही बहुत थे। अपना जीवन भी यदि उन्हीं पतितों की संख्या बढ़ाने वाला सिद्ध हुआ तो इसमें क्या भलाई हुई, क्या समझादारी रही ? तृष्णा और वासना की क्षणिक पूर्ति करके यदि आत्म-प्रतारणा का, नारकीय यन्त्रणा का, लोक-मत की लानत का अभिशाप पाया तो इसमें क्या अच्छाई समझी गई ?

अनीति का मार्ग असफलता की कँटीली झाड़ियों में फँसाकर हमारे जीवनोद्देश्य को ही नष्ट कर देता है। हम पगडण्डियों पर न चलें। राजमार्ग को ही अपनावें। देर में सही थोड़ी सही, पर जो सफलता मिलेगी वह स्थायी भी होगी और शान्तिदायक भी। पाप का प्रलोभन आरम्भ में ही मधुर लगता है पर अन्त तो उसका हलाहल की भाँति कटु है। साँप और बिच्छू दूर से देखने में सुन्दर लगते हैं, पर उनका दर्शन प्राण-घातक वेदना ही प्रदान करता है। पाप भी लगभग ऐसा ही है वह भले ही सुन्दर दीखे, लाभदायक प्रतीत हो पर अन्ततः वह अनर्थ ही सिद्ध होगा।

काल्पनिक मतभेदों की हठवादिता

कोई समय था, जब मेरी मान्यता सच तथा अन्य सभी के विचार झूठे, का बढ़ा-चढ़ा आग्रह था। इसी प्रसंग को लेकर शास्त्रार्थ ठनने लगने से सिर कटने तक की घटनाएँ घटित हुआ करती थीं। भिन्न मान्यता वालों को शत्रु समझा जाता था। उनके विचारों की तुलना में अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विचारों की श्रेष्ठता व्यावहारिक कसौटी पर सही सिद्ध करने की समझदारी और दूरदर्शिता थी नहीं। ऐसी दशा में एक ही सिद्धान्त उभरकर आता था, "मानो या मरो।" यह संकीर्णतावादी कट्टरता अपने-अपने ढंग से प्रायः छोटे-बड़े सभी क्षेत्रों में संव्याप्त थी। जातिवाद, भ्रान्तिवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद आदि के नाम पर जो पक्षपात पनपा, उसने जहाँ अपने वर्ग को अनुचित लाभ पहुँचाया, वहाँ दूसरे वर्ग से शत्रुता भरा व्यवहार इसलिए किया कि वह उनका मतावलम्बी न था। यह दुराग्रह लम्बे समय तक चलता रहा और अभी जहाँ-तहाँ अपनी हठवादिता का परिचय देता देखा जाता है। विग्रहों में से अधिकांश प्रायः इस आधार पर पनपते हैं।

विचारशीलता धीरे-धीरे पनप रही है। लोग सोचने लगे हैं कि हो सकता है कि हमीं भ्रम में हों और दूसरे पक्ष की मान्यताओं में अधिक सच्चाई का अंश हो। इस दर्शन को 'सद्वाद' का नाम दिया गया है। इसमें अपनी खामी और दूसरों में मिल सकने वाली बुद्धिमत्ता से सर्वथा इन्कार नहीं किया जाता। यह गुंजायश रखी जाती है कि सभी पक्षों के गुण-दोषों पर विचार करने की गुंजायश रखी जाय। इसमें दुराग्रह का स्थान विवेक और अनुसंधान हो सकता है। अनेक पक्षों की श्रेष्ठताओं को अपनाकर एक समन्वित सिद्धान्त का आविर्भाव हो सकता है। उसके कारण मतभेदों के रहते हुए भी परस्पर मिल-जुलकर रहा जा सकता है और कामचलाऊ सैद्धान्तिक समझौता किया जा सकता है। सर्वसाधारण के लिए यही नीति सुविधाजनक पड़ती है। मिल-जुलकर रहने का पक्ष इसी सिद्धान्त के आधार पर कार्यान्वित हो सकता है।

संसार के अनेकानेक क्षेत्रों में भी अनेकानेक मान्यतायें प्रचलित हैं। कोई विवेकवान व्यक्ति इनमें से एक को सर्वथा सही और दूसरे को सर्वथा मिथ्या नहीं कह सकता है, क्योंकि सभी में कुछ न कुछ यथार्थता होती है, साथ ही ऐसा भी बहुत कुछ होता है, जिसे स्पष्ट रूप से मिथ्या न कहा जाय, तो कम से कम इतना तो कहना ही पड़ेगा कि उनमें ऐसा बहुत कुछ है, जो समय से पिछड़ गया। कभी वह परिस्थितियों के अनुसार अधिक सत्य माना जाता होगा, पर अब और नये प्रतिपादन सामने आ जाने पर उस समय के तथाकथित सत्य पर अँगुली उठने लगी है।

विज्ञान के क्षेत्र में निरन्तर यही होता रहा है। उसका दावा प्रत्यक्षवाद के आधार पर सत्य को खोजने का है, पर जब से विज्ञान दर्शन चला है, तब से नई खोजों द्वारा पिछले प्रतिपादनों का खण्डन होते रहने का सिलसिला बराबर चल रहा है और अभी भी कोई यह दावा नहीं करता कि जो खोजें और मान्यतायें इन दिनों सत्य मानी जाती हैं, उनमें अगले दिनों भारी परिवर्तन न हो जायेगा।

जब सत्य के लिए प्रत्यक्ष प्रमाणों को आधार मानकर चलने वाले विज्ञान क्षेत्र का यह हाल है, तो उन प्रसंगों के सम्बन्ध में क्या कहा जा सकता है, जो मात्र मान्यताओं, भावनाओं, आस्थाओं और कल्पनाओं पर आधारित हैं। तर्कों के खोखलेपन को सभी समझते हैं। वे किसी अनुचित से अनुचित प्रसंग के पक्ष में पूरे जोर-शोर के साथ इस प्रकार दिये जा सकते हैं, मानो सच्चाई का ठेका उन्हीं के कन्धों पर आया हो, साथ ही जब उसके प्रतिपक्षी तर्कों की झड़ी लगती है, तो प्रतीत होता है कि जिस बात का गुणगान कुछ क्षण पहले किया जा रहा था, वह कितना खोखला था। तर्क को पहले भी वेश्या कहा जाता था और अब उसका सम्मान और घट गया है, कारण कि खोटे माल को बेचने वाले सेल्समैन और उनके लिए ग्राहक जुटाने वाले दलाल ऐसे मनगढ़न्त घटाटोप तर्क गढ़ लेते हैं, जो ग्राहक को जाल-जंजाल में फँसा लेने के लिए पर्याप्त होता है। ठगे जाने वाले व्यक्ति यही कहते पाये जाते हैं कि जो आरम्भ में बताया गया था और जिस पर सहज विश्वास कर लिया गया था, वह सर्वथा खोखला था। समझ तब आई, जब कलई खुली। ऐसा आमतौर से आर्थिक ठगी के क्षेत्र में बहुतायत से होता है, पर इसके अतिरिक्त भी न्यूनाधिक मात्रा में सभी क्षेत्र ऐसे हैं, जो किसी न किसी रूप में भ्रम-जंजाल में जकड़े हुए हैं।

धार्मिक क्षेत्र में छाये हुए अन्ध विश्वास, प्रपंच बहकावे अपने ढंग के अनौखे हैं। सामाजिक प्रथा-परम्पराओं में अनेकों मान्यताएँ ऐसी हैं, जो मानने वालों के लिए पूर्ण सत्य से कम नहीं हैं। उन्हें वे धर्म-धारणा, ईश्वर वचन या शास्त्र प्रतिपादन, ईश्वर आज्ञा आदि बातें कहकर भावुकजनों को अपने चंगुल में फँसा लेते हैं। गुरुडम इसी आधार पर पनपा है। एक पंथ वाले दूसरे पंथ वाले के यहाँ जाने से अपने अनुयायियों को इसीलिए रोकते हैं कि कहीं उनकी विवेक-बुद्धि न जाग पड़े, कहीं वे अपने बाड़े से निकलकर खुले आकाश की तरफ न झाँकने लगें और तुलनात्मक समीक्षा न करने लगें। संकीर्णतावादी सभी अपने-अपने बाड़े बाँधते हैं और जिन पर प्रभाव जमाया है, उन्हें दूसरे पक्ष की बातें न सुनने, उनके सम्पर्क में न जाने की बात कहते हैं। इसी आधार पर दुराग्रहों की अपनी-अपनी परिधि जमी हुई है।

अनेकानेक क्षेत्रों में प्रचलित अनेकानेक मान्यताओं में से कौन उपयोगी हैं, कौन अनुपयोगी, उनमें से किसका कितना अंश ग्राह्य है, कितना अग्राह्य इसका निर्णय करना किन्हीं ऐसी विश्व-अदालतों के लिए सम्भव हो सकता है, जो अपने-अपने क्षेत्र विशेष में परिपक्व प्रवीणता अर्जित किये हुए हों। सभी सम्बन्धित पक्षों की बातें वे सुनें और सभी प्रतिपादनों को तथ्य और सत्य की कसौटी पर कसकर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वर्तमान परिस्थितियों में इस प्रसंग का कितना अंश ग्राह्य रह गया है और कितना अग्राह्य हो गया है।

इस प्रकार के निर्णय के उपरान्त भी यह आवश्यक हो जाता है कि अनुसरण करने वाला समुदाय उस फैसले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को मानने के लिए तैयार हो। पूर्वाग्रहों को विश्व अदालत के फैसले में डालने के लिए आनाकानी न करे।

एक उपाय यह हो सकता था, पर वर्तमान परिस्थितियों में यह सम्भव दिखाई नहीं पड़ता। लोगों में इतनी दूरदर्शी विवेकशीलता विकसित नहीं हुई कि विश्व एकता के महान प्रतिफलों को ध्यान में रखते हुए अपनी हठवादिता को छोड़ने के लिए उद्यत हो सकें। सभी यह आशा लगाये रह सकते हैं कि विश्व भर में उसकी मान्यताओं को सर्वोपरि ठहराया जाय और अन्य सभी मान्यताओं को, तथ्यों को झुठला दिया जाय, पर इसके लिए तो कोई विरला पक्ष ही तैयार होगा कि उसका अभिमत यदि अनुपयुक्त ठहरा दिया जाय तो उसे छोड़कर वह किसी सार्वभौम सिद्धान्त का अनुसरण करने लगेगा। जब तक ऐसी मनोभूमि न बने, तब तक विश्व पंचायत का निर्णय भी किसी काम का सिद्ध नहीं हो सकता। जब सभी पक्ष उस फैसले को न मानें, तो ऐसे निर्णय की क्या उपयोगिता, जिसमें अपने पक्ष के प्रति ही हठ हो, उसका मत परिवर्तन कैसे किया जाय ? जब सभी पक्ष अपने को सत्यवादी कहते हैं, अपनी मान्यताओं को ईश्वरीय आदर्श, शास्त्र-प्रमाण, तर्क-संगत ठहराते हैं और पुष्टि में ऐसे घटनाक्रम प्रस्तुत करते हैं, जो उसी का समर्थन करें, तब उन प्रमाणों को पौराणिक कहकर झुठलाया भी तो नहीं जा सकता है। जब सभी पक्षों ने यही रीति-नीति अपना रखी हो, तो फिर किसे झूठ और किसे सच्चा ठहराया जाय ? किसका समर्थन और किसका विरोध किया जाय ? यह एक ऐसी अनबूझ पहेली है, जिसका समाधान निकलता नहीं दीखता। शास्त्रों से लेकर दमन, उत्पीड़नों और भयंकर रक्तपातों तक की शृंखला इसी कुचक्र के इर्द-गिर्द घूमती रही है, फिर भी सफलता किसी को नहीं मिली। धर्म-परिवर्तन से लेकर शासन बदलने तक में भयंकर उपद्रव इसी आधार पर होते रहे हैं कि दोनों पक्ष अपने को सही उपयोगी ठहराते रहे हैं गैर दूसरे पर तरह-तरह के लांछन लगाकर उसे दुरात्मा ठहराकर अपने आक्रमणों और प्रत्याक्रमणों को सही ठहराते रहे। वास्तविकता किस पक्ष में है, यह जाँचने के लिए न्यायाधीश की आवश्यकता होनी चाहिए, पर इस विधा को अपनाने के लिए हठवादियों में से कोई भी तैयार नहीं होता। वे अपनी ही बात को सर्वोपरि महत्व देना चाहते हैं, उसी को सही सिद्ध करना चाहते हैं। जब दोनों पक्षों का वही हठ हो, तो फिर समाधान का कोई मार्ग नहीं रह जाता। जिसकी लाठी उसकी भैंस वाला जंगली कानून ही प्रयुक्त होता है। जो समर्थ होता है, वह दुर्बल को दबोच लेता है। दबे हुओं में से कोई विरला ही सीना तानकर अपनी बात पर अड़ा रह सकता है, अन्यथा मजबूरी में सिर झुका लेता है और परिस्थिति के साथ समझौता कर लेता है। बात इतने पर भी समाप्त नहीं होती। दबाये गये, सताये गये लोग अपने पक्ष को शहीद घोषित करते हैं और पुराने अत्याचारों का बदला नयी पीढ़ी से लेने का प्रयत्न करते हैं। यह आक्रमण-प्रत्यावर्तन का कुचक्र टूटता नहीं। क्रिया की प्रतिक्रिया होती चलती है और यह सिलसिला लम्बी अवधि तक पीढ़ी-दर-पीढ़ी तक जारी रहता है। संसार भर में साहसिक उपद्रवों के पीछे यही तथ्य काम करते देखा जाता है।

विचारशीलों के सामने यह एक बड़ी समस्या है कि अनेक वादों, प्रतिपादनों में परस्पर चलने वाले विग्रहों को कैसे रोका जाय ? शान्तिपूर्वक रहने और रहने देने का वातावरण किस प्रकार बनाया जाय ? यदि यह समस्या हल नहीं होती, तो प्रत्यक्ष रूप से दीख पड़ने वाले आक्रमणों-प्रत्याक्रमणों को शासकीय रोकथाम के सहारे कुछ समय दबाये भले ही रहा जाय, मनों में घृणा-द्वेष की आग जलती ही रहेगी, उसे जब भी अवसर मिलेगा जिस-तिस रूप में फूट पड़ेगी, विद्वेष, मनोमालिन्य, गुटबन्दी का रूप धारण करेगी। राख के नीचे दबी चिन्गारी भले ही प्रत्यक्ष न दीख पड़े, पर उसका अस्तित्व तो बना ही रहता है और ऊपरी परत हटते ही चिन्गारी को दावानल बनने का अवसर मिलता है।

ऐसा कम ही होता है कि सैद्धान्तिक मतभेद मात्र विचार भिन्नता तक सीमित रहे। वह व्यक्तिगत शत्रुता में बदलता है, ईर्ष्या और घृणा को जन्म देता है; लांछन लगने का सिलसिला चलता है, ईंट का जवाब पत्थर से देने की नीति अपनाई जाती है। गुट संगठित होकर बदला लेते हैं और युद्ध छिड़ने जैसी आक्रमण-प्रत्याक्रमणों की नीति अपनाते हैं। जिस सैद्धान्तिक आधार पर मतभेद आरम्भ हुए थे, उनका तो कहीं पता भी नहीं चलता, उनके कारण उत्पन्न हुआ विद्वेष भयावह विग्रह का रूप धारण कर लेता है। इस कुचक्र में कितने निर्दोष लोग अकारण पिसते हैं, उसका एक उदाहरण महाभारत भी है। दो परिवारों के भूमि बँटवारे सम्बन्धी मतभेद ने कितना विकराल रूप धारण किया और कितने असम्बद्ध लोगों को अपने प्राण गँवाने पड़े, परिवारों को बिलखते, अनाथ स्थिति में छोड़ना पड़ा, यह किसी से छिपा नहीं है।

विवेक की कसौटी पर प्रतिपादनों को कसें

कुछ मतभेद लोक-कल्याण और व्यक्तिगत स्वार्थ के साथ जुड़े होते हैं। उनमें से जनमत किसे स्वीकार करे, इसके लिए जनमानस की विवेकशीलता जगानी पड़ती है और दोनों पक्षों की प्रतिक्रिया परिणति का स्वरूप प्रस्तुत करना पड़ता है। लोकमानस का एक बड़ा वर्ग ऐसा है, जो सामने प्रस्तुत विचारधाराओं में से जो अधिक उपयोगी, श्रेयस्कर दिखाई पड़ती है, उसे धीरे-धीरे तीव्र गति से अपनाने लगता है।

उदाहरण के लिए, साम्यवाद और पूँजीवाद पर आधारित शासन पद्धतियों की उपयोगिता का प्रश्न जनमानस के चयन पर छोड़ दिया गया। प्रचार भर को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर्याप्त समझा गया, तो संसार के आधे लोगों ने साम्यवाद को शासन के रूप में और शेष में से आधों ने विचारधारा के रूप में उसे स्वीकार कर लिया। पूँजीवाद, साम्राज्यवाद कितना ही बलिष्ठ, शक्तिशाली क्यों न रहा हो, पर उसके पीछे नैतिक समर्थन न रहने से वह जहाँ भी है, वहाँ गुट वालों में भी अनास्था उत्पन्न हो जाने के कारण दिन-दिन दुर्बल होता जा रहा है। यह जनमत का फैसला है, जो बिना महायुद्ध लड़े ही विवेकशीलता के आधार पर सरलतापर्वूक अपना लिया गया। ठीक यही बात प्रजातन्त्र और राजतन्त्र के सम्बन्ध में भी है। राजतन्त्रों को किन्हीं सेनाओं ने परास्त नहीं किया। वे जनमत का समर्थन खो बैठने के कारण अनायास ही धराशायी होते चले गये। जो बचे हैं, वे भी अपनी मौत के दिन गिन रहे हैं या फिर प्रजातन्त्र का लबादा ओढ़कर अपनी जिन्दगी और कुछ दिन बनाये रहने का प्रयत्न कर रहे हैं। लोकमत की शक्ति इन शताब्दियों में अभिनव उत्साह के साथ उभरी है। उसमें उपयोगिता, अनुपयोगिता का, औचित्य-अनौचित्य का विवेक उभरा है। इस आधार से फैसले हो रहे हैं, जो किसी जमाने में प्रतिभावान् विद्वानों द्वारा रचे गये शास्त्रार्थों द्वारा होता था या फिर तलवारें-सेनायें उसका फैसला करती थीं।

इस समूचे परिप्रेक्ष्य पर नये सिरे से विचार करने का वर्तमान युग की एक नई उपलब्धि उभरकर ऊपर आती है कि जनसाधारण की विवेकशीलता अपेक्षाकृत अधिक उत्साह से उभरी है और उसमें इतनी शक्ति उत्पन्न हो गई है कि चिन्तन की मस्तिष्क की परिधि तक सीमित न रखकर कार्यरूप में परिणति कर सकें, अपनी मान्यताओं का परिचय साथियों को करा सकें, उन्हें प्रभावित कर सकें और निर्धारण में सहयोगी बना सकें।

शास्त्रार्थ और तलवार के मुकाबले में लोकशिक्षण की शक्ति की क्षमता और महत्ता कहीं अधिक है। वर्तमान युग में उसी ने प्रमुखता प्राप्त कर ली है। असम्भव दीखने वाले कामों को पूरा करने सकने में वही बहुत हद तक समर्थ हुई है। देखना यह है कि इस क्षमता को उन प्रयोजनों के लिए कैसे प्रयुक्त किया जाय, जो इन दिनों अवरोध की चट्टान बनकर खड़े हैं।

अपनी मान्यता को सर्वथा सही मानना और दूसरों के विश्वासों को सर्वथा मिथ्या ठहराना दुराग्रह के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सत्य सर्वत्र एक होता है। उसमें द्विधा को कोई गुंजायश नहीं रहती। सूर्य सर्वत्र एक जैसा चमकता है। चन्द्रमा को भी विश्व भर में एक जैसी स्थिति में देखा जाता है। प्रकृति के नियम सर्वत्र एक जैसे हैं। प्राणियों की आवश्यकतायें एक जैसी पाई जाती हैं। यदि कोई सार्वभौम सत्य रहा होता, तो उसे संसार भर के सब लोग न सही, कम से कम विचारशील तो एक जैसी स्थिति में मान्यता देते, पर देखा जाता है कि विचारशीलों में मूर्धन्य समझे जाने वाले भी मतभेदों से ग्रसित पाये जाते हैं। इसका सीधा-सा अर्थ इतना ही है कि सभी अपने-अपने ढंग से सोचते हैं और परिष्कृत सत्य को ढूँढ़ने के लिए अपने-अपने ढंग से प्रयत्न करते हैं। भिन्नताओं के रहते वही कहा जा सकता है कि यथार्थता को जानने के लिए अगणित प्रयत्न अपने-अपने क्षेत्र में चल रहे हैं, पर कोई भी अब तक पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सका है। यदि कर सका होता, तो विश्व मान्यता एक बन जाती। दिन को सभी दिन कहते और रात को सभी रात। आहार से पेट भरता और पानी से प्यास बुझती है। यह क्रम संसार के हर क्षेत्र में एक जैसा ही चलता है। मादायें बच्चे जनती हैं। यदि इन प्रयत्नों में साम्य है, तो मान्यताओं और विचारणाओं में भी एकरूपता होनी चाहिए, पर यदि ऐसा नहीं है, तो यही मानना पड़ेगा कि अपूर्णता का दौर चल रहा है। बालकों की तरह हम सबकी स्थिति है और अधिक जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा चल रही है। ऐसी दशा में किसी का भी यह दावा करना व्यर्थ है कि वह जो कुछ जानता है, वही सत्य है। यदि ऐसा रहा होता, तो शोध और अनुसन्धान की आवश्यकता ही समाप्त हो जाती। तर्क करने की, तथ्य ढूँढ़ने की, विचार-विनिमय की आवश्यकता ही न पड़ती। सर्दी में सभी गरम उपकरण ढूँढ़ते हैं और गर्मी के दिनों में ठण्डक का प्रबन्ध किया जाता है। यह शाश्वत सत्य है। यदि धर्मों के, सम्प्रदायों के, विज्ञान के, प्रचलन के क्षेत्रों में भी पूर्णता प्राप्त कर ली गई होती, तो विवाद के लिए कहीं कोई गुंजायश ही न रहती। सद्बुद्धि से सभी एक स्तर की मान्यता अपना लेते।

यह ठीक है कि आदिम काल की अपेक्षा आज की स्थिति में हम अपेक्षाकृत अधिक विचारशील हो गये हैं और गुण-अवगुण को समझकर ग्रहण और त्याग के सन्दर्भ में अधिक बुद्धिमत्ता का परिचय देने लगे हैं, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि अमुक वर्ग पूर्ण सत्य का दावेदार बन गया है और उसे यह अधिकार मिल गया है कि अन्य सबको झूठा ठहराने की गर्वोक्ति करने लगे।

प्राचीनकाल में विचारणाओं का, परिपाटियों का क्षेत्र बहुत विस्तृत न था। छोटी परिधि में ही सोच-विचार की भाग-दौड़ पूरी हो जाती थी। 'धर्म' शब्द के अन्तर्गत ही सब कुछ आ जाता था। स्वास्थ्य, चिन्तन, प्रचलन, समाज, अर्थ, परिवार आदि सभी कुछ धर्म नियमों के अन्तर्गत समा जाते थे। इसलिए ऊहापोह और मंथन भी धर्मतन्त्र को लेकर ही होते रहते थे। इसलिए उसी को केन्द्र बिन्दु मानकर चला जाता था। मानो धर्म ही समस्याओं के समाधान का एकमात्र कारण हो, उसी से लोक और परलोक की प्रगति के समस्त द्वारा खुलते हों। ऐसी दशा में स्वाभाविक था कि असंख्य मनुष्य धर्मधारणा के आधार पर अपनी जीविका चलाते और उसी उपक्रम के साथ जुड़कर अपना जीवन गुजारते। यह भी स्वाभाविक था कि जब किसी को किसी कारण लड़ना-मरना होता, तो धर्म रक्षा की दुहाई देकर अधर्म के विनाश का नारा लगाकर आक्रमण करता। जीतने वाला अपनी विजय को धर्म की जय बताकर अपने को, अपने कृत्यों को महिमामण्डित करने का प्रयत्न करता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ लोगों को कुछ समय के लिए मूर्ख बनाया जा सकता है, पर सबको सदा-सर्वदा के लिए अँधेरे में नहीं रखा जा सकता। धर्म की ढूँढ़-टटोल शुरू हुई तो अन्वेषणकर्त्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कुछ नैतिक और सामाजिक आचरणों का नाम ही धर्म है। उसकी परिधि में मात्र मानवी गरिमा को ही अक्षुण्ण बनाये रहने वाले गुण, कर्म, स्वभाव ही आते हैं। धर्म, उत्कृष्टता और आदर्शवादिता के पक्षधर, गुण, कर्म, स्वभाव का ही दूसरा नाम है। यदि ऐसी ही बात है, तो धर्म के नाम पर न लड़ने-झगड़ने की गुंजायश रहती है और न शास्त्रार्थ करने की। नैतिक नियमों को थोड़े-बहुत अन्तर के साथ सभी धर्मों ने अपना आधार बनाया है। ऐसी दशा में उनकी एकता का, समस्वरता का सहज आधार बन जाता है। फिर विवाद किस बात का ? विग्रह किस बात का ?

धर्म-धारणा के साथ कुछ प्रथा-परम्परायें भी जुड़ती हैं। रीति-रिवाजों का भी समावेश होता है, पर वे पत्थर की लकीर नहीं हैं। वे देश, काल, व्यक्ति और परिस्थितियों के आधार पर समय-समय पर बनती, सुधरती, बिगड़ती और नये रूप में प्रतिष्ठित होती रहती हैं। पुराने मकान जीर्ण-शीर्ण होकर खण्डहर बन जाते हैं, तब उनका मलवा हटाना और उस स्थान पर नया भवन बनाना पड़ता है। पहनने वाले का शरीर बढ़ जाने पर पुराने कपड़े छोटे हो जाते हैं और जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं, तब नये साइज के नये कपड़े बनाने पड़ते हैं। इसमें न कोई आश्चर्य की बात है और न बुरा मानने की। हर समाज में सुधारक उत्पन्न होते रहे हैं और उनने अपने समय के अनुरूप पुरानी परम्पराओं को नये-साँचे में ढालने का प्रयत्न किया है। इसका किसी ने बुरा भी नहीं माना, वरन् सामयिक अनकूलता की बात को ध्यान में रखते हुए सराहा ही है। हठवादियों की चर्चा तो क्या की जाय, उन्हें तो लकीर का फकीर रहने से आगे की कोई बात सूझती ही नहीं। "बा बा वाक्यं किं प्रमाणं" से आगे बढ़कर और कुछ सोचने की उनमें क्षमता ही नहीं होती। ऐसे लोग अपनी प्रतिगामिता को सदा प्रगतिशीलता के मार्ग में अवरोध बनकर अड़ाने में ही अपनी बहादुरी जताते और धर्मध्वजी होने का नारा लगाते हैं। इन्हें अपवाद रूप में छोड़ा जा सकता है। सामान्यतया समय के अनुरूप व्यवस्था का सिद्धान्त सभी समझदारों को सामान्य रूप में मान्य होता रहा है।

प्रगतिशील, सुधारवादी और समयानुरूप दृष्टिकोण अपनाने की बात यदि ध्यान में रही होती, तो प्रथा-परम्पराओं, विधि-विधानों के नाम पर जो झगड़े आये दिन अब भी खड़े रहते हैं, उनकी कहीं कोई गुंजायश नहीं रही होती। पिछले दिनों की रखी हुई सब्जी के स्थान पर सभी लोग नई और हरी तरकारी खरीदना पसन्द करते हैं। कोई यह आग्रह नहीं करता कि हमारी टोकरी में जो सामान रखा है, उसी को मुद्दतों तक खाते रहेंगे। दूसरी जगह की बनी वस्तु उपयोग न करेंगे। जब इतनी समझदारी हर किसी में पाई जाती है कि परम्परा के नाम पर हठ न करें, तो कोई कारण नहीं कि अभ्यस्त परम्पराओं को ही अनिवार्य मानकर उनके लिए हठ किया जाय।

राजहंस द्वारा किये जाने वाले नीर-क्षीर विवेक की चर्चा सर्वत्र होती है और उस प्रवृत्ति को सराहा भी जाता है। अनाज साफ करते समय उसमें से कचरा-कंकड़ हटा दिये जाते हैं। ऐसी दशा में पुरातन मान्यताओं के छोटे दायरे में कैद रहने की क्या आवश्यकता है। जो उपयोगी है, जिसमें सुविधा और सरलता है, उसी को क्यों न अपनाया जाय ? समय, श्रम और धन की बर्बादी यदि इसी आधार पर होती है कि पुरातन का निर्वाह होना ही चाहिए, तो इस प्रकार की मान्यताओं पर पुनर्विचार होना चाहिए, साथ ही यह भी किया जाना चाहिए कि अपने पराये का अनावश्यक पक्षपात छोड़कर जो सर्वसुलभ है, विवेकसम्मत है, उसी को अपनाने में संकोच क्यों किया जाय ?

अनेक प्रचलनों में, अनेक विचारधाराओं के विस्तार में जहाँ-तहाँ बहुत उपयोगी अंश बिखरे पड़े हैं। उनमें से कहाँ कितना विवेकसम्मत है ? किस हद तक तर्कसम्मत है, इसका निरीक्षण-परीक्षण करके यदि किसी तथ्य को अपनाने की नीति बरती जाय, तो उसे समन्वयात्मक कहा जायेगा ? और वह हर दृष्टि से हर किसी के लिए उपयोग भी होगी।

भिन्नता में एकता की तलाश

गुलदस्ते की शोभा इसी में है कि उसमें विविध रंग-रूप वाले फूल सँजोये गये हों। यदि सभी एक जैसे हों, तो उनमें विविधताजन्य आकर्षण रह ही नहीं सकेगा। सूर्य किरणें साधारणतः गर्मी और रोशनी भर देती प्रतीत होती हैं, पर वस्तुतः उनमें सात रंग हैं। उन्हीं की इस विशेषता के कारण संसार के रंगों का दृश्यमान अस्तित्व है। यदि यह सप्त वर्ण न होते, तो समस्त संसार के सभी पदार्थ एक रंग के दीख पड़ते और उनको पृथक् करने वाली पहचान कठिन हो जाती।

सृष्टि ने प्राणियों और वनस्पतियों में आकार-प्रकार की भिन्नता रखी है। इससे न केवल सृष्टि का सौन्दर्य बढ़ा है, वरन् विविधताओं के मध्य रहने वाली विशेषताओं से परिचित होकर ज्ञान सम्पदा को बढ़ाने का अवसर भी मिलता रहता है। यदि यहाँ सब कुछ एक जैसा होता, तो किसी को कुछ सोचने तक का अवसर न मिलता, कुछ कदम बढ़ा सकना तो दूर।

ज्ञान को चेतना की सर्वोपरि विभूति माना गया है। यह ज्ञान विविधता के सहारे ही उपलब्ध होता है। भिन्नता ही उपयोगिता-अनुपयोगिता का अन्तर करने के लिए उकसाती और महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए उत्तेजित करती है। यह भिन्नता ही सज्जन और दुर्जन की पहचान कराती है। उसी के सहारे प्रेम और विरोध का सिलसिला चलता है। हिंस्र पशु एवं चोर-उचक्के तक हर किसी को सतर्क रहने, अपना बचाव करने के लिए तत्पर करते हैं। यदि वे न होते, तो किसी को भी सावधानी न बरतनी पड़ती, आत्मरक्षा के साधन न जुटाने पड़ते। फलतः सभी आलसी हो जाते। पेट भरने के अतिरिक्त और किसी को कुछ करने की न तो इच्छा ही होती और न आवश्यकता ही पड़ती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जन-विवेक को जाग्रत करने का एक ही आधार है—विविधताओं के मध्य सर्वोत्तम का चुनाव। प्रतियोगिताएँ इसीलिए होती हैं। प्रतिस्पर्द्धाएँ जीतने के लिए सम्मिलित होने वाले सभी घटक विशेष रूप से तैयारी करते और इसी बहाने अपनी योग्यताएँ बढ़ाते हैं। सर्वोत्तम विजेता न चुने जाने पर भी इतना तो बन ही पड़ता है कि पहले की अपेक्षा योग्यता कहीं अधिक बढ़ जाती है। इतना लाभ पराजितों को भी मिलता है। उनका शौर्य, साहस, पुरुषार्थ जगता है। यदि भिन्नताओं का माहौल न रहे, प्रतिस्पर्द्धाएँ न चले, तो इस नीरस-नीरवता के बीच प्रगति की सम्भावना जैसी कोई बात ही न रह जायेगी। ऐसी दशा में यह कल्पना करना कठिन नहीं पड़ता कि दुनिया कितनी अनगढ़ और कुरूप लगने लगेगी ? आलस्य, उदासीनता और उपेक्षा के अतिरिक्त यहाँ और कुछ दीख ही न पड़ेगा।

प्राचीनकाल में सुयोग्य कन्याओं का स्वयंवर इसीलिए रचा जाता था कि योग्यतम प्रतिभावान की ही वह कन्या सहयोगिनी बनकर अपनी विशेषता के आधार पर कुछ महत्वपूर्ण कार्य कर सकने में समर्थ हो सके। यदि स्वयंवर न होते तो फिर योग्यतम कन्याओं को भी किसी बिरादरी वाले पड़ोसी के घर चूल्हा फूँकने से अधिक बड़ा अवसर न मिलता।

अपने देश में अनेक विचारधाराओं को फलने-फूलने का अवसर देना इसलिए उचित समझा गया कि सत्य की खोज करने का अवसर सभी को अपने-अपने ढंग से प्रयास करते हुए मिलना चाहिए। जनविवेक को यहाँ प्रमुख मान्यता दी जाती रही और यह विश्वास किया जाता रहा कि अपने समय में चल रहे प्रयोग-परीक्षणों में से जिसे अधिक श्रेष्ठ पाया गया, उसे अपनाया जायेगा। यह निर्णायक अवसर तभी हस्तगत हो सकता है, जब अपने-अपने ढंग से अपनी बात कहने का, अपने प्रस्तुतीकरण को सामने रखने का अवसर विद्यमान हो। सत्य की शोध में अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण इसी मार्ग को अपनाना है।

भारतीय संस्कृति और परम्परा को इसीलिए विश्ववन्द्य और सत्य के अति निकट माना गया कि उसमें मानवी मौलिक अधिकारों को उपयुक्त मान्यता प्रदान की गई है। विचारों की अभिव्यक्ति ऐसी ही मान्यता है, जिसको अपने देश में समुचित सम्मान दिया गया। यही कारण है कि अनेक विचारधाराएँ, अनेक मान्यताएँ, अनेक प्रथा-परम्पराएँ आकर एक विश्वधर्म जैसे हिन्दू धर्म में सम्मिलित होती गयीं। अपनी अलग पहचान बनाये रखकर भी इस विश्व धर्म की अविच्छिन्न अंग बनती गयीं। विश्व में चल रहे विघटन के प्रयासों को निरस्त करने का यही कार्य और उपाय है। संसार में जब कभी एकता का, समता का माहौल बनेगा और सदा शान्ति बनाये रख सकने वाली व्यवस्था बनेगी तो विचारों की भिन्नता को सहन करने का ही सिद्धान्त अपनाया जायेगा। इसके बिना विग्रह चलते और बढ़ते ही रहेंगे। हर कोई अपने पक्ष की प्रतिष्ठा का प्रश्न बनायेगा और अपना कथन सच्चा दूसरे सभी की मान्यता झूठी ठहराने के प्रश्न पर अड़ जायेगा और इस आधार पर उठे विवादों का समाधान कभी किसी के लिए सम्भव न होगा।

सही तरीका यह है कि प्रचलित मतभेदों को सुलझाने के लिए कोई निष्पक्ष न्यायालय बने, जिसमें केवल उपयोगिता, प्रगतिशीलता की कसौटी अपनाई जाय। वह निर्णय करे किस मान्यता में कितना अंश उपयोगी है, कितना अनुपयोगी। जबमानस ऐसा बने, तो उस न्यायालय के निर्णय को सत्य के अधिक समीप समझ कर मान्यता प्रदान करें और अपनायें। यह एक कामचलाऊ तरीका है। इसे सत्य शोधन प्रयत्नों में एक प्रगतिशील कदम माना जा सकता है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि जो निर्णय अभी हुआ है, वह सदा-सर्वदा के लिए मान्य रहेगा क्योंकि क्रमिक विकास का क्रम अनादिकाल से चलता आया है और अनन्तकाल तक चलता रहेगा। आदिम काल में जो मान्यतायें थीं, वे मध्यकाल में नहीं रहीं। मध्यकाल में जिन्हें उपयुक्त माना जाता था, उनमें से अब अधिकांश को निरर्थक माना जाता है और जो इन दिनों सच समझा जाता है, वह अगले दिनों विकास के क्रम के अनुरूप अनुपयुक्त ठहराया जा सकता है। इसके बाद भी वह क्रम सदा चलता रहेगा। मनुष्य अपनी स्वल्प सामर्थ्य के अनुसार क्रमशः प्रगति की दिशा में आगे कदम बढ़ाता रहेगा। इस महायात्रा का अन्त कभी होगा भी या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। सम्भव है पूर्ण सत्य सदा एक पहेली ही बना रहे और उसे प्राप्त करने के लिए मनुष्य की शोध यात्रा का कभी अन्त ही न हो। ऐसी दशा में उचित यही है कि सिद्धान्तों के सम्बन्ध में मस्तिष्क खुला रखा जाय, अपनी ही मान्यता को सर्वोपरि ठहराने का प्रयत्न न किया जाय। दूसरों के कथनों, विचारों, मान्यताओं को भी इस दृष्टि से देखा जाय कि उनमें भी उपयोगिता एवं यथार्थता का कोई अंश हो सकता है, साथ ही यह भी माना जाय कि अपनी विचार पद्धति में भी कहीं कोई चूक हो सकती है, उनमें भी भ्रान्तियों का पुट हो सकता है। इस प्रकार खुला मानस रखने के उपरान्त ही यह मानकर चला जाय कि हम सभी सत्य की शोध को लक्ष्य मानकर चलने वाले पथिक मात्र हैं। आज किसी की मान्यता अन्तिम निर्णय नहीं है। जो आज हमने या दूसरों ने सोचा है, माना है, उनमें कल कोई असाधारण परिवर्तन भी करना पड़ सकता है। अपनी अपेक्षा दूसरा पक्ष भी सत्य के अधिक निकट हो सकता है।

नैतिक नियमों के बारे में सभी को स्थिर गति होना चाहिए। एकता, समता, शुचिता, सहकारिता जैसे सिद्धान्त शाश्वत सत्य हैं। समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, बहादुरी जैसे सद्गुणों को सदैव सराहा जायेगा। संयम, सदाचार, उदार, परमार्थ के सम्बन्ध में भी यही बात है। यह सत्य के नये निर्धारण हैं। पुरातन मूल्य अब हल्के पड़ते जा रहे हैं। किसी जमाने में अहिंसा, सच्चाई, ब्रह्मचर्य, संतोष, उपासना, क्षमा आदि को धर्म की धुरी माना जाता था और इन्हें शाश्वत सत्य समझा जाता था, पर अब उन्हें उसी रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता। विरक्त सन्तों

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की बात दूसरी है, पर जिन्हें लोक व्यवहार में भले-बुरे सभी से निपटना पड़ता है, उनके लिए यह कठिन है कि उन मान्यताओं को उसी रूप में कार्यान्वित कर सकें। उदाहरण के लिए, अहिंसा का अक्षरशः पालन नहीं हो सकता। जुएँ, खटमल, रोग उत्पन्न करने वाले कृमि-कीटक, सर्प-बिच्छू आदि के साथ अहिंसा का निर्वाह कैसे किया जाय ? उद्दण्ड, आक्रामक, आततायी भी यदि क्षमा की दुहाई देकर प्रताड़ना से बच जाया करें, तो उनका हौंसला सौ गुना बढ़ेगा और मुट्ठी भर आततायी सारे समाज को आक्रमकता के शिकंजे में कस लेंगे। फिर भले आदमियों का जीवन दुर्लभ हो जायेगा। सरकारी गुप्तचर विभाग में काम करने वाले या सैन्य संचालक अपनी स्थिति को हर किसी के सामने प्रकट कर दिया करें, तो फिर उस उद्देश्य की पूर्ति न हो सकेगी, जिसके लिए उन्हें नियुक्त किया गया था। चोरों के पूछने पर यदि हर कोई अपनी सम्पदा का विवरण बता दिया करे, तो फिर समझना चाहिए कि जो कुछ पास-पल्ले था, वह चोरों के सुपुर्द कर दिया गया। उपरोक्त धर्म-सिद्धान्त यों ऐसे हैं, जिनका प्रत्यक्ष एवं सर्वांगीण विरोध नहीं किया जा सकता, तो भी उनके साथ इतने अधिक अपवाद और अगर-मगर जुड़ते हैं कि उन्हें सार्वजनीन एवं सर्वकालीन नहीं ठहराया जा सकता। ऐसी दशा में बात घूम-फिरकर दूरदर्शी विवेकशीलता पर आ जाती है कि किस सिद्धान्त को, किन परिस्थितियों में किस प्रकार कार्यान्वित किया जाया करे। इस स्थिति में यदि विवेक को सर्वोपरि धर्म-लक्षण माना जाय, तो अत्युक्ति न होगी। उसी को अविच्छिन्न सत्य कहा जा सकता है, जो परिस्थितियों के अनुसार अनेक रूपों में प्रकट हो सकता है। यहाँ तक कि वे सब परस्पर विरोधी भी हो सकते हैं। अहिंसा की व्यवस्था करनी हो तो यह अधिक बुद्धिसंगत होगा कि "दूसरों के साथ वह व्यवहार न करें, जो हमें अपने लिए पसंद नहीं।" संतोष को भी पत्थर की लकीर की तरह जड़ नियमों से नहीं बाँधा जा सकता। सम्पदा-संग्रह जैसे प्रसंगों में दृष्टिकोण यह रखा जा सकता है कि औसत नागरिक स्तर का जीवन जिया जाय, किन्तु अधिक उपार्जन की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि वह सत्प्रयोजनों के लिए नियोजित होता है, तो उसे सराहा जायेगा। यदि सन्तोष पत्थर की लकीर बन जाय, तो लोकोपयोगी कार्यों का विस्तार न हो सकेगा। अपनी मान्यता, शालीनता के वर्तमान स्तर पर भी संतोष कर लिया जाय, उसे पर्याप्त मान लिया जाय, तो अधिक विशिष्टता, अधिक वरिष्ठता एवं अधिक श्रेष्ठता होने की स्थिति ही न आने पायेगी।

यहाँ अहिंसा, सत्य, सन्तोष, क्षमा आदि को अमान्य नहीं ठहराया जा रहा है। मात्र यह कहा जा रहा है कि उनमें अपवादों की बहुत गुञ्जायश रही है और रहेगी। वे आत्यन्तिक सत्य नहीं हैं। जब धर्म नियमों के बारे में, जिन्हें शाश्वत कहा जाता है, यह बात है, तो फिर लोक व्यवहार में चलने वाली प्रथा-परम्पराओं के बारे में क्या कहा जाय ? उनमें सुधार-परिवर्तन की सदा गुंजायश रही है और रहेगी। प्रथा-प्रचलनों के, रीति-रिवाजों के सम्बन्ध में भी यही बात समझी जानी चाहिए। धर्म-सम्प्रदायों के वर्तमान स्वरूपों के सम्बन्ध में भी यही बात समझी जानी चाहिए। वे अपने आरम्भकाल में जैसे थे, वैसे अब नहीं रहे। समय ने उनमें भारी हेर-फेर कर दिया। अगले दिनों भी यह परिवर्तन क्रम जारी रहेगा। परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाकर चलने वाले मनुष्य की बुद्धिमत्ता पर न कभी विराम लगा है और न लगेगा।

हम सब सत्य की शोध के विद्यार्थी

प्रकृति का क्रम स्थिर जैसा प्रतीत होता है। मोटी दृष्टि से घर, बाजार, सड़क, खेत आदि अपने स्थान पर यथावत् स्थिर मालूम पड़ते हैं, पर बारीकी से देखने पर उन सबमें प्रगतिक्रम पर आधारित गतिशीलता अपने परिपूर्ण वेग के साथ काम करती दिखाई देती है। अणु-परमाणु अपने नाभिक के इर्द-गिर्द उसी क्रम में घूमते दिखाई पड़ते हैं, जैसे सौर मण्डल के ग्रह-उपग्रह। ब्रह्माण्ड में अवस्थित नीहारिकाओं से लेकर अनेकानेक ग्रह-नक्षत्र तक क्षण भर भी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते। उनकी गतिशीलता ही खगोल के वर्तमान स्वरूप को बनाये हुए है। स्थिर होने पर तो वे अपना अस्तित्व ही गँवा बैठते।

वनस्पतियों और प्राणियों पर भी यही नियम लागू होता है। वे उपजते हैं, बढ़ते हैं, परिपक्व होते, ढलते और अन्त में जराजीर्ण होकर परिवर्तन की स्थिति में गिरकर अपने पुराने स्वरूप को ही बदल देते हैं। इसी को सृजन, अभिवर्धन और परिवर्तन का क्रम कहते हैं। यह सचेतन जीवधारियों पर ही नहीं, जड़ पदार्थों पर भी लागू होता है। इस नियति क्रम के अनुरूप अपने मानस को ढालने की पूरी तैयारी हर किसी को करनी चाहिए, अन्यथा समय आगे बढ़ जायेगा और वह पिछड़कर, प्रतिस्पर्द्धा में पिछड़े हुओं की तरह हाथ मलता रह जायेगा।

पेड़-पौधों के पत्ते हिलते रहते हैं। वे ऊपर उठते, फैलते और फिर सिकुड़कर जराजीर्ण होते और रूप बदलते तथा नया कलेवर धारण करते हैं। शरीर के भीतर और बाहर भी वही क्रिया चलती है। काया को कुछ न कुछ करते रहना पड़ता है। वह मूर्ति की तरह किसी एक स्थान पर बैठकर स्थिर नहीं रह सकती। चारपाई पर किसी कारणवश एक स्थिति में पड़े रहने वालों की पीठ में 'बेड सोर' कहे जाने वाले घाव बन जाते हैं। अचल पड़े रहने वाले असंख्य रोगों के शिकार हो जाते हैं, उनका भोजन तक नहीं पचता, अंग जकड़कर निष्क्रिय हो जाते हैं। शरीर के भीतर भी प्रत्येक अवयव, जीवकोष अपनी-अपनी क्रियाओं में संलग्न रहता है। रक्तसंचार से लेकर श्वास-प्रश्वास तक की अनेकानेक हलचलें काय-कलेवर के अन्तराल में चलती रहती हैं। इसी गतिशीलता को जीवन कहते हैं। यदि यह सब एक क्षण के लिए भी रुक जाय, तो फिर तत्काल मरण की स्थिति बन जाती है। भव्य भवन भी समयानुसार जराजीर्ण होने लगते हैं और गिरकर खण्डहर बन जाते हैं। इस कबाड़ को हटाकर लोग नई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संरचना करते हैं। पर्वत स्थिर प्रतीत होते हैं, पर वास्तविकता वह है कि वे भी उठने, धँसने, आगे बढ़ने और पीछे हटने की गतिशीलता अपनाये रहते हैं, चाल भले ही धीमी हो। समुद्र ने भी कितनी ही बार पलटा खाया है। उनके खण्ड होते रहे हैं। वे कभी मिलते, कभी बिछुड़ते देखे गये हैं। ग्रह-नक्षत्र भी नये बनते और पिछले बूढ़े होकर दम तोड़ते रहे हैं। जिधर भी दृष्टि पसार कर देखा जाय, उधर ही परिवर्तन का अविच्छिन्न माहौल काम करता दीखता है। इसी को दूसरे शब्दों में प्रगतिशीलता भी कहा जा सकता है। इसे नकारा नहीं जा सकता, झुठलाने से भी बात नहीं बनती, हमें तथ्य को समझना और तदनुरूप अपने मानस को उस प्रक्रिया के अनुरूप अपने को तैयार करने के लिए अभीष्ट चिन्तन अपनाना चाहिए, किसी आग्रह पर अड़कर नहीं बैठना चाहिए। हठ जड़ता का चिन्ह है। उसमें यथार्थता के नकारने की अदूरदर्शिता काम करती रहती है।

प्रथा-परम्पराओं में आदिकाल से परिवर्तन होता रहा है। आरम्भ काल में जब साधनों का अभाव था, तब जीवनयापन की एक पद्धति थी। इसके उपरान्त जैसे-जैसे ज्ञान की, साधनों की उपलब्धि का क्षेत्र बढ़ता गया, उसी अनुपात में रहन-सहन एवं सोच-विचार भी बदलता गया। यह प्रवाह निरन्तर चलता आ रहा है। इसे इतिहास के पृष्ठ उलटकर भलीभाँति देखा जा सकता है। पुरातत्व विज्ञानियों को जो भूतकालीन परिस्थिति के प्रमाण-परिचय मिले हैं, वे बताते हैं कि विकास और परिवर्तन की शृंखला अनवरत रूप से बनती और बढ़ती रही है। पिछली शताब्दी को विज्ञान युग कहा जाता है। इसमें मानवी चिन्तन और रहन-सहन में, प्रथा-परम्पराओं में असाधारण परिवर्तन हुआ है। पिछली शताब्दियों में यान्त्रिक वाहन न थे। जलयान, वायुयान, तार, टेलीफोन, कल-कारखाने, बिजली आदि का कहीं अता-पता भी न था। उन दिनों रहन-सहन की पद्धति भी आज जैसी न थी। जैसे-जैसे साधन बढ़े उसी के अनुसार जीवन पद्धति में भी परिवर्तन हुआ और प्रचलनों में अन्तर पड़ता चला गया। आज हम पाँच शताब्दियों में इतने बदल गये हैं, जिसे देखते हुए जमीन-आसमान जैसा अन्तर हुआ समझा जा सकता है।

सहस्राब्दियों की बात छोड़ें मात्र कुछ शताब्दियों की और आज की परिस्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन करें, तो प्रतीत होगा कि परिस्थितियाँ किस तेजी से बदलती गईं, परिवर्तन किस आश्चर्यजनक ढंग से होते गये। बात यहाँ तक बढ़ गई है कि पुरातन काल जैसी रीति-नीति और प्रथा-परम्परा अपनाये रहना अब किसी भी प्रकार सम्भव नहीं रहा। सघन वन प्रदेशों में जहाँ-तहाँ आदिम जातियों के कुछ कबीले पाये जाते हैं। इनकी मनःस्थिति और परिस्थिति देखकर आश्चर्य होता है कि वे इन दिनों में किस प्रकार उस पुरातन पद्धति को अपनाये रह सके। उन्हें एक कौतूहल ही समझा जा सकता है। इसे हठवादिता कहा जा सकता है, पूर्वाग्रह या पिछड़ापन भी। यदि उनने प्रगतिक्रम के साथ चलने की आवश्यकता समझी होती, प्रगतिशीलों और पिछड़ों के बीच तालमेल व सामंजस्य बिठाया होता, तो निश्चय ही पूर्वाग्रहों ने हार मानी होती और अनगढ़ लोग उस गई-गुजरी स्थिति से आगे बढ़कर विकसित वर्ग में सम्मिलित हो गये होते। इसमें प्रगतिशीलों की उपेक्षा को भी दोषी ठहराया जा सकता है, पर अधिक दोष उस हठवादिता को ही दिया जायेगा, जिसने समय के प्रवाह को नहीं समझा और एक कदम आगे बढ़कर प्रस्तुत प्रगति के साथ सम्बन्ध जोड़ने में उत्साह नहीं दिखाया। यह भूल किसी भी क्षेत्र में हो रही हो, वह परिणाम में घाटा ही प्रस्तुत करेगी। हम आदिमकाल की ओर नहीं लौट सकते। बढ़ना आगे की ओर ही पड़ेगा। उलटे पैरों पीछे की दिशा में चलना कोई कौतूहल तो प्रस्तुत कर सकता है, पर लम्बी यात्रा कर सकना इस आधार पर सम्भव नहीं हो सकता, बुद्धिमानी आगे बढ़ने में ही है।

यह समझा जा सकता है कि प्रगति के अत्युत्साह में हम ऐसी अवांछनीयता न अपना लें, जो अनर्थ का कारण बने। धन, उपकरण, बुद्धि कला आदि उपयोगी वस्तुओं का भी दुरुपयोग अनर्थ पैदा करता है, फिर प्रगति यदि शालीनता की मर्यादाएँ तोड़ने लगे, तो उसका परिणाम भी भयावह ही होगा।

प्रगतिक्रम, विज्ञान और बुद्धिबाद की बढ़ोत्तरी के साथ-साथ अधिक द्रुतगामी हुआ है। जो परिवर्तन पूर्वकाल में धीमी गति से हजारों वर्षों में हो पाते थे, वे अब अत्यन्त तेजी के साथ होने लगे हैं। दुनिया अब बहुत छोटी रह गई है। प्रेस और संचार साधनों ने विभिन्न क्षेत्रों में बिखरी हुई विचारधाराओं को एक-दूसरे के समीप खड़ा होने की स्थिति में ला दिया है। द्रुतगामी वाहनों ने स्थानों और क्षेत्रों की दूरी अपेक्षाकृत बहुत कम कर दी है। क्रमशः संसार एक छोटे प्रदेश की तरह आपस में सट गया है। संस्कृतियों के बीच असाधारण रूप से घुलने-मिलने की स्थिति उत्पन्न हुई है। एक ने दूसरे से बहुत कुछ सीखा-अपनाया है, साथ ही सभी समुदायों ने अपनी पुरातन परम्पराओं में से उन तत्वों को हटाने का प्रयत्न किया है, जो सामयिक उपयोगिता की कसौटी पर खरे नहीं उतर रहे थे। भाषायी, साम्प्रदायिक, सांस्कृतिक कट्टरता क्रमशः अधिक लचीली होती गई है और प्रवाह उस दिशा में बढ़ रहा है, जिसमें विश्व मानव को एकता के केन्द्र पर केन्द्रित होने के लिए प्रेरणा मिल रही है। अगली कुछ ही शताब्दियों में विश्व-मानव इतनी समझदारी अपना लेगा, जिसमें एकता, समता और सहकारिता के सिद्धान्तों को पूरी तरह अपना लिया जायेगा। लोग अपने-अपने आग्रहों के प्रति कट्टर न रहेंगे। बात इस प्रकार बनेगी कि अनेकानेक मान्यताओं के बीच जहाँ जितनी उपयोगिता पाई जाय, वहाँ से उसे उतनी ही मात्रा में ग्रहण कर लिया जाय। जो समय से पीछे रह गई, उस परम्परा के लिए कोई आग्रह न करे। कम से कम एक-दूसरे पर लादने का प्रयत्न तो करे ही नहीं। अपने को पूर्ण सत्य का अनुयायी और दूसरों को मूर्ख, भ्रान्त, असत्य का अनुयायी कहने की धृष्टता तो करे ही नहीं। उससे कम में, पारस्परिक निर्वाह में तालमेल बैठ सकना किसी भी प्रकार सम्भव न हो सकेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहा जा चुका है कि हम सब सत्य की शोध के विनम्र विद्यार्थी हैं। पहली कक्षा का विद्यार्थी जब दूसरी कक्षा में प्रवेश पाता है, तब उसे पुस्तकें भी नई पढ़नी पड़ती हैं और सीखना भी नया पड़ता है। क्रमिक विकास इसी आधार पर आगे बढ़ता है। प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च तथा कॉलेज की पढ़ाई इसी क्रम में चलती है। कोई छात्र यह आग्रह नहीं करता कि उसने पहले जो पढ़ा था, वही समग्र था। इससे आगे की और कोई पढ़ाई हो ही नहीं सकती। अपनी कक्षा का पाठ याद करते समय उसे कर्त्तव्य मानना और पूरे मन से पढ़ना एक बात है और आगे की पढ़ाई कुछ है ही नहीं, इससे इन्कार करना सर्वथा दूसरी। अपने को प्रिय लगने वाली पोशाक कोई पहने, इसमें कोई अपमान वाली बात नहीं है, पर झंझट वहाँ आरम्भ होता है, जब अपनी ही पोशाक को सर्वश्रेष्ठ तथा दूसरी पोशाकों को मूर्खतापूर्ण बताने की आक्रामक नीति अपनाई जाय। कोई अपनी मर्जी के गीत गाये, यह उसकी इच्छा के ऊपर है, पर अन्य सभी गायनों को हेय ठहराना नागरिक स्वतन्त्रता के मूलभूत सिद्धान्तों का उल्लंघन ही माना जायेगा। इस नीति को अपनाने पर तो सामाजिक समस्वरता ही नष्ट हो जायेगी और अकारण विग्रह के अवसर खड़े होंगे।

समन्वय का अर्थ प्रकारान्तर में सहकारिता भी है। मिलजुल कर रहने, काम करने, सामंजस्य बिठाने की प्रक्रिया ऐसी है, जिसमें सहभागी होने वाले प्रत्येक घटक की शक्ति अनेक गुनी बढ़ जाती है। अकेला तिनका, पत्ता, धूल का कण, पौधा, मनुष्य सभी दुर्बल और अशक्त रह जाते हैं। उनके लिए कोई बड़ा काम कर सकना तो दूर, अपने आपकी रक्षा करना भी कठिन पड़ता है। खेत में, उद्यान में उगे हुए पौधे, सहयोगी-सहभागी बनकर अपने आप सुदृढ़ एवं शोभायमान लगते हैं। सरलतापूर्वक फलते, फूलते और सुदृढ़, सुरक्षित बने रहते हैं, पर यदि उनमें से प्रत्येक बीज अलग-अलग रहे, पृथक-पृथक बने, तो उसकी सुरक्षा सुनिश्चित न रहेगी। फलने-फूलने का अवसर तो कदाचित् ही आये। इस सिद्धान्त को सृष्टि के सभी समझदार प्राणी जानते और मानते हैं। चिड़ियाँ झुण्ड बनाकर रहती और साथ-साथ उड़ती हैं। हिरन से लेकर हाथी तक झुण्ड में रहते हैं। जो पृथकता की नीति अपनायेगा, उसकी संकीर्णता-अहमन्यता उसी के लिए घातक सिद्ध होगी। झुण्ड से अलग रहने वाले पशु 'इक्कड़' कहे जाते हैं। उनका स्वभाव अन्यों की अपेक्षा अधिक उद्धत, अधिक अनगढ़ और अधिक असुरक्षित रहता है। वे अपने आप में अपेक्षाकृत अधिक आशंकित रहते हैं। दूसरे भी उन्हें देखकर आतंकित हो उठते हैं, बचने का, खदेड़ने का प्रयत्न करते हैं। इस स्थिति में रहना मनुष्य के लिए घातक और संकटापन्न ही बनता है।

सहयोग और समन्वय का मार्ग अपनाएँ

संघर्ष और सहयोग दो ही मार्ग ऐसे हैं, जिनमें से किसी एक को चुनकर समस्याओं का समाधान सोचा जा सकता है। संघर्ष का तात्पर्य है—अपनी मर्जी को दूसरों पर थोपना। उसे अपनाने के लिए बाधित करना। कहने से न मानता हो तो उसका दमन-उत्पीड़न करना। यह नीति समर्थ असमर्थों के प्रति अपनाते रहे हैं। बलवान के लिए ही यह सम्भव है कि वह निर्बल को दबाले और उसे अपनी मर्जी पर चलाए। इसी मान्यता वाला दूसरा उपाय प्रलोभन देने के रूप में भी अपनाते रहे हैं। लालच देकर भी किसी को वह करने के लिए बाधित किया जा सकता है, जिसे वह स्वेच्छा से नहीं करना चाहता। वेश्यावृत्ति इसी आधार पर पनपी है। उसमें दोनों में से कोई भी पक्ष किसी का सच्चे मन से सहयोगी नहीं होता। पर प्रलोभन को माध्यम बनाकर एक दबता है दूसरा दबाता है।

दास प्रथा में दमन प्रधान रहा है। युद्धों में हारे हुए राज्य की प्रजा को विजेता अपनी विजय उपलब्धि में लूटी हुई सम्पदा की तरह अपनी मानता था। उनके धन-साधन तो छीन ही लिए जाते थे साथ ही युवा स्तर के नर-नारियों को भी लूटे हुए पशुओं की तरह पकड़ लिया जाता था और उनसे स्वामी पशुओं की तरह काम लेता था। अमेरिका के बाजारों में काले हब्सी इसी प्रकार बिकते रहे, उन्हें चिड़ियों या मछलियों की तरह जाल में फँसाकर लाया जाता था। यह प्रक्रिया बौद्धिक स्तर पर भी काम करती देखी गई है। चतुर लोगों ने मूर्खों को इसी आधार पर अपना अनुयायी बनाया है और उसी पिछड़ेपन में स्वेच्छापूर्वक रहने के लिए विवश किया है। इन सब तरीकों को दबाव का, संघर्ष का तरीका कह सकते हैं। इसी विद्या को अपनाने पर पराजित अपना मनोबल यहाँ तक कि ईमान भी खो बैठते हैं। साथ ही विजेता की अदमन्यता का वारापार नहीं रहता। वह अपने को सर्वशक्तिमान मानने लगता है और आक्रामक नीति का और भी अधिक दुस्साहस के साथ प्रयोग करता है। इस प्रकार मनुष्य-मनुष्य के बीच खाई बढ़ती जाती है और इसका आत्यंतिक प्रभाव सबके लिए सब प्रकार अनर्थकारक ही होता है। यों आक्रामक की सामर्थ्य को पहले हमले की जीत मिलने की सम्भावना के साथ लाभ उठाते देखा गया है, पर अन्ततः वे भी अपने पापों के फलस्वरूप तथा प्रतिशोध की सुलगती आग धधक पड़ने पर जो कमाया था, उसे भी गँवा बैठने से भी अधिक घाटे में रहते हैं। उसकी प्रामाणिकता और सज्जनता समाप्त हो जाने पर तिरस्कृत-उपेक्षित ही नहीं गई-गुजरी स्थिति में भी जा पड़ते हैं। यह सब संघर्ष पक्ष की प्रतिक्रियाएँ हैं, जिनसे विजेता और पराजित दोनों ही घाटे में रहते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दूसरा मार्ग सहयोग का है। परिवार एक प्रकार से छोटा समाज है, जिसमें सभी समर्थ-असमर्थ मिल-जुलकर रहते, मिल-बाँटकर खाते, सुरक्षित रहते और समुन्नत बनने के लिए अग्रसर होते हैं। बिखर जाने पर इनमें से किसी का भी कोई महत्व नहीं रह जाता। सहकारिता के आधार पर सैन्य बल बनते हैं, कारखाने चलते हैं और विशालकाय निर्माण कार्य पूरे होते हैं। प्रजातन्त्रीय देशों में वोट के बल पर शासनों में परिवर्तन होते देखा गया है। मधुमक्खियाँ मिलकर छत्ता बनाती और शहद बनाने जैसा कौशल विकसित करते हुए यशस्वी बनती हैं। सहकारिता को इस युग की उच्चस्तरीय उपलब्धि माना गया है। संगठन इसी सिद्धान्त के अनुरूप खड़े होते हैं। बैंकें इसी आधार पर काम करती हैं। धर्मतन्त्र से लेकर राजतन्त्र तक को अपनी संगठन शक्ति के आधार पर ही आश्चर्यजनक कार्य करते देखा गया है। अर्थ-तन्त्र की प्रगति में यही शक्ति प्रमुख रूप से काम करती है। जहाँ इस विद्या को अपनाया नहीं जाता; विग्रह, विसंगठन पर उतारू रहा जाता है वहाँ समझना चाहिए कि देर सबेर में सर्वनाश ही होकर रहेगा। संयुक्त परिवार की पद्धति को हर दृष्टि से विकासोन्मुख एवं सुख-शान्ति की सुनिश्चित विद्या माना गया है। इसके विपरीत संकीर्ण स्वार्थपरता से प्रेरित अदूरदर्शी लोग डेढ़ ईंट की मसजिद बनाते और ढाई चावल की खिचड़ी पकाकर उपहासास्पद बनते और असफल रहते देखे गये हैं।

सहकारिता का प्रत्यक्ष स्वरूप मिल-जुलकर काम करने के रूप में एकजुट बनने, एकत्रित होने के रूप में दृष्टिगोचर होता है। पर थोड़ा गहराई में उतर कर उसके सिद्धान्त या दर्शन पर विचार किया जाय तो यह तथ्य उभरकर ऊपर आता है कि समन्वय की भावना ही सहकारिता के रूप में विकसित होती है। अपने स्वार्थ को अलग या ऊँचा रखने पर यह आधार बन नहीं सकता। अपने स्वार्थ को अन्यान्यों के स्वार्थ में मिलाकर चलना होता है। इसी को उदारता या परमार्थ परायणता कहते हैं। अधिकार को गौण और कर्तव्य को प्रमुख मानकर चलने पर ही यह विद्या बनती है। यह क्रिया परक भी हो सकती है और विचारपरक भी। अपने को ही प्रधानता देना और अन्यान्यों की उपेक्षा करना यही है वह चिन्तन जो अनेक विग्रह और संकट खड़े करता है। इसी को संकीर्णता, अनुदारता, स्वार्थपरता, कट्टरता आदि के नाम से जाना जाता है।

यह संकीर्णता अनेक रूपों में सामने आती रहती है। सम्प्रदायवाद, जातिवाद, व्यक्तिवाद, आदि के रूप में यही क्षुद्रतायें अपने-अपने ढंग से काम करती और टकराव का माहौल बनाती हैं।

सम्प्रदायवादी अपनी मान्यताओं को ही सही होने का हठ करते हैं। अपने विचारों के साथ ईश्वरीय आदेश, शास्त्रवचन, देवदूत कथन, सनातन सत्य मानते हैं। बात इतने भर तक सीमित रहती तो कोई बात भी नहीं थी। व्यक्ति अपने लिए किसी विश्वास को सही माने और अपनाये रहे तो इसे उसकी व्यक्तिगत मान्यता कहकर विचार स्वातन्त्र्य के अन्तर्गत लिया जा सकता है, पर संकट तब खड़ा होता है जब अन्यान्यों की सभी मान्यताओं को झुठलाया जाता है। उन्हें अधर्मी, नास्तिक, काफिर, म्लेच्छ आदि कहकर झूठा ठहराया जाता है। इसी आधार पर उनके साथ झंझट खड़ा किया जाता है। दमन को पुण्य माना जाता है और अपने विचारों को दूसरों पर थोपने में जितनी सफलता पाई जाय, इसे धर्म की, ईश्वर की सेवा कहा जाता है। यह अतिवाद है, दुराग्रह भी। किसके विचार किस हद तक सही हैं—इसका निर्णय होना अभी शेष है। जब सभी सम्प्रदाय अपने को सच्चा और दूसरों को झूठा मानते हैं, तो इसका निर्णय कैसे हो कि अगणित सम्प्रदायों में से कौन एक सही तथा अन्य सब झूठे हैं। जब सभी एक जैसी सेवा करते हैं, तो विचारशीलता के आगे यह संकट खड़ा होता है कि वह किसको सही और किन अन्यान्यों को झूठा ठहराए। उपयोगिता की कसौटी पर अपने को कसे जाने के लिए अपने को कोई प्रस्तुत नहीं करता। दुहाई पूर्वजों की या प्रचलनकर्त्ताओं का देवदूत ठहराने को देता है। जब सभी का दावा एक जैसा हो तो फिर किसे सही और किसे गलत ठहराया जाय। यह झगड़ा हठवादिता पर आघात होने के कारण कभी निपटने वाला नहीं है। प्रत्येक मतावलम्बी अपने अतिरिक्त सभी को झूठा ठहरायेगा और उन्हें मिटाने या नीचा दिखाने लिए चित्र-विचित्र तरीके खोजता रहेगा। शास्त्रार्थ होने से लेकर तलवार चलाने तक की दुर्घटनायें इसी आधार पर होती रही हैं। कट्टरता जब तक इसी रूप में बनी रहेगी, तब तक शान्ति और समाधान का कोई मार्ग निकलने वाला नहीं। सहकारिता की जड़ों को ये संकीर्णता के पक्षधर सदा काटते ही रहेंगे।

चैन से रहने और रहने देने का तरीका एक ही है—सहिष्णुता और समन्वय। अपने को सही मानें, पर दूसरे भिन्न मतावलम्बियों को भी वैसी ही स्वतन्त्रता प्रदान करें। भोजन और वस्त्र के सम्बन्ध में अपनी रुचि के अनुसार चयन करने की छूट रहती है, तो फिर साम्प्रदायिक मान्यताओं को भी अपनी रुचि के अनुरूप अपनाने की सुविधा क्यों न हो ? कोई किसी से टकराये क्यों ? कोई किसी को झूठा क्यों बताए ? जब हर व्यक्ति की आकृति एवं प्रकृति में थोड़ा अन्तर रहने पर भी परस्पर मिल-जुलकर रहा जा सकता है। तो अनेक मान्यता वाले अपने अभिमतों को एक गुलदस्ता क्यों न मानें ? और बिना टकराए अपनी-अपनी मान्यताएँ बनाए रहकर भी सहिष्णुता का मार्ग क्यों न अपनाएँ ?

हिन्दू धर्म में यह परिपाटी अति प्राचीनकाल से चली आ रही है। यहाँ अनेक देवी-देवताओं की मान्यता है, किसी को किसी देवता के देवालय में जाने पर आपत्ति नहीं होती वरन् सभी को श्रद्धापूर्वक शीश झुकाते हैं। कई बार तो एक ही देवालय में अनेकानेक देवताओं की स्थापना होती है। यों उनके नाम पर पूजा प्रचलन, कथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रसंग अलग-अलग भी पाए जाते हैं। अपने प्रिय देवता को सर्वोपरि ठहराने का उपक्रम भी चलता है। इतने पर भी देवताओं की भिन्नता को लेकर कभी कोई कटुता भरे विग्रह खड़े नहीं होते। यही बात एक कदम और भी आगे बढ़ाई जा सकती है। अनेक धर्म-सम्प्रदायों को भी इसी सहिष्णुता और समन्वय भावना से सहन किया जा सकता है। इससे भी एक कदम और आगे बढ़ना हो तो सभी धर्म-प्रवचनों में से जो बातें समय के अनुरूप उपयोगी प्रतीत हों उन्हें सभी को अपनाने का उत्साह जगाया जा सकता है। जो मान्यतायें या प्रथायें समय के पीछे की हो गईं उनकी उपेक्षा की जा सकती है। आवश्यक नहीं कि जो प्रतिपादन कभी किन्हीं परिस्थितियों, किन्हीं व्यक्तियों या क्षेत्रों के लिए उपयुक्त ठहराये गये हों, वे आज भी हर किसी के लिए उसी रूप में मान्यता प्राप्त करते रहें। ऐसा करने पर तो सुधार परम्परा और प्रगतिशीलता का अन्त ही हो जायेगा। सत्य की सीधे में चलते आ रहे प्रयत्नों के मार्ग में अवरोध ही खड़ा हो जायेगा।

सम्प्रदायवाद की तरह संकीर्णता का एक-दूसरा क्षेत्र भी है—जातिवाद। किसी जमाने में व्यवसाय और क्रियाकलाप के आधार पर जातियाँ बनती थीं। बजाज, सुनार, अध्यापक, शिल्पी, साहित्यकार आदि की भी अपनी-अपनी विरादरियाँ हैं, पर उनका जन्म-जाति से कोई सम्बन्ध नहीं है। सभी वंशों में जन्मे लोग अध्यापक, व्यवसायी, कलाकार आदि हो सकते हैं। ऐसी दशा में जन्म जाति पर आग्रह करने का कोई तुक नहीं रह जाता। विशेषतया तब जबकि उसकी अलग पहचान बनाई जाय। दूसरों से उसे सर्वथा भिन्न रखा जाय। अपने वंश के लोगों को अपना और अन्य सबको विराना ठहराया जाय ? बात इस कदर बढ़ जाय कि अपनी जाति-पाँति के साथ पक्षपात और दूसरों के साथ उपेक्षा बरती जाय। इन दिनों तो जातियाँ एक प्रकार से छोटे-छोटे राष्ट्रों, सम्प्रदायों के रूप में इस सीमा तक विकसित हो गई हैं कि एक-दूसरे के साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध करना तो दूर, उत्सव आयोजनों में भी अपनी ही जाति वालों को आमन्त्रित करते हैं। बात बढ़ते-बढ़ते ऊँच-नीच तक पहुँचती है। हर विरादरी अपने को ऊँचा ठहराती है और दूसरों को नीच होने की मान्यता बनाती है। देखा यहाँ तक गया है कि एक ही बड़ी जाति के अन्तर्गत पायी जाने वाली उपजातियाँ तक अपने-अपने को ऊँचा ठहराती हैं। दूसरों को नीचा बताती हैं। अपने दायरे से आगे बढ़कर कोई किसी के साथ रोटी-बेटी जैसे रिश्ते बनाने को तैयार नहीं होता। यह बिखराव की भयावह स्थिति है। इसके रहते कोई देश आज पारस्परिक घनिष्ठता के सूत्र में नहीं बँध सकता। यह जातिवाद भी एक प्रकार की संकीर्ण कट्टरता ही है। इसे हटना और और हटाया ही जाना चाहिए। जातियों-वंशों के बीच सामन्तवादी तालमेल बैठना ही चाहिए।

क्षेत्रवाद और भाषावाद की संकीर्णता

क्षेत्रवाद और भाषावाद दोनों ही अपने स्तर पर विखराव पैदा करने, फूट डालने और विग्रह खड़े करने पर आमादा दृष्टिगोचर होते हैं। विचार करने की बात यह है कि इनको प्रश्रय-प्रोत्साहन मिलते रहने पर क्या एकता और सहकारिता का वातावरण कभी बन सकता है।

पृथ्वी एक है। उस पर निवास करने वाले सभी मनुष्य पृथ्वी-पुत्र हैं। सभी एक माता की सन्तान हैं। ईश्वर भी एक ही है। उसको पिता मानने वाले सभी एक पिता की सन्तान कहलाने के अधिकारी हैं। माता के अंचल में सभी सन्तानें समान रूप से प्रश्रय प्राप्त करती हैं। भावनाशील पिता के विचारवान पुत्र भी समान रूप से अपने अभिभावक का बिना किसी भेदभाव के दुलार, संरक्षण प्राप्त करते हैं। इसी दशा में सहोदर भाइयों को एक-दूसरे से अलग होने का प्रश्न कहाँ उठता है। माता के अंग बाँटने और उन पर अलग-अलग अपना अधिकार जमाने का प्रयत्न कहीं नहीं होता। इस प्रकार पिता के जीवित रहते उस पर अपने हिस्से का दावा कोई नहीं करता। यही भावना और मान्यता मनुष्य-मनुष्य के बीच पनपनी चाहिए। सभी को परस्पर विश्व बन्धुत्व की सद्भावना से ओत-प्रोत रहना चाहिए।

धरती के सभी भागों में सभी को समान रूप से आवागमन की, बसने की सुविधा रहनी चाहिए। यही औचित्य है, यही न्याय। पर जब गिरोह बनाकर कुछ लोग पृथ्वी के किसी भाग पर अपना कब्जा जमा लेते हैं और वहाँ की सुविधाओं से मात्र कब्जा जमाने वाले ही लाभान्वित होते हैं, अन्यत्र रहने वालों को वहाँ पहुँचने की, वहाँ की सुविधा से लाभ उठाने की मनाही करते हैं, तो समझना चाहिए कि क्षेत्रीय कट्टरता को ही अपनाया जा रहा है।

पृथ्वी पर अनेक देशों में घनी आबादी है और अनेक क्षेत्र विरल पड़े हैं। विरल क्षेत्रों के लोग अधिक जमीन का अधिक लाभ उठाते हैं, जबकि घनी आबादी वाले उतने ही सीमित दायरे में किसी प्रकार मुश्किल से गुजारा कर पाते हैं। यदि यह संकीर्णता न रही होती, तो समूची मनुष्य जाति को पृथ्वी के समस्त भागों का समान लाभ मिला होता। अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि में हर व्यक्ति के हिस्से में बहुत जमीन आती है। जबकि भारत, चीन जैसे देश घनी आबादी और थोड़ी जमीन के कारण अभावों और असुविधाओं के बीच गुजारा करते हैं। धरती की तेल सम्पदा पर मुट्ठी भर देशों का कब्जा है। खनिज भण्डार भी थोड़े देशों के हिस्से में आते हैं। अन्यत्र रहने वालों को उन साधनों से वंचित रहना पड़ता है। यह क्षेत्रवाद ही है जिसके कारण कुछ को आसाधारण सुविधा मिलती है और शेष को अभावग्रस्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहना पड़ता है। यह क्षेत्रवाद हर दृष्टि से अनुचित और अन्यायपूर्ण है। अच्छा होता कि भूमि को सभी मनुष्यों की समान सम्पत्ति माना गया होता और क्षेत्रवाद के प्रचलन को निरस्त किया गया होता।

जिस प्रकार एक मनुष्य जाति का विखण्डन होकर काले-गोरे के, जाति-पाँति के रूप में विभाजन दीख पड़ता है, उसी प्रकार क्षेत्रवाद का अनौचित्य भी न्याय का वातावरण नहीं बनने दे रहा है। यह बीमारी जैसे-जैसे भीतरी परतों में प्रवेश करती जाती है, वैसे-वैसे ही उसकी छूत अन्य अवयवों को भी प्रभावित करती जाती है। विश्व एक होना चाहिए था, किन्तु उसका विखण्डन होकर, देशों के नाम पर क्षेत्रवाद पनपा और अनौचित्य की फिलॉसफी चली। उसी प्रकार यह विग्रह देशों के अन्तर्गत छोटी इकाइयों के रूप में विभाजन करने की माँग उठा रहा है। आन्दोलन चल रहे हैं। हिन्दुस्तान, पाकिस्तान बँटवारे का कितना भयावह परिणाम हुआ इससे हम सभी परिचित हैं। यदि दोनों एक रहे होते, मिल-जुलकर काम कर रहे होते, तो यह क्षेत्र संसार की मूर्धन्य शक्तियों में से एक रहा होता, पर उस दुर्भाग्य को क्या कहा जाय जो बँटवारे के रूप में सामने आया और उस क्षेत्र के सभी लोगों को आतंकित बनाकर चला गया।

क्षेत्रों के आधार पर बँटवारे की माँग अभी भी धीमी नहीं हुई है और न जाने कितने 'स्तान' अपने लिए अलग भूमि, अलग पहचान, अलग व्यवस्था चाहते हैं और उसे स्वतन्त्रता की बात कहकर उछालते हैं। यदि यही क्रम रहा तो देश नाम की चीज रह ही नहीं जायेगी। हर जिला, हर गाँव अपनी स्वतन्त्रता का नारा बुलन्द करेगा। हर जाति अपनी अलग पहचान बनाने के लिए मचलेगी। यदि ये मनोरथ पूरे हुए तो फिर संगठन, सहयोग, एकता जैसी कोई वस्तु शेष न रहेगी। उन विखण्डित घटकों के स्वार्थ परस्पर टकरायेंगे। कोई केन्द्रीय व्यवस्था या न्यायपालिका तो पहले ही अमान्य ठहराई जा चुकी होगी। ऐसी दशा में बड़ी मछली छोटी को खाने लगेगी। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाला प्रचलन चल पड़ेगा। अराजकता और अनास्था का बोलबाला होगा और मध्यकालीन सामन्तवादी उठक-पटक के दृश्य सर्वत्र दीखने लगेंगे। उन दुष्परिणामों को देखने के उपरान्त ही कदाचित् यह समझ लौटे कि मिलजुल कर रहने की प्रक्रिया कितनी सुरक्षित है और अलगाव की दुष्प्रवृत्ति अपनाने में कितना घाटा है।

परिवार एक प्रकार की सहकारी संस्था है जिसमें सभी समर्थ, असमर्थों के स्वार्थ सुरक्षित रहते हैं। इसी प्रकार गाँव, नगर, जिले, प्रान्त आदि भी देश में बिखरे हुए परिवारों का सम्मिलित स्वरूप हैं। शासन व्यवस्था इसी आधार पर बनती है। अवांछनीय तत्वों का दमन इसी आधार पर बन पड़ता है। प्रगति के सृजनात्मक प्रयोजन इसी आधार पर खड़े होते हैं। यदि अलगाव और विसंगठन को ही मान्यता मिले, तो न प्रगति सम्भव होगी और न सुरक्षा का समर्थ उपक्रम बन पड़ेगा। अब दुनिया एकता की ओर चल रही है। विभिन्न वर्गों की यूनियनें बन रही हैं। सहकारिता के आधार पर कितने ही सृजन कार्य आरम्भ होते हैं। स्वेच्छा से स्वयंसेवी संस्थाओं का गठन इसी आधार पर होता है। संगठन की सर्वमान्य आवश्यकता को पूरा करने के लिए जहाँ विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के प्रयास चल रहे हैं, वहाँ कितने आश्चर्य की बात है कि विघटन भी अपना सिर उठाने में बाज नहीं आ रहा है। इसे सभी जानते हैं कि शरीर के विभिन्न अवयव मिल-जुलकर काम करते हैं, तभी जीवन यात्रा चलती है। यदि सभी अवयव संकीर्ण स्वार्थपरता अपनाकर सहकारिता का सिद्धान्त छोड़ दें और अपनी क्षमता का मात्र अपने लिए ही उपयोग करने की बात ठानें तो निश्चय ही जीवन यात्रा कुछ क्षण भर भी गतिशील न रह सकेगी। सीमित लाभ को सब कुछ समझने वाले घटक अन्यान्यों के सहयोग का लाभ प्राप्त न कर सकेंगे और अपनी क्षमता तक गँवा बैठेंगे। यदि यह सिद्धान्त गम्भीरतापूर्वक समझा जा सके तो क्षेत्रीय विलगाव या अन्य प्रकार के विभाजन हर कसौटी पर अदूरदर्शितापूर्ण और नासमझी से भरे हुए दिखाई देंगे।

विलगाव का दूसरा नारा भाषावाद के आधार पर दिया जाता है। हर भाषा-भाषी अपनी परम्परा कायम रखने के लिए प्रचलित मातृभाषा पर ही जोर दे और अन्य भाषाओं के साथ तालमेल न बिठाये तो उसका परिणाम यह होगा कि हर भाषाई क्षेत्र अपने जैसे कुछ थोड़े ही लोगों की एक सीमित परिधि में रहने लगेगा। वह किन्हीं अन्य क्षेत्रों की भाषा न समझेगा और न उसकी भाषा से परिचित कहीं अन्यत्र मिलेंगे। स्थिति ऐसी बन जायेगी जैसी समुद्र में बिखरे हुए छोटे-छोटे टापुओं की होती है। सीमित क्षेत्रों में, सीमित साधनों से ही वहाँ के लोग गुजारा करते हैं। न वे किसी को अपनी सहायता दे पाते हैं और न कोई उन्हें अपना सहयोग दे सकने की स्थिति में रहता है। नावें ही हैं जो उनके बीच पारस्परिक सम्बन्ध जोड़ती हैं और निर्वाह के आवश्यक साधन जुटाती हैं। भाषायी क्षेत्रों में भी यही होना चाहिए। उन्हें समीपवर्ती, दूरवर्ती क्षेत्रों से सम्बन्ध जोड़ने के लिए किसी ऐसी भाषा का आश्रय लेना पड़ेगा जो अधिकांश क्षेत्रों में समझी जाती हो। अपने देश में राष्ट्र भाषा हिन्दी को वही स्थान प्राप्त है। उसे देश के अधिकांश क्षेत्र में बोला और समझा जाता है। उसे शेष क्षेत्र में भी समझा जाने लगे तो आवागमन के समय आवश्यक होने वाले वार्तालाप में कठिनाई न रहेगी। अपनी ही भाषा को सब कुछ मानने वाले लोग अन्यत्र जाने पर अनुभव करेंगे कि वे गूँगे-बहरे की स्थिति में फँस गये। न वे किसी की भाषा समझते हैं और न अपनी भाषा किसी को समझाने में समर्थ होते हैं। ऐसी दशा में सहयोग और आदान-प्रदान का द्वारा कैसे खुले ? विचार-विनिमय की सम्भावना कैसे बने ? इस कठिनाई के रहते स्थिति ऐसी बन जायेगी, जैसी कूपमण्डूक की अथवा छोटे दायरे में बन्द रहने वाले कैदी की होती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आदिवासी कबीलों में यही कठिनाई उन्हें परस्पर नहीं मिलने देती। थोड़ी-थोड़ी दूर पर रहने वाले यह कबीले मात्र अपनी ही बोली बोलते और समझते हैं। दूसरों के साथ सम्बन्ध सूत्र जोड़ने के लिए सम्मिलित भाषा का कोई सूत्र उनके हाथ नहीं रहता। इसलिए वे परस्पर एक-दूसरे को विरोधी, विधर्मी ही नहीं, शत्रु भी मानने लगते हैं। आये दिन गलतफहमियों के शिकार होकर परस्पर लड़ते-झगड़ते और शत्रुओं जैसी आक्रामक नीति अपनाए रहते हैं। सहयोग और समन्वय का भाषायी आधार न रहने पर ऐसी विषम स्थिति उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक भी है। सीमा बन्धन का यह दुराग्रह कितना कलहकारी और कितनी विभीषिकाओं से भरा रहता है, उसे किसी भी देश के पिछड़े कबायली क्षेत्रों में जाकर देखा जा सकता है। जबकि सहयोग वाले क्षेत्र कुछ ही समय में बहुमुखी प्रगति से लाभान्वित होते और ऊँचे उठते चले गये तब भी यह कवायली इलाके शताब्दियों से उसी गई-गुजरी स्थिति में यथावत् बँधे पड़े हैं। उन्हें न तुलनात्मक अध्ययन का अवसर मिला और न प्रगति के उन आधारों को समझने का, जिनके सहारे भाषायी कठिनाई से पार पा लेने वाले लोग द्रुतगति से आगे बढ़ते चले गये।

देहाती क्षेत्रों के पिछड़ेपन का एक बड़ा कारण यह भी है कि वे शिक्षा के अभाव में सम्पर्क भाषा की जानकारी से वंचित बने रहते हैं। अशिक्षित क्षेत्रों की भाषायी परिधि बहुत छोटी होती है। कुछ सौ मीलों पर ही अनपढ़ क्षेत्रों की स्थानीय बोली में अन्तर पड़ता जाता है। फलतः सहयोग और आदान-प्रदान के द्वारा बन्द हो जाते हैं। इसी कठिनाई के कारण अपने छोटे इलाके में ही विवाह-शादियाँ करते हैं। उन्हीं के साथ लेन-देन या दूसरे प्रकार के व्यवहार चलाते हैं। ऐसी दशा में यह समझ पाना कठिन हो जाता है कि संसार के अन्य क्षेत्रों में क्या हो रहा है ? उनसे क्या सीखा जा सकता है और अपनी विशेषताओं में से अन्यान्यों को क्या सिखया जा सकता है ?

सम्पर्क भाषा की आवश्यकता ऐसी ही महत्वपूर्ण है, जितना यातायात के लिए मार्ग बनाना, वाहनों की सुविधा मिलना। पत्राचार की सुविधाओं से एक-दूसरे की परिस्थितियों से अवगत होना। जहाँ उपयोगिता को नहीं समझा जाता, उसे आवश्यक नहीं माना जाता वहाँ संकीर्ण परिधि के सीमा बन्धन ही गले बँधते हैं। अशिक्षा दूर करने के साथ-साथ हमें सम्पर्क भाषा का दायरा भी बढ़ाना चाहिए, ताकि आवागमन के समय आदान-प्रदान की कठिनाइयों का समाधान हो सके। साहित्य का लाभ उठाया जा सके। क्षेत्रीय भाषा के दायरे में सीमित रहने वाले उस साहित्य के साथ जुड़े हुए ज्ञान से भी वंचित रहते हैं, जो अन्य भाषाओं में प्रयत्नपूर्वक सँजोया गया है। भाषायी अवरोध ऐसा ही है जैसा कि अन्य क्षेत्रों की नदियों को अपने क्षेत्र में न आने देना। ऐसे नासमझ लोग बाढ़ या सूखे से ही सदा ग्रसित होते रहेंगे। भाषावाद के आधार पर अपना क्षेत्र सीमित करने वाले भी इसी प्रकार घाटे में रहते हैं। इस प्रगतिवाद के समर्थन में जो क्षेत्रों के नाम पर, भाषा के नाम पर अपना दायरा छोटा करने के लिए आग्रह करते हैं वे अपनी तथा दूसरों की प्रगति में एक मूर्खतापूर्ण अवरोध ही खड़ा करते हैं।

विलगाव से एकीकरण की ओर

अपनी धरती के किसी क्षेत्र में निवास करने वाले सभी लोग पृथ्वी पुत्र हैं। उनमें रक्त-माँस एक जैसा पाया जाता है। अंग-अवयवों की संरचना भी एक-सी है। फिर धर्मों, क्षेत्रों और भाषाओं के नाम पर उनके बीच विभाजन रेखा खड़ी करने की कोई तुक नहीं। मानवी विरादरी को एक मानकर चलना चाहिए। उनके बीच समन्वय और सहयोग के आधार पर एकता, समता बनाये रखने का, बढ़ाते रहने का ही प्रयत्न चलना चाहिए। खाइयाँ पाटी जानी चाहिए और सहयोग साधना का पथ प्रशस्त करना चाहिए। पिछले दिनों इस सन्दर्भ में जो विभदे खड़े हो गये हैं उन्हें गिराकर ऐसा उपाय खोजना चाहिए, जिससे सर्वत्र सभी को एकता एवं समता का लाभ मिल सके।

अपने को रुचने वाला धर्म कोई भी स्वेच्छापूर्वक अपनाये रह सकता है, पर दूसरों की मान्यताओं को निषिद्ध ठहराने और उनके प्रति आक्रामक रुख अपनाने की चेष्टा ही नहीं की जा जानी चाहिए। पूर्ण सत्य को खोजने के सम्बन्ध में अभी मानवी प्रयास अपने आरम्भिक चरण में ही हैं। जितना खोजा जा चुका, उससे बहुत अधिक खोजना बाकी है, तो अधूरी मंजिल में चलते हुए इस बात के लिए कहीं आग्रह करें कि उन्हीं की मान्यता सच है तथा अन्य सभी मान्यतायें झूठी हैं तो इस प्रकार का आग्रह मनुष्य के, धर्मों के बीच बनी हुई वर्तमान खाई को पाटेगा नहीं उन्हें चौड़ी ही करेगा। हम एक-दूसरे से बहुत कुछ सीख सकते हैं और यही मनःस्थिति दूसरों में भी पनपायें तो बहुत कुछ सिखा भी सकते हैं। शास्त्रार्थों अथवा शास्त्रों के बल पर दूसरों को अपनी मान्यता अंगीकार कराने वाला दबाव अब अनुपयुक्त और असफल मान लिया गया है। अपनी अच्छाइयों का प्रमाण देकर ही अब अन्यान्यों को अपनी ओर आकर्षित किया जा सकता है। दूसरों की बुराइयाँ गिनते रहने से तो विद्वेष ही भड़कता है। अपमान और प्रतिरोध का सिलसिला चल पड़ने पर वह उद्देश्य पूरा नहीं होता जिसमें सभी पर अपनी वरिष्ठता की धाक जमाने की बात सोची गई थी। इतिहास साक्षी है कि यह प्रयास पग-पग पर असफल होते रहे हैं। अब भी उन्हीं का प्रयोग-परीक्षण करते रहना, पिसे को पीसने की तरह निष्फल और निरर्थक ही सिद्ध हो सकता है।

धर्म प्रचार और परिवर्तन के सम्बन्ध में ईसाई मिशनरियों की पद्धति को अपनाये जाने योग्य माना जाता है। वे मात्र अपने धर्म की विशेषता बताते हैं और अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सेवा कार्यों से, विनम्र भाव से दूसरों का मन जीतते हैं। किसी से शास्त्रार्थ नहीं करते। सभा सम्मेलन का धमाल भी नहीं करते। जन-सम्पर्क में शालीनता का परिचय देने, सेवा कार्य में अपनी सदाशयता का प्रमाण देने भर से उनका काम चल जाता है। सफलता भी मिलती है। कुछ ही शताब्दियों में ईसाई धर्म दुनिया की एक तिहाई जनता को अपने प्रभाव के अन्तर्गत ले चुका। इस सफलता में उनने दबाव का, विग्रह का, आश्रय नहीं लिया और सौजन्य और सेवा कार्यों से ही दूसरों का मन मोहा है।

अपने तत्व-दर्शन की विशेषता एवं परिणति से परिचित कराने पर जनविवेक को अपने प्रभाव के अन्तर्गत लाया जा सकता है। इस तथ्य को ईसाई धर्म प्रचारकों ने जिस प्रकार सिद्ध किया है उसे अन्य धर्मावलम्बी भी अपना सकते हैं और वैसे ही सरलता से दार्शनिक उलझनों का समाधान हो सकता है। मात्र अपने सिद्धान्तों की प्रशंसा करते रहना ही पर्याप्त नहीं, अपने-अपने समुदाय के आचरण को भी तदनुरूप बनाकर कथनी को करनी में परिवर्तित करना पड़ेगा। इसी आधार पर यह सम्भव है कि कोई दर्शन या धर्म जनमानस पर अपनी छाप छोड़े।

क्षेत्रों का विखण्डन जितना हो चुका है उसे आगे नहीं बढ़ने देना चाहिए। होना यह चाहिए कि अधिकाधिक क्षेत्रों को मिलाकर एकता को सुविकसित करते चलें। इसी मार्ग पर चलते हुए वसुन्धरा को एक कुटुम्ब के रूप में परिणत करने का आप्तजनों का स्वप्न साकार हो सकेगा।

भाषायी बहुलता अब तक के संचित ज्ञान भण्डार से वंचित करने वाली सबसे बड़ी कठिनाई है। यदि विश्व की एक भाषा रही होती तो नवीनतम ज्ञान-अनुसंधान से सभी को तत्काल लाभान्वित होने का अवसर मिला होता। अनुवाद करने और विभिन्न भाषाओं-लिपियों में छापने का कार्य थोड़ा-सा ही हो पाता और वह भी बहुत श्रमसाध्य, व्ययसाध्य होता। एक भाषा से उदय-आविष्कृत हुआ ज्ञान इस अनुवाद प्रकाशन के कुचक्र में बहुत अधिक पिछड़ जाता है। महँगा भी पड़ता है और अनुवाद में रहने वाली भूलों के कारण विकृत एवं अस्तव्यस्त भी हो जाता है। प्रेस के लिए अधिक लिपियाँ बनाने में भी भारी झंझट बना रहता है। विश्वव्यापी मानवी एकता के लिए हमें भाषायी एकता को भी ध्यान में रखना होगा। वह यदि पूरी तरह तत्काल सम्भव न हो तो भी इतना तो किया ही जाना चाहिए कि भाषायी क्षेत्र बड़े बनाये जायें। अमेरिका तथा योरोप के अधिकांश देशों में अँग्रेजी को सम्पर्क भाषा बनाकर ज्ञान विस्तार के क्षेत्र में बहुत सुविधा, सरलता उत्पन्न की है। भारत में चौदह प्रमुख भाषाएँ हैं। उप-भाषायें तो सैकड़ों-हजारों तक पहुँचेंगी। इन सभी की सम्पर्क भाषा हिन्दी हो तो देश में ज्ञान विस्तार का दायरा देखते-देखते बहुत व्यापक हो सकता है। पर्यटन काल में आने वाली असुविधायें दूर हो सकती हैं। सांस्कृतिक एकता में बड़ी मदद मिल सकती है, जो जरूरी भी है। जो विवेक संगत है, उसे अपनाया जाना चाहिए और कार्यान्वित करने में आना-कानी नहीं होनी चाहिए।

विभाजन का संकट उत्पन्न करने वाली विसंगतियों में एक जाति-पाँति का अड़ंगा भी है। जन्म जाति की कोई तुक नहीं। कर्म से ही मनुष्यों के समुदाय बनते हैं और उसी आधार पर महत्ता-लघुता का वर्गीकरण होता है। कर्म स्थिर नहीं होते हैं वे मनःस्थिति एवं परिस्थितियों के अनुरूप बदलते रहते हैं। ऐसी दशा में किन्हीं विरलों के ही जाति में स्थिरता रह सकती है। अधिकांशतः अपनी क्रिया पद्धति के अनुसार बार-बार कर्म-जाति बदलेंगे। फिर एक ही समय में एक व्यक्ति कई प्रकार के कार्य भी करता रह सकता है। समयानुसार उसकी कृतियों में हेर-फेर भी होता रह सकता है। किसी का चिकित्सक, अध्यापक, व्यापारी, संगीतकार, साहित्यकार, पहलवान होना एक ही समय में सम्भव है। ऐसी दशा में उसकी क्या जाति मानी जाय। जन्म जाति के अनुरूप भी किसी को छोटा-बड़ा नहीं माना जा सकता। क्योंकि हर जाति में भले-बुरे, ऊँचे-नीचे स्तर के लोग होते हैं फिर भी ऐसी दशा में उनका श्रेय या दोष समूची जाति को कैसे दिया जा सकता है। सभी समुदायों में महामानव हुए हैं। सभी में हेय कर्मकर्त्ता भी पाये जाते हैं। ऐसी दशा में यह कैसे कहा जाय कि कौन समुदाय बड़ा और कौन छोटा है ?

यह बीमारी वर्गों के बीच भी उपवर्गों की विभाजन रेखा खड़ी करती जा रही है। साथ ही यह भी हो रहा है कि वे उपवर्ग अपने आपको एक पृथक वर्ग मनाने लगे हैं और बिलगाव की नीति अपनाने लगे हैं। सवर्णों की जातियों में जितने उपजाति परक विभेद हैं उतने ही असवर्णों में परस्पर एक-दूसरे के लिए पृथकतावादी प्रचलन हैं। वे भी सवर्णों की भाँति अपने ही वर्ग तक सीमित रहना चाहते हैं। शोषित होने की बात तो कहते हैं, पर अपने समकक्ष अन्य विरादरियों की एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयत्न नहीं करते। इस विकृति ने समूचे समाज को जकड़ लिया है। उससे न सवर्ण अछूते हैं और न असवर्ण। इस महामारी को दूर करने के लिए सभी ओर से प्रयत्न होने चाहिए और यह देखा जाना चाहिए कि किसी प्रकार एकता-समता की समन्वयवादी नीति को कार्यान्वित करने के लिए किस प्रकार क्या किया जा सकता है ?

जिस प्रकार भाषावाद, क्षेत्रवाद के कारण एक मानव जाति अनेक वर्गों में विभाजित होकर संकीर्ण सीमा बन्धनों में बँधी है, उसी प्रकार जाति-विरादरीवाद भी व्यापक विलगाव की खेदजनक भूमिका ही निभा रहा है। इन व्यवधानों को प्रगति पथ के बड़े रोड़े माना जाना चाहिए और उन्हें हटाकर फेंकने के लिए सभी विचारशील क्षेत्रों में कारगर प्रयत्न होना चाहिए। एकता और समता का वातावरण तभी बनेगा जब समन्वय की, सहिष्णुता की नीति अपनाने के लिए समर्थ प्रयत्न किये जायें और विघटन के लिए उत्तरदायी तत्वों को निरस्त करने में कुछ उठा न रखा जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देवी-देवताओं के माध्यम से अनेक वर्गों में धर्म प्रेमी जनता का, बँटना भी एक व्यवधान है, जो आस्तिकतावादी धर्म परायण लोगों का एक केन्द्र पर केन्द्रित होने में बाधक होता है। इस निमित्त उस भावना को व्यापक बनाया जाना चाहिए, जिससे **"एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति"** की नीति अपनाई गई है। एक ही परब्रह्म को अनेक रूपों में निरूपित किये जाने की बात कही गई है।

देववाद के प्रारम्भ काल में विश्व ब्रह्माण्ड के प्रतीक गोलाकार शिवलिंग की मान्यता अपनाई गई। बाद में तीन ब्रह्मा, विष्णु, महेश—उत्पादन, अभिवर्धन और परिवर्तन के रूप में सामने आये। अब तो उनकी संख्या बढ़ते-बढ़ते तैंतीस कोटि तक पहुँच गई है। लाखों आकार-प्रकार के देवी-देवता देखे जाते हैं। कुल देवता, क्षेत्र देवता आदि के नाम पर तो लगता है कि छोटे-छोटे समुदायों ने भी कई-कई देवताओं का पल्ला पकड़े रखा है। इस कारण पूजा, उपासना के क्षेत्र में भी विलगाव की भावना पनपती जाती है और उन सबको एक केन्द्र पर केन्द्रित करने में असाधारण अड़चन पड़ती है। होना यह चाहिए था कि इस विघटन, विस्तार की प्रकृति को सीमित किया जाता। अन्य धर्मावलम्बियों में प्रतिमायें सीमित होती हैं। तीर्थ भी कम ही होते हैं। इस आधार पर अधिक जनता का वहाँ पहुँचना और अधिक लोगों का परस्पर मिलकर पारस्परिक सद्भाव बढ़ाना सम्भव होता है। अपने यहाँ विखराव अधिक होने से हर जगह सीमित लोग पहुँचते हैं और कम लोगों का ही पारस्परिक मिलन हो पाता है। ईद, क्रिसमस आदि के उत्सवों से हमें बहुत कुछ सीखना है।

गायत्री महाशक्ति को केन्द्र मानकर अनेक मान्यताओं को एक केन्द्र पर लाने का प्रयत्न किया गया है। २४ देवता, २४ अवतार, २४ देवियाँ प्रायः प्रमुख हैं। इन्हें गायत्री के २४ अक्षरों के साथ जोड़कर यह प्रयत्न चला है कि कम से कम इतने वर्गों के विभक्त लोग तो एक केन्द्र पर केन्द्रित हों और विखराव में किसी कदर कमी आये। निराकारवादी ॐ में और साकारवादी सूर्य में अपने परिवार के विधि विस्तार को समेट सकते हैं। देववाद को ही जितना सम्भव हो उतना सीमित किया जाना चाहिए। विकेन्द्रीकरण किन्हीं परिस्थितियों में उपयुक्त समझा गया होगा, पर अब तो समय की आवश्यकता और दूरदर्शिता की माँग यह है कि विखराव को एक केन्द्र पर केन्द्रित किया जाय।

क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद, देववाद की वर्तमान स्थिति ऐसी है जिसमें मनुष्य-मनुष्य के बीच विलगाव उत्पन्न होता है और प्रवृत्तियों में विघटन के तत्व उभरते हैं। सामयिक चिन्तन और निर्धारण यह है कि जहाँ कहीं भी विखराव के, विसंगठन के तत्व विद्यमान या उभरते दिखाई पड़ें, उन्हें निरस्त किया जाय। उन्हें मरोड़ा जाय और इस बात के लिए तैयार किया जाय कि विलगाववादी एकीकरण की नीति अपनाने के लिए तैयार हों। वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना एवं मान्यता ही ऐसी है, जिससे टकराव और अन्याय दूर हो सकता है। मिल-जुलकर सोचने और काम करने से ही सर्वतोमुखी प्रगति की सम्भावनाओं का पथ प्रशस्त होता है।

आर्थिक समानता की आवश्यकता

मनुष्य जाति की समग्र शक्ति उसकी एकता एवं समस्वरता पर निर्भर है। बिखराव से हर किसी की शक्ति नष्ट एवं अस्त-व्यस्त होती है। कपड़े के धागों को यदि अलग करके तितर-बितर कर दिया जाय, तो वे मात्र कूड़ा-कचरा बनकर ही रह जायेंगे। बुहारी बिखेर दी जाय, तो उसकी अलग-अलग सींकों का कोई महत्व न रह जायेगा। मशीन के पुर्जे अलग-अलग कर दिये जायें, तो उस पृथकता में कोई शक्ति न रह जायेगी और किसी भी पुर्जे से कोई भी प्रयोजन सिद्ध न होगा। पक्षी-झुण्ड में न रहें, तो उनका एकाकीपन अखरने वाला ही होगा। भेड़, हिरन, हाथी साथ-साथ रह कर ही शोभा पाते और सुरक्षित रहते हैं। शरीर के अवयव मिलकर ही क्रियाशीलता को जन्म देते हैं, वे पृथकता की नीति अपनालें, तो जीवन समाप्त हुआ ही समझना चाहिए।

मनुष्य जहाँ जितने परिमाण में, जितनी सघनता के साथ संगठित है, वहाँ उसकी उतनी ही शोभा, सुव्यवस्था, सुरक्षा और प्रगति का आधार विकसित होगा। बिखराव का, अलगाव का सीधा अर्थ दुर्बलता, अभावग्रस्तता, नीरसता आदि के रूप में ही सामने आयेगा।

देखा जाता है कि जनसमुदाय में चिन्तनों, मान्यताओं, भावनाओं, स्वभावों, क्रिया-कलापों, प्रचलनों की दृष्टि से असाधारण अन्तर उत्पन्न हो गया है। इसका परिणाम यही होता है, जो एक वस्तु को अनेक दिशाओं में अनेक लोगों द्वारा अपनी-अपनी ओर खींचने का होना चाहिए। दिशाविहीन खींच-तान में शक्ति का अपव्यय ही होता है। इस विसंगति से बचने का प्रयत्न करने में ही बुद्धिमत्ता है।

कहा जा चुका है कि सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद आदि के आधार पर जनसमुदाय अनेक भागों में विभक्त हो गया हैं। अपने पक्ष के प्रति असाधारण आग्रह अपनाये हुए हैं। यहाँ तक कि भिन्न मत वालों को झूठा, पापी और शत्रु घोषित करने में भी नहीं चूकता। जब सभी अपने-अपने पक्ष में ऐसी खींचतान करें, तो यह कैसे जाना जाय कि इनमें से कौन एक सत्य है, शेष बचे में से वस्तुतः कौन-कौन झूठे हैं। आग्रह के रहते वास्तविकता की पहचान हो ही नहीं सकती। हठवादी संकीर्णता से ग्रसित अपनी मान्यता को भले ही सत्य कहते रहें, पर उन्हें विश्व-विवेक उस पर रूप में स्वीकार नहीं कर सकता। कसौटी पर कसे बिना किसकी मान्यता को कितने अंशों में सही और कितने अंशों में गलत ठहराया जाय। सभी प्रतिपादनों में सत्य का कुछ अंश हो सकता है, साथ ही यह भी सम्भव है कि उन प्रतिपादनों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अप्रासंगिकता का, कपोल कल्पना का भी बहुत अंश जुड़ा हो। ऐसी दशा में यही नीति उपयुक्त बैठती है कि मधुमक्खी की तरह हर फूल में से अपने काम के तत्व निकालकर समन्वयवादी शहद बना लिया जाय। इसी नीति को अपनाकर हम सच्चाई और उपयोगिता की दिशा में क्रमशः आगे बढ़ते चल सकते हैं।

गरीबी-अमीरी की विभाजन रेखा भी इसी प्रकार कष्टकारक है। संसार में उतनी ही मात्रा में प्रकृति पदार्थ उत्पन्न करती है, जितनी से सभी प्राणियों का, मनुष्यों का कामचलाऊ गुजारा होता रहे। इसलिए मिल-बाँटकर खाने की समानतावादी नीति ही सबको अपनानी चाहिए।

कुछ के पास अपार सम्पत्ति रहेगी और कुछ अभावग्रस्त, दीन-हीन जीवन जियेंगे, तो उसकी प्रतिक्रिया दोनों ही पक्षों में भयावह होगी। सम्पन्न लोग विलासी, व्यसनी और अहंकारी बनेंगे। अपने वैभव का दुरुपयोग करके सर्वसाधारण के मन में विक्षोभ का, प्रतिशोध का, ईर्ष्या का बीजारोपण करेंगे अवांछनीय गतिविधियाँ अपनाकर अपनी प्रामाणिकता पर ऊँगली उठने का अवसर देंगे। आम आदमी की मान्यता यह बनती जा रही है कि ईमानदारी और उदारता सँजोये रहने वाला कोई व्यक्ति सम्पन्न नहीं बन सकता। साम्यवादी लहर ने इसी मान्यता को जन-जन के मन-मन में गहराई तक बिठाने में सफलता पाई है। किसी हद तक बात सही भी है। उचित पारिश्रमिक एवं उचित मुनाफा लेने पर उतना ही कमाया जा सकता है कि औसत नागरिक स्तर का निर्वाह हो सके, फिर यदि कुछ बचता भी हो, तो उदारता का तकाजा यही रहेगा कि जो पिछड़े हुए हैं, उन्हें आगे बढ़ाने में, जो अभावग्रस्त हैं उनके लिए सुविधा जुटाने में इस बचत का उपयोग होना चाहिए। तभी सर्वजनीन समता का स्तर बन सकेगा। जो अपने पास अति संचय करते हैं, उनमें से कहीं-कहीं, किसी-किसी ने ही ईमानदारी और उदारता का निर्वाह किया हो, अन्यथा स्वार्थ परायण और अनुदार, निष्ठुर प्रकृति के लोग ही व्यक्तिगत पूँजी बड़ी मात्रा में संचय कर पाते हैं। उदारता न होने पर उसका उपयोग विलास, व्यवसन, प्रदर्शन, अपव्यय जैसे कार्यों में ही होता देखा गया है। इस आदत को अपना लेने पर व्यक्ति सम्पन्न भले ही बन जाय, पर उसका व्यक्तित्व और चरित्र प्रायः गिरने लगता है। इसलिए वह उक्ति सारगर्भित ही बैठती है, जिसमें कहा गया है कि—

पानी बाढ्यो नाव में, घर में बाढ्यो दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम।।

सयानों का, समझदारों का यही काम है। दूरदर्शी विवेकवान यही करते हैं। अपनी उपार्जन-क्षमता अधिक होते हुए भी जो औसत निर्वाह से अधिक होता है, उसे पिछड़ों को आगे बढ़ाने में, सत्प्रवृत्ति संवर्धन में प्रयुक्त करते रहते हैं। इससे उनको विशिष्टता का श्रेय भी मिल जाता है और पुण्य-परमार्थ अर्जित करने का आत्म-संतोष, लोक-सम्मान भी मिलता है। इसके विपरीत संचयकर्त्ता पर अनेकानेक उचित-अनुचित लांछन लगते हैं, साथ ही मुफ्तखोर उस संचय से अनुचित लाभ उठाने के लिए अनेक प्रकार के षड्यन्त्र रचते हैं। चोर, उचक्के, ठग, चापलूस, चन्दा माँगने वाले, रिश्वत चाहने वाले उनके पीछे लगे रहते हैं। न मिलने पर हैरान करते हैं। परिवार के सदस्य और मित्र सम्बन्धी भी इसी फिराक में रहते हैं कि किसी बहाने उस सम्पत्ति में से कुछ झटकने का, हड़पने का अवसर मिले। मरने पर छोड़ी हुई सम्पदा को लेकर उत्तराधिकारियों में लड़ाई, मुकद्मेबाजी होती देखी गई है। आरम्भ में तो संचय का उन्माद रहता है, पर मरने के दिनों यह पश्चाताप भी होता है कि यदि उदार प्रयोजनों में उसे लगाते रहा गया होता, तो मुफ्तखोरों को अधिकार जमाने और आँख दिखाने का अवसर क्यों मिलता ? पुण्य परमार्थ अपनाने पर लोक-परलोक तो बनता। वैसी सूझबूझ समय पर न आने से जो अनर्थ हो चुका होता है, उसकी क्षति पूर्ति होने का पीछे कोई अवसर भी नहीं रह जाता। अनावश्यक धन संचयकर्त्ता को पतन के गर्त में ही धकेलता है और अनेकानेक समस्याओं का, विकृतियों का उद्भव भी करता है।

दीवार उठाने के लिए कहीं न कहीं से मिट्टी खोदकर लानी पड़ती है। जहाँ खोदी जाती है, वहाँ गड्ढा बनता है। दुनिया समतल है। उसके पास उतने ही साधन हैं, जिसमें सभी का समान स्तर का निर्वाह हो सके। जो इस नियम को नहीं मानते, वे अपनी सम्पन्नता को पुरुषार्थ का, भाग्य का अनुदान मानते हैं, पर यह भूल जाते हैं कि अधिक वैभव के होने पर अधिक उदार भी होना चाहिए, वरन् जहाँ भी अभाव है, वहीं उसकी पूर्ति में उस बढ़ोत्तरी का, बचत का उपयोग होना चाहिए। न्याय का तकाजा यही है। वैभव के साथ जुड़ा हुआ दायित्व भी यही है। इसे न निवाहे जाने पर रोष, असन्तोष और विग्रह खड़ा होता है, खाई बढ़ती है, ईर्ष्या पनपती है और प्रतिशोध जैसा विग्रह खड़ा होता है। गरीब और अमीर के बीच पाया जाने वाला अन्तर वैयक्तिक और सामाजिक संकटों को खड़ा करता है। इसकी अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि जिन्हें अधिक कमाने का अवसर मिला है, वे हाथों-हाथ उसका वितरण उस वर्ग में करते रहें, जो वस्तुतः उसका पात्र है, जिनका प्रगति रथ साधनों के अभाव में रुक गया है, यदि ऐसा समवितरण होने लगे, तो संसार में कहीं कोई अभावग्रस्त दिखाई न पड़े और न किसी को स्वर्ण मुकुट धारण किये देखा जा सके।

एकता का, समता-सद्भाव का आधार यही है कि सब लोग समान स्थिति में निर्वाह करें। परिवार में जिस प्रकार कमाऊ व्यक्ति अपने अर्जन का लाभ समूचे कुटुम्ब को देते हैं, उसी प्रकार सम्पदा के क्षेत्र में हर किसी की मान्यता बननी चाहिए। पर्वत शिखरों पर खेती नहीं होती और न खाई-खन्दकों में कुछ उपजता है। समतल भूमि में ही उर्वरता पाई जाती है और उसमें से खेत-उद्यान लहलाते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। अर्थ-व्यवस्था के पीछे इसी सिद्धान्त को प्रश्रय मिलना चाहिए। व्यक्तिगत निर्धारण भी यही हो और सामाजिक परम्परायें, शासकीय विधि-व्यवस्थायें इसी आधार पर विनिर्मित हों। यदि ऐसा सुनियोजन बनने में कोई निहित स्वार्थ बाधक होते हैं, तो उन्हें समझाने से लेकर दबाने तक का कार्य लोकमत को करना चाहिए।

दान-पुण्य की परम्परा इसी आधार पर चली है। मृतक श्राद्ध इसी निमित्त होते हैं। मरते समय लोग अपनी सम्पदा की वसीयत कर जाते हैं। देवालय, धर्मशाला, पाठशाला, चिकित्सालय, कुआं, तालाब, उद्यान, प्याऊ, सदावर्त आदि की व्यवस्था इसी आधार पर होती है कि बढ़ा हुआ वैभव संचित न रहे, उसका वितरण-विभाजन सत्प्रयोजनों के निमित्त होता रहे। जो समर्थ होते हुए भी इसमें आनाकानी करते हैं, उन्हें कृपण कहकर तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है। इन मान्यताओं को समय के अनुरूप और भी अधिक सुव्यवस्थित किया जाना चाहिए। उन्हें स्वेच्छा तक सीमित न रखा जाय, वरन् बाधित कर्त्तव्य स्तर का ठहराया जाय। इसी में सबकी सब प्रकार भलाई है।

उद्योग आदि के लिए बड़ी पूँजी की आवश्यकता होती है। उसे सार्वजनिक धन के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए। कम्पनियाँ, बैंकों, न्यासों की विद्या इसलिए बनाई गई है। इन प्रचलनों में जहाँ जितनी शिथिलता बरती जाती है, वहाँ उसे सुनियोजित और सन्तुलित किया जाना चाहिए ताकि सम्पदा पर समाज का स्वामित्व रहे। सहकारी समितियाँ इस दिशा में बड़ी भूमिका निभा सकती हैं। संयुक्त परिवार की विकसित और व्यवस्थित विधा को 'कम्यून' नाम दिया जाता है। 'कम्यून' शब्द से 'कम्यूनिष्ट' बना है। उसकी मूल कल्पना यही थी कि व्यक्ति अलग-अलग इकाइयों में न बँटे। परिवार भी छोटे-छोटे न रहें, वरन् बड़े-बड़े परिवारों का संघ बनाकर अपने सदस्यों की सभी व्यवस्थाओं को सुनियोजित करें। सभी को समान सुविधा प्रदान करें और साथ ही समान श्रम के लिए, समान उत्तरदायित्व निर्वाह के लिए बाधित भी। यह प्रचलन यद्यपि अभी पूर्ण रूप से कार्यान्वित नहीं हो सकता है, पर आशा यही की जा रही है कि भविष्य में जब किसी भी समाज का सुनियोजन होगा, तो उसमें बृहत्तर परिवार पद्धति की अनिवार्यता रहेगी। इसी आधार पर श्रम बचाया और सहयोग का समुचित लाभ उठाया जा सकेगा।

व्यक्तिगत अधिकार में रहने वाला धन प्रायः कुमार्ग के रास्ते बहने का प्रयत्न करता है। इसलिए यदि उसकी फालतू मात्रा हो, तो उसे सहकारी समितियों, बैंकों तथा ऐसे प्रयोजनों में लगाना चाहिए, जिनसे वह अनुबन्धित रहे और अनेक लोगों को काम देने का निमित्त बने। इस प्रकार पूँजी सुरक्षित तो रहती ही है, साथ ही ब्याज-मुनाफा आदि के माध्यम से बढ़ती भी रहती है। सबसे बड़ी बात यह है कि वे सामने न रहने पर अवांछनीय क्रिया-कलापों के लिए उत्तेजित नहीं करतीं, ठाठ-बाट बढ़ाने, विलासी गतिविधियों में खर्च होने पर रोकथाम लगी रहती है, निर्वाह स्तर सर्वसाधारण जैसा बना रहता है, ईर्ष्या-द्वेष उपजने का, दूसरों को उद्धत अपव्यय की प्रेरणा न मिलने का सुयोग बना रहता है। अच्छा तो यही है कि बचत को परमार्थ प्रयोजनों में हाथों-हाथ लगाते रहा जाय, पर यदि वैसा बन पड़ने के लिए आवश्यक उदारता न हो, तो कम से कम इतना तो करना ही चाहिए कि उसका उद्धत प्रदर्शन न बन पड़े, अन्यथा कमाया हुआ धन लाभ देने के स्थान पर हानिकारक कुयोग ही उत्पन्न करने लगेगा।

विषमता हर क्षेत्र से हटे

समर्थों का उद्धत आचरण एक ऐसा प्रयोग है, जिसके कारण अनेक प्रकार की अवांछनीयताएँ उत्पन्न होती हैं और अनेकानेक विग्रह खड़े करती हैं। बहुत छोटे कद के बौने और असाधारण लम्बाई वाले व्यक्ति उपहासास्पद तो बनते ही हैं, उनकी कार्यक्षमता भी घट जाती है। पिछड़ेपन से ग्रसित, दीन, दुर्बल, असहाय, असमर्थ लोग अपने लिए तथा दूसरों के लिए भार बनकर रहते हैं। इसी प्रकार जो अति समर्थ, अति सबल हैं, वे भी अपनी समता का सदुपयोग नहीं कर पाते और ऐसे आचरण करते हैं, जिससे दुर्बलों को क्षति उठानी पड़ती है और अति समर्थ भय, आतंक एवं घृणा के माध्यम बनते हैं। इसलिए समर्थता की दृष्टि में भी जनसाधारण को एक स्तर पर लाने का प्रयत्न होना चाहिए, इसके लिए शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के विकास के लिए आरोग्यशालाएँ, व्यायामशालाएँ जगह-जगह विनिर्मित हों। शिक्षा का शासकीय एवं सार्वजनिक स्तर पर ऐसा प्रबन्ध हो कि कोई भी अशिक्षित, अनगढ़ न रहने पाये, भले ही सब पहलवान, विद्वान न हों, पर रुग्णता, दुर्बलता एवं मानसिक दृष्टि से अविकसित भी कोई न रहे। इस प्रकार की सार्वजनीन समता की स्थापना के लिए सर्वत्र भरपूर प्रयत्न होने चाहिए।

शान्ति एवं प्रगति के दो ही मार्ग हैं—एक समता, दूसरा एकता। विषमता और विलगाव के रहते न कहीं सहयोग बन पड़ेगा और न टकराव टल सकेगा। इसलिए हम सभी को अपनी विचारणा और कार्य पद्धति को इसी केन्द्र पर केन्द्रित करना चाहिए कि हिलमिल कर रहेंगे, मिल-बाँटकर खायेंगे और हँसती-हँसाती, खिलती-खिलाती जिन्दगी जियेंगे। यह सब तभी हो सकता है, जब विषमता और विलगता उतनी ही रहे, जितनी अनिवार्य रूप से अपरिहार्य है। होना यह चाहिए कि समन्वय की नीति अपनाई जाय। हर किसी को हर समय यही सोचना चाहिए कि सम्मिलित शक्ति के सहारे ही उत्कर्ष का, सुख-चैन का आधार बनता है। विलगाव से, फूट-फिसाद से तो अनेकानेक अवरोध ही मार्ग में खड़े होते हैं।

एक भारी विभेद नर-नारी के बीच खड़ी हुई दीवार के रूप में देखा जाता है। वस्तुतः यह दोनों ही वर्ग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक-दूसरे के पूरक हैं। उनकी अपनी-अपनी विषमतायें हैं। गाड़ी के दो पहिये होते हैं, दोनों की संयुक्त शक्ति से ही वे ठीक प्रकार गतिशील होते हैं। दो हाथ, दो पैर, दो आँखें, दो कान, दो फेफड़े, दो गुर्दे मिल-जुलकर ही अपने-अपने समग्र उत्तरदायित्व को ठीक तरह वहन करते हैं। यदि इनमें से एक समर्थ दूसरा असमर्थ हो, तो अपूर्णता भी रहेगी और कुरूपता भी। दिन और रात का युग्म मिलकर अपने-अपने प्रयोजन की पूर्ति करते हुए एक प्रक्रिया का ठीक प्रकार संचालन करते हैं। सर्दी और गर्मी का पारस्परिक तालमेल ही सही मौसम का निमित्त कारण बनता है। शयन और जागरण, ग्रहण और उत्सर्जन का उपक्रम ही पूरक बनता है। सृष्टि क्रम इसी प्रकार चल रहा है। नर और नारी इसी प्रकार पृथक् दीखते हुए भी अविच्छिन्न हैं। एक के बिना दूसरे का काम नहीं चलता। वंशानुक्रम का आधार ही उनका मिलन सम्भव बनाता है। दोनों पृथकता अपना लें तो एक शताब्दी से कम समय में मनुष्य का अस्तित्व ही धरती पर से उठ जायेगा। दोनों का सहयोग ही परिवार संस्था को जन्म देता है और इसी में रहकर व्यक्ति पलता, बढ़ता और समर्थ होता है। परिवार और कुछ नहीं, मात्र नारी की ही उसमें प्रधान भूमिका है। इसी विशेषता के कारण उसे गृहलक्ष्मी भी कहा जाता है। वरिष्ठता की दृष्टि से नारी की ही प्रमुखता है। सृजन की असाधारण क्षमता से वह ओत-प्रोत है। मनु ने ठीक ही कहा है कि "जहाँ नारी की पूजा होती है, उसके वर्चस्व को मान्यता मिलती है, वहीं देवता निवास करते हैं।"

प्रथा-प्रचलन, कायदे-कानून, रीति-रिवाज, पहनावे-उढ़ावे, क्रिया-कलाप स्त्रियों के लिए अलग और पुरुषों के अलग हैं। इस सब के पीछे एक ही मनोवैज्ञानिक तथ्य काम करता है कि नारी अपने को हीन माने, पुरुष की सम्पत्ति समझे और उसके आदेशों का सदा-सर्वदा पालन करते रहने भर में अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझे, अधिकारों की बात न करे, अपनी व्यथाओं को प्रकट न करे, कठिनाइयों को निरन्तर सहे, उनकी चर्चा तक किसी से न करे, अपने व्यक्तित्व को पूरी तरह नर की इच्छा पर विसर्जित कर दे, निज की आवश्यकता एवं प्रसन्नता की बात सर्वथा छोड़ दे, नर के उचित-अनुचित आदेशों का बिना किसी हील-हुज्जत के पूरी तरह पालन करे, जो प्रचलन बने हुए हैं उनमें सुधार-परिवर्तन की न तो आवश्यकता समझे और न उनके लिए माँग करे। यही हैं आज की परिस्थितियाँ, जो सामन्त काल के मध्ययुग से लेकर अब तक यथावत् बनी चली आ रही हैं। एक पक्ष को स्वामित्व के अधिकार मिले हुए हैं, दूसरे को क्रीतदासी की तरह, पालतू पशु की तरह अपनी इच्छाएँ मसोसकर किसी प्रकार जिन्दगी के दिन पूरे करने पड़ रहे हैं। जहाँ नर-नारी के बीच आकाश-पाताल जितनी खाई बनी हुई हो, भिन्नता की चरम सीमा हो, वहाँ इसके अतिरिक्त और कुछ भी हो भी क्या सकता है, जो इन दिनों होते देखा जा रहा है।

विवाह के समय और उसके उपरान्त नारी के तनिक समर्थ होते ही यह शिकंजा और भी अधिक कड़ाई के साथ कस जाता है। दहेज की भारी माँग और उसके न मिलने पर भयानक उत्पीड़न के समाचार आये दिन पढ़ने को मिलते रहते हैं। जहाँ उसके लिए उतनी जोर जबरदस्ती नहीं है, वहाँ भी उन्हें असाधारण प्रतिबन्धों के भीतर तो रहना ही पड़ता है। धर्मशास्त्रों की दुहाई देकर इस प्रचलन को उचित भी ठहराया जाता है। पातिव्रत्य नारी भर के लिए है। पुरुष पर उस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। पत्नीव्रत की कहीं चर्चा तक नहीं मिलती। पति के मरने पर स्त्रियाँ तो उनके साथ सती होती रहती हैं, पर पुरुष एक भी पत्नी के साथ सती नहीं हुआ। नाक-कान के जेवर मात्र स्त्रियों को ही पहनने पड़ते हैं। पुरुष को वैसे परिधान-आभूषण पहनने के लिए कोई बाधित नहीं करता। आखिर भिन्नता का, दास-स्वामी का अन्तर तो किसी प्रकार प्रदर्शित करना जो ठहरा। पुरुषों को कहीं चूड़ी पहनते, बिछुआ धारण करते, माँग में सिन्दूर भरते, माथे पर टिकली लगाते नहीं देखा गया। यह अन्तर इसलिए रखे गये हैं कि नारी को अपनी लघुता का, पुरुष को प्रभुता का भान होता रहे, इसी स्तर का पारस्परिक व्यवहार में भी अन्तर बना रहे।

निष्पक्ष न्याय दृष्टि से देखा जाय और औचित्य की कसौटी पर इस स्थिति को परखा जाय, तो प्रतीत होगा कि नर-नारी के बीच पाई जाने वाली असाधारण विषमता हर दृष्टि से हेय है। इससे बन्दी की स्थिति में रह रही नारी का, उसका पालन करने वालों का, परिवार का, समाज का सब प्रकार अहित ही होता है। इस आधार पर अब तक जो हानि उठानी पड़ी है, उसका अनुमान लगाने पर प्रतीत होता है कि प्रगति का आधा आधार हमने स्वयं अपने हाथों कुचल-मसल कर रख दिया। खोदी हुई खाई को पाटने में ही समूची शक्ति चुकती रही। निर्माण या उत्थान की दिशा में तो कुछ भी करते-धरते न बन पड़ा।

वस्तुस्थिति का अनुमान लगाना हो, तो विकसित और पिछड़े देशों की परिस्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करके यह जाना जा सकता है कि समता में अभ्युदय की, सुव्यवस्था की कितनी अधिक संभावनायें भरी पड़ी हैं, साथ ही यह भी पर्यवेक्षण किया जा सकता है कि जहाँ असमानताजन्य विभेद की खाई खोदी गई है, वहाँ कितनी अधिक अवनति और दुर्दशा दृष्टिगोचर हो रही है।

इन दिनों पाश्चात्य देशों में नारी शिक्षा, कुशलता और स्वावलम्बन की दृष्टि से लगभग पुरुष के समान स्तर पर रह रही है। उसकी योग्यता, कुशलता और तत्परता का लाभ व्यक्तित्व को विकसित बनाने, परिवार को सुखी-समुन्नत रखने और समाज की समृद्धि में महती भूमिका निबाह रहा है। पिछड़े देश नारी को प्रतिबन्धित रखकर आधी जनशक्ति को अपंग बनाये रहे हैं। उसके पिछड़ेपन से उत्पन्न होने वाली अनेकानेक हानियाँ उठा रहे हैं। इसके विपरीत समुन्नत देशों के नर और नारी हर क्षेत्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में कन्धे से कन्धा मिलाकर प्रगति पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। भौतिक प्रगति की दृष्टि से, सामाजिक न्याय की दृष्टि से और मानवी मौलिक अधिकारों को जीवन्त रखने की दृष्टि से यही उचित है कि नर और नारी की स्थिति एक जैसी रहे। दोनों गाड़ी के दो पहियों की तरह एक-दूसरे के सहयोगी बनकर रहें और सर्वतोमुखी प्रगति की दिशा में समान भूमिका सम्पन्न करें।

इस न्यायोचित स्थिति की पुनः स्थापना के लिए आवश्यक है कि पुरुष पिछले दिनों किये गये अपने पाप का प्रायश्चित करे और नारी में समता और एकता की स्थिति प्राप्त करने के लिए आसाधारण क्षमता जाग्रत हो। दोनों ही पक्ष अवगति और अनीति के उन्मूलन में समान उत्साह प्रदर्शित करें। पिछड़ेपन को दूर करने के लिए नारी शिक्षा का प्रबल प्रयत्न करने की आवश्यकता है। शिक्षा के आधार पर ही यह बोध हो सकता है कि प्रतिगामिता और प्रगतिशीलता में क्या अन्तर है ? एक के कारण कितनी दुर्दशा सहन करनी पड़ती है और दूसरी का अवलम्बन करने पर किस प्रकार सौभाग्य का सूर्योदय होता है।

नारी को रमणी, कामिनी, भोग्या के स्तर पर न रहने दिया जाय। उसे श्रृंगार से सजाकर मनोरंजन की गुड़िया न बनाया जाय, रहन-सहन में वह अन्तर न रहने दिया जाय, जो इन दिनों हैं। पर्दे का अन्त होना चाहिए। घर और बाहर दोनों ही क्षेत्रों में नर की तरह नारी को कार्य करने का अवसर मिले। घर के कामों को मात्र नारी पर ही न लादा जाय। पुरुष भी उनमें हाथ बँटायें और नारी को भी यह अवसर प्रदान करे कि सभी क्षेत्रों में नारी को समान रूप से कार्य करने का अवसर मिले। नर और नारी एक ही मनुष्य जाति के दो अविच्छिन्न अंग हैं। उनके बीच विलगाव की, भिन्नता की, छोटे-बड़े की स्थिति कहीं भी नहीं रहनी चाहिए। यह समन्वय ही सर्वतोमुखी प्रगति का आधार बन सकता है।

दुराग्रह मिटे, समन्वय स्थापित हो

मिलिटरी शिक्षा में सर्वप्रथम कदम से कदम मिलाकर चलना सिखाया जाता है, पंक्तिबद्ध रहने का अभ्यास कराया जाता है। जोड़े मिलाते समय यह देखा जाता है कि दोनों की ऊँचाई एक जैसी हो। चलने में भी यह देखा जाता है कि दोनों के कदम साथ-साथ उठें। कोई आगे-पीछे न रहे। कोई ऊँचा-नीचा न दिखाई दे। इस स्थिति में ही सैन्य दल की शोभा है। अनुशासन का आरम्भ यहीं से होता है, आगे चलकर विकसित होते-होते समर्थता और शक्ति का पुंज बनता है। यदि सैनिक भेड़चाल अपनायें, स्वेच्छाचार बरतें, अपनी-अपनी मनमर्जी चलायें, तो समझना चाहिए कि उनकी योग्यता और क्षमता सुविकसित होते हुए भी किसी काम न आवेगी, उनके द्वारा किसी मोर्च को जीत सकना सम्भव न हो सकेगा; सशक्त होते हुए भी अशक्त जैसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में जा गिरेंगे।

जनसमाज पर सैन्य दल जैसा अनुशासन लागू होना चाहिए। सभी की वर्दी एक जैसी हो, सभी को खाना एक जैसा मिले। सभी को निवास की तथा दूसरे प्रकार की सुविधा भी समान हो। एकता और समता के सिद्धान्तों को परिस्थिति के अनुरूप अधिकाधिक मात्रा में लागू किया जाना चाहिए। विषमता की, विलगाव की, विभीषिका जहाँ कहीं भी उभर रही हो, वहाँ उसे काट-छाँटकर एक जैसी बनानी पड़ेगी। माली भी अपने उद्यान में पेड़-पौधों को एक सीध में, एक ऊँचाई-गोलाई में पंक्तिबद्ध रखने का प्रयत्न करता है। शोभा इसी में बनती है। कौशल और बुद्धिमत्ता की प्रतीति भी इसी प्रकार होती है।

समाज संस्थापना में यही नीति उपयुक्त बैठती है। बाल, वृद्ध, रोगी, अपंग आदि की बात दूसरी है, पर सर्वसाधारण के बीच यही विधा अपनाई जानी चाहिए कि सभी को निर्वाह की, रोटी, कपड़ा और मकान की एक जैसी सुविधा उपलब्ध हो। शिक्षा, चिकित्सा, आजीविका, सुविधा की दृष्टि से सभी एक स्तर पर रहें। जो अधिक योग्य हैं, अधिक चतुर एवं समर्थ हैं, वे अपनी विशिष्टता का लाभ उपार्जन में तो करें, पर उसे सर्वसाधारण में वितरित करके ऐसी स्थिति उत्पन्न करें, जिसमें न कोई बहुत ऊँचा रहे, न कोई बहुत नीचा, न किसी को सम्पन्नता के कारण विलासी, अहंकारी बनने का अवसर मिले और न कोई दरिद्रता, अभावग्रस्तता, अशिक्षा आदि के कारण गई-गुजरी स्थिति में दिन गुजारे। ऐसा समतावादी समाज बनाने का सुयोग तभी बन सकता है, जब समर्थ-सम्पन्न इस दिशा में पहले करें, अपने कदम पहले बढ़ायें। असाधारण अन्तर रहने पर विग्रह और विद्रोह उत्पन्न होगा। ईर्ष्या, खीज और कुढ़न का माहौल बनेगा। ऐसी दशा में सम्पन्न लोग अपने वैभव को सुरक्षित न रख पायेंगे, साथ ही अभावग्रस्त भी उस छीन-झपट में चोटें खायेंगे, परेशान होंगे। इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न न होने देने के लिए समाज के हर समझदार सदस्य को प्रयत्न करना चाहिए। गिरों को उठाने के लिए और उठों को झुकने के लिए कहा ही नहीं जाना चाहिए वरन् विवश भी किया जाना चाहिए। यह शासन का कर्त्तव्य है, समाज की जिम्मेदारी है कि वे ऐसा वातावरण बनायें, जिसमें न्यायनिष्ठा, परम्परायें मात्र मान्यता न रहकर प्रथा प्रचलन के रूप में परिणत हो सकें। यह हर किसी को ध्यान में रखना चाहिए कि समता के आधार पर ही एकता रह सकती है। पाँच उँगलियों के बीच रहने वाली थोड़ी असमानता तो किसी प्रकार निभ भी सकती है, पर जहाँ असाधारण अन्तर रहेगा, वहाँ विग्रह का विष वृक्ष उगेगा और वह अपने तीखे काँटों से हर किसी के लिए कष्ट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भव्य समाज का अभिनव निर्माण २.४१

कठिनाई उत्पन्न करेगा। उन्हीं परिवारों में शान्ति रहती है, जहाँ सभी सदस्यों को उचित सम्मान और सहयोग मिलता है। कमाने वाला अपने लिए अधिक सुविधा प्राप्त करे और बिना कमाने वालों को उनकी आवश्यकतानुसार साधन न मिलें, तो समझना चाहिए कि प्रत्यक्ष न सही परोक्ष में मनोमालिन्य का क्रम चलेगा और वह एक दिन विस्फोट बनकर उभरेगा। अच्छा यही है कि समय रहते सचेत हुआ जाय और अनर्थ उत्पन्न होने से पहले इसे रोका जाय। समता की नीति अपनाने में ही सभी का हित है। इसमें समर्थों को सम्मान और सहयोग का लाभ मिलता है और गये-गुजरे को ऊँचा उठने, आगे बढ़ने एवं मानवोचित स्थिति तक पहुँचने-सभ्य नागरिक बनने का अवसर मिलता है। ऐसे समतावादी समाज में शान्ति रहती है, प्रगति की सम्भावना रहती है। एकता मात्र शब्दों की दुहाई देने भर से नहीं बनती। उसके लिए सुनियोजित चेष्टा करनी पड़ती है। वही की जानी उचित है।

स्वभाव, रुझान और अभिमत मनुष्यों के बीच भी भिन्न-भिन्न प्रकार के रहने स्वाभाविक हैं। एक पेड़ पर लगे सभी पत्ते तक एक जैसे नहीं होते। उनकी बनावट में कुछ न कुछ अन्तर रहता है। मनुष्यों में सभी के शक्ल-सूरत एक जैसी नहीं होती है। एक ही जाति के पशु-पक्षियों में भी किन्हीं दो की आकृति एक जैसी नहीं होती, फिर यह आशा करना अनुपयुक्त है कि दूसरे सभी लोग अपनी बात मानेंगे ही, अपने कहे हुए पर चलेंगे ही। ऐसी आशा करना अनुचित है। तरीका यही उचित है कि जिस सीमा तक तालमेल बैठ सके, उतना बिठाया जाय। इतने पर भी कुछ मतभेद रहें, तो उन्हें विवशता मानकर सहन किया जाय। सहमति वाले तत्वों को प्रधानता दी जाय और उतने भर से प्रसन्न रहा जाय। जो विभेद मिट नहीं पाते, उनके लिए सहिष्णुता की नीति अपनाई जाय और समन्वयवादी जैसा बनकर रहा जाय।

पति-पत्नी का सम्बन्ध यों अति घनिष्ठ होता है, पर ऐसा कदाचित् ही कहीं देखा जाता हो कि दोनों एक-दूसरे की मर्जी पर सर्वांश ही चलेंगे। प्रकृति भिन्नता रहेगी ही। उसमें जितना सुधार-परिवर्तन सम्भव हो सके, करने का सरल स्वभाव से प्रयत्न करना चाहिए। इतने पर भी जहाँ स्थिति ऐसी बन रही हो कि दूसरे की अप्रसन्नता हो और पारस्परिक सम्बन्धों में खाई पड़ती हो, वहाँ वही उचित है समझदार पक्ष तालमेल बिठाने के लिए आगे रहें, खीज उत्पन्न होने का अवसर न आने दें। दुनिया समन्वय के आधार पर ही चल रही है। एक सर्वांश में अपने को स्वामी माने और दूसरे को हर प्रसंग में अपना अनुयायी, आज्ञाकारी बनाने की आशा रखे, तो यह अनुचित ही होगा। इच्छित स्थिति तो बन न पड़ेगी, उल्टा विग्रह खड़ा होगा और जितना तालमेल बनना सम्भव था, वह भी न बनेगा। खीज बढ़ने पर प्रतिष्ठा का प्रश्न बन जाता है और झुकने से हर पक्ष इन्कार करने लगता है। जो लाभ समन्वयवादी नीति अपनाने पर मिल सकता था, वह भी हाथ से चला जाता है। बात इस स्थिति तक बढ़ने और बिगड़ने नहीं देनी चाहिए। जब पति-पत्नी तक में, भाई-भाई में, पिता-पुत्र में ऐसी स्थिति नहीं बन पाती कि वे सर्वांश में एक-दूसरे के अनुवर्ती रहें, तो अन्य लोगों के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या ?

अनैतिक दबाव के आगे न झुकना ही ठीक है, पर ऐसी हालत में इतना ही उचित है कि अपना रास्ता अलग बना लिया जाय, असहयोग किया जाय, उपेक्षा दिखाई जाय, पर इतने पर भी यह उचित नहीं कि मतभेद के कारण शत्रुता की सीमा तक जा पहुँचें और विग्रह खड़ा करें। ऐसी असहिष्णुता अपनाने पर आये दिन, किसी न किसी बात पर उलझना पड़ेगा। यह उलझन अन्ततः दोनों ही पक्षों के लिए हानिकारक सिद्ध होती है, विशेषतया उसके लिए, जो पहल करता है। क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। प्रतिक्रिया की प्रति-प्रतिक्रिया हो सकती है और फिर बात बढ़ते-बढ़ते वहाँ तक पहुँच सकती है, जहाँ टकराव बढ़कर आक्रमण-प्रत्याक्रमण के स्तर तक जा पहुँचे और वह कुचक्र अपने परिवार, समुदाय तक को ऐसे झंझट में फँसाये, जिसमें थोड़ी समझदारी अपनाने पर सहज ही बचा जा सकता था।

समझदारी इसमें है कि अपना चिन्तन और कर्त्तत्व रचनात्मक कार्यों में लगाये रहा जाय। जीवन छोटा है। प्रगति के अवसर अनेक हैं। कर्त्तव्य पालन के लिए भी अनेक उपयोगी क्षेत्र सामने पड़े हैं। समय, श्रम और मनोयोग का उपयोग उन्हीं में होना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि झंझटों से अपने को बचाया जाय। विग्रह एवं विवाद में अनावश्यक रूप से समय और चिन्तन को नष्ट होने से बचाया जाय। झंझट खड़े कर लेने पर उनकी उत्तेजना एवं चिन्ता इतनी विस्तृत हो जाती है कि सामर्थ्य का अधिकांश उसी में खपने लगता है। इसका प्रतिफल यह होता है कि सृजन की, विकास की दिशा में जो किया जा सकता था, उसका अवसर हाथ से निकल जाता है।

संसार में बहुत कुछ भला-बुरा हो रहा है। उनसे निपटने के लिए शासकीय, सामाजिक या संगठित रूप से ही कुछ कारगर प्रतिरोध हो सकता है। अकेला व्यक्ति हर किसी भिन्न विचार वाले से उलझता फिरे, तो वह किंचित परिणाम तो निकाल नहीं पायेगा, उलटे अपनी शक्ति-सामर्थ्य को निरर्थक कामों में खर्च करके उस लाभ से वंचित रहेगा, जो निजी तथा सामूहिक रूप से उठाया जा सकता था। प्रगति की दिशा में उसी झंझट वाले समय को बचाकर सहज ही बहुत कुछ किया जा सकता था और आगे बढ़ा जा सकता था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वैज्ञानिक क्षेत्र में अनेक 'वाद' और 'दर्शन' प्रचलित हैं। इनमें से अपने लिए एक पसन्द किया जा सकता है, पर अन्य सभी को असत्य ठहराना और उनकी उन्मूलन पर उतर आना अनुचित है। इस प्रकार की असहिष्णुता से तो विचार क्षेत्र की स्वतन्त्रता का ही अन्त हो जायेगा। एक-दूसरे पर अपनी बात थोपने लगें, तो विग्रहों की अराजकता ही सामने खड़ी हो जायेगी और बात मतभेद से आगे बढ़कर व्यक्तिगत शत्रुता का रूप धारण कर लेगी। समझ-समझाकर सद्भावपूर्वक जितना तालमेल बैठ सकता था, वह अवसर भी हाथ से चला जायेगा। जब शास्त्रार्थों और तलवारों का उपयोग अन्य मतावलम्बियों को अपने अनुरूप न ढाल सका, तो विवाद भर से मतभेदों का अन्त हो जायेगा, सभी अपना अनुकरण करने लगेंगे, यह आशा नहीं की जानी चाहिए। अपने मन की बात दूसरों के सामने प्रकट कर देने में हर्ज नहीं। अपनी मान्यता के पक्ष में जो दलीलें हों, वे दूसरों के सामने रखी जा सकती हैं, पर ऐसा प्रतिपादन भी स्नेह, सद्भाव और सम्मान की भावना रखकर ही किया जाना चाहिए। दुराग्रह, हठवाद, व्यंग्य, अपेक्षा, आरोप जैसे कटुता उत्पन्न करने वाले प्रसंगों को विचार-विनिमय के बीच आड़े नहीं आने देना चाहिए। इससे प्रयोजन तो कुछ सिद्ध होता नहीं, उलटे कटुता और शत्रुता का माहौल बनता है। जो सद्भाव, विवाद से पूर्व बना हुआ था, वह भी हाथ से चला जाता है।

इन दिनों साम्प्रदायिक असहिष्णुता का बोलबाला है। जाति-पाँति के नाम पर भी एक-दूसरे से हटते और कटते जा रहे हैं। भाषावाद, क्षेत्रवाद भी मनुष्य-मनुष्य के बीच दीवारें खड़ी करते हैं। आग्रहों के रहते कोई पक्ष यह मानने को तैयार नहीं कि उसकी मान्यता गलत है। ऐसी दशा में समन्वय ही एकमात्र शान्ति का मार्ग रह जाता है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि जितना दूसरे अपनी बात मान सकें, उतने पर संतोष किया जाय, साथ ही दूसरों के साथ जितना तालमेल बिठता हो, उतना बिठाकर चला जाय। समन्वय ही ऐसी विधा है, जिसे अपनाकर शान्तिपूर्वक रहा और शान्ति से दूसरों को रहने दिया जा सकता है। भव्य समाज के नवनिर्माण का एकमात्र यही आधार है।

आत्म-कल्याण बनाम विश्व-कल्याण

परमार्थ और परोपकार के दो लाभ माने गये हैं—एक आत्मोद्धार, दूसरा विश्व-कल्याण।

देखने में तो यह अलग-अलग दो लाभ विदित होते हैं। पर वस्तुतः दोनों बातें हैं एक ही। व्यक्ति-व्यक्ति रूप में जब सारा मानव-समाज अपना सुधार अथवा कल्याण कर लेगा तो समस्त संसार का कल्याण स्वतः ही हो जायेगा। इसी प्रकार विश्व कल्याण की व्यापक भावना के अन्तर्गत व्यक्ति कल्याण की भावना आ ही जाती है। अपना सुधार विश्व कल्याण और विश्व कल्याण अपना उद्धार—दोनों एक ही बात हैं। अथवा यों कह लीजिये दोनों ही बात के दो दृष्टि-बिन्दु अथवा पक्ष हैं। दोनों में कोई अन्तर नहीं है।

जो दूरदर्शी बुद्धिमान् व्यक्ति अपने सुधार पर जितना ध्यान देते हैं। अपनी त्रुटियों और दुर्बलताओं को खोजते और दूर करने का प्रयत्न करते हैं—वे एक प्रकार से उतना ही संसार का उपकार करते हैं। व्यक्ति का सुधार संसार का ही सुधार तो है और संसार का सुधार परोपकार कार्य ही होता है। जो अपनी परिस्थितियाँ सुधारता और भविष्य को उज्ज्वल बनाता चलता है, वह उतने ही अर्थों में संसार का भविष्य उज्ज्वल बनाता है।

जो लोग सोचते हैं कि अपनी उन्नति, अपना उद्धार करना एक स्वार्थ मात्र है, वे भारी भ्रम में हैं। अपना उद्धार करना संसार का उद्धार करने का प्रथम चरण है। जो अपना उपकार आप नहीं कर सकता वह संसार अथवा किसी दूसरे का उपकार क्या कर सकता है ? जो स्वयं अच्छा है, वही दूसरे को अच्छा बना सकता है। जो स्वयं उदार और निर्लोभ है, वह ही किसी-दूसरे को इसकी शिक्षा दे सकने का अधिकारी है। हम संसार को जिस रूप में देखने की आकांक्षा रखते हैं, सबसे पहले हमें स्वयं ही वैसा बनना पड़ेगा। व्यक्ति और संसार कोई भिन्न वस्तु नहीं। व्यक्तियों का समूह ही समाज और संसार कहलाता है। यदि हम संसार का कल्याण करना चाहते हैं, तो यह काम हमें अपने से ही आरम्भ कर देना चाहिए। अपनी सेवा भी संसार की ही एक सेवा है।

यदि हम स्वयं बुरे हैं और संसार को अच्छा बनाना चाहते हैं, तो यह सम्भव न होगा। फिर चाहे उसके लिये समाज में जाकर लोगों की सेवा ही क्यों न करते हैं। उन्हें ज्ञान का प्रकाश और सद्भावना का अमृत क्यों न बाँटते रहें। सबसे पहली बात है कि लोग हम पर विश्वास ही न करेंगे, दूसरे यदि कोई सुनने-समझने को भी तैयार हो जायें तो उसका कोई उपयोगी प्रभाव न होगा। तीसरे यदि एक बार यह दोनों बातें हो भी जायें तो भी हम जितना एक ओर सुधार करेंगे, उतना ही हमारी बुराइयाँ दूसरी ओर विकृति पैदा कर देंगी। संसार का उपकार करने से पूर्व आवश्यक है कि पहले अपने पर उपकार कर आत्म-सुधार कर लिया जाय। अपनी सच्ची सेवा संसार की सेवा का ही अंग है। आत्मोद्धार को स्वार्थ मानना भारी भूल है।

आत्मोद्धार संसार का उपकार करने का एक सरल और सुगम उपाय है। अपना आपा ही अपने सबसे निकट होता है। अपने को अपने पर दूसरों की अपेक्षा अधिक अधिकार और नियन्त्रण होता है। अपने को तो अपनी इच्छानुसार किसी ओर भी मोड़ा अथवा किसी आदर्श में ढाला ही जा सकता है। दूसरों पर हमारा कोई अधिकार नहीं होता। हम किसी से कुछ निवेदन ही कर सकते हैं, कुछ समझा सकते हैं और परामर्श दे सकते हैं। अपनी तरह बलपूर्वक किसी ओर चला तो नहीं सकते। यह निश्चित नहीं कि दूसरे लोग हमारी बात मानें हीं। वे मान भी सकते हैं और नहीं भी मान सकते हैं। इस संदिग्ध स्थिति में विश्व-सुधार का कार्य सरलतापूर्वक नहीं किया जा सकता है। इसलिये अच्छा यही है कि संसार का एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अंग होने के नाते अपने माध्यम से संसार के उपकार में लगें। यही सबसे सही और सुगम तरीका है।

आत्मोद्धार, आत्मोपकार और आत्म-विकास को जो स्वार्थ मानते हैं उन्हें समझ लेना चाहिए कि सदाशयतापूर्ण स्वार्थ भी परमार्थ ही होता है। अपनी आत्मा का स्वार्थ जिन विचारों और कार्यों द्वारा सिद्ध होगा, उन्हीं के माध्यम से संसार का हित साधन भी होगा। जिन गुणों से, जिन उपायों से हमें आत्म-शान्ति, आत्म-सन्तोष और आत्म-कल्याण का लाभ होगा, उनके सिवाय दूसरे और कौन से कारण और उपाय हो सकते हैं, जो दूसरों की आत्माओं में इन विशेषताओं का समावेश कर सकें ? सारे संसार की आत्माएँ एक हैं और वे एक जैसे गुण-दोषों से सुखी और दुःखी होती हैं।

उत्कृष्ट स्तर का स्वार्थ वस्तुतः परमार्थ का ही एक रूप होता है। सत्कर्म एवं सद्गुण स्वयं ही परोपकार बन कर प्रकट होते हैं। लोक-कल्याण और आत्म-कल्याण की गतिविधियाँ भिन्न-भिन्न नहीं एक ही होती हैं। जो माध्यम आत्म-कल्याण का होता है, वही लोक-कल्याण का। अस्तु, आत्मोद्धार को स्वार्थ मान बैठना ठीक नहीं।

लोभ, लोलुपता और परपीड़न की भावना से प्रेरित प्रवृत्तियाँ ही स्वार्थ हैं, जिनकी विद्वानों और मनस्वी व्यक्तियों द्वारा निन्दा और निषेध किया गया है। ऐसा संकीर्ण व्यक्ति मानवीय धर्म की उपेक्षा करने लगता है, जिससे यह संसार का तो उपकार करता ही है आप भी अपना पतन कर लिया करता है।

संकीर्ण, भौतिक एवं निकृष्ट स्वार्थ मिथ्या-स्वार्थ माना गया है। ऐसा स्वार्थ वह उत्कृष्ट और सच्चा स्वार्थ नहीं होता जिसका परिणाम परमार्थ पुण्य के फल वाला होता है। झूठा स्वार्थ मनुष्य को वासनाओं और तृष्णाओं से ग्रसित कर कुकर्म करने को विवश करता है। ऐसे स्वार्थी व्यक्ति कोई तात्कालिक लाभ भले ही प्राप्त कर लें पर अन्त में उसे लोक-निन्दा, अविश्वास, प्रण, असन्तोष, विरोध, विक्षोभ, आत्म-ग्लानि, अशांति आदि के कष्टदायक मानसिक एवं सांसारिक नरक में पड़ना पड़ता है। ऐसा निकृष्ट एवं निन्दित व्यक्ति क्या तो अपना उद्धार कर सकता है और क्या लोकोपकार।

इन्हीं कारणों से ऐसे नारकीय स्वार्थ को मनीषियों ने निन्दित एवं हेय ठहराया है। परमार्थ का पूरक स्वार्थ उज्ज्वल और उन्नत स्वार्थ ही जाना गया है। उसके संपादन में आरम्भ में थोड़ा-सा कष्ट भले हो, उससे इन्द्रिय जन्य सुखों और लोभजन्य लाभों की पूर्ति भले ही न हो सके, वासनाओं और तृष्णाओं की पूर्ति भले ही न हो सके—पर अन्ततः वह सुखदायक और कल्याणकारी ही होता है। परमार्थपरक स्वार्थ वाले व्यक्ति अपने सदाचार और सद्व्यवहार के कारण लोकप्रियता का वह श्रेय प्राप्त कर लेते हैं, जो आत्म-शान्ति, आत्म-संतोष के साथ-साथ सांसारिक और पारलौकिक जीवन के लिये एक बड़ा सम्बल बनता है।

परमार्थ और परोपकार का अर्थ केवल यही नहीं है कि हम किसी को भोजन, वस्त्र और धन दें और न उसका अर्थ उन कामों तक ही सीमित है, जिससे किसी की सेवा हो सके या कोई कष्ट दूर किया जा सके। बल्कि यदि हम किसी को किसी ऐसी प्रवृत्ति से विरत कर देते हैं, जिससे वह किसी आगामी संकट से बच जाता है तो यह भी परोपकार ही माना जायेगा। दूसरे की गलतियाँ और बुराइयाँ हमें परेशान करती हैं, कष्ट देती हैं और हानि पहुँचाती हैं। अब यदि हममें परोपकार भावना नहीं है, तो हम उसे उसका दोष देंगे, प्रतिकार करेंगे। जिससे वह भी किसी कष्ट और संकट का भागीदार बन जायेगा। जिसकी प्रतिक्रिया उसके भावी जीवन को और नीरस तथा बुरा बना देगी।

हमारे कारण वह समाज से खीझने लगेगा, उसका अपकार करेगा, जिसके फलस्वरूप आये दिन संकट में पड़ता रहेगा। यदि हम परोपकार भावना द्वारा उसे उसकी बुराई के लिये क्षमा करके यह सोचने पर विवश कर दें कि उसने एक अच्छे व्यक्ति की बुराई की है, जो उसे नहीं करनी चाहिए थी, तो भविष्य के लिए उसकी प्रवृत्तियों में सुधार होगा और वह आगामी संकटों से बचा रहेगा। व्यक्ति का यह सुधार एक बड़ा परोपकार ही नहीं पुण्य परमार्थ भी है।

किन्तु यह सुधार हम कर सकने में सफल तभी होंगे, जब अपनी प्रवृत्तियों को क्षमा एवं सहनशीलता द्वारा पवित्र बना सकें। एक आध्यात्मिक व्यक्ति की भाँति दूसरे की बुराई का कारण अपने भीतर खोजें और उसका निराकरण करें, तभी हममें वह गुण आ सकता है जिसके प्रभाव से बुरा व्यक्ति अच्छा बन जाता है। हमें सोचना होगा कि कोई वस्तु सजातीय एवं अनुकूल वायुमण्डल में ही बढ़ती और पनपती है। दूसरे को बुराई करने का अवसर मिलेगा, जब वैसी ही बुराई और त्रुटि अपने अन्दर भी हो। यदि अपना स्वभाव उत्कृष्ट, सहनशील एवं क्षमाशील है, बुरे के साथ भी उपकारपूर्ण सद्भावना और सहानुभूति है तो बुरे लोगों को भी अपने को उसके अनुरूप बनाने पर विवश होना पड़ेगा, अपना व्यवहार बदलना पड़ेगा।

जो व्यक्ति जितना ही अपने गुण, कर्म, स्वभाव को सुधारता है, वह 'आत्मोद्धार ही विश्व-कल्याण है'—वाले सिद्धान्त के अनुसार उतना ही उपकारी माना जायेगा। ऐसा व्यक्ति तत्परतापूर्वक अपनी छोटी-से-छोटी बुराई की भी उपेक्षा नहीं करता, उसे भी जड़मूल से नष्ट कर देने में सचेष्ट रहता है। हम जितनी अधिक अपनी परिस्थितियाँ सुधारते चलेंगे। अपने भाग्य और भविष्य को उज्ज्वल और उन्नत बनाते चलेंगे, उतने ही अंश में संसार का उपकार करते चलेंगे।

अपना सुधार न कर परोपकार कार्यों में लगना एक विडम्बना मात्र ही सिद्ध होगा। अतएव आवश्यक है कि परोपकार का पुण्य पाने के लिए अपने सुधार, आत्मोपकार

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर भी ध्यान दिया जाय। संसार का उपकार करने का सबसे सरल और सुगम तरीका आत्मोद्धार ही है। इसकी ओर ध्यान न देने वाले से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि उसका किया उपकार निःस्वार्थ और निष्कलंक होगा। न चाहते हुए भी निम्न प्रवृत्तियों के व्यक्तियों के परोपकार कार्यों में निकृष्ट स्वार्थ के समावेश हो जाने का भय बना रहता है।

अपने जीवन को सार्थक बनाने की दृष्टि से भी और विश्व हित साधन की दृष्टि से भी हमें सबसे पहले अपने व्यक्तित्व को निर्दोष व निष्कलंक बनाना चाहिए। हमारा व्यक्तित्व जितना उज्ज्वल और उन्नत बनता जायेगा, उसी अनुपात में हममें अन्तर्ज्योति का तो जागरण होगा ही साथ-साथ ही उतने अंशों में संसार का भी कल्याण होगा और इस प्रकार स्वार्थ में परमार्थ का समन्वय होगा और दोनों पक्ष सधते चलेंगे।

विश्व का कल्याण

वर्तमान समय में हम अनेक धर्मप्रेमी व्यक्तियों को "विश्व का कल्याण हो"—"मनुष्य मात्र का अभ्युदय हो" इत्यादि प्रचार-वाक्य कहते हुए सुनते हैं। निःसन्देह धर्म का लक्षण यही है कि प्राणी मात्र को आत्मवत् समझा जाय और प्रत्येक के कल्याण का सदैव ध्यान रखा जाय। भारतीय धर्मशास्त्रों में जहाँ कहीं मनुष्य के कर्त्तव्यों का विचार किया गया है। वहाँ यह नहीं कहा गया है कि तुम अपने सम्प्रदाय अथवा जाति के मनुष्य से तो प्रेम करो और अन्य लोगों को शत्रु समझकर घृणा करो और उनके नाश का उद्योग करो। दूसरे धर्मों में भले ही अपने से पृथक धार्मिक मतानुयायी को "काफिर" या अधार्मिक कहकर उसे मारने को भी पुण्य बतलाया हो, पर आर्य धर्म में अहिंसा को परमधर्म कहकर सबके हित का ध्यान रखने का ही उपदेश दिया है। पर वर्तमान समय में "विश्व का कल्याण हो" का नारा लगाते रहने पर भी मनुष्यों के हृदय में बड़ी संकीर्णता के भाव दृष्टिगोचर हुआ करते हैं। इसलिये "श्री विश्वहितैषी महामानव समाज" के संचालक स्वामी श्री सदाशिवजी महाराज ने अपनी एक रचना में विश्व कल्याण की व्याख्या करते हुए लिखा है—

वेदान्त की परिभाषा के अनुसार 'विश्व' शब्द का अर्थ होता है कि व्यष्टि, स्थूल शरीर, अभिमान क्योंकि जाग्रत अवस्था में हमको नाम और रूप के आधार पर जगत जो कुछ अनुभव जान पड़ता है उसका कारण अपनी स्थूल देह का 'अभिमान' अथवा जानकारी ही होती है। जो लोग इस विश्व में रहने वाले सब नाम, रूप वाले प्राणियों और पदार्थों का हित चाहते हैं वे ही विश्व हितैषी हैं। अनेक लोग तो 'विश्व हित' का नाम सुनते ही डर जाते हैं। अज्ञानता के कारण वे इस प्रकार विचार करने लगते हैं कि "हाय, हाय, हमने अपने और अपने स्त्री, पुत्र, परिवार के सुख-शान्ति के लिए बड़े परिश्रम से जो धन, सम्पत्ति, विद्या, बुद्धि अथवा पुण्य आदि प्राप्त किया है उसे दूसरों के लिए क्यों खर्च करें ? अगर हम उनका उपयोग दूसरों के लिये कर डालेंगे तो फिर अपने लिये क्या करेंगे ? क्या कोई दूसरा आदमी हमारा हित साधन करेगा ? इस प्रकार अधिकांश लोग "विश्व" अर्थ न समझ कर केवल माता-पिता के रज-वीर्य से उत्पन्न इस स्थूल देह को आत्मा मानकर इससे सम्बन्ध रखने वाले स्त्री, पुत्रादि को ही अपना मानते हैं और इस भ्रम में पड़कर अनेक मूर्खतापूर्ण कार्य करते रहते हैं। पर इसका परिणाम यह निकलता है कि वे स्वयं भी दुखी होते और जिन स्त्री-पुत्रों के लिये वे आत्मानन्द का त्याग करते हैं उन स्त्री-पुत्रादि को भी दुखी बनाते हैं।

विचारपूर्वक देखा जाय तो अखिल विश्व ब्रह्माण्ड में जो कुछ, जड़ वस्तु अथवा स्थूल, सूक्ष्म, कारण, देहधारी चैतन्य प्राणी हैं वे सब अपने-अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए परस्पर सापेक्ष होते हैं। अर्थात् तुच्छ से तुच्छ जीव से लगाकर ईश्वर के सदृश्य शक्ति धारण करने वाले प्राणी को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए (सुख-शान्ति से जीवित रहने के लिए) एक-दूसरे की सहानुभूति की अनिवार्य रूप से आवश्यकता रहती है। इसी भाव को प्रकट करने के लिये भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।।

अर्थात् "प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि के आरम्भकाल में यज्ञ सहित प्रजावर्ग की उत्पत्ति करके इस प्रकार कहा था कि तुम यज्ञ द्वारा अभिवृद्धि प्राप्त करो और यह यज्ञ ही तुम्हारी कामनाओं की पूर्ति के निमित्त कामधेनु बने।" 'यज्ञ' का अर्थ होता है देव पूजा, दान और संगतिकरण (संगठन)। 'देवपूजा' का अर्थ होता है—दिव्य आचरण वाले मनुष्यों का मान, आदर सहित अनुकरण करना, यह नहीं कि उनके प्रतीक स्वरूप धातु, पाषाण आदि की मूर्ति को बाह्याडम्बर सहित पूजा कर संतोष कर लेना। 'दान' का अर्थ होता है—"यथायोग्य वितरण" अर्थात् जो व्यक्ति अपनी विद्या, बुद्धि, के द्वारा प्रचुर अर्थ-संग्रह करने में समर्थ हैं वे उसके द्वारा अन्य बुद्धि विद्याहीन, पराश्रयजनों की सहायता करें, जिससे वे भी शक्ति के अनुसार स्वावलम्बी बन सकें। दान का अर्थ यह नहीं होता कि छल, कपट, प्रपंच द्वारा गरीब लोगों को खून चूस-चूस कर अपार धन, सम्पत्ति इकट्ठी करना, उसके द्वारा खूब विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करना और उसमें से जूठन (उच्छिष्ट) की तरह थोड़ी-सी सम्पत्ति देश, जाति के नाम पर खर्च करके "दानवीर" की उपाधि ग्रहण कर लेना। इस प्रकार "देवपूजा" और "दान" के लिये शुद्ध हार्दिक भाव की आवश्यकता होती है और अधिकांश मनुष्य चाहें तो उसे कर सकते हैं। पर तीसरा कार्य "संगतिकरण" अर्थात् एक से विचार रखने वाले व्यक्तियों को एक सूत्र में बाँधकर संगठित करना कठिन काम है, जिसे विशेष विद्या बुद्धि वाले व्यक्ति ही कर सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसलिये जो जो लोग विशेष श्रेणी के विद्वान और बुद्धिमान होते हैं, वे जनता की रुचि और प्रकृति का ध्यान रखकर संगतिकरण (संगठन) के कार्य में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। यज्ञ के साथ प्रजा की उत्पत्ति और व्यवहारिक जीवन में एक दूसरे का "सहयोग" अनिवार्य होने से मनुष्य मात्र के लिये देवपूजा, दान और संगतिकरण रूपी 'यज्ञ' की उपासना परम कर्त्तव्य है। इसका मुख्य लाभ आगे के श्लोक में बतलाया गया है—

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्पर भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।।

—गीता ३।१०।१

अर्थात् "इस यज्ञ द्वारा तुम स्थूल देहाभिमानी प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ ऐसे मनुष्य देवताओं की भावना करते रहो (अर्थात् अपनी भावनाओं को निरन्तर चिन्तन द्वारा दिव्य मूर्तिमान बनाओ) इससे वे सूक्ष्म दैवी भावनाएँ भी तुम्हारी सहायता करती रहेंगी।" इसमें विशेष गूढ़ रहस्य यह है कि सूक्ष्म तथा कारण देहधारी दिव्यात्मा (देव) वायुमण्डल में विचरण करते रहने पर भी अगर कोई कार्य कर सकते हैं तो किसी स्थूल देहधारी व्यक्ति के माध्यम से ही ऐसा कर सकना सम्भव होता है। इसीलिये यह कहावत प्रसिद्ध है कि **"भावे हि विद्यते देवो"** अर्थात् हमारी दिव्य भावनाओं का अवलम्बन करके ही देवगण अपने संस्कारों के अनुरूप हमारा संचालन करते हैं। जिन लोगों की भावधारा विपरीत होती है, उसे देवगण प्रभावित नहीं करते। इस प्रकार जो लोग उच्च आदर्शपूर्ण भारतीय संस्कृति के रहस्य को समझते हैं, किसी भी हवन आदि के अवसर पर ऊपरी क्रियाकाण्ड को निमित्त बनाकर अपने आस-पास के अभावग्रस्त, दीन-दुखी लोगों को अन्न, वस्त्रादि देकर उनकी हार्दिक सहानुभूति प्राप्त करते हैं, जो एक सच्चा लाभ है। इसी प्रकार के अपने संस्कारों के अनुकूल विद्वान, बुद्धिमान एवं गुरुजनों को आदरपूर्वक बुलाकर उनसे मार्गदर्शन की प्रेरणा ग्रहण करते हैं। यह उपर्युक्त श्लोक में 'परस्परं भावयन्तः श्रेयः' का वास्तविक अर्थ है। इस प्रकार यज्ञ का अर्थ केवल सामग्री स्वाहा ! करके निमन्त्रण खाने का पेशा करने वालों का भोज कर देना नहीं है, वरन् उसका आशय यही है कि हम हवन इत्यादि को निमित्त बनाकर अपने से हीन दर्जे वाले गरीबों की सहायता करें और अपने से अधिक विद्या-बुद्धि वाले महापुरुषों से उपदेश ग्रहण करके अपने जीवन को अधिक शुद्ध, पवित्र और सहानुभूति युक्त बनावें।

विश्वशान्ति कैसे सम्भव हो ?

कटुता, भ्रान्ति, सन्देह, भय और संघर्षों से भरे आज के इस संसार का भविष्य अनिश्चित और अन्धकारमय ही दीख रहा है। विज्ञान ने जिन अस्त्रों का आविष्कार किया है। वे पृथ्वी की चिरसंचित मानव सभ्यता को बात की बात में नष्ट करने में समर्थ हैं। कच्चे धागे में बँधी लटकती तलवार की तरह कभी भी कोई विपत्ति आ सकती है और कोई भी पागल राजनेता अपनी एक छोटी-सी सनक में इस सुन्दर धरती को ऐसी कुरूप और निरर्थक बना सकता है जिसमें मनुष्य क्या किसी भी प्राणी का जीवन असम्भव हो जाये।

इस सर्वनाशी विनाश से कम कष्टकारक वह स्थिति भी नहीं है, जिसमें बौद्धिक अन्धकार, नैतिक बर्बरता की काली घटायें तिल-तिल जलने और रोने-सिसकने की परिस्थितियों में सर्वत्र अशान्ति उत्पन्न किये हुए हैं। संसार एक अचेतन मूर्छना के गर्त में दिन-दिन गहरा उतरता जाता है। हमारा आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक जीवन मानो ऐसी शून्यता की ओर चल रहा है जिसका न कोई लक्ष्य है न प्रयोजन। पथ भटके बनजारे की तरह हम चल तो तेजी से रहे हैं पर उसका कुछ परिणाम नहीं निकल रहा है। कई बार तो लगता है, प्रगति के नाम पर अगति की ओर पीछे लौट रहे हैं और उस आदिम युग की ओर उलट पड़ें हैं जहाँ से कि सभ्यता का आरम्भ हुआ था।

कई व्यक्ति सोचते हैं कि इस व्यापक भ्रष्टाचार का अन्त बड़े युद्धों द्वारा होगा। आज जिन लोगों के हाथ में राजनैतिक, बौद्धिक तथा आर्थिक सत्ता है यदि वे अपने छोटे स्वार्थों के लिए समाज के विनाश की अपनी वर्तमान गतिविधियों को रोकते नहीं हैं और अपने प्रभाव तथा साधनों का दुरुपयोग करते ही चले जाते हैं तो उन्हें बलात् पदच्युत किया जाना चाहिए। इसके लिए चाहे सशस्त्र क्रान्ति या युद्ध ही क्यों न करना पड़े।

इस प्रकार सोचने वालों की बेचैनी और व्यथा तो समझ में आती है पर जिस उपाय से वे सुधार करना चाहते हैं वह संदिग्ध है। कल्पना करें कि आज के प्रभावशाली लोग-समाज बदलने के लिए अपने को बदलने की नीति अंगीकार नहीं करते और उन्हें युद्ध या शास्त्रों की सहायता से हटाया जाता है तो यही क्या गारण्टी है कि शास्त्रों से जिस सत्ता को हटाया गया है उसी को वे नये शस्त्रधारी न हथिया लेंगे ? मध्य पूर्व और पाकिस्तान में सैनिक क्रान्तियों का सिलसिला चल रहा है। नयी शिकायतें शुरू हो गईं जैसे पहले वालों से थीं। सत्ता साधनों में कोई त्रुटि नहीं है, दोष उनके प्रयोगकर्ताओं का है। सो हमें ऐसे प्रयोगकर्त्ताओं का निर्माण करना चाहिए जो शक्ति का उपयोग स्वार्थ की परिधि से बाहर रखकर लोकमंगल के लिए प्रयुक्त कर सकने के लिए विश्वस्त एवं प्रामाणिक सिद्ध हो सकें।

आज की समस्याओं का यही सबसे सही समाधान है कि ऐसे व्यक्तियों की संख्या बढ़े जो निजी स्वार्थों की अपेक्षा सार्वजनिक स्वार्थों को प्रधानता दें और इस सन्दर्भ में अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए वैसी जीवन-प्रक्रिया जीकर दिखायें, जिसे सत्ताधारियों के लिए आदर्श माना जा सके। यह कार्य आज की स्थिति में भी हर कोई कर सकता है। यह गुंजायश प्रत्येक के लिए खुली पड़ी है कि वह अपनी वर्तमान सुविधाओं एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपलब्धियों को व्यक्तिगत कार्यों से बचाकर लोकमंगल के लिए प्रयुक्त करना आरम्भ करे। भावनाओं की प्रबलता के अनुसार परिस्थितियाँ सहज ही बन जाती हैं। यदि लोगों में समाज के हित साधन की उतनी ही ललक हो जितनी अपने शरीर या परिवार के लिए रहती है तो कोई कारण नहीं कि गई-गुजरी स्थिति का व्यक्ति भी कुछ ऐसे प्रयत्न करने में सफल न हो सके, जो लोगों में समाज हित के लिए कुछ त्याग एवं श्रम करने की अनुकरणीय चेतना न उत्पन्न कर सकें।

संसार में आज जो हिंसापूर्ण एक-दूसरे को खा जाने, हड़प कर जाने का वातावरण प्रस्तुत हो गया है। मानव-मानव को, एक जाति दूसरी जाति को, एक राष्ट्र-दूसरे राष्ट्र को किस लालच और अपनेपन की दृष्टि से देख रहे हैं। चाहते हैं कि मौका मिले और दूसरे पर हावी हो जायें।

संसार के जितने सभ्य और बड़े कहे जाने वाले राष्ट्र हैं उसमें ऊँचे-ऊँचे वैज्ञानिक जिन अनुसंधानों से लगे हुए हैं, वे प्राणि मात्र के लिए कितने घातक और विध्वंसकारी हैं। इसकी सम्भावनाओं पर विचार करने मात्र से रोमाञ्च खड़े हो जाते हैं।

आज संसार की स्थिति देखकर सभी देशों के कुशल राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, धर्म गुरु और वैज्ञानिक एक राय होकर इस बात की आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं कि सब राष्ट्रों में मैत्रीभाव उत्पन्न हो, तभी विश्व में शान्ति स्थापित रखी जा सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय संघ आदि संस्थाओं के निर्माण के पश्चात् भी विश्व में शान्ति का रूप देखने को नहीं मिल सका। इसका मूल कारण भी यही है कि शान्ति स्थापित करने वाली संस्था स्थापित करने से पूर्व अपने मनों में इस बात का अंकुर नहीं जमाया गया कि विश्व शान्ति के लिए हमें सच्चे हृदय से प्रयत्न करता है। इस बात को जन-जन के अन्तःकरण में नहीं पहुँचाया गया कि संसार के सभी देशों में शान्ति रहे, इसके लिए सभी देश में मैत्री आवश्यक है। हम सब उसके लिए प्रयत्नशील हों और अपने आन्तरिक क्षेत्र में इस भाव को जाग्रत करें।

यदि हम वास्तव में विश्व में शान्ति स्थापित करना चाहते हैं, समष्टि में उसका सच्चा स्वरूप देखना चाहते हैं तो हमें भारत की प्राचीन संस्कृति की ओर मुड़कर देखना होगा, उससे कुछ सीखना होगा। हमारी संस्कृति की शिक्षा है—"विश्व के मानव ही नहीं प्राणी मात्र में समता और प्रेम के भाव।" भारत की प्राचीन संस्कृति केवल मानव मात्र तक ही सीमित नहीं रही, उसने प्राणीमात्र को भी सुखी देखने की कल्पना की है और उसे ही व्यवहार में प्रयोग किया है।

वेद कहता है—**"मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे"**—सब प्राणियों को मैं मित्र की दृष्टि से देखूँ। **"मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्"**—सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें।

"मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामीह"—हम सब परस्पर एक-दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें। भगवान महावीर का कथन है कि सब जीवों को अपने समान समझे और अपने पराये सबको साम्य दृष्टि से देखे। जिसने आस्रवों का निरोध करके, चंचल इन्द्रियों का दमन कर लिया है उसे पाप कर्म का बन्धन नहीं रहता।

भगवान बुद्ध ने भी प्राणी मात्र को समान दृष्टि से देखकर उन्हें कष्ट न पहुँचाने, जीवों पर दया करने तथा अहिंसा पर सदा दृढ़ रहने की बात कही थी।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक भाषण में कहा था कि जब तक मानव हृदय में प्रेम की धारा न बहेगी तब तक संसार में अशान्ति ही बनी रहेगी।

इसी प्रकार स्वामी रामतीर्थ ने भी अपनी अभिव्यक्ति प्रकट की थी कि दुनिया में हमारा कोई पराया नहीं। सब हमारे भाई-बन्धु हैं। सबक भला चाहना, कष्ट में उनकी सेवा करना मनुष्य के मानवी गुण हैं।

भगवान क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उनको बतलाया था भगवान का सब से अच्छा नाम 'प्रेम' है। उन्होंने धर्म क्या है ? प्रश्न के उत्तर देते हुए कहा—"गरीबों से सच्ची सहानुभूति ही सच्चा धर्म है।"

यह है भारतीय दर्शन। यदि हम इसका मूल्य समझ सकें और इसे व्यवहार में ला सकें तो हमारे हृदय ऐसे हो जायेंगे कि मानव तो क्या प्राणिमात्र को कष्ट पहुँचाने की बात नहीं सोच सकते। भारत के प्राचीनकाल में 'जगद-गुरु' कहलाने का सौभाग्य प्राप्त होने का मूल कारण भी यही है कि यह विश्व बन्धुत्व की नीति को मानता है। प्राणिमात्र में ईश्वर और ईश्वर का अंश आत्मा अपना ही रूप देखता है। इस स्थिति में कौन किसे कष्ट पहुँचायेगा ? और क्यों किसी देश को त्रस्त करके उन्हें आधीन करेगा ? क्यों किसी पर शासन करेगा ?

भारतीय दर्शन ने ऊँचे विचार मनुष्य मात्र को दिए। यदि हम इसका प्रचार करें। घर-घर, जन-जन में इस संदेश को पहुँचा सकें तो वर्तमान अशान्ति तथा संघर्ष नीति कहाँ रह सकेगी ?

जहाँ आज प्रत्येक शक्तिशाली व्यक्ति या राष्ट्र को अपने आधीन करने, हड़प जाने के चक्कर में है, उसे छोड़कर वह अपने से छोटों के संरक्षण और पोषण की नीति पर विचार करने लगेगा।

भारत के इतिहास का केवल एक उदाहरण इन विनाश के लिए अनुसंधान करने वाले शासनों को समाप्त कर देने के लिए पर्याप्त है। वह है अशोक की कलिंग की लड़ाई और उसके बाद लड़ाई से खून-खराबी, जनता जनार्दन को महान् कष्ट और देश की प्रत्येक रूप से बरबादी को देखकर, उन पर विचार करके जीवन में फिर कभी-भी हथियार न उठाने की घोषणा करना।

अशोक ने मानव-प्रेम का अपने जीवन काल में शान्ति स्थापना करने और विश्व से उसका संदेश पहुँचाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए उनका सब कुछ, यहाँ तक कि पुत्र-पुत्री तक को अर्पण कर दिया था। इतने महान त्याग के पश्चात् ही उस समय नर-संहार बन्द हो सका था।

इस समय भी यदि शान्ति स्थापित करना चाहते हैं, विश्व को विनाश से बचाना चाहते हैं तो मानवता एवं नैतिकता के आदर्श को जनसाधारण में हृदयगंम कराना होगा और संसार के छोटे-बड़े सभी राष्ट्रों को सद्भावना से मिलकर शान्ति के लिए प्रयत्न करना होगा।

विश्व में शान्ति स्थापित करने, मैत्री और प्रेम की भावना को बल प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि विनाशकारी, अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण कार्य बन्द हो। उस शक्ति को रचनात्मक कार्य में प्रयोग करने का अनुसंधान किया जाय। राजनीतिज्ञों, शासकों को यही दृष्टिकोण अपनाने के लिए विवश किया जाना चाहिए। शान्ति की आवश्यकता राजनैतिज्ञों, को नहीं, जनता को है। युद्धजन्य त्रास जनता को ही सहने पड़ते हैं इसलिए उसे ही प्रेम, एकता और सद्भावना का वातावरण तैयार करने के लिए आगे बढ़ना होगा।

अन्तर्राष्ट्रीय तनाव के कारण एवं निवारण

युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्याओं में एक है अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बढ़ता हुआ तनाव। राष्ट्रों के बीच आपसी मतभेद पहले भी रहते थे, संघर्ष भी होते थे। फलस्वरूप जनशक्ति एवं धनशक्ति नष्ट होती रही है, किन्तु अब संकट कई गुना अधिक बढ़ गया है। परमाणु शस्त्रों के विकास एवं निर्माण की होड़ ने मनुष्य जाति को विनाश के उस कगार पर ले जाकर खड़ा कर दिया है जहाँ कि आशंका है कि मनुष्य का अस्तित्व सुरक्षित रह भी पायेगा अथवा नहीं। आपसी तनाव एवं उनके फलस्वरूप होने वाले युद्धों के दुष्परिणामों के विषय में गम्भीरता से विचार करना होगा। तनावों के कारण क्या हैं ? उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है ? विश्व की शान्ति एवं सुरक्षा इस बात पर ही अवलम्बित है।

'प्रसिद्ध विचारक वट्रैण्ड रसेल ने अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को बनाये रखने के विरुद्ध तीन अवरोधक तत्वों को प्रधान माना है— (१) हठोन्माद (२) राष्ट्रीय साम्प्रदायिकता (३) शिक्षा का विकृत लक्ष्य। उनका कहना है कि इन तीन के रहते विश्व में शान्ति स्थापना का लक्ष्य मात्र कल्पना बनकर रह जायेगा।

व्यक्तियों के समान राष्ट्रों की भी अपनी मान्यताएँ हैं। उनमें भले-बुरे दोनों का समावेश है। अपना राष्ट्र, अपनी भाषा, संस्कृति, रीति-रिवाज, प्रथा एवं परम्पराएँ सबको प्रिय होती हैं। एक सीमा तक यह आवश्यक है और उपयोगी भी। पर अपना वर्चस्व सिद्ध करने के लिए अपनी मान्यताओं को थोपने, दूसरे की उपेक्षा करने से ही विग्रह खड़े होते हैं। हर देश की सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ अलग हैं। कोई भी एक शासन प्रणाली एवं संस्कृति ऐसी नहीं हो सकती जो सभी राष्ट्रों के लिए लाभकारी हो। सम्भव है भविष्य में ऐसी कोई स्वस्थ व्यवस्था बन जाय और एक राष्ट्र, एक संस्कृति, एक शासन व्यवस्था का सपना साकार हो जाय पर वर्तमान में तो ऐसी कोई व्यवस्था नहीं बन सकी है जिससे ऐसी अपेक्षा की जा सके।

हठोन्माद कई प्रकार के हैं वे धार्मिक भी हैं और राजनैतिक भी। साम्प्रदायिक भी और अपनी व्यवस्था प्रणाली के भी। धर्म और मजहब अलग-अलग भौगोलिक एवं सामाजिक परिस्थतियों में पनपे और बढ़े हैं। उनके कर्मकाण्ड, साधना प्रणाली एवं मान्यताओं में भारी अन्तर दिखाई पड़ता है। क्रिश्चियन धर्म की अपनी विशेषता है मुस्लिम धर्म की अपनी, पारसी, बौद्ध, ताओ, हिन्दू, सिक्ख धर्म जिस परिवेश एवं भौगोलिक वातावरण में विकसित हुए हैं उनकी छाप इन धर्मों में विद्यमान है। प्रवर्तकों ने इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा कि उस धर्म में स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप समाधान विद्यमान हो। आचार संहिता साधना प्रणाली में भी सांस्कृतिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों की छाप रही है। एक धर्म के क्रियाकृत्यों, मान्यताओं में परस्पर भिन्नता होते हुए भी मूल लक्ष्य एक ही है व्यक्ति एवं समाज का सर्वांगीण विकास करना।

पूर्वाग्रह अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने एवं दूसरों पर थोपने का होता है। इस धार्मिक पूर्वाग्रह ने मनुष्य जाति को जोड़ा कम तोड़ा अधिक है। इसके स्थान पर प्रत्येक धर्म के प्रति उदारवादी सहिष्णुता की भावना रही होती, परस्पर आपसी स्नेह बढ़ता एवं दूसरे धर्म के आदर करने से एक-दूसरे को विशेषताओं से लाभान्वित होने का भी अवसर मिलता।

वन्ट्रैण्ड रसेल के अनुसार, "आर्थिक एवं राजनैतिक प्रणाली के सम्बन्ध में हठोन्माद भी अन्तर्राष्ट्रीय तनाव का एक कारण है।" साम्यवाद, पूँजीवाद, लोकतन्त्र के समर्थक अपने-अपने पूर्वाग्रहों से जकड़े रहते हैं। साम्यवादी यह सोचता है कि समस्त विश्व के लिए एकमात्र कल्याणकारी प्रणाली साम्यवाद ही हो सकती है। पूँजीवादी राष्ट्र अपनी व्यवस्था के हिमायती हैं। वे नहीं चाहते कि पूँजीवाद का अन्त होने से उनके सुख साधनों में किसी प्रकार की कमी हो। लोकतन्त्र अधिक उपयोगी एवं श्रेष्ठ होते हुए अपनी विकृत प्रणाली के कारण उतना लाभकारी नहीं सिद्ध हो रहा है। जिनके हाथ में सत्ता है वे तन्त्र में अभीष्ट सुधार करने एवं उसका स्वस्थ स्वरूप रखने की आवश्यकता अब अधिक व्यग्रतापूर्वक अनुभव कर रहे हैं।

प्रणाली कोई सी न तो सर्वथा अच्छी है और न सर्वथा बुरी। यह एक राष्ट्र की सामाजिक, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के ऊपर निर्भर करता है कि कौन किसके लिये कितनी उपयोगी है ? अतएव किसी भी तन्त्र अथवा वाद की सर्वोपरिता सिद्ध करने एवं प्रत्येक राष्ट्र द्वारा अपनाये जाने का पूर्वाग्रह भी साम्प्रदायिक भावना के समान ही घातक है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति में दूसरा अवरोधक तत्व है राष्ट्रीय साम्प्रदायिकता। स्वस्थ राष्ट्रीय भावना एक देश के उत्थान के लिए आवश्यक है। देश के सर्वांगीण विकास के लिए कुछ सामाजिक मूल्यों एवं नियमों का निर्धारण होना ही चाहिए किन्तु राष्ट्रीयता के साम्प्रदायिक पहलू भी हैं जो विश्व शान्ति पर आघात करते हैं।

विश्व शान्ति में तीसरा अवरोधक तत्व 'वट्रैण्ड रसेल' ने माना है शिक्षा के विकृत लक्ष्य। प्रत्येक देश में परम्परागत शिक्षा प्रणाली के दो लक्ष्य प्रधान हैं। एक राज्य के विभिन्न कार्यों के लिये योग्य व्यक्ति तैयार करना। दूसरा विभिन्न प्रकार के उत्पादन के लिए व्यक्तियों को दक्ष करना। इन दो सीमाओं से आगे बढ़ने वालों का अधिक से अधिक लक्ष्य यह होता है किसी क्षेत्र विशेष में निपुणता प्राप्त करना-विद्वान् बनना। विश्व की सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली इसी के इर्द-गिर्द घूमती है। जीवन-जीने का स्वरूप एवं प्रयोजन जो गुरुतर प्रश्न है से सम्बन्धित उत्तरों को खोजने के लिए वर्तमान शिक्षा में कोई स्थान नहीं है। एक मनुष्य का दूसरे से क्या सम्बन्ध है जैसी महत्वपूर्ण जानकारियाँ जिन पर समस्त मानवी समस्याओं का समाधान अवलम्बित है जैसी बातों की उपेक्षा शिक्षा में हुई है।

ज्ञान के महत्वपूर्ण स्रोत शिक्षा की इस दुर्दशा को देखकर प्रसिद्ध विचारक कीर्के गार्ड ने अपनी व्यथा इस प्रकार व्यक्त की है।

आदमी थोड़ी-सी मिट्टी हाथ में लेकर उसे सूँघकर बता देता है कि वह किस प्रदेश की है। मैं जीवन को हाथ में लेता हूँ और सूँघने का प्रयत्न करता हूँ लेकिन मुझे उसमें कोई गन्ध नहीं आती। मैं कहाँ हूँ, कौन हूँ, यहाँ कैसे आया, जिसे दुनिया कहते हैं वह क्या है, उसके निर्माण का प्रयोजन क्या है, संसार का सूत्रधार कौन है ? जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न जीवनपर्यन्त अछूते बने रहते हैं।"

'लार्ड स्नो' शिक्षा के लक्ष्य एवं स्वरूप के विषय में कहते हैं—"असली शिक्षा वह है जिसमें विचारों का ऐसा समुच्चय हो जिसकी सहायता से इस चारों ओर की दुनिया एवं आपसी सम्बन्धों को समझें और अनुभव करें।"

आर्टेगई गास्टेट शिक्षा का प्रयोग स्पष्ट करते हुये लिखते हैं कि जो हमें निरर्थक आन्तरिक अवमानना से ऊपर उठाकर श्रेष्ठ जीवनयापन के लिए बाध्य करे।"

प्रसिद्ध विचारक एवं अर्थशास्त्री 'ई. एम. शुमाकर' अपनी पुस्तक 'स्माल इज व्यूटीफुल' में लिखते हैं कि "वर्तमान में ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जो हमारे विचारों को सार्वभौम बनाये तथा इस योग्य बना दे कि संसार को समझ सकें।"

हठोन्माद, राष्ट्रीय साम्प्रदायिकता, शिक्षा के विकृत लक्ष्यों के अतिरिक्त भी भौगोलिक एवं सांस्कृतिक कई कारण ऐसे हैं जिनसे अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को बढ़ावा मिलता है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शान्ति बनाये रखने के लिए तीनों ही क्षेत्रों में अभीष्ट सुधार आवश्यक है। हठोन्माद बुरा है और घातक भी। राष्ट्रीय साम्प्रदायिकता मानवी मूल्यों को समाप्त कर देती है तथा विश्व सौहार्द्र जैसी उदात्त भावनाओं पर चोट पहुँचाती है। इन समस्याओं के समाधान के लिए शिक्षा जैसे सशक्त तन्त्र में हेर-फेर करना होगा। शिक्षा को योग्यता संवर्धन एवं उपार्जन के लक्ष्य तक केन्द्रित न रखकर व्यक्तित्व विकास के साधन के रूप विकसित करना होगा। उसे समस्त मानव जाति में स्नेह एवं सौहार्द्र बनाये रखने की भूमिका निभानी होगी।

बारूद के एक ढेर पर बैठी है यह दुनिया

विज्ञान की अपनी गरिमा है, प्रगति का अपना महत्व। इन दोनों की उपयोगिता-आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता। इतने पर भी इनका लाभ तभी है जब सृजन की दिशा में उन्हें प्रयुक्त किया जाता रहे। विनाश के लिए उपयोग की गई शक्ति सदा घातक ही होती है। सामर्थ्य जितनी अधिक होगी विकास या विनाश का उपक्रम भी उसी अनुपात में चलेगा।

यह प्रगति का युग है। विज्ञान क्षेत्र की प्रतिभाएँ इस क्षेत्र में विशेष रूप से अग्रणी हैं। शासन का सहयोग प्रोत्साहन उनके साथ है। प्रचुर साधन उपलब्ध करने में भी उन्हें कठिनाई नहीं होती। औद्योगिक उपार्जनकर्त्ता एवं व्यवसायी ऐसी उपलब्धियों की ताक में रहते हैं ताकि उन्हें समृद्ध बनने का कोई बड़ा अवसर हाथ लग सके। इसलिये शासन की तरह सम्पत्तिवान भी विज्ञानियों को चरम-पुरुषार्थ करने एवं उनके लिए लाभदायक आधार खड़े करने के लिए हर सम्भव सहयोग देते रहे हैं। इन्हीं परिस्थितियों में विज्ञान की उन धाराओं को अधिक अग्रगामी बनने का अवसर मिला है, जो शासकों एवं औद्योगिकों को अधिक सामर्थ्य प्रदान कर सके। आयुध, भौतिकी एवं प्रौद्योगिकी को इस आधार पर प्रोत्साहन मिला है और वह प्रगति की चरम सीमा तक जा पहुँचा है।

पिछले युद्धों और महायुद्धों के रोमांचकारी विवरण को पढ़कर भावी युद्धों की कल्पना भर से हृदय धड़कने लगता है। उनमें आक्रान्ता और आक्रान्त समुदायों को ही क्षति नहीं पहुँचेगी वरन् मानव समाज को समूची प्रगति से हाथ धोना पड़ेगा। इतना ही नहीं मानवीय अस्तित्व तक का बने रहना कठिन हो जायेगा। आयुधों के स्तर और परिमाण पर दृष्टिपात करने से महाविनाश की विभीषिका सामने आ खड़ी होती है।

महान् वैज्ञानिक 'आइन्स्टीन' से एक बार पूछा गया कि तृतीय विश्वयुद्ध में कौन-कौन से हथियारों का प्रयोग होगा ? इसके उत्तर में उन्होंने कहा था कि इस सम्बन्ध में तो मैं कुछ नहीं कह सकता, पर इतना निश्चित है कि चौथा विश्वयुद्ध, पत्थर के हथियारों से लड़ा जायेगा।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह बात उस समय भले ही सामान्य ढंग से कही गई हो परन्तु वर्तमान स्थिति पर दृष्टि करने से यह आभास हो जाता है कि आइन्स्टीन के इस कथन के पीछे गम्भीर आशय छिपा हुआ था। आणविक हथियारों की होड़ से दुनिया में आज इन आयुधों का इतना विशाल भण्डार हो गया है कि अगला विश्वयुद्ध अब निश्चिततः आणविक हथियारों से ही लड़ा जायेगा। जिसमें सभी कुछ नष्ट हो जायेगा। तकनीक ही तकनीक को खा जायेगी। समस्त संसार रेडियोधर्मिता के कारण मनुष्य के रहने योग्य नहीं रह जायेगा। ऐसी स्थिति में स्पष्ट है कि मनुष्य के पास पत्थरों के अतिरिक्त कुछ रह ही नहीं जायेगा।

पिछली शताब्दी से लेकर प्रथम विश्वयुद्ध तक, दूसरे विश्वयुद्ध से लेकर आज तक संहारक अस्त्रों की संख्या निरन्तर बढ़ती ही जा रही है। न केवल नये प्रकार के अस्त्र विकसित हुए हैं, वरन् परम्परागत अस्त्रों में भी आश्चर्यजनक सुधार किये गये हैं। यदि तीसरा विश्वयुद्ध हुआ तो उसमें किस प्रकार के अस्त्र प्रयोग किये जा सकते हैं इसका अनुमान लगाना कठिन है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्तिम दिनों में ही जर्मनी ने एक ऐसी राइफल निर्मित की थी जो एक के बाद एक लगातार फायर कर सकती थी। तब से लेकर अब तक इस प्रकार की राइफलों के नये-नये संस्करण एवं स्वरूप सामने आ चुके हैं। परम्परागत राइफल में एक बार में एक ही लक्ष्य पर गोली दागी जा सकती थी परन्तु इन नई राइफलों में धड़ाधड़ गोली दाग सकने की व्यवस्था है। इन नवीन प्रकार की राइफलों में भी अब सुधार किये जा रहे हैं। एक तो यह कि जब चाहे लगातार फायर कर सकें, जब चाहें एक-एक करके फायर किये जा सकें। दूसरा सुधार लक्ष्य पर ही निशाना लगा सकने की व्यवस्था में किया गया है, जिससे रात हो अथवा दिन, अचूक निशाना लगाया जा सकता है। इस तरह की रायफलें भी बनाई जा रही हैं जिनमें परम्परागत गोलियों के स्थान पर पैंसिल के सिरों की मोटाई वाले कंटीले बाणों की वर्षा हुआ करेगी। आगामी समय में यह भी सम्भावना है कि राइफल की जगह राकेट फेंकने वाले यन्त्रों की सहायता से प्रत्येक सैनिक छोटे-छोटे प्रक्षेपास्त्र दुश्मन पर फेंक सकेगा। एक सम्भावना यह भी है कि सिपाहियों को लेसर किरणें छोड़ने वाली बन्दूकें दी जायँ। अभी तक इन बन्दूकों के बारे में गल्प साहित्य में ही पढ़ा गया होगा परन्तु वास्तविकता यह है कि ऐसे अस्त्र बनाये जा चुके हैं।

प्रचलित आयुधों में तोपखानों का विशेष महत्व रहा है। इधर पिछले एक दशक में अनेक देशों ने ऐसी हल्की एवं प्रभावशाली तोपें विकसित की हैं, जिन्हें बन्दूक की तरह सुगमता से उठाकर ले जाना सर्वथा सम्भव हो गया है। जमीन पर लड़े जाने वाले युद्धों में प्रयुक्त होने वाले आयुधों में टैंकों का विशेष स्थान है। द्वितीय विश्वयुद्ध में जर्मनी ने उनका प्रयोग प्रदर्शन करके उनकी उपयोगिता की सत्यता सिद्ध कर दी है। अब तो टैंकों का भी बहुत विकास हो चुका है। फ्रांस, ब्रिटेन, रूस, अमेरिका, स्वीडन तथा जर्मनी ने टैंकों के विकास में उल्लेखनीय प्रगति की है। सामान्यतः टैंक बहुत भारी हुआ करते थे और उनका इच्छानुसार उपयोग कठिनता से हो पाता था। जर्मनी ने ऐसे टैंक विकसित किये हैं जिनका वजन ४० टन से कम है। इस दिशा में फ्रांस और ब्रिटेन तो और भी आगे निकल गये हैं। इन देशों ने ऐसे टैंक निर्मित किये हैं जो अभी तक प्रकाश में आये टैंकों से सब दृष्टियों से बेहतर तो हैं ही वरन् उनका भार भी दस टन से कम है। अधिक विस्मित कर देने वाली बात तो यह है कि जब तक तो टैंकों पर लम्बी-लम्बी तोपें फिट रहती थीं, किन्तु अब उनके अन्दर ही तोपें फिट करने की व्यवस्था की जा चुकी है। इसके साथ ही कम ऊँचाई के टैंक भी विकसित किये जा चुके हैं।

यह तो लड़ाई में प्रयोग किये जाने वाले परम्परागत हथियारों की बात हुई। विगत तीन-चार दशकों में इस क्षेत्र में कल्पनातीत प्रगति हुई है। १९५० की मध्यावधि में आवागमन के क्षेत्र में एक तेज गति से चलने वाला वायुयान "होवर क्राफ्ट" अस्तित्व में आया। यह अत्यधिक शोर करने वाला, अन्धाधुन्ध धुआँ छोड़ने वाला द्रुतगामी वाहन होता है। विश्व के कई देश वर्तमान होवर क्राफ्ट के ढाँचे का परिवर्तन-संशोधन करने में लगे हुए हैं। जानकारों का अनुमान है कि गतवर्ष अमेरिका अपनी नौ सेना के लिए १६० टन का ऐसा होवर क्राफ्ट तैयार कर चुका है जो ४०० सैनिकों अथवा अन्य युद्ध सामग्री को सैकड़ों हजारों मीलों तक सुगमता से ढो लेता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जिन आयुधों में कल्पनातीत विकास हुआ है, उनमें प्रक्षेपास्त्र प्रमुख हैं और आज तो प्रक्षेपास्त्र किसी भी राष्ट्र के लिए प्रतिष्ठा के चिन्ह बन गये हैं। विश्व के बड़े देश ही नहीं बल्कि ब्राजील एवं दक्षिण अफ्रीका जैसे छोटे देश भी प्रक्षेपास्त्र बनाने में जुटे हुए हैं। १९४४ के बाद से अब तक प्रक्षेपास्त्रों में चमत्कारिक विकास हुआ है।

कुछ देश वर्षों से अनुसंधान करने के उद्देश्य से उपग्रह छोड़ रहे हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि अब ऐसे भी उपग्रह विकसित किये जा चुके हैं जो अनुसंधान करने के बहाने इच्छानुसार बम गिरा देंगे।

इन दिनों रासायनिक युद्धों की चर्चा जोरों पर है और विशेषकर वियतनाम में अमेरिका द्वारा नापाम बम बरसाये जाने से सबका ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध में अश्रु गैस के अलावा, जहरीली गैस तथा नापाम बमों का प्रयोग किया गया था। उल्लेखनीय है कि प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी ने जिस ज्वलनशील प्रक्षेपास्त्र का प्रयोग किया था, नापाम बम उसी का परिवर्द्धित, संशोधित रूप है। इस प्रकार के ५ लाख टन नापाम बम अब तक विभिन्न देशों पर गिराये गये हैं। कोरिया युद्ध में ३ हजार टन तथा वियतनाम युद्ध के ४ लाख टन नापाम बम वर्षा कर अमेरिका ने संसार को हिला दिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परम्परागत युद्ध का तो मानव जाति को पूरा अनुभव है परन्तु बीसवीं शताब्दी में विज्ञान की आशातीत प्रगति ने यद्ध को अब कई नये आयाम दिये हैं। विज्ञान और टेक्नोलॉजी ने जहाँ मनुष्य के जीवन को सुखमय बनाने के साधन प्रस्तुत किये हैं वहीं उसकी मौत का घातक सरंजाम भी इकट्ठा कर दिया है। एक किलोटन से लेकर ६० मेगाटन और अधिक तक की शक्ति के आणविक बमों का निर्माण हो चुका है और अनुमान है कि १९८२ के अन्त तक विश्व में १५००० प्लूटोनियम बमों का निर्माण प्रतिवर्ष किये जाने लगेगा।

कनाडा के अल्विन पोलपोण्ड नामक भौतिकविद् ने एक आँकड़ा प्रस्तुत किया है। जिसमें अमरीका की अकेली परमाणविक शक्ति का उल्लेख किया गया है। उनका कहना है कि अनुमान करें कि एक बड़े हाल में एक लाख व्यक्ति एकत्रित हों और प्रत्येक के हाथ में तीन परमाणु बम हों। प्रत्येक बम की मारक क्षमता हिरोशिमा पर गिराये गये बम के बराबर हो। इतनी परमाणविक शक्ति अकेले आज अमेरिका के पास है। अन्य राष्ट्रों की पूरी जानकारी नहीं मिल पाई है। पर अनुमान किया जाता है कि सारे विश्व में परमाणुबम अरबों टी. एन. टी. विनाशक क्षमता के बराबर है। यह मात्रा इतनी अधिक है कि संसार की ६०० करोड़ जनसंख्या में से प्रत्येक व्यक्ति को ५० हजार बार मारा जा सकता है। इससे बढ़कर विचारशीलता का अभिशाप एवं वृद्धि पर लगा कलंक और क्या हो सकता है कि मनुष्य ने अपने को ही ५० हजार बार मारने की तैयार कर ली है।

अब तक अनेकों प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की, परमाणु, हाइड्रोजन बमों की, मिसाइलों की चर्चा सर्वाधिक घातक एवं विनाशक शस्त्रों के रूप में की जाती थी। विज्ञान के ध्वंसात्मक आविष्कारों में एक नवीनतम कड़ी जुड़ी है लेसर संयन्त्रों की। सूर्य शक्ति में मनुष्य जाति आदिकाल से ही प्रकाश, ताप, अग्नि और प्राणतत्व प्राप्त करती रही है। सूर्य शक्ति का भण्डार है। विज्ञान ने सूर्य की किरणों से ही एक नई शक्ति धारा प्राप्त की है। सात रंग की सूर्य रश्मियों से लाल रंग की किरणों से प्राप्त की गई शक्ति धारा का ताप लेसर है। अब तक अणुशक्ति को सर्वाधिक सामर्थ्यवान और प्रचण्ड शक्तिसम्पन्न समझा जाता था। उसकी मारक एवं दाहक क्षमता सर्वोपरि बताई जाती थी पर अब यह सिद्ध हो गया है कि लेसर किरणें अणु विस्फोट से उत्पन्न हुई शक्ति की अपेक्षा अधिक घातक एवं दाहक हैं। अणु विस्फोटों से उत्पन्न रेडियो विकिरण का प्रभाव लम्बे समय तक बना रहता है और प्राणियों तथा वनस्पतियों के ऊपर घातक प्रभाव डालता है। लेसर किरणों से दूषित विकरण उत्पन्न नहीं होता अतः इसके उपयोग को प्रमुखता दी जा रही है। प्रकाश सतरंगी किरणें सामान्यतः सम्मिलित ढंग से मेले-ठेलों में चलने वाली भीड़ की तरह चलती हैं। लेसर किरणें भी उन्हीं में घुली-मिली रहती हैं। परमाणु के नाभिक में सन्निहित प्रचण्ड शक्ति को प्राप्त करने के लिए जिस प्रकार जटिल वैज्ञानिक प्रक्रियाएँ पूरी करनी पड़ती हैं उसी प्रकार लेसर किरणों को भी अलग करने के अनेकों प्रकार के प्रयोग करने होते हैं। किन्तु जब उन्हें अन्य किरणों से अलग कर दिया जाता है तो वे अद्भुत चमत्कार प्रस्तुत करती हैं। ये अद्भुत शक्ति सम्पन्न होती हैं। इनके द्वारा मोटी इस्पात की चादर में भी बारीक छेद करना हो तो सेकण्ड के हजारवें भाग जितने नगण्य समय में किया जा सकता है। शुद्ध अवस्था में इन किरणों का तापक्रम सामान्यतः ६००० डिग्री सेंटीग्रेट होता है। मजबूत हीरे में भी पतला छेद लेसर किरणों द्वारा किया जा सकता है। इनका अधिकतम तापक्रम १८०० डिग्री तक देखा गया है।

'लेसर' उत्पादन के लिए मुख्यतः 'लालमणि' माध्यम का उपयोग होता है। यह अल्यूमिनियम और ऑक्सीजन का यौगिक है। जिस यन्त्र के माध्यम से लेसर किरणों का उत्पादन किया जाता है। वह चार इन्च मोटा लाल रंग का छोटा उपकरण होता है। उसमें क्रोमियम परमाणु द्वारा प्रकाश के हरे अथवा पीले वर्ग को उत्तेजित किया जाता है। इस प्रकार डिस्चार्ज लैंप द्वारा एक सेकिण्ड के हजारवें भाग जितने समय में प्रकाश उत्पन्न करके लाल रंग की किरणों से 'लेसर' प्राप्त किया जाता है। अब तक जो लेसर किरणें प्राप्त की गई हैं उनकी अधिकतम मोटाई एक इन्च के दस लाखवें हिस्से के बराबर है। भविष्य में इससे भी अधिक समर्थ लेसर शक्तिधारायें प्राप्त होने की सम्भावना है।

शक्ति का प्रयोग दोनों ही दिशाओं में किया जा सकता है—सृजनात्मक अथवा ध्वंसात्मक। अणुशक्ति का प्रयोग परमाणु बमों जैसे विनाशक शस्त्रों में तथा अणु भट्टियाँ लगाने में, दोनों ही रूप में हुआ है। लेसर किरणों से भी दोनों प्रकार की सम्भावनाएँ हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में इनकी चमत्कारी सामर्थ्य का उपयोग भी किया गया है अमेरिका के कुछ डॉक्टरों ने आँख जैसे नाजुक अंग के ट्यूमर को इन किरणों के सहारे सैकिण्ड के लाखवें भाग जितने समय में जलाकर नष्ट कर दिया—जबकि आँख के ट्यूमर का आपरेशन चिकित्सकों के लिए एक खतरनाक और जोखिम भरा कार्य बना हुआ है। निकट भविष्य में लेसर किरणों के सदुपयोग की उज्ज्वल सम्भावनायें भी हैं। मानव श्रम और समय का एक बहुत बड़ा भाग इनके उपयोग द्वारा बचाया जा सकेगा। इनके सहारे टेलीफोन की वार्ताओं और टेलीविजन के कार्यक्रमों में सहयोग मिलेगा।

दूसरे ग्रहों की खोजबीन के लिए अब तक खर्चीले राकेट, उपग्रहों को भेजने की परम्परा है। वैज्ञानिकों का मत है कि इन किरणों द्वारा सौरमण्डल ही नहीं उससे बाहर के ग्रह-नक्षत्रों के बारे में भी बहुत कुछ खोजा और जाना जा सकेगा। इस दिशा में प्रयोग भी चल पड़े हैं और सफलता भी मिली है। पिछले दिनों "लुईस्मिलन तथा जिर्जी" नामक दो वैज्ञानिकों ने चन्द्रमा पर लेसर किरणें भेजीं। वे चन्द्रमा पर पहुँचीं तथा मात्र दो सेण्किड में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वापस आ गईं उनसे वे सारी जानकारियाँ मिल गईं जो चन्द्रयान द्वारा गये चन्दयात्रियों से प्राप्त हुई थीं। 'लेसर' की अद्‌भुत और अभूतपूर्व शक्ति का उपयोग विद्युत उत्पादन कार्यों के लिए भी सोचा जा रहा है।

लेसर किरणों के सदुपयोग द्वारा रचनात्मक दिशा में समृद्धि संवर्धन का जितना लाभ उठाने की कल्पना की गई है, उससे भी अधिक आशंका उसके दुरुपयोग द्वारा होने वाले सर्वनाश की है। इनके प्रचण्ड तापक्रम १८ हजार सेण्टीग्रेट पर हर वस्तु भाप बनकर हवा में उड़ सकती है। लेसर किरणों से अचूक निशाना साधा जा सकेगा। परमाणु बमों को निर्धारित स्थान पर गिराने में भी इनसे सहयोग मिलेगा। आकाश में उड़ते वायुयान ही नहीं अन्तर्ग्रही खोज पर निकले राकेटों को भी लेसर किरणों द्वारा जलाकर भस्म किया जा सकेगा। मृत्यु किरण के रूप में जहाँ भी उसका प्रयोग किया जायेगा वहाँ भूखण्ड वीरान खण्डहर का रूप धारण कर लेंगे और जीवन का कहीं कोई चिन्ह अवशेष नहीं बचेगा क्योंकि उच्च तापक्रम पर सभी वस्तुएँ एवं जीवधारी जल-भुन कर भाप बनकर हवा में उड़ जायेंगे।

परमाणु विस्फोटों के उपरान्त निकलने वाली प्रचण्ड ऊर्जा का अभी तक पूरा उपयोग नहीं हो पाता था किन्तु लेसर किरणों के माध्यम से यह सम्भव हो सकेगा। जनरल कर्टिलस ई. लियो नामक एक वैज्ञानिक का विश्वास है कि अगले दिनों विमानवेधी तोपें बीते युग की स्मृतियाँ मात्र रह जायेंगी। हल्की-सी लेजरगन ही अपने निशाने पर अचूक बार करेंगी और उसे देखते ही देखते धराशायी कर देंगी। इसकी प्रचण्ड मारक क्षमता के कारण वैज्ञानिकों ने उन्हें 'मृत्युकिरण' का नाम दिया है।

इस प्रकार लेसर किरणों का सदुपयोग जहाँ मनुष्य जाति के लिए वरदान है वहाँ दुरुपयोग अभिशाप भी सिद्ध हो सकता है। यह मनुष्य के ऊपर पूर्णतया निर्भर करता है कि वह किस दिशा में इसका प्रयोग करे ? पिछले दिनों ध्वंस के लिये प्रयुक्त हुई विज्ञान की शक्ति द्वारा मनुष्य जाति ने गँवाया अधिक पाया कम है। विवेकशीलता की माँग है कि मानवी बुद्धि अपनी वर्तमान गतिविधियों पर पुनर्विचार करे और निर्णय ले कि उसे जीना है या मरना ? यदि उसे अपना अस्तित्व सुरक्षित रखना है तो अविलम्ब शक्ति के दुरुपयोग को रोकना और सृजन की ओर मोड़ना होगा। विवेकशीलता और प्रगतिशीलता इसी में सन्निहित है कि बुद्धि के हाथ लगा विज्ञान कल्याणकारी दिशा में लगे।

विश्वशान्ति सृजन प्रयत्नों से ही सम्भव होगी

'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में दिये गये 'यूनाइटेड-नेशन्स एजूकेशनल साइन्टिफिक एण्ड कल्चरल आरगेनाइजेशन' के १९८० के रिर्पोटानुसार विश्व में प्रतिवर्ष एक खरब बहत्तर अरब अठावन करोड़ बीस लाख डालर सैन्य शक्ति एवं अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण में खर्च किया जाता है। यह राशि विश्व की समूची आय का ७.२ प्रतिशत है। प्रतिवर्ष संसार में शिक्षा पर होने वाला व्यय एक खरब उन्नीस अरब है। यह कुल आय का पाँच प्रतिशत है। स्वास्थ्य रक्षा पर खर्च की जाने वाली प्रतिवर्ष की राशि है—५८ अरब ७३ करोड़ ३५ लाख डालर जो कुल आय का २.५ प्रतिशत पड़ता है।

वर्ष १९७० में विभिन्न राष्ट्रों ने सुरक्षा के नाम पर सैन्य शक्ति एवं अस्त्रों के निर्माण में जो राशि व्यय की, उनके आँकड़े इस प्रकार हैं। यू. एस.ए. ७४ अरब ४० करोड़ डालर, यू. एस. एस. आर. ३९ अरब ७७ करोड़ ८० लाख डालर, पश्चिम जर्मनी ६ अरब ११ करोड़ १० लाख डालर, फ्रांस ५ अरब ८७ करोड़ ४० लाख डालर, ब्रिटेन ५ अरब ७१ करोड़ २० लाख डालर, इटली २ अरब ४१ करोड़ ६० लाख डालर, पौलेण्ड २ अरब २२ करोड़ डालर, पूर्वी जर्मनी १ अरब ९९ करोड़ डालर, कनाडा १ अरब ७४ करोड़ १० लाख डालर, चेकोस्लाविया १ अरब ६३ करोड़ ५० लाख डालर, भारत १ अरब ४६ करोड़ ७० लाख डालर, आस्ट्रेलिया वर्ष १९७९ १ अरब २७ करोड़ डालर, यू. ए. आर. १ अरब २७ करोड़ २० लाख डालर, स्वीडन १ अरब १२ करोड़ ९० लाख डालर और इसराइल १ अरब ७ करोड़ ५० लाख डालर। यह उन प्रमुख देशों के आँकड़े हैं जो प्राप्त हो सके हैं। अन्य राष्ट्रों के अप्राप्त हैं। वर्ष १९७१ के नये आँकड़ों के अनुसार सुरक्षा के नाम पर व्यय की जाने वाली कुल राशि १ अरब ७२ अरब ५८ करोड़ २० लाख डालर तक जा पहुँची है।

पाश्चात्य विचारक गिब्बन ने बहुत समय पूर्व कहा था कि मनुष्य को प्रकृति प्रकोपों एवं वन्य हिंसक पशुओं से उतना डरने की आवश्यकता नहीं जितना कि अपने सजातियों से। उनकी यह आशंका अकारण नहीं है। सुरक्षा के नाम पर बढ़ता हुआ खर्च और नित्य नये घातक शस्त्रों का निर्माण इस बात का परिचायक है कि मानवी स्नेह-सौहार्द्र की भावना किस तेजी से लुप्त होती जा रही है। मनुष्य दिन प्रति-दिन हिंसक बनता जा रहा है। शस्त्रों के निर्माण एवं संचय से विश्वव्यापी तनाव बढ़ता जा रहा है और तृतीय विश्वयुद्ध की आशंका और भी प्रबल होती जा रही है।

पिछले युद्धों में मानव जाति ने क्या गँवाया और क्या पाया, इसका लेखा-जोखा लेने पर पता चलता है कि उसने गँवाया ही अधिक है—पाया कुछ नहीं। इस सदी में हुए युद्धों एवं उनमें मारे जाने वाले व्यक्तियों के कुछ आँकड़े इस प्रकार हैं—वर्ष १९०४-५ में रूस और जापान के बीच हुए युद्ध में एक लाख तीस हजार व्यक्ति मारे गये। सन् १९१२-१३ में लड़े गये बाल्कन युद्ध में मरने वालों की संख्या दो लाख थी। स्पेन के गृह-युद्ध १९३२-३९ में चार लाख इक्तीस हजार सैनिक तथा दो लाख पच्चीस हजार गैर सैनिक हताहत हुए। १९५०-५३ के कोरिया युद्ध में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाँच लाख ८१ हजार आठ सौ २३ सैनिक तथा चार लाख गैर सैनिक दिवंगत हुए। सन् १९१४ से १८ तक चलने वाले प्रथम विश्वयुद्ध में मरने वाले सैनिकों की संख्या ४४ लाख १८ हजार तथा गैर सैनिकों की संख्या १३ लाख थी। द्वितीय विश्वयुद्ध १९३९-४५ में बढ़कर यह संख्या क्रमशः १ करोड़ ६९ लाख २३३ हजार तथा तीन करोड़ ४३ लाख ५ हजार तक जा पहुँची। सन् १९६२ से ७५ तक चले वियतनाम युद्ध में कुल मरने वालों की संख्या ४० लाख तक आँकी गई।

मनुष्य ने भौतिक क्षेत्र में जैसे-जैसे प्रगति की है उसी के अनुरूप युद्धों में भी अभिवृद्धि हुई है। उपरोक्त आँकड़े प्रमुख युद्धों के हैं। इनके अतिरिक्त भी छोटे-छोटे अनेकों युद्ध हुए हैं। पिछले सात दशकों में जितने युद्ध हुए हैं—उनकी संख्या इस प्रकार है—सन् १८९८ से १९०७ तक ९, १९०८ से १९१७ तक १५, १९१८ से १९२७ तक ११, सन् १९२८ से १९३७ तक ८, १९३८ से १९४७ तक १२, सन् १९४८ से १९५७ तक २८, सन् १९५८ से १९६७ तक ४५, १९६७ से बाद के ठीक-ठीक आँकड़े प्राप्त नहीं, पर अनुमान है कि इनकी संख्या भी ७० से अधिक होगी।

युद्धों में जनशक्ति ही नहीं विपुल धनशक्ति भी नष्ट होती है। औसतन युद्धों में एक व्यक्ति को मारने के खर्च में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। दो हजार वर्ष पूर्व प्रति व्यक्ति को मारने में लगभग आधा डालर अर्थात् डालर के वर्तमान मूल्य के अनुसार चार रुपये खर्च आता था। नेपोलियन के समय बढ़कर खर्च ३ हजार डालर हो गया। प्रथम विश्वयुद्ध में एक सैनिक को मारने में औसत खर्च २१ हजार डालर हो आया। द्वितीय विश्वयुद्ध में यह खर्च बढ़कर २ लाख डालर हो गया अनुमानतः इस युद्ध में २५० अरब डालर से लेकर ४०० अरब डालर तक खर्च हुए।

यह है अब तक हुए युद्धों में नष्ट हुई जनशक्ति और धनशक्ति का इतिहास, जो विचारशील कहे जाने वाले मनुष्य को सबक देने के लिए पर्याप्त है। इन दिनों की परिस्थितियाँ तो और भी अधिक भयावह हैं। पिछले दिनों यन्त्रों की दुनिया में इतना विकास नहीं हुआ था। आज जैसे विनाशकारी परमाणु बम नहीं थे। यदि युद्ध छिड़ता है तो मनुष्य जाति अपना अस्तित्व सुरक्षित भी रख सकेगी अथवा नहीं, इसमें सन्देह है। सम्पूर्ण सभ्यता को रौंदने के लिए कुछ मिनट ही पर्याप्त होंगे।

इतिहास के पन्ने पलटने पर पता लगता है कि अपने प्रयत्न, पुरुषार्थ से अनेकों ने शक्ति अर्जित की किन्तु समाज एवं राष्ट्र अथवा मानव मात्र को कुछ दे सकने में वे ही समर्थ हो सके। जिन्होंने इसका सदुपयोग किया, सृजन के कार्यों में लगाया, सदुपयोग के लिए नियोजित शक्ति की पूजा अर्जना की। भारतीय संस्कृति ने राम की, कृष्ण, बुद्ध, दुर्गा की उपासना पर बल दिया। शक्ति तो रावण, कंस, हिरण्यकश्यप को भी प्राप्त थी किन्तु अत्याचार, हिंसा, अनैतिकता को बढ़ावा देने में प्रयुक्त उनकी सामर्थ्य का तिरस्कार किया गया। उनके पुतले जलाये गये। हिटलर, नेंपोलियन, सिकन्दर, मुसोलिनी की सामर्थ्य कितनी बढ़ी-चढ़ी थी, उसे हर कोई जानता है। किन्तु उन्होंने विश्व में कितना कहर ढाया, इसे भी सभी जानते हैं। उनके कुकृत्यों की गवाही इतिहास के पन्ने सदा देते रहेंगे। जहाँ इनके कुकृत्यों ने समाज को पतन की ओर घसीटा वहीं महापुरुषों के योगदान से समाज पुष्पित, पल्लवित हुआ। सुख-शान्ति की वृद्धि हुई। मानव समाज का मस्तक उनकी श्रेष्ठता के प्रति झुंक जाता है। प्रकाश स्रोत के समान उनके त्याग-बलिदान सदा प्रेरणा देते रहेंगे।

शरीर बल, बुद्धि से कम महत्व धन का भी नहीं है। सृजनात्मक दिशा में इसका प्रयोग सुख-शान्ति की अभिवृद्धि में अपना योगदान दे सकता है। पिछले दिनों मनुष्य ने सम्पत्ति का जितना सुदपयोग किया, उससे कहीं अधिक दुरुपयोग किया। सृजन की अपेक्षा ध्वंस कार्यों में अधिक लगाया गया। फलस्वरूप साधनों का उपयोग सुख-शान्ति के विकास में किया जा सकता था, उसका एक बड़ा भाग ध्वंस में प्रयुक्त किया जा रहा है। कुछ दिनों पूर्व रूमानिया के विशेषज्ञों की रिपोर्ट में किये गये उस खोज का विवरण दिया गया कि विध्वंसक यन्त्रों में सम्पत्ति का कितना बड़ा भाग नियोजित हो रहा है। विशेषज्ञों के अनुसार विश्व में औसतन एक मिनट में दस लाख डालर (८० लाख रुपये) हथियारों के निर्माण में खर्च किये जाते हैं। इस धन से पाँच हजार टन गेहूँ या चार हजार टन दूध प्राप्त किया जा सकता है। इससे लाखों व्यक्तियों को रोटी तथा करोड़ों बच्चे जो दूध के अभाव में कुपोषण के शिकार हो रहे हैं, उनको पोषक आहार मिल सकता है।

इस प्रकार मात्र एक मिनट शस्त्रास्त्रों का निर्माण रोक दिया जाय तो उसकी बचत से एक सौ परिवारों की आजीविका की व्यवस्था की जा सकती है। छोटे-छोटे तीन सौ मकान बनाये जा सकते हैं, जिनमें गरीबों के लिए निवास की व्यवस्था हो सकती है। एक सामान्य रायफल बनाने में २५०० रुपये खर्च होते हैं, इससे एक आधुनिक हल तैयार हो सकता है एवं मशीनगन पर १२००० रुपये की लागत आती है जिससे एक ट्रैक्टर बनाया जा सकता है। यह युद्ध बमवार बनाने में ७२ करोड़ रुपये खर्च होते हैं। इस धन से आधुनिक चिकित्सा यन्त्रों से सुसज्जित १६ अस्पताल खोले जा सकते हैं। रोग निवारण एवं स्वास्थ्य सम्वर्धन का लाखों व्यक्ति इससे लाभ प्राप्त कर सकते हैं। बारह अरब रुपये में एक पनडुब्बी बनती है। इससे शिक्षा प्रदान करने के लिए दस हजार विद्यालय चल सकते हैं।

एक मिनट में ८० लाख रुपये पूरे विश्व में संहारक यन्त्रों के लिए नष्ट किये जाते हैं। एक दिन में ११५२०० लाख रुपये, तथा एक माह में ३४५६००० लाख रुपये का अपव्यय विनाशकारी यन्त्रों के लिए किया जाता है। १ वर्ष का हिसाब जोड़ा जाय तो यह संख्या ४१४७२००० लाख रुपये तक जा पहुँचती है। यह संख्या चौंकाने के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर्याप्त है। इस पूँजी में कितनी योजनायें बन सकती हैं। लाखों छोटे-छोटे उद्योग खड़े किये जा सकते हैं। अरबों व्यक्तियों को रोजी-रोटी मिल सकती है। अभाव, दुःख-क्लेश का साम्राज्य सारे विश्व में छाया हुआ है, उसके निवारण में इस पूँजी को लगाया जा सके तो कुछ ही वर्षों में सारे संसार से अभाव को समाप्त किया जा सकता है।

यह खर्चा तो अभी उन संहारक यन्त्रों पर किया जाता है जो युद्ध के लिए प्रत्यक्ष रूप से प्रयुक्त होते हैं परोक्ष मारक यन्त्रों में मादक द्रव्य, शराब, सिगरेट भी कम घातक नहीं। इसके उत्पादन में बहुत बड़ी पूँजी लगी है। भारत में तम्बाकू उद्योग में लगभग ४१ अरब ६ करोड़ ४० लाख की पूँजी लगी है। अनुमान किया गया है कि भारत में लगभग १० करोड़ व्यक्ति बीड़ी-सिगरेट पीते हैं। इस प्रकार प्रतिवर्ष करीब ७२० करोड़ रुपये की राष्ट्रीय क्षति उठानी पड़ती है। शराब उद्योग में तो और भी अधिक पूँजी लगी है। यदि प्रतिवर्ष होने वाली शराब की क्षति को बीड़ी-सिगरेट से होने वाली क्षति के बराबर ही माना जाय तो यह पूँजी १४४० करोड़ तक जा पहुँचती है।

प्रत्यक्ष एवं परोक्ष ध्वंस के प्रति मानवी उत्साह उसे विनाश के कगार पर घसीटता ले जा रहा है। बढ़ते हुए कदम यह बताते हैं कि सृजन से मनुष्य कितना विमुख होता जा रहा है। धनशक्ति के इस बढ़े भाग का यदि दुरुपयोग रोका जा सके तथा इसका उपयोग संसार में फैले दुःख-क्लेश के निवारण में किया जा सके तो अच्छा है।

संसार में १५० करोड़ से अधिक मनुष्य ऐसे हैं जिनकी आय ५०० रु. वार्षिक से भी कम है। मात्र ४० रु. मासिक पर निर्वाह करने वाली जनता में आधी ऐसी है जिसका औसत और भी गया गुजरा है। उन्हें भरपेट रोटी और तन ढकने को कपड़ा जीवन में कभी-कभी ही मिल पाता है। अधिकतर तो आधा पेट खाकर ही किसी प्रकार सोते हैं और फटे चिथड़ों में अपनी लाज ढकते हैं।

दरिद्रता निवारण के लिए क्या कुछ नहीं किया जा सकता ? क्या इस दिशा में सहयोग देने में सचमुच ही लोग असमर्थ हैं। उक्त विशेषज्ञों का कहना है कि प्रगति और वर्चस्व का दावा करने वाले दो बड़े राष्ट्र रूस और अमेरिका मिल-जुलकर ही यदि कुछ काम करें तो बहुत कुछ हो सकता है। इन दोनों राष्ट्रों में जितनी धनशक्ति एवं जनशक्ति युद्ध कार्यों में लगी है, उसे यदि पीड़ित मानवता को ऊँचा उठाने में लगा दिया जाय तो उन पौने दो करोड़ व्यक्तियों की आमदनी कुछ माह के अन्दर ही ठीक दूनी हो सकती है। ५०० रुपये वार्षिक के स्थान पर १००० रु. वार्षिक प्राप्त करने लगेंगे। दरिद्र स्थिति से उठकर सामान्य जीवनयापन की आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त कर सकते हैं।

इन धन का सदुपयोग यदि दूसरे वर्ष मकान निर्माण में किया जाय तो लगभग २० करोड़ मनुष्यों के रहने के लिये नये मकान प्राप्त हो सकते हैं जो आज वन्य पशुओं के समान जीवनयापन कर रहे हैं। प्रथम वर्ष मकान, द्वितीय वर्ष गृह-उद्योग, तृतीय में शिक्षा, चौथे में स्वास्थ्य, पाँचवें में बिजली, बाँध, यातायात, संसार की योजनाएँ बनाई जायँ तो पहले पंचवर्षीय योजना में ही पौने दो अरब अर्थात् लगभग आधी दुनिया के व्यक्तियों का भाग्य पलट सकता है, इतना तो रूस और अमेरिका जैसे राष्ट्र अकेले कर सकते हैं। फिर यदि संसार के अन्य देश इस दिशा में कदम बढ़ाने लगें तो समझना चाहिए कि पिछड़ी हुई दुनिया का अन्त ही हो जायेगा। पीड़ा, पतन का दृश्य कहीं नहीं दिखाई देगा।

ध्वंस की प्रतिक्रिया एवं परिणामों से हर कोई परिचित है। यह जानते हुए भी सृष्टि का मुकुटमणि कहलाने वाला मनुष्य ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों की ओर निरन्तर बढ़ता जा रहा है। प्रत्येक राष्ट्र में घातक शस्त्रों के निर्माण की होड़-सी चल पड़ी है। प्रगति का मापदण्ड तथाकथित विचारशील व्यक्तियों द्वारा इस आधार पर लगाया जा रहा है कि कौन राष्ट्र कितने विनाशक यन्त्र का निर्माण कर सकता है अथवा कर चुका है। बुद्धि का दम्भ भरने वाला मनुष्य प्रगतिशील होने का दावा यदि इस आधार पर करता है कि हमने अधिक विनाशक यन्त्रों का निर्माण कर लिया अथवा कर रहे हैं तो यह कहना होगा कि आज विकसित कहे जाने वाले मनुष्य की अपेक्षा पाषाण युग की आदिम जातियाँ अधिक प्रगतिशील थीं। जीव-जन्तु जो अधिक हिंसक हैं वे अधिक प्रगतिशील कहे जायेंगे।

मापदण्ड का आधार यदि यही रहा तो सारी परिभाषाएँ उलट जायेंगी। संस्कृति, सभ्यता का मानवी आधार विश्रृंखलित हो जायेगा। सोचने का क्रम यदि यही रहा तो फिर पुरानी मान्यताएँ भी बदल जायेंगी। राम के स्थान पर रावण की पूजा होगी। हिटलर, नैपोलियन ही मानव के आदर्श होंगे। इस विभीषिका की कल्पना मात्र से हृदय काँप उठता है।

आवश्यकता इस बात की है कि सृजन का महत्व समझा जाय। ध्वंस के लिए प्रयुक्त हो रही विपुल सम्पत्ति को रोका जाय। संसार में फैली हुई दरिद्रता, रोग-क्लेश निवारण के लिए उसका प्रयोग किया जाय। मनुष्य की विचारशीलता एवं श्रेष्ठता इसमें ही निहित है।

विश्व-राज्य की कल्याणकारी योजना

"जातीय या राष्ट्रीय पक्षपात केवल धोखा और स्पष्ट भ्रम है, क्योंकि ईश्वर ने हम सबको एक ही जाति में उत्पन्न किया है। आरम्भ में भिन्न-भिन्न भू-प्रदेशों की न कोई परिधि थी और न उनकी कोई सीमा रेखा थी। कोई जाति किसी भू-प्रदेश की विशेष स्वामिनी न थी, ईश्वर की दृष्टि में विविध जातियों में कोई भेदभाव न था। फिर मनुष्य इस प्रकार के पक्षपातों के शिकार किसलिये बनते हैं ? ऐसे धोखे के कारण उत्पन्न हुये युद्ध को हम कैसे जारी रख सकते हैं ? ईश्वर ने मनुष्यों को इसलिये उत्पन्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं किया है वह एक दूसरे का विनाश करते रहें। प्रत्येक जाति, वंश और सम्प्रदाय अपने स्वर्ग स्थित पिता के प्रसाद का एक-सा भाग प्राप्त करते हैं। . . . . . पिछले समयों में कहा जाता था कि अपने देश से प्रेम रखना ही धर्म या विश्वास है परन्तु अब ईश्वरीय आदेश के आधार पर हम कहते हैं कि उस मनुष्य का विशेष महत्व नहीं जो केवल अपने देश से प्रेम रखता है, बल्कि महिमा के योग्य वह आदमी है जो सारे संसार से प्रेम रखता है।"

इन शब्दों में एक मानवतावादी सन्त ने संसार के ऊपर छाये हुये भयंकर संकट और उसको दूर करने का उपाय प्रकट कर दिया है। यद्यपि भारतवर्ष में अभी पचास वर्ष पहले हम 'स्वदेश-प्रेम' के श्रद्धायुक्त गाने गा चुके हैं, पर तब भी हमारा उद्देश्य यह नहीं था कि हम दूसरे देशों से घृणा करें या उनको अपनी जन्मजात शत्रु मान लें। इसके विपरीत हमारे स्वाधीनता-संग्राम के संचालक महात्मा गाँधी ने सदा यही कहा है कि "हम अँग्रेज जाति या इंग्लैण्ड से कभी द्वेष या घृणा नहीं कर सकते, क्योंकि उसने हमको ऐसे अनेक नर-रत्न दिये हैं जिन्होंने संसार की सेवा करने में, उसे उन्नत बनाने में, मानवीय जान की वृद्धि करने में अपना जीवन-अर्पण कर दिया है। हम भी उससे लाभ उठाकर आज प्रगति-पथ पर अग्रसर होने में समर्थ हो रहे हैं।"

महात्माजी की यह मनोवृत्ति कोई नवीन या निराली न थी, वरन् भारतीय आदर्श सदा से यही रहा था। जिस जाति ने हजारों वर्ष पहले 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का जयघोष किया, जिसने 'चक्रवर्ती' पदवी प्राप्त करके किसी राष्ट्र या जाति को मिटाने का दुराग्रह नहीं किया, जिससे आक्रमणकारी विदेशियों को भी शान्ति स्थापना हो जाने के बाद अपने में सम्मिलित कर लिया, वह जातीय-घृणा की समर्थक कैसे हो सकती थी ? यद्यपि भारतवासियों को पिछले हजार वर्षों में विदेशी शासन के कारण बहुत-से कष्ट और हानि सहन करनी पड़ी, वह उसने अपने इस प्राचीन आदर्श की अवहेलना न की। अब भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही वह लगातार विश्व-शान्ति, संसार के समस्त राष्ट्रों के संगठन तथा सब में अधिकाधिक सहयोग के लिये प्रयत्नशील रहा है।

विश्व-प्रेम और स्वदेश प्रेम में एक्य—यद्यपि कुछ संकीर्ण विचारों के अदूरदर्शी और कट्टरपंथी व्यक्ति इस मानवोचित विचारधारा के महत्व को न समझकर साम्प्रदायिकता, राजनीतिक दलबन्दी, पृथकतावाद, फूट तथा द्वेष के ही गीत गाते रहते हैं और विश्व-शान्ति के अनुयाइयों को कल्पना लोक में विचरण करने वाला अथवा जीवन-संग्राम से भयभीत होने वाला बतलाते हैं। पर हम इसके लिये भी उनकी निन्दा नहीं करते। मतभेद का रहना स्वाभाविक ही है और सब लोग एक साथ किसी उच्च-आदर्श का पालन करने को तैयार भी नहीं हो सकते। फिर भी हममें और उनमें कोई बड़ा अन्तर नहीं है। विश्व-समाज में विश्वास रखने का यह अर्थ नहीं कि हम अपने देश की सेवा और हित कामना करने से विमुख हो जायें। हमारा देश भी विश्व का एक अंग है, इसलिये यह कैसे सम्भव है कि हम विश्व-सेवा का दावा करते हुये अपने देश की सेवा न करें। वरन् हममें से अधिकांश को ऐसी परिस्थितियाँ प्राप्त होने की कोई सम्भावना नहीं जबकि हम विदेश जाकर विश्व-व्यापी समस्याओं के समाधान में प्रत्यक्ष भाग ले सकने में समर्थ हो सकें। ऐसी दशा में हमारा सेवा-क्षेत्र प्रायः अपना देश ही रहेगा और हम अपने निकटवर्ती व्यक्तियों की सेवा करके ही विश्व-सेवा के आदर्श में भागीदार बन सकेंगे।

यह आध्यात्मिक मार्ग की बहुत बड़ी विशेषता है। कर्म के समान होने पर भी फल हमारी मनोवृत्ति के अनुसार अच्छा या बुरा होगा। जब हम लूटमार के अभिलाषी किसी आक्रमणकारी के विरुद्ध युद्ध करते हैं, तो प्रकट में दोनों पक्षों के सैनिकों की स्थिति एक सी होती है, दोनों ही शस्त्रों का प्रयोग करके एक-दूसरे को मारने का प्रयत्न करते हैं, पर मनोवृत्ति में अन्तर होने से एक आततायी और दूसरा न्याय रक्षा के लिये बलिदानी कहा जाता है इसलिये हमारा आग्रह यही है कि अपने देश के सच्चे सेवक रहते हुये आप 'विश्व-मानव' के महत्व को भी समझिये। हम भारतवासी तो 'भगवत् गीता' के सिद्धान्तों के अनुयायी हैं जिसमें भगवान् ने विराट रूप दिखलाकर यह बतला दिया है कि समस्त संसार वास्तव में एक ही स्रोत से उत्पन्न हुआ है और इसमें भिन्नता, अन्तर का भाव रखना अज्ञान है। भगवान् तो जड़ और चेतन के बीच भी एकता, प्रेम-भाव रखने का उपदेश देते हैं, फिर अगर हम मनुष्य मात्र को अपना भाई मानकर विश्व-निर्माण में भाग लें, उसका समर्थन करें तो इसमें 'सनक' की क्या बात हो सकती है ?

संसार का विभाजन कृत्रिम है—जैसा आरम्भ में कहा जा चुका है वर्तमान समय में राष्ट्रों का जो विभाजन हम देख रहे हैं वह कृत्रिम है। जब सृष्टि का आरम्भ हुआ अथवा जब से मानव जाति पृथ्वी पर निवास करने लगी, तब विभिन्न देशों की कोई सीमा नियत थी, न कोई जाति किसी विशेष भू-खण्ड की अधिकारी मानी जाती थी। वरन् जब तक कृषि की जानकारी और भली प्रकार प्रचलन न हो गया तब तक मनुष्य स्वयं ही एक स्थान पर घर बनाकर नहीं रहते थे, वरन् जहाँ जब सुविधा देखते थे वहीं रहने लगते थे। जब वहाँ किसी तरह की असुविधा होते देखते या कहीं उससे अधिक सुविधा वाले स्थान को पा जाते तो स्थान परिवर्तन कर लेते थे और इसके लिये सैकड़ों मील की यात्रायें करते थे। इस आवागमन में विभिन्न मनुष्य समुदाय एक-दूसरे से मिल भी जाते थे और कभी दो-चार टुकड़ों में भी बँट जाते थे। इस कारण उस समय मनुष्य जाति एक ही मानी जाती थी और उसका नेता 'मनु' कहा जाता था। संसार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के सबसे पुराने ग्रन्थ माने जाने वाले वेद में, जो आदिकालीन मानव-सभ्यता का हजारों वर्ष पुराना एकमात्र लिखित विवरण है, कहा है—

समानोमन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ।।
समानी व आकूति समानां हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा सुसहासित ।।

—ऋग्वेद १०-१२-१९१

अर्थात्—"सब मनुष्यों का हार्दिक भाव, संगठन, विचार, चित्त एक समान हों और ये सब एक ही उद्देश्य से प्रेरित होकर कर्म करें। तुम्हारे व्यवहार, हृदय, मन में एकता रहे और युग एकमत होकर सुदृढ़ सहयोग तथा संगठनपूर्वक रहो।"

इसमें किसी विशेष जाति, वर्ण अथवा मजहब का उल्लेख नहीं है। उस समय मनुष्यों में इस प्रकार के अन्तर उत्पन्न भी नहीं हुये थे। यद्यपि उस समय भी कभी-कभी खाद्य सामग्री अथवा अन्य प्रकार की सुविधाओं के लिये दो अपरिचित समुदायों के मुठभेड़ हो जाती थी और वे पत्थर, लकड़ी आदि से लड़ भी लेते थे, पर कोई किसी को नीचा, असभ्य, पतित, बहिष्कृत नहीं समझता था। ये सब 'मनुष्य' ही और सामान्य अवस्था में एक-दूसरे के साथ समानता का ही बर्ताव करते थे।

इतना ही नहीं यहाँ के अनेक मनीषियों की भावना यहाँ तक थी कि जब हम परमात्मा के अंश हैं—उसके सन्तान रूप में हैं तो हम किसी एक स्थान अथवा किसी विशेष समुदाय से बँधकर कैसे रह सकते हैं ? इसलिये उनके अन्तरतम् से यह यह ध्वनि निकलती थी—

माता च पार्वती-गौरी पिता देवो महेश्वरः ।
भ्रातरो मानवाः सर्वे स्वदेशो भुवनत्रयम् ।।

निस्सन्देह भावना की यह बहुत ऊँची उड़ान है। पर भारतीय संन्यासी का यही आदर्श है कि वह किसी भी वस्तु, स्थान व व्यक्ति में अपनी आसक्ति न रहने दें। उसके लिये आज्ञा दी गई है कि जंगल में भी कभी एक पेड़ के नीचे दो रात न सोवे। ऐसे सर्वत्यागियों के लिये तीनों लोक घर के समान हों तो क्या आश्चर्य है ? वैसे भी प्रत्येक आस्तिक ईश्वरभक्त के लिये यह आदर्श सदैव स्मरण करने योग्य है।

पर सभ्यता और सम्पत्ति की वृद्धि के साथ दुनिया में अधिकार लिप्सा और बँटवारे की प्रवृत्ति बढ़ती गई और लोग अपने अधिकार क्षेत्र के चारों ओर दीवारें खड़ी करने लगे। उनमें से हर एक की यह अभिलाषा रहती है कि मेरा इलाका (अधिकार क्षेत्र) दूसरों से बड़ा हो जाय और इसके लिये वह अकारण दूसरों पर आक्रमण और लूटमार की प्रवृत्ति को अपनाता रहता है। यही आजकल के युद्धों का कारण है। आज इसने बहुत विशाल तथा जटिल रूप धारण कर लिया है, जिसके कारण संसार भर में एक अभूतपूर्व हलचल और आतंक का दृश्य दिखलाई पड़ रहा है। इस प्रकार के युद्ध की भयंकरता और अनैतिकता का वर्णन करते हुये विश्व-शान्ति के एक महान उपासक ने कहा है—

"मुझे यह जानकर आश्चर्य होता है कि मनुष्यों में अभी तक यह राक्षसपन विद्यमान है। अन्यथा यह कैसे सम्भव हो सकता है कि मनुष्य प्रातःकाल से सायंकाल तक लड़ाई करते जायें, एक-दूसरे की हत्या करें और अपनी जाति-भाइयों का खून बहायें और वह भी किसलिये ? केवल किसी जमीन के टुकड़े को अपने अधिकार में करने के लिए। पशु भी जब लड़ते हैं, तो उनकी लड़ाई का कोई न कोई पूर्ववर्ती उचित कारण होता है। यह कैसी भयंकर बात है कि मनुष्य, जो उच्चतर ज्ञान-शब्द के अधिकारी हैं, एक भूखण्ड की प्राप्ति के निमित्त अपने ही मानव-भाइयों को मार डालने या पददलित करने पर उतर आयें, इतनी उच्च श्रेणी का प्राणी भूमि जैसी छोटी-सी वस्तु प्राप्त करने के लिए लड़ाई करे।"

"भूमि किसी एक की नहीं बल्कि सबकी है। भूमि मनुष्य का घर नहीं, यह तो उसका समाधि-स्थान है। मनुष्य कितना ही महान् विजयी क्यों न हो, कितने ही देशों को अपने आधीन क्यों न करले, पर वह इन विध्वंस किये भू-प्रदेशों में से किसी एक को पूर्ण रूप से अपने अधिकार में नहीं रख सकता, सिवाय उस छोटे से टुकड़े के जहाँ पर उसकी समाधि बनाई जाती है। युद्ध तो मनुष्य ने अपनी वासना को तृप्त करने के लिये बनाया है। केवल थोड़े से व्यक्तियों की वासना की पूर्ति के लिये अनगिनती घर बरबाद किये जाते हैं और हजारों-लाखों स्त्री-पुरुषों के हृदय टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते हैं।"

जब से अणुशक्ति का अस्त्र के रूप में प्रयोग करने का आविष्कार हो गया है तब से तो यह अवस्था बहुत ही गम्भीर हो उठी है। अब तक युद्धों के फलस्वरूप यदि हजारों या लाखों मनुष्यों के मरने की सम्भावना रहती थी तो अब एक ही घण्टे में दस-बीस करोड़ के मरने या पूरे देश के नष्ट हो जाने की कल्पना किसी भी समय सत्य सिद्ध हो जाना सम्भव हो गया है। जब से यह खतरा उत्पन्न हुआ है तब से एक विश्व-राज्य और विश्व-समाज की माँग बहुत अधिक जोर पकड़ गई है। अब सभी समझदार व्यक्ति चाहे वे किसी भी देश और धर्म के क्यों न हों यह अनुभव करने लगे हैं कि जब विज्ञान ने मनुष्य के हाथ में इतनी बड़ी शक्ति दे दी है तब उसका कल्याण इसी में है कि पृथक् जातीयता और राष्ट्रीयता के भेदों को मिटाकर एक संघ-शासन को ही समस्त पृथ्वी की शासन-व्यवस्था सौंप दी जाय। अन्यथा यदि किसी युद्धोन्मादी ने सच्चे या झूठे बहाने से अणु-अस्त्र से आक्रमण आरम्भ कर दिया तो २४ घण्टे के भीतर ही इस हरी-भरी धरती का अधिकांश भाग श्मशान में परिणत हो जायेगा। इस सम्बन्ध में वास्तविक स्थिति क्या है ? इसका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ परिचय श्रीमती कैथलिन लॉसडेल ने अपनी "क्या विश्व-शान्ति सम्भव है ?" नामक पुस्तक में इन शब्दों में दिया है—

"यदि भविष्य में परमाणु तथा उदजन अस्त्रों से सुसज्ज संसार में कोई सिरफिरा आक्रमणकारी हो जाये तो वह संसार को और उसके साथ-साथ अपने राष्ट्र को भी नष्ट कर देगा और उसे किसी चमत्कार के सिवा और कोई ऐसा करने से न रोक सकेगा। ऐसा होने पर परमात्मा ही हमारी रक्षा करे। निरस्त्र संसर में ऐसा नहीं हो सकता। ऐसे सिर-फिरे लोग शस्त्रों से सुसज्जित संसार में ही पैदा होते हैं। यदि भविष्य में आणविक युद्ध होगा तो अधिक सम्भव यही है कि उसका सूत्रपात भय की भावना करेगी।"

इसलिये संसार के हितैषी और शान्ति के अनुयायी वर्षों से यह प्रचार कर रहे हैं कि संसार में भिन्न-भिन्न शासनों की जगह एक केन्द्रीय शासन—विश्व-सरकार की स्थापना की जाय, जो समस्त देशों में समन्वय बनाये रखे और जो उल्टे रास्ते पर चलता दिखाई दे उसको तुरन्त रोक दे। योरोपियन लेखकों ने तो ऐसी सैकड़ों स्कीमें तैयार की हैं, जिनमें से कुछ काल्पनिक और कुछ यथार्थवादी हैं। पर हम इतना बतला देना चाहते हैं कि संसार में सैकड़ों भिन्न-भिन्न परस्पर विरोधी शासकों के होने से किसी भी देश की जनता का जरा भी लाभ नहीं है, वरन् सब तरह से हानि ही हानि है। यह बात इतनी स्पष्ट है कि राजनीतिज्ञ भी जो इस पारस्परिक तनाव के अधिकांश में जिम्मेदार हैं, इसकी सच्चाई को स्वीकार करते हैं और उन्होंने दो बार बहुत कुछ उद्योग और व्यय करके इसको कार्य रूप में परिणत करने का प्रयत्न भी किया है।

प्रथम योरोपीय महायुद्ध के समाप्त होने पर सन् १९१९ में 'लीग ऑफ नेशन्स' (राष्ट्र संघ) की स्थापना की गई, जो अनेकों वर्ष तक लिखा-पढ़ी करके शान्ति स्थापना का प्रयत्न करती रही। फिर द्वितीय महायुद्ध के कारण जब उसका अन्त हो गया तो १९४६-४७ के लगभग संयुक्त राष्ट्र संघ (यू. एन. ओ.) का निर्माण किया गया, जिसके अधिवेशन न्यूयार्क (अमरीका) में बराबर होते रहते हैं और जो अपनी शक्ति और परिस्थिति के अनुसार संसार के सभी भागों में युद्धों को रोकने का प्रयत्न करती रहती है। पर जब प्रमुख राष्ट्रों का प्रश्न आ जाता है तो यह असमर्थ सिद्ध होती है। जैसे वीयतनाम में अमरीका लड़ रहा था तो वहाँ बार-बार प्रस्ताव करने पर भी इसका प्रभाव नहीं पड़ता था। इसी प्रकार पिछले दिनों इजराइल और अरब राष्ट्रों के संघर्ष में मिश्र के राष्ट्रपति नासिर के इन्कार कर देने पर उसकी शान्तिरक्षक सेना को हट जाना पड़ा था।

अब अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और भी अधिक खतरनाक होती जा रही है और युद्ध की तैयारी इतनी अधिक हो गई है कि यदि किसी दिन प्रातःकाल सोकर उठने पर यह सुनने में आवे कि रात के दस पाँच घण्टों के भीतर ही संसार के सौ-पचास करोड़ व्यक्ति समाप्त हो गये और बड़ी-बड़ी राजधानियाँ भस्म हो गई हैं, तो भी यह असम्भव नहीं है। जब युद्धों के संचालक-सेनानायक खुलकर कहते हैं कि हमारे राकेटों का निशाना संसार की महत्वपूर्ण राजधानियों की तरफ लगा हुआ है और दस मिनट के भीतर परमाणु बमों को हजारों मील के फासले पर बसे नगरों तक पहुँचाया जा सकता है तो दो-एक दिन में ही वर्तमान मानव सभ्यता का सर्वनाश या अर्द्धनाश हो जाने में क्या आश्चर्य है ?

हथियारों की दौड़ और राष्ट्रनायकों के दुराग्रह को देखकर विश्व बन्धुत्व के उपासक वर्षों पहले से सब राष्ट्रों के संचालकों से पारस्परिक प्रतिस्पर्धा तथा मतभेद मिटा कर एक विश्व संगठन बनाने की अपील कर रहे हैं। महात्मा बहा द्वारा इस सम्बन्ध में सबसे पहले प्रयत्न किया गया और अब से सौ वर्ष पहले भविष्यवाणी के रूप में संसार के शासकों को चेतावनी दी गई कि यदि वे राष्ट्रीय भेदभावों को बढ़ते रहने देंगे तो अन्त में सबका नाश अवश्यम्भावी है। अब से पचास वर्ष पहले भी बंगाल के ठाकुर दयानन्द ने जिन्होंने विश्व-प्रेम का प्रसार करने के लिये 'अरुणाचल मिशन' की स्थापना की थी, प्रथम महायुद्ध के समाप्त हो जाने पर पेरिस की 'पीस कान्फ्रेन्स' (शान्ति परिषद्) के पास तार द्वारा एक अपील भेजी थी जिसमें 'विश्व राज्य' की योजना की संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार बतलाई गई थी—

"प्रत्येक देश के निवासी कुछ वर्षों के लिये अपने में से एक व्यक्ति को राष्ट्रपति चुन लें, जो एक परिषद् की सहायता से वहाँ की व्यवस्था करे और ये विभिन्न देशों के राष्ट्रपति मिलकर अपने में से एक 'प्रमुख-राष्ट्रपति' चुनलें जो एक मन्त्रिमण्डल के द्वारा समस्त राष्ट्रों के कार्य का निरीक्षण करता रहे। ये मन्त्री भी विभिन्न राष्ट्रों द्वारा भेजे गये प्रतिनिधि ही होंगे। यह विश्व-शासन सभा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में विभिन्न देशों की कार्यवाहियों का समन्वय करती रहेगी ? जिससे सब अपना विकास और वृद्धि करते रह सकें और कोई किसी से अनुचित लाभ न उठा सके।

"ये सब राष्ट्रपति और प्रमुख-राष्ट्रपति अपने को प्रजा का प्रतिनिधि, भगवान् का सेवक समझेंगे और समस्त देशों के निवासियों को अपने भाई की तरह मानेंगे। वे जनता तथा भगवान् के सम्मुख अपने को संसार की शान्ति, खुशहाली और प्रगति के लिये उत्तरदायी समझेंगे।"

ठाकुर दयानन्द ने इस स्कीम को संसार के समस्त शासकों, प्रसिद्ध नेताओं और समाचार-पत्रों के पास भी भेजा। कहीं-कहीं इसकी चर्चा हुई, पर सत्ता के भूखे राज-नेता अपने रास्ते पर ही चलते रहे।

नये संसार की रचना अनिवार्य

आज प्रायः विश्वभर के मनीषी एक स्वर में कहते हैं कि मैं इसी दुनिया में एक ऐसे नये संसार का दर्शन करना चाहता हूँ, जिसमें न साम्राज्यवाद हो, न पूँजीवाद, न धर्म के झगड़े हों, न जाति के, न धन की महत्ता हो न पशु-बल की। सारी दुनिया एक राष्ट्र हो, मनुष्य-मात्र की एक जाति हो, नर-नारी का अधिकार और मान समान हो,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्य ही ईश्वर हो, विवेक ही शास्त्र हो। सारे विश्व का एक कुटुम्ब हो, एक ही जायदाद सब की जायदाद हो, कोई गरीब न हो। सभ्य समाज के द्वारा मैं ऐसे ही नये संसार की तरफ इस दुनिया को ले जाना चाहता हूँ।"

इस योजना के अनुसार विश्व-राष्ट्र-शासन की इकाई ग्राम पंचायत स्तर की होगी और उस चुनाव में ग्राम का प्रत्येक व्यक्ति मत देगा। कोई उम्मीदवार स्वयं खड़ा नहीं हो सकता, वरन् कम से कम पचास मतदाता हस्ताक्षर करके किसी को खड़ा कर सकते हैं। चुनाव में किसी को प्रचार करने की आज्ञा नहीं होगी। इस तरह के प्रतिनिधियों की पंचायत गाँव का हिसाब-किताब, साधारण झगड़ों का निपटारा, वाचनालय, स्कूल, सफाई आदि व्यवस्था का कार्य करेगी। इसी प्रकार जिले की पंचायत और प्रान्त की पंचायत का चुनाव भी सभी वयस्क मतदाताओं द्वारा किया जायेगा, पर राष्ट्र की पंचायत का चुनाव प्रान्तों की पंचायतों द्वारा होगा और समस्त राष्ट्र पंचायतें मिलकर विश्व-संघ का निर्माण करेंगी।

'विश्व संघ का कार्य विश्व-न्यायालय, अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस, अन्तर्राष्ट्रीय यातायात, सब समुद्री स्टेशनों का प्रबन्ध, सोना, चाँदी, लोहा, कोयला, तेल आदि की खानों का प्रबन्ध, अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन आदि होगा। राष्ट्रीय पंचायत के हाथ में राष्ट्रीय न्यायालय, राष्ट्रीय पुलिस, अन्तर्प्रान्तीय यातायात और लेन-देन आदि होगा। प्रान्तीय पंचायत में प्रान्त से सम्बन्ध रखने वाले सब विषय होंगे और यही बात जिला पंचायतों के सम्बन्ध में समझनी चाहिए।"

यह कुछ लोगों के विचारों के नमूने हैं। इसका आशय इतना ही है कि दुनिया में फैले हुए दोषों और उनके कारण होने वाली निर्दोष लोगों की दुर्दशा को देख कर सभी विचारशील लोगों का ध्यान किसी नये परिवर्तन की तरफ आकर्षित हो रहा है। इस समय संसार ज्ञान-विज्ञान में उन्नति करके उत्पादन को इतना बढ़ा चुका है कि यदि न्याय और बुद्धि से समाज की व्यवस्था की जाय तो सभी लोग काफी सुख से जीवन व्यतीत कर सकते हैं। पर व्यवहार में इसका उल्टा परिणाम देखने में आ रहा है। गरीब और अभावग्रस्त लोग ही नहीं इस समय साधन सम्पन्न लोग भी बहुत कम सुखी हैं और सच भी यह है कि जब गाँव और शहर, छोटे और बड़े, मूर्ख और विद्वान् सबमें स्वार्थ-भावना ही अधिकाधिक व्याप्त हो रही है, तो कोई कैसे सुखी हो सकता है ? आजकल प्रतिदिन युद्ध की तैयारियाँ और अशान्ति फैलने की जो खबरें आती रहती हैं और अणु अस्त्रों का आतंक फैलाया जा रहा है, उससे लोगों की मानसिक अवस्था भी अशान्त बनी रहती है। इस अनिष्टकारी अवस्था का प्रतिकार तभी सम्भव है जब संसार के विचारशील शासक और विद्वान् मिलकर पारस्परिक मतभेदों को दूर करें और संसार में एक केन्द्रीय शासन संस्था ऐसी स्थापित करें, जिससे विभिन्न देशों में कलह और संघर्ष के कारण सदैव के लिये मिट जायें।

शान्ति और प्रगति के लिए साधन शुद्धि आवश्यक

गाँधीजी ने विश्वशान्ति के लिए कुछ मूल-सूत्र बताये—(१) साधनों की शुद्धता (२) मानव मात्र में भ्रातृत्व की भावना का विकास (३) जीवन में नैतिकता का समावेश (४) आदर्शों के प्रति अटूट निष्ठा (५) भौतिक जगत से ऊपर किसी महत् शक्ति में विश्वास।

बापू ने कहा था व्यक्ति और समाज को सभ्य और सुशिष्ट बनाने के लिए अन्य बातों के साथ ये भी आवश्यक है कि जीवनयापन के लिए जिन वस्तुओं का उपयोग हो रहा है, उनका उपार्जन किस तरह से हुआ ? नैतिक अथवा अनैतिक तरीके से। साध्य चाहे जितना श्रेष्ठ हो पर यह निश्चित है कि साधन की अशुद्धता साध्य को भी नष्ट कर डालती है। विश्व शान्ति के लिए शान्तिपूर्ण साधनों का ही प्रयोग करना होगा। शस्त्र के बल पर स्थायी शान्ति कदापि नहीं पायी जा सकती, जब कोई व्यक्ति या राष्ट्र दमन एवं शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करता और पाशविक शक्ति के आधार पर विजय की आशा करता है तो विरोधी पक्ष की पाशविक प्रवृत्तियाँ भी प्रबल हो जाती हैं। हिंसा-प्रतिहिंसा की शृंखला-सी बन जाती है। भ्रष्ट तरीके अन्ततः भ्रष्ट परिणाम ही उत्पन्न करते हैं।

विश्वशान्ति का महत्वपूर्ण आधार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना है। विश्व बन्धुत्व भावना वेदान्त दर्शन पर आधारित है। जब सबमें एक ही चैतन्य सत्ता विद्यमान है तब आपस में द्वेष एवं घृणा के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। सूर्य की असंख्य किरणों के—समुद्र की अनेक लहरों के—रूप में हमारा अस्तित्व है। समूह से पृथक् जीवनयापन सम्भव नहीं। व्यक्ति समाज से जुड़ा है, समाज राष्ट्र से और राष्ट्र विश्व से। पारस्परिक सहयोग के बिना सबका अस्तित्व खतरे में है। भाव-क्षेत्र के विस्तार एवं परस्पर स्नेह, सहयोग, भावना के उदय से ही विश्व राष्ट्र की कल्पना साकार हो सकती है।

मनुष्य की वर्तमान दुर्दशा का मूल कारण आर्थिक, राजनीतिक या भौतिक ही नहीं वरन् हृदयगत संकीर्णता है। कोई व्यक्ति या राष्ट्र मात्र भौतिक साधनों के सहारे ऊँचा नहीं उठ सकता। उसके साथ ही उन मानवीय मूल्यों को भी महत्व देना एवं अवलम्बन लेना होगा, जिसके द्वारा स्थायी प्रगति एवं शान्ति का पथ-प्रशस्त होता है।

सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक जीवन में एकरूपता लाने के लिए नैतिकता का अवलम्बन लेना आवश्यक है। नैतिकता का अभाव ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विषमता को जन्म देता है। विश्व में बढ़ती हुई संहारक शक्ति का अन्त भी नैतिकता के जागरण से ही सम्भव है। आज के संकट का वास्तविक कारण मानव अन्तःकरण में नैतिकता का अभाव ही है। लोग कहते कुछ करते कुछ हैं। फलतः विग्रह उपजते और संकट खड़े होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आर्थिक और राजनीतिक प्रगति के साथ नैतिक उत्थान भी अनिवार्य है। यदि इन दोनों में से किसी एक को प्राथमिकता देनी हो तो मानवीय अन्तःकरण में नैतिकता के उदय को अधिक महत्व देना होगा।

महान विचारक रिचर्ड बी. ग्रेग ने एक पत्र में गाँधी जी को लिखा था—"इतिहास साक्षी है कि युद्ध द्वारा मानवता पर विजय नहीं पायी जा सकती। क्रूरतापूर्ण प्रयास हर बार असफल ही रहे। यहाँ तक कि प्रतिष्ठित राजनीतिज्ञ और विश्व के प्रसिद्ध विचारक भी शुद्ध विभीषिका के भयंकर परिणामों पर अधिकार नहीं कर सकते।" अब तक अनेक बार सुरक्षा परिषदों का संगठन हुआ किन्तु शुद्ध विभीषिका का रूप और भी विकराल होता गया। यह असंदिग्ध है कि कूटनीतिक दाँव-पेचों से शान्ति सम्भव नहीं। जब तक मानवीय अन्तःकरण में सद्भावों का अभाव रहेगा, व्यक्तिगत जीवन से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय जीवन के क्रिया-कलापों में सदाशयता एवं सुस्मिरता का दर्शन न हो सकेगा एवं नैतिक निर्धारणों—उपाय, उपचारों का ही अवलम्बन लेना होगा।

विश्व-समाज की नवीन रचना

"एक महत् चेतना की सशक्त धारा आ रही है जिसके प्रवाह में राष्ट्रों की पूर्वाग्रहों और संकीर्णताओं की दीवारें चूर-चूर हो जायेंगी और तब विश्व के समस्त राष्ट्र प्रेम का महोत्सव मनायेंगे"—ये उद्गार सन् १९१७ में बंगाल निवासी विश्व-एकता के महान् प्रचारक ठाकुर दयानन्द ने प्रकट किये थे। उन्होंने कहा कि "मैं देख रहा हूँ कि संसार में विश्व बन्धुत्व की भावना परिव्याप्त हो गई है और एक ही विश्वधर्म पूर्व और पश्चिम की मिलन-भूमि बन गया है।" यद्यपि आज भी अधिकांश पढ़े-लिखे लोगों को जो विश्व-समाज की स्थापना, विश्व के सभी स्त्री-पुरुषों का भाई-बहिन की तरह रह सकना कठिन ही नहीं असम्भव जान पड़ता है, पर उस सूक्ष्म जगत् के दृष्टा को उस समय जो यह प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा था कि संसार के वातावरण में विश्व-भावना का तत्व उत्पन्न हो गया है और इसी शताब्दी के भीतर वह परिपक्व होकर एक नये जगत की रचना का कार्यारम्भ कर देगा।

वैसे तो विश्व की एकता और मनुष्यों के भ्रातृभाव के सिद्धान्त की घोषणा अति प्राचीनकाल से होती आ रही है, पर उस समय यह भावना प्रायः व्यक्तिगत ही होती थी। कोई महापुरुष अथवा उनका अनुयायी छोटा-सा समुदाय इसके अनुकूल आचरण भी करके दिखा देता था, पर इसका संसारव्यापी प्रचार और व्यवहार कभी देखने में नहीं आया। गत शताब्दी से ही अनेक महापुरुषों ने विश्वसमाज की आवाज उठाई है। इनमें योरोप, अमरीका, एशिया आदि सभी भूखण्डों के महानुभाव सम्मिलित हैं। ये सब मानवतावादी सिद्धान्त के अनुयायी हैं। यद्यपि भिन्न-भिन्न देशों के निवासी भिन्न भाषा-भाषी होने के कारण वे प्रायः एक-दूसरे से अपरिचित ही रहे, पर उन सबके अन्तःकरण में यह एक भावना अवश्य पाई जाती है कि सभी मनुष्य भाई-भाई हैं और उनको लड़ने के बजाय परस्पर में मिलकर ऐसी संस्थाओं का निर्माण करना चाहिए, जिससे विश्व-एकता और विश्व-समाज का मार्ग प्रशस्त हो। इस तथ्य का स्पष्टीकरण करते हुये 'Human Destiny' (ह्यूमैन डेस्टिनी) के लेखक 'लकास्ले द नाय' ने कहा है—

"व्यक्तियों और राष्ट्रों के लिये अब यह समय आ गया है कि ये अपने अभीष्ट को पहिचानें। यदि सभ्य देश शान्ति चाहते हैं, तो इस समस्या को भौतिक रूप से हल करें। विगत युग की प्राचीन धारणाओं में सब ओर दरारें पड़ गई हैं, उन्हें धागों अथवा इने-गिने उच्च वर्ग के व्यक्तियों द्वारा पारस्परिक सन्धि-पत्रों से मजबूत नहीं बनाया जा सकता। शान्ति का निर्माण मनुष्य के आन्तरिक परिवर्तन द्वारा होना चाहिए। युद्धों और दोषों का मूल हमारे अन्दर है। यदि शत्रु हमारे अन्तरतम में रहने को स्वतन्त्र हो, तो बाहरी सुरक्षा के प्रयास निरर्थक होंगे।"

वर्तमान पारस्परिक विरोधी स्थिति—जैसा हम इस खण्ड में अन्यत्र बतला चुके हैं, इस कठिन परिस्थिति का मूल कारण यही है कि मनुष्य ने यन्त्र विज्ञान और साधन-सामग्री में जितनी उन्नति कर ली है, उतनी प्रगति उसने मानसिक और भावनात्मक क्षेत्र में नहीं की है। भौतिक प्रगति की निगाह से तो वह लाठी और पत्थरों से लड़ने के बजाय राकेट और अणुबम तक पहुँच गया, गर्मी और जाड़े से पीड़ित होने की बजाय 'एयर कण्डीशन' निवास गृहों में रहने लगा पर मानव-एकता और भ्रातृभाव की निगाह से वह उल्टा पिछड़ गया। उसने समाज में अमीर और गरीब, शोषक और शोषित की ऐसी श्रेणियाँ उत्पन्न कर दीं जो कभी मिल ही नहीं सकतीं। इसके साथ ही पूरब और पश्चिम के नाम पर भी मानव सभ्यता में ऐसे भेदभाव पैदा हो गये हैं, जिनका वास्तविक एकीकरण हो सकना आसान नहीं है।

इस अवस्था को बदलकर मानव-मात्र की समता, एकता, भ्रातृभाव की स्थिति लाना केवल लेखों और भाषणों द्वारा सम्भव नहीं है। वर्तमान समय में मनुष्य पारस्परिक आध्यात्मिक सम्बन्ध को भूलकर भौतिक सफलताओं को ही अधिकाधिक महत्व देता जाता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि सम्पत्ति, भूमि, सत्ता के लिये व्यक्तियों और राष्ट्रों का संघर्ष उग्र से उग्रतर होता चला जाता है और होते-होते आज मानव-सभ्यता के पूर्णतः विनष्ट हो जाने की सम्भावना सामने खड़ी दिखाई पड़ रही है। यदि मनुष्य को इस भीषण-भविष्य से अपनी रक्षा करनी है तो उसको अवश्य ही अविलम्ब ऐसे कदम उठाने पड़ेंगे जिससे पुरानी, हानिकारक, भेदभावपूर्ण अवस्था का अन्त होकर नवीन, समयानुकूल, सामाजिक व्यवस्था का निर्माण हो सके। यह एक बड़ा महत्वपूर्ण और गम्भीर विषय है और इस सम्बन्ध में संसार के बड़े-बड़े मनीषी अपने विचार प्रकट करते रहते हैं। इस सम्बन्ध में नीचे देश और विदेशों के कुछ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महान् विचारकों की सम्मतियाँ दी जा रही हैं, जिससे पाठक इस समस्या के विविध पहलुओं की कुछ जानकारी प्राप्त करके स्वयं भी कुछ सोच सकेंगे।

महात्मा गाँधी का भारतीय दृष्टिकोण—सबसे पहले हमारा ध्यान महात्मा गाँधी की तरफ जाता है, जिसको 'इस युग का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति' स्वीकार किया जा चुका है और जो वास्तव में मनुष्य मात्र के कल्याण का लक्ष्य रखकर ही कोई बात कहते थे। उनके सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धी विचारों का स्पष्टीकरण करते हुये श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने लिखा है—

"गाँधीजी कोरे आदर्शवादी नहीं थे। वह आदर्श का उल्लेख करके उसके व्यावहारिक रूप पर विशेष जोर देते थे। अतएव उनके लेखों को पढ़ते समय सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कौन-सी बात को वे आदर्श-अवस्था के लिये कह रहे हैं, कौन-सी वर्तमान अवस्था के लिये और कौन-सी संधिकाल के लिये। अपने सामाजिक आदर्श में वे अराजकतावादी कहे जा सकते हैं, जिसका अर्थ यह होता है कि समाज में किसी प्रकार की कोई सरकार न रहे, सब लोग अपने घर-घर के राजा हो जावें। इसी आदर्श को उन्होंने कहीं 'राम-राज्य' —कहीं 'सर्वोदय' —कहीं 'अहिंसक-स्वराज्य' के नाम से पुकारा है। लेकिन समाज की अन्तिम अवस्था का यह चित्र एकाएक समझ में नहीं आता। क्या सचमुच मनुष्य इस पृथ्वी तल पर कभी इतना उन्नत-देवता या सन्त, मुनि की तरह निस्पृह, निरपेक्ष हो जायेगा, जिसके लिये किसी छोटी या बड़ी सामूहिक व्यवस्था (शासन) की बिल्कुल आवश्यकता न रहे ?"

यह आदर्श वर्तमान समय के अधिकांश मनुष्यों के विचारों और धारणाओं से इतना भिन्न है कि जिसके सम्भव होने पर उनको विश्वास नहीं हो पाता। वे यह देख रहे हैं कि वर्तमान समय में जो सामाजिक व्यवस्था प्रचलित है, वह निरन्तर बढ़ते और बदलने वाले भौतिक साधनों से मेल नहीं खाती और इससे एक हानिकारक संघर्ष अधिकाधिक उग्र रूप धारण करता जाता है, तो भी उनको कोई ऐसा मार्ग दिखलाई नहीं पड़ता, जिससे इसका निराकरण किया जा सके। गाँधीजी के दूसरे बड़े अनुयायी श्री किशोरलाल मशरूवाला 'जड़मूल से क्रान्ति' नामक पुस्तक में लिखते हैं—

"इस विषय में कहीं भी मतभेद नहीं है कि जगत् आज अतिशय अस्वस्थ है। विज्ञान और उद्योगों में बहुत कुछ विकास हुआ है और हर रोज बढ़ता जाता है। मानव जाति के आदि से लेकर सन् १८०० तक के लम्बे समय में भी कुल उत्पादन जितना नहीं हुआ उतना अनन्त प्रकार का उत्पादन पिछले दो-सौ वर्ष में हुआ होगा। पुराणों तथा योगशास्त्र में वर्णित सिद्धियाँ हम प्रत्यक्ष होती देखते हैं और बिना योग साधे उनका उपयोग कर सकते हैं। पर आश्चर्य यह है कि फिर भी तंगी का पार नहीं, दुखों का अंत नहीं, शान्ति-सुलह-सन्तोष का नाम नहीं ! इन्सान, इन्सान को देखकर प्रसन्न नहीं होता। वह बाघ और साँप से भी ज्यादा घातक और जहरीला बन गया है। कोई देश या कोई समाज ऐसा नहीं जिसमें यह मानवता का अभाव अधिक अधिक मात्रा में दिखलाई न पड़ रहा हो। हमारे जीवन में कहाँ खराबी है ? सुख के साधन हमारे लिये दुःख रूप-शाप के समान क्यों हो गये, इस पर हम सबको विचार करना चाहिए।"

क्रान्ति कब सफल हो सकेगी ?—हमारे यहाँ इसके लिये जो उपाय बतलाये जाते हैं वे व्यवहार की दृष्टि से नहीं वरन् धर्म, ईश्वर और प्राचीन संस्कृति के नाम पर ही उनका निश्चय किया जाता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन बातों का प्रभाव थोड़े से उच्च मनोवृत्ति वालों पर ही पड़ता है, शेष लोग सब कुछ सुन और समझकर भी उसी मार्ग पर चलते हैं जिससे उनको भौतिक लाभ हो, स्वार्थ की पूर्ति हो सके। महात्माजी ने इनका आधार अहिंसा और सत्य पर रखा, पर इन आदर्शों का अनादि काल से उच्चारण और प्रशंसा करते हुये भी कितने मनुष्य इन पर चलते हैं यह किसी से छिपा नहीं है। इसलिये व्यावहारिक दृष्टि से विचार करने वालों का मत है कि इस उद्देश्य की पूर्ति जहाँ जैसे मार्ग से सम्भव हो, उसी प्रकार की जानी चाहिए। समस्त संसार और सब प्रकार के व्यक्तियों के लिये 'अहिंसा' और 'प्रेम' का साधन ही काम नहीं दे सकता। योरोप के महान् मानवतावादी प्रिंस क्रोपाटकिन का कहना है—

"क्रान्ति से हमारा तात्पर्य क्या है ? उसका अर्थ यह नहीं है कि शासकों में परिवर्तन कर देना। उसका वास्तविक अर्थ है सामाजिक सम्पत्ति के ऊपर जनता का अधिकार, उसका आशय है उन सब शक्तियों को नष्ट कर देना, जो अब तक मनुष्य समाज की प्रगति में बाधक रही हैं। लेकिन क्या क्रान्ति किसी सरकार द्वारा निकाले हुये निर्देशों द्वारा हो सकती है ? कोई सरकार, चाहे वह एक आदर्श क्रान्तिकारी सरकार ही क्यों न हो, जनता में कोई नई लहर पैदा नहीं कर सकती और हमारे विध्वंस तथा पुनर्निर्माण के महान् कार्य में बहुत ही कम सहायक हो सकती है। सामाजिक क्रान्ति के फलस्वरूप जो आर्थिक क्रान्ति होगी, वह इतनी विशाल और गम्भीर होगी, यह सम्पत्ति और वितरण की मौजूदा व्यवस्थाओं में इतने और ऐसे परिवर्तन करेगी कि किसी मनुष्य के लिये यह असम्भव है कि भावी-समाज की विभिन्न संस्थाओं का विस्तृत वर्णन कर सके।"

हमारे यहाँ की सर्वोदय समाज की मान्यता भी इससे मिलती-जुलती ही है। उसके एक नेता श्री धीरेन्द्र मजूमदार ने इस समस्या पर काफी सोच विचार कर 'शासन-मुक्त समाज की ओर' नामक पुस्तक लिखी है, उसके आरम्भ में ही उन्होंने कह दिया है, शासन-मुक्त भावी समाज का विवरण बता सकना असम्भव है। इसका कारण उन्होंने यही बतलाया है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"सबसे पहले यह समझने की आवश्यकता है कि अगर कोई व्यक्ति किसी लक्ष्य की ओर जाने के मार्ग में अपने सामने बहुत बड़ा खड्ड—बहुत बड़ा गड्ढा देखता है तो वह उस मार्ग को छोड़ देता है। उस समय यह जरूरी नहीं होता कि उस मार्ग को छोड़ने से पहले यह मालूम कर लिया जाय कि सही मार्ग क्या है ? चाहे दूसरा मार्ग मालूम हो या न हो पर पहले मार्ग को तो वह छोड़ ही देगा और दूसरे मार्ग की खोज में लग जायेगा। इस खोज ढूँढ़ में वह कुछ समय भटकेगा भी। फिर कोई न कोई एक मार्ग उसको सूझ जायेगा। जो सिद्धान्त व्यक्ति के लिये लागू हैं वही समाज के लिये भी हैं। अगर समाज को आज ऐसा दीखता है कि शासन-संस्था ही मनुष्य के लिये संकट का कारण बन रही है और उसके विकास में एक रोड़े की तरह सिद्ध हो रही है तो उसे त्याग देना ही चाहिए। अतः जब हमसे यह प्रश्न किया जाता है कि 'आप जो शासन-मुक्त समाज की बात करते हैं, तो बतायें कि आगामी समाज का स्पष्ट स्वरूप क्या होगा ?' तो उत्तर में हम कहेंगे कि हमें शासन-मुक्ति चाहिए। बदले में कैसा समाज होगा, उसकी स्पष्ट धारणा धीरे-धीरे निकालनी होगी। आज हम उसे पूरी तरह नहीं बता सकते।"

आध्यात्मिकता ही आधारशिला होगी—इन धारणाओं का एक कारण यह है कि इन तमाम लेखकों ने इस समस्या पर भौतिक घटनाओं और प्रमाणों के आधार पर ही विचार किया है। अपरोक्ष (सूक्ष्म) जगत् पर उनकी दृष्टि नहीं है अथवा उस ओर उनकी प्रवृत्ति नहीं है। अन्यथा यह समझने में उनको कठिनाई नहीं होती कि संसार में घोर उथल-पुथल और हजारों परस्पर विरोधी आन्दोलनों के होते हुये भी सब लोग सूक्ष्म-जगत् में एक पहले से ही निश्चित योजना की तरफ अग्रसर हो रहे हैं। चाहे अधिकांश व्यक्ति इस सम्बन्ध में अनजान हों पर ये दैवी योजना के अनुसार उस भावी समाज की रचना में ही सहयोग दे रहे हैं जो वर्तमान समय की अपेक्षा बहुत उच्च होगी। संसार क्रमशः भौतिकता के कुपरिणामों से सावधान होकर अध्यात्म के मार्ग को ग्रहण करने की चेष्टा कर रहा है और यही भावी विश्व समाज का आधार होगा। अध्यात्म की शक्ति ही संसार को स्वार्थजनित कलह से छुड़ाकर शान्ति के क्षेत्र में पहुँचा सकती है। इसलिये भारतीय मनीषियों का कार्यक्रम सदा संसार को अध्यात्म मार्ग का उपदेश देना ही रहा है और आज हम भी इसी मार्ग को ग्रहण करके संसार-संकट को मिटाने के लिये प्रयत्नशील हैं।

इतिहास की साक्षी—धार्मिक-जगत् को छोड़कर जब हम इस समस्या पर इतिहास, अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से विचार करते हैं तो उससे भी अन्तिम निष्कर्ष यही निकलता है कि यद्यपि भूतकाल में अपनी असमर्थता और साधनों के अभाव से विभिन्न देशों के निवासी एक-दूसरे से पृथक् रहे हैं और पारस्परिक भय अथवा स्वार्थपूर्ति के लिये वे एक-दूसरे से संघर्ष भी करते रहे हैं। पर अब प्रगति-पथ पर अग्रसर होते-होते ऐसा अवसर आ पहुँचा है जब मानव-जाति के लिये सब नियमों में एक से नियम बनाकर एक विश्व-राष्ट्र बनाना अनिवार्य है। इन परिवर्तनों का उल्लेख करते हुये श्री एच. जी. वेल्स ने अपने जगत् प्रसिद्ध ग्रन्थ 'Outline of History' (संसार के इतिहास की रूपरेखा) के अन्त में लिखा है—

"मानव जाति के इतिहास में इसके पश्चात् जो दूसरा दर्जा (स्टेज) आयेगा, वह समस्त मानवों में एक्य स्थापित करके उनका एक समाज बनाना होगा, जिससे वे एक ही लक्ष्य स्थिर करके अग्रसर होंगे और सब के प्रयत्न एक ही दिशा में उन्मुख होंगे। इस 'संसार के इतिहास' सम्बन्धी ग्रन्थ में हम आदिकाल से वर्तमान समय तक के परिवर्तनों पर दृष्टिपात कर चुके पर अभी तक किसी अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँच सके। करोड़ वर्ष पहले जो जीवन की धारा आरम्भ हुई थी और पाँच लाख वर्ष पूर्व मनुष्य ने अपनी जो साहसिक यात्रा आरम्भ की थी वह सब एक बड़ी समस्या के रूप में परिणत हो गई है। प्रश्न होता है कि इसके पश्चात् क्या होगा ? हम यह जान चुके हैं कि सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में क्रमशः प्रगति करते-करते मनुष्यों के बड़े-बड़े समुदाय बन चुके हैं। ये संगठन छोटे-से पारिवारिक फिर्का की इकाई से बढ़कर करोड़ों की संख्या वाले विशाल राष्ट्रों के रूप में परिणत हो चुके हैं। फिर भी संसार की वैज्ञानिक उन्नति—तार, टेलीफोन, वायुयान, जल, स्थल, वायु से आवागमन के साधनों की निरन्तर उन्नति को देखते हुये ये विशाल संगठन भी समस्त संसार की तुलना में बहुत छोटे हैं। उपरोक्त परिवर्तनों के कारण मनुष्य परिस्थिति से सामंजस्य बनाये रखने के लिये महाविशाल संगठन की आवश्यकता अनुभव कर रहा है। वर्तमान समय में सर्वत्र जो सामाजिक अशान्ति, आर्थिक झगड़े और युद्ध आदि दिखलाई पड़ रहे हैं वे इस सामंजस्य की स्थापना के ही प्रयत्न हैं।"

"हमारे सच्चे राष्ट्र की स्थापना का कार्य अब आरम्भ हो रहा है और इसके निर्माण में प्राणपण से चेष्टा करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। वह राष्ट्र समस्त संसार के राष्ट्रों का सम्मिलित राष्ट्र (Federal World State) होगा। आज यह सम्मिलित 'महा-राष्ट्र' ही मानव जाति का एकमात्र लक्ष्य है। आज समस्त मानव जाति का 'विधाता पुरुष' ही हमारा उपास्य-देव है। जिस प्रकार काल प्रभाव से प्राचीन जातियों के देवता आज विस्मृति के गर्भ में लोप हो गये हैं उसी प्रकार यह 'राष्ट्रवाद' का देवता भी गायब हो जायेगा। आज हमारी सच्ची राष्ट्रीयता 'मानवता' ही है।"

अन्त में श्री वेल्स ने स्पष्ट कह दिया है कि इस तरह के महान् परिवर्तन आरम्भ में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर नहीं होते। 'वे रात में एक चोर की तरह चुपचाप मन के भीतर प्रविष्ट होते हैं' और एक दिन अकस्मात् दिखाई देता है कि वे अत्यन्त वेगवान और जगद्व्यापी बन गये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। इसका मुख्य आधार धर्म ही होगा पर वह धर्म जो भ्रष्टाचार और पुरोहितों के झंझटों से पूर्णतया मुक्त होगा। उन्होंने इस प्रकार के विश्व-राष्ट्र के मूल-सूत्र' (Broad Fundamentals) का वर्णन करते हुये स्पष्ट कहा है—

"It will be based on common world religion, very much simplified universalized and better understood. This will not be Christianity, nor Islam, nor Buddhism, nor any such specialized form of religion, but religion; the Eightfold way, the kingdom of Heaven, brotherhood, creative service and self forgetfulness etc. And this world state will be sustained by universal education etc. There will be not armies, no navies and no classes of unemployed people, wealthy or poor."

(Outline of History)

अर्थात्—"यह विश्व-राष्ट्र एक सामान्य धर्म के ऊपर स्थापित होगा। वह धर्म स्वाभाविक सत्य के ऊपर आधारित होगा, जिसे सर्वसाधारण ठीक तरह से समझ सकेंगे और पालन कर सकेंगे। यह न ईसाई धर्म होगा, न मुसलमान, न बौद्ध और न कोई अन्य विशेष धर्म। यह केवल शुद्ध धर्म होगा जिसमें किसी प्रकार की भ्रष्टता न होगी और सन्तजनों द्वारा प्रदर्शित 'आठ-मार्ग के अनुकूल होगा जैसे—परलोक का सुधार, भ्रातृभाव, जीवसेवा और अहंकार का त्याग आदि।"

नये समाज की रूपरेखा—कितने ही विचारशील लेखकों ने नये जगत् की रूपरेखा निबन्ध, कहानी, उपन्यास आदि के रूप में प्रकट की है। उनकी सम्मति है कि जब संसार के समस्त मनुष्य देश, जाति, मजहब के नाम पर पैदा किये गये झूठे भेदभाव को त्याग देंगे और गलत ढंग से स्वार्थ को त्यागकर परस्पर सच्चा सहयोग करने लगेंगे, तो यह संसार वर्तमान की अपेक्षा बहुत अधिक बदल जायेगा। जिस तरह हजार वर्ष पहले का कोई व्यक्ति यदि इस समय दुनिया में वापस आ जाय तो उसको हर जगह रेल, मोटर, हवाई जहाज, बिजली, रेडियो, चलचित्र आदि देखकर भ्रम होने लगेगा कि यह वही दुनिया है या कोई दूसरी, उसी प्रकार आजकल के मनुष्यों को सौ दो-सौ वर्ष बाद आने वाला संसार भी सर्वथा नया और अजनबी जैसा जान पड़ेगा। वर्तमान समय में भी उसके लिये कैसे-कैसे परिवर्तन सोचे जा रहे हैं इसके लिये हम नमूने के तौर पर दो चार विद्वानों की रचनाओं में से उनके विचार नीचे दे रहे हैं—

'सत्य-समाज' ने आगामी मानव-समाज की विशेषता के सम्बन्ध बहुत कुछ विचार और किया है। उनकी 'संस्कृति-समस्या' नामक पुस्तक में इस पाठ पर प्रकाश डाला गया है कि वर्तमान समाज की किन त्रुटियों का निराकरण करने से नये समाज की स्थापना सम्भव हो सकेगी। यह विवेचन भारतीय दृष्टिकोण से किया गया है इसलिये हमारे लिये विशेष उपयोगी सिद्ध हो सकता है—

(१) सबसे पहले हमको जाति-समभावी बनना है, जिससे जाति-पाँति, ऊँच-नीच के भेदभाव मिटकर एक सुव्यस्थित समाज बन सके।

(२) यही बात धर्म-समभाव के सम्बन्ध में है। हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, जैन आदि सभी में समन्वय स्थापित होना आवश्यक है।

(३) प्रान्तीयता की भावना भी घातक है। हिन्दी, मराठी, बंगाली, गुजराती आदि का द्वन्द्व हटाना जरूरी है।

(४) इन भेदभावों के मिटाये जाने पर अन्य राष्ट्रों के साथ मिलकर विश्व-राष्ट्र की योजना सफल बनाना आवश्यक है, जिससे अमेरिका, रूस, जर्मन, इंग्लैण्ड, चीन जैसे देश स्पर्धा करके संसार को युद्ध की आग में न झोंक दें।

(५) रंग भेद, गोरे-काले का भेद मिटाया जाय जिससे अमरीका में हब्शियों पर और दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों पर अत्याचार होना, जैसे अन्यायपूर्ण कृत्य बन्द हों।

(६) सब संसार में एक बोली हो जिससे सब लोग एक-दूसरे के मनोभाव समझ सकें और आपस में मित्र बन सकें।

(७) जनसंख्या और खाद्य सामग्री के उत्पादन में समन्वय किया जाय। इसके बिना भुखमरी और अशान्ति फैलती है।

(८) श्रम की प्रतिष्ठा पूर्ण रूप से कायम की जाय। इसी से पूँजीवाद का विष शमन हो सकेगा और हरामखोरी तथा मुफ्तखोरी की प्रवृत्तियाँ दूर होंगी।

इसमें सन्देह नहीं कि जब तक लोगों में वर्तमान समय में भीतर घुसे दोषों को निकालकर उनके मन को परिष्कृत न किया जायेगा तब तक नवयुग नहीं आ सकता। विशेषतः जाति और सम्प्रदायें ऐसी चीजें हैं जो मनुष्यों में अनिवार्य रूप से पृथकत्व—फूट की भावना की वृद्धि करती हैं। इसी प्रकार भाषा भेद से मनुष्यों की पारस्परिक घनिष्ठता में व्याघात होता है और गरीब-अमीर तथा काले-गोरे का अन्तर ईर्ष्या और द्वेष को जन्म देता है। जब इन बाधाओं को दूर हटा दिया जायेगा तभी सच्चे अर्थों में एक विश्व संघ की स्थापना का प्रयत्न किया जा सकेगा। जब तक उपरोक्त दोष बने रहेंगे तब तक तो यदि किसी विश्वव्यापी संगठन का प्रयत्न किया भी जायेगा तो वह वर्तमान संयुक्त राष्ट्र संघ आदि की तरह दिखावटी और निरर्थक ही सिद्ध होगा।

विश्व शासन-व्यवस्था—आगामी विश्व-समाज का एक अन्य चित्र भी है जिसमें उस समय की शासन-व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है। इसके अनुसार "संसार भर का एक विश्व पंचायती विधान स्थापित होगा, जिसमें राष्ट्रों, रंगों, धर्मों, श्रेणियों के लोग पूर्णतया एक हो जायेंगे, पर उसमें भाग लेने वाले राष्ट्रों और देशों की स्वतन्त्रता की रक्षा की जायेगी। इस विश्व-पंचायती-विधान में एक संसार भर की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विश्व-धारा सभा होगी, जिसके सदस्य सारी मनुष्य जाति के प्रतिनिधि होते हुये अपने राष्ट्र के सर्वसाधन सम्पन्न अधिकारी भी होंगे। यही सब सदस्य मिल विश्व-पंचायत में ऐसे नियम बनायेंगे जो संसार के सभी देशों पर समान रूप से लागू होंगे। ये कानून ऐसे होंगे जिनसे सब देशों का पारस्परिक सम्बन्ध मधुर और न्यायपूर्ण बनेगा। संसार भर की एक प्रबन्धकारिणी संस्था होगी, जिसकी सहायता के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना होगी, जो उन नियमों को कार्यरूप में परिणत करायेगी, जिन्हें विश्वधारा सभा ने बनाया है। इस प्रकार विश्व-पंचायत के सदस्यों की अखण्ड एकता की पूर्ण रक्षा हुआ करेगी।"

आगे चलकर जीवन सम्बन्धी अन्य आवश्यक कार्यों पर विचार करते हुये कहा गया है—"संसार भर का एक न्यायालय होगा और संसार भर में पत्र व्यवहार करने और यातायात करने की ऐसी पद्धति प्रचलित की जायेगी, जिसमें कोई देश किसी प्रकार की रुकावट पैदा न कर सकेगा। सारे संसार की एक राजधानी होगी जो विश्वसंस्कृति के लिये केन्द्र का कार्य करेगी। यह एक ऐसा केन्द्र होगा जिससे संगठित करने वाली शक्तियाँ उत्पन्न हुआ करेंगी। संसार भर के लिये एक भाषा होगी जो या तो बनाई जायेगी या प्रचलित भाषाओं में से प्रेमपूर्वक चुनली जायेगी। संसार के लिये एक विश्व-लिपि, एक विश्व-साहित्य, सारे संसार के लिये एक ही विश्व-सिक्का, एक ही प्रकार की विश्व-व्यापक नाप-तौल आदि ऐसी बातें होंगी जो सब राष्ट्र के बीच अटूट सम्पर्क और एक-दूसरे को समझाने की सुविधायें उत्पन्न करेंगी। इस नये समाज में विज्ञान और धर्म, जो मानव जीवन की बड़ी प्रबल शक्तियाँ हैं, मिलजुल कर कार्य करेंगी और इस प्रकार मानव-जाति में एकता की वृद्धि करेंगी। इस विधान के अन्तर्गत समाचार पत्र मनुष्य जाति के विभिन्न विचारों को प्रकट करने के लिये पूर्णतया स्वतन्त्र होंगे किन्तु वे किसी धनाढ्य व्यक्ति या संस्था के हाथों में पड़कर कोई कुटिल प्रचार न कर सकेंगे।"

सामाजिक परिवर्तनों का पूर्वाभास—वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को बदलकर उसके स्थान पर नई व्यवस्था स्थापित करने का कार्य इतना विशाल और अनगिनती शाखा-उपशाखाओं से युक्त है कि उसका वर्णन एक लेख क्या एक ग्रन्थ में भी सम्भव नहीं हो सकता। इसलिये हम भावी-समाज की कुछ ऐसी झाँकियाँ (वर्तमान अवस्था से मुकाबला करके) दिखाना चाहते हैं, जिससे पाठकों को स्वयं ही प्रस्तावित परिवर्तनों का महत्व अनुभव होने लगे। यह वर्णन श्री राहुल सांकृत्यायन की 'बाईसवीं सदी' पुस्तक में है। यह इस ढंग से किया गया है मानो कोई व्यक्ति उस भावी-समाज में पहुँचकर उसकी नवीन व्यवस्थाओं की तुलना पुरानी संस्थाओं से कर रहा है। सबसे पहले वर्तमान व्यापार प्रणाली के दोषों की आलोचना सुनिये—

'पहले किसी प्रकार भी धनी बनने की बीमारी का बड़ा प्रकोप था। उस समय लोगों को ऐसा करने की स्वाधीनता भी थी। उस समय किसी वस्तु का मूल्य राष्ट्रीय आवश्यकता पर निर्भर नहीं था। धन की इच्छा वाले धनिक इस बात की कब परवाह करते थे कि अमुक व्यवसाय में देश का श्रम तथा जीवन बर्बाद होगा या सार्थक ? यह तो देखते थे कि बाजार में माँग किस चीज की है। बस, उसी की तैयारी के लिये बड़े-बड़े कारखाने खोल देते थे, जिनमें लाखों आदमी काम करते थे। शराब, सिगरेट, अफीम आदि हानिकारक वस्तुयें थीं, किन्तु उनकी उपज के लिये लाखों आदमी और लाखों बीघे जमीन फँसी रहती थी। आजकल नये संसार में वैसी बात कहाँ चल सकती है ?"

आजकल की अदालतें कैसी निकम्मी चीजें हैं और शिक्षा प्रणाली कितनी निरर्थक है इसका कुछ परिचय निम्न उद्धरण से मिल सकेगा—

'पैसे का नाम उठ जाने तथा वैयक्तिक सम्पत्ति के न रह जाने से फल-फूल, खेती-बारी, कल-कारखाना—सब कुछ राष्ट्रीय है और इसीलिये अब उतने नियमों की भी भरमार नहीं है। इन्कमटैक्स का कानून, बन्दोबस्त कानून, कोर्ट फीस, आबकारी, काश्तकारी, लगान, ज्वाइण्ट स्टाक कम्पनी आदि-आदि सैकड़ों कानूनों का अब कोई काम नहीं रहा। दीवानी मामलों की जड़ ही खत्म हो गई, क्योंकि धन-धरती किसी व्यक्ति की न होकर समाज की है। फौजदारी कानून का आकार भी बहुत घट गया है, क्योंकि धन-धरती के अपहरण विषयक चोरी-डकैती आदि अपराध अब सम्भव ही नहीं। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति को हानि पहुँचाने के कारण भी अब नाम-मात्र को रह गये हैं, क्योंकि इन सब की जड़ वही व्यक्तिगत स्वामित्व ही था।

उन निकृष्ट पेशों और दूषित शारीरिक तथा मानसिक स्थिति वाले लोगों के विषय में कैसा सुधार हुआ इसका विवरण पढ़िये—

"आजकल संसार में कितने ही पेशों का अस्तित्व नहीं रहा। वकील, मुख्तार, सोख्तार, बैरिस्टर ही नहीं, भंगी, रंडी, भिखमंगे, पण्डे, भाट, भुजावर, कसाई आदि-आदि भी अब नहीं रह गये हैं। खिदमतगार, लौंडी, आका भी नहीं। बाल-विवाह, अनमेल विवाह का भी पता नहीं। तिलक, दहेज, नाच तमाशा, बड़ी-बड़ी बारात और उनमें हाथी, घोड़े पालकी, आतिशबाजी आदि कुछ भी नहीं। देवताओं और पीरों के अड्डों की पूजा, बलिदान और कुर्बानियों का भी निशान नहीं। जाति-भेद, रंग-भेद भी नहीं। पैतृक बीमारियाँ तथा राजरोग, कुष्ट, दमा, बवासीर, पागलपन, राजयक्ष्मा, उपदंश आदि सुनने में नहीं आते। इन बीमारियों से पिछली शताब्दी (२१वीं शताब्दी) में राष्ट्र को बहुत संघर्ष करना पड़ा, तब विजय मिली। ऐसे सब रोगियों (नर और नारी दोनों) को औषधि-प्रयोग से सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य बना दिया गया और उन्हें हटाकर पृथक् रखा गया। यह काम बहुत कठिन था और हुआ भी एकदम नहीं। किन्तु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अब एक बार राष्ट्र ने अपने हित की बात को समझ कर उसे करने की ठान ली तो भला वह काम हुये बिना कब रह सकता था ? यह राष्ट्र ही के प्रयत्न का फल है कि पृथ्वी पर अन्धे, लूले, लँगड़े, बहरे, गूँगे, काने, बुद्धिशून्य तथा विकृत-इन्द्रिय व्यक्ति खोजे भी नहीं मिलते।"

हम समझते हैं कि कितने ही पाठक इन बातों को कोरी कल्पना कह कर हँसने लगेंगे, पर इस प्रकार के भाव-प्रदर्शन में कोई बुद्धिमानी नहीं है। इससे यही प्रकट होता है कि उनमें इतनी क्षमता नहीं कि वर्तमान घटनाओं के आधार पर सौ-पचास वर्ष आगे चलकर होने वाले परिवर्तनों का अनुमान कर सकें। क्रान्तिकारी परिवर्तन तो होते ही रहते हैं, यह हम पिछले अनुभवों से जानते हैं। सौ वर्ष पहले अधिकांश यात्रायें पैदल या बैलगाड़ियों पर हुआ करती थीं। कहीं-कहीं घोड़ा गाड़ी और ऊँट गाड़ी आदि से भी काम लेते थे। पर आज पैरों से चलना प्रायः बन्द-सा होता जाता है। प्रत्येक व्यक्ति साइकिल से लेकर हवाई जहाज तक किसी न किसी यन्त्र का प्रयोग करके ही चलता है। हमारे देखते-देखते यातायात के सम्बन्ध में यह क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया। अब लोग एक नगर से दूसरे नगर और एक देश से दूसरे देश तक की तो बात क्या शहर के भीतर भी जहाँ तक सम्भव हो सवारी से चलते-फिरते हैं। यदि सौ वर्ष पहले कोई दूरदर्शी व्यक्ति साधारण लोगों से यह बात कहता तो वे कदापि इसको न मानते और कहने वाले को गप-शप उड़ाने वाला ही बतलाते।

यही बात आप आगामी समाज की पुनर्रचना के सम्बन्ध में भी समझ लें। समय के प्रभाव से धीरे-धीरे महान् परिवर्तन हो ही जाते हैं, इस अवसर पर तो संसार के पारस्परिक स्पर्धा और स्वार्थपरता ने ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी है कि जिसके कारण कोई भीषण संघर्ष होकर यह परिवर्तन बहुत शीघ्र और व्यापक रूप से होगा। इसीलिये हम अपने पाठकों का ध्यान सदैव इस परिवर्तन की सम्भावनाओं की तरफ आकर्षित किया करते हैं, जिससे वे सावधान होकर दूषित और समय के प्रतिकूल प्रणाली को त्याग कर समयानुकूल मार्ग को अपनायें। इसमें सबसे मुख्य बात यही है इस समय की पृथकता और अपना ही स्वार्थ देखने की मनोवृत्ति मनुष्य में घर कर गई है वह अन्त में दुःखदायी बन जायेगी और इस युग-परिवर्तन के जमाने में तो और भी घातक सिद्ध होगी। हमको निश्चय रूप से यह समझ लेना है कि यह परिवर्तन केवल मनुष्य का सोचा हुआ नहीं है वरन् दैवी-योजना और दैवी इच्छा से उपस्थित हो रहा है।

नये युग के दो आधार— अध्यात्म और विज्ञान

कोई जमाना था जब धर्म और राजनीति की तूती बोलती थी। वे दिन तब थे जब धर्म का उद्देश्य लोगों के दिलों को जोड़ना और राजनीति का लक्ष्य सुरक्षा एवं सुव्यवस्था था। उन दिनों इन दोनों धाराओं को लोक-श्रद्धा प्राप्त थी। इसलिए उनकी जड़ें गहरी थीं और जड़ों में मजबूती देखी जाती थी। धर्माचार्य भी श्रद्धा के पात्र थे और राज संचालक भी। पर अब स्थिति बदल गई। इन दोनों में अपना मूल प्रयोजन छोड़ दिया और निहित स्वार्थों का आश्रय अंगीकार कर लिया।

धर्म अब थोथी, कपोल कल्पनाओं, ठगी और भ्रान्तियों का केन्द्र बन गया है। निहित स्वार्थों द्वारा भोले भावुकों को भ्रम जंजाल में उलझाकर अपना उल्लू सीधा करते रहने की विडम्बनाओं से अब धर्मक्षेत्र बेतरह घिर गया है। छुट-पुट कर्मकाण्डों द्वारा स्वर्गमुक्ति प्राप्ति जैसी सस्ती युक्तियों में उलझे तथाकथित धार्मिक व्यक्ति अब चरित्र शोधन और परमार्थ प्रयोजन की कष्टसाध्य प्रक्रिया अपनाने का साहस नहीं करते। इसी प्रकार पापकर्मों के दण्ड से बच निकलने की गंगास्नान जैसी तरकीबें हाथ लग जाने से धार्मिक व्यक्ति को निर्भय होकर दुष्कर्म करने की भी छूट मिल जाती है। मन्त्र जप से देवता जब किसी के गुलाम बन सकते हैं तो मनुष्यों पर क्यों आधिपत्य न जमाया जा सकेगा, यह सोचकर लोगों की पूजा-अर्चा बड़ी-बड़ी भौतिक महत्वाकांक्षाओं से जोड़ दी जाती हैं। जब लक्ष्य की पूर्ति नहीं होती तो खीज ही हाथ लगती है। दूसरी ओर विचारशील वर्ग जब देखता है कि इस क्षेत्र में लगने वाली जनशक्ति और धनशक्ति का उपयोगी प्रतिफल नहीं मिल रहा तो उन्हें भी निराशा होती है। अनैतिक और अवांछनीय रूढ़ियों का समर्थन करने से तो धर्म और भी अधिक बदनाम हो चला है। ऐसे-ऐसे कारणों ने मिलकर धर्म के प्रति एक खीज पैदा कर दी है। पुरातन पन्थी उससे किसी कदर चिपके जरूर हैं पर लोकश्रद्धा बेतरह टूटती जा रही है। अनुपयोगिता को देर तक समर्थन नहीं मिल सकता, धार्मिकता का स्तर गिरकर साम्प्रदायिक तक सीमाबद्ध हो गया है। उससे अकारण वर्ग विद्वेष बढ़ रहा है। वस्तुस्थिति का मूल्यांकन करने वाला लोक-विवेक अब उससे हट रहा है और धार्मिकता की जड़ें खोखली हो रही है। स्पष्ट है कि इस युग की प्रचण्ड समस्याओं को हल करना रुग्ण और जराजीर्ण धार्मिकता के बस की बात नहीं रही।

अनुपयोगी को हटाकर उपयोगी को स्थानापन्न करने का नियति-क्रम धर्म के स्थान पर अध्यात्म की प्रतिष्ठा करने जा रहा है। धर्म और सम्प्रदाय का अन्तर स्पष्ट है। सम्प्रदाय परम्पराओं और कर्मकाण्डों से घिरी हुई अन्धश्रद्धा पर आधारित है। वह अमुक वर्ग विशेष की बपौती बन कर रहता है। अध्यात्म का लक्ष्य इससे ऊँचा है, वह चिन्तन को उत्कृष्ट और कर्तृत्व को आदर्श बनाने की दार्शनिक प्रेरणा है। अन्तरंग जीवन में श्रेष्ठता का, बहिरंग जीवन में उदार स्नेह, सहयोग का-अभिवर्धन यही अध्यात्म का लक्ष्य है। आत्मवत् सर्वभूतेषु और वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना अपनाकर अध्यात्मवादी को अधिकाधिक पवित्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और उदार बनना पड़ता है। अपने सुखों को बाँट देने और दूसरों के दुख बँटा लेने की अन्त-प्रेरणा प्रबल होती है और अनेकता में से एकता ढूँढ़ निकालने की दृष्टि रहती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण अध्यात्म किसी वर्ग विशेष की सम्पत्ति न रहकर सार्वभौम रहता है। समुद्र में सभी नदियाँ जा मिलती हैं। धर्मवत् विभेदों का अन्त अध्यात्म के महासागर में ही होता है।

राजनीति की उपयोगिता तभी रही जब शासनकर्त्ता प्रजाहित के लिए ही जीते-मरते थे। वस्त्र वे भले ही संत जैसे न पहनते हों पर लोकमंगल का उदार दृष्टिकोण वैसा ही रखकर वे अपनी रीति-नीति निर्धारित करते थे। अध्यात्म और नीति को ही राजाश्रय मिलता था। आदर्शवादी वरिष्ठता को सत्ता द्वारा समर्थन, प्रोत्साहन मिलता था। उन दिनों प्रजा, राज्य निर्देशों को शिरोधार्य करना अपना पावन कर्त्तव्य मानती थी। "दिल्लीश्वरोवा जगदीश्वरोवा" की उक्ति में देश भक्ति, धर्म भक्ति, ईश्वर भक्ति का त्रिविधा समन्वय था। राजद्रोह उस समय धर्मद्रोह जैसा हेय कर्म था। तब राज्यसत्ता का स्वरूप भी तो श्रेष्ठता को सत्ता सज्जित बनाये रखना ही तो था। ऐसी दशा में राजसत्ता का समर्थन करना जनता के लिए उचित ही था और वह उसकी छाया में अपना कल्याण-देखकर राजभक्त रहती थी तो वह भी उपयुक्त ही था।

आज राजनीति का उद्देश्य भी बदल गया और स्वरूप भी। अब कूटनीति का ही दूसरा नाम राजनीति है। शत्रुओं के साथ दाव-घात चलने से आरम्भ हुई कूटनीति मित्रों को भी उसी लपेट में लेती है। अब राजनीति के लिए प्रजाहित मुख्य नहीं रहा वरन् शासन की जड़ें मजबूत करना रह गया है। इसके लिये प्रजा को असुविधाओं और कठिनाइयों में धकेलने से शासन तनिक भी नहीं झिझकता। सत्ता के लिए संघर्ष से उस क्षेत्र में अराजकता जैसी, शीत गृह युद्ध जैसी स्थिति उत्पन्न कर दी है। राजनीति में प्रवेश करने वाला हर व्यक्ति सत्ता हथियाने और उससे लाभ लेने के लिए आतुर रहता है। सत्ता के लिए संघर्ष में इतने घिनौने दाव-पेंच चलाये जाते हैं कि उसकी चोट में आने वाले भोले प्रजाजन भी अपना सहज सन्तुलन खो बैठते हैं। चुनावों के कारण जितना विद्वेष उत्पन्न होता है उतना शायद ही अन्य किसी कारण से होता है, चुनाव लड़ने वाले विष बीज बिखेरकर किसी कौंतर में जा बैठते हैं, पर जन-जीवन को वह विषाक्तता देर तक उद्विग्न किये रहती है। अब राज्य घोषणाओं को यथार्थता नहीं माना जाता—अब शासन की न्याय-नीति पर विश्वास उठ चला। उस क्षेत्र में होने वाली हलचलों को देखकर सामान्य बुद्धि यह सोचने लगती है कि यह शासनविहीन समाज रहता तो अब की अपेक्षा कुछ अच्छा ही रहता-बुरा नहीं।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की शतरंज किस क्रम से खेली जा रही है, उसने संगठित शोषण की जड़ें मजबूत बनाने का ही पथ प्रशस्त किया है। युद्ध को प्रोत्साहन मिला है और विज्ञान की सत्ता राजसत्ता के हाथ में चली जाने से विश्व-वसुधा के सर्वनाश की आशंका रोमांचकारी विभीषिका बनकर सामने आई है। ऐसी अनेक आशंकाओं ने राज्यसत्ता का स्वरूप किसी गुट विशेष का आतंक आधिपत्य समझा जाने लगा है। सामान्य जनता उसमें अपना हित कम और अहित अधिक होने की बात सोचती है। राजनेता अब श्रद्धा के पात्र नहीं रहे, उन्हें स्वार्थी-तत्वों की चापलूसी भर हाथ लगती है। अब धर्म-ध्वजी और सत्ताधारी लगभग एक ही पंक्ति में बैठने जा रहे हैं। धर्म-धारणा की तरह ही राजनीति के आश्रय में अपना कल्याण नहीं सोचते।

राजनीति का नया विकल्प अब जनसाधारण के सामने है—'विज्ञान'। दूरगामी विवेकशीलता के सहारे मनुष्य मात्र को एक परिवार मानकर समस्याओं को हल करना दार्शनिक विज्ञान का काम है। न्याय और एकता की रक्षा के लिए पिछले दिनों शस्त्रधारी सैनिक नियुक्त रहते थे। अब वह शक्ति भौतिकी के हाथों चली गई है। विज्ञान की बलिष्ठता और वरिष्ठता अब इतनी आगे बढ़ गई है कि सत्ता की सुरक्षा के लिए सामान्य सैनिकों की अब विशेष आवश्यकता नहीं रह गई।

विज्ञान सत्य के निकट है। उसकी खोजों, तथ्यों का रहस्योद्घाटन करने की लालसा ने ही सम्भव की हैं। इसलिए विज्ञान को सत्य की सन्तान कह सकते हैं। लोग वैज्ञानिक उपलब्धियों को ही विज्ञान मान बैठते हैं पर यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो विज्ञान एक दार्शनिक दृष्टिकोण प्रतीत होगा, जिसका उद्देश्य है, सत्य का रहस्योद्घाटन करना और उपलब्धियों के उपयोग पर दूरगामी व्यापक दृष्टि से विचार करना। यह वैज्ञानिक दृष्टि से ही आज की उलझी समस्याओं के ऐसे हल निकाल सकती है, जो चिरस्थायी सुख-शान्ति के आधार बन सकें। राजनीति तो क्रमशः उलझनें बढ़ाती ही चली जाती है, उस पर क्षेत्र अथवा वर्ग के लाभ का इतना गहरा नशा चढ़ गया है कि सार्वभौम पर सर्वमान्य हल निकालने के लिए उसके प्रयास सफल हो सकें। न्याय और विवेक का परित्याग कर वर्ग स्वार्थों के समर्थन में खड़ी हुई राजनीति के लिए अब मानवी समस्याओं का हल करना तो दूर—उनका यथार्थ स्वरूप समझ सकना भी सम्भव नहीं रहा।

युग की माँग अधिक प्रखर आधारों को खोज रही है। प्रगति की इन दो शताब्दियों में उलझनों की भी प्रगति हुई है। विज्ञान ने सारी दुनिया को एक छोटे से नगर के रूप में और समस्त मानव-जाति को छोटे से परिवार के रूप में सघन बना दिया है। तदनुसार बिखरी हुई उलझनें, समस्याएँ और विकृतियाँ भी सघन हुई हैं और स्थिति यहाँ तक आ पहुँची है कि 'करो या मरो' स्तर पर हमें इधर या उधर में से एक का फैसला करना पड़ेगा। स्पष्ट है कि मानव जाति के भाग्य और भविष्य का फैसला करने वाले इन क्षणों में धर्म और राजनीति दोनों ही अनुपयोगी सिद्ध होंगे। इनके स्थान पर अध्यात्म और ज्ञान को प्रतिष्ठापित करना होगा। मनुष्य समाज के अन्तरंग जीवन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को परिष्कृत बनाने की बागडोर अध्यात्म ही सम्भाल सकता है और बहिरंग व्यवस्था में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर ही उपयुक्त समाधान निकल सकता है। अगले दिनों इन्हीं दो तथ्यों को मान्यता देनी पड़ेगी।

सन्त विनोबा कहते हैं—"मजहब और सियासत ये दो शक्तियाँ खत्म हो चुकी हैं। कल जो दो शक्तियाँ काम करने वाली हैं—इनमें एक है विज्ञान, दूसरी है रूहानियत।"

सन्त विनोबा का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि धर्म और राजनीति के दिन लद गये। अब अध्यात्म और विज्ञान के वर्चस्व की प्रतिष्ठापना होगी।

संसार का सदा से यही नियम रहा है कि हर वस्तु और हर मान्यता तभी तक अपनी स्थिरता रख सकती है जब तक वह उपयोगिता की कसौटी पर खरी उतर सकने की स्थिति में बनी रहे। जहाँ विकृतियों का समावेश बढ़ा वहाँ अपनी युद्ध स्थिति में श्रेष्ठ समझी जाने वाली वस्तु भी क्रमशः हेय, हानिकारक और अग्राह्य बनती जाती है। तब स्वभावतः इसका तिरस्कार होता है और समय उसे हटाकर, उठाकर किसी कूड़े के ढेर में सड़ने-मरने के लिए पटक देता है।

धर्म अपने शुद्ध स्वरूप में मानव-जाति के लिए अत्यन्त आवश्यक आस्था है, पर उनकी उपयोगिता है तभी तक, जब तक कि वह मनुष्य जाति की भावनात्मक, नैतिक और सामाजिक स्थिति को परिष्कृत बनाये रहने में सहायक रहे। जब उसमें शुद्धता का अंश घटता और निहित स्वार्थों की घुसपैठ बढ़ जाती है तो उस विकृति के कारण लोग समूचे धर्म तत्व को ही अनुपयोगी कहकर उसे हटाने पर तुल जाते हैं। यही है नास्तिकवाद की—अधार्मिकता की पृष्ठभूमि।

होता यह है कि धर्म के मूल सिद्धान्तों और आदर्शों की उपेक्षा होने लगती है और किसी समय किसी समाज के लिए एक कदम बढ़ाने की दृष्टि से जो रीति-रिवाज बने थे, उन साम्प्रदायिक विधि-विधानों को ही धर्म मान लिया जाता है और धर्म के मूल तत्व की उपेक्षा करके प्रथा प्रचलन और वर्गीय स्वार्थों को ही प्रधानता दी जाने लगती है। यही साम्प्रदायिकता—मोटे तौर से 'धार्मिकता' समझी जाने लगती है। विवेक दृष्टि से जब इस साम्प्रदायिक मान्यताओं का विवेचन किया जाता है तो प्रतीत होता है कि उसमें न्याय का—औचित्य का—यथार्थता का पुट कम और परम्पराओं का—वर्गीय स्वार्थ का—पुट अधिक है तो यही उचित लगता है कि इन अहितकर और अनुपयोगी मान्यताओं से पीछा छुड़ा लेना ही उचित है। धर्म के प्रति इस प्रकार पनपने वाला विद्रोह वस्तुतः साम्प्रदायिक अन्धविश्वासों और दुराग्रहों के विरुद्ध उभरने वाली प्रतिक्रिया ही होती है।

आमतौर से लोग धर्म और सम्प्रदाय के बीच का अन्तर भूल जाते हैं। सम्प्रदाय को ही धर्म मान लेते हैं और दोनों के लिये एक ही शब्द का प्रयोग करने लगते हैं।

वस्तुतः धर्म की परिभाषा भावनात्मक उत्कृष्टता एवं क्रियात्मक आदर्शवादिता के रूप में ही हो सकती है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, संतोष तप, स्वाध्याय जैसी चिन्तनात्मक और क्रियात्मक गतिविधियों की मान्यताओं को धर्म कहा जाता है। इस दृष्टि से धर्म सार्वभौम है। वह देश, जाति और काल के अन्तर में कटता-बँटता-नहीं और न उसमें उतार-चढ़ाव आते हैं। किन्तु सम्प्रदायों के बारे में ऐसी बात नहीं है, उसमें देश-काल-पात्र की, विधि-व्यवस्थाओं की प्रधानता रहती है। यही कारण है कि उनका समय-समय पर बदला जाना आवश्यक होता है। देवदूत और सुधारक इसी प्रयोजन के लिए अवतरित होते हैं और पूर्व मान्यताओं में जितनी विकृतियों का-अनुपयोगिताओं का समावेश हो गया था उसे हटाने का प्रयत्न करते हैं।

इसके विपरीत धर्म के मूल तत्वों को सुधार परिवर्तन करने की कभी किसी ने न तो आवश्यकता समझी और न उसमें हेर-फेर करने का दुस्साहस किया। धर्म को सार्वजनीन, सर्वकालीन, सार्वभौम्य और शाश्वत सनातन कहा जा सकता है। इसलिए उसके विरुद्ध अनीश्वरवादी और असामाजिक लोग भी कुछ कह सकने का साहस नहीं करते। धर्माचरण में विपरीत प्रकार की गतिविधियाँ अपनाने वाले बहुत हैं। पर वे भी सिद्धान्त के प्रतिपादन का अवसर आने पर अधर्म का नहीं धर्म का ही समर्थन करते हैं।

चोरी का पेशा अपनाये हुए व्यक्ति भी अपने घर में ऐसा नौकर नहीं रखता जो चोर हो। व्यभिचारी प्रकृति का मनुष्य भी अपने घर में इस वर्ग के लोगों का प्रवेश प्रतिबन्धित करता है ताकि उसके स्त्री-बच्चों को कोई पथ भ्रष्ट न कर दे। निरन्तर असत्य बोलकर, आजीविका कमाने वाले भी अपने साथ दूसरे लोगों का असत्य व्यवहार पसंद नहीं करते। घर वाले, मित्र या नौकर झूठी बातें कहकर बहकाने का प्रयत्न करते हैं तो वह असत्यवादी भी उबल पड़ता और कहता है मुझसे सच्ची बात क्या नहीं कही गई ? निर्दयता और छल का व्यवहार करने के अभ्यस्त भी यह चाहते हैं कि दूसरे लोग उनके साथ सहृदयता, सज्जनता और निश्छलता बरतें। इससे स्पष्ट है कि अधर्मपरक रीति-नीति अपनाते हुये भी सैद्धान्तिक दृष्टि से धर्म का ही समर्थक है। समस्त संसार अनीति बरतने लगे तो भी 'नीति' अपने बलबूते पर अकेली अपना अस्तित्व बनाये रह सकती है। बहुमत से लेकर सर्वमत तक भी अनीतिवादी होकर 'नीति' की गहरी जड़ों को उखाड़ने में समर्थ नहीं हो सकता। धर्म इतना बलवान है कि उसे हिला या हटा सकना किसी के भी बलबूते की बात नहीं है।

झंझट सम्प्रदायों के सम्बन्ध में है। उनमें नीति का पुट कम और आग्रहों का समर्थन अधिक रहता है। कई बार तो सम्प्रदाय धर्म के विपरीत भी चलते हैं, जबकि उनकी संरचना किसी समय धर्म, समर्थनकारी गतिविधियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को प्रोत्साहन देने के लिए की गई थी। लोग तथ्यों को भुलाने और हलचलों को प्रधानता देने की चूक करते ही रहते हैं। अस्तु, एक समय के उपयोगी प्रतिपादन कालान्तर में अनुपयोगी हो जाते और उन्हें बदलने सुधारने की आवश्यकता पड़ती है।

साम्प्रदायिक उन्माद में वर्ग विशेष का अन्धानुकरण ही मुख्य होता है। न्याय और विवेक के लिए उसमें गुंजायश क्वचित् ही रहती है। इतिहास के अगणित पृष्ठ इस कलंक से काले हैं कि साम्प्रदायिक उन्माद ने कितनी अनीति और कितनी नृशंसता बरती-कितनों पर कितने कहर बरसाये। ऐसी दशा में यदि सम्प्रदायवाद को अवांछनीय कहा जाय और उसके विरुद्ध बगावत की आवाज उठे तो उसे अनुचित कैसे कहें ?

यदि धर्म और सम्प्रदाय को ही शब्द के अन्तर्गत घसीटा जायगा तो सम्प्रदायवादी मूर्खताओं को 'धर्म विरोधी' नाम दिया जाने लगेगा। जबकि वस्तुतः बात ऐसी है नहीं-धर्म का कभी कोई विरोध कर ही नहीं सकता। लड़ाई सम्प्रदायवाद के विरुद्ध ही होती है। जब मार पड़ती है तब सम्प्रदायवाद के विरुद्ध खड़ा हुआ विद्रोह 'धर्म विरोधी' कहा जाने लगता है। इस शब्द छल से अन्धविश्वास और दुराग्रहों का बचाव करने के लिए जो प्रयत्न किया जाता है वह क्षण भर के लिए भावुक जनता को भड़का भले ही दे पर उससे कोई वास्तविक प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। उलटे साम्प्रदायिक दुराग्रहों के विरोधी धर्म शब्द पर ही आक्रमण करने लगते हैं। उचित यही है कि धर्म और सम्प्रदाय को काया और छाया की तरह एक दूसरे के साथ जुड़े हुए भले ही मानें पर साथ ही उनकी स्वतन्त्र सत्ता को भी स्वीकार किया जाय। सम्प्रदाय भले ही धर्म के निकट हो, पर निश्चित रूप से वह धर्म नहीं है। कई बार तो साम्प्रदायिकता अधार्मिकता की पर्यायवाची भी बन जाती है तब उसकी रक्षा की पुकार के लिए धर्मरक्षा का नारा लगाना भावुक जनता का भावनात्मक शोषण करना ही होता है।

सम्प्रदाय मिट रहे हैं और अगले दिनों उनका स्थान रूहानियत लेगी। सन्त विनोबा की इस भविष्यवाणी का संकेत यह है कि अगले दिनों क्रमशः विवेकशीलता, सूक्ष्म दृष्टि और न्याय, औचित्य की विवेचना बुद्धि बढ़ती, पनपती जायगी तब धर्म और सम्प्रदाय को दो प्रथक पंक्तियों में खड़ा किया जायेगा। सम्प्रदाय चूँकि इन दिनों अत्यधिक विकृत हो चले हैं। उनमें उपयोगिता कम और अनुपयोगिता अधिक घुस पड़ी है। ऐसी दशा में उनका शोधन, परिमार्जन, परिष्कार, अनिवार्यतः करना होगा। टूटे बर्तनों को गलाकर नये रूप में ढालने में जिन आधारों का उपयोग किया जाता है। लगभग उन्हीं जैसों से साम्प्रदायिक रीति-नीति के आग्रहों और मान्यताओं में इतना परिवर्तन करना पड़ेगा कि प्राचीन की अपेक्षा अर्वाचीन में भारी अन्तर उपस्थिति हो जाय। तब विशुद्ध रूप से बचे 'धर्म' को अध्यात्म कहा जायगा।

अध्यात्म का तात्पर्य है आत्मा की परिधि का विस्तार। अपने अहम् को, स्वार्थपरता की परिधि को- विश्व मानव के लिए, परमात्मा के लिए उत्सर्ग कर देना यही आत्मिक प्रगति का एकमात्र चिन्ह है। अनादिकाल से यही परम्परा चली आ रही है कि जो अपने व्यक्तिगत लोभ, मोह, यश एवं सुख को जिस हद तक विश्व-मंगल के कृत्य में परित्याग करता है, वह उसी सीमा तक परमात्मा के सान्निध्य में पहुँचा माना जाता है। यह मान्यता हर अध्यात्मवादी को समाज के लिए अधिक उपयोगी एवं उपकारी बनाकर सर्वजनीन सुख-शान्ति का अभिवर्द्धन करती थी, पर अब तो ठीक उलटा है। जो जितना स्वार्थी, संकीर्ण, अनुत्तरदायी, अकर्मण्य है, वह उतना ही त्यागी-तपस्वी है। सबके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझकर-आत्म-सुख को लोक-मंगल में घुला देने की प्रवृत्ति अब अध्यात्मवादियों में दिखाई नहीं पड़ती वरन् लोग अपनी भौतिक सुख-सुविधाओं की अभिवृद्धि के लिए ईश्वरीय सहायता की याचना-कामना किया करते हैं और उसी तराजू पर दैवी कृपा या अकृपा का-अपनी पूजा-पत्री की सफलता, असफलता का मूल्यांकन करते हैं। फलस्वरूप अब अध्यात्म व्यक्तिवाद का पोषक बनता जाता है और ऋद्धि-सिद्धियों से लेकर स्वर्ग मुक्ति तक विभिन्न स्तर के स्वार्थों की पूर्ति के लिये लिप्साएँ उत्पन्न करता है। यह स्तर बदला न गया तो तत्व-ज्ञान का महान् दर्शन मानव-जाति के लिये और अधिक विपत्ति उत्पन्न करने वाला बनता चला जायगा।

पाप से बचने और डरने का शिक्षण देना अध्यात्म का प्रयोजन है। पर जब से यह मान्यता चली है कि अमुक नदी-सरोवर में स्नान करने, अमुक तीर्थ की यात्रा या अमुक पुस्तक का पाठ करने से पाप फल भोगने से छुटकारा मिल जाता है, तब से लोग पाप से डरने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते। सोचते हैं जब थोड़ा-सा व्यय करके पाप फल से बचा देने वाले कर्मकाण्ड करके दुष्कर्मों के दंड से छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है तो फिर दुष्कर्मों का आकर्षण और लोभ, मोह क्यों छोड़ा जाय ? पाप के दंड से बचने की मान्यता केवल अनैतिकता का ही अभिवर्धन करेगी और उससे अनाचार एवं विग्रह, विक्षोभ ही बढ़ेगा।

अध्यात्म दर्शन में उत्पन्न हुई इन्हीं विकृतियों ने हमारा मानसिक और सामाजिक ढाँचा चरमरा कर रख दिया है। विद्या, सदाचार, लोक-सेवा और उदात्त मनोभूमि के कारण पूजे जाने वाले साधु-ब्राह्मण जब वंश और वेष के आधार पर पूजा-प्रतिष्ठा प्राप्त करने लगे तो उन महान् गुणों की ओर ध्यान देना ही बन्द हो गया। ओछे लोग जहाँ भी पूजे जायेंगे, वहाँ विकृतियाँ ही बढ़ेंगी, कर्म के आधार पर आरम्भ हुआ वर्णाश्रम धर्म जब वंश पर अवलम्बित हो गया और उसमें नीच-ऊँच का भेदभाव घुस गया तो ब्राह्मण दुर्गुणी होने पर भी पूजा जाने लगा और शूद्र सद्गुणी होने पर भी दुत्कारा जाने लगा। जहाँ गुणों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का वर्चस्व समाप्त हो जाय और अकारण ही लोगों को मान या अपमान मिलने लगे तो वह समाज अपनों की और दूसरों की दृष्टि में अधःपतित होगा ही।

ओछा तत्त्व-दर्शन अपनाये रहने वाला व्यक्ति और समाज कभी भी ऊँचा नहीं उठ सकता। दर्शन ही प्रेरणाओं का आधार है। उसी के अनुरूप विचारणायें, आकांक्षायें और क्रियायें उत्पन्न होती हैं। दर्शन ही व्यक्ति को ढालता है और उसी ढाँचे में समाज का कलेवर खड़ा होता है। हम अपने समाज और संसार को समर्थ, समृद्ध और सुविकसित बनाना चाहते हों तो उसका सर्वप्रमुख उपाय यही है कि वर्तमान दार्शनिक विकृतियों का परिशोधन किया जाय।

यदि इस स्थिति को सुधारा, सँभाला और बदला न गया तो भावी परिस्थितियाँ दिन-दिन अधिक भयावह होती चली जायँगी। वैयक्तिक जीवन में आदर्शवादिता और उत्कृष्टता उत्पन्न करने वाला जब प्रकाश ही बुझ जायगा तो अन्धकार में भटकने वाला दुर्दशाग्रस्त ही होगा। लोग बुराई की ओर बढ़ेंगे और बुरी परिस्थितियाँ पैदा करेंगे। इससे सर्वत्र दुर्गन्ध और दुर्गति ही दृष्टिगोचर होगी और हम सब पारस्परिक विद्वेष, असहयोग एवं छल-दम् की आग में जलकर सामूहिक आत्म-हत्या कर लेंगे।

इस संकट का समाधान एक ही है वह है परिष्कृत अध्यात्म का उन्नयन। मानवीय गरिमा इस ओर आशा भरी दृष्टि से निहारने लगी है और विचारशील लोग वर्तमान परिस्थितियों में अध्यात्म की महत्ता स्वीकारने लगे हैं। जन आकांक्षायें जिस दिशा में चल पड़ती हैं। उधर समुचित प्रेरणायें, प्रकाश, मार्गदर्शन और ईश्वरीय व्यवस्थायें भी कार्य करने लगती हैं। इसे चाहे युग सत्ता के अभ्युदय की बात कहें या प्रकृति की व्यवस्था, जब एक पौध जराजीर्ण हो जाती है तब वह नष्ट होती ही है और उसके स्थान पर नई पौध अंकुरित होती है। अध्यात्म का पुनरुत्थान इसी रूप में होने वाला है।

सन्त विनोबा की भविष्यवाणी नवयुग के अवतरण की पृष्ठभूमि में अक्षरशः सत्य होकर रहेगी यही विश्वास किया जाना चाहिए। साम्प्रदायिकता झीनी पड़ती जायेगी और उसमें से केवल उपयोगी धर्म को चुनकर शेष कूड़े करकट को बुहारकर एक तरफ फेंक दिया जायगा। परिष्कृत धर्म—अध्यात्म-ही मानव का वास्तविक मार्ग-दर्शन करेगा। उसी आधार पर उसकी आस्थाओं का परिष्कृत पुनर्निर्माण होगा।

दूसरा पक्ष है राजनीति के स्थान पर विज्ञान की स्थापना का। यह परिवर्तन भी सम्प्रदाय और धर्म के बीच पड़े हुए व्यवधान को सुधारने की तरह ही नितान्त आवश्यक हो चला है। राजनीति का उद्देश्य है परिष्कृत समाज व्यवस्था के लिए आधार उत्पन्न करना। व्यक्ति को समाज के लिए और समाज को व्यक्ति के लिए उपयोगी बने रहने की पृष्ठभूमि विनिर्मित करते रहना ही शासनतन्त्र की स्थापना का मूल प्रयोजन है। राजनीति का अर्थ है शासन का समुचित मार्गदर्शन करना और उसके लिए उपयोगी नीतियों, परिस्थितियों, साधनों एवं व्यक्तियों का जुटाना। भूतकाल में राजनीति भी धर्म का एक अंग था और वैयक्तिक चरित्रनिष्ठा एवं सामाजिक सुव्यवस्था में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करती थी। लोकमंगल, विश्वशान्ति एवं व्यक्तित्व विकास के लिए उसका योगदान असाधरण रहता है। इसीलिए धर्म तन्त्र के पश्चात राजतन्त्र को लोकमंगल का दूसरा आधार समझा जाता था। मनीषियों ने धर्म और राजनीति को एक दूसरे का पूरक कहा है और गाड़ी के दो पहियों की तरह पारस्परिक सहयोग से आत्मिक एवं भौतिक प्रगति की उभयपक्षी सुव्यवस्था करने के लिए उनकी उपयोगिता को स्वीकारा सराहा है।

पर आज तो नक्शा ही बदला मालूम पड़ता है। चन्द साधनसम्पन्न व्यक्ति अपना वर्चस्व बढ़ाने और वैभव कमाने के लिए राजसत्ता पर हाबी होते हैं और लोकहित की आड़ में अपनी महत्वाकांक्षाएँ पूर्ण करते हैं। शासन की नीति वर्गीय अथवा क्षेत्रीय स्वार्थों की रहती है। देश और जाति के लाभ का आकर्षक नारा लगाकर पड़ोसियों के शोषण, उत्पीड़न की योजनायें बनती हैं। फलस्वरूप विक्षोभ और विद्रोह की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। शीत युद्ध अथवा अग्नियुद्ध के छोटे-बड़े विस्फोट आये दिन खड़े होते रहते हैं। बहुत बड़े प्रचार तन्त्र सरकारों के हाथ में हैं इसलिए वे अपने गुणानुवाद गाने और जनता पर अपने क्रिया-कौशल की छाप जमाकर समर्थन प्राप्त करने का ताना बाना बुनती रहती हैं। इसमें आंशिक सफलता भी मिलती है पर साथ ही पर्दे के पीछे छिपी विद्रूपता का भी रहस्योद्घाटन होता रहता है। राजनीति के क्षेत्र में जो कुछ किया जा रहा है वह लोकोपयोगी है अथवा शासकीय गुट के लोगों के स्वार्थ साधन के लिए ? इसका विश्लेषण अब खुलेआम होता है। शासन के सदुद्देश्य पर आमतौर से आक्षेप किये जाते हैं और उसके बहिरंग एवं अन्तरंग स्वरूप में अन्तर देखा जाता है। ठीक यही बात राजनीति के क्षेत्र में काम कर रहे लोगों के सम्बन्ध में दिखाई देती है। उनके चरित्र और व्यक्तित्व को कदाचित् ही असन्दिग्ध माना जाता है। चापलूसों द्वारा मुँह सामने स्वार्थ साधन के लिए उन्हें प्रशंसा-प्रतिष्ठा भी भरपूर मिलती है पर साथ ही उनके बारे में सन्देह और अविश्वास भी कम नहीं होता। यही कारण है कि राजनीति के मन्च पर आज पूरी तरह चमकने वाले लोग कल जब सत्ता च्युत होते हैं तो पाते हैं कि वे अपना व्यक्तित्व खो चुके। लोकश्रद्धा उनसे कोसों दूर चली गई।

यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति अकारण ही नहीं है। संसार भर में सम्प्रदायों ने अपनी उपयोगिता की अपेक्षा अनुपयोगिता ही अधिक सिद्ध की है। ठीक इसी प्रकार राजनीति का—सत्ता शासन का—जो ढाँचा खड़ा है उससे सर्वसाधरण का नहीं—सत्ताधारी गुटों का ही हित साधन हुआ देखा जाता है। प्रजातन्त्रवादी देशों के बारे में कहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाता है कि वहाँ जनता पर जनता के द्वारा शासन किया जाता है पर वास्तविकता प्रायः इसके विपरीत ही होती है। जनता में शासन कर सकने योग्य विवेक बुद्धि और दूरदर्शिता उत्पन्न करना प्रजातन्त्री शासन का पहला कर्तव्य होना चाहिए ताकि वे मतदान का सही उपयोग कर सकें। इस दिशा में कुछ किया नहीं जाता वरन् तरह-तरह के प्रचारात्मक एवं प्रलोभनात्मक हथकण्डे खड़े करके 'कुशल' लोगों द्वारा जनमत का प्रवाह अपनी ओर मोड़ लिया जाता है। जब तक यही परिस्थिति रहे तब तक 'जन राज्य' कहा भले ही जाता रहे पर वास्तविकता वैसी होती नहीं। संगठन के, साधनों के, प्रचार के बलबूते सत्ता को अमुक वर्ग हथिया लेता है और फिर अपने समर्थकों का परिपोषण करने के लिए दुरंगी-बहुरंगी चालें चलता रहता है। देश-देश के बीच, वर्ग-वर्ग के बीच खाई का निरन्तर चौड़ी होते जाना—निर्माण की अपेक्षा ध्वंस के साधन जुटाने में अधिक उत्साह का होना, यह बताता है कि 'राज सत्ता' अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकने में असमर्थ, असफल होती चली जा रही है। राजनीति को बारांगना का—वेश्या का—जो दर्जा दिया गया था अब उससे भी गर्हित पदवी उसे देने की आवश्यकता पड़ रही है।

फिर शासन का विकल्प क्या हो ? राजनीति का स्थान कौन ग्रहण करे ? इस प्रश्न के उत्तर में सन्त विनोबा का उत्तर है—'विज्ञान।' राजनीति को भी सम्प्रदायों की तरह ही परिष्कृत किया जाना चाहिए और उसके स्थान पर विज्ञान प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए।

यहाँ भी इस भ्रम की गुंजायश है कि फिजिक्स, केमिस्ट्री, प्रभृति साइन्स की यान्त्रिक क्रिया-प्रक्रियाओं को ही साइन्स माना जाता है। यह भौतिक पक्ष भी साइन्स का एक अत्यन्त छोटा अंग है और इसका उपयोग भी जनहित के दूरगामी परिणामों को देखकर ही किया जाना चाहिए। आज वैज्ञानिक विकास का उपयोग जिस प्रकार मनुष्य को अपंग, अनैतिक और विलासी बनाने में हो रहा है वह नहीं होना चाहिए। सिनेमा की-अणु आयुधों की प्रगति ने संसार को संकट में फँसाया ही है उबारा नहीं। ऐसी अनेक धाराएँ जिनमें प्रयुक्त हो रही हैं वैज्ञानिक उपलब्धियों को नियन्त्रित किया जाना चाहिए और उनकी दिशा बदली जानी चाहिए।

किन्तु सन्त विनोबा की भविष्यवाणी का तात्पर्य इस यान्त्रिक उपलब्धियों के सदुपयोग तक सीमित नहीं है। वे विज्ञान का अर्थ 'विवेक' के अर्थ में करते हैं। तथ्यों को प्रधानता दी जाय। औचित्य को आश्रय मिले। न्याय की प्रतिष्ठापना हो। सत्य का अवलम्बन ग्रहण किया जाय। यही है वह विज्ञान जिसे 'विशेष ज्ञान' के रूप में-ब्रह्म विद्या के रूप में तत्वदर्शियों ने समझा और समझाया है।

विज्ञान से सन्त विनोबा का जो प्रयोजन है उसे हम आधुनिक मनीषियों की कुछ व्याख्याओं के आधार पर और भी अधिक स्पष्टता के साथ समझ सकते हैं।

'कामन सेन्स आफ लाइफ' ग्रन्थ के लेखक जेकोव ब्रोनोवस्की ने विज्ञान को चिन्तन का एक समग्र दर्शन माना है और कहा है—"जो चीज काम दे उसकी स्वीकृति और जो काम न दे उसकी अस्वीकृति ही विज्ञान है।" इस सन्दर्भ में वे अपनी बात को और भी अधिक स्पष्ट करते हैं-विज्ञान की यही प्रेरणा है कि हमारे विचार वास्तविक हों-उनमें नई-नई परिस्थितियों के अनुकूल बनने की क्षमता हो, निष्पक्ष हो—तो वह विचार भले ही जीवन के, संसार के किसी भी क्षेत्र का क्यों न हो 'विज्ञान' माना जायगा। ऐसी विचारधारा वैज्ञानिक ही कही जायगी।"

वैज्ञानिक और राजनीतिज्ञ की तुलना करते हुए—'प्रिसिशन ऑफ साइन्स एण्ड कन्फूशन ऑफ पालिटिक्स' पुस्तक के लेखक जेम्स रस्टन कहते हैं वैज्ञानिक अपने साधनों की सामर्थ्य जानता है, उस पर नियन्त्रण रखता है। वह अपने साध्य का, साधनों का निर्धारण तथ्यों के आधार पर करता है। इसके बाद निर्धारित प्रक्रिया का संचालन कुशल प्रशिक्षित लोगों के हाथ सौंपता है। राजनीतिज्ञ की गतिविधियाँ इससे उलटी होती हैं—उसे न तो शक्ति की थाह लेनी है और न साधनों की। उसके निर्णय न तो तथ्यों पर आधारित होते हैं और न दूरदर्शिता पर। प्रायः दम्भ, अहंकार, द्वेष सीमित स्वार्थ और सनेक ही राजनीति पर छाये रहते हैं। इसलिए वह जुआरी की तरह अन्धे दाँव लगाता है और अन्धे परिणाम ही सामने उपस्थित पाता है। राज्य सत्ता सदा क्रिया कुशल और दूरदर्शी लोगों के हाथ में नहीं होती—वरन् ऐसे लोगों के हाथ में भी होती है—जो उसके सर्वथा अयोग्य होते हैं। आवेश में वह, काम तो बड़े-बड़े शुरू कर देते हैं पर कठिनाइयों और परिस्थितियों पर नियन्त्रण न रख सकने के अभाव में उन्हें अधिकतर असफल ही रहना पड़ता है। वैज्ञानिक अपनी भूलों के खतरे को हर घड़ी समझता देखता रहता है जबकि राजनीतिज्ञ के कदम मद्यपायी की तरह अनिश्चित दिशा में उठते हैं और अनियन्त्रित रहते हैं।

एच० जी० वेल्स प्रभृति अनेक विश्वविख्यात विचारक इसी तरह सोचते रहे हैं कि अन्धी राजनीति के हाथ में जो मानव जाति के भविष्य निर्माण का सूत्र चला गया है वह वापिस लिया जाना चाहिए और शासन का आधार विज्ञान होना चाहिए। विज्ञान अर्थात् सुनिश्चित साधनों का सर्वोत्तम व्यक्तियों द्वारा श्रेष्ठतर आदर्शों के लिये उपयोग।

संसार में दो ही शक्तियाँ मानव जाति के भाग्य का निर्माण निर्धारण करती हैं—एक धर्म दूसरा शासन। धर्म का नियन्त्रण भावनात्मक क्षेत्र पर है, उसके आधार पर चिन्तन परिष्कृत होता है। इसलिए इस क्षेत्र में भरी हुई विकृतियों को असत्य माना जाना चाहिए और उनका अविलम्ब परिष्कार किया जाना चाहिए। राज सत्ता का नियन्त्रण भौतिक वस्तुओं और परिस्थितियों पर होता है। उनके उचित उत्पादन, उपयोग, वितरण एवं मानवी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मर्यादाओं में पालन का उत्तरदायित्व शासन पर होता है। वह भ्रष्ट होगा तो संसार में विभीषिकायें और विकृतियाँ बढ़ेंगी फलस्वरूप शोक-सन्ताप के दुर्भाग्यपूर्ण संकट आये दिन बरसते रहेंगे।

सम्प्रदाय धर्म को एवं अध्यात्म से परिष्कृत किया जानां चाहिए। राजनीति का सूत्र-संचालन सनक एवं अहंता के हाथों में नहीं, तथ्य और सत्य की संगति मिलाकर लोकमंगल की व्यवस्था कर सकने वाली दूरदर्शिता के हाथों सौंपा जाना चाहिए। यही है सन्त विनोबा का अभिमत-भविष्य कथन। बदलती परिस्थितियों में भव्य समाज के नव निर्माण के लिए यह परिवर्तन अभीष्ट भी है और अवश्यम्भावी भी।

आध्यात्मिक साम्यवाद पर टिकी नवयुग की आधारशिला

आजकल संसार की राजनीति बड़ी उलझी हुई है। कूटनीतिक दाँवपेचों के आधार पर शक्तिशाली देश अपनी प्रभुता को बढ़ाने के लिए चालें चल रहे हैं। एक को दूसरे पर विश्वास नहीं, एक ओर संधियों और समझौते कागज पर हस्ताक्षर होते हैं दूसरी ओर उनका उल्लंघन शुरू हो जाता है। दूसरों को गिराकर स्वयं सम्पन्न बनना आज की राजनीति का प्रमुख आधार है।

एक ओर संसार के राष्ट्रों में इस प्रकार की खींचतान चल रही है दूसरी ओर भीतरी शान्ति व्यवस्था भी कायम नहीं हो रही है। चालाक, धूर्त और लुटेरे किसी प्रकार धन की बहुत बड़ी मात्रा अपने पास जमा करके उसके द्वारा शक्तिशाली बनते हैं, वे प्रजा को चूसते हैं और राजसत्ता को अपने पैसे के बल पर अपने पक्ष में मिलाये रहते हैं फलस्वरूप गरीब जनता को उचित मात्रा में राजकीय संरक्षण नहीं मिलता और वह मानवोचित उन्नति के साधनों से वंचित रह जाती है। अधिकांश देशों की जनता इसी प्रकार के शासन तंत्रों के नीचे पिस रही है। कहने को वे भले ही स्वतंत्र या प्रजातंत्र कहे जायँ पर वहाँ वैसे लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते जैसे कि इस प्रकार के तंत्रों के अन्तर्गत होने चाहिए।

इस अव्यवस्था का कारण है शासन तंत्रों पर अध्यात्मवाद का, धर्म का नियंत्रण न होकर-उनका धूर्तता पूर्ण एवं कूटनीति प्रधान होना। प्राचीनकाल में राजा शासन तो करता था पर उस पर नियंत्रण ऋषि कल्प गुरुओं का रहता था। रघुवंशी राजाओं की कई पीढ़ियों पर महामुनि वशिष्ठ का अंकुश रहा। वे प्रजा के हित को, धर्म आचरण को, न्याय को प्रधानता देते हैं। यही कारण था कि एक तंत्र राज्य होते हुए भी शासन व्यवस्था ऐसी आदर्श थी कि रामराज्य को आज भी सराहा जाता है। दूसरी ओर आज के प्रजातंत्र हैं, जिनकी जनता कष्ट और कठिनाइयों के बीच पिसी जा रही है।

आजकल चारों ओर आसुरी शक्तियों का बोलबाला है। आध्यात्मिक शक्ति हुकूमतों के पास नहीं है। वे मस्त जंगली हाथियों की तरह निरंकुश होकर स्वच्छन्द आचरण करती हुई विचरण करती हैं। भीतरी शासन व्यवस्था और विदेशों से संबंध के लिए किन्हीं आदर्शों का ध्यान नहीं रखीं वरन् शासकों की कूटनीतिक महत्वाकांक्षाएँ ही प्रधान रूप से कार्य करती हैं, जिसके कारण असंख्य प्रजाजनों को युद्ध आदि की भयंकर विपत्तियों में पिसना पड़ता है।

वैज्ञानिक उन्नति तथ साधन-सामिग्री को बढ़ाकर जनता की सुख-शान्ति की आशा आज के राजनैतिक नेता करते हैं पर यह मृगतृष्णा कभी पूरी होने की नहीं। क्योंकि यदि किसी वस्तु का सदुपयोग न किया जाय तो अच्छी से अच्छी वस्तु भी हानिकारक बन जाती है। विद्या, बुद्धि, धन, शास्त्र, बल, विज्ञान आदि के बढ़ जाने पर भी जब तक संसार में शान्ति नहीं हो सकती जब तक कि शासकों के तथा प्रजाजनों के मन में धर्म बुद्धि उत्पन्न न हो और वे धूर्ततापूर्ण कूटनीति को छोड़कर आत्मिक आधार पर अपने आदर्शों का निर्माण न करें।

संसार की सुख-शान्ति की ठेकेदारी आज चंद मुट्ठी भर राजनैतिक नेताओं के हाथों में चली गई है। वे चाहें तो जरा-सी बात के लिए लाखों-करोड़ों मनुष्यों को मक्खी की मौत मरवा डाल सकते हैं, उन्हें बे-घरवार बना सकते हैं और यदि वे चाहें तो ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं जिसमें करोड़ों आदमी सुख-शान्ति का जीवन व्यतीत करें। इतनी बड़ी शक्ति हाथ में रखने वाले लोगों का आत्मिक धरातल ऊँचा होना चाहिए या उनके ऊपर ऊँचे आत्मिक धरातल वाली आत्माओं का नियन्त्रण होना चाहिए, जिससे वे महान राजसत्ता का उपयोग विश्वमानव की सेवा के लिए ही करें।

जिनके हाथ में राज-सत्ता है उन्हें विश्वमानव की सुख-शान्ति को ध्यान में रखते हुए अपने तुच्छ कूटनीतिक दायरे से ऊपर उठना चाहिए और जिन प्रजाजनों को अपना भाग्य निर्माण करने के लिए वोट का अधिकार मिला हुआ है, उन्हें अपनी सम्मति का उपयोग ऐसे लोगों के पक्ष में करना चाहिए जो भौतिक खींचतान की अपेक्षा उच्च आदर्शों में विश्वास रखते हों।

यों तो विकृतियों से भरे अंधकार युग की लम्बे पाँच हजार वर्षों की अवधि में जो अनाचार मानव स्वभाव में सम्मिलित कर दिया है। उसने एक परम्परा जैसा रूप धारण कर लिया है। ऐसे व्यामोहग्रस्त लोकमानस को बदल कर न्याय एवं अनौचित्य के अनुरूप विवेक सम्पन्न बनाना निस्संदेह कठिन है। पर कठिन काम भी मनुष्यों ने ही किये हैं। ईश्वर की इच्छा और मनुष्यों के प्रबल पुरुषार्थ का सम्मिलित स्वरूप बड़े आश्चर्यजनक परिवर्तन उत्पन्न करता रहा है। उसे भी उसकी पूर्ति होना कठिन भले ही लगे पर असम्भव जरा भी नहीं है।

नये विश्व का नया निर्माण 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श की आधारशिला पर होगा। इस आदर्श के अनुरूप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही नये युग का नया समाज निर्मित होगा। वर्तमान युग में देखते हैं कि मनुष्य के बीच विलम्भव और विषमता की चौड़ी खाई फैली पड़ी है, जो उसे एक दूसरे के समीप नहीं आने देती। यह विखराव ही मनुष्य की संघ शक्ति को छिन्न-भिन्न किये देता है। जबकि सिद्धान्ततः सभी स्वीकार करते हैं कि मनुष्य समाज को एक सूत्र में आबद्ध रहना चाहिए। आत्मीयता और स्नेह के सूत्रों में बँधकर रहना चाहिए।

आहुर वाक्य भी है 'सघंशक्ति कलियुगौ।' एकता की शक्ति अपार है। तिनकों से मिलकर जब रस्सा बनता है तो उससे मदोन्मत्त हाथी भी कसे जा सकते हैं। बूँद-बूँद मिलकर समुद्र बनने की उक्ति प्रसिद्ध है। एकाकी, तुच्छ इकाइयों का मूल्य नगण्य है पर जब वे मिलकर एकात्म हो जाती हैं तो उनका स्वरूप और प्रभाव देखते ही बनता है। बिखरी पड़ी ईंटों का कोई महत्त्व नहीं, पर जब वे एकत्रित होकर विशाल भवन का रूप धारण करती हैं तो उनका महत्त्व और उपयोगिता कुछ और ही होती है। एक सैनिक की शक्ति नगण्य है पर उनका समूह विशाल सेना का रूप धारण करके कुछ और ही चमत्कार दिखाता है। एकता की शक्ति अविदित नहीं है पर खेद इसी बात का है कि मानव-जाति ने छुट-पुट संगठन बनाने के अस्त-व्यस्त प्रयत्न तो किये पर जनसमाज की एकात्मकता एवं संघबद्धता पर ध्यान नहीं दिया। आधार और स्वार्थ अलग-अलग होने से वे वर्ग, वर्ण, भाषा, देश, सम्प्रदाय आदि के आधार पर बने छुट-पुट संगठन परस्पर टकराते रहे और विभीषिकायें उत्पन्न करते रहे। सच्चा और स्थिर लाभ तो तभी हो सकता था जब वे समग्र रूप से एक आधार पर संगठित होते। समय आ गया कि अब उस भूल का परिमार्जन किया जाय।

मनुष्य की शक्ति एकता से ही बढ़ेगी। समाज की उन्नति एकता पर निर्भर है। विश्व से शांति की स्थापना के लिए एकता नितान्त आवश्यक है। यह एकता हमारे नवनिर्माण प्रयोजनों में सर्वप्रथम है। इस पुण्य-प्रयोजन के लिये अग्रसर होते हुए हमें विश्वव्यापी एकता के लिये कठोर प्रयत्न करना होगा। धर्म, संस्कृति, भाषा और शासन इनके बीच जो खाइयाँ बन गई हैं, उन्हें पाटना है। विभिन्नताओं के निराकरण का, अनेकता का एकरूपता के लिये प्रयत्न करना है।

मनुष्य-मनुष्य के बीच विभेद और प्रथकता खड़ी करने वाली उन खाइयों पर क्रमशः विचार करें। सर्वप्रथम धर्म को ही लें। आजकल कितने ही धर्म-सम्प्रदाय प्रचलित हैं। प्रश्न उठता है कि धर्मों की यह अनेकता क्यों? जब ईश्वर एक है--उसका संसार एक है--उसके पुत्र एक हैं--ईश्वर का संदेश एक है--उद्देश्य एक है तो फिर धर्म भी एक ही होना चाहिए। अनेक धर्म--जो परस्पर टकराते हैं--एक दूसरे का खण्डन करते हैं एक दूसरे से विपरीत दिशायें दिखाते हैं--ईश्वर प्रेरित नहीं हो सकते। हो सकता है सभी के मूल में धर्म की अनादि आस्थाओं का समावेश रहा हो पर पीछे चलकर उनमें इतने अधिक जंजाल जुड़े कि सत्य से बढ़कर असत्य और विवेक से बढ़कर अविवेक उनमें जुड़ गया। यदि ऐसा न होता तो धार्मिक कहे जाने वाले लोगों का चरित्र एवं स्वभाव तो आदर्श रहा होता। देखने में ऐसा कहाँ आता है ? आज तो हर धर्म, सम्प्रदाय वाला यह माने बैठा है कि अपने वर्ग की क्रिया-प्रक्रियाओं को अपनाकर उसने धर्म, आस्तिकता और स्वर्ग-मुक्ति का ठेका ले लिया। अपने वर्ग की मान्यताओं को सत्य और दूसरों की असत्य सिद्ध करने के लिये धर्मध्वजी सारा बुद्धि कौशल व्यय करते रहते हैं। शास्त्रार्थों के अखाड़ों में आये दिन कुश्तियाँ होती देखी जा सकती हैं। वाक् वाण और कागजी गोले चलते रहते तो भी सहन किया जाता पर इस वेदी पर कितने निरीह प्राणियों का रक्त निर्दयता के साथ बहता रहा है, इसका स्मरण करके रोमान्च खड़े हो जाते हैं। दूसरे धर्म वालों पर अपने धर्म की गरिमा थोपने के लिये इतना नर-संहार अब तक इस दुनिया में हुआ है, जितना समस्त युद्धों में भी नहीं हुआ। क्या यही स्थिति उपयुक्त है ? क्या इसे ही बने रहने देना चाहिए। विभिन्नताओं की उलझनें सत्य तक पहुँचने के लिये भारी बाधा हैं। आज का धर्म जंजाल इतना उलझा हुआ है कि वह वास्तविक धर्म तक आत्मा को पहुँचने देने में सहायक नहीं, बाधक ही सिद्ध हो रहा है।

विवेक का तकाजा है कि धर्म की एकरूपता होनी चाहिए। समस्त विश्व का एक ही धर्म होना चाहिए। उसमें सत्य, न्याय, नीति, सदाचार, शिष्टाचार, आदर्श, औचित्य, उदारता, स्नेह, सद्भावना, संतोष, संयम जैसी मान्यताओं को प्रश्रय मिलना चाहिए। मानवीय आस्थाओं और प्रक्रियाओं को जो पशुता के स्तर से ऊँचा उठाकर देवत्व की दिशा में विकसित कर सके वही विश्व-धर्म हो सकता है। अगले दिनों ऐसे ही विश्व धर्म का विकास होना है। संसार के कोने-कोने में रहने वाले एक ही प्रकार के धर्म को मानेंगे। एक ही प्रकार की पूजा पद्धति से सब का काम चल जायगा। एक ही धर्म-मंच पर सब लोग इकट्ठे हुआ करेंगे। धर्म के नाम पर व्यय होने वाले समय, श्रम तथा धन इन्हीं प्रयोजनों में लगेगा। ऐसा विवेकपूर्ण धर्म, मनुष्य-मनुष्य के बीच प्रेम और आत्मीयता उत्पन्न करने तथा अन्तःकरण के दिव्य तत्वों के उत्कर्ष में सहायक होगा। धर्म के नाम पर विराजमान मूढ़ मान्यताओं और व्यर्थ आडम्बरों में लगी हुई आज की ज्ञानवान शक्ति जब विश्व-धर्म की विवेकसम्मत आदर्शवादी प्रतिष्ठापनाओं में नियोजित होगी, तब उसके रचनात्मक परिणाम इतने शानदार होंगे कि यह संसार स्वर्ग जैसा दिखाई देने लगेगा।

विश्व संस्कृति की एकता भी वैसी ही आवश्यक है जैसी विश्व-धर्म की। आज संस्कृति भी धर्म में जुड़ गई है। वस्तुतः वे दोनों अलग हैं। रीति-रिवाज, आचरण, शिष्टाचार, आचार-व्यवहार, रहन-सहन, तर्ज, तरीका यही संस्कृति के अंग हैं। इनमें प्रथकता से रहने से मनुष्य-मनुष्य के बीच प्रथकता और परायेपन के भाव उठते हैं। अब इन्हीं आधारों पर जातियाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनती चली जा रही हैं। जो लोग अपनी भाषा बोलते हैं, अपने जैसी पोशाक पहनते हैं, वेश-विन्यास रखते हैं, आहार-विहार करते हैं, रीति-रिवाज मानते हैं, उनके साथ सहज स्नेह हो जाता है और भिन्न प्रक्रियाओं वाले पराये लगते हैं। यह अपने पराये की प्रक्रिया संसार में भारी विद्वेष एवं विशृंखलता पैदा कर रही है। भारतवर्ष जाति-पाँति और धर्म-सम्प्रदायों के नाम पर इतना अधिक विभक्त है कि सर्वत्र उसकी हँसी उड़ाई जाती है और आत्मिक दुर्बलता में ग्रसित पिछड़ा हुआ देश माना जाता है। यहाँ तक कि राजनीति तक पर जाति-पाँति हावी है। चुनावों में जीतना अब बहुत करके इसी आधार पर होता है। भले ही कोई बाहर से इसका खण्डन करे पर जानते सब हैं कि वस्तुस्थिति यही हैं।

सुस्थिर मानवीय एकता के लिये सांस्कृतिक एकता आवश्यक है। जीवनयापन की विभिन्न दिशाओं में हमें सार्वभौम एकता स्थापित करनी ही पड़ेगी। पोशाकें इतनी अधिक तरह की न हों, एक ही तरह के वस्त्र सब लोग पहनें तो कपड़े की सिलाई का तीन चौथाई व्यय बच सकता है और वह बचत शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के सम्वर्धन में लगाई जा सकती है। त्यौहार की एकता हो तो सारे समाज में एक ही समय एक-सा उल्लास जगता दिखाई पड़े। विवाह-शादियों के रीति-रिवाज एक जैसे सरल और सस्ते हों तो इन व्यर्थ आडम्बरों में शक्ति बच जाय और उसका उपयोग परिवारों का स्तर ऊँचा उठाने में किया जा सके। सांस्कृतिक एकता के बिना विश्व-मानव की एकता सुस्थिर न बन सकेगी। विज्ञान और शिक्षा की प्रगति ने संसार को बहुत छोटा बना दिया है। सुदूर द्वीप, महाद्वीप अब गली-मुहल्ले की तरह समीप आ गये हैं। द्रुतगामी वाहनों ने दूरी सम्बन्धी कठिनाइयों को हल कर दिया है। पिछले दिनों जब यह परिस्थितियाँ न थीं, सुदूर देशों के निवासी परस्पर परिचय के अभाव में अलग-अलग ढंग-ढर्रे को, अलग-अलग रीति-रिवाजों को अपनाये रहने के लिये विवश थे। पर अब वैसी परिस्थिति नहीं रही। संसार समीप आ रहा है तो हमारी संस्कृति भी समीपवादी ही होनी चाहिए। अब प्रथकताओं पर अड़े रहने का कोई कारण नहीं। संसार भर में फैली हुई विभिन्न संस्कृतियों में से चुने हुए सर्वश्रेष्ठ, सर्वोपयोगी अंश लेकर एक सर्वांगपूर्ण सार्वभौम संस्कृति का निर्माण अब होने ही वाला है। युग की माँग ऐसी ही है।

संसार में किसी भी कोने में रहने वाले व्यक्ति को यह अनुभव करना होगा कि वह विश्व परिवार का एक घटक है। विश्व संस्कृति की एक इकाई के रूप में ही उसे अपना रहन-सहन एवं प्रथा-परम्पराओं को अपनाना है। जिस प्रकार छोटे-छोटे वर्गों में एक ही प्रकार के रिवाज चलते हैं, उसी प्रकार जब समस्त विश्व का एक सम्मिलित वर्ग होगा, एक ही समाज बनेगा, एक ही कुटुम्ब का आचरण होगा तो प्रथा-परम्पराओं में भी एकरूपता उत्पन्न करनी होगी। रुचि भिन्नतायें रह सकती हैं। आचार-विचार, व्यवहार और शिष्टाचार की सामान्य रीति-नीति और प्रथा-परम्परा समस्त विश्व में एक जैसी होनी चाहिए।

कहना न होगा कि इस दृष्टि से भारतीय-धर्म, अध्यात्म तथा संस्कृति विश्व-मानव की सार्वभौम आवश्यकतायें पूरी करने में भली प्रकार समर्थ है। पिछले पाँच हजार वर्षों में जो विकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं, यदि उन्हें निकाल दिया जाय तो विशुद्ध भारतीय मान्यतायें इसी स्तर की हैं, मानो किसी ने समस्त मानव जाति के लिए वास्तविकता, उपयोगिता और औचित्य का ध्यान कर ही विनिर्मित किया हो। निकट भविष्य में जिस नवयुग को लाने की साधना चल रही है, वही प्राचीनकाल में चिरकाल तक यहाँ विद्यमान रहा है और एकता, समता और ममता की गंगा-यमुना, सरस्वती यहाँ बहती रही हैं। अस्तु, भारतीयता में विश्व-धर्म एवं विश्व-संस्कृति के बीज विद्यमान परिलक्षित हैं तो इसमें आश्चर्य की कुछ बात नहीं है।

विश्व-भाषा की आवश्यकता वसुधैव कुटुम्बकम् की स्थिति उत्पन्न करने के लिए अनिवार्य है। वह कैसा कुटुम्ब जिसके सदस्य एक दूसरे की बोली न समझें, परस्पर बातचीत तक न कर सकें, विचारों के आदान-प्रदान के लिए भाषा ही माध्यम है। भाषाओं की भिन्नता मनुष्य को एक सीमित समाज एवं क्षेत्र में संकुचित करती है। विश्व के विशाल ज्ञान-भण्डार को सरलतापूर्वक उपलब्ध करने, हर विश्व नागरिक को निर्बाध गति से विचार-विनिमय करने के लिए एक विश्व भाषा की आवश्यकता है। अन्यथा मानवता टुकड़ों में, क्षेत्र और प्रान्तों में विभक्त बनी सड़ती, गलती रहेगी। हम भारतवासी एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता अनुभव करते हैं, इसी प्रकार यदि विश्व नागरिकता का--'वसुधैव कुटुम्बकम्' का विस्तार होता है तो उसके आधार भी तैयार करने होंगे। इन आधारों में एक विश्व-भाषा का महत्वपूर्ण स्थान होगा।

समस्त विश्व के लिए एक ही भाषा में साहित्य छपने लगे तो वह कितना सस्ता और कितना उच्चकोटि का होगा, इसकी कल्पना मात्र से भारी उत्साह पैदा होता है। मनुष्य ने अब तक जो ज्ञान विभिन्न दिशाओं में संचित किया है, वह इतना अधिक है कि उसका उपयोग हमें सहज ही महत्वपूर्ण उपलब्धियों से लाभान्वित कर सकता है। पर खेद इसी बात का है कि वह ज्ञान भाषाओं की भिन्नताओं के कारण सीमित क्षेत्रों में बन्दी बना पड़ा है। यदि एक विश्व भाषा होती तो पुस्तकालयों के माध्यम से ऊँचे से ऊँचा ज्ञान सर्वसाधरण तक सहज ही पहुँच सका होता। संसार भर के लोग परस्पर पत्र-व्यवहार और विचारों का आदान-प्रदान कर सके होते। तब विश्व समस्याओं का हल ढूँढ़ सकना और एक देश के नागरिकों का अन्य देशवासियों के अति निकट पहुँच सकना सम्भव हो गया होता। विश्व की यह ज्वलन्त आवश्यकता हमें पूरी करनी ही होगी। संस्कृत भाषा में यह सारी विशेषतायें विद्यमान हैं, वस्तुतः किसी समय वह विश्व-भाषा ही थी और अगले दिनों अपने महान् गुणों के कारण यदि वह पुनः अपना स्थान प्राप्त करले तो यह तनिक भी आश्चर्य की बात न होगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विश्व शासन ही समस्त राजनैतिक तथा सामाजिक समस्याओं का हल कर सकेगा। यातायात के साधनों के अभाव में छोटे-छोटे सामन्ती राज्य शासनों की आवश्यकता रही होगी पर अब राष्ट्रवाद भी, प्रान्तवाद, जातिवाद जैसी ही संकीर्णता का प्रतीक बनता जा रहा है। अपने देश का लाभ करने के लिए, दूसरे देश का शोषण-उत्पीड़न करना भी अब देशभक्ति का एक अंग बन चला है। दूसरे देशों के साथ अन्याय करके भी अपने देश का लाभ करने वाला देशभक्तों की पंक्ति में बैठता और सम्मानित होता है। आज की अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति इसी आधार को अपनाये हुए है कि अपने देश का लाभ जैसे भी बने, वैसे किया जाय। युद्धों का मूल कारण यह राष्ट्रवाद के नाम पर पनप रही क्षेत्रीय संकीर्णता ही है। तस्कर व्यापार पनपने का कारण यही है। एक देश के पास उपयोग के पर्याप्त साधन हों और दूसरे देश वाले उससे वंचित रहे। एक क्षेत्र में विपुल सम्पन्नता और पड़ौस के क्षेत्र में विपुल विपन्नता रहे, इसका कारण विश्व-वसुधा एवं विश्व-वसुन्धरा को राष्ट्रवाद के आधार पर कृत्रिम रूप में खण्ड-खण्ड कर देना ही है।

यदि यह रेखायें मिटा दी जायँ और समस्त संसार एक राष्ट्र बन जाय, एक शासन के अन्तर्गत शामिल हो तो फिर युद्धों-महायुद्धों की विभीषिका सदा के लिए समाप्त हो जाय। एक प्रान्त में छोटे-छोटे अनेक जिले होते हैं, उनकी शासन व्यवस्था अलग-अलग रहते हुए भी एक केन्द्र से शासित रहती है, अतएव उनमें विग्रह, संघर्ष या युद्ध का कभी कोई अवसर नहीं आता। यदि एक विश्व-केन्द्र से संसार के समस्त राष्ट्रशासित हों तो उनके झगड़े विश्व-न्यायालय से तय होते रहेंगे। परस्पर लड़ने की कोई सम्भावना न रहेगी। आशंका, भय और अविश्वास से ग्रसित प्रत्येक राष्ट्र आजकल सुरक्षा के नाम पर जो विपुल धन व्यय कर रहा है, उसकी कोई आवश्यकता न रह जायगी। आजकल प्रायः एक चौथाई आय युद्ध कार्यों की शिक्षा व्यवस्था में लगती है। वह बच जाय तो उतने साधन मानवीय भ्रातृत्व एवं सुख-सुविधा के साधन जुटाने में लगाये जा सकते हैं और देखते-देखते यह संसार स्वर्गीय सुख-शांति से ओत-प्रोत हो सकता है।

विश्व-शासन के अन्तर्गत एक ही समाज का सहज विकास हो सकता है। आचार-संहिता, न्याय, नैतिकता के कानून एक से हो सकते हैं। व्यापार की निर्बाधता से गरीबी और अमीरी का–उत्पादन और अभाव का समान रूप से वितरण हो सकता है और प्रकृति के अनुदानों का समान लाभ उठाते हुए धरती के समस्त निवासी जीवनोपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति सहज ही कर सकते हैं। उन परिस्थितियों से आज की अगणित समस्याओं का हल जादू की तरह निकल सकता है और जिन शोक-संतापों से आज मानवता पीड़ित है उनका नाम-निशान मिट सकता है।

विश्व-व्यापी एकता और मानव भ्रातृत्व की एक मधुर कल्पना के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श को एक सरस स्वप्न मात्रा माना जाता है। समय आ गया कि इन कल्पनाओं और स्वप्नों को साकार बनाया जाय। एकता की उपयोगिता एवं आवश्यकता को यदि हम समझते, स्वीकार करते हैं तो उनके आधारों को भी ढूँढ़ना होगा। पलंग के चार पायों की तरह एकता के चार स्तम्भ हैं–धर्म, संस्कृति, भाषा, शासन। विश्व को एकता के सूत्र में आबद्ध करना हो तो इन चार आधारों में भी सार्वभौम स्तर पर एकता और एकरूपता भी उत्पन्न करनी ही होगी।

भिन्नता, प्रथकता और द्वेष उत्पन्न करने वाले चार कारणों की चर्चा ऊपर की जा चुकी है, उन कारणों का प्रभाव क्रमशः क्षीण करते चलना चाहिए। विश्वास करना चाहिए कि मनुष्य की अन्तःचेतना अगले दिनों विकसित होगी और ऋतम्भरा प्रज्ञा का विकास उन संकीर्णताओं को नष्ट करेगा जिसके कारण मानवीय शक्तियों का पिछले दिनों घोर दुरुपयोग होता रहा है। गायत्री महामंत्र के तत्व-ज्ञान को विकसित कर हम सार्वभौम विवेक को जाग्रत करने चले हैं। विश्वास करना चाहिए कि विवेकशीलता जैसे-जैसे विकसित होगी भिन्नताओं की भाषा में सोचने की अपेक्षा मानव मस्तिष्क एकता के आधार ढूँढ़ेगा और अपने प्रस्तुत साहस को जगाकर विश्व-बन्धुत्व के—वसुधैव कुटुम्बकम् के लक्ष्य को प्राप्त करके रहेगा।

असमानता ने मनुष्य जाति के बीच भारी खाई उत्पन्न की है और एकता की जड़ पर भयानक कुठाराघात किया है। ईर्ष्या और द्वेष की आग भड़काने का युद्ध और संघर्षों की विभीषिकायें उत्पन्न करने का— अपराध और पाप बढ़ाने का कारण यह असमानता ही है, जिसने एक ही समाज को असंख्य गुटों में विभक्त किया और अगणित प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न करके सरल-सौजन्य को बेतरह कुचल-मँसल डाला। सभी मनुष्य, भगवान् के समान प्रिय पुत्र हैं। सभी के कर्त्तव्य और अधिकार एक से हैं। सभी को प्रकृतिप्रदत्त अनुदानों का समान रूप से लाभ उठाने का अधिकार है। असमानता प्राकृतिक नहीं है, ईश्वर प्रदत्त नहीं है। उसका सृजन मानवीय दुष्टता और दुर्बुद्धि ने किया है। समय आ गया है कि उस भूल को सुधार कर हम खाई पाटें और पुल बाँधें।

विनाश लीला टाली जा सकती है

प्रस्तुत विभीषिकाओं का आत्यन्तिक समाधान है—मानवी अन्तराल का परिशोधन-परिष्कार, सदाशयतायुक्त व्यवहार। जब तक चिन्तन में भ्रष्टता भरी होगी, मानवी समुदाय में परिवर्तन आने वाला नहीं है। यही वह मूल स्रोत है जहाँ से अपराध, विग्रह, अलगाव, युद्धोन्माद, प्रकृति के साथ अनाचार जैसी विकृतियाँ जन्म लेती हैं। परिस्थितियाँ भी कुछ सीमा तक प्रस्तुत परिस्थितियों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लिये उत्तरदायी ठहरायी जा सकती हैं परन्तु गहराई में विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि यह दुर्गति वस्तुतः दुर्मतिजन्य है। यदि मनीषी समुदाय वस्तुतः सजग रहा होगा तो न पिछले दो विश्वयुद्ध होते, न ही वर्तमान विसंगतिपूर्ण सभ्यता का स्वरूप नजर आता। कला, लेखनी, वाणी, विज्ञान, वैभव जैसी सम्पदा के धनी ये मनीषी यदि चाहते तो सारे विश्व को नयी दिशा दे सकते थे। लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध के संहार भरे समापन से भी किसी को प्रेरणा नहीं मिली। इसे एक विडम्बना ही कहा जायगा।

फिर भी गत पाँच वर्षों में एक समुदाय विशेष में चेतना जागी व उमंगें उठी हैं कि विनाश की सम्भावनाओं को निरस्त करने के लिए सृजनात्मक प्रयास विश्व स्तर पर एकजुट होकर किये जाएँ। हडसन इन्स्टीट्यूट ने प्रायः १०० मूर्धन्य शोधकर्त्ताओं के सहयोग से ऐसे तथ्य एकत्रित किये हैं, जिनसे वर्तमान की गतिविधियों का पर्यवेक्षण करते हुए निकट भविष्य की सम्भावनाओं का प्रस्तुतीकरण किया जा सके। इस संस्थान ने विश्वविख्यात प्रकाशन 'दि ईयर २००० ए० फ्रेम—वर्क फार स्पेकुलेशन' प्रकाशित की है। उसमें कहा गया है कि सुविधा साधनों में तथा कौशल चातुर्य में पिछले दिनों वृद्धि अवश्य हुई है, पर साथ ही यह भी उतना ही सही है कि मनुष्य शरीरिक, मानसिक और नैतिक दृष्टि से निरन्तर पतन की दिशा में चला है। नशेबाजी जैसे दुर्व्यसन इतने बढ़े हैं एवं उनका खर्च उतना हो गया है जितने का कि अन्न खपता है। फलतः न केवल रोगों की संख्या बढ़ी है वरन् विक्षिप्त एवं अर्ध विक्षिप्तों की भी अप्रत्याशित बढ़ोत्तरी हो रही है। नई सन्तति में अविकसितों और विकलांगों का अनुपात भयावह गति से बढ़ रहा है तथा दाम्पत्य जीवन टूट रहा है। हर तीन विवाहों में से एक का साल भर के भीतर ही तलाक के रूप में विसर्जन हो जाता है। पाश्चात्य देशों में अवैध सन्तानों और गर्भपातों की धूम को देखते हुए लगता है कि दाम्पत्य जीवन की पवित्रता धीरे-धीरे एक मखौल खिलवाड़ बनती जा रही है।

आगे वे लिखते हैं कि वर्तमान ढर्रा तभी बदल सकता है जब समाज का अग्रणी बुद्धिजीवी समुदाय जागे, संघशक्ति के रूप में विकसित हो तथा मानवता को रचनात्मक दिशाबोध कराए। इसके लिए उन्हें अपनी वैभव की ललक, लिप्सा, स्वजनों-सम्बन्धी मोह छोड़कर समाज निर्माण के क्षेत्र में कूदना पड़ सकता है। जब तक यह समूह आगे नहीं आयेगा, परिस्थितियाँ बदलेंगी नहीं। जनता तो अनुकरण भर करती है। जब एक हिटलर अपने नाजीवाद को सारे जर्मनी पर थोपकर युद्धोन्माद का वातावरण पैदा कर सकता है तो अगणित-एक विचार वाले मनीषी मिलकर ऐसी परिस्थिति क्यों नहीं कर सकते जहाँ सब शान्ति से एक साथ रह सकें-विभीषिकाओं को निरस्त कर सकें।

ये शुभ चिन्ह इस बात का संकेत देते हैं कि विनाश अवश्यम्भावी नहीं है। सृजन सुनिश्चित हो सकता है यदि मानव के क्रिया-कलाप उस दिशा में अग्रसर होने लगें।

प्रस्तुत विश्व संकट में हमारा कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व

उन दिनों संसार भर में यह सर्वविदित था कि भारत स्वर्ण सम्पदाओं का स्वामी है। यहाँ साक्षात् लक्ष्मी का निवास है। भारत पारसमणि की तरह है। उनके साथ जिनका भी सम्पर्क होता था, वे अपनी लौह दरिद्रता को खोकर स्वर्ण सम्पदाओं के अधिपति बन जाते थे। यह मान्यता अकारण न थी। भारत से व्यापारी लोग जलमार्गों और थलमार्गों से देश-देशान्तरों में जाते थे और वहाँ के लोगों को उन वस्तुओं से लाभान्वित करते थे जिन्हें पाना उनके लिये किसी बड़े सौभाग्योदय से कम न था। लोग प्रतीक्षा लगाये बैठे रहते थे कि कब भारतीय व्यापारी इधर आवें और कब हमें दैवी वरदानों जैसे उपयोगी पदार्थों से लाभान्वित करें। उनका यह सोचना सही ही था जो इतनी दूर आकर इतनी उपयोगी वस्तुएँ यहाँ तक पहुँचाते हैं, उनका अपना देश न जाने कितना सुसम्पन्न होगा।

इस प्रश्न पर सर्वत्र चर्चा होती रहती थी कि भूमि की दृष्टि से, प्रकृति सम्पदाओं की दृष्टि में अन्य देश भी भारत जैसे ही हैं—मनुष्यों की बनावट भी अन्य भूखण्डों में एक जैसी ही है फिर इसी देश के निवासी कैसे इतने सुसम्पन्न हैं कि स्वर्ग जैसी सुख-सुविधाओं से भरा-पूरा जीवन जीते हैं और अपनी विभूतियों के अनुदान संसार भर में बिखेरते फिरते हैं। इस प्रश्न का कोई भौतिक समाधान न था। गहराई में जो उतरा उसने एक ही उत्तर पाया कि भारत के निवासियों का चिन्तन, दृष्टिकोण अतिमानवों जैसा है। वे अपने सुविकसित सद्गुणों के कारण सामान्य परिस्थितियों में भी असामान्य उपार्जन कर लेते हैं। जो कमाते हैं उसका श्रेष्ठतम सदुपयोग करना जानते हैं। फलतः उतने में ही वे लोग स्वयं भरपूर सुविधा-साधनों से भरे लदे रहते हैं। साथ ही अपनी सहज उदारता से अपनी विभूतियों को बादलों की तरह अन्यत्र बिखेरते हुए, अपने कर्तृत्व के सत्परिणाम देखते हुए, मुदित रहते हैं, प्रमुदित करते हैं।

भारत भूमि इन्हीं तथ्यों की सफल प्रयोगशाला रही है। यहाँ उच्च मानवीय सद्गुणों को सर्वोपरि उपलब्धि माना जाता रहा और इसके लिए अथक् परिश्रम एवं बड़े से बड़ा कष्ट सहन किया जाता रहा। फलतः व्यक्तित्व निखरा और साथ ही अजस्र वैभव उसी प्रकार समवेत होता रहा जिस प्रकार खिले हुए कमल पुष्प पर भ्रमर समूह बिना बुलाते ही मँडराता रहता है। इस सच्चाई को कोई भी परख सकता है कि आलस्य और प्रमाद ही मनुष्य को दरिद्री बनाते हैं। व्यसन और अपव्यय को अपनाकर ही कंगाली का शिकार रहना पड़ता है। सुसंतुलित और सुव्यवस्थित गतिविधियाँ अपनाने वाले अभीष्ट उपार्जन सहज ही इतनी मात्रा में कर सकते हैं, जिसे सन्तोषजनक कहा जा सके। फिर उसे अपव्यय से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बचाकर जो उसके श्रेष्ठतम सदुपयोग की बात सोचता रहेगा, वह सच्चे अर्थों में धनी बन जायगा और उस वैभव से न केवल स्वयं सन्तुष्ट, प्रमुदित रहेगा वरन् उसी का एक अंश समीपवर्ती क्षेत्र में बिखेर कर चन्दन वृक्ष की तरह दूसरों को भी अपनी ही तरह समुन्नत बना सकता है। भारतवासी इसी नीति को अपनाते थे और उन्हें संसार भर में लक्ष्मी का वरद पुत्र माना जाता था। सरस्वती की उन पर असीम कृपा थी। उनकी समर्थता—शक्ति दुर्गा जिधर भी कदम बढ़ाती थी उधर ही अवरोध, व्यवधान के असुरों का पराभव होता चला जाता था। यही थे वे रहस्य जिनके कारण भारतवासियों ने अपने देश की गौरव गरिमा बढ़ाई और अन्यत्र भी सुख-शांति का अनुदान असीम मात्रा में बिखेरा।

आज उस प्राचीन इतिहास के पृष्ठों को उलटने की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि प्रस्तुत दरिद्रता और विपन्नता के कारण चारों ओर दम घोंटने वाला वातावरण बन गया है। मनुष्य अपने व्यक्तिगत जीवन में अपनी ही आदतों द्वारा इस कदर सताया जा रहा है कि परित्राण का कोई रास्ता नहीं दीखता और आत्महत्या करने को जी चाहता है। परिस्थितियों का दोष दूसरों के ऊपर डालकर कुछ समय आत्म-प्रवंचना द्वारा मन हल्का तो किया जा सकता है पर उससे काम कुछ नहीं बनता। अपने ही दुर्गुण, दुर्भाव, दुष्कर्म इतनी जलन उत्पन्न करते हैं माना श्मशान में जलते हुए शव की तरह अपना अन्तरंग सन्तुलन भस्मीभूत होने जा रहा हो। व्यक्ति अपने आप से घोर असन्तुष्ट है। दुर्भाग्य पर हर घड़ी उसे खीजना ही पड़ता है। नशे पीकर अथवा व्यभिचार जैसे व्यसनों का आश्रय लेकर किसी कदर गम गलत करने का अत्यन्त बोझिल प्रयत्न तो करता है पर काम उससे भी नहीं बनता। त्रास बढ़ता है—घटता नहीं। यही है आज के व्यक्तिगत जीवन की दुर्दशा का दयनीय चित्र।

किसी समय के यह सुख-शान्ति के सतयुगी वातावरण में आनन्द से रहने वाला और समस्त विश्व को प्रकाश भरे अनुदान प्रदान करने वाला यह भारत आज ठीक उलटी स्थिति में जा गिरा है। रोग-शोक से, कष्ट-कलह से, अभाव-दारिद्र्य से, असन्तोष-विद्वेष से, आशंका-अविश्वास से, आज मानवी कष्टों की मात्रा दिन-दिन बढ़ रही है। अपराधी मनोवृत्ति इस प्रकार पनप रही है कि स्वजन और मित्रों से भी हर घड़ी भयभीत रहना पड़ता है। चिन्तन के उच्चस्तरीय आधार टूट चुके। निकृष्ट आकांक्षाएँ निकृष्ट परिस्थितियों का सृजन कर रही हैं। प्रगति की बात सोचने वाला मनुष्य दिन-दिन सर्वतोमुखी पतन के गर्त में गिरता जाता है। विलासी खिलौनों से खेलने की थोड़ी सुविधा बढ़ जाने पर भी सर्वत्र घुटन, आशंका और निराशा की घटाएँ ही घुमड़ रही हैं। लगता है यह संसार कुछ समय में ऐसा बन जायगा जिसमें शान्ति से रह सकने की स्थिति किसी को भी उपलब्ध न हो सकेगी।

इन विषम और विपन्न परिस्थितियों में विश्व मानव के सम्मुख एक ही प्रश्न प्रस्तुत है कि विगत शताब्दियों से प्रगति की दिशा में आतुर आकांक्षा के साथ बढ़ते हुए विनाश के जिस सर्प को गले लपेट लिया गया है, उसे छुड़ाया कैसे जाय ? सुख-शान्ति और सन्तोष की भूतकालीन परिस्थितियों की ओर पीछे कैसे लौटा जाय ? सुविधा-साधनों की प्रचुर अभिवृद्धि होने पर भी सर्वनाश के गर्त में गिरने की विडम्बना को कैसे निरस्त किया जाय ? इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर है कि मनुष्य के चिन्तन में उत्कृष्टता और कर्तृत्व में आदर्शवादिता का समुचित समावेश कर सकने वाले अध्यात्म धर्म को पुनर्जीवित किया जाय ? जन-मानस के भावनात्मक परिष्कार का प्रबल प्रयत्न किया जाय ? विविध आकार-प्रकार की प्रस्तुत अगणित समस्याओं का एक ही समाधान है—भावनात्मक उत्कर्ष। दूसरे शब्दों में इसे उस अध्यात्म धर्म का पुनरुत्थान भी कह सकते हैं, जिसे इस देश के नागरिकों ने कभी अपने अन्तःकरण के गहन मर्मस्थलों में कूट-कूट कर भरा था, जिसे अपनी गौरव गरिमा का आधार बनाया और जिसे संसार भर में बिखेर कर मानव जाति को अजस्र सुख-शान्ति का अनुदान प्रदान किया था।

न केवल भारत के वरन् समस्त विश्व के, समस्त मानव जाति के हित में इस नितान्त महत्वपूर्ण तथ्य को समझा जाना चाहिए कि हम जीवन और मरण के चौराहे पर खड़े हैं। परिस्थितियाँ इतनी तेजी से गतिशील हैं कि फैसला इधर या उधर किसी पक्ष में तुरन्त होना है। ठहरो और देखो कि मन्द गति से चलने की—समय आने और प्रतीक्षा करने की गुंजायश अब है नहीं। जो कुछ चल रहा है उसे यथावत् चलने देना हो तो आंशिक क्षति के लिए, सर्वभक्षी महाविनाश की तैयारियाँ करनी चाहिए और इसी दृष्टि से सोचना चाहिए कि अब सर्वनाश बिलकुल निकट आ गया है।

इन परिस्थितियों में प्रकाश की एक ही किरण शेष रह जाती है कि उस विष वृक्ष की जड़ें काटी जायें, जिसने सर्वत्र विषाक्त वातावरण और नरक जैसी सड़ी दुर्गन्ध पैदा करके रख दी है। दुर्बुद्धि, दुर्भावना, दुरभिसन्धियाँ और दुष्प्रवृत्तियाँ ही वे जड़ें हैं, जिन्होंने मनुष्य जैसी दैवी विभूतियों से सम्पन्न, समुन्नत प्राणी को इस दयनीय दुर्दशा में उलझाया है। जिस कुल्हाड़ी से यह जड़ें कटेंगी उसे अध्यात्म धर्म कहा जा सकता है। भावनात्मक नव-निर्माण का पुण्य प्रयोजन लेकर हम चलें तो लोकमानस में संव्याप्त निकृष्ट आस्थाओं और आकांक्षाओं का उन्मूलन किया जा सकता है उसके स्थान पर सद्भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों के कल्प वृक्ष बोये, उगाये जा सकते हैं। इसके लिए हम भारतवासियों को ही आगे आना पड़ेगा सूर्य सदा पूर्व से ही उदय होता है। उदयाचल को ही सूर्योदय की भूमिका निर्वाह करने का श्रेय मिलता रहा है। ऊषा ब्रह्म मुहूर्त का सन्देश लेकर आती है और अपनी अरुणिमा बिखेर कर प्राणि जगत में जागरण की चेतना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फूँकती है तदनुसार सभी उठ खड़े होते हैं और उगते सूर्य का अभिवादन करते हैं। भारत ही उदयाचल है, उसी को अनादि काल से जीवन-ज्योति के संचार का उत्तरदायित्व निवाहना पड़ा है। भारतीय धर्म और दर्शन ने ऊषा की लालिमा बनकर सदैव सर्वत्र जागरण की ज्योति जगाई है। विश्वमानव के सौभाग्य का सूर्य हर दिन—हर युग में यहीं से उगा है। उसी उदय का लाभ पाकर मानवता धन्य होती रही है। आज की सघन अँधियारी का निराकरण उसी सूर्योदय से होगा जिसकी सृजनकर्ती वह मानवी समस्या रही है—जिसे दूसरे शब्दों में भारतीय संस्कृति का नाम दिया जाता रहा है।

मानव जाति आज जीवन-मरण के झूले में झूल रही है। उसे अगले ही दिनों या तो डूबना है या पार होना है। अधर में देर तक लटकी नहीं रह सकती। हर ऋषि रक्त के उत्तराधिकारी—मानवी गरिमा के प्रहरी यदि इन घड़ियों में अपने पवित्रतम कर्त्तव्य का, उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सके तो यह मात्र हमारे लिए निकृष्टतम भर्त्सना का ही प्रसंग न होगा वरन् अपने देश और समाज सहित समस्त मानव जाति के—विश्व वसुधा के विनाश का कलंक भी अपने ही पल्ले पड़ेगा। हमारे रक्त में वे विशेषताएँ मौजूद हैं—हमें उत्तराधिकार में वे विभूतियाँ उपलब्ध हैं जो विश्व शान्ति की भूमिका का निर्वाह करने में सदैव खरी सिद्ध होती रही हैं। यह सब होते हुए भी यदि हम नर कीटकों की तरह पेट और प्रजनन के हेय प्रयोजनों में ही खपते-मरते रहे और सुविस्तृत कर्त्तव्यों की ओर से विमुख ही बने रहे तो इसे इस युग की महती दुर्घटना कहा जायगा। इस संकीर्णता को आदर्शों का—देवत्व का पराभव ही माना जायगा।

हमें उन उत्तरदायित्वों को निवाहने के लिए तत्पर होना ही चाहिए जो इस आपत्ति काल में आपत्ति धर्म की तरह अनायास ही आकर हमारे कन्धों पर लद गये हैं। इसके बिना कोई गति नहीं, सामान्यकाल में सुविधा सम्पन्न जीवन जीने की बात समझ में आती है पर आपत्ति में तो बड़ी से बड़ी व्यक्तिगत असुविधा को सहन करते हुए उस सामूहिक सुरक्षा में संलग्न होना चाहिए, जिस पर कि अपना और अपने परिवार का अस्तित्व, संरक्षण भी निर्भर है। समय की—युग की पुकार यही है, इसे अनसुना नहीं किया जाना चाहिए।

आज कर्तृत्व निर्धारण की वेला में हमें आवश्यक प्रकाश और मार्गदर्शन की आवश्यकता है। यह प्रयोजन इतिहास के पृष्ठ पलटने से सहज ही पूरा हो सकता है। हमारी अविच्छिन्न परम्परा एक ही रही है कि स्वयं का उन विभूतियों से सुसम्पन्न करना जो मनुष्य को देव स्तर तक ऊँचा उठा कर ले जाती हैं। साथ ही उन दिव्य सम्पदाओं को अपनी पहुँच, पकड़ में आ सकने वाले सुदूर क्षेत्रों तक उदारतापूर्वक बिखेरना ताकि कहीं भी अज्ञान, अशक्ति और अभाव का अस्तित्व रहने न पावे। इस परम्परा का निर्वाह जिस महान संस्कृति के प्रकाश में हमें अनादि काल से मिलता रहा है, उसी के कुछ संस्मरण, उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं। इस प्रयोजन से कि हम फिर अपने महान पूर्वजों से आवश्यक प्रेरणा ग्रहण कर सकें, उनके अनुकरण का साहस इकट्ठा कर सकें, अपनी गौरव-गरिमा का संरक्षण करते हुए, विश्व मानव की महती सेवा-साधना कर सकने में समर्थ हो सकें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वर्गभेद एवं ऊँच-नीच के विष-वृक्ष को उखाड़ फेंका जाय

विभेद और विभाजन की दुःखद दीवारें

संसार में अनेक जाति के प्राणी बसते हैं। उनकी आकृति में क्षेत्र विशेष के आधार पर कुछ अन्तर पाया जाता है। फिर भी उस जाति का नाम एक ही रहता है। हाथी, घोड़ा, गधा, बैल आदि पशु और मोर, कबूतर, बतख, सारस आदि पक्षी संसार भर में एक ही नाम से जाने जाते हैं। साँप, बिच्छू, चींटी, दीमक आदि की भी अपनी-अपनी जातियाँ हैं। वे कहीं भी बसें जानी एक ही नाम रूप के अनुरूप जायेंगी। मनष्य भी एक प्राणी है। वह संसार के किसी भी क्षेत्र में रहे, कोई भी भाषा बोले, चेहरे की आकृति में कुछ अन्तर भले ही हो पर वह माना मनुष्य ही जायेगा। मनुष्य की एक जाति है, उसके अंग अवयव एक जैसे होते हैं। कहीं भी बसने वाले, चमड़ी के किसी भी रंग वाला होने पर भी उसकी जाति मनुष्य ही रहेगी।

जाति की एक पहचान यह भी है कि वह अपने ही वर्ग में सन्तानोत्पादन कर सकते हैं। जाति की भिन्नता होगी तो जोड़ा न मिलेगा। वे न तो प्रणय कर सकेंगे और न प्रजनन में समर्थ होंगे। मनुष्य की यदि अनेक जातियाँ रही होतीं तो उनके बीच प्रणय सम्बन्ध न बनते। प्रजनन में समर्थ न होते। पर ऐसा अन्तर कहीं भी नहीं देखा जाता। मनुष्य जाति के सभी प्राणी यत्किंचित भिन्नता रहने पर भी यौनाचार करते और वंश वृद्धि कर सकने में समर्थ पाये जाते हैं। ऐसी दशा में उनकी जाति एक ही रहेगी।

क्षेत्र और जलवायु के, वंश परम्परा के अनुरूप गोरी, काली, पीली चमड़ी तो पाई जाती है। चेहरे की बनावट में भी थोड़ा बहुत अन्तर रहता है। इतने पर भी उन्हें मनुष्येत्तर जाति का नहीं कहा जा सकता। प्रकृतिक्रम यही है।

फिर भी लोगों ने देश, क्षेत्र, भाषा आदि के नाम पर अपने विशेष वर्ग बना लिए हैं। पंजाबी, मद्रासी, बंगाली, चीनी, जापानी आदि। भाषाओं के आधार पर भी यह विभाजन किये गये हैं। फिर भी वे वास्तविक नहीं। प्रकृति प्रदत्त एकता को खण्डों में नहीं बाँटा जा सकता।

भारत का जातिवाद अपने ढंग का विचित्र है। यहाँ पुरातन काल में वर्ग भेद आरम्भ हुआ था, तब उसका आधार कर्म व्यवसाय था। शिक्षण, सैनिक, व्यवसाई, शिल्पी वर्गों में उनकी पहचान बनी थी। पर वह स्थाई नहीं अस्थाई थी। व्यवसाय बदलने की सदा से सबको छूट रही है। इस आधार पर कोई जब चाहता था, तब अपना वर्ण बदल लेता था। अभी भी यह व्यवसाय भेद वाला वर्गीकरण चलता है। उनके संगठन भी बनते हैं। किसान सभा, श्रमिक संघ, व्यापारी मंडल, अध्यापक सभा, रिक्शा यूनियन आदि संगठनों के वे लोग सदस्य रहते हैं, जो उस व्यवसाय में सम्मिलित रहते हैं। व्यवसाय बदल जाने पर वर्ग भी बदल जाते हैं, जो आज अध्यापक है कुछ समय बाद वह सेना पुलिस में भर्ती हो सकता है। रिटायर होने पर व्यवसाय कर सकता है। इस प्रकार उसके वर्ग समयानुसार बदलते रहेंगे। इतने पर भी उसकी जाति मनुष्य ही रहेगी। यहाँ तक कि वंश परिवार भी यथावत् बना रहेगा। वर्ग या वर्ण एक ही जीवन में अनेक बार बदला जा सकता है। फिर भी मानवी स्नेह, सहयोग की दृष्टि से उनके बीच एकता ही बनी रहेगी। वोटर की एक ही जाति है भले ही वह किसी भी क्षेत्र में रहता हो, कोई भी व्यवसाय करता हो।

इस सीधे-साधे प्रश्न को मध्यकाल के अन्धकार युग ने बेतरह उलझा दिया है। जन्म के, वंश के आधार पर जातियाँ मानी जाने लगीं। बात यहाँ तक रहती तो भी काम चलता रहता। पर जब उनके बीच ऊँच-नीच का भेद-भाव आरम्भ हुआ तो अपने-पराये की आपा-धापी भी चल पड़ी। जातियों में से उपजातियाँ निकलीं और छोटे समुदायों के रूप में देशवासी विभाजित हो गये। कुछ वर्ग अपने को वंश के आधार पर ऊँच और दूसरों को नीच मानने लगे। गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर वर्गीकरण हो भी सकता है, पर वंश के आधार पर यह विभाजन चल पड़े और ऊँच-नीच की मान्यता बने तो उसे आश्चर्य ही कहा जायेगा।

यह आश्चर्य इन दिनों तो परम्परा के रूप में परिपक्व होता चला जाता है। हर वर्ग के अनेकों उपवर्ग हैं और वे अपने को प्रथम जाति मानते हैं और ऊँच-नीच का भेदभाव बरतते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि वंशों में कितनी ही जातियाँ हैं ? वे एक-दूसरे के साथ रोटी-बेटी तक का व्यवहार नहीं करतीं। अपने को उपजाति के सीमित दायरे में ही संकुचित करती हैं। सामाजिक उत्सव आयोजनों में अपने ही वर्ग को एकत्रित किया जाता है। विवाहों में सम्मिलित होने वाले बाराती प्रायः उसी जाति के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

होते हैं। यह संकीर्णता व्यवसाय से लेकर राजनीति तक में घुसती चली गयी है। यहाँ तक कि वोट डालते समय देखा जाता है कि प्रतिनिधि अपनी जाति का है कि दूसरी जाति का। उसकी योग्यता, ईमानदारी पर कम और अपनी जाति वाला होने पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

बड़ी कहलाने वाली जातियों की तरह यह बीमारी छोटी जातियों में भी फैली है। वे भी रोटी बेटी का व्यवहार अपने ही छोटे दायरे में करते हैं। छूत-अछूत सभी इस दृष्टि से एक ही लकीर पर चल रहे हैं। अछूत छूतों से शिकायत करते हैं कि उनके साथ भेदभाव बरता जाता है, पर जो अछूत-अछूत के बीच वही वर्ग भेद की, नीच-ऊँच की बात चलती है तो और भी अधिक आश्चर्य होता है।

विभेद और विभाजन के इस कुप्रचलन से समूचे समाज को भारी क्षति पहुँची है। भाषावाद, प्रान्तवाद, सम्प्रदायवाद के कारण धड़ेबन्दी का कोढ़ पहले से ही चल रहा था। इसमें जाति-पाँति, ऊँच-नीच की खाज और जुड़ जाने से समाज के शरीर में कुरूप विद्रूपता का दौर और जुड़ गया है। कहने भर को हम भारतीय हैं, पर भावनात्मक विभेदों को देखते हुए लगता है कि एकता की शक्ति को हम खण्डित करते चले जा रहे हैं। नारंगी बाहर से एक फल दिखाई पड़ती है, पर उसका छिलका उतारने पर प्रकट होता है कि उसके भीतर कितने ही ऐसे खण्ड हैं जो एक-दूसरे से अपनी अलग-अलग पहचान बनाते हैं। यह दुखद दुर्भाग्य की स्थिति है, जो कमी रह गयी थी उसे जातिवाद पूरा कर रहा है। संकीर्णता और कट्टरता का उभार बना रहने पर हम सब अनेक खण्डों में बँटते जा रहे हैं। ऐसी दशा में अमोघ समझी जाने वाली एकात्मकता की शक्ति का अक्षुण्ण बने रहना कठिन है।

जातिगत आपाधापी के साथ दूसरों को विराना समझकर उनकी उपेक्षा करने का भी रिवाज बनता है। इस संकीर्णता के दूरगामी दुष्परिणाम होते हैं। व्यवसाय में, नौकरियों में, चुनाव में अपने वर्ग को अलग लाभ प्राप्त होने, अधिक सफलता मिलने के प्रयत्न चलते हैं। इसकी प्रतिक्रिया दूसरों पर होती है। वे भी जैसे-तैसा बरतने की नीति अपनाते हैं और खाई चौड़ी होती चली जाती है। आगे चलकर यही विष बेल लड़ाई-झगड़े, गवाही, मुकदमेबाजी आदि में चलती है। फिर न्याय नीति की दृष्टि ओझल हो जाती है और जातिवाद, सम्प्रदायवाद, प्रान्तवाद की कट्टरता हर व्यवहार पर हावी होने लगती है। बात यहाँ तक बढ़ती है कि अपनी जाति का बहुमत बनाकर शासन सत्ता पर अधिकार जमा लेने तक की योजनाएँ बनने लगती हैं। परिवार नियोजन के द्वारा जनसंख्या न बढ़ने देने के सर्वमान्य औचित्य की उपेक्षा की जाने लगती है और यह सोचा जाने लगता है कि हमारे वर्ग की अधिकाधिक सन्तानें हों ताकि अपने वोट बढ़ें, अपने प्रतिनिधि जीतें। उनके संरक्षण में अपने लोगों को अधिकाधिक लाभ मिले। स्पष्ट है कि वर्ग विशेष को अधिकाधिक लाभ मिलने लगेगा, उनका अनुचित पक्ष प्रतिक्रम चलेगा, तो उसकी प्रतिक्रिया होगी। ईंट का जबाव पत्थर से देने की बात सोची जाने लगेगी। फलतः कलह बढ़ेगा और ऐसे विग्रह खड़े होंगे जिनसे निपटना कठिन हो जायेगा।

सभी जानते हैं कि मिलजुल कर रहने से युक्ति शक्ति विकसित होती है और उसके बड़े-बड़े लाभ मिलते हैं। बुहारी की सींकें, कपड़े के धागे बिखर जायँ तो उनकी उपयोगिता भी नष्ट हो जायगी। संयुक्त शक्ति के रूप में विकसित हुए राष्ट्र जापान, इजराइयल जैसे छोटे होने पर भी प्रगति पथ पर तेजी से अग्रसर होते हैं। बड़ी-बड़ी कठिनाइयों को पार कर लेते हैं। पर जहाँ बिखराब का बोलबाला होता है वहाँ सारी शक्ति लड़-झगड़ में ही समाप्त हो जाती है। ईर्ष्या-द्वेष का आक्रमण, प्रतिशोध के प्रतिशोध का सिल-सिला चलता ही रहता और परिणिति सबके लिए सब प्रकार अहितकर ही होती है।

अपने देश में जाति-पाँति के साथ विवाह-शादियों का भी उपक्रम जुड़ गया है। लोग अपनी-अपनी विरादरियों में ही लड़की-लड़कों के विवाह करना चाहते हैं। उपजातियों में, गोत्रों में बँटते-बँटते हर वर्ग का दायरा बहुत छोटा रह गया है। उतने ही दायरे में लड़की-लड़के ढूँढ़ने पर इच्छित स्तर के जोड़े नहीं मिलते। विवशता में उन्हीं लोगों में से वर-वधू का चुनाव करना पड़ता है। योग्य वरों की कीमतें बढ़ जाती हैं। अयोग्यों में से ही किसी का चुनाव करना पड़ता है। इसलिए देखा जाता है कि अयोग्य साथी ढूँढ़ कर ही किसी प्रकार काम चलाना पड़ता है। यदि चुनाव का दायरा विशाल रहा होता तो दूर-दूर तक मारे फिरने की, खुशामद करने की, महँगा दहेज देने की आवश्यकता न पड़ती। पास-पड़ौस में ही अच्छे लड़की-लड़के मिल जाते। उनकी प्रकृति-परम्परा के सम्बन्ध में भी आवश्यक जानकारी रहती और विवाह सफल होते रहते। पर जब उपजाति के फेर में दूर-दूर तक की भाग-दौड़ करनी पड़ती है तो उस परिवार की स्थिति तथा लड़की-लड़के के स्वभाव की वास्तविक जानकारी नहीं मिल पाती। अन्धा जुआ खेलना पड़ता है और उसमें कई बार अनुपयुक्तता भी हाथ लग जाती है। उपजातियों के फेर में विवाह-शादियों की समस्या पेचीदा होती जाती है। इसका समाधान सरल था। जाति भेद को आड़े न आने दिया जाता तो बिना बोली बोले, सरलतापूर्वक, सस्ते में सम्बन्ध बन जाया करते। संकीर्णता के बन्धन भी शिथिल होते। आत्मभाव का दायरा बढ़ता।

अपने देश में पिछड़ापन भी वर्ण, जाति के साथ जुड़ गया है। लोग ही पिछड़े नहीं रहते, वरन् समुदाय भी जाति बन्धन में बँधे होने और वैसे ही रीति-रिवाज अपनाये रहने के लिए गई गुजरी स्थिति में ही पड़े रहते हैं। जन-जातियों का, अनुसूचित जातियों के पिछड़ेपन का यही प्रमुख कारण है कि वे गये-गुजरे स्तर का निर्वाह करने के लिए बाधित हो रही हैं। यदि उन्हें विकसित

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोगों के साथ घुलने-मिलने का अवसर मिला होता तो एकता और समता की अभिवृद्धि हुई होती। कोई उन्नति, अवनति के दांयरे में न बँटा होता। सभी लोग एक स्थिति में रहते और मिल-जुलकर आगे बढ़ने, ऊँचे उठने का लाभ समान रूप से उठाते। विभाजन ने एक बड़े वर्ग को आत्महीनता में ग्रसा और उनसे प्रगति की दिशा में बढ़ चलने का अवसर छीना। इसे सामाजिक न्याय ही कह सकते हैं।

संविधान ने इस प्रकार के वर्गभेद को अस्वीकारा है, सबको समान स्थिति में लाने के लिए आर्थिक और राजनैतिक प्रयत्न भी किया है किन्तु काम इतने भर से चलने वाला नहीं है। इसके लिए भावनात्मक परिवर्तन करने हों तो मान्यताएँ बदलनी पड़ेंगी और आदतों में सम्मिलित हो रही उन परम्पराओं में आमूल-चूल परिवर्तन करना पड़ेगा जो अपने समाज में तथाकथित ऊँचे और नीचे माने जाने वाले लोगों को जाति के आधार पर ऊँच-नीच मानने के लिये उकसाती है।

इसे बुद्धिमानों की मूर्खता ही कहना चाहिए, जिनने विभेद और विभाजन की दीवारें खड़ी कीं। असंख्य लोगों को जाति-पाँति मिथ्या अभिमान से न उठने देने और अनेकों को पददलित स्थिति में पड़े रहने के लिए बाधित किया। इस मूर्खता का अन्त करने के लिए ठीक यही समय है। इस भूल ने हिन्दू समाज के एक-बहुत बड़े भाग को समतावादी धर्मों में सम्मिलित होने के लिए प्रोत्साहित किया है। यदि स्थिति यही रही तो हिन्दू धर्म की जाति-पाँति व्यवस्था भी अन्यायमूलक मानी जायेगी और लोग भी उससे कटते-हटते चले जायेंगे।

वर्गभेद की मान्यता अहितकर भी, अनुपयोगी भी

सुव्यवस्था एवं सुसंचालन की दृष्टि से आज भी समाज कई वर्गों में बँटा हुआ है। शिक्षक, शासक, व्यवसायी, कर्मचारी आदि मोटे रूपों में विभाजन है। यह कार्य विभाजन सुविधा की दृष्टि से हुआ है। पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है कि एक वर्ग का व्यक्ति दूसरे तरह का कार्य न अपना सके। अभीष्ट स्तर की योग्यता विकसित करके वह किसी भी क्षेत्र में पदार्पण कर सकता है। वर्गविहीन समाज में भी समाज व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए किसी न किसी रूप में एक मोटा विभाजन करना पड़ता है ताकि सभी कार्य ठीक प्रकार चलते रह सकें। कार्य विभाजन एवं संचालन की व्यवस्था न हो तो अगणित प्रकार की समस्याओं का सामना करना होगा।

प्राचीनकाल में जिस मर्यादा एवं अनुशासन से समाज का नियमन एवं संचालन होता था, उसे वर्ण व्यवस्था के नाम से जाना जाता है। वर्ण अर्थात् व्यक्तियों का एक निश्चित वर्ग जिसकी मनःस्थिति एवं कार्य पद्धति एक-सी होती थी, एक लक्ष्य के लिए वह वर्ग समर्पित होता, स्वधर्म के परिपालन में ही उनके जीवन की पूर्णता सन्निहित होती थी। पूरा समाज चार वर्णों में विभाजित था ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र। मानवी व्यक्तित्वों एवं उनकी अभिरुचियों की भिन्नता को ध्यान में रखते हुए मनीषियों ने वर्णों के रूप में समाज का मोटा विभाजन किया था ताकि समाज के सभी कार्य ठीक ढंग से चलते रहे सकें। पर ऐसा कोई कठोर प्रतिबन्ध न था कि एक वर्ग में पैदा हुआ व्यक्ति उसी ढंग का पेशा अपनाये, जो उसमें प्रचलित था। पीढ़ी दर पीढ़ी पैतृक व्यवसाय को अपनाये जाने का कारण सामाजिक दबाव नहीं वरन् वे सूक्ष्म संस्कार होते थे जो उन्हें सहज ही अपने वर्ग से मिलते थे। पर कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते थे, जिनके संस्कार एवं अभिरुचि अपने वर्ग से भिन्न स्तर के होते थे। फलस्वरूप वे उनकी प्रेरणा से अपने वर्ण से भिन्न स्तर का पेशा भी अपना लेते थे। अगणित ऐसे ऋषियों का उल्लेख मिलता है, जो ब्राह्मणेत्तर वर्णों में जन्मे पर अपने कर्मों के अनुरूप उनने ब्रह्मर्षि तक का पद प्राप्त किया।

वर्ण व्यवस्था की वैज्ञानिकता एवं उपयोगिता विकृतियों के घुस आने से समाप्त हो गयी, जिस दिन वर्ण की धारणा तुलनात्मक हो गयी कि कौन बड़ा कौन छोटा ? उस दिन से उसकी विशेषता मारी गयी। जो व्यवस्था कर्म पर अवलम्बित थी, वह जन्म पर आधारित हो गयी। यह माना जाने लगा कि ब्राह्मण का लड़का ब्राह्मणत्व जन्म से ही प्राप्त कर लेता है, जबकि एक विशेष प्रकार की जीवन-पद्धति अपनाने तथा अपने भीतर ब्राह्मणत्व के गुण पैदा करने पर पहले किसी भी लड़के को वह अधिकार मिलता था। अन्यान्य वर्णों की भी यही हालत हुयी। जन्मजात वर्ण प्राप्त कर लेने की दुहाई देने वालों को वर्णव्यवस्था के तथ्यों की गहराई में जाकर वास्तविकता की खोजबीन करनी चाहिए।

ब्राह्मण का अर्थ है एक ऐसा व्यक्ति, जिसके प्राणों की रचना बौद्धिक है। जिसके प्राणों की अधिकांश ऊर्जा सत्यान्वेषण में खर्च होती है। आत्मा परमात्मा के, ज्ञान विज्ञान की गम्भीर खोजों में उसका जीवन खपता है। व्यक्ति एवं समाज के सर्वांगीण विकास से जुड़े उच्चस्तरीय सिद्धान्तों एवं आचार सूत्रों का वह आविष्कारक होता है, जिसे न धन की लिप्सा होती, न पद की। ज्ञान के अनुसंधान में वह अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है। गम्भीर चिन्तन में, कठोर तप में उसके जीवन का आनन्द सन्निहित होता है। सुदूर एकान्त प्रदेशों में, प्राचीनकाल में ऋषि-मनीषी ज्ञान की विविध धाराओं के अन्वेषण में निरत रहते थे, वे सही अर्थों में ब्राह्मण थे। चरक, सुश्रुत वागभट्ट, वशिष्ठ, विश्वामित्र, पतंजलि, बाराहमिहिर, भाष्कराचार्य, आर्यभट्ट आदि वैज्ञानिक ब्राह्मण के सच्चे प्रतिनिधि थे। पिछली दो सदियों में विज्ञान के क्षेत्र में जिन वैज्ञानिकों ने अगणित सत्यों का रहस्योद्घाटन किया है, उन्हें भी ब्राह्मण ही कहना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दूसरा वर्ग है क्षत्रिय, उसकी आकांक्षा का स्रोत ज्ञान नहीं शक्ति है। भौतिक शक्ति का वह आराधक होता है। सैनिकों के पदचाप में, चमकती संगीनों में, फड़कते बाजुओं में उसे शक्ति की संगीत लहरी सुनायी पड़ती है, उसे सुनने में ही वह अलमस्त रहता है। शक्ति का संग्रह करना तथा उसे सत्कार्यों में लगाना ही क्षत्रिय का प्रमुख लक्ष्य रहता था। अवांछनीय तत्वों से समाज की सुरक्षा का गुरुत्तर दायित्व इस वर्ग पर ही था उसके निर्वाह में ही वह जीवन की पूर्णता मानता था। स्वधर्म के परिपालन में ही क्षत्रित्व की गरिमा एवं सार्थकता थी। जो शक्ति का दुरुपयोग करता-बाहुबल अथवा शस्त्रबल को कुकृत्यों में लगाता, उसकी भर्त्सना होती तथा समाज की प्रताड़ना सहनी पड़ती थी, उसका जाति बहिष्कार होता, वर्ण में उसकी वापसी तब तक नहीं होती, जब तक कि वह प्रायश्चित न कर ले।

तीसरा वर्ग था, वैश्य। जो उपार्जन का दायित्व सँभालता था। समाज भौतिक दृष्टि से सुसम्पन्न कैसे बने, उसकी समस्त चेष्टाएँ इसी प्रयास में निरत रहतीं। वह सम्पदा का आराधक होता। ज्ञान और शक्ति में नहीं, धन की खोज एवं संग्रह में उसका जीवन खपता था। इसके लिए वह व्यापार, कृषि, उद्योग जैसे अगणित व्यवसाय अपनाता, पर वह सम्पदा उसके व्यक्तिगत उपभोग के लिए सीमित नहीं रहती, समाज के लिए समर्पित रहती। स्वेच्छापूर्वक वह अपने जीवन-निर्वाह के लिए एक छोटा भाग रखकर अधिकांश को समाज के लिए प्रस्तुत कर देने को धर्मकर्त्तव्य मानता था। इसमें वह जितनी ईमानदारी बरतता, उतने अंशों में अपने जीवन को सार्थक करता।

चौथा वर्ग शूद्र कहा जाता था, शूद्र का अर्थ सबसे निम्नस्तर का वर्ग नहीं जैसा कि प्रायः अर्थ लगाया जाता है। श्रम का, सेवा का कार्य उसके जिम्मे था। हर छोटे से छोटे कार्य को करने में वह तत्पर रहता। यह श्रमिक वर्ग था, जिसका महत्व भी उतना ही था जितना कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का। धन में, शक्ति में, ज्ञान में नहीं उसका जीवन सेवा के इर्द-गिर्द घूमता था। सेवा में ही उसे परितृप्ति मिलती। सेवा धर्म के निर्वाह में ही वह पूर्णता की अनुभूति करता।

एक परिवेश, एक व्यवस्था, एक वातावरण में पलने के कारण प्रायः एक वर्ण के लड़कों को भी उसी के अनुरूप संस्कार मिलते, शिक्षण प्राप्त होता था। फलस्वरूप अधिकांश प्रायः पैतृक व्यवसाय को ही अपनाते। वर्ण विशेष की कार्य पद्धति अपनाने पर ही उन्हें उस वर्ण की सदस्यता प्राप्त होती। कर्म पर आधारित उस व्यवस्था का जन्म से मात्र इतना ही सम्बन्ध था। एक वर्ण विशेष में जन्म लेने से बच्चे द्वारा उसी तरह का व्यवसाय अपनाने की संभावना प्रबल रहती। इतने पर भी कभी-कभी कुछ अपवाद भी दिखायी पड़ते। फलतः उस संभावना से विपरीत परिणाम भी सामने आते। पर ऐसा कोई सामाजिक प्रतिबन्ध न था कि भिन्न प्रकार का व्यवसाय अपना लेने तथा आचरण प्रस्तुत करने के बाद भी उस व्यक्ति को जन्मजात वर्ण का ही सम्बोधन मिले।

ऐसी प्रतिगामिता कालान्तर के बाद प्रकट हुयी। जब वर्ण व्यवस्था का स्वस्थ स्वरूप चौपट हो गया तथा विकृतियों की भरमार हो गयी, तो यह माना जाने लगा कि वर्ण का सम्बन्ध कर्म से नहीं जन्म से है। बड़े-छोटे की भावना को भी प्रश्रय मिला जिसका घृणित रूप आज अस्पृश्यता जैसे कलंक के रूप में दिखायी पड़ रहा है। जन्म से वर्ण का, जाति का सम्बन्ध जोड़ने वालों को थोड़ा विवेकपूर्वक सोचना चाहिए कि ब्राह्मण कुल में जन्मा पर ब्राह्मणत्व से च्युत तथा वणिक का पेशा अपनाने वाला भला ब्राह्मण कैसे हो सकता है। यही बात अन्य वर्णों के सम्बन्ध में भी है। ब्राह्मण लड़के द्वारा वणिक, क्षत्रिय का शिक्षक का, वैश्य का कर्मचारी का, शूद्र का सैनिक का कार्य अपनाने पर वर्ण की बात कहाँ रह जाती है ? प्राचीन व्यवस्था पूर्णतः वैज्ञानिक एवं उपयोगी होते हुए वर्तमान परिस्थितियों में इसलिए अनुपयोगी हो गयी है कि उसका परिपालन करने वालों ने उन मर्यादाओं को मानने से इंकार कर दिया है। जिन प्रयोजनों के लिए यह व्यवस्था बनायी गयी थी वे तो आज भी उपयोगी हैं पर वर्तमान विकृतियों ने तो वह व्यवस्था ही नष्ट कर दी। इन परिस्थितियों में वर्ण के आधार पर वरिष्ठ मानने की परम्परा को किसी भी कीमत पर विवेकसम्मत नहीं ठहराया जा सकता। कर्म के आधार पर स्वस्थ, अभिनव एवं निर्धारण से ही उसे मान्यता मिल सकती है।

जाति-उपजातियों के सम्बन्ध में यों सोचें

हिन्दू समाज जितने फिरके और कुनबों में अलग-अलग बँटा हुआ है इतना विश्व का कोई भी समाज या समुदाय नहीं बँटा है, इनकी अपनी-अपनी मान्यतायें हैं, रीतियाँ हैं, प्रथायें हैं और यहीं एक-दूसरे में इतनी ऊँच-नीच की भावना भी है कि एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति के व्यक्ति के हाथ से बना भोजना करना भी पसन्द नहीं करता। ऐसा लगता है कि सारा धर्म यहीं तक है कि किसके हाथ का बना खाने से धर्म बचा रहता है और किसके हाथ का बना खाने से धर्म भ्रष्ट हो जाता है, स्वामी विवेकानन्द ने जातिगत ऊँच-नीच की इसी भावना को लक्ष्य करके कहा था कि हमारा सारा धर्म चौके-चूल्हे में सिमट गया है और जीवन के दूसरे अन्य क्षेत्रों से धर्म लुप्त होता जा रहा है।"

जाति-उपजातियों ने हिन्दू समाज की प्रगति में सबसे ज्यादा बाधा पहुँचायी है। आरम्भ में तो ये सामाजिक सुव्यवस्था को दृष्टि से वर्णाश्रम के रूप में आरम्भ हुई जो समाज की एक आवश्यकता थी, पर पिछले दिनों के अन्धकार युग में इन मान्यताओं ने काफी गहरी जड़ें जमाईं—वह भी विकृत रूप में। वर्ण-व्यवस्था का आधार यह था कि समाज के सभी लोग परस्पर सहयोग से एक-दूसरे की आवश्यकतायें पूरी करें तथा समाज को आगे बढ़ायें। एक-एक व्यक्ति या परिवार अपने बच्चों

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को पढ़ाने-लिखाने, खेती, अन्न उत्पादन, मकान निर्माण, कपड़े बुनने जैसे कार्य करने लगे तो यह कठिन तो होगा ही, व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में भी अवरोधक होगा क्योंकि जीवन जितना विशाल है उतने ही विशाल हैं उसके क्षेत्र। दिन भर के चौबीस घण्टे, महीने के तीस दिन या वर्ष के बारह मास प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यक समय देने के लिए अपर्याप्त रहते हैं। अतः बेहतर यही रहा कि गाँव में कुछ लोग खेती करें, कुछ कपड़ा बुनें, कुछ मकान बनायें और कुछ वितरण करें। इस प्रकार परस्पर सहयोग से सारे समाज का कार्य भली-भाँति चल पड़ा तथा संस्कृति, सभ्यता और आदर्श के दो पहियों पर आसानी से लुढ़कने लगी। भगवान कृष्ण ने गीता में इसी तथ्य को प्रतिपादित किया है—

चार्तुवर्ण्यं मया सृष्टा गुणकर्म विभागयोः।

—४/१३

गुण और कर्मों के अनुसार चारों वर्णों की सृष्टि की गयी है, न कि जन्म के अनुसार। इस श्लोक का भाष्य करते हुए डा. राधाकृष्णन् ने लिखा है—'यहाँ जोर गुण और कर्म पर दिया जा रहा है, जन्म पर नहीं। हम किस वर्ण के हैं, यह बात लिंग और जन्म पर निर्भर नहीं है। स्वभाव और व्यवसाय द्वारा निर्धारित वर्ण, जन्म और आनुवंशिकता द्वारा निर्धारित जाति नहीं है।

महाभारत में इस बात को और भी स्पष्ट करते हुए कहा गया है—

एक वर्णमिदं पूर्व विश्वमासीद युधिष्ठिरः।
कर्मक्रियाविभेदेन चातुर्वण्य—प्रतिष्ठितः।।

—४२। १८८

अर्थात्—हे युधिष्ठर पहले एक ही वर्ण था। गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार पीछे उसके चार भेद किये गये।

युधिष्ठिर ने स्वयं एक स्थल पर कहा है—

सर्वेसर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः।
तस्मात् शीलं प्रधानेष्टं विदुर्येतत्वदर्शिनः।।

—१८०.३२.३३

अर्थात्—लोगों की सन्तान सभी प्रकार के स्वभावों की अर्थात् भिन्न-भिन्न स्वभावों की होती है। अतः ऋषियों के अनुसार केवल आचरण ही जाति को निर्धारित करने वाला है।

कहा जा सकता है कि आचरण के आधार पर तो भेदभाव किया जा सकता है। यह भी अस्वाभाविक और अनुचित है। शास्त्र की सम्मति है—

अन्त्यजो विप्रजातिश्च दुष्परीक्ष्येति मे मतिः।
एकयोनिप्रसूतश्च एकशाखेन जायते।।

"अन्त्यज और विप्रजाति के लोग एक ही जाति के सगे भाई हैं, अतः उनमें भेद-भाव अस्वाभाविक और अनुचित हैं। ये सब एक ही शाखा में लगे अलग-अलग फल, फूलों के समान हैं।

वर्णाश्रम सामाजिक व्यवस्था के लिए उपयोगी है। उसका सैद्धान्तिक आधार बना रहना चाहिए। आज के आधुनिकतम प्रगतिशील और विकसित देशों में भी इसी सैद्धान्तिक आधार पर वर्ण व्यवस्था किसी न किसी रूप में चलती है। बुद्धिजीवी, शासक, व्यापारी और कर्मचारी अन्य कुछ नहीं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के ही रूपान्तर हैं। प्राचीनकाल से ही भारतीय संस्कृति के नियामकों ने इसी आधार पर वर्ण-व्यवस्था की नींव रखी थी और शिक्षा देने वाले, विचारशील, बुद्धिजीवियों, शासक, सैनिक और राज्यधिकारियों, व्यापारी, व्यवसायी, कृषक और उद्योगपतियों तथा कर्मचारियों, सेवकों एवं नौकरों को क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र की संज्ञा दी थी, इसमें किसी को भी न तो ऊँचा समझा जाता था और न ही किसी को नीचा।

शास्त्रकार इस सम्बन्ध में बिल्कुल स्पष्ट रहे हैं भविष्य पुराण के ब्रह्मपर्व में ४२वें अध्याय में आता है कि—"यदि एक पिता के चार पुत्र हैं तो उन चारों में कोई भेदभाव या ऊँच-नीच नहीं माना जाता। परमेश्वर सबका पिता है, इसलिए मनुष्य समाज में जातिभेद का कोई औचित्य नहीं है।

आजकल तो अन्तर्जातीय विवाहों का प्रचलन नहीं है। अन्तर्जातीय ही नहीं एक उपजाति के लोग दूसरी उपजाति वालों से विवाह करने में हिचकते हैं, पर प्राचीनकाल में ऐसी संकीर्णता नहीं थी। वर-वधू में जाति और उपजातियों का नहीं गुण और स्वभावों का मेल बिठाया जाता था और ऐसे विवाह सामाजिक रूप से मान्य होते थे। व्यास और पाराशर मुनि की मातायें दूसरे वर्ण की थीं। व्यास की माँ केवट पुत्री थी और पाराशर की माँ श्वपच (चांडाल) के घर जन्मी थी। द्रुपद, मात्स्य, यवक्रीत, आयु, दत्त, द्रोण, कक्षीवान्, शृंगी, महर्षि, कश्यप मुनि आदि नीच कहे जाने वाले कुलों में जन्मे थे। वशिष्ठ ने अपने पौत्र का विवाह चित्रमुख वैश्य की कन्या से किया। राजा नीप का विवाह शुक्राचार्य ब्राह्मण की कन्या से हुआ। इन्हीं के कुल में मुद्गल का जन्म हुआ था। प्रियव्रत क्षत्रिय थे और इसने विश्वकर्मा की पुत्री से विवाह किया। भीष्म के पिता देवव्रत ने धीवर कन्या से शादी की और उसी का पुत्र राज्याधिकारी बना। ययाति क्षत्रिय थे पर उनका विवाह शुक्राचार्य की बेटी देवयानी से हुआ। वशिष्ठ गणिका के पुत्र थे। मातंग के पिता नाई कुल के थे और माँ ब्राह्मणी थी।

क्षत्रिय कन्या पद्मा ने पिप्पलाद और लोपामुद्रा ने अगस्त्य ऋषि से विवाह किया था। विश्वामित्र ने मेनका से सम्बन्ध स्थापित किया, जिसकी बेटी शकुन्तला दुष्यन्त को ब्याही गयी। शृंगी ब्राह्मण ने राजा दशरथ की पुत्री और भगवान रामचन्द्र की बहिन शान्ता से विवाह किया। प्रियव्रत की बेटी उर्जस्वती ने शुक्राचार्य से विवाह किया। सूर्यवंशी कन्या रेणुका का विवाह यमदग्नि ऋषि से हुआ। अर्जुन क्षत्रिय थे और कृष्ण यदुकुल के, पर कृष्ण की बुआ सुभद्रा का विवाह अर्जुन के साथ हुआ था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रकार के अनेकानेक उदाहरण ढूँढ़े जा सकते हैं, जिसके सम्बन्ध जातीय समानता के आधार पर नहीं गुण, कर्म और स्वभाव के मेल के आधार पर किये जाते थे। आज कई जातियों और कई उपजातियों में मिलने वाले थोड़े-से लड़की-लड़कों में गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर खोजबीन और सम्बन्ध का निश्चय करना बड़ा टेढ़ा काम है क्योंकि एक-एक फिरके में थोड़े-थोड़े से लड़के-लड़की रहते हैं। पारिवारिक, आर्थिक और शैक्षणिक समानता देखने में ही इतने जोड़े अनुपयुक्त हो जाते हैं कि शेष जो बचे रहते हैं, उनमें गुणों और प्रकृतियों का मेल बिठाया जाय तो शायद ही कोई उपयुक्त जोड़ा मिले। ऐसी परिस्थितियों में जैसे भी हो और जिस तरह का भी हो ताल-मेल बिठाकर विवाह कर देने की जल्दी रहती है, इसका परिणाम योग्य और प्रतिभाशाली सन्तान होने की क्षीण सम्भावना के रूप में देखा जा सकता है।

समाज को सन्तान के रूप में उत्कृष्ट नागरिक दे पाना तभी सम्भव हो पाता है, जबकि माता-पिता योग्य हों और गुणों का सामंजस्य भी रखते हों। यह एक तथ्य है कि मानसिक और बौद्धिक दृष्टि से पिछड़ी पत्नी पति के विकास में रुकावट पैदा करती है तो उसी प्रकार अशिक्षित या कम पढ़ा-लिखा पति पत्नी के विकास में अवरोध उत्पन्न करता है। यों दोनों एक-दूसरे के पूरक और सहयोगी बनकर परस्पर सहयोग भाव से रहते हुए भी एक-दूसरे की कमियों को, पिछड़ेपन को दूर कर सकते हैं पर वैसी परिस्थितियाँ कम ही लोगों के लिए बन पाती हैं। अतः आवश्यक हो जाता है कि गुण, प्रवृत्ति और प्रकृति के रूप में दोनों एक-दूसरे से समानता रखते हों। दोनों की योग्यताओं में उन्नीस-बीस का अन्तर तो फिर भी चल सकता है, पर दस-बीस का अस्वाभाविक अन्तर किसी भी रूप में मेल नहीं खा सकता। ऐसी परिस्थितियों में गृहस्थी की गाड़ी चलने में तो रुकेगी, अटकेगी ही उनसे उत्पन्न हुई सन्तानें भी अयोग्य और अकुशल होंगी।

उपयुक्त वर-वधू के चुनाव में ही जाति-उपजातिगत रूढ़िवादी धारणाएँ बाधक बनती हों इतनी भर भी बात नहीं है। कई क्षेत्रों में इनके दुष्परिणाम सामने आते हैं। ऊँची कही जाने वाली जाति के लोगों में एक अहंकार भावना उत्पन्न हो जाती है, जिसके कारण वे अपने को दूसरों से बड़ा समझने लगते हैं। योग्यता और प्रतिभा की दृष्टि से अन्यों की अपेक्षा काफी पिछड़ा होने के बावजूद भी वह ये समझते हैं कि सारी महत्ता और सारा वर्चस्व हमें ही मिलना चाहिए। इसके लिए वे अवांछनीय तिकड़में भी भिड़ाते रहते हैं। यद्यपि आज के समय में यह अपराध है परन्तु तथाकथित उच्च लोगों के मन में सदियों से चली आ रही वह धारणा, अपने ऊँचेपन का अहंकार पूरी तरह दूर नहीं हुआ है।

शास्त्र और परम्परा की आड़ लेने वाले शास्त्रों के मूल सिद्धान्तों को समझें और अहंकार प्रेरित लोग अपने दृष्टिकोण को उदार तथा विशाल बनायें ताकि समाज का स्वस्थ विकास हो। ब्याह-शादियों के मामले में कम से कम कुल, गोत्र और उपजातियों के आधार पर ही वर-वधू को तलाशने की संकीर्णता तो टूटनी ही चाहिए। यदि इतना भी हो सका तो भविष्य में इसका और अधिक विकास भी हो सकता है।

भेद-भाव का उन्मूलन आवश्यक

पीड़ित और पिछड़े हुए वर्ग की असुविधा, अड़चनों को दूर करने के लिए प्राथमिकता दी जानी चाहिए, यह मानवता का तकाजा है। शरीर का कोई अंग रुग्ण हो जाय तो उसके सुधार के लिए अधिकतम ध्यान देना पड़ता है। इसी प्रकार बालकों की तेल मालिश से लेकर उनके भोजन, वस्त्र की व्यवस्था जुटाने में उनकी अपेक्षा ज्यादा ध्यान रखा जाता है, जो समर्थ हैं। घर के जवान या बूढ़े को दूध न मिले तो भी काम चल सकता है पर बच्चों के लिए तो उसका प्रबन्ध करना ही पड़ेगा। पैर में चोट लगे तो उसके उपचार की हर सम्भव तरकीब सोची जाती रहेगी चाहे दूसरे अंगों की सुविधा में कोताही भले ही करनी पड़े।

अपने समाज के दो अंग-अवयव घायल हुए और पिछड़े हैं। एक अछूत दूसरे महिला। दोनों ही प्रायः मानवी अधिकारों से वंचित हैं। मनुष्य के अपने वैध अधिकार हैं। उसका अपना अस्तित्व है और उसे समाज में समान सुविधा पाने का अधिकार है। यह न्याय की पुकार है। औचित्य और सत्य की प्रतिष्ठापना है कि मनुष्य मात्र को, समाज में सबकी प्रगति के लिए, जीवनयापन के लिए समान रूप से अवसर प्राप्त हों। उसकी न्यायोचित स्वतन्त्रता में बाधा न पहुँचाई जाय। जब तक उस पर मर्यादा उल्लंघन का आरोप नहीं है, तब तक उसे समान स्वतन्त्रता का उपयोग करने की छूट रहे।

न्याय की दृष्टि में स्त्री-पुरुष दोनों ही मानव के दो अविच्छिन्न रूप से मिले-जुले पहलू हैं। दोनों की स्थिति एक है। दोनों को समान रूप से कर्तव्य और अधिकार का उत्तरदायित्व रहना चाहिए, न किसी को कम न किसी को अधिक। जो भी कायदे-कानून, नियम प्रतिबन्ध बनें, वे नर और नारी पर समान रूप से लागू होने चाहिये। यदि पक्षपात बरता जाय, एक के लिए दूसरी तरह के और दूसरे के लिए दूसरी तरह के नियम बने तो यह सरासर पक्षपात या अन्याय ही कहा जायेगा। भले ही उस तरह की व्यवस्था पिछले बहुत दिनों से चली आ रही हो या किन्हीं पुरानी पुस्तकों में उनका प्रतिपादन किया गया हो, परम्पराएँ अथवा भूतकाल से चले आ रहे प्रतिपादन न्याय और विवेक को चुनौती नहीं दे सकते। कोई बात पिछले दिनों कही, सुनी या मानी जाती रही है, वह आगे भी मानी जाती रहनी चाहिए यह कोई तर्क या दलील नहीं है। बात नई हो या पुरानी स्वीकार वही की जाती है जो न्यायानुकूल एवं विवेकसम्मत हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छूत और अछूत का अन्तर जन्म-जाति के आधार पर माना जाय, इसका कोई औचित्य नहीं। बुरे आचरण वाले व्यक्तियों को तिरस्कृत या बहिष्कृत किया जाय यह बात समझ में आती है। लोकमंगल के लिए अनुदान देने वालों को अपेक्षाकृत अधिक सम्मान मिले यह बात भी स्वीकार की जा सकती है। व्यवसाय के अनुरूप जातियाँ बनें उसका भी कुछ आधार है। पर जन्म के आधार पर ऐसी जाति-पाँति बने जो मनुष्य-मनुष्य के बीच ऊँच-नीच की दीवार खड़ी कर दें यह सर्वथा अनुचित, अनीतिमूलक और अविवेकपूर्ण है।

पिछले अन्धकार युग में सामन्ती बर्बरता ने हर क्षेत्र को प्रभावित किया। जिसकी लाठी उसकी भैंस का जंगली कानून चल पड़ा। शक्ति, सम्पत्ति ने अपनी सुविधा की व्यवस्था बनाई और उस पर पण्डित, पुरोहितों से मुहर लगवाली। वैसी ही किताबें लिखवालीं। वैसी ही प्रथा चलाने का वातावरण बना दिया। जन्म से जाति माने जाने का कोई तुक नहीं है। तथाकथित उच्च कुल में पैदा होने के कारण किसी मूर्ख या पतित व्यक्ति को ब्राह्मणत्व का सम्मान मिले और किसी सदाचारी, विद्वान और सुयोग्य व्यक्ति को इसलिए अछूत माना जाय कि वह तथाकथित नीच कुल में पैदा हुआ है—यह कहाँ का न्याय है। जाति-पाँति की बात में तभी सार्थकता है, जब वह व्यवसाय के, गुण, कर्म, स्वभाव के ठोस आधार पर बनी है। जन्म से तो सभी मनुष्य एक से हैं। उनके बीच भेद-भाव क्या हो सकता है ? वंश के आधार पर ऐसी जाति-पाँति का प्रतिपादन जो मानवीय समाज को विभाजित करे, अनुचित सम्मान या तिरस्कार प्रस्तुत करे—सर्वथा अवांछनीय है। ऐसी जाति-पाँति पद्धति का विवेक और न्याय कभी भी समर्थन नहीं करेगा। भले ही उस मान्यता को बहुसंख्यक लोग ही अपनाये क्यों न बैठे हों, भले ही उस मूढ़ मान्यता के पक्ष में प्राचीनता या पुस्तकों की ही दुहाई क्यों न दी जाती हो ?

मनुष्य और मनुष्य के बीच अनीतिमूलक आधार पर भेदभाव उत्पन्न करके, जिन वर्गों के ऊपर अवांछनीय प्रतिबन्ध लगाये गये निस्सन्देह उनके साथ अन्याय हुआ है इस दृष्टि से अछूतों और नारियों को पीड़ित, शोषित या उत्पीड़ित माना जाना चाहिए और उनके साथ जो अन्याय होता रहा है, भेदभाव चल रहा है, उसका परिमार्जन होना चाहिए। प्रायश्चित उन्हें करना होता है, जिन्होंने गलती की हो। नारी के प्रति नर ने और अछूतों के साथ छूतों ने जो अनीति बरती है, अब समय आ गया कि उसको सुधारा और प्रायश्चित किया जाय।

सुधार यह होगा कि उन विभेदमूलक मूढ़मान्यताओं को समाप्त कर दिया जाय और बिना किसी भेदभाव के लिंग और जाति की दीवार को ढहाते हुए एक ऐसे विशाल मानव परिवार की रचना की जाय, जिसमें सबको समान सम्मान, समान अवसर और समान अधिकार प्राप्त हों। अब तक चली आ रही पक्षपातपूर्ण मान्यताओं और परिस्थितिओं को मन में से निकाल बाहर करना और समता स्वतन्त्रता की सार्वभौम, सर्वजनीन परिस्थिति उत्पन्न करना यह सुधार क्रिया है।

प्रायश्चित यह होगा कि जो पिछड़ गये हैं—गिर पड़े हैं गिरा दिये हैं, उन उत्पीड़ितों को तब तक विशेष सहायता दीं जाय जब तक कि वे स्वयं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से और सामाजिक परिस्थितियों से छुटकारा पाकर समानता की स्थिति तक पहुँचने में समर्थ नहीं हो जाते।

सरकारी स्तर पर उपरोक्त दोनों पिछड़ों वर्गों को समानता के स्तर पर लाने की कानूनी सुविधा दी गई है, दी जा रही है, पर उससे कुछ विशेष काम चलने वाला नहीं है। बात बनती तब है जब समाज में उस तरह के प्रचलन की उमंग उठ खड़ी हो। कानून तो दहेज, बाल-विवाह, जैसी कुरीतियों और व्यभिचार, छल, चोरी जैसे सभी कामों के विरुद्ध बने हुए हैं पर उसके बाबजूद सब कुछ होता रहता है। कानून पग-पग पर टूटते रहते हैं। व्यवस्था वही चलती है, जिसे व्यक्तियों ने सच्चे मन से अपनाया और समाज ने उसे व्यवहार में लाना स्वीकार किया हो। किसी सामाजिक अनीति को मिटाना हो तो उसके लिए सर्वजनीन मान्यता मिलनी चाहिए। नारी और अछूत इन दोनों वर्गों के लिए हमारी सहायता, सहानुभूति पीड़ित और पिछड़े अंगों को यथास्थिति में लाने जैसी अतिरिक्त स्तर की ही होनी चाहिए। प्रायश्चित की दृष्टि से कुछ अतिरिक्त सहयोग ही किया जाना चाहिए।

इन दोनों वर्गों में भी नारी उत्कर्ष को प्राथमिकता मिलनी चाहिए। उनकी संख्या आधी जनसंख्या है। किसी देश की आधी जनसंख्या पिछड़ी हई हो तो उसे सच्चे अर्थों में सुविकसित बनने का अवसर कभी भी नहीं आ सकता। आधा शरीर अपंग हो जाय, लकवा मार जाय तो आधा शरीर नीरोग होते हुए भी बेकार है। आधे अपंग भाग का भार ढोने में उसकी शक्ति समाप्त हो जायेगी। आधे हिस्से से भला क्या कुछ काम चल सकता है। एक पहिये की गाड़ी कैसे चले ? एक हाथ से ताली कैसे बजे ? एकांगी समाज व्यवस्था सर्वथा अधूरी है। गृह प्रबन्ध से लेकर बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में नर और नारी दोनों मिलकर काम करें तभी कुछ उपलब्धियाँ दीख पड़ेंगी अन्यथा एक वर्ग कमाये दूसरा बैठकर खाये तो जमा खर्च बराबर होता रहेगा। प्रगति के नाम पर बचत का कोई आधार न बनेगा। नारी को हमें नर के समान ही सुयोग्य और सुविकसित बनाना पड़ेगा। दोनों बैल कन्धे से कन्धा मिलाकर चलते हैं, तभी खेती का काम चलता है। एक आगे चले दूसरा उसके गले में पत्थर बनकर बँधा रहे तो आगे बढ़ना कैसे होगा ? यदि सचमुच सामाजिक प्रगति और वैयक्तिक उत्कर्ष अभीष्ट हो तो आधी जनसंख्या को कैदियों जैसी पराधीनता से मुक्त करके उसे स्वतन्त्रता की साँस लेने और कर्त्तव्य एवं अधिकार का उत्तरदायित्व उठाने का अवसर देना चाहिए। इस दृष्टि से नारी उत्कर्ष के लिए अतिरिक्त रूप से कुछ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयत्न करना होगा। जैसे पीड़ित और पिछड़े अंगों के उपचार पर विशेष ध्यान दिया जाता है, उसी प्रकार इन पिछड़े अंगों को परिपुष्ट बनाने के लिए भूतकालीन पाप के प्रायश्चित और भावी प्रगति के प्रयत्न की दृष्टि से यह अति आवश्यक है कि हमारा ध्यान इस क्षति को पूरी करने में लगे, जिसके कारण हमारी आधी शक्ति नष्ट हो रही है।

भावी पीढ़ियों का निर्माण माता की शारीरिक और मानसिक परिस्थितियों पर निर्भर रहता है। अविकसित, पिछड़ी हुई पराधीन नारी ऐसी ही पीढ़ी विनिर्मित करती रहेगी जो अनेक दृष्टि से पिछड़ी हुई हो। प्रगति के लिए केवल कल-कारखाने बनाना ही पर्याप्त नहीं। पीढ़ियों में उत्कृष्टता उत्पन्न करने का काम सबसे अधिक महत्वपूर्ण उत्पादनों में से एक है और यह कार्य स्कूल-कालेज नहीं कर सकते वरन् परिष्कृत स्थिति में रहने वाली माताओं द्वारा ही सम्भव होगा।

घरेलू वातावरण की श्रेष्ठता व्यक्ति को दूना-चौगुना काम करने की क्षमता प्रदान करती है। घर में अस्त-व्यस्तता और अवांछनीयता और अव्यवस्था छाई हुई हो तो वह सब कुछ अनुपयुक्त ही रहेगा। क्लेश और फूहड़पन की परिस्थितियों में सब प्रकार का विकास अवरुद्ध ही रहता है। धन और विद्या तथा पद-प्रतिष्ठा से नहीं मनुष्य के अन्तरंग की कली पारिवारिक वातावरण से खिलती है और उसका निर्माण सुयोग्य एवं सुविकसित नारी ही कर सकती है। आज की बन्दी जैसी परिस्थितियों में कसी हुई, जिन्दगी की लाश ढोती हुई नारी का स्तर वैसा कहाँ है—जिसमें उल्लास भरे पारिवारिक वातावरण का सृजन कर सके। इस अभाव में सारी परिस्थितियाँ कुसंस्कारी ही बनी रहेंगी। बच्चों से लेकर बूढ़े तक आज घर की अपेक्षा बाहर चैन पाते हैं। कारण स्पष्ट है बन्दी बनी हुई नारी की योग्यता, शिक्षा और स्थिति ही उस तरह की नहीं है कि वातावरण में विकासोन्मुख हर्ष और उल्लास से भरे हुए सुसंस्कारी तत्वों को बढ़ा सके। हमारी संकीर्णता ने, नारी की स्थिति को संकीर्णता से भर दिया फलतः सारा वातावरण क्षुद्रता और संकीर्णता से, पिछड़नेपन और प्रतिगामिता से भरा दीख रहा है।

प्रगति और सुधार की प्रक्रिया आरम्भ करते हुए हमें उपार्जन से अधिक उस मर्म-स्थल को देखना चाहिए जहाँ से हमारी तीन चौथाई शक्ति बर्बाद होती है। हमारे सामाजिक बर्तन की पैंदी में दो बड़े छेद हैं इनके रहते उनमें कितना ही दूध क्यों न भरा जाय टपककर नीचे गिरता रहेगा और लाख सिर पटकने पर भी वह खाली ही बना रहेगा। अछूतों और नारियों का पिछड़ापन ऐसा अभिशाप है, जिसके रहते स्थिर प्रगति की आशा करना दुराशा मात्र है।

अछूतों की संख्या अपने देश में लगभग एक तिहाई है। इस देश की एक चौथाई जनसंख्या इसलिए सामाजिक प्रगति में अपना पूरा योगदान नहीं दे सकती कि सवर्ण लोग उन्हें समानता का अवसर देने, घनिष्ठ सहयोग करने और प्रगाढ़ सहयोग लेने के लिए तैयार नहीं होंगे। अब जमाना आगे बढ़ रहा है। अन्याय किसी से भी सहन नहीं होता। अपमान तो छोटे बच्चे को भी बुरा लगता है। जिनके साथ अनीति बरती जायेगी वे उन सताने वालों से घृणा नहीं तो और क्या करेंगे ? प्रस्तुत असमानता और घृणा, तिरस्कार एवं सहयोग के वातावरण में परस्पर के सम्बन्धों में खिंचाव ही पैदा होता चला जायेगा। एक-दूसरे से दूर ही हटेंगे। फलस्वरूप सामाजिक वातावरण विषाक्त ही बनेगा। असहयोग की खाई चौड़ी होगी और उन उपलब्धियों से वञ्चित ही रहना पड़ेगा जो परस्पर स्नेह, सद्भाव में रहने वाले समाजों को स्वयमेव प्राप्त होती रहती हैं।

स्वभावतः मनुष्य स्नेह-सौहार्द्र के वातावरण में रहना चाहता है। तिरस्कार और घृणा की परिस्थितियों में तो पशु भी नहीं रहना चाहता फिर मुनष्य को उन लोगों के साथ रहने में क्यों अच्छा लगेगा, जो मनुष्यता के प्रथम चिन्ह न्याय तक की बात स्वीकार नहीं करते और जन्म से जाति जैसी मूढ़-मान्यता से चिपके रहकर दूसरों के मानवीय अधिकारों का हनन-अपहरण करते हैं। जब तक यह स्थिति बनी रहेगी भीतर ही भीतर रोष और क्षोभ की आग सुलगती रहेगी और उसके धुएँ से वातावरण विषाक्त होता रहेगा। कभी-कभी यह आग सुलगने लगती है, लपटें उठने लगती हैं तो हमें चिन्ता होती है। उस दीखने वाली लपट भर को अदृश्य करने की बात तो करते हैं पर यह भूल जाते हैं कि विद्रोह का मूल कारण क्या है ?

अछूतों को अन्य धर्मों में जाते हुए देखकर कुछ विचारशील लोग तिलमिलाते तो हैं और उपाय भी सोचते हैं। उपाय उन्हें इतना भर दीखता है कि विधर्मी बने लोगों को शुद्ध करके फिर अपने धर्म में वापिस मिला लिया जाय। ऐसे शुद्धि संस्कारों के समाचार जब तब सुनने को मिलते रहते हैं। यह प्रयत्न भी अच्छे हैं पर उन्हें चेचक पर तेल चुपड़ने जैसा, आग को गीले कपड़े से ढकने जैसा तात्कालिक उपचार ही कहा जा सकता है। बात इतने भर से नहीं बनेगी। हमें उस अन्यायमूलक भेदभाव से जूझना होगा जो जाति-पाँति के नाम पर, ऊँच-नीच की विडम्बना करता है। जिस समाज में समानता की स्थिति न होगी, व्यक्ति को सम्मानपूर्वक साथ रहने का अवसर न मिलेगा, उससे तिरस्कृत लोग हटते-कटते ही चले जायेंगे। रहेंगे तो भी रुष्ट-असन्तुष्ट रहकर। यह स्थिति किसी भी देश समाज के लिए न तो शोभनीय है और न सन्तोषजनक। इनके रहते प्रगति का पथ सर्वथा अवरुद्ध ही बना रहेगा।

अपने समाज के दो वर्ग ऐसे हैं, जिनके साथ सामाजिक अन्याय होता चला आ रहा है। भोजन, वस्त्र की उन्हें सुविधा है या नहीं प्रश्न यह नहीं। प्रश्न यह है कि उन्हें मानवीय अधिकार उपलब्ध हैं या नहीं। रोटी आदमी के लिए है आदमी रोटी के लिए नहीं। स्त्रियों को भोजन वस्त्र मिल जाता है, अछूतों के पास कृषि उद्योग है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनका गुजारा हो जाता है यह प्रश्न नहीं। गुजारा तो जेल के कैदी भी करते हैं। बहुत करके उन्हें करोड़ों लोगों से अच्छा भोजन, वस्त्र, निवास, चिकित्सा आदि का लाभ मिलता है। तो भी कोई व्यक्ति कैदी रहना पसन्द नहीं करता। हिन्दू समाज में स्त्रियों व अछूतों के साथ भेदभाव मूलक जो व्यवस्था बनाये हुए हैं, उससे उसी का अहित है। दूरदर्शिता का तकाजा यही है कि भूल को समय रहते सुधार लिया जाय। इन दोनों पिछड़े वर्गों को समानता, स्वाधीनता देने और उसका उपयोग, उपभोग ठीक तरह से करने के लिए उन्हें ऊँचा उठाने के लिए ऐसा कुछ तीव्र प्रयास किया जाना चाहिए, जिससे पिछली भूल का प्रायश्चित और भावी प्रगति का आधार दोनों ही प्रयोजन साथ-साथ पूरे हो सकें।

वर्ग संघर्ष या वर्ग साम्य

परस्पर एक-दूसरे के सम्पर्क में रहने वाले व्यक्तियों को हम बहुधा दो प्रकार की भावनाओं से प्रेरित पाते हैं। कभी हम देखते हैं कि सारा कुटुम्ब एक बालक को बचाने या पढ़ाने में अपने आपको मिटा देता है, तो कभी कुटुम्ब का एक व्यक्ति सारे कुटुम्ब के लिए अपने आपको मिटा देता है। यहाँ एक पक्ष तब बचता है जब दूसरा अपना बलिदान कर देता है किन्तु इतना होते हुए भी हम यह नहीं कह सकते कि उस कुटुम्ब में वर्ग-संघर्ष चल रहा है क्योंकि दोनों पक्षों का एक ही सा समान उद्देश्य है और वे एक ही भावना से प्रेरित हैं किन्तु यदि दो पक्ष ऐसे हों कि उनका समान उद्देश्य न हो, दोनों अपने-अपने हित का अलग-अलग ख्याल रखते हों तो एक साथ रहते हुए उन्हें भी हम उन्हें एक ही वर्ग का नहीं कह सकते। यदि मैं अपने घर में गाय को पालता हूँ और इस पालन में यदि यह भावना ही प्रधान हो कि इससे अधिक से अधिक लाभ हो तो गाय को खूब भरपेट भोजन देने के बावजूद मुझमें और गाय में वर्गभेद मौजूद है। मुझे उस गाय से ममता होने के स्थान में "शुभ-लाभ" से अधिक ममता है किन्तु यदि मेरे हृदय में यह ख्याल हो कि गाय भले ही बूढ़ी होकर मर जाय, भले ही व दूध और बछड़े देकर मेरी आर्थिक सहायता न कर सके पर मैं उसे अपने घर से अलग न करूँगा तो वह पशु होते हुए भी मेरी कुटम्बिनी है और मुझमें और उसमें कोई भेद नहीं है। जहाँ दो पक्षों में प्रत्येक पक्ष दूसरे के हित में अपना हित मानता है तथा उसके लिए कुछ हानि भी उठाने के लिये तैयार रहता है, वहाँ दोनों में उस समान उद्देश्य की दृष्टि से कोई वर्ग भेद नहीं रहता। किन्तु जहाँ उद्देश्यों की विभिन्नता होती है, वहाँ उन उद्देश्यों की दृष्टि से उनमें वर्ग भेद होता है। यदि ये उद्देश्य ऐसे हों कि एक पक्ष का उद्देश्य सिद्ध होने पर दूसरे का उद्देश्य सफल होता हो जहाँ दो पक्षों के हितों में भेड़ और भेड़िये के हितों जैसा सम्बन्ध हो, जहाँ एक शोषक और दूसरा पीड़ित हो, वहाँ वर्ग-संघर्ष तीव्र हो जाता है। अतएव भिन्न-भिन्न वर्ग भिन्न-भिन्न उद्देश्यों के होने से ही बन जाते हैं।

इस दृष्टिकोण से देखने पर हम कहेंगे कि यदि किसी पूँजीपति का अधिक से अधिक व्यक्तिगत सम्पत्ति जुटाना ही प्रधान लक्ष्य है तो वह मजदूर वर्ग का विरोधी है किन्तु यदि वह "यह सब ईश्वर का है।" **"ईशावास्यमिदं सर्वं"** ऐसा मानकर अपना व्यवसाय चलाता है, यदि उसका व्यवसाय के द्वारा यह उद्देश्य है कि मजदूर तथा वह स्वयं सुख सहित जीवन व्यतीत करे तो वह पूँजीपति मजदूर वर्ग का कदापि विरोधी न कहलावेगा। मार्क्स इस बात को अच्छी तरह नहीं समझे। उन्होंने अपने जमाने के पूँजीपतियों को देखकर एकदम कह दिया कि मजदूरों और उनके हितों में पारस्परिक विरोध है। अतएव उनके बीच में वर्ग-संघर्ष अनिवार्यतः मौजूद है और मजदूरों की स्थिति को सुधारने के लिए उसे बढ़ाने की आवश्यकता है। जैसे बादशाहों में नासिरुद्दीन और औरंगजेब थे, जो कि राज्य-कोष का अपने व्यक्तिगत सुख के लिए कोई उपयोग न करते थे, वैसे ही पूँजीपतियों में भी कुछ पूँजीपति उन्हें देखने को मिल जाते जो कि अपने पास की सम्पत्ति को अपनी न समझते और जिनका कि मजदूरों के साथ ही एक समान उद्देश्य होता तो वे वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त को वैसा अटल महत्व प्रदान न करते जैसा कि आज मार्क्सवादी दर्शन में हमें देखने मिल रहा है। उसमें उनका संशोधन होता कि मजदूरों को संघर्ष केवल उन्हीं पूँजीपतियों से करना चाहिए जो मजदूरों को बहुत कम वेतन देते हों, जिनके उद्देश्य भिन्न हों, पर दूसरों से नहीं। किन्तु मार्क्स ने यह मान लेने की भूल की कि प्रत्येक पूँजीपति का अनिवार्यतः मजदूरवर्ग से भिन्न उद्देश्य होगा। इस कारण वे स्वयं भूल-भुलैयों में पड़ गये और उन्होंने गलत निष्कर्ष निकाले।

आज वर्ग-संघर्ष की चर्चा जोरों पर है। अपने वर्ग का संगठन, अपने वर्ग का लाभ, अपने वर्ग का स्वार्थ, अपने वर्ग का गौरव, अपने वर्ग की सत्ता, पर आज बहुत जोर दिया जा रहा है। अनेकवाद और संघ इस दशा में प्रयत्नशील हैं। पर लोग यह भूल जाते हैं कि सार्वजनिक सामूहिक लाभ, पारस्परिक सहयोग और विभिन्न वर्गों को कौटुम्बिक एकता का आयोजन करके भी वर्ग भेद को मिटाया जा सकता है। लाठी के बल पर स्थापित किये गये साम्य की अपेक्षा सद्-भावनाओं में उत्पन्न हुआ साम्य अधिक श्रेयष्कर है।

महात्मा गाँधीजी भी साम्यवादी थे। वे भी वर्गविहीन समाज चाहते थे पर वे इसके लिए वर्ग-संघर्ष को अनिवार्य नहीं समझते थे, उनका विश्वास था कि मानवीय सद्भावनाओं को विकसित करके वर्ग साम्य की स्थापना की जा सकती है। भारत गान्धीवादी पद्धति से ऐसा साम्य स्थापित कर सका तो 'अहिंसा द्वारा स्वराज्य प्राप्ति' के समान यह उसकी दूसरी आध्यात्मिक विजय कही जायेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विभेदों की दीवार गिरायें

मनुष्य-मनुष्य के बीच विभाजन की अनेक दीवारें खड़ी की गई हैं और वे बढ़ती तथा मजबूत ही होती जा रही हैं। अतः विचारणीय है कि इस स्थिति के रहते मनुष्य परस्पर किस प्रकार एकता और आत्मीयता का निर्वाह कर सकेगा। यदि वह न बन पड़ता तो बिखराव में उसकी सामर्थ्य नष्ट ही होती रहेगी और मिल-जुलकर जो कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं, वे बन नहीं पड़ेंगे।

विश्व में २०६६ भाषायें प्रचलित हैं। अनेक प्रकार की बोलियाँ भी बोली जाती हैं। विश्व के पाँच अरब से अधिक लोग, लगभग १५-१५ लाख व्यक्ति एक भाषा के प्रयोगकर्त्ता हैं।

विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा चीनी है, जिसके बोलने वाले लगभग ८० करोड़ हैं। दूसरा स्थान अँग्रेजी भाषा का है, जो अनुमानतः ३५ करोड़ व्यक्तियों द्वारा प्रयोग की जाती है। २० करोड़ व्यक्ति हिन्दी भाषा का प्रयोग बोल-चाल में करते हैं। इतनी संख्या ही रूसी भाषा-भाषियों की है। जर्मन फ्रेंच भाषा के प्रयोगकर्ता की संख्या १५ करोड़ है। २० करोड़ व्यक्ति स्पेनी भाषा में बातचीत करते हैं। १२ करोड़ व्यक्तियों की भाषा जापानी है। १० करोड़ व्यक्ति अरबी भाषी हैं। पुर्तगाली भाषा के प्रयोगकर्ताओं की संख्या भी १० करोड़ है। लगभग ८ करोड़ इटालियन भाषा बोलते हैं।

विश्व में प्रचलित धर्म सम्प्रदायों की संख्या प्रायः ६०० है। इसमें छोटे-छोटे वर्गों और थोड़े-थोड़े क्षेत्रों में प्रचलित कवायली सम्प्रदायों को सम्मिलित नहीं किया गया। प्रसिद्ध ईसाई, मुस्लिम, हिन्दू, बौद्ध, पारसी आदि धर्मों की अनेकों शाखायें-प्रशाखाएँ हैं। अकेले हिन्दू धर्म के अन्तर्गत जानकारी के अनुसार ३८०० से अधिक सम्प्रदाय हैं। अन्य धर्मों में इतना बिखराव नहीं पाया जाता है।

भारत की १९८१ की जनगणना के अनुसार हिन्दू ८२%, मुसलमान १२०% और ईसाई ६% थे, जबकि कुल जनसंख्या ६८ करोड़ अनुमानित की गई।

सन् १९८१ व १९४१ की मध्यावधि में भारत में मुस्लिम ८९%, ईसाई ३१८% तथा हिन्दू ४४% बढ़े और औसत वृद्धि की दृष्टि से गत ६० वर्षों के अन्तर्गत पूरे भारत में प्रति हजार ५६ हिन्दू घटे तथा ४३% मुस्लिम प्रति हजार बढ़े।

विभाजन के पश्चात् १९५१ में हिन्दू ८५%, मुस्लिम ९.९% तथा ईसाई ३५% थे। १९६१ की जनगणना के अनुसार हिन्दू ८३.५%, मुस्लिम १०.७% तथा ईसाई २.४४% हो गये।

धर्म सम्प्रदायों के इस बिखराव से बौद्धिक और भावनात्मक खाई की उत्पत्ति होती है। बहुधा देखा गया है कि अपने ही धर्म के अनुयायी अपने ही धर्मात्माओं को अन्यायी और अधर्मी ठहराते हैं।

इन विभाजनों की दीवारों को गिराने का प्रयत्न किया जाना चाहिए ताकि धर्म, भाषा, देश व्यवस्था आदि के कारण विघटित मानव समाज एकता का लाभ उठा सके।

वर्गभेद के विष वृक्ष को उखाड़ फेंका जाय

बड़प्पन का, महानता का मापदण्ड है—"सादा जीवन उच्च विचार।" अपने लिए कठोरता और दूसरों के साथ सहिष्णुता, सदाशयता और उदारता से युक्त सद्व्यवहार। महानता भीतर से फूटती है और बाहर सद्भाव भरी सत्प्रवृत्तियों के रूप में परिलक्षित होती है। यही वह आधार है, जिसको अपनाकर हर कोई महान् बनने, श्रेष्ठता अर्जित करने का श्रेय, सौभाग्य प्राप्त कर सकता है।

वर्ण, जाति, गोत्र, वर्ग, लिंग, धर्म, सम्प्रदाय के आधार पर बड़े-छोटे का भेदभाव करना एक को सम्मानित करना, दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखना तथा अपमानित करना वैचारिक ही नहीं मानवता की दृष्टि से भी अपराध की श्रेणी में आता है। इन आधारों पर भेदभाव की प्रवृत्ति जिस भी समाज अथवा राष्ट्र में जितनी अधिक संव्याप्त होगी, वे उतने ही कमजोर होंगे। आपसी मनोमालिन्य और विग्रह के कारण वह समाज धीरे-धीरे विघटित होता जायेगा। कुल, जाति, वर्ग, लिंग, समृद्धि आदि को देखकर व्यक्ति विशेष और वर्ग विशेष को सम्मानित करने की कुपरम्परा अपने देश में अभी भी विद्यमान है, जिससे आये दिन कितनी ही समस्याओं का सामना करना पड़ता है ?

जाति-पाँति, छूआ-छूत, लिंगभेद की दुष्प्रवृत्ति ने भारतीय समाज को कितना जर्जर बनाया है, यह किसी से छुपा नहीं है। हिन्दू धर्म के अभिन्न अंग जिन्हें अछूत समझकर लम्बे समय तक उपेक्षित, तिरष्कृत किया जाता रहा, उसका प्रतिशोध और आक्रोश इन दिनों धर्म परिवर्तन की विभीषिका के रूप में प्रस्फुटित हुआ है। नर-नारी के बीच कनिष्ठता, वरिष्ठता के भेदभाव से नारी जाति को दीर्घकाल तक अवगति के गर्त में रहना पड़ा है। अविकसित अवस्था में पड़े रहने से भारतीय समाज को लम्बे समय तक उनके अमूल्य योगदान से वंचित रहना पड़ा। उत्थान के लिए किये गये अनेकानेक प्रयासों के बावजूद आज भी नारी समुदाय को पुरुष के समकक्ष अधिकार नहीं प्राप्त हो सके हैं। आये दिन युवतियों के जलने, मरने, आत्महत्या करने के समाचार प्रकाशित होते रहते हैं। पुरुष द्वारा प्रताड़ित और उत्पीड़ित नारियाँ ही ऐसे आत्मघाती कदम उठाती देखी जाती हैं। इन घटनाओं की पृष्ठभूमि उसी समय बन जाती है, जब घर में लड़का पैदा होने पर खुशियाँ मनायी जातीं और लड़की होने पर अप्रसन्नता व्यक्त की जाती है।

अमीरी-गरीबी को आधार मानकर एक को सम्मानित करने और दूसरों की अवमानना करने की प्रवृत्ति भी इन्हीं दुष्प्रवृत्तियों की शृंखला में आती है। ईमानदारी, श्रमनिष्ठा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को प्रतिष्ठा देने की बात तो समझ में भी आती है पर मात्र सम्पन्नता के आधार पर सम्मान देने की बात गले नहीं उतरती। उचित-अनुचित का भेदभाव रखे बिना जहाँ समृद्धि बढ़ाई गयी है, वह अनैतिक तो है ही। ऐसे वर्ग को ख्याति मिलते देखकर अन्य व्यक्ति भी नीति-अनीति पर बिना ध्यान दिये जैसे भी हो सम्पन्न बनने की बात सोचते हैं। प्रतिष्ठा मानवी सत्प्रवृत्तियों और सद्गुणों को मिलने लगे, अमीरी-गरीबी के आधार पर भेदभाव बरतने की दुष्प्रवृत्ति हटे तो सामूहिक सुख, शान्ति, प्रगति और समृद्धि में भारी सहयोग मिल सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद-भाव विभिन्न रूपों में प्रचलित है। वर्णभेद, नस्लभेद, रंगभेद, सम्प्रदायभेद जैसे कितने ही रोड़े ऐसे हैं, जो विश्व-बन्धुत्व, शान्ति और एकता के मार्ग में अवरोध के रूप में अड़े हुए हैं। सदियों से विश्व एकता, शान्ति एवं समता के लिए अनेकानेक प्रयास चल रहे हैं पर इनके रहते अब तक असफलता ही हाथ लगी है। वर्ण और नस्ल के आधार पर पक्षपात करने की मनोवृत्ति जब तक विश्व में बनी रहेगी, तब तक विश्व शान्ति का सपना साकार नहीं हो सकता। रंगभेद की नीति ने मानव जाति पर कितना अत्याचार किया है ? यह इतिहास के पन्ने उलटने पर पता चलता है।

इसे विचित्र संयोग कहना चाहिए कि पन्द्रहवीं सदी के अन्तर में प्रकृति के विपुल शक्ति-साधन श्वेत यूरोपियन समुदाय के हाथों में आ गये। उन्होंने अपने साम्राज्य के विस्तार की योजना बनायी। विभिन्न देशों में कॉलोनियों की स्थापना की गयी। व्यापार बढ़ाने और समृद्धि अर्जित करने में अश्वेतों का भरपूर सहयोग मिला। पर अश्वेत मानवोचित अधिकारों को प्राप्त करने में सदा वंचित ही बने रहे। इनके साथ गोरों का व्यवहार पशु जैसा था। शोषण और दमन से अश्वेत कमजोर होते गये तथा श्वेत उतने ही समृद्ध और शक्तिशाली बनते गये। १९वीं सदी तक दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और यूनाइटेड स्टेट्स में नस्लभेद सर्वाधिक दिखायी पड़ा। चल और अचल सम्पत्ति की भाँति काले नीग्रो और प्रवासी गुलामों की खरीद बिक्री चलती थी। रंगभेद की नीति के विरुद्ध अवाज उठाने पर संघर्ष छेड़ने पर अब्राहमलिंकन, मार्टिनलूथर किंग जैसे कितने ही ज्ञात और अविज्ञात मानवता के पुजारियों को अपनी आहुति देनी पड़ी।

इन प्रयत्नों एवं बलिदानों का प्रतिफल यह निकला कि कानूनी तौर पर नस्लभेद तो समाप्त हो गया पर वह मानसिकता अभी भी बनी हुई है। यूरोपीय देशों में उसकी प्रतिक्रिया अनेकों प्रकार के संघर्षों के रूप में प्रकट हो रही है। जुलाई १९८१ में इंग्लैण्ड के लिवरपूल, बरमिंघम, साऊथहाल, नाटिंघमे, उत्तरी-पश्चिमी ल्यूटन, प्रिस्टन नगरों में भयंकर हिसंक संघर्ष श्वेत और अश्वेतों के बीच छिड़ा, जिसमें हजारों की संख्या में लोग मारे गये। करोड़ों की सम्पत्ति आगजनी बम विस्फोटों आदि में नष्ट हुई। यह विष फैलता हुआ अब अमेरिका में भी जा पहुँचा है। वहाँ भी वर्णभेद के कारण परिस्थितियाँ तनावपूर्ण होती जा रही हैं।

दक्षिणी अफ्रीका की बहुचर्चित एपारथीड नीति अभी भी अन्तर्राष्ट्रीय तनावों का कारण बनी हुई है। एपारथीड नाम १९४८ के बाद दक्षिण अफ्रीका की नेशनल पार्टी द्वारा दिया गया ताकि वहाँ रहने वाले ३८ लाख गोरों और एक करोड़ ७७ लाख अश्वेतों को रंग के आधार पर विभाजन तथा आपसी सम्बन्धों का निर्धारण हो सके। राज्य पर राजनैतिक एवं आर्थिक प्रभुत्व गोरों का होने से उन्होंने सदा से यही प्रयास किया है कि वे समाज पर प्रभावी रहें। श्वेतों को अधिकाधिक सुविधाएँ और अतिरिक्त अधिकार प्राप्त हैं, जबकि कितने ही महत्वपूर्ण सेवाओं में कालों का प्रवेश कानूनी रूप से वर्जित कर दिया है। स्वयं सरकार ने कानून बनाकर रंग के आधार पर वहाँ के निवासियों को चार समुदायों में विभाजित कर रखा है यूरोपियन्स, एशियन्स, अफ्रीकन्स और कलरेड्स ताकि सहज ही उन्हें वर्णों के आधार पर पहचाना जा सके और सबके लिए अलग-अलग अधिकारों का निर्धारण किया जा सके। मनमर्जी से यात्रा करने, विवाह रचाने, सम्पत्ति खरीदने, सार्वजनिक स्थलों पर घूमने, वोट देने, जैसे मानवोचित अधिकार भी अश्वेत वर्ग को प्राप्त नहीं हैं। दक्षिणी अफ्रीका की एपारथीड नीति के विरुद्ध इन दिनों यूरोपीय देशों द्वारा भी तीव्र माँग उठाई जा रही है।

विश्व व्याप्त वर्गभेद की समाप्ति तो विश्वस्तरीय प्रयासों द्वारा सम्भव होगी पर अपने देश में फैले इस विष वृक्ष को उखाड़ फेंकने के लिए हर विचारशील को आगे आना चाहिए। जाति-पाँति, छूआछूत, अमीर-गरीब, नर-नारी के बीच भेदभाव जैसी कितनी ही दुष्प्रवृत्तियाँ अपने समाज में गहरी जड़ें जमाये बैठी हुई हैं, जो धीरे-धीरे उसे खोखली बना रही हैं। इन्हें जड़ से उखाड़ना होगा।

इस दिशा में पहला कदम उठाने की आवश्यकता है बड़प्पन-महानता के उथले मापदण्डों को उलटना। उपरोक्त भेदभावों को बढ़ावा देने में इनका बहुत बड़ा योगदान है। इसके साथ ही जरूरी है—महानता-श्रेष्ठता की परिचायक सद्भाव भरी सत्प्रवृत्तियों की प्रतिष्ठापना करना।

समझदारी विभाजन में नहीं एकीकरण में

प्रचलनों का अनुकरण करने की मानसिकता यह सिद्ध करती है कि वस्तुओं की देखभाल करके अपनाने की विवेकशीलता को उपेक्षा के गर्त में डाला जा रहा है। ऐसा अन्य कुछ प्राणियों में तो होता रहता है, किन्तु मनुष्य में पाई जाने वाली बुद्धिमत्ता यह पूछती है कि देख-भाल कर, नाप-तौलकर, खरा-खोटा परखकर खरीदने वाली कुछ आदतें मात्र सौदा खरीदने तक ही सीमित हैं अथवा उन्हें अन्यान्य क्षेत्रों में भी प्रयुक्त किया जा रहा है। भेड़ों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सम्बन्ध में कहावत है कि वे एक के पीछे एक चलती हैं। आँखें होते हुए भी उनका उपयोग नहीं करतीं। जिधर आगे वाली चलती है, उधर ही पीछे वाली चली जाती हैं। भले ही खाई-खन्दक ही क्यों न हो ? बन्दरों के बारे में कुछ ऐसा सुना जाता है। पक्षियों का झुंड भी एक ही दिशा में उड़ता है। यह समुदाय इस बात का विचार नहीं करते कि जो मार्ग अपनाया गया है उसकी उपयोगिता है भी या नहीं ? यह रीति जो भी अपनाते हैं पीछे पछताते ही देखे जाते हैं। पशु-पक्षियों की, कीट-पतंगों की बात छोड़ी भी जा सकती है। टिड्डी दल किसी अविज्ञात दिशा में अन्धानुकरण करते हुए उड़ रहा है, तो उसकी बुद्धिहीनता को मजबूरी समझकर उपेक्षा में डाला जा सकता है, मनुष्यों पर यह बात लागू नहीं होनी चाहिए। सभी मुसाफिरों को रेल के एक ही डिब्बे में नहीं घुस पड़ना चाहिए, किसी भी दिशा में जा रही रेल में ही सफर नहीं करने लगना चाहिए। 'सब धान बाईस पसेरी' नहीं बिकना चाहिए। सभी मन्द गति और घटिया जानवरों को एक लाठी से नहीं हाँका जाना चाहिए।

मेले की सभी दुकानों पर भीड़ रहती है। ग्राहक इच्छित वस्तुयें खरीदते हैं। इतना होते हुए भी प्रत्येक ग्राहक को यह देखना होता है कि उसके उपयोग की वस्तु क्या है ? उसकी आवश्यकता क्या है ? किस दुकान पर उसे सस्ता और अच्छा माल मिल रहा है ? यदि इस प्रकार की जाँच-पड़ताल वह छोड़ दे और वही करने लगे जो दूसरे कर रहे हैं, तो भारी कठिनाई खड़ी हो जायेगी। खरीददार निरर्थक और निकम्मी वस्तुएँ खरीदेंगे, अपना बोझा बढ़ावेंगे और अपनी जेब खाली करेंगे। घर ले जाकर खाली जगह को कूड़े-करकट से भरेंगे। यह आचरण उपहासास्पद बनेगा और हानिकारक भी होगा। देखा-देखी नकल बनाना छोटे बच्चों को भले ही सुहाता हो, पर बड़ों की बुद्धिमत्ता यह पूछती है कि जो किया जा रहा है, वह उपयोगी है भी या नहीं ? उसे बटोरकर कुछ हित साधन हो गया या नहीं ? जहाँ ऐसी जाँच-पड़ताल न हो, जहाँ अन्धेर नगरी में वे बूझ राजा राज करता हो—जहाँ 'टका सेर भाजी, टका सेर खाजा' बिकने का क्रम चलता हो, समझना चाहिए कि वहीं कहीं सर्वनाश मड़ँरा रहा है।

विज्ञान और धर्म में झगड़ा नहीं है। यह समझदारी और ना समझ का झंझट है। विज्ञान का हर कदम तब उठता है जब वह क्यों, कैसे, किस प्रकार का तरीका पूछ लेता है और तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाल लेता है कि इस कृत्य की परिणति क्या होनी चाहिए ? अनुमान में कहीं सन्देह होता है तो प्रयोगशाला में उसे उलट-पुलट कर अनेक बार देखता है और तब तक आश्वस्त नहीं होता जब तक कि उसके परिणामों के सम्बन्ध में पूरी तरह निश्चिन्त नहीं हो जाता। यथार्थता का परीक्षण उसी को कहते हैं, जिसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में हर प्रकार जाँच-पड़ताल कर ली जाती है। सत्य तक पहुँचने का यही एक मार्ग है। विज्ञान के समस्त आविष्कारों में इसी प्रक्रिया को अपनाया और कार्यान्वित किया जाता रहा है। तथ्यान्वेषी, इसी शैली को अपनाते हैं। विज्ञान की दिशाधारा और कार्य-पद्धति यही है। इसी आधार पर उसने भौतिक क्षेत्र में महती सेवा करके दिखाई और प्रामाणिकता अर्जित की है। अब 'ज्ञान' की बारी है कि अपनी उपयोगिता सिद्ध करने के लिये तथ्यों का अवलम्बन करे और सर्वसाधारण को इस प्रकार सोचने के लिये बाधित करे जैसे कि विज्ञान ने अपनी उपयोगिता से प्रभावित करके उसे अपनाने के लिये तत्पर किया है। आग का, बिजली का सदुपयोग और दुरुपयोग किस प्रकार लाभदायक और हानिकारक सिद्ध होता है, इसे इस तरह हृदयंगम कराया गया है कि लोग उस सम्बन्ध में अपनी सूझ-बूझ के सहारे ही वह करते पाये जाते हैं, जो उन्हें करना चाहिए। रेल, तार, मोटरसाईकिल, फाउन्टेनपेन, सेफ्टी रेजर आदि आविष्कारों की उपयोगिता देखी और समझी गई है, इसलिये उन्हें प्रयुक्त करने के लिये किन्हीं को समझाने के लिए अत्यधिक प्रयत्न नहीं करना पड़ता। लाभ और हानि का पक्ष दृष्टि से ओझल रहे, तो ही उस सन्दर्भ में भटकाव का जोखिम रहता है। यदि वस्तुस्थिति इस प्रकार समझाई जा सके, तथ्यों के सहारे मान्यताओं की गहराई तक पहुँचा जा सके, तो जो छोड़ने योग्य है, उसे अस्वीकार भी कर दिया जायेगा और जो अपनाने योग्य है, उसे आदतों में सम्मिलित भी कर लिया जायेगा। मनुष्य को अतिरिक्त रूप से बुद्धिमत्ता इसलिये मिली है कि वह हित-अनहित को समझे और विधि-निषेध के निर्धारण में सतर्कता बरते। कमी एक बात की रह जाती है कि 'ज्ञान' ने अपनी निर्धारणाओं को स्पष्ट नहीं किया। प्रतिपादनों को इतना प्रत्यक्ष और स्पष्ट नहीं किया कि वह अपनी प्रामाणिकता इस हद तक सही सिद्ध करे कि उसमें सन्देह करने की कहीं कोई गुंजायश न रहे। 'ज्ञान' अपने को सर्वोपयोगी, यथार्थवादी, प्रत्यक्षवादी सिद्ध करने में यदि सफल होता, तो उसे भी वैसी ही मान्यता मिली होती, जिसके रहते अन्ध-विश्वासों को—अन्ध परम्पराओं को इतना आश्रय न मिला होता कि वे हानिकारक होते हुए भी मजबूती से पैर जमाए रह सके होते। उदाहरण के लिये, प्रचलन के दो प्रसंगों पर दृष्टिपात किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में नशेबाजी और सन्तान की संख्या वृद्धि का पर्यवेक्षण किया जा सकता है। यह दोनों ही विषय ऐसे हैं, जो यथास्थान जमे रहने पर तो असाधारण रूप से हानि पहुँचाते हैं, फिर भी उसकी रोकथाम में सफलता मिलती नहीं दीखती।

प्राणि विज्ञान की दृष्टि से उसकी अंग संरचना, रहन-सहन पद्धति, आहार-विहार शैली, स्वभाव, प्रजनन, वर्ग आदि की दृष्टि से इनका पृथक्करण किया गया है। इस दृष्टि से मनुष्य मात्र एक ही जाति का प्राणी है, भले ही वह किसी भी देश, दिशा में उत्पन्न क्यों न हुआ हो ? ऐसी दशा में उनका भेद विभाजन करना उपयुक्त नहीं। जल, वायु और वंश परम्परा के आधार पर आकृति में

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यत्किंचित भेद अवश्य पाया जाता है, पर वह ऐसा नहीं है, जिसके आधार पर उन्हें पृथक् समझा जाय या ऊँचा-नीचा समझा जाय। जाति जन्म से नहीं हो सकती है। किसी का पिता अफसर, व्यापारी, चिकित्सक आदि था, तो आवश्यक नहीं कि उसकी सन्तानें भी अपने को वही घोषित करें, जो उसके पिताजी अथवा पूर्वज थे। व्यवसाय बदलते ही वर्ग बदल जाता है। एक ही व्यक्ति एक ही जीवन में व्यापारी, सैनिक, अध्यापक, किसान आदि कितने ही उद्योग अपना या बदल सकता है। ऐसी दशा में उसे बार-बार अपना वर्ग बदलना पड़ेगा, जो सर्वथा उपहासास्पद है। भले या बुरे स्वभाव के आधार पर किसी को नीचा-ऊँचा ठहराया जाय, तो वह स्थितियाँ भी स्थायी नहीं हैं। उसमें भी परिवर्तन होता रहता है। ऐसी दशा में विभाजन के जितने भी आधार हैं, वे सभी अनुपयुक्त बैठते हैं। मनुष्य जाति एक ही थी एक है और एक ही रहेगी। उनका अवांछनीय आधारों पर वर्गीकरण करना और उसकी लक्ष्मण रेखा जैसी दीवार खड़ी कर देना, अपने समुदाय को ऊँचा कहकर अहंकार का पोषण करना है। इसके साथ अन्यों को नीच कहकर उनके स्वाभिमान को सीधा आघात पहुँचाना है। एक समुदाय मिथ्या अहंकार का प्रदर्शन करे, दूसरा अपने को गया-गुजरा समझे, तो एक ऐसी खाई बनेगी, जिसे पाटना कठिन हो जायेगा और सार्वभौम मानवता का कभी विकास न हो सकेगा। विभाजित वर्ग सदा कमजोरियों से घिरे रहते हैं। पारस्परिक सम्मिलन या सहयोग से जो सुधार-विकास का क्रम चलते रहना चाहिए, उसका द्वार ही बन्द हो जाता है। यह स्थिति चिन्ताजनक भी है और घातक भी। पनपता हुआ विभेद और विभाजन जब तक रुँधा-मुँदा बना रहता है, तब तक सहन होता रहता है, किन्तु वस्तुस्थिति को जब समझने की बात सामने आती है तो फिर रोष और प्रतिशोध का उबाल उभरता है, जिसका परिणाम जातीय विग्रह के रूप में भी खड़ा हो सकता है और उससे समूचा समाज क्षतिग्रस्त हो सकता है, बिखर सकता है।

स्त्री-पुरुष के बीच यही हुआ। पुरुष अधिपति बना, नारी को पैरों तले की जूती समझा। धीरे-धीरे यह मानसिकता बन गई और इसका परिणाम दोनों ही पक्षों के लिये बुरा हुआ। नारी मात्र दासी बनकर रह गई। अपनी मौलिक प्रतिभाओं से, भावी सम्भावनाओं से हाथ धो बैठी। पुरुष को भी मिथ्या प्रदर्शन के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिला। दोनों ही पक्ष घाटे में रहे और समूचे समाज को हानि पहुँची। ठीक वैसा ही ऊँच-नीच परक जाति विभाजन का परिणाम हुआ। अनुसूचित जातियों की एक मानसिकता बन गई और उस पिछड़ेपन को ही जकड़े बैठे रहने में अपनी नियति समझने लगे। सुधार और विकास के लिये दूसरों के द्वारा किये गये प्रयासों तक की उपेक्षा करने लगे, अस्वीकार करने जैसी स्थिति प्रकट करने लगे। स्वयं बढ़ने की समर्थता नहीं और दूसरों का सहयोग स्वीकार न किया जाय तो उस दिशा में उपयोगी परिवर्तन असाधारण रूप से कठिन हो जाता है। आज समाज का प्रायः एक तिहाई वर्ग इस ऊँच-नीच के कुचक्र में फँसकर पिछड़ेपन के साथ बुरी तरह जकड़ गया है। स्वाभिमान, स्वावलम्बन और प्रगति, पुरुषार्थ की दृष्टि से गड़बड़ा जाने पर स्थिति अपंगों जैसी बन गई है और उठाना कठिन पड़ रहा है। दूसरी ओर रूढ़िवादी सवर्ण अहंकार में डूबे रहते हैं और यथास्थिति बनाये रहने के लिये पूर्वाग्रह ग्रस्त रहते हैं। अहंकार के पोषण के लिये मिथ्या सम्मान चाहिए। वह उत्कृष्टता के आधार पर उपलब्ध न होता हो, तो शोषण, उत्पीड़न के आधार पर आतंक जमाने का प्रयत्न किया जाता है। पिछले अन्धकार युग में भी यही होता रहा है। संसार भर में न्यूनाधिक मात्रा में यह विभेद प्रचलन किसी न किसी रूप में चल रहा है। 'ज्ञान' पक्ष को चाहिए कि इस अनौचित्य का बौद्धिक दृष्टि से धुर्रे उड़ाता और ऐसे आन्दोलन खड़े करता, जिससे इस प्रचलन की जड़ ही कट जाती। दास-दासियों का, पशुओं की तरह क्रय-विक्रय अब नहीं रहा। एक बहुत बड़ी बुराई दुनिया से सर्वत्र उठ गई। जागीरदार, साहूकारों के धंधे मिट गये। पिण्डारी, ठग और डाकुओं के धंधे अब उस रूप में नहीं रहे, जैसे पिछले दिनों कभी थे। अब इस बात की आवश्यकता है कि हम सब अपने-अपने परिचय एवं प्रभाव क्षेत्र में इस सुधार परिवर्तन के लिये जो छोटे-बड़े कदम उठा सकते हैं, उन्हें उठाएँ और स्थिति में ऐसा परिवर्तन लाएँ जो नीति, न्याय, औचित्य एवं विवेक की कसौटी पर खरे उतरते हों।

परम्परा के नाम पर अनेकों कुरीतियाँ पल रही हैं। उन्हें समर्थन इस आधार पर मिल रहा है कि जिन पूर्वजों ने यह प्रचलन चलाए वे मूर्ख थोड़े ही थे। यह कहने वाले यह भूलते हैं कि सतयुग में ऐसी परम्परा का नाम भी नहीं था। सभी एक पिता की सन्तान की तरह रहते थे। मिल-जुलकर सामूहिक प्रगति के सत्प्रयोजन में समान रूप से भागीदार रहते थे। यह तो मध्यकालीन अन्धकार युग ही था, जिसमें सामन्तवादी अनाचार पनपा। इन विकृतियों को मान्य परम्पराओं का स्थान या सम्मान नहीं मिलना चाहिए। हर प्रथा-परिपाटी को औचित्य की कसौटी पर कसने के उपरान्त ही स्वीकार करना चाहिए। आज इसी विचारशीलता की आवश्यकता है।

विभेद और विलगाव देर तक न टिकेंगे

संसार भर में प्रायः दो हजार धर्म-सम्प्रदाय हैं। उन सभी के अपने-अपने तत्वदर्शन हैं। इनमें परस्पर यत्किंचित एकता पायी जाती है, अन्यथा सभी की अपनी-अपनी स्वतन्त्र धारणाएँ हैं। यह मान्यताएँ कैसे जन्मीं ? इसका एक ही उत्तर है कि सीधे भगवान ने वैसा कहा या भगवान के देव-दूतों, पैगम्बरों ने उस प्रकार का प्रतिपादन किया। ऐसे स्रोतों को झुठलाया कैसे जाय ? श्रद्धा तो श्रद्धा ठहरी। भगवान के अथवा देवदूतों के कथन मिथ्या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कैसे हो सकते हैं ? तर्क का श्रद्धा में कोई प्रवेश या स्थान नहीं है। ऐसी दशा में ईश्वर या देवदूतों के कथनों से इन्कार कैसे करते बने ?

सभी धर्मों का भगवान एक है। उनमें से अधिकांश यही मानते हैं कि समस्त संसार का निर्माता, स्वामी एक है। दो या अधिक भगवान होने की किसी धर्म में मान्यता नहीं है। देवता अवश्य अनेक माने जाते हैं, पर वे स्रष्टा या विधाता नहीं हैं। देवताओं की सामर्थ्य एवं कार्यपद्धति सीमित है। वे परब्रह्म होने का दावा नहीं करते। इसी प्रकार कुछ धर्मों में ईश्वर का प्रतिद्वन्द्वी शैतान् भी माना गया है। उसका काम बहकाना है। छल-प्रपंच से कुमार्ग पर धकेलना ही उसका काम है। इतने पर भी उसकी पहचान सहज हो जाती है। ईश्वर का स्वरूप, उसकी कार्य-पद्धति, सृष्टि का उद्भव, पूजा की विविधता, मरणोत्तर जीवन, कर्मफल, स्वर्ग-नरक आदि विषयों में इन सबकी ऐसी मान्यताएँ हैं, जिन्हें परम्परागत मानकर श्रद्धापूर्वक स्वीकार किया जाता है। अनुयायी उन्हें ब्रह्म वाक्य मानते हैं और उन निर्धारणों को अपनाना अपना धर्म कर्त्तव्य मानते हैं। श्रद्धा का अतिरेक उन मान्यताओं की उपयोगिता-यथार्थता के सम्बन्ध में किसी प्रकार का संदेह करने की गुंजाइश नहीं छोड़ता। ऐसी दशा में उन पर तर्क की कसौटी कैसे लगाई जाय ? मान्यता के पीछे तथ्य क्या है, इसका प्रश्न कैसे उठाया जाय ? सन्देह करने पर तो नास्तिकता का लांछन लगता है और ईश्वर के क्रुद्ध होने, नरक में धकेलने जैसा भय दिखाया जाता है।

आश्चर्य यह है कि सभी सम्प्रदाय अपनी मान्यताओं को शत-प्रतिशत सही मानते हैं। ऐसी दशा में अन्य मतावलम्बियों के मत सहज ही झूठे हो जाते हैं। सभी अपने कथन को सच और दूसरों को झूठा कहते हैं। यह सब इस तरह होता रहता है कि अपने अतिरिक्त और सभी को चोट लगे। यह विग्रह तभी से आरम्भ हो गया होगा, जब से कि एकाधिक मतान्तरों का प्रचलन आरम्भ हुआ। झूठों को परास्त करने के लिए शास्त्रार्थ भी होते रहे और जब तर्क का आश्रय कमजोर पड़ा तो प्रतिपक्षियों को नास्तिक ठहराया गया और उनके विरुद्ध जेहाद उठाया गया। मध्यकाल में यह विग्रह खूब हुए हैं और अभी उनका हल्का-मन्दा स्वरूप साम्प्रदायिक दंगों के रूप में अक्सर दृष्टिगोचर होता रहता है।

दो हजार सम्प्रदायों में से जब सभी अपनी पृथक् मान्यताएँ अपनाते हैं, तो उनमें से किसे सही और किसे गलत माना जाय, यह किसी विवेकशील के लिए टेढ़ी समस्या है। ऐसा भी नहीं बन पड़ता कि सभी मतान्तरवादी अपने-अपने प्रतिपादनों की समीक्षा करने के लिए किसी निष्पक्ष न्यायालय को सौंप दें और वह उनकी बातों में जितनी यथार्थता देखें, उतना मान्य घोषित कर दें। शेष के खण्डन किये जाने पर उस पक्ष के अनुयायियों को बुरा लगता हो, तो उन विषयों पर मौन धारण कर लिया जाय। ऐसा भी हो सकता है कि परस्पर मिल-जुलकर अधिक उपयोगी विषयों को प्राथमिकता देते हुए उनका संग्रह करते हुए एक विश्वधर्म बना लिया जाय। दोनों में से एक भी बात न बन पड़ने पर अन्तिम उपाय यह है कि मतवादी अपनी-अपनी मान्यताओं को अपनाये रहें, पर भिन्न मत रखने वालों पर अपनी मान्यता लादने के लिए दबाव न डालें। इस प्रकार सत्य का निर्णय भले ही न हो, पर शान्ति तो बनी ही रह सकती है। इस हेतु ऐसा मानस बनाना पड़ेगा, जैसा कि एक ही परिवार के लोगों को भिन्न प्रकार के कपड़े पहनने, भिन्न प्रकार के भोजन करने की छूट रहती है। सहिष्णुता और समझदारी का यही तकाजा है। ऐसे विग्रह खड़े करना, जिनका पूर्वाग्रहों के रहते समाधान ही न हो सके, उछालना व्यर्थ है। जिस व्यर्थ विवाद में समय, चिन्तन और सद्भाव का अपव्यय होता हो, उससे बच निकलना ही बुद्धिमानी है। तथ्यों की शोध उसी मनःस्थिति में सम्भव हो सकती है, जब सभी अपने प्रचलन में दीख पड़ने वाली भूलों को मानने के लिए मन बना लें, पर यह सब भी वर्तमान परिस्थितियों में संभव नहीं दिखाई पड़ता है, क्योंकि जब सभी के प्रचलन उसके अपने ईश्वर के बनाये हुए हैं, तो वह अमान्य कैसे ठहराये ? दूसरों के अभिप्राय तो दूसरे ईश्वरों के बनाये हुए हैं। मान्यता तो अपने ही ईश्वर को दी जा सकती है। सभी को मान्यता दी जाय तो परस्पर विरोधी निर्धारणों के बीच तारतम्य कैसे बिठाया जाय ? इस असमंजस को चलते मुद्दतें हो गईं और आगे वह तब तक चलता रहेगा, जब तक कि उनकी श्रेष्ठताओं का समन्वय करके एक गुलदस्ता न बनाया जाय अथवा सब मतान्तर मिटकर ही एक प्रतिपादन शेष रहे। मानवी विचार स्वतन्त्रता को सार्वभौम मान्यता मिल जाने पर अब दोनों ही बातें सम्भव दिखाई नहीं पड़तीं। ऐसी दशा में यही शान्ति का मार्ग है कि जिनकी श्रद्धा जिस मान्यता को अपनाये रहने में हो, वे उसे अपनाये रहें, पर दूसरों पर आरोप न करें, साम्प्रदायिक दुर्भाव न फैलावें। अधिक-से-अधिक इतनी छूट रह सकती है कि अपने मत की विशेषताओं की जानकारी दूसरे उन लोगों को दी जाती रहे, जो उसे सुनने के इच्छुक हों। खण्डन एवं आक्षेप की नीति तो छोड़ ही दी जाय। कामचलाऊ शान्ति तो इसी प्रकार होती है। सत्यान्वेषण का क्रम यदि सभी पक्षों में चलता रहे तो एक समय ऐसा भी आयेगा जब अपने-पराये का भेद-भाव छोड़कर लोग विवेक एवं औचित्य को प्रश्रय देने लगेंगे और परिष्कृत तत्वदर्शन आने का समय निकट आता चला जायेगा।

अच्छा हो धर्म का तात्पर्य नीति, सदाचार, आदर्श की सीमा में सीमित करके देखा जाय। वह सार्वभौम धर्म हो सकता है। सज्जनता, संयमशीलता, उदारता, यथार्थता इस सार्वभौम धर्म के प्रमुख अंग हो सकते हैं। सद्भाव और सद्व्यवहार उसका क्रिया पक्ष प्रकट कर सकते हैं। धर्म का यह पक्ष शाश्वत भी है। वह मानवी गरिमा के आधार पर सार्वभौम है। मानवता के साथ उत्कृष्ट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आदर्शवादिता का समन्वय करने पर जितने भी नीति-नियम बन सकते हों, उन्हें इस धर्म विवेचना में सम्मिलित किया जा सकता है। विस्तार करने पर उनकी संख्या अधिक भी हो सकती है और सूत्रबद्ध करने पर उन्हें कम भी किया जा सकता है। सामान्य जानकारी की दृष्टि से इन्हें समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी के चार रूपों में बाँटा जा सकता है। उनमें धर्म तत्व का सार-संक्षेप भली प्रकार आ जाता है। आवश्यकतानुसार इनकी विस्तृत विवेचना-व्याख्या भी की जा सकती है।

धर्म के साथ प्रथा-परम्पराओं का, पूजा-अर्चा का, दार्शनिक मान्यताओं का भी एक पक्ष जुड़ता है। इनका प्रादुर्भाव तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप होता है और समय बदल जाने पर उनमें परिवर्तन होता रहता है। पुराने समय में जब कपड़े की कमी थी, तब लोग कटिवस्त्र और कंधे पर उत्तरीय ओढ़कर काम चला लेते थे। इसी से लज्जा ढकने और सर्दी-गर्मी से बचाव करने का काम चल जाता था। परिस्थिति बदली। वस्तुओं को बाहुल्य हुआ, तो लोग तरह-तरह की फैशन वाले, तरह-तरह के वस्त्र सिलाने लगे। रात्रि को घरों में तेल के दीपक जलाते थे। अब बिजली का उत्पादन होने लगा, तो हर घर में बिजली की बत्तियाँ पहुँचने लगी हैं। गर्मी के दिनों में हाथ का पंखा सहायता करता था, पर अब बिजली के पंखों का प्रचलन होता जा रहा है। व्यावहारिक जीवन की तरह दार्शनिक विषयों में भी हेर-फेर हुआ है। अब दुनिया छोटी हो गई है। एक स्थान पर उद्भूत हुए विचार प्रेस के माध्यम से जल्दी ही दूर-दूर तक पहुँच जाते हैं। लोगों की समीक्षा बुद्धि जगी है और तुलनात्मक अध्ययन करने का मन बना है। इस कारण पुरातन मान्यताओं में बिना कोई बड़ा आन्दोलन या विग्रह खड़ा किये परिवर्तन होते चल रहे हैं। सती प्रथा मिट गई। बाल-विवाहों का प्रचलन घट गया। जाति-पाँति के आधार पर बरती जाने वाली ऊँच-नीच और भेद-भाव की परिपाटी में भी भारी परिवर्तन हुआ है। शादियों में होने वाली धूम-धाम और लेन-देन का रिवाज भी घट गया है। इसी प्रकार मृतक भोज, पर्दा प्रथा, भिक्षा-व्यवसाय की प्रथाएँ भी घटती और मिटती जा रही हैं। इनमें से जिन्हें अनुपयोगी समझा गया है, उनकी ओर से जनसाधारण का मुँह अनायास ही मुड़ता जा रहा है। कभी दास-दासियों की हाट लगती थी। उन्हें खरीदा-बेचा जाता था, पर अब वैसा नहीं होता। राजतन्त्र भी टूटते जा रहे हैं। उनके स्थान पर प्रजातन्त्र बल पकड़ रहे हैं। यह वे परिवर्तन हैं, जिन्हें विश्व दर्शन की तुलनात्मक विवेचना करने पर अधिक बुद्धिसंगत पाया और अपनाया गया है।

यह परिवर्तन आगे भी होते रहेंगे। समय की आवश्यकता और सुविधा-सरलता को देखकर लोग अपने विचार-व्यवहार में हेर-फेर करते रहेंगे। मनुष्य की दूरदर्शिता, तुलनात्मक समीक्षा जैसे-जैसे बढ़ती जायेगी, वैसे-वैसे परिवर्तनों का सिलसिला तेज होता जायेगा। जो अनुपयोगी सिद्ध होगा, वह उपेक्षा के गर्त में गिरता जायेगा। जो उपयोगी प्रतीत होगा उसे नया होने पर भी अपनाया जाता रहेगा। यह सुधार-परिवर्तन समयानुसार भूतकाल में भी होता रहा है और वह उपक्रम भविष्य में भी चलता रहेगा। हमें इन परिवर्तनों के लिए अपने को तैयार रखना चाहिए। प्रगति नियति का क्रम है। सुधार और संस्थापन की उभयपक्षीय पद्धतियाँ अपनाते हुए ही हम इतने आगे बढ़ सके हैं। भविष्य में इस आधार अवलम्ब को अपनाये रहकर ही तथ्यों के अधिक निकट पहुँचते रहेंगे।

मनुष्य क्रमिक गति से आगे बढ़ा है। उसका व्यक्तित्व भी क्रमानुगत रूप से निखरा है। इस विकास परम्परा में गतिरोध उत्पन्न होने वाला है नहीं। सौरमण्डल किसी महासूर्य की परिक्रमा करता है और वह महासूर्य भी अपने अनेक सम्बद्ध सौरमण्डलों को साथ लेकर किसी अतिसूर्य की परिक्रमा के लिए अग्रसर होता रहता है। आज हमारी पृथ्वी जहाँ है, अन्तरिक्ष के उस भाग में लौटकर शायद कहीं लाखों-करोड़ों वर्षों बाद आ पायेगी। कारण कि अनवरत प्रगति का क्रम हर पदार्थ को, हर प्राणी को आगे ही बढ़ाता चलता है। उसकी परिस्थिति एवं मनःस्थिति क्रमशः बदलती ही रहती है। चेतना का स्वभाव ही अग्रगमन है।

इन दिनों मत-मतान्तरों के तत्व-दर्शन में जो असाधारण भेद-भाव दृष्टिगोचर होता है, उससे परेशान होने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। धैर्य बनाये रहने और विग्रह को टालते रहने की नीति अपनाये रहा जाय तो काम चल जायेगा। संकीर्ण विचारशीलता, भेदभावों के अवरोध समयानुसार सहज ही हटते चलेंगे। कभी पृथ्वी के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचना असंभव था, पर अब जलयानों-वायुयानों ने उसे संभव बना दिया। उपग्रहों ने, राकेटों ने दूरी को और भी तेजी से समाप्त कर दिया है। दार्शनिक क्षेत्र में जो विभेद, विलगाव और कट्टरपन पिछले दिनों जितना था, उतना अब नहीं रहा। जितना अब है, उतना अगले दिनों न रहेगा। मानवी चेतना एकता की ओर बढ़ रही है। मनुष्य की मूर्खता जैसे-जैसे घटती जायेगी, वैसे-वैसे उसे एकता की, समता की सूझ-सूझती रहेगी और राह मिलती रहेगी।

सर्व-धर्म समभाव की रीति-नीति अपनायें

दो आस्थाएँ और प्रवीणताएँ हर विचारशील मनुष्य में उत्पन्न की जानी चाहिए। एक यह कि वह अपने निजी जीवन में विवेकवान्, चरित्रवान, सुसंस्कृत और प्रतिभावान बने। सभ्य समुदाय में गिना जाने योग्य अपना स्तर बनाये। उसकी प्रामाणिकता और गरिमा अक्षुण्ण रहे।

दूसरा कार्य यह है कि समाजनिष्ठ उदारचेता बने। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना विकसित करे। दूसरों का दुःख बँटाए और अपना सुख बाँटे। वसुधैव कुटुम्बकम् की मान्यता सुदृढ़ करे। अपने को समाज का एक अविच्छिन्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घटक माने और सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझे। संकीर्ण स्वार्थपरता से बचने का व्रत निबाहें और सम्पर्क क्षेत्र के पिछड़ों को उठाने, बढ़तों को बढ़ाने में अपना बढ़-चढ़कर योगदान करें।

मनुष्य के यही दो प्रधान कर्तव्य और दायित्व हैं। उसका अन्तःकरण इसी ढाँचे में ढलना चाहिए। दृष्टिकोण में इसी आदर्शवादिता का सघन समन्वय होना चाहिए। दुष्कर्म न करें। दूसरों को हानि पहुँचाकर अपना स्वार्थ सिद्ध न करें। विलासी और संग्रही न बनें। औसत नागरिक स्तर का जीवन जियें। कुटुम्बियों की असीम जिम्मेदारियाँ सिर पर न लादें। बचे हुये समय को सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन और दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन के क्रिया-कलाप में लगायें। लोभ, मोह और अहंकारी प्रदर्शन के उद्दत कार्यों से अपने को विरत रखकर ही इस प्रकार की उत्कृष्टता अपनाई जा सकती है। हँसती-हँसाती जिन्दगी जीना और मिल-जुलकर बाँट खाना ही मानवी गरिमा के अनुरूप है। तथ्यों को हर मनुष्य हृदयंगम करे। दृष्टिकोण को इतना परिष्कृत करे कि इन मानवोचित मर्यादाओं का दृढतापूर्वक पालन कर सके। नैतिक और सामाजिक वर्जनाओं को किसी भी प्रलोभन या दबाव के कारण तोड़े नहीं। क्रिया-कलापों में सृजन जुड़ा रहे। ध्वंस, विनाश या विघटन के निमित्त एक कदम भी आगे न बढ़े।

ऋषि-तपस्वियों ने इन्हीं आदर्शों और सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने के लिये कुछ कहा, लिखा और गढ़ा है। यह विभिन्न क्षेत्रों में वहाँ की मान्यताओं और परम्पराओं के साथ तालमेल बिठाते हुये गढ़ा गया है। पटरी पर रेलगाड़ी आसानी से चल लेती है। उसे अस्त-व्यस्त, कच्चे-कमजोर, अनगढ़, अपरिचित रास्तों पर दौड़ाया जाय तो दुर्घटनायें ही खड़ी हो सकती हैं। इसलिए व्यवहारकुशल एवं दूरदर्शी मुनि-मनीषियों ने अपने-अपने प्रभाव क्षेत्र में खप सकने योग्य मान्यताओं और प्रथाओं का सृजन किया है। इसी को तत्वदर्शन, नीतिशास्त्र, अध्यात्म, धर्म आदि का कलेवर पहनाया गया है। जनसाधारण की स्थूल बुद्धि में यह आदर्शवादिता गहराई तक प्रवेश कर सके इस हेतु उन्हें बाल-बोध स्तर की शैली अपनानी पड़ी है। अपने प्रतिपादन से जनसाधारण को प्रभावित करने के लिये उन्हें कितने ही कथा-पुराणों की संरचना करनी पड़ी है। जो बात स्वयं कहना चाहते थे, उसे तर्क-वितर्क के झंझट से बचाने के लिए, सन्देहों, अविश्वासों के दायरे से निकालने के लिए उस कथन-प्रतिपादन को देववाणी कहना पड़ा है। कहने वाले पात्रों को सर्वज्ञानी, सर्वसमर्थ देवता कहना पड़ा है ताकि उनके व्यक्तित्व से चमत्कृत करके सर्वसाधारण को उन निर्देशों, निर्धारणों को मान्यता देने के लिए सरलतापूर्वक सहमत किया जा सके। विशालकाय धर्म कलेवर और पुराण-कथानकों का ढाँचा इसी आधार पर खड़ा किया गया है।

समय के परिवर्तन, परिस्थितियों की माँग अभिनव समस्याओं के समाधान के लिए पूर्व प्रतिष्ठापित मान्यताओं में सुधार परिवर्तन की आवश्यकता भी पड़ती रही है। इसलिए नये ग्रन्थ लिखे जाते, नये सिद्धान्त गढ़े जाते रहे हैं। इसके लिए पूर्वजों की कृतियों में प्रतिष्ठापनाओं में युगधर्मी समय-समय पर आवश्यक हेर-फेर भी करते रहे हैं। इसे किसी ने बुरा भी नहीं माना वरन् समय की आवश्यकता पूरी कर सकने में समर्थ नई प्रतिष्ठापना को भी थोड़ी-सी ननु-नच के उपरान्त स्वीकार ही किया है।

शीतकाल में उपयोग आने वाले कपड़े गर्मियों में काम नहीं देते और गर्मी के पोशाक, शीतकाल में अपनी उपयोगिता खो बैठते हैं। रस-भस्में में पुरानी होने पर अधिक गुणकारी होती हैं पर दूध रखे रहने पर फट जाता है। इसलिये लोग भले ही प्राचीनता को अपनाये रहने का हठ करते रहें पर विचारशील इस औचित्य को समझते हैं कि समय की माँग जिस प्रतिपादन को उपयुक्त समझती है उसी को अपनाया जाय।

संसार बहुत बड़ा है। अब तो वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ जो नये यान-उपकरण एवं संचालक साधन बने हैं उनने दुनिया को बहुत छोटी कर दिया है पर सदा से ऐसा नहीं था। नदियों ने, पर्वतों ने क्षेत्रों को विभाजित कर रखा था इसलिए सीमित क्षेत्रों में ही दुनिया बँटी हुई थी। उनकी भाषायें भी क्षेत्रीय आधार पर ही विकसित हुई थीं और रीति-रिवाजों, मान्यताओं, परम्पराओं की शृंखला भी उसी क्षेत्र में अपने ढंग से विकसित होती रही। समय-समय पर उसमें अभीष्ट सुधार और परिवर्तन भी होते रहे। इतने पर भी वे सामयिक परिवर्तन सर्वमान्य नहीं हुए। कितने ही हठी, पुरातन पंथी उस चिरपुरातन को ही शाश्वत कहते और अपनाये रहने का आग्रह करते रहे। इस प्रकार से मिली-जुली पुरातन का संयोग प्रायः हर क्षेत्र में चलता रहा।

आज हम इस सन्दर्भ में पिछले दिनों सम्पन्न हुये क्रियाकलापों पर दृष्टि डालते हैं तो अनगिनत धर्म, सम्प्रदाय, दर्शन, शास्त्र, आप्तवचन, प्रचलन, रीति-रिवाज, प्रथा-परम्परा, मान्यता आदि का अतिशय विस्तृत कलेवर फैला हुआ देखते हैं। उन सबके बीच न तो एकता है और एकरूपता वरन् सच तो यह है कि समानता के स्थान पर भिन्नताओं, प्रतिकूलताओं और मतभेदों की असाधारण रूप से भरमार है। ऐसी दशा में कोई उग्रवादी तर्क, तथ्य, प्रमाण, कारण, आधार आदि की कसौटी पर इन मान्यताओं के सुविस्तृत जाल-जंजाल का पर्यवेक्षण करता है और उसमें से सत्य और तथ्य को ढूँढ़कर निकालना चाहता है, तो उसे घोर निराशा ही हाथ लगती है। असमंजसों में ही फँसकर आश्चर्यचकित मनःस्थिति में यह देखना पड़ता है कि इतने मतभेदों के रहते यथार्थ को कहाँ ढूँढ़ा जाय ? समानता की, समता की कोई कड़ी आपस में जुड़ती ही नहीं।

इन दिनों में भारी कठिनाई यह उत्पन्न हो गई है कि दार्शनिक आधारों में भिन्नताओं को अपनाकर इतने अधिक प्रकार के समुदाय दृष्टिगोचर होने लगे हैं कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनकी गणना कठिन है। शिक्षितों से लेकर अशिक्षितों तक, देशों से लेकर वर्गों तक अपने ढंग की साम्प्रदायिकता बरसाती खरपतवार की तरह बिखरी पड़ी है। सभी के अपने-अपने सिद्धान्त हैं, प्रचलन परम्परा, कथा, कर्मकाण्ड सभी अपने को अनादि, सर्वप्रथम, सर्वप्रमुख और सत्य का सुनिश्चित ठेकेदार बताते हैं। कोई भी अपनी कमियाँ, त्रुटियाँ एवं विसंगतियाँ सुनने-मानने को तैयार नहीं। अपना सो सच, दूसरा का सो झूठा। इसी पर सबका आग्रह जमा हुआ है। तुलनात्मक समीक्षा करके और विभेदों का कारण तलाशने-मानने को कोई तैयार नहीं। हर कोई यह मान बैठा है कि जो उसने माना-अपनाया है वही ईश्वर का वचन है। उसी आधार पर ईश्वर प्रसन्न होता है और स्वर्ग मुक्ति के उपहार प्रदान करता है। इतना ही नहीं जो उसकी मान्यता से मतभेद रखते हैं, सम्मिलित होने को तैयार नहीं होते, उसे किसी भी तरह का प्रलोभन या दवाब देकर अपने गिरोह में सम्मिलित कर लेने पर दैवी प्रसन्नता-अनुकम्पा का लाभ मिलता है। भले ही इसके लिए किन्हीं को कितना ही सताया गया हो। उसका प्राण तक अपहरण किया गया हो। इस धर्मोन्माद में लोग ऐसे अकर्म करते देखे गये हैं, जिनका स्वरूप देखते हुये मनुष्यता तक कलंकित होती है फिर धर्म-धारणा और आध्यात्मिकता तो बहुत ऊँची बात है।

साम्प्रदायिक विभिन्नतायें एवं विचित्रताएँ अनेक प्रकार की हैं। क्षेत्रगत, भाषागत, धर्मगत, जातिगत, वर्गगत आदि। उन सबको एक जगह इकट्ठी करने पर विचित्र अजायबघर बन जाता है। इस चिड़ियाखाने में चित्र-विचित्र आकार-प्रकार के चतुष्पद अपनी-अपनी पृथक्-पृथक् हरकतों और आदतों का परिचय देते देखे जाते हैं।

इस बिखराव में से किसकी मान्यताओं का कितना अंश तथ्यों पर आधारित है और किनमें कितनी कपोल कल्पनायें भरी पड़ी हैं ? इसका निर्णय तभी हो सकता है, जब कोई निष्पक्ष अदालत बैठे और हर एक को मानवी गरिमा के साथ जुड़ी हुई अनुकूलताओं की कसौटी पर कसे। तर्क, तथ्य, प्रमाण, कारण, प्रतिफल आदि को माध्यम मानकर गहरी जाँच-पड़ताल करे। तब इसी नतीजे पर पहुँचा जा सकता है कि किसके कथन में कितना अंश उपयोगिता से भरा है और किसमें कितना अन्धविश्वास, विमूढ़ प्रचलन, भटकाव एवं बेतुका पूर्वाग्रह भरा पड़ा है। पर अभी ऐसी किसी निर्णायक अदालत का बैठ सकना सम्भव प्रतीत नहीं होता। अदालत तो उसे कहते हैं, जो अपने निर्णय को सम्बन्धी पक्षों को स्वीकारने के लिये विवश कर सके। जब सभी पक्ष इस बात पर अड़े हुये हैं—हमारी बात सही और सबकी गलत। तब फिर जाँच-पड़ताल की कोई गुंजाइश ही नहीं रह जाती। कुछ निष्कर्ष कोई अदालत निकाले भी तो उसे स्वीकार कौन करेगा ?

वर्तमान परिस्थितियों में इतना ही सम्भव है कि लोग अपनी-अपनी परम्पराओं को भले ही बनाये रहें, पर दूसरों की आलोचना न करें। असम्मान प्रगट न होने दें। अपने पिता को सगा पिता माना जाता है पर दूसरों के बापों को भी चाचाजी, ताऊजी आदि सम्मानसूचक शब्दों से सम्बोधित किया जाता है। उनकी इज्जत में भी कोई कमी नहीं आने दी जाती। इसी प्रकार अन्य सम्प्रदायों के सम्बन्ध में भी सम्मान प्रकट करने की मर्यादा बना ली जाय और उसका पालन करते रहा जाय।

इस प्रकार अभी इन दर्शन सम्प्रदायों को किसी प्रकार सहन करते रहना ही उपयुक्त है। उनके बीच प्रतिद्वन्द्विता और विग्रह खड़ा न हो इतना ही पर्याप्त है। इसके लिए सर्वधर्म सम्मान की नीति ही सर्वोत्तम उपाय है। सार्वजनिक रूप इनका यही रहे। व्यक्तिगत रूप से जिसे जो सिद्धान्त जिस धर्म का व्यक्ति के उत्कर्ष एवं समाज-कल्याण की दृष्टि से उपयोगी जान पड़े वे उसमें उतना अंश अपना लिया करें और शेष भाग को विचारणीय विषय में सम्मिलित करके उन पर निर्णय कभी पीछे करे। वैसे हमें मानवीय दर्शन का मूलभूत उद्देश्य और समाज में अधिकाधिक उत्कृष्टता, आदर्शवादिता का समावेश ही मानकर चलना चाहिए।

पूर्वाग्रहों में बँधकर सत्य की उपेक्षा न करें

मान्यताओं, पूर्व धारणाओं एवं विश्वासों का बन्दी मस्तिष्क अपनी स्वतन्त्र सत्ता खोकर प्रगतिशीलता से वंचित हो जाता है। उसे तो अपनी पूर्वता में ही पड़े रहने में उसी प्रकार सुख-सन्तोष तथा सुरक्षा विदित होती है, जिस प्रकार एक लम्बे समय तक पराधीनता में पड़े रहने वाले दास को, मालिक की गुलामी और उसके ही अनुसार उसकी आज्ञा पालन करते रहने से उसकी स्वतन्त्र चेतना, स्वतन्त्र विचार शक्ति नष्ट हो जाती है, जिससे वह इस डर से स्वाधीन होने की बात नहीं सोच पाता कि यहाँ से छूटकर वह कहाँ जायगा, क्या करेगा, उसके लिए जीवन एवं जीविका का क्या मार्ग मिलेगा ? वह पथ भूल सकता है, किसी अनजान आपत्ति में फँस सकता है और अनजाने भविष्य में चलकर अन्धकार में खो सकता है—तब उसकी यह अच्छी-बुरी परिस्थिति जिससे कि वह परिचित है, यह अच्छा-बुरा सन्तोष जिसे वह पाए हुए है और वह मीठा-कड़ुआ आश्रय जो उसे मिला हुआ है, सभी चला जाएगा, जिससे वह न जाने कितनी असहाय स्थिति में पड़कर दिग्भ्रान्त हो जायेगा। दास की यह पराधीन विचार-धारा ही उसे स्वाधीन होने और उन्नति की ओर जाने वाले स्वतन्त्र पथ पर पग रखने का साहस नहीं करने देती, जिससे वह अपने परिचित अन्धकार में पड़ा-पड़ा जीवन नष्ट कर देता है।

मनुष्य जिस समाज, सम्प्रदाय अथवा वर्ग जाति में जन्म लेता है, बढ़ता और रहता है, उसकी परम्परागत मान्यताओं एवं धारणाओं को अपना लेता है। उन्हीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मान्यताओं के बीच एक लम्बे समय तक रहने-सहने के कारण वह उनका अभ्यस्त बन जाता है। वह अभ्यास जब धीरे-धीरे बढ़कर उसके संस्कारों के साथ समन्वित हो जाता है, तब वह उसके प्रति न केवल पक्षपाती ही बल्कि दुराग्रही तक हो जाता है। पक्षपाती मस्तिष्क में एक बड़ा दोष यह होता है कि जिस बात के प्रति उसका आग्रह रहता है, फिर उसकी भलाई-बुराई, हानि-लाभ के विषय में विचार करना नहीं चाहता। अपनी इस सहज दुर्बलता के कारण उसे गलत होने पर भी अपना पक्ष सत्य ही प्रतीत होता है। उसके प्रतिकूल अथवा भिन्न बात को वह सर्वथा असत्य, अयुक्त एवं अग्राह्य समझने लगता है। अपनी मान्यता के विरुद्ध किसी भी तर्क, दलील अथवा संशोधन को स्वीकार कर सकना उसके बस की बात नहीं रहती। ऐसे पक्षपाती मस्तिष्क वाला व्यक्ति किसी नवीन विचार, नवीन पद्धति अथवा नूतन मान्यता को अंगीकार करने का साहस नहीं कर पाता। जिससे प्रगति की ओर बढ़ सकना सम्भव नहीं रहता। प्रगतिशीलता के अभाव में उन्नति अथवा उत्थान का प्रश्न ही नहीं उठता। अप्रगतिशीलता जड़ता का चिन्ह है और जड़ का जीवन यथास्थिति में ही पड़ा-पड़ा समाप्त हो जाता है, जो उन्नति स्थान अथवा उत्कर्ष की आकांक्षा रखता है, उसे इस बौद्धिक गुलामी से मुक्त होना ही होगा। उसे आविर्भूत हुए नूतन प्रकाश, नव-चेतना एवं नव-विचारणा को अपनाना होगा। पराधीनता फिर चाहे वह मानसिक, शारीरिक अथवा बौद्धिक किसी प्रकार की भी क्यों न हो, प्रगति के लिए एक बड़ा अवरोध है।

सामान्य व्यक्ति और असाधारण व्यक्तित्व में जो एक बड़ा अन्तर होता है, वह उनकी बौद्धिक दासता एवं स्वतन्त्रता का ही होता है। सामान्य व्यक्ति अपने आस-पास के वातावरण में प्रचलित मान्यताओं, धारणाओं एवं विश्वासों को जाने-अनजाने ज्यों का त्यों अपना लेता है। वह उनके विषय में सत्य-असत्य, तथ्य अथवा अतथ्य का तर्क लेकर न तो विचार करता है और न उसकी उपयोगिता, अनुपयोगिता की ओर दृष्टिपात करता है। जबकि स्थानीय विचारधारा वाला किसी भी मान्यता अथवा विश्वास को तभी स्वीकार करता है, जब उसको विचारपूर्वक उपयुक्तता की कसौटी पर परख लेता है। वह किसी बात को इसीलिए ही सत्य नहीं मान लेता कि वह पूर्वकाल से परम्परागत चली आती है। ऐसे ही स्वतन्त्र एवं प्रगतिशील विचार वाले लोग सड़ी-गली मान्यताओं, अबुद्धिसम्मत विश्वासों एवं आधारहीन धारणाओं से अलग होकर समयानुकूल, युक्त एवं उपयोगी विचारधारा समाज अथवा राष्ट्र को देकर असामान्यता के लक्षण प्रकट करते और मानव के समाज पथ-प्रदर्शक बना करते हैं। यह क्षमता पराधीन अथवा पक्षपाती मस्तिष्क में नहीं होती कि वह समय की माँग, समाज की आवश्यकता को ठीक से देख, समझ और परख सके और तदनुसार पथ एवं प्रकाश दे सके।

पथ और प्रकाश लेकर असामान्य स्थिति पा सकना तो दूर पराधीन विचार तथा पक्षपाती मस्तिष्क वाला व्यक्ति मान्यताओं के प्रति दुराग्रह में अपनी हानि देखता हुआ भी उन्हें छोड़ नहीं पाता। मान्यताओं एवं विश्वासों के प्रति पूर्वाग्रह के कारण अनेक लोग प्रस्तुत परिस्थितियों से होकर हानि तक कर लेते हैं। जैसे किसी की मान्यता है कि दूसरी जाति के व्यक्ति के हाथ का पानी नहीं पीना चाहिए किन्तु वह एक ऐसी परिस्थिति में फँस जाता है कि उसके पास न तो अपना लोटा-डोर है और न उस समय कोई परिचित व्यक्ति है तो उस पूर्वाग्रही के सामने प्यासे मरने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं रह जाता। ऐसे अनेक दुराग्रही व्यक्तियों के प्यासे मरने के समाचार सुनने में आए और आते रहते हैं। कभी किसी परिस्थिति विशेष में हो सकता है कि इस मान्यता की कोई आवश्यकता रही हो अथवा हो सके किन्तु सामान्य जीवन व्यवहार में न तो इसकी कोई आवश्यकता है और न महत्व ! ऐसी मूढ़ मान्यताओं के व्यक्ति स्टेशनों तक पर नलों अथवा सप्लाई का पानी नहीं पीते और न बच्चों को पीने देते हैं, जिससे वे अनेक घण्टों प्यास से खुद परेशान रहते और बच्चों को भी रखते हैं। खान-पान का संयम एवं शुद्धता ठीक है किन्तु जब यह विवेकसम्मत बात मूढ़ मान्यता बनकर किसी को पराधीन बना लेती है, तब उससे हानि होने के सिवाय कोई लाभ नहीं होता।

मूढ़ मान्यताओं का पक्षपाती मस्तिष्क उनसे स्पष्ट होने वाले अनर्थों को देखकर भी उन्हें छोड़ना तो दूर उल्टे दृढ़तापूर्वक पकड़े रहना चाहता है। उसके दोष बतलाने अथवा संशोधन करने के लिए कहने वालों से लड़ने-झगड़ने तक पर तुल जाता है और जब उसका वश चलता है हितोपदेशक का विरोध ही करता रहता है। सती होना भारत की बहुत समय तक एक मान्यता रही है। सती का अर्थ है—सत्यनिष्ठ। जो स्त्रियाँ विधवा होने पर लोकमंगल के लिए सत्य-निष्ठा को बढ़ाने के लिए अपना जीवन अर्पण करती थीं वे सती साध्वी कहलाती थीं। साधुता का आचरण ही सती होने का प्रमाण माना जाता था। ऐसी सतियाँ यहाँ घर-घर होती थीं। किन्तु दुर्भाग्यवश समाज के स्वार्थी संचालकों ने इसे एक अनिवार्य जातीय प्रथा का रूप बना दिया तो जनसाधारण के लिए एक मान्यता बन गई। फलस्वरूप विधवाओं को उनकी इच्छा के विरुद्ध त्राहि-त्राहि करने पर भी जबरदस्ती जलाया जाने लगा। परम्परावश इस मूढ़ मान्यता के प्रति अनेक जातियों में इतना पक्षपात उत्पन्न हो गया कि जब राजा राममोहनराय जैसे शुभचिन्तकों ने असहाय विधवाओं के इस हठदाह को बन्द कराने का निश्चय किया तो लोगों ने उसका विरोध ही नहीं किया बल्कि उनको जाति बाहर भी कर दिया। अनेक दुराग्रहियों ने तो उनके प्राणों तक के लिए संकट उत्पन्न कर दिया, जिससे उन्हें देश छोड़कर विदेश जाना पड़ा। कुछ समय बाद जब पक्षपातियों का तिरोधान हुआ अथवा प्रयत्न द्वारा उक्त दाहकर्म के प्रति लोगों का पक्षपात कम हुआ तो लोगों की समझ में आया कि जिसको ये धर्म का एक अंग समझते थे वह सती-दाह एक मूढ़-मान्यता मात्र ही थी। आज समाज में सती-दाह के प्रति किसी में पूर्वाग्रह न होने से उसकी चर्चा आने पर तत्कालीन लोगों की उस भ्रष्ट मान्यता पर खेद प्रकट करने लगते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मूढ़ मान्यताओं के कारण ही पृथ्वीराज ने 'शरणागत' गौरी को सत्रह बार क्षमा कर देश को गुलाम बनाया। मूढ़ मान्यता के कारण ही शत्रु पर रात्रि में आक्रमण न करने से हजारों हिन्दू राजे-महाराजे मुसलमानों तथा अँग्रेजों से हारे। मूढ़ मान्यता के कारण ही करोड़ों हिन्दू अस्पृश्य बने हुए समाज द्वारा त्यक्त पड़े हैं, जिन्हें बहकाकर ईसाई अपनी संख्या बढ़ाते चले जा रहे हैं।

इस प्रकार की सामाजिक ही नहीं जाने कितनी व्यक्तिगत मूढ़ मान्यताएँ अन्धविश्वासों के रूप में लोगों में भरी पड़ी हैं, जिससे ओझे, स्याने, ज्योतिषी तथा वंचक लोग लाभ उठाते हैं। अनेक मूढ़ मान्यताओं के कारण न जाने कितनी स्त्रियाँ अपना धन और शील ठगाती हैं और अनेक पुरुष प्रवंचकों के चक्कर में आकर प्राण तक गवाँ बैठते हैं, किन्तु फिर भी उन्हें त्यागने में अभिरुचि नहीं रखते। इसका कारण यही है कि परम्परावश उनके मस्तिष्क उनके प्रति पक्षपाती हो गये हैं, जिससे उन्हें छोड़ने का साहस नहीं कर पाते।

पक्षपाती मस्तिष्क में केवल यही दोष नहीं होता कि वह अपनी मान्यताओं एवं विश्वासों के प्रति दुराग्रही होता है बल्कि वह अन्य लोगों की मान्यताओं एवं विश्वासों के प्रति असहिष्णु भी होता है, जिसके कारण योरोप, एशिया में न जाने कितनी बार रक्तपात हुआ है और भारत तो इन साम्प्रदायिक विवादों के कारण जर्जर ही हो गया है। अविवेक पोषित मान्यताओं के प्रति पक्षपात एक भयानक दोष है, जो व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र को हानि पहुँचाए बिना नहीं रहता।

इस प्रकार का दोष मनुष्य में आता तभी है जब वह किसी बात में निहित सत्यासत्य का निर्णय किए बिना उसे स्वीकार कर लेता है। यह आवश्यक नहीं कि जो मान्यता कभी प्राचीनकाल में हितकारी अथवा आवश्यक रही हो वह आज भी उसी प्रकार उपयोगी हो और न यही आवश्यक है कि जो मान्यता, विश्वास अथवा धारणा कुल, वंश अथवा समाज में परम्परागत चली आ रही है उसे यथावत् अपना ही लिया जाए। नवीन अथवा प्राचीन कोई भी बात क्यों न हो उसे अपनाने से पूर्व किसी भी मनुष्य को अपनी स्वतन्त्र विवेक बुद्धि से उसके सत्यासत्य एवं उपयोगिता का निर्णय कर लेना चाहिए। परमात्मा ने मनुष्य को बुद्धि तत्व इसलिए दिया है किन्तु यह सम्भव होगा तभी, जब अपने मस्तिष्क को पहले से ही किसी मान्यता अथवा विश्वास का दास न बना दिया गया हो और पक्षपात के दोष से उसे सर्वथा मुक्त रखा गया हो। उचित को अपनाना और अनुचित के प्रति दुराग्रह न करना ही वह लक्षण है, जिसे मनुष्यता कहा जा सकता है।

दुराग्रह छोड़ने से ही सत्य के निकट पहुँचेंगे

सूरज इतना छोटा नहीं कि उसे एक छोटे कमरे में बन्द किया जा सके। समग्र सत्य इतना तुच्छ नहीं कि किन्हीं मनुष्यों का नगण्य-सा मस्तिष्क उसे पूरी तरह अपने में समाविष्ट कर सके। समुद्र बहुत बड़ा है, उसे चुल्लू में लेकर हममें से कोई भी उदरस्थ नहीं कर सकता। सत्य को जितना हमने जाना है, हमारी समझ और दृष्टि के अनुसार वह सत्य हो सकता है, उस पर श्रद्धा रखने का हर एक को अधिकार है। किन्तु इससे आगे बढ़कर यदि ऐसा जाने लगा कि अन्य लोग सोचते हैं, वह सब कुछ केवल असत्य ही है तो यह पूर्वाग्रहपूर्ण मान्यता महान् सत्य की अवमानना ही होगी।

एक ही उद्देश्य के लिए कई तरह सोचा जा सकता है। एक ही लक्ष्य तक पहुँचने के कई रास्ते हो सकते हैं। एक ही कार्य को कई ढंग से किया जा सकता है। एक ही भाव को कई भाषाओं में कई तरह व्यक्त किया जा सकता है। इन भिन्नताओं के रहने पर भी तात्विक एकता बनी ही रहेगी। समुद्र में असंख्यों लहरें उठती हैं, इससे उस अथाह जलराशि की एकता खण्डित नहीं होती। सत्य सूर्य की तरह विशाल है, जिसमें सात रंग की प्रमुख हजारों रंगों की गौण किरणें निरन्तर प्रवाहमान रहती हैं। सूर्य विभिन्न स्थानों पर वहाँ की परिस्थितियों के कारण कई रंगों और कई आकारों का दीखता है। सवेरे का सूर्य बड़ा और लाल रंग का होता है। मध्यान्ह को वह छोटा हो जाता है और उजले रंग का। इसी प्रकार कुहरे में, हिमप्रदेश में, रेगिस्तान में, ग्रहण काल में उसकी आभा भिन्न-भिन्न प्रकार की दृष्टिगोचर होती है। यह भिन्नताएँ सूर्य की नहीं, स्थानीय परिस्थितियों के कारण उसके परिलक्षित होने की हैं। सूर्य एक है, एक-सा और एकरस है तो भी उसकी जो भिन्नता दीख पड़ती है, उसे झुठलाया नहीं जा सकता। सत्य के सम्बन्ध में भी यही बात है। कौन-सी मान्यता कौन-सी क्रिया सत्य है? इसका निर्णय कर सकना इतना सरल नहीं है जितना कि समझ लिया गया है। यदि दृश्यमान भिन्नताओं के कारण अनेकों परस्पर विरोधी सूर्यों की कल्पना की गई तो वह अवास्तविक ही होगी। वह हठवादिता सत्य की शोध अथवा उपलब्धि से और भी अधिक पीछे पड़ जायेगी।

हो सकता है कि दूसरे भी हमारी ही तरह सद्भाव सम्पन्न हों और अपनी समझ के अनुसार सदुद्देश्य के लिए वह क्रिया-कलाप अपना रहे हों जो हमें अनुपयुक्त लगता है। राग, द्वेष और विग्रह ऐसी ही पक्षपात भरी दुराग्रही मनःस्थिति के कारण होता है। यदि हम बाह्य क्रिया-कलाप की अपेक्षा कर्ता के उद्देश्य को समझने का प्रयत्न करें तो यथार्थता के निकट पहुँच सकते हैं। तब प्रतीत होगा कि उस भिन्नता में भी एकता का बड़ा आधार मौजूद है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धर्म मान्यताओं की भिन्नताओं के सम्बन्ध में यही तथ्य सोलहो आना लागू होता है। संसार में अनेकों धर्म प्रचलित हैं। उनके रीति-रिवाजों एवं दिशा-निर्देशों में काफी अन्तर पाया जाता है, फिर भी उनका मूल उद्देश्य एक है—अनुयायियों को संयमी, सदाचारी, उदार, सज्जन और दूरदर्शी बनाना। विभिन्न स्थानों के, विभिन्न स्तरों के व्यक्तियों से मनीषियों ने भूतकालीन मान्यताओं के साथ ताल-मेल मिलाते हुए अपेक्षाकृत अधिक सुधरे हुए निर्देश देने के लिए धर्म सम्प्रदायों की रचना की है। इन सभी धर्म संस्थापकों का उद्देश्य एक था—सत्य के निकटतम स्थान तक पहुँचना और पहुँचाना।

सूर्य स्थिर नहीं, पवन अचल नहीं इसी प्रकार सत्य सदा सर्वदा के लिए एक जैसा नहीं रह सकता। व्यक्तियों और परिस्थितियों के अनुरूप उसका स्वरूप बदलता रहता है। जो मान्यताएँ और प्रथाएँ आज से दो हजार वर्ष पूर्व उपयोगी थीं वे आज भी वैसी ही हों यह आवश्यक नहीं। अति प्राचीनकाल में घी के और पीछे तेल के दिये जला करते थे, अब बिजली की सस्ती और सरल रोशनी का प्रबन्ध हो जाने पर दीपक जलाने की उपयोगिता सिद्ध करने और उसी पर जोर देने की कोई आवश्यकता नहीं है। एक समय की उपयोगिता अब अनुपयोगिता में बदल गई। दीपक का आविष्कार करने वाला कभी अति सम्मानित वैज्ञानिक घोषित किया गया होगा, पर अब उसकी गरिमा प्रतिपादित करने में, गुण-गान करने में उतना उत्साह नहीं जगाया जा सकता। समय बदल जाने से परिस्थितियाँ बदल गईं। साथ ही मूल्यांकन भी बदला। इस तथ्य को ध्यान में रखने वाले कभी इस बात पर नहीं लड़ेंगे कि दीपक की उपयोगिता और उसके आविष्कारक की अभिवन्दना के सम्बन्ध में पूर्वकाल जैसे विचार आज भी हैं या नहीं। परिस्थितियाँ बदलने से प्रतिपादन भी बदलेंगे ही। इसमें सत्य की वस्तुस्थिति में कोई अन्तर नहीं आया। सर्दी में गरम कपड़े और गर्मी में ठण्डे कपड़े पहनना सत्य की अवज्ञा नहीं है। बाहर से परस्पर विरोधी दीखने वाली इन भिन्नताओं के मूल में एक ही तथ्य है—"ऋतु प्रभाव से शरीर की रक्षा।" अस्तु दोनों ही पद्धतियाँ अपने-अपने स्थान पर उपयोगी हैं और ग्राह्य भी।

धर्म मान्यताओं से लेकर सामाजिक रीति-रिवाजों तक के सम्बन्ध में यही बात लागू होती है। संसार के अनेक देशों और अनेक जातियों में परिस्थितियों और परम्पराओं के कारण चित्र-विचित्र मान्यताएँ प्रचलित हैं। इनमें से अपनी को सत्य और दूसरे सबों को असत्य मानने की संकीर्णता प्रायः सर्वत्र देखी जाती है। घृणा और द्वेष इस संकीर्ण बुद्धि के कारण पनपते हैं और दूसरों को बदलने के लिए बल प्रयोग से लेकर ऐसे उपायों का अवलम्बन किया जाता है जो अधर्म से भी बुरे हैं। धर्म की सेवा के लिए अधर्म का उपयोग—एक विचित्र कार्य है। पर यह विचित्रता प्राचीनकाल में भी थी और अब भी पाई जाती है। धर्मों के बीच विद्वेष और आक्रमण का दौर अभी भी कम नहीं हुआ है। आये दिन दंगे होते हैं और खून-खराबी की घटनाएँ घटित होती हैं, यह धर्मान्धता कई बार तो इतनी बढ़ जाती है कि भिन्न समुदाय के अनुयायी होने के अपराध में अगणित निरीह, निर्दोषों को गाजर, मूली की तरह काटकर रख दिया जाता है। इस विडम्बना को देखकर कई बार तो धर्म की उपयोगिता स्वीकार करने में भी कठिनाई होती है।

दर्शन, राजनीति, आहार-विहार, आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान, धर्म-संस्कृति में यदि विश्वव्यापी एकता लाई जा सके तो सबसे उत्तम है, इससे मानव परिवार की एकता और व्यवस्था में निश्चय ही सहायता मिलेगी, पर जब तक यह दुराग्रह मुक्त वातावरण उसके लिए तैयार नहीं तब तक इतना तो हो ही सकता है कि भिन्न विचारधारा वालों की मान्यताओं और गतिविधियों में जितना अंश सर्वोपयोगी है उतने को सहज सम्मान प्रदान करें और उतनी एकता को अधिक घनिष्ठ एवं परिष्कृत बनाते चलें। इससे जहाँ सत्य की उपलब्धि में आंशिक सहायता मिलेगी, वहाँ एक लाभ और भी होगा—वह है कट्टर दुराग्रह से आगे बढ़कर यर्थाथता का पता लगा सकने वाली उदार बुद्धि का विकास। इसी के आधार पर तो कूड़े के ढेर में बिखरे पड़े मोतियों को बीनना और उनकी एक सुसज्जित माला बना सकना सम्भव होगा।

सत्य का आधार है विवेक

सत्य का अर्थ है यथार्थता। जो बात जैसी है उसे उसी रूप में समझना, मानना और प्रयुक्त करना सत्य की साधना है। दुर्भाग्य से हम इन दिनों बनावट, बिड़म्बना, भ्रान्ति, दुर्बुद्धि से भरे युग में रह रहे हैं। अज्ञान भरे अन्धकार युग ने कुछ ऐसा कृत्रिम वातावरण बना रखा है जिसने बरसात की काली घटाओं में छिपे हुए सूर्य की तरह सत्य को एक प्रकार से छिपा-सा ही दिया है। छल और कृत्रिमता का दूसरा नाम ही सभ्यता पड़ गया है। जो जितनी कृत्रिमता बरत सकता है, कुछ को कुछ बनाकर दिखा सकता है वह उतना ही बड़ा सभ्य और कलाकार माना जाता है। पिछली शताब्दियों से असत्य एवं कृत्रिमता की आराधना में मानवीय मस्तिष्क संलग्न रहे हैं और अब वह उपार्जन इतना विशालकाय, इतना सघन और प्रचलित हो गया है कि आमतौर से उसे ही सत्य माना जाने लगा है। आज सामान्य बुद्धि के लिए यह ढूँढ़ निकालना अति कठिन है कि प्रचलित मान्यताओं, प्रथा-परिपाटियों, विश्वासों, रीति-नीतियों एवम् विचारणाओं में सत्य का कितना अंश है?

जिस कसौटी पर यथार्थता को कसा जा सकता है वह है विवेक। विवेक उस साहस का नाम है, जिसके आधार पर बहु प्रचलित मान्यताओं की उपेक्षा करके भी सच्चाई को ढूँढ़ निकालने की भावना उत्पन्न होती है। यही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भावना है, जिसके आधार पर कोई व्यक्ति सत्य का दर्शन कर सकता है। जो सोचता है कि "समाज का वर्तमान प्रचलन ही ठीक है" और उसी का समर्थन ठीक है तो फिर उसके लिए सोचने और ढूँढ़ने के सारे रास्ते ही बन्द हो जाते हैं। प्रचलन के ढर्रे से लुढ़कते-लुढ़कते परिपाटी के प्रति मनुष्य को मोह उत्पन्न हो जाता है, उसी के साथ पक्षपात जुड़ जाता है। अपनी यह दुर्बलता समझ में भी नहीं आती। लगता है हम जो सोचते हैं वही सत्य है, जो करते हैं वही सत्य है, जिस रास्ते पर चल रहे हैं वही सत्य है। विभिन्न व्यक्ति अपनी प्रचलित परिपाटियों और रीति-नीतियों को सत्य मानने लगते हैं चूँकि सत्य का निरूपण तो किसी ने किया नहीं, अपनी-अपनी परिपाटियों को ही सत्य मान लिया है, इसलिए उनकी मान्यताएँ स्वभावतः एक-दूसरे से भिन्न अथवा विपरीत होती हैं। इस भिन्नता एवं विपरीतता को स्वभावतः वे वर्ग नापसन्द करते हैं, कई बार घृणा भी करते हैं और यदि असहिष्णुता की मात्रा अधिक हुई तो परस्पर संघर्ष भी खड़ा हो जाता है। एक-दूसरे को असत्यवादी मानते हैं और अपने को सत्यनिष्ठ समझते हैं। उनकी लड़ाई का आधार तो सत्य का समर्थन और असत्य का निवारण होता है। पर वस्तुतः दोनों ही असत्य का समर्थन और सत्य की हत्या कर रहे होते हैं क्योंकि वास्तविक सत्य को ढूँढ़ने की किसी ने चेष्टा ही नहीं की। अपने चारों ओर घिरे मानसिक अथवा सामाजिक वातावरण को ही सही माना, जबकि वस्तुतः वह एक पक्षपात मात्र था। इतिहास के अगणित पृष्ठ इसी सत्य के आवरण में छिपे पक्षपात से लाखों-करोड़ों मनुष्यों के श्रोणित, तर्पण की करुण कथा से कलंकित हो रहे हैं। हमारे देशवासियों को ऐसे नर-संहार की स्मृति भूली नहीं है। गौरी, गजनवी, नादिरशाह, औरंगजेब, चंगेजखाँ आदि ने धर्म की सेवा के नाम पर क्या नहीं किया था ? ईसाई और गैर ईसाई, मुस्लिम और गैर मुसलिम, आर्य और अनार्य आदि की भिन्नताओं ने कितनी नृशंसताएँ उपस्थिति कीं इसका लम्बा इतिहास पढ़ने पर लगता है कि मनुष्य सत्य के अवलम्बन की डींग मात्र हाँकता है वस्तुतः सत्य से अत्यधिक दूर है।

आज के इस अन्धकार से ढँके युग में यह नितान्त आवश्यक है कि सत्य और असत्य का नए सिरे से विश्लेषण किया जाय और उसका आधार विवेक, न्याय एवम् औचित्य को माना जाय। दूसरों के प्रति जो व्यवस्था लागू की जा रही है, वही यदि अपने लिए भी लागू हो तो कैसी लगे ? इस कसौटी पर न्याय-अन्याय का निरूपण आसानी से हो सकता है। उसी प्रकार यदि यह मानकर चला जाय कि संसार के बहुसंख्यक व्यक्ति अनुपयुक्त विचारणा और क्रियापद्धति के अभ्यस्त हैं, उनकी गतिविधियों में अनौचित्य की मात्रा ही अधिक है तो फिर तथाकथित लोकभय से मुक्ति पाई जा सकती है और स्वतन्त्र चिन्तन के लिए उपयुक्त दिशा मिल सकती है। अपनी मनोभूमि के पक्षपात को भी समझना चाहिए और ध्यान रखना चाहिए कि हम जिस परम्परा में जन्मे, पले और बड़े हुए हैं, स्वभावतः उसी के समर्थन में बुद्धि काम करेगी। इसलिए स्वतन्त्र चिन्तन सत्य का अन्वेषण करने के लिए इतना साहस भी एकत्रित करना चाहिए कि अपनी अभ्यस्त बुद्धि की भी उपेक्षा करके विश्वव्यापी सत्य का निरूपण कर सकने की भावना सही रूप से अपना काम कर सकने में समर्थ हो सके।

"हमारा सो सही आपका सो गलत"—आज सही गलत की मात्र यही परख है। अपनी जाति, भाषा, देश, वंश, परिवार, सम्प्रदाय, रहन-सहन, रीति-रिवाज एवं विचार पद्धति का जो अनावश्यक पक्षपात है, उसे हटाया जाना चाहिए और निष्पक्ष विश्व के निष्पक्ष नागरिक की तरह, एक न्यायनिष्ठ जज की तरह हमें हर प्रचलित रीति-नीतियों और विचारणाओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। न तो प्राचीन के प्रति मोह रहे और न नवीन के प्रति द्वेष। प्राचीन हो या नवीन इससे यथार्थता में कोई अन्तर नहीं आता। किसी सड़ी-गली मृत प्रायः वस्तु को इसीलिए सँजोकर नहीं रखा जा सकता कि वह पुरानी है।

जिस प्रकार दूसरे लोगों के बारे में गलत राह अपनाने वाला सोचा जा सकता है, उसी प्रकार बहुत सम्भव है कि विवेक की कसौटी पर अपनी मान्यताएँ अथवा गतिविधियाँ जब परखी जायँ तो वे असत्य निकलें। ऐसी दशा में हमें इतनी निष्पक्षता तो अपने भीतर उत्पन्न कर ही लेनी चाहिए कि जो सत्य होगा उसे ही स्वीकार करेंगे। अपने और पराए का, प्राचीन और नवीन का कोई भेद-भाव एवं पक्षपात न होने देंगे। इतना आधार यदि तैयार हो जाय तो ही आशा की जा सकती है कि सत्य का अवतरण सम्भव हो सकेगा। अन्यथा हर व्यक्ति अपनी मान्यताओं और रीति-नीतियों को सही मानकर दूसरों के प्रति घृणा, तिरस्कार, द्वेष और दुर्भावों की धारणा बनाये बैठा रहेगा। इससे अशान्ति ही बढ़ेगी।

हमें सत्य की शोध करनी चाहिए, सत्य का आश्रय लेना चाहिए, सत्य पर आरूढ़ होना चाहिए और सत्य के ही समीपवर्ती वातावरण में प्रतिष्ठापना करने के लिए कटिबद्ध होना चाहिए। किन्तु ध्यान यह भी रखा जाय कि हमारा सत्य तथ्य पर आधारित हो। केवल पूर्व मान्यताओं तथा परम्पराओं के आधार पर ही किसी बात को सत्य न मान बैठें।

मस्तिष्क को पक्षपात से दूर रखिए—मस्तिष्क मनुष्य का मित्र माना गया है। वह जीवन भर अग्रसर होने में सहायक होता है। मस्तिष्क ही राह दिखलाया करता है और उस पर चलने की प्रेरणा दिया करता है। अच्छाई-बुराई की सूचना देना भी उसी का काम होता है। मनुष्य को अपना वास्तविक नेता अपने मस्तिष्क को ही समझना चाहिए।

मनुष्य के मस्तिष्क में उलझाव तब पैदा होता है जब वह अपने अन्दर किन्हीं बातों को स्थाई रूप से स्थापित कर लेता है और उसके विषय में सोचना-समझना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छोड़ देता है, जो बात जिस प्रकार स्थापित हो गई है उसको उसी प्रकार मानते रहने से मस्तिष्क की अपनी मौलिकता समाप्त हो जाती है। वह किसी बात पर सोचता भी है तो उसकी विचारधारा पूर्व स्थापित रेखाओं के बीच से ही बहती चलती है, जिससे वह सोचता तो है, किन्तु उन्हीं के अनुरूप सोचने को मजबूर हो जाता है। यद्यपि ऐसा वह जान-बूझकर अवश्य नहीं करता, तब भी उसकी विचारधारा रहती है एक ढार पर, जिस प्रकार पटरी में फँसे हुए रेलगाड़ी के पहिये स्वयं चलते हुए अपनी गति में स्वतन्त्र नहीं रहते और जो दिशा पटरी की होती है, वही दिशा पहिये भी ग्रहण कर लिया करते हैं, उसी भाँति पूर्व मान्यताएँ बनी रहने से मस्तिष्क भी उन्हीं के अनुरूप सोचा करता है। वह जो कुछ भी सोचता है, कहता अथवा प्रतिपादित करता है उसमें मान्यताओं के प्रति पक्षपात का आग्रह रहा करता है।

इस प्रकार का एकांगी अथवा पक्षपाती मस्तिष्क कभी भी अच्छा मित्र नहीं रहता, जिस प्रकार किसी मित्र के प्रभाव में रहने से कोई उसका परामर्श मानने का अभ्यस्त रहा करता है, उसी प्रकार मस्तिष्क के प्रभाव में रहने से मनुष्य उसकी आज्ञा मानता ही है। ऐसी दशा में पक्षपाती मस्तिष्क परामर्श देने में सक्षम नहीं होता।

अपने इस पक्षपातजन्य विश्वास के कारण वह कभी-कभी अपनी मान्यताओं को दूसरे पर थोपने की अनधिकार चेष्टा भी किया करता है, जिससे अनेक प्रकार के संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं। अपनी मान्यताएँ मनवाने का मनुष्य को बड़ा चाव रहता है। उनके प्रति प्यार होने के कारण उसकी इच्छा रहती है कि सारा संसार उन्हें प्यार करे, उनका आदर करे और उसी की तरह अपनाये भी। इस अनधिकार चेष्टा में उसको लोकप्रियता अथवा नेतृत्व का लोभ भी रहता है। यही नेतृत्व की लोकेषणा कभी-कभी वास्तविक मूल्य जानते हुए भी अपनी मान्यताओं के अधिक मूल्यांकन की दुर्बलता पैदा कर देती है।

संसार में फैले हुए संघर्षों के मूल में बैठकर यदि विचार किया जाए तो पता चलेगा कि वर्तमान अशान्ति का मुख्य कारण अपनी-अपनी मान्यताओं के प्रति मनुष्य का पक्षपात ही है। कोई साम्राज्यवाद में संसार का कल्याण देखता है तो कोई समाजवाद में। कोई स्थायी सुख-शान्ति को मानता है तो कोई सहअस्तित्व को। कोई अहिंसा में विश्वास करता है तो कोई हिंसा में। कोई अनैतिकता की दुहाई देता है कोई नास्तिकता को जरूरी समझता है। किसी की उपासना-पद्धति निराकार की ओर जाती है तो किसी की साकार की ओर। कोई ईश्वर, प्रकृति, जीव, जीवन, परलोक, धर्म, सृष्टि आदि के प्रति एक प्रकार की मान्यता रखता है तो दूसरा अन्य प्रकार की। कहने का तात्पर्य यह है कि संसार में मान्यताओं का कोई पारावार नहीं और उनके बीच भिन्नता और विचित्रता की भी कमी नहीं है। साथ ही सबको उनके प्रति मोह और पक्षपात की दुर्बलता भी रहती है। तब भला कोई किसी की मान्यता को अपनी मान्यता से श्रेष्ठ मानने अथवा अपनी मान्यता के स्थान पर अन्य के विश्वास को किस प्रकार स्वीकार करने को तैयार हो सकता है ? और ऐसी दशा में कोई अपनी मान्यताओं की अपेक्षा का अनुचित दुराग्रह करेगा तो कलह-क्लेश और लड़ाई-झगड़े की परिस्थितियाँ आ जायेंगी ही।

यह सत्य है कि किसी विषय में संसार की सारी मान्यताएँ समान रूप से सही नहीं हो सकतीं। मन में ही सत्य और असत्य का कुछ न कुछ अंश होगा ही। किसी एक ही मान्यता की सच्चाई के विषय में पूछा जाय तो वह उसका इस प्रकार से एकांगी प्रतिपादन करेगा कि सुनने वाले को उसके सत्य होने का विश्वास हो सकता है। अपनी मान्यताओं के पक्ष में मानव मस्तिष्क ऐसे-ऐसे तर्क, ऐसी-ऐसी दलीलें प्रस्तुत करता है कि जिनको सुनकर मान लेने को जी करता है।

इस प्रकार एक को सुनने के बाद जब दूसरे पक्ष को सुना जाए तो ऐसा लगेगा कि पहले व्यक्ति ने जो कहा है वह बिल्कुल गलत है। ठीक तो यह है जो यह व्यक्ति कह रहा है। इस प्रकार किसी को अलग सुनकर सही निर्णय पर नहीं पहुँचा जा सकता। सही निर्णय पर पहुँचने के लिए आवश्यक है कि उभयपक्ष को तटस्थ होकर सुना जाय और उनके कथन पर स्वतन्त्र मस्तिष्क से सोचा जाए, तभी किसी सही निर्णय पर पहुँच सकने की सम्भावना हो सकती है।

किन्तु कठिनाई तो यह है कि संसार का हर आदमी कुछ मान्यताएँ रखता है और उनके प्रति आग्रह भी। ऐसी दशा में सत्यशोधियों का सर्वथा अभाव ही है। सत्य की शोध करने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अपनी पूर्व निर्धारित मान्यताओं का पक्षपात छोड़कर अपने मस्तिष्क को मुक्त करे और तब आपस में बैठकर उपयोगी एवं हितकारी तत्व की खोज का दृष्टिकोण लेकर एक-दूसरे को सुने और समझे। ऐसी दशा में आग्रह रहित विचार-विनिमय से ही किसी सत्य की आशा की जा सकती है अन्यथा मान्यताओं की भिन्नता के आधार पर संसार में यह संघर्ष होता ही रहेगा और क्लेश-कलह बढ़ते ही रहेंगे।

पारस्परिक विचार-विनिमयता का यह गुण मस्तिष्क में तभी आ सकेगा, जब उसको पूर्व निर्धारित मान्यताओं के पक्षपात से मुक्त किया जाए। उसकी विचारधारा को लीकों और लकीरों के बन्धन से मुक्त किया जाये। सत्य की खोज में दुराग्रह को बाधक मानकर उसका त्याग कर दिया जाये।

धैर्यपूर्वक समस्त पक्ष को जब तक तटस्थ होकर नहीं सुना जायेगा और अपनी कमियों को जानकर उनको दूर नहीं किया जायेगा, तब तक अन्धविश्वास संघर्ष की सम्भावना कम नहीं हो सकती। इतना ही नहीं, अपने व्यक्तिगत जीवन में भी सुख और शान्ति लाने के लिए भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यही आवश्यक है कि हर बात को करते समय उसकी विधि तथा त्रयकालिक प्रभाव एवं परिणाम के प्रति सजग रहा जाये तभी किसी ठीक तथा वांछित सन्तोष की प्राप्ति हो सकना सम्भव हो सकेगा। पूर्व निर्धारित मान्यताओं के प्रति पक्षपात से उत्पन्न अन्धकार से मनुष्य भूले और भटकेगा ही और तब उसका परिणाम शोक-सन्ताप के रूप में ही सामने आयेगा।

अपने मित्र एवं पथ-प्रदर्शक नेता मस्तिष्क को यथा-सम्भव मुक्त एवं निर्विकार रखिए। हर बात पर निष्पक्ष होकर विचार करिए और आवश्यक रीति-नीति को अपनाइए। आपके जीवन से शोक-सन्तप्तताओं के बहुत-से कारण दूर हो जायेंगे।

अनेक स्तर के पक्षपात—देश, धर्म, जाति, वर्ण, सम्प्रदाय, भाषा, प्रान्त के आधार पर आज अनेक प्रकार के पक्षपात प्रचलित हैं। जो जिस वर्ग में है, वह उसी को प्रधानता देता है। अपने पक्ष की अनुचित बातों का भी समर्थन करता है और प्रतिपक्षी की मान्यताओं को सुनने-समझने तक को तैयार नहीं होता। यहीं से द्वेष और संघर्ष की नींव जमती है। आए दिन संघर्ष और द्वेष इसी आधार पर होते रहते हैं। यदि यह विवेक जाग्रत हो जाय कि हम एकांगी एवम् पक्षपातपूर्ण ढंग से सोचने की अपेक्षा पक्षपाती विचारों, मान्यताओं और आदर्शों को भी सामने रखना सीख लें और उनका तुलनात्मक विश्लेषण करके तब दोनों में जो उचित हो उसका समर्थन करने लगें तो सत्य के निकट पहुँच सकना सम्भव हो सकता है। सत्य को समझने और अपनाने की स्थिति में यदि हम पहुँच जायें तो निःसन्देह आज की तीन-चौथाई समस्याओं का समाधान एवम् कठिनाइयों का हल निकल सकता है। सामाजिक एवम् वैयक्तिक प्रगति का अवरुद्ध मार्ग देखते-देखते खुल सकता है। द्वेष-दुर्भावों का स्थान प्रेम एवम् सौजन्य ग्रहण कर सकता है।

हमें निष्पक्ष विचारक की दृष्टि रखकर प्रत्येक समस्या पर विचार करना चाहिए और सत्य के समीप पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रयास से ही वह मार्ग मिलेगा जो समाधानकारक एवम् शान्तिदायक है! सामान्य लोगों से कुछ ऊँचे स्तर पर उठकर ही मान्यताओं की परख हो सकती है। इसके लिए विशाल दृष्टिकोण चाहिए। जिस सम्बन्ध में विचार करने को हों, उसके पक्ष और विपक्ष के सभी पहलू सामने रखने चाहिए और अपने निष्पक्ष विवेक को न्यायाधीश बनाकर यह देखना चाहिए कि वास्तविकता कहाँ हो सकती है ? अपनी मान्यताओं के प्रति मोह और दूसरों की मान्यताओं के प्रति द्वेष यदि हम रखे रहेंगे तो वस्तुस्थिति को जानना कैसे सम्भव हो सकेगा ?

प्रश्न सामने उपस्थित है कि भूत और उसके उपद्रवों में कितनी सचाई है ? इसका हल ढूँढ़ने के लिए यदि हम भूतों पर विश्वास करने वाले, उन्हें पूजने वाले लोगों के द्वारा कही हुई बातों और की हुई क्रियाओं पर ही भरोसा कर लें तो फिर इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं कि उन मान्यता वाले लोगों ने जो कुछ कहा या माना है उसे ही आप भी स्वीकार कर लें। सचाई तक पहुँचने के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है। देखना यह होगा कि संसार के अन्य देशों में भी भूत की करतूत पर विश्वास किया जाता है या नहीं, लोग उन्हें मानते-पूजते हैं या नहीं, उन्हें भूतों के उपद्रवों का शिकार होना पड़ता है या नहीं ? इस सम्बन्ध में अधिक ढूँढ़ खोज करने पर पता चलेगा कि सभ्य, शिक्षित एवं विचारशील लोगों में न भूत माने जाते हैं, न पूजे जाते हैं, न उनके उपद्रव सहने पड़ते हैं। यह बीमारी केवल अज्ञानी, अन्धविश्वासी एवं बहके हुए लोगों में ही पाई जाती है। वस्तुतः भूतों का यह अस्तित्व होता तो बुखार, खाँसी, दर्द, दस्त आदि की तरह उसका प्रकोप भी शिक्षित-अशिक्षित, सभ्य-असभ्य सभी को सहना पड़ता, किन्तु ऐसा होता नहीं। हिन्दुओं के अन्धविश्वासी वर्ग को छोड़कर यह व्यथा अन्य मजहब वालों में नहीं है। ईसाई, मुसलमान, यहूदी, पारसी अपने धार्मिक विश्वास के कारण भूत का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते, फलस्वरूप उनको यह भूतवाद की बीमारी देखने को नहीं मिलती। कुछ है भी उतना ही जितना कि उसकी मान्यताओं के अनुकूल है। वे मान्यताएँ पिछड़े हिन्दुओं की मान्यताओं से सर्वथा भिन्न हैं। इस स्थिति पर विशाल दृष्टिकोण से विचार करने पर किसी विवेकशील को इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि भूत और कुछ भी नहीं, मान्यताओं का और विश्वासों का प्रतिफल मात्र है। यह स्वीकार करते समय सम्भव है अपनी अब तक की मान्यताओं के असत्य सिद्ध होने की बात सामने आवे तो अपने आपको धक्का लगे, जिन्हें यह निष्कर्ष बताया जाय वे अप्रसन्न हों, विरोध करें, मूर्ख बतावें, फिर भी सत्य के समीप पहुँचने के लिए जो वास्तविकता है उसी को स्वीकार करने की दृढ़ता अपनानी चाहिए। यदि ऐसा साहस न किया जा सकता तो हम भ्रान्त धारणाओं में ही विचरण करते रहेंगे और उस भ्रान्ति के कारण होने वाली हानियों को भी उठाते रहेंगे।

आज का मानव-समुदाय देश, धर्म, वर्ण, पंथ, सम्प्रदाय, भाषा व प्रदेश आदि के आधार पर टुकड़े-टुकड़े होकर बिखरा हुआ है। एक ही परमात्मा के पुत्र और एक ही धरती माता की सन्तानों के बीच यह बिखराव बड़े खेद का विषय है। किन्तु इससे भी अधिक खेद का विषय यह है कि मानव-समुदाय की यह टूट-फूट भयानक रक्तपात का कारण बनती है।

पिछले हजारों वर्षों से इसी टूट-फूट के कारण क्या योरोप, क्या एशिया, क्या अमेरिका, क्या अफ्रीका ? आदि सारे महाद्वीपों की धरती मनुष्य के रक्त से लाल होती चली आ रही है। साम्प्रदायिक संघर्ष और धर्म के नाम पर होने वाले नरमेध ने संसार के सम्पूर्ण मानव समुदाय को बुरी तरह त्रस्त कर दिया है।

यह सही है कि कुछ पिछड़े हुए देशों एवं जातियों को छोड़कर प्रगतिशील देशों और जातियों ने धर्म के नाम पर रक्तपात बन्द कर दिया है, तो भी उनमें वर्ग-वाद के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आधार पर संघर्ष चलता रहता है और किसी न किसी बहाने खून बहता ही रहता है। साथ ही संसार में राष्ट्रवाद का एक ऐसा उन्माद फैल गया है, जिसने क्या तो प्रगतिशील और क्या पिछड़े सभी देशों को एक-दूसरे का दुश्मन बना रखा है।

संसार के सारे नेता, विचारक एवं शोषक मानव-समुदाय की इस टूट-फूट से होने वाली अपरिमित हानियों को देख रहे हैं और अनुभव कर रहे हैं कि संसार में स्थायी सुख-शान्ति के लिए एक विश्ववाद एवं मानव समाज की अनिवार्य आवश्यकता है, किन्तु वे कतिपय कमजोरियों के कारण युग की इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए एक स्वर से, एक विश्ववाद एवम् एक मानव-समाज का सन्देश नहीं दे पा रहे हैं।

मानव-समुदाय की एकता प्रतिपादित करने में जो कमजोरी सबसे अधिक आड़े आ रही है वह है मनुष्यों की अपनी-अपनी मान्यताओं के प्रति पक्षपात अथवा दुराग्रह। मनुष्यों के बीच मान्यताओं के प्रति दुराग्रहपूर्ण पक्षपात की यह जहरीली तलवार इस तरह तनी हुई है कि आवश्यकता होते हुए भी वह उनको एक-दूसरे के समीप नहीं आने दे रही है और जब तक यह तीव्र तलवार तनी रहेगी, संसार में यों ही संघर्ष होता रहेगा और सुख-शान्ति के शुभ-दिन कभी न आ सकेंगे।

मान्यताओं के प्रति पक्षपात मनुष्य की बौद्धिक कमजोरी है, जो उसे परम्परागत मिलती है। सुविधापूर्वक जीवन-यापन के लिए व्यक्तियों, परिस्थितियों एवं देश-काल के अनुरूप जीवन को एक क्रम तथा पद्धति प्रदान करने के लिए समय-समय पर जो नियम निर्माण किये जाते हैं वे चलते-चलते कालान्तर में मान्यताओं का रूप धारण कर लेते हैं।

निसर्ग-नियमों की तरह शाश्वत न होते हुए भी उपयोगिता के अनुसार मानवीय मान्यताओं की एक आयु तो होती ही है और युग, समय अथवा परिस्थितियों के सर्वथा बदल जाने तक उनकी कुछ न कुछ उपयोगिता बनी भी रहती है।

परिवर्तन संसार का अनिवार्य नियम है, किन्तु इसकी गति इतनी मन्थर होती है कि नित्य प्रति होने वाला परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता है। यदि धीरे-धीरे होने वाला परिवर्तन क्रम ठीक से दिखायी देता रहे तो उसी अनुपात से मनुष्य अपनी मान्यतायें भी बदलता चले। स्थूल एवं स्पष्ट रूप से दृश्यमान होने में परिवर्तन एक लम्बा समय लेता है। तब तक मनुष्य की मान्यतायें उसके मस्तिष्क में गहरी जड़ पकड़ लेती हैं और तब अपनी उन चिर संगिनियों को उखाड़ फेंकने में एक मोह, एक ममता और एक पीड़ा-सी होने लगती है। चिरसम्पर्क से ममत्व हो ही जाता है और ममत्व तोड़ते समय पीड़ा होना स्वाभाविक ही है। किन्तु मनुष्य की विवेकशीलता इसी में है कि वह अपने किसी ममत्व पर दया न करे, जो उसकी वांछनीय सुख-शान्ति एवं प्रगति में बाधा बनती हो।

मनुष्य जिस समाज, राष्ट्र, वर्ग अथवा वंश में पैदा होता है, परम्परागत उसकी अपनी कुछ मान्यतायें भी होती हैं, जिनको कि किसी समय सुख-सुविधा के अनुसार परिस्थितियों के अनुकूल बनाया गया होता है। अब चूँकि समाजिक नियम बच्चों के घरौंदों की तरह न तो रोज-रोज बनाये-बिगाड़े जा सकते हैं और न मानव-जीवन क्रम की परिस्थितियाँ ही जल्दी-जल्दी बदलती रहती हैं, जिससे कि आज की मान्यताओं की उपयोगिता कल ही खत्म हो जाए इसलिए उनको काफी समय तक चलते रहने का अवसर मिल जाता है। इसी बीच, जब तक कि सामाजिक जीवन को उपयोगी मोड़ देने के लिए, उपस्थित परिस्थितियों का, अनुपयोगी मान्यतायें बदलने का तकाजा तेज होता है, वे मानव-मस्तिष्क को इस सीमा तक प्रभावित कर चुकी होती हैं कि वह उनका दुराग्रहपूर्ण पक्षपाती बन जाता है और यही उसकी बौद्धिक कमजोरी है।

साधारण मानव मस्तिष्क की यह सहज दुर्बलता है कि वह एक बार जिस विचार चक्र पर चढ़ जाता है फिर जल्दी उससे उतरना नहीं चाहता। उस नवीन विचारधारा में उतरते बड़ा अटपटा लगता है। इसीलिए जन्म से जीवन में समायी हुई मान्यताओं को छोड़ते समय उसे हिम्मत नहीं होती और जब कोई उसे उनकी निरुपयोगिता से होने वाली हानियों की ओर संकेत करता हुआ त्यागने का परामर्श देता है, तब वह अपनी इस कमजोरी को छिपाने के लिए उनका पक्षपात करने लगता है।

अपनी-अपनी मान्यताओं के प्रति इसी अन्ध पक्षपात के कारण मनुष्य-मनुष्य के बीच रक्तपातपूर्ण संघर्ष को स्थान मिलता है। मात्र मान्यताओं के खण्डन-मण्डन के आधार पर कट मरना मनुष्य जैसे विवेकशील प्राणी को किसी प्रकार भी शोभा नहीं देता।

अपनी-अपनी मान्यताओं के प्रति संसार में जब सबको ही समान रूप से मोह है और पक्षपात के कारण कोई किसी की आलोचना, परामर्श एवं सुझाव सुनना ही नहीं चाहता बल्कि आत्मप्रतिष्ठा और आत्मगौरव के नाम पर दूसरों की अपेक्षा अपनी मान्यताओं को श्रेष्ठ सिद्ध करने की जिद पकड़े हुए है, तब इस समस्या का समाधान भी आखिर किस प्रकार हो ?

इसका केवल एक ही उपाय है, वह यह कि सारा मानव-समाज अपनी-अपनी मान्यताओं को निष्पक्षता की तुला पर तौलकर देखे कि उनमें सत्य के साथ मानव-जीवन के लिए कितना लाभ का अंश है। इस कसौटी पर जो-जो मान्यतायें खोटी सिद्ध हों, उन्हें सड़ी-गली चीज की तरह तुरन्त त्याग दे। इस प्रकार के त्याग में राष्ट्रीय प्रतिष्ठा अथवा आत्मगौरव जैसे भावुकतापूर्ण प्रश्न को जोड़ना बुद्धिमानी नहीं है।

बहुत बार हो सकता है कि मोह के कारण किसी को अपनी मूढ़ से मूढ़ मान्यताओं में दोष न दिखाई दें। इसके लिए दूसरों के विवचेन, आलोचना तथा मूल्यांकन को अपने निर्णय में सहायक समझकर तटस्थता की स्थिति में होकर सुनने का साहस रखना चाहिए।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अब चूँकि संसार का सम्पूर्ण जन-साधारण न तो स्वयं निर्णय कर सकता है और न वह उसका उचित अधिकारी ही है। यह काम है विश्व के विचारकों, समाज को नेतृत्व देने वालों और विवेकशील विद्वानों का जो कि अपनी मानवजाति के प्रति शुभेच्छा एवं करुणा रखते हों और उसकी सुख-शान्ति का उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर समझते हों। परमात्मा ने उनको विशेष विद्या-बुद्धि देकर इसीलिए आगे बढ़ाया है कि इस सृष्टि को नरक बनने से रोकें और स्वर्ग बनाने का प्रयत्न करें और जन-साधारण का कर्त्तव्य है कि वह उनके निर्णय में विश्वास करे और आस्थापूर्वक उसका पालन करे।

जन-साधारण की भाँति भावुक होकर संसार के उत्तरदायी व्यक्तियों को अपनी मूढ़ एवं हानिकारक मान्यताओं को प्रतिपादन करने में अपनी विद्या-बुद्धि का दुरुपयोग करना उनके व्यक्तित्व के अनुरूप नहीं है। उन्हें चाहिए कि वे निष्पक्ष रूप से विवेक के प्रकाश में बैठकर आपस में निर्णय करें कि इस विशाल मानव-समुदाय को एक समाज का रूप देने के लिए किन पुरानी मान्यताओं को निकाल फेंकना है और कौन-सी नई मान्यताओं को स्थापित करना है ? जिनके आधार पर राष्ट्र, धर्म, सम्प्रदाय, वर्ग, वर्णवाद अथवा जाति-पाँति के नाम पर होने वाला संघर्ष सदा-सर्वदा के लिए मुँह काला कर जाए और संसार में स्थायी सुख-शान्ति की परिस्थितियाँ प्रवेश करें।

भारत में अनेकों भ्रान्त-मान्यताएँ पत्थर की लकीर की तरह सच मान ली जाती हैं। जाति विशेष वाले ऊँचे या नीचे होते हैं। "अपनी जाति वाले के सिवाय और किसी के हाथ की छुई रोटी खा लें तो धर्म भ्रष्ट हो जायेगा' 'भाग्य में जो लिखा होगा वह होगा, "बेचारे मनुष्य का उस पर कुछ वश नहीं।" ग्रह, नक्षत्र मनुष्य को सुख-दुःख देते हैं—जैसी भ्रान्त मान्यतायें औसत हिन्दू के मस्तिष्क में गहराई तक जड़ जमाए बैठी होती हैं। तर्क, विवेक, कारण, प्रमाण आदि के आधार पर इन मान्यताओं की समीक्षा की जाय तो आदि से अन्त तक निरर्थक सिद्ध होती हैं। संसार के अन्य देशों में कोई इन बातों पर विश्वास नहीं करता। जो करते हैं वे विज्ञ व्यक्तियों की दृष्टि में उपहासास्पद एवं मूढ़तावादी माने जाते हैं। पर इस तरह का प्रतिपादन कर सकना उन लोगों के लिए बहुत कठिन है जो इन्हीं मान्यताओं में पले हैं, जिन्होंने यही सब देखा और सुना है वे यह कैसे सहन करें कि उनकी अब तक की मान्यताओं को निरर्थक बताया जाय। इससे तो उनकी मूर्खता सिद्ध होती है। लोग इन मान्यताओं को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेते हैं, जो इन बातों की निरर्थकता बतायें उसे द्रोही, नास्तिक आदि न जाने क्या-क्या बताते हैं ? अपनी गलतियों को सुनना, समझना, स्वीकार करना और छोड़ना, असाधारण बौद्धिक साहस का चिन्ह है। ऐसा साहस उन्हीं में हो सकता है, जो निष्पक्षता एवं विवेकशीलता को अपना अवलम्बन बनाते हैं। दुरबीन के शीशे को आँखों पर लगाने से ही उन बारीक कीटाणुओं को देखा जाना सम्भव हो सकता है, जो खुली आँख से नहीं दीखते। उसी प्रकार अपनी व्यक्तिगत या सामूहिक गलतियों को परखना केवल उन्हीं के लिए सम्भव है, जो निष्पक्षता और विवेकशीलता के दो काँचों पर खुर्दवीन का सहारा लेते हुए सत्य की शोध के लिए आगे बढ़ते हैं।

पूर्वाग्रह छोड़ें, प्रगतिशीलता अपनायें

विचारशीलता तथा बुद्धिमत्ता अब इसी बात में है कि प्राचीन परम्पराओं, रीति-रिवाजों तथा रूढ़ियों को विवेक की कसौटी पर कसने के उपरान्त ही अपनाया जाय। पुरातन होना मात्र किसी रीति-रिवाज अथवा परम्परा की महत्ता और उपयोगिता को सिद्ध नहीं करता। पुरातन के नाम पर ही रूढ़ियों को पोषण दिया जाता रहेगा तो सामाजिक विकास न हो पायेगा। रूढ़िगत समाज आर्थिक एवं मानसिक रूप में अपने आप ही उन बन्धनों में बँधा रहता है तथा अपने प्रगति पथ पर बढ़ने वाले चरणों को कस देता है। आज समय कहता है और पुकार रहा है। प्राचीनता का व्यामोह छोड़ो। इसका निर्देशन तो हमारे शास्त्र भी देते हैं—

जनोऽमन्यस्यमृतः पुरातनः,
पुरातनैरेव समोभविष्यति।
पुरातने पिवत्यन्वस्थितेषु,
कः पुरातनो कन्ताम्य परीक्ष्यरोचयेत्।

—सिद्धसेन

जो पुरातन काल था वह मर चुका। वह दूसरों का था, आज का जन यदि उसको पकड़कर बैठेगा तो वह भी पुरातन की तरह ही मृत हो जायेगा। पुराने समय के जो विचार हैं, वे तो अनेक प्रकार के हैं। कौन-ऐसा है जो भली प्रकार उनकी परीक्षा किये बिना अपने मन को उधर जाने देगा।

प्राचीन रूढ़ियों पर अन्धश्रद्धा के साथ चलने वालों को बौद्धिक रूप से परावलम्बी ही कहा जाना चाहिए। ऐसे लोगों की प्रगति हो सकना सम्भव नहीं। इस बात को स्पष्ट करते हुए एक विद्वान ने लिखा है—

विनिश्चयंधनैति यथा-यथालसस्तथा तथा,
निश्चितवान् प्रसीदति।
अपन्थ्यवाक्या गरवोऽहमल्पधीरिति,
व्यवस्यन् स्वबधाय धावति।।

—पूर्व नूतन द्वात्रिंशिका—६

अर्थात् जो स्वयं विचार करने में आलसी हैं, वह किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पाता। जिसके मन में सही निश्चय करने की बुद्धि है, उसी के विचार प्रसन्न और साफ-सुथरे रहते हैं। जो यह सोचता है कि पहिले आचार्य और धर्मगुरु जो कह गये हैं, वह सब सच्चा है। उनकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सब बात सफल है और मेरी बुद्धि या विचार शक्ति टटपूँजिया है। ऐसा "बाबा वाक्यं प्रमाण" के ढंग पर सोचने वाला मनुष्य केवल आत्म-हनन का मार्ग अपनाता है।

किन्तु खेद की बात है कि जहाँ हमारे वेद और शास्त्र हमेशा चलते रहने की, विवेक, बुद्धि की और ज्ञान की प्रेरणा देते हैं, उसी संस्कृति को मानने वाले लोग प्राचीनता की जंजीरों से अपने हाथ-पैरों को ही नहीं अपनी अक्ल को भी जकड़े हुए हैं। वे रूढ़ियों के जाल में फँसे हुए हैं। इनमें केवल अशिक्षित, अज्ञानी, असभ्य लोग ही बँधे होते तो कुछ कहने की बात थी लेकिन इसमें तो पण्डित, शास्त्री, पढ़े-लिखे, शिक्षित कहाने वाले लोग भी फँसे हैं। यह बात और भी अधिक खेदजनक है।

अपनी प्रगति की इच्छा रखने वालों के लिए मनुस्मृति में स्पष्ट निर्देश है कि—

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम्।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता।।

—मनु. १२/१०५

अर्थात्—धर्म शुद्धि चाहने वाले को उचित है कि वह प्रत्यक्ष, अनुमान एवं विविध आगमन, शास्त्र इन्हें भली-भाँति हृदयंगम करें तथा बाद में उन पर आचरण करे।

पवित्रता की रक्षा, देवत्व की प्रतिष्ठा, निष्ठा-भावना सब अच्छी बातें हैं पर यदि उन्हें विवेक की परिधि से परे और पूर्वाग्रह की स्थिति में पहुँचा दिया जाय तो उससे अनेक विकृतियाँ सामने आ सकती हैं।

स्वामी विवेकानन्द का कहना है कि जो यह कहते हैं कि विवेचक बुद्धि की तराजू पर धर्म को तौलना मूर्खता है, वे निश्चय अदूरदर्शी हैं। मान लीजिए, एक ईसाई किसी मुसलमान से इस प्रकार झगड़ रहा है "मेरा धर्म प्रत्यक्ष ईश्वर ने ईसा से कहा है" मुसलमान कहता है "मेरा धर्म ईश्वर-प्रणीत है।" इस पर ईसाई जोर देकर बोला "तेरी धर्म पुस्तक में बहुत-सी झूठी बातें लिखी हैं, तेरा धर्म कहता है कि हर एक मनुष्य को सीधे से नहीं तो जबरदस्ती मुसलमान बनाओ। यदि ऐसा करने में किसी की हत्या भी करनी पड़े तो पाप नहीं है। मुहम्मद के धर्म प्रचारक को स्वर्ग मिलेगा।" मुसलमान ने कहा—"मेरे धर्म में जो लिखा है सो सब ठीक है।" ईसाई ने उत्तर दिया—"ऐसी बातें मेरी धर्म पुस्तक में नहीं लिखी हैं, इससे वे झूठी हैं" मुसलमान झल्लाकर बोला—"तेरी पुस्तक से मुझे क्या प्रयोजन है" काफिरों को मार डालने की आज्ञा को झूठ कहने का तुझे क्या अधिकार है ? तेरा कथन है कि ईसाई का लिखा सच है, मैं कहता हूँ मुहम्मद जो कुछ कह गये हैं, वही ठीक है" इस प्रकार के प्रश्नोत्तरों से दोनों को लाभ नहीं पहुँचता। एक-दूसरे की धर्म पुस्तक को बुरी दृष्टि से देखते हैं, इससे वे निर्णय नहीं कर सकते कि किस पुस्तक के नीतितत्व श्रेष्ठ हैं। यदि विवेचक बुद्धि को दोनों कामों में लावें तो सत्य वस्तु का निर्णय करना कठिन न होगा। किसी धर्म पुस्तक पर विश्वास न होने पर भी उसमें लिखी हुई किसी खास बात को यदि विवेचक बुद्धि स्वीकार कर ले तो तुरन्त समाधान हो जाता है। हम जिसे विश्वास कहते हैं वह भी विवेचक बुद्धि से ही उत्पन्न हुआ है। परन्तु यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि दो महात्माओं के कहे हुए जुदे-जुदे या परस्पर विरुद्ध विधानों की परीक्षा करने की शक्ति हमारी विवचेक बुद्धि में है या नहीं ? यदि धर्म शास्त्र इन्द्रियातीत हो और उसकी मीमांसा करना हमारी शक्ति के बाहर का काम हो तो समझ लेना चाहिए कि पागलों की व्यर्थ बक-बक या झूठी किस्सा-कहानियों की पुस्तकों से धर्मशास्त्र का अधिक महत्व नहीं है। धर्म मानवीय अन्तःकरण के विकास का ही फल है। अन्तःकरण के विकास के साथ-साथ धर्म मार्ग चल निकले हैं। धर्म का अस्तित्व पुस्तकों पर नहीं किन्तु मानवीय अन्तःकरण पर अवलम्बित है। पुस्तकें तो मनुष्यों की मनोवृत्तियों के दृश्यस्वरूप मात्र हैं। पुस्तकों से मनुष्यों के अन्तःकरण नहीं बने हैं किन्तु मनुष्यों के अन्तःकरणों से पुस्तकों का आविर्भाव हुआ है, मानवी अन्तःकरण का विकास 'कारण' और ग्रन्थ रचना उसका 'कार्य' है। विवेचक बुद्धि भी उसी विकास का 'कार्य' है, 'कारण' नहीं। विवेचक बुद्धि की कसौटी पर रखकर यदि हम कोई कार्य करेंगे तो उसमें धोखा नहीं उठाना पड़ेगा। धर्म को, मान्यताओं, प्रथा-परम्पराओं को भी उस कसौटी पर परख लें तो उसमें हमारी हानि ही क्या है ?

हिन्दू-समाज की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा ऊँच-नीच

संसार के सभी देशों के निवासियों में किसी न किसी प्रकार का श्रेणी-विभाजन पाया जाता है। यद्यपि आधुनिक युग के योरोपियन और अमरीकन जाति-प्रथा जैसी किसी चीज से मुक्त समझे जाते हैं, पर वहाँ के देशों में भी वंश, आर्थिक स्थिति, रंग-भेद आदि के कारण अनेक श्रेणियाँ पाई जाती हैं, जिनमें परस्पर प्रायः वैमनस्य बना रहता है। इंग्लैण्ड में अभी तक लार्ड (सरदार) और कॉमन (सामान्य) के नाम से दो श्रेणियाँ पाई जाती थीं, तीसरी श्रेणी मजदूर भी अब स्पष्टतः अलग गिनी जाने लगी है। अमरीका में गोरे, काले और लाल (रेड इन्डियंस) स्पष्टतः ऐसे ही एक-दूसरे से पृथक् हैं जैसे हमारे यहाँ हिन्दू, मुसलमान और ईसाई परस्पर एक-दूसरे को भिन्न मानते हैं। इसी प्रकार संसार के तमाम देशों में मनुष्य तरह-तरह के सम्प्रदायों, फिर्कों, समुदायों, दलों, वर्गों में बँटे हुये हैं, वे प्रायः आपस में लड़ते-झगड़ते भी रहते हैं और एक-दूसरे से किसी प्रकार का सामाजिक सम्बन्ध नहीं रखते।

पर वर्तमान समय में हिन्दुओं में जाति-पाँति के रूप में जो श्रेणी विभाजन पाया जाता है, वह इन सबसे अनौखा है। वह ऐसा विचित्र है कि उसका स्वरूप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विदेशियों की समझ में आ सकना कठिन होता है। विदेशों में जो श्रेणियाँ या जातियाँ बनती हैं, उसका कारण उनकी वर्तमान परिस्थितियाँ होती हैं। धन-सम्पत्ति, विद्या, राजनैतिक अधिकारों के घटने-बढ़ने के साथ उनकी 'जाति' भी बदलती रहती है। पर भारतवर्ष में जाति ने इस समय ऐसा स्थायी रूप धारण कर लिया है कि एक ब्राह्मण मूर्ख, दुराचारी, निर्धन होने पर भी एक सद्गुणी वैश्य व कायस्थ से उच्च समझा जाता है। वह ब्राह्मण भी ऐसा ही मानता है, दूसरे अन्य जातीय व्यक्ति भी ऐसा ही समझते हैं और वैश्य या कायस्थ भी इससे इन्कार नहीं करता। वैश्य और कायस्थ उस ब्राह्मण को अपने से ऊँची जाति का समझकर उसके हाथ का भोजन कर लेंगे, उसके पैर छू लेंगे, पर वह ब्राह्मण उनका छुआ हुआ भोजन नहीं करेगा और उनको अपने से छोटी जाति का समझेगा। चाहे ऐसा ब्राह्मण किसी वैश्य सेठ का रसोइया या चौकीदार हो या किसी कायस्थ तहसीलदार अथवा डिप्टी मजिस्ट्रेट का चपरासी हो, पर तब भी उसका मनोभाव ऐसा ही रहेगा और वह अपने आपको उनसे 'ऊँचा' समझेगा। इस प्रकार ऐसी परस्पर विरोधी स्थिति दिखाई पड़ती है, जिसे विदेशी लोग किसी प्रकार नहीं समझ पाते, यद्यपि हमारे लिये वह बिलकुल स्वाभाविक मालूम पड़ती है। कुछ नव-शिक्षित लोगों में और शहरी वातावरण में रहने वाले अनेक साधारण लोगों में भी ये बातें बदलने लग गई हैं, कम पड़ गई हैं, पर भारतवर्ष के लाखों देहातों में और प्राचीन आचार-विचारों का पालन करने वाले लोगों के लिये यही स्वाभाविक और सनातन मर्यादा है। इन छोटी-बड़ी जातियों का जाल हिन्दू-समाज में किस प्रकार फैला हुआ है ? इसका वर्णन करते हुये एक विद्वान् ने लिखा है—

"भारतवर्ष में सबसे ऊँची जाति ब्राह्मण है। ब्राह्मणों में भी गिनकर बतलाये नहीं जा सकते। इसलिये यह कह सकना असम्भव है कि ब्राह्मण की कौन श्रेणी सबसे ऊँची है। विभिन्न प्रदेशों की अनेक ब्राह्मण श्रेणियाँ सर्वोच्चता का दावा करती हैं। हिन्दुओं की सबसे नीची जाति कौन है, यह भी कहना कठिन है। इन उभय कोटियों के बीच मध्यावर्ती स्तरों (तहों) को गिनना सहज नहीं है।

"ब्राह्मणादि ऊँची जातियाँ जिन जातियों का छुआ जल पी लेती हैं वे "जल-चल" अर्थात् अच्छी जातियाँ हैं, जिनका छुआ घृत पक्व खाद्य और मिष्ठान ब्राह्मण लोग ग्रहण कर सकते हैं और भी अच्छी जातियाँ हैं। साधारणतः ब्राह्मण लोग अपनी श्रेणी के बाहर के आदमी के हाथ का भात-दाल और रोटी आदि (कच्ची रसोई) नहीं खाते।

"दक्षिण भारत में स्पर्श-विचार और भी प्रबल है। यहाँ जिनके स्पर्श से ब्राह्मण लोग अपवित्र नहीं होते और जिनका जल ग्रहणीय होता है, वे ही अच्छी जातियाँ हैं, जिनका छुआ हुआ जल ब्राह्मण-स्त्रियाँ ग्रहण कर सकती हैं, वे और भी अच्छी जातियाँ हैं और जिनके स्पर्श एवं जल से ब्राह्मण विधवाओं को स्नान करके पवित्र होने की जरूरत नहीं पड़ती, वे लोग इनसे भी अच्छी जाति के होते हैं।"

ऊपर हिन्दुओं को विभिन्न जातियों में छोटे-बड़े समझे जाने का एक मोटा हिसाब बतलया गया। पर यह तारतम्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता। जिन जातियों का छुआ जल ग्रहण योग्य नहीं होता, वे सब नीच मानी जाती हैं। जिनके छूने से मिट्टी के बर्तन भी अपवित्र हो जाते हैं, वे और भी नीच हैं। उनसे नीच वे हैं, जिनके छूने से धातु के बर्तन भी अपवित्र मान लिये जाते हैं। इनसे भी नीच जातियों की गणना होती है, जिनके मन्दिर के चौक में घुसने से मन्दिर अपवित्र हो जाता है। दक्षिण भारत में कुछ ऐसी भी जातियाँ मौजूद हैं, जिनके गाँव में प्रवेश करने से समूचा गाँव अपवित्र हो जाता है।

छोटी-बड़ी जाति की इन सब कसौटियों में मार्के की बात यह है कि इनका सम्बन्ध सिर्फ किसी जाति में जन्म लेने से है। वह व्यक्ति सद्गुणी है या दुर्गुणी, विद्वान है या मूर्ख, धनी है या निर्धन इन सब बातों का कोई विचार नहीं किया जाता है। एक ब्राह्मण जातीय व्यक्ति अपने शूद्र जातीय अफसर का जूता साफ करने में तनिक भी संकोच न करेगा, पर अपने घर में या जातीय पंचायतों में वह अपने को सबसे ऊँची जाति का, अतएव पूज्यनीय ही बतलायेगा।

यह ठीक है कि अब अनेक स्थानों से छुआ-छूत सम्बन्धी विचार ढीले पड़ गये हैं। बहुसंख्यक ऊँची जाति वाले अब इतनी अधिक खोजबीन नहीं करते और जो लोग नीच कही जाने वाली जातियों में जन्मे हैं, वे भी अपने को एकदम हीन और पतित मानने को तैयार नहीं होते। इसके साथ ही एक बात यह भी देखने में आती है कि जहाँ ऊँची जाति वालों में संकीर्णता का भाव कम हो रहा है, नीची जाति वाले अपने से नीची जातियों को दबाकर रखने का ही प्रयास करते हैं।

जाति-भेद का उद्गम—इस महाजटिल और दुर्भेद्य ऊँच-नीच का मूल कहाँ है, जब इसकी खोज करते हैं तो अति प्राचीन साहित्य में केवल चार वर्णों का ही उल्लेख मिलता है। वर्तमान समय के विद्वान इसका सबसे बड़ा प्रमाण 'ऋग्वेद' के इस मन्त्र को ही समझते हैं—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत।।

इस मन्त्र का सीधा-सा आशय तो यह है कि "समाजरूपी शरीर में ब्राह्मण मुख स्थानीय हैं, क्षत्रिय भुजाओं के समान हैं, वैश्य मध्य के धड़ की तरह हैं और शूद्र पैरों का उद्देश्य पूरा करते हैं।" पर बाद में एक का दस अर्थ करने को ही विद्वता का लक्षण मानने वाले 'पण्डितों' ने यह व्याख्या की कि ब्राह्मण लोग भगवान के मुख से निकले हैं, क्षत्रिय भुजाओं से उत्पन्न हुये हैं, वैश्यों की उत्पत्ति पेट से हुई है और शूद्र पैरों की पैदायश हैं। इस प्रकार व्याख्या करने वालों का खयाल शायद यह है कि जिस प्रकार मानव देह में मस्तक का भाग सबसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ज्यादा महत्व का माना जाता है और पैरों को भले-बुरे सब तरह के स्थानों के स्पर्श में आना पड़ता है, उसी प्रकार संसार में ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ और शूद्र उनसे बहुत निकृष्ट हैं। पर ये सब बातें बाल बुद्धि की परिचायक हैं। भगवान किसी को बाजीगर की तरह अपने मुँह और पेट से निकालते नहीं फिरते। दर्शन-शास्त्र में तो मनुष्य का परमात्मा से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध भी स्वीकार नहीं किया है। वे तो इस समस्त सांसारिक प्रपंच की उत्पत्ति प्रकृति से ही बतलाते हैं। आत्मा को अवश्य परमात्मा का अंश माना जाता है पर उसको सूक्ष्म और स्थूल शरीर प्रकृति ही देती है। इसलिये उपर्युक्त वेद-मन्त्र समाज के कार्य-विभाजन का ही परिचायक है, उसे हजारों ज़ातियों में ऊँच-नीच का आधार मानना अज्ञानता का चिन्ह है।

जाति-भेद का कारण—हिन्दुओं में आजकल तो अनगिनती जातियाँ और उपजातियाँ पाई जाती हैं। वे आरम्भ में विभिन्न वर्णों में पारस्परिक विवाह सम्बन्ध के फलस्वरूप पैदा हुई थीं। फिर जब इन नई पैदा हुई जातियों में भी पारस्परिक सम्बन्ध होने लगे तो और अनेक जातियों का आविर्भाव होने लगा। दूसरा कारण यह हुआ कि अनेक वर्णों के व्यक्तियों ने अपने संस्कारों, ज़ातीय नियमों का त्याग कर दिया, जिससे उनका बहिष्कार कर दिया गया और उनकी एक भिन्न जाति तैयार हो गई। तीसरा कारण यह हुआ कि बाहर से जो शक, हूण आदि कितनी ही विदेशी जातियाँ आईं वे यहाँ बसकर एक नई जाति के रूप में परिणति हो गईं, अथवा यहाँ के लोगों से सम्बन्ध करके उन्होंने अन्य प्रकार की जातियों को जन्म दिया। इस प्रकार चार से सोलह और सोलह से चौसठ जातियाँ बनते-बनते उनकी संख्या इतनी बढ़ गई कि उन सबकी गिनती कर सकना कठिन हो गया। पूर्व समय से अँग्रेज अधिकारियों ने जन-गणना की जो रिपोर्ट तैयार की थी तीन हजार से ऊपर जातियों की संख्या थी। 'भारतीय विश्वकोश' के 'जाति-विभाग' वाले अंश के लेखक सर आथेन्स्टेलवेन्स ने कई उपजातियों को मिलाकर ५०० जातियों की नामावली और संख्या दी है।

यह संख्या निरन्तर किस तरह बढ़ती जाती है, इसका पता इससे चलता है कि वशिष्ठ धर्म-शास्त्र में दस वर्णसंकर जातियों के नाम दिये हैं और गौतम में बारह के, मनुस्मृति में लगभग ६० जातियों के नाम हैं और ब्रह्मवैवर्त पुराण में सौ से अधिक जातियों की नामावली देखने में आती हैं। हमारा अनुमान है कि पिछले एक हजार वर्ष के विदेशी शासन में ही जातियों की संख्या पूर्वापेक्षा दुगुनी हो गई है।

जाति-भेद की हानियाँ—भारत में जाति-भेद का रूप जिस प्रकार चिरस्थायी और समाज के विभिन्न समुदायों में पृथकत्व की भावना को पैदा करने वाला बन गया है, उसके कारण मुख्यतया हिन्दू-समाज में निर्बलता पैदा हुई है और आज उसकी संख्या संसार की सब जातियों और धर्मों से कम रह गई है। पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्षों में जहाँ ईसाई दस गुने, मुसलमान चौगुने हो गये हैं, वहाँ हिन्दू शायद ड्योढ़े या दुगुने ही बढ़ सके हैं। जब तक इस जाति-प्रथा में जड़ता का भाव नहीं आया था, तब तक विदेशों से आने वाले विभिन्न जातियों के व्यक्ति सहज में ही हिन्दू जाति में मिलकर उसकी संख्या और शक्ति को बढ़ाते रहते थे। कनिष्क और हुविष्क यद्यपि विदेशी (तुर्क) थे पर उन्होंने भारतीय समाज के अंग बनकर दूर-दूर देशों में हिन्दू-संस्कृति का प्रसार किया। राजपूतों को हिन्दू धर्म का रक्षक माना गया है और देश के अधिकांश मन्दिर, मठ, तीर्थ उन्हीं की सहायता से बनाये गये हैं पर वे भी इन दो हजार वर्षों के भीतर ही विदेश से आये थे और ब्राह्मणों ने आबू पहाड़ पर यज्ञ करके उनको हिन्दू धर्म में दीक्षित किया था। इन्हीं लोगों ने बौद्ध-धर्म वालों को दबा कर पुनः हिन्दू धर्म को आगे बढ़ाया और शक्तिशाली बनाया। पर एक वर्तमान युग में हिन्दुओं की संकीर्णता के कारण सिख जाति का एक बड़ा भाग, जिसकी स्थापना गुरुनानक ने हिन्दू-धर्म की रक्षार्थ ही की थी, हिन्दू धर्म से नाता तोड़ चुका है या तोड़ रहा है। इसी प्रकार पिछले दो-तीन सौ वर्षों में मलकाने, जोगी, मेव, संयोगी, घोसी, किंगरिया, लावाना आदि अनेक जातियाँ हिन्दुओं द्वारा बहिष्कृत होकर मुसलमानों से मिल गईं। यदि हिन्दू इस सम्बन्ध में बुद्धिमानी से काम लेते और पिछड़ी जातियों के साथ उदारता का बर्ताव करते तो आज न तो भारतीय मुसलमानों की संख्या इतनी बढ़ सकती और न हिन्दू घट जाते। अनेक बार तो इस प्रकार की जातियों के अनुनय-विनय करने पर भी उनको जबर्दस्ती हिन्दू-जाति से निकाला गया है। ऐसे लोग धीरे-धीरे कट्टर बन जाते हैं और अपना अपमान करने वालों के साथ पूर्ण शत्रुता का व्यवहार करने लगते हैं।

जाति-भेद के कारण देश-रक्षा में बड़ी बाधा पड़ी है और अधिकांश देशवासी अपनी मातृभूमि की रक्षा करने में कर्त्तव्यविमुख सिद्ध हुए हैं। जब हम पढ़ते हैं कि अमुक पठान आक्रमणकारी ने १८ सवार लेकर बिहार के एक बड़े भाग पर अधिकार कर लिया तो उसका कारण यही था कि वहाँ युद्ध करने वाले क्षत्रियों का अभाव था और और अन्य जाति वाले सोचते थे कि हमारा युद्ध से कोई सम्बन्ध नहीं।

जाति-भेद की कट्टरता के कारण हिन्दू लोगों का विदेश जाना रुक गया और इसलिए संसार में होने वाले नये-नये परिवर्तनों से अपरिचित रहकर कूपमंडूक बन गये। विदेश जाने पर वहाँ के लोगों से खान-पान का कुछ सम्पर्क होता ही था और अधिक समय निवास करने पर वहाँ की स्त्रियों से वैवाहिक सम्बन्ध भी हो जाता था। पर जाति-भेद की कट्टरता के कारण फिर वहाँ से वापस आकर जाति के अंग बने रहना या अपने स्त्री-बच्चों को साथ लाकर हिन्दू-समाज की संख्या बढ़ा सकना सम्भव न था। इसका नतीजा यह होता था कि यदि हिन्दू बाहर जाते भी थे तो फिर हमारे लिये विदेशी और विधर्मी बनकर पराये ही सिद्ध होते थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाति-भेद की वृद्धि से सबसे बड़ी हानि वैवाहिक व्यवस्था में हुई है, इसके कारण अधिकांश जातियों का क्षेत्र बहुत संकीर्ण हो जाता है, जिससे उनको वर-कन्या का चुनाव करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। अनेक सुयोग्य कन्याएँ अपनी अपेक्षा अयोग्य वरों को ब्याहनी पड़ती हैं, क्योंकि उस विरादरी में अधिक योग्य लड़के मिल ही नहीं सकते। इसी प्रकार कितनी ही परिगणित, शूद्र जातियों के लड़के सरकारी सहायता से उच्च परीक्षाएँ पास करके अच्छे महकमों में अफसर बन जाते हैं पर उनको विवश होकर अशिक्षित और सभ्यता के नियमों से अपरिचित निम्नस्तर की युवतियों के साथ ही दाम्पत्य जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

दहेज की कुरीति का कारण भी अधिकांश में यही है कि जिन उपजातियों में विवाह योग्य लड़कों की कमी रहती है, उनमें लोगों को अपनी कन्याओं के उपयुक्त वर निश्चय करने में बड़ी कठिनाई होती है और वे प्रतिस्पर्धा में वर की कीमत बढ़ाते जाते हैं। यदि उनको अपने वर्ण की सभी उपजातियों में वर ढूँढ़ने की स्वाधीनता हो तो वे सहज में उपयुक्त वर पा सकते हैं।

इस जाति-भेद का परिणाम है कि अनेक सुयोग्य व्यक्तियों को समाज में उचित सम्मान प्राप्त नहीं हो पाता, और जिन लोगों में आगे बढ़ने की प्रतिभा होती है, उनको प्रोत्साहन नहीं मिलता। हिन्दू जाति में गत कुछ सौ वर्षों में कबीर, रैदास, दादू, घना, सेन, तुकाराम, नामदेव अनेक भक्त और सन्त हुये, जो चरित्र और आध्यात्मिकता की दृष्टि से तत्कालीन बड़े से बड़े ब्राह्मणों से श्रेष्ठ थे। पर इसी जातीय संकीर्णता के कारण उनको हिन्दुओं की उच्च जातियों में जैसा चाहिए वैसा सम्मान प्राप्त न हो सका।

हिन्दू-धर्म के परवर्ती धर्म-ग्रन्थों में समुद्र-यात्रा को निषिद्ध बता दिया गया। इससे यहाँ के व्यक्तियों की योग्यता और इच्छा होने पर भी विदेश जाकर उन्नति करने का मार्ग बन्द हो गया। प्राचीनकाल के इतिहास का कथन है कि हिन्दुओं ने समस्त संसार में जाकर अपनी सभ्यता तथा संस्कृति का प्रसार किया था। बीच के समय में भी उन्होंने सुमात्रा, जावा, श्याम, कम्बोडिया आदि में बड़े-बड़े उपनिवेश स्थापित किये, जिनके चिन्ह मन्दिरों तथा ग्रन्थों के रूप में अब भी वहाँ मौजूद हैं, पर वर्तमान संकीर्ण जातीय नियमों के कारण विदेशों का मार्ग हिन्दुओं के लिये बिलकुल रुक गया। इतना ही नहीं वरन् फिजी, ट्रिनीडाड, मारीशश में जो भारतीय संयोगवश पहुँच गये थे वे भी जाति-पाँति के नियमों का पालन न कर सकने के कारण यहाँ से देश वापस आ सकने में असमर्थ हो गये। अब ऐसा समय आ गया है कि जनसंख्या की अधिकता से भारत में जमीन और रोजगार की कमी स्पष्टतः अनुभव की जा रही है, पर किसी के मन में यह बात पैदा नहीं होती कि विदेशों में उपनिवेश स्थापित करके भूमि का भार हल्का करें।

अब धीरे-धीरे यहाँ के युवक शिक्षा प्राप्त करने विदेश जाने लगे हैं और अपनी योग्यता से इसी देश में नहीं विदेशों में भी उद्योग-धन्धे में लगाकर यश और धन दोनों प्राप्त कर रहे हैं, पर जो लोग जाति-पाँति के भय से अपनी चाहर-दिवारी में ही बन्द हो जाते हैं, वे उन्नति और प्रगति से वंचित रहते हैं।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि वर्तमान समय में जाति-पाँत हिन्दू समाज के लिये अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हो रही है और उसके कारण उसमें अनेक दोषों की उत्पत्ति हो रही है। सामाजिक सुधार की जितनी योजनायें बनाई जा रही हैं, उन सबमें यह एक बड़े रोड़े की तरह बाधक होती है। पिछले वर्षों में हिन्दू-संगठन की बड़ी-बड़ी कोशिशें की गईं पर जाति-भेद के कारण उनमें कभी ठीक सफलता नहीं मिल सकी। इसके कारण हिन्दू-जाति के चरित्र का पतन हो रहा है और चरित्र के बिना किसी का प्रगति-मार्ग पर अग्रसर हो सकना सम्भव नहीं। समाज हितैषियों को इस समस्या पर सबसे पहले ध्यान देना चाहिए और साहसपूर्वक इसके समय विरोधी हानिकारक बन्धनों को तोड़ने का निश्चय करके आगे कदम बढ़ाना चाहिए।

ऊँच-नीच की मान्यता अवांछनीय और अन्यायमूलक

गाय, घोड़ा, बन्दर, मोर, कबूतर आदि पशु-पक्षियों की तरह मनुष्य भी एक जाति है। उनके रंग आकृति में प्रदेश और प्रकृति के कारण कुछ अन्तर भी हो सकता है, पर मूलतः वे एक ही वर्ग या जाति के गिने जाते रहेंगे। यदि भाषा, प्रदेश, आकृति-प्रकृति आदि के आधार पर उसका वर्गीकरण भी किया जाय तो भी उससे मूल जातीय एकता में कोई अन्तर नहीं आता। संसार भर के मनुष्य एक ही जाति के कहलाते रहेंगे और उनका स्तर तथा अधिकार समान स्तर का ही प्रतिपादन होता रहेगा। मनुष्य भगवान का पुत्र है। पिता को अपने हर बच्चे से समान प्यार होता है और वे सभी बच्चे एक वंश वर्ग के माने जाते हैं। परमपिता परमात्मा ने मानव जाति को अपनी श्रेष्ठ सन्तान के रूप में सृजा है और उसे समान स्तर एवं समान अधिकार का बनाकर संसार में भेजा है। सभी परस्पर भाई एक ही परिवार एवं अंश-वंश के हैं।

प्राचीनकाल में कार्य और व्यवसाय के विभाजन की दृष्टि से समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्गों में बाँटा गया था। वह विभाजन स्वाभाविक है। अभी भी बुद्धिजीवी, संरक्षक, उत्पादक एवं श्रमिक इन चार वर्गों में संसार के समस्त समाज बँटे हुए हैं। इस विभाजन से सामाजिक सुविधा रहती है और वंश परम्परा से चली आने वाली कुशलता में अक्षुण्णता एवं अभिवृद्धि होती चलती है। योग्यता, प्रकृति, परिस्थिति एवं अभिरुचि के अनुसार इस कार्य विभाजन में किसी को कोई आपत्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

नहीं हो सकती, पर कठिनाई तब उत्पन्न होती है, जब वंश या कार्य के कारण किसी वर्ग को ऊँच और किसी को नीच बताया जाने लगे। अध्यापक अपने को ऊँचा कहे और सैनिक नीचा माना जाय। इतना ही नहीं इस विभेद के कारण कोई किसी को छूने तथा हाथ से छुआ पानी पीने, रोटी खाने तक से इन्कार करने लगे, तब आश्चर्य होता है और कठिनाई उत्पन्न होती है।

दुष्टता भरे दुष्कर्म करने वाले को नीच कहा जाय और उनके सामाजिक बहिष्कार का क्रम बनाया जाय तो बात समझ में आती है। ज्ञान, सेवा, सद्गुण, सदाचरण के आधार पर किसी को बड़ा या ऊँचा माना जाय और सम्मानित किया जाय, इसके पीछे भी कारण हैं। सम्मान और असम्मान की स्थिति किसी को अपनी चारित्रिक उत्कृष्टता-निकृष्टता के आधार पर मिले तो इसमें औचित्य माना जायेगा, पर गुण, कर्म, स्वभाव की समानता होते हुए भी केवल वंश के आधार पर कुछ लोग ऊँचे समझे जायें और कुछ को नीच कहा जाय, यह बात किसी तर्क या कारण की परख पर उचित नहीं उतरती। कोई वंश ऊँचा क्यों हो सकता है ? कोई वंश नीचा क्यों कहलाये ? इसका न कोई कारण समझ में आता है और न इस प्रतिपादन का कोई औचित्य ही सिद्ध होता है।

किसी वंश में किसी समय कुछ श्रेष्ठ पुरुष हुए थे, इसलिए उस वंश के लोगों को अभी उन श्रेष्ठ पुरुषों जैसा सम्मान मिले, यह दावा बेबुनियाद है। ब्राह्मण वंश में वशिष्ठ, अत्रि, याज्ञवल्क्य, भारद्वाज आदि ऋषि-मुनि, त्यागी तपस्वी हुए हैं तो रावण, कुम्भकरण, मरीच, खरदूषण जैसे दुष्ट भी हुए हैं। यदि उत्तराधिकार का दावा किया जाय तो उसमें श्रेष्ठता ही नहीं, निकृष्टता भी हिस्से में आयेगी। तब सम्मान ही नहीं, तिरस्कार का भाजन भी बनना पड़ेगा। किसी भी वंश में न तो सभी लोग अच्छे हुए हैं, न बुरे। सबको उनकी उत्कृष्टता, निकृष्टता के अनुरूप मान तिरस्कार मिलता रहा है। उत्कृष्टता किसी वंश की वपौती नहीं। हर वर्ग में श्रेष्ठ व्यक्ति होते रहे हैं। इसी प्रकार कोई वर्ग ऐसा नहीं जिसमें निकृष्ट चरित्र के पूर्वपुरुषों की एक लम्बी शृंखला न मिल सके। फिर उनके वंशजों का दावा केवल उत्कृष्टता पर ही हो और वे उसी आधार पर अपने को ऊँचा घोषित करें और ऊँचे लोगों को मिलने वाले सम्मान को प्राप्त करना चाहें तो यह उनकी अनधिकार चेष्टा होगी। इसी प्रकार किसी वंश के किन्हीं पूर्व पुरुषों ने कुछ अनुपयुक्त कार्य किये हों और उस कारण उन्हें तिरस्कार मिला हो तो उन दोषों से रहित वंशजों को इसलिए तिरस्कृत किया जाना भी अन्याय युक्त है।

जाति-पाँति की बात समझ में आ सकती है पर ऊँच-नीच का विभेद सर्वथा अवांछनीय है। कोई ईमानदार और समझदार व्यक्ति इसका समर्थन नहीं कर सकता है। भारतीय धर्मशास्त्र इसी मान्यता का सर्वथा विरोधी है। यहाँ अपने श्रेष्ठ कर्मों के कारण शूद्र-वंश के अगणित व्यक्ति ब्राह्मण पद पाते रहे हैं। इन प्रमाणों से भारतीय इतिहास पुराणों का पन्ना-पन्ना भरा पड़ा है। मध्यकाल में भी रैदास, कबीर, नानक, दादू, नामदेव, विवेकानन्द आदि अनेक भक्त ब्राह्मणेत्तर जातियों में और कितने ही तो शूद्र वर्ण में पैदा हुए पर उनकी गरिमा किसी ब्राह्मण से कम नहीं आँकी गई, गाँधी, बुद्ध, महावीर भी तो ब्राह्मण नहीं थे। राम, कृष्ण, क्षत्रिय थे पर उनकी पूजा ब्राह्मण भी करते हैं। श्रेष्ठता को जातीयता की सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता।

आज अपने देश की विचित्र दशा है। हिन्दू समाज की एक तिहाई जनसंख्या अछूत, अस्पर्श कहलाती है। उन्हें सवर्ण हिन्दुओं के समान नागरिक अधिकार अभी भी नहीं मिले हैं। संविधान ने अस्पृश्यता को अवांछनीय और कानून ने उसे दण्डनीय माना है। जनमत का विवेक ऊँच-नीच की मान्यता को अनर्गल घोषित कर चुका है। पर अभी भी हमारे मस्तिष्क और व्यवहार में वे ही मान्यतायें जमी बैठी हैं। यह विषय इतना गहरा उतर गया है कि एक ही जाति के लोग अपनी उपजातियों को नीच-ऊँच मानते हैं। ब्राह्मणों की एक उपजाति दूसरी को अपने से नीचा मानती है। एक ही उपजाति के लोग हम इतने विश्वा के हैं—अमुक इतने विश्वा का है, ऐसी मूढ़ मान्यता अपनाकर ऊँच-नीच का ढोंग रचते हैं और विवाह-शादियों में तो इसी आधार पर दहेज का बारा-न्यारा करते हैं। अछूत कहे जाने वाले वर्ग परस्पर इसी ऊँच-नीच की मान्यता को चरितार्थ करते हैं। चमार, धोबी, मोची, भंगी, धानुक आदि अछूत समझे जाने वाले लोग परस्पर भी ऊँच-नीच मानते हैं और आपस में भी बड़प्पन छुटाई की बात कहकर अपने को बड़ा दूसरे को छोटा मानते हैं और वैसा ही व्यवहार करते हैं, जैसा सवर्ण उनके साथ करते हैं।

बहुत सोचने पर भी इस ऊँच-नीच की मान्यता का कोई औचित्य समझ में नहीं आता। शास्त्रों और पूर्व पुरुषों की दुहाई देना व्यर्थ है। अन्धकार युग में किसी ने कुछ श्लोक गढ़कर किसी ग्रन्थ में चपेक दिये हों तो बात दूसरी है, पर महान् हिन्दू-धर्म इतना अनुदार और संकीर्ण हो ही नहीं सकता कि वह मनुष्य-मनुष्य के बीच पड़ने वाली और घृणा-द्वेष बढ़ाकर सामाजिक एकता को छिन्न-भिन्न करने वाली खाई खोदें। हमने बारकी से हिन्दू-धर्म का अध्ययन किया है और उसमें कहीं इस बात की गन्ध भी नहीं पाई है कि केवल वंश परम्परा के कारण किसी को नीच, किसी को ऊँचा माना जाय। फिर यह मान्यता कहाँ से चल पड़ी ? लगता है विधर्मियों ने भारतीय जन-जीवन को नष्ट-भ्रष्ट, अस्त-व्यस्त और विशृंखल करने के लिये यह षड्यन्त्र रचा होगा और अपनी बन्दूक उस समय के पुरोहितों के कन्धों पर रखकर चलाई होगी।

वर्णभेद की अनुदार और संकीर्ण विचारधारा की सम्पूर्ण विश्व में भर्त्सना हो रही है। अमेरिका के काले-गोरे रंग के आधार पर जो ऊँच-नीच की भावना जहाँ-तहाँ पाई

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाती है, उसको विश्व के लोकमत ने एक स्वर से धिक्कारा है। अफ्रीका की जो गोरी सरकारें इस नीति पर चल रही हैं, उनकी राष्ट्रसंघ तक ने भर्त्सना की. है और इस चाल से बाज आने की चेतावनी दी है। महात्मागाँधी ने इसके विरुद्ध दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह आन्दोलन चलाया था। जहाँ कहीं यह नीति बरती जाती है, जो भी इसका प्रतिपादन करता है, वह विवेकशील लोकमत के आगे अपराधी ठहरता है। न्याय और विवेक की कसौटी पर मनुष्य-मनुष्य के बीच ऊँच-नीच की मान्यता का समर्थन करना मानवता के प्रति एक अपराध ही माना जाता रहेगा।

इस मान्यता ने हिन्दू समाज की अपार क्षति की है। अछूत वर्ग इस तिरस्कृत सामाजिक स्थिति को स्वीकार न करेगा, यह निश्चित है जैसे-जैसे उनमें चेतना उभरेगी वे इस व्यवस्था के प्रति विद्रोह करेंगे। यह विद्रोह पिछले पचास वर्ष से दिन-दिन उग्र होता चला जा रहा है। मुसलमानी शासन में अगणित अछूत मुसलमान बने, ईसाई शासन में उनका झुकाव ईसाई धर्म की ओर हुआ। अब वे अपनी स्वतन्त्र चेतना के उभार पर बौद्ध और ईसाई इतनी तेजी से होते चले जाते हैं कि यह आशंका होती है कि कुछ दिन में एक भी अछूत वर्तमान मान्यताओं वाले हिन्दू-समाज में न रह सकेगा। मद्रास में यह विद्रोह शासन सत्ता तक अपने हाथ में ले चुका है। नागालैण्ड का इसाइस्तान उस भूल की प्रतिक्रिया है। इन दिनों जिस प्रकार के राजनैतिक षड्यन्त्र चल रहे हैं, उन्हें देखते हुए यह असम्भव नहीं कि अछूत सवर्ण हिन्दुओं से अलग होकर ईसाई, मुसलमानों में जा मिलें और बहुमत उनका हो जाय। ऐसी दशा में सवर्ण हिन्दुओं के सामाजिक अन्याय का कैसा कठोर प्रायश्चित्य करना पड़ेगा, उसका अनुमान लगा सकना किसी भी दूरदर्शी के लिए कठिन नहीं होना चाहिए।

वर्तमान ऊँच-नीच परक वंश जाति की मान्यतायें हिन्दू समाज की न्याय-निष्ठा पर भारी कलंक लगाती हैं। इससे विश्व के हर विचारशील वर्ग में हमारी अप्रतिष्ठा होती है। हमें संकीर्ण, अनुदार और अन्यायी कहा जाता है। सामाजिक दृष्टि से हम छिन्न-विच्छिन्न, विभाजित और अस्त-व्यस्त होते हैं। अन्याय का दोष लगाकर अपना ही एक तिहाई वर्ग अपने से अलग हो जाय, यह हमारे लिए हर दृष्टि से लज्जा की बात है। बात यहीं तक सीमित नहीं हमारी अनीति से क्षुब्ध होकर दूसरे धर्मों में गये हुए अपने लोग अगले दिनों प्रतिशोध की भावना से ओत-प्रोत होंगे और हमें अपनी करतूतों का दण्ड कराह-कराहकर भुगतना पड़ेगा।

अच्छा हो हम समय रहते चेतें। अपनी भूल सुधारें और मानव मात्र की एकता एवं समता के सार्वभौम न्याय सिद्धान्त को स्वीकार करें। ऊँच-नीच की मान्यताओं का जितना शीघ्र उन्मूलन हो उतना ही हमारा कल्याण है।

ऊँच-नीच का भेदभाव एक भयानक खतरा

रंग और वर्ण-भेद की समस्या ने आज योरोप तथा अफ्रीका के देशों में एक ज्वलन्त आन्तरिक क्रान्ति मचा रखी है। मनुष्य-मनुष्य के बीच ऊँच-नीच और छोटे-बड़े का भेदभाव लौकिक दृष्टि से किसी को अच्छा लगता हो तो उसकी बुद्धि और विवेकशीलता के लिए धन्यवाद ! पर आत्मा जो महत्ताय अपने परम पिता परमात्मा से लेकर इस धरती पर अवतीर्ण होती है, उनके रहते हुए कोई भी व्यक्ति आत्म-हीनता अनुभव करे भी तो क्यों ? जब परमात्मा ने सबको एक-सी शक्तियों का स्वामित्व प्रदान किया है तो मनुष्यों द्वारा उत्पन्न किया हुआ भेद-भाव कहाँ तक न्यायोचित ठहराया जा सकता है ?

पाश्चात्य देशों में यदि ऐसी कुछ असमानता है तो केवल इतनी ही कि ईसाई धर्म केवल दो भागों में बँटा हुआ है। मुसलमानों में शेख, सैयद, मुगल, पठान आदि उपजातियाँ विद्यमान हैं, वहाँ उनमें रोटी-बेटी का अनावश्यक प्रतिबन्ध नहीं है। संसार की अन्य जातियाँ भी सम्प्रदायों, फिरकों, समुदायों, दलों और वर्णों में विभक्त पाई जाती हैं, पर खान-पान, रीति-रिवाज, शादी-विवाह के उनमें उतने कठोर नियमोपनियम नहीं हैं। कुछ विभिन्नता होते हुए भी उनमें जातीय एकता का भाव बना ही रहता है।

जाति-पाँति के विभाजन की दृष्टि से भारत एक अनौखा देश है। ऊँच-नीच की चिन्गारी ने हिन्दू-समाज को जितना पतन की ओर ढकेला है वैसा उदाहरण विश्व की किसी भी जाति में मुश्किल से ढूँढ़ने को मिलेगा। विदेशों में जो श्रेणियाँ और जातियाँ बनती हैं, उसका कारण उनकी वर्तमान परिस्थितियाँ होती हैं। धन-सम्पत्ति, व्यवसाय, विद्या, राजनैतिक अधिकारों के घटाव-बढ़ाव के अनुसार उनकी जातियाँ भी बदलती रहती हैं किन्तु हिन्दू-समाज में ऊँच-नीच का भेद चक्र रुककर इस तरह जाम हो गया है कि विकास की सारी गति ही अवरुद्ध हो गयी है। किसी समय का संसार में सबसे बड़ी जनसंख्या और शक्ति वाला हिन्दू-धर्म आज अन्य धर्मों से जनसंख्या, संगठन तथा अन्य विशेषताओं की दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ एवं दीन-हीन हो गया है। उसके अनुयायिओं की संख्या निराशाजनक रह गई है और उनमें किसी प्रकार का मेल-मिलाप, संगठन या एकता का भाव मुश्किल से ही देखने को मिलेगा।

एक समय था जबकि पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण तक सम्पूर्ण राष्ट्र वैदिक धर्म से ओतप्रोत था। महाभारत काल तक हिन्दू जाति पूरी तरह संगठित रही और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्णों के रूप में अपने सामाजिक कर्तव्यों का पालन करती रही। यह व्यवस्था ऊँच-नीच की दृष्टि से नहीं थी। ऐसे अनेक ऐतिहासिक दृष्टान्त हैं, जिनमें ब्राह्मणों के सम्बन्ध, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों तक की कन्याओं से हुए हैं। ऋषि-पद प्राप्त करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

का गौरव समान रूप से सभी जातियों को मिला था। जातियों का विभाजन उस समय विशुद्ध रूप से सामाजिक सुव्यवस्था की दृष्टि से किया गया था और उसमें ऊँच-नीच का कहीं भेदभाव न था। ब्राह्मण और शूद्र तक सभी जातियाँ अपने आप को हिन्दू कहलाने में गौरव अनुभव किया करती थीं।

महाभारत का युग समाप्त हुआ। उसके बाद देश में एक प्रतिगामी विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें कुछ लोगों ने अधिनायकवाद और सामन्तशाही का खुलकर प्रचार किया। इस प्रकार के राजशाही दबाव के कारण जातियों में जो हिन्दुत्व की भावना थी वह शनैः-शनै शिथिल पड़ने लगी और लोगों को अपने धर्म से ही विश्वास उठने लगा। धर्म की आन्तरिक व्यवस्था का विभाजन आरम्भ हुआ और अनेक सम्प्रदाय-मतमतान्तर हिन्दू-धर्म से ही निकलकर उसी के विरोधी बन गये और उन्होंने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित कर लिया। हिन्दू-धर्म का यह विघटन निस्सन्देह बड़ा दुःखद और आत्मा को धक्का पहुँचाने वाला है, जिसका मुख्य कारण ऊँच-नीच का भेद रखना ही है।

इधर देश में विदेशी शासकों का आगमन हुआ। उन्होंने भरतीयों की इस आन्तरिक फूट का जमकर लाभ उठाया। सर्वप्रथम मुसलमानों ने अपना कूटनीतिक जाल फैलाया और कुछ को बलपूर्वक, कुछ को चालबाजी के साथ इस्लाम धर्म से परिवर्तित करना शुरू किया। इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि यहाँ कुल १५०० मुसलमान आये थे जो अन्ततः देश की आबादी के आधे के बराबर पहुँच गये।

मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं की आन्तरिक व्यवस्था में खुलकर दखल दिया और हमारे धर्म-ग्रन्थों में ऐसे विषैले सिद्धान्त घुसेड़वा दिये, जिससे ब्राह्मण, क्षत्रियों तथा वैश्यों में अनेकानेक उपजातियाँ निकल पड़ीं और वे आपस में एक-दूसरे से ऊँची-नीची समझी जाने लगीं। इस बीच अँग्रेजी शासकों ने मनुष्य के विकास का एक नया सिद्धान्त चलाकर उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम के सभी प्रान्तों की जातीय व्यवस्था को एक-दूसरे से काटकर रख दिया। दक्षिणी अपने आपको द्रविण कहकर अलग होने की चेष्टा करने लगे। आदिवासी अपने को भारत के मूल नागरिक और सवर्णों को विदेशी कहने लगे। इस प्रकार हिन्दू-समाज पहले अपनी मूल व्यवस्था से ही लड़खड़ाकर कमजोर पड़ गया। वह वर्ग अलग होकर भी अपने आपको हिन्दू धर्म का समान अंग मानते रहते तो भी एक बात थी पर इनमें कौन छोटा कौन, बड़ा का विवाद चल पड़ा। फलस्वरूप लोगों में 'हिन्दू' कहलाने का गौरव भी जाता रहा।

यहाँ तक तो जातीय असंगठन की मोटी चर्चा हुई। अब उसके आन्तरिक कलेवर को यदि देखें तो और भी भयावह स्थिति दिखाई देगी। ब्राह्मणों में चतुर्वेदी, त्रिवेदी, द्विवेदी, गौड़, सारस्वत, सरयूपारीण, कान्यकुब्ज, मिश्र, शुक्ल, प्रभाकर आदि असंख्यों उपजातियाँ, उसमें भी गोत्र, वंश, बीघे और विस्वे बनकर एक ब्राह्मण जाति कोई ६०० उपजातियों में विभक्त हो गई। सबमें खान-पान, ऊँच-नीच और विवाह-शादियों में बन्धन। ऐसी अवस्था में कोई ब्राह्मणों का एक संगठन बनाना चाहे तो उन्हें एक सूत्र में पिरोना कैसे सम्भव होगा ? यह लोग आपस में लड़ते-झगड़ते ही रहेंगे और पारस्परिक प्रतिस्पर्धा का शिकार ही बनते रहेंगे। इस सन्दर्भ में पारस्परिक व्यवहार रोटी बेटी आदि की कठिनाइयाँ उन्हें सहन करनी पड़ रही हैं।

सब जानते हैं कि लड़के-लड़कियों की शादी इस व्यवस्था के कारण कितनी खर्चीली पड़ती है। अनुरूप वर न मिलना, दहेज की लम्बी-चौड़ी माँगें, बेमेल विवाह, कन्या विक्रय आदि की असंख्य कठिनाइयाँ इस ऊँच-नीच की पारस्परिक असभ्यता की अव्यवस्था के कारण फैल गई हैं। हिन्दू समांज उनमें बुरी तरह से उलझ गया है। उन्नति की बात तो उनसे तब कही जाय, जब वे अपनी इस भीतरी समस्या से निवृत हो पावें।

यही बात क्षत्रियों और वैश्यों में भी पाई जाती है। राजपूतों में जहाँ जादव, भदौरिया, चौहान, चन्देल, राणावत, शेखावत, राठौर, परमार, सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी आदि अनेक उपजातियाँ हैं, वहाँ वैश्यों में अग्रवाल, माथुर, खण्डेलवाल, ओमर, दोसर आदि सैकड़ों उपजातियाँ हैं। इस सम्बन्ध में अँग्रेजों ने जन-गणना के आधार पर एक रिपोर्ट तैयार की थी। 'भारतीय विश्वकोष' के जाति विभाग वाले अंश के लेखक सर आथेन्स्टेलवेन्स ने ५०० जातियों की नामावली और उसकी कुल संख्या दी है, जबकि उपजातियों की संख्या ७००० से भी ऊपर बैठती है।

जाति-भेद की इस भावना ने आज हिन्दुओं में पारस्परिक प्यार की भावना को निकाल दिया है। विदेशों में दो सिख जिस आत्मीयता के साथ गले लिपटकर मिलते हैं, वहाँ यदि दो हिन्दू मिलें तो पहला शिष्टाचार यह होगा "आप किस जाति के हैं ?" ऐसी विलगाव की भावना ने हिन्दू-धर्म की सारी मान्यताओं, संस्कारों तथा आदर्शों पर पानी फेरकर रख दिया है और लोग खुशी-खुशी दूसरे धर्मों में परिवर्तित होते जा रहे हैं। इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि पिछले डेढ़-सौ वर्षों में ईसाइयों की संख्या दस गुनी बढ़ गई, मुसलमान चौगुने हो गये पर जनसंख्या स्वभावतः बढ़ती रहकर भी हिन्दु कुल ड्योढ़े ही हो सके।

महापुरुष और विचारवान् व्यक्ति किसी भी जाति, किसी भी वर्ग के हो सकते हैं। प्रतिभा किसी की पैतृक धरोहर नहीं। जहाँ भगवान् कृष्ण, राम, बुद्ध, विवेकानन्द, शंकराचार्य सवर्ण महापुरुष और सन्त महात्मा हुए हैं, वहाँ कबीर, रैदास, दादू, धना, सेन, तुकाराम तथा नामदेव आदि अनेक सन्त भक्त छोटी जातियों में से भी हुये हैं। ये जातियाँ परस्पर मिलकर प्रगति की ओर अग्रसर हों तो कोई कारण नहीं कि हर वर्ग से महापुरुष, प्रतिभावान और योग्य व्यक्ति न निकल आवें।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आज हमारे सामने मुख्य समस्या यह है कि हम अपना जातीय अस्तित्व किस प्रकार बचायें ? लोग दूसरे धर्मों में परिवर्तित होते जा रहे हैं तथा हमारा समाज अपंग की-सी स्थिति में पड़ा है, उसे ठीक करने का कौन-सा सही रास्ता हो सकता है ? ऐसी स्थिति में जातीय संगठन की ओर ध्यान आकर्षित होना स्वाभाविक है। संगठन की शक्ति से ही धर्म, समाज और राष्ट्र विकसित होते हैं और संसार में अपना अस्तित्व बनाए रखते हैं, हमारे लिए भी यही एक रास्ता है और उसका सबसे आवश्यक पहलू जातिभेद को रोकना है। समाज में जातियों-उपजातियों की, ऊँच-नीच की भावना को दूर कर सकें तो हम निश्चय ही प्रगति की ओर इस दौड़ में संसार की अन्य जातियों के समकक्ष में पहुँच सकते हैं।

जातिवाद का भयंकर अभिशाप

हिन्दुओं के बीच जातीय-भेदभाव और उसके आधार पर ऊँच-नीच की कुत्सित-भावना ने हिन्दू समाज और हिन्दू राष्ट्र को कितनी हानि पहुँचाई है ? इसके प्रमाणों से इतिहास तो भरा ही पड़ा है, साथ ही वर्तमान परिस्थितियाँ और हिन्दू-जाति की दुर्दशा स्वयं भी इस बात की साक्षी बनी हुई है।

आज की इस जातीय-जड़ता में फँसा हुआ क्या कोई भी हिन्दू सच्चे हृदय से कह सकता है कि वह अपने को एक ऐसे तेजस्वी समाज का अंग अनुभव करता है, जिसमें एक आत्मीयता हो और जिस पर अभिमान किया जा सके।

एक विशाल भूखण्ड, एक प्रकाण्ड जनसंख्या-विद्या, बुद्धि, साहस, शौर्य, धन और धर्म सब कुछ और अपेक्षाकृत संसार में सबसे अच्छा होने पर भी हमारे जातीय पिछड़ेपन का क्या कारण है ? कारण स्पष्ट है—जातीय-भेदभाव और ऊँच-नीच की भावना। लगभग तीन-चार हजार गणनीय ऊँची-नीच जातियों, उपजातियों और प्रजातियों में विभक्त और बात-बात पर एक-दूसरे के प्रति तिरस्कार एवं बहिष्कार करने का अभ्यस्त इस जर्जर समाज का सदा शंकालू सदस्य संसार के प्रगतिशील जातीय जीवन से पिछड़ा नहीं तो और क्या होगा ?

जिसके जन एक-दूसरे को पास बिठलाने, छूने, छुआ खाने-पीने, लोटा लेने व देने में घृणा करते हों, जिनके मन्दिर-मठ, घर-द्वार, पनघट घाट, तालाब, गाँव और यहाँ तक कि राज-मार्ग अपने सदस्यों के स्पर्श से छूत हो जाते हों, ऐसी जाति अपने को एक जीवन्त राष्ट्र कह सकने का साहस कर भी किस प्रकार सकती है ?

इस जातीय-पृथकता से सबसे पहली और सबसे बड़ी हानि यह हुई कि एक हिन्दू समाज अनेक में विभक्त हो गया। इन भिन्न-भिन्न समाजों ने अपने को एक अलग इकाई मानकर अपने दायरे बना लिये और उन्हीं में रहकर अपना अलग विकास करने में लग गये, जिससे आचार-विचार और आहार-विहार में विभिन्नता हो जाने से अनेक प्रकार के साम्प्रदायिक एवं मतमतान्तरों का आविर्भाव होने लगा और मूल हिन्दू धर्म की एकरूपता नष्ट हो गई। जितनी जातियाँ उतनी ही रीतियाँ, जितनी उपजातियाँ उतने ही रिवाज, जितनी प्रजातियाँ उतनी ही परम्परायें और जितनी अनुजातियाँ उतनी ही प्रथायें। इस प्रकार इन रीति-रिवाजों और प्रथा-परम्पराओं का इतना जमघट इकट्ठा हो गया है कि हिन्दू-धर्म के सच्चे स्वरूप को देख सकना दुरूह हो गया है, जिससे हिन्दू-धर्म की एकता अविश्वास की वस्तु बन गई है और इसके प्रति जनसाधारण में एकात्मकता का दर्द समाप्त हो गया।

जब तक हिन्दू-धर्म की एकरूपता, सरलता, सुन्दरता और सुबोधता बनी रही संसार में इसका प्रसार होता रहा। दूर-दूर देशों से जिज्ञासु इस धर्म की दीक्षा लेने और इसका अध्ययन करने के लिए आते रहते थे, जिससे भारत और भारतीय धर्म का सम्मान अपनी पराकाष्ठा तक पहुँचा हुआ था। संसार में इसके प्रति श्रद्धा थी, आस्था थी और विश्वास था, किन्तु इस जटिल जातिभेद ने उसकी विशालता को कुण्ठित कर दिया, जिससे इसके सार्वभौमिक सम्मान की अपरिमित हानि हुई। विश्व-व्यापक हिन्दू-धर्म संसार से मिटता-सिमटता भारत की सीमाओं में ही बन्दी बन गया है।

जातीय एकता न रहने और धार्मिक एकरूपता के नष्ट हो जाने से विजातियों एवं विधर्मियों ने सताना, मिटाना तथा पराधीन बनाना प्रारम्भ कर दिया। जिसके फलस्वरूप सैकड़ों वर्ष की राजनीतिक गुलामी और धार्मिक अत्याचारों ने हिन्दू-समाज को इतना दयनीय बना दिया कि आज स्वाधीनता की दशा में भी यह अन्य समाजों से दबा हुआ है, आये दिन इसकी पीड़ा भोगा करता है। मुसलमान, ईसाई आदि विजातीय हमको हर तरह से खाये जा रहे हैं, जिससे हिन्दू संज्ञक प्रत्येक व्यक्ति एक शंकाशील जीवन व्यतीत कर रहा है। उसका आत्म-विश्वास, जातीय स्वाभिमान और राष्ट्रीय गौरव स्वप्न बनता चला जा रहा है।

जातीय भेद-भाव से उत्पन्न असंगठन के कारण हिन्दुओं को राष्ट्र-रक्षा के लिए दूसरों की कृपा पर निर्भर होकर चाटुकारी करनी पड़ रही है और उनको प्रसन्न रखने के लिए अपनी महान् मान्यताओं तक को तिलांजलि देनी पड़ रही है, जिससे हिन्दू समाज का स्वतन्त्र विकास ही अवरुद्ध हो गया है और यह अवृद्धि एवं अवरोध की स्थिति किसी भी जाति, धर्म अथवा समाज के लिए एक घातक स्थिति सिद्ध हो सकती है।

इसी जातीय पृथकता और ऊँच-नीच की भावना ने जनसाधारण में ज्वलन्त राष्ट्रीयता की भावना को उत्पन्न होने से रोका। जहाँ लोग अपनी एक विशिष्ट जाति, वर्ग अथवा समुदाय तक ही सीमित हों और दूसरों के प्रति अन्यथा का भाव रखते हों वहाँ एक अभेद राष्ट्रीयता की सम्भावना असम्भव के समान ही है। इसके अतिरिक्त जहाँ एक वर्ग दूसरे वर्ग को नीच

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझकर उसकी छाया तक से घृणा करे और हर प्रकार से पददलित एवं पराभूत रखना चाहे वहाँ यह आशा करना कि कोटि-कोटि जन एक मति और एक गति होकर खड़े हो सकेंगे, एक बिडम्बना ही कही जा सकती है। समय-समय पर इसी भेद-भाव, ऊँच-नीच और छूआ-छूत ने लोगों को राष्ट्रीय कर्त्तव्य से विमुख होने के लिए प्रेरित किया, जिससे नगण्य से आक्रान्ताओं ने हिन्दू समाज को जी भर लूटा, मिटाया और संत्रस्त किया। अपने को ऊँचा समझने वाले, अपना झूठा सम्मान बनाये रहने के लिये विजेताओं से मिले और नीच समझे जाने वाले पददलित अपने त्राण और प्रतिशोध के लिए उनकी शरण चले गये। इस प्रकार जातीय पृथकता के कारण कितनी भयानक राष्ट्रीय हानियाँ हुई हैं इसका यदि लेखा-जोखा लगाया जाये तो रोंगटे खड़े हो जायेंगे।

इसी भेद-भाव के कारण एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों को अपना शिल्प सिखाने, अपने क्षेत्र में अवसर देने में कृपणता एवं संकीर्णता बर्तते रहे हैं। आज भी ऐसा करने में नहीं चूकते, जिससे शिल्पों का व्यापक विकास व प्रसार अवरुद्ध होता जा रहा है। साथ ही अपनी दिशा में किसी अन्य जाति के व्यक्ति को देखकर उखाड़ने, उजाड़ने अथवा निकालने की कोशिश करते हैं जिससे मनोमालिन्य, कटुता और बैमनस्य बढ़ता है और लोग आपदकाल में एक-दूसरे की सहायता करने से विमुख रहते हैं।

एक समय ऐसा रहा कि पढ़ने-लिखने और धर्मानुशीलन करने का अधिकार केवल एक ही जाति तक सीमित था। अन्य जातियाँ बलपूर्वक उससे वंचित रखी जाती थीं, जिससे समाज में अविद्या का घोर अन्धकार फैल गया और लोग जाति, धर्म तथा राष्ट्र का स्वरूप समझने में असमर्थ हो गये। इसके अतिरिक्त यदि कोई उत्साही एवं प्रतिभावान व्यक्ति विदेश-जाकर संसार की गतिविधियों तथा सभ्यता, संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करना चाहता था तो उसे रोका जाता था और यदि फिर भी वह चला जाता था तो उसे जाति बहिष्कृत कर दिया जाता था। इससे या तो वह प्रतिभावान विदेशी बनकर अन्य देशों को लाभ पहुँचाता था अथवा किसी अन्य धर्म में दीक्षित होकर उस धर्म अथवा समाज की उन्नति में अपने क्षमताओं का उपयोग किया करता था। इससे हिन्दू समाज अपने योग्य व्यक्तियों के लाभ से वंचित हो जाता था और दूसरे लोग लाभ उठाकर उन्नति किया करते थे। इस जातीय संकीर्णता ने हिन्दू समाज के ज्ञान को इतना सीमित कर दिया कि उसे यह पता ही न रहता था कि संसार में कहाँ क्या हो रहा है और उसका उस पर क्या प्रभाव पड़ेगा और आज के समय में उसे क्या और कैसे करना है ? फल यह हुआ कि विदेशियों का आगमन होते ही भारत पराधीन बन गया।

इस कट्टरता के कारण असंख्यों लोग धर्म जाति से निकाल दिये गये, जिन्हें आत्मरक्षा में अन्य धर्मों का आश्रय लेना पड़ा। आज ऐसे ही लोग तथा उनकी संतान प्रतिशोधवश हिन्दू धर्म की घोर शत्रु बनी हुई हैं। हिन्दुओं की जातीय कट्टरता से बने हुए ईसाई अथवा मुसलमान बने हुए हिन्दू आज उन समाजों की अभिवृद्धि के लिये जी जान से प्रयत्न कर रहे हैं। इस प्रकार इस जातिवादिता ने अपने भाइयों को अपने से निकाल-निकाल न जाने कितने घातक शत्रु बना लिये जो आज कन्धे से कन्धा रगड़कर चलते और अपने को हिन्दुओं से अधिक श्रेष्ठ समझते हैं।

इन सब त्रुटियों को देखते हुए कोई भी विचारवान् जातिवाद के अस्तित्व को उपयुक्त नहीं मानेगा। इस संकीर्णता ने हिन्दू जाति का बड़ा पतन किया है। अब उसका परित्याग करने का साहस हम सबको एक साथ करना होगा ताकि हिन्दू जाति के अभ्युदय का एक नया पथ विनिर्मित हो सके।

भेदभाव की खाई पाटें

जाति-पाँति के आधार पर चलने वाली ऊँच-नीच की मान्यता का किसी भी दृष्टि से कोई औचित्य नहीं है। फिर भी उसकी जड़ें इतनी गहरी हैं कि उखाड़ने के लिए प्रयत्नशील लोग अभी उतने सफल नहीं हो रहे हैं, जितने होने चाहिए।

पूर्वकाल में समाज चार वर्णों में बँटा था। यह व्यावसायिक सुविधा की दृष्टि से किया गया विभाजन था। एक नियत काम को वंशानुगत रूप में करते रहने से प्रवीणता आती थी। स्त्री-बच्चे भी उस व्यवसाय में कुछ सहायता कर लेते थे ? जैसे किसान का, जुलाहे का परिवार अभी भी मिल-जुल कर काम करता है और सभी छोटे-बड़ों के श्रम का उपयोग उसमें होता जाता है। कच्चा माल प्राप्त करने, विक्रय के क्षेत्रों से सम्पर्क रखने में भी इस वर्गीकरण से, सहायता मिलती थी। कमी पड़ने या उत्पादन बढ़ने जैसी कठिनाइयाँ भी नहीं आती थीं। ऐसे अनेक लाभों को देखते हुए अर्थ-संतुलन एवं श्रम विभाजन की दृष्टि से पूर्वकाल में चार वर्णों का विभाजन किया गया था, पर उनमें से कोई छोटा-बड़ा न था किसी को इस आधार पर नीच-ऊँच नहीं माना जाता था। सभी लोग हिल-मिल कर एक परिवार की तरह रहते थे। परिवार में भी रोटी बनाना, कपड़े धोना, चारा काटना आदि कई प्रकार के काम होते हैं। सभी उन्हें मिल-जुलकर करते हैं। किसी काम को करने वाला नीच या ऊँच गिना जाता हो ऐसा नहीं होता। फिर काम सुविधानुसार बदलते भी रहते हैं।

पूर्वकाल में व्यवसायों का वंश परम्परा के आधार पर स्थायित्व भी था, पर अब वैसा नहीं रहा। व्यवसाय समयानुसार या परिस्थितिवश बदलते भी रहते हैं। एक व्यक्ति आरम्भ से अध्यापक था। पीछे उसने पुलिस में नौकरी कर ली। इसमें चैन नहीं पाया तो दुकान खोल ली। यह भी न चली तो किसी कारखाने में मुनीम गुमास्ते का काम कर लिया। ऐसा करने वाला अपने एक ही जन्म में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र बन गया। उसे किस वर्ग में सम्मिलित रखा जाय ? बदलते रहा जाय तो उसकी संगति जन्म वंश के आधार पर नहीं बैठती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाति-पाँति वंश परम्परा के आधार पर चलने का प्रचलन है। पर यह कैसे, क्योंकि जो कार्य पिता करता था वही संतान भी करे। पिता कलक्टर था तो बेटा चपरासी भी हो सकता है। पिता किसान था तो बेटा अध्यापक भी हो सकता है। व्यवसाय बदलने पर वर्ण बदल जाना चाहिए पर प्रचलन के अनुसार ऐसा नहीं होता। व्यवसाय बदलते रहते हैं पर जाति पीढ़ियों तक वही चलती रहती है।

कबीलों में एक ही मनुष्य-जाति के लोग विभाजित होते चले जायें तो निश्चय ही उनके बीच विलगाव पैदा होगा। एकता और एकात्मकता स्थिर न रह सकेगी, वह खण्डित हो जायेगी। लोग अपने-विराने का भेदभाव करने लगेंगे। ऐसी दृष्टि में संकीर्णता बढ़ेगी और कट्टरता पनपेगी।

बिखरे हुए लोग क्रमशः दुर्बल होते चले जाते हैं। तिनकों से मिलकर रस्सा बनने, धागे मिलकर कपड़ा बनने और एकत्रित सीकों के बुहारी बनने की बात सभी जानते हैं और एकत्रीकरण से उत्पन्न शक्ति तथा उपयोगिता को भी समझते हैं। किन्तु आश्चर्य है कि जाति-पाँति के व्यवहार में इस सच्चाई को आँखों से ओझल कर देते हैं और बिखराव-विलगाव की नीति अपनाते हैं। ऐसी दशा में वह लाभ नहीं मिल सकता, जो सामूहिकता, सहकारिता अपनाने पर मिलना चाहिए।

मनुष्य जाति एक है। उसकी संरचना में कोई अन्तर नहीं। सभी का रक्त-माँस एक जैसा है। अतएव सभी की जाति एक हुई। जातियों की भिन्नता से आकृति और प्रकृति भी बदलती है। गाय, घोड़ा, गधा, बकरी, ऊँट आदि की जातियाँ अलग हैं, उनकी शारीरिक बनावट एवं रहन-सहन की प्रकृति में अन्तर है। पर मनुष्य-मनुष्य के बीच इस प्रकार का कोई अन्तर नहीं पाया जाता। ठण्डे, गरम, ऊँचे, नीचे क्षेत्रों के निवासियों की स्थिति में थोड़ा अन्तर अवश्य पड़ता है। वंश भेद से भी नीग्रो, मंगोलियन, आदि के चेहरे-मुहरे में थोड़ा अन्तर रहता है। पर इस प्रकार की भिन्नता की कोई संगति प्रचलित जाति-पाँति व्यवस्था के साथ किसी प्रकार भी नहीं बैठती। वर्ष विभाजन जिस स्तर का पूर्वकाल में भारत में रहा वैसा अन्य देशों में नहीं रहा। वहाँ अध्यापक और व्यापारी, पुलिस सिपाही, दफ्तर-कर्मचारी एक-दूसरे के साथ हिलने-मिलने में ऐतराज करते हों ऐसा नहीं होता। अनौचित्य को प्रायः सभी समझदार अस्वीकार करते हैं।

धर्म-सम्प्रदाय के आधार पर भी पृथक् वर्ग मान लेने का काई कारण नहीं है। तत्व दर्शन एवं पूजा-उपचारों की दृष्टि से मनुष्य अपने स्वतन्त्र विचार रख सकते हैं। घर का एक व्यक्ति शैव हो तो दूसरा वैष्णव हो सकता है। एक गणेशजी को पूजता है तो दूसरा हनुमानजी का भक्त हो सकता है। एक को जैन मत भाता है तो दूसरों को बौद्ध दर्शन प्रिय लगता है। विचार स्वतन्त्र की इतनी छूट होनी चाहिए। एक को बैंगन अच्छा लगता है तो दूसरे को आलू। एक कुर्ता पहनता है तो दूसरा कमीज। मनुष्य का यह अपना चुनाव है अपना रुझान। इस भिन्नता के कारण ऐसा नहीं होना चाहिए कि हर कोई अपनी पसंद की एक स्वतन्त्र बिरादरी बनाये। अपना एक कट्टर सम्प्रदाय खड़ा करे और इतना ही नहीं उससे भी दस कदम आगे बढ़कर आपस में एक-दूसरे को नीच-ऊँच ठहराने लगे।

सारा भूमण्डल एक क्षेत्र है। पर यदि राष्ट्रों के विभाजन को मान्यता दी जाय तो एक देश के निवासियों में तो समस्वरता रहनी ही चाहिए। हमें होना तो विश्व मानव स्तर की मान्यता वाला चाहिए। पर विभाजन आवश्यक प्रतीत हो तो हिन्दुस्तानी, चीन, रूसी, फ्रांसीसी आदि के रूप में एक सीमा तक वर्गीकृत हो भी सकते हैं किन्तु देशों के भीतर भी ऐसे क्षेत्रीय विभाजन नहीं चलना चाहिए, जिनसे अपना और विरानापन फैले। पंजाबी, गुजराती, मराठी, बंगाली, द्रविण अपने-अपने क्षेत्र और भाषा का स्मरण भले ही रखें। पर इस आधार पर सीमा बन्धन खड़े करना और वह भी इतनी कट्टरता भरे कि एक-दूसरे वर्ग के बीच खाई खुदे, दीवार बने, किसी भी प्रकार उचित नहीं। यह तो और भी बुरा है कि कोई अपने को ऊँच और दूसरे वर्ग को नीच समझे।

इसे नासमझी और संकीर्णता ही कहना चाहिए कि वर्णभेद, सम्प्रदाय-भेद, भाषा भेद आदि के नाम पर एक ही देश के लोग अलग-अलग गुट बनायें और एक-दूसरे के प्रति ऊँच-नीच का भाव रखें।

यह दुर्प्रवृत्ति जाति-जाति के बीच फैल गई है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, कायस्थ, वैश्य आदि वंशों के लोग आपस में ही उपजातियों में बँटें और एक-दूसरे को नीच-ऊँच समझें। एक ही जाति के लोग उपजाति के आधार पर आपस में रोटी-बेटी के सम्बन्ध में भेदभाव बरतते हैं। यह बीमारी इन वर्गों में भी कम नहीं है, जो अपने को अछूत कहे जाने पर तो बुरा मानते हैं, किन्तु अपने ही सदृश्य अन्य अछूत जातियों के बीच वैसा ही व्यवहार करते हैं, जैसा सवर्ण असवर्णों के साथ। उ जातियों की बीमारी और भी भयंकर है। उसने देश को सम्प्रदायों, जातियों, उपजातियों में इस प्रकार विभाजित कर रखा है, जिसमें कि एकता सुस्थिरता तो साथ में रह ही नहीं सकती।

हमें इस सामाजिक विकृति को दूर करने के लिए भरसक प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा कोई कार्य तो करना ही नहीं चाहिए, जिससे इस विभाजन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिले।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हम अपनी इस दुर्बलता को मिटायें

हिन्दू समाज में जाति-पाँति और विशेषकर ऊँच-नीच तथा छूआछूत की भावना ने बहुत ही विघटन उत्पन्न कर दिया है और यह विघटन अथवा पृथकत्व आज ही नहीं है, बहुत समय से चला आ रहा है। इस पृथकत्व के कारण हिन्दू-समाज अपने को एक राष्ट्र समझ सकने में असफल रहा है। इस अनैक्य का लाभ उठाकर थोड़े-थोड़े से विदेशी आक्रमणकारी इस समाज को परास्त करने तथा अपनी प्रभुता स्थापित करने में समय-समय पर सफल होते रहे हैं। भारत में हजारों वर्ष तक विधर्मी तथा विदेशी राज्य इसी पृथकत्व का परिणाम रहा है।

ऊँच-नीच तथा छुआछूत की भावना से जन्मे पृथकत्व ने हिन्दू जाति को जो जनहानि पहुँचाई है, वह अपरिमित है। इस समय संसार में हिन्दुओं की संख्या सबसे कम है। एक समय था कि जबकि हिन्दुओं की संख्या संसार में सबसे ज्यादा थी। हिन्दू समाज में फैली ऊँच-नीच तथा छूआछूत की भावना से सन्त्रस्त होकर लाखों-करोड़ों हिन्दू भाई मुसलमान, ईसाई व सिख आदि हो गये। आज भारत में मुसलमानों की जो विशालता दिखाई दे रही है, वह जन्म-जन्म नहीं है। बल्कि इसकी बढ़ोत्तरी हिन्दुओं के मुसलमान बन जाने से हुई है। यह बात सही है कि मुसलमानों ने तलवार के जोर से लड़कर लाखों हिन्दुओं को मुसलमान बनाया है किन्तु करोड़ों हिन्दू अपने ही समाज की छुआछूत तथा ऊँच-नीच की भावना से त्रस्त होकर भी मुसलमान बने हैं। इधर से उन्हें दुत्कारा गया और उधर से उन्हें बाँह फैलाकर पुकारा गया—स्वाभाविक था कि वे उस ओर चले जाते। मुसलमान समाज में पहुँच जाने पर हिन्दुओं से बने मुस्लिमों को सारे सामाजिक अधिकार दिये गये। उनके साथ बराबरी का बर्ताव किया गया, किसी प्रकार भी उन्हें अन्य मुसलमानों से हीन अथवा हेय नहीं समझा गया, यही नहीं मुसलमान हो जाने के बाद हिन्दुओं का तिरस्कृत वर्ग हिन्दुओं के लिए भी अपवित्रता से मुक्त हो गया और हिन्दू उसे मुसलमान के रूप में अपने बराबर बिठाने लगे। उसकी हीनता ही नहीं अस्पृश्यता भी मिट गई। वास्तव में हिन्दुओं का यह कितना भयानक बुद्धिभ्रम है। हिन्दुओं की यह विचित्र बुद्धि किसी प्रकार भी समझ में नहीं आती।

इक्के-दुक्के दीक्षित ईसाई को छोड़कर शेष सारे भारतीय ईसाई निश्चित रूप से हिन्दुओं का अछूत तथा पिछड़ा वर्ग ही है, जो सामाजिक तिरस्कार एवं बहिष्कार के कारण ईसाई हो गया है। ईसाई मिशनरी कभी सवर्ण हिन्दुओं को ईसाई बनाने का प्रयत्न नहीं करते। उनके धर्म प्रचार तथा धर्म परिवर्तन का क्षेत्र हमेशा से अछूत तथा पिछड़ा वर्ग ही रहा है। आज भी उनकी सारी गतिविधियाँ हरिजनों तथा अन्त्यज वर्ग में ही सक्रिय हो रही हैं। आये दिन हजार दो हजार हिन्दू अन्त्यज ईसाई बनते जा रहे हैं। किन्तु खेद की बात है कि हमारे हिन्दू समाज के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। वह जिस प्रकार अज्ञानवश पूर्व में अपने हरिजन वर्ग की उपेक्षा करता रहा है, उसी प्रकार आज के जनमत प्रधान युग में भी करने की भूल करता ही चला जा रहा है। हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन करने की मुसलमानों की कार्यवाही जरूर पहले जैसी तीव्र नहीं है, किन्तु ईसाई इस ओर आँधी के वेग से काम कर रहे हैं। हिन्दुओं की उदासीनता से उनका हौसला इस कदर बढ़ गया है कि वे एक-दो दशाब्दियों में ही भारत के हरिजनों, पिछड़ी जातियों तथा आदिवासियों को ईसाई बना लेने की भविष्यवाणी करने लगे हैं। हिन्दू समाज के लिए इससे बड़ा दुर्भाग्य और कुछ नहीं हो सकता। यदि यह चौदह-पन्द्रह करोड़ हरिजन तथा आदिवासी हिन्दुओं से निकलकर ईसाइयों में चले गये तो इस दोहरी हानि से हिन्दू जाति अल्पसंख्यक हो जायेगी, तब यह हिन्दुस्तान हिन्दुओं का होगा या ईसाइयों, मुसलमानों का यह कुछ नहीं कहा जा सकता। आज ही जब हिन्दुओं का बहुमत होने पर भी पाकिस्तान, नागालैण्ड तथा सिक्खिस्तान जैसे प्रान्त बनते जा रहे हैं, तब भगवान न करे हिन्दुओं के अल्पमत हो जाने पर यह हिन्दुस्तान कौन-सा "स्तान" बनेगा ? क्या इस पर विचार किया जाना आवश्यक नहीं है ? यह सब फलते हुए विष फल किस पाप के परिणाम हैं—स्पष्ट है कि यह सब हिन्दू समाज में फैली ऊँच-नीच तथा छुआछूत की भावना का ही कुपरिणाम है। भविष्य की भयानक सम्भावनाओं से, समय रहते हिन्दू समाज को सावधान हो जाना चाहिए और आज से ही अपने पिछड़े हुए वर्ग को अपनाने और उठाने में जुट जाना चाहिए।

एक समय था जब विश्व के अन्य धर्मावलम्बी हिन्दू बनकर हिन्दू सभ्यता तथा संस्कृति का देश-देशान्तर में प्रचार किया करते थे। अन्य धर्मों के साधारण व्यक्ति ही क्या बड़े-बड़े प्रभावशाली तथा विजेता तक खुशी से हिन्दू धर्म ग्रहण कर लेते थे। कनिष्क तथा हुविष्क जैसे घोर तुर्कों ने सत्तावान होने पर भी हिन्दू धर्म स्वीकार किया और संसार में उसके प्रसार एवं प्रचार का प्रयत्न किया। आबू पहाड़ पर न जाने कितनी पठान जातियों को हिन्दू धर्म में दीक्षित कर राजपूत पद दिया गया, जिसके आभार स्वरूप उन्होंने न जाने कितने मठ-मन्दिर तथा देवालयों की स्थापना कर हिन्दू धर्म का झण्डा ऊँचा किया। सुमात्रा, जावा, श्याम, कम्बोडिया आदि देशों में जो मन्दिर तथा कथायें आज भी पाई जाती हैं, वे इस बात का ज्वलन्त प्रमाण हैं कि वहाँ के पर-धर्मावलम्बियों ने हिन्दू धर्म स्वीकार किया और उसके चिन्हों तथा प्रतीकों को स्थापित किया। किन्तु यह हुआ कब जबकि हिन्दू जाति एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रगतिशील जाति थी और उसमें ऊँच-नीच तथा छुआछूत की संकीर्णता प्रतीत नहीं होती थी।

किन्तु आज उन देशों से हिन्दू-जाति के निशान तक मिट गये हैं। कोई भी जनसंख्या वहाँ पर अब हिन्दुओं की शेष नहीं है। उन देशों के सारे हिन्दू भारतीय हिन्दू समाज की जड़ता से त्रस्त, तिरस्कृत तथा बहिष्कृत होकर मुसलमान, ईसाई अथवा अन्य धर्मावलम्बी बन गए। अब आज तो किसी के हिन्दू बनने का प्रश्न ही नहीं उठता। जब हिन्दू अपने अंग हरिजनों को ही अपनाने में संकोच कर रहे हैं, तब भला वे नव हिन्दुओं को किस बल पर अपनायेंगे, यह बात आज किसी भी धर्म वाले से छिपी नहीं है। बात भी सही है। कुछ समय पहले शुद्धि आन्दोलन के समय न जाने कितने परधर्मी हिन्दू बने हैं किन्तु हिन्दू-समाज ने तो उन्हें अपने में मिला सका और उनका बराबरी के सामाजिक अधिकार ही दे सका। निराश-हताश होकर अधिकांशतः नवदीक्षित हिन्दू फिर अपने-अपने धर्मों में चले गये। इसका भी कारण यही रहा कि हिन्दुओं की संकीर्ण जातिवादिता, ऊँच-नीच तथा छुआछूत की भावना ने उन्हें अपने में रहने ही नहीं दिया।

हिन्दू धर्म संसार के किसी भी धर्म से श्रेष्ठ है, किन्तु इसकी श्रेष्ठता हिन्दू समाज की संकीर्ण भेद-भावना के पीछे छिप जाती है। हिन्दुओं की जातीय संकीर्णता तथा ऊँच-नीच व छुआछूत की जड़ता देखकर अहिन्दू यहाँ तक कहने का साहस कर बैठते हैं कि हिन्दू धर्म में मनुष्यता के प्रति कोई सद्भावना नहीं है और इसके प्रमाण में वे अछूतों की ओर संकेत कर देते हैं। अछूतों को देखकर वे हिन्दुओं की धर्म भावना, उसके दर्शन तथा अध्यात्मवाद की तथ्यता का अनुमान लगाते और हिन्दू धर्म को संसार के अन्य धर्मों की तुलना में अनुदार तथा अयथार्थवादी बतलाते हैं। वास्तव में यह हिन्दुओं के लिये कम शर्म की बात नहीं है। उनकी सामाजिक संकीर्णता उनके विशाल तथा अनुपम धर्म को अपदस्थ करती और संसार की दृष्टि में नीचे गिराती है। लाख दार्शनिक सिद्धान्त रखने और आध्यात्मिकवाद बखानने पर भी जब तक हिन्दू अपने अन्त्यज भाइयों की दशा नहीं सुधारते, उन्हें गले से नहीं लगाते, तब तक हिन्दू-धर्म पर लगाये जाने वाले अपवादों तथा लांछनों का कोई भी प्रभावपूर्ण उत्तर नहीं दे सकते। अछूतों के परित्याग की अवस्था में हमारे "वसुधैव कुटुम्बकम्" तथा एक आत्मवाद के सिद्धान्त पर संसार विश्वास कर लेगा ऐसी आशा हम हिन्दुओं को नहीं करनी चाहिए। सबसे विशाल देश सबसे उन्नत दर्शन का अधिकारी होता हुआ भी हिन्दू समाज आज संसार के गिरे हुए समाजों में गिना जाता है। दिव्य-धर्म पर ऐसा कलंक हिन्दुओं को असह्य ही होना चाहिए, उन्हें तन-मन-धन से अछूतोद्धार में लगकर अपने समाज, राष्ट्र तथा धर्म पर लगे अनुदारता के कलंक को धो ही डालना चाहिए। संसार बदल रहा है, हमारा बदलना भी आवश्यक है।

जाति-भेद हिन्दू समाज का घुन है

मनुष्य-समाज में ऊँच-नीच का भेद सर्वत्र पाया जाता है, पर हमारे देश के समान जाति-भेद संसार में और कहीं भी नहीं है। दूसरे देशों में सब प्रकार के भेदों के भीतर उनका धर्म एकता का भाव उत्पन्न करता है, पर हमारे देश में जाति-भेद की दीवार धर्म के आधार पर ही खड़ी की गई है। कभी-कभी हम तर्क बुद्धि से इस भेद की कृत्रिमता को समझ जाते हैं, पर उसका सम्बन्ध धर्म से होने के कारण हम उससे उत्पन्न होने वाले कुफलों का प्रतिकार नहीं कर सकते।

जब तक जाति-भेद की प्रथा की जड़ खूब दृढ़ भाव से इस देश में नहीं जमी थी, तब तक भारतवर्ष के बाहर से आने वाले विदेशी भी इस देश की समाज में शामिल कर लिये जाते थे। अब से २१०० वर्ष पूर्व के एक शिलालेख से पता चलता है कि तक्षशिला का यूनानी राजा 'हेलियोडोरस' भागवत् धर्म का दृढ़ अनुयायी बन गया था और उसने गरुणध्वज की स्थापना की थी। कनिष्क, हुविष्क आदि प्रसिद्ध भारतीय नरेश विदेशी ही थे। 'काडवाइसिस' नाम का राजा शिव का परमभक्त हुआ। श्री नगर (काश्मीर) के राजा मिहिरकुल ने मिहिरेश्वर नामक महादेव की स्थापना की थी। इस प्रकार प्राचीनकाल में विदेशों से आये शक, हूण, यवन, कोची, मीना आदि वीर जातियों के दल भारत के समाज में मिलते रहे और आज सब हिन्दू-जाति के अंग माने जा रहे हैं। जिन राजपूतों की वीर गाथाओं के लिये हम इतना गर्व अनुभव करते हैं, वे भी एक समय से बाहर से आये थे। अन्य जातियों का हिन्दू-समाज में सम्मिलित होने का कार्य किसी-किसी प्रदेश में अब भी हो रहा है, पर अब इसमें उतनी शक्ति नहीं है जो कुछ शताब्दी पहले थी। कुछ समय पहले नाथपंथी जोगियों का एक स्वतन्त्र मत था। ये वर्णाश्रम नहीं मानते थे, मृतक का दाह-संस्कार नहीं करते थे, वरन् पृथ्वी में गाढ़ दिया करते थे। पर अब वे धीरे-धीरे हिन्दू-समाज में प्रविष्ट हो गये हैं। इन्होंने वर्णाश्रम धर्म भी स्वीकार कर लिया है और वैष्णव धर्म स्वीकार कर परम वैष्णव बन गये हैं। वे गुरुमन्त्र, तीर्थ, पूजा, प्रार्थना आदि भी स्वीकार कर रहे हैं। फिर भी इसको अपनाना नहीं कह सकते। दूसरे धर्म वाले जिस प्रकार उद्योग करके और तरह-तरह के उपायों से अपना संख्या बढ़ा रहे हैं, उसकी तुलना में यह कुछ भी नहीं। वरन् अब भी छोटे-छोटे कारणों से व्यर्थ बहुत-से आदमियों को समाज से बाहर निकाल देने की प्रवृत्ति स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। इस प्रकार का कार्य हिन्दू-समाज के लिये आत्महत्या से कम नहीं है।

बंगाल के त्रिपुरा जिले के 'माहीमाल' या 'भाई फरोश' मुसलमान पहले हिन्दू कैवर्त (मल्लाह) थे। सुना जाता है, कि एक बार इनके पास के गाँव में हैजे की बीमारी हुई थी। उस गाँव के रहने वाले मुसलमान थे, जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सभी हैजे से मर गये। केवल एक छोटा शिशु बच गया। कैवर्तों को उस पर दया आ गई। उनकी एक स्त्री ने उसे अपना दूध पिलाया और बड़ा किया। बाद में किसी ने यह तर्क उठाया कि यह लड़का तो हिन्दू नहीं है, उसके पालन करने वाली की जाति नष्ट हो गई और उसके साथ खान-पान करने वाले सभी मुसलमान हो गये। इस प्रकार कई सौ लोगों को हिन्दू धर्म से जबरदस्ती बाहर निकाल दिया गया। बहुत दिनों तक वे समाज की प्रतीक्षा में रहे पर समाज के नेताओं का हृदय नहीं पसीजा। अब ये पक्के मुसलमान हैं।

मलकाने मुसलमानों का किस्सा भी इसी प्रकार का है। ये लोग आगरा, मथुरा के आस-पास ही रहते हैं। किसी समय ये देश और गौ-ब्राह्मण की रक्षा के नाम पर मुसलमान आक्रमणकारियों से जी तोड़कर लड़ाई कर रहे थे। उसी समय किसी ने झूठमूठ यह अफवाह फैला दी कि शत्रुओं ने उनके कुएँ में गोमाँस डाल दिया है और वे उसी का पानी काम में ला रहे हैं। यही अफवाह उनको समाज से च्युत करने का कारण बन गयी। बहुत दिनों तक वे धर्म को छोड़ने को तैयार नहीं हुये। अब तक भी उनके आचार-विचार में अनेक राजपूती रस्में मिलती थीं, पिछले कुछ वर्षों से शुद्धि आन्दोलन के फल से उनमें से बहुसंख्यक व्यक्तियों को हिन्दू-धर्म में पुनः सम्मिलित किया गया।

इस प्रकार जाति-भेद की विचारशून्य प्रथा के कारण हिन्दू-समाज से जबर्दस्ती निकाली गई आधी हिन्दू और आधी मुसलमान अनेकों जातियाँ अब भी मौजूद हैं। काशी के पास जोगियों की एक जाति के लोग राजभर्थरी का गाना गाते हुए भीख माँगते फिरते हैं। इनका भरण-पोषण हिन्दू ही करते हैं, इनसे गण्डे ताबीज भी लेते हैं, पर नाम मात्र के लिये ये मुसलमान हैं और अपने को हिन्दू कह सकने के अधिकारी नहीं हैं। गुजरात और सिन्ध में मतिया, मोमना, शेख, मौल-इस्लाम, संघर आदि अनेकों जातियाँ हैं, जिनको मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट में ऐसे ही कारणों से मुसलमान लिख दिया गया है। मीरासी लोग देवी के भक्त हैं और उसी के गीत गाकर जीविका चलाते हैं, पर इनको मुसलमान मान लिया गया है। गंजाम (उड़ीसा) में आरुवा जाति का आचार-विचार सर्वथा हिन्दुओं का है, पर वह विवाह के समय मुल्लों को बुलाने को बाध्य हैं। इसी प्रकार मद्रास के 'दुदेकुल' तिलंगाने के 'काटिक', यू. पी और राजपूताना के 'डफाली' 'घोसी' 'रांकी' किंगानी आदि सैकड़ों जातियाँ ऐसे नौ मुस्लिमों की हैं, जो हिन्दू-समाज की संकीर्णता के कारण समाज से बहिष्कृत कर दिये गये हैं और जो स्वभाववश अभी तक अधिकांश हिन्दू आचार-विचारों का पालन कर रहे हैं।

जो ऐसी आधी हिन्दू और आधी मुसलमान जातियाँ हैं, उनकी अवस्था के अनुसार उचित तो यही था कि कुछ इधर आ जातीं, कुछ उधर चली जातीं। पर हिन्दू-समाज में तो बाहर से आने का रास्ता बन्द है। घर का आदमी भी यदि एक बाहर चला गया, तो फिर उसका घर में आना असम्भव है। अभिमन्यु चक्रव्यूह के भीतर घुस सकते थे, बाहर नहीं निकल सकते थे, पर यहाँ आदमी बाहर तो निकल सकता है, भीतर नहीं आ सकता।

भीतर आने में सबसे बड़ी बाधा जातिभेद की है। जिस जाति से कोई बाहर जाता है वह जाति अपनी शान बनाये रखने के लिये उसे फिर से अपने दल में स्थान नहीं दे सकती। उनका कहना है कि जो बाहर निकलकर अपनी जाति-पाँति ठीक नहीं रख सका उसे फिर किस जाति में लिया जाय ? बाहर जाने से वर्णाश्रम तो विशुद्ध रह नहीं जाता, तो फिर वह लौटना भी चाहे तो उसे बैठाने का कोठा खोजने पर भी नहीं मिलता, इसका नतीजा पहले जमाने में ये होता था कि वे लोग अपनी एक नई जाति बना लेते थे। यही कारण यहाँ पर एक-एक वर्ण में हजार-हजार और पाँच-पाँच सौ जातियाँ होने का है। इस भूल अथवा विचारशून्यता के कारण हिन्दू अपने लाखों भाइयों को पराया बना चुके हैं। यह बात भी निश्चय है कि अपना आदमी जब एक बार पराया हो जाता है, तो वह बड़ा कठोर दुश्मन सिद्ध होता है और वह बड़ी निर्ममता से चोट करता है। अर्जुन के ऊपर कर्ण ही सबसे अधिक भयंकर आक्रमण करता था। जिसे अपमानित करके जाति बहिष्कृत कर दिया जाता है, वह उस अपमान को कभी नहीं भूलता। गोस्वामी तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है—**"सबसे कठिन जाति अपमाना।"**

समाज को शक्तिशाली बनाने वाली शुद्धि-प्रथा

संसार में अनेक प्रकार की शक्तियाँ काम कर रही हैं और सभी महत्वपूर्ण कार्यों के सिद्ध करने में उनकी आवश्यकता पड़ा करती है। मानवजाति की दृष्टि से अन्य सब प्रकार की शक्तियों की अपेक्षा संगठन शक्ति उच्च स्थानीय मानी जाती है, क्योंकि इसी के द्वारा मनुष्य शारीरिक दृष्टि से हाथी, ऊँट, घोड़ा, बैल, भैंसा आदि अन्य अनेक प्राणियों से निर्बल होते हुये भी उन पर आधिपत्य स्थापित कर सका है। संसार में जिन जातियों अथवा समाजों ने उन्नति की है, वे सब संगठन की दृष्टि से अग्रगामी थे। इस प्रकार के संगठन का मुख्य आधार समाज के सब सदस्यों के हितों की रक्षा और प्रेम तथा न्याययुक्त व्यवहार ही है। इतिहास बतलाता है, प्राचीन समय में आर्य-जाति अन्य जातियों से अधिक संगठित तथा अपने और पराये सबके साथ न्यायानुकूल व्यवहार करने के लिए प्रसिद्ध थी। यही कारण है कि एक समय वह समस्त भूमण्डल पर अपना डंका बजा सकी थी और अपनी संस्कृति का दूर-दूर तक प्रसार कर सकी थी। वेदों में स्थान-स्थान पर संगठन, एकता, सहयोग आदि का उपदेश

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिया गया है और ऐसे नियमों पर चलने की प्रेरणा दी गई है, जिनसे समाज के सब सदस्यों का हित साधन हो सके।

बहुत लोग प्राचीन समय के आर्यों पर, अनार्य जातियों पर अत्याचार करने उन्हें शूद्र, चाण्डाल आदि नीच जाति का बना रखने का दोषारोपण करते हैं। पर जब हम देखते हैं कि केवल भारतवर्ष में ही नहीं ईरान, मिश्र, बैबीलोनिया, असीरिया जैसे दूरवर्ती प्राचीन देशों में आर्यों ने अपनी संस्कृति और धर्म का प्रचार किया था और योरोप के सभी प्रधान देशों में आर्य जाति के वंशज अभी तक बसे हुये हैं तो उपरोक्त आक्षेप निराधार ही जान पड़ता है। जो लोग शत्रुता का व्यवहार करते थे और छल-बल से अनिष्ट करने को तैयार होते, उनका मुकाबला करना और उनको दण्ड देना तो राजनीति का नियम सदैव से रहा है, पर वैसे स्वभावतः यदि आर्य जाति संगठन, सहयोग, एक्य और उदार व्यवहार पर विश्वास रखने वाली न होती तो इसका इतना विस्तार होना और समस्त विश्व में उसका प्रभाव व्याप्त होना कभी नहीं हो सकता था। इस सम्बन्ध में प्राचीन ग्रन्थों और इतिहास के जो प्रमाण और उद्धरण मिलते हैं, उन सबसे यही सिद्ध होता है कि आर्य लोग अपनी जाति वालों से नहीं अपने से नीचे श्रेणी वालों के साथ भी सद्व्यवहार करते थे और उनको ऊँचा उठाकर अपने में सम्मिलित कर लेते थे। संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ माने गये 'ऋग्वेद' में कहा गया है—

उतदेवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः।।

"हे विद्वानो ! जो गिरते हैं उनको फिर उठाओ जिन्होंने पाप किया या जिनका जीवन मैला हो गया, उनको फिर से शुद्ध, श्रेष्ठ जीवन दो।"

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्रायचार्यायचस्वापचारणाय।।

"जैसे मैं इस कल्याणयुक्त वाणी को सम्पूर्ण जनों के लिए उपदेश करता हूँ, वैसे ही तुम भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अपने और परायों को इसका उपदेश करो।"

आसंयतमिन्द्रणः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय वृहतीममृधाम्।
यया दासान्यार्याणि वृत्राकरो वज्रिन्तु तुकात्ताहुषाणि।।

"हे इन्द्र ! हमें ऐसा बल दो कि उसके द्वारा हम अनार्य जातियों मनुष्यों को सुधार कर आर्य बनावें। इस प्रकार शत्रुभाव का निराकरण करके हिंसारहित और कल्याणकारी शक्ति का प्रादुर्भाव हो।"

"इन्द्रंवर्द्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपघ्नन्तो अरावणः।"

"परमेश्वर के नाम को बढ़ाते हुए, सब संसार को आर्य बताते हुये, स्वार्थियों को दबाते हुए हम अग्रगामी बनें।"

इस प्रकार के अनेक वेद मन्त्रों के आशय पर ध्यान देने से यह प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल में हमारे पूर्वज वर्तमान समय की तरह कृत्रिम जाति-भेद और ऊँच-नीच की व्यवस्था से सर्वथा अपरचित थे और मनुष्य मात्र को एक ही परमात्मा की सन्तान मानकर प्रत्येक का उसके गुणकर्मानुसार ही महत्व देते थे। सज्जनों को सम्मानित करना और दुष्टों को दण्ड देना ही सच्चे धर्म का नियम हो सकता है। इसी का वेदों में सर्वत्र प्रतिपादन किया गया है और ऐतिहासिकों ने तत्कालीन घटनाओं का जो वर्णन किया है, उससे भी यही प्रकट होता है कि आर्य जाति में सब मनुष्यों को समान समझने की भावना मौजूद थी, वे दुष्प्रवृत्तियों के कारण ही किसी व्यक्ति या समुदाय को नीच मानते थे और इस बात का प्रयत्न करते थे कि उन बुराइयों को दूर करके उनको अपने समाज का एक अंग बना लिया जाय। यह वास्तविक शुद्धि थी जिसका स्पष्ट आदेश हमको वेदों से प्राप्त होता है।

वैदिक ग्रन्थों में 'व्रात्य स्तोम' के नाम से एक यज्ञ का विधान पाया जाता है। इस सम्बन्ध में श्रीमान् राजा राम कृष्ण भागवत ने "रायल एशियाटिक सोसाइटी (बम्बई शाखा) के मुखपत्र के २१ दिसम्बर १८६६ के अंक में एक लेख छपाकर यह सिद्ध किया था कि इस यज्ञ का उद्देश्य अनार्यों को आर्य-धर्म में दीक्षित करने का था। इस कर्मकाण्ड का जो वर्णन सामवेद के 'ताण्ड्य ब्राह्मण (अध्याय १७) में मिलता है उससे प्रकट होता है कि इस यज्ञ द्वारा एक बार में ३३ अनार्य और एक उनका सरदार सब मिलाकर ३४ व्यक्ति शुद्ध करके आर्य बना लिये जाते थे और इसके पश्चात् उनको द्विजों के अधिकार दे दिये जाते थे। इस विधि से उस समय लाखों अनार्यों को शुद्धि संस्कार करके आर्य जाति में सम्मिलित कर लिया गया था।

वैदिक काल के पश्चात् स्मृति काल में यद्यपि समाज का संगठन कुछ पेचीदा हो गया और वर्ण व्यवस्था स्थायी होकर दो भिन्न वर्ण वालों के संयोग से नई-नई जातियों की उत्पत्ति होने लग गई, तो भी उस समय योग्य व्यक्तियों के ऊँचे उठकर सम्मानीय स्थान पर रहने में कोई बाधा न थी। इस सम्बन्ध में विभिन्न स्मृतियों में जगह-जगह ऐसे वाक्य पाये जाते हैं, जिनमें नीची जाति वालों के ऊँची जातियों में सम्मिलित होने का विधान पाया जाता है—'रणवीरकारित प्रायश्चित' नामक ग्रन्थ में भी 'व्रात्यों' का वर्णन किया गया है। उसमें व्रात्य की व्याख्या करते हुये लिखा है—

"व्रात्य इति—व्रात शब्दादि वार्थेय प्रत्ययेन निष्पन्नः, यद्वा व्रात महर्तीति-व्रातं नीचकर्म 'दण्डादिभ्योयं' इतिव्रात्य। शरीराया सजीवी व्याधादिकोऽष्टाविंशति संस्कारहीनो भ्रष्ट गायत्रीकः। षोडशवर्षादूर्ध्वमप्य कृत व्रतबन्धो वानाधकर्ता द्विजो व्रात्य इत्यमर टीका राजमुकुटी।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्थात् "व्रात (नीच कर्म) के योग्य जो होवे उसमें 'दण्डादिभ्योगः' सूत्र के अनुसार 'य' प्रत्यय लगाकर 'व्रात्य' शब्द बनता है। इसका आशय यह है कि जो लोग विद्या, ज्ञान से परामुख होकर नीचे दर्जे की सेवा टहल के काम करते हैं, अट्ठाईस संस्कारों से भ्रष्ट होकर व्याधा, भारवाहक आदि का कर्म करते हैं, जिनका सोलह वर्ष की आयु तक यज्ञोपवीत नहीं हुआ और दानादि नहीं करता, ऐसा व्यक्ति द्विज होने पर भी व्रात्य हो जाता है। 'व्रात्य' की यह व्याख्या अमरकोष की 'राजमुकुटी' टीका में की गई है।" 'मनुस्मृति' में भी इसी बात को कुछ भिन्न रूप में कहा गया—

द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तुयान् ।
तानसावित्री परिभ्रष्टान् व्रात्यानितिविनिर्दिशेत् ।।

अर्थात् "जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य पिता द्वारा समान जाति की स्त्री में 'व्रत रहित' उत्पन्न हों और गायत्री भ्रष्ट हों उनको 'व्रात्य' कहा जाता है।"

इस प्रकार आचार-विचार से पतित हो जाने के कारण 'व्रात्य' अथवा नीच श्रेणी में परिगणित किये जाने वाले व्यक्ति स्वयं अथवा उनके पुत्र, पौत्र आदि वंशज अपनी त्रुटि को अनुभव करके उसका प्रायश्चित करने और पुनः धर्मानुकूल आचरण करने की अभिलाषा करते थे तो उनको शुद्ध करके पुनः द्विज का अधिकार देने की व्यवस्था स्मृतिकारों ने की थी। इस सम्बन्ध में 'आपस्तम्ब सूत्र' में निम्न निर्देश पाया जाता है—

"यस्य प्रपिता माहदेवरुपनयनं न स्मर्यते, तत्राथदि तेषामपि पुरुषाणामनुपनीतत्वं, ते सर्वे श्मशानवदशुचतः तेष्वागतेष्वभ्युत्थानं भोजनं च वर्जयेत आपद्यपि न कुर्य्यादित्यर्थः। तेषां स्वयमेव शुद्धिमिच्छतां प्रायश्चित्तानन्तरमुपनयनम् ।"

अर्थात् "जिन लोगों के प्रपितामह आदि पूर्वजों ने यज्ञोपवीत को त्याग दिया हो, उनको अपवित्र ही मानना चाहिए। वे श्मशान के तुल्य अशुचि हैं। उनका आदर-सम्मान करना अथवा उनसे आपत्तिकल में भी खान-पान का सम्बन्ध रखना वर्जित है। यदि वे अपनी शुद्धि की इच्छा प्रकट करें तो उनसे प्रायश्चित कराके यज्ञोपवीत धारण करा देना चाहिए।" आगे चलकर कहा गया है कि **"तत् ऊर्ध्वं प्रकृतिवत्"** अर्थात् प्रायश्चित कर लेने तथा हीन आचरण त्याग देने पर वे अपने पूर्व वर्ण को प्राप्त कर लेते हैं। मनुस्मृति (११-१८) में भी इसका समर्थन किया गया है और स्पष्ट शब्दों में लिखा है—

"सर्वाणि ज्ञाति कर्माणि यथापूर्व समाचरेत ।"

अर्थात् "शुद्ध हुआ पुरुष पहिले की तरह अपने वर्ण के समस्त कर्मों को करे।" इस प्रकार के व्यक्तियों को क्या प्रायश्चित करना चाहिए इस सम्बन्ध 'याज्ञवल्क्य स्मृति' का मत है

उपपातकशुद्धि स्यादेवं चान्द्रायणेन वा ।
पयसा वापि मासेन परोकेणाथवा पुनः ।।

अर्थात् "इस प्रकार का उपपातक करने वालों की शुद्धि एक मास पर्यन्त पंचगव्य का सेवन करने या चान्द्रायण या एक मास तक दुग्धाहार करने अथवा पराक व्रत से होती है।" इन चारों में से कोई उपयुक्त प्रायश्चित उस व्यक्ति की शक्ति देखकर करना चाहिए यह मनुस्मृति का निर्देश है।

धर्म-शास्त्रों ने यह व्यवस्था तो उन लोगों को शुद्ध करके पुनः समाज में सम्मिलित करने के लिये दी है, जिन्होंने स्वेच्छा से अथवा प्रमादवशहीन आचरणों को अपना लिया है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर आकस्मिक कारणों से विवश होकर भी बहुसंख्यक व्यक्तियों को धर्माचरण त्याग कर धर्म विरुद्ध कार्यों को करना पड़ता है। ऐसे लोगों को सभी स्मृतिकारों ने क्षम्य समझा है और उनके लिये अपेक्षाकृत सरल प्रायश्चित बतलाया है—

देशभंगे प्रवासेच व्याधिषुव्यसनेष्वपि ।
रक्षदेव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समाचरेत ।।

—पाराशर स्मृति ७-४१

"देश में उपद्रव हो जाने, प्रवास, व्याधि, आपत्ति में पड़ जाने पर किसी प्रकार शरीर और प्राणों की रक्षा करे और फिर अनुकूल समय आने पर प्रायश्चित करके धर्म का पालन करने लगे।"

तेषां प्रायश्चितं मासं पयोभक्ष्यं गामनुगच्छेत्
यश्चीर्ण प्रायश्चित्तस्तं वठिच्चतैरूप नयेयुः
यथा प्रकृतिर्व्रतुन्छवो विशेषात् ।

—हारीत स्मृति

"देश के उपद्रव आदि में जिनका यज्ञोपवीत उतार लिया गया हो, उनके लिये यही प्रायश्चित है कि वे एक मास पर्यन्त दुग्धाहार करें और गाय की सेवा करते रहें। इसके पश्चात् यज्ञोपवीत धारण करके पुनः निज वर्ण के कर्त्तव्यों का पालन करने लगें।" 'देवल स्मृति' में इस विषय को विशेष रूप से लिखा है—

बलद्दासीकृतो म्लेच्छैश्चाण्डालायैश्च दस्युभिः ।
अशुभं कारितं कर्म गवादि प्राणि हिंसनम् ।।
उच्छिष्टमार्जनं यैव तथा तस्यैव भक्षणम् ।
तत्स्त्रीणां तथा संगस्ताभिश्च सहभोजनम् ।।
कृच्छन्संवत्सरं कृत्वा सांतपनानू शुद्धिहेतवे ।
ब्राह्मणः क्षत्रियस्त्वर्धं कृच्छान् कृत्वा विशुद्धयति ।।
मासोषितश्चरेद्वैश्यः शूद्रः पादेन शुद्धयति ।।

अर्थात् "जिन व्यक्तियों को म्लेच्छों, चाण्डालों या अन्य विधर्मियों ने बलपूर्वक पकड़कर दास बना लिया और उनसे जबर्दस्ती गौहिंसा आदि पाप कर्म कराया, जूठे बर्तन मँजवाये और जूठन खिलाया, अपनी स्त्रियों के साथ सहगमन कराया और उनके साथ एक पात्र में खिलाया तो ब्राह्मण एक वर्ष तक, क्षत्रिय, छः मास तक वैश्य एक मास तक तथा शूद्र एक सप्ताह तक कृच्छ-सांतपन करके शुद्ध हो सकता है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रकार किसी वर्ण में से राजी से या जबर्दस्ती धर्म भ्रष्ट होने वाले व्यक्तियों को शुद्ध करने का विधान अनेक शास्त्रों में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त पुराणों में तथा महाभारत आदि में ऐसे भी अनेक विवरण मिलते हैं, जिनसे विदित होता है कि आर्यों के अभ्युत्थान के समय यहाँ के प्रसिद्ध जन-नेता दूर-दूर के देशों में अपनी संस्कृति का प्रचार करके वहाँ के निवासियों को अपने धर्म में दीक्षित करके अपने समाज को शक्तिशाली बनाते थे।

'भविष्य पुराण' के (४-२१) में मिश्र देश (अफ्रीका) के निवासियों के ब्राह्मण वर्ण में सम्मिलित होने का उल्लेख है—

मिश्र देशोद्भवाम्लेच्छाः काश्यपेन सुशासितः।
संस्कृताः शूद्रवर्णेन ब्रह्मवर्णमुपागताः।।
शिखा सूत्रं समाधाय पठित्वा वेदमुत्तमम्।।

अर्थात् "मिश्र देश में उत्पन्न म्लेच्छ शुद्ध होकर उत्तम वेद पढ़कर व शिखा-सूत्र धारण करके ब्राह्मण पद को प्राप्त हो गये।"

यह वर्णन केवल पुराणों में ही नहीं पाया जाता वरन् इतिहास की खोज करने वाले विद्वानों ने अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध किया है कि महाराष्ट्र के चित्पावन ब्राह्मण जो उस प्रदेश में अत्यन्त प्रभावशाली हैं और वेदों के पठन-पाठन में अग्रगण्य माने जाते हैं, वास्तव में मिश्र और आस-पास के प्रदेशों से आये हुये यहूदियों के ही वंशज हैं। अनेक सरकारी रिपोर्टों में इस तथ्य को स्वीकार किया गया है और 'वैदिक सम्पत्ति नामक प्रसिद्ध हिन्दी-ग्रन्थ में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है।

प्राचीनकाल में हिन्दू-धर्म का द्वार विदेशी और विधर्मियों के लिये किस प्रकार खुला रहता है। इसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण भिलसा (भूपाल) में पाया गया गरुड़ध्वज पर खोदा हुआ शिलालेख है, जिससे विदित होता है कि सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् जब तक्षशिला पर 'एण्टिआल्कटस' नामक यूनानी राजा का शासन था तो उसने अपना 'हेलियोडोरिस' नामक राजदूत मध्यभारत के राजा भगभद्र के दरबार में भेजा था। उसने हिन्दू-धर्म के उपदेश से प्रभावित होकर उसे स्वीकार कर लिया और कृतज्ञता स्वरूप भगवान वासुदेव का एक मन्दिर निर्माण कराया। उसी के सम्मुख उपर्युक्त गरुड़ध्वज वैष्णव के विधानानुसार स्थापित किया गया था।

इसी प्रकार ईरान (शाकद्वीप) से आये हुये 'मग' लोगों को भी ब्राह्मण वर्ण में सम्मिलित करके देव-पूजा के कार्य पर नियुक्त किया गया। इस सम्बन्ध में संवत् १०२८ शके का एक शिलालेख मिला है जो इस प्रकार है—

"देशोजीया त्रिलोकी मणिरयमरूणों यन्निवासेन पुण्यः शाकद्वीपस्तदुद्याम्बुनिधि वलयितो यत्र विप्रामगाख्याः।"

"वंशस्तद्विजानां भ्रमि लिखित तनोर्भास्वतः स्वांगमुक्तः, शाम्बो यानानिनाय स्वयमिह महितास्ते जगत्यां जयन्ति।"

इससे जान पड़ता है कि 'मग' लोग 'शाकद्वीप (ईरान) के निवासी थे। उस समय यहाँ के ब्राह्मण देव-मन्दिर में पुजारी का कार्य करना हीन समझते थे, इससे शाम्ब ने उनको मन्दिरों में पूजा करने का काम दे दिया। इतिहास से भी यह मालूम होता है कि शाम्ब ने मुलतान के निकट एक सुवर्ण-मंडित विशाल मन्दिर बनवाया था, उसी में 'मग' लोग पुजारी बनाये गये थे। बाद में ये सब ब्राह्मण वर्ण में ही शामिल होकर वर्तमान हिन्दू-समाज के एक प्रधान अंग बन गये।

उपरोक्त समस्त प्रमाणों और विवेचन पर ध्यान देने से स्पष्ट जान पड़ता है कि इस समय हिन्दुओं में जो संकीर्ण जातीयता का भाव उत्पन्न हो गया है और जिसके कारण वे विदेशी और विधर्मियों को ही अस्पर्श्य नहीं समझते वरन् अपने भी अधिकांश धर्म-बन्धुओं को खान-पान, रोटी-बेटी की दृष्टि से पराया मानते हैं, वह मुसलमानी शासनकाल में ही वृद्धि को प्राप्त हुआ है। कुछ लोगों का यह भी कथन है कि कई मुसलमान बादशाहों ने रिश्वत देकर कुछ हिन्दू पण्डितों से शास्त्रों में ऐसी भ्रष्टता करा दी है, जिससे हिन्दुओं में फूट पैदा होकर वे पतित और निर्बल हो जायें। अन्यथा प्राचीन समय के जितने प्रमाण वेद, स्मृति, पुराण, इतिहासों के मिलते हैं, उन सबसे यही सिद्ध होता है कि तत्कालीन भारतीय बहुत उदार विचारों के थे और स्वार्थ तथा परमार्थ दोनों दृष्टियों से संसार भर के लोगों को बिना किसी भेदभाव के धर्मोपदेश देकर अपने में सम्मिलित कर लेते थे। इसीलिये संसार की अधिकांश जातियाँ उनके साथ सद्भाव रखती थीं और आरम्भ में विजय की इच्छा से आक्रमण करने पर भी बाद में उनके साथ घुल-मिलकर एक हो जाती थीं। प्राचीन हिन्दुओं की इसी उदार मनोवृत्ति के कारण आज यहूदी, ईरानी, सिथियन, शक, हूण, मग आदि अनेक जातियाँ वृहत्तर हिन्दू जाति में इस प्रकार समा गई हैं कि यह जान सकना भी असम्भव हो गया है कि हममें कौन वास्तव में किस जाति का वंशज है ? ऐसी दशा में जाति-पाँति का झूठा बड़प्पन रखना और उसके कारण हिन्दू समाज को निर्बल करना सिवाय दुराग्रह और अज्ञान के कुछ नहीं समझा जा सकता।

समाज को खोखला होने से बचाया जाय

उपरोक्त पंक्तियों में हिन्दू समाज में घुसी हुई दुर्बलताओं और कुरीतियों का दिग्दर्शन कराया गया है। यह इसलिये करना पड़ा कि रोग भले ही छोटा हो पर उसकी उपेक्षा तनिक भी न की जाय क्योंकि यदि उसके निवारण का उपाय न किया गया तो आगे चलकर वह घातक संकट का रूप धारण कर सकता है।

हिन्दू-समाज में अच्छाइयाँ नहीं ऐसी बात नहीं। यदि कोई अच्छाई न होती तो इतने झंझावात, संकटों एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आक्रमणों को सहते हुए उसका अब तक जीवित रह सकना संभव न होता। संसार की कितनी ही सभ्यतायें अपना अस्तित्व खो चुकीं, पर हिन्दू-समाज सृष्टि के आदि से लेकर अब तक अपना अस्तित्व अक्षुण्ण बनाये हुये है, इसका कारण उसकी मौलिक विशेषताएँ ही हैं। भारतीय दर्शन, नीति-शास्त्र, आचारशास्त्र, समाज रचना, वर्णाश्रमधर्म, आस्तिकता, पुनर्जन्म, कर्मफल, पुण्य परमार्थ, पतिव्रत और पत्नीव्रत धर्म आदि कितने ही ऐसे तथ्य हैं, जिनके कारण हिन्दू समाज का मस्तक सदा से ऊँचा रहा है और रहेगा।

किन्तु पिछले दिनों जो विकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं, उन्हें कम हानिकारक नहीं मानना चाहिए। समाज में कितनी ही ऐसी कुरीतियों का प्रवेश हुआ है, जिनके कारण हम भीतर ही भीतर खोखले हो गये और उसका प्रायश्चित खून के आँसू बहाते हुये करना पड़ा है। पिछले एक हजार वर्षों में विदेशियों के कितने आक्रमण हुये और कितने लज्जास्पद अपमानों और कितने रोमांचकारी अत्याचार, अनाचारों का शिकार होना, इसे इतिहास का हर विद्यार्थी भली प्रकार जानता है। उन आक्रमणों का कारण आक्रान्तों की शक्ति या वीरता नहीं, वरन् अपनी आन्तरिक दुर्बलता ही मुख्य कारण थी। यदि हम भीतर से संगठित और मजबूत होते तो अपने साधन इतने अधिक थे कि कोई बाहर वाला आँख उठाकर भी न देख सका होता।

कुछ शताब्दियों पूर्व भारत एशिया के अधिकांश भाग में सुविस्तृत था। वर्मा और लंका तो कल तक उसके अंग थे। जावा, सुमात्रा, वाली आदि देशों में तो भारतीय संस्कृति के चिन्ह इतने स्पष्ट हैं मानो वहाँ अभी भी भारत की आत्मा विद्यमान है। बौद्ध धर्म के रूप में भारतीय सभ्यता ने, राष्ट्रीयता ने, सारे एशिया पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया हुआ था। पर अब तो सिकुड़-सिकुड़ कर वह बहुत छोटे दायरे में सीमित हो गया है। संसार में सबसे छोटा ३४ करोड़ लोगों का धर्म रह गया। जहाँ तक इन दिनों भारत की सीमा है, उसमें भी एक तिहाई से अधिक अन्य धर्म पनप रहे हैं। पाकिस्तान का बँटवारा तो कल परसों ही करना पड़ा है। इस सबमें और किसी का रत्ती भर भी दोष नहीं है। अपनी आन्तरिक दुर्बलतायें ही हैं जो हमें नष्ट करती चली जा रही हैं।

यदि हमारी सामाजिक स्थिति स्वस्थ रही होती तो क्यों हर साल लाखों हरिजन ईसाई बनते, क्यों हजारों विधवायें विधर्मी बनतीं, क्यों करोड़ों पिछड़े हुये हिन्दू फिर अपने धर्म में वापिस आने के लिये तरस-तरस कर रह जाते। कोई विधर्मी यदि हिन्दू धर्म में प्रवेश करे तो हवन कराके, चोटी रखाने की औपचारिक क्रिया करके 'शुद्ध' होने की घोषणा कर देते हैं पर उसके बच्चों के विवाह-शादी का कोई प्रबन्ध न होने, समाज में घुलमिल जाने की गुजांयश न होने से पुनः उसे विधर्मी होना पड़ता है। यदि दुर्बलतायें अपने में से निकल जायें तो अगले दस वर्षों में ही हमारी जनगणना दूनी-तिगुनी हो सकती है।

विवाह-शादियों में होने वाले अपव्यय को यदि रोका जा सके और उस पैसे को पारिवारिक प्रगति के कार्यों में लगाया जा सके तो अपना समाज आर्थिक दृष्टि से दूसरे देशों की तुलना में ही पहुँच सकता है। आज तो स्थिति यह है कि हमारी एक तिहाई कमाई सामाजिक कुरीतियों के दावानल में जलकर खाक हो जाती है। पेट भरने के लिए मुश्किल से बच पाता है फिर प्रगति के आयोजन किस प्रकार हों ? जो परिवार पिछले छ साल से हर साल एक-एक शादी करने में १०-१० हजार खर्च करता रहा है और ६० हजार की पूँजी गँवाकर खोखला हो गया है, यदि उसे इस विवशता में न फँसना पड़ता तो उस पूँजी से न केवल उस परिवार के सदस्य ही फलत-फूलते वरन् उनके चालू रोजगार से अनेक दूसरों को रोजी-रोटी मिलती। गर्भपात करती फिरने वाली विधवाओं के लिये यदि पुनः विवाह करने का प्रतिरोध न रहा होता तो हजारों-लाखों परिवारों में आज आनन्द और उल्लास भरी हरियाली दीख रही होती। धर्म के नाम पर बर्बाद होने वाला धन यदि शिक्षा जैसे उपयोगी कार्यों में लग सका होता तो देश के कोने-कोने में आज स्वर्ग अठखेलियाँ कर रहा होता।

सामाजिक कुरीतियाँ हमारी सबसे बड़ी शत्रु हैं। विदेशी शासन चला गया पर विजातीय, अवांछनीय विचारधारा का शासन अभी भी हमारे ऊपर मौजूद है। बौद्धिक गुलामी की जंजीरों में अभी भी हम बुरी तरह जकड़े हुये हैं। इनसे जब तक छुटकारा न मिलेगा तब तक हमारी ऐसी दुर्गति बनी रहेगी और उज्ज्वल भविष्य की आशा एक दिवास्वपन एवं मृग-तृष्णा ही सिद्ध होगी।

प्रगति के पथ पर अग्रसर होने की आकांक्षा यदि हम वस्तुतः कर रहे हों तो आर्थिक उन्नति के प्रयास तक ही सीमित न रहकर समाज निर्माण के लिये भी प्रयत्न करना होगा। संग्रहणी जैसे रोग से ग्रसित व्यक्ति को कुछ भी खिलाया-पिलाया जाय उसका स्वास्थ्य सुधरेगा नहीं। समाज कुरीतियों को संग्रहणी, तपैदिक, खूनी बवासीर जैसे रोगों में ही गिनना चाहिए, उनके रहते उन्नति के लिए सारे प्रयत्न बेकार ही सिद्ध होते रहेंगे।

रोग का ठीक निदान आवश्यक है। तभी उसकी चिकित्सा हो सकती है। इस पुस्तक में देश और जाति को दुर्बल बनाने वाले रोग का विश्लेषण इसलिये किया गया है कि विचारशील लोग उसकी भयंकरता को समझें और यह देखें कि अभ्यास में पड़ी हुई साधारण दीखने वाली कुरीतियों की भयंकरता कितनी अधिक है। हम उनके आदी हो गये हैं। अफीमची को जैसे वह व्यसन आरम्भ में एक साधारण-सी बात मालूम पड़ती है पर हानि का पता चलता है, जब वह अपना स्वास्थ्य पूर्णतया खो बैठता है। उसी प्रकार कुरीतियों में अभ्यस्त समाज को उसके सुधार की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती और न उसमें कुछ अखरने वाली ही बात प्रतीत होती है, पर जब विचारपूर्वक देखा जाता है तो प्रतीत होता है कि बुराई उपेक्षणीय एवं नगण्य नहीं वरन् प्राण-घातक संकट की तरह भयंकर है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हमारा एक बहुत बड़ा दोष यह है कि हमने सभी सामाजिक प्रथाओं को भी धर्म के एक अंग की तरह मान लिया है, जिनमें परिवर्तन करना मानो एक बड़ा पाप है। यह मान्यता हमारी बौद्धिकता का खोखलापन प्रकट करती है। सामाजिक प्रथाएँ सदा देश-काल के अनुसार बदलती रहती हैं। हमारे देखते-देखते गत ५०-६० वर्षों में विवाह शादियों की व्यवस्था में कई तरह के परिवर्तन हो गये। उस समय दूल्हा (वर) अनिवार्य रूप से लाल रंग के एडी तक लम्बी झंगा पहनते थे और पालकी में चलते थे, पर आज वे कोट पतलून पहिनकर मोटर में बैठकर पाणिग्रहण करने जाते हैं। ऐसी ही और भी बहुत-सी तीज-त्यौहार सम्बन्धी रस्में हैं, जो धीरे-धीरे बहुत कुछ बदल गई हैं। पर जब कोई व्यक्ति समाज सुधार का नाम लेकर किसी परिवर्तन का सुझाव देता है तो कितने ही लोग झूठ-मूठ धर्म गया, प्राचीन परम्परा नष्ट हुई बड़ा शोर मचाने लग जाते हैं, यही कारण है कि कितनी सामाजिक और धार्मिक परम्परायें जो अब असामयिक हो गई हैं हानिकारक होने पर भी प्रचलित हैं और इससे समाज की प्रगति में बहुत बाधा पड़ रही है।

हमको यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि 'लकीर के फकीर' बने रहना कोई प्रशंसा या गौरव की बात नहीं है। प्रगतिशील और ऊँचा उठने वाली जातियाँ समय के साथ ही चलती हैं, स्वयं अपना सुधार करके दूसरों के लिये भी मार्गदर्शक सिद्ध होती हैं, पर उसके विपरीत जो जाति छोटी-मोटी महत्वहीन परम्परा को बनाये रखने के लिये ही हाथ-पैर पीटती रहती हैं, वे समझदार लोगों द्वारा "कूप-मण्डूक की पदवी पाती हैं।

सामाजिक कुरीतियों ने पिछले दिनों में हमें बहुत कष्ट दिये हैं, अभी भी बहुत त्रास दे रही हैं और यदि उन्हें दूर न किया जा सका तो आगे भी भयानक विपत्ति बनकर वे हमें नष्ट करेंगी। अतएव समय रहते सँभलने और चेतने की आवश्यकता है। इस आवश्यकता को जितनी जल्दी, जितनी गम्भीरतापूर्वक अनुभव किया जा सके उतना ही उत्तम है।

यह भूलना न चाहिए कि आन्तरिक दुर्बलतायें, बाह्य आक्रमण से अधिक घातक होती हैं। पिछले दिनों हम अपनी निज की दुर्बलताओं के कारण ही विविध विधि कष्ट उठाते रहे हैं और अब भी हमारी प्रगति का मार्ग 'उन्ही के कारण अवरुद्ध है। आवश्यकता इस बात की है कि हम गम्भीरतापूर्वक आत्म निरीक्षण करें, अपनी दुर्बलताओं को ढूँढें और उनके उन्मूलन के लिये संगठित रूप से सुव्यवस्थित प्रयत्न आरम्भ करें।

यह संकीर्णता हमें मार ही डालेगी

भारतीय संविधान के निर्माता तथा प्रसिद्ध हरिजन नेता डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने अपने देश में हरिजनों और पिछड़े वर्ग के लोगों की दुर्दशा पर अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए कहा था—"बापू, मेरा अपना कोई देश नहीं है । इस भूमि को मैं कैसे अपना देश कहूँ और इस (हिन्दू) धर्म को कैसे अपना धर्म कहूँ ? जहाँ हम से पशुओं से भी बदतर व्यवहार किया गया तथा जहाँ हमें पीने के लिए पानी तक भी नहीं मिल पाता।"

ये शब्द कहते हुए डॉ. अम्बेडकर का गला रुँध आया था और इन शब्दों में सभी उपेक्षित और पददलित जातियों को करुण पुकार मुखर हो उठी, जिसे सुनकर महात्मागाँधी भी द्रवित हुए बिना नहीं रहे। कहा जाता है कि हिन्दू धर्म संसार के सभी धर्मों से श्रेष्ठ है तथा हिन्दू संस्कृति अपने में वे सभी विशेषतायें समेटे हुए है, जो उसे विश्व संस्कृति के रूप में प्रतिष्ठित कर सकती हैं, परन्तु इसी विश्वधर्म के अनुयायियों के सम्बन्ध में जब यह तथ्य प्रकाश में आता है कि यहाँ शताब्दियों से वर्ग विशेष के प्रति जानवरों से भी बुरा व्यवहार किया जाता रहा है तो संस्कृति और धर्म के गौरवाभिमानी व्यक्तियों के सिर शर्म से झुक जाते हैं, उस समय हिन्दू धर्म की सारी श्रेष्ठता इस संकीर्ण भेद भावना और जातिवाद के धूम्र वाहि की तरह छुप जाती है। हिन्दू समाज में जातीय भेदभाव और छुआछूत की जड़ता को देखकर अहिन्दू लोग यह आरोप तक लगा देते हैं कि इस धर्म में मनुष्य के प्रति कोई सद्भावना नहीं है, अछूतों को देखकर वे हिन्दुओं की धर्म भावना, अध्यात्म दर्शन तथा आदर्शों का अनुमान लगाते हों तो उसकी अनुपमता से वे कितने प्रभावित होते होंगे, इसका अनुमान लगाने के लिए भी बुद्धि जड़ हो जाती है।

जातिवाद और ऊँच-नीच की मान्यताओं को हिन्दू समाज के विशाल वृक्ष में लगा एक ऐसा विषैला कीड़ा कहा जाय जो इसकी जड़ों को खाये जा रहा है और इसे सुखाता जा रहा है तो अनुचित न होगा। यह छुआछूत और ऊँच-नीच की मान्यताओं का परिणाम ही कहा जाना चाहिए कि हिन्दू समाज निरन्तर विघटन की ओर अग्रसर होता जा रहा है। शताब्दियों तक हमें मुट्ठी भर लोगों की गुलामी सहनी पड़ी—इसका कारण भी अधिकांश रूप से यह संकीर्ण जाति प्रथा और ऊँच-नीच की मान्यता रही है। क्योंकि इसी के कारण हिन्दू समाज कभी भी संगठित होकर आक्रमणकारियों का मुकाबला नहीं कर पाया और सदा ही उसे आक्रामक जातियों के सम्मुख घुटने टेक देने पड़े। इस संकीर्णता का लाभ उठाकर ही विदेशी जातियाँ कई बार आयीं, थोड़े-से सैनिकों को लेकर प्रायः हर बार हिन्दुओं को परास्त कर, जबकि वे संख्या में उनसे अधिक थे और बाहुबल में भी कम नहीं। परन्तु वह संकीर्ण भावना जिनके अनुसार एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के हाथ का पानी पीना भी पाप समझा जाता था हिन्दू जाति को संगठित होने से सदा ही रोकती रही।

मुट्ठी भर लोग बाहुबल और संख्या बल में भी अधिक हिन्दुओं को रौंदते रहे और यहाँ तक कि उन पर अपनी प्रभुता भी जमा ली। फिर भी हिन्दू धर्म चौके,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चूल्हे तक और ऊँच-नीच तक ही समझा जाता रहा, जिस धर्म दर्शन ने 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का सन्देश दिया उसकी कौन-सी शिक्षा का यह अर्थ लगाया गया कि वंश और व्यवसाय विशेष के कारण कोई व्यक्ति इतना ऊँचा है कि दूसरा व्यक्ति उसकी छाया पर भी पाँव नहीं रख सकता और कोई व्यक्ति इतना नीचा है कि उसका मुँह देखना भी पाप हो गया। जिस किसी भी अन्धयुग में यह मान्यता प्रतिष्ठित की गयी उस युग ने हिन्दू-समाज को एक अभिशाप दे दिया जिससे वह आज तक भी अभिशप्त है।

उस अभिशाप के दुष्परिणाम तत्काल ही सामने आने लगे पराजय के रूप में, विघटन, दुर्बलता और प्रतिगामिता के रूप में। ऊँच-नीच और छुआछूत की दुर्बलता से विवश होकर हिन्दू समाज ने जब विधर्मियों को सामने घुटने टेके और उन्हें भी यह सुराग मिला तो हिन्दू-समाज को आन्तरिक दृष्टि से निर्बल बनाने के प्रयत्न भी किये जाने लगे। अछूत भी आखिर मनुष्य ही है और मनुष्योचित अधिकारों के उपभोग की स्वाभाविक आकांक्षा उसे भी है ही लेकिन उनका मुँह देखना भी पाप, छूना भी अधर्म, पातक और भगवान की मूर्ति पर उसकी दृष्टि पड़ना भी जघन्य अपराध हो तो विवशता से भले ही वह इन अत्याचारों को सहता जाय, अवसर मिलते ही अपने अधिकारों के प्रति सजग और आतुर अवश्य हो उठेगा।

विदेशी-विधर्मी शासकों ने अछूतों की इस भावना को समझा और सवर्णों की मान्यताओं का भी अध्ययन किया। हिन्दू जाति को आन्तरिक दृष्टि से निर्बल बनाने के लिए अच्छा आसान तरीका मिल गया कि अछूतों को अपने धर्म में दीक्षित कर लिया जाय और यह प्रक्रिया चल पड़ी। अछूतों का धर्म-परिवर्तन होने लगा और हिन्दू जाति के ही अभिन्न अंग उसी जाति के दुश्मन बन गये। उस समय की जड़ विडम्बना को क्या कहें ? हिन्दू रहते समय तक जिन व्यक्तियों के पास से भी नहीं गुजरने दिया जाता था वे ही व्यक्ति जब विदेशी-शासन के पृष्ठ पोषक तथा हिन्दू-जाति के शत्रु बन गये तो लोग झुक-झुक उनका अभिवादन भी करने लगे।

इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं की संख्या कम होने लगी। एक समय था जब हिन्दू धर्म के अनुयायियों की संख्या संसार में सबसे ज्यादा थी और अब स्थिति यह है कि हिन्दू धर्म के अनुयायी केवल भारत में ही रह गये हैं। संख्या में भी वे सबसे कम हैं। इसे जातीयगत भेदभाव और संकीर्णता का ही कुफल कहना चाहिए। इससे भी आश्चर्यचकित कर देने वाली बात तो यह है कि अपनी संकीर्णता का इतना बड़ा बुरा घातक दुष्परिणाम देखकर भी हिन्दू समाज अब तक अपने इन भाइयों को अपनाने में हिचकिचाहट महसूस करता है, जबकि अब परिस्थितियाँ सर्वथा भिन्न हैं, न विदेशी राज्य है और न वह समय जबकि अविवेकपूर्ण मूढ़-मान्यतायें भी परम्पराओं के रूप में आदृत बनी रहें।

स्वतन्त्रता आन्दोलन में हिन्दू समाज के नेताओं ने अपने समाज की इस त्रुटि को पहचाना था और उसे सुधारने के प्रयत्न भी किये। राजा राममोहनराय, महर्षि, दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक, महामना मालवीय, महात्मागाँधी, विनोबा भावे आदि महापुरुषों ने इस कमजोरी को दूर करने के प्रयत्न किये और इसे स्वराज्य आन्दोलन का ही एक अंग बनाया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तो इस दिशा में और भी प्रबल प्रयत्न चले, सरकार की ओर से सुधारवादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है तथा हरिजनों को, अछूतों को आगे बढ़ने के अवसर भी। फिर भी हिन्दू जनता के मानस में यह मान्यता न जाने कितनी गहराई तक अपनी जड़ें जमा चुकी है कि वह अब भी अछूतों के साथ-समानता का व्यवहार नहीं कर पाती।

संकीर्णता का भीषण दण्ड— इतिहास गवाह है

भारतीय संस्कृति पर प्रायः पिछड़पेन और रूढ़िवादिता का आरोप लगाया जाता है, तथ्यों के सन्दर्भ में इस आरोप पर यदि विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि हमारी संस्कृति में न पिछड़ेपन का दोष है और न रूढ़िवादिता, संकीर्णता की कमजोरियाँ। इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो यह तथ्य बड़ा बुलन्दगी से सामने आते हैं कि भारतीय संस्कृति आदिकाल से अब तक नये तत्वों को अपने में समाविष्ट करने की सामर्थ्य से सदैव सम्पन्न रही है और इसी कारण, रोम तथा यूनान की सभ्यतायें जहाँ खण्डहर हो चुकी हैं, वहीं भारतीय संस्कृति आज भी जीवन्त और प्राणवान् है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीय समाज में कोई दोष कभी रहा नहीं। दोष रहे हैं और उन दोषों के इतने भीषण दण्ड भी भारतीय समाज को सहने पड़े हैं कि यदि हमारी संस्कृति प्राणवान और जीवन्त न रही होती तो वह भी अब तक कभी भी अतीत का विषय बन जाती। उदाहरण के लिए, मध्यकालीन भारतीय इतिहास को लें, उन दिनों हमारे समाज में इतनी अधिक कुरीतियाँ, इतने अधिक दोष और इतनी अधिक कुप्रथायें प्रचलित रही हैं जिनका हमें महँगा मूल्य चुकाना पड़ा है और सदियों की दासता सहनी पड़ी है। परन्तु हमारी संस्कृति के प्राण इतने सबल रहे हैं कि उन अन्धकार भरे मार्गों से गुजरते हुए भी आज भारतीय संस्कृति जीवित है। फिर भी संस्कृति की जीवन्तता को देखते हुए सामाजिक कुरीतियों और मूढ़ मान्यताओं को क्षम्य नहीं कहा जा सकता। वे समाज की प्रगति यात्रा को अवरुद्ध तो करती ही हैं। यही कारण है कि हमारी संस्कृति जहाँ महान् है, वहीं हमारे समाज की तस्वीर की एक पिछड़ी और अन्ध मान्यताओं से जकड़ी हुई जाति के रूप में सामने आती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विदेशी विद्वान भारतीय संस्कृति की महानता को देखकर जहाँ अभिभूत हो उठते हैं, वहीं भारतीय समाज के पिछड़ेपन को देखकर आश्चर्यचकित भी रह जाते हैं। एक विदेशी विद्वान ने तो यहाँ तक कहा है कि—"भारत एक समृद्ध देश है, जहाँ कंगाल लोग निवास करते हैं।" समृद्ध इस मायने में कि हमारी संस्कृति के जीवन मूल्य उच्च ही नहीं महानतम हैं। हमारा सोचने-समझने का ढंग उनसे नितान्त विपरीत है। भारतीय आदर्शों की दुनिया की कोई भी संस्कृति कल्पना नहीं कर सकती परन्तु भारतीय नागरिकों में व्यक्तिवाद, संकीर्णता और संकुचितता की जितनी क्षुद्रतायें विद्यमान हैं उतनी अन्यत्र कहीं नहीं। ऊँच-नीच, जाति-पाँति, वर्णभेद, लिंगभेद और अनुदारता के हीन तत्व भी भारतीय समाज में प्रचुरता से मिलते हैं।

इन सामाजिक त्रुटियों के कारण भारतीय संस्कृति पर पिछड़ेपन का आरोप नहीं लगाया जा सकता है। पिछड़ापन है तो समाज के चिन्तन और लोगों की आस्थाओं में, दुर्बल है तो वह काया जिसके द्वारा लौकिक विकास और स्थूल उपलब्धियों की प्राप्ति और उनकी सुरक्षा की जा सकती है। सबल प्राण और सशक्त आत्मा के होते हुए भी शरीर क्षीणता को क्षम्य दोष नहीं कहा जा सकता, वह अक्षम्य अपराध ही बना रहेगा और उसका दुष्परिणाम दण्ड के रूप में ही भोगना पड़ेगा। समाज में व्याप्त अनुदारता और संकीर्णता के दोषों के कारण ही हमारे समाज को मध्यकाल में पराधीनता का दुःखद दण्ड मिला। जिन दिनों इस देश में विदेशी आक्रमणकारी आये, तब उनका उद्देश्य लूटमार कर थोड़ा बहुत धन ले जाना ही होता था। वे संख्या में थोड़े थे और साधन भी उनके पास स्वल्प ही थे किन्तु हमारी कमजोरियों के कारण ही उन्हें यहाँ का शासक बनने की सूझी और वे शताब्दियों तक यहाँ शासन करते रहे। यहाँ तक कि सनकी और पागल दिमाग के व्यक्ति भी बेखटके अपना शासन चलाते रहे।

घटना तेरहवीं शताब्दी की है और इस बात का प्रमाण है कि हम अपनी मूर्खताओं के कारण किस प्रकार उन्हीं व्यक्तियों को अपना शत्रु बनाते रहे, जो समाज का सिर गर्वोन्नत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते थे। तब दिल्ली की गद्दी पर मुहम्मद तुगलक आसीन था, जिसकी मूर्खतापूर्ण हरकतों के कारण इतिहासकारों ने आगे चलकर उसे सनकी और पागल बादशाह करार दिया।

मुहम्मद तुग़लक के सनकीपन से शासन प्रबन्ध में भी अस्तव्यस्तता आयी और दिल्ली के अधीन रहने वाले सूत्रों के संचालक भी अपने को स्वतन्त्र कहने लगे। बंगाल का हाजी इलियास उन्हीं सूबेदारों में से था, जो अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर चुके थे। अपनी स्वतन्त्रता सिद्ध करने के लिए उसने दिल्ली से सम्बन्ध तोड़ लिया और शम्सुद्दीन की उपाधि धारण कर स्वतन्त्र रूप से राजकाज चलाने लगा। शम्सुद्दीन ने अपनी जड़ें मज़बूत बनाने के लिए बंगाल के प्रमुख व्यक्तियों को अपने पक्ष में करना आरम्भ किया। इसके लिए उसने प्रभावशाली व्यक्तियों को बड़ी-बड़ी जागीरें बाँटी, खास-खास लोगों को शासन में उच्च पदों पर नियुक्त किया और पुराने जागीरदारों को और भी महत्वपूर्ण ओहदे दिये। इन्हीं जागीरदारों में से एक थे नयनचन्द्र राय। नयनचन्द्र राय भादुड़ी वंश के जागीरदार थे और उनकी जागीर में भोजनीर का इलाका आता था। शम्सुद्दीन को अपनी वफादारी और नीति-निपुणता से प्रभावित कर नयनचन्द्र राय ने राज्य के सभी जागीरदारों में अपना उच्च स्थान बना लिया और बादशाह के यहाँ फौजदार भी बन गये। इन्हीं नयनचन्द्र राय के सुपुत्र का नाम कालाचन्द राय, जो बहुत ही शक्तिशाली, बुद्धिमान और मेधावी था। एक तो पिता का प्रभाव, दूसरे स्वयं अपनी योग्यता इन दोनों के बल पर कालाचन्द भी शाही सेना में फौजदार हो गया। बादशाह उसके गुणों से इतना प्रभावित था कि चाहता था कालाचन्द हमेशा अपने पास ही रहे। यही नहीं बादशाह ने कालाचन्द को पूरी तरह अपना बना लेने के लिए राजकुमारी 'दुलारी बीबी' का विवाह उसके साथ कर दिया।

यद्यपि कालाचन्द हिन्दू होते हुए एक मुसलमान कन्या से विवाह नहीं करना चाहता था। इसके लिए उसने बादशाह के प्रस्ताव को दृढ़तापूर्वक ठुकरा दिया था और बादशाह ने शाही आज्ञा की अवहेलना करने के अपराध में कालाचन्द को मौत की सजा सुना दी थी। किन्तु राजकुमारी बीबी स्वयं कालाचन्द से प्रेम करती थी और उसे मन ही मन अपना पति स्वीकार कर चुकी थी। जब दुलारी को यह पता चला कि कालाचन्द को मौत की सजा दी गयी है और शाही फरमान पूरा करने के लिए उसे वध-स्थल पर ले जाया जा रहा है तो वह राजमहल की मर्यादाओं को तोड़कर वध-स्थल पर गयी और कालाचन्द से पहले स्वयं को मारने के लिए कहा।

राजकुमारी के इस प्रेम और उत्सर्ग ने कालाचन्द को इतना प्रभावित किया कि उसने अपनी जिद छोड़ दी और दुलारी बीबी से विवाह करना स्वीकार कर लिया। दुलारी के इस कृत्य की सूचना बादशाह को जैसे ही मिली, शाह शम्सुद्दीन ने कालाचन्द को दण्ड मुक्त कर दिया। उसी दिन कालाचन्द और दुलारी बीबी का हिन्दू पद्धति से विवाह हो गया।

यहाँ तक तो सब ठीक हुआ। दुलारी बीबी ने अपनी पति भावनाओं का आदर करते हुए हिन्दू पारिवारिक मर्यादाओं को अपना लिया था, किन्तु उस समय के पुरातन पन्थी ब्राह्मणों और धर्म के ठेकेदारों की दृष्टि में कालाचन्द का दुलारी बीबी से विवाह अधार्मिक विवाह था और इसके लिए उन्होंने कालाचन्द को जाति बहिष्कृत कर दिया। कालाचन्द ने यह अपमान का घूँट भी पिया। उसने वापस धर्म में लेने के लिए पण्डितों से शास्त्रीय विधान भी पूछे, आज्ञानुसार प्रायश्चित करने का उत्साह भी दर्शाया, पर कालाचन्द की धर्मभीरुता ने पण्डितों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को और भी अभिमानी बना दिया। एक बार कालाचन्द किसी मन्दिर में दर्शन के लिए गया और वहाँ के पन्डों तथा पुजारियों को इस बता का पता चला तो वे दौड़े आये और उन्होंने कालाचन्द को अपमानित कर वहाँ से भगा दिया। उसे भगवान् के विग्रह का दर्शन नहीं करने दिया।

यह अपमान कालाचन्द के मन में शूल की भाँति चुभ गया। उसने विचार किया कि जब हिन्दू समाज ही मुझे नहीं अपनाता तो मैं ही हिन्दू समाज के प्रति इतना लगाव क्यों रखूँ ? उसके मन में अपने अपमान का बदला लेने की बात रह-रहकर उठने लगी और प्रतिशोध का फणधर रह-रहकर फुफकारने लगा। इस घटना से विक्षुब्ध होकर कालाचन्द ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया और अपना नाम कालाचन्द से बदलकर मुहम्मद फर्मूली रख लिया। कालाचन्द द्वारा किया गया यह धर्म परिवर्तन भविष्य के उन पृष्ठों की फड़-फड़ाहट थी, जिसमें उसका आतंक काला पहाड़ के रूप में छाया।

एक समय का धर्मनिष्ठ और श्रद्धा भावनाओं से परिपूरित कालाचन्द अब हिन्दू धर्म का जानी दुश्मन बन गया। कुछ दिनों बाद शाहशम्सुद्दीन ने कालाचन्द को उड़ीसा पर आक्रमण करने के लिए भेजा। उड़ीसा पर उन दिनों राजा मुकुन्ददेव का राज्य था। मुहम्मद फर्मूली, जिसे लोग अब कालापहाड़ कहकर पुकारने लगे थे, उड़ीसा पर चढ़ दौड़ा। उड़ीसा को बायें हाथ से फतह कर कालापहाड़ ने वहाँ की हिन्दू जनता को बहुत बुरी तरह लूटा और कत्ले आम मचा दिया। यही नहीं उसने जगन्नाथ मन्दिर की मूर्ति भी तोड़ दी। न केवल जगन्नाथ मन्दिर को वरन् उसे रास्ते में जो भी मन्दिर मिले, वह उन्हें तोड़ता-फोड़ता आगे चला गया। रास्ते में भी उसे जो मन्दिर मिले उन सभी को उसने लूटा और असंख्य हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाया।

जौनपुर के नवाब का तब दिल्ली के बादशाह बहलोल लोदी से काफी पुराना युद्ध चल रहा था। कालापहाड़ की वीरता से प्रभावित होकर जौनपुर के नबाव ने शम्सुद्दीन से कालापहाड़ की सहायता माँगी। शाह शम्सुद्दीन की अनुमति पाकर कालापहाड़ जौनपुर के नबाव की सहायता के लिए सेना लेकर रवाना हुआ। बहलोल लोदी को जब इसका पता चला तो उसने बड़ी चालाकी से कालापहाड़ का अपहरण कराकर उसे दिल्ली मँगा लिया। यद्यपि कालापहाड़ उस समय पूरी तरह बहलोल लोदी की गिरफ्त में था। यदि वह चाहता तो कालापहाड़ को मरवा देता या उसे बन्दी बनाकर रखता किन्तु उसने ऐसा कुछ नहीं किया उल्टे कालापहाड़ का शाही ठाट-बाट से स्वागत सत्कार किया और कालापहाड़ से अपनी लड़की की शादी कर उसे पूरी तरह अपने पक्ष में कर लिया। यही नहीं बहलोल लोदी ने कालापहाड़ को शाही सेना का सेनापति भी बना दिया तथा उसी के सेनापतित्व में जौनपुर के नबाव पर आक्रमण करवाया। कालापहाड़ ने बड़ी चतुरता और वीरता से जौनपुर के नबाव को हराकर उसके राज्य को दिल्ली सल्तनत में मिला लिया। बहलोल लोदी से मिल जाने का कारण यही नहीं था कि कालापहाड़ किसी प्रलोभन में आ गया हो। बल्कि उसने तो देखा था कि हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ काशी जौनपुर में आता था और इस प्रकार वह प्रतिशोध की प्रतिज्ञा और भी आसानी से पूरी कर सकता था। जौनपुर जीत लेने के बाद कालापहाड़ ने काशी में प्रवेश किया तो वहाँ भी भारी कत्लेआम मचाया।

बताया जाता है कि काशी में अपना क्रोध बरपा करने के बाद कालापहाड़ न जाने कहाँ चला गया ? सम्भव है उसे अपनी आत्मा की प्रताड़ना सहनी पड़ी हो कि जिस धर्म का वह निष्ठावान अनुयायी रहा था, उसी का इतना घोर शत्रु क्यों बन गया ? इस क्यों के उत्तर में कालापहाड़ उतना दोषी नहीं है जितना कि तत्कालीन हिन्दू समाज। जिसने अपनी संकीर्णता और अनुदारता के कारण एक निष्ठावान धर्म, अनुयायी को धर्म का शत्रु बना दिया। कालापहाड़ का उदाहरण इस बात का साक्षी है कि धर्म संस्कृति किसी समाज को विभाजित नहीं करती और न ही उसे कमजोर बनाती है। कमजोर बनाती है समाज की संकीर्णता और रूढ़िवादिता।

उस युग में इस तरह के न जाने कितने काले पहाड़ समाज की संकीर्णता के कारण उत्पन्न हुये होंगे। यह संकीर्णता ही किसी समाज को घुन की तरह खा डालती है और उसे निस्तेज बना देती है। इस दृष्टि से हमारा समाज आज भी कोई बहुत उदार और तेजस्वी नहीं बन सका है। जाति-पाँति, ऊँच, नीच, ब्राह्मण, शूद्र, सवर्ण, अवर्ण कि कितनी ही भेदभरी खाइयाँ हैं, जिनसे समाज आगे बढ़ने के बजाय पीछे लौटने लगता है और प्रगति के बजाय पिछड़ेपन का शिकार होने लगता है।

हिन्दू जाति का कलंक—अस्पृश्यता

यों तो उपजातियों और प्रजातियों के रूप में हिन्दू संगठन पहले ही विशृंखलित है। अस्पृश्यता ने तो उसमें दरार ही डाल दी। हिन्दू जाति कुलीन और हरिजन दो धाराओं में विभक्त होकर अपने अस्तित्व को खोने जा रही है। जीवन की जटिलताओं से ऊबे हुये सैकड़ों अमेरिकन और पाश्चात्य देशों के निवासी जिनमें व्यवसायी, डाक्टर, वकील और छात्र शामिल हैं आत्मशोध और आत्म-सन्तोष के लिये हिन्दू-धर्म की शरण ले रहे हैं, जो नये लोग हिन्दूधर्म की ओर झुके हैं, उनमें अमेरिका के प्रख्यात सिने कलाकार सिनात्रा और शर्ल मैक्लैन भी हैं। पर अपनी ही आधी जाति आज खुशी-खुशी ईसाई धर्म में दीक्षित होने जा रही है। पाकिस्तान के शिक्षामन्त्री ने बताया कि पिछले वर्ष पाकिस्तान में जितने लोग ईसाई बने, उनमें मुसलमान एक भी नहीं था अधिकांश हरिजन हिन्दू थे। राँची जिले में एक महीने में १ हजार अस्पृश्य हिन्दू ईसाई बने।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मध्यप्रदेश के झाबुआ, बस्तर जिले आन्ध्र, मद्रास तथा आसाम और नागालैण्ड में प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में लोग ईसाई बनते जा रहे हैं। इन दीक्षितों में अधिकांश हरिजन होते हैं, जो बड़ी आसानी से बहका लिये जाते हैं। जातीय अपमान से क्षुब्ध होकर डॉ. अम्बेडकर जैसे विद्वान हिन्दू हरिजन को बौद्ध धर्म की शरण लेनी पड़ी थी। ऐसा उन्होंने बहुत दुःखी एवं हिन्दुओं की दकियानूसी विचारधारा से तंग होकर किया।

स्वराज्य संग्राम से एक बात निश्चित रूप से सामने आई है कि यदि विश्व के समक्ष धर्म और जातीय गौरव को स्थिर रखना है तो जाति-पाँति का भेद मिटाकर जन्म-जाति की बड़ाई का त्याग कर ही देना चाहिए।

महात्मा नारायण स्वामी ने एक बार कहा था—"जाति-पाँति और अस्पृश्यता का बन्धन हिन्दू जाति के लिये कलंक का टीका है। इसने सारी जाति को छिन्न-भिन्न कर रखा है। हिन्दू-जाति में परस्पर घृणा और द्वेष का प्रचार इसी की कृपा का कुफल है। इसलिये भारतीय संस्कृति की उन्नति के लिये इस बन्धन को सर्वप्रथम तोड़ना आवश्यक है।" इस तथ्य से कोई भी विचारशील व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता।

महात्मा गाँधीजी की समाजसेवा में हरिजनों के उत्थान का उद्देश्य पहले नम्बर पर था। आज जो थोड़ी-सी सुविधायें हरिजनों को मिली हैं, वह उन्हीं के प्रयत्नों का फल है पर सुविधायें देकर उनकी समस्याओं का निराकरण नहीं किया जा सकता। उन्हें शिक्षा-दीक्षा का विशेष प्रबन्ध कर अब तक पाये कुसंस्कारों को कम करना ठीक है पर देखना यह चाहिये कि वे उस वर्ग के साथ बैठकर भोजन कर सकते हैं या नहीं। सामाजिक उत्सवों में, पारस्परिक व्यवहार, धार्मिक उपासनाओं आदि में भी भाग ले सकते हैं या नहीं। मस्तिष्क इतना विवेकी और यर्थाथवादी हो कि हरिजनों को मानवीय दृष्टिकोण से देखा जा सके, तब काम चलेगा। हम मुसलमानों, ईसाइयों के साथ बैठकर भोजन कर सकते हैं तो भंगी-चमार और धोबी के साथ क्यों नहीं बैठ सकते ?

हरिजन अस्पृश्य है, इस घृणित मनोवृत्ति का परित्याग किये बिना हिन्दू जाति संगठित नहीं हो सकती और न उसके अभाव में देर तक अपना अस्तित्व ही बनाये रख सकती है। बौद्ध, जैन, दादू, कबीर, रैदास आदि धर्म और पंथ हिन्दू धर्म से अलग होकर बने हैं और उनका अधिकांश कारण छोटी जाति के लोगों को अवहेलना और उदासीनता ही रही है। परमात्मा की सृष्टि का हर व्यक्ति समान है चाहे उसका रंग, वर्ण, कुल और गौत्र कुछ भी क्यों न हो ? वैसे हिन्दू एक जाति है, उसमें कार्य की दृष्टि से भले ही अनेक इकाइयाँ हों वह सब इकाइयाँ अपने-अपने स्थान पर महत्वपूर्ण हैं न कोई छोटा न कोई बड़ा इसलिये मानवीय दृष्टि से भी हरिजनों या अस्पृश्यों को घृणित और उपेक्षित दृष्टि से देखना ठीक नहीं। इस कलंक को दूर करना हर बुद्धिमान और विचारशील भारतीय का कर्त्तव्य है। उसके बिना हम संसार के सामने स्थिर रहना दूर अपना अस्तित्व बनाये रखने में ही समर्थ न होंगे।

अस्पृश्यता का पाप कुछ और भी कर सकता है

मालावार के नम्बूदरी परिवार से एक महिला को इसलिये निकाल दिया गया क्योंकि उसने एक हरिजन का स्पर्श कर लिया। किसी भी हिन्दू परिवार ने बाद में न तो उसे घर पहुँचाने में मदद की और न ही किसी तरह का संरक्षण दिया।

लगभग ४५ वर्ष पूर्व की इस घटना को पढ़कर लगता है, अस्पृश्यता का पाप भारतीय समाज को और भी पतन के गर्त में धकेल सकता है। इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि मुसलमानों की इस देश में विजय इसी पाप के कारण हुई। हरिजनों के प्रति भेदभाव के परिणामस्वरूप आक्रमणकारियों को खुलकर मदद मिली और वे सर्वत्र विजयी होते गये। यदि उन्हें दुत्कारा न जाता, अपने को हिन्दू मानने का गौरव उन्हें भी बना रहता तो भारतवर्ष को २००० वर्ष की दासता का मुँह न देखना पड़ता।

आज हम स्वाधीन हैं पर यह खतरा अभी भी ज्यों का त्यों विद्यमान है। यह बात इसी घटना से पुष्ट हो जाती है। नौकर सामान का बोझ उठाये ला रहा था। वजन इतना अधिक था कि वह दबा जा रहा था। बेचारे की आँखें लाल हो रही थीं। अपने बच्चों को कष्ट में देखते हैं तो स्वभावतः करुणा छलक उठती है। परमात्मा ने मनुष्य को संवेदनशील बनाया है। आत्मा किसी को कष्ट-पीड़ित देखकर करुणा व्यक्त किये बिना नहीं रह सकती। चेनम्मा नामक इन भद्र महिला को नौकर पर दया आ गई। उन्होंने आगे बढ़कर उसका बोझ उतार लिया। इतना ही अपराध था जो परिवार के लिये आफत बन गया।

चेनम्मा ने यह सहायता विशुद्ध मानवता की दृष्टि से की थी। हिन्दू जाति का होने के नाते तो उसके प्रति और भी घनिष्ठ कर्त्तव्य थे। हरिजन समाज की कितनी सेवा करते हैं। उन सेवाओं के प्रति हम कृतज्ञ न हों तो कहाँ रही हमारी मानवतावादी संस्कृति ? अपनी जाति के ही एक अंग को ठुकराकर हिन्दू जाति विसंगठित हुई और उसका लाभ दूसरी जातियों ने, धर्मावलम्बियों ने उठाया।

पति ने उसे देख लिया तो पहले तो गालियाँ दीं। फिर घर से निकाल दिया। महिला गाँव के सम्भ्रान्त और प्रभावशील व्यक्तियों के पास गई और पूछा—"क्या हरिजन का स्पर्श अपराध है। यदि हाँ तो क्यों नहीं उनके लिये पृथक् गाँव बना दिये जाते। उनसे घरों का काम और वह सामान क्यों स्पर्श कराया जाता है, जो बाद में सवर्णों के चूल्हों तक में पहुँचता है ?" महिला ने हरिजनों के पक्ष में अनेक दलीलें देकर अपने को निरपराध सिद्ध करने का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयत्न किया पर जहाँ परम्परावादियों की पाँत लगी हो वहाँ नक्कार खाने में तूती की आवाज को सुने कौन ? बेचारी स्त्री को किसी ने शरण न दी। जो हिन्दू समाज दया और मानवता का पोषक बनता है, उसे ही दयालुता का एक छोटा-सा प्रसंग भी सहन न हुआ।

स्त्री के लिये जब सभी हिन्दुओं के दरवाजे बन्द मिले तो उसका भी सोया हुआ आत्माभिमान जाग पड़ा। उसने पुकार की है कोई गाँव में ऐसा जो मेरे जीवन-निर्वाह का संबल बनें और तब आगे आया बढ़कर एक मुसलमान। उसने कहा—तुम्हारे लिये हमारे घर के दरवाजे खुले हैं। स्त्री उसके साथ चली गई और उसी गाँव में अन्त तक रही।

हरिजन के स्पर्श से जिनका वंश दूषित हो गया था। उन्हीं के सामने उनकी स्त्री एक मुसलमान के घर रही तब उन्हें कलंक न लगा होगा ? अविवेकी हिन्दू समाज को इतनी समझ आ जाती तो अफगानिस्तान से आये ७०० मुसलमानों की संख्या आज १७ करोड़ न होती। करोड़ों हिन्दू ईसाई धर्म के अनुयायी न बन गये होते। जातीय विशृंखलता और दासता के बाद अस्पृश्यता का पाप और भी कुछ कर सकता है। यदि हमने अपनी इस सामाजिक कुप्रथा को अब ठीक न किया तो वह दुष्परिणाम भी सामने आ सकते हैं।

सामाजिक कुरीतियों के घातक दुष्परिणाम

कहा जाता है कि अपना देश भारवतर्ष आर्थिक विषमता के कारण आगे नहीं बढ़ पाता किन्तु आर्थिक नहीं हमारी सामाजिक कुरीतियाँ हैं, जो हमें आगे बढ़ने से रोक रही हैं। नीचे दिये जा रहे समाचार यह बताते हैं कि इन कुरीतियों के कारण भी भारतीय समाज पददलित हुआ, जब तक वे विद्यमान रहेंगी—हमारी प्रगति कर सकना किसी भी भाँति सम्भव नहीं होगा। यह कुरीतियाँ हमारी व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति में बाधायें ही डालती रहेंगी।

ऊँच-नीच के झगड़े में फौजदारी—जस्सौर (हरियाणा) गाँव के दो ठाकुरों के परिवार में ऊँच-नीच के प्रश्न पर झगड़ा हो जाने के कारण एक व्यक्ति की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई अन्य ७ व्यक्तियों को चोटें आईं, जिनका अस्पताल में इलाज हुआ।

झगड़ा उस समय हुआ जब दो मित्रों में यह बातचीत चल रही थी कि उन दोनों में कौन बड़ी उपजाति का है ? केहरसिंह नामक यादव का कहना था कि वह बड़ा है पर उनके मित्र भगवानसिंह कुशवाह का कहना था कि हमारे घरों में यादवों की भी लड़कियाँ ब्याह कर आती हैं इसलिए हम बड़े हैं। थोड़ी देर में इस शास्त्रार्थ में और भी सहायक महारथी आ सम्मिलित हुए। बात-चीत से मामला तय न हुआ तो पुरोहित को बुलाने का निश्चय किया गया। अभी पुरोहित आ भी नहीं पाये थे कि उनमें से एक पक्ष उत्तेजित हो उठा और उसके कुछ सदस्य गालियाँ तक बकने लगे फिर क्या था पहले कहन-सुनन हुई पीछे जमकर लाठियाँ बरसीं और एक व्यक्ति मर न गया तब तक बरसती रहीं। पुरोहित आये तब तक तो वहाँ पुलिस पहुँचकर दोनों पक्ष के कई लोगों को गिरफ्तार कर चुकी थी। जेल जाते हुए ठाकुरों को देखकर पुरोहित ने कहा—जिन कारणों से देश गुलाम हुआ वह अभी ज्यों-के-त्यों बने हैं तो फिर स्वतन्त्रता का क्या मूल्य रहा। राजनैतिक स्वतन्त्रता भले ही मिल गई हो पर हम अभी भी बौद्धिक दृष्टि से पराधीन ही हैं।

अब दोनों ही पक्ष जोरदार मुकदमे की तैयारी कर रहे हैं।

हरिजनों ने गाँव छोड़ा—लुकामठी (महाराष्ट्र) गाँव के सवर्णों को इन दिनों अपने पाखाने, अपने कपड़े आप साफ करने पड़ रहे हैं। कुछ दिन पीछे गाँव के मरे हुए जानवर भी उन्हें उठाने पड़ें तो कुछ आश्चर्य नहीं।

यह स्थिति तब पैदा हुई जब गाँव के एक हरिजन ने एक कुयें से पानी भरने की कोशिश की। बेचारे हरिजन वर्षों से एक मील दूर से पानी ढोते आ रहे हैं। कुयें की जगत के आस-पास कुत्ते पाखाना फिर जायें तो सवर्णों को कुछ नहीं होता पर छुआ-छूत की घृणित असभ्यता ही है कि हरिजन को पानी भरते वे लोग नहीं देख सके। कई ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों ने मिलकर दो-तीन हरिजनों की पिटाई कर दी, उससे दुःखी होकर गाँव के सभी मेहतर तथा धोबी गाँव छोड़कर पास के गाँवों में चले गये। अब ऊँचे कहे जाने वाले ग्रामवासी अपने पाखाने आप साफ कर रहे हैं और अपनी मूर्खता पर पश्चात्ताप कर रहे हैं।

हरिजनों का तिरस्कार—न्याय और विवेक का अपमान है

संसार में कदाचित् ही कोई ऐसा देश अथवा समाज हो, जिसमें थोड़ा-बहुत जाति अथवा श्रेणी भेद न पाया जाता हो। उनमें ज्येष्ठ तथा कनिष्ठ का भाव भी पाया जाता है। किन्तु यह भेदभाव है केवल विद्या, बुद्धि, धन, दौलत तथा मनुष्य की अपनी विकसित अथवा अविकसित स्थिति के अनुसार, जन्म-जाति के अनुसार नहीं।

अमेरिका आदि देशों में यह भाव काले-गोरे के बीच पाया जाता है। इसका आधार यही है कि वहाँ की काली जाति विद्या, बुद्धि तथा सभ्यता-संस्कृति में गोरों की तरह विकसित नहीं है। स्वाभाविक है कि विकासशील गोरा वर्ग उन्हें अपने से हेय तथा हीन समझे। अब उन काले वर्गों में से जो व्यक्ति अपने अध्यवसाय के बल पर उन्नत स्थिति पाते जा रहे हैं, उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा मिलने लगी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। पढ़-लिखकर अपना विकास कर लेने पर भी वह इस लिए नीच ही समझा जाता रहे कि उसने काली जाति में जन्म लिया है ऐसी बात नहीं है। यद्यपि अब भी कुछ रूढ़िवादी व्यक्ति पुरानी लकीर पीटने की कोशिश कर रहे हैं पर अब यह प्रतिक्रिया अपवाद बनती जा रही है। इतना होने पर भी काले-गोरों के बीच छुआछूत का अभिशाप वैसा नहीं रहा जैसा भारत के सवर्णों तथा अवर्णों के बीच पाया जाता है। अपने को श्रेष्ठ तथा ऊँचा मानने वाले गोरी जाति के लोग कालों को छूने तथा उनके हाथ का खाने-पीने में कभी भी घृणा नहीं करते रहे हैं।

इंग्लैण्ड जैसे प्रगतिशील देशों में भी लार्ड, कामन्स तथा मजदूर वर्ग जैसा श्रेणी विभाजन पाया जाता है किन्तु वह है मनुष्यों की वर्तमान स्थिति के अनुसार अधिकतर राजनीतिक क्षेत्र में ही। इसका आधार जाति-जन्म नहीं है।

भारतवर्ष का जाति-भेद तथा छुआछूत का स्वरूप कुछ अजीब ही है। यहाँ पर तथाकथित ऊँची जाति और नीची जाति में जन्म लेने वाला व्यक्ति जीवन भर ऊँच अथवा नीचा बना रहता है। फिर चाहे वह अपने कर्मों से कितना ही गिर गया हो अथवा उठ गया हो। सवर्ण जाति का कोई भी हिन्दू किसी अवर्ण जाति के व्यक्ति को अपने पास बिठलाने, उसे छूने अथवा उसके हाथ की कोई चीज स्वीकार करने को तैयार नहीं होता फिर चाहे सवर्ण व्यक्ति उस अवर्ण व्यक्ति से आन्तरिक स्थिति तथा विद्या-बुद्धि में कितना ही नीचा क्यों न हो। भारत की हिन्दू जाति में यह भेद-भाव तथा छुआछूत एक भयंकर अभिशाप है। इस अभिशाप से इस जाति को न जा जाने कितनी हानि उठानी पड़ी है और उठानी पड़ रही है। यदि भेद-भाव की यह भयंकरता बनी रही तो आगे भी उठानी पड़ेगी। इसलिए सामाजिक तथा राष्ट्रीय हित में यही अच्छा होगा कि देश से यह छुआछूत का भूत शीघ्र ही भगा दिया जाये।

वैसे तो भारतवर्ष में नीची कही जाने वाली न जाने कितनी जातियाँ हैं, जो एक प्रकार से सवर्णों द्वारा तिरस्कृत, उपेक्षित तथा बहिष्कृत रहकर एक निकृष्ट सामाजिक जीवन व्यतीत कर रही हैं। किन्तु इनमें से बहुतों के साथ गनीमत इतनी तो है कि उनको छूने अथवा उनके हाथ का पानी पी लेने में घृणा नहीं की जाती। वे किसी न किसी रूप में समाज में मिली-जुली हैं। किन्तु दुर्दशा तो एक उस बड़े वर्ग की है, जिसे अन्त्यज, अछूत अथवा हरिजन कहा जाता है।

हिन्दू समाज में हरिजनों की संख्या तिहाई के लगभग होगी। किन्तु हिन्दुओं की यह लगभग एक बटा तीन संख्या अपने भाइयों द्वारा ही बहिष्कृत तथा तिरस्कृत बनी हुई नारकीय जीवन बिता रही है। हिन्दुओं की यह तिहाई ताकत यों ही एक ओर पड़ी नष्ट हो रही है। निःसन्देह हरिजनों की दयनीय दशा हमारे हिन्दू समाज पर ही नहीं वरन् मानवजाति पर एक कलंक बनी हुई है। हरिजनों के सुधार का अर्थ होगा समग्र हिन्दू जाति का सुधार, संगठन तथा शक्तिशाली होना। इसलिये हिन्दू समाज को इनके सुधार का यथासम्भव हर उपाय करना चाहिए।

आज जब हम अमेरिका आदि देशों में काली जातियों पर अत्याचार की सूचनाएँ पढ़ते-सुनते हैं तो गोरी जाति की आलोचना करते हुये कहा करते हैं कि काली जातियों पर अत्याचार करना अथवा उन्हें सामाजिक तथा राजनैतिक अधिकार न देना, मानवता का अपमान है, मनुष्यता के प्रति अन्याय है। किन्तु हम अपने ही गरेवान में मुँह डालकर नहीं देखते और न सोचते हैं कि हमने हरिजन भाइयों की क्या दशा बना रखी है ? जब हम अपने ही एक वर्ग को छूने तक में घृणा करते हैं, उनके स्पर्श से हमारे घर-द्वार, घर-बार तथा मन्दिर, देवालय तक अछूत हो जाते हैं, तब हमें इस प्रकार दूसरों की आलोचना करने अथवा उन्हें उपदेश देने का क्या अधिकार है ? हम पहले अपने अन्त्यज वर्ग से घृणा करना छोड़ें तब किसी दूसरे की आलोचना करें, मनुष्यता की दुहाई देकर मानवता की पुकार करें।

'मनुष्य मात्र एक हैं'—ऐसा हमारे धर्म-ग्रन्थ ही पुकार-पुकारकर नहीं कहते किन्तु हमारा विवेक भी यह निर्णय कर सकता है कि संसार के सभी मनुष्यों को एक परमात्मा ने एक तरह से ही पैदा किया है, उन्हें एक जैसे ही हाथ-पैर, नाक-कान दिये हैं, तब मनुष्य द्वारा उनके बीच जन्म-जाति से ऊँच-नीच तथा छुआ-छूत का भेदभाव करना कहाँ तक उचित है ? किसी को उसके कुकर्मों के कारण तो निकृष्ट अथवा घृणित माना जा सकता है, किसी वर्ग अथवा जाति विशेष में जन्म लेने के कारण नहीं। कर्मों के कारण से तो कोई भी ऊँचा कहा जाने वाला घृणित तथा नीचा कहा जाने वाला श्रेष्ठ माना जा सकता है। अनेक जातियों तथा श्रेणियों को स्वीकार किया जा सकता है किन्तु केवल अभिज्ञान के लिये, न कि ऊँच-नीच के वर्गभेद के लिए।

सामाजिक, राष्ट्रीय तथा धार्मिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त यदि हम हरिजनों के प्रति अपने व्यवहार का न्याय करें तो यही पायेंगे उनके साथ हम वही कुछ कर रहे हैं, जो किसी मनुष्य को मनुष्य के साथ नहीं करना चाहिए। हम सवर्ण हिन्दू उनसे घृणा करते हैं। यदि यह घृणा मन ही मन सीमित रहती तो भी अधिक कष्टदायक नहीं होती। किन्तु यह तो बात-बात में हमारे व्यवहार में व्यक्त होती है। ऐसे सवर्ण एवम् कुलीन हिन्दू बहुत ही कम होंगे जो हरिजनों से सीधे मुँह बात करते हों। उनसे सभ्यता तथा शिष्टता का व्यवहार करते हों। नहीं तो उससे ऐसा तिरस्कारपूर्ण व्यवहार किया करते हैं मानो वह उनका कोई बड़ा अपराधी हो। इस प्रकार का अकारण दुर्व्यवहार हरिजनों को कितनी पीड़ा देता होगा, इसका अनुभव करना क्या जरूरी है ?

अब प्रगति का युग आरम्भ हो गया है। संसार की सारी पिछड़ी जातियाँ प्रगति-पथ पर लाई जा रही हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनके हितैषी हजार कष्ट सहकर भी उनको उठायेंगे, वे उठ रही हैं और आगे भी उठती जायेंगी। अपने हिन्दू समाज को भी अब चेत जाना चाहिए और अपने हरिजन भाइयों के उद्धार में तन-मन-धन से लगकर अपने पर लगे संकीर्णता की कालिख को धो डालना चाहिए। हरिजनों की अवनत दशा समाज की निर्बलता बनी हुई है, जिसका लाभ उठाकर अन्य अनेक समाज हिन्दू जाति को नगण्य ही नहीं उसे मिटा डालने की योजनाएँ बनाये हुए हैं। यदि हिन्दू समाज को संसार की यह दुरभिसंधि स्वीकार है, तब तो कोई बात नहीं और यदि वह चाहता है कि संसार में एक सबल, सशक्त तथा संगठित समाज बनकर रहे तो उसे अपने हरिजन भाइयों को अपनाना होगा, उनकी दशा सुधारनी होगी। उन्हें उठाना होगा, उन्हें शिक्षित एवम् प्रशिक्षित बनाकर अपना एक अंग मानना होगा।

हिन्दू जाति संसार में सबसे अधिक दयावान जाति मानी गई है। उसने बड़ी से बड़ी ऐतिहासिक हानियाँ उठाकर अपने इस गौरव की रक्षा की है, अपनी इस विशेषता का प्रमाण दिया है किन्तु पता नहीं ऐसी दयावान् जाति अपने हरिजन भाइयों के प्रति ऐसा अमानसिक क्रूरता का व्यवहार क्यों कर रही है ? उसे उनकी दयनीय दशा देखकर दया क्यों नहीं आती ? उनके प्रति वह आज भी पत्थर क्यों बनी हुई है ? उन्हें मानसिक तथा व्यावहारिक कष्ट देकर न जाने कौन-सा सुख पाती है ? चींटियों को चुगाने और साँपों, कुत्तों, गायों की पूजा करने वाली हिन्दू जाति हरिजनों से क्यों घृणा करती जा रही है—वास्तव में यह एक आश्चर्य की बात है। संसार के सर्वोपरि अहिंसावादी हिन्दू समाज जो कि कृमिकीट को भी पीड़ा पहुँचाने में अधर्म मानता है—हरिजन को पीड़ा पहुँचाते समय अपनी अहिंसा का सिद्धान्त क्यों भूल जाता है ? यह और कुछ नहीं केवल भ्रम है, रूढ़िवादिता है, अन्धकार है, जिसे अब हमारे हिन्दू समाज को छोड़ ही देना चाहिए।

हमें उत्साहपूर्वक हरिजनों के प्रति इस अस्पृश्यता का कलंक धो ही डालना चाहिए। इससे न केवल उनकी शक्ति ही बढ़ेगी बल्कि उनमें एक उपयोगी प्रगतिशीलता का श्री गणेश होगा, जो प्रतिदिन बदलते संसार में उनके लिये बड़ी ही लाभकर सिद्ध होगी। आशा है कि ईसाइयों, मुसलमानों, पारसियों तथा ऐसी ही अन्य अनेक जातियों से सम्पर्क रखने में सवर्ण हिन्दू हिचक नहीं करते, जबकि ये जातियाँ बहुत-से ऐसे काम करती हैं, जो कि हिन्दुओं के लिये सामाजिक एवम् धार्मिक आधार पर बहुत हद तक प्रतिकूल पड़ते हैं। किन्तु अपने ही भाई हरिजनों से सम्पर्क बढ़ाने में संकोच करते हैं। इसे अविवेकजन्य कुसंस्कारों के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? आज भूमि के चप्पे-चप्पे से भेद-भाव मिटाया जा रहा है। रंगभेद, जातिभेद, वर्गभेद, श्रेणीभेद को अमानवता कहकर दूर किया जा रहा है और समस्त मानव जाति को एक मानव समाज का नारा दिया जा रहा है, तब 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का उद्घोष कहने वाली ही हिन्दू समाज इस प्रगतिशीलता में भी अपने ही अंग हरिजनों के प्रति पीछे क्यों रह जाये ?

रामायण में अछूत-समस्या

प्राचीनकाल में छूत-अछूत जैसी कोई समस्या नहीं थी। तब सभी लोग मिल-जुलकर रहते थे और समानरूप से प्रगति करते थे। तुलसीदास जी ने कहा भी है—

बरनाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय सोक न रोग।।

आज भी समाज में वर्ग चार ही हैं और सदा रहेंगे। १. विद्वान-शिक्षक, २. योद्धा-रक्षक, ३. व्यवसायी-उपार्जक ४. क्लर्क सेवक। परम्परागत कार्यों में पटुता प्राप्त होती है, यह सर्वसम्मत बात है। अतः विशिष्ट प्रतिभा को अभीष्ट दिशा में बढ़ने की स्वतन्त्रता देकर सबके लिये समानावसर मानते हुये भी यदि समाज को नैपुण्य बनाये रखना है तो यह बल देना चाहिए कि केवल कौतुकवश परम्परा में भंग न की जाय, क्योंकि इस कौतुक का कठिन एवं अप्रिय मूल्य समाज को देना पड़ता है, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है।

दोष तब आता है, जब कार्यों को हम न्यूनाधिक महत्व देने लगते हैं। वैसे यह मनुष्य की दुर्बलता है और मुझे नहीं लगता कि इसे सर्वथा दूर किया जा सकेगा। किया जाना चाहिए, इसमें भी मेरा विश्वास नहीं है। विद्वान एवं वैज्ञानिक सर्वाधिक सम्मान्य है। हिन्दू-परम्परा कहती है—उसे तपस्वी, निर्लोभ एवं सेवापरायण होना चाहिए क्योंकि यदि वह लोभी है, स्वार्थी है, उसका ज्ञान घोर-घोर अनर्थ का सृजन कर सकता है, उसे लम्पट होने की अनुमति नहीं होनी चाहिए, यह अपराध होगा उसके लिये। लेकिन जहाँ त्याग एवं ज्ञान होगा, सर्वाधिक सम्मान उसे आप नहीं देंगे-सम्भव है ? उचित है ?

सेनानायकों को देश जो सम्मान देता है व्यवसायियों को वह सम्मान दिया नहीं जा सकता। यदि अपने सैनिकों को आप सम्मानित नहीं करते, सुरक्षा अविश्वस्त बनी रहेगी ?

अब आगे की बात सरल है। व्यवसायी और क्लर्क, गृहपति और गृहसेवक समान सम्मान भाजन होंगे, ऐसी बात आप सोच नहीं सकते हैं और सोचे तो यह व्यावहारिक बात नहीं होगी।

सम्मान समाज की बड़ी सम्पत्ति है और वह सबको समान रूप में नहीं मिलेगी। उसे अपने सद्गुणों से जीतना पड़ता है।

दोष यह है कि हमने वर्ग विशेष का अपमान आरम्भ किया। यह मानना कि अमुक कार्य करने वाला व्यक्ति अस्पृश्य है, मानवता के प्रति एक नैतिक अपराध है और हमें चाहे जितना पश्चाताप हो, यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हमारे समाज में यह अपराध अत्यन्त प्राचीनकाल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से चला आ रहा है, अब भी चल रहा है। श्रीरामचरित मानस में इसकी विद्यमानता की सूचना है—

लोक वेद सब भाँति हिं नीचा।
जासु छाँह छुइ लेइया सींचा।।

यह समर्थ नहीं है, इतना स्मरण रखिये। यह केवल तात्कालिक स्थिति का वर्णन है। इस सत्य को कैसे अस्वीकार किया जा सकता है कि वर्ग विशेष का अहंकार इतनी असामान्य सीमा तक पहुँच गया था।

रामायण का दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में भिन्न है—

'राम राम हि जे जमुहाहीं।
तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं।।'

और

जाति पाँति पूँछइ नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि कौ होई।।

अब देखिये-श्री भरतलाल चित्रकूट जा रहे हैं, अपने वनवासी अग्रज श्रीराम को मनाकर लौटाने के उद्देश्य से। वह अपने पूरे समाज के साथ शृंगेबेरपुर पहुँचते हैं। राम-सखा निषादराज गुह भरत को ससैन्य आता सुनकर सन्देह होता है 'कहीं ये श्रीराम पर आक्रमण करने तो नही जा रहे। वह पहिले आवेश में अपने लोगों को भरत से 'सम्मुख समर' के लिये प्रस्तुत होने को कहता है, किन्तु एक वृद्ध की सम्मति पर भरत से मिलकर उनका उद्देश्य ज्ञात करना उसे पसन्द आ जाता है। उपहार लेकर वह भरत से मिलने जाता है और उनके सम्मुख जाकर—

गाऊँ जाति ग्रह नाउँ सुनाई।
कीन्ह जोहरू माथ महि लाई।।
करत दंडवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाय।
मनहु लखन सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाय।।

निषादराज गुह एवं उनकी जाति के साथ समाज का व्यवहार था—'जासु छायँ छुइ लेइअ सींचा।' लेकिन यह व्यवहार मानवता को कलंकित करने वाला है और रामायण को यह उचित नहीं लगा है। रामायण के कर्ता अपने आदर्शतम पात्र श्रीराम का सखा कहते हैं कि निषादराज को और भरत उसे उठाकर छोटे भाई के समान हृदय से लगाते हैं।

तनिक पीछे लौटें। श्रीरामजी पहुँचे थे वन जाते समय 'अनुज जानकी सहित' शृंगबेरपुर इस समय—

यह सुधि गुह निषाद जब पाई।
मुदित लिये प्रिय बन्धु बोलाई।।
लिए फल मूल भेंट भरि भारा।
मिलन चलेउ हिय हरष अपारा।।
करि दंडवत भेंट धरि आगे।
प्रभुहिं बिलोकत अति अनुरागे।।
सहज सनेह बिवश रघुराई।
पूछी कुसल निकट बैठाई।।

और इस शृंगबेरपुर में, इसी यात्रा में उसी रात्रि के प्रातः वह हठी केवट मिला जिसने कह दिया—

जौं प्रभु अवसि पार गा चहहू।
मोहि पद पदुम पखारन कहहू।।

छिः ! अस्पृश्य केवट छुयेगा श्री राम को लेकिन ये संकीर्ण घृण्य विचार राम को छू लें तो वे मर्यादा पुरुषोत्तम कैसे ? वे अनुमति देते हैं—

बेगि आनु जल पायँ पखारू।
होत बिलम्ब उतारहि पारू।।

और—

केवट राम रजायसु पावा।
पानि कठवता भरि लेइ आवा।।
अति आनन्द उमगि अनुरागा।
चरन सरोज पखारन लागा।।

बात सीमा पर पहुँच जाती है, जब रघुकुल गुरु महर्षि वशिष्ठ केवट को हृदय से लगा लेते हैं। यह घटना चित्रकूट में घटित होती है। निषादराज यह भरत जी के साथ जाते हैं चित्रकूट, किन्तु श्रीराम से मिलने के पश्चात् भावावेश में भूल जाते हैं कि अयोध्या के समाज के साथ वे आये हैं। फलतः जब सानुज श्रीराम महर्षि को प्रणाम करते हैं, तब गुह भी प्रणाम करते हैं—

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू।
कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू।।

यहाँ 'दूरि तें' ध्यान देने योग्य है। यह उस सामाजिक परम्परा का सूचक है, जिसके कारण निषादराज अपने में साहस नहीं पाते महर्षि के समीप जाने का, किन्तु रामायण को यह अभीष्ट नहीं है। जहाँ निषादराज दूसरे से प्रणाम करते हैं, वहाँ महर्षि आगे बढ़ते हैं—

राम सखा रिषि बरबस भेंटा।
जनु महि लुठत सनेह समेटा।।

महर्षि वशिष्ठ, जो उस समय की मर्यादा के महानिर्णायक हैं। लोकोत्तर तपस्वी विश्वामित्रजी जिनकी स्वीकृति के बिना ब्रह्मर्षि नहीं कहे जा सकते थे, वे वशिष्ठ केवट को उठाकर हृदय से लगा लेते हैं और तब समाज के लिये, पूरे अयोध्या के समाज के लिये अस्पृश्यता का प्रतिबन्ध स्वयं भंग हो जाता है—

मिलि केवटहिं उमगि अनुरागा।
पुरजन सकल सराहहिं भागा।।

सचमुच यह अपने सौभाग्य की प्रशंसा का सुअवसर होगा, जब उच्च वर्णाभिमानी अपने अनुजों को स्वयं आगे बढ़कर अनुराग से उमगकर हृदय से लगावेंगे।

सबसे मार्मिक प्रसंग है श्रीरामचरितमानस का शबरी प्रसंग। इस कथा के सम्बन्ध में इतनी पृष्ठभूमि जान लेना आवश्यक है कि शबरी कोई शबर (भील) कुल की थीं। महर्षि मतंग के आश्रम के समीप कुटिया बनाकर रहती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

थीं। महर्षि ने ही उन्हें अनुमति दी थी; वहाँ रहने की और साधन निर्देश भी किया था। देह का प्रारब्ध समाप्त होने पर योग के आश्रय से देह-त्याग करते समय महर्षि शबरी जी को कह गये थे, 'तुम्हें' यहीं अपने आश्रम में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के सानुज दर्शन होंगे। तभी से शबरी की प्रतीक्षा चल रही थी।

ग्रन्थान्तरों से यह भी ज्ञात होता है कि महर्षि मतंग के अतिरिक्त शबरी के उज्ज्वल हृदय को पहिचानने वाला वहाँ और कोई नहीं था। सामान्य दृष्टि से चमड़ा और अहंकार जाति देखता है। फलतः शबरी वहाँ के तापसों द्वारा अत्यन्त तिरस्कृता थीं।

सीता-वियोग-व्याकुल श्रीराम मतंगाश्रम के उस प्रदेश में पहुँचते हैं। उसके पहिले उनकी प्रतिज्ञा उस दक्षिणारण्य में पहुँच गई थी, जो उन्होंने दण्डकारण्य में राक्षसों से भक्षित मुनियों की अस्थि राशि देखकर की थी—**'निसिचरहीन करौं महि'**। अतः सभी ऋषि-मुनि उत्सुक थे उन अवधराज कुमारों का आतिथ्य करने के लिये। श्रीराम जिसके उटज पर पहुँचते-भाग्यशाली मानता वह अपने को। मतंगाश्रम में केवल शबरी की ही कुटिया नहीं थी, किन्तु श्रीराम सीधे उस शबर-वृद्धा की झोंपड़ी पर पहुँचते हैं। शबरी का आतिथ्य—

सादर जल लैं चरन पखारे।
पुनि सुन्दर आसन बैठारे।।
कन्द मूल फल तुरस अति दिये राम कहँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाये, बारंबार बखानि।।

दूसरे ग्रन्थों में—गोस्वामी तुलसीदासजी के ही दूसरे ग्रन्थों में 'जूठे बेर' देने का वर्णन है। शबरी द्वारा और सूरदासजी ने भी यही बात कही है। बेर जूठे थे या नहीं, यह विवाद व्यर्थ है। वे जूठे भी हों तो प्रेमाधिका के सत्कार की यह बात अपवाद कही जायेगी, किन्तु इससे यह बात अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है कि श्रीराम को—मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को अस्पृश्यता की संकीर्णता स्वीकार नहीं है।

समाज में उस समय भी यह संकीर्णता थी, किन्तु उसे तिरस्कृत किया श्रीराम ने। उन्होंने मुनियों को छोड़कर शबरी के कुटीर का आतिथ्य ग्रहण किया। उन्होंने निषाद् को मित्र बनाया और उसे पूरे अयोध्या के समाज द्वारा सम्मानित कराया। उन्होंने वह स्थिति उपस्थित कर दी कि कुलगुरु वशिष्ठ को आगे बढ़कर उल्लासूर्वक निषाद को हृदय से लगाना पड़ा।

वानर, रीछ और राक्षस—आप इन्हें उपदेवता मानें तो आपत्ति नहीं और अनार्य जातियाँ मानें तो मैं यहाँ विवाद नहीं करूँगा, किन्तु निषाद और शबरी—ये दो उदाहरण रामायण में निर्विवाद हैं। जहाँ श्रीराम ने अस्पृश्यता स्पष्ट अस्वीकार करदी है और कहीं स्वीकार की हो—कोई संकेत भी आप नहीं बता सकते। श्रीराम का पदानुसरण करेंगे ऐसी दशा में आप-आशा अनुचित तो नहीं है।

इस अमानवीय प्रथा का अन्त होना ही चाहिए

एक जमाना था जब सामन्तों और जमींदारों का बालबाला था। भौतिक सामर्थ्य और शासन व्यवस्था कुछ सीमित व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित थी। तब समाज दो वर्गों में बँटा हुआ था। एक वर्ग प्रभुतासम्पन्न था तो दूसरा पिछड़ा और पददलित। दूसरे वर्ग का जीवन गुलामों जैसा था। सत्ता और सम्पत्ति विरासत के रूप में लम्बे समय तक परम्परागत ढर्रे में पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक निश्चित वर्ग के इर्द-गिर्द ही घूमती रही और उनके भोग विलास का साधन बनती रही। उनके शोषण, दमन और अत्याचार का शिकार द्वितीय समुदाय, जिनकी स्थिति गुलामों की थी बनता रहा। कहते हैं कि पाप का घड़ा स्वयं भरकर फूटता है। विक्षुब्ध जन-मानस की नव-जाग्रति से जमाने ने करवट ली। देश की आजादी के वाद सर्वत्र जमींदारी एवं सामन्तवादी प्रथा के विरुद्ध अवाज उठने लगी। परिणाम कानून तौर पर जमींदारी उन्मूलन एक्ट के रूप में उभरकर सामने आया। मनुष्य को बन्धक रखकर उसके श्रम एवं सामर्थ्य के शोषण को एक अपराध घोषित किया गया। सम्बन्धित विषय पर कानून-अक्टूबर १९७५ में पारित हुआ।

बन्धक एवं गुलामी प्रथा के विरुद्ध अन्य देशों में भी जन आक्रोश उभरा। बहुचर्चित एवं सुविख्यात हैरियट स्टो' की पुस्तक 'टामकाका की कुटिया, गोरे लोगों द्वारा गुलामों जैसा जीवन जी रहे काले नीग्रो लोगों पर पाशविक अत्याचारों की एक खुली दास्तान थी, जिसने मानवता को प्यार करने वाले हर अन्तःकरण को झकझोरा, परिणति हुई क्रान्ति के रूप में और सदियों से चली आ रही बन्धक एवं गुलामी प्रथा का अमेरिका से अन्त हुआ। मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद-भाव न बरतने तथा एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण रोकने के सम्बन्ध में कड़े कानून बने। अन्य विकसित देशों में जहाँ कि इस तरह की परम्परा थी, ने भी उसे अमानवीय घोषित किया। दक्षिणी अफ्रीका जैसे अपवादों को छोड़कर सर्वत्र सैद्धान्तिक स्तर पर गुलामी प्रथा को मानवी दृष्टि से अनुचित ठहराया गया है।

पर निष्ठुरता की यह विशेषता है कि अपनी कुचाल इतनी शीघ्रता से नहीं बदलती। कानूनी दाँव-पेच से बचने और अपनी चाल चलने का मार्ग ढूँढ़ लेती है। बन्धक प्रथा के उन्मूलन का कानून पारित होने के बावजूद अभी भी देश के कितने ही भागों में कितने ही व्यक्तियों को गुलामों की ज़िन्दगी जीनी पड़ रही है ? पहले और अब में अन्तर मात्र इतना है कि समर्थों द्वारा जो अमानवीय शोषण का कार्य खुलेआम किया जाता था। अब लुक-छिपकर मनोवैज्ञानिक हथकंडों के सहारे चल रहा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बन्धुआ मजदूर बनाने की तकनीक का रहस्योद्घाटन किया है संयुक्त रूप से गाँधी शांति प्रतिष्ठान एवं राष्ट्रीय श्रम संस्थान की सर्वेक्षण रिपोर्ट ने। इन प्रतिष्ठानों के विशेषज्ञों ने बताया है कि प्रायः ये मजदूर अशिक्षित और गरीबी से ग्रस्त होते हैं। उन्हें कुछ कर्ज देकर समृद्ध व्यक्ति कागजों पर उनके हस्ताक्षर करा लेते हैं और बाद में कर्ज न चुका पाने के कारण उनको बन्धक बना लेते हैं। ऋण का कानूनी भय दिखाकर उन्हें अपने गिरफ्त में जकड़े रहते हैं और मनमाने ढंग से उनके श्रम का शोषण करते हैं। वर्ष १९७६-७८ की रिपोर्टानुसार देश के कुछ राज्यों का सर्वेक्षण किया गया, तब मात्र कुछ राज्यों में बन्धुआ मजदूरों की संख्या २२ लाख ४० हजार आँकी गयी। जिन राज्यों का सर्वेक्षण किया गया उनकी स्थिति इस प्रकार थी। बन्धुआ मजदूर आन्ध्र प्रदेश में ३ लाख २५ हजार, बिहार में १ लाख १० हजार, गुजरात में १ लाख ७१ हजार, कर्नाटक में १ लाख ९१ हजार, मध्यप्रदेश में ४ लाख ६९ हजार, महाराष्ट्र में १ लाख ५ हजार, राजस्थान में ६७ हजार, तमिलनाडु में २ लाख ५० हजार तथा उत्तर-प्रदेश में ५५ हजार। रिपोर्ट के अनुसार सभी मजदूर भूस्वामियों तथा ठेकेदारों के आधीन अपना श्रम लम्बे समय तक गिरवी रखे हुए थे। दल के विशेषज्ञों ने तामिलनाडु के उत्तरी एवं दक्षिणी क्षेत्र में आन्ध्र में तेलंगाना, कर्नाटक में बंगलौर और महाराष्ट्र के उत्तरी और पश्चिमी जिलों में, गुजरात में बड़ौदा एवं पंचमहल, मध्य प्रदेश के रीवा, महाकौशल तथा छत्तीसगढ़ में, उत्तर-प्रदेश के वाराणसी, मिर्जापुर, बलिया में, हरियाणा के कुरुक्षेत्र, रोहतक जिलों तथा बिहार के संथाल, परगना, पलामू एवं मुंगेर जिलों को बन्धुआ मजदूरों से सर्वाधिक प्रभावित घोषित किया है। ऐसा अनुमान है कि बन्धुआ मजदूरों में से खेतिहर बन्धकों की संख्या सबसे अधिक है।

वर्ष १९८१-८२ में एक केन्द्रीय मन्त्री द्वारा प्रस्तुत किये गये आँकड़े के अनुसार दस राज्यों में—आन्ध्रप्रदेश, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, हरियाणा, राजस्थान, तमिलनाडु तथा उत्तर-प्रदेश में अभी भी कुल बन्धुआ मजदूरों की संख्या दस लाख के लगभग है। सरकार ने अपने प्रयासों द्वारा १ लाख ३३ हजार के लगभग बन्धुआ मजदूरों को मुक्ति दिलायी तथा पुनर्वास की व्यवस्था की। पर अभी भी लाखों की संख्या में दासता की चक्की में पिस रहे हैं। एक कारुणिक जानकारी प्राप्त हुई है। मध्यप्रदेश के रीवा जिला की। रीवा जिले के पनासी, मनीका तथा फोडियाँ गाँव में किये गये सर्वेक्षण का निष्कर्ष है कि उन गाँवों में ७७ प्रतिशत पिछड़े अछूत तथा आदिवासी अपंगता के रोग से ग्रस्त हैं। इनमें ३३ प्रतिशत बन्धुआ मजदूर हैं।

भारत ही नहीं अन्य विकसित देशों में भी यह प्रथा विद्यमान है। लन्दन में किये गये एक अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन के अनुसार पूरे विश्व में लगभग २ करोड़ बच्चे बन्धक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। विद्वान जेम्स चेलिस अपनी पुस्तक 'चाइल्ड वर्कर्स टूडे' में लिखते हैं कि "२ वर्ष पूर्व बाल वर्ष मनाया गया, पर दुर्भाग्यवश सबसे अधिक दयनीय स्थिति बच्चों की है।" अपनी पुस्तक में उन्होंने बाल-शोषण के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है। संयुक्त राष्ट्र के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ का अनुमान है कि इस समय सारे विश्व में १५ वर्ष की आयु से नीचे ५ करोड़ २० लाख बच्चे बन्धुआ मजदूरों की स्थिति में हैं। इनमें से ९० लाख दक्षिण पूर्व एशिया में है, जिनसे गुलामों जैसा काम लिया जा रहा है। थाईलैण्ड के श्रमविभाग का अनुमान है कि वहाँ ११ वर्ष से १४ वर्ष की आयु वाले दस लाख बच्चे कठोर श्रम कर रहे हैं। मलेशिया के श्रम मन्त्रालय के अधिकारियों का कहना है कि स्थानीय श्रम शक्ति में १४ वर्ष से कम आयु के बच्चों की हिस्सेदारी दो प्रतिशत के लगभग है। इनमें से अधिकांश बन्धुआ हैं। इण्डोनेशिया के श्रम मन्त्रालय के रिपोर्टानुसार सिग्रेट फैक्टरियों में निम्नतम मजदूरी पर लाखों की संख्या में पाँच से लेकर दस वर्ष के बच्चे काम कर रहे हैं। यूनाइटेड नेशन्स कमीशन फॉर फाइट अगेन्स्ट डिसक्रिमिनेटरी मेजर्स एण्ड दी प्रोटेक्शन आफ माइनारिटीज" में प्रस्तुत की गयी एक रिपोर्ट का कहना है कि विश्व भर में दस करोड़ अल्पायु के बच्चे कठोर श्रम से भरा गुलामी का जीवन जी रहे हैं।

ये आँकड़े बताते हैं कि आज के प्रगतिशील कहे जाने वाले युग में भी अमानवीय दास प्रथा अपने बदले स्वरूप में विद्यमान है, जो मानवता को कलंकित करती है। सम्बद्ध बन्धक प्रथा उन्मूलन का कानून पारित हो जाना एक बात है पर व्यावहारिक रूप में उसका अन्त तो सामूहिक प्रयासों द्वारा ही सम्भव है।

अनीति जनमत के सामने टिक नहीं सकती

दास-दासियों को पकड़ने, बेचने, प्रताड़ित करने का प्रचलन सामन्ती अनाचार के युग में आरंभ हुआ। उन दिनों डाकुओं के गिरोह ही अपना अनाचार खुले-आम संगठित रूप से चलाने लगे थे। किले और गढ़ बनाकर रहते थे, प्रत्यक्ष पैसा और परोक्ष स्वर्ग का लालच देकर मुर्दान्त स्तर के बलिष्ठों को भर्ती करते और जहाँ अवसर देखते वहीं आक्रमण कर गुजरते थे। किलों और गढ़ों पर चढ़ाई कठिन दीखती तो निरीह प्रजाजनों पर टूट पड़ते, कत्लेआम मचाते, धन-सम्पदा लूटते और नर-नारियों में जिन्हें युवा देखते उन्हें पकड़कर गुलाम बना लेते। किलों पर हमला सफल हो जाता, तो वहाँ सम्पदा के भण्डार भी मिलते और गुलामों के झुण्ड भी। सामन्तों के पास जब सहस्रों गुलाम इकट्ठे हो जाते तो उन्हें दास-दासियों की तरह हाट-बाजारों में बेच दिया जाता। खरीदार को गुलाम के अवज्ञा करने पर उसे मार डालने तक का अधिकार था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मध्यकाल में गुलाम पकड़ने और बेचने का व्यवसाय प्रायः वन्य पशु पकड़ने एवं पालने जैसा बन गया था। गोरों ने इसे वाणिज्य स्तर पर अपनाया और पिछड़े क्षेत्रों के अविकसित लोगों को पकड़ने-बेचने के दूसरे सरल तरीके अपनाए तथा भरपूर लाभ कमाया। अमेरिका की सम्पन्नता में इन गुलामों के श्रम का बढ़ा-चढ़ा योगदान रहा है। राजा सामन्तों की तुलना में उनने गुलाम व्यवसाय को अधिक सुनियोजित और लाभदायक बनाया। मिस्र के पिरामिडों, चीन की दीवार जैसे भव्य निर्माणों में हजारों लाखों गुलामों की ठठरियाँ खप गईं। जिस प्रकार इन दिनों पशुओं को मनुष्य के चंगुल से छुटकारा पाने का कोई रास्ता नहीं दीखता, उसी प्रकार उन दिनों कोई यह सोच भी नहीं सकता था कि गुलाम-प्रथा संसार से मिट सकेगी। समर्थ अपना लाभ छोड़ते क्यों ? असहय गुलामों की पुकार सुनता कौन ? ऐसी दशा में पर्यवेक्षक इसी निष्कर्ष पर पहुँचते थे कि दास-प्रथा कदाचित् ईश्वरेच्छा से चली है, अथवा इतनी गहरी जड़ जमा चुकी है कि उसके अन्त का कोई आसार नहीं रह गया।

इसे आश्चर्य ही कहना चाहिए कि लोकमानस ने दास-प्रथा के पीछे अमानवीय अनाचार का अनुभव किया। आक्रोश उभरा, विरोध पनपा और अन्ततः वैसा वातावरण बना कि क्रूर प्रचलन थोड़े से हाथ-पैर पीटने के उपरान्त अपनी मौत मर गया। आज दास-प्रथा की वह कानूनी मान्यता नहीं रह गई है, जो हजारों वर्षों तक सिर उठाये और समूचे संसार पर छायी रही।

दास-प्रथा के सम्बन्ध में कुछ ऐतिहासिक तथ्यों को जान लेना समीचीन होगा। राजा-सामन्तों के हरम अन्तःपुर किसी समय रानियों, बाँदियों, दासियों से भरे रहते थे। इस आधार पर कोई शासक अपनी सम्पदा बखानते हुए गर्वपूर्वक गिनता था कि उसके हरम में इतनी सुन्दर दासियाँ कैद हैं। उन दिनों श्रमिकों को मजूरी देने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। गुलाम ही रूखी-सूखी रोटी के बदले दस-बारह घंटे का नित्य कठोर श्रम करते थे। किले, गढ़, शिवाले इन्हीं के बाधित परिश्रम से बने हैं। उपहार और दान में दास-दासियों के रूप में श्रम-सम्पदा प्रदान की जाती थी। उन दिनों सिक्के का प्रचलन आज जैसा न था दास-दासियाँ ही सिक्के थे। इस अध्याय में व्यावसायिक दास-प्रथा की एक नई श्रृंखला जुड़ी, इसका विवरण और भी विचित्र है।

स्पेनिश जब अमेरिका के सुविस्तृत क्षेत्र में पहुँचे तब उन्हें उस भूमि का लाभ उठाने के लिए कृषि उद्योग की आवश्यकता पड़ी। इसके लिए बड़ी संख्या में श्रमिक शक्ति चाहिए। बड़ी मशीनों का—बिजली का, तब तक प्रचलन नहीं हुआ था। श्रमिक ही मशीन थे। अमेरिका के वनवासियों को स्पेनिशों ने पकड़ा और उन्हें प्रताड़ना के बल पर पालतू पशुओं द्वारा बाधित श्रम करने के लिए विवश कर दिया। इतने से काम न चला तो अफ्रीका के मजबूत हब्शियों पर निगाह गई और उन्हें पकड़ने, जहाजों पर लादकर अमेरिका भेजने का नियमित व्यवसाय चल पड़ा। इसके उपरान्त प्रायः सभी योरोपियन देश अमेरिका दौड़े और जहाँ भी अवसर देखा कब्जा जमाकर दासों के सहारे अपना-अपना उद्योग उपार्जन आरम्भ कर दिया तथा उनके बीच इस संदर्भ में भारी प्रतियोगिता चल पड़ी कि कौन अधिक गुलाम पकड़े और कौन अधिक सम्पदा कमाये ?

अँग्रेजों के उपनिवेश उत्तरी अमेरिका में सर्वप्रथम गुलामों का जहाज १६८१ में आया। उस समय काले गुलाम २,००० तथा भारतीय बंधुआ मजदूर ६,००० थे। १७१४ में यह संख्या ५६००० पहुँच गई क्योंकि तब तक वहाँ तम्बाकू की खेती का काफी विकास हो चला था। १७५४ में जब रूई की खेती भी विकसित होने लगी तो गुलामों की संख्या २,६३,००० पहुँच गई। १८६० के सिविल बार के समय गुलामों की संख्या ५४,४१,८३० थी। गुलाम-व्यापार में सबसे बड़ा योगदान अँग्रेजों का था। फ्रेंच और डच भी इसमें कुछ हद तक शरीक थे। ये लोग गुलामों को या तो अपने छोटे-छोटे उपनिवेशों में भेजते थे, या फिर बड़े स्पेनियाड को बेच देते थे।

गुलामों को पकड़ने, ढोने, बेचने के व्यवसाय में लगे हुए व्यापारी देखते-देखते धन कुबेर हो गए। जहाजों पर जहाज बनने लगे और इस काम में लगाए गए। उन दिनों के जलयान उतने विकसित न थे। अधिक लाभ की आशा में अधिकाधिक गुलाम जंजीरों में फँसकर डाल दिये जाते थे। त्रास और असुविधा के वातावरण में उनमें से प्रायः दस प्रतिशत रास्ते में ही मर जाते थे। वे जो जीवित पहुँचते वे बिक्री के लिए बाड़ों में कैद रहते।

राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी कुछ समय पूर्व तानाशाही व्यवस्था के अन्तर्गत विरोधी पात्रों को बिना कारण बताए बन्दी बनाने और श्रम शिविरों ठूँस देने की पद्धति अपनायी गयी। इसे व्यावसायिक न सही राजनैतिक गुलाम प्रथा कहा जा सकता है। इसमें जर्मनी ने हिटलर शासन के दिनों नाम कमाया। कम्युनिस्ट देशों में भी यह प्रथा जिस-तिस नाम पर चलती रही। साइबेरिया के 'श्रम-शिविर' इस संदर्भ में कुख्यात हैं।

इस विश्वव्यापी अनाचार पर अंकुश कैसे लगा—यह एक विस्मयकारी तथ्य है। मानवी विवेक ने असंख्यों को आन्दोलित किया है और उसने आगे बढ़कर मानवी अधिकारों की वकालत करना शुरू कर दी। फलतः निहित स्वार्थों की इन्कारी के बावजूद न्याय का पक्ष मज़बूत होता चला गया है और बिना किसी भयानक युद्ध-संघर्ष जैसी स्थिति उत्पन्न हुए उस कुप्रचलन का दायरा सिमटता चला गया है। इस प्रयोजन हेतु विलियम लॉयड गैरीसन, जेम्स रसेल, थियोडोर पार्कर, ग्रीनलीफ बिटीयर, फ्रेडरिक डोगलस जैसे समाजसेवियों ने आन्दोलन में स्वयं को खपा दिया।

सर्वाधिक भावनात्मक प्रभाव तो श्री हैरियट स्टो का दासता विरोधी उपन्यास टाम काका की कुटिया (१८५२) द्वारा प्रतिरोपित किया गया। राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(नवम्बर १८६०) के सत्ता में आने के उपरान्त जातिय सर्वश्रेष्ठता के ऊपर कुठाराघात हो गया। अथक संघर्ष के फलस्वरूप लगभग ५० लाख लोग (१८६३, १८६५) मुक्ति की साँस ले सके।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास भी दास-प्रथा की रोकथाम करने के संदर्भ में अनेकों रूप में चलते रहे हैं। सन् १८८५ का बर्लिन में सम्पन्न हुआ जनवादी सम्मेलन सन्, १८६० में हुआ ब्रुसेल्स सम्मेलन विशेष रूप से स्मरण रखने योग्य हैं, जिनमें अनेकों राष्ट्रों ने मिलकर दास प्रथा के विरुद्ध आवाज उठायी और रोकथाम के उपाय बताये। सन् १६२४ में राष्ट्र संघ में मानव अधिकारों की व्याख्या करते हुए जो निर्धारण स्वीकार किया, उसमें दास-प्रथा को अनैतिक और अमानवीय ठहराया गया। इसे लोकमत की विजय कहा जा सकता है।

दुष्टता के छद्म प्रयास जब तक जितने अंशों में सफल होते रहेंगे, तब तक पर्दा प्रथा जैसे प्रचलनों के रूप में दासता के मान्य-अमान्य स्वरूप बनते, बिगड़ते रहेंगे। पर यह निश्चित है कि उसकी होनी घटोत्तरी ही है। वे बढ़, पनप और मान्यता नहीं प्राप्त कर सकते, अंततः जीत जनमत की ही होती है।

दास प्रथा के विरुद्ध सशक्त संघर्ष

बहुधा यह सोचा जाता है कि शोषित समुदाय असंगठित, पिछड़े, अशिक्षित, निर्धन एवं अनुभवहीन होने के कारण समर्थों के शोषण से छुटकारा पा नहीं सकेंगे। ऐसी परिस्थितियों में शोषक निश्चिन्त रहते हैं और पकड़ को अधिकाधिक मजबूत करते रहते हैं। दूसरी ओर परित्राण-परिवर्तन की आशा धूमिल होने के कारण पददलित-पीड़ितों का ऐसा साहस भी नहीं उभरता जो कसे हुए शिकंजे को ढीला कर सके। ऐसी दशा में आमतौर से निराशा ही छाई रहती है और न्याय की परिस्थितियाँ बनने की संभावना दृष्टिगोचर नहीं होती। ऐसी दयनीय परिस्थितियाँ अनेकों बार अनेकों क्षेत्रों में बनती रहती हैं।

इतने पर भी नियति व्यवस्था का एक ऐसा सिद्धान्त है कि मानवी संवेदनाएँ ऐसे भावनाशील लोगों को भी प्रभावित करती हैं, जिनका उस प्रसंग से सीधा सम्बन्ध नहीं है। एक के साथ अनीति होते देखकर दूसरे उसका प्रतिरोध करें और परिवर्तन का पक्षधर बनकर जोखिम उठायें। उसका आधार व्यावहारिक प्रचलन में न मिलने पर भी ऐसा देखा गया है कि औचित्य के समर्थन में एक ऐसे वर्ग में उत्तेजना उत्पन्न होती है, जिसे आदर्शवादी, भावनाशील, कट्टर और महापुरुष के रूप में सराहा जाता है। संख्या उनकी भले ही कम क्यों न रहती हो पर मानवी गरिमा के यह प्रहरी अपने अस्तित्व का परिचय दुर्दिनों के बीच भी देते रहे हैं।

उदाहरण के लिए, गोरों द्वारा कालों को पकड़कर पशुओं की तरह वशवर्ती बना लेने और उनके साथ वैसा ही व्यवहार करने का मध्यकालीन प्रचलन सामने है। दास प्रथा यों बर्बरों ने चला तो पहले से भी रखी थी और इस आधार पर बरती जाने वाली अनीति की कहानी भी चिर पुरातन है तो भी उसमें तूफानी गति तब आई जब गोरों ने अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड जैसे बड़े और कितने ही छोटे भूखण्डों पर कब्जा कर लिया। उन्हें बसाने के लिए जनशक्ति की आवश्यकता पड़ी। कम मजदूरी पर दूरवर्त्ती क्षेत्रों के अनभ्यस्त वातावरण में रहने के लिए स्वेच्छापूर्वक जाये कौन ? और फिर स्वाभिमान खोकर अहिर्निशि प्रताड़ना कौन सहे ? ऐसी दशा में इच्छित प्रयोजनों के लिए जनशक्ति जुटाने का एक ही उपाय था कि अविकसित क्षेत्रों के लोगों को दल बल से पकड़कर उन अधिकृत क्षेत्रों को विकसित करने-कराने के लिए बरबस पहुँचाया जाय। संक्षेप में यही है गोरों द्वारा कालों को बड़ी संख्या में पकड़ने और अभीष्ट क्षेत्रों में उनका लदान करने की नीति। जो वस्तुतः थी तो आर्थिक पर पीछे उसे वर्ण भेद के नाम से भी पुकारा जाने लगा। दास प्रथा इतनी व्यापक, संगठित और सुनियोजित इससे पूर्व पहले कभी नहीं हुई थी।

प्रबल शिंकजों को ढीला करने की स्थिति में अधिकृत काले लोग बहुसंख्यक होते हुए भी असंगठित थे। फिर त्रास कैसे घटे ? स्वामी लोग स्वेच्छा से अपनी हानि के लिए क्यों सहमत हों ? न्याय रक्षा की बात सोचकर समर्थ लोग क्यों अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारें ? ऐसी दशा में सामान्य बुद्धि से यही लगता है कि यह अनीति चक्र त्रिकाल तक इसी प्रकार चलता रहा होगा।

व्यवहार बुद्धि के द्वारा निकाले गये इस निष्कर्ष के विपरीत भी वातावरण बनता चला गया। स्वयं गोरों में से ही भावनाशील उदारमना लोग निकले जिनने दास प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन चलाये और दासों की मुक्ति के लिए जो भी कुछ संभव थे, वे सभी उपाय अपनाये। इस प्रोत्साहन से कालों का भी उत्साह बढ़ा, मन्यु उभरा और वे भी परित्राण के लिए उन न्यायनिष्ठों के नेतृत्व में अपनी आवाज बुलन्द करने लगे। यह प्रयास निरर्थक नहीं गया। कालों को मानवीय अधिकार मिले और कानूनी दृष्टि से वे गुलामी के बन्धनों से छुटकारा पा सकने में सफल हुए।

दास प्रथा को मिटाने के लिए घनघोर प्रयत्न करने वालों में अमेरिका के गोरे राष्ट्रपति अब्राह्मलिंकन ने जो कुछ किया उसे इतिहासकार सदा स्मरण रखेंगे। उनने जन मानस को इस अनीति के विरुद्ध बनाने, मोड़ने के लिए प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से बहुत कुछ किया। सत्ता हाथ में आने पर उन्होंने इसके लिए कानून बनाये। दक्षिण अमेरिका के गोरे इसके लिए सहमत होते न दीखे तो उन्होंने गृहयुद्ध तक का जोखिम उठाया और अन्ततः जितना संभव था, उतना सुधार भी उनने कर दिखाया।

इसी शदी के इतिहास पर नजर डालें तो हमें नस्लवाद के विरुद्ध संघर्ष के रोमांचकारी प्रसंग पढ़ने को मिलते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सिविल राइट्स मूवमेण्ट (१९५०—१९६०) के प्रादुर्भाव के पूर्व ही एडम क्लेटन पोवेल ने चर्चों को काले लोगों की राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक स्थिति के सुधार आन्दोलन में सहायक बनाने का प्रयास किया था। न्यूयार्क शहर में जातीय विभेद के विरुद्ध चलाये जा रहे काले लोगों के संघर्ष का प्रमुख शक्तिशाली केन्द्र उनका स्वयं का चर्च था।

दक्षिण अमेरिका के एक यहूदी पादरी साइमन बोलिवर न्याय के पक्षधर और अनीति के विरुद्ध कटिबद्ध रहने के लिए प्रख्यात रहे। उनने दास प्रथा के विरुद्ध प्राणप्रण से संघर्ष किया। उनकी यह शपथ घोषणा प्रख्यात है जिसमें उनने कहा था—

मैं अपने भगवान, अपने पूर्वजों तथा मातृभूमि की शपथ लेकर घोषित करता हूँ मैं जब तक इस क्षेत्र को दास प्रथा से मुक्त न करा लूँगा, चैन की साँस न लूँगा।

उन्होंने जो कुछ किया और उससे दुराग्रहियों के हौंसले पस्त हुए और शोषितों को असाधारण साहस मिला। क्रमिक सफलता की ओर बढ़ता हुआ वह आन्दोलन, ऐसा था जिसने सफलता के निकट तक ले पहुँचाने वाला वातावरण विनिर्मित किया।

जो लोग आगे बढ़कर अपने बलबूते जटिल योजनाएँ बनाने और कठिन संघर्ष करने तक जितना मनोबल नहीं जुटा पाते उन्हें भी अन्य साहसी लोगों को आगे चलते देखकर हिम्मत बँधती है। काले लोगों ने दास प्रथा से त्राण पाने के लिए जो संघर्ष किये हैं, उन्हें परोक्ष रूप से ऐसे लोगों का भी मार्गदर्शन और समर्थन मिला है जो न तो स्वयं दास थे और न उन्हें इस कारण कोई व्यक्तिगत या सामाजिक कठिनाई सहन करनी पड़ रही थी। मात्र मानवता के नाते वे आगे आए और सहायतार्थ अपना सहयोग दिया। इस माहौल में काली चमड़ी वालों ने अपने पैरों खड़े हो और अपने बलबूते संघर्ष चलाने का जो पराक्रम किया वह भी कम महत्वपूर्ण एवं सराहनीय नहीं है।

गार्वे मार्क्स अफ्रीका का पहला व्यक्ति था जिसने हब्सी जाति के उत्थान की बात को सोचा। थू. एस. ब्लैक नेसनालिस्ट आन्दोलन को १९१९ में छेड़ने का श्रेय गार्वे को ही जाता है। आगे चलकर इसी आन्दोलन को 'यूनीवर्सल नीग्रो इम्प्रूवमेंट ऐसोसिऐशन' का स्वरूप प्रदान किया गया। आन्दोलन का मुख्य लक्ष्य था—अफ्रीका में नीग्रो जाति में एकता स्थापित करना तथा आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देना।

हार्लेम पहुँचकर यू. एन. आई. ए. की एक ब्रांच की स्थापना और की गयी, जिसमें २ लाख की जन-शक्ति गार्वे के साथ मर मिटने को तैयार हो गयी। नीग्रो जाति का यह सबसे लम्बी अवधि तक चलने वाला आन्दोलन है। इसी संघर्ष के दौरान गार्वे ने 'नीग्रो वर्ल्ड' नामक समाचार पत्र का प्रकाशन आरम्भ कर दिया जो कि उस समय के लिए एक असामान्य बात थी, आगे चलकर इसी प्रयोजन हेतु नीग्रो फैक्ट्री कॉर्पोरेशन तथा 'ब्लैक स्टार लाइन' जैसे संगठनों का गठन किया गया, जिससे व्यापारिक पद्धति में सुधार करना संभव हुआ। गौसरी स्टोर, लौन्डरीज, होटल तथा प्रिंटिंग प्रेस भी इस संगठन ने स्वयं के लिये स्थापित किये एवं वे बड़ी सफलता से चले।

सन् १९२० में आन्दोलन जब अपनी चरम सीमा पर जा पहुँचा तो गार्वे ने 'इन्टरनेशनल कनवैंसन ऑफ लिबर्टी' नामक एक परिषद को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आमंत्रित किया। २५ देशों के प्रतिनिधि इसमें सम्मिलित हुये। ५० हजार सेनानियों ने गार्वे के साथ हारेम की सड़कों पर अमेरिका की नीतियों के विरोध में पदयात्रा का एक माहौल खड़ा कर दिया उसके प्रयासों ने काले लोगों को, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से संतोष की साँस ले सकने जितनी राहत प्रदान की।

दक्षिण अफ्रीका के जनजाति के प्रधान अल्वर्ट लुथली एवं सिसली के डैनिलो डोल्सी के छोटे-छोटे आन्दोलनों के बाद अमेरिका में पहली बार नागरिक अधिकारों के लिए आन्दोलन चलाया गया, जो पूर्णतः गाँधीवादी अहिंसा के सिद्धान्तों पर आधारित था। इस शान्तिपूर्ण आन्दोलन के लिए अल्वर्ट लुथली को सन् १९६० में नोबुल पुरस्कार से विभूषित किया गया। अमरीकी नागरिक अधिकार आन्दोलन के अग्रणी नेता मार्टिन लूथर किंग थे। वे गाँधीजी के विचारों से काफी प्रभावित थे। किंग का यह आन्दोलन बिल्कुल ही परम्परागत धरातल पर आधारित था, जिसमें प्रोटेस्टैण्ट पंथ के विचार, विशेषकर शांतिवादी क्वेकर समुदाय एवं रोमांस प्रकृति का साहित्य सृजन करने वाले लेखक, हेनरी थोरो की साहित्यिक कृतियाँ एंवं दूसरे नॉनकॉनफोरमिस्ट अत्यधिक प्रभावी हुए। क्रमशः इन साहित्यकारों की लेखनी ने भी किंग के विचारों को मुखरित करना आरम्भ कर दिया।

लूथर किंग का आन्दोलन यों प्रत्यक्षतः काले लोगों के लिए न्यायोचित नागरिक अधिकार माँगने भर का था। किन्तु उसके निमित्त जिस दर्शन को बल मिला तथा प्रसार हुआ उसकी परिणति असंख्यों को झकझोरने, प्रभावित करने एवं बदलने के रूप में सामने आई। यहाँ तक कि मूर्धन्य मनीषियों ने इस संदर्भ में इतना कुछ लिखा जितना कि स्वयं लूथर किंग भी न कह सके।

सामाजिक सिद्धान्तों के प्रख्यात प्रस्तोता वाल्टर रास्केत बुस्फ, नीतिशास्त्री रेनो निकर,-हार्बर्ड यूनिवर्सिटी के प्रेसीडेंट मोडेकार्ड जानसन ने इस आन्दोलन का प्रचंड समर्थन किया, जिससे अमेरिकी जनसमुदाय की माँग पर शासन को कई सुधार करने के लिए विवश होना पड़ा।

दक्षिण अफ्रीका के एक कबाइली सरदार का लड़का नेलसन मण्डेला अपने देश में कालों को नागरिक अधिकार दिलाने के लिए जिस प्रकार संघर्षरत हुआ, उसका एक अनौखा कीर्तिमान है। वकालत की परीक्षा पास करने के उपरान्त वह धंधा चलाने की अपेक्षा न्याय संघर्ष की ओर मुड़ गया। उसके नेतृत्व में अफ्रीकन नेशनल कॉंग्रेस ने नव चेतना भर दी और नागरिकों को अपनी माँग बुलंद करने के लिए कटिबद्ध कर दिया।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रंगभेद कानूनों को तोड़ने के अपराध में उसे बार-बार जेल के सींखचों में ठूँसा जाता रहा। पहली बार मुकदमा जीत कर वह छूटा ही था कि दूसरी बार फिर पकड़ लिया गया और पाँच वर्ष की सजा सुनाई गई। उसे भुगतने के बाद वह बाहर आया तो तीसरी बार आजीवन कैद की सजा बोल दी गई। विगत १८ वर्षों से वह जेल में बंद रहे तो भी उसकी प्रेरणा चहारदिवारी के भीतर बंद नहीं रही। विद्रोह पर विद्रोह उभारते रहे, ढेरों लोग जेल, गोली तथा दूसरे प्रकार की दमन प्रताड़नाएँ भुगतते हुए संघर्ष को गतिशील बनाये रहे।

नेलसन मण्डेला की ६५वीं वर्षगाँठ संसार भर के न्यायवादियों ने पिछले दिनों धूमधाम के साथ मनाई थी और उसे दीर्घायु तथा स्वतंत्र होने की कामना की थी। यूनेस्को ने उन्हें बोलीबर पुरस्कार देकर सम्मानित किया है। दक्षिण अफ्रीका में नागरिक अधिकारों की स्थापना तो अभी-अभी हुई है। संघर्ष और लोकमत को देखते हुए अंततः अन्याय को, अनीति को हारना ही पड़ा। दक्षिण अफ्रीका स्वतंत्र होकर रहा।

दास प्रथा अभी पूरी तरह इस संसार से मिटी तो नहीं है पर इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसे कानून, न्याय और लोकमत ने पूरी तरह अमान्य ठहरा दिया है। प्रत्यक्ष रूप से अपनी ध्वजा पताका उसे समेट लेनी पड़ी है। परोक्ष रूप से जहाँ-तहाँ उसका जो कुछ अस्तित्व बना हुआ है, उसका आत्यन्तिक अवसान होने में भी अब बहुत विलम्ब लगने वाला नहीं है। इसे अनीति के विरुद्ध खड़े होने वाले आन्दोलनों का ही प्रतिफल कहना चाहिए।

अछूतोद्धार कैसे व क्यों ?

मनुष्य-मनुष्य सभी समान हैं। ईश्वर ने भी उसे एक ही साँचे में बनाया लेकिन समाज में उनकी ऊँच-नीच, उनके गुण, कर्म, स्वभाव पर ही निर्भर हैं, वंश के आधार पर नहीं। इसी आधार को लेकर मनुष्य ने अपने ही समाज, धर्म, एक वंश, देश, संस्कार के व्यक्तियों को लेकर अपने धर्म और जाति का वर्गीकरण कर दिया। जिन्हें समाज ने अछूत और नीच कहकर अपमानित किया है। उन्हें केवल सामाजिक अधिकार ही नहीं बल्कि नागरिक अधिकारों से भी समाज से वंचित कर दिया। भारतीय समाज को कलंकित करने वाली कुप्रथाओं में ऊँच-नीच छूतछात का सबसे ऊँचा स्थान है। राष्ट्र की प्रगति के लिए हमें अछूत जाति का उद्धार करना तथा अशिक्षा, अन्धविश्वास को दूर करना होगा।

अनुचित भेदभाव भी हिन्दू समाज के विकास में बाधक है। हिन्दू समाज में दो वर्ग हैं। एक सवर्ण और दूसरा असवर्ण या अछूत। अछूतों का एक बड़ा भाग जिसे हरिजन कहा गया है, वह हिन्दू जाति का एक अभिन्न अंग होते हुए भी कुछ विशेष कारणों से अलग कर दिया गया है, जिसे अन्य वर्ग के लोग छूने से घृणा करते हैं। इसी भेद-भाव का लाभ उठाकर आज ईसाई आदि अनेक जातियों ने अछूतों को बहकाकर अपने धर्म में सम्मिलित कर लिया। इससे हिन्दुओं को अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक हानियाँ ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय हानियाँ भी सहनी पड़ीं। इसके लिए हमें उनका सुधार स्वयं करना होगा। लेकिन ये तभी सम्भव है जब वे अपना सुधार स्वयं करने का प्रयास करें। इसके लिए इन्हें मानसिक तथा भावनात्मक सहयोग देकर अछूतों के प्रति घृणा के भाव को दूर करें तथा प्रगतिशील संस्कारों को भरने के लिए हमें विचारों तथा मानव मूल्यों का मनन करना होगा।

किसी शास्त्र में लिखा हुआ नियम नहीं कि मनुष्य-मनुष्य से घृणा करे। मनुष्यों के बीच समानता और परस्पर प्रेम की भावना को अपनाकर हमें इस फैलती हुई अस्पृश्यता को समाप्त करना चाहिए। हम सब एक परमात्मा की संतानें हैं, यह समझकर हमें आगे विकास के मार्ग पर चलना है।

अस्पृश्यता का निवारण हिन्दू समाज की एक महती समस्या है। सवर्ण हिन्दुओं को मानसिक सुधार के साथ-साथ व्यावहारिक कार्यक्रमों में भी सुधार करना है। उनमें अछूत बच्चों की पढ़ाई का कार्य महत्त्वपूर्ण है। आज सरकारी कार्यों तथा समाज सेवकों के प्रयत्नों से हरिजन बालक कक्षा में आने लगे, फिर भी कई बालक कक्षा में डरे-डरे दूर बैठते हैं। पाठशाला में अध्यापक का व्यवहार उनके प्रति ठीक न होने पर वे स्कूल तक छोड़ देते हैं। इससे उनकी सुधार की आशायें समाप्त हो जाती हैं। इस प्रकार अध्यापक को चाहिए कि वे सवर्ण बालकों को समान प्रेम, व्यवहार तथा प्रेम, सहानुभूति के साथ पढ़ायें जिससे उनमें हीन भावनायें न जागें और आत्म विश्वास जागे और आगे बढ़ सकें।

हिन्दू समाज में यह कुप्रथा चली आ रही है कि अछूत जातियों को अपना जूठा भोजन तथा उतारा हुआ कपड़ा देना। यदि हमें अछूत प्रजा को कुछ देना ही है तो उन्हें स्वच्छ शुद्ध भोजन दें। इस प्रकार का जूठा खाने से उनके बुरे संस्कार और अधिक बुरे होते जाते हैं इसलिए किसी को जूठा देना या लेना धार्मिकता को नष्ट करना है। किसी भी व्यक्ति की यह मजबूरी नहीं होती कि वह हरिजनों को अपना जूठा दे। फिर भी उन्हें देने के लिए जानबूझ कर जूठा छोड़ा जाता है।

सार्वजनिक स्थानों का प्रयोग सबके लिए समान है। आज हरिजन लोगों को मन्दिरों, शिवालयों, कुओं-पनघटों पर जाने से रोका गया है। हमारे पूर्व राष्ट्रपति श्री जैलसिंह पुष्कर तीर्थ के एक मन्दिर में मात्र इसलिए नहीं गये कि वहाँ अछूतों के लिए प्रवेश प्रतिबन्धित है। इसी प्रकार पुरी का एक मन्दिर भारत की भूतपूर्व प्रधानमन्त्री स्व. श्रीमती इन्दिरा गाँधी के लिए आजीवन बन्द ही रहा। यह कौन-सी मानवता है। इस प्रकार हरिजनों को अपवित्र और अशुद्ध पशुओं से भी गिरा हुआ समझा गया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हरिजनों के सुधार के लिए हमें स्वयं सहयोग देना है। इसके लिए आवश्यक है कि हम गाँवों में जाकर बतायें कि उनकी जन्म जाति से अधिक उनकी स्थिति उन्हें गिरा रही है। इसके लिए प्रत्येक हरिजन को अपनी सफाई, स्वच्छता का ध्यान रखना होगा साथ ही वे अपने बालकों को अच्छी शिक्षा दिलायें। प्रौढ़ पाठशालायें खोलें तथा उन्हें शिक्षा का महत्व बताते हुए निःस्वार्थ भाव तथा सच्ची सामाजिक भावना वाले प्रगतिशील व्यक्ति और स्वयंसेवक उन्हें सहयोग दें। शिक्षित टोलियाँ बनाकर हरिजन बस्तियों में जायें तथा उनको सुधार के लिए प्रेरित करें। रात्रि की गोष्ठियों में आचरण सुधार सम्बन्धी शिक्षा दी जाय, उनके उद्धार सम्बन्धी बातों पर विचार किया जाय।

हरिजनों को भी स्वयं अपने सुधार का प्रयत्न करना चाहिए। कहा गया है, 'भगवान उन्हीं की सहायता करते हैं, जो अपनी सहायता अपने आप करते हैं।' इसलिए हरिजनों को इस बात का व्रत ले लेना चाहिए कि वे अपनी दशा स्वयं बदलकर समाज को मजबूर कर लेंगे कि वह उनका महत्व समझे। समाज में असामाजिक कार्य करने वाले व्यक्ति का हुक्का-पानी बन्द करने के रूप में दण्ड देता है। परन्तु आज हरिजनों की पंचायतें शिथिल पड़ गयी हैं। उन्हें अपनी पंचायतों के प्रभाव को सुधार की दिशा में ले जाना है इसके लिए वे स्वयं अनेक बुराइयों जैसे शराब, गाँजा, भाँग आदि नशीली वस्तुओं के उपयोग को छोड़ दें। किसी विशेष अवसर पर पूरी बिरादरी का खाना, खर्चीली रसोई, अनेक संस्कारों पर आवश्यकता से अधिक खर्च करना। इस प्रकार इन सबको पूरा करने के लिए वे बाहर से मनमानी शर्तों पर कर्ज, ब्याज पर कर्ज लेकर आते हैं। इस प्रकार के आर्थिक विनाश को समाप्त करना आवश्यक है। सुधार-पंचायतों, योग्य मुखियाओं द्वारा इन दुर्गुणों, बुराइयों को बन्द कर देना चाहिए।

शिक्षित हरिजनों का कार्य है कि हरिजन बस्तियों में जाकर स्वच्छता की प्रेरणा दें साथ ही मौहल्ले-बस्तियों की सफाई में सहायता दें ताकि अशिक्षित हरिजन अब पढ़े-लिखे, साफ-सुथरे हरिजनों को काम करते देखेंगे तो उन्हें भी उत्साह होगा, इससे उनका मनोबल बढ़ेगा। इतना ही नहीं बल्कि उन्हें हरिजनों की बस्तियों में श्रमदान समितियाँ भी खुलवानी चाहिए, जिसका कार्य गन्दी बस्तियों को साफ-सुथरा, लिपाई, पुताई, दूसरों के कच्चे मकान बनवाना आदि हो। शिक्षित हरिजन अधिक से अधिक शिक्षा का प्रसार एवं प्रचार करें। हरिजनों को शिक्षा का महत्व बतलाते हुए प्रौढ़ों के लिए रात्रि पाठशालायें चलायी जानी चाहिए।

प्रौढ़ हरिजनों को मानसिक विकास सम्बन्धी समाचार व कहानियाँ सुनानी चाहिए। उन्हें रविदास, वाल्मीकि, शबरी एकलव्य आदि हरिजनों की कथायें सुनानी चाहिए। इस प्रकार संस्कारों तथा आत्म-विकास पर भारी प्रभाव पड़ेगा। कई प्रौढ़ शिक्षित भी होते हैं, जो अपनी शिक्षा को बढ़ाने का प्रयत्न नहीं करते। तोता-मैना, चूहा-बिल्ली की कहानियाँ पढ़कर लोगों को सुनाते हैं, उनका प्रभाव भी बुरा होता है। पढ़ने में रुचि रखने वालों को अच्छी-अच्छी जीवन विकास सम्बन्धी पुस्तकें वाचनालयों तथा पुस्तकालयों में रखनी चाहिए ताकि नित्य संध्या समय वहाँ पुस्तकें पढ़ें साथ ही साथ प्रत्येक शिक्षित हरिजन की पत्नी भी शिक्षित होनी चाहिए, जिससे वह अशिक्षित स्त्रियों को तथा अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दे सके। कोई भी राष्ट्र, देश, समाज तब तक नहीं सुधरेगा, जब तक वहाँ के स्त्री-पुरुष नहीं सुधरेंगे।

झूठे देवी-देवताओं के नाम पर भूत-चुड़ैल, पशुबलि आदि बुरी आत्माओं पर विश्वास करना हरिजनों की महत्वपूर्ण दुर्बलता है। जिससे वे धर्म के नाम पर अपनी आत्मा को चारों ओर भटकाते हैं। अन्ध-विश्वास का आधार धर्म है इसलिए धार्मिकता के नाम पर ऐसी कथायें सुनायी जायें जिससे अंधविश्वास की भावना हट जाय। हवन, पूजा, गीता, रामायण आदि की धार्मिक कथायें सुनायी जायें, यह कार्य शिक्षित हरिजन भी कर सकते हैं। हरिजनों को छोटे-मोटे मन्दिर बनाकर मूर्ति पूजा करनी चाहिए। कुछ समय बाद ऐसा समय आयेगा कि जब किसी भी मन्दिर में भेद न होगा और अज्ञानता मिटने के साथ-साथ अन्धविश्वास भी दूर हो जायेगा।

सामाजिक कुरीतियाँ जो आज हमारे समाज में चारों ओर फैली हैं, उनकी ओर भी शिक्षित हरिजनों को ध्यान देना है। बाल-विवाह जो आज व्यापक रूप से फैला है। शीघ्र ही समाप्त कर देना चाहिए। इसके लिए शिक्षित अछूत वर्ग अपनी बहिन, बेटी, भतीजियों का विवाह कम उम्र में न करें, न होने दें साथ ही वैवाहिक अपव्यय जैसे नाच-गाने, नौटंकी आदि अश्लील असभ्य परम्परा को भी बन्द कर देना चाहिए और सरल, सादा तथा कम खर्चीले आदर्श विवाह करने चाहिए। हरिजनों में लड़की वाले लड़के से दहेज न माँगें। इस दहेज प्रथा को सदैव के लिए बन्द करवा दें, तभी अनैतिकता का निवारण होगा। अनेक हरिजनों में भी अनेक जातियाँ-उपजातियाँ तथा ऐसे वर्ग हैं जिनको हरिजन अपने से नीचा तथा अछूत मानते हैं। सुधार उन्हें स्वयं से शुरू करना होगा।

सामाजिक, शारीरिक, मानसिक सुधार के साथ-साथ धर्मान्तरण में भी परिवर्तन करना चाहिए। पिछले बीस वर्षों में लाखों आदिवासी हरिजन सवर्णों के बुरे बर्ताव के कारण ईसाई, मुसलमानों के बहकावे में आकर ईसाई व मुसलमान हो गये हैं। इस बढ़ती हुई संख्या को देखकर सवर्णों का कर्तव्य है कि वे अपने अच्छे व्यवहार से हरिजनों को गले लगाकर उन्हें समानता का अधिकार दें।

इस सुधार कार्य में सेवानिवृत्त अधिकारी बहुत काम कर सकते हैं। पेन्शन पाने के बाद वे अपना जीवन जातीय उद्धार में लगा सकते हैं। जिस जाति, वर्ग का पतन हो रहा हो, उन्हें सुख से नहीं रहना है। उन्हें अपने प्रयास से हरिजनों में नया जागरण लाना है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आज हरिजनों को बहुत-से कार्यों में तकलीफ होती है। जैसे धोबी उनके कपड़े नहीं धोता, नाई उनके बाल नहीं काटते, दर्जी उनके कपड़े नहीं बनाते, मिस्त्री उनके मकान नहीं बनाते। इस तरह के सामाजिक कार्यों में बहुत कष्ट होता है। उन्हें स्वयं वे कार्य करने चाहिए। ताकि उनकी आर्थिक दशा भी सुधर जाय। उन्हें सरकारी समिति आदि घरेलू उद्योग शुरू कर देने चाहिए। खेती-बाड़ी, शाक-सब्जी, मशीनों का काम, लौह एवं काष्ठ-कला आदि उनके ही आर्थिक विकास में सहायक होंगे। हरिजन स्त्रियों को भी घर की आर्थिक स्थिति के सुधार में सहयोग देना चाहिए। ये सब योजनायें राष्ट्रीय विकास में भी सहायक सिद्ध होंगी।

गाँधीजी ने भारतीय संस्कृति को एक महान सहयोग देकर हरिजनों के कल्याण का कार्य किया। संविधान ने भी इसमें सहयोग दिया लेकिन वास्तव में संविधान द्वारा या कानूनों के भय से अस्पृश्यता का अन्त नहीं किया जा सकता। केवल आपसी प्रेम व्यवहार, भीतरी प्रेरणाओं को जगाकर ही छुआछूत का अन्त सम्भव हो सकता है। प्राचीन भारत में गुणों के आधार पर हरिजनों को उतना ही सम्मान दिया जाता था जितना सवर्णों को। इसीलिए आज की अपेक्षा वे अधिक धार्मिक तथा सामाजिक मामलों में पूरी तरह विवेकशील थे। हिन्दू के नाते वे हिन्दू कहने में गौरव मानते थे। वाल्मीकि, कश्यप ऋषि नीच कुल में पैदा होने पर भी अपनी स्वाध्याय साधनों के द्वारा भारतीय लोगों के मन में जगह बना ली। इस प्रकार हरिजनों को मानवोचित सम्मान से अलग करना कलंक ही नहीं बल्कि उनका अपमान भी है। इसके लिए एक व्यक्ति नहीं सर्वव्यापी आन्दोलन अभीष्ट है, नहीं तो क्रमशः ये सभी राष्ट्रीय धारा से कटते चले जायेंगे एवं सामूहिक धर्मान्तरण ही एकमात्र विकल्प उन्हें अपनाने हेतु मिलेगा।

अस्पृश्यता का अभिशाप कैसे मिटाया ?

महात्मा गाँधी ने एक बार कहा था—"काश ! मैं किसी भंगी के घर में पैदा हुआ होता।" उनका आशय यही था कि वर्तमान युग में हमारे देश में भंगी एक ऐसा प्राणी है, जो समाज की सबसे नीच समझी जाने वाली टहल करके भी सबसे अधिक उपेक्षित और निम्न स्तर का जीवन व्यतीत करता है। इस प्रकार परमात्मा की दृष्टि में वह सबसे बड़ा सेवक सिद्ध होता है। गाँधीजी के इस कथन को बहुतों ने सुना और समझा, पर जिस प्रकार बाबा राघवदास ने इसे कार्यरूप में परिणत किया उसका दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है।

उनका आश्रम बरहज (गोरखपुर) में था और उनके गुरुदेव के समय से ही, जिनको समस्त जनता एक महायोगी मानती थी, इस आश्रम की नगर और आस-पास के ग्रामों में बड़ी मान्यता थी। एक बार बरहज में सफाई कमेटी (टाउन एरिया) की बद इन्तजामी के कारण कई महीने तक पाखाने साफ नहीं किये गये और तमाम बस्ती में घोर गन्दगी फैल गई। इसकी शिकायत बाबा राघवदास के पास पहुँची तो उन्होंने कमेटी के कर्मचारियों को लिखा। पर जब कर्मचारी बार-बार कहने पर भी टालमटूल करते रहे तो बाबाजी को बड़ा बुरा लगा। वे स्वयं बस्ती में पहुँचे और अपने हाथों से पाखानों को साफ करने लगे। गन्दगी बहुत ज्यादा थी इसलिये उनके हाथ-पैरों पर जगह-जगह मल लग गया। पर वे किसी बात की तरफ ध्यान न देकर काम में जुटे रहे। यह देखकर समस्त कस्बे में हलचल मच गई। बड़े-बड़े घरों के पुरुष और स्त्रियाँ बाहर निकलकर सफाई के काम में सहयोग करने लगे। स्त्रियाँ रोती जाती थीं कि इतना बड़ा महात्मा हमारे पाखाने को साफ कर रहा है, इस पाप के फल से हम नरकगामी होंगे।

इसी प्रकार पड़रौना में जब उन्होंने सार्वजनिक पाखानों को बहुत अधिक गन्दी हालत में देखा तो तुरन्त सफाई के काम में जुट गये और सैकड़ों व्यक्तियों के देखते हुये तीन घण्टे तक परिश्रम करके दो पाखानों को बिलकुल स्वच्छ बना दिया।

उन्होंने पाखानों की सफाई का काम सन् १९२२ में ही बनारस जेल से आरम्भ किया था। काँग्रेस के अधिवेशनों में भी वे प्रायः अपने कुछ सहकारियों के साथ पाखानों की सफाई का भार स्वयं ग्रहण कर लेते थे। वास्तव में उनका हृदय मेहतरों के कठिन कार्य और उनकी दुर्दशा, को देखकर रोता था। इसका वर्णन एक प्रत्यक्षदर्शी ने इस प्रकार किया है—

एक दिन वर्षा की ऋतु में बाबाजी अधिक रात गये बाहर से आये और अपने चबूतरे पर सो गये। अन्धकार के कारण उनको यह नहीं जान पड़ा कि उनका एक साथी भी उसी कोठरी के एक कोने में सोया पड़ा है। चार बजे प्रातःकाल जगकर वे लेटे हुये ही एक बंगाली भाषा का भजन गाने लगे जिसका आशय था—"तुम हमारे मल-मूत्र की सफाई करते हो। जाड़ा, गर्मी, वर्षा में अर्धनग्न और आधा पेट रहकर अपने परिश्रम से हमारी खेती-बारी सँभालते हो, अपने को हमारा अभिन्न अंग मानते हो, गंगा, सरयू और राम-कृष्ण के पूजक हो, तो भी तुम्हारे लिये हमारे हृदय में कृतज्ञता का भाव उदय नहीं हुआ। साधुओं का हृदय तुम्हारे लिए क्यों नहीं पसीजा ? हिन्दू जाति ने अपने ही एक वर्ग पर ऐसा अत्याचार क्यों किया ? कदाचित् इसीलिये तो न्यायकारी प्रभु ने हमें गुलाम नहीं बनाया है।" बाबा इस कविता को आध घण्टे तक गाते रहे और रोते रहे। तब पास में सोये व्यक्ति ने जरा खाँस दिया और पूछा—"आप इस प्रकार रोते क्यों हैं ? बाबाजी कहने लगे—'पंडितजी ! आपके यहाँ हिन्दी में कोई ऐसी मार्मिक रचना क्यों नहीं प्रस्तुत करता ? निश्चय समझ लीजिये कि बापू जैसा पुरुष जल्दी फिर नहीं आवेगा। उनके जीते जी हमें अपनी जाति से यह अस्पृश्यता का कलंक धो डालना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, अन्यथा एक दिन हम बड़े संकट में फँसेंगे। बापू ने ४ करोड़ हरिजनों को हिन्दू जाति से अलग कर देने का एक संकट अपनी जान पर खेलकर टाला है।"

यह काले गोरे की विडम्बना

गोरों के अत्याचारों की पीड़ा से काले हब्शियों की हड्डियों तक में भय समा गया था। गोरे उनके लिये किसी पिशाच से कम नहीं थे। वे अपने बच्चों को बताया करते थे—"गोरे शैतान के वंशज हैं, जो आदमी को काट-काटकर खा जाते हैं, उसके शरीर को उबालकर चर्बी निकालते हैं। आज वह स्थिति तो नहीं है फिर भी अफ्रीका के डरवन, जोहन्सवर्ग, केपटाउन आदि नगरों में गोरे लोगों के घरों के बाहर अश्वेतों के लिये इस प्रकार के सूचना पट्ट लगे हुए देखे जा सकते हैं—"यदि सीमा में प्रवेश किया तो गोली मारकर उनका शव जंगली पशुओं को खिला दिया जायगा।"

आज जबकि सारा विश्व एकता के सूत्र में बँधने के सपने देख रहा है—मनुष्य चाँद के बाद अन्य ग्रहों पर जाने के सपने देख रहा है, यह मानवता का कलंक—बहुत बड़ी विडम्बना है।

यह रंगभेद सर्वाधिक अफ्रीका तथा अमेरिका में है। अफ्रीका सरकार का रवैया काले आदिवासियों के प्रति उपेक्षापूर्ण है। यहाँ तक कि कालों को गोरों से बात करने के लिये परमिट की आवश्यकता होती है। न्याय तथा पुलिस उनके साथ उपेक्षा बर्तती है। पिछले २५ वर्षों में १४१६ अश्वेतों को साधारण अपराधों के कारण भी फाँसी की सजा दी गई।

अमेरिका की स्थिति भी कुछ कम शोचनीय नहीं है। जरा-जरा सी बात पर इन्हें गोली मार देना, अपमानित करना यहाँ साधारण बात है। पुलिस तथा न्यायाधीश सब नीग्रो विरोधी हैं। नौकरियों में इनकी संख्या के अनुपात में बहुत कम स्थानों पर इन्हें रखा गया है।

अफ्रीका तथा अमेरिका का काले-गोरे का भेद हो या भारत का अछूत और सवर्ण का भेद हो इसका कारण एक ही है, वह है—अहंकार भरी स्वार्थपरता। रंग और जाति का भेद तो बहाना भर है। गोरे देखते हैं कि यदि ये काले लोग उनके समान हो जायेंगे तो उनके लिये श्रमिक कहाँ से मिलेंगे ? प्रगति करके ये ही उनके प्रतिद्वन्द्वी बन जायेंगे। यही दृष्टिकोण भारत में अछूतों के प्रति सवर्ण लोगों का रहा। सेवा-कार्य करने तथा नीचे कहलाने वाले लोग यदि प्रगति कर जाते तो उन्हें सस्ते सेवक कहाँ से उपलब्ध होते ?

मनुष्य-मनुष्य में भेद स्वार्थपरता की संकीर्ण विचारधारा ने उत्पन्न किया है। इस संकीर्ण प्रवृत्ति का बहिष्कार किया जाय तो यह भेद समाप्त होते देर न लगेगी। यदि यह वृत्ति ज्यों की त्यों रही तो यह भेद मिटने वाला नहीं है, भेद रहेगा ही उसका नाम और रूप बदल जायेगा।

सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहलाने का गौरव इन कलंक कालिमाओं के रहते हुए मनुष्य पाने का अधिकारी कैसे हो सकता है ? एक ही प्रकार के प्राणियों में आकाश-पाताल का यह कृत्रिम भेद समाप्त होने पर ही वह पात्रता सिद्ध हो सकेगी।

कल जिन्हें चाँदी के चन्द टुकड़ों के बलबूते पर खरीदा जाता था। (एक नीग्रो का अधिकतम मूल्य १६वीं सदी में ६ पौण्ड था।) आज भी उसे पग-पग पर पददलित किया जाता है।

इस भेद को समाप्त करने के लिए नीग्रो लोगों ने पर्याप्त आन्दोलन किये हैं। डॉ. मार्टिन लूथर किंग, एलबर्ट लुथिली जैसे कई नीग्रो नेताओं ने अपना सारा जीवन इस भेद को समाप्त करने में लगा दिया। अब्राह्मलिंकन तथा केनेडी जैसे महामानव इस भेद को मिटाने के लिये प्राणोत्सर्ग कर गये।

इस भेद के मूल स्वार्थ की संकीर्ण वृत्ति का त्याग करके समता के मानवीय आदर्शों की प्रतिष्ठापना का नव प्रभात लाने में देर न करना ही प्रत्येक सच्चे मानव का धर्म है।

हरिजन उत्कर्ष के लिए बड़े कदम उठें

भारतीय समाज को दुर्बल और कलंकित करने वाली कुप्रथाओं में ऊँच-नीच और छूत-छात का स्थान सबसे ऊँचा है। मनुष्य-मनुष्य एक समान हैं। ईश्वर ने उन्हें एक ही साँचे-ढाँचे में बनाया है। धर्म और जाति का विभागीकरण मनुष्यकृत है। कार्य-पद्धति की सुविधा के लिये कोई वर्ण, वर्ग बन सकते हैं, उनके नाम संकेत भी अलग हो सकते हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं कि किसी को मानवोचित नागरिक अधिकारों से इसलिए वंचित किया जाय कि वह तथाकथित पिछड़ी हुई जाति में पैदा हुआ है। इसी प्रकार किसी को इस कारण भी अपने को ऊँचा समझने का अहंकार न करना चाहिए कि वह अमुक तथाकथित उच्च कुल में पैदा हुआ है। मनुष्यों की उत्कृष्टता-निकृष्टता उसके गुण, कर्म, स्वभाव पर निर्भर रहती है, वंश पर नहीं। यही उचित और यही विवेकसंगत है। किन्तु दुर्भाग्य से हिन्दू समाज में ऐसी प्रथा चल पड़ी है कि अपने ही समाज, धर्म, एक वंश, देश और संस्कार के व्यक्तियों को नीच अछूत आदि कहकर उन्हें तिरस्कृत-बहिष्कृत जैसी स्थिति में पटक दिया गया है।

आज के जनतान्त्रिक और मानवीय अधिकारों की मान्यता वाले युग में इस प्रकार की अन्याययुक्त मान्यताओं के लिये कोई स्थिति नहीं हो सकती कि गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से अपने ही जैसे लोगों को अछूत कहकर अलग-अलग कर दिया जाय। इससे हिन्दू समाज की पिछले दिनों अपार हानि हुई है, यदि समय रहते इस मूढ़ता में सुधार न किया गया तो वह दिन दूर नहीं जब हिन्दू-जाति को अपने अस्तित्व से—वर्चस्व से हाथ धोने के लिए तैयार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहना होगा। छुआछूत और ऊँच-नीच की इस अन्यायमूलक सामाजिक दुष्प्रवृत्ति को दूर किये बिना भारतीय राष्ट्र वांछित गति से प्रगति नहीं कर पायेगा। भारत की प्रगति का पथ प्रशस्त करने के लिये अनेक शर्तों में एक शर्त यह भी है कि भारत की अछूत जाति का उद्धार किया जाये। उसमें फैली अशिक्षा तथा अन्धविश्वास को दूर किया जाये। उनके जीवन को परिष्कृत एवं उन्नत बनाया जाए। उनके विकास प्रयत्नों को इतनी तेजी से आगे बढ़ाया जाये कि अछूत-जाति शीघ्र ही प्रबुद्ध एवं परिष्कृत होकर हिन्दू समाज का एक समान अंश बन सके।

यद्यपि स्वामी दयानन्द, महात्मा गाँधी, लाला लाजपतराय तथा ठक्कर बाबा प्रभृति महापुरुषों ने अछूतों का उद्धार करने के लिये बहुत कुछ किया और इस दिशा में अछूत वर्ग में कुछ चेतना और हिन्दू-जाति में विचार प्रबोध भी हुआ किन्तु केवल थोड़ी-सी हलचल से अथवा कभी-कभी किसी व्यक्ति के इस ओर कार्य करने मात्र से ही चिरकाल से पिछड़ी अछूत जाति का अभिशाप हिन्दू समाज पर से दूर न होगा। इसके लिये एक व्यापक कार्यक्रम तथा अधिक से अधिक कार्मकर्ताओं की आवश्यकता होगी। कभी कोई व्यक्ति अछूतों के सुधार के लिये काम करता है। कुछ प्रगति भी होती है, पर उस व्यक्ति विशेष के साथ ही अछूतोद्धार का आन्दोलन भी समाप्त हो जाता है। आज आवश्यकता है कि आन्दोलन राष्ट्रव्यापी बने और इससे सभी वर्णों, वर्गों और स्वयं अछूत जाति वाले अपना सुधार करने के लिये यथासाध्य कार्यक्रमों से संलग्न हों।

अबांछनीय भेदभाव—हिन्दू जाति में इस समय दो वर्ग हैं। एक सवर्ण और दूसरा अवर्ण अथवा अछूत। अछूतों का एक बहुत बड़ा वर्ग जिसे हरिजन भी कहा जाता है। हिन्दू-जाति का एक अंग होने पर भी कतिपय कारणों से उससे अलग पड़ा हुआ है। इस वर्ग के लोगों को अन्य वर्गीय हिन्दू छूने तक में घृणा किया करते हैं। अपना होते हुए भी हम अपने जिस भाई से कोई सम्बन्ध नहीं रखते वह न होने के बराबर ही है। सवर्णों तथा अवर्णों की इस पृथकता का लाभ उठाकर अन्य ईसाई आदि जातियाँ अछूतों को तरह-तरह से बहकाकर हिन्दू-जाति से अलग करके अपने धर्म में दीक्षित करती जा रही हैं। अछूतों के इस निर्गमन से हिन्दुओं को क्या आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक हानियाँ हो रही हैं और आगे चलकर क्या राष्ट्रीय हानि हो सकती हैं, इसकी विवेचना की आवश्यकता नहीं। हर विचारवान व्यक्ति इसको अच्छी तरह जानता है। आवश्यकता इस समय इस बात की है कि अछूतों का सुधारकर, उन्हें शिक्षित तथा संस्कृत बनाकर हिन्दू जाति का उसी प्रकार अभिन्न अंग बनाया जाये जिस प्रकार सवर्ण जातियाँ। यह बात सही है कि कोई भी जाति वर्ग अथवा व्यक्ति तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक वह अपनी उन्नति का प्रयास खुद नहीं करेगा। दूसरे लोग तो उसे परामर्श दे सकते हैं, मार्ग बतला सकते हैं और कुछ सहायता कर सकते हैं, अपनी दशा सुधारने के लिये अछूतों को स्वयं ही प्रयास करना चाहिए। फिर भी हिन्दुओं का प्रगतिशील वर्ग तथा दूरदर्शी सवर्ण-वर्ग उनको उठाने एवम् सुधारने में यथासम्भव सहयोग करें।

उनका पहला सहयोग तो मानसिक तथा भावनात्मक होना चाहिए। उन्हें अछूतों के प्रति अपने घृणाभाव को दूर करना और उनमें इस सम्बन्ध का विश्वास पैदा होना चाहिए। इसके लिये उन्हें अपने पिछड़े संस्कार की जगह देशकाल के अनुसार प्रगतिशील संस्कार डालने के लिये प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए विचार करना, साहित्य पढ़ना तथा मानव मूल्यों का मनन करना उपयोगी होगा। सवर्णों को चाहिए कि वे किसी अछूत के मिलने पर कोई ऐसा भाव अथवा व्यवहार व्यक्त न करें, जिससे तिरस्कार अथवा घृणा का अनुभव हो। सवर्ण हिन्दुओं का यह स्वयं का संस्कार सुधार भी हरिजन की दिशा में एक सक्रिय कार्यक्रम ही है।

धर्म नहीं सामाजिक विकृति—इस संसार की छुआछूत सामाजिक विकृति है कोई शास्त्रीय नियम नहीं। मनुष्य-मनुष्य को घृणा करे ऐसा आदेश कोई भी धर्म अपने अनुयायियों को नहीं देगा और यदि ऐसा अमानवीय उल्लेख कहीं पर पाया जाता है तो उसे क्षेपक ही समझना चाहिए और यह मानकर चलना चाहिए कि किसी अन्धकार काल में यह नियम या तो किसी विरोधी का आरोपित कराया हुआ है अथवा किसी समय समाज को ऐसे नियम की आवश्यकता रही होगी किन्तु अब इस अनुपयोगी ही नहीं हानिकारक आपद् नियम को बदल ही देना चाहिए।

इस प्रकार की विचार दृष्टि से अछूतों के प्रति घृणा दिखलाना अथवा रखना किसी प्रकार उचित नहीं है। मानव-मानव के बीच समानता तथा पारस्परिक प्रेम-भाव किसी भी धर्म का मूल सत्य है। अन्य सब बातें तो गौण तथा देशकालीन ही हुआ करती हैं। विशेषतया हिन्दू-धर्म तो मानव, मानव को ही नहीं जीवमात्र की समानता तथा एक परमात्मा की सन्तान मानने में विश्वास करता है। इस न्याय के आधार पर सवर्ण हिन्दुओं को अपने मूल धर्म का सम्मान करते हुए अछूतों के प्रति अपनी घृणा भावना को दूर करना ही चाहिए।

धर्म भेद नहीं सिखाता

गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है—"चारों वर्णों की सृष्टि मैंने गुण और कर्म के आधार पर की है।" लेकिन आज यह जन्म के आधार पर निर्धारित होती है। भूतकाल में पूरी तरह समता और एकता की भावना थी।

धीरे-धीरे व्यक्तियों में जन्म जाति प्रथा का आरम्भ हुआ और लोग अपने जातीय स्वार्थों में फँसकर दूसरों से अपने को भिन्न करने लगे। आज जाति प्रथा के बन्धन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतने संकीर्ण हो गये हैं कि वे एक-दूसरे के हाथ का पानी पीना भी पसन्द नहीं करते। अपने कर्म के आधार पर दिया व्यवसाय करने वाले ब्राह्मण सेवा करने वाले हरिजनों को इतना निम्न मानने लगे कि उनकी परछाई भी पड़ने पर स्नान करते। ऐसी स्थिति में भारत का सामाजिक पतन आरम्भ हो जाता है।

भारतीय धर्म शास्त्रों में अस्पृश्यता का विधान माना है। अगर उन पर गम्भीरतापूर्वक विचार करके देखा जाये तो मूल उनका दूसरा निकलता है। यजुर्वेद के ३०वें अध्याय में कहा है।

"मृत्यवे मृगयुमन्तकाय श्वनिनम्।"

अनुवाद—मृत्यु को प्रवृत्त हुए व्याध को तथा अति करने वाले को एवं बहुत कुत्ते पालने वाले को अलग बसाइये।

हिंसक तथा बहुत शिकारी कुत्ते पालने वाले चाण्डालादि जिनसे अधिक गन्दगी फैलने की आशंका हो, जिनसे पाप और बुराई फैलने की आशंका हो, उन्हें सामान्य बस्तियों से अलग बसाया जाये।

"वायवे चाण्डालम्।"

वायु के स्पर्श के अर्थ चाण्डाल को दूर करें।

अर्थात् माँस व्यवसायी का गन्दा वातावरण दुर्गन्धित रहता है। क्रूर स्वभाव के कारण उसके घर का वातावरण अशान्तकर होता है। अस्तु, वायु के साथ जब वह दुर्गन्ध अन्यत्र पहुँचती है, तो सभी के स्वास्थ्य को बिगाड़ती है।

इस सब कारणों की ओर ध्यान न देकर केवल जाति प्रथा के आधार पर हरिजन लोगों को इतना गिरा दिया गया कि उनके विकास का हर मार्ग अवरुद्ध हो गया। न तो उन्हें साथ बैठने की, सामूहिक आयोजनों में भाग लेना तो दूर देखने तक का अधिकार न दिया गया। किन कारणों के आधार पर किसी को चाण्डाल ठहराया जाना चाहिए, उन विवेक विचारों का परित्याग कर मात्र जाति-पाँति के आधार पर किसी को हेय ठहरा दिया जाय तो यह अन्याय ही कहा जायगा।

यह कैसी विडम्बना है ? मानव होते हुए भी मानवों के बीच में इस प्रकार की दीवार खड़ी की जाय।

यदि देश की एकता बनाये रखनी है और समाज को विघटन से बचाना है तो इस ओर कदम उठाना ही पड़ेगा। उन्हें शिक्षा, व्यवसाय और हर क्षेत्र में समान अधिकार दिया जाना चाहिए। इस ओर दयानन्द सरस्वती द्वारा रखी गई नींव पर राजा राममोहन राय और महात्मा गाँधी के प्रयास और त्याग की एक एक ईंट मिलने पर भवन का निर्माण हुआ। सरकार द्वारा भी इस ओर नये-नये कानून पास किये गये जिनमें हरिजनों की उन्नति और सुविधाओं को विशेष स्थान दिया गया।

हरिजनों की पूर्व स्थिति को देखकर उनकी आधुनिक स्थिति में काफी सुधार हो रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि इस कर्म क्षेत्र में योगदान अवश्य दे।

महापुरुषों द्वारा लगाये इस बाग को सींचना प्रत्येक नागरिक अपना कर्त्तव्य समझ लेगा एवं इस भारत भूमि के बगीचे को सींचेगा तभी हरिजन रूपी कुसुम सुगन्धित और प्रफुल्लित हो सकेंगे।

इस कलंक को पूरी तरह मिटाना ही होगा

अस्पृश्यता का जो स्वरूप पहले था उसमें काफी सुधार हुआ है, किन्तु प्रगति की गति बहुत मन्द रही। भारत को स्वतन्त्र हुए कई वर्ष हो गये। आज भी यदा-कदा ऐसी घटनाएँ घटित होती रहती हैं। जिनमें अछूत तथा पिछड़े वर्ग पर सवर्णों का अत्याचार होता है। उन्हें समानता के अधिकार का उपयोग करने में लोग बाधक बनते हैं।

एक समय हरिजनों की यह स्थिति थी कि वे गाँव या नगर से दूर अपनी पृथक् बस्तियों में रहते थे। उन्हें छूना तक पाप समझा जाता था। समाज सुधारकों का समाज के इस कोढ़ पर ध्यान गया। स्वामी दयानन्द, महात्मा गाँधी आदि महापुरुषों ने इस कोढ़ का उपचार करने का पूरा-पूरा प्रयास किया, जिससे स्थिति में सुधार हुआ।

स्वतन्त्रता पाने के पश्चात् सरकारी तौर पर अस्पृश्यता को मिटाने का प्रावधान रखा गया। इस वर्ग को समानता के स्तर पर लाने के लिये न्याय तथा सुरक्षा की जो व्यवस्था की, इन्हें अपने समानता के अधिकार का उपयोग नहीं करने देते उन्हें दण्डित करने का भी प्रबन्ध किया गया।

सार्वजनिक स्थलों पर इन लोगों को सरकारी तौर पर प्रवेश दिलाया गया। अल्पाहार गृह तथा क्षौर गृह आदि जनसामान्य के उपयोग में आने वाली निजी दुकानों में इनका प्रवेश कराया गया। इस प्रकार इस सामाजिक विकृति को मिटाने का प्रयास किया गया।

हमारे संविधान में प्रत्येक भारतीय नागरिक की तरह हरिजनों को भी समता का अधिकार दिया है। शताब्दियों से दबे, पिसे इस वर्ग को समानता के स्तर तक लाने के लिए विशेषाधिकार भी प्रदान किये गये। अस्पृश्यता को वैधानिक अपराध घोषित किया गया। इन वैधानिक अधिकारों तथा दी गई विशेष सुविधाओं के कारण अस्पृश्यता कम तो हुई है किन्तु वह बिल्कुल समाप्त नहीं हो सकी है।

कानून से किसी बात को मनवाया तो जा सकता है किन्तु उसका स्थायी प्रभाव नहीं होता। स्थायी प्रभाव तो मनुष्यों के विचारों में परिवर्तन तथा उनके विवेक को जगाने से ही हो सकता है। कानून का भय तभी तक रहता है जब तक उसकी पकड़ से बचने की सामर्थ्य उसे तोड़ने वाला नहीं जुटा लेता। अनैतिकता दिन प्रति-दिन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बढ़ती जाती है। नैतिकता न रहे तो कानून का पालन कराने वाले अधिकारियों को पैसे के बल से खरीदा जाना आसान होता जाता है। कानून केवल पुस्तकों की व कागजी विधानों की परिधि में ही बँधकर रह जाता है।

शरीर, बुद्धि तथा मन की शक्तियों को ईश्वर ने समान रूप से मनुष्यों को वितरित किया है। उसने कोई भेदभाव किसी के साथ नहीं वर्ता। यह तो सभी मानते हैं, यह समाज एक अभिन्न अंग है। शरीर के एक अंग पर लगने वाला घाव सारे शरीर को पीड़ा पहुँचाता है। उसी प्रकार समाज के एक तिहाई भाग को ऊपर उठाने का पूरा-पूरा प्रयास न करना समाज के लिए किसी भी प्रकार श्रेयस्कर नहीं हो सकता। यह अपनी ही प्रगति में गतिरोध उत्पन्न करना है।

सरदार भगतसिंह से फाँसी के फन्दे को चूमने के पूर्व उनकी अन्तिम इच्छा पूछी गयी। उन्होंने कहा—"मैं अपनी माता के चरण स्पर्श करना चाहता हूँ। इस पर जेल के अधिकारियों ने अपनी असमर्थता प्रकट की। उसका समाधान अमर शहीद ने इन शब्दों में किया—"मेरी माँ ने मुझे जन्म दिया। उस माँ से भी बड़ी माँ मेरी यहाँ है, जो नित्य मेरा पाखाना साफ करती है। इस जेल सफाई कर्मचारी महिला। कोख से उत्पन्न करने वाली माँ अपना समझकर मेरी टट्टी बचपन में साफ करती थी पर यह तो उससे भी महान है।" उन्होंने अन्तिम समय जेल की मेहतरानी के पाँव स्पर्श किये। एक बेटे की तरह। इन उपकारियों का यह सच्चा मूल्यांकन था।

व्यक्ति को नापने का कोई मापदण्ड है तो उसका चरित्र तथा समाज को उससे मिलने वाला अनुदान। किसी वंश में अथवा किसी के घर में उत्पन्न होने से वह छोटा नहीं हो जाता। सन्त रैदास अपने उत्तम आचरण तथा कर्तृत्व के कारण सन्त कहलाये। मीरा जैसी राजरानी ने उन्हें अपना गुरु वरण किया। किन्तु जन्म से जाति मानने की मूढ़ मान्यता से ग्रस्त लोगों ने उन्हें अछूत ही माना।

भारत का संविधान बनाने की बात आयी तो डॉ. भीमराव अम्बेडकर को ही यह महत्वपूर्ण कार्य सौंपना पड़ा। डॉ. अम्बेडकर महार (अछूत) कुल में उत्पन्न होने के कारण जीवन भर सताये गये, जबकि वे कानून के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्हें अपने जीवन के अन्तिम दिनों में हिन्दुओं के इन संकीर्ण विचारों के कारण बौद्ध धर्म अंगीकार करना पड़ा।

समाज से तिरस्कृत होकर कई व्यक्ति अपना धर्म परिवर्तित कर लेते हैं। उन्हें इस जातिवाद के जंजाल से उबरने का एकमात्र यही रास्ता दिखाई देता है। भारतवर्ष में मुसलमान तथा ईसाई बनने वालों में ९० प्रतिशत व्यक्ति अछूत माने जाने वाले होते हैं यही कारण है कि हिन्दू मतावलम्बियों की संख्या निरन्तर घटती जा रही है। हमारी रैदास तथा अम्बेडकर जैसी विभूतियों का लाभ वे लोग उठा रहे हैं तथा भारतीय धर्म संस्कृति का हनन कर रहे हैं।

हमारे धर्म शास्त्रों में चार वर्णों का ही उल्लेख है। ये वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जन्म से नहीं कर्म से माने जाते रहे, तब तक हमारा देश विश्व गुरु बना रहा। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने अपनी पत्नी को निर्वासित कर महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में रखा, जो शूद्र कुल में जन्मे थे। अपने कर्मों से वे महर्षि बने थे।

जब से जाति का आधार जन्म माना जाने लगा। शूद्र कुल में उत्पन्न होने वाला शूद्र माना जाने लगा, उसी समय से हमारा पतन होना आरम्भ हुआ। इसका दण्ड भी हमने कम नहीं भोगा है। सदियों की दासता सहनी पड़ी। ज्ञान, विज्ञान के शिखर पर पहुँची यह जाति अज्ञान के अन्धकार में भटकने को विवश हुई।

अवसरवादी तथा स्वार्थी तत्वों ने अपने स्वार्थ के लिये धर्म शास्त्रों को विकृत कर दिया। स्त्रियों तथा शूद्रों को द्विजत्व के अधिकार से वंचित करने का षड़यन्त्र रचा गया। एक तिहाई शूद्र तथा आधा भाग नारी जाति के बाद बचता ही क्या है, जो अपने कन्धों पर समाज का भार उठा सके।

यह संकीर्णता ज्यों-ज्यों बढ़ती गई त्यों-त्यों हम गिरते चले गये। समाज सेवा का काम करने वाले समाजसेवी वर्ग को उपेक्षा का पात्र ही नहीं बनाया गया। उसे पशु से भी नीचा माना जाने लगा। पशु को छूने से अपवित्र नहीं हो जाते पर अछूत की छाया से ही अपवित्रता के बहाने बनाये जाने लगे। अपने ही भाइयों को इस प्रकार हेय मानने की विडम्बना में फँसकर यह जाति अपना वर्चस्व खोने लगी।

भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् अब यह आशा और विश्वास जागा है कि यह देश अपने प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त करेगा। यह तभी सम्भव हो सकेगा जबकि भारत की अछूत तथा पिछड़ी कही जाने वाली जातियाँ भारतीय समाज में सवर्ण कहे जाने वाले व्यक्तियों के समान स्तर पर आ जाय। आर्थिक, सामाजिक तथा बौद्धिक स्तर पर जब तक समानता नहीं आती तब तक समाज का लँगड़ापन मिट नहीं सकता।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए संविधान में ऐसी व्यवस्था रखी गयी कि प्रगति की दौड़ में पिछड़े ये सारे भाई आगे आयें। महात्मा गाँधी ने स्वराज्य ही नहीं सुराज्य व रामराज्य के स्वप्न सँजोये थे, जिसमें सब समान हों। वे हरिजन उत्थान को कितना आवश्यक मानते थे, इसका अनुमान उनके इस कथन से सहज ही लगाया जा सकता है—"हे ईश्वर मुझे मनुष्य योनि में जन्म मिले तो मुझे भंगी के घर उत्पन्न करना।" उन्होंने अपने जीवन में इस विषमता को मिटाने के लिये अथक् परिश्रम किया।

संविधान में विशेषाधिकार रखे जाने तथा अस्पृश्यता को कानूनी अपराध घोषित करने से स्थिति में सुधार हुआ है। इससे सहमत होना ही पड़ेगा, किन्तु केवल इन्हीं के बलबूते पर अस्पृश्यता जड़-मूल से उखड़ जायेगी ऐसा सम्भव नहीं। इसके लिये जनमानस में जड़ जमाकर बैठी हुई मूढ़ मान्यताओं को मिटाने के लिये प्रत्येक विवेकशील भारतवासी को अथक् परिश्रम करना होगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जो वर्ग शताब्दियों से दबा, घुटा रहा है। वह अपने ही जोर से उठ खड़ा हो उसमें तो बहुत समय लगेगा। उसे हाथ पकड़कर उठाने की आवश्यकता है। वे ही अपने अधिकारों की माँग करें, उन्हें पाने के लिये संघर्ष करें तो प्रगति धीमी ही होगी। उनको समान स्तर पर लाने के लिए दूसरे भी मदद करें। ऐसे प्रयास किये जाते हैं किन्तु रोड़े अटकाने के प्रयास भी कम नहीं होते हैं।

आज के समय में भी कई मन्दिर ऐसे हैं, जहाँ हरिजनों का प्रवेश निषिद्ध है। भेदभाव की दीवारें अभी पूरी तरह टूटी नहीं हैं। यदि यह दीवारें टूट गई होतीं तो समय-समय पर घटित घटनाओं के उदाहरण देखने को नहीं मिलते।

भारत अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त करें वह समय आज उपस्थित हुआ है। हमारी संस्कृति की ओर आज सारा विश्व आशा भरी निगाहों से देख रहा है। भौतिकता की अन्धी दौड़ से थका हुआ मनुष्य आज इस संस्कृति के विशाल वट वृक्ष की छाँह में सुख की नींद सोना चाहता है।

नीचे लुढ़कने के दिन लद गए। अब तो उतुंग शिखरों पर हमारा धर्म ध्वज फहराने वाला है। कल जो भूमि पर पड़ा था, आज वह आकाश को छू लेने को उठ खड़ा हो रहा है। क्या सतृष्ण नयनों से निहारते विश्व को ऋषियों की पुण्यस्थली यह भारतवर्ष निराश कर देगा। कमी किसी वस्तु की नहीं है। हमारे पूर्वज हमें बहुत बड़ी थाती सौंप गये हैं। हम उसकी थाती को, उस देवोपम ज्ञान के प्रकाश को विश्व में वितरित करें, उसके पहले अपने चेहरे पर लगी इस अस्पृश्यता की कलंक कालिमा को पूरी तरह धो लें।

भारत के विवेकशील नागरिकों का रक्त यदि पानी नहीं हुआ है तो उन्हें अपने इन भाइयों को गले लगाने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होगी। विदेशों से आकर धर्म प्रचार करने वाले ईसाई मिशनरियों के उदाहरण हमारे सामने हैं। वे जब धर्म प्रचार के नाम पर यहाँ आकर उनकी सेवा कर सकते हैं तो क्या हम अपने भाइयों को बराबर नहीं ला सकते ?

आज की बढ़ती हुई अनैतिकता की बाढ़ मनुष्य को निरन्तर उसके गौरव से गिरा रही है। संविधान और कानून से ही यदि यह छुआछूत का दानव परास्त हो गया होता तो आजादी के इन पच्चीस वर्षों में यह वर्गभेद पूरी तरह समाप्त हो गया होता।

स्वेच्छा से अत्यन्त महत्वपूर्ण किन्तु अत्यन्त कष्टसाध्य सेवा का कार्य अपनाने वाले इन बन्धुओं को गले लगाने के लिये हमने अपनी बाहें नहीं पसारीं तो कल कोई सेवा करना नहीं चाहेगा। यह लँगड़ा समाज कभी स्वस्थ नहीं होगा। हमारे अन्तःकरण में प्रगति करने तथा गौरव गरिमा पाने की हूक यदि उठती है तो हमें इस कलंक को धोने के लिये आगे आना ही चाहिए।

सवर्ण हिन्दू यह करें—इस मानसिक सुधार के साथ-साथ सवर्ण हिन्दुओं को कतिपय व्यावहारिक कार्यक्रमों को भी कार्यान्वित करना चाहिए। अस्पृश्यता निवारण हिन्दू समाज की एक ऐसी समस्या है, जिसके हल के साथ इस समाज का आगामी भविष्य जुड़ा हुआ है। इसलिये इसको हल करने में हर सवर्ण को भी यथासाध्य सहयोग करना ही चाहिये। अछूतोद्धार के कतिपय कार्यक्रमों में अछूत बच्चों की पढ़ाई भी एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है।

सरकारी नीतियों तथा समाज सेवकों के उदार प्रयत्नों के फलस्वरूप पाठशालाओं में हरिजनों के बच्चे पढ़ने आने लगे हैं, किन्तु अभी भी देहाती पाठशालाओं में वे डरे-डरे, बहिष्कृत से एक ओर बैठे रहते हैं। सवर्ण अधिकतर उनकी ओर कोई ध्यान नहीं देते हैं।

अध्यापकों का रुख तथा व्यवहार देखकर कक्षाओं के चपल तथा चतुर छात्र तो उनका उपहास उड़ाते हुए खिजाते तक हैं। जिसका फल यह होता है कि कुछ ही समय में वे पाठशाला छोड़कर घर बैठे रहते हैं। उनके संस्कार सुधार की सारी आशाएँ समाप्त हो जाती हैं। हरिजन बच्चों के बहिष्कार की यह प्रवृत्ति ठीक नहीं। अध्यापकों को चाहिए कि वे उनके साथ अन्य सवर्ण बच्चों के समान ही व्यवहार करें, उन्हें प्रेम तथा सहानुभूति का स्पर्श दें, जिससे उनमें आत्म-विश्वास जागे, उनकी हीन-भावना दूर हो और पढ़ने-लिखने में उनका मन लगे। अध्यापकों को विचार करना चाहिए कि जब उन्हें हरिजन बच्चों को पढ़ाने की विवशता ही आ पड़ी है, इससे वे सरकारी नियमों अथवा परिस्थितियों के कारण बच नहीं सकते तो फिर उन्हें यह काम खुशी से, उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से करना चाहिए और फिर अछूत बच्चों को पढ़ाना, उनसे स्नेह-व्यवहार करना कोई ऐसा अकरणीय कार्य नहीं है, जिसे करने से उनको लोक अथवा परलोक में कोई दण्ड भोगना पड़ेगा। यह तो समाज सुधार तथा राष्ट्र-निर्माण का श्रेयस्कर कार्य है।

जूठन न दें, न लें—हिन्दू समाज में यह एक कुप्रथा चली आ रही है कि अछूत प्रजाओं को जो कुछ पहनने-ओढ़ने या खाने-पीने के लिए दिया जाये वह जूठा और उतरा हुआ ही दिया जाये। यद्यपि समाज सुधारकों के प्रयत्नों तथा हरिजनों के स्वयं आत्मबोधजन्य आपत्ति के कारण यह परम्परा शिथिल होने लगी है। लोग उन्हें 'अनूठा' देने लेगे हैं, पर समाज की इस विकृति को पूरी तरह से दूर किया जाना चाहिए। हरिजन प्रजाओं को यदि कुछ देना ही है तो स्वच्छ, अच्छा तथा अनूठा दिया जाये। लोगों का उच्छिष्ठ खाने से उनके असंस्कृत संस्कार और भी विकृत होते हैं और फिर किसी को जूठा देना अथवा खिलाना एक अधार्मिक कृत्य भी तो है। समाज के मान्य तथा सवर्ण लोगों को चाहिए कि वे इस अवांछनीय तथा अधार्मिक कृत्य के अभिशाप से बचें। हरिजन प्रजा तथा आश्रितों को जो कुछ भोजन, वस्त्र आदि दें जूठा नहीं अनूठा ही दें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह सब जानते हैं कि हरिजनों को जूठन देने की कोई मजबूरी नहीं है। उन्हें देने के लिए अधिक परोसा जाकर ,जान-बूझकर जूठन छोड़ी तथा तैयार की जाती है। ब्याह-शादियों में तो पत्तलों पर बहुत-सा जूठा सामान छोड़ दिया जाता है, जो एक साथ किसी पात्र अथवा पत्तल पर इकट्ठा करके हरिजन कार्यकर्ताओं को दिया जाता है। कोई भी विचारवान व्यक्ति ध्यान से देखकर सहज ही यह अनुभव कर सकता है, इस प्रकार पंक्ति भर की जूठन इकट्ठी करके जो हरिजन सेवकों को दी जाती है, वह वास्तव में मनुष्य के खाने योग्य भी नहीं रहती। दाल, भात, चावल, मिठाई तथा नमकीनों का उच्छिष्ठ एक साथ ढेर कर देना तो उन वस्तुओं तथा भोजन को न केवल विकृत ही करना है बल्कि उसका अपमान भी करना है। जिसका प्रत्यक्ष न भी सही परोक्ष में आत्मा पर कुप्रभाव पड़ता है। इस उच्छिष्ठदान से देने तथा लेने वाले दोनों की तेज हानि होती है। यदि पत्तल के पदार्थों को हरिजन सेवकों को भागी बनाना ही है तो हर व्यक्ति उनका भाग पहले से ही निकालकर अलग रख सकता है। इस प्रकार उनका हिस्सा भी उन्हें मिल जायेगा और उच्छिष्ठता का पाप नहीं लगेगा। इस प्रकार की विकृत जूठनदान की प्रथा में सुधार कर हरिजनों के उद्धार की दिशा में काफी सुधार किया जा सकता है। अनूठा भोजन उनके संस्कार शुद्ध करेगा, उनमें अधिकाधिक आत्मबोध उत्पन्न करेगा।

सार्वजनिक स्थान सबके लिए—मन्दिरों, शिवालयों, पनघट तथा घाटों पर उनको आने से न रोका जाये। पार्क, रेल, बस, प्लेटफार्म आदि सार्वजनिक स्थानों पर उनके आने-जाने पर आपत्ति न की जाये। ऐसे स्थानों पर आते-जाते समय हरिजन अपेक्षाकृत कुछ स्वच्छ तथा शुद्ध ही रहते हैं, ऐसी दशा में कोई कारण नहीं कि उन्हें पास न बैठने दिया जाय अथवा उनके प्रवेश पर प्रतिबन्ध भावना व्यक्त की जाये। जब इस प्रकार के अनेक सार्वजनिक स्थानों पर कुर्तो, बिल्ली तक को आने-जाने से नहीं रोका जाता, तब एक हरिजन को ही क्यों ? क्या एक मनुष्य इन अशुद्ध तथा अपवित्र पशुओं से भी गया-गुजरा है ?

प्रगतिशीलता की पुकार—प्रगतिशील सवर्ण हिन्दू रूढ़ियों से जिनके विचार अपेक्षाकृत अधिक मुक्त हो चुके हैं। हरिजनों के सुधार के लिए सक्रिय कदम उठायें और अपनी युग-निर्माण योजना के कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने का प्रयत्न करें।

प्रगतिशील कार्यकर्त्ता हरिजन बस्तियों में जायें और अपने प्रयत्न से उनमें मानसिक चेतना तथा सामाजिक बोध का जागरण करें। उन्हें बतायें कि जैसा निकृष्ट जीवन उन्होंने हठपूर्वक अपना रखा है, वह उनकी जाति-जन्म से भी अधिक, उनकी स्थिति को गिराये हुए है। उनके इस निम्न रहन-सहन के लिए समाज किसी प्रकार भी दोषी नहीं है। वे गरीब हो सकते हैं किन्तु गरीबी का परिणाम गन्दगी कदापि नहीं है। स्वच्छता तथा सफाई मनुष्य के हाथ की बात है। वे नित्यप्रति नहा-धोकर स्वच्छ रह सकते हैं। साबुन, रीठा आदि अनेक सस्ते साधनों से अपने कपड़े साफ कर सकते हैं। उनकी स्त्रियाँ झाड़-बुहार तथा लीप-पोतकर अपने घर-द्वार की सफाई कर सकती हैं। कभी-कभी सामूहिक रूप से श्रमदान की पद्धति से वे अपने मौहल्लों तथा बस्तियों की भी सफाई कर सकते हैं। गन्दे जानवरों को घर के बजाय, अलग बाड़ा बनाकर रखा जा सकता है। कूड़े-कचरे का ढेर घरों के आस-पास लगाने के बजाय थोड़ी दूर हटकर किसी गड्ढे आदि में डाला जा सकता है। इन सब बातों में पैसे की जरा भी जरूरत नहीं है। थोड़े से श्रम की आवश्यकता है जो कि हर व्यक्ति को करना ही चाहिए।

प्रगतिशील स्वयंसेवक हरिजनों को समझाने के साथ-साथ टोली बनाकर उनकी बस्तियों में जा सकते हैं और सफाई में उनको सहयोग दे सकते हैं। जब स्वयंसेवक जा-जाकर उन्हें बस्ती तथा घरों की सफाई रखने की प्रेरणा देने के साथ सक्रिय सहयोग करने को भी तैयार होंगे तो हरिजन अवश्य ही अपनी तथा घर द्वार की सफाई रखने के लिए तत्पर हो उठेंगे।

प्रगतिशील समाज सेवकों को चाहिए कि वे हरिजनों को अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए प्रोत्साहित करें और यदि हो सके तो उनके बच्चों को स्वयं ले जाकर पाठशाला में भरती करादें। बालक-बालिकाओं की पाठशाला के साथ हरिजनों की प्रौढ़ पाठशालायें भी स्थापित होनी चाहिए और प्रयत्नपूर्वक उन्हें पढ़ने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिए। कोई कारण नहीं कि यदि सवर्ण स्वयंसेवक उनके पास जाएँ और शिक्षा का महत्व बताते हुए उन्हें पढ़ने के लिये प्रेरित करें, तो उनमें से थोड़े-बहुत लोग भी पढ़ने के लिये तैयार न हो जायें। हार्दिक प्रयत्नों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। हरिजन स्त्रियों को शिक्षा सफाई की प्रेरणा देने के लिये अनेक प्रगतिशील महिलायें भी जा सकती हैं। किसी सुधार के लिये सेवा करना अपमान की बात नहीं है। महात्मा गाँधी, ठक्कर बापा आदि व्यक्तियों ने हरिजनों के सुधार का कार्य करते हुए अपना मूल्य ही बढ़ाया है। निःस्वार्थभाव तथा सच्ची सामाजिक भावना से छोटे से छोटा काम करने में भी मनुष्य का मान बढ़ता ही है घटने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

हरिजन सुधार में अभिरुचि रखने वाले समाज सेवक हरिजन जातियों की सार्वजनिक सभायें आयोजित करके उन्हें अपना सुधार करने के लिए प्रेरित करने के साथ छोटे-छोटे ऐसे कार्यक्रम बतला सकते हैं, जिनको पूरा करने से वे स्वभावतः सुधार की ओर चल निकलेंगे। इसके अतिरिक्त उनकी बस्तियों में अवकाश के समय नित्य-प्रति रात्रि गोष्ठियाँ की जा सकती हैं। जिनमें उन्हें कथा वार्ता के माध्यम से जीवन तथा आचरण सुधार की शिक्षा दी जा सकती है। प्रगतिशील समाज सेवक अपनी अन्य गोष्ठियों तथा सभाओं में हरिजन उद्धार के विषय पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विचार-विमर्श कर सकते हैं। उनके सुधार की योजना बना सकते हैं और उपाय खोज सकते हैं। विचार गोष्ठियों तथा सार्वजनिक सभाओं के अवसर पर अन्य उत्साही व्यक्तियों को हरिजन सुधार-टोलियों, दलों तथा समितियों में शामिल कर सकते हैं।

अपने उत्कर्ष का आप प्रयत्न—सवर्णों तथा प्रगतिशील सवर्णों को तो परिस्थिति के अनुसार हरिजन उद्धार के मानसिक तथा सक्रिय कार्यक्रम चलाने ही चाहिए साथ ही हरिजनों को स्वयं भी अपना सुधार करने के लिए कमर कसकर खड़ा हो जाना चाहिए। उन्हें इस बात का व्रत लेना चाहिए कि वे अपनी दशा आप बदलकर समाज को मजबूर कर लेंगे कि वह उनका मूल्य, महत्व समझें और उचित स्थान दें। अनेक पिछड़े तथा गिरे हुए समाजों, जातियों, राष्ट्रों तथा देशों ने अपने उद्योग बल पर देखते ही देखते अपनी उन्नति कर ली और संसार में अपना स्थान बना लिया, तब कोई कारण समझ में नहीं आता कि अपना सुधार आप करने में जुट पड़ने से हरिजन समाज उन्नति नहीं कर सकता। जो स्वयं अपनी मदद करता है उसकी मदद के लिये मानव-समाज तो क्या ईश्वर तक को मजबूर होना पड़ता है।

पंचायतों का सुधार—लगभग सभी हरिजन समाजों में जातीय पंचायतों की प्रथा है। उनकी जातीय पंचायतें उनके हर प्रकार के झगड़ों तथा प्रश्नों को हल किया करती हैं। यही नहीं वे असामाजिक कार्य करने वालों को हुक्का-पानी बहिष्कार आदि के रूप में दण्ड देने का भी अधिकार रखती हैं। किन्तु अधिकतर देखा जाता है कि अनुसूचित जातियों की पंचायतें उनके सुधार की दिशा में कोई काम नहीं करतीं।

हरिजन भाइयों को चाहिए कि वे अपनी जातीय पंचायतों को सुधार समितियों में बदल लें। उनके समाज में पंचायतों का बहुत प्रभाव है। हर व्यक्ति पंचायत का निर्णय अवश्य मान लेता है फिर वह बिल्कुल अन्यायपूर्ण ही क्यों न हो ? उन्हें चाहिए कि वे अपनी पंचायत के प्रभाव को सुधार की दिशा में उपयोग करें। हरिजन पंचों तथा चौधरियों को चाहिए कि वे एक अडिग नियम बना दें कि किसी भी पंचायत के समय कोई भी पंच अथवा सदस्य शराब नहीं पियेगा। जो शराब पीकर आयेगा वह या तो पंचायत में शामिल नहीं किया जायेगा अथवा किसी उचित दण्ड का भागी बनेगा।

एक बार यदि हरिजनों तथा परिगणित जातियों में से शराब तथा अन्य नशों का दुर्व्यसन दूर हो जाये तो वे शीघ्र ही सुधार पथ पर तेजी से चल पड़ें। जातीय नेताओं को अपनी जिम्मेदारी तथा अपने महान् कर्तव्य को समझना चाहिए और अपने तथा अपनी जाति के हित में शराब पीना छोड़ ही देना चाहिए। इसी में उनकी शोभा है, इसी में महानता है, बड़प्पन है।

मुखियों तथा चौधरियों को चाहिए कि वे पंचायतों के निर्णयानुसार किसी से साधारण-सी रीति-रिवाज के तोड़ने पर अक्सर "पूरी बिरादरी की रसोई" लेने के रिवाज को बन्द कर दें। आजकल किसी से दस-बीस-पचास व्यक्तियों की भी रसोई लेने का अर्थ है उसकी आर्थिक हत्या कर देना। कोई भी गरीब हरिजन भाई "पंच बिरादरी की खर्चीली रसोई" का दण्ड पूरा करने के लिये या तो घर का सारा सामान बेचे और यदि सामान न हो, जैसा कि प्रायः होता ही है, तो किसी से उसकी मनमानी शर्तों पर कर्ज लाकर सदा के लिये ब्याज की बलिवेदी पर चढ़ जाये। किसी का आर्थिक विनाश कर देना स्वयं एक दूसरा अपराध है, जो कि बिरादरी के जिम्मेदार मुखियों को नहीं करना चाहिए।

अधिकतर हरिजन जातियों के पूजा-अनुष्ठानों में भी शराब तथा पशु-बलि की ही प्रधानता होती है और उसका पुरोहित भी बहुधा जातीय चौधरी ही हुआ करता है। चौधरियों को चाहिए कि वे पूजा-अनुष्ठानों की पवित्रता तथा उनकी महत्ता को समझें और उनके आयोजनों में से इस प्रकार की अपवित्रताओं को निकाल फेंकें।

हरिजनों तथा परिगणित जातियों को चाहिए कि वे अपनी पंचायतों को सुधार-समितियों में बदल दें। अपनी इन पंचायतों अथवा सुधार-समितियों के सदस्य तथा प्रमुख ऐसे व्यक्तियों को चुनें जो दुर्गुणों से मुक्त, शिक्षित तथा उनके सच्चे हितैषी हों। उन्हें साहसपूर्वक गलत रास्ते पर ले जाने वाले चौधरियों तथा मुखिया को पंचायतों से निकाल फेंकना चाहिए। परिवर्तन संसार का अटल नियम है, जो इस नियम का अनुगमन नहीं करता उसका हित असम्भाव्य हो जाता है।

हरिजन सुधार समितियों तथा पंचायतों को अपनी जाति के लिए नैतिक नियमों का निर्माण करना चाहिए, एक आचरण-संहिता बनानी चाहिए, जिसकी धाराओं में शराब, जुआ, चोरी, गन्दगी, झगड़ा तथा अन्य प्रकार के दुर्व्यवसनों पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए। पशु-बलि, माँस-भक्षण, अन्धविश्वास आदि घातक प्रवृत्तियों को अपराध घोषित किया जाना चाहिए। साथ ही इन नियमों का पालन करने वाले के लिए प्रायश्चित तथा दण्ड की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

सवर्णों की अपेक्षा हरिजनों को यह एक बड़ी सुविधा है कि उनकी जाति में पंचायत प्रथा आज भी विद्यमान है और उसके निर्णयों में हर हरिजन को पूरी आस्था है। यदि वे अपनी पंचायतों का सुधार करलें तो उनके माध्यम से अपनी जाति का कायाकल्प ही कर सकते हैं। अभी तक हरिजनों की यह पंचायत दकियानूसी परम्पराओं के अनुसार यों ही अस्त-व्यस्त चली आ रही थीं। अब चाहिए कि उनका गठन व्यवस्थित तथा वैधानिक रूप से करें। नियमानुसार उनका चुनाव किया जाये। उचित सदस्य तथा योग्य मुखिया अथवा चौधरियों को ही उनका संचालन सौंपा जाये।

जिस प्रकार समिति की सुधार संहिता में दुर्व्यसन तथा दुष्प्रवृत्तियों पर प्रतिबन्ध लगाया जाये उसी प्रकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसमें शिक्षा, सफाई तथा सुधार को अनिवार्य कर दिया जाये। ऐसा नहीं कि हरिजनों के लिए इस प्रकार की सुधार समितियाँ कोई नई बात हों। अनेक प्रान्तों, जिलों तथा क्षेत्रों में इस प्रकार की सुधार तथा विकास समितियाँ बनी हैं और बनती जा रही हैं। इस समय परिगणित जातियों में आदिवासी लोग इस मामले में दिन-दिन आगे बढ़ते जा रहे हैं।

यह एक शाश्वत सत्य है कि समाजों में जब-जब जो सुधार, परिवर्तन अथवा क्रान्तियाँ आई हैं, वे शिक्षित तरुणवर्ग द्वारा ही लाई गई हैं, इसलिए हरिजनों के शिक्षित वर्ग को ही अपने समाज सुधार करने का दायित्व अपने कन्धों पर लेना चाहिए।

शिक्षित हरिजन यह करें—हरिजनों का शिक्षित तरुण-वर्ग, जो अपेक्षाकृत कुछ अधिक साफ-सुथरा ही होगा, टोलियाँ बनाकर हरिजन बस्तियों में जाये और उनको सफाई व स्वच्छता की प्रेरणा देने के साथ मौहल्ले-बस्तियों की सफाई करने में सहयोग करे। जब उनके अशिक्षित हरिजन भाई अपने साफ-सुथरे तथा पढ़े-लिखे युवकों को स्वर्गीय स्वच्छता-सफाई में अपना हाथ बटाते देखेंगे तो उनको साफ-सुथरा पहनने का उत्साह प्राप्त होगा। यदि हरिजन सफाई से ही रहना प्रारम्भ कर दें तो भी उनका कुछ-कुछ मनोविकास होना शुरू हो जाये, जो कि उनके सुधार में बड़ा सहायक होगा। सुधार का प्रथम सोपान सफाई को ही माना गया है।

इतना ही नहीं हरिजनों की शिक्षित टोलियों को चाहिए कि वे मुहल्ले, बस्तियों में श्रमदान समितियाँ तथा स्वयंसेवक दल गठित करायें जिनका काम सप्ताह अथवा पक्ष में एक बार पूरे मौहल्ले की सफाई करना तो होगा ही साथ ही वे एक-दूसरे को अपने कच्चे मकान बनाने, उनकी लिपाई-पुताई तथा मरम्मत करने में भी सहायता किया करेंगे। इस प्रकार श्रमदान से हरिजनों की कच्चा मकान तथा गन्दी बस्ती साफ-सुथरी होकर देखने योग्य बन जायेगी।

शिक्षित हरिजनों को चाहिए कि अपने वर्ग में अधिक से अधिक शिक्षा का प्रसार एवं विचार करें। जहाँ जिन-जिन बस्तियों के हरिजन अपने बच्चों को पढ़ने न भेजते हों, वहाँ जायें और उन्हें शिक्षा का महत्व बतलाते हुए बच्चों को पाठशाला भेजने के लिए प्रेरित करें। बच्चों की पाठशाला के अतिरिक्त उन्हें प्रौढ़ों की रात्रि पाठशालायें भी चलानी चाहिए।

मानसिक विकास के लिये यह करें—शिक्षितों को चाहिए कि वे हरिजन प्रौढ़ों को समय-समय पर जाकर समाचार पत्र तथा पुस्तकें सुनायें। इन समाचारों तथा पुस्तकों का विषय यथासम्भव हरिजन विकास से सम्बन्धित ही होना चाहिए। उन्हें ऐसे समाचार विशेष रूप से सुनाने चाहिए जिनमें बताया गया हो कि कहाँ किस जगह अन्य आदिवासियों तथा परिगणित लोगों ने किस प्रकार क्या-क्या उन्नति की ? उन्होंने अन्धविश्वास छोड़कर क्या-क्या लाभ उठाये और कहाँ-कहाँ अन्ध-विश्वास के कारण उन्हें क्या-क्या हानियाँ हुई हैं ? दादू, रविदास, नामदेव, बाल्मीकि, शबरी, केवट, एकलव्य आदि हरिजन महापुरुषों की कथायें सुनानी चाहिए। इस प्रकार की कथायें तथा घटनायें उनके हीन संस्कारों को निकाल फेंकेंगी और उनके हृदयों में आत्म-विकास की भावनायें जाग उठेंगी। इसके अतिरिक्त शिक्षितों को चाहिए कि वे उन्हें देश-देशान्तर की घटनाएँ भी सुनायें ? देशकाल की आवश्यकताओं से उन्हें अवगत करायें। इस प्रकार उनका मनो-विस्तार होगा। विश्व की व्यापकता से उनका मानसिक सम्बन्ध स्थापित होगा, जो उनके संकीर्ण तथा प्रतिगामी विचारों में सुधार लायेगा।

इस प्रकार जब प्रौढ़ों की अभिरुचि समाचार-पत्रों तथा पुस्तकों में उत्पन्न हो जाये तो फिर उन्हें पढ़ने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिए। विश्वास है कि अनेक लोग पढ़ने के लिये तैयार हो जायेंगे। एक बार दो-चार लोगों को पढ़ने के लिये तैयार कर लेने पर फिर तो अन्य लोग भी रुचि से अथवा स्पर्धावश पढ़ने लगेंगे। जहाँ जिस प्रकार का वातावरण पैदा हो जाता है, वहाँ लोग उसी हवा के साथ बहने लगते हैं। बहुत बार कुछ हरिजन प्रौढ़ पढ़े-लिखे भी होते हैं। किन्तु वे अपनी शिक्षा अथवा साक्षरता को बढ़ाने का प्रयत्न नहीं करते। बल्कि मनोरंजन के लिये संगीत, किस्सा, तोता-मैना, लैला-मजनू, रसिया, आल्हा अथवा अन्य गन्दी किताबें पढ़ने में ही लगे रहते हैं। वे केवल पढ़ते ही नहीं अन्य लोगों को भी सुनाते हैं। इस प्रकार के अवांछनीय साहित्य का बड़ा ही खराब प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार की पुस्तकें पढ़ने में रुचि रखने वालों को अच्छी-अच्छी जीवन-विकास सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने के लिये दी जानी चाहिए। उनकी शिक्षा को आगे बढ़ाने का प्रयत्न तथा सुरुचिपूर्ण पुस्तकालय एवं वाचनालय स्थापित किये जाने चाहिए। ऐसे पढ़ने के जिज्ञासु हरिजनों को एकत्र कर उनकी एक अध्ययन गोष्ठी बनाई जा सकती है। नित्य संध्या समय उनको पुस्तकालय तथा वाचनालय में आने के लिये प्रेरित किया जा सकता है। उन्हीं में से अनेकों को पुस्तकालय तथा वाचनालयों का अध्यक्ष, प्रबन्धक एवं व्यवस्थापक बनाया जा सकता है। उन्हें इस बात के लिये प्रेरित करना भी बड़ा लाभदायक होगा कि वे मौहल्लों में लोगों को सन्ध्या समय इकट्ठा करके अच्छी-अच्छी पुस्तकें सुनाया करें। इससे उनका भी अभ्यास बढ़ेगा और दूसरे लोगों की ज्ञान-वृद्धि होगी।

हरिजनों का शिक्षित वर्ग अपने बच्चों को तो पाठशाला भेजेगा ही। अपने प्रौढ़ों को भी शिक्षित बनाने का प्रयत्न करेगा, साथ ही अपनी पत्नियों को तो अवश्य ही पढ़ायें। किसी भी शिक्षित की पत्नी ऐसी न रहे जो पढ़ी-लिखी न हो। पत्नियों को पढ़ा-लिखाकर उन्हें हरिजनों की अशिक्षित, अन्ध-विश्वासिनी तथा गन्दी स्त्रियों में सुधार कार्य के लिये भेजने की उदारता भी दिखलायें। स्त्रियाँ, स्त्रियों में जाकर अच्छा काम कर सकती हैं। वे उन्हें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साक्षर बना सकती हैं, उनको स्वच्छ रहने तथा बच्चों को पाठशाला भेजने को प्रोत्साहित कर सकती हैं। साथ ही विविध प्रकार की घटनायें तथा कथायें सुनाकर उनका अन्धविश्वास दूर कर सकती हैं। कोई भी देश, राष्ट्र, समाज अथवा वर्ग क्यों न हो, जब तक उनके दोनों अंग-स्त्री पुरुष समान रूप से नहीं सुधरेंगे वह वांछित प्रगति नहीं कर सकता। शिक्षित लोग जब अपनी पत्नियों को शिक्षित तथा सुसंस्कृत बनाकर जनसेवा के क्षेत्र में भेजकर व्यक्तिगत उदाहरण उपस्थित करेंगे तो अन्य लोग उन पर विश्वास करेंगे और उनका अनुकरण करने का प्रयत्न करेंगे।

अन्धविश्वास का निराकरण—झूठे देवी-देवताओं के नाम पर पशुबलि करना। भूत, चुड़ैल, प्रेत, पिशाच, जिन्द, बैताल आदि विकृत आत्माओं में विश्वास करना हरिजनों की ऐसी दुर्बलता है जिससे धर्म के नाम पर उनकी आत्मा अँधेरे में ही भटकती रहती है। इस प्रकार के अन्ध-विश्वास किसी भी समाज की उन्नति तथा प्रगति में बहुत बाधक हुआ करते हैं। अन्ध विश्वासजन्य आकस्मिक घटनाएँ तो दूर वे बीमारियों तक को किसी देवता का कोप मानते हैं और उसकी प्रसन्नता ही उनका उपचार मानकर विविध क्रियायें किया करते हैं, जिनमें पशु-पक्षियों का बलिदान प्रमुख है। हरिजनों में अन्ध-विश्वास की जड़ें बहुत गहरी उतर चुकी हैं। उन्हें उखाड़ फेंकने के लिये अपेक्षाकृत अधिक साहस तथा प्रयत्न की आवश्यकता है।

हरिजनों में अन्ध-विश्वासों का आधार धर्म ही है। वे अपनी इस विकृति तथा इससे सम्बन्धित कुक्रियाओं को धर्म-कर्म मानते हैं। इसलिये इसका विरोध भी धार्मिक आधार पर ही ठीक रहेगा। शिक्षितों को चाहिए कि वे अपने अज्ञानग्रस्त बन्धुओं को धर्म का सच्चा स्वरूप बतलायें। उन्हें धार्मिक कथायें तथा पुस्तक सुनायें। मान्यतावान धार्मिक व्यक्तियों के उदाहरण दें। ऐसे मान्य महापुरुषों के जीवन-चरित्र सुनायें, जिन्होंने अन्धविश्वासों को उखाड़ फेंकने का प्रयास किया हो। इसके साथ हरिजनों के अन्ध अनुष्ठानों के स्थान पर हवन, पूजा, पारायण, कीर्तन आदि की परम्परायें चलाई जा सकती हैं। रामायण, गीता अथवा किसी अन्य धर्म-ग्रन्थ की कथा बिठाली जा सकती है। इस कार्य के लिए यदि उन्हें कोई पण्डित न भी मिले तो शिक्षित हरिजन स्वयं ही इस कार्य को कर सकते हैं।

जब तक समाज में ऐसी परिस्थितियाँ नहीं आतीं कि हरिजन लोग सवर्णों द्वारा संचालित मन्दिरों में जाकर पूजा-पाठ कर सकें तब तक राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा आदि की प्रतिमाओं के साथ हरिजन अपने छोटे-छोटे मन्दिर अलग बनाकर पूजा कर सकते हैं। बाद में अनुकूल समय आने पर सवर्णों तथा हरिजनों के मन्दिरों में अन्तर ही नहीं रहेगा। इस प्रकार धर्म के विषय में अज्ञान मिट जाने से हरिजनों के अन्ध-विश्वास दूर होने लगेंगे।

कुरीतियाँ दूर करें—शिक्षित तथा प्रगतिशील हरिजन तरुणों को अपनी सामाजिक कुरीतियों की ओर भी ध्यान देना चाहिए। सबसे पहले बाल-विवाह की प्रथा जो कि हरिजनों के बीच व्यापक रूप से फैली हुई है, दूर की जाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। इसके लिए भी व्यक्तिगत उदाहरण का प्रभाव बड़ा सहायक सिद्ध होगा। शिक्षित अछूत-वर्ग अपनी बहिनों, बेटियों तथा बेटे, भतीजों का विवाह कम उम्र में न करें और न होने दें। इसके लिए भी यदि करना पड़े तो सत्याग्रह अनुचित नहीं कहा जा सकता। साथ ही वे अपने बालक-बालिकाओं को इस प्रकार की शिक्षा दें कि आगे चलकर वे भी अपने बच्चों का विवाह परिपक्व आयु में ही करें। बाल-विवाह के प्रतिरोध में शिक्षित वर्ग अपने प्रभाव से पंचायती नियम बनाकर इस प्रथा पर प्रतिबन्ध लगवा सकते हैं।

हरिजनों को चाहिए कि वे अपने आर्थिक हित की दृष्टि से वैवाहिक अपव्ययों को तो बिल्कुल ही बन्द कर दें। उन्हें इस विषय में अर्थोन्मादी सवर्णों की नकल नहीं करनी चाहिए। हरिजनों के विवाहों में नाच, स्वांग, नौटंकी तथा लड़कों को नचाया जाना, घोर अश्लील तथा असभ्य परम्परा है। यह परम्परा उनकी एक विवाह-शर्त बनी हुई है। विवाह भोज के समय शराब तथा पशुओं का माँस पाप की तरह उनके समारोहों में प्रवेश किये हुए हैं। क्या शिक्षित तथा क्या अशिक्षित सभी हरिजनों को इन वैवाहिक कुरीतियों को तो दूर ही कर देना चाहिए ? इससे उनके विवाह समारोह शोभन एवं मितव्ययी हो जायेंगे।

शिक्षित तथा प्रगतिशील हरिजन तरुणों को चाहिए कि कुरीतिपूर्ण विवाहों से असहयोग प्रगट करें। अपने तथा अपने भाई-बहनों के विवाहों के अवसर पर स्वांग, नाच, नौटंकी आदि का आयोजन न होने दें और न शराब अथवा माँस ही चलने दें। शिक्षित तरुण-वर्ग अशिक्षित तरुण-वर्ग को इस सुधार में अपना अनुयायी बना सकता है। गाजा-बाजा, धूम-धड़ाका तथा अन्य प्रकार के प्रदर्शनपूर्ण आयोजन सवर्ण-विवाहों की कुरीतियाँ हैं। इनका अनुकरण हरिजन भाइयों को नहीं करना चाहिए। सरल, संक्षिप्त तथा मितव्ययी आदर्श-विवाह पद्धति बहुत ही उपयोगी तथा उचित रहेगी।

अपने हरिजन जातियों में सवर्णों की तरह ही एक दहेज प्रथा प्रचलित है। अन्तर केवल यह है कि सवर्णों में लड़के वाला लड़की वाले से दहेज लेता है और हरिजनों में लड़की वाला लड़के वाले से रुपया वसूल करता है। यह भी दहेज की ही तरह एक कुरीति है। कोई पक्ष किसी से भी क्यों न ले इस लेन-देन का परिणाम एक जैसा ही होता है। इस कुप्रथा से सवर्णों में जहाँ लड़की वाला त्रस्त होता है, वहाँ हरिजनों में लड़के वाला। समाज को शुद्ध, स्वच्छ तथा स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक है कि बुराइयों की उत्पादक कुप्रथाओं को अवश्य दूर किया जाय।

हरिजन साधुओं का विशेष कर्तव्य—हरिजन साधु तथा महात्मा लोग भी इस सुधार कार्य में बहुत कुछ योगदान कर सकते हैं। हरिजनों की भजन तथा संगीत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मण्डलियाँ इन्हीं के तत्वाधान में अधिकतर गाना-बजाना किया करती हैं। यह साधु अच्छे-अच्छे सुधारात्मक भजन कीर्तनों का संकलन करके हरिजनों में प्रचार कर सकते हैं। साधु-महात्माओं के बताये हुए भजन-कीर्तन हरिजन लोग जल्दी अपना लेते हैं। साधु-महात्माओं के तत्वाधान में चलने वाली भजन मण्डलियाँ हरिजन समाज में बहुत कुछ सुधार का कार्य कर सकती हैं। वे टोली बना-बनाकर हरिजन बस्तियों में जाकर सुधार-प्रचार कर सकती हैं, उनमें शिक्षा, स्वच्छता तथा निर्व्यसनता की प्रवृत्ति जगा सकती हैं।

अभी तक बहुधा होता यह है कि हरिजन साधु महात्मा बस्तियों में जाकर आसन जमा देते हैं। लोगों से भोजन तथा सेवा प्राप्त करने के साथ-साथ गाँजा, चरस तथा चिलम, तम्बाकू का दौर चलाया करते हैं। अब उन्हें चाहिए कि वे इन अवांछनीय कार्यक्रमों का परित्याग करके साधु परम्परा के अनुरूप हरिजन भाइयों के सुधार का प्रयत्न करें। उन्हें चाहिए कि वे स्वयं तो गाँजा, चरस व चिलम, तम्बाकू आदि नशे को छोड़ ही दें साथ ही हरिजनों को भी छोड़ने की प्रेरणा दें। इसके लिए वे उन्हें नशों से होने वाली हानियाँ बता सकते हैं, उन्हें उपदेश दे सकते हैं और उन्हें छोड़ने की प्रतिज्ञायें करा सकते हैं।

साधुओं के सुधार-वाक्य हरिजनों के अन्ध-विश्वास, पशुबलि तथा समाज की अन्ध-परम्पराओं पर वज्रपात सिद्ध हो सकते हैं। भूत-प्रेत, मियाँ मसान आदिक विश्वास प्रायः आडम्बरी साधुओं के ही चलाये हुए होते हैं। बेचारे भोले-भाले लोग साधु बाबाओं के पवित्र वेश तथा धार्मिक शब्दावली में श्रद्धा रखकर उनके दिये हुए अन्ध-विश्वासों को धर्म मान लेते हैं और भूत-प्रेत, वीर बैताल की पूजा करने लगते हैं। उन्हें पशुबलि तथा शराब आदि चढ़ाने लगते हैं। धीरे-धीरे यह सब कुप्रथायें अनेक संस्कारों में शामिल हो जाती हैं और वे इनके परम्परीत बन्दी बन जाते हैं। साधुओं को चाहिए कि अब वे हरिजनों के बीच फैली कुरीतियों, अन्ध-परम्पराओं, भ्रान्त धारणाओं तथा मूढ़ मान्यताओं को दूर करके उनमें सत्प्रवृत्तियों का विकास करें।

कथा, विवाह, हवन, षोडश संस्कार आदि धार्मिक कर्मकाण्डों से हरिजनों को प्रायः वंचित ही रहना पड़ता है। सवर्ण पण्डित पुरोहित उनसे दान दक्षिणा तो खुशी-खुशी वसूल कर लेते हैं पर उनके घरों में विवाह आदि संस्कार कराने एवं कथा वार्ता आदि सुनाने नहीं आते। इस अभाव के कारण हरिजनों को अपने धर्म की महत्वपूर्ण जानकारियों तथा रीति-नीतियों से अनभिज्ञ ही रहना पड़ता है। इस अभाव की पूर्ति हरिजन-साधु आसानी से कर सकते हैं। वे अध्ययन करें और इन धर्म-कृत्यों को सीखें। अपने समाज में इनका प्रचलन करें। इससे उनमें चेतना भी बढ़ेगी, साथ ही इन साधुओं को अधिक सम्मान तथा सहयोग भी मिलेगा। यह कार्य कोई सुशिक्षित हरिजन गृहस्थ भी कर सकते हैं। सवर्ण पण्डित-पुरोहितों की तरह अपने वर्ग में वे महत्वपूर्ण बौद्धिक सेवा करते हुए अपना गुजारा भी आसानी से चला सकते हैं।

परस्पर भी ऊँच-नीच—एक बहुत बड़ा दुर्भाग्य यह है कि हरिजनों के बीच परस्पर के व्यवहार में भी छुआछूत तथा ऊँच-नीच का दोष फैला हुआ है। हरिजनों में भी अनेक जातियाँ, उपजातियाँ तथा वर्ग ऐसे हैं जिनको अनेक हरिजन जातियाँ अछूत तथा अपने से नीची समझती हैं। न उनके साथ ब्याह-शादियाँ करते हैं, न सामाजिक सम्पर्क रखते हैं, न उनके हाथ का पानी पीते हैं और न छूते ही हैं। हरिजनों के बीच इस प्रकार की अछूत-प्रथा न केवल आश्चर्य अपितु दुःख का विषय है। जो हरिजन आज सवर्णों पर छुआ-छूत का आरोप लगाकर समाज में समानता का अधिकार माँगते हैं, उन्हें क्या अपने बीच फैली इस प्रकार की ऊँच-नीच तथा छुआ-छूत की भावना पर नहीं विचार करना चाहिए ? उन्हें सोचना चाहिए कि जब वे स्वयं ही अपने बहुत से भाइयों से सामाजिक सम्पर्क रखने में संकोच करते हैं, उन्हें समानता का अधिकार नहीं देते हैं, उन्हें छूने अथवा उनके हाथ का पानी लेने में घृणा करते हैं, तब क्या वे सवर्णों से समानता का अधिकार माँगने के अधिकारी हो सकते हैं ? जो स्वयं ही जिस विकृति का दोषी है वह भला उस विकृति का दोष दूसरों पर किस प्रकार लगाने का अधिकारी हो सकता है ? रूढ़िवादी सवर्णों के पास अछूतों को न मिलाने का यह एक बहुत ही ठोस बहाना है। हरिजनों को चाहिए कि सवर्णों से समानता का अधिकार पाने के लिए उनके इस बहाने को निर्मूल सिद्ध कर दें। अपनों में नीच तथा अछूत कहलाने वाले अपने भाइयों को गले लगायें, उनके साथ हर तरह का सामाजिक सम्पर्क स्थापित करें, उन्हें उठायें और समानता का अधिकार दें और तब आगे बढ़कर सवर्णों से समानता का अधिकार मागें। अपना दोष दूर करके अपना सामाजिक स्वत्व माँगना समर्थ एवं समीचीन होगा।

हरिजन क्रिस्तान न बनें—इन सामाजिक, शारीरिक, बौद्धिक तथा मानसिक सुधारों के साथ-साथ हरिजनों में जो एक बहुत बड़े सुधार की आवश्यकता है, वह है उनके धर्म परिवर्तन की प्रवृत्ति। पिछले बीस साल के अरसे में ही लाखों हरिजन, आदिवासी तथा परिगणित जाति के व्यक्ति मुसलमान तथा ईसाई बन गये हैं। यद्यपि पूरी तरह से बन्द न होने पर भी हिन्दुओं को मुसलमान बनाने की प्रवृत्ति कुछ कम देखने में आ रही है किन्तु ईसाइयों की गतिविधियाँ भयानक रूप से बढ़ गई हैं। इस समय तक भारत के पच्चीस-तीस लाख हिन्दू ईसाई बन चुके हैं और यह तीस लाख अपने-अपने ढंग से हिन्दुओं को ईसाई बनाने में लगे हुए हैं। यदि इस प्रकार एक हिन्दू ईसाई एक हिन्दू को भी अपने जीवन में ईसाई बना सका तो हिन्दू जाति की कुछ ही दिनों में क्या दशा हो सकती है और ईसाइयों की कितनी संख्या बढ़ सकती है इसकी कल्पना मात्र से ही रोमांच होने लगता है।

सवर्णों का कर्तव्य है कि वे अपनी प्रतिगामिता दूर कर शीघ्र ही हरिजनों को गले लगाकर उन्हें हिन्दू समाज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

का समान अंग होने का आश्वासन दें। उनका सामाजिक बहिष्कार करके हिन्दू समाज के प्रति विश्वास पैदा करें। उन्हें धार्मिक स्वतन्त्रता तथा धार्मिक एवं सार्वजनिक स्थानों पर आने-जाने का अवसर देकर हिन्दू धर्म में उनकी निष्ठा गहरी करें। ईसाइयों की तरह ही सामाजिक कार्यकर्ता तथा संस्थायें उनके बीच जाकर शिक्षा, सदुपदेश तथा दवाओं आदि का वितरण करें। ईसाइयों की तरह ही हिन्दू कार्यकर्ता उनकी बस्तियों में जाकर शिविर करें और उन्हें ईसाइयों के प्रपंचों से बचायें।

इस दिशा में सवर्णों को तो अपना कर्त्तव्य करना ही चाहिए, अछूतों के पढ़े-लिखे तथा समझदार वर्ग को अपने प्रयत्न में कोई कमी रखनी ही नहीं चाहिए। हरिजन कार्यकर्ताओं को चाहिए कि वे ईसाई प्रपंचों के मुकाबले में खड़े हों और अपने जाति भाइयों को समझायें कि अपने हिन्दू-धर्म का त्याग करके उनका ईसाई बनना ठीक नहीं। न तो यह लोक के लिये हितकर है और न परलोक के लिए। अपना धर्म छोड़ने से परलोक तो नष्ट होता ही है इस लोक में भी कोई लाभ नहीं होता। उन्हें चाहिए कि वे अपने हरिजन भाइयों को बतलायें कि ईसाइयों का क्रिस्तान बनाना एक राजनीतिक षड़यन्त्र है। विदेश से आये ईसाई मिशनरी हरिजनों, आदिवासियों तथा परिगणित लोगों को ईसाई बनाकर भारत में ईसाइयों की संख्या बढ़ा रहे हैं, जिससे कि वे आगे चलकर ईसाइयों के बहुमत के बल पर इंग्लैण्ड अथवा अमेरिका की पिट्ठू सरकार बना सकें और इस प्रकार हमारे देश को अपने प्रभाव के नीचे लाकर शोषण कर सके और जब अवसर आये तो भारतवासियों को गुलाम बना सके। हरिजन कार्यकर्ताओं को ईसाई बनाने से रोकना तो चाहिए ही साथ ही जो अज्ञानवश ईसाई हो गये हैं, उन्हें पुनः अपने धर्म में आने के लिये प्रेरित करना चाहिए।

सेवा-निवृत्त वयोवृद्ध इधर कदम बढ़ावें—इस सुधार कार्य में सेवा-निवृत्त अधिकारी बहुत कुछ कर सकते हैं। पैन्शन पाने के बाद उन्हें शेष जीवन आराम से पड़े-पड़े नहीं गुजारना चाहिए। उन्हें चाहिए कि वे अपने अवकाश का एक-एक क्षण जातीय उद्धार में लगायें। जिसकी जाति, जिसका वर्ग अथवा जिसके भाई पतन के गर्त में गिरे हुए नारकीय जीवन बिता रहे हों उस शिक्षित अथवा समझदार को सुख की नींद सोने का कोई अधिकार नहीं है। हरिजन अधिकारी, कर्मचारी तथा उन्नतिशील लोगों के प्रयास से हरिजनों में बड़ा जागरण आ सकता है। उन्नतिशील व्यक्तियों के प्रचार तथा उदाहरण के प्रभाव से उनका पिछड़ापन दूर हो सकता है और अनेक वृद्ध-जन अथवा ऐसे हरिजन मिल सकते हैं जिनके पास अवकाश हो। यही क्यों, वृद्ध लोग यदि चाहें तो अपने वर्ग का कायाकल्प ही कर सकते हैं। उन्नति प्राप्त हरिजन कर्मचारी हरिजनों की पंचायतों को गहराई तक प्रभावित कर सकते हैं और हरिजनों की शक्तिमती पंचायतें अपने समाज की नव्य-रचना में सराहनीय योगदान दे सकती हैं।

शिक्षित, समझदार, सेवा-निवृत्त तथा वयोवृद्ध हरिजनों को तो अपने समाज का सुधार करने में जी-जान से जुट ही जाना चाहिए, साथ ही सामान्य हरिजनों को भी सोते नहीं रहना चाहिए। उन्हें अपनी आँखें तथा मस्तिष्क को खोलकर समय की चाल को पहचानना चाहिए। अपनी दयनीय दशा पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए और आत्म-सुधार के लिये कमर कसकर खड़े हो जाना चाहिए।

सुविधा उत्पन्न करने के रचनात्मक कार्य—यह दोष हमारे सामाजिक ढाँचे पर ही है कि आज हरिजन भाइयों को बहुत से कामों में दिक्कत होती है। जैसे धोबी उनके कपड़े नहीं धोते, नाई उनके बाल नहीं बनाते, हलवाई उनके यहाँ मिठाई नहीं बनाने जाते और अन्य शिल्पी उनके मकान तथा कपड़े बनाने में ऐतराज करते हैं। इन छोटी-छोटी सामाजिक प्रतिगामिताओं से कुछ कम कष्ट तथा असुविधा नहीं होती। हरिजनों को चाहिए कि समाज के सुधरने तक वे इन छोटी-छोटी बातों को स्वयं सीखलें और आवश्यक शिल्पों का विकास कर लें। ऐसा करने से उन्हें न तो द्वेषजनक नकारात्मक उत्तर सुनने को मिलेगा और न असुविधा ही होगी। साथ ही अनेक शिल्प सीख जाने से उनकी आर्थिक दशा में भी सुधार होगा। इसके अतिरिक्त सुधार तथा विकास के लिए उन्हें अपने उपभोक्ता-भण्डार, सहकारी-समितियाँ तथा कताई-बुनाई आदि के छोटे-छोटे उद्योग धन्धे शुरू करने चाहिए।

छोटे-छोटे शिल्पों तथा घरेलू उद्योग-धन्धों के साथ हरिजनों को खेती-बाड़ी, शाक-सब्जी तथा फलों के उत्पादन की ओर भी बढ़ना चाहिए। मशीनरी का काम, लौह तथा काष्ठकला भी हरिजनों के आर्थिक विकास में बहुत कुछ सहायक हो सकती है। अभी तक हरिजन स्त्रियाँ खेतों पर मेहनत-मजदूरी करने चली जाया करती थीं जिससे कि उन्हें लगभग वर्ष भर के लिये अनाज तथा कुछ पैसा मिल जाया करता था, जो कि परिवार जीवनयापन में बहुत सहायक होता था। किन्तु कुछ आलस्य, कुछ सामाजिक द्वेष के कारण हरिजनों ने अपनी स्त्रियों को खेतों पर काम करने के लिए जाने से रोकना शुरू कर दिया है। इससे न केवल उनके आर्थिक ढाँचे पर ही कुप्रभाव पड़ा है, स्त्रियों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा है। हरिजनों का यह दृष्टिकोण ठीक नहीं। उन्हें सवर्णों की तरह अपनी स्त्रियों को घर में बन्द रखने की नकल नहीं करनी चाहिए और न मेहनत-मजदूरी को हीन ही समझना चाहिए। उन्हें न केवल स्त्रियों को ही खेतों पर काम करने के लिए भेजना चाहिए बल्कि स्वयं भी जाकर खेती-बारी का काम अवश्य सीख लेना चाहिए।

एक समय था जब हरिजन जातियों तथा परिगणित जातियों का स्वास्थ्य सवर्णों की अपेक्षा बहुत अच्छा था। इसका कारण था कि उसमें कसरत करने तथा कुश्ती लड़ने का शौक था साथ ही वे अधिक से अधिक प्राकृतिक जीवन तथा प्रकृति के सम्पर्क में रहने में विश्वास करते थे। किन्तु अब हरिजनों में भी सवर्णों की नकल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते-करते कृत्रिम जीवन तथा फैशन व सुकुमारता का रोग लग गया है। सवर्णों की यह हानिकारक नकल हरिजनों के स्वास्थ्य को चौपट किये दे रही है।. हरिजनों को चाहिए कि वे अपनी इस हीन तथा हानिकारक अनुकरण वृत्ति को छोड़ें और अपनी स्वास्थ्य सम्पदा की रक्षा करें। वह समय बहुत पीछे नहीं गया, जबकि हरिजनों के न जाने कितने अखाड़े चलते थे ? जिनमें वे पटा, बाना, तेग, फरी, गदका आदि की शास्त्रीय कला का अभ्यास किया करते थे।

इस प्रकार यह और अनेक प्रकार की योजनाओं को कार्यान्वित करके हरिजन उद्धार का राष्ट्रीय कार्य सरलतापूर्वक किया जा सकता है। सवर्णों से लेकर सामान्य हरिजनों तथा हर एक को अछूतोद्धार के इस राष्ट्रीय कर्त्तव्य में लगकर, अब्राहम लिंकन, दयानन्द, महात्मा गाँधी, ठक्कर बापा, केनेडी तथा कबीर, नानक, दादू, रविदास आदि महात्माओं के स्वप्न साकार करने ही चाहिए।

हरिजन-उत्थान मानव-गरिमा की प्रतिष्ठा

भारतीय समाज में मानव की गरिमा के सिद्धान्त को प्रतिष्ठित करना गाँधीजी का भारतीय संस्कृति को एक महान् योगदान था। उन्होंने हरिजन कल्याण के लिए बड़ा काम किया। उसी का प्रतिफल था कि संविधान में अस्पृश्यता उन्मूलन की घोषणा की गई। किन्तु यदि इतिहास के पिछले पन्ने उलटकर देखे जायें तो पता चलेगा कि कानून बनाकर अस्पृश्यता उन्मूलन की बात सोचना कुछ खटकता-सा है। हरिजन हमारे जीवन के अभिन्न अंग हैं, उनके साथ प्रेम व्यवहार, मेल-मिलाप रखने के लिये आन्तरिक प्रेरणायें न जाग्रत हों तो कानून या संविधान की उस घोषणा का भी कोई महत्व नहीं।

प्राचीन भारत में गुणों के आधार पर हरिजनों को उतना ही सम्मान किया जाता था जितना सवर्णों का, उसके लिए कोई कानून न था। ऐसे उदाहरण मिलते हैं जब हरिजनों और सवर्णों में विवाह सम्बन्ध तक होते रहे हैं। आज की अपेक्षा पूर्वज अधिक धार्मिक थे पर सामाजिक मामलों में पूर्णतया बुद्धि विवेक और सिद्धान्तवादी थे। आज जैसी विचार संकीर्णता उनमें न थी यही कारण था कि अपने-अपने कार्य करते हुए भी सामाजिक दृष्टि से मान-मर्यादा सबके लिए एक जैसी थी और इसी कारण हरिजन होने पर भी हरिजन अपने को हिन्दू कहने में गौरव अनुभव करता था और उपेक्षित कार्य करने पर भी वह अपना हित भारतीय धर्म में देखता था इतना ही नहीं वह उस व्यवस्था में सुखी और सन्तुष्ट भी था।

वर्ण-भेद सामाजिक व्यवस्था के लिए उपयोगी है, वहाँ उनके सैद्धान्तिक आधार का बना रहना भी आवश्यक है अन्यथा जातियों का बिलकुल महत्त्व नहीं रह जाता। गुण-कर्म, स्वभाव को ही वर्ण-भेद का आधार मानते हुए भी पूर्वजों में उनके लिए सामाजिक प्रतिष्ठा की कोई कमी न थी। व्यास और पाराशर मुनि विद्वानों में अब भी पूज्य हैं पर उनकी मातायें निम्न वर्ण की थीं। पाराशर की माँ श्वपाक (भंगी) की पुत्री थीं। कृप कक्षीपान, मात्स्य द्रपद, शृंगी, कश्यप आदि ऋषि-मुनि, नीच कुल में पैदा हुये पर उन्होंने अपने तप, स्वाध्याय और साधनों से वह प्रतिष्ठा का पद पाया जो अभी भी भारतीय लोग अपने हृदय, मस्तिष्क और आत्मा में भरे हुये हैं। यदि उस समय हरिजनों को मानवीय गरिमा का अंग न माना गया होता तो यह परिस्थितियाँ कहाँ से बन सकती थीं ?

आज जाति भेद के कारण करोड़ों अपनों को पराया बना दिया। पिछले ७७ वर्षों में ४४ लाख हिन्दू ईसाई बने। कलकत्ते के एक इमाम ने भरी अदालत में यह बयान देकर लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया कि मैंने १० हजार से भी अधिक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। धर्म परिवर्तन करने वाले इन हिन्दुओं में हरिजनों की ही संख्या अधिक थी। यह भारतीय समाज की भीतरी मूर्छा का ही परिणाम है कि एक दिन सम्पूर्ण देशों में छाई हुई हिन्दू-जाति संख्या, सामर्थ्य और संगठन की दृष्टि से सबसे कमजोर और पिछड़ी हुई जाति रह गई है।

यह दुर्भाग्य की बात है कि जिन तुलसीदास जी ने **"सियाराम मय सब जगजानी, करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी"** लिखकर मानव मात्र को परमात्मा का अंश मानकर जन-जन को उत्कृष्टता प्रदान की, यह क्यों मान लिया गया कि—**"पूजिय विप्र शील गुण हीना—शुद्र न गुनगन ज्ञान प्रवीणा"** चौपाई उन्हीं की मान ली गई, जो व्यास स्वयं ही निषाद कन्या के पुत्र थे उन्होंने—

बर्द्धको नापितः गोप आश्रयः कुम्भकारकः।
वणिक्किरात-कायस्थ-मालाकार-कुटुम्बिकाः।।
एतेऽत्यजाः समाख्याताः येचान्ये व गवाशनाः।
एषां सम्भषणात् स्नानं दर्शनादर्कवीक्षणम्।।

"अर्थात् बढ़ई, नाई, ग्वाले, कुम्हार, बनिये, किरात, कायस्थ, माली, भंगी, कोल, चण्डाल ये सब अन्त्यज कहलाते हैं। इन पर दृष्टि पड़े तो सूर्य दर्शन करना चाहिए। बातचीत करने के बाद स्नान करने के बाद द्विजाति शुद्ध होते हैं" यह कैसे लिखे गये ? यह सब हिन्दू-जाति को गिराने के लिये विधिवत् कुचक्र ही था। जिसे न तो तुलसीदास जी कह सकते थे न व्यासजी लिख सकते थे। हरिजन भारतीय धर्म संस्कृति के उपासक ही नहीं हिन्दू-जाति के अभिन्न अंग बन चुके हैं ? उन्हें मानवीय गरिमा प्रदान करके ही हम अपना संगठन सुरक्षित रख सकते हैं। जातियों का यह संगठन कितना उपयोगी और आवश्यक है यह सब अनुभव करते जा रहे हैं।

बिनोवा जी का यह कथन ध्यान देने और मनन करने योग्य है—हमको समझना चाहिए कि छुआछूत कायम रखकर क्या हरिजन देश के लिये मर-मिटने को राजी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होंगे ? सबके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ने को क्या वे राजी होंगे ? हम मनुष्य के नाते उनके साथ प्रेम सम्बन्ध नहीं जोड़ते। हमारा धर्म कहता है कि अनेक जन्मों के पुण्य से मनुष्य जन्म मिलता है तो हरिजन क्या मनुष्य नहीं है ? बिल्ली को भी ब्राह्मणों द्वारा दही-भात खिलाते हमने देखा है पर मनुष्य से वे घृणा करते हैं। हरिजनों को दूर रखा जाये यह गलत बात है, अधर्म है, अन्याय है। इस भेद को मिटा कर ही हमारे देश की ताकत बढ़ेगी।"

हिन्दू-धर्म का सन्देश विदेशों में गया है तो यहीं से गया है। शक, हूण, यहूदी आदि अनेक जातियाँ हिन्दू-जाति में इस तरह विलीन हो गईं कि आज उनका अस्तित्व भी नहीं मिल सकता—यह भी हिन्दुओं की उदारता और धार्मिक सद्भावना से ही हुआ है। यदि विदेशियों को अपने में मिलाया और खपाया जा सकता है यदि उन्हें प्रेरित प्रभावित करने का यत्न किया जा सकता है, तो हरिजनों को मानवोचित सम्मान में वंचित करना न केवल कलंक ही बात होगी उसे हिन्दू-धर्म की मूर्खता ही कहा जायेगा। उस अपमान से बचने में ही कल्याण है।

हिन्दू समाज में प्रचलित वर्तमान जाति भेद एक संकीर्ण दायरे में व्यक्ति सामाजिकता सीमाबद्ध करने एवं ऊँच-नीच की भावना से विकारग्रस्त हो गया है। इस स्थिति को सुधारा जाय। जातियाँ केवल व्यवसाय की परम्परा से कुशलता उत्पन्न करने के लिए थीं। ऊँच-नीच का इसमें कोई कारण न था। आज की स्थिति ने सारे भारतीय समाज को हजारों छोटे-छोटे भागों में बाँटकर खण्ड-खण्ड एवं असक्त कर दिया है। इस संकीर्णता से छूत-अछूत का एक अमानवीय भेदभाव उत्पन्न किया और उससे खिन्न होकर करोड़ों अछूत कहे जाने वाले लोग हिन्दू धर्म छोड़ कर अन्य धर्मों में चले गये तथा जो शेष हैं, वे तेज़ी से विधर्मी होते चले जा रहे हैं। मनुष्य-मनुष्य के बीच ऊँच-नीच का भेद भाव भारतीय धर्म के महान् आदर्शों को ही कलंकित एवं संसार में बदनाम कर रहा है। अब समय आ गया है कि इन भ्रान्त मान्यताओं एवं भेदभावों का निराकरण कर एक भारतीय समाज की भावना को विकसित किया जाय।

हरिजन उत्कर्ष के लिए सर्वतोमुखी प्रयत्न होने चाहिए। हिन्दू-समाज के एक भी सदस्य का पददलित रहना हमारे सामाजिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय जीवन के लिए कलंक है। इस कलंक कालिमा को जितनी जल्दी धो डालना सम्भव हो, उसके लिए पूरा-पूरा प्रयत्न किया जाना चाहिए।

जन जातियों का भी उत्कर्ष हो

प्रगतिशीलता के इस युग में भी संसार के विभिन्न भागों में विशेषकर अपने देश में आदिवासी कबीलों जनजातियों के ऐसे अनेकों समुदाय हैं, जो सभ्यता के प्रभावों से दूर जंगलों और पहाड़ों की गोद में जीवन व्यतीत करते हैं। भारतीय जनसंख्या का एक बहुत बड़ा एवं महत्वपूर्ण यह वर्ग स्वराज्य मिलने के उपरान्त भी अनेकानेक समस्याओं एवं विषमताओं से घिरा पिछड़ेपन का जीवन जीने को विवश है। आदिवासी आज भी प्राचीन परम्पराओं से घिरे हुए, जाति बन्धन में बँधे हुए हैं और वैसी ही रीति-रिवाज अपनाये रहने के लिए गई-गुजरी स्थिति में पड़े रहते हैं। यदि उन्हें उच्च वर्गों की भाँति विकसित एवं सभ्य बनने का सुअवसर मिला होता और वे विकसित लोगों के साथ घुलते-मिलते तो निश्चित रूप से एकता और समता की अभिवृद्धि हुई होती। सभी लोग एक ही स्थिति में रहते। कोई उन्नति-अवनति के दायरे में न बँटा होता।

इसी भेद-भाव एवं पिछड़ेपन का लाभ उठाकर प्रायः ईसाई आदि मिशनरियाँ—हरिजनों, आदिवासियों को बहका-फुसलाकर अपने धर्म में सम्मिलित करती रही हैं। इससे हिन्दुओं को अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक हानियाँ ही नहीं वरन् राष्ट्रीय हानियाँ भी सहनी पड़ीं। इसके लिए हमें उनका सुधार स्वयं करना होगा। परन्तु यह तभी संभव है, जब वे अपना सुधार स्वयं करने का प्रयास करें। इसके लिए सर्वप्रथम उन्हें मानसिक एवं भावनात्मक सहयोग देकर उनकी शैक्षणिक एवं आर्थिक विषमता को दूर करना होगा। उनमें प्रगतिशील संस्कारों को भरना होगा। यदि ऐसा नहीं किया गया और उनकी उपेक्षा ही होती रही तो निकट भविष्य में हम अपने देश में एक बहुत बड़े परिश्रमी एवं मेहनतकश समुदाय से तो वंचित होंगे ही, उनके आक्रोश का भाजन भी बनना पड़ेगा। इसके लक्षण देश के कुछ प्रान्तों में परिलक्षित भी होने लगे हैं।

आज अनुसूचित जातियाँ और जनजातियाँ भौगोलिक इकाइयाँ, भाषा की भिन्नताओं, आर्थिक विकास के स्तरों, सामाजिक संगठन की विविधताओं तथा सांस्कृतिक सम्पर्क एवं परिवर्तनों के कारण विभिन्न वर्गों में बँटी हैं। इनकी अधिकतर आबादी उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों के हिमालयी राज्यों में निवास करती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में जन जातियों की संख्या बहुत अधिक है। जैसे अरुणाचल प्रदेश, आसाम, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड, लक्षद्वीप आदि। कुछ इलाकों में इनकी संख्या बढ़कर अब क्षेत्रीय आबादी का ५० प्रतिशत व इससे भी अधिक हो गई है। चूँकि वे जहाँ-तहाँ बिखरे रहते हैं, इसलिए इनका वर्ग समुदाय संगठित नहीं मालूम पड़ता। पर वस्तुतः वे इतनी बड़ी संख्या में हैं कि इतने लोगों के विश्व में कितने ही महत्वपूर्ण देश हैं। वर्तमान समय में इस वर्ग की संख्या अपने देश में ७५ करोड़ ६३ लाख से भी अधिक है। यह जनसंख्या इतनी बड़ी है कि जिसका पिछड़ापन समूचे राष्ट्र को पिछड़ेपन के गर्त में धकेलता है और कलंक का भाजन बनाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मूर्धन्य समाजशास्त्री श्री बी. के. राय बर्मन के अनुसार भारत में जनजातियों के ४५० समुदाय निवास करते हैं। गोंडों, भील, संथाल आदि बहुल संख्या वाली जातियाँ हैं। इनमें से जो किसान वर्ग के हैं या उसी प्रकार का गुजारा करते हैं, उनके भी सामाजिक उत्कर्ष की आवश्यकता है। परन्तु जिनकी ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, वे वह लोग हैं जिनका अभी तक जनसाधारण में घुलना-मिलना नहीं हो पाया है। यह वन जातियाँ हैं, जो गाँव-शहरों में रहने की अपेक्षा वन्य प्रदेशों में, जंगलों में, कबीलों की तरह रहती हैं। उनके लिए स्कूल भी इसीलिये नहीं चल पाते कि वे एक-दूसरे से अलग झोंपड़े बनाकर रहते हैं। उनके बीच दूरी भी बहुत होती है, जिससे बच्चों का क्षेत्रीय स्कूलों में आना-जाना भी संभव नहीं हो पाता। इनमें से कुछ कबीले ऐसे हैं, जो अपने स्थान बदलते रहते हैं। कुछ दिन एक स्थान पर रहकर फिर दूसरी जगह चल देते हैं। गाड़िया लुहार, नट, सपेरे, बाजीगर, मदारी आदि घुमक्कड़ जातियाँ इसी वर्ग में आती हैं।

प्रगतिशीलता का थोड़ा-बहुत प्रभाव ही इन जनजातियों पर पड़ा है। उनके उत्थान के लिए सरकारी क्षेत्र में अपने ढाँचे-ढर्रे के अनुसार आर्थिक अनुदानों और योजना विधानों का क्रम चलता रहता है। उसकी उपयोगिता और सराहना करते हुए यह नहीं माना जा सकता कि इतने भर से इतने अधिक लोगों पर छाये हुए पिछड़ेपन की इतनी मोटी परतों को हटाया जाना संभव हो जायेगा।

जनजातियों में से वन्य क्षेत्रों के निवासी छोटे-मोटे जानवरों का शिकार कर लेने, जंगल से जड़ी-बूटियाँ खोद लेने, लकड़ी बीनकर उन्हें पास के गाँवों में बेच आने जैसे काम करते हैं और अपने परिवार का पालन-पोषण करते हैं। इन्हें न तो प्रयत्नपूर्वक समाज में घुलाया गया और न वे अपनी परम्पराओं का महत्व कम होने देकर नगर, गाँवों में बसे। इसके अतिरिक्त अनेकानेक जातियों-उपजातियों में उनका बँटा होना, छोटे-छोटे समुदायों में रहना, अनेक भाषाओं का प्रयोग करना तथा अनेक प्रकार की मान्यताओं से ग्रसित होना—ऐसा अवरोध है जो प्रगति की दिशा में किये गये सभी प्रयत्नों को निष्फल बना देता है। आजीविका उपार्जन के लिए श्रम शक्ति का सुनियोजित उपयोग न कर पाने के कारण उनका निवास क्षेत्र वन-सम्पदा से भरा-पूरा होते हुए भी उस क्षेत्र में विचरण तथा उपभोग की छूट होते हुए भी वे वैसा कुछ नहीं कर पाते जिससे आर्थिक स्थिति सुधरे। परम्परा के प्रति असाधारण लगाव और आग्रह होने से भी शिक्षा अपनाने तथा विकसित लोगों के साथ घुलने-मिलने और उपलब्ध साधनों से लाभ उठाने जैसा भी कुछ नहीं बन पड़ता।

यह चिन्ताजनक स्थिति बताती है कि इस संदर्भ में मात्र सरकारी प्रयत्न ही काफी नहीं है। इस ओर समस्त प्रगतिशील वर्ग को ध्यान देना होगा। इसके लिए सामाजिक, सामूहिक एवं व्यक्तिगत प्रयत्न करने होंगे वैसे ही जैसे कि अपने निजी परिवार, पड़ौस, मित्र या रिश्तेदारों के प्रति किये जाते हैं। जनजातियों के सुधार के लिए विकास की स्वतंत्र नीति अपनाये बिना काम नहीं चल सकता। उनके लिए चलते-फिरते स्कूल, चिकित्सालय, सामाजिक-संस्थान बनाने होंगे। उनके साथ घुलने-मिलने और साथ लेकर चलने पर ही प्रगति संभव है। यह कला हमें ईसाई मिशनरियों से सीखनी चाहिए जो उनके झोंपड़ों तक स्वयं चलकर जाते हैं और जो संभव होता है, प्रगतिशीलता का पाठ पढ़ाते हैं। ईसाइयों पर धर्मान्तरण का आरोप लगाने से पूर्व हमें अपने गिरेबान में भी झाँक लेना चाहिए।

"द ट्राईबल सिचुएशन इन इण्डिया" नामक पुस्तक में सुप्रसिद्ध नृतत्ववेत्ता एवं समाजशास्त्री श्री एस. सी. दुबे ने कहा है कि भारतीय जनजातियों पर पिछड़ेपन के जो काले बादल छाये हुए हैं वह एक दिन विस्फोटक रूप भी धारण कर सकते हैं। अतः समय रहते उनके विकास के सम्बन्ध में गंभीरता से विचार करना होगा। मात्र उनके चित्र-विचित्र रहन-सहन, प्रथा-प्रचलन, वेश-विन्यास एवं अनगढ़ पिछड़ेपन को कौतूहल का विषय बनाने भर से उनकी अपंगता-असमर्थता हटने-मिटने वाली नहीं है। इसके लिए उन्हें अवगति से उबारकर समानता के स्तर तक लाने की नैतिक जिम्मेदारी प्रगतिशीलों को उठानी होगी। उन्हें सहारा देकर साथ लेकर चलना होगा। समाज के पिछड़े समुदायों को सामान्य नागरिक स्तर तक पहुँचाने का प्रयत्न करना किसी भी सभ्य समाज का आवश्यक कर्त्तव्य है। समुदाय की, राष्ट्र की उन्नति के लिए यह आवश्यक भी है और महत्त्वपूर्ण भी।

कई बातें और समस्याएँ जो आँखों के आगे रहती हैं अथवा झकझोरती हैं, उन्हीं की ओर हम ध्यान देते हैं, यह बुरी बात है। हमें समस्याओं का मूल्यांकन-विश्लेषण करना चाहिए और राष्ट्रीय प्रगति एवं अवगति में जो महती भूमिका निभाती हैं, उनकी ओर अपनी सूझ-बूझ और दूरदर्शिता के आधार पर समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए।

कहा जा चुका है कि भारत में जन जातियों की संख्या और स्थिति ऐसी ही है जिस पर जितनी जल्दी क्रियान्वयन किया जाय, उतना ही अच्छा है। दूसरे लोग तो उनकी तुलना में लाख गुनी अच्छी स्थिति में हैं। सरकार और समाज को कहने लायक सहानुभूति भी अर्जित करते हैं पर जन-जातियों में अपनी ओर से कुछ कहने या माँगने का साहस नहीं है, तो भी उनकी ओर उपेक्षा ही बरती जाती रही है।

सन् १९८१ की जनगणना के अनुसार समस्त भारत में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति की आबादी क्रमशः ८ करोड़ २४ लाख ८० हजार तथा ४ करोड़ ११ लाख ४७ हजार थी। जन जातियों का अधिसंख्य भाग उत्तर-पूर्वी राज्यों एवं मध्य प्रदेश में है। इसके अतिरिक्त ये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जातियाँ अन्यान्य राज्यों में भी फैली हुई हैं। १९८१ की जनगणना के आधार पर, आंध्र प्रदेश में ३१,७६००१, बिहार में ५८१०,८६७, गुजरात में ४८४८५८६, हिमाचल प्रदेश में १९७,२७३, केरल में २,६१,४७५, महाराष्ट्र में ५७,७२,०३८, मेघालय में १०,७६,३४५, नागालैण्ड में ६,५०,८८५, उड़ीसा में ५९,१५,०६७, राजस्थान में ४१८३,१२४, सिक्किम में ७३,६२३, तमिलनाडु में ५,२०,२२६, त्रिपुरा में ५,८३,६२०, मध्य प्रदेश में पूरी आबादी का २४१०%, अण्डमान-निकोबार में २२,३६०, अरुणाचल प्रदेश में ४,४१,१६७, दादरा नगर हवेली में ८१,७७४, गोवा, दमन, दीप में १०,७२१, लक्ष द्वीप में ३७,७६०, मिजोरम में ४,५१,६०७ संख्या है।

जन-जातियों को चार प्रमुख क्षेत्रों में बाँटा गया है। हिमाचल क्षेत्र, मध्यक्षेत्र, पश्चिमी भारत एवं तटवर्ती द्वीप समूहों के साथ दक्षिणी भारत।

हिमाचल क्षेत्र में निम्न राज्य हैं—जम्मू, कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, आसाम, उत्तरी बंगाल, मेघालय नागालैण्ड नेफा। इस इलाके में पायी जाने वाली मुख्य जातियों के नाम ही गद्दी गुज्जर मोट किन्नउरा आदि जम्मू-कश्मीर व हिमाचल प्रदेश में थारु उत्तरप्रदेश व बिहार के तराई वाले प्रदेश में। कुकी मिजी, कचारी (विमासा) गारी, खासी आदि असम में एवं माओ मणिपुर में।

इस क्षेत्र में इनकी जनसंख्या देश की सम्पूर्ण जन जातीय संख्या की ११.३५ प्रतिशत है। मध्य भारत में निम्न राज्य सम्मिलित हैं—पश्चिमी बंगाल बिहार उड़ीसा, मध्य प्रदेश। इनमें पायी जाने वाली जनजातियाँ हैं—संथाल, मुण्डा, उराव, बिहार व उत्तरी बंगाल में। भूमीज, लोधा कोमा—पश्चिमी बंगाल में। खोण्ड, गोण्ड सखर कोया, भुइयां गदावा, जुँग उड़ीसा में। गोण्ड कवेंर बैंगा भूमिया, कोरकू, उरांव, हल्वा आदि मध्य प्रदेश में। सम्पूर्ण जन-जातियों की ५६०८८ प्रतिशत जनजाति इस क्षेत्र में निवास करती हैं। पश्चिमी भारत में निम्न राज्य आते हैं—राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र। प्रमुख जन जातियाँ हैं मीना भी—राजस्थान में। भील डबला, धोदिया, गामीत, सहयाद्री गुजरात में एवं भील, कोली महोदेव, कोकना-महाराष्ट्र में इस क्षेत्र में कुल जन जातियों का २४.८६ प्रतिशत है। दक्षिणी भारत में सम्मिलित राज्य हैं—आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल, पाण्डेचेरी तथा अण्डमान निकोबार। इनकी प्रमुख जनजातियाँ इस प्रकार हैं—गोड कोया, अनादी, मेरुफूल, कोण्ड डोरा आंध्र प्रदेश में, इसूला, माला कुरावान, टोडा-तमिलनाडु में, नैकाडा भारती भरावा-कर्नाटक में, पुलापन, पनीयान कादर-केरल में एवं अण्डमानी निकोबारी आंग, जरावा अण्डमान नीकोबार द्वीप समूह में। यहाँ पर कुल जन जाति की ६.६ प्रतिशत आबादी निवास करती हैं।

विडम्बना यह है इन पर अध्ययन तो किया जाता रहा है पर समाज सेवी संगठनों द्वारा कोई कहने लायक ऊँचा उठाने बाला कार्य इनके लिए नहीं हुआ। अब हम सभी का कर्तव्य है कि इस समुदाय को अशिक्षा और कुरीतियों के चंगुल से निकालने के लिए कारगर कदम उठाएँ। उनके बीच बसें और वह उमंग पैदा करें जिससे वे अपनी स्थिति को समझें, उसे बदलने के लिए निजी आकांक्षा को भी प्रदीप्त करें। देव संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले समुदाय को विशेषकर अब चेत जाना चाहिए एवं इनमें नव जाग्रति लाने का प्रयास करना चाहिए।

जन जातियों के सुधार की मौलिक सूझ-बूझ

जन जातियाँ जहाँ-तहाँ बिखरी हुई हैं। एक जगह समूह बनाकर नहीं रहतीं। उनकी भाषा संगठन और भी एक नहीं हैं इसलिए अति महत्व का समुदाय होते हुए भी वे आँख से ओझल ही बनी रहती हैं और उनके सम्बन्ध में जितना ध्यान जाना आवश्यक है उतना जा नहीं पाता।

जन जातियाँ अपने गुणों के कारण राष्ट्र की एक महत्वपूर्ण इकाई हैं। प्रकृति पुत्र होने के कारण उन्हें स्वस्थता और बलिष्ठता का सहज उपहार मिला है। वे आच्छादनों के अभाव में भी ऋतुओं के दबाव को सहज बर्दाश्त करते रहते हैं। सर्दी, गर्मी, वर्षा की ऋतुएँ उन पर प्रतिकूल प्रभाव डाल नहीं पातीं। नाम मात्र के वस्त्र और घास-फूँस के आच्छादनों के सहारे वे अपना स्वास्थ्य अक्षुण्ण बनाये रहते हैं। दवादारू की उन्हें वैसी आवश्यकता नहीं पड़ती, जैसी कि जनसाधारण को। मात्र नीरोगता के ही नहीं, बलिष्ठता के भी वे धनी हैं। उदर पोषण के लिए जंगली धान्य के अतिरिक्त उन्हें वन्य-पशुओं के शिकार पर रहना पड़ता है। इसके लिए तीर कमान और भाला ही उनके प्रधान अस्त्र हैं, जो पराक्रम और चातुर्य दोनों ही चाहते हैं। बन्दूक की बात दूसरी है, पर हाथ से चलने वाले शस्त्रों में भुजबल और कौशल की आवश्यकता पड़ती है। यह उनका नित्य कर्म है। इसलिए उन्हें न केवल प्रकृति प्रकोपों को सहन कर सकने योग्य स्वस्थ वरन् आखेट कर्म के लिए जिस सशक्तता की जरूरत पहुँचती है उनका धनी-बलिष्ठ भी कह सकते हैं।

इसके अतिरिक्त उनकी एक विशेषता साहसिकता भी है। जब विवाह होते हैं, वे अपनी अलग झोंपड़ी बनाते हैं। वन्य पशुओं में कितने ही हिंसक और आक्रमणकारी भी होते हैं। कच्ची भूमि में साँप, बिच्छुओं की भरमार रहती है। पुरुष दिन भर आहार जुटाने में संलग्न रहते हैं। स्त्रियाँ अकेली झोंपड़ियों में रहती हैं। इसमें साहस ही प्रधान है। साहस के बिना अंधेरी रातों में, सुनसान में निवास करना कैसे बन पड़े ? यह साहसियों का काम है। इसके अतिरिक्त चौथी विशेषता उनकी स्वावलम्बन है। न कोई जमीन न जायदाद। न आजीविका के निश्चित स्रोत ऋतु फल भी अब नहीं रहे। कन्द-मूल, पत्तियों वाले शाक, माँस इन्हीं पर गुजारा होता है। कृषि के लिए अपनी झोंपड़ी के आस-पास ऐसे अन्न उगा लेते हैं, जो मात्र वर्षा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के सहारे उपज सकें। जिनके लिए खाद, पानी, की जरूरत न पड़े। ऐसे धान्यों में मक्का सबसे सरल पड़ती है। पक्षी उसके छिलके को तोड़ नहीं पाते। इसके अतिरिक्त बाजरा, ज्वार, संबा, कामनी आदि बरसाती ऋषि अन्नों पर निर्भरता रहती है। ये इतनी मात्रा में नहीं होते जिन पर साल भर की निर्भरता रह सके।

अतिरिक्त उद्योगों में जंगल से लकड़ी काटकर बाजार में बेच आना, जड़ी-बूटियाँ उखाड़ कर पंसारियों या ठेकेदारों को कौड़ी मोल बेच आना, जंगली शहद इकट्ठा करना आदि हैं। शहद एकत्र करना काफी कठिन होता है। एक तो उनके छत्ते बहुत ऊँचे होते हैं। दूसरे मक्खियाँ बड़े आकार बड़े डंकों वाली होती हैं। फिर भी किसी प्रकार वे शहद प्राप्त करते हैं और जीविकोपयोगी अन्य वस्तुओं की जरूरत पड़ती है, तो उन्हीं के बदले खरीदते हैं। पूरा जीवन क्रम ही ऐसा है, जिसमें दैनिक आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए दस बीस मील चलना आवश्यक है। कभी-कभी इससे अधिक भी। इन सब कृत्यों को नित्य करते रहने के लिए लोहे का शरीर और वाघ जैसी हिम्मत चाहिए। जन जातियों को जंगलों में रहना पड़ता है इसलिए स्वभावतः दिनचर्या ऐसी ही बन जाती है। सरल जीवन जीने वालों की तुलना में वे दयनीय हो सकते हैं पर निरन्तर जो जीवन-संघर्ष करना पड़ता है उसे देखते हुए उन्हें पौरुष और साहस के धनी ही कह सकते हैं इन विशेषताओं के धनी प्रजाजन जिस देश में हों उसे भाग्यवान ही कह सकते हैं। सुरक्षा के काम में वे अग्रिणी हो सकते हैं। पाताल फोड़ कुँए बनाने, बाँध खड़े करने जैसे कठिन कामों में उन्हें अगली मुहीम सँभालने के प्रयुक्त किया जा सकता है। जो सहज स्वाभाविक गुण जन जातियों को मिले हैं, उन्हें किसी भी देश का ऊँचे दर्जे का सौभाग्य कह सकते हैं। ऐसे लोग चीते और अजगर जैसे शत्रुओं से जूझ सकते हैं। दुर्भिक्षों को चुनौती दे सकते हैं। मितव्ययता के अभ्यस्त होने से अवसर मिलते ही बचत को संभालकर रखना सीखते ही धन धान्य से भरे पूरे हो सकते हैं।

पिछले पृष्ठों पर बताया गया है कि जन जातियों की अपने देश में एक बहुत बड़ी संख्या है। पिछली जनगणना के हिसाब से उनकी संख्या १५ करोड़ ६३ लाख से भी अधिक है। अनुसूचित जातियों, हरिजनों आदि की प्रगति के लिए तो बहुत कुछ हुआ है। आरक्षण का भी उन्हें लाभ सर्वाधिक मिला है। किन्तु जन-जातियों को इन सुविधाओं से एक प्रकार से वंचित ही समझा जाना चाहिए। इसके कई कारण हैं। एक तो उनका वन्य प्रदेशों से बिखरा होना। दूसरा कबीलों की छोटी-छोटी भाषाओं के अभ्यस्त होने के कारण भाषा सम्पर्क सम्बन्धी कठिनाई। तीसरा यह कि सुधार कार्यों में उनकी स्वयं रुचि न होना।

आश्चर्य की बात है कि जन-जातियों के आस-पास के क्षेत्र में सामान्य लोग बसे हुए हैं। वे उनके आचार व्यवहार को भी जानते हैं। समीपवर्ती किसानों की भाषा तो वे समझ भी लेते हैं। पर ऐसा सुयोग नहीं बनता कि इन आदिवासियों की भाषा को समीपवर्ती लोग समझ सकें। संसार में यह कायदा है कि सुविधाजनक जीवन की नकल पिछड़े हुए लोग आसानी से करने लगते हैं। पर जन-जातियों ने ऐसा घुलने-मिलने का कोई प्रयत्न नहीं किया अथवा यों कहना चाहिए कि सुधारकों ने ऐसे प्रयत्न नहीं किये जिससे समीपवर्ती जनता का रहन-सहन वे सीखते और अन्य लोग जिन सुविधाओं का लाभ उठा रहे हैं, उनका वे भी उठाते।

लाखों वर्षों में भारतीय जनता के साथ-साथ ही जन जातियाँ बसी आ रही हैं, पर दोनों की जीवन विधि में आदिमकाल जैसी खाई बनी रही है। जनजातियाँ अपने को आदिवासी कहती हैं बसने के काल की दृष्टि से यह कथन गलत है। पर सही इस माने में है कि रहन-सहन का तरीका प्रायः वही है, जो आदिमकाल के आरम्भिक दिनों में मनुष्य ने सीखा था। तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो पड़ोसियों ने हर बात में उन्नति कर ली है। उनका खान-पान, पहनाव, उद्योग, व्यवसाय सब कुछ बदल गया पर जन जातियाँ वही तरीका अपनाये हुए हैं, जो आज से दस हजार वर्ष पहले थे। प्रगति के इस युग में एक पड़ोसी दूसरे पड़ोसी से इस प्रकार पृथक् रहे, यह सचमुच ही अचम्भे की बात है।

कारणों को तलाश करने पर सबसे बड़ा कारण आदिम काल की भूत-पलीत सम्बन्धी, देवी-देवताओं सम्बन्धी मान्यताओं का समझ में आता है। सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य सूरज, चन्द्रमा, बिजली आदि से भरे हुए पितरजनों से भय खाता था और अपने बचाव के लिए उनका अनुग्रह चाहता था। इतना ही नहीं, इसे यह भय भी रहता था कि उनकी मर्जी के विरुद्ध चला गया तो वे नुकसान कर देंगे। नुकसानों में आये दिन की प्रतिकूलताएँ देवी-देवताओं की नाराजी मानी जाती थी। बुखार, जुकाम, खाँसी, चोट, ठोकर फोड़ा, फुँसी आदि शारीरिक बीमारियाँ, खेत में कम अनाज होना, शिकार को दाँव में फँसने से भाग जाना, बिच्छू का काटखाना, जैसी कठिनाइयाँ देवताओं की नाराजी का कारण मानी जाती थीं। उनकी मनौती करके ही कठिनाइयों से बचा जा सकता था। ये मान्यताएँ अभी भी बनी हुई हैं।

इसके अतिरिक्त एक और बड़ी बात यह है कि देवी-देवता पुरानी प्रथा-परम्पराओं को यथावत् अपनाये रहने पर जोर देते हैं। जैसे विवाह के बाद वर-वधू का अलग झोंपड़ी बनाकर रहना। यदि माँ बाप साथ रहने लगे तो कुल देवता अप्रसन्न होकर उनका या माँ-बाप, भाई-बहिन आदि का कोई न कोई अनिष्ठ करेंगे। कपड़े जो पहने जाते रहे हैं, वे ही पहनने चाहिए उनमें हेर-फेर किया तो फिर देवताओं की नाराजगी मोल लेनी पड़ेगी। इसलिए पैसे का प्रबन्ध होने पर भी बड़े-बूढ़ों को ही नहीं युवक-युवतियों को भी पुराने ढर्रे के कपड़े पहनने पड़ेंगे। ये सामान्य परम्पराएँ हैं, जिन्हें मानने पर जोर दिया जाता है।

जन-जातियों के मोटे वर्गीकरण में वे प्रायः ६० गिनी गई है। कबीलों उपभेदों के अनुसार लगभग ६०० बैठती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

है। उनके देवी-देवताओं की गणना नहीं है। परम्परागत देवता ६००० के लगभग हैं। नये मुर्दे भूत बनते जाते हैं, उस हिसाब से जितनी आबादी है उतने देवता भी माने जा सकते हैं। इनके विरुद्ध जबान खोलना तो दूर, जीभ खोलने तक की हिम्मत नहीं पड़ती क्योंकि मान्यता वाले देवता उनके निजी जीवन में, चिन्तन में पूरी तरह घुले रहते हैं। उनके हर काम को देखते हैं। नाराजी का दण्ड लगे हाथों देते हैं। प्रसन्नता का लाभ भी हर दिन मिलता रहता है। हर कुटुम्ब का अलग देवता होता है और उसका मुख्य काम यही रहता है कि अपने यजमानों को नियंत्रण में रखें। इसके अतिरिक्त कबीले के, गाँव के देवता अलग-अलग हैं। इन लोगों का पूरा गिरोह है। एक से बचे तो दूसरा लगे हाथों उसे झपट लेगा। एक ओर जहाँ सुअर, अजगर और भेड़िये तक का शिकार करने में डर नहीं लगता दूसरी ओर वहाँ मरे हुए पितरों और कल्पित देवताओं का इतना डर लगता है कि उनके विरुद्ध कुछ सोचने तक की इनकी हिम्मत नहीं होती।

और देवताओं के ऐजेण्ट हर जगह होते हैं। कोई कठिनाई खड़ी होते ही उसकी सलाह से देवता की मनौती की जाती है। मनौती में अण्डा, मुर्गा, बकरा, कुत्ता, भैंसा आदि की बलि देनी पड़ती है। इस प्रसाद को सारा कबीला मिलकर खाता है। इसकी इन्तजारी सभी को रहती है कि कब किसके यहाँ बलि चढ़े और स्वाद चखने को मिले ?

सुधार के लिए अनुसूचित जातियों वाला ढर्रा काम में लिया जा रहा है। उनके लिए तो वह काम दे गया। विद्यालय छात्रवृत्ति, छात्रावास, आरक्षण आदि के तरीके उस वर्ग के लिए कुछ सीमा तक तो काम दे रहे हैं जो एक जगह मिल-जुलकर रहते हैं। एक जैसी भाषा बोलते हैं। पड़ोसियों के साथ घुलते-मिलते हैं। उनकी नकल करने में जिन्हें कोई ऐतराज नहीं है, सरकारी अनुदानों से ऐसा समुदाय लाभ उठा सकता है। पर जिनकी झोंपड़ियाँ एक-दूसरे से दूर बनी हैं, उनके बच्चे पढ़ने कहाँ जायँ बच्चे अपने परिवार की बोली बोलते हैं। अध्यापकों को हिन्दी तो आती है पर उनकी मातृ भाषा नहीं आती। ऐसी दशाओं में पढ़ाएँ तो कैसे पढ़ायें, सरकारी अनुदान से जन-जातियों के सुधार के लिए जो विद्यालय अस्पताल आदि खुले हैं वे सर्वथा सूने पड़े रहते हैं। झूठ-मूठ खाना पूरी भर होती रहती है।

प्रश्न यह है कि ऐसी दशा में क्या किया जा सकता है और क्या किया जाना चाहिए ? आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक कबीले के ऐसे पँच चौधरी तलाश किये जायें जो देवी-देवताओं पर कन्ट्रोल करने लायक अकल रखते हों और जो प्रगतिशीलता से सहमति सहानुभूति रखते हैं। आरम्भ में ऐसे ही लोग तलाश किये जायें और शिक्षा, सहकारिता, समाज सुधार जैसे विषय अपने-अपने सम्प्रदायों में फैलाने का उत्तरदायित्व सँभालें इन्हें सरकारी ग्रांट का वेतन देने की जरूरत नहीं है। जेब खर्च के रूप में पारितोषिक दिया जाय एवं उत्तरदायित्व यह सौंपा जाय कि देवताओं की हठधर्मी को अनुकूलता में बदलने के लिए अपने समाज में लगातार दौरा करते रहें और यह करके दिखावें कि वे कितने लोगों को प्रतिगामिता के चंगुल में से छुड़ाने और प्रगतिशीलता अपनाने में कितना सहमत कर सके ?

जन-जातियाँ सारे भारत में फैली हुई हैं। जहाँ दो चार सौ का इलाका है, वहाँ की एक भाषा बन गई और इतनी ही छोटी बिरादरी के रीति-रिवाज का वे पालन कर रहे हैं। ऐसी दशा में सुधारकों को भी भ्रमणशील, प्रगतिशील ही होना पड़ेगा। साधु सन्त अगर काम करेंगे तो वे उसी समुदाय के होने चाहिए। दूसरे सम्प्रदाय के लोगों का प्रवेश उनमें कठिन पड़ेगा।

जन-जातियाँ अनेक दृष्टियों से राष्ट्रीय महत्व की हैं। उनमें इतने गुण हैं कि उपेक्षा में नहीं छोड़ा जा सकता। साथ ही यह भी तय है कि उन्हें समझाने और सुधारने के लिए मौलिक सूझबूझ से काम लेना पड़ेगा।

शोषित जागें, ताकि शोषक दबें

मनुष्य के कुछ मौलिक सार्वभौम अधिकार हैं, जैसे वाणी की स्वतंत्रता एवं लेखनी की स्वतंत्रता। इन्हें विचारों की अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में अपने अधिकार प्रकट कर सकना भी कहते हैं। धार्मिक स्वतंत्रता का अर्थ है—इच्छानुसार जिस भी धर्म में आस्था हो उसे अपना सकना। मतदान की स्वतंत्रता का अर्थ है—नागरिकता के अधिकारों का समान रूप से उपयोग कर सकना। जाति और लिंग के आधार पर किसी को छोटा-बड़ा समझने या उस स्थिति में रहने के लिये विवश करना भी परतंत्रता है। नर-नारी परस्पर सहयोगपूर्वक साथ रहें, यह उनकी इच्छा पर निर्भर रहना चाहिए। कोई किसी को दास-दासी की तरह बाधित रहने के लिये विवश न करे।

मध्यकाल के अन्धकार युग में सामन्ती व्यवस्था जिन दिनों चल रही थी, उन दिनों समर्थ लोग असमर्थों को अपनी इच्छानुसार चलाते थे। उन्हें पशुओं की तरह प्रतिबन्धित जीवन जीना पड़ता था। जिसकी लाठी तिसकी भैंस जैसा जंगली कानून चलता था। जिस प्रकार मनुष्य पशुओं को पालते, उसकी शरीर सम्पदाओं का लाभ उठाते हैं, वैसा ही व्यवहार समर्थ असमर्थों के साथ किया करते थे। उन्हें न तो विरोध करने के लिये अवसर मिलता था और न अपनी कठिनाई बताने, अनीति को दूर करने के प्रयास में सफल होते थे। वह सिलसिला लम्बी अवधि तक चला। दुर्बलों को, असंगठितों को, संगठित जनों के, समर्थों के विविध-विध अनाचार सहने पड़े। तब इन दुर्व्यवहारों को सामाजिक मान्यता भी मिली हुई थी। पति को अधिकार था कि पत्नी से चाहे जैसा व्यवहार करें ? उसे चाहे जिस स्थिति में रहने के लिये विवश करें। परित्याग कर दें अथवा मार भी डालें। नारी कुछ कर नहीं सकती थी। विरोध की उसमें हिम्मत न थी। दूसरों को उसमें दखल देने का कोई अधिकार न था। ऐसी दशा में विवशता को शिरोधार्य करने के अतिरिक्त असमर्थों और असंगठितों के पास कोई चारा भी न था। जो भोगना पड़ता था उसे भाग्य विधान कहकर अनदेखा कर दिया जाता था।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दास-दासी प्रथा भी उन्हीं दिनों धड़ल्ले से चलती थी। समर्थ अपने शस्त्र बल, शरीर बल और सैन्य बल के सहारे किन्हीं को भी बलात् पकड़ लेते थे। उन्हें बन्धनों में बाँधकर इच्छानुसार चलाते थे। बेचते, खरीदते दान देते थे। प्रजा पर राजा का अधिकार था। प्रजाजन राजा की सम्पत्ति माने जाते थे। उनकी सम्पदा को जब चाहें वे जब्त कर सकते थे या जितना भाग लेना चाहें, उनका कर रूप में जबरदस्ती वसूल कर लेते थे। इसे आतंक का राज कह सकते हैं। राजा, सामन्त, सेनापति, अमीर, जागीरदार, साहूकार अपने चंगुल में फँसे हुए लोगों के साथ चाहे जैसा व्यवहार करते थे। न्याय भाव जैसी कोई बात न थी। राजा का धर्म ही प्रजा का धर्म बन जाता था। व्यक्तियों को स्वेच्छापूर्वक अपने धर्म चुनने व बदलने-छोड़ने का अधिकार न था। इस दयनीय स्थिति में मनुष्य जाति के दुर्बल पक्षों को पिछले दिनों लम्बी अवधि तक रहना पड़ा है।

समय ने करवट बदली। युग बदला। विवेक जागा और शक्ति सामन्तों के हाथों से निकलकर जनसामान्य के हाथों में आयी। इसमें अनेक प्रकार के परिवर्तन सामने आये। सबसे बड़ी बात हुई मानवी मौलिक अधिकारों को मान्यता मिलना। न्याय और औचित्य को प्रश्रय मिलना। असमर्थों में बदला लेने की या अपने बलबूते चलती हुई मनमर्जी को रोक सकने की प्रत्यक्ष सामर्थ्य नहीं थी तो भी लोकचेतना ने ऐसा वातावरण बनाया जिसमें न्याय और विवेक के औचित्य की आवश्यकता समझी और समझाई जाने लगी। प्रजाजनों में, संख्या बल में, औचित्य को अपनाये जाने का दबाव पड़ने से हर क्षेत्र में हर देश में ऐसी हवा चली कि न कोई अदालत बैठी, न कोई मुकद्दमा चला। कोई संघर्ष नहीं हुआ, पर न्याय के समर्थकों की समर्थ सेना सर्वत्र उठ खड़ी हुई और उसने अपने ढंग से संघर्ष भी किये और परिवर्तनों का भी माहौल बनाया।

इन दिनों मनुष्य के मौलिक अधिकारों को उपयोग कर सकने का प्रचलन चल पड़ा है। वाणी की, लेखनी की, अभिव्यक्ति की, धर्म की, मानवी समता की मान्यतायें मिल गयी हैं, मिल रही हैं। मतदान द्वारा सरकार बनाने का भी प्रवाह सर्वत्र चलता देखा जा सकता है। जिनकी दाढ़ों में आधिपत्य का चस्का लगा हुआ है, वे उस जनाधिकार को निरस्त करने के भी कम प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। सफलता को असफलता की दिशा में घसीटने के लिये प्रतिक्रियावादी कम जोर नहीं लगा रहे हैं। फिर भी बहती प्रचण्ड धारा को देर तक रोक सकना किसी के भी वश की बात नहीं।

सर्व साधारण को युग चेतना के उभार और आलोक से परिचित कराया जा रहा है कि मनुष्य मात्र को समानता अपनाते हुए सहयोगपूर्वक रहना चाहिए। "जियो और जीने दो" का सिद्धान्त अपनाना चाहिए। अपने को किसी से बढ़कर नहीं मानना चाहिए और किन्हीं की विवशताओं का अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहिए। परम्पराओं की दुहाई देकर पिछले दिनों चलते रहे अनौचित्यों को पूर्ववर्ती प्रथा-प्रचलन कहकर युग चेतना के मार्ग में अवरोध उत्पन्न नहीं करना चाहिए।

जहाँ अनौचित्य की भूली-विसरी स्मृतियों को फिर से कार्यान्वित करने के लिये प्रतिगामी प्रयास किये जा रहे हैं, वहाँ आगे बढ़कर रोकथाम करनी चाहिए। अनौचित्य का विरोध किया जाना चाहिए। दुर्बल पक्ष अनीति का शिकार हो रहा हो तो उसे साहस प्रदान करना चाहिए। समर्थन भी देना चाहिए। समता और एकता का सार्वभौम प्रचलन भली प्रकार स्थिर हो सके और अपने पैर इतनी मजबूती से जमा सकें कि उन्हें उखाड़ सकना किसी के लिये भी संभव न हो सके, इसी के निमित्त अपना नैतिक और क्रियात्मक प्रत्यक्ष सहयोग प्रदान करना चाहिए। यही है समय की पुकार एवं युग की माँग, औचित्य की गुहार। इसे भली प्रकार सुना-समझा जाना चाहिए।

मानवीय अधिकारों के हनन में जहाँ अत्याचारी वर्गों की ज्यादातियाँ काम करती रही हैं, वहाँ एक कारण यह भी रहा है कि उत्पीड़ितों ने बहुसंख्यक होते हुए भी अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता प्रकट नहीं की है। उस मान को, उस योग्यता को भी उनने भुला दिया। यदि उन्होंने अपने को, अपनी शक्तियों को, मौलिक अधिकार भावना को अपने अन्दर जगाया होता, तो इतने भर से अनाचारियों के सीने ठनके होते और भावी विद्रोह की संभावना को समझते हुए सुधार-परिवर्तन की नीति अपनाई होती, पर दबाव तो उससे निश्चित रूप से हल्का हुआ होता।

संसार के विभिन्न भागों पर राजतंत्र का, साम्राज्यवाद का, पूँजीवाद का बोलबाला रहा है। इसका अनौचित्य, उत्पीड़क और पीड़ित दोनों ही समझते रहे हैं। पर लम्बे समय तक यथास्थिति बनी रही। कारण एक ही था कि शोषित वर्ग ने या तो आवाज उठाई ही नहीं या उठाई तो वह धीमी एवं असंगठित थी। जैसे ही साहस उभरा और अनीति के प्रति विद्रोह उतारू हुआ, वहाँ परिस्थितियाँ बदलीं, चाहे वह मार्क्सवादी यूरोप हो अथवा दक्षिण अफ्रीका। भले ही आरंभ में शोषकों ने दमन का आश्रय लिया हो, पर वह दबाव बहुत समय तक जारी नहीं रह सका। दुर्बल होते हुए भी नीति पक्ष जीता है और अपने अधिकार वापिस लेकर रहा है। जागरूकों को सफलता मिल चुकी है। आवश्यकता इस बात की है कि मानवीय मौलिक अधिकारों की यथार्थता एवं आवश्यकता से जन-जन को अवगत कराया जाय। इसी प्रकार अगले दिनों शोषित जागेंगे और शोषक दबेंगे।

पिछड़े वर्गों में भी सुधार सम्बन्धी चेतना

मध्य, पूर्वी तथा उत्तरी भारत में अधिकांशतः विवाह शादियों में कन्या पक्ष वालों को दहेज के रूप में भारी रकम तथा कीमती सामान देने की प्रथा जोरों पर है। लेकिन इसके विपरीत मध्य प्रदेश के कुछ आदिवासी क्षेत्रों में कन्या पाने के लिये, वर पक्ष को एक निश्चित रकम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चुकानी पड़ती है और जो वर यह रकम चुकाने में असमर्थ होता है, उसे अपने भावी श्वसुर के घर तब तक नौकर की तरह कार्य करना पड़ता है, जब तक रोज की मजूरी के हिसाब से वह निश्चित धन राशि न चुक जाय।

कोल, भील, कुर्मी आदि जातियाँ वैसे ही गरीब होती हैं। साधारण ही नहीं निम्न स्तर का जीवनयापन करते हैं ये लोग। अतः ये धन राशि चुकाना उनके लिये एक बोझा ही होता है।

इस कुप्रथा का उन्मूलन करने के लिये दो सक्रिय कदम उठाए गये हैं।

मध्य प्रदेश के सैलाना में भीलों ने मिलकर एक पंचायत की। उसमें वहाँ के सरपंच ने कहा—"हम लोग अपने कठिन परिश्रम से अपनी आजीविका मात्र अर्जित कर पाते हैं। तब हमारे लिये यह कहाँ तक उचित है कि जान-बूझकर विवाह के नाम पर परेशानी मोल लें। रकम चुकाने के लिये किसी को घर बेचना पड़ता है, किसी को जमीन। किसी को पशु—तो किसी को अपने बर्तन आदि तक। कोई कर्जा लेता है तो सारी उमर नहीं चुका पाता। अतः समझदारी इसी में है कि ऐसी घातक परम्परा का अन्त ही कर दें।" लिये जाने वाली राशि की निम्नतम संख्या दो सौ पचास रुपया रखी गई। सभी ने स्वीकृति दी और पसंद किया इस निर्णय को। सभी उपस्थित व्यक्तियों को तो यह निर्णय ज्ञात हुआ, किन्तु बात उन लोगों तक भी पहुँचानी थी जो इस सभा में सम्मिलित नहीं हो सके थे।

इसके लिये भील युवक टोली बना-बनाकर और आस-पास के गाँवों में इस निर्णय की सूचना पहुँचाने के साथ सभी से उसे मानने तथा तदनुसार आचरण करने की प्रार्थना भी की। युवकों को समझाया कि "पत्नी पाने के लिये 'बन्धक' बनकर भावी श्वसुर के यहाँ मजूरी करना हमारे पुरुषत्व का अपमान है। क्यों न ऐसी परम्परा को ही तोड़ डाला जाय।"

अधिकांश व्यक्तियों ने उक्त निर्णय को मान्यता दी है और इस क्षेत्र के लोग एक बड़ी समस्या से मुक्ति पा गये हैं।

इसी प्रकार की प्रथा हिमाचल प्रदेश के कुछ स्थानों में भी है। वहाँ पर चम्बा नामक पहाड़ी प्रदेश में स्थानीय तीस गाँवों के प्रबुद्ध वयोवृद्ध एकत्रित हुए। यहाँ भी लड़के वाला लड़की वाले को एक निश्चित धनराशि देता है, तभी विवाह तय हो पाते हैं।

उन सबने मिलकर तय किया कि कोई भी कन्या पक्ष वर पक्ष से इस प्रकार का ठहराव न करे। उससे क्या लाभ कि कन्या का पिता, वर पक्ष से रुपया माँगकर उसे धनाभाव की स्थिति में पहुँचा दे और उसकी अपनी कन्या ही उस घर में जाकर वह उत्पीड़न तथा अभाव सहन करे।"

वहाँ भी यह धनराशि बहुत घटाकर दो सौ रुपये रखी गई है। इस निर्णय से स्थानीय कई गाँव के लोग अब सरलतापूर्वक कन्या प्राप्त करने के लिये स्वतन्त्र हो गये हैं।

आवश्यकता है कि इसी प्रकार सामूहिक स्तर पर इन मूढ़ मान्यताओं तथा प्राणलेवा परम्पराओं का अन्त किया जाय तथा जीवन को सरल-सीधा और समस्याओं से रहित बनाया जाय।

हरिजनों ने शराब तथा जुआ खेलना छोड़ा

दोहद के हरिजनों ने सुधार की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया है। आमतौर से, शराब पीना तथा जुआ खेलना ये दो दुर्गुण यहाँ के हरिजनों में थे। एक दिन एक पीसा नामक युवक शराब पीकर घर आया। किसी की उधारी चुकनी थी, सो घरवाली से रुपये माँगने लगा। वह बेचारी कहाँ से देती ? घर का खर्च ही बड़ी मुश्किल से चला पाती थी। आधी आमदनी तो पीसा शराब में ही उड़ा देता था।

रुपयों की माँग पर पत्नी द्वारा मना किये जाने पर उसका गुस्सा एकदम बढ़ गया। शराब का नशा तो छा ही रहा था जिसने उसे बिल्कुल विवेकहीन बना रखा था। उस पर क्रोध ने वही काम किया जो घास की ढेरी में एक चिन्गारी कर सकती है। बोला "रुपये नहीं हैं तो कोई गहना दो निकाल कर।" ससुराल से मिले पत्नी के सब गहने पीसा बेच चुका था। अब उसकी पत्नी के पास मैके से मिले दो या तीन चाँदी के आभूषण ही शेष थे। मैके से प्राप्त वस्तुओं से कुछ अधिक मोह होता है। सो वह किसी प्रकार देने को तैयार न हुई।

अब तो पीसा का क्रोध सीमा पार हो गया। नशे के आवेश में उसने डण्डा उठाया और मारना शुरू किया। वह जोर-जोर से चिल्लाने लगी। आवाज सुनकर सब मुहल्ले वाले इकट्ठे हो गये, तब कहीं उस बेचारी के प्राण बचे। फिर भी चोट इतनी आ गई कि अस्पताल पहुँचानी पड़ी। हाथ की हड्डी टूट गई थी।

घटना की चर्चा बात करते सारी बिरादरी में फैल गई।

कुछ वयस्क युवक पढ़े-लिखे भी थे, उनके मुहल्ले में। जाति से हरिजन थे किन्तु शिक्षा ने उनके संस्कारों को बदल डाला था। उन सबने शाम को ही एक हरिजन सभा की। जाति के सभी प्रमुख व्यक्ति बुलाये गये। आज की घटना की चर्चा करते हुए वंशी नामक एक युवक ने कहा "यह हमारे लिये बड़ी शर्म की बात है कि जब सारा जमाना सुधर रहा है और हम वहीं के वहीं पड़े रहें। ऐसी सभी बातों और आदतों को हमें छोड़ देना चाहिए जो हमें मनुष्यता से नीचे गिराती हैं। शराब पीने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। जुये में अच्छे-अच्छे व्यक्ति घर की समस्त पूँजी दाँव पर लगा देते हैं और हार जाते हैं। अतः हमें आज से संकल्प लेना चाहिए कि इन दोनों ही बुराइयों को आगे से हाथ न लगायेंगे।"

सभा में स्थानीय पंच भी थे। सभी ने इस बात की गम्भीरता को समझा और सामूहिक रूप से यह शपथ ली कि आज से न कोई शराब पियेगा और न जुआ खेलेगा।

अकेले ही किसी बात का निर्णय किया जाय तो संकल्पबल के जरा भी क्षीण होते ही उसके टूटने का डर रहता है। किन्तु इस प्रकार समाज के सामने किये गये निर्णय अधिक निभते हैं। मन कमजोर भी पड़ता है तो डर रहता है कि "कोई देखेगा तो क्या कहेगा ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सर्वसम्मति से यह भी निर्णय किया गया कि "जो कोई इस प्रतिज्ञा को तोड़ेगा उसे बीस रुपये दण्डस्वरूप देने पड़ेंगे। यह दण्ड राशि पंचायत के पास जमा होती रहेगी और सार्वजनिक उपयोग में प्रयुक्त की जावेगी।"

उस दिन से कोई हरिजन शराब पीते नहीं देखा गया। जुये का जहाँ अड्डा था, वहाँ रोज शाम को सामूहिक हरि-कीर्तन की व्यवस्था करदी गयी। शराब का ठेका जिसके पास था उसे वह दुकान बन्द करके आजीविका का दूसरा साधन खोजना पड़ा।

सैकड़ों व्यक्तियों के जीवन में आनन्द तथा आत्म-सन्तोष की लहर आई। आये दिन के गृह-कलह का अन्त हुआ। विशेषतः स्त्रियों ने राहत की साँस ली।

उपजातियों की संकीर्ण परिधि टूटी

आन्ध्र प्रदेश के इलाकों में शकम्भरी तथा पशवाह ब्राह्मणों की संख्या बहुतायत से है। किन्तु उप जातिगत संकीर्णता के कारण आपस में रोटी तथा बेटी का व्यवहार नहीं था अभी तक।

अपनी-अपनी उपजातियों की संकीर्ण परिधि में उपयुक्त जोड़े मिलाना नितान्त कठिन होता है और जब कूपमण्डूक की भाँति लोग उतने ही सीमित क्षेत्र में भटकते हैं, तब लड़कों के भाव भी बढ़ जाते हैं।

इस कुप्रथा को मिटाया वहाँ के समझदार व्यक्तियों ने, विगत विजयादशमी पर वहाँ के प्रबुद्ध व्यक्तियों ने एक सामूहिक आयोजन किया और सबके समक्ष इस समस्या को रखा। परेशान तो सभी थे, किन्तु पहल करने का साहस किसी में न था। व्यक्तिगत रूप से सक्रिय कदम उठाने का साहस कोई करता भी तो सामाजिक बहिष्कार का भय न करने देता।

सभा में पंच लोग भी उपस्थित थे। सभी बुद्धिशील व्यक्तियों ने यह अनुभव किया तथा कहा कि—"जब तक हम दोनों आपस में रोटी तथा बेटी का व्यवहार प्रारम्भ न करेंगे—हमारी समस्यायें हल न होंगी। सामूहिक रूप से इस निर्णय को माना और अमल में लाया जाना चाहिए।" सभी ने बात को माना और पंचों द्वारा यह निर्णय किया गया कि आज से हम दोनों आपस में विवाह सम्बन्ध करेंगे तथा खाने-पीने का भी कोई परहेज न रहेगा।"

सुधार के जोश तथा प्रसन्नता में उसी समय वहाँ छह-सात सम्बन्ध पक्के भी किये गये तथा एक सामूहिक भोज भी किया गया, जिसमें कच्ची रसोई परोसी गई। सबने प्रेमपूर्वक उक्त निर्णय पर प्रसन्नता प्रकट करते हुये एक दूसरे को बधाई दी।

इसी प्रकार कायस्थ जाति भी एक जाति है। किन्तु इसके अन्तर्गत बारह उपजातियाँ हैं। पौराणिक कथा है कि श्रीचित्रगुप्तजी महाराज के दो रानियाँ थीं। एक से आठ तथा एक से चार पुत्र थे। उन्हीं से कायस्थ जाति का प्रारम्भ माना जाता है। उन बारह पुत्रों की संतानें ही बारह फिरकों में विभक्त हैं।

पर अभी तक ये बारहों भी, आपस में एक-दूसरे की कन्या लेना या देना उचित नहीं समझते। पूर्वी भारत में ये बन्धन कुछ अधिक ही दृढ़ हैं। अभी भी, किन्तु उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश के शिक्षित इलाकों में ये बन्धन अब कुछ ढीले पड़ने लगे हैं।

रूपसपुर क्षेत्र के कायस्थों ने सामूहिक रूप से एक वृहत् सभा का आयोजन करके इस दिशा में सक्रिय कदम उठाया है। उन्होंने स्थानीय तथा आस-पास के भी कई प्रबुद्ध व्यक्तियों को एकत्रित करके इस समस्या का समाधान किया है। वयोवृद्ध मुन्शी राधेलालजी ने कहा कि—"हमें यह विचार करना चाहिए कि अन्त में तो हमारे कुल संस्थापक एक ही थे। एक ही पिता की सन्तानों में कैसा भेदभाव ? विवाह सम्बन्धी अनेक समस्याओं का समाधान हम इस हल के द्वारा कर सकते हैं। हम बारह भाइयों को आज से परस्पर विवाह सम्बन्ध तथा खान-पान में एक हो जाना चाहिए।"

और तभी से वहाँ श्रीवास्तव, माथुर, भटनागर, सक्सेना, कुलश्रेष्ठ, निगम, अष्ठाना आदि सभी में परस्पर विवाह सम्बन्ध तय होने लगे हैं, जिससे योग्य वर तथा योग्य कन्याओं के चयन में काफी सुविधा हो गई है।

उपजातियों की संकीर्णता से एक कदम आगे बढ़ा

छमियापुर (हिमाचल प्रदेश) के कान्यकुब्ज ब्राह्मण लक्ष्मीप्रसादजी ने बीधे विश्वे की मर्यादा तोड़कर अपनी कन्या कु. उर्मिला का विवाह मध्यम वर्गीय तिवारी परिवार में कर दिया। लड़का एम. ए. पास कर छमियापुर के ही एक इन्टर कालेज में अभी रसायन शास्त्र का प्रवक्ता नियुक्त हुआ है।

जोड़ी मिलाने वाले श्री जगन्नाथप्रसाद जी ने बताया श्री लक्ष्मीप्रसाद ने विवाह बड़ी सोच-समझ के बाद तब किया जब २ वर्ष तक भटकने के बाद भी अपने से 'कुलीन' परिवार का कोई लड़का नहीं मिला। लड़की सयानी हो गई इस पर भी जब लड़का न मिला तो उन्होंने अपनी चिन्ता अपने मित्र श्री जगन्नाथजी से व्यक्त की। जगन्नाथजी ने समझाया इन उपजातियों के बन्धन में तुम्हारे जैसे शिक्षित और विचारशील लोग भी पड़े रहे तो देखना एक दिन वह स्थिति आयेगी जब लड़के हाथियों के भाव बिकेंगे ? परिवार और सम्बन्धियों की नाराजी को नाकारा बताते हुये आपने सुझाव दिया, थोड़ा साहस हो तो ब्राह्मण जाति का ही अच्छा खाता-पीता लड़का हमारी दृष्टि में है। लड़की बी. ए. है तो लड़का एम. ए. चाहो तो इसे ही उपजाति समझकर लड़के को बड़ा मान लो। बात लक्ष्मीप्रसाद के हृदय में बैठ गई। बैठ क्यों न जाती वे 'कुलीन' लोगों का दम्भ और इस कुप्रथा के कारण हिन्दू जाति की मुसीबतों के भुक्तभोगी भी तो थे। उन्होंने यह बात मान ली।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्री जगन्नाथजी इस पर श्री लक्ष्मीप्रसाद को अपने साथ लड़के के पिता के पास ले गये। श्री विद्याचरणजी तिवारी भी उपजातियों के बन्धनों को अनावश्यक समझते हैं। उनकी एक ही इच्छा थी घर पढ़ी-लिखी बहू आये सो मिल गई। उन्होंने बात पक्की कर ली। विवाह सानन्द सम्पन्न हुआ। न्योते में लक्ष्मीप्रसादजी के कुछ रूढ़िवादी सम्बन्धी ही नहीं आये पर अब सुनने में आया है, अपनी मूर्खता का वे स्वयं दुःख कर रहे हैं।

ऐसा ही एक विवाह भीष्मपुर जिला दारंग में सम्पन्न हुआ। भरौला निवासी श्री अमरचन्द्र श्रीवास्तव को अपनी पुत्री सरस्वती के लिए अपने की कुल-गोत्र के लड़के की तलाश थी, उसके लिये उन्होंने उत्तर प्रदेश के उत्तरी अंचल के जिलों तक का दौरा किया। लड़की पढ़ी-लिखी होने के कारण वे अच्छे घर की तलाश में थे, जबकि साधारण परिवारों में ही दहेज की इतनी भयंकर माँग थी कि उसे पूरा कर सकना उनके लिये कदापि सम्भव नहीं था। कानपुर में किसी आफिस में काम कर रहे एक साधारण क्लर्क के पिता ने भी जब उनसे १० हजार रुपये की माँग की तब तो उनकी रही सही हिम्मत भी जाती रही।

श्रीवास्तवजी एक प्रायवेट फर्म के मुनीम हैं, आपको जो वेतन मिलता है, उसमें से अधिकांश सम्पत्ति बच्चों की उच्च शिक्षा और उनका बौद्धिक स्तर ऊँचा उठाने में वे लगाते रहे हैं। लड़की के विवाह में दहेज की समस्या का उन्हें इतना कटु अनुभव होता तो सम्भव था कुछ बचाकर भी रखते पर भारतवर्ष में मध्यम वर्ग के लोग अपना पेट काटकर ही पैसा इकट्ठा कर सकते हैं। उनके लिए पैसा जोड़ना सम्भव न हुआ। इधर कोई लड़के वाला बिना दहेज शादी के लिये तैयार न हो रहा था। उन्होंने स्वयं अनुभव किया कि लड़के वाले अधिक दहेज पाने में उपजातियों की संकीर्णता के कारण सफल हो जाते हैं। इस चिंतन ने उन्हें एक नई आशा दी, हिम्मत दी और दी शक्ति भारतीय जीवन में व्याप्त इस रूढ़ि को तोड़ डालने की।

भीष्मपुर के रामनाथ भटनागर को वे पहले से ही जानते हैं। इनका लड़का प्रमोद इस वर्ष बी. ए. फाइनल में उत्तीर्ण हुआ है। लड़का स्वस्थ और बड़ा परिश्रमी है। श्रीवास्तवजी ने रामनाथ से सम्बन्ध तय कर लिया। प्रमोद और सरस्वती का विवाह वैदिक रीति से सानन्द सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर उनके अनेक मित्रों ने उपस्थित होकर वर-वधू को आशीर्वाद देने के साथ ही श्रीवास्तवजी की हिम्मत को भी सराहा। विवाह मंडप में हो रही चर्चा से ऐसा आभास होता था कि इस घटना का प्रभाव उपस्थित सभी शिक्षित व्यक्तियों पर पड़ा है। कायस्थ कायस्थ के घर शादी करे, उसमें ऊँच-नीच का भेद क्यों हो इस तरह की चर्चायें सुनने को मिलीं।

शाख—रतनपुर के ठाकुर नेत्रपालसिंह भदौरिया ने अपनी पुत्री शकुन्तला का विवाह राजपूत जाति के ही कानपुर निवासी श्री बजरंगसिंह गौर के पुत्र बलवीरसिंह गौर के साथ सम्पन्न कर दो वर्ष पूर्व ली अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी।

कुँ. नेत्रपालसिंह भारतीय समाज में व्याप्त विवाह सम्बन्धी कुरीतियों के कट्टर विरोधी हैं। उन्होंने अपनी पहचान के कई मित्रों की लड़कियों के विवाह बिना दहेज कराये हैं। दो वर्ष पूर्व इसी सम्बन्ध में हुए एक वाद-विवाद में उन्होंने अपनी प्रगतिशीलता का परिचय देते हुये प्रतिज्ञा की थी कि वे अपनी सब कन्याओं का विवाह उपजातियों का बन्धन तोड़कर करेंगे। पहली प्रतिज्ञा आपने शकुन्तला के विवाह में पूरी की। लड़का मिलिटरी में कैप्टन है यह लोग अच्छे पैसे वाले हैं चाहते तो दहेज के रूप में लम्बी रकम वसूल करते पर जब श्री नेत्रपाल ने अपनी प्रगतिशीलता का परिचय दिया तो उन्होंने भी पीछे हटना ठीक न समझा। उन्होंने विवाह में एक भी पैसे की माँग नहीं की उल्टे लड़की की गोद करते समय उन्होंने अपनी ओर से लड़की को ५००) के सेविंग सर्टीफिकेट भेंट किये। विवाह के समय उठ सकने वाले बवेले को भदौरियाजी ने पहले ही ताड़ लिया था इसलिये सम्बन्धियों को निमंत्रण भेजते समय आपने स्पष्ट कर दिया था, जिन्हें ऐसे प्रगतिशील सम्बन्ध का विरोध हो वे विवाह में न सम्मिलित हों। उनके सामने ऐसी कोई समस्या आई नहीं। महिलाओं की ओर से ही छुट-पुट कानाफूसी हुई, जो लड़की के सौभाग्य को देखते हुए स्वतः शान्त हो गई।

युग निर्माण शाखा तनमाड़ (बिहार) के सदस्य श्री विष्णु प्रकाश हरि ने उपजाति का बन्धन तोड़कर अपनी कन्या विभावरी का विवाह मोहनी बाजार के श्री चक्रपाणि शर्मा के मँझले पुत्र दिनेश शर्मा के साथ कर दिया। यह निश्चय उन्होंने प्रगतिशील विवाहों की आवश्यकता अनुभव करके किया। श्री हरिजी का विचार है यदि लोग उपजातियों के बन्धन तोड़ सकें तो अच्छे वर ढूँढ़ने की समस्या को आसानी से हल किया जा सकता है।

ओमर और अग्रवाल का भेदभाव समाप्त कर कटिहारी (अल्मोड़ा) के श्री रामरतन ने अपनी पुत्री प्रभा का विवाह ओमर वैश्य श्री गुलाबचन्द्रजी के पुत्र रमेशचन्द्रजी के साथ कर दिया। दोनों ओर से एकत्रित मित्रों, सम्बन्धियों ने वर-वधू को आशीर्वाद दिया और मालायें पहनाईं। श्री रामरतनजी ने ऐसा दहेज के भय से नहीं वरन् भारतीय समाज में व्याप्त उपजाति की बुराई को तोड़ने के संकल्प के रूप में किया, उन्होंने कहा यदि वैश्य जाति में अच्छे लड़के मिल सकते हैं तो उपजातियों के चक्कर में पड़कर अपनी पुत्रियों को खराब लड़कों के गले क्यों बाँधे ?

यह समाचार हैं थोड़े-से पर उस बीज की तरह हैं जो एक दिन पृथ्वी से अन्न-जल लेकर हजारों लाखों बीजों में बदल जाते हैं। शिक्षित समाज ने इन विवाहों को जो सम्मान और सराहना दी है, उससे लगता है अगले दिनों भारी संख्या में विवाह उपजातियों के दायरे तोड़कर होंगे, इसमें जहाँ लड़के पाने की कठिनाइयाँ, दहेज आदि चक्कर छूटेंगे वहाँ हिन्दू जाति का संगठन भी मजबूत ही बनेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रत्येक देशभक्त भारतीय का कर्त्तव्य है कि इस प्रकार के होने वाले विवाहों को ही प्रोत्साहन देकर नवयुवकों का साहस बढ़ायें, ताकि वे इस प्रकार के विवाह कर देश और जाति का हित साधन कर सकने में समर्थ हों।

हरिजन बच्चों के लिये पाठशाला की स्थापना

कुछ दिन पूर्व कुम्हेर (राजस्थान) क्षेत्र में हुई मेहतरों की सभा में बच्चों के जिस स्कूल की स्थापना का प्रस्ताव पास किया गया था, उसे अब क्रियात्मक रूप दे दिया गया है।

निर्णय के अनुसार क्षेत्र के सभी मेहतरों ने धीरे-धीरे कर अपने-अपने हिस्से के पाँच-पाँच रुपये जमा कर दिये हैं। इस संचय में लगभग पाँच सौ रुपया एकत्र हो गया है। किन्तु पाठशाला के लिए एक छोटा-सा भवन बनाने के खर्च को देखते हुए यह धनराशि बहुत कम है। इसलिये यह तय किया गया कि जब तक भवन बनाने की स्थिति उपलब्ध न हो तब तक क्षेत्र में पड़े खंडहर को साफ कर छप्परों से छाया करके बच्चों को बिठलाना शुरू कर दिया जाये। यह मत सबको पसन्द आया और उस खंडहरे की सफाई का काम शुरू कर दिया गया।

समाज में कुछ मनुष्यों की अजीब मनोवृत्ति होती है। स्कूल के लिए मनोनीत खंडहरे में अभी तक क्षेत्र के स्त्री-पुरुष शौच जाया करते थे और गधे तथा रोगी कुत्ते विश्राम किया करते थे, किन्तु अब तक न तो उसका कोई वारिस दिखलाई दिया था और न मालिक। किन्तु जब उसमें माता सरस्वती के पवित्र मन्दिर की योजना प्रारम्भ की गई तो अनेक लोग आगे आकर उस पर अपना अधिकार घोषित करने लगे। विवाद बढ़ जाने के डर से सफाई का काम रोक दिया गया।

कार्यकर्त्ताओं ने सभी नवजात हकदारों को बुलाया और उनको सद्बुद्धि लाने का प्रयत्न किया। किन्तु समाज में सत्कर्मों के विरोधी जल्दी कब समझते हैं। वे समझते तो हैं किन्तु कार्यकर्त्ताओं के धैर्य तथा प्रयत्नों की परीक्षा हो जाने के बाद। चार-छः बार उन हकदारों को जमा किया गया और समझाया गया कि आप लोग यह समझ लें कि हमने अपना यह खंडहरा बच्चों की पाठशाला को दान ही कर दिया। आपका भी नाम होगा और यह अपवित्र तथा गन्दा स्थान एक सुन्दर पाठशाला में बदल जायगा, जिससे क्षेत्र की एक स्थायी गन्दगी दूर हो जायेगी और शोभा बढ़ जायेगी। इस पर वे सब लिखकर दे देने के लिए कहने लगे।

किन्तु लिखकर तो तब दिया जाये जब यह ठीक-ठीक पता चल जाये कि आखिर यह ऊबड़-खाबड़ सार्वजनिक शौचालय है किसका ? निदान उनसे कह दिया गया कि जो इसका प्रमाण प्रस्तुत करेगा उसको दान की रसीद दे दी जायेगी। अब तो सभी हकदार आपस में झगड़ने और मुकदमा करने को तैयार हो गये। एक बड़ी समस्या खड़ी हो गई। अच्छाई में बुराई पैदा होने लगी। बेचारे कार्यकर्त्ता बड़े चिन्तित हो उठे।

जब किसी प्रकार भी वे लोग साधे न सधे तो क्षेत्र की एक सार्वजनिक सभा बुलाई गई और उसमें उस विवाद को रखा गया। क्षेत्र के वयोवृद्धों से उस खंडहरे के विषय में पूछा गया। उन्होंने अपनी याददाश्तों का सिजरा खोला और दूर अतीत से खोज करते-करते वर्तमान तक आये और बताया कि यह खंडहर श्री पीतम पासी की विधवा का है, जिसको खत्म हुए लगभग छह साल हो गये हैं और अब उसका कोई वारिस नहीं है। वयोवृद्धों की इस खोज ने उन झूठे हकदारों के मुँह फक्क कर दिये और उन्होंने न केवल अपने स्वार्थ के लिए क्षमा ही माँगी बल्कि इक्कीस-इक्कीस रुपये स्कूल को दान भी किये।

सफाई का काम फिर शुरू हो गया और जल्दी ही सारी जगह चौरस होकर उस पर छप्पर पड़ गये। मेहतरों के बच्चों की पाठशाला प्रारम्भ कर दी गई, जिसमें पढ़ाने के श्री जग्गूसिंह नाम के एक प्रगतिशील व्यक्ति ने अवैतनिक सेवाएँ समर्पित कर दीं।

कार्यकर्त्ताओं में यह बात विचाराधीन है कि चल जाने पर पाठशाला का नाम पीतम पासी के नाम पर ही क्यों न रखा जाय ?

सम्बन्धों का आधार जाति नहीं मनुष्यता

मनोहारी नैसर्गिक सुषमा भरे मलाबार तट के हरितांचल पर एकाएक रक्त के छींटे उभर आये। नारियल, काली मिर्च और काजू उगाने वाले इस प्रदेश की सुख शान्ति को यकायक ग्रहण लग गया। मालिप्पाओं (मुसलमानों) के सशस्त्र विद्रोह के कारण मलाबारवासियों के प्राणों पर आ बनी। इधर धर्मावलम्बियों के रक्त के प्यासे मालिप्पाओं के संगठित दल जिस ओर निकल जाते उसी ओर कहर ढा देते।

सागर तट निकट बसे एक नन्हे से गाँव में भी यह दावाग्नि फैली तो जिसे जिधर राह मिली वह उधर ही भाग चला। जब प्राणों पर आ बनी तो घरबार की चिन्ता कौन करे ? ग्राम के सम्भ्रान्त निम्बूदरीपाद परिवार की कन्या सावित्री संग्रहिणी रोग से पीड़ित थी। रोग ने उसकी सारी शक्ति निचोड़ ली थी। वह चलने-फिरने में असमर्थ थी। सारा गाँव खाली हो गया था तो उसके माता-पिता कब तक टिकते ? ममता हार गयी और प्राणों का मोह जीत गया। वे लोग पुत्री को अपने भाग्य पर छोड़ भाग निकले।

ग्रामवासी हरिजन युवक चात्तन सबसे बाद में गाँव से निकला। मालिप्पाओं का उसे उतना भय नहीं था जितना अन्य वर्ण के लोगों से था। उसे हिन्दू बने रहने व मुसलमान बन जाने में कोई विशेष हानि लाभ नहीं दीखता था। यहाँ भी उसे कौन-सा सम्मान मिल रहा था। जी तोड़कर सेवा करने पर भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपमान व तिरस्कार ही तो मिलता था उसे, फिर भी अपना धर्म है, संस्कृति है उसे कैसे छोड़ दे यही आन्तरिक भाव उसे ग्राम छोड़ने को विवश कर रहा था।

जब वह ग्राम पुरोहित निम्बूदरीपाद परिवार के पैतृक घर के सामने से गुजरा तो उसे भीतर से क्षीण सी कराह ध्वनि आती सुनाई दी। पहले तो वह इसे अपना भ्रम ही समझा किन्तु कान लगाकर सुना तो उसे यह भ्रम नहीं वास्तविकता लगी। थोड़ी देर वह किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा रहा। फिर कुछ साहस कर डरता-डरता भीतर गया। एक हरिजन भला ब्राह्मण के घर में प्रवेश कैसे कर सकता था किन्तु भीतर से जो करुण पुकार आ रही थी उसे भी वह कैसे अनसुनी कर सकता था ?

चात्तन ने देखा क्षीणकाय सावित्री चारपाई पर लेटी कराह रही थी। उसने पूछा—"तुम्हारे माता-पिता तुम्हें अपने साथ नहीं ले गये।"

"कैसे ले जाते मैं तो चल-फिर भी नहीं सकती। यह रोग तो मेरा प्राण लेकर ही छूटेगा।"

चात्तन को इस रोगिणी की यह दशा देखकर रोना आ गया। उसने सोचा इसे ऐसी स्थिति में छोड़कर जाना मनुष्यता नहीं होगी। उसने सावित्री से पूछा—"मैं तुम्हें अपनी झोंपड़ी में ले जाकर तुम्हारी सेवा-सुश्रूषा कर सकता हूँ यदि तुम चाहो तो।" सावित्री ने स्वीकृति दे दी। माँ बाप तो उसे छोड़ ही गये थे अब धर्म भ्रष्ट हो भी जाय तो क्या ?

चात्तन उसे अपनी झोंपड़ी में ले आया। मालिप्पाओं के आक्रमण की बात ही वह भूल गया तथा दत्तचित्त हो रुग्णा सावित्री की सेवा में लग गया। वह कुछ जड़ी-बूटियाँ भी जानता था। उनके प्रयोग से सावित्री को स्वास्थ्य लाभ होने लगा। कुछ ही दिनों की सेवा-सुश्रूषा से वह स्वस्थ हो गयी। उसने अपने प्राणरक्षक अछूत युवक को अपना मुँह बोला भाई बना लिया।

जब सावित्री के माता-पिता घर लौटे तो अपनी पुत्री को स्वस्थ सानन्द देख फूले न समाये। सावित्री को ज्ञात हो चुका था कि मानवीय स्नेह-बन्धन रक्त सम्बन्धों से भी उच्च होते हैं। अछूत युवक चात्तन ने इस विषम समय में अपने प्राणों की पर्वाह नहीं करते हुए उनकी पुत्री की सेवा-सुश्रूषा की थी जबकि वे अपने प्राणों का मोह करके उसे छोड़कर भाग खड़े हुए थे। अब वे किस हृदय से उसे नीच या अछूत समझते ? उन्हें सावित्री के मुँह बोले भाई को पुत्रवत् स्नेह देना ही पड़ा।

थोड़ा इन छोटे भाइयों से भी सीखें

"झाबुआ (म. प्र.) जिले के पखलीआ नामक ग्राम में खिमजी नामक एक भील ने अपनी दो बहिनों का विवाह दहेज-प्रथा तोड़कर किया। उस विवाह में शराब व माँस का भी बहिष्कार किया गया।"

थोड़ा रूपान्तर हुआ तो क्या ? बुराइयों का प्रतिफल एक है—व्यक्तिगत कष्ट और सामाजिक समस्याओं की अभिवृद्धि। उच्च वर्ण के लोगों में लड़के वाले दहेज लेते हैं, लम्बी बारात ले जाते हैं, नेग-निष्ठौन की शर्त रखते हैं, तो बेचारे लड़की वाले का आर्थिक कचूमर निकल जाता है। खाती-पीती स्थिति के लोग कर्जदार हो जाते हैं फिर कई वर्षों में यह घाव भरता है और कदाचित् कई लड़कियाँ हुईं तो वह बच्चियों के विवाह की चिन्ता में ही जीता और उसी में मर जाता है।

वनवासी भीलों में भी यह कुप्रथा है। अन्तर केवल इतना है कि उनमें लड़के वालों की अपेक्षा लड़की वाले को दहेज के रूप में लगभग एक हजार रुपया देना पड़ता है। बारात भी बड़ी ले जाने की प्रथा है और उसमें जमकर शराब और माँस की दावत दी जाती है।

भीलों के पास साधारण कृषि और शिकार या जंगली मजदूरी के अतिरिक्त कोई बड़े उद्योग नहीं होते। अधिकांश निर्धन होते हैं, सो भी सामाजिक बुराइयों से ग्रस्त। इस पर भी लड़के के विवाह के प्रबन्ध के लिए एक हजार की लम्बी रकम चुकाना कितना कठिन होता है ?

यह बात हमारी तरह सभी भील जानते हैं पर रूढ़िवादिता परम्पराओं को कौन तोड़े ? कौन साहस करके आगे बढ़े ? यह टेड़ी समस्या होती है। खिमजी नामक भील ने—पासा जिसके पक्ष में ही था—विचार किया यदि इस कुप्रथा का अन्त हो जाये तो हम गरीबों की कितनी मुसीबतें बचें ? बताते हैं घर वाले उसको यह बात मानने के लिए तैयार न थे। सब कहते थे कि हमने अपने विवाहों में दिए हैं तो दोनों लड़कियों के विवाह के दो हजार रुपये क्यों छोड़ें ?

"पर बात रुपयों की नहीं, मनुष्यता की है। अपने जाति-भाइयों के वास्तविक स्वार्थ की है—आज लेकर कल देना भी तो पड़ेगा। जो मिलता है सब शराब और माँसबाजी में चला जाता है। लेने और देने वाले दोनों के हाथ कुछ नहीं लगता, यों ही हवा में उड़ जाता है। एक रात के इस कष्टकारक जलसे का अन्त कर दें तो वही पैसा हमारे दूसरे कामों में आ सकता है। उससे अच्छे जानवर खरीदकर कृषि की उपज बढ़ा सकते हैं। अपने भाइयों के लिए शिक्षा का प्रबन्ध कर सकते हैं।" खिमजी ने कहा।

जिन लोगों को यह प्रतीक्षा थी कि इस बार शराब और माँस की लम्बी दावत उड़ेगी, उन लोगों ने तो विरोध किया पर अधिकांश ने खिमजी के कथन को उचित ठहराया और समर्थन देने का निश्चय किया। खिमजी ने अपनी दोनों बहिनों की शादी कर डाली और एक भी रुपया दहेज में नहीं लिया तो बारात वालों का भी कोई रौब नहीं रहा जैसा कि हमारे यहाँ दहेज लेकर भारी जेबर देना पड़ता है, उसमें लड़की वालों का रौब रहता है। पर खिमजी ने 'न लिया न दिया' वाली नीति रखी और उसने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

थोड़े-से भीलों की बारात का सादे भोजन से स्वागत किया। शराब और माँस का बहिष्कार किया।

बताते हैं प्राचीन पद्धति से जो शादियाँ होती थीं। उनके कारण भील स्त्रियाँ परिवारों में खरीदी हुई सम्पत्ति की तरह ले जाई जाती थीं, उनके साथ दासियों जैसा व्यवहार होता था। पर खिमजी की दोनों बहिनों के साथ उनकी ससुराल वालों ने उदारता दिखलाई।

गिरी स्थिति के माने जाने वाले भीलों में इतनी विचारशीलता हो सकती है और वे उसके लाभ उठा सकते हैं तो सभ्य जातियाँ पुरानी अन्ध-परम्पराओं से चिपकी रहें, यह शोभा नहीं देता और नहीं तो इन भीलों का उदाहरण लेकर दहेज-प्रथा का अन्त करना ही चाहिए। विवाह की कुप्रथाओं को तोड़ना ही चाहिए।

उनकी पीड़ा को समझें और मानवीय दृष्टिकोण अपनायें

अस्पृश्यता निवारण के लिए हमारे देश में करीब पचास वर्षों से काम किया जा रहा है। उन प्रयासों के सत्परिणाम भी सामने आये हैं पर उन परिणामों को सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता क्योंकि जनसामान्य का दृष्टिकोण बदलने के लिए तो तमाम प्रयास हुए, लोगों पर उनका प्रभाव भी हुआ पर समस्या की जड़ में जो इशारे किये गये उस ओर से आदमी आँखें ही मूँदे रहा। गाँधी जी ने अस्पृश्यता का रचनात्मक समाधान सुझाते हुए कभी कहा था कि—हम अपनी गन्दगी अपने आप हटाने लगें तो उसे हटाने के लिए दूसरे वर्ग की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। जैसी कि आज पड़ती है, समाज में एक वर्ग है जिसका काम ही यही है कि वह दूसरे लोगों का मलमूत्र उठाये, पखाना साफ करे और गाँव नगर में सफाई रखे।

व्यवस्था का यह रूप तभी बनने लगा, जब यह समझा जाना आरम्भ हुआ कि गन्दगी हटाना घृणित कार्य है और यह काम तथाकथित सभ्य लोगों द्वारा नहीं किया जा सकता। इसी मान्यता के बाद हम लोग यह सोचने लगे कि जिस वर्ग को हम अपने से नीचा समझते हैं उसे यह घृणित कार्य सौंप दिया जाय और शताब्दियों के बाद आज भी वह व्यवस्था ज्यों की त्यों बनी हुई है। यह व्यवस्था ही एक समस्या बन गयी है क्योंकि आम आदमी सफाई मजदूरों को हीन दृष्टि से देखता है, उसे छूने में भी पाप समझता है, उसके हाथ का पानी पीने के स्थान पर प्यासे मर जाना बेहतर मानता है। यद्यपि पचास वर्ष पूर्व की स्थिति अब तो नहीं रही है फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह समस्या हल हो गयी है।

होना तो यह चाहिए था कि वह समुदाय जो मैला हटाने का कार्य करता है, हमारे लिए सम्मान और श्रद्धा का पात्र बनता। जिस काम को करने में आम आदमी स्वयं को असमर्थ पाता है, वह काम करने वाला विशिष्ट व्यक्ति समझा जाता है। लेखक, साहित्यकार, नेता, विद्वान, सन्त, महात्मा और विचारक जिनकी क्षमतायें दिशा विशेष में संलग्न होती हैं लोग उसे बड़ा और आदरणीय समझते हैं। लेखक और साहित्यकार साहित्य के क्षेत्र में कषायों का निवारण करते हैं, राजनेता राज्य व्यवस्था और शासन में शुद्धि तथा सुव्यवस्था रखने का दायित्व होने के कारण लोक श्रद्धा के पात्र होते हैं। इसी प्रकार विद्वान, सन्त महात्मा और विचारक शिक्षा, विद्या, आध्यात्मिक और धार्मिक तथा वैचारिक क्षेत्र में शुद्धि का वातावरण बनाये रखने के लिए जनता के श्रद्धास्पद बनते हैं। यह बात और है कि वे लोग अपना दायित्व निभायें या न निभायें। पर जनसाधारण इन बड़े दायित्वों के कारण ही उनका आदर करता है और दायित्व है अपने-अपने क्षेत्रों में सुरुचि, शुचिता तथा सुन्दरता को बनाये रखने का। फिर क्या कारण है कि समाज की स्थूल गन्दगी हटाने और सफाई रखने वाला वर्ग उपेक्षा और अनादर सहन करे।

न्याय दृष्टि तो यही कहती है कि उनका सम्मान होना चाहिए पर लोगों में यह जड़ मान्यता इतनी घर कर गयी है कि कहना पड़ता है—समाज के विशिष्ट वर्ग द्वारा सिर पर मानव मल ढोने की अमानवीय तथा अस्वास्थ्य कर परम्परा आज भी विद्यमान है और यह सभ्य समाज के लिए कलंक तथा लज्जा का ही विषय है।

शताब्दियों से पाल-पोस रही इस हीन मान्यता का संशोधन कुछ वर्षों में असम्भव है और सन्दिग्ध भी कि जनमानस इस संशोधन के लिए राजी होगा भी अथवा नहीं। इसी कारण महात्मा गान्धी ने भंगी मुक्त समाज का विचार भारतीय जनता के सामने रखा और कहा—जिस समाज में भंगी का अलग पेशा माना गया है, वहाँ जरूर कोई बड़ा दोष बैठ गया है। इस जरूरी और तन्दुरस्ती बढ़ाने वाले काम को सबसे नीच काम पहले-पहल किसने माना ? इसका इतिहास हमारे पास नहीं है। जिसने भी माना उसने तो हम पर उपकार नहीं ही किया। हम सब भंगी हैं, यह भावना हमारे मनमें बचपन से ही जम जानी चाहिए और उसका सबसे आसान तरीका यह है कि जो समझ गये हैं, वे मेहनत का काम अपना पाखाना साफ करने आरम्भ करें। जो समझ-बूझकर और ज्ञानपूर्वक यह करेगा, वह उसी क्षण से धर्म को निराले ढंग से और सही तरीके से समझने लगेगा।

गन्दगी साफ करने वालों को न छूना प्रारम्भ में स्वच्छता के नियमों में रहा होगा। जैसे गन्दगी को छुआ न जाय, गन्दी वस्तुओं को न छुआ जाय। उसी प्रकार यह नियम भी बना कि व्यक्ति जब तक गन्दा रहे उसे भी छूआ न जाय। इस नियम के अनुसार तो सफाई करने वाला प्रत्येक व्यक्ति तब तक अस्पर्श्य है, जब तक कि वह स्वच्छ न हो ले। अपने बच्चे की गन्दगी साफ करने वाली माँ भी तब तक किसी को नहीं छू लेती जब तक वह हाथ में लगी गन्दगी साफ न कर ले। रजस्वला स्त्री भी घर का कोई सदस्य तो क्या कोई वस्तु तक नहीं छूती जब तक कि वह शुद्ध नहीं हो जाती। यहाँ तक तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उचित कहा जा सकता है कि गन्दगी से सने हुए व्यक्ति कीई छूए न। पर हमारे भीतर वर्ग विशेष के प्रति विद्वेष की जो भावना बनी उसने स्वच्छता के इस नियम को रूढ़ बना दिया और उस व्यक्ति के तमाम जीवन को ही अस्पृश्य बनाकर छोड़ा।

वर्ग विशेष के प्रति विद्वेष की भावना क्यों बनी ? कहा जाता है कि आर्य सभ्यता ने अपनी प्रगति यात्रा के दौरान उत्पाती लोगों को किसी कारण से यह हीन समझा जाने वाला काम सौंपा। तब तो भंगी मुक्त समाज की विचारधारा और समाज व्यवस्था और भी अनिवार्य बन जाती है। महात्मा गान्धी ने इस सन्दर्भ में कहा है—यदि कहा जाय कि आर्यों ने इस वर्ग के पूर्वजों को उनके अपराधों के कारण दण्ड के रूप में समाज में बहिष्कृत कर दिया था। तो उनके पूर्वजों को किसी भी कारण से समाज से बहिष्कृत कर दिया गया हो परन्तु वह दण्ड उनकी सन्तान क्यों सहे ? दुनिया का कोई भी कानून किसी भी व्यक्ति को दिये गये दण्ड को उसकी सन्तान पर लागू नहीं करता। यहाँ तक कि परमात्मा का कानून भी। वह भी एक-एक व्यक्ति को अपने-अपने कर्म फलों का परिणाम देता है तो प्राचीनकाल में जिस वर्ग को इस प्रकार दण्डित किया गया उसकी सन्तानें हजारों वर्ष बाद भी उस दण्ड को क्यों सहे ?

इस प्रकार भंगी मुक्त समाज आज के समय की विशेष और अनिवार्य आवश्यकता है। भारत सरकार के गृह विभाग ने प्रो. एन. आर. मलकानी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया था। जिसने अपनी रिपोर्ट और सुझाव सन् १९६० में दिये थे। समिति ने भंगियों के कार्य को अमानवीय बताते हुए उसे दो चरणों में समाप्त करने की सलाह दी थी। पहला चरण था मैला साफ करने वाले कर्मचारियों को सफाई के समय जो कष्ट होता है उसको समाप्त किया जाय। इसके अन्तर्गत उन्हें काम करने के लिए झाड़ू, बाल्टी, पीपा, रबड़ के जूते और गाड़ी देने की सिफारिश की गयी थी।

उनके कष्टों का विवरण जानकर भी सहृदय व्यक्तियों का हृदय व्यथित हो उठता है। जरा कल्पना कीजिए कि सभ्य समाज के लोग जिसे इतना गन्दा मानें कि उस पर पाँव पड़ जाने से भी पाँव को दस बार धोयें, उसे एक वर्ग अपने सिर पर उठाकर बड़ी दूर तक फेंकने जाय और आदमी भी उसे हिकारत की दृष्टि से देखें। एक अपराधी, खूनी, चोर, डकैत और बदमाश व्यक्ति से डरकर लोग उसकी मित्रता चाहें अपने सम्बन्ध अच्छे रखने की कोशिश करें और इन सेवा कर्मचारियों को नफरत से देखें। उनकी छाया से भी अपने को बचायें और उन्हें छूना भी पाप समझे। उस वर्ग को कितना कष्ट होता होगा ?

दूसरों का मैला हटाने की सेवा का पहला पुरस्कार नफरत और फिर आर्थिक दृष्टि से भी इतनी दुर्बलता कि मजदूरी के रूप में उसे जो कुछ मिलता है, वह दो वक्त पेट भरने के लिए भी अपर्याप्त रहे। अप्रैल ७६ में एकत्रित किये गये एक विवरण में एक पत्र ने लिखा था—"समाज का सबसे घृणित काम करने के बाद भी उन्हें डेढ़ सौ से सवा दो सौ का ही मासिक वेतन मिलता है। नगरपालिकाओं और अधिसूचित क्षेत्रीय समितियों के अधीन काम कर रहे भंगियों की स्थिति तो और दयनीय है। वेतन के मामले में एकरूपता नहीं बरती जाती है। पटना नगर निगम में ही दैनिक मजदूरी पर काम कर रहे सफाई कर्मचारियों को चार रुपया रोज दिया जाता है। कभी दर्रा, गेहूँ देकर भी काम लिया जाता है और उनकी इन कठिनाइयों की ओर ध्यान न देकर उन्हें कुदृष्टि, घृणा और प्रताड़ना का शिकार बनाया जाता है।

मैला ढोने की कष्ट मुक्ति के बाद भंगी मुक्त समाज की रचनात्मक का अगला चरण है कार्य मुक्ति। यह अंधिक प्रभावशाली और रचानात्मक विकल्प है। इसके लिए सुलभ शौचालयों का विचार भी दिया गया है। बिहार सरकार ने समूचे राज्य में भंगी मुक्त सुलभ शौचालय बनाकर भंगियों को इस पेशे से छुटकारा दिलाने का निर्णय लिया है। एक बहुत बड़ा वर्ग मैला सफाई के काम में लगा हुआ है। यदि हर स्थान पर इस तरह के शौचालय बनाये जा सकें, जिसमें अलग से सफाई के कार्य को नियमित रूप से सम्पादित न करना पड़े तो बहुत बड़ी शक्ति और श्रम अन्य उपयोगी कार्यों में लग सकता है।

अभी प्रायः यह होता है कि मैला या तो नदियों में बहा दिया जाता है अथवा गाँव से बाहर कूड़े के ढेर पर फेंक दिया जाता है। यह गन्दगी वातावरण को विषाक्त ही बनाती है। यदि आधुनिक साधनों का उपयोग कर इस तरह के शौचालय बनाये जा सकें, जिनसे कि मैला खाद के रूप में प्रयुक्त किया जा सके तो बढ़िया खाद तैयार हो सकता है।

कार्य मुक्ति का चरण पूरा करने के लिए जगह-जगह सुलभ शौचालय एवं स्नान घर बनाये जा सकते हैं। उठाऊ पाखाने न बनवाये जायँ और जिनके पास 'सैप्टिक' या 'सेनेट्री' लैट्रिन की व्यवस्था के लिए पर्याप्त साधन न हों वे भी उपलब्ध साधनों से इस तरह के पाखाने तैयार कर सकते हैं, जो उठाऊ पाखानों से सर्वथा भिन्न ढंग के हों।

मैले की समस्या का समाधान तो यह हुआ। हमें अपनी इस मान्यता में संशोधन करना पड़ेगा कि गन्दगी हटाना बुरा कार्य है। साधक जिस प्रकार अपनी साधना का आरम्भ अपने आन्तरिक कषाय-कलाषों को दूर हटाने से करता है उसी प्रकार सामाजिकता का भी तकाजा है कि हम अपनी गन्दगी हटाने में हिचकिचायें नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एकता-समता की ओर

ऐक्य-भावना से ही कल्याण संभव है

वर्तमान समय में मानव-जीवन में जो दुरूहता, कठिनाइयाँ, आपत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं और उसके परिणामस्वरूप जगह-जगह कलह, लड़ाई-झगड़े, संघर्ष, अशान्ति का प्रसार होता दिखलाई पड़ रहा है, उसका एक बहुत बड़ा कारण समन्वय का अभाव है। लोगों में समझौते की—दूसरे के दृष्टिबिन्दु को समझकर उसे उचित सम्मान देने की प्रवृत्ति बहुत कम दिखाई पड़ती है। इसके विपरीत वे अहंकार, स्वार्थ, संकीर्णता अथवा दुराग्रहवश अपनी ही बात को श्रेष्ठ, यथार्थ और सत्य समझने की, सिद्ध करने की चेष्टा करते रहते हैं।

यही कारण है कि आजकल व्यक्तियों में इतने मतभेद और समाज में इतनी ज्यादा दलबन्दी दिखाई पड़ रही है। जिस किसी क्षेत्र में देखिये उसी में एक से दो और दो से चार अलग-अलग दल, पार्टियाँ बनती नजर आ रही हैं। भारत के राजनैतिक क्षेत्र को ही देखिये कितनी संस्थाएँ उठ खड़ी हुई हैं और परस्पर संघर्ष में संलग्न हैं। सामाजिक क्षेत्र की भी यही दशा है। छोटी-से-छोटी जातियों ने भी अपने पृथक् संगठन बना लिये हैं, जो दूसरों से किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं रखते। ये सब अपने-अपने अधिकारों के लिए माँग पेश करते रहते हैं और इस बात का ध्यान कोई नहीं करता कि उनकी माँगों का असर दूसरों पर क्या पड़ेगा अथवा दूसरों को भी उसी तरह की सुविधाओं की आवश्यकता है। धार्मिक क्षेत्र की दशा और भी विचित्र है। विभिन्न धर्मों के अनुयायी तो सदा ही एक-दूसरे का सिर फोड़ते रहते हैं, पर एक ही धर्म, मजहब के भीतर सम्प्रदायों, पंथों, गुरु घरानों का ऐसा जाल फैला हुआ है कि एक-एक जाति सैकड़ों हिस्सों में बँट गई है और उन सब में पृथकता, उदासीनता, असहयोग, असंगठन की वृत्तियाँ दृढ़ होती जा रही हैं।

इस विपरीत परिस्थिति का कारण क्या है ? किस कारण यह उल्टी गंगा बह रही है ?· हम जानते हैं कि इस जमाने में ज्ञान-विज्ञान, विद्या, शिक्षा, जानकारी की दिन पर दिन वृद्धि हो रही है, सर्वत्र शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना होकर इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि एक भी व्यक्ति निरक्षर और अशिक्षित न रहने पावे। समाचार पत्र, रेडियो, भाषण, सिनेमा, प्रदर्शनियाँ, अधिवेशन आदि के द्वारा आज एक साधारण लड़के को भी संसार की इतनी जानकारी मिल जाती है, जितनी प्राचीन समय में एक अच्छे पंडित के लिये भी संभव न थी। इस ज्ञान के प्रचार, प्रसार और प्राप्ति का नतीजा तो यह होना चाहिए था कि मनुष्यों की संकीर्णता की भावना मिटकर उनमें एकता, आत्मीयता, प्रेम, स्नेह के विचारों तथा भावों का समावेश होता और वे आपस में अधिक मिलजुल, सहयोगपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगते। पर देखते हम यह हैं कि जैसे-जैसे ज्ञान-विज्ञान की उन्नति होती जा रही है, मनुष्यों में अनैक्य, फूट, संघर्ष की वृद्धि हो रही है, नित्य नये लड़ाई-झगड़े उत्पन्न हो रहे हैं और व्यक्तिगत, समाजगत तथा राष्ट्रगत संघर्ष बढ़ते-बढ़ते विश्वव्यापी रूप धारण करके मानव-सभ्यता को ही विध्वंस करने की धमकी दे रहे हैं।

इस अप्रिय परिस्थिति, विपरीत वातावरण के विषय में जब हम कुछ गहराई में उतरकर विचार करते हैं तो इसका एक मुख्य कारण यह जान पड़ता है कि इस समय मनुष्य की जो उन्नति हो रही है वह एकांगी है। दुनिया स्वार्थ की दिशा में ही बराबर बढ़ती जा रही है, दूसरी परमार्थ की दिशा को उन्होंने भुला रखा है। जिस प्रकार कोई पहलवान केवल बैठक ही बैठक करे, डण्ड करने को नापसन्द करके छोड़ दे तो उसके पैर, नीचे का भाग तो खूब मजबूत और सुडौल हो जायगा, पर हाथ और धड़ का भाग निर्बल, अविकसित बना रहेगा। इसी प्रकार वर्तमान समय में लोगों का ध्यान सांसारिक सुख-सामग्री, सम्पत्ति, वैभव को बढ़ाने की तरफ तो बहुत अधिक लगा हुआ है, पर उस सामग्री का उचित व्यवहार करने के लिये जिन सत्य, न्याय, सहानुभूति, उदारता, परोपकार आदि के भावों की आवश्यकता है, उनका अधिकांश में अभाव ही बना हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति इस बात की कामना रखता है कि मैं सबसे अधिक सत्ता, शक्ति, सम्पत्ति, सुख प्राप्त कर लूँ, पर दूसरों को भी इन सबकी आवश्यकता है और उनका भी इन बातों में मेरे समान ही अधिकार है, इसका ध्यान छोड़ दिया जाता है। इसका परिणाम स्वभावतः पारस्परिक संघर्ष और आपाधापी ही निकलेगा। जो सबल हैं, अधिक बुद्धिमान हैं, जिनको किसी प्रकार विशेष सुविधायें मिल गई हैं, वे संसार की सम्पदा पर अधिकार कर लेते हैं और निर्बल, कम बुद्धि वाले, कठिनाइयों के कारण अग्रसर हो सकने में असमर्थ लोगों को पीछे की तरफ ढकेल दिया जाता है। फिर इन सम्पत्तिशाली और शक्तिसम्पन्न लोगों में भी आपस में चढ़ा-ऊतरी, प्रतियोगिता होने लगती है और उनकी कलह और भी उग्र, विनाशक रूप धारण कर लेती है। उधर पीछे ढकेले हुये और दुर्दशा में पड़े हुये जनसाधारण भी संसार में तरह-तरह के दोष, बुराइयाँ, गन्दगी, अव्यवस्था उत्पन्न करते हैं। इस तरह भगवान की यह सुन्दर फुलवारी-सुरम्य वाटिका एक ऊबड़-खाबड़ जंगल का रूप धारण कर लेती है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जिसमें उपयोगी और स्वादिष्ट फल-फूलों के बजाय कुश, काँटे, कंकड़ और हानिकारक वन-जन्तुओं की ही अधिकता दिखाई पड़ती है।

भारतवर्ष के प्राचीन मनीषियों, ऋषि-मुनियों ने मनुष्य के इस एकांगी विकास के दोषों को आरम्भ में ही अच्छी तरह समझ लिया था और स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा कर दी थी कि सुखी जीवन का आधार समन्वयवादी मनोवृत्ति पर ही है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत' के सिद्धान्तानुसार किसी एक ही दिशा में निरन्तर चलते जाने से मानव-जीवन में सुख-संतोष, शान्ति, कल्याण की प्राप्ति असंभव होती है। मध्यकाल के सम्प्रदायवादी आचार्यों ने तो अवश्य अपने-अपने मत का उत्कर्ष दिखलाने के लिये ज्ञान, कर्म, भक्ति में से किसी एक पर ही विशेष बल दिया और दूसरी बातों का खण्डन किया, पर वैदिक काल के विचारकों ने ज्ञान और कर्म दोनों को समान रूप से महत्व दिया था और अच्छी तरह समझा दिया था कि यदि इनमें से केवल एक को ही अपनाया जायगा तो उससे उन्नति के बजाय अवनति का ही मुख देखना पड़ेगा। भारतीय साहित्य की सबसे प्राचीन रचनाओं—वेद, ब्राह्मण, अरण्यक, उपनिषद् सब में इसी विचारधारा का समर्थन और उपदेश किया गया है। उत्तरकाल में भी जिन महात्माओं ने वैदिक आदर्श का अनुकरण किया उन्होंने इसी मत को प्रतिपादित किया है। इसका सबसे उज्ज्वल उदाहरण धार्मिक-साहित्य का मुकुटमणि 'भगवद्गीता' है, जिसमें समन्वय की शिक्षा को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया गया है और इसी कारण आज संसार में जिसको सर्वाधिक सम्मान प्राप्त है।

इस समन्वयवाद का मूल वेदों में भी स्पष्ट रीति से मिलता है और 'ईशोपनिषद्' में, जो वेदों का ही एक अंश है इस विषय का सर्वोत्तम रूप में विवेचन किया गया है। अनेक आधुनिक देशी और विदेशी विद्वानों का तो यह मत है कि 'भगवद्गीता' इस 'ईशोपनिषद्' के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या स्वरूप है। ईशोपनिषद् के प्रथम मंत्र में ही मानव-जीवन की सफलता, सार्थकता का जो मार्ग बतलाया गया है उसमें समन्वय का सार आ गया है। ऋषि कहते हैं—

ईशावास्यमिदं ँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।।

अर्थात्—"इस विश्व में जो कुछ भी दिखाई पड़ता है वह सब ईश्वर से व्याप्त है, इसलिये उसका उपभोग त्यागपूर्वक करो, धन किसी एक का नहीं हो सकता।"

त्याग और भोग दोनों की मानव-जीवन में समान रूप से आवश्यकता है। जो त्याग करना नहीं जानेगा वह स्वार्थी, कंजूस, पापी और अन्त में राक्षस बन जायगा। इसी प्रकार जो भोग करना नहीं जानेगा वह अशक्त, दीन-हीन, दरिद्री, भिक्षुक हो जायगा। ईश्वर का आदेश अथवा विधान बुद्धिमान मनुष्य के लिये यही है कि तुम संसार में त्याग और भोग का समन्वयपूर्वक आचरण करो। न तो धन को अपने बाप-दादों की या अपनी जायदाद समझकर उसको अपनी तिजोरी में बन्द करो और न भूखे-नंगे बाबाजी बनकर दूसरों के आश्रित-समाज पर भार स्वरूप ही बनो। त्याग और भोग के स्वरूप को ठीक-ठीक समझकर धनोपार्जन करना और उसका अपने तथा समाज के लिये लाभकारी रूप में सदुपयोग करना ही सुख, शान्ति और संतोष की प्राप्ति का मार्ग है।

आगे चलकर उपनिषद्कार ने इस सिद्धान्त की व्याख्या की है और बहुत जोर देकर समझाया है कि जो कोई इस सिद्धान्त की अवहेलना करेगा, इसके विपरीत आचरण करेगा वह घोर अवनति, पतन, नाश को ही प्राप्त होगा—

अन्धंतमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्याया ँ रताः ।।
अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यया ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद् विचचक्षिरे ।।
विद्यांचाविद्यां च यस्तद्वेदोभय ँ सह ।
अविद्यया मृत्युंतीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ।।

अर्थात्—"जो अविद्या (अनात्मज्ञान) की ही उपासना करते हैं वे गहरे अँधेरे में पतित होते हैं और जो केवल विद्या (आत्मज्ञान) में ही संलग्न हो जाते हैं, वे उनसे भी अधिक अन्धकार में गिरते हैं। विद्या का फल भिन्न है और अविद्या का फल भिन्न है, ऐसा हम महान उपदेशकों से सुनते आये हैं। इसलिए जो विद्या (आत्मज्ञान) और अविद्या (भौतिक विज्ञान) दोनों को उपयुक्त रूप में जानेगा वही भौतिक ज्ञान से मृत्यु (सांसारिक अभाव या कष्ट) को दूर करके आत्मज्ञान से अमरत्व (आन्तरिक शान्ति और अभय पद) को प्राप्त कर सकेगा।"

हमारे जीवन में ज्ञान और विज्ञान दोनों का समान रूप से महत्व है। जो इनमें से किसी एक को ही प्रधानता देकर दूसरी ओर दुर्लक्ष्य करते हैं, वे कभी वास्तविक सुख के दर्शन नहीं कर सकते और किसी-न-किसी तरह अवनति के गर्त में ही गिरते हैं। इसके सबसे बड़े उदाहरण मध्यकालीन भारत और आधुनिक योरोप है। बौद्धकाल और उसके पश्चात् शंकराचार्य के युग में भारतवर्ष में केवल त्याग, तपस्या, संन्यास की महिमा बढ़ाई गई, जिससे देश में अकर्मण्यता, अशक्तता तथा हीनता का प्रादुर्भाव होकर यह मुट्ठीभर विदेशियों द्वारा पददलित हो गया। इधर योरोप ने पिछले दो-चार सौ वर्षों से अपना लक्ष्य केवल वैज्ञानिक उन्नति और भौतिक सम्पत्ति को ही बना लिया। इसके फलस्वरूप उनमें स्वार्थपरता की, शोषण, अपहरण के भावों की इतनी अधिकता हो गई कि आज वे अपना ही नहीं समस्त संसार का सर्वनाश करने को पूर्णतया सन्नद्ध हो गये हैं। यह विद्या और अविद्या—अध्यात्मवाद और भौतिकवाद में उचित समन्वय न रख सकने के दुष्परिणाम ही हैं।

समन्वय की प्रवृत्ति मनुष्य की प्रगति, उत्कर्ष और कल्याण के लिए अनिवार्य है। मानवीय सभ्यता और

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संस्कृति के उपयुक्त रूप में विकास होने का बहुत कुछ श्रेय इसी को है। समन्वय की भावना के बिना समाज का सुदृढ़ निर्माण और प्रगति के मार्ग में अधिक दूर तक अग्रसर हो सकना असंभव है। व्यक्ति, समाज और जगत् का भी कल्याण इसी में है कि हम एकांगी विचारधाराओं की ओर से मुँह मोड़कर समन्वयवादी—एक्यवादी प्रवृत्तियों को अपनावें और आगे बढ़ावें।

स्वर्णिम युग के तीन आधार एकता, समता और सुव्यवस्था

मनुष्य ने प्रगति तो बहुत की है फिर भी उसकी सामुदायिक प्रवृत्ति में अभी दो अवांछनीयताएँ बुरी तरह घुसी हुयी हैं और उस गरिमा से वंचित रख रही हैं, जो नियति ने उसे उदारतापूर्वक प्रदान की है।

दो दुष्प्रवृत्तियों में से एक है संकीर्णता, दूसरी है विलासिता। दृष्टिकोण में संकीर्णता और व्यवहार में विलासिता घुस पड़ने से वे दोनों ही क्षेत्र विकृत हो चले फलतः उत्पन्न होने वाली सड़न भरी विषाक्तता ने मनुष्य का स्तर और समाजगत वातावरण बेतरह अस्त-व्यस्त करके रख दिया है। फलतः समृद्धि और प्रगति के, सुख और शांति के स्थान पर विनाश और विग्रह उभरता अनेकानेक संकट खड़े करता दीखता है।

गूलर के भुनगे और कुएँ के मेंढ़क अपने दायरे में संतुष्ट पाये जाते हैं। पिंजड़े में बंद पक्षी आश्रित भी रहते हैं और सुरक्षा भी देखते हैं। इतने पर भी जिसने विस्तृत क्षेत्र में विचरण करते हुए विशालता का आनन्द लिया है उनके लिए संकीर्णता का वह दयनीय दायरा बहुत ही लज्जाजनक और कष्टप्रद प्रतीत होता है। निर्वाह ही तो सब कुछ नहीं है। जीवन में इसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ है। उसका परित्याग करके मात्र उदर पूर्ति तक ही सीमाबद्ध रहा जाय तो जड़ चेतन में क्या अन्तर रहा ? वृक्ष-वनस्पति भी निर्वाह साधन उपलब्ध कर लेते हैं। कृमि-कीटकों को भी उसकी कमी नहीं पड़ती। फिर आत्मा की गरिमा को पोषण कहाँ मिला ? आन्तरिक उल्लास का विकास कब संभव हुआ ? महानता की अभिलाषा ही महत्वाकांक्षा कहलाती है। प्रगति का मार्ग अवरुद्ध रहे तो हाथ-पैर बँधे कैदी जैसी जिन्दगी जी लेने पर क्या मिला ? अन्न बीज तो उसे भी मिल जाता है।

आध्यात्मिक क्षेत्र की संकीर्णता से तात्पर्य है अपनेपन का दायरा छोटी परिधि में जकड़ लेना। शरीर तक अपनी सत्ता मानने वाले आत्मा की परवाह नहीं करते, भविष्य की ओर से आँखे बन्द किये रहते हैं, परिवार और समाज के प्रति निर्धारित उत्तरदायित्व का पालन नहीं करते। कितने ही मद्यप आवारा स्तर के लोग जो कमाते हैं, शरीर सुख के लिए उड़ाते रहते हैं। उसमें अन्य किसी की भागीदारी नहीं सोचते। ऐसे 'इक्कड़' वन्य पशुओं में भी होते हैं। हाथी, सुअर, हिरन आदि में से कभी-कभी कोई-कोई झुण्ड छोड़कर एकाकी रहने लगते हैं। इसमें वे अनुशासन से स्वच्छन्द रहने का लाभ देखते हैं किन्तु वैसा करते ही अपनी सामाजिकता गवाँ बैठते हैं और स्नेह-सौजन्य जैसी सभी विशेषताएँ गवाँकर निष्ठुर, निर्मम स्तर का स्वभाव बना लेते हैं। अकारण किसी पर भी हमला कर बैठने की उद्दंडता बरतते रहते हैं।

आत्मीयता सरसता उत्पन्न करती है। जो अपना हो वही प्यारा लगता है, यह दायरा जितना छोटा होगा प्रिय-जन उतने ही कम रह जायेंगे और उस लाभ से वंचित रहना पड़ेगा, जो असंख्यों को अपना बनाकर उपलब्ध हो सकता था। आत्मीयता का आरोपण जिस पर भी किया जायेगा वह अपना ही लगेगा और आत्म विस्तार के परिवार का सदस्य बनकर आनन्द की अभिवृद्धि करेगा। जिसके अपने कम हैं, सभी विराने दीखते हैं, वह सदा अपने को असुरक्षित, अभावग्रस्त और असंतुष्ट अनुभव करेगा। आत्मीयता के विस्तार का अर्थ है जीवितों को अपनेपन की परिधि में जकड़ लेना। अधिक सुविधा साधनों से प्रसन्नता अनुभव होती है; गर्व, गौरव प्रतीत होता है। उसी प्रकार जिसके जितने अधिक अपने हैं, वह आत्म दृष्टि से अपने को उतना ही अधिक सुसम्पन अनुभव करता है। यही है प्रसन्नता का केन्द्र बिन्दु। अनेकों के दुःख बाँट लेने और अपने सुख अनेकों को बाँट देने पर ही मनुष्य हँसती-हँसाती, हलकी-फुलकी जिन्दगी जी सकता है।

साधु-ब्राह्मण, वानप्रस्थ, लोकसेवी स्तर के महामानवों की एक ही प्रमुख विशेषता है कि वे आत्मीयता की परिधि बढ़ाते हैं और उसमें समूचे समाज या संसार को जकड़ लेते हैं। विराट दर्शन यही है। समुदाय को भगवान मानने और उसके साथ श्रद्धा, संवेदना जोड़ लेने पर भगवद् शक्ति का व्यावहारिक स्वरूप लोक-मंगल की साधना बनकर रह जाता है। योगाभ्यास से सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन की सेवा साधना को सर्वोत्तम एवं सर्वसुलभ माना गया है। उसमें समाज के उपकारों का प्रत्युपकार बन पड़ने से ऋण मुक्ति का हलकापन प्रतीत होता है। आत्म गौरव निखरता है और सेवा के बदले सम्मान एवं सहयोग बरसने लगता है। थोड़ा समय या धन गवाँ देने के प्रथम चरण में इसमें कुछ घाटा जैसा प्रतीत होता है पर देर तक वस्तुस्थिति अप्रकट नहीं रहती। कुछ ही समय में बीजारोपण अंकुरित होता, लहलहाता, फलता-फूलता और समुन्नत स्तर पर पहुँचकर सिर गर्वोन्नत रख सकने की स्थिति में होता है। परमार्थ के निमित्त उठाये गये घाटे को ठीक ऐसा ही दूरदर्शी निर्धारण समझा जा सकता है।

स्वार्थी वे जो मात्र शरीर को, स्त्री-बच्चों को ही अपना मानें और अन्यान्यों के प्रति उपेक्षा बरतें। परमार्थी वे जो अपने स्वार्थों को परम व्यापक बना लें। आत्मा सीमित को और परमात्मा असीम को कहते हैं। अपनेपन का दायरा बढ़ाने वाले, उसके सुख-दुःख में सक्रिय रूप से भागीदार बनने वाले प्रकारान्तर से परमात्मा तक ले जाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वाले सुनिश्चित राजमार्ग पर चलते हैं। महामानवों ने सदा यही रीति नीति अपनाई है, वे शरीर या परिवार के प्रति अनिवार्य उत्तरदायित्वों का तो निर्वाह करते रहे हैं किन्तु उतने तक सीमित नहीं रहे। देश, धर्म, समाज और संस्कृति के प्रति अपने वरिष्ठ उत्तरदायित्वों को भी निभाया है। आवश्यकता हुई तो महान् के लिए तुच्छ को गौण मानने का साहस भी अपनाया है। सन्त, सज्जन, लोक सेवी, देशभक्त, महामानव प्रायः यही करते रहे हैं। कुटुम्बियों की सुविधा के लिये कटौती करके भी उन्होंने समाजगत सत्प्रवृत्तियों के सम्वर्धन में अपने को नियोजित किया है। यहाँ तक कि इसके लिए तथाकथित स्वजनों का विरोध भी सहा है और उनके आग्रह को निरस्त भी किया है। वैराग्य और त्याग-बलिदान की चर्चा इसी आदर्श के प्रतिपादन में होती रहती है। अनेक बार संचित संकीर्णता इस मार्ग में बाधक भी होती है। किन्तु उदारता की उमंगें इस व्यवधान को टिकने कहाँ देती हैं ?

क्या व्यक्तिगत और क्या समूह व्यवस्था, दोनों ही क्षेत्रों में हमें विशालता, उदारता एवं एकता का परिचय देना चाहिए। संयुक्त परिवार जैसी सहकारिता का हर जगह प्रतिपादन, समर्थन करना चाहिए और उसे परिपक्व, गतिशील बनाने में कुछ उठा न रखना चाहिए। पहल अपनी हो तो इन सत्प्रवृत्तियों को अपनाये जाने में भी देर न लगेगी। वरिष्ठ लोग जो करते हैं, कनिष्ट उसका अनुगमन सहज ही करने लगते हैं। सामूहिकता और एकता की सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाने में जहाँ जिस प्रकार जो भी किया जा सकना संभव हो, किया ही जाना चाहिए। संकीर्णता और विलासिता की प्रवृत्ति को निरुत्साहित ही करते रहना चाहिए।

जनसंख्या की वृद्धि, वैज्ञानिक प्रगति, आर्थिक समृद्धि एवं बढ़ती हुयी बुद्धिमत्ता ने संसार को बहुत छोटा कर दिया है। पाँचसौ वर्ष पुरानी दुनिया से आज की दुनिया प्रायः सर्वथा भिन्न है। उसकी अगणित समस्यायें, कठिनाइयाँ, विपत्तियाँ एवं विभीषिकायें ऐसी हैं, जिनके समाधान के लिए सामयिक उपाय सोचने होंगे। वस्तुतः चक्रव्यूह से निकलने के लिए नई रणनीति अपनानी पड़ेगी, अब राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय नीति पुरानी हो गयी। उसके द्वारा क्षेत्रीय स्वार्थ संघर्ष ही खड़े किये जा सकते हैं। किये भी जा रहे हैं। स्थायी समाधानों के सूत्र उसके पास हैं नहीं। इसी प्रकार भाषायें, सम्प्रदाय, प्रचलन, परम्परा, आचार- व्यवहार जैसे पुरातन निर्धारण समय के साथ-साथ नहीं चल पा रहे हैं। उपयोगिता सिद्ध करने और समाधान में योगदान करने की अपेक्षा वे नये-नये संकट खड़े करने में स्वयं ही व्यवधान बन रहे हैं। उलटी स्थिति को उलटकर सीधा करने के अतिरिक्त और कोई चारा है नहीं।

सर्वतोमुखी एकता, समग्र समता और सार्वभौम सुव्यवस्था के अतिरिक्त विनाश को विकास में बदल सकने वाला उपचार वर्तमान परिस्थितियों में संभव नहीं दीखता।

सर्वतोमुखी एकता से तात्पर्य है—विश्व राष्ट्र, विश्व भाषा एवं विश्व धर्म का अभिनव निर्धारण। जनसमुदाय को उन्हें अपनाने के लिए सहमत या बाधित करने के प्रबल प्रयास। यही हैं वे उपाय-अवलम्बन जिनके सहारे एक संस्कृति का तत्व ज्ञान और एक आचार संहिता का निर्धारण किया जा सकता है। इसी आधार पर विश्व एकता बनेगी और निभेगी। विग्रहों का, वर्ण भेदों का वर्तमान वातावरण ऐसी ही दूरदर्शी विवेकशीलता अपनाने पर बन सकेगा।

दूसरा सूत्र है—समता। जाति और लिंग के आधार पर बरती जाने वाली असमानता को पूरी तरह निरस्त कर दिया जाय। मनुष्य की एक विरादरी रहे। भिन्नता तो बाल-वृद्ध की स्थिति में भी रहती है। वैसे ही नर और नारी के बीच में भी कार्यक्षेत्र और नियति क्रम के अनुरूप रह सकती है किन्तु समाज व्यवस्था में कोई ऐसा अवरोध न रहने दिया जाय जिससे नर और नारी में से किसी को वरिष्ठ, कनिष्ठ कहा जा सके और भेदभाव का अवरोध अड़ सके। जन्म जाति के आधार पर ऊँच-नीच जैसा वर्गीकरण करने की न्याय निर्धारण में कहीं भी गुंजाइश नहीं है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में जन्मे काले, सफेद, पीले, गेहुँए रंग वाले भी इस आधार पर अपनी प्रखरता या विशिष्टता सिद्ध न कर सकें। सभी अपने को विश्व नागरिक मानें और मानवी विरादरी का एक अविच्छिन्न घटक समझें।

तीसरा सूत्र है सार्वभौम सुव्यवस्था। इसमें आर्थिक क्षेत्र की आपाधापी को बदलकर उत्पादन और वितरण की सार्वभौम प्रबन्ध व्यवस्था के अन्तर्गत लाया जाना है। देशों की वर्तमान सीमायें समाप्त करके, उन्हें एक विश्व राष्ट्र के प्रबन्ध संस्थान के हिसाब से प्राप्त जैसी स्थिति में विभाजित कर दिया जाय। समस्त धरती की भूमि विश्व राष्ट्र की हो और उस पर बसने के लिए क्षेत्र एवं जनसंख्या के हिसाब से नये निर्धारण हों। उत्पादन और वितरण के बीच ऐसा तारतम्य बिठाया जाय जिसमें न कोई अतिरिक्त संग्रह-उपभोग करे और न किन्हीं को अभावग्रस्त स्थिति में रहना पड़े। बड़े साधनों के लिए बड़े उद्योग रहें लेकिन जिन्हें लघु उद्योगों में विकसित करके हर हाथ को काम देने की योजना के अन्तर्गत लाया जा सकता है, उन्हें बड़े कारखानों में न जाने दिया जाय।

शहरी आबादी बखेरी जाय और कस्बों को पनपाया जाय। शिक्षा, चिकित्सा, स्वच्छता, न्याय जैसी आवश्यकतायें सर्व सुलभ रहें। इस नये निर्धारण के लिए आवश्यक है कि विश्व सम्पदा केन्द्रित रहे, उपयुक्त प्रयोजन के लिए उसका विवेकपूर्ण उपयोग होता रहे। सम्पदा कुछेक हाथों में केन्द्रित न रहे, तभी यह संभव है कि संसार से गरीबी मिटाने वाला नया तन्त्र खड़ा किया जा सके। युद्धों और महायुद्धों को सदा के लिए शांत करने के लिए आवश्यक है कि क्षेत्रों में आन्तरिक व्यवस्था के लिए पुलिस और दस्ती हथियार रहें। फौज मात्र विश्व राष्ट्र के हाथ में रहे।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

झंझटों को लड़ाई से नहीं वरन् न्याय पंचायत से हल कराया जाया करे।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त यों तो सदा से प्रशंसनीय रहा है किन्तु अब यह समय की अनिवार्य आवश्यकता बनकर सामने आया है। हमें संकीर्णता के बन्धन काटने चाहिए और उदार आत्मीयता, एकता की दिशा में हर किसी का चिन्तन प्रवाह बहना चाहिए। विलगाव की बात सोचनी बन्द करें। अहंता को निरस्त करें, मिल-जुलकर रहने और मिल-बाँटकर खाने की नीति अपनाएँ तभी उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण हो सकेगा। पारिवारिकता की नीति ही सर्वोत्तम है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श हमें अपने चिन्तन और व्यवहार में समाविष्ट करने का प्रयास आरम्भ कर देना चाहिए ताकि मानवी गरिमा और प्रगति को सतयुग की तरह पुनर्जीवित किया जा सके।

समता और एकता अपनाएँ

समस्त मनुष्य जाति एक ही पिता की सन्तान है। सभी की माता धरती है। सभी परस्पर स्वजन और कुटुम्बी हैं। इस कौटुम्बिक एकता को बनाये रहने में ही मनुष्यता है। विभेद की जितनी दीवारें खड़ी की जायेंगी और विभिन्न आधारों पर पृथकता के जितने अवरोध खड़े किये जायेंगे उनसे तात्कालिक कोई वर्ग स्वार्थ भले ही सिद्ध होते हों—अन्ततः उनसे विनाश ही उत्पन्न होगा।

कौटुम्बिकता की आधारशिला एकता और समता के सिद्धान्तों को अपनाने से ही रखी जा सकती है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के महान् आदर्शों को स्वीकार करने पर ही सर्वतोमुखी मानवी प्रगति का पथ-प्रशस्त हो सकता है। उज्ज्वल भविष्य की आशा तभी की जा सकती है; जबकि हम विषमता को मिटाकर समता का और विलगता को हटाकर एकता का वातावरण उत्पन्न करने के लिए कटिबद्ध हों। जाति, लिंग, धन, क्षेत्र, भाषा, देश, धर्म, संस्कृति आदि के आधार पर चल रहे वर्तमान विलगावों को हटाने और सर्वतोमुखी समता, एकता के आधार खड़े करने पर ही सर्वनाशी उलझनों का समाधान सम्भव हो सकेगा।

विवेक की माँग और समय की पुकार यही है कि हर क्षेत्र में भावनात्मक एकता और व्यावहारिक समता की सार्वभौम एकता के लिए प्रबल प्रयत्न किये जायें। इसके बिना मनुष्य की वैयक्तिक और प्रकृति की भौतिक शक्तियों का सदुपयोग बन ही नहीं पड़ेगा। फलतः जो भी उपलब्धियाँ हस्तगत होंगी वे क्षणिक सुख देती दिखाई पड़ने पर ही अन्ततः विपत्तियाँ और समस्याएँ ही खड़ी करती चली जायेंगी।

भारतीय परम्परा सार्वभौम, सर्वजनीन एकता एवं समता की समर्थक रही है। साम्यवाद समाजवाद के नवीन प्रतिपादन उसी आध्यात्मिक प्रतिपादन का एक अंग है, जिसे ऋषियों ने सदा से मानवी नीति निष्ठा में सम्मिलित रखा है। कहा गया है—

जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम्। सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहांध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।।

—अथर्व. १२ का. १ सू. ४५ म

यह पृथ्वी माता विविध भाषा-भाषी, विविध धर्मावलम्बी, मनुष्यों को एक घर में रहने वाले कुटुम्बियों की तरह धारण करती है। वह बिना झुँझलाये सबका शान्त गौ की तरह पोषण करती है।

"पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकतद्।" —श्रुति

'समुद्रपर्यन्त जितनी सब पृथ्वी है। उस सम्पूर्ण भू-भाग का एक ही आर्य राजा हो।

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः।
तेषां श्रीर्मयि कल्पता मस्मिलोके शतं ँ समाः।।

—यजु. १९-४६

मुझे अन्य सबमें वे ही प्रिय हैं, जो सबमें साम्य भाव रखते हैं। उन्हीं की सम्पदा स्थिर रहती है और सुखी रहते हैं।

सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिताध्न्या।।

—अथर्व. ३।३०।१

तुम सबके हृदय में समता हो। मन समान हो। कोई किसी से द्वेष न करे। परस्पर ऐसा प्यार करो जैसा गाय और बछड़े के बीच होता है।

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय। युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः।। —ऋ. ५।६०।५

जिनमें कोई बड़ा नहीं है और जिनमें कोई छोटा नहीं है ऐसे ये सब भाई एक हैं। ये सब उत्तम ऐश्वर्य के लिए मिलकर उन्नति का प्रयत्न करते हैं। इन सबका तरुण पिता उत्तम कर्म करने वाला ईश्वर है, इनके लिए उत्तम प्रकार का दूध देने वाली माता प्रकृति है, यह प्रकृति माता न रोने वाले जीवों के लिए उत्तम दिन प्रदान करती है।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समान मनः सहचित्तमोषाम्। समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहामो। —ऋ. १०।१९१।३

तुम्हारे मन्त्र समान हों, तुम्हारी समिति समान हो, तुम्हारे मन तथा चित्त एक से हों। मैं तुमको समान मन्त्र से मन्त्रित करता हूँ और तुमसे समान हवि द्वारा हवन कराता हूँ।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

—ऋ. १०।१९१।४

तुम्हारा अभिप्राय एक हो, तुम्हारे हृदय एक हों, तुम्हारा मन एक हो जिससे तुम्हारा पूर्णरूप से संगठन हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समानी प्रपा सहवोऽन्नभागः समानेऽ योक्त्रे सह वो युनज्मि। सम्यंचोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः।। अर्थ. ३. ३०. ६

तुम्हारी जलशाला एक हो और तुम्हारा अन्न का भाग साथ-साथ हो, मैं तुम्हें एक ही जोते में साथ-साथ जोड़ता हूँ। तुम मिलकर चलते हुए मुझ ज्योतिस्वरूप को इस प्रकार पूजो जैसे पहिये के दण्ड नाभि में चारों ओर से सटे रहते हैं।

"सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवाभागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।"

—ऋ. १०।१९१।२

हे मनुष्यो! तुम सब मिलकर चलो, मिलकर बातचीत करो, तुम्हारे मन एकसा विचार करें, जैसे पहले विद्वान् सम्यग् जानते हुए अपने धर्म का पालन करते थे वैसा तुम भी करो।

दृते दृ ह्मा मित्रस्य, चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याऽहं चक्षुषा-सर्वाणि भूतानि समीक्षे, मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।

—यजुर्वेद ३६।१८

हे अविद्या अन्धकार के विनाशक परमात्मन्! मुझको ऐसा दृढ़ कीजिये कि समस्त प्राणी मुझको मित्र की दृष्टि से देखें, मैं भी सब प्राणियों को मित्र ही की दृष्टि से देखूँ इस प्रकार हम सब मनुष्य एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखते रहें।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद ब्रह्मणि ते स्थिताः।।

—गीता ५।१९

जिनका मन इस समतावाद में सुस्थिर हो गया, उन्होंने जन्म-मरण की परम्परा रूप सृष्टि पर विजय प्राप्त कर ली, अर्थात् वे जीवन्मुक्त हो गये, क्योंकि उन्होंने दोषरहित ब्रह्म को ही सर्वत्र समरूप में अपनाया।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट,
संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्योन्यस्मै वल्गु वदन्ता एत,
सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणामि।।

अर्थव. ३।३०।५

श्रेष्ठता प्राप्त करते हुए सब लोग हृदय से एक साथ मिलकर रहो, कभी विलग न होओ। एक-दूसरे को प्रसन्न रखकर एक साथ मिलकर भारी बोझ को खींच ले चलो। परस्पर मृदुभाषण करते हुए चलो और अपने अनुरक्त जनों से सदा मिले हुए रहो।

सध्रीचीनान् वः संमनसः कृणोम्यो।
कृश्नुष्टीत्संवननेन सर्वान्।।
देवा इवादमृतं रक्षमाणाः।
सायं प्रातः सौमनसो यो अस्तु।।

समान गति वाले आप सबको सममनस्क बनाता हूँ, जिससे आप पारस्परिक प्रेम से समान भावों के साथ एक अग्रणी का अनुसरण करें। देव जिस प्रकार समान चित्त से अमृत की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार सायं प्रातः आप सबकी उत्तम समिति हो।

मैत्रीसंस्थापकोयश्च विश्व शान्ति विधायकः।
सनातनाय धर्माय तस्मै नित्यं नमो नमः।।

जो विश्व शान्ति विधायक तथा सर्वत्र मैत्री की स्थापना करने वाला है। उस सनातन धर्म को प्रतिदिन सदा सर्वदा नित्य निरन्तर ही नमस्कार है।

न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मं न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः। न वै भिन्नागौरवं प्राप्नुवन्ति न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति।। —महा. उद्योग ३६।५६

जो आपस में एक-दूसरे से भिन्न हो गये हैं, वे धर्म नहीं कर सकते और न भेद को प्राप्त हुए सुख पाते हैं। उनको न गौरव मिलता है और न पृथक् हुए मनुष्यों को शान्ति मिलती है।

अनेकता से एकता की ओर महायात्रा

संसार की विचित्रता-विभिन्नता में भी एक विशेषता यह दिखायी देती है कि समस्त जड़-चेतन में एक ही चेतना कार्य कर रही है। उसकी चेतन तरंगें ही स्थूल जगत् का सृजन करतीं, पेड़-पौधों, वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं का उत्पादन करती हैं। सृष्टि की विविध संरचनाओं में स्वरूप की भिन्नता होते हुए भी उनके कारण सत्ता की पूर्ण एकता है। यह 'एकत्व' ही संसार की आदि कारण सत्ता है। उसी को विविध धर्म सम्प्रदाओं में अनेकों नामों से सम्बोधित किया गया है। उससे मिलने, प्राप्त करने को ही जीवन का परम लक्ष्य माना गया है।

समस्त संसार उससे ही उत्पन्न होता, उसी में लय हो जाता है। जाने-अनजाने सभी प्राणी 'एकत्व' के उद्गम स्थल की ओर बढ़े चले जा रहे हैं। नदी जिस प्रकार अनेकों वक्राकार पथों से होते हुए एक महासमुद्र में मिलने के लिए दौड़ती हुई चली जाती है तथा मिलने के उपरान्त ही विश्राम पाती है। उसी प्रकार सभी प्राणी अपना गन्तव्य स्थान न जानते हुए भी परमात्मा की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं। मानव चित्त अनेकानेक आकर्षणों में उस 'एक' का अनुसन्धान करता है। कभी लक्ष्य की ओर आगे बढ़ता है कभी सांसारिक विक्षोभों से टकराकर पीछे हटता है। पुनः नयी शक्ति, नयी प्रेरणा के साथ अपने लक्ष्य की ओर उन्मुख होता है।

'एकत्व' की प्राप्ति, एकत्व की अनुभूति, एकत्व का दर्शन ही जीवन का लक्ष्य है। यही परम सत्य है वही

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सबमें समाया हुआ है, सबका आदि कारण है। इस सत्य को जानते हुए ही श्रुति कहती है—

"वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं, पूर्ण-पुरुषेण सर्वम् ।"

अर्थात्—वृक्ष की भाँति आकाश में शान्ति भाव से जो विराजमान हैं वह एक है। उसी परम पुरुष में, परिपूर्ण परमात्मा में समस्त जगत् परिपूर्ण है।

यथा सौम्य वयांसि वासोवृक्षं सम्प्रतिष्ठन्तो ।
एवं हवै तत् सर्वं पर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ।

—उपनिषद्

अर्थात्—हे सौम्य ! पक्षीगण जैसे वास-वृक्ष में आकर स्थिर होते हैं, उसी प्रकार यह समस्त संसार परमात्मा में प्रतिष्ठित होता है।

वह एक चेतना ही सबमें समायी हुई क्रिया-कल्लोल करती विभिन्न रूपों में दिखाई देती है। अपनी चेतन तरंगों का प्रकृति में आरोहण करके सृष्टि का निर्माण करती है। भासित होने वाली संसार की अनेकता—खण्डता में एकता—अखण्डता का दर्शन करना ही तत्व ज्ञान है। तत्व ज्ञानियों ने इस रहस्य को जाना, अनुभव किया तत्पश्चात् कहा—

"एक धैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमेयं ध्रुवम् ।"

अर्थात्—सृष्टि की विचित्रता एवं विभिन्नता में भी अपरिमेय ध्रुव की एकता देखनी होगी।

"एष सर्वेश्वर एष भूताधिपतिरेषभूतपालः ।
एष सेतुर्गिनधरण एवां लोकानामसम्मेदाय ।।"

अर्थात्—"यह एक ही सबका ईश्वर है। समस्त जीवों का अधिपति एवं पालनकर्त्ता है। एक आधार बनकर लोक को धारण करता तथा ध्वंस से रक्षा करता है।"

वह एक परमात्मा सबसे अधिक प्रिय है।

तदेतत् प्रेयः पुत्राय प्रेयोविन्तात् ।
प्रेमोऽन्यस्मात् सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा ।।

अर्थात्—वह एक परमात्मा सबके अन्दर है। वह पुत्र प्रिय, चित्त से प्रिय तथा सबसे अधिक प्रिय है।

संसार में दुःख-क्लेशों की कमी नहीं है। आघात-प्रतिघातों की सीमा नहीं है। सुख-दुःख, विरह-मिलन, हानि-लाभ में सारा संसार विक्षुब्ध हो रहा है। किन्तु इस संग्राम में भी शान्ति रूप में वह परमात्मा विद्यमान है। यही कारण है कि इतने आघातों के बाद भी संसार ध्वंस नहीं होता। भाई-भाई, मित्र-शत्रु जितना आपसी संघर्ष से आन्दोलित होते हैं। उत्साही स्वतः एकत्व भाव से जुड़ते चले जाते हैं। पाप-तापों के बीच में भी कल्याणकारी, मंगलमयी भावना सबमें विद्यमान है। संसार में कितनी अशान्ति, कितना असमंजस्य है फिर भी देखते हैं कि मांगलिक आदर्श संसार में चिरकाल से विद्यमान है। यही कारण है कि मानवी संस्कृति एवं सभ्यता का अस्तित्व अब तक बना हुआ है अन्यथा यह संसार आपसी संघर्षों के कारण बहुत पहले ही नष्ट हो गया होता। मांगलिक आदर्श, कल्याणकारी भावों का प्रणेता वही परमात्मा है, जो सबके अन्तःकरण को प्रेरित, आन्दोलित करता रहता है तथा एकत्व के भाव का सृजन करता है।

सर्वत्र एक परमात्मा विद्यमान है। संसार मंगलमय है। सभी उस 'एक' से गुँथे हैं। सैद्धान्तिक रूप से यह सत्य स्वीकार तो सभी करते हैं किन्तु आपसी संघर्षों, दुःख-क्लेशों, पाप-सन्तापों को देखकर यह प्रश्न उठता है कि इन सबका कारण क्या है ? मंगलमय संसार अमंगलकारी कैसे हो गया ? एकता-अनेकता में, अखण्डता, खण्डता में कैसे परिवर्तित हो गयी ? तथ्यों की गहराई में जाने पर पता लगता है कि जीवन को खण्डित करके देखना ही सारी समस्याओं, दुःख-क्लेशों, पाप-सन्तापों का कारण है। अपना आपा ही जब सबमें प्रकाशित है तो फिर अपने पराये का भेद कहाँ ? भेद तो सही दृष्टिकोण के अभाव के कारण दीख पड़ता है।

समस्त क्षुद्रताओं की, विखण्डता की संकीर्णता को उस 'एकत्व' में जोड़ सकें तो सम्पूर्ण पाप-तापों से परिमाण पाना सम्भव है। अपनी हृदय की भावनाओं, चिन्तन एवं कर्म चेष्टाओं को उस 'एक' में घुला दें तो किसी प्रकार की बाधा हमें अधीर नहीं बना सकती, कोई विघ्न निराश नहीं कर सकता है। किसी मनुष्य से क्षोभ उत्पन्न नहीं हो सकता। जब अपना स्वरूप ही सबमें है तो कौन मित्र तथा कौन शत्रु है ? शक्ति का अहंकार, बुद्धि का दम्भ एवं ऐश्वर्य का गर्व इस भावना के उदय होते ही स्वतः नष्ट हो जायगा। मनुष्यों के बीच पाई जाने वाली पृथकता की प्रवृत्ति का अन्त होते ही देवोपम मनःस्थिति स्वर्णिम परिस्थिति का दर्शन होने लगेगा।

इस स्थिति में स्वभावतः सभी कार्यों में धैर्य एवं शान्ति का समावेश होने लगता है। चंचलता एवं उद्विग्नता समाप्त हो जाती है। समस्त वृत्तियों में सौन्दर्य और मंगल उद्भासित हो उठता है। संसार की समस्त वेदनाएँ माधुर्य से ओत-प्रोत दीखने लगती हैं। विखण्डता की दृष्टि ही समस्त दुःखों का कारण है।

"मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।"

अर्थात्—"मृत्यु से वह मृत्यु को प्राप्त करता है जो संसार को विखण्ड करके देखता है।"

खण्डता में कुरूपता है—सौन्दर्य है 'एक' में। खण्डता में चंचलता है—शान्ति है 'एक' में। खण्डता में विरोध है—मंगल है 'एक' में। खण्डता में मृत्यु है—अमृतत्व है 'एक' में। उस एक को विच्छिन्न करके देखने से हम असंख्यों प्रकार के आघातों से अपनी सुरक्षा नहीं कर सकते। खण्डता से संकीर्णता पनपती एवं बढ़ती है। फलस्वरूप वह अहं के पोषण में ही केन्द्रीभूत हो जाती है। खण्ड शरीर के परिपोषण में लगी क्षमता अखण्ड चेतना को नहीं देख पाती। व्यक्तिगत संग्रह से उपयोग की प्रवृत्ति बढ़ती है तथा परस्पर इस प्रतियोगिता की भावना से ईर्ष्या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्पन्न होती है जो सभी झगड़ों की जड़ है। विखण्डता की यह भावना अखण्ड चेतना के दर्शन से मनुष्य को सदा दूर रखती, जिसके कारण साधनों, वस्तुओं के प्रति मोह जीवन के अन्तिम दिनों तक बना रहता है। परिणाम यह होता है उस 'एक' परमात्मा के सान्निध्य से प्राप्त होने वाले आनन्द से सदा वंचित रह जाते हैं।

मनुष्य और मनुष्य के बीच पनपने वाले विभेद क्रम ही समस्त विग्रहों का मूल है। यदि एकता की—आत्मीयता की भावना विकसित हो—सब अपने दिखायी पड़ें—सबसे एकता की सूत्र-शृंखला बँधी दिखायी पड़े तो व्यक्तिगत संकीर्ण स्वार्थपरता का अन्त होने में देर न लगे। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना ही आध्यात्मिक समाजवाद है। उसी के प्रखर रहने पर भूतकाल स्वर्णिम युग बनकर रहा। उज्ज्वल भविष्य के लिए भी उसी एकता एवं आत्मीयता के तत्व दर्शन को सुविस्तृत करना होगा। आत्म-कल्याण एवं विश्व-कल्याण का यह एक ही उपाय है।

एकता और समता को मान्यता मिले

विभिन्नताओं, विचित्रताओं और विसंगतियों के दो ही प्रमुख कारण हैं—एक बिखराव दूसरा समता का अभाव। यदि इन दोनों को निरस्त किया जा सके, तो समझना चाहिए कि अनेकानेक उलझनों को सुलझाने का उपयुक्त समाधान हाथ लग गया।

एकता और समता के दो ही सिद्धान्त ऐसे हैं, जिन्हें अपनाया एवं कार्यान्वित किया जा सके तो समझना चाहिए कि विभीषिकाओं के निराकरण और प्रगति-प्रेरणा का समाधान एक साथ हाथ लग गया है।

मनुष्य जाति एक है। वह एक ही पिता की संतान है। सभी के एक जैसे अंग-अवयव हैं और सभी के जीवनयापन की मोटेतौर पर एक ही विधा काम करती है। यदि मिल-जुलकर रहने और समता का सिद्धान्त अपनाने की प्रक्रिया स्वीकृत मान्यताओं में सम्मिलित हो सके तो समझना चाहिए कि विग्रहों के घटाटोप अनुकूल हवा चलते ही तिरोहित हो गये।

कृत्रिम बिखरावों का अन्त नहीं। छोटे-छोटे समुदायों में लोगों ने अपनी अनगढ़ता के कारण एकता को अनेकता में, आत्मीयता को बिरानेपन में विभाजित करके बिखेर दिया है। जाति-पाँति के नाम पर चलने वाली ऊँच-नीच की मान्यता की जड़ में मात्र भ्रान्तियों का जंजाल ही पाया जाता है। भले-बुरे कर्मों के आधार पर तो नीच-ऊँच की बात सोची जा सकती है पर वंश परम्परा के आधार पर किसी समुदाय को ऊँचा और किसी को नीचा मानने की कोई तुक नहीं।

सम्प्रदायों का आधार पूजा पद्धति की भिन्नता और प्रथा-प्रचलनों में अन्तर तो हो सकता है, पर इस मान्यता का कोई आधार नहीं कि अपने निर्धारण ही सच हैं और सब झूठे हैं। अपनी मान्यता को ही लोग इच्छा या अनिच्छा से स्वीकार करें। धर्म का आविर्भाव नीति, सदाचार और उदार व्यवहार के विस्तार को ध्यान में रखते हुए हुआ था, पर आज तो उसी ने न केवल मनुष्य समाज को अनावश्यक रूप से विभाजित कर दिया है, वरन् अपनी-अपनी हठवादिता से पीछे पैर न हटाने के कारण आये दिन दंगे-फसाद होते रहते हैं।

भाषा, क्षेत्र के आधार पर झंझट खड़े होते हैं। 'अपना सो श्रेष्ठ, दूसरा सो निकृष्ट' जैसी मान्यतायें लोगों में कितना और कैसा बिखराव उत्पन्न करती हैं, इस दुर्भाग्य को हम आये दिन देखते हैं। यदि यह दुराग्रह घटाये, मिटाये और एक केन्द्र पर केन्द्रित किये जा सकें तो स्नेह, सद्भाव और सहयोग का ऐसा वातावरण बनेगा जिसकी आवश्यकता सर्वत्र दिखाई पड़ती है।

दूसरी बड़ी विभीषिका विषमता की है। अमीरी और गरीबी के बीच पाई जाने वाली विषमता ऐसी खाई बन रही है, जिसके कारण ईर्ष्या, द्वेष, विग्रह का माहौल क्रमशः बढ़ता ही जाता है। यदि औसत नागरिक स्तर का निर्वाह सभी के लिये एक व्यवस्था बन गई होती तो न ही ऊँचे टीले दिखाई पड़ते और न कहीं खाई-खंदक। समतल भूमि में ही कुछ निर्माण और उत्पादन संभव होता। इस शाश्वत सिद्धान्त की उपेक्षा करके विषमता के विष बीज हर खेत में बोये जा रहे हैं।

जाति वंश के, नर-नारी के मध्य बरती जाने वाली वरिष्ठता और कनिष्ठता अस्वाभाविक और अनैतिक होने के कारण अवनति और असंतोष का दुहरा संकट खड़ा कर रही है। यदि न्याय को मान्यता मिली होती तो न नर-नारी के बीच बरते जाने वाले भेद-भाव का कहीं कोई अस्तित्व रहता और न जाति-वंश के नाम पर चल रही विषमता को कहीं प्रश्रय मिलता। समय की माँग है कि एकता और समता का शाश्वत सिद्धान्त अब भी उसी प्रकार अपनाया जाय, जैसा कि न्याय और औचित्य वाले सतयुग में बरता जाता था।

एकता और समता का आदर्श

राष्ट्रीय एकता का वास्तविक तात्पर्य है—मानवी एकता। मनुष्य की एक जाति है। उसे किन्हीं कारणों से विखण्डित नहीं होना चाहिए। भाषा, क्षेत्र, सम्प्रदाय, जाति, लिंग, धन, शिक्षा, पद आदि के कारण किसी को विशिष्ट एवं किसी को निकृष्ट नहीं माना जाना चाहिए। सभी को समाज में उचित स्थान और सम्मान मिलना चाहिए। उपरोक्त कारणों में से किसी को भी यह अधिकार नहीं मिलना चाहिए कि अपने को बड़प्पन के अहंकार से भरे और दूसरे को हेय समझे, उसका तिरस्कार करे।

इन दिनों कई प्रान्तों में सम्प्रदाय विशेष के सदस्य होने के कारण अथवा पृथक् भाषा-भाषी होने के कारण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने वर्ग-वर्ण को पृथक् मानने और राष्ट्रीय धारा से कट कर अपनी विशेष भूमि, विशेष पहचान बनाने की प्रवृत्ति चल पड़ी है। इसे शान्त करने के लिए वैसे ही प्रयत्न किए जाने चाहिए, जैसे अग्निकाण्ड आरम्भ होने पर उसके फैलने से पूर्व ही किए जाते हैं। समता और एकता के उद्यान उजाड़ डालने की छूट किसी को भी नहीं मिलनी चाहिए। द्वेष को प्रेम से जीता जाता है। विग्रह को तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण प्रस्तुत करते हुए विवेकपूर्वक शान्त किया जाता है। आक्रमण-प्रत्याक्रमण से तो विषमतायें बढ़ती ही जाती हैं और उस कुचक्र का कभी अन्त नहीं होता। इसलिए दुर्भाव और विग्रहों के पनपते ही उनके शमन समाधान का प्रयत्न करना चाहिए।

यह सामयिक उभार है जो देश का बुरा चाहने वालों की दुरभिसंधि के कारण उठ खड़े हुए हैं। यह विषवेलि पानी न मिलने पर समयानुसार सूख जायगी। पर कुछ व्याधियाँ ऐसी हैं जो चिरकाल से चली आने के कारण प्रथा परिपाटी बन गई हैं और उनके कारण देश की क्षमता तथा एकता दुर्बल होती चली आई है। समय आया है कि उन भूलों को अब समय रहते सुधार लिया जाय। अन्यथा यह सड़ते हुए फोड़े समूचे शरीर को विषैला कर सकते हैं।

जब सभी मनुष्यों की संरचना, रक्त-माँस की बनावट एक जैसी है तो उनमें से किसे ऊँचा, किसे नीचा कहा जा सकता है ? ऊँच-नीच तो सत्कर्म और कुकर्म के कारण बनते हैं। उसका जाति-वंश से कोई सम्बन्ध नहीं। धर्म एक है। सम्प्रदायों का प्रचलन तो समय और क्षेत्रों की आवश्यकता के अनुरूप हुआ है। उनमें से जो जिसे भावे, वह उसे अपनावे। खाने-पहनने सम्बन्धी भिन्न रुचि को जब सहन किया जाता है, तो भिन्न-भिन्न देवताओं की पूजा, भिन्न परम्पराओं का अपनाया जाना किसी को क्यों बुरा लगना चाहिए ? एक बगीचे में अनेक रंगों के फूल हो सकते हैं, तो एक देश में अनेक सम्प्रदायों के प्रचलन में ऐसी क्या बात है, जिसके कारण परस्पर विद्वेष किया जाय और एक-दूसरे को नास्तिक या अधर्मी कहकर निन्दित बताया जाय। सम्प्रदायों की एकता पर हम सबको पूरा जोर देना चाहिए। भाषाओं की भिन्नता पर लड़ने की आवश्यकता नहीं। अनेकता को हटाकर हमें भाषायी एकता अपनानी चाहिए ताकि समूचे देशवासी एक विचारों का आदान-प्रदान सरलता के साथ कर सकें।

नर-नारी के बीच बरता जाने वाला भेद-भाव तो और भी निन्दनीय है। हम अपनी ही माताओं, पुत्रियों, बहिनों, पत्नियों को हेय दृष्टि से देखें, यह कैसी अनीति है ? इस भूल को अपनाये रहने पर आधा समाज पक्षाघात पीड़ित की तरह अपंग रह जाता है। परिवार वैसे नहीं बन पाते जैसे कि सुयोग्य गृहलक्ष्मी के नेतृत्व में वे बन सकते हैं।

भारतीय संस्कृति के दो प्रमुख आदर्श हैं। एक 'वसुधैव कुटुम्बकम' दूसरा 'आत्मवत् सर्वभूतेषु'। इन दोनों को हृदयंगम करने पर एकता और समता को ही मान्यता देनी पड़ती है। इन आदर्शों को हमें किसी देश, क्षेत्र, सम्प्रदाय के सुधार तक ही सीमित न रखकर विश्वव्यापी बनाना चाहिए, ताकि समूची मनुष्य जाति सुख-शान्ति से रह सके और सर्वतोमुखी प्रगति कर सके।

राष्ट्रीय एकता का चिन्तनीय अभाव

पिछले दिनों देश के विभिन्न भागों से अलग प्रान्त, अलग राज्य और अलग देश की माँग उठती रही है। कई आन्दोलन भी चले उनमें से अधिकांश असफल हुए फिर भी उनके उठने, चलने और जीवित रहने के कारण विचारणीय हैं। इस तरह की माँग उठाने वाले प्रायः विकृत राजनीतिक महत्वाकांक्षी लोग ही रहे हैं, क्योंकि कन्याकुमारी से हिमाचल तक और असम से बंगाल तक भारत एक राष्ट्र है। इस विशाल राष्ट्र में अनेक तरह के लोग हैं। विविध भाषा-भाषी, रहन-सहन के, अलग ढंग वाले क्षेत्र और विभिन्न जीवन पद्धतियाँ अपनाने वाले अपने देश में रहते हैं—इसके बावजूद भी कई मतावलम्बी भी। भारत सदा से एक राष्ट्र रहा है। प्राचीनकाल से विभिन्न संस्कृतियों की संगम स्थली होने की बावजूद भी भारत को एक राष्ट्र समझा और माना जाता रहा है। हजारों वर्ष पूर्व रचे गये विष्णु पुराण का यह श्लोक इस संदर्भ में दृष्टव्य है—

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणं।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।

जो समुद्र के उत्तर में और हिमाच्छादित पर्वत के दक्षिण में है वही भारत है और उसके निवासी भारतीय-भरत की सन्तान हैं। इस एकात्म अनुभूति के बावजूद भी जब अलग प्रान्त और स्वायत्त प्रदेशों की माँग उठती है और उसके कारण यह बताये जाते हैं कि यह कतिपय राजनेताओं की विकृत महत्वाकांक्षायें हैं—जिनसे वे आन्दोलन चलाते हैं, तो इस बात पर ध्यान जाता है कि ऐसे आन्दोलनों को चलने की शक्ति कहाँ से मिलती है ?

निःसन्देह वह शक्ति जनता में से आती है। बहका कर या फुसलाकर ही सही राजनेता लोग अपने आन्दोलनों का औचित्य सिद्ध करते हैं और वही कारण प्रबल हो जाते हैं, जिनकी स्थिति जनमानस की भावनात्मक आस्थाओं को तोड़ने लगती है। सम्प्रदाय के आधार पर स्वतन्त्रता मिलते ही पाकिस्तान बना, मिजोरम और नागालैण्ड में भारत से टूटने जैसी स्थिति बन रही है, असम में भारत से अलग होने की माँगें उठती रहती हैं और उपद्रव भी होते रहते हैं, जनता इन सब माँगों और आन्दोलनों को सहती जाती है। सहती ही नहीं समर्थन भी करती जाती है तो संदेह होता है कि अब तक हमारे देश में राष्ट्रीय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एकता और साम्प्रदायिक सामंजस्य का भाव उत्पन्न नहीं हो सका है।

भूतपूर्व शिक्षामंत्री तथा राज्यसभा के सदस्य श्री मोहम्मद करीम छागला ने इस स्थिति की ओर जन प्रतिनिधियों का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा है—"मेरी राय में हमारे देश का एक दुर्भाग्य यह है जैसा कि किसी ने कहा है भारत में बहुत थोड़े 'भारतीय' हैं। हम अपनी जाति के बारे में सोचते हैं, अपने सम्प्रदाय के बारे में सोचते हैं, अपनी भाषा के बारे में सोचते हैं, अपने धर्म के बारे में सोचते हैं और अन्त में कभी ही अपने देश के बारे में सोचते हैं। जबकि आवश्यक यह है कि हमारी पहली और सबसे प्रमुख निष्ठा अपने देश के प्रति होनी चाहिए।"

इसी समस्या को उजागर करते हुए प्रख्यात राजनेता श्री बलराज मधोक ने भी कहा था—'आज अधिकतर भारतीय पहले पंजाबी, बंगाली, गुजराती, मलयाली या और कुछ हैं, भारतीय सिर्फ उसके बाद अथवा कभी भी नहीं।"

विचारणीय यह है कि इस प्रकार की भावनायें उत्पन्न क्यों हुईं ? ये वस्तुतः उत्पन्न होती नहीं, इन्हें उभाड़ा जाता है राष्ट्रविरोधी तत्वों द्वारा अथवा संकीर्ण स्वार्थी राजनेताओं द्वारा। इसी स्थिति का एक उदाहरण रखते हुए बलराज मधोक ने अपनी 'भारतीय करण' पुस्तक में लिखा है—असम के राष्ट्र विरोधी तत्व वहाँ की प्रादेशिक भावना का लाभ उठाकर गैर आसामी हिन्दुओं को निकाल बाहर करते रहे हैं, जिससे कि सामाजिक महत्त्व के इस क्षेत्र में वे अपनी स्थिति को मजबूत बना सकें और सही समय पर पाकिस्तान अथवा चीन द्वारा इस प्रदेश को हड़प लिया जा सके। यह तथ्य एक चेतावनी है और राष्ट्रवादी भारत इसकी उपेक्षा अपने अस्तित्व को खतरे में डालकर ही कर सकता है।

राष्ट्रविरोधी तत्व और संकीर्ण महत्वाकांक्षी नेता सदा से चली आ रही अनेकता में एकता की विशिष्टता को खण्डित कर राष्ट्रीय हितों के साथ खिलवाड़ करते हैं। जाति, सम्प्रदाय, धर्म, सभ्यता और भाषा के नाम पर विघटन को उभाड़ने से ओछे स्वार्थ तो पूरे किया जा सकते हैं परन्तु उनके भयंकर परिणामों से भी नहीं बचा जा सकता। इतिहास साक्षी है कि अपने डेढ़ चावल की अलग-अलग खिचड़ी पकाते रहने के कारण ही भारत को विदेशी आक्रान्ताओं के सम्मुख घुटने टेकने पड़े थे। आज के युग में संघ शक्ति का महत्त्व तो और भी बढ़ गया है, ऐसी दशा में अराष्ट्रीय भावनायें और भी अधिक घातक सिद्ध हो सकती हैं।

जिन आधारों पर जनता में विघटनकारी प्रवृत्तियों को उभाड़ा जाता है, उनमें पहला क्रम आता है जाति का। यह सभी जानते हैं कि हमारे देश में जन्म नहीं कर्म—जीविकोपार्जन का व्यवसाय ही वर्ण व्यवस्था का आधार रहा है। व्यक्ति का गुण, कर्म और स्वभाव ही उसके वर्ण निर्धारण करता था। वाल्मीकि, सत्यकाम जैसे ऋषि अब्राह्मण माता-पिता की सन्तान और अवैध सन्तानें होते हुए भी ब्राह्मण बने थे। जन्म के आधार पर वर्ण-व्यवस्था का निर्धारण तो बहुत बाद में होने लगा। फिर भी उनकी एकता और सामंजस्य में कोई अन्तर नहीं आया। अलग-अलग वर्ण होते हुए भी सबके सब समाज शरीर के विभिन्न अंग माने जाते रहे। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में आता है कि सृष्टा के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय और उदर से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। यह सूक्त सभी वर्णों को एक सूत्र में बाँधे रहा।

लेकिन विदेशियों के आगमन के साथ ही जातीय भावनाओं, भेदभावों को उभारा गया ताकि आक्रामक जातियाँ अपने राजनीतिक उद्देश्यों को पूरा कर सकें। कई शताब्दियों की दासता ने जाति प्रथा को भी रूढ़ बना दिया। छूआछूत और विधि-निषेध का प्रचलन भी उन्हीं दिनों हुआ और यह प्रचलन भीषण रूप से गहराता गया। यह मानना भूल होगी कि केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही शूद्रों से भेदभाव का व्यवहार करते थे। वरन् तथ्य तो यह है कि शूद्रों में भी अनेक जातियाँ हो गयीं और वे भी परस्पर छूआछूत का व्यवहार करने लगीं।

इसके बाद भारतीय पुनर्जागरण काल में जातिप्रथा और छुआछूत की भावनाओं के विरुद्ध आन्दोलन उठाया गया। महात्मा गाँधी ने तो हरिजनों के उत्थान और छुआछूत के उन्मूलन को अपने स्वराज्य आन्दोलन का ही एक अंग बना लिया था। लेकिन स्वतन्त्रता के बाद भी इस दिशा में कोई विशेष प्रगति नहीं हो पायी—उल्टे अलग भावना को प्रोत्साहन-सा मिलने लगा। विभिन्न पार्टियाँ और राजनेता अपने राजनैतिक प्रयोजनों के लिए जातिवाद को प्रोत्साहन देने लगे। ऐसे प्रोत्साहन से एक बार पुनः जातीयता राष्ट्रीय एकता के विकास में बाधक बनी है और लोग अपने आपको भारतीय कम तथा ब्राह्मण, राजपूत, जाट, हरिजन या बनिया अधिक समझते हैं।

जाति प्रथा के बाद अराष्ट्रीयता को प्रोत्साहन देने वाला दूसरा कारण है सम्प्रदाय और धर्म। कहा जा चुका है भारत सदा से विभिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं का संगम केन्द्र रहा है। यहाँ चार्वाक जैसे नास्तिकतावादी दार्शनिकों को मान्यता दी गयी तो इस संसार को ही मिथ्या कहने वाले शंकराचार्य जैसी विभूतियों को भी धर्मगुरु मान्य किया गया। कहने का अर्थ यह कि आस्तिक, नास्तिक, बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव, शाक्त, दक्षिणमार्गी, वाममार्गी आदि कितनी ही उपासना पद्धतियों का विकास हुआ, उनका प्रचार हुआ और लाखों में उनके अनुयायी बने। जो लोग उनके प्रवर्तकों का अनुसरण नहीं कर सके उन्होंने भी उनका सम्मान और आदर किया ही—यहाँ तक कि बाहर देशों से आये विदेशी धर्मों और विदेशी जातियों का भी कोई विरोध नहीं हुआ। शक, हूण, मुस्लिम, पारसी, ईसाई आदि विदेशी मतावलम्बियों को भी यहाँ सहिष्णुतापूर्वक अपनाया गया। अनेकता बनी रही पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एकता में कोई बाधा नहीं आयी। इस सह-अस्तित्व को समाप्त करने के कुप्रयास भी हुए। विशेषकर मुगल शासकों ने सारे भारत को इस्लाम के रंग में रंगने का प्रयत्न किया परन्तु मत स्वातन्त्र्य भारत की मूल प्रकृति में समाया हुआ था—वह नष्ट नहीं किया जा सका।

कितने ही प्रयत्नों के बावजूद भारत में विद्यमान अनेकता को न तो समाप्त किया जा सका और न ही उस आधार पर देश के टुकड़े हुए। लेकिन एक विचित्र, दुखद और चौंका देने वाला तथ्य है यह कि आठ सौ वर्षों तक भारत पर शासन करते रहने के बावजूद तथा उसके बाद भी दो सौ वर्ष में मुगल शासक कोई पाकिस्तान नहीं बना सके, लेकिन संकीर्ण स्वार्थी साम्प्रदायिक नेताओं के कारण चंद महीनों में ही भारत को मिली आजादी खण्डित हो गयी और अब सम्प्रदायों के आधार पर विघटनकारी प्रवृत्तियों को और भी प्रोत्साहन दिया जाने लगा है। हिन्दू, मुस्लिम साम्प्रदायिक असामंजस्य की स्थिति का चित्रण तो एक अलग और स्वतन्त्र ही विषय है।

भाषा और प्रान्त के आधार पर तो अराष्ट्रीयता की विकृतियों को इतना उभाड़ा जाता है कि लगता है भारत में भारतीय नहीं बंगाली, पंजाबी, मलयाली, गुजराती लोग ही बसते हैं। भारत नाम की कोई चीज ही नहीं है और न ही उसकी कल्पना। रेलवे लाइन मध्य-प्रदेश में से होकर निकलेगी या राजस्थान में से, नहर का पानी किस प्रान्त को मिलेगा, अमुक फैक्ट्री कहाँ खुलेगी इन छोटी-छोटी बातों को लेकर ही बड़े उग्र आन्दोलन खड़े हो जाते हैं। यहाँ तक कि अमुक क्षेत्र किस प्रान्त में रहेगा ? इस बात को लेकर भी कई बार बड़े विवाद उठते हैं। महाराष्ट्र और मैसूर प्रान्त का सीमा विवाद तो अभी कुछ समय पहले ही की घटना है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में पड़ोसी देशों से इस बात को लेकर विवाद हो तो बात जरा समझ में भी आती है। परन्तु इस विवाद का क्या औचित्य है कि अमुक क्षेत्र किस प्रान्त में रहेगा ? रेलवे लाइन, नहर, फैक्टरियाँ और उत्पादन संस्थान कहाँ खुलते हैं, इसका निर्धारण उपयुक्तता, आवश्यकता पूर्ति, सुविधा और लाभदायक परिस्थितियों के आधार पर होना चाहिए अथवा इस आधार पर कि वह अमुक प्रान्त में खुलनी चाहिए क्योंकि वहाँ के लोगों की माँग है और यह माँग उस स्तर की होती है जैसे किसी दूसरे स्थान पर फैक्ट्री खुलने के कारण अन्य देशों को लाभ पहुँच रहा हो। लाभ देश को ही होगा न, परन्तु नहीं हमारे प्रान्त में खुलना चाहिए और प्रान्त में ही नहीं हमारे क्षेत्र में खुलना चाहिए, हमारे गाँव में खुलना चाहिए। इस संकीर्ण भावना का कभी यह रूप भी देखने को मिले कि हमारे घर में खुलना चाहिए, तो वर्तमान स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए ऐसा आग्रह आश्चर्यजनक नहीं कहा जा सकता क्योंकि औसत जनता की दृष्टि संकीर्ण होती जा रही है और आम आदमी अपने स्वार्थों के ओछेपन में उलझता जा रहा है।

निःसंदेह इस प्रकार की प्रवृत्तियों को भड़काने का दायित्व कुछेक लोगों पर है। अन्यथा मनुष्य तो अन्ततः स्वार्थी है ही—लेकिन स्वार्थ की एक विशेषता यह भी है कि निर्दोष स्थिति में वह अपने स्वार्थ को समाज के साथ जोड़कर चलता है या कहना चाहिए उसे चलना पड़ता है। संयुक्त रूप से सम्मिलित स्वार्थों की पूर्ति हो सके इसीलिए राष्ट्रों और देशों का उदय होता है। सामाजिकता की भावना प्रत्येक व्यक्ति के लिए कल्याणकारक होती है। इसीलिए राष्ट्र-प्रेम और देशभक्ति का बड़ा महत्व है।

वर्तमान संदर्भों में यह जानना और मानना आवश्यक है कि और कुछ होने के पहले हम भारतीय हैं। मोहम्मद करीम छागला के शब्दों में 'हमें एक भारतीय दृष्टि विकसित करनी चाहिए अपने देश में हमें राष्ट्रीय दृष्टि के लोगों की जरूरत है।" राजनेताओं के लिए इस राष्ट्रीय दृष्टिकोण को अपनाने का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा था कि ब्रिटेन के महान् राजनीतिज्ञ बर्क शेफील्ड चुनाव क्षेत्र से चुने गये थे। संसद में एक बार उनके मित्र ने कहा था—आप अपने चुनाव क्षेत्र में पर्याप्त रुचि नहीं ले रहे हैं तो बर्क ने कहा—यद्यपि शेफील्ड ने मुझे चुना है परन्तु एक बार चुना है। परन्तु एक बार चुना जाकर मैं शेफील्ड का नहीं पूरे इंग्लैण्ड का प्रतिनिधि बन गया हूँ।" काश यह दृष्टिकोण हमारे राजनेता अपना सकें तथा भारतीयता का दृष्टिकोण हमारे देशवासी विकसित कर सकें।

हम एकता और एकात्मता की दिशा में बढ़ चलें

समर्थता कितनी ही बढ़ी-चढ़ी क्यों न हो पर यदि वह भटकाव एवं बिखराव के कारण अस्त-व्यस्त होती रहेगी, तब उससे कोई कहने लायक प्रयोजन पूरा न हो सकेगा। प्रकृतिगत शक्तियों के बिखरी रहने पर वे ऐसे ही अस्त-व्यस्त स्थिति में बनी रहती हैं, पर यदि उन्हें केन्द्रित कर दिया जायगा तो आतिशी शीशे द्वारा एकत्रित की गई किरणों की तरह अपनी प्रखरता का परिचय देने लगती हैं। भाप को केन्द्रित करके चलने वाले ईंधन और नली में केन्द्रीभूत तनिक-सी बारूद से निशाना बेधने वाले आग्नेयास्त्र यह बताते हैं कि एकत्रीकरण और सुनियोजन के कैसे चमत्कारी परिणाम हो सकते हैं ?

उदाहरण के लिए हर मनुष्य में रहने वाली श्रम शक्ति को लिया जा सकता है, वह मात्र निर्वाह उपार्जन भर के काम आती है, किन्तु यदि उसे संगठित और दिशाबद्ध किया जा सके तो इतने बड़े काम सम्पन्न हो सकते हैं, जिनकी सम्भावना पर साधारणतः विश्वास भी न किया जा सके।

अब से कोई ढाई हजार वर्ष पूर्व चीन असंगठित और अस्त-व्यस्त स्थिति में था। प्रजाजनों को हूण नामक एक वर्बर जाति के आक्रमणों का शिकार होना पड़ता था। प्रतिरोध योजनाबद्ध न होने से प्रायः असफल रहता और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जनसाधारण को धन, जन की भारी क्षति आये दिन उठानी पड़ती।

इस बीच एक विचार उस देश में उभरा कि उत्तरी क्षेत्र में एक मजबूत सुरक्षा दीवार खड़ी की जाय। यह कार्य पीले समुद्र से आरम्भ होकर पेडपिंग होता हुआ मध्य ऐशिया की गोवी मरुभूमि तक सम्पन्न होना था। शासन के कोष में न इतना धन था और न कर्मचारी कौशल जो इतने विशालकाय निर्माण का साहस कर सके। जन नेताओं ने यह उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर उठाया। प्रस्तावित योजना कार्यान्वित हुई और पत्थरों, चट्टानों से बनी १५०० मील लम्बी दीवार के लिए विपुल जनशक्ति तथा धनशक्ति उपलब्ध होना आरम्भ हो गया। दीवार की ऊँचाई जमीन से ३० फुट ऊँची है। उसके ऊपर बने रास्ते की चौड़ाई १५ फुट है ताकि युद्ध के समय सैन्य दल का आवागमन भली प्रकार होता रहे। उस मार्ग में १०० गज के फासले पर सैनिक बचाव के लिये किलेबन्दी जैसी मीनारों का भी निर्माण हुआ है।

पुरातत्ववेत्ताओं का मत है कि इजिप्ट में बना गीजा का विशाल पिरामिड ईसा के २५०० वर्षों पूर्व विनिर्मित हुआ था। उस समय लोगों को चक्का-घिरनी आदि तक की जानकारी न थी। पिरामिड के निर्माण में मन्त्रशक्ति का नहीं जनशक्ति का अधिक योगदान है। पिरामिड क्षेत्र लगभग १५ एकड़ में फैला हुआ है। इसमें चूना, पत्थर व ग्रेनाइट के २३ लाख विशाल खण्ड लगे हैं। दुर्लभ पाषाण खण्डों को ढूँढ़कर लाने में कष्टसाध्य श्रम करना पड़ा क्योंकि भारी प्रस्तर खण्डों को लाने के लिए आज जैसे साधन उन दिनों उपलब्ध नहीं थे। वह कार्य मात्र जनशक्ति के सहयोग से ही सम्भव हो सका।

ग्रीक के राजा खूफू के शासन काल में उसी प्रकार का एक विशाल मकबरा जनसहयोग से बनवाया गया। कहा जाता है कि उस पिरामिड जैसे मकबरे का निर्माण २० वर्षों में सम्पन्न हुआ तथा निरन्तर एक लाख व्यक्ति उस निर्माण कार्य में संलग्न रहे। पिरामिड की ऊँचाई ४८० फुट है. जो आधुनिक ४८ मंजिली ऊँची गगनचुम्बी प्रासाद जैसी दूर से ही दृष्टिगोचर होती है। इस निर्माण का कला-कौशल व अन्दर विनिर्मित गुह्य गृह उनमें पहुँचने का मार्ग तथा वायु प्रवेश की सुव्यवस्था बताते हैं कि इन्हें बनाने में मात्र श्रम ही नहीं, कलात्मक बुद्धि का भी भरपूर उपयोग हुआ है।

अमेरिका में न्यूयार्क से सेनफ्रांसिस्को केप हार्च का रास्ता उन दिनों १३ हजार मील लम्बा पड़ता था। दो समुद्रों को मिलाने के लिए एक नहर खोदने की योजना बनी और वह संकल्प पनामा नहर के रूप में सन् १९१४ में पूर्ण हुआ। अब वह दूरी १३ हजार मील से घटकर मात्र ५ हजार मील रह गई है। स्वेज नहर के निर्माण का इतिहास भी ऐसा ही है जिसने पूर्व और पच्छिम को एक शृंखला में जोड़ने का बहुत बड़ा काम कर दिखाया।

इस कार्य में १६ वर्ष लगे। इसमें सरकारी प्रयासों की तरह प्रचुर जन सहयोग भी नियोजित रहा है। हजारों स्वयं-सेवकों ने नाम मात्र के निर्वाह पर कठोरतम श्रम किया है। ११० डिग्री फारेनहाइट तापमान रहने पर भी उत्साही स्वयंसेवक औसतन १० घण्टा काम करने में बिना मुँह मलीन किये निरन्तर जुटे रहे। १९११ के एक दिन का कीर्तिमान १,३३,००० टन मिट्टी तथा पत्थर हटाने का है। जनवरी १९१३ में भयंकर भूस्खलन के बावजूद श्रमिकों का इस उत्साह से कचरा साफ करने का परिश्रम भी ऐसा ही है जिसकी तुलना नहीं हो सकती।

श्रम शक्ति की तरह ही भाषाओं और धर्मों की दो सामर्थ्यें ऐसी हैं, जो मानवी ज्ञान और चरित्र को प्रभावित करने की असाधारण क्षमताओं से सुसम्पन्न है। भाषाओं के आधार पर विचारों का आदान-प्रदान बन पड़ता है और धर्मों का भावनात्मक एकीकरण के साथ सीधा सम्बन्ध है। यदि उनके बीच बिखराव न हो, केन्द्रीकरण बन पड़े तो मानवी मस्तिष्क एवं अन्तःकरण को इसका असाधारण लाभ मिल सकता है। भाषाओं की अनेकता यदि दूर हो सके, लोग एक भाषा बोलें व वार्त्तालाप, पत्र-व्यवहार का नया द्वार खुले और प्रकाशित होने वाला साहित्य देखते-देखते संसार भर में सर्व-सुलभ बन पड़े। इतना ही नहीं अधिक संख्या में छपने के कारण सस्ता भी बिके।

एक भाषा में कोई महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाशित हो तो उसका लाभ अन्य भाषा-भाषी तभी उठा सकेंगे जब वह अनुदित होकर उस भाषा में भी छप सके। इतना न बन पड़े तो उस ज्ञान का लाभ मात्र उसी भाषा वालों को मिलेगा जिसमें वह प्रकाशित हुआ था। अनेक भाषाओं के अक्षर बनाने-जोड़ने में जो असाधारण व्यय होता तथा झंझट पड़ता है वह एक लिपि का प्रचलन होने पर सहज ही समाप्त हो सकता है। इसके साथ ही संसार के किसी भी क्षेत्र का व्यक्ति कहीं भी जाकर वार्त्तालाप कर सकता है, आदान-प्रदान का द्वार खोल सकता है, जबकि अन्य भाषा-भाषी क्षेत्रों में जाकर उसे गूँगे-बहरे की तरह अपने आपको अपंग, असहाय अनुभव करना पड़ता है।

विश्व भर में २७९६ भाषाएँ प्रचलित हैं तथा अनेकों प्रकार की बोलियाँ बोली जाती हैं। पाँच अरब से भी अधिक विश्व के लोग औसतन १५-१५ लाख व्यक्ति एक भाषा के उपयोगकर्त्ता हैं।

चीनी भाषा के बोलने वाले विश्व में सर्वाधिक हैं, इनकी संख्या ८० करोड़ है। दूसरा स्थान अँग्रेजी भाषा का है। अनुमानतः ३५ करोड़ व्यक्ति अँग्रेजी बोलते हैं। २० करोड़ व्यक्तियों की बोलचाल की भाषा हिन्दी है। लगभग इतनी ही संख्या रूसी भाषा के प्रयोक्ताओं की है। १५ करोड़ व्यक्ति जर्मन और फ्रेंच भाषा में बातचीत करते हैं। स्पेनी भाषा के सम्पर्क में २० करोड़ व्यक्ति हैं। लगभग १२ करोड़ व्यक्तियों की भाषा जापानी है। १० करोड़ व्यक्ति अरबी भाषा-भाषी हैं। इतनी ही संख्या पुर्तगाली भाषाइयों की है। ८ करोड़ के लगभग लोग इटालियन भाषा का प्रयोग करते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भारत में ६०० प्रकार की भाषाएँ प्रचलित हैं। प्रमुख भाषाओं के प्रयोक्ता इस प्रकार हैं—हिन्दी-२० करोड़, तेलगू-५ करोड़, मराठी-३ करोड़, बंगला-३ करोड़, तामिल-३ करोड़ १० लाख, गुजराती-२ करोड़, मलयालम-डेढ़ करोड़, पंजाबी गुरुमुखी-१ करोड़, मारवाड़ी-५० लाख, कश्मीरी-१५० हजार, राजस्थानी ३० लाख, कन्नड़ २५ लाख, उड़िया-२० लाख, मेवाड़ी-२० लाख, उर्दू-१ करोड़ अन्य भाषाओं के आँकड़े भी अप्राप्य किये गये हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक भाषाएँ भी विभिन्न क्षेत्रों में बोली जाती हैं।

इन ६०० भाषाओं में से ५८ भाषाओं का उपयोग विभिन्न प्रान्तों में शैक्षणिक कार्यों में किया जाता है।

संसार भर में प्रचलित धर्म सम्प्रदायों की गणना प्रायः ६०० है। इसमें कवायली सम्प्रदाय सम्मिलित नहीं हैं क्योंकि वे छोटे-छोटे वर्गों और थोड़े-थोड़े क्षेत्रों में प्रचलित हैं। प्रख्यात धर्मों में ईसाई, मुसलिम, हिन्दू, बौद्ध, पारसी आदि हैं। इनकी शाखा-प्रशाखाओं के रूप में ही अन्य सम्प्रदायों ने अपना पृथक् ढाँचा खड़ा किया है। अकेले हिन्दू धर्म के अन्तर्गत विज्ञात जानकारी के अनुसार प्रायः ३८०० सम्प्रदाय हैं। अन्य धर्मों में यह बिखराव इतना अधिक नहीं है।

भारत के प्रमुख धर्मों की जनगणना की संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है। सन् १९८१ की जनगणना में अनुमानतया कुल ६८ करोड़ जनसंख्या में हिन्दू ८२ प्रतिशत, मुसलमान १२ प्रतिशत और ईसाई ६ प्रतिशत थे।

सन् १८८१-१९४१ की मध्यावधि में मुस्लिम जनसंख्या में ८९ प्रतिशत की तथा ईसाई जनसंख्या में ३१८ प्रतिशत की वृद्धि हुई, जबकि हिन्दू मात्र ४४ प्रतिशत ही बढ़े। तुलनात्मक औसत वृद्धि की दृष्टि से इस ६० वर्षों में पूरे भारत में ५६ हिन्दू प्रति हजार घटे और ४३ मुस्लिम प्रति हजार बढ़े।

विभाजन के पश्चात् १९५१ में हिन्दू-८५ प्रतिशत, मुस्लिम-९.९१ प्रतिशत तथा ईसाई-२.३५ प्रतिशत थे। १९६१ की जनगणना के अनुसार हिन्दू ८३.५० प्रतिशत, मुस्लिम-१०.७० प्रतिशत तथा ईसाइयों की २.४४ प्रतिशत हो गये।

धर्म सम्प्रदायों के इस बिखराव से बौद्धिक और भावनात्मक खाई ही उत्पन्न होती है। कई बार तो कट्टरता के आवेग में इनके अनुयायी अपने को धर्मात्मा और अन्यान्यों को अधर्मी ठहराते देखे गये हैं। इतना ही नहीं बलपूर्वक वशवर्ती या पक्षधर बनाने के लिए अत्याचार, रक्तपात तक करने में सान्निद्ध तक देखे गये हैं। इन बिखरावों में पृथक्-पृथक् धर्म संस्थानों की, ग्रन्थों एवं कर्मकाण्ड की विविधता सामने आती है जिसमें असीम धन, श्रम, समय ऐसे ही निरर्थक अस्त-व्यस्त होता रहता है।

एकता अपने समय की सबसे बड़ी माँग है। इसमें हर दृष्टि से दूरदर्शिता है। शक्तियों को एक दिशा में नियोजित करने का प्रतिफल संयुक्त श्रम के रूप में चमत्कारी प्रतिफल प्रस्तुत कर रहा है। आवश्यकता इस बात की भी है कि भाषाओं और धर्मों को भी एक केन्द्र पर केन्द्रित होने—एक लक्ष्य अपनाने और मिल-जुलकर काम करने के लिए सहमत किया जाय। भाषायी सम्प्रदायी बिखराव को समेटने की ओर अब विज्ञजनों का ध्यान जाना चाहिए। इस आधार पर उत्पन्न होने वाली एकात्मता के आधार पर नवसृजन का प्रयोजन पूरा करने में असाधारण योगदान हो सकता है। तथ्य को समझते हुए इस दिशा में सोचा ही नहीं कुछ किया भी जाना चाहिए। धर्माध्यक्ष इसे नहीं करते तो जनशक्ति को इस पुण्य-प्रयोजन हेतु आगे आना चाहिए।

सामाजिक एकता की ओर बढ़ें

ऋग्वेद काल में आर्यगण एक साथ मिलकर यज्ञ आदि धार्मिक कृत्य किया करते थे और प्रार्थना करते थे कि, हे प्रकाश स्वरूप स्वामिन् ! हमारे हृदय में ऐसा प्रकाश करिए कि हम सब एक-दूसरे से मिलकर रहें। हमारे घर धन-धान्य से भरपूर रहें **(संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने ....)** अपने सफल जीवन बनाने के वास्ते हम सब मिलकर चलें, मिलकर बातचीत करें और एकमत होकर हम सब अपनी जीवन-यात्रा पूरी करें; जैसा कि पहिले के विद्वान करते थे **(संगच्छध्वं संवदध्वं ....)** हमारी सभाएँ, हमारे मन, हमारे विचार, हमारी काम करने की शैली एक जैसी अविरुद्ध हों **(समानो मन्त्रः समितिः समानी ....)** हमारे शुभ संकल्प एक जैसे हों, हमारे मन और हृदय अविरुद्ध है। जिससे हम एक-दूसरे की यथा समय सहायता कर सकें। हम कभी अपने आपको अकेला न समझें और पड़ोसी, मुहल्ले वालों, नगर-निवासियों और देशवासियों की सहायता करने पर तत्पर रहें। **(समानीव आकूतिः ....)** यज्ञ आदि के मिस से ही प्राचीनकाल के आर्यगण एक स्थान पर सम्मिलित होकर सामूहिक मंत्रणाएँ किया करते थे, उनके कार्य परस्पर अविरुद्ध होते थे जिससे उनका सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन संगठित था, उसमें पारस्परिक फूट और विच्छृंखलता नहीं थी और इसी कारण उस काल में भारत उच्चता के शिखर पर आसीन था और समस्त विश्व का गुरु था। प्राचीन आर्य जीवन आज की अपेक्षा अधिक सामाजिक और सुसंस्कृत था। उस समय प्रत्येक व्यक्ति वैयक्तिक सुख, स्वतंत्रता, कीर्ति, अधिकार आदि की आकांक्षाओं को भूलकर सार्वजनिक सुख को ही जीवन का ध्येय बनाना चाहता था। सार्वजनीन यज्ञों की प्रचुरता और उपर्युक्त प्रार्थनाएँ ही इस बात के यथेष्ट प्रमाण हैं।

आज हिन्दू जाति अत्यन्त असंगठित और असहाय है। वह संसार की अन्य जातियों की तुलना में कम सामाजिक है और इसीलिए वह साम्प्रत काल में विदेशियों द्वारा पद-दलित होती रही है। उसकी इस दुरावस्था का कारण यही जान पड़ता है कि उसने उपरोक्त प्रार्थनाओं में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो आदेश और सामाजिक आदर्श का चित्रण है उस पर यथोचित ध्यान नहीं दिया और उसने अपनी विचारधारा और कार्य प्रणाली को एक समान बनाने का सफल प्रयत्न नहीं किया। पारस्परिक मतभेद के कारण हिन्दू जाति आज अत्यन्त जर्जरित है और यदि वह अपने आपको नहीं सँभालती तो भय है कि कहीं जीवन-संग्राम में वह पराजित न हो जावे और अन्य जातियाँ उसे आत्म-सात् न कर लें। अतएव यह उपयुक्त अवसर है कि हम यह जान लें कि किस तरह हम आज अपनी रक्षा कर सकते हैं ? और वे कौन-से कारण हैं जिनके कारण विजयी आर्य जाति आगे चलकर बहुत समय तक पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ी पड़ी रही ?

संसार की जातियों के इतिहास का अध्ययन करने से पता चलता है कि प्रत्येक जाति अपने पूर्व इतिहास, जातीय और धार्मिक साहित्य तथा संस्कृति से प्रभावित रहती है। उसके जातीय जीवन के अन्तःस्तल में एक विशेष भाव या खयाल ही काम करता नजर आता है और वही जातीय जीवन को चलाता है। कोई जाति देश-प्रेम से अधिक प्रभावित रहती है तो कोई धर्म-प्रेम की भावना से। इस दृष्टिकोण से देखने पर ज्ञात होगा कि हमारे जातीय जीवन के अन्तःस्तल में जो विशेष खयाल काम कर रहा है वह है सांसारिक दुखों से निवृत्ति या आध्यात्मिक सुख-प्राप्ति की इच्छा। यह खयाल बहुत अच्छा है किन्तु आज तो यह खयाल हमारे अन्दर अकेले ही जोर पकड़ गया है और फलस्वरूप लोक-सेवा की दृष्टि से कार्य करने के पूर्वजों के विचार तथा इस विचार को मर्यादित रखने के लिए अन्य विचार दब से गए हैं। अच्छे से अच्छा विचार भी जब किसी समाज में अकेले ही जोर पकड़ जाता है, तब वह उसे समाज को नीचे ढकेल देता है। इस कारण हमारी विचारधारा और जीवन के असंतुलित होने से यह विचार हमारे असामाजिक जीवन का जन्म-दाता बन हमारे पतन का कारण बन गया है। हिन्दुओं में मायावाद का विचार तथा यह विचार कि हमें अपने पूर्व जन्म के कर्मों के अनुरूप ही इस जन्म में सुख-दुःख मिल रहे हैं इसी विचार से सम्बन्ध रखते हैं और यह सभी जानते हैं कि ये विचार हमारे समाज में अत्यन्त प्रबल हैं। प्रकट है कि ये विचार हमें सामाजिक पुनःरचना के प्रति उदासीन एवं निश्चेष्ट बनाने की प्रवृत्ति रखते हैं। इस तरह ये विचार हमारी भौतिक एवं राजनीतिक दुर्गति के कारण बन रहे हैं। इनके फलस्वरूप हमारे समाज के अनेकों कल्याणकामी व्यक्तियों के जीवन का लक्ष्य संसार को मिथ्या मानकर तथा प्रिय परिजनों एवं समाज की सेवा को मोह एवं बन्धन का कारण मानकर और इसलिए संसार से भागकर आत्म-कल्याण करना तथा प्राचीन ऋषियों के ध्येय के विपरीत संन्यास लेकर लोक-हितकारी कर्त्तव्यों से विरत रहना बन गया है। इसी कारण हिन्दू जाति अन्य जातियों के मुकाबले में अधिक सामाजिक नहीं हो पाई और साम्प्रतकाल में बहुधा विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा पराजित होती रही।

आज भी हमारी भक्ति-पद्धति कुछ इस तरह की है कि हम जनता-जनार्दन की सेवा कर जनार्दन को तुष्ट करने के स्थान में केवल नाम जप द्वारा ही उन्हें तुष्ट करना अधिक सुलभ जानकर केवल नाम-जप को ही अधिक पसंद करते हैं। इस तरह हमारी भक्ति-पद्धति अभी तक हमें अधिकतर समाज से भागकर ही सामाजिक सुख-दुःखों से अनासक्त रहने वाला और उसके सुख-दुःखों से कम सम्बन्ध रखने वाला बनाती रही है और हमने अभी थोड़ा ही समय हुआ कि तिलक जैसे गीता-पंडित के द्वारा कर्मयोग और महात्मा गाँधी जैसे मनीषी द्वारा अनासक्त रहते हुए भी कर्म करते रहने का पाठ फिर से पढ़ना आरम्भ किया है। जबकि अभी तक सदाचारी, विद्वान और श्रेष्ठजनों पर मायावाद का प्रभाव समाज के बंधनों को तोड़कर सांसारिक जीवन से दूर भगाकर उन्हें असामाजिक बना देना ही रहा है, तब योग्य कर्णधारों के अभाव में समाज और भी अधिक असामाजिक और विच्शृंखल न होता तो क्या होता ? किन्तु यदि हम लोग भगवान कृष्ण के कर्मयोग के संदेश को कि "यद्यपि मुझे संसार में कुछ भी अप्राप्त और अप्राप्य नहीं है तथापि मैं फिर भी कर्म करता ही रहता हूँ" पहिले से ही न भूलते तो संभव है कि हमें ये दुर्दिन देखने को न मिलते।

हिन्दू जाति की यह दुरावस्था तब से हुई जब से कि हमारे सामाजिक जीवन से एकता लुप्त हो गई और हम अनेक दिशाओं में जाने लगे। हमारा सामाजिक पतन तब से आरम्भ हुआ जब से कि हमने एक साथ मिलकर बातचीत करना एवं एक साथ मिलकर विचार करना छोड़ दिया और हमने अपने सामाजिक संगठन के सर्वोत्तम प्रतीक एवं आधार सार्वजनीन यज्ञों का भी परित्याग कर दिया। आर्य लोग समय-समय पर एक ही स्थान पर सम्मिलित होकर सामूहिक मंत्रणाएँ किया करते थे किन्तु जब से हमने स्वतंत्र रूप से विचार करने के साथ-साथ एक ही विचारधारा पर पहुँचकर एक जैसा कार्य करने के उत्तरदायित्व का समुचित निर्वाह करना छोड़ दिया, तब से हम भिन्न-भिन्न दिशाओं में गमन करने लगे और हमारे एक सूत्र में बँधकर कार्य करने की आशा जाती रही। लोग अपनी-अपनी ढपली पर अपना-अपना राग अलापने लगे और हमारी राष्ट्रीय एकता लुप्त हो गई। इस पृथकता को मिटाकर हम सामाजिक एकता की ओर बढ़ें इसी में हमारा कल्याण है।

हम एकता की ओर अग्रसर हों

अनेकता में एकता देखने की हमारी सांस्कृतिक उदारता दार्शनिक दृष्टि से सराहनीय ही मानी जा सकती है। परस्पर भारी मतभेद रखने वाले यहाँ तक कि घोर मतभेद रखने वाले सम्प्रदाय और धर्म प्रचारक भी यहाँ अपना-अपना काम शान्तिपूर्वक करते रहे हैं और कर रहे हैं। अपनी इस विशेषता को कायम रखते हुए भी हमें यह ध्यान रखना ही होगा कि कोई समाज उतना ही संगठित रह सकता है, जितनी कि उसमें एकता हो। भिन्नताएँ जितनी ही बढ़ेंगी उतनी ही विशृंखलता उत्पन्न होगी। संसार के इतिहास पर दृष्टिपात करने से यही प्रतीत होता है कि भाषा, वेष और भाव की एकता ही लोगों को एक संगठन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सूत्र में बाँध रही है। जहाँ जितनी भिन्नता बढ़ी है वहाँ उतना ही विघटन हुआ है। दार्शनिक दृष्टि से भिन्नता में एकता देखना एक प्रशंसनीय उदारता मानी जा सकती है पर सामाजिक दृष्टि से, मानवीय मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार करने पर यही मानना पड़ेगा कि भिन्नता एक हद तक ही उपयोगी हो सकती है। यदि उसका विस्तार बढ़ेगा तो निश्चित रूप से विसंगठन ही बढ़ेगा और ऐसा समाज कभी भी सशक्त न हो सकेगा। विचार भिन्नता के कारण परस्पर उपेक्षा बढ़ेगी और अनैक्य एवं विरोध की परिस्थितियाँ उत्पन्न होने लगेंगी।

भारतीय धर्म की उदारता ने अनेकता को जो छूट दी थी उसका व्यतिक्रम होने से हमें भारी सामाजिक क्षति उठानी पड़ी है। धर्म, सम्प्रदाय एवं जाति-पाँति के नाम पर हमारा इतना विघटन हुआ है कि कई बार तो हिन्दू-समाज को एक समाज मानने तक में संकोच होने लगता है। संसार के अन्य देशों पर दृष्टिपात करने से उनकी आन्तरिक एकता को बनाये रहने में कुछ मूलभूत तथ्य काम करते दीखते हैं। भाषा, भेष और भाव के बन्धनों में बँधे रहकर ही वे एकता का मधुर फल प्राप्त कर सकने में समर्थ हो रहे हैं। योरोपियन लोगों की एक ही पोशाक है। कोट, पेन्ट, टाई, टोप पहने ही सब लोग दिखाई पड़ेंगे। यों सिलाई में थोड़ा-सा फर्क हो सकता है पर मोटेतौर पर सबकी पोशाक एक-सी होगी। रोमन लिपि और अँग्रेजी भाषा ने पृथ्वी के एक बड़े क्षेत्र को एकता के सूत्र में बाँधा है। ईसाई धर्म, बाइबिल, गिरजा, बपतिस्मा और ईश्वर पुत्र ईसा की मान्यता ने संसार के आधे भाग को जातीय भावनाओं में आबद्ध करके, उनमें एकता और संगठन की परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी हैं।

इस्लामी संस्कृति की यही अपनी विशेषता है और उनकी धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताएँ एक-सी होने के कारण संसार भर में जहाँ कहीं भी इस प्रकार के लोग हैं, भ्रातृ-भाव का उत्साह अनुभव करते हैं। चीन, रूस, जापान आदि प्रगतिशील राष्ट्रों में भी वहाँ की एकता का कारण तलाश करने पर यही तत्व काम करते दिखाई पड़ते हैं। भारत का जातीय विसंगठन उस भिन्नता के कारण हुआ जो उसके भीतर धर्म, सम्प्रदाय, जाति-पाँति एवं पूजा पद्धतियों की भिन्नता के कारण पैदा हुई। दार्शनिक दृष्टि से यह भिन्नता भले ही उदारता का चिन्ह मानी जाय पर सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह हेय और हानिकारक ही सिद्ध होती है। 'अति' हर बात की बुरी होती है। विचार भिन्नता के, रुचि भिन्नता के आधार पर यदि सब लोग मनमानी करने लगें तो फिर एकता का स्थिर रह सकना कभी भी संभव न होगा।

पिछले एक हजार वर्ष का दुःखद इतिहास इसी तथ्य का प्रतिपादन करता है। मुसलमान और योरोपियन आक्रमणकारियों की संख्या बहुत थोड़ी थी। इतने बड़े देश में मुट्ठी भर आक्रमणकारियों की जादू जैसी सफलता का श्रेय हमारी आन्तरिक विसंगठनकारी प्रवृत्तियों को ही है। आक्रमणकारियों ने जिस राज्य पर हमला किया दूसरे लोग अपने सम्प्रदाय, जाति या उपास्य की भिन्नता के कारण उस विजित की पराजय पर हर्ष मनाते रहे, उपेक्षा करते रहे। इसी क्रम से एक-एक करके सब राज्य विदेशी गुलामी के चंगुल से जकड़ते चले गये। नृशंस अत्याचारों को खून के आँसू पी-पीकर लोग देखते, सहते रहे, पर संगठित प्रतिरोध की कोई व्यवस्था न हो सकी। भावनात्मक दृष्टि से विसंगठित राष्ट्र भला कर भी क्या सकता था ? उसकी दुर्बलता स्वाभाविक थी। दुर्बल के सामने पराजित होने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं होता। मुसलमानी आक्रमणकारियों को उनकी सशक्तता ने नहीं, यहाँ की फूट और विशृंखलता ने सफलता की जयमाला पहिनाई।

अँग्रेज, पुर्तगाली, फ्रांसीसी यहाँ व्यापारी बनकर आये थे। यहाँ की विविधता में उन्होंने फूट को परखा और केवल कुटिलता के आधार पर इतने बड़े देश को चुटकी बजाते जितनी देर में हड़प लिया। धन्यवाद भगवान को इसी बात का है कि उसने जातीयता की चेतना दी और जब गाँधीजी ने संगठित राष्ट्र के रूप में यहाँ की जनता को खड़ा कर दिया तो उस एकता की शक्ति ने ही गुलामी से मुक्ति दिलाने का वातावरण बनाया। यदि उस प्रकार की चेतना उत्पन्न न हुई होती तो कौन जाने कितनी शताब्दियों तक हमें पराधीनता के बन्धनों में बँधा रहना पड़ता।

राजनैतिक स्वतन्त्रता का भी अपना महत्व है पर उसका वास्तविक लाभ उसी समाज को मिल सकता है जो आन्तरिक दृष्टि से सशक्त हो। सशक्तता का सर्वोपरि माध्यम एकता ही तो है। जिन लोगों में एकता होगी वे ही सशक्त होंगे, जिनके भीतरी मतभेद बढ़े-चढ़े होंगे, जिन्हें प्रेम और भ्रातृत्व पैदा करने वाले तत्वों की कमी का सामना करना पड़ रहा होगा वे धन, शस्त्र, व्यापार, उद्योग, शिक्षा आदि क्षेत्रों में कितने ही बढ़े-चढ़े क्यों न हों जातीय दृष्टि से दुर्बल ही रहेंगे और यह दुर्बलता किसी छोटी-सी कठिनाई के आने पर ही फिर गुलामी में परिणित हो सकती है।

इस युग में संगठन को ही शक्ति माना गया है और संगठन का तत्व-ज्ञान यही है कि वह समान गुण, धर्म वाले पदार्थों या मनुष्यों में संभव होता है। जिन्हें एकता का महत्व विदित है, जो एकता की शक्ति को जानते हैं और उसकी आवश्यकता अनुभव करते हैं, उन्हें इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि भिन्नता उत्पन्न करने वाले तत्वों को जितना घटाया जा सकता हो घटाया जाय और समानता एवं एकता उत्पन्न करने वाली संभावनाओं को जितना बढ़ाया जा सकता हो उतना बढ़ाया जाय।

परस्पर प्रेम, सद्भाव, उदारता आदि आध्यात्मिक गुणों के कारण ही सच्ची एकता संभव होती है। इसलिए गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से जनमानस को 'वुसधैव कुटुम्बकम्' की ओर अग्रसर किया जाना चाहिए साथ ही यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ भी एकता में सहायता करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाली ही उत्पन्न की जायँ। भिन्नता का बाह्य वातावरण आन्तरिक एकता में बहुत सहायक नहीं बाधक ही सिद्ध होता है। भाषा, भेष, भाव की एकता बाहरी ही क्यों न कही जाय आन्तरिक एकता में बहुत सहायता पहुँचाती हैं। जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद, सम्प्रदायवाद का जो विकृत रूप आज देखा जाता है, उसके मूल में भी समान लोगों का एकताबद्ध होकर दूसरे प्रकार के लोगों के साथ पक्षपात करने की नीति ही पाई जाती है। पक्षपात की नीति की हमें निन्दा करनी चाहिए पर साथ ही मानव स्वभाव की इस विशेषता को भी समझ लेना चाहिए कि बाह्य समानता भी लोगों को परस्पर समीप लाने में बहुत सहायक होती है। अनेक भिन्नताएँ होते हुए भी लोग जाति, भाषा, प्रान्त आदि के नाम पर जब गुटबन्दी कर लेते हैं तो इन तथ्यों को व्यापक बनाने पर व्यापक संगठन की संभावना क्यों न बनेगी ?

अपना देश लम्बी गुलामी के बाद राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने में समर्थ हुआ है ? प्रगति की ओर अनेक दिशाओं में अग्रसर होने का कार्य करना शेष है। इसके लिए आवश्यक शक्ति का संचय करते हुए यह ध्यान रखना ही चाहिए कि बाह्य साधनों की नहीं, आन्तरिक एकता और पुरुषार्थ की प्रवृत्ति ही सर्वोपरि साधन हो सकती है, इसके बिना बाह्य उपकरणों के होते हुए भी भीतरी दुर्बलता के कारण प्रगति का कार्य अवरुद्ध ही बना रहेगा। परिश्रम और कल्पनापूर्वक बनाई गई योजनाएँ भी सफल न हो सकेंगी।

भारतीय राष्ट्र को एकता और सशक्तता के लिए प्राणपण से प्रयत्न करना चाहिए। लोग अपनी प्रान्तीय और क्षेत्रीय भाषाओं का प्रसन्नतापूर्वक उपयोग करें पर राष्ट्र भाषा हिन्दी का प्रचलन अधिकाधिक बढ़ाने का भी ध्यान रखा जाय। कट्टरपंथी और संकीर्णता से दायरा छोटा रह जाता है। उदारता और व्यापकता को अपनाने से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का लक्ष्य पूरा होगा। भाषा के माध्यम से ही हम सोचते-विचारते, विचारों का आदान-प्रदान करते और एक-दूसरे को समझने में समर्थ होते हैं। एक राष्ट्र या एक समाज की दृढ़ता का महत्व मानने वालों को भाषा की एकता के लिए भी तेजी से कदम बढ़ाने होंगे। भारत का प्रत्येक नागरिक राष्ट्र-भाषा हिन्दी को भली प्रकार बोल और समझ सके इसके लिए जो भी प्रयत्न संभव हो उन्हें करना चाहिए। सरकारी और गैर-सरकारी दोनों ही प्रकार के प्रयत्न इस दिशा में किये जायें इसकी आज भारी आवश्यकता है।

राष्ट्रीय पोशाक जो यहीं की परम्पराओं के उपयुक्त हो, धोती, कुर्ता, ऊपर से जवाहरकट या बन्द गले का कोट यही उपयुक्त रह सकती है। जलवायु या परम्परा का ध्यान रखे बिना जल्दबाजी में कोई पोशाक राष्ट्रीय घोषित कर देने से उसका प्रचलन नहीं हो सकता। सरकार ने चूड़ीदार पाजामा और अचकन, शेरवानी को राष्ट्रीय पोशाक माना है। सरकारी कामों में उसका प्रयोग होता भी है। पर जन-मानस में वह अभी तक उतर नहीं सकी है। कारण कि भारतीय परम्पराओं और जलवायु का उसमें समुचित ध्यान नहीं रखा गया है। यह जनरुचि एवं भावनाओं का प्रश्न है। इसका समाधान भी इसी आधार पर किया जा सकता है। विभिन्न प्रान्तों में जो अलग-अलग प्रकार की पोशाकें पहनी जाती हैं, उस अनेकता को धीरे-धीरे कम करना चाहिए और समानता के महत्व को समझना चाहिए। विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता रहने से उनका निर्माण महँगा पड़ता है और शक्ति एवं साधनों का अनावश्यक अपव्यय होता है। वस्त्र, आभूषण, बर्तन आदि में समता रहे तो निर्माण कार्य व्यापक होने से सस्ता पड़ेगा और भावनात्मक एकता भी स्पष्टतः बढ़ेगी।

भावनाओं में आध्यात्मिकता का अधिकाधिक समावेश होना चाहिए। संयम, सदाचार, पुरुषार्थ, श्रमशीलता, मधुरता, स्वच्छता, कर्तव्यनिष्ठा, समय का पालन, क्रियात्मकता, उदारता, शिष्टता जैसे सद्गुणों को हमारी भावनाओं में समुचित स्थान मिलना चाहिए। यही आध्यात्मिक गुण मनुष्य जाति के विकास में सच्ची सहायता कर सकते हैं। स्वार्थपरता और दुष्टता, आलस्य और असंयम का दोष किसी सशक्त राष्ट्र को भी अपंग बना सकता है फिर हम पिछड़ी स्थिति के लोगों के लिए तो यह नितान्त आवश्यक है कि सहिष्णुता, सज्जनता, सामूहिकता एवं सहयोग भावना का अधिकाधिक विकास होता चले। मतभेदों को सुलझाने के लिए विचार-विनिमय, मध्यस्थता एवं पंच निर्णय जैसे महकमों को अपनाया जाया। सामाजिक रीति-रिवाजों में समानता उत्पन्न की जाय। कुछ दिन पहले विभिन्न देहातों में, प्रान्तों एवं क्षेत्रों में तौल के बाँट अलग-अलग थे, कच्ची तौल पक्की तौल के अनेक मापदण्ड प्रचलित थे। उनमें असुविधा ही रहती थी। अब जबकि हर जगह एकसी तौल-नाप हो गई है तो उससे सुविधा ही रहती है। ईसाई, मुसलमान, बौद्ध आदि प्रधान धर्मों के अनुयायी प्रायः एक से ही रीति-रिवाज मानते हैं। देशों की अपनी-अपनी परम्पराएँ भी एक-सी हैं। भारतवर्ष इसका अपवाद है, यहाँ इतनी अधिक भिन्नता युक्त प्रथा-परम्पराएँ प्रचलित हैं कि उनके कारण एकता में भारी बाधा पहुँचती है। हमें यह भी प्रयत्न करना चाहिए कि धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं और प्रथा-परम्पराओं में प्रचलित असमानताएँ दूर करके समानता की ओर बढ़ा जाय। कुरीतियों का शमन और शोधन किया जाय। इस सम्बन्ध में धर्म पुरोहित एवं गुरुजन यदि दूरदर्शिता से काम लें तो परस्पर विचार-विनिमय द्वारा जातीय एकता का मार्ग बड़ी आसानी से प्रशस्त कर सकते हैं।

पूजा, उपासना एवं कर्म-काण्ड, दर्शन, धर्म-ग्रन्थ आदि की समानता भी जातीय एकता की दृष्टि से आवश्यक है। इनमें भिन्नता रहने से जातीयता की भावना दुर्बल होती है। मुसलमान और ईसाई धर्मों की शक्ति उनकी धार्मिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एकरूपता में सन्निहित है। एक पैगम्बर, एक प्रकार का ईश्वर, एक धर्म-ग्रन्थ, एक दर्शन, एक संहिता होने से थोड़े ही समय में इन धर्मों ने संसार में अपना भारी प्रभाव बढ़ाया है। हिन्दू धर्म की भिन्नताएँ उसके अनुयायियों में भी अश्रद्धा एवं उपेक्षा की भावनाएँ उत्पन्न कर रही हैं। नई पीढ़ी उन्हें ढोंग मानने लगी है और शिखा, सूत्र जैसे आवश्यक प्रतीकों का भी परित्याग कर रही है, जबकि मुसलिम धर्म में सुन्नत जैसी कष्टकर प्रथा भी सहर्ष सर्वत्र श्रद्धापूर्वक अपनाई जाती है। सिक्ख धर्म के अनुयायी पंच केश रखने में अपना सौन्दर्य नष्ट हुआ नहीं समझते पर हिन्दू के लिए चोटी के चार बाल रखना भी भारी पड़ता है। इसका दोष युवकों का नहीं उस विशृंखलता एवं अव्यवस्था का है जिसके कारण हिन्दू धर्म का कोई एक रूप नहीं बन पाता और उसकी मान्यताओं को बुद्धिवादी ढंग से समझना या समझाया जाना संभव नहीं होता।

सशक्त समाज एवं राष्ट्र के रूप में अपने को परिणित देखने की आकांक्षा करने वाले प्रत्येक देशभक्त एवं धर्म प्रेमी के लिए यह आवश्यक है कि इन त्रुटियों पर विचार करे, उनके कारण होने वाली क्षति को समझे और नव निर्माण के लिए कुछ करने की आवश्यकता अनुभव करे। वर्तमान स्थिति को ज्यों की त्यों बनाये रखकर हम प्रगति की ओर बढ़ न सकेंगे। मार्ग के रोड़ों को हटाये बिना और कोई गति नहीं। इसके लिए उपाय सोचना और उसे कार्यान्वित करने के लिए अग्रसर होना नितान्त आवश्यक है। इस आवश्यकता की पूर्ति आज के प्रबुद्ध एवं विचारशील लोगों को ही करनी पड़ेगी।

एकता और अखण्डता की पृष्ठभूमि

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसका जीवन व्यवहार मिलजुलकर ही चलता है। आदिम काल के नर-वानर ने आज के सुविधासम्पन्न स्तर पर पहुँचने की जो लम्बी यात्रा की है, उसका आश्चर्य भरा इतिहास पढ़कर इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि पारस्परिक स्नेह-सहयोग और आदान-प्रदान के बलबूते ही यह सब बन पड़ा है। भाषा, लिपि, समाजशास्त्र, विज्ञान, व्यवसाय आदि अगणित क्षेत्र में पुरातन की तुलना में वर्तमान कहीं आगे है। यह सब अनायास ही नहीं हो गया वरन् इसके पीछे सहकार के आदान-प्रदान की धारा ही प्रेरणा स्रोत बनकर रही है। भविष्य को उज्ज्वल बनाने की सम्भावना और आशा को यदि सँजोये रहना है तो यह सुनिश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि इन स्वप्नों को साकार कर दिखाने की शक्ति मात्र भावनात्मक एकता में ही है। अन्यथा बिखरे हुए लोग तो जीवन के सामान भर जुटाते हैं और अस्तित्व बनाये रखने के लिए आत्मरक्षा तक में सफल न हो सकेंगे। उत्थान और पतन की सम्भावनाओं का मूलभूत आधार यही है कि हम सघन सहयोग जुटा सकेंगे पर फूट के शिकार बनकर सामूहिक आत्महत्या की दिशा में अग्रसर होंगे।

स्वार्थ-संकीर्णता को हेय माना और पतन-पराभव का निमित्त कारण ठहराया जाता रहा है। यह स्वार्थपरता क्या है ? इसका विवेचन करने पर मात्र अपने छोटे परिवार के लिए सम्पदा जुटाने में दूसरों के हितों-अधिकारों का हनन करना है। स्वार्थ ही लोभ-मोह के रूप में परिणित होता है और शोषण, छल, प्रपंच, आक्रमण-अतिक्रमण आदि पाप कर्मों के लिए प्रेरित करता है। संकीर्णता, क्षुद्रता अपने लाभ के लिए इस सीमा तक आगे बढ़ जाती है कि उसे न तो दूसरों की कठिनाई का ध्यान रहता है और न नीति-नियम एवं सामाजिक अनुशासन का। वह स्वेच्छाचार अपनाता है और मर्यादाओं का, वर्जनाओं का उल्लंघन करता चला जाता है। ऐसी दशा में उसने यदि कुछ पाया कमाया भी है तो वह बहुत महँगा पड़ता है। हर विचारशील की आँखों में गिर जाता है। तिरस्कार, असहयोग की—घृणा, निन्दा की प्रतिक्रिया उभरती देखता है। ऐसी परिस्थितियों में रहकर न कोई व्यक्ति आन्तरिक सन्तोष प्राप्त कर सकता है और न श्रेय, सम्मान, सहयोग का भाजन बनता है। संयुक्त शक्ति का लाभ न मिलने पर एकाकी मानस वाला व्यक्ति घर-घर के उद्विग्न प्रेत-पिशाच की तरह दूसरों को डराता और स्वयं डरता हुआ किसी प्रकार लुका-छिपी का जीवन जीता है। यह हानि अशांत और उद्विग्नता का कार्य है, जिसे अपनाने पर अपनी और सम्पर्क वालों की अशान्ति ही बढ़ती है, जड़ पकड़ती है।

पुण्य-परमार्थ की सर्वत्र प्रशंसा होती रही है। आप्तजन, शास्त्रकार, नीति निर्माताओं से लेकर जन साधारण द्वारा पुण्य-परमार्थ का यश बखाना जाता है। जो इस मार्ग पर चलता है, उन्हें सम्मान दिया जाता है। नमन, वन्दन किया जाता है। इतिहासकार उनकी सेवा-सद्भावना का उल्लेख स्वर्णाक्षरों में करते हैं। यह परमार्थ क्या है ? विवेचना करने पर एक शब्द में उसकी रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकती है—"दूसरों की सहायता के लिए अपनी निजी सुख-समृद्धियों का उत्सर्ग करना।" दान-पुण्य का यही उद्देश्य है। परमार्थियों के क्रिया-कलाप इसी आधार पर विनिर्मित होते हैं। यह आत्मीयता भरी सद्भावना ही दया, करुणा, मैत्री एवं उदारता को जन्म देती है। उसी उमंग को दैवी अनुदान कहते हैं। आत्मा की पुकार भी इसी को कहा जाता है। इसे लोक-परलोक में उभयपक्षीय सुख-शान्ति देने वाली प्रक्रिया कहा जाता है। अनेकानेक परमार्थ प्रयोजनों में एक ही तत्व समाहित होता है कि अपने निज की लोभ-लिप्सा पर अंकुश रखना। संकीर्ण स्वार्थपरता से ऊपर उठना। जिनसे यह बन पड़ता है, उन्हीं को सज्जन, सराहनीय, अनुकरणीय, अभिनन्दनीय कहा जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह मान्यता मात्र भावुकता या धर्म श्रद्धा पर आधारित रही है। इसके लाभ प्रत्यक्ष हैं। उदारचेता हर किसी का हृदय जीतता है। अपनी गरिमा की छाप छोड़ता है। वह सम्मान, सद्भाव हार्दिक सहयोग के रूप में विकसित होता है। अनेकों परिचित-अपरिचित उसे सम्मान, यश, सहयोग प्रदान करते हैं। उस उपलब्धि के सहारे व्यक्ति आशातीत सहयोग प्रदान करता है। आश्चर्यजनक सफलताएँ इसी आधार पर मिलती हैं। महामानवों की जीवनगाथा इस बात की साक्षी है कि उनमें से प्रत्येक ने दो विशेषताओं को अपनी जीवनचर्या का अंग बनाया था। एक अपनी स्वार्थपरता पर नियन्त्रण दूसरा जनकल्याण के लिए सेवा-सद्भावना का भाव-भरा समर्पण। इसका प्रतिफल परलोक में स्वर्ग मुक्ति के रूप में मिलता हो सो बात नहीं। उदार सेवा भावना की प्रतिक्रिया जनसहयोग और श्रद्धासिक्त यशस्विता के रूप में हाथोंहाथ मिलती है। वह मात्र चर्चा का विषय ही बनकर नहीं रह जाती वरन् हाथ में लिए कामों की सफलता में अनेक स्रोतों से सहायक सिद्ध होती है। ऐसा व्यक्ति जो गँवाता है उससे असंख्य गुना प्राप्त करता है। बीज गल जाता है पर असंख्य गुना होकर फलता भी है। जो बोता है सो काटता है। परमार्थी घाटे में नहीं रहता, वह परिश्रमी किसान की तरह समयानुसार अपने कोठे भी धन-धान्य से भरता है।

व्यक्तिगत जीवन में जिस प्रदान को परमार्थ कहते हैं वही सामूहिक स्रोतों में सहयोग है। सहयोग से ही सुदृढ़ संगठन बनता है। उस संयुक्त शक्ति की छत्र-छाया में जितना समुदाय बैठता है, उसे धूप, वर्षा जैसी प्रतिकूलताओं से बचने का अवसर मिलता है। निर्जीव वस्तु एक और एक मिलकर दो बनती हैं। पर भाव भरे सहयोगी एक और एक मिलकर ग्यारह हो जाते हैं। इसका छोटा उदाहरण पारिवारिक संगठनों में सर्वत्र देखा जा सकता है। एक छोटा समुदाय घर के घरौंदे में पलता है और हर दुर्बल सदस्य उसके अन्तर्गत अपनी सुविधा एवं उन्नति का लाभ उठाता है। सुसंस्कृत प्राणवान नर-रत्नों की खदान बनते हैं। धरती के देवता कहे जाते हैं। इसका कारण एक ही है कि पारस्परिक भाव संवेदनायें उन्हें एक-दूसरे के साथ सघनतापूर्वक जोड़े रहती हैं और आदान-प्रदान का उच्चस्तरीय सिलसिला चलता रहता है। संयुक्त परिवार सुविधा, सुरक्षा, प्रगति और प्रसन्नता की दृष्टि से, विकासोन्मुख बने रहते हैं। यदि यह प्रवाह न चला होता। हर सदस्य ने अपना-अपना निजी स्वार्थ देखा होता तो हर किसी को भारी घाटा सहना पड़ता। असुरक्षित असुविधा भरी परिस्थितियों में जीवनयापन करना पड़ता। तब पति-पत्नी के बीच, अभिभावकों-सन्तान के बीच, भाई-बहिनों के बीच भी खींचतान रहती और वे एक घर में रहते हुए भी बाड़े की भेड़ों जैसा उच्छृंखलित, अनगढ़ जीवनयापन करते।

वैयक्तिक और पारिवारिक जीवन में जो सिद्धांत काम करते हैं, उन्हीं पर विश्व व्यवस्था टिकी हुई है। ग्रह तारक परस्पर एक-दूसरे को अनुदान सहायता देकर इस ब्रह्माण्ड को सुसंचालित रखे हुए हैं। यदि उसमें विघटन चल पड़े तो समझना चाहिए कि महाप्रलय का समय आ गया। यही तथ्य सामाजिक जीवन में भी पूरी तरह लागू होता है। दृष्टि विश्व परिवार की रखी जाती है विभाजन की नहीं, पलायन की नहीं, एकता की शक्ति को पहचानना चाहिए। सम्प्रदाय के नाम पर जातियों, वंशों, मान्यताओं, परम्पराओं के नाम पर अलगाव की माँग न तो करनी चाहिए और न किसी को करने देनी चाहिए।

बगीचे में अनेक प्रकार के पेड़ होते हैं। अनेक रंगों के फूल खिलते और फल लगते हैं। गुलदस्ते में अनेक रंग के फूल होते हैं। इसी प्रकार वैयक्तिक रुचि के आधार पर विभिन्न जन अपनी-अपनी विभिन्नतायें तो बनाये रह सकते हैं पर पृथकता की बात नहीं सोच सकते। घर में बच्चे-बड़े स्त्री-पुरुष सभी रहते हैं। अनेक प्रकार के वस्त्र पहनते हैं, अनेक तरह के काम करते हैं पर रहते सब एक ही घर में हैं। अपने-पराये की संकीर्णता नहीं अपनाते वरन् सहिष्णुता-सामंजस्य अपनाते हुए अनेकता में एकता बनाये रहने का प्रयास करते हैं। यदि अपने रंग-ढंग वालों के लिए अलग खेमा खड़ा करने की बात सोची जाने लगे तो स्त्रीस्तान, पुरुषस्तान, बालकस्तान, ब्राह्मणस्तान, कायस्थस्तान, शैवस्तान, जैनस्तान, वैष्णवस्तान, ठिगनेस्तान, लम्बेस्तान, धनीस्तान, निर्धनस्तान, गोरेस्तान, कालेस्तान आदि की माँगें उठ खड़ी होंगी और वह सुविधा पलायन कर जायगी, जिसके आधार पर एक-दूसरे के पूरक बनते हैं और मिलजुलकर समग्र प्रगति के निमित्त कारण बनते हैं। जिन लोगों ने विलगाव अपनाया और पृथकता का झण्डा खड़ा किया उनका अनुकरण करने की किसी को भी इच्छा नहीं करनी चाहिए। हमें आदर्शों की ओर देखना चाहिए। अपना उदाहरण प्रस्तुत करना और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त अपनाते हुए एकता और अखण्डता का वातावरण ऐसा सुदृढ़ बनाये रखना चाहिए, जिससे दरार पड़ने की कहीं कोई गुंजायश न रहे।

मानवी एकता के लिए प्रयत्नशील रहने में ही हमारा कल्याण है

विघटन के पीछे सर्वनाश छिपा हुआ है और संगठन में जीवन का उत्कर्ष एवं सौन्दर्य का आधार जुड़ा है। छोटे-छोटे जीवकोषों से मिलकर यह शरीर बना है और नगण्य जितने नन्हें परमाणुओं का एकत्रीकरण विभिन्न वस्तुओं की संरचना कर सकने में समर्थ हुआ है।

ब्रह्माण्ड के ग्रह-नक्षत्र और उपग्रह परस्पर मिल-जुलकर ही इस अनन्त अन्तरिक्ष में अपनी सत्ता बनाये हुए हैं। यदि उनका विगठन हो जाय—एकाकी रहने की स्थिति आ जाय तो पारस्परिक आदान-प्रदान के आधार पर खड़ा हुआ संसार का सारा ढाँचा ही चरमरा जाय। फिर ग्रह-नक्षत्रों की वह स्थिति न रहेगी जो आज है। एकाकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भटकने वाले उल्कापिण्ड अपनी सीमित शक्ति, सीमित स्थिति एवं सीमित कक्षा में किसी प्रकार जीवित रह भी सके तो भी उनकी सारी विशेषता तो नष्ट ही हो जायगी। वे मृतक पिण्ड मात्र बनकर रह जायेंगे। पारस्परिक आकर्षण की सघन श्रृंखला में बँधकर ही वे अपनी धुरी और कक्षा में भ्रमण कर रहे हैं। उनकी विशेषताओं का विनिमय ही उनमें हलचलें बनाये हुए है, अन्यथा वे हर दृष्टि से स्तब्ध हो जायेंगे उनका सारा पदार्थ अनन्त अन्तरिक्ष में धूलि बनकर बिखर जायगा।

जीवाणुओं का विगठन ही मृत्यु है। जब तक शरीर के यह छोटे घटक मिल-जुलकर काम करते हैं—एक दूसरे के पूरक एवं सहयोगी बनकर रहते हैं तभी तक जीवन की सत्ता है। विगठन आरम्भ हो तो उसका परिणाम मृत्यु के रूप में सामने आ खड़ा होगा। पदार्थ कोई भी क्यों न हो परमाणुओं की अमुक स्थिति के ऊपर ही उनका अस्तित्व निर्भर है। संगठन क्रम में अव्यवस्था उत्पन्न होते ही वस्तुएँ सड़ने-टूटने या नष्ट होने लगती हैं। उनका स्वरूप देखते-देखते विकृत हो जाता है।

मनुष्य समाज की विकासोन्मुख स्थिति का एकमात्र आधार संगठन है। दाम्पत्य-जीवन में दो व्यक्तियों का सघन सहयोग कुटुम्ब का निर्माण करता है। मिल-जुलकर कई छोटे-बड़े व्यक्ति साथ-साथ रहें, इसी का नाम तो परिवार है। परिवारों का एक-दूसरे के साथ सहयोग करना और पारस्परिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक आदान-प्रदान करना यही है समाज में विविध-विधि क्रियाकलापों के संचालन की धुरी। सारा अर्थ तन्त्र इसी आधार पर खड़ा हुआ है। उत्पादन, वितरण और विनिमय की पद्धति अपनाकर ही अनेकानेक उद्योगों का आविर्भाव हुआ है।

समाज के नियमोपनियम पालन करने की प्रवृत्ति ने स्थिरता एवं सुव्यवस्था को जन्म दिया है। भाषा, कला, संस्कृति, धर्म, अध्यात्म, शिक्षा, शासन, न्याय, विज्ञान, शिल्प, उद्योग, चिकित्सा, यातायात आदि उस संसार को सुविकसित बनाने वाली स्थापनाएँ ही मानवी प्रगति की आधारशिलाएँ हैं। इनका आविष्कार और विकास तभी सम्भव हुआ जब मनुष्यों ने परस्पर मिल-जुलकर इस दिशा में अनवरत् प्रयास करने का संकल्प किया और अपनी उपलब्धियों का लाभ अपने सहकालीन तथा उत्तराधिकारी अन्यान्य व्यक्तियों के हाथ में थमाया। यदि यह सम्भव न होता तो जिस बुद्धिमत्ता पर गर्व किया जाता है, उसे प्राप्त कर सकना मनुष्य के लिए कदापि सम्भव न हुआ होता। अविकसित स्थिति में वन्य पशुओं की स्थिति में ही हमें रहना पड़ता या सहकारिता की प्रवृत्ति का दैवी वरदान साथ लेकर मानव प्राणी जन्मा न होता।

जो जातियाँ, जो देश, जो समाज, जो परिवार, जो वर्ग जिस हद तक संगठित होते हैं, वे उसी अनुपात से समर्थ बनते, सफल होते और प्रगति करते देखे जाते हैं; प्रसन्न भी वे ही रहते हैं और श्रेय-सम्मान भी उन्हीं को मिलता है। एकाकी व्यक्ति कितना ही समर्थ या सुयोग्य क्यों न हो आखिर रहेगा तो एक ही। एक की क्षमता निश्चित रूप से स्वल्प होती है। मेल-मिलाप से बनने वाला समूह ही विशिष्ट एवं समर्थ शक्ति के रूप में उन्नतिशील बनता है और बड़े प्रयोजनों को सिद्ध कर सकने में सफल होता है। इस तथ्य को मानवकाल के अद्यावधि इतिहास का कोई पृष्ठ उलटकर भली प्रकार जाना-समझा जा सकता है। उत्थान और पतन के अगणित घटनाक्रमों में अन्य तथ्य भी अपना कार्य करते दिखाई पड़ेंगे, पर सर्वोपरि आधार यही रहा होगा कि लोगों में सहयोग की प्रवृत्ति किस सीमा तक रही। असहयोग की विषाक्तता पतन और पराजय के रूप में उभरी हुई कहीं भी देखी जा सकती है।

भगवान राम और कृष्ण ने अवतार लेकर लोक-शिक्षण के अनेकानेक आधार जन-साधारण के सम्मुख प्रस्तुत किये हैं। उनका प्राथमिक प्रतिपादन संगठन का ही है। भगवान राम ने लंका विजय की! उसमें प्रमुख योगदान रीछ, वानरों का उपलब्ध किया गया। इस क्रिया-कलाप में बताया गया कि न्याय पक्ष यदि संगठित हो जाय तो साधन और सामर्थ्य की मात्रा स्वल्प रहने पर भी विशालकाय विभीषिकाओं पर विजय प्राप्त की जा सकेगी। ठीक इसी प्रकार भगवान कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठाते समय ग्वाल-बालों को लाठी लगाकर उस प्रयोजन में भाव भरा योगदान करने के लिए तैयार किया। महान प्रयोजन पूरा कर सकने में कोई अकेला व्यक्ति सफल नहीं हो सकता, उसके पीछे संगठित जनशक्ति होनी ही चाहिए। यही है गोवर्धन उठाने के प्रकरण का सारभूत निष्कर्ष।

पाण्डव पूर्ण समर्थ थे। कृष्ण भी कम बलवान नहीं थे। फिर भी महाभारत में कौरवों की विशाल सेना के समकक्ष प्रतिद्वन्द्वी सेना जुटाने के लिए भागीरथ प्रयत्न किये गये। संसार भर के भावनाशील लोगों को न्याय पक्ष का साथ देने के लिए सहमत किया गया। अनीति पक्ष के मुकाबिले में लगभग उतनी ही बड़ी नीति समर्थक सेना खड़ी कर लेने से ही महाभारत सम्भव हुआ। यदि मात्र कृष्ण और पाण्डव ही लड़ने लगते तो सम्भव है युद्ध जीत जाते, पर महाभारत के माध्यम से संगठन की शक्ति को समझने-समझाने का महत्वपूर्ण प्रयोजन तो पूरा हो ही न पाता। असुर-संहार से भी बढ़कर आवश्यकता देव संगठन की रहती है। उसके बिना शान्ति और प्रगति के स्वप्न साकार हो ही नहीं सकते।

विनोद भी एकाकी नहीं हो सकता, भावनात्मक उल्लास की अनुभूति भी छोटे वर्ग में सीमित रहकर नहीं हो सकती। रासलीला में गोप-गोपियों का सामूहिक हास-विलास यह बताता है कि ममता और आत्मीयता का क्षेत्र अधिकाधिक विस्तृत होना चाहिए। "अधिक लोगों का अधिक लाभ" वाला सिद्धान्त अध्यात्म, धर्म और दर्शन के क्षेत्र में भी प्रधानता प्राप्त है। सब में अपने को और अपने में सबको देखने-समझने की दृष्टि रखकर मनुष्य का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तित्व अधिकाधिक विकसित एवं परिष्कृत बनता चला जाता है। आत्म-विस्तार की चरम अवधि तक जा पहुँचने का नाम ही आत्म-साक्षात्कार, ईश्वर दर्शन, जीवन-मुक्ति अथवा लक्ष्य प्राप्ति के आकर्षक नामों से धर्म-ग्रन्थों में अलंकारिक प्रतिपादनों के साथ प्रस्तुत किया गया है। संगठन का महत्व जितना अधिक और जितनी जल्दी समझा जा सके उतना ही लाभ है। 'संघ शक्ति कलौयुगे' सूत्र में सार रूप में यही बताया गया है कि इस युग में संसार का सबसे बड़ा, मनुष्य का सबसे प्रखर बल संगठन ही है। जो उसके लिए प्रयत्नशील रहेगा वह सुखी बनेगा और जिसने इसकी अवज्ञा-उपेक्षा की उसे उसी की प्रतिगामिता चूर्ण-विचूर्ण करके रख देगी। संकीर्णतारत, विगठनवादी नर-पशुओं को सृष्टि के अवांछनीय तत्वों की तरह नियति का कोपभाजन ही बनना पड़ेगा। उन्हें पतन और पराभव के गर्त में गिरकर नष्ट-भ्रष्ट ही होना पड़ेगा।

संगठन के शाश्वत सत्य को इन दिनों तो और भी अधिक प्राथमिकता मिलनी चाहिए। मानव समाज की प्रस्तुत विश्वव्यापी जटिल समस्याओं एवं विभीषिकाओं को हल करने के लिए जिन साधनों या उपायों की खोज की जा रही है वे अपर्याप्त हैं। अभीष्ट सफलता तो केवल मानवी एकता की समस्या को हल करने से ही सम्भव होगी।

ज्ञान और विज्ञान की प्रगति ने दुनिया को इतना छोटा बना दिया है जितनी कि वह पहले कभी भी नहीं रही। अब विश्व के किसी भी कोने में घटित होने वाली घटनाएँ समस्त संसार को प्रभावित करती हैं। द्रुतगामी वाहनों ने वर्षों की पैदल यात्रा को कुछ घण्टों की बनाकर रख दिया है। उद्योग, व्यवसाय, शिक्षा, कला, शिल्प आदि क्षेत्रों में देश एक-दूसरे पर निर्भर होते चले जाते हैं। अरब देशों का तेल दूसरे देश न खरीदें अथवा बेचने वाले अपना विक्रय बन्द कर दें तो इसका परिणाम दोनों ही पक्षों के लिए भयंकर होगा। यही बात अन्यान्य आदान-प्रदानों के सम्बन्ध में लागू होती है।

साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, पूँजीवाद, अधिनायकवाद के दिन अब लद गये। जन-चेतना इतनी प्रबल हो गई है कि निहित स्वार्थों द्वारा इन अनाचारों को थोपा जाना जनता द्वारा सहन नहीं किया जायेगा। इसी प्रकार अनीति के विरुद्ध भड़कने वाले विद्रोह को भी अब सैन्य बल से दबाया जा सकना सम्भव नहीं रहा। यह प्रयोग तभी तक सफल होते हैं जब तक जन-जागृति नहीं होती और जन-शक्ति नहीं उभरती। इन दिनों पिछड़े हुए और समुन्नत वर्गों के बीच खाइयाँ इतनी चौड़ी हो गई हैं कि उनके गर्त में अब तक की मानवी प्रगति को डूबते देर नहीं लगेगी।

रक्त विकृत हो जाने पर शरीर में खाज-खुजली फोड़े-फुन्सी, दाग-चिकत्ते ढेरों की संख्या में उगते हैं। एक-एक फुन्सी की दवा-दारू करते रहने से कुछ काम नहीं चलता। एक के अच्छे होने से पहले ही दूसरी नयी फुन्सियाँ उठ आती हैं। संसार के सामने प्रस्तुत अनेकानेक विभीषिकाओं को इन दिनों अलग-अलग उपायों से हल करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। स्वास्थ्य सुधार, शिक्षा संवर्धन, आजीविका उत्पादन, शस्त्र सैन्य आदि आधारों पर सर्वत्र ध्यान दिया जा रहा है। कई तरह की योजनाएँ सोची, बनाई और चलाई जा रही हैं, पर परिणाम नहीं के बराबर ही निकलता है। गुत्थियाँ जितनी सुलझती हैं उससे कहीं अधिक उलझ जाती हैं। विभीषिकाएँ हलकी होने के स्थान पर और भी अधिक ऊपर उभर आती हैं। रक्त की विकृति का निराकरण किये बिना फुन्सियों का उठना रुकेगा नहीं। विपत्तियों और विकृतियों के मूलकारण को देखे, सम्भाले बिना विपत्तियाँ क्रमशः और भी अधिक सघन होती चली जायेंगी।

युग ने भौतिक क्षेत्र में आश्चर्यजनक प्रगति की है यह एक सर्वमान्य तथ्य है। पर यह हुई ऐसी ही है जैसा कि एक हाथ या एक पैर का मोटा होना और दूसरे का पतला रह जाना। संगठन के अध्यात्म तत्व को भी इसी क्रम से विकसित किया जाना चाहिए। आत्मीयता का, एकता का क्षेत्र इसी अनुपात से बढ़ाया जाना चाहिए। सन्तुलित प्रगति का लाभ उसी स्थिति में प्राप्त किया जा सकेगा।

हमें संगठन तत्व की महत्ता समझते हुए एकता की ओर बढ़ना चाहिए। एक राष्ट्र, एक भाषा, एक संस्कृति, एक धर्म की आवश्यकता को स्वीकार करना चाहिए और गले उतारना चाहिए। छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटे हुए देश अपने-अपने स्थानीय स्वार्थों का राग अलापते रहेंगे और उनके लिए दुराग्रही नीति अपनाते रहेंगे तो बारूद में कभी भी चिन्गारी पड़ जायगी और विश्व विनाश का संकट सामने आ जायगा। पिछले दिनों मध्य पूर्व के देशों में जिन क्षेत्रीय स्वार्थों को लेकर संघर्ष हुआ, उसमें विश्व शान्ति को भारी आघात लगा है। यदि यह सभी देश एक ही महादेश के—विश्व राष्ट्र के प्रान्त भर रहे होते और विश्व पंचायत का निर्णय मानने के लिए विवश किये गये होते तो वह स्थिति सामने न आती, जो आज सामने खड़ी है। मध्य पूर्व का उल्लेख तो एक उदाहरण मात्र है ऐसी ही बारूद दुनिया के कोने-कोने में बिछी हुई है। ऐसे विस्फोट पिछले दिनों अनेकों हुए हैं और आगे भी उनके भड़कने की गुंजायश मौजूद है। इनके समाधान कूटनीतिक दाव-पेचों अथवा शस्त्र संघर्ष से सम्भव न होंगे। ऊपर की लीपा-पोती से भीतर ही भीतर सुलगने वाला विद्रोह रुकेगा नहीं वह कभी भी—कहीं से भी फूटकर बाहर निकलेगा।

संसार के समस्त राजनैतिक संकटों का हल एक ही है कि समस्त भूमण्डल का एक राज्य बने। देशों का विभाजन भौगोलिक आधार पर किया जाय और उनका दर्जा एक प्रान्त या जिला जैसा ही माना जाय। समस्त विश्व सम्पदा को समस्त मानव जाति की घोषित किया जाय। स्थानीय लोग—स्थानीय सम्पदा को अपने कब्जे में रखने का दुस्साहस न करें। जनसंख्या और भूमि विस्तार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का सन्तुलन बनाया जाय। एशिया की आबादी बहुत बढ़ गई जबकि अफ्रीका, अमरीका, आस्ट्रेलिया आदि के विशाल भूखण्डों में अभी करोड़ों लोगों के बसने और सुखपूर्वक रहने की पूरी गुञ्जायश है। चंद लोग इतने बड़े भूखण्डों को 'अपने कब्जे में दबाये बैठे रहेंगे और शेष लोगों को दम घोंटने वाली पिचपिच में सड़ना, मरना पड़ेगा तो आज न सही कल विद्रोह फूटेगा और विश्वयुद्ध छिड़ेगा। दो युद्धों का विनाश हम देख चुके। यह शृंखला तभी समाप्त होगी जब या तो संसार में न्याय की स्थापना हो जाय अथवा समस्त विश्व का सर्वनाश हो जाय। वर्ग स्वार्थ की वर्तमान रीति के रहते युद्ध और विनाश की घटाएँ घुमड़ती ही रहेंगी। इसका समाधान एक ही है—विश्व राष्ट्र की स्थापना। मनुष्य को विश्व नागरिक माने जाने की घोषणा। भूमण्डल की समस्त सम्पदा पर समस्त मानवों का समान रूप से अधिकार माना जाय और उसके समुचित वितरण सम्भव बनाने के लिए विश्व शासन की स्थापना। विश्व न्यायालय द्वारा मानव मात्र के हित को ध्यान में रखकर बड़ी समस्याओं का निष्पक्ष निराकरण प्रस्तुत किया जाय। इस समाधान के अतिरिक्त विश्व-शान्ति का और कोई विकल्प नहीं है। विगठन से हमें संगठन की ओर ही बढ़ना होगा।

यही बात भाषा के सम्बन्ध में भी है। अनेकानेक भाषाओं ने मनुष्यों को परस्पर विचार-विनिमय करने से वंचित-बाधित कर दिया है। एक भाषा जानने वाला दूसरी भाषा वालों के सामने गूँगा, बहरा बना रहता है। एक भाषा के सत्साहित्य से दूसरी भाषा वाला तनिक भी लाभ नहीं उठा पाता। बौद्धिक प्रगति के मार्ग में यह सबसे बड़ी बाधा है। यदि समस्त विश्व की एक भाषा हो तो संसार भर के सभी मनुष्य परस्पर उन्मुक्त विचार-विनिमय कर सकें—एक भूखण्ड का निवासी दूसरे भूखण्ड में जाकर अजनबीपन अनुभव न करे। क्षेत्रीय भाषा में आवश्यक साहित्य न होने के कारण इन दिनों जो ज्ञान संवर्धन में भारी व्यवधान रहता है वह न रहे। अनुवाद और प्रकाशन की प्रतीक्षा किये बिना आज की श्रेष्ठतम बौद्धिक उपलब्धि कल ही समस्त संसार के सामने प्रस्तुत हो सके। भाषाओं पर क्षेत्रीयता की छाप रहने से उनसे भाषायी सम्प्रदायवाद पनपता है। यह दीवारों टूट जाने से समस्त विश्व में प्रस्तुत किये जाने वाले श्रेष्ठतम प्रतिपादनों को समझ सकना—ज्ञान के हर पक्ष से परिचित हो सकना सभी के लिए सम्भव हो जायगा और नीर-क्षीर विवेक के जागरण से मानवी प्रगति में भारी सहायता मिलेगी।

धर्म, संस्कृति, दर्शन, नीतिशास्त्र, समाज व्यवस्था के क्षेत्रों में इन दिनों जो दुराग्रह एवं विलगाव संव्याप्त है उसने सत्य की शोध का मार्ग एक प्रकार से कुण्ठित ही कर रखा है। सभी वर्ग अपने पूर्वजों द्वारा प्रस्तुत किये प्रचलनों को सर्वोपरि मानने की हठ किये हुए हैं। "हम सही और सब गलत" की हठवादिता यथार्थता को समझने से, उपयोगिता उपलब्ध करने से वंचित कर देती है। पूर्वकालीन प्रतिपादन मानव जाति के क्रमिक विकास के आधार पर प्रस्तुत होते रहे हैं। परिस्थिति बदलने पर पूर्व मान्यताओं में संशोधन, परिवर्तन अनादि काल से होता चला आया है। अब उस दिशा में एक बड़ी छलाँग लगाने की आवश्यकता है। विज्ञान की तरह ज्ञान ने भी इन दिनों जो प्रगति की है, उसने हमें इस योग्य बना दिया है कि सत्य शोधन के लिए आज जो आधार मौजूद है उसके सहारे पिछले दिनों के प्रचलित एवं आज के अप्रचलित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए एक सार्वभौम तत्वदर्शन एवं नीतिशास्त्र प्रस्तुत किया जाय।

एक धर्म, एक अध्यात्म, एक दर्शन, एक आचार शास्त्र, एक समाज प्रचलन, बन जाने से मनुष्य सत्य के अधिक समीप पहुँचेगा और मानवी एकता की अनुभूति में भारी सहायता मिलेगी। तब सामाजिक रीति-रिवाजों और धर्म मान्यताओं की भिन्नता के कारण आज जो विद्वेष फैलता है—धर्म-ध्वजियों का स्वार्थ सधता है, उसकी कोई गुंजायश न रहेगी। एकता के आधार जितने सघन होंगे उतनी ही प्रेम भावना एवं सहकारिता के लिए द्वार खुलेंगे और प्रगति के पथ पर समस्त मानव जाति के साथ-साथ बढ़ना और सुख-शान्तिपूर्वक जीवन निर्वाह कर सकना सम्भव हो जायगा।

संगठन की गरिमा समझने और विगठन से मुँह मोड़ने से ही हमारी आज की समस्याओं का समाधान और भावी प्रगति का चिरस्थायी शुभारम्भ सम्भव हो सकेगा इस तथ्य को जितनी जल्दी हृदयंगम कर लिया जाय उतना ही उत्तम है।

समाजव्यवस्था का आर्ष दृष्टिकोण

समाज व्यवस्था को लेकर विश्व में कई मतवादों का प्रणयन हुआ है। व्यक्तिवाद, समूहवाद, समष्टिवाद, अराजकतावाद, राजतन्त्र, प्रजातन्त्र, समाजवाद, साम्यवाद आदि अनेकानेक विचारधाराओं का उद्भव और प्रचार हुआ। उपायों और व्यवस्था नियमों की दृष्टि से ये सब भिन्न-भिन्न हैं, पर सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो इन सबका लक्ष्य एक ही रहा है कि समाज में व्यक्ति सुखी रहे, सब लोग समान रूप से समुन्नति करें तथा कोई किसी के अधिकारों का वंचन न करें। भिन्न-भिन्न मार्गों से एक लक्ष्य तक पहुँचने की बात तो ठीक है, पर इन मार्गों को लेकर संसार में जो संघर्ष होते आये हैं, वे ही लक्ष्य तक पहुँचने में प्रमुख रूप से बाधक बन जाते हैं।

इन समस्त मतवादों से अलग रहते हुए भारतीय संस्कृति ने आदर्श समाज का जो स्वरूप रखा है, वह हजारों साल पुराना होने के बाद भी आज भी इतना नवीन है कि विभिन्न मतवादों के बीच होते रहने वाले संघर्षों को देखकर आशा की दृष्टि वहीं जाकर टिकती है। वैदिक विचारधारा किसी समुदाय विशेष की हित-कामना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को ही प्रधानता न देते हुए विश्वभर के कल्याण की कामना करती है तथा एक-दूसरे का परस्पर सहयोग द्वारा हित साधन का उपदेश देती है—

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्योस्मै वल्गु वदन्त एत सध्री चीनान् वः संमनस स्कृणोम।।

—अथर्व. ३।३०।५

अर्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग एक-दूसरे से बड़े और गुणों में श्रेष्ठ होकर भी समान चित्त होकर समान कार्य का साधन करते हुए, एक ही प्रकार के भार उठाते हुए अथवा समान रूप से एक ही केन्द्र में विचरण करते हुए कभी एक-दूसरे से विलग न होना। परस्पर एक-दूसरे के प्रति मधुरभाषी होकर एक दूसरे का सहयोग करो।

इस मन्त्र में सूत्र रूप में विश्वशान्ति के लिए आवश्यक सभी स्तर की सतर्कताओं और मर्यादाओं का समावेश हो गया है। कलह, लड़ाई-झगड़ा, अशान्ति और इन्हीं घटनाओं के बड़े आकार के युद्ध तभी उत्पन्न होते हैं जबकि एक-दूसरे को एक-दूसरे से हानि हो या हितों पर आघात पहुँच रहा हो। वेदों ने विभिन्न आचार मर्यादायें स्थापित कर एक-दूसरे के लिए हितैषी बनने तथा उन्नति करने का निर्देश दिया—

प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम्।
येन विश्वाः परिद्विषो वृणक्ति विन्दतेवसु।।

—यजु. ४।२६

अर्थ—हम लोग सुखपूर्वक उत्तम लक्ष्य तक पहुँचाने वाले, उपद्रवों से रहित उस मार्ग पर चला करें, जिससे मनुष्य सब दोषों को दूर करके नाना प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त करते।

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्या चन्द्रमसिव।
पुनर्ददता धनता संगमेमहि।।

—ऋ. ५।५१।१५

अर्थ—हम लोग सूर्य और चन्द्रमा के समान सदा कल्याणमय मार्ग पर चलें और दानशील, अहिंसक तथा ज्ञानी लोगों की संगति करें।

तथा दुष्ट दुराचारी व्यक्तियों के पास तक न बैठने की हिदायत की गयी है—

मैतं पन्थामनुगा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि। तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक्। —अथर्व. ८।१।१०

"हे पुरुष ! इस खोटे और टेढ़े मार्ग का अनुसरण मत कर। यह मार्ग बहुत भयंकर है। जिस मार्ग से तू पहले कभी नहीं चला उस अधर्म मार्ग के सम्बन्ध में कहता हूँ कि वह अन्धकारपूर्ण है। अतः कुपथ को छोड़कर सुपथ में चल तथा कुमार्गगामियों के पास में बैठ भी मत।"

सदाचार परायण व्यक्तिगत जीवन के साथ आदर्श गार्हस्थ्य जीवन के उपदेष्टा वेद के ऋषि ने गृहस्थ ही नहीं सद्गृहस्थ बनने की भी शिक्षा दी है। इस तरह के अनेक मन्त्र वेदों में हैं। पाणिग्रहण संस्कार में कन्या का पिता वर से कहता है—

एषा ते राजन् कन्या वधूर्नि धूयतां यम।
सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः।।

—अथर्व. १।१४।२

"हे ब्रह्मचारी ! ज्ञान और ब्रह्मवर्चस् तेज से प्रकाशमान वर यह कन्या तेरी वधूरूप होकर गृहस्थ का आनन्द करे। वह कन्या नयी माता (सास), नये भाई (देवर) तथा नये पिता (ससुर) के गृहस्थ बन्धन में बँधे।"

दाम्पत्य-जीवन में सुख और सौजन्य के अवतरणार्थ यह भी आवश्यक समझा गया कि दाम्पत्य सम्बन्धों को स्निग्ध और मधुर बनाये रखने के लिए लड़की-लड़के एक दूसरे से सहमत हों—

एमगन् पतिकामा जनिकामोऽहमागमम्।
अश्वः कनिक्रदद् यथा भगेनाहं सहागमम्।।

—अथर्व. २।३०।५

अर्थ—यह इच्छित स्त्री पति कामना से मेरे पास आ गयी है। हम दोनों ने एक-दूसरे को पसन्द किया है। मैं भी उसकी कामना करता हुआ उसे प्राप्त हो गया। मैं धन के साथ इसके पास आया हूँ। जैसे श्रेष्ठ अश्व अपनी मादा के पास जाता है।

व्यक्तिगत रूप से सदाचार पारिवारिक जीवन में स्नेह-सद्भाव का अर्जन करते हुए वेद ने समाज व्यवस्था के सम्बन्ध में भी महत्वपूर्ण निर्देश दिये हैं। भारतीय समाज की वर्णव्यवस्था तो प्रसिद्ध है ही इस सम्बन्ध में मुख्य भ्रांति यह फैली है कि वर्णव्यवस्था का आधार जन्म से समझा जाय अथवा कर्म से। वेद में इस तरह के अनेक प्रसंग आये हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि वर्ण व्यवस्था जन्म से नहीं कर्म और स्वभाव से ही निर्धारित की गयी थी। यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय में कहा गया है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याम् शूद्रोऽजायत।।

इसका व्याकरण सम्मत अर्थ करते हुए स्वामी दयानन्द ने लिखा है—"जो (अस्य) परमात्मा की सृष्टि में मुख के समान सब में मुख्य और उत्तम है, वह (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (बाहू) **बाहुर्वैः बलम् बाहुर्वैः बलम्** (शतपथ ब्राह्मण ५।४।१६) बल का नाम बाहू है, जो बलवान हो वह क्षत्रिय (उरु) कटि के अधोभाग और जानु के उपरिस्थ भाग का नाम उरु है, जो सब पदार्थों और सब देशों में उरु के बल से जावे-आवे, प्रवेश करे वह (वैश्यः) वैश्य और (पद्भ्याम्) जो पग के समान शरीर की सेवा करे वह शूद्र है।"

इस स्पष्टीकरण के बाद जन्म से वर्ण की मान्यता बेमानी हो जाती है। समाज व्यवस्था का आर्थिक आधार वेदों में कई स्थानों पर स्पष्ट किया गया है। इसे वेदों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरा प्रमुख कारण कहा जाता है। धनवानों को अपने व्यापार में लगाने का निर्देश देते हुए वेद कहते हैं—

इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएतानोऽस्तु। नुदन्न रातिं परिपन्थिनं मृग स इशानो धनदा अस्तु मह्यम्। —अथर्व. ३।१५।१

अर्थ—मैं इन्द्र की वाणिज्यकर्त्ता के भाव से स्तुति करता हूँ। वह इन्द्र यहाँ आगमन करें और वाणिज्य की हिंसा करने वाले शत्रु, मार्ग रोकने वाले दस्यु तथा व्याघ्र आदि को नष्ट करते हुए अग्रसर हों। वे इन्द्र मुझे व्यापार से होने वाले लाभ के रूप में धन प्रदान करें।"

इस लाभ से सबकी उन्नति चाही गयी है—

इदं हव्यं सविदानौ जुषेथां।
शुन नो अस्तु चरितमुत्थितं च।। —अथर्व. ३. १४. ४

"तुम मेरी हवि (लाभ को सब लोगों में बाँट देने के रूप में यज्ञीय भावना) ग्रहण करो तथा मूलधन से बढ़ा हुआ लाभ का धन हम सब लोगों को सुखी, सम्पन्न और सन्तुष्ट करे।"

समतामूलक समाज की रचना का लक्ष्य भी सर्वप्रथम वेदों में ही दिखाई देता है। कहा गया है—

समानी प्रषा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि। सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभि मिवाभितः।। —अथर्व, ३।३०।६

अर्थात्—तुम्हारा अन्न-पानी का उपभोग एक-सा हो। मैं तुम्हें प्रेम सूत्र के साथ-साथ बाँधता हूँ। जैसे पहिये के अरे नाभि के आश्रित होते हैं वैसे ही तुम सब एक ही सूत्र में आबद्ध रहो और ईश्वर की सेवा करो।

सध्री चीनान् वः समनस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवनेन सर्वान्। देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु।। अथर्व ३.३०.७

'मैं तुम्हें समान मन वाले बनाकर एक से कार्य में प्रवृत्त करता हूँ। स्वर्ग में अमृत की एक मत से रक्षा करने वाले इन्द्रादि देवताओं के मन जैसे श्रेष्ठ रहते हैं वैसे ही प्रातः, सायं तुम्हारा मन सुन्दर, श्रेष्ठ और एक रहे।'

अलग-अलग चौके, चूल्हे में होने वाले समय और श्रम के अपव्यय को रोकते हुए कहा गया है—

सहभक्षा-स्याम।

अर्थ—हम सब एक साथ भोजन करने वाले हों। साथ ही समानाधिकार के सिद्धान्त का भी समर्थन किया गया है—

समानो अध्वा प्रवता मनुष्यदे। —ऋ. २।१३।२

अर्थ—सब चलने वालों का मार्ग पर समान अधिकार है।

केवल व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए ही नियोजित करने वालों को भी निन्दा की गयी है—

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः
सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं
केवलाघो भवति केवलादी।। —ऋ. १०।११७।६

अर्थ—जो व्यक्ति न तो ईश्वर के मार्ग पर दान देता है, न अपने राष्ट्र की वृद्धि के लिए खर्च करता है और न अपने मित्रों का पालन-पोषण करता है, ऐसा व्यक्ति व्यर्थ ही धन का संचय करता है। केवल मात्र अपना ही पोषण करने वाला व्यक्ति पाप ही खाता है और निस्सन्देह वह अन्न और धन उसके अधःपतन का कारण बनता है।

इस प्रकार वेदों ने आदिकाल से ही समतामूलक समाज की रचना का आधार रख दिया है और वह भी मनुष्य के नैतिक विकास द्वारा इन दिनों जब सर्वत्र साम्यवाद के आतंकवादी स्वरूप की निन्दा ही की जा रही है, विचारशील वर्ग उसे व्यर्थ बता रहा है। व्यक्ति के नैतिक विकास द्वारा समानतावादी समाज की ओर ही विश्व को उन्मुख होना पड़ेगा।

समता में सबकी व्यवस्था है

युवा पिता स्वपारुद्र एषां, सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः। —ऋ ५।६०।५

अर्थात्—"संसार में न कोई बड़ा है न छोटा, परमात्मा के पुत्र, सभी मनुष्य भाई-भाई हैं। सब मनुष्य आपस में मिलकर जीवन सुखमय बनाने का प्रयत्न करें। एक ही प्रकृति माता की गोद से उत्पन्न सब समान हैं कोई ऊँच नहीं, कोई नीच नहीं।"

समता मनुष्य समाज के सुख, शांति और सुव्यवस्था का प्रमुख आधार है। लोगों में जब भी और जहाँ भी ऐसी प्रवृत्तियाँ विकसित हो रही होंगी, वहाँ देवत्व की प्रचुर मात्रा विद्यमान होगी। जातियों को एक सूत्र में पिरोये रखने का आधार समता की भावना है। जिन जातियों में छोटे-बड़े, ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं रहता वे लौह-जंजीर की भाँति कभी न टूटने वाली रही हैं और आगे भी उन्हीं का अस्तित्व शेष रहेगा। भेद-नीति, फूट, कलह, कटुता और पतन का कारण बनती हैं। हिन्दू-जाति में जब से वर्ण-व्यवस्था में गुण, कर्म और स्वभाव से उत्कृष्टता का मापदण्ड खत्म हुआ और ऊँच-नीच, छोटे-बड़े की स्वतंत्र नीति बरती जाने लगी है, तभी से उसका आन्तरिक संगठन ध्वस्त हुआ और उसका पूर्व गौरव नष्ट प्रायः हो चला है। समता-संगठन की रीढ़ है जिससे जातिगत् शक्ति जीवित रहती है। आंतरिक सक्षमता और भौतिक समृद्धि का मूल कारण भी यही है।

पारस्परिक घृणा, अहंकार और कूटनीति के कारण लोग एक-दूसरे के शत्रु बन जाते हैं और आपस में भीषण प्रतिशोध उठ खड़ा होता है। फलस्वरूप समय, धन और बुद्धि का अधिकांश भाग इस बदले की भावना को शांत करने में ही लग जाता है। जो शक्ति और साधन मानवीय उन्नति में सहायक हो सकते थे वे न केवल व्यर्थ जाते हैं वरन् समाज में पैतृक अव्यवस्था पैदा कर जाते हैं, जिससे ईर्ष्या, द्वेष, कलह, कूटता, छल, कपट आदि अवगुण उस समाज के स्थायी अंग बन जाते हैं और जातीय जीवन को पनपने से रोक देते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असमानता ही इस पतन की जड़ है। मनुष्य में जब बड़े होने की महत्वाकांक्षा विकृत उत्पन्न हो जाती है तभी उसे सब तरह के स्वार्थ घेरते हैं। मैं सबसे बड़ा हूँ—इस भावना के कारण दूसरों को छोटा; उपेक्षित समझने की हीन-भावना उदय होती है। स्वार्थों की पूर्ति के लिये ऐसे लोग धर्म और न्याय के नाम पर स्वच्छन्दता का व्यवहार करते हैं। तात्कालिक शक्ति और सत्ता के बल पर यह तो सम्भव है कि कुछ समय तक ऐसे स्वार्थी, मिथ्याचारी लोग किन्हीं को दबाकर रक्खें या उनसे मनमाना काम लें, सतायें, परेशान करें, सामन्तवादिता और नौकरशाही प्रदर्शित करें। किन्तु दलितवर्ग पर जब इस तरह का दबाव पड़ेगा तो उसकी आंतरिक शक्तियाँ विद्रोह करने से चूकेंगी नहीं। जब भी उन्हें अवसर मिलेगा वे समाज के खिलाफ, नृशंसता के खिलाफ विद्रोह कर देंगे और समाज में असंतुलन पैदा कर देंगे। धन एक स्थान पर जमा होगा तो चोरी और नीति में पक्षपात का बर्ताव होगा, तो जनता विद्रोह करने से नहीं चूकेगी, इससे आंतरिक व्यवस्था जरूर अस्त-व्यस्त होगी। ऊँच-नीच, छूत-छात की भावना स्वार्थियों की देन है। जातियों का संगठन बचाये रखने के लिये इस विरोध भावना को दूर करने में ही कल्याण है।

यह बात अधिकतर हमारे विचारने की है क्योंकि हिन्दू जाति में ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र की वर्ण व्यवस्था को ऐसा विकृत रूप दिया जाता है। गुण, कर्म, और स्वभाव के अनुरूप श्रेष्ठता, अश्रेष्ठता की भावना अब नहीं रही। जन्म से कोई ब्राह्मण है और कर्म भले ही शूद्रों जैसे हों तो भी श्रेष्ठता का सम्मान उसे ही मिलेगा, इस भूल को यदि हम समझ पायें तो अन्य जातियों के समक्ष हमारी जो मान-हानि हुई है, उससे निकल सकते हैं और हिन्दू संगठन को पुनः जीवित और जाग्रत कर सकते हैं।

हिन्दू धर्म जिस सूत्र पर आधारित है वह वस्तुतः समता का ही सिद्धांत है। सच्चे साम्यवाद के दर्शन भारतीय संस्कृति में ही देखने को मिलते हैं। समाज निर्माण के लिये समान व्यक्तित्व निर्माण की आवश्यकता होती है। जब मनुष्य अपने लिये, समाज के लिये, प्राणिमात्र के लिये और ईश्वरीय विधान के लिए सहयोगी के रूप में कर्तव्य पालन करता है तभी ऊँच-नीच की अज्ञानता मिटनी संभव होती है। एक के लिये शेष तीन को त्यागा नहीं जा सकता। व्यक्तिगत सुख-साधन और श्रेष्ठतायें अधिकतम मात्रा में अर्जित की जा सकती हैं किन्तु उससे, समाज को दोष न लगना चाहिए, प्राणियों को पीड़ा न पहुँचनी चाहिए, ईश्वरीय नियमों की अवहेलना भी न होनी चाहिए।

मनुष्यों ने यह जो जाति-पाँति, भाषा-भाव, प्रांतवाद धर्म-विचार की संकीर्णता पैदा की है उससे ईश्वरीय नियमों की उपेक्षा होती है। बाहरी दृष्टि से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र दिखाई देने वाले जिस तरह आत्मिक दृष्टि से समान हैं, उसी तरह अन्य जीव-जन्तु, पशु-पक्षी भी हम से आपसे भिन्न नहीं हैं। आफिस का बाबू अपने काम का अलग वेतन पाता है, फैक्टरी का कर्मचारी अलग। अपनी-अपनी योग्यता का लाभ उतने ही अंश में दोनों को मिल रहा है, फिर दफ्तर का बाबू यदि बड़ा बनने का अभिमान प्रदर्शित करे तो उसे उसका मिथ्या-दर्प ही कहा जायगा। इसी प्रकार बैल को यही क्या कम सजा है कि वह मूक होकर आपकी सेवा करने को विवश किया गया है, आपको इतना ही अधिकार हो सकता है कि उसकी सेवायें ले लीजिये। उसे मारने, दिन-रात काम लेने और जीवनयापन की पूरी सुविधायें न देने के हकदार आप नहीं हैं। मनुष्य का दृष्टिकोण जब तक इतना विशाल, इतना खुला हुआ नहीं बनता, तब तक उसके जीवन में शान्ति और सुव्यवस्था का अभाव ही बना रहेगा।

प्रकृति अपने अनुदान समान रूप से बाँटती है। हवा बहती है—वह सबके लिए, वर्षा होती है वह सबके लिये, फल उगते हैं वह सबके लिए। अग्नि कभी किसी के साथ पक्षपात नहीं करती। सूर्य किसी एक घर को ही प्रकाशित नहीं करता। चन्द्रमा का औषधि-तत्व सम्पूर्ण वृक्ष-वनस्पति चूसते रहते हैं। परमात्मा का प्राण संसार के सम्पूर्ण प्राणियों के लिए समान रूप से बिखरा पड़ा है। जिसकी जितनी इच्छा हो उतना उपभोग करें। प्रकृति कभी किसी के साथ अन्याय नहीं करती। असहाय, साधनविहीन पशु-पक्षियों के लिये भी वह आहार आदि की व्यवस्था करती है। मनुष्य है जो केवल अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये विषमता के बीज बोकर समाज में अशांति और अव्यवस्था पैदा करता है। साम्यावस्था को प्रकृति और विषमता को विकृति कहते हैं। समता ही धर्म है और विषमता ही अधर्म है। विषमता बढ़ती है तो सर्व-साधारण को सुविधापूर्वक जीवन बिताना भी कठिन हो जाता है। कुछ लोग ऐश्वर्यशाली होकर विलासिता का जीवन बितायें और पड़ौस का दूसरा व्यक्ति एक समय का भरपेट भोजन भी न पाये, तो उस मनुष्य को, उस समाज को कलंकित ही ठहराया जायेगा। प्राचीनकाल में जिनके पास अधिक धन, अन्न और वस्त्र आदि होते थे, वे अपनी आवश्यकताओं से शेष बचे हिस्से को उदारतापूर्वक उन लोगों को बाँट देते थे, जिन्हें उसकी आवश्यकता होती थी। इस तरह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का संरक्षण भी होता था और समाज में ईर्ष्या-द्वेष की भावनायें भी नहीं बढ़ती थीं।

जिस तरह मनुष्य-मनुष्य के बीच में, देश, जाति, भाषा, धर्म, काले, गोरे, ऊँच, नीच, धनी, निर्धन आदि का भेदभाव देखा जाता है वैसी ही यह भी संकीर्णता है कि मनुष्य अपने आपको शेष प्राणियों से अलग किये हुए हैं। संसार के अन्य जीवधारी भी यदि देखा जाय तो उसी प्रकृति माता के पुत्र हैं, जिसके गर्भ से मनुष्य जीवन पाता है। उनमें भी कितनी ही ऐसी विशेषतायें देखने को मिलती हैं जो मनुष्य की बुद्धि और उपलब्धि से भी बढ़कर होती हैं। वे भी इस धरती में समान रूप से जीवित रहने के अधिकारी हैं। उनके इन अधिकारों को छीनकर, उन्हें अपने उपभोग और आहार की वस्तु समझकर मनुष्य ने बड़ा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपयश कमाया है। अन्य जीवधारियों के शोषण का पाप मनुष्य के सिर पर है। उसे मिटाना तभी संभव है जब वह मनुष्य की और अन्य प्राणियों की आत्मिक एकता को समझे और सबके साथ वैसा ही व्यवहार करे जैसा वह अपने लिए औरों से अपेक्षा करता है।

समता के सिद्धान्त का प्रतिपालन

'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के तत्व ज्ञान में प्रत्येक प्राणी की मूल चेतना में आत्मा की उपस्थिति दीखने, सबको समान सुख-दुःख होने और प्रत्येक को न्याय का अधिकारी होने की मान्यता है। किसी सभ्य राष्ट्र में प्रत्येक प्रजाजन को समान नागरिक अधिकार प्राप्त होते हैं। वोट देने का प्रत्येक वयस्क को समान अधिकार होता है। जीवात्मा की इसी मौलिक स्थिति को समता के तत्वज्ञान से स्वीकार किया गया है। इसका फलितार्थ 'जिओ और जीने दो' के रूप में सामने आता है। दूसरों से वही व्यवहार करें, जो दूसरों से अपने लिए चाहते हैं। हमें कोई कष्ट पहुँचावे तो कितना दुःख होता है और दूसरों की उदार आत्मीयता से कितनी प्रसन्नता होती है ? इसे ध्यान में रखकर दूसरों के साथ अपने व्यवहार की नीति अपनायें।

आततायी को सुधार की कठोर शिक्षा देने की इस सिद्धान्त में पूरी-पूरी छूट है। एक आँख प्यार की दूसरी सुधार की रखे बिना सन्तुलन रह ही नहीं सकता। प्यार के आधार-स्नेह, सहयोग देकर व्यक्ति की उत्कृष्टता उभारना, प्रगति का पथ-प्रशस्त करना कर्तव्य है, किन्तु इस उदारता का उपयोग दुष्टता के अभिवर्धन में होने लगा तो समझना चाहिए अर्थ का अनर्थ हो गया। दुष्ट-दुराचारियों को भी सन्त-सज्जनों जैसा सम्मान-सहयोग दिया जाने लगे तो समझना चाहिए कि प्रतिपादित आदर्श द्वारा सर्वनाश की भूमिका खड़ी कर दी गई। समानता का यह अर्थ नहीं है कि उपकारी और आततायी को एक ही समान समझा जाय। ऐसा अन्धा साम्यवाद तो कम्युनिस्ट देशों में भी नहीं है। वहाँ अर्थ वितरण में समानता के सिद्धान्त को मान्यता दी गई है किन्तु अधिक उपयोगी और अधिक परिश्रमी की विशेषता भी स्वीकार की गई है और उसे कुछ अधिक सुविधा भी दी गई है। इसी प्रकार हरामखोर और कामचोरों की सामान्य सुविधाओं में कटौती भी की गई है। इसका औचित्य भी है। भावना और कर्म-कौशल के आधार पर वहाँ लोगों को सम्मानित भी किया जाता है और नीति, मर्यादाओं का उल्लघंन करने वाले कठोर दण्ड भी प्राप्त करते हैं। दण्ड या सम्मान सब को समान मिले, श्रेष्ठता और दुष्टता का अन्तर न किया जाय ऐसा तो कदाचित् ही किसी के लिए सम्भव हो। जीवन मुक्त ऋषि, मनीषि और देवता भी व्यक्ति भेद को ध्यान में रखकर किसी को वरदान से पुरस्कृत और अभिशाप देकर दण्डित करते हैं। ईश्वर को समदर्शी कहा गया है। वह भी किसी को स्वर्ग किसी को नरक भेजता है। ऐसी अन्धी समता जो श्रेष्ठ, निकृष्ट सभी को एक लाठी से हाँके, विवेक-शून्य स्थिति में ही सम्भव हो सकती है। औचित्य और न्याय को तिलाञ्जलि देकर ही ऐसी अन्धी समता व्यवहार में लाई जा सकती है।

सम्भवतः इस प्रकार की माँग दुरात्माओं द्वारा की गई होगी और उसका समर्थन किन्हीं निहित स्वार्थों के परिपोषक धर्माचार्यों ने कर दिया होगा। इसमें आततायी लोगों को दुहरा लाभ है। वे अनीतिपूर्वक अवांछनीय लाभ भी उठाते हैं और सबको समान सद्भावना मिलने के नाम पर दण्ड से भी बेदाग बच जाते हैं। इसमें सज्जनता को दुहरी हानि है। एक तो वह पहले ही आक्रमण की शिकार हुई, दूसरे भविष्य की रोकथाम के लिए जिस तीखे प्रतिरोध की आवश्यकता थी, उसका भी क्षमा के नाम पर पत्ता कट गया। अब यह उदार क्षमा उसके रहे-बचे अस्तित्व का भी सफाया करेगी। समानता का यदि यही अर्थ निकलता है कि उससे पाप और पुण्य को-देव और दानव को एक समान माना जाय और दोनों के प्रति समान एक-सा व्यवहार किया जाय तो वह धर्म मूल धारणा के अनुकूल नहीं प्रतिकूल पड़ता है।

भगवान को समय-समय पर अवतार लेने पड़े हैं। उस अवतरण के दो उद्देश्य रहते हैं—एक अधर्म का विनाश दूसरा धर्म की प्रतिष्ठापना। यह दोनों कार्य एक समान नहीं वरन् एक-दूसरे के सर्वथा प्रतिकूल हैं। एक में कठोर प्रताड़ना और दूसरे में उदार अनुकम्पा जुड़ी हुई है। इसमें तात्विक समता देखी जा सकती है। सबकी अन्तरात्मा में समान रूप से श्रेष्ठता की स्थापना उद्देश्य है। यह किसे किस प्रकार मिले इसके व्यवहार में अन्तर तो रहेगा ही। एक बच्चे को मिठाई दी जाती है। दूसरे को उससे वंचित रखा जाता है और कड़ुवी दवा पिलाई जाती है। अभिभावकों का दोनों बालकों पर समान प्यार होते हुए भी उनकी शारीरिक स्थिति को देखकर अन्तर करना पड़ता है। स्वस्थ को कड़ुवी दवा खिलाने और बीमार को मिठाई देने में कोई औचित्य नहीं। ऐसी समानता बरतने वाले अभिभावक अपने बालकों के साथ अनर्थ ही बरतेंगे।

पिछड़ेपन को दूर करने और पीड़ा का निराकरण करने के लिए उदार सहयोग देना उचित है। यह मानवी सद्भावना, सहृदयता और सज्जनता के सर्वथा अनुकूल है कि समर्थ व्यक्ति अपने से पिछड़े लोगों को ऊँचा उठाने के लिए के भरपूर प्रयत्न करें। करुणा और सद्भावना का परिचय देकर उन्हें ऊँचा उठाने और आगे बढ़ाने का प्रयास करें। इस उदारता का बढ़ा-चढ़ा परिचय देना सन्त परम्परा और सज्जनोचित, सद्भावना का अंग रहा है। इससे पिछड़े वर्ग को ऊँचा उठने का अवसर मिलता है और उच्च वर्ग को आदर्शवादी उत्कृष्टता का परिचय देकर आत्म-सन्तोष का श्रेय, प्रतिफल का लाभ मिलता है। महामानवों के जीवनक्रमों में यह परमार्थ भावना अविच्छिन्न रूप से जुड़ी रही है। इस अवलम्बन को अपनाकर वे महानता की उपलब्धि प्राप्त कर सके हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भगवान की उदारता प्रसिद्ध है। वे प्राणियों को सुख-सुविधा के अनेकों साधन प्रदान करते हैं। पुकार सुनकर सहायता के लिए दौड़ते हैं। गज को विपत्ति से उबारने और द्रौपदी की लाज रखने वाले भगवान न्याय पक्ष का सदा समर्थन करते हैं। वे अर्जुन के सारथी बने थे। सुग्रीव, विभीषण, नरसी, सुदामा, प्रहलाद आदि भक्त जनों की उन्होंने सदा सहायता की है।

सन्त चरित्रों में उदारता, सेवा, सहायता के असंख्य प्रसंग भरे पड़े हैं। अम्बरीष, पुण्डरीक, रुक्मांगद, रन्तिदेव, राजा शिवि आदि की जीवन गाथाओं को देखने से प्रतीत होता है कि वे उपासना एवं ज्ञान-साधना के लिए जितने तत्पर रहे, उतना ही उन्होंने लोकसेवा में भी रस लिया है। सत्परम्पराओं की स्थापना ने पीड़ितों की सहायता एवं छोटों को बड़ा बनाने में भी भरपूर प्रयास किया है।

भागवत कथा के अनुसार रन्तिदेव कहते हैं—"पीड़ितों की सहायता करते रहना ही मेरी एकमात्र कामना है।" पदमपुराण के राजा महीरथ का कथन है—"समर्थ होते हुए भी जो दुःखियों की सहायता नहीं करता वह पापी है। दूसरों का उपकार करने से विरत करने वाले स्वर्ग से तो सेवा निरत रहकर नरक में निवास करना उत्तम है।" कबूतर की रक्षा के लिए अपना माँस देते हुए महाभारत के राजा शिवि कहते हैं, परहित चिन्तन न करने वाला मनुष्य तो पशु से भी गया बीता है। लंकावतार सूत्र के अनुसार भगवान बुद्ध का वचन है—जब तक संसार का एक भी प्राणी बन्धन में बँधा है, तब तक मैं मोक्ष को स्वीकार न करूँगा। मुझे तो पिछड़ों की सेवा ही अभीष्ट है। स्कन्द पुराण के भक्त प्रहलाद की भावना है—"दुखिहारों में ही मुझे भगवान दीखते हैं। पीड़ितों की सेवा में मुझे भजन का आनन्द मिलता है।" ऋषि की कामना है—"मुझे राज्य, सुख, स्वर्ग, मुक्ति और कुछ नहीं चाहिए मेरी तो दुःखियों के दुःख दूर करते रहने की ही कामना है।"

यह साम्य योग हुआ। समर्थ व्यक्ति अपनी समर्थता-असमर्थों को बाँटे। ज्ञानवान, अज्ञानियों को अपने समतुल्य बनायें—धनी अपनी सम्पदा द्वारा दूसरों को अर्थ संकट से उबारें। सज्जन स्वयं ही सज्जन बने रहने में सन्तुष्ट न रहें वरन् अन्यान्यों को भी सज्जन बनाने के प्रयत्न में संलग्न रहें। इस प्रकार एक ऊँचा दूसरा नीचा न रहेगा। टीले और खाई को पाटकर समतल बनाने के प्रयासों को समता कहा जा सकता है। इसी समता सिद्धान्त का तत्वज्ञान में प्रतिपादन किया गया है। छोटों और बड़ों का—पत्नी और भगिनी का, दुष्ट और सन्त का भेदभाव छोड़कर सबके साथ एक-सा व्यवहार करने लगना तो मूढ़ता है। मूढ़ता और समता एक बात नहीं है।

एकता, समता की पौध उगायें

सुख-शान्ति और प्रगति की समस्त सम्भावनायें न्याय एवं औचित्य के अवलम्बन पर निर्भर हैं। जहाँ अनीति बरती जायेगी वहाँ विग्रह खड़े होंगे और संकट के घटाटोप छाने लगेंगे। अस्तु, व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में सद्भावना-सहकारिता का वातावरण बनाया जाना—बने रहना हर दृष्टि से आवश्यक है। पैनी नजर से यह देखते रहना चाहिए कि कहीं अनीति तो नहीं पनप रही है। अनौचित्य का पक्ष प्रबल तो नहीं हो रहा है। इस सन्दर्भ में उपेक्षा बरतने पर अशान्ति ही जन्मेगी और अवगति ही होगी।

न्यायोचित दृष्टिकोण अपनाने और जीवनयापन करने के लिए एकता और समता के सिद्धान्त ऐसे हैं, जिन्हें अनिवार्य रूप से अपनाया जाना चाहिए। इस सन्दर्भ में दो सनातन आप्त वचन हैं—(१) आत्मवत् सर्वभूतेषु, (२) वसुधैव कुटुम्बकम्। इन्हें श्रद्धा और निष्ठापूर्वक अपनाये रहा जाये तो औचित्य सहज ही निभ जाता है और समग्र प्रगति का वातावरण बनता चला जाता है। राजमार्ग छोड़कर कँटीली झाड़ियों में भटकने वाले की जो दुर्गति होती है, उसी प्रकार एकता और समता का सिद्धान्त छोड़ बैठने वाले को पतन-पराभव के गर्त में गिरना होता है। विचारशीलों को देखना यही चाहिए कि व्यक्तिगत जीवनचर्या और समाज व्यवस्था इन सिद्धान्तों के अनुरूप चल रही है या नहीं। यदि व्यतिरेक हो रहा हो तो उसे सुधारने के लिए प्राणप्रण से प्रयत्न करना चाहिए। इसी पर व्यक्ति और समाज की सर्वतोमुखी प्रगति निर्भर है।

इन दिनों बिलगाव की दुष्प्रवृत्तियों का बुरी तरह विस्तार हो रहा है। लोग यह भूलते जा रहे हैं कि एकता और समता का सुख, शान्ति, समृद्धि और प्रगति के साथ कितना सीधा सम्बन्ध है ? जब इसमें व्यतिरेक उत्पन्न होते हैं तो संकट घहराने लगते हैं। तिनके मिलकर मजबूत रस्सा और धागे मिलकर टिकाऊ कपड़ा बना है। उन्हें अलग-अलग कर दिया जाय तो मात्र कचरा ही शेष रहेगा। समर्थता और सुव्यवस्था, सद्भावना और सहकारिता पर ही निर्भर है। यह सनातन सत्य इन दिनों झुठलाया जा रहा है और हर क्षेत्र में अलगाववाद का बोलबाला हो रहा है। विघटन का उल्टा क्रम चल पड़ा है। यह सम्भावनाओं की दृष्टि से बुरे लक्षण हैं। इन्हें रोकना और सुधारना हर उदारचेता का सुनिश्चित कर्त्तव्य है।

जाति-पाँति के नाम पर, धर्म सम्प्रदाय के बहाने, गरीबी-अमीरी के अन्तर से, नर-नारी वाले लिंग भेद से, एकात्मता को भारी चोट पहुँच रही है। भाषावाद, प्रान्तवाद, भी विषैले सर्प की तरह फन फैला रहा है। इन सभी कारनामों से हमारी राष्ट्रीयता, एकता दुर्बल हो रही है और प्रगति की सम्भावनाओं में व्यतिरेक उत्पन्न हो गया है। इन सभी पर नजर रखने की और असंतुलन को सन्तुलन में बदलने की आवश्यकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझा और समझाया जाना चाहिए कि मनुष्य मात्र एक है। गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर ही कोई नीच-ऊँच बनता है। जाति वंश के आधार पर नहीं। जाति तो सभी की एक मनुष्य है। उसमें वंश, क्षेत्र, भाषा, धर्म आदि के कारण किसी को नीचा, ऊँचा समझने का कोई कारण नहीं। इन विषमताओं ने असाधारण हानियाँ पिछले दिनों पहुँचाई हैं, अब वह सिलसिला बन्द होना चाहिए। व्यवहार और वातावरण ऐसा बनाना चाहिए, जहाँ सभी एक-दूसरे को आत्मभाव से देखें। पारिवारिकता छोटेकुटुम्ब तक सीमित न रहकर व्यापक क्षेत्र में विकसित हो। सभी एक-दूसरे का सम्मान करें। सद्भाव अपनायें और सहकारिता की नीति अपनायें। शक्ति और समर्थता इसी सत्प्रयास पर निर्भर है। शान्ति और प्रगति का आधार भी यही है। एकता और समता की नीति अपनाकर ही उज्ज्वल भविष्य की सम्भावनाओं को साकार किया जा सकता है।

जाति-पाँति के आधार पर बरती जाने वाली ऊँच-नीच की मान्यता समाप्त होनी चाहिए। हर क्षेत्र में एकता को प्रश्रय मिलना चाहिए। पिछले दिनों अनुसूचित जातियों और जनजातियों को पिछड़ेपन के अभिशाप में अधिक लदना पड़ा है। अब उसका प्रायश्चित होना चाहिए और प्रचलन में जातिगत असमानता को कोई स्थान नहीं मिलना चाहिए।

धर्म सम्प्रदाय निजी श्रद्धा के विषय हैं। उनमें से जो जिसे चाहे इच्छापूर्वक चुने। पर यह पूर्वाग्रह कहीं नहीं पनपना चाहिए कि भिन्न मान्यता वाले गलत हैं और उन्हें भ्रान्ति या नास्तिक समझा जाय। दमन या प्रलोभन से अपने वर्ग में शामिल होने के लिए विवश न किया जाय। एक ही स्थान तक पहुँचने के अनेक मार्ग हो सकते हैं। इसी प्रकार पूर्णता का लाभ प्राप्त करने के लिए किसी भी धर्म सम्प्रदाय का अवलम्बन लिया जा सकता है। यहाँ तक कि अनीश्वरवादी भी आस्तिकों की ही तरह कर्त्तव्यपरायण एवं आदर्शवादी बनकर अपने ढंग की धार्मिकता का निर्वाह कर सकता है। सभी धर्मों, जातियों, वर्गों, वर्णों के बीच एकता होनी चाहिए। एक उद्यान में कई प्रकार के फूल होने से उसकी शोभा में कोई कमी नहीं आती। धर्म-सम्प्रदाय भी एक-दूसरे के पूरक हो सकते हैं। उसी स्थिति में बने भी रहें इसके लिए हम सबको पूरा प्रयत्न करना चाहिए और राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता को अक्षुण्ण बनाये रहने का कोई अवसर हाथ में नहीं जाने देना चाहिए। इस प्रकार भाषा या क्षेत्र के आधार पर अपने पराये की प्रवृत्ति नहीं पनपने देनी चाहिए। इन विषमताओं को बिलगाव के स्तर तक न पहुँचने देने के लिए पारस्परिक व्यवहार में अधिकाधिक सहिष्णुता का, सद्भावना का पारस्परिक सम्मान-सहयोग का प्रचलन बढ़ने देना चाहिए।

विषमताओं में एक अधिक दुःखदाई विभेद की दीवार है नर-नारी के बीच बरती जाने वाली असमानता। दोनों ही वर्ग एक-दूसरे के पूरक हैं। गाड़ी के दो पहियों की तरह, दो आँखों, दो पैरों, दो कानों की तरह। उनके साधन-सहयोग से ही समग्रता बनती है। पुरातन काल में ऐसा ही था भी। वरन् नारी पक्ष को और भी अधिक सम्मान मिलता था। उसे देवी शब्द से सम्बोधित किया जाता था। शास्त्रकार कहते थे कि जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहीं देवता निवास करते हैं अर्थात् वह घर परिवार स्वर्गोपम सुखद परिस्थितियों से भर जाता था।

मध्यकालीन, सामन्तवादी अन्धकार युग में विषम प्रचलनों ने परिस्थितियाँ बदल दीं और आज नारी घर की चहारदीवारी में बन्द पिंजड़े के पक्षी की तरह जी रही है। उसे रसोईदारिन, चौकीदारिन, गुड़िया, धाय, पराधीन, दासी जैसी स्थिति में गया-गुजरा जीवनयापन करना पड़ रहा है। आधी जनसंख्या जब ऐसा गया-गुजरा जीवनयापन करे तो स्वभावतः उसका वजन दूसरे नर पक्ष को गले में बँधे पत्थर की तरह ढोना पड़ेगा। टूटे पहिये वाली गाड़ी की तरह किसी प्रकार गृहस्थ की गाड़ी को खींचना पड़ेगा। अर्धांग पक्षाघात पीड़ित की तरह नारी स्वयं में भारभूत होकर रह रही है। दूसरों की वैसी सहायता उससे कहाँ करते बन पड़ती है जैसी कि सही स्थिति में रहने पर वह कर सकती थी।

अपने देश में शिक्षा की वैसे ही काफी कमी है। प्रायः एक चौथाई पढ़े और तीन चौथाई अनपढ़ हैं। इसमें भी पुरुषों की तुलना में स्त्रियाँ और भी कम ही हैं। देहातों में तो नारी शिक्षा का अनुपात और भी कम है। स्पष्ट है कि शिक्षा के अभाव में जानकारियों का क्षेत्र बहुत ही सीमित होकर रह जाता है। समय के अनुरूप जिन सुविस्तृत जानकारियों की आज आवश्यकता है, उनसे उन्हें वंचित ही रहना पड़ता है। पुरुष तो समाज सम्पर्क से कुछ अनुभव तो भी एकत्रित कर लेते हैं, पर घर की चहारदीवारी में कैद रहने के कारण नारी के लिए तो वह सुविधा भी नहीं है। इस स्थिति को बदला जाना चाहिए। नारी शिक्षा का विशेष प्रबन्ध करना चाहिए। समाज सम्पर्क में आकर अनुभव सम्पादन का भी उन्हें अवसर मिलना चाहिए।

कुरीतियों में से अनेकों ऐसी हैं जिनने नारी की स्थिति को और भी अधिक गई-गुजरी बनाने में भारी अनर्थ खड़ा किया है। इन दिनों नारी को नर की तुलना में हेय मानने की आम प्रथा है। लड़की का घर में जन्म होते ही सबके मुँह लटक जाते हैं और लड़के के जन्म पर खुशियों के गीत गाये जाते और बधाये बजते हैं। यह बुरी बात है। अपनी बेटी कल किसी की बहू बनेगी तो दूसरे घर की लड़की अपने घर भी तो आयेगी। इससे उसे पराये घर का कूड़ा मानना गलत है। यह तो आदान-प्रदान का सीधा, सरल और उपयोगी तरीका है।

लड़का बुढ़ापे का सहारा बनेगा, वंश चलायेगा आदि मान्यतायें भी झूठ मान्यताओं पर निर्भर हैं। आजकल की सन्तानों से किसी बूढ़े को कोई बड़ी आशा नहीं करनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए। अपनी स्थिति आगे तक ऐसी बनाये रहनी चाहिए कि किसी पर भार बनकर न रहना पड़े। वंश चलने या डूबने की बात भी मन से पूरी तरह निकाल देनी चाहिए। हनुमान, शंकराचार्य, दयानन्द, विवेकानन्द, विनोबा, बुद्ध, ईसा आदि का वंश नहीं चला तो उनका क्या हर्ज हो गया, रावण के, धृतराष्ट्र के बड़ी संख्या में सन्तानें थीं पर उनसे अपने पूर्वजों का क्या हित साधन किया ? जनक की लड़की ने ही अपने पिता का वैसा गौरव बढ़ाया जैसा कि लड़के भी नहीं बढ़ा पाते। आधी जनसंख्या नारी और आधी नर के रूप में है। सृष्टि संरचना में इसी में बुद्धिमत्ता और सुव्यवस्था है। ऐसी दशा में नर और नारी के बीच अन्तर करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। दोनों को समान सम्मान और प्रगति के लिए समान अवसर मिलना चाहिए। जो अनौचित्य बढ़ता जा रहा है उसका यथाशीघ्र अन्त करना चाहिए।

नारी की दयनीय पिछड़ी स्थिति होने का एक बड़ा कारण यह है कि उसके लिए प्रगति के द्वार अवरुद्ध कर दिये गये हैं। यदि वे खुले हुए रहते तो नारी हर क्षेत्र में नर की समानता कर रही होती और उससे कहीं आगे भी होती। उसे सृष्टि ने किसी भी दृष्टि से पिछड़ी या दीन-दुर्बल नहीं बनाया। अवसर मिले तो वह अब भी अपना व्यक्तित्व विकसित कर सकती है। परिवार के लिए गृहलक्ष्मी के रूप में हर प्रकार से उपयोगी सिद्ध हो सकती है। समाज को समुन्नत बनाने में बढ़-चढ़ कर योगदान दे सकती है।

जिन हथकड़ी-बेड़ियों ने नारी को पिछड़ेपन के बन्धनों से जकड़ रखा है। उनमें एक है—दिन-रात उसका घरेलू काम-धन्धे में जुटा रहना। दूसरा है—प्रजनन का इतना भार उस पर लादना जिसे वहन करने में ही उसकी समूची शारीरिक और मानसिक क्षमता को अल्पकाल में ही गवाँ बैठना। यह दोनों बन्धन थोड़े ढीले हों तो वह हर क्षेत्र में पुरुषों के समान ही समर्थ सिद्ध हो सकती है।

होना यह चाहिए कि घरेलू काम-काज को नर-नारी मिल-जुलकर सीमित समय में सम्पन्न कर लिया करें। किसी की प्रतीक्षा में किसी को समय बर्बाद न करना पड़े। यह नीति घरों में अपना ली जाय तो बच्चों से लेकर बूढ़ों तक को एक मनोरंजक कार्य से लगे रहने का अवसर मिलेगा। उससे किसी को पूरा समय बर्बाद न करना पड़ेगा। घरेलू कामों में दक्षता सभी की रहने से कोई परावलम्बी न हो सकेगा। नारी प्रगति के लिए परिवारों में ऐसे प्रचलनों को व्यावहारिक स्थान मिलना चाहिए, जिससे बचे हुए समय में महिलाएँ योग्यता संवर्धन एवं उपार्जन आदि में अधिक योग्यता अर्जित कर सकें।

दूसरा अनुबन्ध यह अपनाया जाय कि अधिक सन्तानोत्पादन का भार न लादा जाय। इससे जननी का शरीर खोखला होता है। पिता पर आर्थिक भार बढ़ता है। परिवार की सुविधाओं में कटौती होगी तो बच्चों को समुचित सुविधायें उपलब्ध न होने से उनका विकास रुकता है। देश पर बढ़ी हुई जनसंख्या का इतना बोझ लदता है, जिससे प्रगति की सारी सम्भावनायें जनसंख्या वृद्धि के चट्टान से टकराकर चूर-चूर हो जाती हैं।

एक तथ्य सबको भली प्रकार हृदयंगम कर लेना चाहिए कि अगली शताब्दी नारी प्रधान युग के रूप में सामने आयेगी। पुरुष ने अब तक अपने दर्प का ही परिचय दिया है और विनाश-विग्रह के सरंजाम खड़े करने में अग्रणी रहा है। अगले दिनों नारी की श्रद्धा, करुणा, सद्भावना, सेवा परायणता और सृजन सम्भावना का लाभ मनुष्य समुदाय को, समस्त विश्व को मिलने वाला है। उद्यान के लिए पौध अभी से तैयार करनी चाहिए। विकसित स्तर की नारियों को तैयार करने का ठीक यही समय है। उस उत्पादन के लिए हमें पूरी श्रद्धा और तत्परता के साथ योजनाबद्ध रूप से कार्यरत होना चाहिए। एकता और समता के तत्वज्ञान को चरितार्थ करने के साथ पिछड़ों को भी आगे बढ़ाने, ऊँचा उठाने की प्रक्रिया में कार्यरत होना चाहिए।

समतामूलक समाज की स्थापना कैसे हो ?

समतामूलक समाज की स्थापना किस तरह होनी चाहिए, इस सम्बन्ध में संत विनोबा लिखते हैं कि मैंने जो भूदान का आन्दोलन उठाया है वह मजदूर आन्दोलन ही है। जो सबसे कमजोर हैं जो बेजमीन और बेजवान हैं, उनके उद्धार का यह आन्दोलन है। अक्सर मजदूरों के आन्दोलन शहरों में होते हैं। यूरोप में तो किसानों के भी आन्दोलन हुए हैं, लेकिन हिन्दुस्तान में ज्यादातर शहरों में ही ऐसे आंदोलन हुआ करते हैं। गाँवों के मजदूर अत्यन्त असंगठित हैं, उनमें जाग्रति नहीं है। उन्हें शिक्षा मिलती नहीं। उनके पास सिवा खेती के दूसरा कोई धन्धा भी नहीं है और जिस खेत पर वे काम करते हैं उसके वे मालिक नहीं हैं। वे तो खेती के मजदूर हैं, जो सबसे नीचे के दर्जे के हैं और समाज की श्रेणियों में सबसे निकृष्ट हैं। उनका सवाल मैंने उठाया है। जो सबसे नीचे के स्तर के होते हैं, उनका सवाल उठाना ही 'सर्वोदय' का और अहिंसा का तरीका है क्योंकि जो सबसे अंतिम है, उसे ऊपर उठाना चाहिए। फिर उसके बाद बाकी के भी ऊपर उठ आते हैं। फिर उनसे ऊँचों के लिये स्वतंत्र आन्दोलन करना नहीं पड़ता।

मुझ पर आक्षेप किया जाता है कि मैं सिर्फ नीचे वालों को ऊपर उठाने की बात क्यों करता हूँ ? जिस तरह समुद्र-स्नान करने से सब नदियों के स्नान का पुण्य मिल जाता है, फिर नदियों में अलग-अलग स्नान करने की जरूरत नहीं पड़ती, उसी तरह का काम यह भी है। इसमें शर्त यही है कि काम करने का ढंग ऐसा हो जिससे एक का लाभ होने के साथ दूसरे की हानि न हो। अगर हम ऐसा उपाय ग्रहण करते हैं तो सारा का सारा समाज ऊँचा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उठता है। सर्वोदय का, अहिंसा का तरीका ऐसा है कि जिससे बाकी के सब लोग स्वयं ऊँचे उठ जाते हैं। किसी ने मुझसे पूछा था कि आप मध्यम श्रेणी वालों या शहर के मजदूरों के लिये क्या कर रहे हैं ? उस समय मैंने हँसी में कह दिया था कि दुनिया के सब मसले हल करने का मैंने ठेका नहीं लिया है। लेकिन वह तो एक विनोद की बात थी—**"एकहि साधे सब सधै, सब साधे सब जाय"**—इस तरह मैं तो एक वातावरण तैयार करना चाहता हूँ जिससे समता, न्याय, भूतदया और सहानुभूति की हवा फैल जाय तथा उससे बाकी के मसले अपने आप हल हो जायें, यदि न भी हों तो केवल जरा-सा आन्दोलन करके हल कर लिये जायें।

मेरे काम को देखने की अनेक दृष्टियाँ हैं। पर यहाँ पर उनमें से एक यही दृष्टिकोण उपस्थित करना चाहता हूँ कि यह आन्दोलन मजदूर आन्दोलन है। मैं खुद अपने को मजदूर मानता हूँ। मैंने अपने जीवन के—जवानी के ३२ वर्ष, जो 'वेस्ट इयर्स' (सर्वोत्तम वर्ष) कहे जाते हैं, मजदूरी में बिताये। मैंने तरह-तरह के काम किये हैं, जिन कामों को समाज हीन और दीन मानता है—जिनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है, यद्यपि उनकी आवश्यकता बहुत है—ऐसे काम मैंने किये हैं। जैसे—भंगी काम, बढ़ई काम, खेती आदि। आज गाँधीजी नहीं है, इसलिये मैं बाहर निकला हूँ। अगर वे होते, तो मैं बाहर कभी नहीं आता और आप मुझे किसी मजदूरी में मग्न पाते। कर्म से मैं मजदूर हूँ, यद्यपि जन्म से ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ और अपरिग्रही। ब्रह्मनिष्ठा तो मैं छोड़ नहीं सकता। किसी भी काम को देखने की अपनी अलग-अलग दृष्टि होती है। तुलसीदासजी ने लिखा है कि जहाँ राम खड़े हुये थे, वहाँ उन्हें देखने वाले जिस तरह के लोग थे, उसी तरह से उन्होंने राम की ओर देखा—

'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।'

जो काम व्यापक होते हैं उनके अनेक पहलू होते हैं, इसलिए उनकी ओर कई दृष्टियों से देखा जा सकता है। मेरे काम से भूमि की समस्या हल होती है, अन्न के उत्पादन में वृद्धि हो सकती है, न्याय बढ़ सकता है, ग्रामों का संगठन हो सकता है, राज व्यवस्था पर उसका अच्छा असर हो सकता है, लोगों में धर्म भावना का विकास हो सकता है, लोगों की अविकसित और गुप्त धर्म-भावना को, दान और दया करने की वृत्ति को बाहर लाया जा सकता है। इस प्रकार मेरे काम को धार्मिक और भारतीय संस्कृति के अनुकूल कार्य की दृष्टि से भी देखा जा सकता है और इसे एक बड़ा भारी मजदूर-आन्दोलन भी कहा जा सकता है।

परमेश्वर की प्रेरणा

यह सब मैंने किया नहीं, मुझे करना पड़ा है। हैदराबाद के सर्वोदय-सम्मेलन के बाद मैं एक अहिंसक निरीक्षक के नाते तेलंगाना गया था। वहाँ के आतंक को नष्ट करने के लिए सरकार प्रतिवर्ष पाँच करोड़ रुपया खर्च करती थी, फिर भी वह नष्ट नहीं हुआ था। इसलिए वहाँ अहिंसा कैसे काम कर सकती है ? यह देखने के वास्ते मैं नम्र भाव से गया। मैंने वहाँ की परिस्थिति देखी और मुझे मानो सूचना मिली कि किसानों की समस्या हाथ में लेनी होगी। जो लोग खेतों में मजदूरी करते हैं, परन्तु बिना जमीन के हैं, उनका प्रश्न उठाना होगा। मुझमें ताकत नहीं थी, फिर भी मुझे यह काम लेना पड़ा। नहीं तो मैं डरपोक साबित होता, अपने धर्म से पतित माना जाता। मैंने सोचा कि जब परमेश्वर इस काम की प्रेरणा दे रहा है, तब इस काम को पूरा करने की ताकत भी वही देगा। यही मानकर मैंने इस काम को उठाया। ईश्वर पर अर्थात् आप सब पर श्रद्धा रखकर मैंने काम किया है। यह अहिंसा का तरीका है।

दुनिया के कई देशों में कृषक-मजदूरों के आन्दोलन चले, लेकिन भारत में किसी ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। सिर्फ कम्यूनिस्टों ने तेलंगाना में उनकी ओर ध्यान दिया। बाकी तो सब शहरों के मजदूर आन्दोलन हैं। दुनिया में हर एक ने अपने-अपने ढंग से इस सवाल को हल किया है। लेकिन उनका तरीका बेढंगा है। उससे न तो कभी दुनिया का भला हुआ और न होगा। भारत के लिए वे तरीके नुकसान पहुँचाने वाले हैं। हम भारतवासियों की एक विशेषता है। हमारा अपना एक विशेष तरीका है। किसी ने मुझसे कहा कि जबर्दस्ती से जल्दी जमीन मिल सकती है। मैंने कहा कि जबर्दस्ती से नहीं चाहता। यह काम भले ही धीरे-धीरे चले, पर भारतीय तरीके से होना चाहिए। यदि घी के डिब्बे में आग लगाई जाती है, तो घी जल जाता है और वेद मन्त्रों के साथ यज्ञ में उसकी आहुति दी जाय, तो भी वह जलता है। दोनों तरह से घी जलता है, लेकिन एक में भावना जल जाती है और दुनिया खत्म हो जाती है, जबकि दूसरे में भावना पावन हो जाती है। हिंसक तरीके से एक मसला हल करने में दूसरे मसले पैदा हो जाते हैं। हिंसक तरीके से नई-नई तकलीफें पैदा होती हैं। हमने आजादी हासिल करने का जो तरीका उठाया था, वह यहीं निर्माण हो सका, क्योंकि वह भारत की सभ्यता के अनुकूल था। उपनिषदों में कहा गया है—**"अग्ने नय सुपथा राये।"** अर्थात् "हे अग्निदेव हमको सुपथ से ले जाओ।" हमें चाहे जिस रास्ते से लक्ष्मी नहीं चाहिए, बल्कि वह सुपथ से चाहिए।

हमें केवल मजदूरों को अन्न-वस्त्र ही नहीं देना है। यह मसला केवल भौतिक ही नहीं है। मेरी दृष्टि से तो कोई भी मसला केवल आर्थिक मसला नहीं हो सकता। यदि हम गहराई में पहुँचें, तो मालूम होगा कि भौतिक मसले आध्यात्मिक और नैतिक भी होते हैं। यदि हम कहें कि गरीब को समता चाहिए, न्याय चाहिए तो जो हमारे विरुद्ध पक्ष में हैं वे भी हमारी बात मंजूर कर लेते हैं। वे भी विरोध की बात नहीं कर सकते। बल्कि वे कहते हैं कि जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े न होने चाहिए। जहाँ हम समता की बात कहते हैं, वहाँ वे असमता की बात तो नहीं करते, पर क्षमता की बातें खड़ी करते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वे समता के मुकाबले में असमता की बात नहीं कर सकते। प्रकाश के सामने अन्धकार टिक नहीं सकता। राम के विरुद्ध रावण लड़ नहीं सकता, पर अर्जुन के विरुद्ध यदि भीष्म का नाम लिया जाय तो युद्ध हो सकता है। अच्छे शब्द के विरुद्ध अच्छा शब्द लाकर ही युद्ध हो सकेगा। इस कारण समता के सामने असमता टिक नहीं सकती। लेकिन जब हम समता के सामने क्षमता खड़ी करते हैं, तो युद्ध होना संभव है। क्षमता में विश्वास करने वाले कहते हैं कि क्षमता (जमीन से पूरी मात्रा में पैदावार) के लिए जमीन के बड़े-बड़े टुकड़े चाहिए। इस पर दूसरे पक्ष वाले नया विचार पेश करते हैं कि हम ऐसी कुशलता से समता लायेंगे कि उसमें क्षमता भी बनी रहेगी। जहाँ क्षमता है वहाँ समता भी आयेगी **"यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।"** मजदूरों के मसले को एकांगी ढंग से और हिंसक तरीके से हल करने की कोशिश करने वाले कभी कामयाव नहीं हो सकते।

हमें इस काम में पूँजीवादी तरीके के दोष को ऐसे ढंग से दूर करना चाहिए समता की रक्षा हो सके, मजदूरों के दुःख दूर हो सकें, पर कार्य की क्षमता और दूसरे गुण भी बने रहें। अगर ध्यान दिया जाये तो आज सारा भारत मजदूर बन गया दिखलाई पड़ता है। भारतवासी बुद्धि का उपयोग करना नहीं जानते। करोड़ों को हमने शिक्षा से वंचित रखा है। ये सब धन, मान और ज्ञान से विहीन हैं। फिर उनमें क्षमता कहाँ से आयेगी ? आज गाँव में अच्छा बढ़ई भी नहीं मिलता। यदि चरखे का कोई नया माडल बनाना हो, तो गाँव का बढ़ई नहीं बना सकता। हमारा कारीगर-वर्ग 'अनस्किल्ड' (अकुशल) मजदूर है, जिसे न ज्ञान है, न प्रतिष्ठा और न ध्येय। पूँजीवादी-समाज में कुछ तो ऐसे होते हैं, जो दिमाग का ही काम करते हैं और कुछ ऐसे हैं, जो केवल यंत्र के समान काम करते हैं, जो अपनी अक्ल का उपयोग नहीं कर सकते। किसी को चाकू में छेद करने का काम दिया जाय, तो वह रोज पाँच हजार चाकुओं में छेद कर सकता है और जिन्दगी भर यही काम करता रहता है। पूँजीवादी कहते हैं कि इस तरह काम करने से क्षमता और कुशलता पैदा होती है। वे मनुष्य-जीवन को सर्वांगीण बनने ही नहीं देते। पूँजीवादी समाज में कुछ 'हेड्स' (मस्तिष्क) बनते हैं और कुछ 'हैण्ड्स' (हाथ)। जैसे मिल-हैण्डस, हेडमास्टर, हेडक्लर्क आदि। इसका मतलब यह है कि इधर सारे सिर-ही-सिर और उधर सारे हाथ-ही-हाथ ! उनका कहना है कि इससे क्षमता आती है। सर्वांग परिपूर्ण मनुष्य उनकी दृष्टि में क्षमता के विपरीत है।

चारों वर्णों के सिद्धांत को भी कुछ लोगों ने ऐसा ही समझ रखा है कि ब्राह्मण, चमार या भंगी का काम कदापि नहीं कर सकता। पर यह गलत है। चातुर्वर्ण्य का सच्चा अर्थ यही है—चारों वर्ण में चारों वर्ण होते हैं, लेकिन एक की प्रधानता होती है, बाकी गौण होते हैं। भगवान कृष्ण युद्ध के समय केवल लड़ते ही न थे, बल्कि घोड़े चलाने का भी काम करते थे। उस समय उन्होंने यह नहीं कहा कि यह तो क्षत्रिय का काम नहीं है। जब अर्जुन का मोह दूर करने की बात आयी तो उन्होंने यह काम भी किया। उन्होंने अर्जुन से यह नहीं कहा कि धर्मोपदेश करना तो ब्राह्मण का काम है, तुम उसी के पास जाओ। कृष्ण भगवान् मौके पर ग्वाल बनते थे, मौके पर ब्राह्मण, मौके पर शूद्र। क्षत्रिय तो वे थे ही, इसलिए लड़ने का काम तो उन्हें करना ही पड़ता था, तो चातुर्वर्ण्य में हर एक के लिए अपना-अपना काम होता है और वह उसे करना ही पड़ता है। लेकिन बाकी के काम भी यह आवश्यकतानुसार करता रहता है।

हम चाहते हैं कि मालिक और मजदूर का भेद मिट जाय। इसका मतलब यह नहीं कि हम मालिक की अक्ल का उपयोग नहीं करना चाहते। पर जो मालिक होगा वह मजदूर भी होगा और जो मजदूर होगा, वह मालिक भी। कुछ तो मालिक प्रधान मजदूर रहेंगे, जो हाथ का काम करते हुये भी दिमाग के काम को प्रधानता देंगे और कुछ मजदूर प्रधान मालिक होंगे, जो दिमाग का काम करते हुये हाथ के काम को प्रधानता देंगे। बुद्धि-प्रधान व्यक्ति शारीरिक श्रम करने वाले भी हों और श्रम-प्रधान व्यक्ति बुद्धि का भी काम कर सकें, ऐसी व्यवस्था समाज में होनी चाहिए। अगर भगवान यह नहीं चाहता तो वह कुछ को तो हाथ ही हाथ देता और कुछ को केवल बुद्धि ही। राहु और केतु के समान सबको अपूर्ण बनाता, पर उसने सबको परिपूर्ण बनाया है, इसलिए कि सब परिपूर्ण जीवन बिता सकें।

एकता-सहकारिता ही एकमेव उपचार

धनिक और निर्धन देशों की अर्थनीति में इन दिनों मौलिक अन्तर चल रहा है। अमेरिका जैसे धनिक देशों की नीति यह है कि उनके उत्पादन का बढ़ा-चढ़ा अपव्यय किया जाय, ताकि नये उत्पाद की खपत होती रहे, वहाँ के कारखाने और श्रमिकों को काम मिलता रहे। मितव्ययिता उनकी दृष्टि में राष्ट्रीय दृष्टि से अहितकर है, क्योंकि इससे नये उत्पादन की खपत में अवरोध उत्पन्न होगा और बेकारी फैलेगी।

उन देशों में यह उदारतां नहीं है कि अधिक उत्पादन को पिछड़े देशों की जरूरतें पूरी करने के लिये कम दाम पर दे सकें। इसमें उन्हें यह हानि दीखती है कि उनकी जरूरतें पूरी होने लगेंगी, तो वे धनिक देशों पर आश्रित कैसे रहेंगे ? उनके राजनैतिक प्रभाव में क्यों रहेंगे ? इसलिये अधिकांश देश गये-गुजरे बने रहें, इसी में उनका आर्थिक और राजनैतिक लाभ है। अपना लाभ ही उनके लिये सब कुछ है। दूसरों की तो असुविधा और कमी ही उनके पक्ष में पड़ती है। इसके लिये उन्हें यही सोचना और करना पड़ता है कि अपना उत्पादन बढ़ाकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कारखानों और श्रमिकों को काम तो दें, पर उत्पादन का जितना अपव्यय बन पड़े, उतना खुले हाथों से करें। वहाँ मोटरें हर साल बदल लेने का फैशन है। एक वर्ष पुरानी मोटर समुद्र में फेंक दी जाती है। पुरानी का इस्तेमाल करना देश का अहित करना माना जाता है। यही बात अन्य वस्तुओं के सम्बन्ध में भी है। वहाँ उपयोग से भी अधिक अपव्यय की बर्बादी को महत्व दिया जाता है। यही नीति ऊर्जा और जल के सम्बन्ध में भी है। हर आदमी के पीछे पानी और ऊर्जा की इतनी खपत होती है, जिसकी निर्धन देश कल्पना भी नहीं कर सकते। यह अमीरी के साथ जुड़ी सघन स्वार्थपरता का चिन्ह है, जो उन्हें ही शोभा देता है, जिनके लिये भोगवाद, पूँजीवाद, साम्राज्यवाद ही सब कुछ है। उनकी नीतियाँ दुनिया में कृत्रिम अभाव भी पैदा करती हैं और तनाव ही। शीत युद्ध और गरम युद्ध का वातावरण भी वे पर्दे के पीछे बैठे बाजीगर की तरह बनाते रहते हैं। निर्धन और पिछड़े लोगों को उन्हीं के हाथ की कठपुतली बनकर रहना पड़ता है।

सम्पन्न देशों की नकल यदि अपने जैसे गरीब देश करेंगे तो यह आत्मघात के समान ही होगा। एक तो वैसे ही महँगाई और बेरोजगारी की मार, वस्तुओं की कमी, उस पर भी यदि अमीरी का स्वाँग बनाने के लिये अपव्यय को अपनाया जाय तो समझना चाहिए कि अपना और देश का विनाश ही किया जा रहा है। अमीरों की संस्कृति एक हो सकती है। अमेरिका के धनिकों की तरह हिन्दुस्तानी सम्पन्न भी उनका अन्धानुकरण कर सकते हैं और निर्धनों को चिढ़ा सकते हैं कि देखो तुम कितने अभागे हो और हम कितने भाग्यवान। तुम किस प्रकार कठिनाइयों में गुजारा करते हो और हमें देखो कि किसी भी काम में पैसा पानी की तरह बहा सकते हैं ? उनके समय की कीमत भले ही कुछ न हो, पर सफर हवाई जहाज में ही करेंगे। ठहरेंगे तो सैकड़ों रुपये रोज लेने वाले होटलों में ही ठहरेंगे। पोशाकों के अम्बार लगाये रखेंगे। दावतों, क्लबों का महँगा मनोरंजन ही उन्हें रास आयेगा। समझना चाहिए कि इस प्रकार का वर्ग भारतीय नहीं, अमेरिका बिरादरी का है, क्योंकि उसने अपव्यय की वैसी ही नीति अपनाने की आदत डाली है। इसी में उन्हें अपना गौरव प्रतीत होता है। निर्धनों का तिरस्कार और उपहास करने का उन्हें इसी प्रकार अवसर मिलता है। जो बच्चा हजारों रुपये खर्च होने वाले पब्लिक स्कूल में पढ़ता है, उसके मन में मामूली स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के प्रति तिरस्कार भाव ही रहता है। बड़े होने पर वे वैसा ही खर्चीला जीवन जीते हैं, जैसा कि उन्हें बचपन में अभिभावकों द्वारा सिखाया गया था। अच्छी आमदनी मिली, तो किसी प्रकार काम चल जाता है अन्यथा बढ़े हुए खर्च, बढ़ी हुई महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये अनाचार पर उतारू होने के अलावा और कोई मार्ग उनके सामने रहता ही नहीं है। हमें आसमान पर उड़ने की अपेक्षा धरती पर चलना चाहिए। अपने देशवासियों की परिस्थितियों पर ध्यान देते हुए उसी स्तर का जीवनयापन अंगीकार करना चाहिए। इससे समता और एकता बनी रहती है। अकारण ईर्ष्या और द्वेष का वातावरण नहीं बनता और अपराधों की बाढ़ नहीं आती।

देखा जाता है कि अमीरों के यहाँ ही चोरियाँ-डकैतियाँ पड़ती हैं, लूटमार, आक्रमण, कत्ल होने की आशंका उसी वर्ग में रहती है। मनुष्य स्वभाव अपने जैसे वर्ग को ही सहन कर पाता है। अपने से अधिक सम्पन्नों के प्रति उसके मन में ईर्ष्या-द्वेष का उफान उठता है। जो अधिक दुःखी हैं, उनके प्रति दया और घृणा उपजती है। सभी मनःस्थितियाँ ऐसी हैं, जो विग्रह के बीज बोती हैं। वेशकीमती पोशाकें, आभूषण, वाहन, ठाठ-बाट लेकर चलने वाले एक क्षण के लिये दर्शकों की आँखों में चकाचौंध पैदा करते हैं, कौतुक, कौतूहल देखकर हतप्रभ जैसे रह जाते हैं, पर दूसरे ही क्षण अपनी और उनकी तुलना करने पर एक ही तात्पर्य निकालते हैं कि हम सीधे रास्ते पर चले, ईमानदारी का जीवन जीये इसलिये पीछे रह गये और इन्होंने अनीति का रास्ता अपनाया और उसी के सहारे दौलत बटोरने में सफल हुए। यह चिन्तन घृणा-तिरस्कार का भाव पैदा करता है। उसकी मात्रा बढ़कर विद्वेष तक पहुँचती है और उसका प्रतिफल नीचा दिखाने पर उतारू होने की गतिविधियों में प्रकट होता है। आक्रामक नीति अपनाये जाने का यह एक बड़ा कारण है।

अपराधों की शृंखला अमीरों और गरीबों के बीच चलती है। यदि सभी लोग एक जैसी स्थिति में रहें, तो सामयिक छुट-पुट उलझनों के अतिरिक्त ऐसा हेय भाव नहीं पलता, जो नृशंस प्रतिशोध के बिना शान्त ही न होता हो। यही कारण है कि वैभव का ढकोसला बनाये फिरने वालों को अपनी तथा दौलत की सुरक्षा रखने के लिये अतिरिक्त व्यवस्था करनी पड़ती है। पहरेदार, चौकीदार, अंगरक्षक रखने पड़ते हैं। इस पर भी किसी आकस्मिक खतरे का डर बना रहता है। मुकदमे उन्हीं के चलते हैं। ठगने वाले, उधार माँगने वाले, ठग-चापलूस उन्हीं के पीछे लगते हैं और गुण्डे उन्हीं को ब्लैकमेल करते हैं। कुटुम्ब में, संतान में जो मनोमालिन्य देखा जाता है, उसका कारण भी यही होता है कि जो दौलत जमा है, उसमें से उचित मात्रा उन्हें क्यों नहीं दी जाती है ? ऐसे लोग मरने के बाद भी अपने उत्तराधिकारियों को लड़ने-मरने के लिये कलह के बीज बोकर छोड़ जाते हैं।

यही वह मार्ग है, जिसे चतुरता का वरण करने वाले प्रतिभावान लोग अपनाते देखे गये हैं। अपनी और दूसरों की स्थिति भिन्न बनाने के लिये ऐसे ही लोग उत्तरदायी होते हैं। ऊँची दीवार खड़ी करने के लिये कहीं न कहीं से मिट्टी खोदनी पड़ती है और वहाँ गड्ढा बनता है। इस संसार में इतनी ही साधन-सामग्री है, जिससे संतोषपूर्वक सब लोग काम चला सकें। इसके अतिरिक्त जहाँ कहीं भी दौलत जमा हो रही होगी, वहाँ परोक्ष रूप से कहीं न कहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से अपहरण करना पड़ा होगा। अनाचार की प्रतिक्रिया अपने निज के लिये भी घातक होती है और दूसरों को भी प्रकारान्तर से वैसा ही करने के लिये प्रोत्साहन देती है। अशान्ति का आधारभूत कारण यह बिलगाव ही है। उसे बढ़ने नहीं देना चाहिए। अनाचार, वैचारिक विद्वेष और सामूहिक विग्रह खड़े होने के अनेकों निमित्त कारण उपजते और बढ़ते रहेंगे। इस लगी हुई आग को बुझाने में भी असाधारण शक्ति खर्च होती है। जो बच रहता है, वह इतना अस्त-व्यस्त रहता है कि उसे पाकर कोई संतोषपूर्वक नहीं रह सकता। जो स्वयं आहत है, वह दूसरों को भी आहत किये बिना नहीं रहेगा। इस प्रकार अनावश्यक सम्पन्नता मात्र अपव्यय के लिये ही उत्तेजित नहीं करती, अपराधों की ओर भी घसीट ले जाती है।

सुन्दर होना एक बात है पर सुन्दरता का उद्धत प्रदर्शन अश्लीलता की सीमा तक जा पहुँचता है तो इसका परिणाम व्यभिचार की उत्तेजना पनपाने के रूप में उभरता है। खर्चीले सजधज में सुन्दर बना फिरने वाला दूसरों पर अपनी छाप उतनी नहीं छोड़ता, जितनी कि उसके चरित्र पर संदेह उत्पन्न करने का निमित्त कारण बनता है, जो जितने ज्यादा सजधज कर आकर्षक बनते हैं, वे उतनी ही तेजी से व्यभिचार के लिये गिरते और दूसरों को गिराते हैं, बदनामी सहते और प्रामाणिक प्रतिभा के सहारे जो लाभ मिल सकते थे, उन्हें गवाँ बैठते हैं। यही बात सम्पन्नता के सम्बन्ध में भी है। अमीरी जिसके पास पहुँचती है, उसे उद्धत, अहंकारी, व्यसनी, निष्ठुर बनाती है। व्यक्तित्व को इन दुर्गुणों से आच्छादित कर उसको हेय बनाकर रख देने वाला ऐसा घाटा है, जिसकी पूर्ति सहज ही नहीं हो सकती।

सम्पन्नता जमा करते जाने की कृपणता ऐसी है, जिससे अपने ऊपर तो दुर्गुणों का भार बढ़ता ही है, साथ ही समीपवर्ती लोगों को भी उस छूत से प्रभावित करता है और उनमें भी चित्र-विचित्र प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न करता है। धनी तो अपने दुर्व्यसनों को किसी प्रकार पूरे कर लेते हैं, पर साधनहीन की महत्वाकांक्षाएँ तो इतनी अधिक विपन्न हो जाती हैं कि वह आक्रामक अनाचार अथवा छद्म अपनाये बिना, प्रपंच के बिना रुक ही नहीं सकती। अन्यायी राजा के कर्मचारी और दरबारी उससे भी अधिक नृशंस कृत्य करते पाये गये हैं। इसी प्रकार धनिकों का सम्पर्क क्षेत्र अनेक कुटेवों और अनाचारों से दिन-दिन अधिक ग्रसित होते देखा जाता है। पतन की गति उत्थान की तुलना में कहीं अधिक रहती है। एक सज्जन दस सज्जन मुश्किल से ही बना सकता है, पर एक दुर्जन पचासों को अपनी कुटेवों का अभ्यासी बना देता है।

यह सब इसलिये कहा जा रहा है कि सम्मान की सस्ती वाहवाही की ललक से जितना बचा जा सकना संभव हो, उतना बचना चाहिए, दुष्प्रवृत्तियों के स्थान पर सत्प्रवृत्तियों को अपनाना चाहिए। सादा जीवन उच्च विचार की नीति को हृदयंगम करना चाहिए। इससे अपनी शालीनता बढ़ती है और दूसरों को सज्जनता की नीति अपनाने के लिये प्रकाश देती है।

जहाँ विपन्नता की परिस्थितियाँ हों, वहाँ तो यह समता का, एकता का वातावरण जीवन मूरि की तरह है। इस आधार पर मिल बाँटने की प्रवृत्ति बनती है। आत्मीयता, सहृदयता और सहकारिता का वातावरण बनता है और सहज ही मन करता है कि अपने में जो शारीरिक समर्थता, मानसिक बुद्धिमत्ता, व्यक्तित्व की प्रखरता और भावना में जो सहृदयता बढ़ चली है, उसका प्रयोग प्रतिफल पुण्य-परमार्थ में ही चरितार्थ होता रहे।

दुःख बँटा लेने और सुख बाँट देने की प्रवृत्ति जहाँ भी होगी, वहाँ कठिन समय भी हँसते-हँसते कट जायगा। सहकारिता का अभ्यास रहेगा, तो अनेक ऐसे उपाय निकल आयेंगे, जिससे कुछ लोग घर-परिवार चलाते रहें और कुछ लोग अन्यत्र जाकर जहाँ सुविधा हो, वहाँ से उपार्जन करके घर भेजते रहें। दूर स्थान से एक आदमी का पानी ढोकर लाना तो कठिन है, पर उसी मार्ग पर ही दस आदमी खड़े हों अथवा थोड़ी-थोड़ी दूर सभी ढो लें तो वही पानी का घड़ा लम्बी दूर थोड़ी ही देर में पार कर लेगा। श्रम भी बँट जायेगा, समय भी बँट जायेगा और काम भी पूरा हो जायेगा। यही बात प्रत्येक कार्य के सम्बन्ध में है।

उदारता, दूरदर्शिता, परमार्थ परायणता बढ़े तो मनुष्य देवोपम हो जाता है, पर यदि उतना न बन पड़े तो एकता-समता के आधार पर उत्पन्न हुई सहकारिता भी गरीबी और कठिनाई के दिनों को आसानी से काट सकती है।

मिलजुलकर आगे बढ़िए

मनुष्य ने अन्य प्राणियों की तुलना में बहुत अधिक उन्नति की है। इस प्रगति में उसकी बौद्धिक विशेषता प्रधान कारण है। इसके बाद यदि कोई दूसरा उसके विकास में प्रमुख कारण रहा है तो वह है उसकी सामूहिकता एवं सहकारिता की प्रवृत्ति। साथ-साथ रहने से, मिलजुलकर काम करने से ही सामाजिकता, सभ्यता, संस्कृति का विकास हुआ है।

अन्य प्राणी शारीरिक दृष्टि से मनुष्य की तुलना में काफी बढ़े-चढ़े हैं। कई में चतुरता भी पर्याप्त मात्रा में है पर वे परस्पर सहयोग करने की वृत्ति से रहित होने के कारण न तो उन्नति ही कर सके और न अपने अस्तित्व को ही सुरक्षित रख सके। सिंह जो किसी जमाने में भारी संख्या में सर्वत्र पाया जाता था, शक्ति की दृष्टि से वह सर्वोपरि कहलाता था, अब धीरे-धीरे अपना अस्तित्व खोता चला जा रहा है। जिस तेजी से उसकी संख्या घट रही है उसे देखते हुए पशु विद्या के ज्ञाता यह संभावना मानने लगे हैं कि कहीं सौ दो सौ वर्षों के अन्दर ही सिंह का अस्तित्व इस पृथ्वी पर से पूर्णतया समाप्त न हो जाय। जिन जीवों में परस्पर सहयोग की न सही साथ-साथ झुण्ड बनाकर रहने की प्रवृत्ति पाई जाती है, वे इस कठिन समय में भी कम से कम अपने अस्तित्व की रक्षा किये हुए हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बन्दर मनुष्य को बहुत सताता है, वह उसकी आँखों में खटकता है, फिर भी परस्पर सहकारिता के बल पर वह घुड़की देने की अब भी हिम्मत करता है। कुत्ते परस्पर लड़ते हैं इसलिए उनका नाम ही तिरस्कारसूचक बन गया। बन्दर अब भी पुजते हैं और देवता कहलाते हैं।

जीवजगत में संगठन की शक्ति को हम आसानी से देख सकते हैं। चींटियों का झुण्ड जब चिपट जाता है तो बड़े साँप को भी जीवित खा जाता है। टिड्डियों का दल, मनुष्य की रखवाली को व्यर्थ बनाता हुआ सारी फसल को चौपट कर जाता है। हाथियों और बन्दरों के झुण्ड निर्भयतापूर्वक जिधर चाहते हैं उधर बढ़ते जाते हैं, उनमें से प्रत्येक को यह विश्वास होता है कि कठिन समय आने पर साथियों का सहयोग सहज ही उपलब्ध हो जायगा। झुण्ड बाँधकर चरने वाली गायें आक्रमणकारी बाघ की दाल नहीं गलने देतीं।

सूत के एक धागे को कोई बच्चा भी आसानी से तोड़ सकता है पर जब वे सौ पचास की संख्या में इकट्ठे होकर रस्सी बन जाते हैं तो बड़े पहलवान के लिए भी उसे तोड़ना कठिन होता है। एक सींक का कोई मूल्य नहीं, उससे किसी प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती, पर जब कितनी ही सींकें मिलकर एक बुहारी बन जाती हैं तो उससे घरों की सफाई बड़े सुचारू रूप में होती रहती है। छोटी-छोटी पानी की बूँदें जब तक अलग हैं, तब तक उन्हें जमीन सोख लेती है, हवा सुखा देती है लेकिन जब वे इकट्ठा हो जाती हैं तो नदी, तालाब, समुद्र के रूप में अपनी प्रचण्ड शक्ति का परिचय देती हैं। जो जमीन अलग-अलग बूँदों को क्षण भर में सोख लेती थी, वही अब तालाब के तल में या किनारे पर पतली कीचड़ के रूप में परास्त पड़ी दिखाई पड़ती है। एक सिपाही कुछ नहीं कर सकता पर जब उसका पूरा दल सेना के रूप में कहीं चढ़ाई करता है तो सामने वालों के छक्के छूट जाते हैं।

कुछ डाकू एक गिरोह बनाकर जब सक्रिय होते हैं तो बड़े प्रदेश की लाखों जनता को आतंकित कर देते हैं। थोड़े से संगठित षड़यन्त्रकारी, बड़ी से बड़ी सुव्यवस्था को खतरे में डाल देते हैं। थोड़े-से गुण्डे-बदमाशों की चाण्डाल चौकड़ी से भले आदमी डरते और दबते रहते हैं। इस प्रभाव में उन व्यक्तियों का मूल्य नहीं, उनकी सामूहिकता ही प्रधान है। ये डाकू, गुण्डे, बदमाश, षड़यन्त्रकारी शारीरिक और मानसिक दृष्टि से वैसे ही होते हैं जैसे अन्य साधारण नागरिक, उनमें डराने जैसी कोई बहुत बड़ी विशेषता नहीं होती। वे अकेले हों तो उनकी मरम्मत आसानी से हो सकती है पर चूँकि उनका एक गिरोह होता है, यह गिरोहबन्दी ही खतरे का, डरने का प्रधान अस्त्र है। देशों और जातियों का इतिहास भी इसी प्रकार का है। इतिहास साक्षी है कि जो लोग संगठित थे वे उन्नति के मार्ग पर बढ़ते गये और जो असंगठित थे, फूट में ग्रस्त थे, उन्हें अवनति एवं पराजय का मुख देखना पड़ा।

"भारत किसी समय में बड़ा गौरवशाली, शक्तिसम्पन्न एवं उन्नति के शिखर पर पहुँचा हुआ देश था, तब यहाँ के लोग संगठन का महत्व समझते थे, एक-दूसरे के सुख-दुःख में साथ ही न थे, वरन् परस्पर सहायता करके एक-दूसरे को आगे बढ़ाने से सुख-सन्तोष अनुभव करते थे। संसार की सारी प्रगति और समृद्धि संगठन के आधार पर अवलम्बित है। इस गुरु मन्त्र को यहाँ का हर नागरिक जानता था और उसी आदर्श के अनुरूप अपनी सारी योजनाएँ बनाता था। यह प्रवृत्ति जहाँ बढ़ती है, वहाँ स्वर्गीय सुख-शान्ति का स्वयमेव ही अवतरण होता है जैसा कि पूर्व काल में इस देश में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता था। धीरे-धीरे जब इस मनोवृत्ति का ह्रास हुआ, लोग व्यक्तिगत लाभ को, स्वार्थपरता को महत्व देने लगे, परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, शोषण, अपहरण, लूट-खसोट, छल-कपट, फूट-फिसाद का बढ़ना भी स्वाभाविक था—यह विष बीज, जहाँ बोये गये होंगे वहाँ सत्यानाश के फल ही उगेंगे। असंगठित, फूट-फिसाद में ग्रस्त, आपापूती और ईर्ष्या, द्वेष के दलदल में जब हम फँस गये तो मुट्ठी भर विदेशी आक्रामक चढ़कर दौड़े और इतने विशाल देश पर जादू की तरह कब्जा कर लिया। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। असंगठित समाजों में सदा से यही दुर्गति होती आई है।

जब तक संगठन तत्व का महत्व समझते रहे, उनका आचरण करते रहे तब तक हम देव समाज की तरह गर्वोन्नत मस्तक से विश्व का नेतृत्व करते रहे। जब इस महाशक्ति का महत्व भूले, उसकी उपेक्षा की तो मणिहीन सर्प के समान निस्तेज और पददलित हो गये। व्यक्तिगत उन्नति का शक्ति और समृद्धि का कोई विशेष मूल्य नहीं है, वह बालू के किले की तरह एक धक्के में ढह सकती है, कोई एक आदमी अमीर या पहलवान होकर अपने व्यक्तिगत शौक-मौज में थोड़ी-सी वृद्धि कर सकता है, पर जातीय जीवन की प्रतिष्ठा तभी बढ़ेगी जब सारा समाज संगठित हो। हमारी वर्तमान राजनीतिक स्वतन्त्रता इस संगठन के बल पर ही प्राप्त हुई है।

इस तथ्य को हमारे धर्म इतिहास ग्रन्थों में पग-पग पर उपस्थित किया गया है। रावण के अत्याचारों से परेशान ऋषियों ने अपना-अपना खून निकालकर एक घड़े में एकत्रित किया। उसके द्वारा सीता उत्पन्न हुई, जो असुर विनाश का प्रधान कारण बनी। देवता लोग जब असुरों से हारने लगे तब प्रजापति ने उनकी थोड़ी-थोड़ी शक्ति को एकत्रित करके एक सामूहिक शक्ति 'दुर्गा' बनाई, वह दुर्गा ही हाथ में खप्पर और तलवार लेकर असुरों का मान मर्दन करने में सफल हो सकी। भगवान राम ने लंका पर चढ़ाई की, इतनी बड़ी शक्ति को परास्त किया, उस विजय में रीछ-वानरों के सहयोग को राम ने श्रेय प्रदान किया है। गोवर्धन पहाड़ उठाया गया पर कृष्ण के साथ गोप भी अपनी लाठी उस पहाड़ के नीचे लगाये हुए थे। अश्वमेध के माध्यम से प्रसंगठित हो जाने वाले राजाओं को एक छत्र शासन के अन्तर्गत पुनः संगठित किया जाता था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुंभ आदि पर्वों के माध्यम से सारे देश के साधु-ब्राह्मण व्यापक समस्याओं पर विचार करने और आगामी कार्यक्रम बनाने के लिए एकत्रित होते थे। धर्म प्रचार के लिए वे बिखर जाते थे, पर फिर तीन-तीन वर्ष बाद हरिद्वार, वृन्दावन, प्रयाग और उज्जैन के कुंभ पर्वों पर एकत्रित होकर अपने संगठन सूत्र को पुनः-पुनः सजीव करते थे। वे जानते थे कि अलग-अलग खिचड़ी पकाने से न धर्म जाग्रति रह सकती है और न लोक में सुख-शान्ति कायम रह सकती है। इसलिये न केवल जन-साधारण को ही संगठित करना है वरन् हम साधु-ब्राह्मणों को भी एक सूत्र में पिरोयी हुई माला की तरह संघबद्ध रहना है।

भगवान बुद्ध के तीन प्रधान उपदेशों में—धम्मंशरणं गच्छामि, संघंशरणं गच्छामि, बुद्धंशरणं गच्छामि—में धर्म और विवेक की शरण में जाने के समान ही संगठित होने की महत्ता का भी प्रतिपादन किया है। यह संघ बल ही था जिसने सारे एशिया में उस साधनहीन युग में भी बौद्ध धर्म का झंडा गाढ़ दिया। ईसाइयों के संगठित प्रयत्नों का ही फल है कि दुनिया की आधी से अधिक जनसंख्या को पिछले दो सौ वर्षों में ईसाई बना लिया गया। शास्त्र ने इस युग का सर्वोपरि माध्यम संगठन को ही घोषित करते हुये कहा है 'संघे शक्ति कलौयुगे।' यह वोट का युग है। वोट की चोट से वह राजसत्ता हथियाली जाती है जो शस्त्रों के प्रचण्ड संघर्ष से भी प्राप्त होनी सम्भव नहीं। राजनैतिक पार्टियाँ, सत्ता हथियाने के लिये वोट का क्या मूल्य है यह भली प्रकार जानती हैं। राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, सामाजिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों के आज संगठन की तूती बोलती है। जिसकी पीठ पर संघ बल है उसके पीछे अन्य बल उसी प्रकार फिरते हैं जैसे सूर्य के आसपास नवग्रह परिक्रमा लगाया करते हैं।

आज समाज में असंगठन, फूट और घृणा का साम्राज्य छाया हुआ है। जातियों और उपजातियों के जंजाल में फँसकर इस समाज ने अपने आपको हजारों टुकड़ों में काट डाला है। एक टुकड़ा दूसरे टुकड़े को छूने तक से घृणा करता है।

हम आपस में मिल-जुलकर बैठना सीखें, विचार, विचार-विनिमय की आदत डालें, अपने अतीत और भविष्य का चिन्तन करते हुये वर्तमान का आधार नियोग करें, परस्पर प्रेम, एकता और संगठन के महत्व को स्वीकार करें, एक-दूसरे की उन्नति में सहायक बनकर सर्वांगीण उन्नति के पथ पर तेजी से अग्रसर हों। जो अविवेकपूर्ण कारण हमारी एकता में बाधक बने हुए हैं, उन्हें बीन-बीन कर फेंक दें यही उचित है। यों संगठन बल सदा ही महत्वपूर्ण था, पर इस युग में तो वही सर्वोपरि शक्ति है, उस तथ्य को हम जितनी गहराई से हृदयंगम करलें उतना ही उत्तम है।

हमारे हर कार्य में सामूहिकता की, समाज हित की दृष्टि प्रधान रहे, अपना स्वार्थ साधें पर वह कहीं भी समाज हित का विरोध न हो। अलग डेढ़ चावल की खिचड़ी पकाना, अकेले बैठना, अकेले खाना, अकेले का लाभ सोचना, अनात्मवाद है, असुरता है, यह वृत्ति हम भारतीय तत्वज्ञान के आदर्शों के मानने वालों के लिए सर्वथा अनुपयुक्त एवं अशोभनीय है। मिल-जुलकर रहने, साथ-साथ काम करने, सबके हितों का एक केन्द्रीयकरण करने में ही हमारा कल्याण है। आत्मा लघु है, अणु है—उसे परम आत्मा-परमात्मा-विभु बना देने में ही आत्मोन्नति का परम लक्ष्य सन्निहित है। संसार में भौतिक उद्देश्यों को लेकर अनेक संगठन मौजूद हैं, वे अपने-अपने कार्यक्षेत्र में उस संगठन शक्ति के आधार पर सफलता प्राप्त कर रहे हैं। यदि हमें धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता को विकसित करना है तो उसका आधार भी संगठन ही होगा। संगठन पर ही हमारे भविष्य का उत्थान और पतन निर्भर है।

संघे शक्तिः कलियुगे

अंधेरे को दूर करने के लिए दीपकों का संयुक्त प्रकाश चाहिए। अकेला दीपक अमा-निशा को कहाँ दूर कर पाता है ? एक ईंट और एक कोशिका से मकान और मनुष्य बनते नहीं देखे गये हैं। समुद्र की विशाल जलराशि का संचय तभी हो पाता है, जब अगणित बूँदें परस्पर मिलने और संगठित होने के लिए तैयार हो जाती हैं। अकेला आदमी दुर्दान्त दस्यु का दमन नहीं कर सकता। इसके लिए सामूहिक शक्ति चाहिए। जब एक प्रयोजन और लक्ष्य के लिए संयुक्त शक्ति का नियोजन होता है, तो वह संगठन कहलाता है। यह जब, जहाँ, जिस भी क्षेत्र में प्रयुक्त होता है, वहीं चमत्कारी परिणाम प्रस्तुत करता है।

मूर्धन्य मनीषी ए. के. फरमोण्ट अपनी पुस्तक "आरगेनाइजेशन, आब्जेक्टिव्स एण्ड एडवेण्टेजेज" में लिखते हैं कि पशुओं और वस्तुओं में संगठन होता है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, फिर भी जब कभी वे एक स्थान पर इकट्ठे होते हैं, तो कई बार संगठन जैसे ही कार्य करते देखे जाते हैं। वे लिखते हैं कि भैंसे के झुण्ड को संगठन कहना उचित नहीं, पर जब उन्हें चीते का आसन्न संकट दिखाई देता है, तो वे अवश्य संगठित होते देखे जाते हैं। ऐसी स्थिति में वे उससे अकेले जूझने का खतरा नहीं उठाते। उन्हें ऐसे प्रयास की परिणित की भलीभाँति जानकारी होती है, इसलिए वे संयुक्त शक्ति का परिचय देकर ही उसका मुकाबला करते हैं। वे लिखते हैं कि मनुष्य भी हर स्थान पर हर घड़ी संगठित होते हों, ऐसा नहीं है। यदि ऐसा रहा होता, तो उसकी अनेक समस्यायें और अगणित कठिनाइयाँ हल हो गई होतीं, पर हर व्यक्ति अपनी अलग खिचड़ी पकाने की धुन में अपनी गतिविधियाँ पृथक्-पृथक् रखता है, जिससे कुछ भी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि नहीं हो पाती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह सत्य है कि एक छोटी-सी चिन्गारी भयंकर अग्निकाण्ड उपस्थित कर सकती है, पर मिथ्या यह भी नहीं है कि उसे बुझाने के लिए एक बूँद जल का अस्तित्व कुछ भी नहीं होता। चोर अपनी बिरादरी देखते-देखते मक्खी-मच्छरों की तरह बढ़ा लेते हैं, पर सज्जनों को इस प्रयास में हाथी की तरह सैकड़ों वर्ष लग जाते हैं, फिर भी कहने लायक सफलता कदाचित् ही मिल पाती है। उन कुछ एक मनस्वियों की बात और है, जो अपने प्रबल पुरुषार्थ और प्रचण्ड आत्मबल के द्वारा अप्रत्याशित सफलता हस्तगत करते और अपने जैसे व्यक्तित्वों की चुम्बक की तरह घसीट बुलाते हैं, पर जो सामान्य स्थिति और स्तर के हैं, उनके लिए ऐसा कर पाना न तो सरल है, न संभव। उन्हें तो इसके लिए समुदाय के साथ घुल-मिल कर चलने और रहने में ही लाभ है। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता-यह कहावत इसी सत्य के आधार पर प्रचलित हुई है कि सदाशयता के, सन्मार्ग के रास्ते पर चल पड़ने और कुछ सराहनीय उपलब्धि करतलगत करने के लिए एकाकी प्रयास काफी नहीं होता। इसमें सत्परिणाम परिलक्षित तब होता है, जब वजन ढोने में चींटियों और प्रतिरोध में वानरों की तरह सामूहिक प्रयास हो। उन वेश्याओं की बात और है, जो अकेले ही अनेकों को कुमार्ग की कीचड़ में धकेल देती हैं, पर यदि उन्हें उठाने और उबारने की बारी आये, तो शायद भगवान को भी एक बार सोचना पड़े। तात्पर्य यह है कि बुरा परिकर, एकल प्रयास भी अपने चारों ओर खड़ा कर सकता है, पर जहाँ सत्प्रवृत्तियों का सतयुगी वातावरण बनाना अभीष्ट हो, वहाँ समष्टिगत प्रयत्न ही फलदायी होता है।

प्रसिद्ध विचारक जे. एम. लारा की एक महत्वपूर्ण पुस्तक 'एसटोनिशिंग चेंजेज एण्ड एकेजिंग रिजल्ट्स' इन्हीं दिनों प्रकाशित हुई है। इसमें वे लिखते हैं कि यह विश्वव्यापी परिवर्तन मात्र इसलिए संभव हो सका है कि इन दिनों मानवी सोच में एक अभूतपूर्व बदलाव आया है। विश्व स्तर पर उसका चिन्तन एकरेखीय हो गया है। आज विश्व का हर एक व्यक्ति शान्ति, समता और शालीनता का इच्छुक है। हानि व हिंसा उसे उसी प्रकार अप्रिय हो गयी है, जैसे किसी महात्मा को उसके आचरण के विरुद्ध कार्य। वे कहते हैं कि ऐसी दशा में जो प्रयास व पुरुषार्थ होंगे, निश्चय ही सशक्त और प्रभावशाली होंगे, फलतः परिणाम भी कोई कम विस्मयकारी नहीं होगा, हो भी रहा है। उनके अनुसार ऐसी बात नहीं कि इस प्रकार के प्रयास पहले कभी न हुए हों अथवा शान्ति के समर्थकों की कमी रही हो। वास्तविकता तो यह है कि इसके प्रयत्न भी हुए हैं और समर्थक भी रहे हैं, पर सब अपनी ढपली अपना राग बजाने में ही व्यस्त रहे। मिलजुलकर संघबद्ध गाने-गुनगुनाने में किसी की भी रुचि न रही, फलतः उनकी परिणत जलते तवे पर बूँद की भाप बनकर उड़ने जैसी रही, किन्तु वर्तमान में कुछ ऐसी सूक्ष्म प्रेरणा उठी है कि सब एक ही प्रकार के राग भी अलाप रहे हैं और असमन्वित प्रयास के इच्छुक भी दिखाई पड़ते हैं, जिससे नतीजा भी विलक्षण सामने आ रहा है। वे लिखते हैं कि आने वाले समय में यह प्रयास और संघबद्ध हो, तो कोई आश्चर्य नहीं।

'एकला चलो' का नारा अपने स्थान पर सही है, पर इसे उसी स्थिति में स्वीकारा जा सकता है, जब प्रयास अपने ढंग का सर्वथा अनूठा हो और मिलते-जुलते कार्य अन्यत्र कहीं अस्तित्व में न हों, किन्तु जहाँ ऐसे कार्य हो भी रहे हों और संगठन की बड़ी शक्ति भी हो, वहाँ उसके साथ मिलजुलकर कार्य करने में ही भलाई है। बहुमूल्य उपलब्धि इसी स्थिति में संभव है। एक रेशे की रस्सी और अकेला सामान दुकान चलाते नहीं देखा गया है। महत्वपूर्ण सुधार-संशोधन और युग समस्याओं का शमन संगठनात्मक पुरुषार्थ द्वारा ही संभव है। प्रत्येक को इसकी शक्ति समझनी चाहिए।

समाज को शक्तिशाली बनावें

मानव जीवन की समृद्धि, विकास, कल्याण उसके व्यष्टि से समष्टि की ओर, आत्मा से परमात्मा की ओर, द्वैत से अद्वैत की ओर विस्तीर्ण होने में ही सन्निहित है। **"यौ वै भूमा तत्सुखम्"** भूमा में, अनन्त में विस्तार पाना ही सुख है और यह विस्तार जब इतना व्यापक हो जाता है कि मनुष्य के सभी द्वैत-द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं, तब वह स्वयं भी अद्वैत बन जाता है। ऐसी स्थिति में सब उसके और वह सबका बन जाता है। व्यक्तिवाद, स्वार्थपरता, अपना-परायापन का मतलब है—संकीर्णता, सीमितता और इसका परिणाम है—असुरक्षा, अशान्ति, दुःख। समत्व, ऐक्य, अद्वैत का अर्थ है इसी भाँति सुख-शान्ति और समृद्धि। इसीलिए जीवन दर्शन के आचार्य ऋषि ने मनुष्य को समष्टिगत जीवन बिताने का निर्देश दिया है।

अद्वैत की, एकता की ऐसी महान् भावना ही हमारे जीवन की मूल आधारशिला है। भारतीय धर्म, दर्शन, समाज व्यवस्था, संस्कृति की मूल प्रेरणा यही अद्वैत की भूमा में विस्तृत होने की विशाल भावना रही है।

धरती पर जीवन की बनावट ही कुछ ऐसी है कि वह अपने आप में सिमटकर नहीं रह सकता। सम्पूर्ण समाज सृष्टि से वह प्रभावित होता है और उससे सम्पूर्ण समाज। जिस तरह श्वास-प्रश्वास का सम्बन्ध विश्वव्यापी वायु तत्व से जुड़ा हुआ है, उसी तरह से मनुष्य का जीवन समष्टि के साथ जुड़ा हुआ है और वह स्वयं भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपने आस-पास की दुनिया को प्रभावित करता है। इस तरह व्यक्ति का विकास समष्टि के जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। वह जितना इस कड़ी को मजबूत करेगा उतना ही वह अपने और समाज के जीवन को समृद्ध, विकसित करेगा। मनुष्य जितना अपने जीवन को समष्टि के साथ व्यापक बनाता जाता है वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उतनी ही उच्च कक्षा में प्रवेश करता है। महानता की सीढ़ी पर पैर रखता है।

आस-पास के क्षेत्र का—जिसे समाज कहा जाता है—हमारे व्यक्तित्व के विकास में बहुत बड़ा हाथ होता है। इसलिए प्रतिदान स्वरूप मनुष्य का भी कर्तव्य हो जाता है कि वह उस संस्थान् को अधिकाधिक समर्थ और समृद्ध बनावे ताकि वह व्यक्ति के निर्माण एवं विकास में अपना पूरा-पूरा हक निभा सके।

अपने स्वार्थ, अपनी ही मान्यताओं, अपने ही लाभ में आसक्त रहने वाला मनुष्य समाज को तो कमजोर करता ही है साथ ही अपनी प्रगति में भी बाधक बनता है। वह स्वयं अपनी ही परिधि में गिरफ्तार रहकर समाज के साधनों से लाभ नहीं उठा पाता इसलिए पिछड़ जाता है, अविकसित रह जाता है।

समाज को अभावग्रस्त देखकर भी हम अपना घर भरा रखें, तो यह अपनी मौत को निमन्त्रण देना है क्योंकि दुर्बल समाज हमारी रक्षा नहीं कर सकता। इसके साथ ही एक न एक दिन समाज के कोप का भी भाजन बनना पड़ेगा। ऐसे स्वार्थी लोगों को दूसरों का सहयोग, आत्मीयता मिलना तो असम्भव ही है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि अपने समाज के हित में अपना हित समझा जाय, उसकी समृद्धि विकास में ही मनुष्य का विकास निहित है।

समष्टि में विस्तार पाने के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता है सामूहिकता की भावना की। हमारा दृष्टिकोण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनेपन से प्रेरित न होकर समष्टिगत हो। हम जो भी करें उसका प्रभाव समाज पर क्या पड़ेगा ? यह विचार करना आवश्यक है। इस तरह के सभी प्रयत्न त्याज्य हैं, जिनमें हम अपने लाभ की साधना से समाज के हितों को नुकसान पहुँचाते हों। समाज में जहाँ अन्य लोगों को सरलता से पेट भरने को अन्न न मिले और हम अपने भण्डारों में अन्न संग्रहीत करें। समाज के बहुत बड़े वर्ग को जहाँ रोटी, कपड़ा, आवश्यक शिक्षा, चिकित्सा आदि की व्यवस्था न हो और हम अपने लिए कोठी-बँगले, आमोद-प्रमोद के साजो-सरंजाम एकत्र करें तो यह ऋषियों की भाषा में पाप होगा। किसी भी स्थिति में हमें उन कार्यों से बचना चाहिए, जिससे अपने लाभ के लिए संपूर्ण समाज का ही अहित कर रहे हों।

"अज्येष्ठासोऽकनिष्ठास एत सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय"। हम सब प्रभु की सन्तान एक-दूसरे के भाई-भाई हैं। हम में न कोई छोटा है न कोई बड़ा। हम सब एक हैं, ऐसी उत्कृष्ट भावना का होना समाज की समृद्धि के लिए आवश्यक है। रुद्र सूक्त का प्रणेता ऋषि तो समाज की सेवा करने वालों को भी नमस्कार करता हुआ कहता है **"धर्मकारेभ्यो नमो, स्थकारेभ्यो नमो, कुलालेभ्यो नमो।"** अरे चमार तुझे नमस्कार है, बढ़ई तुझे नमस्कार है", कुम्हार तुझे नमस्कार है।" ऋषि किसी को भी अस्पृश्य नहीं मानता वरन् यह समाज की किसी भी रूप में कर्म करके पूजा करने वाले को वन्दनीय समझता है। इतना ही नहीं वह तो पतितों को भी नमस्कार करता है **"स्ते ना वां पतये नमो।"** चोरों और चोरों के नायकों को भी प्रणाम करता है ऋषि। क्यों ? आखिर चोर भी तो समाज के अंग हैं, मनुष्य हैं और सामाजिक कारणों से ही वह चोर बनता है। ऋषि पागल नहीं थे वे अद्वैत के दृष्टा थे, उन्होंने इसे अपने जीवन में आत्मसात कर लिया था। इसीलिए तो वाल्मीकि जैसे डाकू में भी उन्होंने तनिक से सम्पर्क मात्र से उसके ऋषि तत्व को जगा दिया था।

जहाँ सामूहिकता, अद्वैत की भावना नहीं रहती मनुष्य में अपना और परायापन का भाव आ जाता है वहीं संघर्ष, छीना-झपटी, द्वेष-दुर्भावनाओं को प्रोत्साहन मिलता है। वहाँ अनेकों अवांछित तत्व पैदा हो जाते हैं। क्रान्ति का उदय भी इसी से होता है और इन परिस्थितियों में समाज को अशान्ति के दौर से गुजरना पड़ता है, फिर वे लोग जो अपने लिए ही संग्रह करके रखते हैं, उनका भी अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। बहुधा उन्हें समाज के कोप का भाजन बनना पड़ता है।

किसी भी रूप में विषमतायें, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, अपने-पराये की भावनायें सामाजिक जीवन के लिए भयंकर विष हैं और यह भी निश्चित है कि इनके रहते कोई भी समाज सुरक्षा, शान्ति, समृद्धि की ओर अग्रसर नहीं हो सकता।

हम अपने और समाज के बीच इन विषमताओं को जितना हटाते जायँगे, जितना हम समाज के साथ घुलते जायेंगे उतना ही समाज शक्तिशाली, समर्थ बनेगा और वह हमारे विश्वास-समृद्धि में अपना पूरा-पूरा योगदान दे सकेगा। समाज को अपना कुटुम्ब मानकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को जगाना होगा, तब सबके सुख में हमारा सुख होगा, सबके हित में हमारा हित होगा।

सहकारिता विकसित करें, संघशक्ति सँजोयें

संगठन का अर्थ है—सहयोग। यों उसका मखौल तो कागजी संस्थाएँ खड़ी करके भी लोग उड़ाते रहते हैं, उससे विनोद कौतूहल भर होता है, कोई बड़ा प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। शक्ति तो सहयोग के बल पर उत्पन्न होती है। बिजली के ठण्डे-गरम तार अलग-अलग पड़े रहें तो वे व्यर्थ हैं, पर जब वे मिल जाते हैं तो 'करेण्ट' चालू हो जाता है। एकाकी व्यक्ति की अपनी थोड़ी-सी सीमा-मर्यादा है, अपने बलबूते पर भी कुछ तो हो ही सकता है, पर वह होगा नगण्य ही। बड़ी प्रगति—बड़ी सम्भावना तो सम्मिलित शक्ति के द्वारा ही मूर्तिमान होती है। एक-एक सैनिक अलग-अलग फिरें तो उनके छुट-पुट कार्य एक सुगठित सैन्य टोली जैसे नहीं हो सकते।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कई तरह की योग्यताएँ मिल-जुलकर अपूर्णता को पूर्ण करती हैं। परिवार को ही लें उसमें कई स्तर के-कई विशेषताओं के मनुष्य मिल-जुलकर रहते हैं तो एक अनौखे आनन्द का सृजन करते हैं। पति-पत्नी की योग्यताएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं, जब वे मिलकर एक हो जाते हैं तो दोनों को ही लाभ होता है, दोनों ही अपने अभावों की पूर्ति करते हैं। वृद्धों का अनुभव, बालकों का विनोद, उपार्जनकर्त्ताओं का धन आदि मिलकर एक ऐसा संतुलन बनता है, जिसमें परिवार के सभी सदस्यों का हित साधन होता है। सभी एक-दूसरे का—सहयोग का लाभ उठाते हुए आनन्द से रहते और उत्साह पाते हैं। किन्तु यदि परिवार के सदस्यों में सहयोग न हो, मात्र एक सराय में रहने वाले अजनबी मुसाफिरों की तरह निर्वाह करें, तो उनका असहयोग और मनोमालिन्य उस समूह को आनंदरहित, नीरस और समस्याओं से भरा हुआ बना देंगे और उसका बिखर जाना ही श्रेयस्कर प्रतीत होगा।

कितने लोग वहाँ इकट्ठे होते हैं, इसका कोई महत्व नहीं। भीड़ तो सदा अड़चन, गन्दगी और अव्यवस्था ही उत्पन्न करती है। मेलों-ठेलों में अधिक लोग जमा होते हैं, पर इससे कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इसके विपरीत जहाँ थोड़े-से लोग भी पारस्परिक सहयोगपूर्वक आदान-प्रदान करने और किसी निर्धारित लक्ष्य की ओर मिलजुलकर चलने के लिए एकत्रित होते हैं, वे सम्मेलन जो निश्चय करते हैं, उनके दूरगामी परिणाम उत्पन्न होते हैं। बड़ी संख्या में जमा होते हुए भी यदि लोगों में स्नेह, सहयोग और सामंजस्य नहीं है तो वे सभी अपने आपको एकाकी अनुभव करते रहेंगे। जहाँ घनिष्ठता की मनःस्थिति होगी, एक-दूसरे के दुःख-सुख में सहायक बनकर रहे होंगे—जिनमें एक-दूसरे के हित साधन और कष्ट-निवारण में जितना उत्साह होगा, उनमें उतनी ही प्रसन्नता और निश्चिन्तता दिखाई पड़ेगी। वे उसी अनुपात में समर्थ, सम्पन्न, निर्भय और प्रभावशाली बनकर रह रहे होंगे। उस समूह का भविष्य उज्ज्वल ही बनता जा रहा होगा।

जिसका 'अपनापन' जितना संकुचित है, वह आत्मिक दृष्टि से उतना ही छोटा है। जिसने अपनेपन की परिधि जितनी बड़ी बनाली है, उसे उतना ही विकसित, परिष्कृत माना जायगा। स्वार्थी व्यक्ति समाज की चिन्ता तो दूर अपने परिवार के हित-अनहित तक का विचार नहीं करते और मात्र अपनी ही सुविधा समेटने में लगे रहते हैं। ऐसे लोग अपनी शरीर सुविधा और क्षणिक प्रसन्नता पा सकते हैं, पर उनकी अन्तरात्मा इस क्षुद्रता के लिए कचोटती ही रहती है। परिचित लोग घृणा करते हैं और सम्बद्ध व्यक्ति रुष्ट रहते हैं। उन्हें न कभी कहीं से सच्चा सम्मान मिलता है और न आड़े वक्त में किसी का कारगर सहयोग। जो दूसरों के दुःख-दर्द में शामिल नहीं होता, उसे अपने आपत्तिग्रस्त होने पर किसी की सहायता नहीं मिलती। जिसे दूसरों से कुछ सहानुभूति नहीं उसके साथ भी सहानुभूति कौन व्यक्त करेगा ?

उदारचेता मनुष्य देखने में घाटा उठाते दीखते हैं क्योंकि उन्हें दूसरों की सहायता करने में अपना समय, मस्तिष्क और धन खर्च करते हुए देखा जाता है मोटे तरीके से यह घाटा उठाने का चिन्ह है। पर ध्यानपूर्वक देखा जाय तो बात ठीक उलटी दिखाई पड़ती है। बीज गलता है तो लगता है वह घाटे में रहा, पर जब उसका अंकुर फूटता है, पौधा बनता है, विशाल वृक्ष होकर फूलों-फलों से लदता है तो प्रतीत होता है बीज का गलना मूर्खतापूर्ण नहीं था, उसने जितना खोया उसकी तुलना में पाया कहीं अधिक है। दूसरों के साथ उदार सहयोग का बरतना—अपनी अन्य आत्मिक सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाता है, दूसरों के मन में अपने लिए श्रद्धा, सम्मान का स्थान बनाता है और अपने चुम्बकत्व से अन्य लोगों का स्नेह-सहयोग आकर्षित करता है। इस प्रकार उदार व्यक्ति घटता नहीं बढ़ता ही है। सहयोग की प्रतिक्रिया सुखद सहायता बनकर चारों ओर से बरसती है।

धर्म-शास्त्रों में दान-पुण्य की बहुत महिमा गाई गई है और उसे हर शुभ कार्य के साथ जोड़ा गया है। इसका कारण मात्र धन को एक से दूसरे के हाथ में पहुँचाना नहीं वरन् उदार सहयोग की सत्प्रवृत्ति को विकसित करना है। हम अपने ही दुःख को दुःख न समझें वरन् दूसरों के कष्टों में भी समान सम्वेदना अनुभव करें। किसी की पीड़ा अपने अन्तःकरण में करुणा और दया उत्पन्न करती हो तो समझना चाहिए आत्मा की कोमलता जागरूक है और व्यक्ति आत्मोत्कर्ष के मार्ग पर चल रहा है। जो जितना कठोर है उसे दूसरों को कष्ट पीड़ित देखकर तनिक भी दया नहीं आती, ऐसे लोग परपीड़ा का क्रूर-कर्म स्वयं भी करते रहते हैं और दूसरों को करते देखकर प्रसन्न होते हैं अथवा निरपेक्ष बने रहते हैं। इस आन्तरिक स्थिति को ही असुरता कहते हैं। ऐसे लोग अपने लाभ के लिए ही नहीं, अकारण भी परपीड़ा का आनन्द लेते हैं और उस दुष्टता को वीरता का नाम देते हैं। कसाई, शिकारी, डाकू, हत्यारे प्रायः ऐसी ही असुर मनोवृत्ति के होते हैं। अपराधी मनोवृत्ति इसी कठोरता की पृष्ठभूमि पर पनपती है।

मनुष्य असुरता छोड़े और देवत्व की दिशा में अग्रसर हो इसका एक ही उपयोग है, उदार सहकारिता की मनोवृत्ति का विकास—उसे अन्तःभूमि में परिपक्व करने वाले क्रिया-कलापों का अभ्यास। दान-पुण्य की महिमा इसी प्रयोजन को ध्यान में रखकर गाई गई है। आज तो इस क्षेत्र में भी मूढ़-मान्यताओं का साम्राज्य है। लोग अमुक वंश या वेश के लोगों को दान लेने का ठेकेदार मानते हैं और देवी-देवताओं तथा पितरों को प्रसन्न करने की दृष्टि से पैसा पानी की तरह बहाते हैं। कुछ लोग अपने को उदार दानी होने का प्रचार विज्ञापन करने की दृष्टि से तीर्थयात्रा, ब्रह्मभोज, स्मारक आदि में धन खर्च करते हैं। यह आज के घटिया मनुष्य के, घटिया चिन्तन का घटिया स्वरूप है। वस्तुतः दान एक सत्प्रवृत्ति है, जो मात्र धन देकर ही नहीं, श्रम, समय, प्रोत्साहन, स्नेह, सत्परामर्श, सहानुभूति आदि के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

माध्यम से भी उसे चरितार्थ किया जा सकता है। दानी के लिए धनी होना आवश्यक नहीं। निर्धन भी अपने उदार चित्त के आधार पर धन कुबेरों से भी बढ़ी-चढ़ी सेवा सहायता कर सकते हैं। सद्भावना की कमी न हो, स्वभाव में उदारता सम्मिलित हो, दूसरों के दुःख में सहायता करने की कसक उठती हो, किसी को सुखी बनाने में रस आता हो तो समझना चाहिए दानशीलता के अनेकानेक आचरण स्वयमेव होते चले जायेंगे और उसके लिए व्यस्त एवं त्रस्त स्थिति में भी पग-पग पर सुअवसर मिलते रहेंगे।

आवश्यक नहीं कि कोई पीड़ित या पतित मिले तब के लिए दान की प्रतीक्षा में बैठे रहा जाय अथवा उन्हें खोज-खोजकर बुलाया जाता रहे। यह तो आपत्ति धर्म है कि कभी कोई दुःखी व्यक्ति दिखाई पड़े तो उसकी उचित एवं शक्य सहायता विवेकपूर्वक की जाय। भावावेश में अनुचित सहायता करने से तो भिक्षावृत्ति पनपती है और कुपात्रों के लिए एक घिनौना व्यवसाय अपनाकर अकर्मण्य बनने का दुर्भाग्य पल्ले पड़ता है। इस क्षेत्र में पूरे विवेक का प्रयोग करने की आवश्यकता है। विवेकपूर्ण सहृदयता ही लाभदायक सिद्ध होती है। माता को बच्चे के फोड़े का आपरेशन कराते समय जो कठोरता धारण करनी पड़ती है वस्तुतः वह भी विवेकपूर्ण करुणा का ही एक अंग है।

अपने स्वजन, सम्बन्धियों, पड़ौसी, परिचितों में कोई हारी-बीमारी हो तो उसकी दवादारू, परिचर्या, पूछताछ, सहानुभूति, आश्वासन के लिए कुछ समय या प्रयत्न करके अपनी सद्भावना का परिचय दिया जा सकता है। अन्य प्रकार की मुसीबतें तथा कठिनाई भी लोगों के सामने आती रहती हैं। ऐसे अवसरों पर लोग अक्सर अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठते हैं और ओंधे-सीधे विचार करके अवांछनीय मार्ग अपनाने लगते हैं, यह मनःस्थिति भी शारीरिक बीमारी से कम भयंकर नहीं। अपने सम्पर्क क्षेत्र में अक्सर कई व्यक्ति ऐसी आपत्ति में फँसे होते हैं। उनके साथ सहज आत्मीयता विकसित करनी चाहिए और अपने विश्वास क्षेत्र में लेना चाहिए। इतना कर सकने पर ही स्नेहसिक्त, तर्क और तथ्यों से भरा परामर्श प्रभावी बनता है। ऐसा मार्गदर्शन कर सकना-धन दान करके किसी दीन-दुःखी की सहायता करने से किसी भी प्रकार कम महत्व का नहीं है। साधारण वार्तालाप में भी सम्पर्क में आने वालों को बिना उनके स्वाभिमान को चोट पहुँचाये—बिना निन्दा, भर्त्सना किये सहज सत्परामर्श दिये जा सकते हैं और उनसे भी धन दान जैसे ही सत्प्रयोजन सिद्ध हो सकते हैं। अपना चरित्र आदर्श बनाकर उसे अनुकरणीय एवं प्रेरणाप्रद बना लिया जाय तो वह भी प्रकारान्तर से सम्पर्क क्षेत्र में बखेरा गया अयाचित अनुदान ही माना जायगा।

घर में ऐसी परम्परा प्रचलित करनी चाहिए जिसमें सभी को एक-दूसरे की सहायता करने की उत्सुकता बनी रहे। इसके लिए उन्हें बराबर अवसर भी मिलते रहने चाहिए। बड़ी क्लास के लड़के अपने से छोटी कक्षा के भाई-बहिनों को पढ़ाने के लिए नियमित रूप से हर रोज समय निकालें और उन्हें खिलाने, हँसाने, अच्छी आदतें अपनाने, ज्ञान बढ़ाने आदि में सहायता करें। छोटी आयु के बच्चे बड़ों के कामों में हाथ बँटाने में, उनकी छोटी-छोटी आवश्यकताएँ स्वयं जुटा देने में रुचि रखें; बराबर वालों के साथ जी-खोलकर हँसने, बोलने और मिल-जुलकर साथ-साथ काम करने का क्रम बनायें। दूसरों की बिखरी चीजों को यथास्थान रख देना एक छोटा-सा काम है, पर उससे यह छाप पड़ती है कि हमारे प्रति कितना ध्यान है ? ऐसे छोटे-छोटे सहयोग देकर साथ वालों की सद्भावना एवं कृतज्ञता अर्जित की जा सकती है।

सार्वजनिक हित के सामूहिक कार्यों में सदा अग्रणी रहना चाहिए। लोकमंगल के लिए चल रहीं गतिविधियों में पूरे उत्साह के साथ भाग लेना चाहिए। इन सत्प्रवृत्तियों में भाग लेने से विश्व सेवा के विशाल क्षेत्र में प्रवेश करने का अवसर मिलने से आत्म-विस्तार का लाभ मिलता है साथ ही समाज को समुन्नत बनाने का जीवनोद्देश्य भी प्राप्त होता है। जिस प्रकार व्यक्तिगत एवं पारिवारिक लाभ के कार्यों में रुचि रखी जाती है उसी प्रकार समाज को भी बड़ा परिवार मानकर उसे समुन्नत बनाने वाले सामूहिक सार्वजनिक कार्यों में हमारा भावभरा अनुदान एवं सहयोग सदा ही सम्मिलित रहना चाहिए।

अन्तःकरण की उदारता को विकसित करना—अपना स्तर बढ़ाना और दूसरों का सम्मान-सद्भाव अर्जित करना है। यह लाभ जो कमाता है वह देने की अपेक्षा प्रकारान्तर से कहीं अधिक प्राप्त कर लेता है। स्वार्थपरायण व्यक्ति चतुर दीखता है, पर वह एकाकी रहकर खोता ही अधिक है। अस्तु, हर विवेकवान का प्रयत्न यह होना चाहिए कि वह अपनी आत्मीयता का क्षेत्र विस्तृत करे, दूसरों के दुःख को बँटाने और अपने सुख को बाँटने में उत्साह रखे। सहयोग का स्वभाव बनाये और जहाँ भी आवश्यकता हो—अवसर हो, सहकारिता की, सत्प्रवृत्ति चरितार्थ करने में पूरी तत्परता बरते। सद्भाव और सहयोग के बल पर ही परिवार बनते, सुदृढ़ होते और बढ़ते हैं। संगठन का मूल तत्व यही है। मानवी प्रगति सहयोग के आधार पर ही सम्भव हुई है, उस मनुष्य को दिये गये ईश्वरीय अनुदान का हमें अधिकाधिक विकास करना चाहिए ताकि सुख-शान्ति का अधिकाधिक सम्वर्धन सम्भव हो सके।

एक साथ चलो, आगे बढ़ो

अश्मन्वती रीयते संरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः।
अत्राजहीमोऽशिवा ये असञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभिवाजान्।।

—यजु. ।३५।१०

"दुःखस्वरूप पत्थरों वाली यह संसार नदी बह रही है। हे मनुष्यो ? परस्पर एकमत होकर एक साथ प्रयत्न करो। उठो ? सावधान होकर अच्छी तरह पार करो। जो अमंगलकारी हैं, उन्हें यहाँ ही छोड़ दो। (और) कल्याणकारी बातों को, पदार्थों को, (ज्ञान को) अपना लक्ष्य बनाकर भली प्रकार उसे तर जाओ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उक्त वेद मंत्र में संसार रूप नदी की विषमता, कठिनाई आदि का वर्णन करते हुए मानव को संगठनबद्ध होकर उसे पार करने की प्रेरणा दी गई है। साथ ही विपरीत एवं दूषित तत्वों को छोड़कर कल्याणकारी एवं हितकर तत्वों को अपनाकर आगे बढ़ने का आदेश दिया गया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह संसार एक नदी की तरह बह रहा है। जिसमें कठिनाइयाँ, दुःख, परिस्थितियाँ कुयोग आदि भी पत्थर रूप में बह रहे हैं। जो भी प्राणी इस संसार रूपी नदी में उतरेगा, उसे उक्त पत्थरों का सामना करना पड़ेगा। इन कठिनाइयों, दुःखों, परेशानियों आदि पत्थरों के प्रवाह का सामना सभी को करना पड़ता है। प्रत्येक मनुष्य को जीवन के प्रारम्भ से अन्त तक इनके थपेड़े खाने ही पड़ते हैं। मालूम करने पर पता चलेगा कि अधिकांश व्यक्ति अपने दुःखों, कठिनाइयों, परेशानियों आदि की शिकायत करते हुए मिलेंगे।

बहुत कम ऐसे होते हैं जो इन्हें सहन करके संसारनद के तीव्र प्रवाह में अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सकते हैं। ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत ही कम होती है। बहुसंख्यक लोग वही होते हैं, जो अपना जीवन उक्त पत्थरों के प्रवाह में छोड़ देते हैं अपने जीवन को रोते-झींकते और भार ढोने की तरह ही व्यतीत करते हैं। इन लोगों का एकाकी प्रयत्न इतना सबल और ठोस नहीं होता कि ये इस संसाररूपी नदी को पार कर सकें। इसी समस्या का समाधान करते हुए वेद भगवान आज्ञा देते हैं कि "हे मनुष्यो ? एकमत होकर एक साथ उद्योग करो, उठो, सम्हलो और इस नदी को अच्छी तरह पार करो।" इस संसाररूपी नदी को पार करने के लिए संगठन की शक्ति निश्चय ही महत्वपूर्ण है। संगठन के लिए सर्वप्रथम हमारा एकमत एवं एक विचारधारा आवश्यक है। जहाँ परस्पर विरोधी विचार होंगे वहाँ संगठन होना असम्भव है। इसी लिए वेद भगवान पहले एक विचार वाले बनने पर जोर दे रहे हैं।

जब एक विचार एकमत स्थिर हो जावें तब संसार नदी में बहते हुए कठिनाई, दुःख, परेशानी, आपत्तियों आदि पत्थरों के प्रवाह से बचने के लिए सामूहिक प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार संगठनात्मक प्रयत्न से दुर्बल, दीन, शक्तिशाली सभी तरह के व्यक्तियों का हित होता है। संगठन में महान् शक्ति होती है।

सामूहिक प्रयत्न भी यदि सुस्ती या आलस्यपूर्ण हों तो सफलता मिलना तो दूर उल्टी अधिक हानि हो जाती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को सावधान होकर, सम्हलकर, सचेत होकर विपरीत तत्वों से संरक्षण प्राप्त करने एवं उनकी हानि से बचने के लिए संगठनबद्ध होकर प्रयत्न करना चाहिए। परस्पर सहयोग, सहायता, सहिष्णुता, उपकार की भावनायें, आत्मीयता आदि एक-दूसरे को दुःखों, कठिनाइयों एवं परेशानियों से बचाने के लिए आवश्यक है। इसी का निर्देशन उक्त वेद मंत्र में किया गया है। इस प्रकार के प्रयत्नों से परस्पर एक-दूसरे को संसार नदी में जीवन पथ पर अग्रसर करने में सहायक हो सकते हैं।

एकमत हो, संगठित हो और सावधानी से आगे बढ़ने के प्रयत्न हो किन्तु यदि विवेक का अवलम्बन न किया जाय अर्थात् अच्छे-बुरे की पहचान कर तदनुकूल व्यवहार न हों तो भी मनुष्य को इस संसार नदी में उक्त प्रस्तरों के थपेड़े खाने पड़ते हैं। दुःख, कठिनाई एवं परेशानियों का शिकार होना ही पड़ता है। इसलिए वेद भगवान आज्ञा देते हैं कि "जो अमंगलकारी हैं उनको यहीं ही छोड़ दें और कल्याणकारी तत्वों को आधार बनाकर उत्तमता से तर जायँ।"

अक्सर विवेक के अभाव में मनुष्य की व्यक्तिगत अथवा सामूहिक शक्ति अनावश्यक एवं अमंगलकारी कार्यों में नष्ट हो जाती है और परिणाम में दुःख, कठिनाइयाँ आदि का सामना करना पड़ता है। अविवेक सांसारिक विषय भोग, वासनायें, संग्रह की इच्छा, स्वार्थ आदि को प्रधानता देता है, जिनका परिणाम दुःख और कठिनाइयाँ ही हैं। अतः इनको विवेक की कसौटी पर कसना चाहिए और जो दुखदाई हों, अमंगलकारी हो उन्हें छोड़ देना चाहिए। कल्याणकारी, हितकर एवं शुभ बातों को अपनाना चाहिए। यही विवेकशीलता है। कुवासनाओं, बुरी भावनाओं एवं कुकर्मों को त्याग कर महान्, कल्याणकारी एवं उच्च लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए।

उक्त तथ्यों के अनुसार इस संसार में दुःखों, कठिनाइयों, परेशानियों, भय आदि से बचकर सुख-शान्ति, कल्याणकारी, पवित्र जीवन बिताकर आत्मलक्ष्य प्राप्त करने के लिए संगठन एक विचार सावधान और सचेत होकर एक साथ उद्योग, अमंगलकारी-दुःखदायी तत्वों को छोड़कर कल्याणकारी पथ को अपना लक्ष्य बनाकर आगे बढ़ना चाहिए। यही वेद भगवान की मानव मात्र के लिए आज्ञा है। यही ईश्वरीय आदेश है, जिसका पालन करना प्रत्येक मनुष्य का आवश्यक कर्तव्य है।

जब समाज में इन तत्वों की वृद्धि होती है, तभी विकास, उन्नति आदि सम्भव होते हैं। अतः यदि हमें अपने कदम उन्नति, प्रगति एवं उत्थान की ओर बढ़ाने और अपने प्राचीन महान गौरव एवं विशिष्टता को प्राप्त करने के लिए अग्रसर होना है तो उक्त ईश्वरीय आदेश का पालन करना होगा। हम सबको एक विचार, संगठन, सामूहिक प्रयत्न तथा दूषित तत्वों से दूर होकर एक ही राष्ट्रीय भावनाओं के अनुसार अग्रसर होना आज की महान् आवश्यकता है। इस पथ को अपनाये बिना भौतिकता एवं विनाश के प्रवाह में बहते हुए इस विश्व में अपना अस्तित्व कायम रखना असम्भव है। इस पर गम्भीरता से विचार कर प्रत्येक भारतीय को तदनुकूल आचरण करना सच्चा धर्म पालन है, ईश्वरीय आदेश एवं वेदाज्ञा का आदर है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संगठित होइए, एक रहिए

मनुष्य प्राणी आज सृष्टि का मुकटमणि है। उसने अनेक दिशाओं में आश्चर्यजनक उन्नतियाँ की हैं। साधारण श्रेणी के पशु से ऊपर उठकर वह उन्नति के उच्च शिखर पर जा बैठा है। इस उन्नति का मूलभूत कारण उसकी एकता शक्ति, मिलन शक्ति, सामाजिकता, मैत्री भावना, सहयोग परायणता ही है। मनुष्यों ने आपस में एक-दूसरे को सहयोग दिया, अपनी स्थूल और सूक्ष्म शक्तियों को आपस में मिलाया, इस मिलन से ऐसी-ऐसी चेतनाएँ, सुविधाएँ उत्पन्न हुईं, जिनके कारण उसके उत्कर्ष का मार्ग दिन-दिन बढ़ता गया। दूसरे प्राणी जो साधारणतः शारीरिक दृष्टि से मनुष्य की अपेक्षा कहीं अधिक सक्षम थे, इस मैत्री भावना, सम्मिलित योग्यता के अभाव में जहाँ के तहाँ पड़े रहे। वे अति प्राचीनकाल में जैसे थे वैसे ही अब भी बने हुए हैं। मनुष्य की तरह उन्नति का सुविस्तृत क्षेत्र वे प्राप्त न कर सके। संघ शक्ति भी एक महान् शक्ति है। उसे भले या बुरे जिस भी मार्ग में, जिस भी कार्य में लगाया जायगा उधर ही आश्चर्यजनक सफलता के दर्शन होंगे।

मनुष्यों के भी अनेक देश, जाति, वर्ग, समूह हैं। उनमें वे ही आगे बढ़े हैं, वे ही समुन्नत हुए हैं जिनमें अपेक्षाकृत अधिक सहयोग भावना है। व्यक्तिगत रूप से विचार किया जाय तो भी हमें वे ही व्यक्ति समृद्ध मिलेंगे, जिन्होंने किसी भी उपाय से दूसरों का अधिक सहयोग प्राप्त किया है। कोई भी सेठ-साहूकार बिना मुनीम, गुमास्ते, कारबरदार, कारीगर, मजदूर, एजेन्ट आदि के सहयोग के बिना समृद्धिशाली नहीं हो सकता। चोर, उचक्के, ठग, डाकू, लुटेरे, जुआरी आदि को जो सफलताएँ मिलती हैं, उसमें उनके दल ही संघशक्ति की प्रधान कार्य करती है, गुप्त षड्यंत्रों के द्वारा रोमांचकारी काण्ड होने की घटनायें सामने आती हैं, उनके साहसिक कार्यों को देखकर सन्न रह जाना पड़ता है। इन विचित्र कारगुजारियों के अन्दर षड्यंत्रकारियों का संगठन ही होता है। इस संगठन के कारण वे अलभ्य साधनों को पर्याप्त मात्रा में जुटा लेते हैं। कुछ समय पूर्व के भारतीय क्रान्तिकारियों के साहसिक षड्यंत्र और इन दिनों सम्प्रदायवादियों द्वारा आयोजित सीधी कार्यवाही के काण्ड यह बताते हैं कि चंद मनुष्यों का घनिष्ठ सहयोग कैसे-कैसे परिणाम उत्पन्न कर सकता है ?

बुरे लोगों द्वारा, बुरे कार्य के लिए, आपसी घनिष्ठ संघ बनाकर अवांछनीय साहसिक कार्य होते हुए हम अपने चारों ओर नित्य ही देखा करते हैं, उन उदाहरणों की कमी नहीं पर साथ ही यह भी तथ्य सामने है कि श्रेष्ठ लोगों ने श्रेष्ठ कार्यों से बड़ी-बड़ी महान् सफलताएँ आपसी संगठन के कारण प्राप्त की हैं। बिजली, अग्नि, गैस, भाप की तरह जनशक्ति भी अनेक गुनी बढ़ जाती है। व्यक्तिवाद के स्थान पर समूहवाद की प्रतिष्ठापना का महत्व अब समस्त संसार पहचानता जा रहा है। पृथक्-पृथक् रूप से छोटे-छोटे प्रयत्न करने में शक्ति का अपव्यय अधिक और काम कम होता है—परन्तु सामूहिक सहयोग से ऐसी अनेकों चेतनाओं और सुविधाओं की उत्पत्ति होती है, जिसके द्वारा बड़े-बड़े कठिन कार्य सरल हो जाते हैं। सम्मिलित खेत, सम्मिलित रसोई, सम्मिलित व्यापार, सम्मिलित संस्था आदि अनेक दिशाओं में सम्मिलन का क्षेत्र विस्तीर्ण हो रहा है। इस प्रवृत्ति की वृद्धि के साथ-साथ मानव प्राणी की सुख-शान्ति एवं सफलताओं में भी आश्चर्यजनक रीति से अभिवृद्धि होगी।

संगठन में है, अपार बल

आर्य सभ्यता उस समय अपने विकास के चरम शिखर पर थी। भारत में कई आर्य प्रान्त थे। सब स्वाधीन, स्वतंत्र, सर्वप्रभुत्वसम्पन्न और स्वशासित। इन्हीं आर्य प्रान्तों के वन-बीहड़ों में रहती थीं अनार्य जातियाँ। आर्य जनता के सुखी, सुविधासम्पन्न और समृद्ध जीवनयापन से ईर्ष्यालु होकर अनार्य जातियों ने एक वाहिनी तैयार कर ली और लोगों को परेशान करने लगे।

उनके उत्पादन बढ़ने लगे और इधर आर्य-प्रान्तों की सेनायें नर्वस हो उठीं। अनार्य जातियाँ जब दूसरे राज्यों में भाग जातीं तो वे हाथ मलकर देखते रह जाते और उन दस्युओं का उत्पीड़न चक्र वहाँ चलने लगता। वे भी इसी तरह परेशान हो जाते। आखिर सब हार, थककर पहुँचे ऋषि शौनक के आश्रम में। पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, ईशान आदि प्रान्तों के नरेशों से ऋषिवर के चरणों में प्रणाम किया और अपनी समस्या सामने रखी तथा विजय का आशीर्वाद माँगा तो शौनक ने कहा—'आर्यजन, विजय आशीर्वादों से नहीं शक्ति और सामर्थ्य से मिलती है। तुम शक्तिवान बनो और बल प्राप्त करो।'

'शक्ति तो हमारे पास कम नहीं। हम दस्युओं से निर्बल नहीं हैं, फिर भी हमें पराजय क्यों भोगनी पड़ती है ? पूर्व देश के नरेश ने कहा।

"शायद तुम्हारा संकेत बाहुबल की ओर है परन्तु वही पर्याप्त नहीं है। इससे भी बड़ी और एक शक्ति है।"

"तो पूज्यपाद उस बल से भी अधिक शक्ति हमारी सैनिक क्षमता में है। हमारे पास सैनिकों की कमी नहीं।" पश्चिम प्रान्त के राजा का कहना था।

"सैन्य शक्ति भी अपर्याप्त है उस शक्ति के अभाव में।"

"शस्त्रों से ही सेना की सामर्थ्य बढ़ती है। उससे भी हम प्रचुर सम्पन्न है।" दक्षिण नरेश बोले।

"शस्त्र बल से भी महान् शक्ति है एक और जो मेरा आशय है।"—ऋषि शौनक ने कहा।

सम्भवतया आपका आशय धन बल से है ईशान अधिपति ने कहा—"नहीं आर्य। शरीर, सेना, शस्त्र और 'धनबल' से भी अधिक समर्थ एक और शक्ति है" उपस्थित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नरेशों की मुख मुद्रा पर तैरती आतुरता को पढ़ते हुए ऋषि ने कहा—"एकता का बल। संघ शक्ति की सामर्थ्य।"

"यह बल किस प्रकार अर्जित किया जाय" आर्य नरेशों ने जिज्ञासावश पूछा तो ऋषि बोले—"इस अर्जन का पहला सूत्र है-'संगच्छध्वम्'—एक साथ मिलकर चलो। तुम लोग अलग-अलग दस्युओं के आक्रमण का सामना करते हो इसी से वे लोग तुम पर भारी पड़ते हैं। दूसरा सूत्र है—'संवदध्वम्' एक स्वर में बोलो।" दस्युओं के सम्बन्ध में अलग-अलग मत व्यक्त करना उनके हौसले को बढ़ाना है इसलिए मिलकर एक निश्चय करो—**"संवो मनांसि जानताम्"**—एक निर्णय लो और एकजुट होकर लड़ो तो विजय तुम्हारे हाथ है। यही तीसरा और अन्तिम सूत्र है।

ऋषि की प्रसाद वाणी से अपनी त्रुटियों का बोध प्राप्त कर समस्त नरेश वहाँ से चले और उन्होंने एकमत होकर योजना बनायी, उस पर अपनी सहमति व्यक्त की, स्वीकृति दी और समर भूमि में डट गये। जब संगठित होकर आगे आये और समस्त दस्युओं, अनार्यों को उनसे लोहा लेना पड़ा तो आत्म-समर्पण करते ही बना।

मनसा, वाचा और कर्मणा, एकता—मिलकर सोचने, एक स्वर में बोलने और एक साथ चलने की त्रिविध योजना-संघ साधना ही महान् लक्ष्यों को प्राप्त करने का अभियान, अनुष्ठान है, जिसे कोई भी सम्पन्न कर विजेता बन सकता है, जब भी कभी राष्ट्र या संस्कृति पर कोई संकट आया है, संघ शक्ति ने उससे मोर्चा लिया व उसे निरस्त किया है। आने वाले समय में भी यही शक्ति मानवता को विभीषिका से उबारेगी।

हम सब संगठन सूत्र में आबद्ध हों

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जनाना उपासते।।

—ऋग्वेद १०।१९१।२)

"हे मनुष्यो साथ-साथ मिलकर चलो, मिलकर बोलो, तुम्हारी मानसिक भावनायें समान हों, जैसे पहले देवता समान ज्ञान रखकर कार्य करते थे (वैसे ही तुम भी करो)।

उक्त वेद मंत्र में मानव जाति के लिए संगठनबद्ध रहने का आदेश दिया गया है। वैदिक ऋचाओं में कई स्थानों पर परस्पर संगठनबद्ध रहने पर जोर दिया गया है। इससे सिद्ध होता है कि आज से बहुत समय पूर्व वैदिककाल में ही आर्य जाति ने संगठन का महत्व जान लिया था। यही कारण था कि उनके संगठनबद्ध रहने से देश उन्नति, विकास की ओर बढ़ रहा था। धनधान्य, सम्पन्नता, सुख, शान्ति, ज्ञानविज्ञान, कला-कौशल आदि में भारतीय जनता बढ़ी-चढ़ी थी। वैदिक काल के उस स्वर्ण युग की कल्पना करते ही आज भी हमारे हृदयों में नवीन प्रेरणा जाग उठती है। यह सब उस समय आर्य जाति के संगठन का ही परिणाम था।

मानव जाति के लिए भी संगठनबद्ध रहना आवश्यक है क्योंकि संगठन में अनन्त बल, सामर्थ्य, परिश्रम आदि निहित है। उदाहरणार्थ, हिन्दू जाति के इतिहास को देखने से पता चलता है, जब तक पूर्वकाल में यह संगठनबद्ध रही तो आश्चर्यजनक कार्य किए। विश्व में अपना प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ। ज्ञान-विज्ञान में देश सबसे बढ़ा-चढ़ा रहा। सम्पन्नता, ऐश्वर्य, शक्ति, सामर्थ्य आदि में भी किसी प्रकार कम न था।

खेद है कि कालान्तर में वही हिन्दू जाति अपनी फूट के कारण निरन्तर पतन की ओर चली गई और उसे दुनिया की क्रूरता, अत्याचार और आक्रमणों का शिकार होना पड़ा। इसकी संस्कृति एवं वैभव सम्पन्नता, ज्ञान-विज्ञान आदि को आक्रमणकारियों ने कुचल दिया। विदेशी आक्रमणकारियों ने हिन्दू जाति पर इसके असंगठन के कारण जो अत्याचार किये उसकी याद में रोमांच हो उठता है। उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर तातारियों के हमले, महमूद गजनवी और गौरी के आक्रमण, नादिरशाह द्वारा दिल्ली का कत्लेआम, मुगल शासन का दमन चक्र और बर्बरतापूर्ण व्यवहार ने हिन्दू संस्कृति, धर्म, परम्पराओं को कुचल दिया। ब्रिटिश शासन की तानाशाही, स्वराज्य माँग के बदले में जेल, फाँसी और मशीनगनों की बौछार। इन सबका मूल कारण भारतीयों की संगठन शून्यता ही थी, जिसका अन्त अभी तक भी नहीं हो पाया है।

आज भी भारतीय जनता तरह-तरह के मतभेद, जातिभेद, साम्प्रदायिकता, अन्ध परम्पराओं, विभिन्न दलों, फिरकों आदि में छिन्न-भिन्न हो रही है। इन दीवारों ने ४० करोड़ भारतीय जनता की महान शक्ति-सामर्थ्य एवं पुरुषार्थ को छिन्न-भिन्न कर दिया है। यदि यही स्थिति चलती रही तो इस विज्ञान के युग में भारत पिछड़ा हुआ ही रह जायगा।

यदि हमें पुनः उस प्राचीन गौरव को प्राप्त करना है, अपने कदम, प्रगति और विकास की ओर अग्रसर करने हैं। इस विज्ञान के युग में अपना अस्तित्व कायम रखना है तो ४० करोड़ भारतीय जनता को संगठनबद्ध होकर चलना होगा। संगठन की शक्ति महान होती है। अकेला तिनका आसानी से तोड़ा जा सकता है किन्तु अनेक तिनकों से बटा हुआ रस्सा नहीं तोड़ा जा सकता। शरीर को सुव्यवस्थित रूप में चलाने के लिए इसके प्रत्येक अंग का सम्यक् कार्य करना आवश्यक है। यदि इसके अंगों का सहयोग और तालमेल बिगड़ जाय तो शरीर का अस्तित्व नहीं रह सकता। ठीक यही बात किसी जाति, समाज, राष्ट्र पर लागू होती है। समस्त राष्ट्र, जाति एक शरीर होती है। इसके विभिन्न अंग सम्प्रदाय, वर्ण जाति आदि का एक संगठनबद्ध जीवन भी होना चाहिए। अर्थात् अनेकता में भी एकता होना आवश्यक है, तभी जाकर इसका बल; सामर्थ्य एवं प्रतिभा का उपयोग प्रगति, उत्थान एवं विकास के लिए हो सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संगठन के इस महान् रहस्य को जानकर ही ऋषियों के हृदय में वेद भगवान् का पवित्र आदेश झंकृत हुआ—"हे मनुष्यो ! साथ-साथ चलो, तुम्हारे मनों के भाव एक हों। जैसे पहले देवता सम्यक् ज्ञान रखकर कार्य करते थे वैसे तुम भी करो" निश्चय ही वेद भगवान का यह आदेश हमारे लिए संगठनबद्ध रहने के लिए है। साथ-साथ चलने में कितनी शक्ति है, यह अनुमान तो किसी विशाल सेना या किसी विशाल जुलूस को देखकर किया जा सकता है। यदि साथ-साथ चलकर भी प्रत्येक मनुष्य की मनोभावना अलग-अलग हों, उद्देश्य अलग-अलग हों, तो भी वह संगठन किसी काम का नहीं। अतः साथ-साथ चलने के साथ मनोभावनायें, उद्देश्य, विचार एक होने चाहिए। जिस प्रकार पूर्व समय में देवताओं ने अपने संगठन और एक उद्देश्य से महान् शक्तिशाली असुरों को परास्त किया और स्वर्गीय जीवन प्राप्त किया।

वर्तमान समय में भारतीय जाति के लिए संगठनबद्धता की महान् आवश्यकता है। कुछ समय पूर्व स्वतन्त्र हुए इस महान् राष्ट्र की शक्तियाँ अभी प्रायः बिखरी हुई हैं। विचार भावनायें पृथक्-पृथक् हैं जिनके फलस्वरूप, राजनैतिक आन्दोलन, प्रान्तीयता, भाषा आन्दोलन, साम्प्रदायिकता, जातिवाद आदि का दूषित वातावरण फैल रहा है। यह हमारी प्रगति, विकास, उत्थान एवं सुख-शान्ति के लिए भारी विघ्न है, जो हमें ही खाये जा रहा है। अतः सभी देशवासियों को इसके रहस्य को जानकर परस्पर संगठन, सामूहिकता, एकता को अपनाना चाहिए। उक्त दूषित तत्वों से बचकर संगठन के लिए आवश्यक तत्वों को प्रोत्साहन देना चाहिए। इसी में हमारी उन्नति, प्रगति सम्भव है। "संघे शक्ति कलौयुगे" में संगठन का महान् रहस्य छिपा हुआ है। आज जिसका संगठन है वही शक्तिशाली है। संगठन रहित कितनी भी शक्ति-सम्पन्नता, बल-वैभव क्यों न हो उसका आज कोई मूल्य नहीं है।

संघ शक्ति सृजन प्रयोजनों के निमित्त लगे

क्रिया के माध्यम से आदतों का आरम्भ और परिपाक होता है। ज्ञान को कर्म के सहयोग की अपेक्षा रहती है। अभ्यास से स्वभाव बनता है। सहकारिता की फसल उगाने के लिए तदनुरूप क्रिया-कलापों को अपनाने और अनवरत् संचालित किये रहने की आवश्यकता पड़ती है।

आर्थिक आधार पर तो लोग सहज संगठित हो जाते हैं। कारखानों में भर्ती होने के लिए कर्मचारी दौड़े आते हैं। किसानों को जिन दिनों मजदूरी की आवश्यकता पड़ती है, तब वे भी जहाँ-तहाँ खोज लेते हैं। शहरों में लोग देहातों से इसी आधार पर दौड़-दौड़ कर पहुँचते हैं कि वहाँ काम तलाशने में सुविधा रहती है।

चोर, उचक्के, जुआरी और व्यभिचारी भी आपस में मिल-जुलकर एक संगठन बना लेते हैं और मिल-जुलकर ग्राहक फँसाते और धंधा चलाते हैं। ठगों और डाकुओं को भी गिरोहबन्दी करने पर ही सफलता मिलती है। यूनियनों, पार्टियों के पीछे भी आर्थिक उद्देश्य ही रहते हैं। सरकारी सहकारिता विभाग की योजनाएँ आर्थिक लाभ पर ही निर्धारित होती हैं। वे चलती और बढ़ती भी तभी तक हैं, जब तक कि लाभांश हस्तगत होता रहता है। घाटा पड़ने पर वे भी टूटने-बिखरने लगती हैं। सामान्य प्रचलन इसी सहकारिता की ओर आकर्षित करता और बढ़ाता है।

इन पंक्तियों में चर्चा सदुद्देश्यों के लिए सज्जनों के संगठन के सम्बन्ध में हो रही है। सदुद्देश्यों से तात्पर्य है—सद्प्रवृत्तियों का संवर्धन और दुष्प्रवृत्तियों का उन्मूलन। इस स्तर के असंख्यों कार्य अपने ही समीपवर्ती क्षेत्र में खोजे जा सकते हैं। समाज की पिछड़ी हुई स्थिति के लिए मात्र आर्थिक तंगी ही कारण नहीं है। नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक कारण भी अनेकों ऐसे हैं, जो दुर्दशा के लिए उत्तरदायी हैं। सच तो यह है कि दुर्गुणों के कारण ही व्यक्ति अपनी क्षमताओं को अविकसित बने रहने देता है और वैसा कुछ कर नहीं पाता, जो प्रगति के लिए आवश्यक है। अनगढ़, असंस्कृत और असभ्य लोग आर्थिक दृष्टि से कहीं अधिक घाटे में रहते हैं। दरिद्रता वस्तुतः असभ्यता की प्रतिक्रिया मात्र है। आलसी, प्रमादी, दुर्गुणी, दुर्व्यसनी या तो उचित मात्रा में कमा ही नहीं पाते और यदि किसी प्रकार कुछ कमा भी लिया तो नशेबाजी, फिजूलखर्ची जैसी आदतों में उसे देखते-देखते गँवा देते हैं। अपने देश में अन्ध-विश्वासों, कुरीतियों, दुर्व्यसनों की इतनी भरमार है कि सामान्य स्तर की कमाई का एक बहुत बड़ा अंश उन्हीं में खप जाता है और परिश्रमशील दीखने वाले भी आर्थिक तंगी से पीछा छुड़ा नहीं पाते।

गरीबी प्रत्यक्ष है और अनगढ़ता परोक्ष। परोक्ष से ही प्रत्यक्ष की उत्पत्ति होती है। गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता की वह पूँजी है, जिसके आधार पर सर्वतोमुखी प्रगति का आधार विनिर्मित एवं विकसित होता है। तथ्य को समझते हुए अर्थ व्यवस्था की बात सोचने की तरह ही संव्याप्त अवांछनीयता से जूझने का भी प्रयत्न होना चाहिए। साधन-सम्पदा बढ़ाने की तरह ही सत्प्रवृत्तियों की अभिवृद्धि के लिए भी प्रयत्नशील होना चाहिए। यही वह अति महत्वपूर्ण पक्ष है, जिसकी उपेक्षा होते रहने के कारण पिछड़ापन पीछा छोड़ता ही नहीं।

सज्जनों को संगठित करने के लिए, उन्हें ऐसे कार्य अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, जो कर्ता और उपभोक्ता दोनों को ही अपने-अपने स्तर के लाभों से लाभान्वित कर सकें।

अपने देश में एक तिहाई से भी कम लोग शिक्षित हैं। शेष दो तिहाई को अशिक्षा ही घेरे है। वास्तविक प्रगति के मूल में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। सेवा क्षेत्र में प्राथमिकता इसी को दी जानी चाहिए। परिस्थिति के अनुसार वयस्क और अवयस्क दोनों ही वर्गों के नर-नारियों के लिए ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए, जिससे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निरक्षरता का उन्मूलन हो सके। इसके लिए बाल-पाठशालाओं की तरह ही प्रौढ़-पाठशालाएँ चलनी चाहिए। अशिक्षितों की अरुचि को शिक्षा प्राप्त करने के लाभों से लाभान्वित होने के लिए उनमें उत्सुकता बढ़ानी चाहिए, साथ ही ऐसे लोग खोजने चाहिए, जो खाली समय में विद्या ऋण चुकाने के लिए समय देते रहने की व्रतशीलता ग्रहण कर सकें। वर्तमान शिक्षितों को यह दायित्व अपने कंधे पर उठाना चाहिए कि उनमें से प्रत्येक दो अशिक्षितों को शिक्षित बनाने का संकल्प ले और उसे पूरा कर दिखाये।

इसी से जुड़ा हुआ दूसरा कदम है—साक्षरों को ऐसा साहित्य निरन्तर उपलब्ध कराते रहना, जो चिन्तन एवं प्रचलन में घुसी हुई प्रतिगामिता हटा सके और उसके स्थान पर नये सिरे से प्रगतिशीलता की स्थापना कर सके। इसके लिए अनुकूल साहित्य खोजने एवं नये सिरे से लिखने, प्रकाशित करने की आवश्यकता है। शिक्षा का महत्व विदित न होने से लोग इस मद में कुछ खर्च नहीं करना चाहते। पुस्तकें खरीदने के लिए भी नहीं। इस उपेक्षा को देखते हुए हर गाँव में चल पुस्तकालयों की आवश्यकता है, जिसमें प्रगतिशीलता के सभी पक्षों का उत्साह उत्पन्न करने वाला साहित्य हो। उसे घर-घर पहुँचाने का प्रबन्ध किया जाय। पढ़े लोग पढ़ें और बिना पढ़े सुनें। यह व्यवस्था आरंभ में तो निःशुल्क रूप से चलानी पड़ेगी। वह समय बाद में आयेगा, जब लोग घर की आवश्यक वस्तुओं में ही एक आधार घरेलू पुस्तकालय को भी समझेंगे और उसे जुटाने का प्रयत्न करेंगे।

शिक्षा के बाद दूसरा आधार है—सफाई। दरिद्रता से भी अधिक घातक है—गन्दगी। कुरूपता और असभ्यता भी उसे कह सकते हैं। अपना घर, कपड़े, नाली, गली, कुएँ आदि को हर कहीं गन्दगी से घिरा और भरा हुआ देखा जा सकता है। सफाई कर्मचारियों की नियुक्ति की व्यवस्था अपने गाँवों में अभी बन नहीं सकती। बन भी जाय, तो सर्वतोमुखी सफाई की तरह उसे जन-जन की आदत में सम्मिलित करना होगा और शरीर, वस्त्र, भोजन, निवास आदि सभी पक्षों में स्वच्छता रखे जाने का सिद्धान्तस्वरूप समझाते हुए आदतों में उतारना पड़ेगा। इसके लिए जन-सम्पर्क साधने और जिनमें उत्साह दीखे, उन्हें साथ लेकर सफाई अभियान पर निकलने की आवश्यकता पड़ेगी।

ठाली समय में कुटीर उद्योगों का प्रचलन चलाने की एक नई प्रक्रिया आरम्भ करने की भी इन्हीं दिनों आवश्यकता है। अधिकांश लोगों का अधिकांश समय खाली रहता है। इसमें उन्हें कुछ कुटीर उद्योग स्तर के कार्य करने के लिए उत्साह पैदा करने और साधन जुटाने के लिए इन्हीं दिनों एक व्यापक परम्परा चलाये जाने की आवश्यकता है।

सामाजिक दृष्टि से अपने समाज में कितनी ही कुरीतियाँ बुरी तरह घेरा डाले बैठी हैं। १—जातिगत ऊँच-नीच २—भिक्षा व्यवसाय, ३—मृतक भोज की दावतें, ४—भिक्षा व्यवसाय का परिपोषण, ५—नशेबाजी ६—अधिक बच्चों का प्रजनन, ७—धूमधाम वाली, जेवर-दहेज वाली बड़ी शादियाँ, नर-नारी के बीच बरता जाने वाला भेद-भाव। इन्हें एक प्रकार का चक्रव्यूह समझा जाना चाहिए। अभिमन्यु को सात परिधियों वाले चक्रव्यूह में फँसाकर महाभारत काल में मारा गया था। अपना समाज भी उपरोक्त सात बन्धनों में जकड़ा हुआ है। मुश्क बाँधे कैदी की तरह छटपटाता है। इन लौह-बन्धनों को काटने और उन विपत्तियों से छुटकारा पाने की आवश्यकता है, जिनने अपने समाज और देश को बुरी तरह जकड़ रखा है।

स्थापनाओं में विद्या मन्दिरों की तरह व्यायामशालाएँ भी हर क्षेत्र में बनाने की आवश्यकता है। स्वयंसेवी नर-नारियों के ऐसे संगठन खड़े रहने की आवश्यकता है, जो सत्प्रवृत्तियों को सींचने और उन्हें बोधिवृक्ष की तरह सुविकसित करने की भूमिका बना सकें।

सत्प्रवृत्ति संवर्धकों का एक ऐसा वर्ग विकसित होने की आवश्यकता है, जो प्राचीनकाल के साधु, ब्राह्मण, वानप्रस्थ, परिव्राजक वर्ग की सामयिक आवश्यकता पूरी कर सके। नवजीवन का घर-घर अलख जगाने के लिए व्रतशीलों की तरह निरन्तर जनसम्पर्क में निरत रह सके। किसी समय इस प्रकार के लोकसेवी बड़ी संख्या में थे, इसलिए यह देश संसार भर में मुकुटमणि समझा जाता था। चक्रवर्ती शासक और स्वर्ग सम्पदाओं का स्वामी कहलाता था। घर-घर में सुख-सम्पदाओं के भण्डार थे और इन्हीं परिवारों में, नवरत्न उपजते रहते थे। समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, बहादुरी की सदाशयता से भरे-पूरे मनुष्य धरती के देवता कहलाते थे। अब उस प्रचलन के उलट जाने से विषमताओं और विपन्नताओं का सर्वत्र दौर है। इन उलटी परिस्थितियों को उलटकर सीधा करना है। यह कार्य भावनाशील, चरित्रवान, सेवाभावी सज्जनों का है। उन्हीं को ढूँढ़ने, निखारने और संगठित करने की इन दिनों अतीव आवश्यकता है। इस प्रयास में उदारचेताओं में आगे कदम बढ़ाने का उत्साह उमड़े, तो कोई कारण नहीं कि प्रस्तुत गई-गुजरी स्थिति से उबरकर हम समुन्नत परिस्थितियों के अधिपति न बन सकें।

धन, बल, विद्या, बुद्धि, कौशल आदि की शक्ति अपने स्थान पर प्रभावकारी हो सकती है, पर स्मरण रहे कि मानवी चेतना, क्षमता, प्रतिभा और प्रगति को समुन्नत बनाने में संघ शक्ति को विकसित करें।

अनीति और अवांछनीयता का दौर सचमुच ही इन दिनों बहुत बढ़ा-चढ़ा है। उनके द्वारा अनर्थ भी बहुत होते हैं। इसके लिए जिस समर्थ प्रतिरोध की आवश्यकता है, वह सज्जनों के संगठन से ही विकसित हो सकता है, अन्यथा निर्लज्ज दुष्ट प्रथम आक्रमण करने पर मिलने वाले लाभ को ही सब कुछ समझेंगे और अपनी करतूतों से बाज न आयेंगे। सज्जनों की संघशक्ति ही उनके हौंसले पस्त कर सकती है और उनके उठते हुए हाथों को मरोड़ सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रज्ञा मण्डलों और महिला मण्डलों के माध्यम से सेवाभावी उदारचेता नर-नारियों के छोटे-छोटे संगठन खड़े किये गये हैं। इनमें ५ सदस्यों से कार्यारम्भ होता है और अधिक से अधिक पच्चीस पर पहुँचकर उनकी सीमा पूर्ण हो जाती है। इसके बाद उनमें से प्रत्येक अपने-अपने क्रम को एक से पाँच, पाँच से पच्चीस के क्रम से बढ़ाता हुआ चक्रवृद्धि ब्याज की गति से अपना गुणनफल बढ़ाता जाता है। यदि यह क्रम इसी क्रम से अग्रगामी होता रहे, तो उपरोक्त संगठन की कुछ ही पीढ़ियाँ समस्त संसार तक अपना संगठन और अग्रगमन जारी रखते हुए कायाकल्प जैसी स्थिति उत्पन्न कर सकती हैं।

हम राष्ट्र निर्माण की दिशा में बढ़ चलें

जिस प्रकार किसी शान्त जलाशय में पत्थर फेंकने पर उसमें जल की कई तरंगें, लहरें पैदा होकर जलाशय की शान्ति, गम्भीरता, समता में हलचल पैदा हो जाती है, उसकी स्थिरता भंग हो जाती है। इसी प्रकार जैसे गर्मियों में तापक्रम के हेर-फेर से वायुमण्डल का वातावरण कहीं हल्का, कहीं भारी होकर आँधी, तूफान, बवण्डर, चक्रवात आदि चलने लगते हैं और वायुमण्डल की एकरसता भंग हो जाती है। ठीक यही नियम मानव समाज के लिए भी है। जब मानव समाज में मतभेद, ऊँच-नीच, स्वार्थवृत्ति, परस्पर अहंभावना पैदा हो जाती है तो आपस में संघर्ष, लड़ाई-झगड़े, प्रतिहिंसा-प्रतिशोध आदि का वातावरण पैदा हो जाता है।

आज मानव समाज में तरह-तरह के मतभेद, झगड़े संघर्ष आदि का विषाक्त वातावरण फैल रहा है। सम्प्रदाय, परिवार, जाति, समाज, प्रदेश आदि में परस्पर कुछ न कुछ रूप में संघर्ष का दूषित वातावरण देखा जा सकता है। समाज में परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, जलन, प्रतिशोध आदि के बढ़ते हुए वातावरण के फलस्वरूप हिंसा, शोषण, परपीड़न, लूट, डकैती, धोखादेही, घात, परस्पर अविश्वास एवं असन्तोष की घटनायें प्रायः घटती रहती हैं।

आज हमारे समाज की समतुल्यता भंग हो गई है। हमारे परिवार, समाज एवं राष्ट्र में ऊँच-नीच, योग्य-अयोग्य, छोटा-बड़ा, अमीर-गरीब, जाति-पाँति, छूत-अछूत आदि की परस्पर मतभेदपरक दीवारें इस तरह खिंच गई हैं कि हमारी एकता एवं सामूहिकता को विशृंखलित कर दिया है। इन मतभेद की भ्रान्त धारणाओं ने हमारे मस्तिष्क एवं दिलों को इतना संकुचित कर दिया है कि इन्हें हटाना आज काफी मुश्किल हो रहा है।

जब कभी किसी भी राष्ट्र एवं समाज की आन्तरिक समतुल्यता नष्ट हो जाती है तो वहाँ संघर्ष, हलचल, प्रतिक्रिया आदि का प्रादुर्भाव होता है। यही कारण है कि आज बढ़ते हुए राजनैतिक आन्दोलन छूत-अछूत, संघर्ष, साम्प्रदायिक झगड़े, परिवारिक कलह, भाषा आन्दोलन, प्रान्तवाद, मालिक-मजदूर संघर्ष आदि हमारे देश में कुछ कम मात्रा में व्याप्त नहीं हैं। इनका प्रमुख कारण हमारा वास्तविक सत्य को भूलकर गलत धारणाओं को अपनाना है। इन गलत धारणाओं के मूल में हमारी स्वार्थवृत्ति, संकीर्णता, अदूरदर्शिता, अहंकार, पद, प्रतिष्ठा, ख्याति का मोह एवं अविवेक ही है। हमारी यह कमजोरी हमें ही खाये जा रही है। ४० करोड़ जनसंख्या की सामूहिक शक्ति कितनी महान् होती है किन्तु खेद है कि आज एक ही घर में रहते हुए राष्ट्रीय एकता को भूलकर हम राजनैतिक दलों की गलत भूमिका, साम्प्रदायिकता, जातीयता, प्रान्तीयता, भाषावाद, ऊँच-नीच आदि की भेद दीवारों में घिरकर अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग अलाप रहे हैं। यह भारत जैसे महान् राष्ट्र के लिए एक घातक एवं खेदजनक परिस्थिति है।

आज विशाल भारत के निर्माण का भार भारत देशवासियों के कन्धों पर है। समतुल्यता को भंग करने वाले दूषित तत्वों को हटाना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है। समाज में परस्पर मतभेद, संघर्ष, प्रतिहिंसा, वैमनस्यता आदि को मिटाने एवं राष्ट्रीयं एकता को कायम रखने के लिए हमें ऋषियों द्वारा प्रणीत पूर्व संस्कृति एवं धर्म का अवलम्बन करना ही श्रेयस्कर होगा, जिसमें न केवल भारतीयों के लिए ही वरन् समस्त पृथ्वीवासियों को एक सूत्र में बाँधने का महान् आदर्श निहित है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का नारा मानव मात्र को एक परिवार सूत्र में बँधे हुए देखने वाले मनीषियों की हृदय तन्त्रियों में से ही झंकृत हुआ। जहाँ भेदभाव, परस्पर संघर्ष, प्रतिहिंसा, वैमनस्य, लड़ाई-झगड़े आदि के लिए स्थान नहीं है। हमारे पूर्वज ऋषियों ने ईश्वरीय दिव्य विधान को आत्मसात करके मानव समाज को सन्देश दिया "यह सृष्टि उस परमपिता परमात्मा की है। हम सब उसके बच्चे हैं और परस्पर भाई-भाई हैं। पिता के सृष्टि रूप घर में हम सभी का समान अधिकार है"। इस सिद्धान्त को अनुभव ही नहीं वरन् व्यावहारिक क्षेत्र में भी स्थान दिया गया था।

आज ऋषियों के उस व्यापक दृष्टिकोण एवं समानता की उच्च भावनाओं को फिर से हमें अपनाना होगा। इसके लिए परस्पर अपने-अपने स्वार्थों को एक ओर रख देना होगा। "समानता" एक सूत्रता के महान् रहस्य को समझना होगा।

जो केवल अपना ही स्वार्थ लेकर चलता है, वह स्वयं तथा समाज दोनों का ही अहित करता है। जो व्यक्ति समाज को पीछे छोड़कर केवल अपना ही हित सम्पादन करना चाहता है, वह सब से बड़ी भूल करता है। समाज से दूर रहकर किसी भी क्षेत्र में पूर्ण सफलता नहीं मिल सकती। समाज और व्यक्ति का परस्पर एक-दूसरे के साथ-साथ चलने में ही वास्तविक लाभ है। यदि कोई व्यक्ति समाज से दूर हटकर स्वार्थपूर्ण भावनाओं से अपना ही मोक्ष, सिद्धि, धन प्राप्ति आदि चाहता है तो वह उन कृपणों की तरह ही हेय एवं घृणित है, जो अपने ही लिए रात-दिन संग्रह करने में लगे हुए हैं। इसलिए स्वार्थों की विस्तृत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूपरेखा बना लेनी चाहिए। जो स्वयं ही जीना चाहता है और दूसरों के जीवन की परख नहीं करते, वह राक्षस ही हैं। जो स्वयं जीकर अपने साथ-साथ दूसरों के जीवन से भी प्रेम करते हैं, वे सच्चे मनुष्य हैं और जो केवल दूसरों के लिए ही जीते हैं, वे सचमुच देवता ही हैं। वे परमार्थी व्यक्ति भगवान की ही साकार प्रतिमा तुल्य हैं।

अपने स्वार्थों को हटाने के साथ विषम दृष्टि को भी हटाना आवश्यक है। कोई भी छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच नहीं है। समानता के महान् सत्य की अनुभूति ऋषियों ने बहुत पहले ही प्राप्त की थी। यही कारण था कि उन्होंने मानव में ही नहीं वरन् प्राणी मात्र में अपनी आत्मीयता का अनुभव किया था। उसी को अब हमें अनुभव एवं व्यवहार में लाना है।

प्रकृति भेद, गुण, परमाणुओं की बनावट, स्वभाव आदि का परस्पर कुछ भेद हो सकता है किन्तु मूल में तो सब ही समान हैं। अतः ब्रह्म भेद होते हुए भी परस्पर स्नेह एवं समता, अनैतिकता में भी एकता ढूँढ़ने की आवश्यकता है।

अपनी संकीर्ण भावनाओं एवं स्वार्थपूर्ण संघर्षात्मक प्रवृत्तियों आदि को दूर हटाना होगा ताकि हम में परस्पर खिंची हुई भेद की दीवारें तोड़ी जा सकें। हमारी सामूहिक शक्ति पुनः जाग्रत हो उठे। मानव-मानव को भाई के नाते गले लगाना होगा। समाज में समतुल्यता कायम करनी होगी। समाज को साथ लेकर ही हम प्रगति, उत्थान, मोक्ष आदि का प्रयत्न करें। राष्ट्रीय संगठन की सत्प्रवृत्ति को कार्यान्वित करने से ही यह **"स्वर्गादपि गरीयसी"** यह भारत भूमि पुनः अपने महान् गौरव को प्राप्त कर सकेगी। हम पुनः एक सूत्र में बँधकर राष्ट्र के महान् भविष्य का निर्माण करें।

विग्रहों का कुचक्र और उसका निराकरण

वैयक्तिक कारणों से आये दिन होते रहने वाले लड़ाई-झगड़ों से लेकर समाजों और वर्गों के मध्य चलने वाले संघर्ष क्यों उभरते हैं ? आक्रमण-प्रत्याक्रमणों का कुचक्र क्यों गतिशील रहता है ? देश-देशों के बीच युद्ध क्यों होते हैं ? इसके कारणों पर शोधकर्त्ताओं ने मनोविज्ञान को आधारभूत माना है। यों लड़ाइयों के छोटे-मोटे कारण सामयिक भी होते हैं, पर वे ऐसे नहीं होते जो वार्तालाप, समझौता, उदारता अथवा न्याय-निर्णय के आधार पर हल न हो सकते हों। अत्यन्त गम्भीर, कारणों से उत्पन्न होने वाले विग्रहों तक के जब समाधान खोज निकाले जाते हैं तो कोई कारण नहीं है कि तनिक-सी बात पर इतना विग्रह उभरे, जिससे चिरकाल तक वातावरण विक्षुब्ध बना रहे और धन-जन की असाधारण हानि सहन करनी पड़े।

पिछली पीढ़ी के नृतत्ववेत्ता यह मानते रहे हैं कि मनुष्य की डरपोक प्रवृत्ति, किसी प्रतिपक्षी के भयंकर आक्रमण की आशंका से ग्रसित हो जाती है तो अपने ऊपर भयंकर विपत्ति टूटने की कल्पना करने लगती है। डर बढ़ता है। उस काल्पनिक आक्रमण को रोकने के लिए बचाव की रक्षा पंक्ति खड़ी करने के रूप में, प्रतिपक्षी को दुर्बल बनाने की दृष्टि से छोटा आक्रमण किया जाता है। आक्रमण का प्रत्युत्तर प्रत्याक्रमण के रूप में मिलता है। फलतः यह कुचक्र चक्रवृद्धि क्रम से घूमता है और कुछ ही समय में तिल का ताड़ बन जाता है। चिन्गारी भयानक अग्निकाण्ड का रूप धारण कर लेती है।

मनोविज्ञानी एक और भी कारण बताते हैं कि हर मनुष्य में अपनी विशेषता और बलिष्ठता सिद्ध करने की स्वाभाविक महत्वाकांक्षा होती है। उसे पूरा करने का सहज तरीका तो अपनी योग्यता एवं सफलता सिद्ध करने का ही हो सकता है, पर उसके लिए जिस दृढ़ता, तत्परता और कुशलता की आवश्यकता होती है वह जुट नहीं पाती। ऐसी दशा में हानि पहुँचाने की क्षमता प्रदर्शित करने का आतंकवादी तरीका अपनाया जाता है। इसी में शौर्य, पराक्रम समझा जाता है। आक्रमण करके दूसरों को नीचा दिखाना और अपनी सामर्थ्य सिद्ध करना भी लड़ाइयों की तरह ही एक बड़ा कारण होता है। बहाना तो किसी छोटे-मोटे अप्रिय प्रसंग का ही ले लिया जाता है।

अपराधियों की दुष्टताएँ इससे भिन्न हैं, जो चोरी, डकैती, हत्या, बलात्कार की—उद्दण्डता बरतने और मर्यादाएँ तोड़ने के रूप में सामने आती रहती हैं। इनमें अर्थ लोभ एवं द्वेष की प्रधानता रहती है। दुस्साहस का अहंकार भी उसमें जुड़ा रहता है।

नई पीढ़ी के वैज्ञानिक कहते हैं—युद्ध मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं है। स्वभावतः मनुष्य सामाजिक और सहयोगी प्रकृति का है। उसे सुविधा और खुशी चाहिए। युद्ध में आघात-प्रत्याघात से हर दृष्टि से हानि ही हानि उठानी पड़ती है। जीतने वाला भी घाटे में ही रहता है। ऐसी दशा में युद्ध को स्वाभाविक प्रकृति नहीं माना जा सकता है, वह कुसंस्कारों एवं विकृत वातावरण की प्रतिक्रिया ही माना जा सकता है।

अहमन्यता का विकृत रूप उद्दण्डता है, जिसकी ओछी पूर्ति दूसरों का तिरस्कार करके की जा सकती है। झगड़ालू स्वभाव में यही तथ्य काम करता है। यदि मनुष्य को आरम्भ में ही शिष्टता, शालीनता, नम्रता और नागरिकता की शिक्षा दी जाय तो यह आक्रमण की अपेक्षा दूसरों की सहायता करने और बदले में श्रेय-सम्मान पाने की बात सोचेगा। ऐसी दशा में मतभेद और स्वार्थ विपर्यय होते हुए भी ऐसा मार्ग खोज लिया जायगा, जिसमें झंझट कम खड़ा हो और गुत्थी शान्ति से सुलझ जाय।

पक्षपात की मात्रा जितनी बढ़ेगी उतनी ही विग्रह की सम्भावना बढ़ेगी। उचित-अनुचित का भेद कर सकना, तथ्य को ढूँढ़ना और न्याय की माँग को सुन सकना पक्षपात के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवेश में सम्भव ही नहीं हो पाता। अपने वर्ग की अच्छाइयाँ ही दीखती हैं और प्रतिपक्षी की बुराइयाँ ही सामने रहती हैं। अपनों की भूलें और बिरानों के न्याय-तथ्य भी समझ में नहीं आते। तब एकपक्षीय चिन्तन उद्धत बन जाता है। ऐसी दशा में आक्रमण-प्रत्याक्रमण का क्रम चल पड़ने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं रह जाता। यदि तथ्यों को खोज निकालने की दूरदर्शिता अपनाये रहा जाय। कारणभूत तथ्यों को ढूँढ़ निकाला जाय और न्यायोचित समाधान के लिए प्रयास किया जाय तो तीन-चौथाई लड़ाइयाँ सहज ही निरस्त हो सकती हैं। न्याय और औचित्य को अपनाने वाली उदार सद्भावना का विकास हो सके तो युद्ध प्रवृत्ति पर अंकुश लग सकता है। विग्रह की चिन्गारी अन्ततः कितने बड़े दुष्परिणाम प्रस्तुत कर सकती है ? इस पर सही ढंग से विचार किया जा सके तो विग्रह की हानि और समाधान का सत्परिणाम सोचा जां सकेगा। ऐसी दशा में युद्ध से बचे रहने की प्रवृत्ति पनपेगी और शान्ति का पक्ष मजबूत होता चला जायगा।

वर्ग भेद और वर्ग संघर्ष उत्पन्न कराने वाले कारणों को निरस्त न किया जा सके तो कम से कम उनकी उपेक्षा तो होनी ही चाहिए। सहयोग और समीपता के सूत्र तथा आधार ढूँढ़ने के लिए प्रयत्नशील रहा जाना चाहिए। सम्प्रदाय, भाषा, जाति, वर्ग, क्षेत्र, देश आदि के नाम पर उभरने वाली भेद बुद्धि को यथासम्भव हटाने या घटाने का प्रयत्न चलना चाहिए। कम से कम इन मतभेदों को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाने और दूसरों की तुलना में विशिष्ट सिद्ध करने का प्रयत्न तो नहीं ही किया जाय। अपनी मान्यताओं के प्रति निष्ठावान रहना ठीक है, पर उनका प्रदर्शन इस प्रकार नहीं होना चाहिए, जिससे अन्य मान्यताओं का तिरस्कार होता हो। धर्म के नाम पर आये दिन कलह इसीलिए होते हैं कि अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए उसकी विशेषताएँ बताने की अपेक्षा अन्यों की निकृष्टता सिद्ध करके अपना बड़प्पन सिद्ध करने का घटिया तरीका अपनाया जाता है। यही बात जातिगत श्रेष्ठता एवं देश-देश के बीच चलती रहती है। यदि दूसरों का—मनुष्यों और वर्गों का सम्मान करने का ध्यान रखा जाय तो समन्वय-सहिष्णुता एवं सद्भावना के वातावरण में संसार में पाई जाने वाली अनेकों भिन्नताएँ बिना टकराये अपने-अपने ढंग से पनपती रह सकती हैं और एक-दूसरे के लिए सहयोगी एवं पूरक सिद्ध हो सकती हैं। संघर्ष का एक ही केन्द्र-बिन्दु रहे—अनैतिकता—असामाजिकता। इसके लिए वर्ग-संघर्ष को नहीं समूची मानवता के संयुक्त रूप से टूट पड़ने की मुहीम खड़ी की जानी चाहिए।

प्रतिस्पर्धा की प्रवृत्ति यदि स्वाभाविक है तो श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए खेलकूद, स्वास्थ्य सम्वर्धन, शिक्षा, कला आदि में विशेषता, उदार सेवा, साधना जैसे अनेक क्षेत्र ढूँढ़े जा सकते हैं जिनमें लोग अपनी विशेषता बिना दूसरों का तिरस्कार किये या कष्ट पहुँचाये ही सिद्ध कर सकें।

उदार मनोवृत्ति अपनाकर ही चैन से रहने और रहने देने की स्थिति बनती है। उदारता का अर्थ दान-पुण्य ही नहीं है वरन् यह भी है कि संकीर्ण दृष्टि से सोचना बन्द किया जाय और दूसरों की स्थिति में अपने आप को रखकर यह सोचा जाय कि गलतफहमी कहाँ है ? और कहीं पक्षपात अथवा अनौचित्य को प्रश्रय तो नहीं मिल रहा है। न्याय और विवेक की कसौटी अपनाकर वस्तुस्थिति को समझना अधिक अच्छी तरह सम्भव हो सकता है। प्यार और सहयोग पर यदि अपना विश्वास हो तो संघर्ष की कम ही आवश्यकता पड़ेगी। फिर अनिवार्यतः जो झंझट करना भी पड़ेगा उसकी न तो बहुत बुरी प्रतिक्रिया होगी और न द्वेष का कुचक्र देर तक चलता रह सकेगा।

आपसी मतभेदों का कारण और निवारण

प्रसिद्ध समाजशास्त्री एवं विचारक 'जिन्सबर्ग' का कहना है कि "जिस समाज के व्यक्तियों से सामन्जस्य, समन्वय एवं संतुलन बिठाने की जितनी अधिक क्षमता होगी, वह उतना ही प्रगति एवं समुन्नति की ओर बढ़ेगा। इसके विपरीत जिसमें असहयोग एवं विलगाव की भावना जितनी ही अधिक होगी, उसमें उतनी ही अधिक टकराव, विघटन और संघर्ष की परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी तथा प्रगति का मार्ग अवरुद्ध होगा।"

समाज का अर्थ ही है विभिन्न प्रकार की अभिरुचियों, आदतों एवं गुणों से युक्त नर-नारियों, बाल-वृद्धों का समुच्चय। जिसमें शारीरिक बनावट की दृष्टि से एकरूपता होते हुये भी गुण, कर्म, स्वभाव में भारी अन्तर देखा जाता है। यह अन्तर आदि काल से है, हर युग में रहा है तथा भविष्य में भी बना रहेगा। व्यक्तियों में सन्निहित सद्गुणों एवं विशेषताओं से तालमेल बिठाने एवं दुर्गुणों के परिष्कार के लिए प्रयत्नशील रहने से ही यह सामन्जस्य बन पड़ता है और उनके अनुभवों का सच्चे अर्थों में लाभ मिल पाता है।

समाज में रहने वाले सदस्यों के बीच समय-समय पर उठने वाले संघर्षों, मनमुटावों का प्रायः एक ही कारण होता है कि हर व्यक्ति अपने अनुरूप परिस्थितियाँ चाहता है। प्रत्येक व्यक्ति उसके मनोकूल हो तथा विचारों का समर्थक हो—यह एकांगी चिन्तन ही मतभेदों को जन्म देता है तथा अनेकों प्रकार की समस्याओं का कारण बनता है। अधिकांशतः सामाजिक असन्तुलनों में सामंजस्य की अदूरदर्शिता की ही प्रधान भूमिका होती है।

इन दिनों समाज को दो भागों में विभक्त देखा जा सकता है। एक वर्ग में ऐसे व्यक्ति हैं जो अपनी पुरानी मान्यताओं और परम्पराओं में इस तरह जकड़े रहते हैं कि उसके बाहर निकलना नहीं चाहते। दूसरा वर्ग ऐसा है जो अपने को प्रगतिशील और आधुनिक कहता है, जो तथाकथित आधुनिकता और प्रगतिशीलता के नाम पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उचित-अनुचित, लाभदायक-हानिकारक दोनों ही प्रकार की मान्यताओं, परम्पराओं और रीति-रिवाजों को अस्वीकार करने पर तुला होता है। इस असन्तुलन को नई और पुरानी पीढ़ी के संघर्ष के नाम से जाना जाता है।

सामान्यतः युवा वर्ग उस नई पीढ़ी के अन्तर्गत आता है जिसमें से अधिकांश को पुरातन के नाम से ही घृणा है। पुरानी पीढ़ी के अन्तर्गत आने वाले बुजुर्गों से भी बहुलता उनकी ही है, जो पुरातन को ही सब कुछ मानते रहते और नवीनता को किसी कीमत पर अपनाना नहीं चाहते। यह दोनों अतिवादी मान्यतायें इन दिनों सर्वत्र देखी जा सकती हैं।

इसका कारण क्या है ? सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक यह एक प्रश्न विचारणीय है। वृद्धों के मन में बच्चों और युवकों के क्रिया-कलापों के प्रति रोष तथा युवकों के मन में बुजुर्गों के प्रति अनादर और अवज्ञा की वृत्ति बढ़ती जा रही है। उनकी दृष्टि में युवा पीढ़ी 'गुमराह' है, तो युवा वर्ग वृद्धों को 'दकियानूस' मानता है। पीढ़ियों के इस आपसी संघर्ष का प्रधान कारण नये और पुराने युग की जीवन पद्धति में आ जाने वाला अंतर माना जाता है। बदलते समय के अनुसार जीवन पद्धति में परिवर्तन और वैचारिक मतभेद स्वाभाविक है। कठिनाई तब उत्पन्न होती है, जब यह मतभेद संघर्ष का रूप धारण कर लेता है। आज के समय में कुछ ऐसा ही सर्वत्र दिखाई दे रहा है।

अमेरिका के प्रसिद्ध मनोचिकित्सक सेमोर एल. हैलेक ने विभिन्न परीक्षणों के उपरान्त निष्कर्ष निकाला कि "अधेड़ उम्र के व्यक्तियों के मानसिक रोगों का मुख्य कारण युवा वर्ग के प्रति असन्तोष और रोष है। अपने जीवन के अनुभवों का तिरस्कार और अनादर होते देख वे मन ही मन क्षुब्ध रहते हैं। इसी आन्तरिक घुटन के कारण से आगे चलकर वे मानसिक रोगी बन जाते हैं।"

हर उम्र में मनुष्य को सम्मान और स्नेह की आकांक्षा होती है। बचपन, युवावस्था और वृद्धावस्था तीनों में ही वह चाहता है कि उसकी भावनाओं, विचारणाओं का आदर किया जाय। प्रौढ़ व्यक्तियों की यह इच्छा रहती है कि हम अनुभवी हैं अतः नयी पीढ़ी का मार्गदर्शन कर सकेंगे। हमारा जीवनक्रम युवा वर्ग के लिए आदर्श बने। माता-पिता और अभिभावकों का भी सन्तोष इस बात पर निर्भर करता है कि वे बच्चों को अपने अनुरूप ढाल सकें। लेकिन बच्चे अक्षरशः उनके अनुरूप नहीं बनते। अभिभावकों के अधिक जोर देने पर बच्चे पुरातन मान्यताओं के विरोधी बन जाते हैं। इसे देखकर अधिकांश बुजुर्गों को यह कहते सुना जा सकता है कि बच्चे हाथ से निकल गये।

ज्यों-ज्यों मनुष्य की उम्र बढ़ती जा रही है, समाज पर उसकी पकड़ ढीली होती जाती है। शारीरिक और मानसिक क्षमता धीरे-धीरे घटती जाती है। फिर भी उनका ज्ञान और अनुभव इतना सशक्त और उपयोगी होता है, जो नई पीढ़ी का मार्गदर्शन कर सकता है। पुरानी पीढ़ी का संचित ज्ञान और अनुभव ही अगली पीढ़ियों के काम आता है। प्राचीनकाल से ही यह मान्यता चली आ रही है कि संकटों के समय बड़े-बूढ़ों से ही राय ली जानी चाहिए। यह माना जाता रहा है कि वे अपने जीवन के अनुभवों के आधार पर दिशा और प्रेरणा दे सकेंगे। योग्यता और प्रतिभा का अपना महत्व है, लेकिन जीवन के कठोर धरातल पर जो अनुभव प्राप्त किये गये उनकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती। मनुष्य जीवन में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं, इस समय जिस सूझ-बूझ, धैर्य और सन्तुलन से काम लिया गया उससे सहज ही प्रेरणा प्राप्त की जा सकती है।

बुजुर्गों में यह मनोवैज्ञानिक भूख होती है कि नई पीढ़ी उन्हें सम्मान और प्रतिष्ठा दे। उन्हें अपनी उम्र और अनुभव पर गर्व होता है। वे चाहते हैं कि उनके जीवन मूल्य उन्हीं के साथ समाप्त न हो जायँ, उनके अनुभवों का लाभ दूसरे भी उठायें। युवा पीढ़ी उनकी इस आकांक्षा को सहज ही पूरा कर सकती है। उन्हें पर्याप्त श्रद्धा और सम्मान देकर उनके जीवन भर के संचित अनुभवों का लाभ उठा सकती है। प्रायः इस मनोवैज्ञानिक तथ्य की उपेक्षा, अवहेलना होती है। युवावर्ग यह भूल जाता है कि वे आज जो कुछ भी हैं अथवा बन सके हैं, उसमें बुजुर्गों के सहयोग का बहुत बड़ा हाथ है। उनका संचित ज्ञान, भावभरा सहयोग और अनेकों प्रकार की अनुकूल परिस्थितियाँ न मिली होतीं तो युवकों का विकास संभव न हो पाता और वे अविकसित, पिछड़ी स्थिति में ही पड़े रहते। इस दृष्टि से भी आवश्यक होता कि बड़े-बुर्जुगों के प्रति श्रद्धा, सद्भाव एवं सम्मान बनाये रखें।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सेमोर हैलेक ने लिखा है कि "जो समाज अपने बुजुर्गों के प्रति सम्मान एवं सद्भाव नहीं रखता, उनकी उपेक्षा, अवमानना करता है, उसकी भावी प्रगति खतरे में है। बुढ़ापे के दुःख को देखकर युवावर्ग के मन में वृद्धावस्था के प्रति भय और आशंका उत्पन्न हो जायेगी। वे अपने अनिश्चित भविष्य की कल्पना मात्र से ही सिहर उठेंगे। अतएव विकसित समाज के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि युवकों की तात्कालिक समस्याओं के साथ वृद्धों की आवश्यकताओं पर भी विचार किया जाय।" दूसरी ओर बुर्जुगों को भी पूर्व मान्यताओं, प्रथाओं, परम्पराओं के प्रति पूर्वाग्रही नहीं होना चाहिए। यह मान्यता भ्रान्तिपूर्ण है कि कोई प्रथा पहले से चली आ रही है, इसलिए उसका पालन आज भी अनिवार्य है। जिसे हमारे पूर्वज मानते चले आये हैं इसलिए हम भी मानें यह नीति गलत है। बुर्जुगों को भी अपने विचारों में समयानुरूप हेर-फेर करना और औचित्यपूर्ण मान्यताओं को ही स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

परिस्थितियों के हेर-फेर से पूर्व प्रचलित मान्यताओं में भारी अन्तर आ जाता है। उनके द्वारा अपनाई गई परम्पराओं, रीति-रिवाजों में से भी कितनी ही ऐसी हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकती हैं, जो आज के युग में सर्वथा अनुपयोगी और हानिकारक हों। ऐसी कुपरम्पराओं को छोड़ने के लिये तैयार रहना चाहिए। युवकों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में तब तक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, जब तक यह पुष्टि न हो जाय कि उनकी गतिविधियाँ एवं विचारधारा अवांछनीय दिशा में जा रही हैं। उन्हें जो बातें बताई एवं समझाई जायँ वे सुझावपरक हों, न कि निर्देशपरक क्योंकि युवावस्था का भी अपना एक स्वाभिमान होता है। चढ़ती आयु के तूफान में आत्मविश्वास एवं आत्मभिमान की भावना अत्यधिक देखी जाती है। सद्भाव, सदाशयता एवं विवेकपूर्ण परामर्श को उनके गले आसानी से उतारा जा सकता है। इसके विपरीत उपयोगी एवं लाभदायक होते हुये भी वे उन सुझावों की अवमानना ही करेंगे, जिसमें उनके स्वाभिमान पर चोट पहुँचती हो।

पीढ़ियों का यह संघर्ष अभिभावकों और उनके बच्चों तक ही सीमित नहीं, बल्कि शिक्षकों और विद्यार्थियों के बीच भी आज ऐसी स्थिति सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। न तो आज अध्यापकों का ऐसा आदर्श स्वरूप है जो विद्यार्थियों को आदर्श जीवन की प्रेरणा दे सके और न शिक्षार्थियों में अध्यापक के प्रति श्रद्धा और सम्मान भाव विद्यमान है। प्राचीनकाल से ही हमारे देश में गुरु और शिष्य का सम्बन्ध अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करता रहा है। शिष्य के चरित्र और व्यक्तित्व निर्माण की समुचित जिम्मेदारी गुरु के कन्धे पर आती थी और शिष्य भी गुरु के प्रति अपने आप को समर्पित कर देता था। आज स्थिति ठीक विपरीत हो गई है। छात्रों द्वारा शिक्षकों की पिटाई, परीक्षा भवन में चाकू के बल पर नकल करना अब कोई कौतूहल का विषय नहीं रहा। अब सफल शिक्षक भी वही माना जाता है, जो विद्यार्थियों को भय वश काबू में रख सके, जिसे विद्यार्थियों के भविष्य बनने या बिगड़ने से कोई मतलब नहीं।

यह स्थिति शिक्षक एवं शिष्य दोनों के गौरव-गरिमा के विरुद्ध है। शिक्षक को यह ध्यान रखना चाहिए कि विद्यार्थी का विकास भलीभाँति किस प्रकार संभव है ? विद्यार्थियों की अनेकों प्रकार की समस्याएँ होती हैं। यदि शिक्षक को विद्यालय की चाहरदीवारी तक सीमित न रह कर, विद्यार्थियों के व्यक्तिगत जीवन में प्रविष्ट कर, उनकी समस्याओं के निवारण में भी रुचि लेनी चाहिए। पुरातन काल की गुरु-शिष्य परम्परा इसी आधार पर अवलम्बित थी। गुरु, शिष्य की प्रत्येक समस्या में गहरी अभिरुचि लेता तथा समाधान के लिए प्रयत्नशील रहता था। फलतः शिक्षार्थी की श्रद्धा उसके प्रति उतनी ही सघन होती जाती थी। आज यह परम्परा लुप्त हो गई है फलतः शिक्षक और विद्यार्थियों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई है।

सामन्जस्य का अभाव नयी, पुरानी पीढ़ियों में ही नहीं, समाज में रहने वाले अधिकांश व्यक्तियों में देखा जाता है। दूसरों के प्रति हमारी अपेक्षायें यह रहती हैं कि सभी हमारे विचारों के अनुकूल हों तथा समर्थन करें। इस एकांगी एवं अविवेकी दृष्टिकोण के कारण ही असंतोष पैदा होता है। सभी व्यक्ति अपने अनुकूल हो जायँ, यह कभी सम्भव नहीं। सभी के अनुकूल स्वयं बन जायँ अर्थात् उनके सद्गुणों एवं विशेषताओं के तालमेल बिठाने की कला आ जाय तो कभी भी निराश न होना पड़े और न ही संघर्ष की स्थिति आने पाये। व्यक्ति, परिवार एवं समाज की शान्ति, प्रगति एवं समुन्नति इस दूरदर्शी नीति के अवलम्बन द्वारा ही सम्भव है।

संगठन तो बनें, पर सज्जनों के ही

समझा जाता है कि संस्थाएँ ही बड़े-बड़े काम कर सकती हैं। उनके पास जन-शक्ति और धन-शक्ति सहज ही जुट जाती है। फलतः वे व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक बड़े काम कर सकती हैं। यह बात एक सीमा तक ही सच है, सर्वांश में नहीं। गहराई में खोजने पर तथ्य कुछ दूसरे तरह के ही सामने आते हैं। बड़ी-बड़ी संस्थाओं के मूल में सूत्र संचालक कुछ ही मनस्वी व्यक्ति रहे हैं। उन्हीं की प्रबल प्रेरणा से संस्थाएँ बनती, काम करती और सफल होती देखी गई हैं। विद्वान एमर्सन ने इस प्रसंग पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—"महान् संस्थाएँ प्रायः उनके मूल में काम करने वाले प्राणवान् व्यक्तियों की विशालकाय छाया भर पाई गई हैं।" जिस प्रकार प्रातः या सायंकाल की छाया मूल व्यक्ति की अपेक्षा कई गुनी लम्बी होती है, उसी प्रकार महान् व्यक्तियों के व्यक्तित्व विशालकाय संस्था के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं।

थियोडोर रूजवेल्ट की ऐसी संस्थाओं में गहरी दिलचस्पी थी, जिन्होंने अमेरिकी सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निबाहीं। वे कहते हैं इन महान् संस्थाओं के मूल में प्रायः एक-एक ही प्राणवान् व्यक्ति की प्रधान भूमिका देखी गई है। अन्य सहयोगियों ने तो अनुकरण और अनुगमन भर किया है।

जार्ज वर्नार्डशा ने संस्थाओं के प्रसंग में चुटकी लेते हुए एक बार कहा था—"आदर्श संस्थाएँ प्रायः तीन आदमियों से मिलकर बनी होती हैं। जिनमें से दो व्यक्ति प्रायः बीमार जैसे होते हैं।"

विद्वान रेनार्ल्ड केरे ने लिखा है—मनुष्यों की बाहरी और भीतरी संरचना में बहुत थोड़ा अन्तर होता है। तो भी उनमें से कितने ही बहुत ऊँची स्थिति तक जा पहुँचते हैं और कितने ही गई-गुजरी स्थिति में पड़े रहते हैं ? इस अन्तर का कारण इतना ही है कि कुछ ने अपनी आन्तरिक ज्योति को पहचाना और उसे प्रज्ज्वलित रखने के लिए घनघोर प्रयत्न किया जबकि दूसरे उससे अनजान बने रहे और उपेक्षा बरतते रहे। हम चाहें तो आत्म-ज्योति को प्रखर रख सकते हैं और उसके प्रकाश में जीवन के हर क्षेत्र को प्रगति के आलोक से भर सकते हैं।

आज व्यक्तियों से कुछ करने और कराने की आशा की जाती है। संगठन को महत्व दिया जाता है और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनकी संयुक्त शक्ति का जो परिणाम निकल सकता है उसे ध्यान में रखते हुए संगठित आन्दोलनों का ढाँचा खड़ा किया जाता है। एकता पर बहुत जोर दिया जाता है और मिल-जुलकर काम करने का महत्व बताया जाता है। इस प्रयास की उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता। अच्छे उद्देश्यों की प्रशंसा ही की जा सकती है। इन प्रयत्नों के साथ एक आरम्भिक कड़ी और जुड़ी रहनी चाहिए कि कर्तृत्व उभारने से पहले व्यक्तित्वों को सही किया जाय, ऊँचा उठाया जाय अन्यथा जिस प्रकार श्रेष्ठता की सम्मिलित शक्ति से सत्प्रयोजन सिद्ध होते हैं, उसी प्रकार दुर्जनों का संगठन विनाश का विस्तार करेगी। एक चोर जो हानि पहुँचाता है। उनका संयुक्त गिरोह बड़े दुस्साहस कर सकता है और बड़े परिमाण में आतंक प्रस्तुत कर सकता है। एकत्रीकरण जिस उद्देश्य के लिए किया गया है, उसे उसी तक सीमित रखा जा सके ऐसा कोई उपाय नहीं है। सज्जन जब मिलते हैं तो मिलन प्रयोजन के अतिरिक्त अन्य प्रकार की सत्प्रवृत्तियों के लिए सोचते और करते हैं। संगठन जैसे श्रेष्ठ कार्य की उपयोगिता तभी है, जब वह सत्प्रयोजनों के लिए हो तथा सज्जनों के एकीकरण का तथ्य भी उससे जुड़ा रखा जाय।

संगठनों के पतन का प्रमुख कारण

सभी जानते हैं कि एकाकी तिनके या धागे की शक्ति नगण्य होती है। वे मिल-जुलकर ही रस्से या कपड़े के रूप में विकसित होते हैं। इसलिए प्रयत्न सभी का यह होता है कि बहुतों के साथ रहकर सामूहिक शक्ति का विकास किया जाय और उससे लाभ उठाया जाय। प्रतिपादन के इस चरण में मतभेद की कोई गुंजायश नहीं है। इसीलिए लोग साथ रहते या औरों को रखते हैं। जुलूस, प्रदर्शन, स्वागत, समारोह आदि में अधिक उपस्थिति से प्रसन्नता होती है। यहाँ तक कि बारात और ब्याह-शादियों तक में अधिक लोगों का जमघट सुहावना लगता है।

संस्थायें इसीलिए बनती हैं, संगठन इसीलिए खड़े होते हैं। सामूहिकता की क्षमता को समझते हुए ही लोग गिरोह बनाते और सेवा के नाम पर संगठन खड़े करते हैं। किन्तु देखा जाता है कि वे अधिक दिन चलते नहीं। आरम्भिक उत्साह पानी के बबूले की तरह उठता और दूध के झाग की तरह बैठ जाता है। पेड़ को फलता-फूलता देखने के लिए आरम्भ में उसकी सिंचाई, खाद-पानी, रखवाली की जरूरत पड़ती है। पर यदि कोई बीच में ही चबाने लगे या अंकुर कुतरने लगे तो फिर वह दिवा-स्वप्न नष्ट होकर ही रहेगा, जिसमें संगठन बढ़ता और उसकी छाया में बैठने, फल-फूल तोड़ने का अवसर मिलता है।

मनुष्य बुद्धिमान बनता है, किन्तु ऐसी अदूरदर्शिता का परिचय देता रहता है, जिसे मूर्खता से कम नहीं माना जा सकता। तात्कालिक लाभ ही उसे दीखता है और कृतियों की दूरगामी प्रतिक्रियाओं का ध्यान ही नहीं रहता। कालिदास की कथा इसी प्रकार की है कि वह जिस डाली पर बैठा था, उसी को काट रहा था। राह चलतों ने समझ लिया कि यह महामूर्ख है। पण्डितों ने उसका इच्छानुसार उपयोग किया। हममें से कितने ही ऐसे हैं जो अपने ही परिवार-समुदाय में कर्तव्यों की अवहेलना करते व जितनी जल्दी हो सके, उतना लाभ उठा लेना चाहते हैं। भले ही उससे अपने समाज-समुदाय का अहित होता हो। यह ध्यान नहीं रहता कि जिस आश्रय देने वाली डाली को काट रहे हैं, उसके गिरने के साथ ही स्वयं भी औंधे मुँह गिरना पड़ेगा और हाथ-पैर टूटने की दुर्गति को सहन करना पड़ेगा।

एक उपहासास्पद उदाहरण अभी-अभी आँखों के आगे से गुजरा है। जनता पार्टी शासन में आयी। उसके अगुओं में से कितने ही इसके लिए व्याकुल हो उठे कि उन्हें प्रधानमन्त्री का पद मिलना चाहिए। पद तो एक इच्छुक अनेक। फलतः कलह आरम्भ हो गया। आपाधापी में किसी के हाथ कुछ न लगा वरन् सभी बदनाम हुए। वे जनता की भलाई तो कर न सके। मूर्ख, अदूरदर्शी, उपहास के पात्र बने सो अलग। सामूहिक कार्यों में अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं को अग्रणी रखने वाले सर्वत्र यही करते हैं। ऐसी कितनी उपयोगी संस्थाओं के पतन के दृश्य सामने हैं, जिनके उद्देश्य भी ऊँचे थे, जनता में मान भी था, साधन भी थे। किन्तु एक-दो महत्वाकांक्षियों ने अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए विग्रह आरम्भ किया। जो हथिया सकते थे, उसे हासिल करने के लिए जोड़-तोड़ भिड़ाने लगे। इस कुचक्र के रचने में उन्हें इच्छित श्रेय तो मिला नहीं, उल्टे बदनाम हो गये। अपनी प्रतिष्ठा गँवाई। जिसे मिल-जुलकर समुन्नत बनाया जा सकता था, उसे प्रगति का श्रेय अनुपात से स्वयं भी लिया जा सकता था, छिन्न-भिन्न करने के प्रयत्नों से वह भी हाथ से चला गया। संस्था संगठनों का भारत में यही इतिहास है। उनके फूलने-फलने की पूरी गुंजायश थी, पर महत्वाकांक्षियों ने वह स्थिति आने ही न दी। गाँधी स्मारक निधि, आर्य समाज के उदाहरण तो अभी ताजे ही हैं।

व्यक्तिगत जीवन में वित्तेषणा, पुत्रेषणा आदि कठिनाइयों में फँसाती है। सार्वजनिक जीवन में वह अनर्थ लोकेषणा करती है, जो अनुपयुक्त तरीकों से, असाधारण मात्रा में यशस्वी बनना चाहता है, वर्चस्व स्थापित करना चाहता है, उसकी यह क्षुद्रता प्रकट हुए बिना नहीं रहती। वस्तुस्थिति सभी लोग समझ जाते हैं। फलतः उसकी अप्रामाणिकता पर मन ही मन खिन्न होकर अपने सहयोग का हाथ खींच लेते हैं। जड़ कटे पेड़ की तरह उसकी दुर्गति होती है। इतना ही नहीं, लोग अन्य प्रामाणिक संगठनों पर भी अविश्वास करने लगते हैं, क्षुद्रता ऐसा दुर्गुण है, जिसमें घाटा ही घाटा है।

मधुमक्खियाँ अपने हिस्से का पूरा श्रम करती हैं और जो कुछ भी कमाती हैं, उसे एक छत्ते में संग्रह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करती हैं। फलस्वरूप मधु भी संचित हो जाता है। इस परिवार की निस्वार्थता और सद्भावना की सब ओर प्रशंसा होती है। कोई छेड़ता है तो सब मिल-जुलकर आक्रमण करती हैं। यही तरीका है किसी संगठन के फलने-फूलने का। रानी मक्खी के प्रति संगठन के सभी सदस्य बफादार रहते हैं, उसके अनुशासन में चलते हैं। उस पद को छीनने की न किसी में लालसा होती है और न चेष्टा। अपना-अपना स्वार्थ सभी सोचें और एक-दूसरे को धकेलकर स्वयं वर्चस्वी बनें तो उसका परिणाम यही होगा कि छत्ता बिखर जायेगा। एक की देखा-देखी दूसरा उसी क्षुद्रता को अपनाने के लिए लालायित होने लगेगा। फलतः किसी के हाथ कुछ भी महत्वपूर्ण उपलब्धि न लगेगी। बदनामी का ठीकरा ही सिर पर फूटेगा।

गाँधीजी काँग्रेस के प्राण और सर्वस्व रहे पर उन्होंने उसे पदाधिकारी बनने, अपना नेतृत्व जमाने का कोई प्रयास नहीं किया। यही कारण था कि उनके सहयोगियों में से किसी ने भी उन्हें चुनौती नहीं दी। जन-संगठनों में जिन्हें जितना ज्यादा लगाव है, उन्हें उसके लिए करना तो बहुत चाहिए, पर धन या यश का लाभ उठाने के लिए कम से कम आतुर होना चाहिए।

बर्जीनिया में एक लाल रंग की बड़ी बर्र होती है। उसकी माँ छत्ता बनाती और अण्डे-बच्चों को पालती है। पर जब बच्चे बड़े हो जाते हैं तो अन्यत्र खुराक ढूँढ़ने की अपेक्षा पास वाले को ही खाने लगते हैं फल यह होता है कि कमजोरों का पहले दौर में ही सफाया हो जाता है। जो बलिष्ठ शेष रह जाते हैं, वे आपस में मल्ल-युद्ध करते हैं। इसी में आहत होकर वे बेमौत मरते हैं। सौभाग्य से कोई गर्भिणी माता बच जाती है तो वह अन्यत्र छत्ता बनाती है। इस प्रकार पुराने छत्ते नष्ट होते रहते हैं, नये बनते रहते हैं। अन्ततः उस समुदाय का कोई बड़ा अस्तित्व कहीं देखने को शेष नहीं रह जाता। अण्डे बच्चे ही दीख पड़ते हैं। समर्थों में से सभी घायल होकर, भूखों मरकर अपने प्राण त्यागते हैं।

लोकसेवी संगठन लोक कल्याण की दृष्टि से खड़े किए जाते हैं। इसका शुभारम्भ इसी आधार पर होता है कि निर्माता लोग अपने निजी स्वार्थों को समूह के प्रति त्याग दें। जब तक यह स्थिति ठीक रहती है, वे संगठन भी फलते-फूलते हैं। पर जहाँ आपाधापी, उच्छृंखलता, अनुशासनहीनता फैलती है, वहीं पतन की जड़ें जम जाती हैं। जो कुछ किया गया था, उसके ध्वंसावशेषों को देखकर सँभालने वालों की अयोग्यता एवं क्षुद्रता का ढिंढोरा अलग पिटता है। कार्यकर्त्ताओं की बदनामी के उपरान्त संगठन भी अपनी प्रामाणिकता खो बैठता है और सहयोगी हाथ खींचकर उस क्षुद्रता को अखाड़े का केन्द्र बनाते हुए केन्द्र को अपनी मौत मरने के लिए छोड़ देते हैं। एक के पाप का दण्ड सभी को भुगतना पड़ता है।

सारा मानव समाज एक सूत्र में निबद्ध है

मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र होने पर भी स्वतंत्र नहीं है क्योंकि व्यक्ति का अपना स्वतंत्र अस्तित्व कुछ भी नहीं है। वह एक समाज की इकाई है। उसके कर्म के अच्छे-बुरे परिणाम में पूरे समाज को भागी बनना पड़ता है।

यदि कोई यह सोच ले कि वह जो कुछ करता है, अपने लिये करता है। उसका अच्छा-बुरा परिणाम उसे ही भोगना पड़ेगा, समाज अथवा दूसरे व्यक्तियों से उसका कोई मतलब नहीं है, तो उसका यह सोचना सर्वथा गलत होगा।

ऐसा सोचकर मानिए कोई व्यक्ति शराब पीने का व्यसन पाल लेता है और जब कोई उसके उस व्यसन को बुरा बतलाते हुए आपत्ति और आलोचना करता है तो वह यह कहने लगे कि शराब वह पीता है, पैसा और स्वास्थ्य उसका खराब होता है, गरीबी आयेगी तो उस पर आयेगी, बीमार होगा तो वह होगा, दूसरों से इस सबसे क्या मतलब ? क्या उसकी यह सफाई, यह उत्तर ठीक होगा ? कदापि नहीं।

यह बात नहीं है कि शराब पीने से उसका पैसा बिगड़ता है। किसी दूसरे की जेब से कुछ नहीं आता है। खून जलता अथवा मस्तिष्क विकृत होता है, तो उसका होता है, किसी दूसरे पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पत्नी और बच्चे भूखे नंगे रहते हैं तो उसके, घर बिगड़ता है तो उसका और अप्रतिष्ठा होती है तो उसकी, इनमें से कोई भी हानि किसी दूसरे को नहीं उठानी पड़ती। तथापि समाज को उसकी इस बात से प्रयोजन है।

यों प्रत्यक्ष तथा मोटी दृष्टि से देखा जाये तो शराब पीने की हानियाँ उसकी व्यक्तिगत मालूम होती हैं। किन्तु किसी बात का प्रभाव अथवा हानि-लाभ केवल प्रत्यक्ष ही तो नहीं होती उसका प्रभाव परोक्ष रूप से भी तो पड़ता है।

कोई शराब पीता है और अपना पैसा खराब करता है केवल ऐसा ही नहीं है। समाज में जहाँ जिसके पास जो कुछ है वह सब सम्पत्ति समाज की होती है। उसका निर्माण समाज के सामूहिक प्रयास से होता है और वह धन के रूप में भी एक-दूसरे के पास आती जाती रहती है। इस आवर्तन का उद्देश्य केवल यही होता है कि व्यक्ति उसका सदुपयोग इस ढंग से करे कि उसको भी उन्नति और सुविधा मिले और समाज का भी हित हो। जो किसी सम्पत्ति को अथवा उसके अंश को सर्वथा अपनी व्यक्तिगत मानकर दुरुपयोग अथवा अपव्यय करे तो उसके इस काम को अनाधिकारिक एवं असामाजिक माना जायेगा और उसका वैसा करना दुराग्रह कहा जायेगा। इसका दण्ड भी उसे मिलता है। लोग उसका बहिष्कार करते हैं, भर्त्सना करते हैं और असहयोग करते हैं। राजनियम, नैतिक नियम और सामाजिक नियम भी इसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उच्छृंखलता पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए बनाये और बनवाए जाते हैं। यदि मनुष्य का कोई कर्म सर्वथा व्यक्तिगत होता तो समाज को उसकी चिन्ता अथवा उसे रोकने की जरूरत न होती।

कोई भी मद्यप कह सकता है कि वह अपना व्यक्तिगत स्वास्थ्य खराब करता है। किन्तु उसका स्वास्थ्य भी उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है, जिसे वह मनमाने तौर पर खराब कर सकता है। मनुष्य के शरीर का पालन सारे समाज की प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सहायता के आधार पर होता है। अस्तु, उसका शरीर ही क्यों सारा जीवन ही समाज का ऋणी होता है। इस ऋण का भुगतान समाज की कुछ सेवा करके ही किया जा सकता है। अब जो मनुष्य अपना स्वास्थ्य ही नष्ट कर डालेगा, शरीर को अक्षम बना लेगा तो वह समाज का ऋण किस बलबूते पर चुकाएगा ? बल्कि, उल्टे रोगी होकर अपनी सेवा-सुश्रूषा के रूप में समाज का ऋण और बढ़ा लेगा। इसका किसी को कोई अधिकार नहीं है कि वह ऋण ले और फिर उसे चुकता न करे। यदि वह ऐसा करता है तो मनुष्य नहीं कहा जा सकता।

यही बात किसी भी दुष्कर्म के लिए कही जा सकती है। चोरी, डकैती, जुआ व्यभिचार, असत्य, बेईमानी आदि सारे अपकर्म प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष किसी न किसी रूप में समाज पर प्रभाव डालते और उसकी शांति, व्यवस्था तथा उन्नति विकास में बाधा डालते हैं। इसलिए कोई भी व्यक्ति कर्म करने में स्वतंत्र होते हुए भी सर्वथा स्वतंत्र नहीं है। उसके हर अच्छे-बुरे काम का सम्बन्ध पूरे समाज से भी है। इसलिए हर मनुष्य को अपना हर काम खूब सोच-विचारकर करना चाहिए।

इसी प्रकार सामाजिकता के साथ मनुष्य के कर्मों का एक आध्यात्मिक संदर्भ भी है। जो मनुष्य अपकर्म करता है वह न केवल लौकिक हानि ही करता है बल्कि पारलौकिक हानि भी करता है। बुरे कर्मों से बुद्धि नष्ट होती है और बुद्धि के विनाश का कुप्रभाव आत्मा पर पड़ता है। मनुष्य की आत्मा जो उसके सम्पर्क में आया है यह अपेक्षा करता है कि उसको मुक्त करके इस संसार बंधन से छुड़ाया जायेगा और जिस प्रकार मनुष्य के कर्म ही आत्मा के बंधन का कारण हैं, उसी प्रकार उसके कर्म ही उसकी मुक्ति के हेतु हैं। दुष्ट कर्म आत्मा को बंधन में डालते हैं और सत्कर्म उसे उस बंधन से मुक्त करते।

मनुष्य के सम्पर्क में आने से पूर्व आत्मा मुक्त तथा निर्बन्ध था। वह संसार की लीला देखने और उसका आनन्द लेने, परमात्मा की इस रचना का ज्ञान पाने के लिए पहले-पहल सम्पर्क में आया। उसने आशा की होगी कि मनुष्य विवेकपूर्वक उसे सारी लीला दिखलाकर बाद में अपने परम धाम लौट जाने का अवसर देगा। किन्तु खेद है कि मनुष्य ने उस निर्विकार तथा निश्छल तत्व को अपने अपकर्मों द्वारा बंधन में डालकर विश्वासघात किया है। मनुष्य ने कुछ ऐसा किया कि बार-बार शरीर बंधन का चक्कर उस मुक्त पक्षी के पीछे लग गया, जिससे कि वह मुक्ति के लिए—अपने आदि धाम के लिए छटपटाता है।

खैर अब तक जो हुआ सो हुआ। लेकिन मनुष्य को अब अपने उस विश्वासघात का परिमार्जन कर अपने इस जघन्य पाप का प्रायश्चित करना ही चाहिए। जिस प्रकार उसने अपकर्मों द्वारा आत्मा को बंधन में डाला है, उसी प्रकार अब उसे सत्कर्मों द्वारा उसे मुक्त कराना चाहिए। यही मनुष्यता है और यही महानता है। मनुष्य के हर प्रकार के काम का प्रभाव आत्मा पर भी पड़ता है, इस प्रकार वह कर्म करने में स्वतंत्र होकर भी सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है। उसका सम्बन्ध आत्मा से, लोक-परलोक से भी है।

इसी प्रकार मनुष्य को सत्कर्मों का अधिकार तो है पर वे भी काम उसके सर्वथा अपने व्यक्तिगत नहीं होते। उनका भी समाज से सम्बन्ध है और उनका प्रभाव भी समाज पर पड़ता है। उदाहरण के लिए किसी संस्था अथवा सत्पुरुष को दान देने या किसी मेधावी छात्र को सहायता करने का काम ले लीजिए। यह काम एक सत्कर्म है। देखने में तो ऐसा लगता है जिसने यह सत्कर्म किया है। उसने एक सत्कर्म कर परमार्थ लाभ किया है। उसका फल उसे लोक नहीं तो परलोक, इस जन्म में नहीं तो जन्मान्तर में मिलेगा किन्तु केवल ऐसा नहीं है।

संस्था अथवा सत्पुरुष को दिया दान सारे समाज के लिए हितकारी होगा। संस्था के पास जब इस प्रकार सुविधा-साधन एकत्र हो जायेंगे तो वह उनसे कोई विद्यालय संचालित करेंगे, जिससे समाज के शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार होगा। वह उनसे विधवा अथवा अनाथाश्रम चलायेगी तो ऐसे बहुत से बालकों तथा स्त्रियों का कल्याण होगा जो निराश्रय की अवस्था में या तो भीख माँगते अथवा अपराधों में प्रवृत्त होकर समाज में अशांति उत्पन्न करते।

सत्पुरुष सहायता पाकर अपनी प्रतिभा द्वारा साहित्य अथवा धर्म-शास्त्रों की रचना करते हैं। गाँव-नगरों में घूम-घूमकर सत्प्रवृत्तियों का प्रचार करते हैं। अपना आत्म विकास करते हैं और फिर उस सम्बल द्वारा दूसरों को आत्म-विकास की ओर अग्रसर करते हैं। इस प्रकार सहायता पाकर वे अपने जीवन का सदुपयोग कर न जाने ऐसे कितने ही सत्कर्म करते हैं, जिससे पूरी समाज को सराहनीय लाभ होते हैं।

मेधावी छात्रों को वृत्ति द्वारा सहायता करना तो मानो समाज में योग्य तथा महान् नागरिकों का संवर्धन करना है। मेधावी छात्र अपना तो विकास करेगा ही। साथ ही वह योग्य प्राध्यापक अथवा व्याख्याता बनकर न जाने कितने मेधावी छात्र उत्पन्न करेगा ? वह विदेशों में जाकर देश का गौरव बढ़ाएगा जिससे सारे समाज की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। ऐसे परमार्थी पुरुषों की समाज एवं संसार में कमी नहीं रही है, जिनके सत्कर्मों का प्रभाव स्पष्ट रूप से समस्त समाज पर पड़ा है और राष्ट्र अथवा देश को सामूहिक रूप से लाभ हुए हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सर टामस रो के साथी डॉक्टर ने अपने देश से आने वाले माल पर चुंगी माफ करा करके सारे इंग्लैण्ड निवासियों को लाभ पहुँचाया। जिन वैज्ञानिकों ने रेल, तार, रेडियो, बिजली, यंत्र अथवा वायुयान आदि के आविष्कार किए उनसे सारी मानव जाति को लाभ पहुँचा। चिकित्सा, धर्म, सदाचार, अध्यात्म, सहयोग, सहिष्णुता, संयम, समानता आदि का जिन सत्पुरुषों ने प्रचार तथा प्रतिपादन किया उन्होंने सम्पूर्ण मानव जाति का हित साधन किया है। स्वातंत्र्य युद्ध के संयोजकों, संचालकों तथा बलिदानियों के व्यक्तिगत पुरुषार्थों का फल सारे समाज व राष्ट्र को मिला और सभी ने उसका उपभोग किया।

विद्यालय, औषधालय, कुँआ, तालाब, छात्रावास, अन्न-क्षेत्र, गोशाला आदि की स्थापना करना, ऊपर से तो ऐसा लगता है मानो संस्थापकों ने अपने आत्म-कल्याण के लिए ऐसा किया है। पर वास्तविकता यह है कि इनसे पूरे राष्ट्र तथा समाज को लाभ पहुँचता है। जो सत्पुरुष अपने परमार्थ, पुरुषार्थ अथवा सत्कर्मों द्वारा बड़े और महान् बनते हैं वे केवल एकाकी ही उनके फलों के भोक्ता नहीं होते। उनकी महानता के आधार पर, उस जाति, राष्ट्र तथा समाज की भी प्रतिष्ठा बढ़ती है, जिसमें उन्होंने जन्म लिया होता है। संसार में समय-समय पर अनेक महापुरुष होते रहे हैं। जिनके सत्कर्मों ने समाज, देश की ही नहीं उस समय एवं युग की भी प्रतिष्ठा बढ़ा दी है। राम के जन्म से अयोध्या और उनका समय त्रेता, कृष्ण के जन्म तथा कार्यों से मथुरा और उनके युग द्वापर की महत्ता आज तक चली आ रही है। स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ प्रभृति महात्माओं के तप, त्याग तथा विद्या द्वारा संसार में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ी है। स्वामी दयानन्द जैसे सुधारकों के सत्कर्मों ने भारतीय समाज का अन्धकार दूर कर उसका अतुलनीय उपकार किया है। इस प्रकार यह मानना कि व्यक्ति द्वारा किए गये सत्कर्मों का फल लाभ उसी तक सीमित रहता है या दुष्कर्मों की हानि या प्रभाव भी उसी के व्यक्तिगत जीवन पर पड़ता है, गलत है। व्यक्ति की अपनी अकेली स्थिति अथवा उसका स्वतंत्र अस्तित्व कुछ भी नहीं है। उसका व्यक्ति भी समष्टि में समाया हुआ है और उसके कर्मों का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सम्बन्ध पूरे समाज, देश अथवा राष्ट्र से है। अस्तु, उसे अपने को कर्मों में स्वतन्त्र होते हुए भी स्वतन्त्र नहीं मानना चाहिए। अपकर्मों का तो उसे अधिकार ही नहीं है, सत्कर्मों को भी यदि वह समाज, राष्ट्र तथा देश का हित देखकर तद्नुसार ही करे तो उसे एक कर्म का दोहरा लाभ मिल सकता है।

इसी प्रकार समाज अथवा समूहगत सत्कर्मों एवं अपकर्मों का लाभ-हानि का भागीदार व्यक्ति को भी बनना पड़ता है। समाज शिक्षा अथवा सुरक्षा की जब सामूहिक योजना स्थापित करता है, तब उससे व्यक्तिगत रूप से लोगों को साक्षरता तथा सुरक्षा का लाभ होता है। सामूहिक बड़े-बड़े यज्ञ-अनुष्ठानों से जब सुकाल एवं धन-धान्य की वृद्धि होती है तो जन-जन को सम्पन्नता एवं स्वास्थ्य का लाभ होता है। इसी प्रकार जब समाज कोई कठोर अथवा संकीर्ण नियमों अथवा प्रथाओं का प्रचलन करता है तो लोगों को कष्ट होता है, उनका विकास तथा उन्नति रुक जाती है। छुआछूत तथा दहेज, भोज आदि की और विवाह की प्रथाएँ व नियम इसी प्रकार के समाजगत कर्म हैं जिनसे व्यक्तियों को भी हानि पहुँची है, समाज की प्रगति तो रुकती ही है।

इस प्रकार क्या व्यक्ति और क्या समाज दोनों के कर्मों का प्रभाव दोनों पर पड़ता है। इसलिए दोनों को अपने कर्मों में स्वतंत्र होने पर भी स्वतन्त्र न समझना चाहिए और एक-दूसरे के हानि-लाभ को दृष्टि में रखते हुए कर्म करने चाहिए क्योंकि व्यक्ति-समाज और समाज व्यक्ति है। यह एक आध्यात्मिक सिद्धान्त, एक विधान है।

सामूहिक जीवन ही प्रगति का एकमेव मार्ग है

विश्व सभ्यता अब विकास के उस स्तर तक पहुँच गयी है कि एकाकी रूप से कोई अपना काम आप चला ले यह लगभग असम्भव हो गया है। कहने को तो प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका स्वयं उपार्जित करनी पड़ती है तथा प्रत्येक आवश्यक वस्तु स्वयं ही खरीदनी पड़ती है। पर अपनी आवश्यकताओं के लिए अधिकांशतः दूसरों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। जैसे प्रत्येक व्यक्ति को भोजन की आवश्यकता पड़ती है और उसके लिए अनाज, ईंधन, बर्तन, आग, शाक, सब्जी आदि वस्तुओं की जरूरत पड़ती है। अनाज और शाक-सब्जियाँ किसान पैदा करता है। ईंधन की आवश्यकता लकड़हारों या कोक भण्डारों से जुटानी पड़ती है। बर्तन ठठेरे की मदद से और आग माचिस द्वारा। कहने का अर्थ यह है कि एक-एक रोटी में कई व्यक्तियों का श्रम लगा होता है। माना कि हम ये वस्तुयें पैसा देकर खुद खरीदकर लाते हैं पर यदि हमारे पास पैसा हो तथा इन चीजों के उत्पादनकर्ता उन्हें उत्पादित करना बन्द कर दें तो पैसे का क्या होगा ?

एक समय था जबकि मनुष्य जंगल में वास करता था। पेड़ों से फल तोड़कर लाता, पत्थरों से जानवर मार लेता और उनसे अपनी भूख मिटा लेता था। उस समय एकाकी और नितान्त स्वावलम्बी जीवन बिताने में कोई कठिनाई नहीं थी। पर तब मनुष्य क्या था ? उसकी सभ्यता और संस्कृति क्या थी ? निरे पशुओं जैसी जिन्दगी जीनी पड़ती थी और जैसे ही मनुष्य ने कुछ सोचना-विचारना आरम्भ किया, उसे कबीलों के रूप में सामूहिक जीवन की ओर अग्रसर होना पड़ा। एक व्यक्ति पूरी तरह एक क्षेत्र में काम करता रहे और दूसरा दूसरे क्षेत्र में तथा अपने उपार्जन के आदान-प्रदान द्वारा एक-दूसरे का काम चलाते रहे इसी आधारशिला पर पाँव रखकर मानवी सभ्यता का भवन बनना शुरू हुआ। वह भवन अब तक इतना विकसित हो चुका है कि हमें कदम-कदम पर सामूहिकता का आश्रय लेने की बात सोचना पड़ेगी।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता गया वैसे-वैसे व्यक्ति का एकाकी जीवन दुष्कर और सामूहिकता का प्रयोग सरल सुगम होता चला गया। यही नहीं उसके अभाव में पतनग्रस्त दुर्दशा में भी पड़े रहना पड़ा। उदाहरण के लिए, अभी पाँच सौ वर्ष पहले की बात को ही लें तब न स्कूल थे और न पाठशालायें। उस समय शिक्षा के लिए प्रत्येक परिवार को अपनी अलग व्यवस्था करनी पड़ती थी। एक-एक परिवार के लिए एक-एक शिक्षक की नियुक्ति की जाती। यह सभी के बस की बात तो थी नहीं। अतः राजघरानों और कुलीन परिवारों के सदस्य ही शिक्षित हो पाते। लेकिन जब शिक्षा की आवश्यकता अनिवार्यतः अनुभव की जाने लगी तो सामूहिक व्यवस्था करनी पड़ी और स्कूल खोलने पड़े। एक-एक अध्यापक के जिम्मे पचास-पचास छात्र आये और शिक्षा प्राप्ति का सुगम तरीका चल पड़ा। इससे शिक्षा का क्षेत्र सबकी पहुँच की सीमा में आ गया और खर्च का अधिक दबाब भी किसी पर नहीं पड़ा। इस सामूहिक व्यवस्था का परिणाम ही है कि शिक्षा का विकास द्रुतगति से होता जा रहा है। हमारे देश में भी जब सामूहिक व्यवस्था ने परिष्कृत रूप लिया तो आजादी के बाद से अब तक के आश्चर्यजनक परिणाम सामने आये हैं। सन् १९५१-५२ में जहाँ साक्षरता का औसत १४ प्रतिशत था, वहीं अब ४५ प्रतिशत के लगभग है।

कहने का अर्थ यह कि सामूहिकता आज के युग में—हर क्षेत्र में कल्याणकर सिद्ध हो रही है। अभी भी हमें अपनी जीवन पद्धति पर दृष्टिपात करना चाहिए और सामूहिकता के अभाव में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आने वाली बाधाओं से बचने का विचार करना चाहिए। अभी भी हमारे समाज और जीवन में ऐसी कई व्यवस्थायें हैं, जिन्हें सामूहिकता के आधार पर पुनर्निर्मित किया जाय तो कई समस्याओं का समाधान निकल सकता है।

उदाहरण के लिए, एक मुहल्ले में १०० परिवार रहते हैं। उनमें दो पति-पत्नी और दो-तीन बच्चे माने जायँ तो तीन व्यक्तियों के पीछे एक व्यक्ति भोजन बनाने वाला चाहिए। घरों में गृहिणी के पास भोजन बनाने और परिवार के सदस्यों को खिलाने का काम ही रहता है अर्थात् एक चौथाई जनसंख्या केवल भोजन बनाने में ही लगी हुई है। व्यक्तिगत व्यवस्था में अधिक समय और श्रम लगना स्वाभाविक ही है। यदि एक मुहल्ले के लिए भोजन की सामूहिक व्यवस्था बनाली जाय तो दस-बारह व्यक्ति आसानी से ढाई-तीन सौ लोगों का भोजन बना सकते हैं और शेष व्यक्तियों का समय तथा श्रम अन्य कार्यों में लग सकता है। समाजवादी देशों में प्रायः यही पद्धति अपनाई जाती है। वहाँ अलग-अलग चौके-चूल्हे बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, लोग मैस में खाना खाते हैं। कुछ लोग इसी काम पर नियुक्त रहते हैं और शेष निर्माण के अन्य मोर्चे सम्हालते हैं। देर-सबेर प्रगति के इच्छुक सभी समाजों में यही पद्धति व्यावहारिक सिद्ध होगी।

सामूहिक भोजन व्यवस्था का एक लाभ आर्थिक पहलू से भी है। एक व्यक्ति का खाना बनाने में उतना ही समय और श्रम लगता है जितना कि पाँच व्यक्तियों के लिए बनाने में लगता है। अनाज और सब्जी की मात्रा भले ही थोड़ी कम हो जाय अन्यथा ईंधन, समय, श्रम तो उतना ही खर्च पड़ता है। पाँच व्यक्तियों के लिए संयुक्त भोजन व्यवस्था सस्ती पड़ती है। पचास व्यक्तियों के लिए भी कम। तो कहना नहीं होगा कि इस व्यवस्था में कम आमदनी वाले भी भरपेट और सम्पूर्ण आहार प्राप्त कर सकते हैं। जिस प्रकार पूरे गाँव के लिए बने स्कूल में गरीब बच्चा भी पढ़ सकता है। मध्य वर्ग के समान निजी व्यवस्था उसके लिए सम्भव नहीं है। उसी प्रकार सामूहिक भोजन व्यवस्था में गरीब आदमी जो अलग भोजन बनाता है और खाली पेट सोता है उसके लिए भी कम लागत और कम खर्च के कारण भरपेट भोजन प्राप्त करना अपेक्षाकृत आसान रहेगा।

भोजन व्यवस्था के बाद अभिभावकों का सर्वाधिक ध्यान बच्चों के पालन-पोषण और लाड़-दुलार में ही अधिक लगता है। इसी कारण समय और श्रम भी। यही नहीं इस पद्धति के गहरे मानसिक परिणाम भी होते हैं व्यक्ति की माया-ममता परिवार के दायरे में ही सिमटकर रह जाती है और न वह मुहल्ले के अन्य लोगों में आत्मीयता की अनुभूति करता है न समाज और न राष्ट्र में। बच्चों के सामूहिक विकास का इजरायल ने सफल प्रयोग किया है। वहाँ पैदा होने के बाद बच्चों को माँ-बाप से अलग कर दिया जाता है तथा सब बच्चों को एक साथ पाला जाता है। यह कार्य बाल मनोविज्ञान कुशल ज्ञाता नर्सों द्वारा किया जाता है। नर्सों में भी बच्चों की ममता केन्द्रीभूत न हो जाये इसलिए एक नर्स को तीन महीने से अधिक नहीं रहने दिया जाता। माता-पिता को भी यह चिन्ता नहीं करनी पड़ती कि हमारे बच्चों के लिए हम कमाकर छोड़ जायें क्योंकि वे जानते हैं कि इन बालशालाओं में जिन्हें किब्रुत्स कहा जाता है। बच्चे इतने योग्य होकर निकलेंगे कि वे समाज और राष्ट्र पर भार नहीं बनेंगे। किब्रुत्स के बच्चों को किशोरावस्था या युवावस्था में माँ-बाप से भले ही मिलने दिया जाता हो पर तब उनमें प्रौढ़ता आ जाती है और उनकी चेतना परिवार तक ही सीमित नहीं रह जाती वरन् वे राष्ट्र को सर्वोपरि मानते हैं।

मनोवैज्ञानिकों ने पारिवारिक जीवन की अस्तव्यस्तता का कारण भी वर्तमान पद्धति को माना है और इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि—"माँ के पास रहकर ही बड़े होने वाले बच्चों के अचेतन में माँ की प्रतिच्छाया इस तरह अंकित हो जाती है कि वह उसी स्वभाव वाली स्त्री के पास रहना चाहता है। एक ही प्रकार के स्वभाव वाले दो व्यक्ति आज तक इस संसार में नहीं हुए। स्वभाव तो दूर की बात शक्ल-सूरत और व्यक्तित्व भी किसी का समान नहीं होता। जब पत्नी से अपेक्षित विशेषतायें नहीं मिलती हैं तो दाम्पत्य जीवन में क्लेश, कलह और असन्तोष जन्म लेता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों को सामूहिक रूप से पालने की बात पढ़ने-सुनने में भले ही अटपटी लगती हो। पर जब हम प्राचीन संस्कृति से इसकी तुलना करते हैं तो अनायास ही इस तरह की व्यवस्था की महत्ता का परिचय मिल जाता है। आश्रम व्यवस्था में क्या होता था—उस समय बच्चों को तीन-चार वर्ष का होते ही गुरुकुल में भेज दिया जाता था। गुरुकुल में भेजते समय किये जाने वाले उपनयन संस्कार की आयु सातवाँ वर्ष ही तो निर्धारित की गई थी। उस समय तक बच्चों को गुरुकुल भेज देना पड़ता था। अन्यथा उसे वाक्यसंज्ञक (पतित) कहा जाता और इस अवस्था से लेकर पच्चीस वर्ष तक परिवार से दूर—गुरुकुल में ही वह विभिन्न वय, स्थिति और अवस्था के लड़कों के साथ पढ़ता।

इस प्रकार सामूहिक रूप से बच्चों को पालने का प्रथम सत्परिणाम तो यह होता था कि बच्चों में स्थिति जन्य अहंकार, द्वेष समाप्त ही हो जाता। राजा का बेटा, साधारण कर्मचारी के बेटे के साथ पढ़ता और भाई-भाई की तरह सौ से लेकर पाँच सौ बच्चे सामूहिक रूप से पढ़ते। उन परिस्थितियों में बच्चे की चेतना सीमित दायरे में ही कैद रह जाने से बच जाती तथा उसका दृष्टिकोण इतना उदार और इतना विशाल बन जाता कि सारा समाज ही उसे अपने परिवार की तरह लगता। इसी पद्धति से भारतीय मनीषियों ने वसुधैव कुटुम्बकम् का लक्ष्य अपने सामने रखा हो तो वह केवल आदर्श या अव्यावहारिक नहीं कहा जा सकता। वरन् यही मानना पड़ेगा कि वे अपने लक्ष्य की ओर सही ढंग से बढ़ रहे थे।

लेकिन खेद है कि हम सामूहिकता की ओर बढ़ने की अपेक्षा विघटन की ओर ही बढ़ रहे हैं। पचास वर्ष पूर्व अधिकांश परिवार संयुक्त थे। सामूहिकता का यह एक छोटा ही सही पर रूप तो था और संयुक्त परिवारों में चाचा-ताऊ के बच्चों में परस्पर जो स्नेह-आत्मीयता, सद्भाव तथा त्याग की भावना थी, वह आज सगे भाइ-भाइयों में भी नहीं है। इसका क्या कारण है ? आत्यन्तिक स्वार्थपरता और सुविधा-साधनों की लालसा ने लोगों को इतना स्वकेन्द्रित बना दिया है कि वे अपने अतिरिक्त किसी और की सुख-सुविधा का ध्यान ही नहीं रखते। बच्चों तक को भी बीमार या किसी परेशानी के कारण रात में रोते-बिलखते देखकर उन्हें डपटकर सुला देते हैं ताकि खुद की मीठी नींद में कोई बाधा न पड़े। पचास वर्ष पूर्व एक परिवार में माता-पिता भी रहते थे और चाचा-ताऊ तथा उनके बच्चे-बच्चियाँ भी। साथ-साथ रहने से सब में भाई-चारे की भावना रहती थी। पर संयुक्त परिवारों का जैसे-जैसे विघटन होना आरम्भ हुआ, चचेरे भाई का रिश्ता भी पड़ौसी से भी दूर का रिश्ता लगने लगा। होना तो यह चाहिए था कि इस संयुक्त परिवार से सामूहिक जीवन की ओर अग्रसर होते पर हुआ उससे विपरीत ही कि हम विघटन की ओर ही गिरे।

बच्चों को जैसे घर में पाला जाता है वैसे ही परिवार उनके जीवन का केन्द्र बन जाता है। न राष्ट्र बनता है और न समाज ही। बच्चों को औरों की चिन्ता भी होती है तो वहीं तक कि मेरे पिता को सुविधा मिल जाती है तो पर्याप्त है और माता को सुविधा मिल जाती हो तो काफी है। पड़ौसी का पिता भले ही ज्यादा वृद्ध हो पर उसकी सुविधा-असुविधा का प्रश्न ही नहीं उठता। बच्चों को जब सामूहिक रूप से बोला जायगा तो जाने-अनजाने उसके जीवन का केन्द्र सारा समाज बनेगा और समाज के सभी वृद्धों का उसी प्रकार ख्याल रहेगा जिस प्रकार कि वर्तमान समय में अपने वृद्ध पिता का रहता है।

सामूहिकता का सिद्धान्त सार्वभौम और सार्वकालिक उपयोगी रहा है। पर आज के समय में वह न केवल उपयोगी वरन् आवश्यक भी हो गया है। पथ्य और खान-पान का संयम अच्छे स्वास्थ्य के लिए सदैव उपयोगी होता है पर जब रुग्णावस्था में जो उसकी आवश्यकता अनिवार्यता की भूमिका में पहुँच जाती है। इस समय समूचा मानव समाज रुग्णावस्था में ही समझा जाना चाहिए। अशान्ति, उद्वेग, स्वार्थपरता और संकीर्णता के साथ समय की विकासमान धारा भी। बीमार, रोगशय्या पर पड़े रहने के समय ऋतुचक्र का परिवर्तन भी। वैसे समय में रहन-सहन तथा खान-पान की संयमशीलता जिस प्रकार अनिवार्य आवश्यक हो जाती है, उसी प्रकार रुग्ण मानवता के साथ बदलती समय धारा में ही अपनी जीवन पद्धति और समाज व्यवस्था को अनुकूल धारा में ढालने की भी आवश्यकता है।

समर्थता से भी बढ़कर सामूहिकता

प्रकृति का एक पन्ना—एक अध्याय समर्थता का—जो जितना समर्थ है, शारीरिक शक्ति से ओत-प्रोत है, वह उतना ही अधिक वसुन्धरा की सम्पत्ति का उपभोग करता है। प्रकृति ने हर शक्तिशाली को शासन और शोषण की खुली अनुमति दी है। बड़ा पेड़ छोटे पेड़ को बढ़ने नहीं देता, बड़ी मछली छोटी मछली को पकड़कर खा जाती है जंगल में रहने वाले ताकतवर शेर-चीते, बाघ, रीछ अपने से कम शक्ति वाले बकरी, भेड़, गाय, हिरण, साँभर को मारकर खा जाते हैं प्रकृति की कृपा सामर्थ्य के साथ जुड़ी हुई है। हमें सांसारिक सुख-सुविधाओं और साधनों का अधिकतम उपभोग करना हो, शासन करना हो तो शक्ति की साधना करनी चाहिए समर्थता बढ़ानी चाहिए।

इस दृष्टि से शारीरिक शक्ति वाले लोगों को क्या दुनिया पर शासन करने का नैतिक अधिकार है ? जैसा कि कई पाश्चात्य जातियाँ साम्राज्य लिप्सा के बचाव में दलील दिया करती हैं ? शाकाहारी भारतीय क्या माँसाहारी लोगों की श्रेष्ठता स्वीकार कर उनके ही आदर्शों को मानने लगें ? जैसा कि आज की परिस्थितियों में हो रहा है। इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देश के नागरिक आहार-विहार, रहन-सहन, वेषभूषा सब बातों में पश्चिम की नकल करते हैं। इसका एक अर्थ यह भी है कि इस देश के लोग उनके मुकाबले अपने को कमजोर अनुभव करते हैं।

इस देश भारतवर्ष ने शक्ति की परिभाषा भिन्न की है, हमारी शक्ति खुराक पर नहीं तत्व पर, भावनाओं पर आधारित है। इस दृष्टि से न तो मन, न शरीर किसी भी दृष्टि से हमारी समर्थता पाश्चात्यों से कम नहीं तो भी यदि शरीर की स्थूल ताकत को ही प्रमुखता दी जाये, तब भी किसी को शक्ति से हार मानना नहीं चाहिए। स्थूल समर्थता से हार मान लेने का अर्थ नैतिक पराजय होती है, चारित्रिक हार होती है और जो जातियाँ नीति, सदाचार और चरित्र की रक्षा नहीं कर पातीं, वह मात खा जातीं खोखली हो जाती हैं।

प्रकृति का दूसरा पन्ना—आततायी समर्थता से संघर्ष के लिये विकल्प-सहयोग संघबद्धता और सामूहिकता का पन्ना है। यह पन्ना समर्थता के पन्ने से भी अधिक महत्वपूर्ण है और शिक्षा देता है कि जब आततायी शक्तियाँ या अनैतिकता सिर उठायें, ऐसा लगे कि दुष्टता प्रबल हो रही है उसे जीत पाना कठिन है, तब उसका प्रतिकार सामूहिक और संगठित शक्ति द्वारा करना चाहिए।

कुछ दिन पूर्व आस्ट्रेलिया के किसानों को एक विचित्र समस्या का सामना करना पड़ा। उनकी फसल तैयार होती तब वहाँ के तोते फसलों की फसलें उजाड़ जाते, रखवारे तरह-तरह के उपाय करके हारे किन्तु तोताओं पर नियन्त्रण न कर सके। एक भी तोता उनकी पकड़ में नहीं आता था। तब कुछ बुद्धिमान आदमियों ने स्थिति के अध्ययन की आवश्यकता अनुभव की। कुछ लोग छिपकर बैठे उन्होंने देखा तोते खेत पर एकाएक आक्रमण नहीं करते वरन् पहले सब खेतों से दूर छिपकर बैठ जाते हैं। कुछ तोतों का झुण्ड आगे जाकर बड़े पेड़ों पर मोर्चा (आब्जर्वेशन पोस्ट) लगाते हैं। फिर वे उड़कर पता लगाते हैं कोई है तो नहीं यदि मैदान साफ हुआ तो वे अपने दूरवर्ती साथियों को संकेत भेज देते हैं फिर सब तोते दल-बल के साथ जा पहुँचते और बात ही बात में खेत साफ कर देते। यह रहस्य जान लेने के बाद ही उन तोतों पर नियंत्रण किया जा सका, साथ ही आस्ट्रेलिया ने सहयोग और सामूहिकता का महत्व भी समझ लिया।

उकाव छोटा-सा पक्षी-एक किलो वजन पैरों में बाँध दिया जाये तो उड़ना हराम हो जाये, पर कई उकावों की संगठित शक्ति जो भी देख ले, सामूहिकता के वर्चस्व की सराहना किये बिना न रहेगा। उकाब इकट्ठे चलते हैं और १०-१० किलो वजन के खरगोश और हिरन के बच्चों को भी उठा ले जाते हैं। उकाव तो कई बार आपस में झगड़ भी पड़ते हैं, पर प्रसिद्ध विचारक प्रिन्स क्रोपाटिकन अपनी पुस्तक 'संघर्ष नहीं सहयोग' (म्यूचुअल एण्ड) में लिखा है कि चीलों को आपस में झगड़ते किसी ने कभी भी नहीं देखा। यही कारण है कि उनकी सामूहिक शक्ति उकावों पर भी विजय पा लेती है, वे उकावों का पीछा करके उनका शिकार हड़प लेती हैं। सहयोग की शक्ति इस बात पर निर्भर है कि प्रत्येक सदस्य कितने प्रेम और वफादारी, मैत्री और एकता का परिचय देता है। जो लोग इन नियमों का पालन करते हैं, कभी किसी से हारते नहीं, बाज तक को भी यह चीलें हरा देती हैं और उनके द्वारा पकड़ी हुई मछलियों को छीन लेती हैं।

प्रसिद्ध प्राणी विशेषज्ञ लेवेलिएण्ट ने एक स्थान पर लिखा है कि गिद्धों में परस्पर इतनी प्रगाढ़ मैत्री होती है कि वैसी मनुष्य समाज में भी नहीं होती। उसने गिद्धों को 'सामाजिक जीव' की संज्ञा दी है और लिखा है कि गुफाओं में तो तीन-तीन चार-चार गिद्धों के घोंसले पास-पास पाये जाते हैं। शिकार वे कभी अकेले नहीं खाते। शिकार के पास पहुँचकर अपने सभी साथियों के आ जाने की प्रतीक्षा करते हैं और इकट्ठे मिलकर ही उसका आहार करते हैं। उस समय शक्तिशाली कुत्ते और दूसरे हिंसक जंगली जीव भी इनका कुछ नहीं कर पाते।

प्रिन्स क्रोपाटकिन ने अपनी पुस्तक 'म्यूचुअल एण्ड' में इंग्लैण्ड के हम्बर जिले में समुद्री चिड़ियों का दिलचस्प वर्णन किया है और बताया है वहाँ भाँति-भाँति के पक्षियों की शिकार से लेकर मनोरंजन के लिये उड़ने तक की सामूहिक भावना देखकर ऐसा लगता है कि मनुष्य जाति ने भी सामूहिकता के दर्शन को समझा होता तो वह इसी धरती में स्वर्ग-सुख का रसास्वादन करता।

समुद्र में पानी में डूबकर मछलियाँ पकड़ने वाले पनडुब्बों का मेल-मिलापी जीवन बड़ा ही आकर्षक और अनुकरणीय होता है। नदियों और तंग खाड़ियों में वे दो पार्टियों में विभक्त होकर शिकार करते हैं और फिर परस्पर मिलकर बैठते हैं। रात में हर समूह अपने-अपने सदस्यों के साथ अलग-अलग डेरों को लौट जाते हैं। एक गिरोह में पचास-पचास हजार पनडुब्बे तक रहते हैं पर उनमें कभी भी अधिकार के लिये झगड़ा होते नहीं देखा गया।

सामूहिकता की शक्ति, सामूहिकता का सुख शारीरिक समर्थता से भी हजार गुना सुखकर होता है। जो लोग, जो जातियाँ इस बात को जान लेती हैं, वे कभी दुःखी नहीं होतीं, कभी किसी से पराजित नहीं होतीं। विभिन्न वर्णों में बँटी हिन्दू जाति अपनी प्रगाढ़ सामाजिकता, सामूहिकता, मैत्री, प्रेम, विश्वास और एक का हित दूसरे से सम्बद्ध मानती रहीं—तब तक इसे कोई जीत न पाया यह कौम हारी—तब जब जाति-पाँति, वर्ण भेद, प्रान्त-प्रदेश के नाम पर फूट पड़ी, इन बुराइयों को निकाल सके तो हम किसी भी समर्थ और जिन्दादिल कौम की तरह दुनिया में सर्वोपरि हो सकते हैं।

सामूहिक चेतना की आवश्यकता

हमारे जीवन के दो बिन्दु हैं—एक व्यक्तिगत, दूसरा समष्टिगत। दो बिन्दुओं के संयोग से ही एक सरल रेखा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनती है। व्यक्ति और समष्टि के बिन्दुओं को मिला देने पर ही जीवन यात्रा का मार्ग बनता है। यद्यपि ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, दोनों का अपना-अपना महत्व है। व्यक्तियों के समूह से ही समाज का निर्माण होता है तो व्यक्ति भी समाज की ही देन है फिर भी हमारी गति-दिशा व्यक्ति से समाज की ओर है। समष्टिगत-जीवन ही हमारा ध्येय बिन्दु है। एक हमारी जीवन यात्रा का प्रारम्भ स्थान है तो दूसरा गन्तव्य। व्यक्तिगत जीवन अपूर्ण है। वह सामाजिक जीवन में आत्मसात होकर ही पूर्ण बनता है। ठीक उसी तरह जैसे नदी, समुद्र आदि में बिन्दु मिलकर पूर्णता प्राप्त करता है।

व्यक्ति और कुटुम्ब मरते हैं, नष्ट होते रहते हैं, नये पैदा भी होते हैं किन्तु समष्टि का जीवन अखण्ड है, अनन्त है, सदा-सदा चलता रहता है। व्यक्तिगत जीवन सामयिक, बरसाती नदी-नालों की तरह है किन्तु समाज तो चिर-प्रवाहिता सुरसरी की तरह है, जो कभी रुकती ही नहीं। यह समष्टि जीवन अनन्त है। वह नित्य प्रवाहित और सारभूत पूर्णतत्व है। इसके विपरीत व्यक्ति और उसका आकार-प्रकार अनित्य, अस्थायी, अल्पजीवी, असार है। जो नित्य है, स्थायी और अनन्त है उस समष्टिगत जीवन को लक्ष्य करके यात्रा करना व्यक्ति का अभीष्ट धर्म है।

समाज से परे एकाकी रहकर तो व्यक्तिगत जीवन का भी विकास सम्भव नहीं है। जीवन विकास के अनुकूल साधन, परिस्थितियाँ, समाज ही जुटा सकता है। विभिन्न शिक्षण संस्थायें, उनमें काम करने वाले व्यक्ति, जीवन-निर्वाह के साधन, ज्ञान, विज्ञान, आविष्कार, अन्वेषण के व्यापक कार्यक्रम क्या एक व्यक्ति से सम्भव हैं ? हमारे दैनिक काम में आने वाली विभिन्न वस्तुएँ, कपड़ा, अन्न, मकान, रेल, टेलीफोन, मोटरें, बिजली आदि के निर्माण, उत्पादन-व्यवस्था में कितने व्यक्तियों का हाथ रहा है अब तक ? इसका हम अनुमान भी नहीं लगा सकते। समाज के सहयोग के अभाव में हम एक कदम भी तो आगे नहीं चल सकते। हम एक दिन भी तो जीवित नहीं रह सकते। समाज में रहकर ही हमारा जीवन सम्भव है। इसी के बीच शक्तियों और गुणों का विकास हो सकता है। अस्तु, समष्टिगत जीवन को ही हम अपना ध्येय बनावें। उसी को शक्तिशाली और समर्थ बनाने में अपना योग दें। सामाजिक जीवन जितना समर्थ, विकसित और व्यवस्थित होगा उतना ही व्यक्ति भी विकास और उन्नति के महान् अवसर प्राप्त कर सकेगा।

एकाकी व्यक्ति तो सुख भी नहीं भोग सकता। जिसे हम सुख और आनन्द कहते हैं, वह भी तो समाज की ही एक स्थिति है। सुख के स्वर्ग में भी यदि मनुष्य को एकाकी छोड़ दिया जाय तो वह उससे ऊब जायगा और भयभीत हो उठेगा। दूसरों के साथ ही मनुष्य सुख-आनन्द मना सकता है। अक्सर हम प्रकृति की दी हुई वस्तुओं को अपने अनुकूल बनाकर, उन्हें अपने लिए संग्रह कर अधिक सुखी होने का प्रयत्न करते रहते हैं। मुझे अधिकाधिक सुख मिले ऐसा ही तो होता है हमारा प्रयास। किन्तु अथक् परिश्रम करते, रात-दिन लगे रहने पर भी तो हमें उस स्थिति का सन्तोष नहीं मिलता, जहाँ हम कह सकें कि 'सुख मिल गया।' इतना ही नहीं हमारे ये व्यक्तिगत सुख प्राप्ति के प्रयास भी अनन्तः दुःखों का कारण बन जाते हैं। व्यक्तिगत सुख चाहे कितना ही क्यों न हो वह सीमित है और अन्ततोगत्वा दुःख में परिणित होकर हमारी अशान्ति का कारण बनता है।

आनन्द, सुख वस्तुतः आत्मा के गुण हैं। इससे ये सार्वभौमिक भी हैं। समष्टि के साथ मिलने वाला सुख ही हमें आनन्द दे सकता है। इसलिए निजी सुख के बजाय समष्टि के सुख को महत्व देना, उसे सर्वोपरि मानना सुखी होने का आधार है।

इसलिए जीवन के सभी क्षेत्रों में हमारा ध्येय समष्टिगत है, सामाजिक है। हमारा कार्य-व्यवहार सामाजिक जीवन को परिपुष्ट और विकसित करने के लिए है। समाज जितना उत्कृष्ट होगा उतना ही व्यक्ति भी उन्नति और विकास के अवसर प्राप्त कर सकेगा। स्वामी रामतीर्थ ने कहा था—"तुम समाज के साथ ही ऊपर उठ सकते हो और समाज के साथ ही तुम्हें नीचे गिरना होगा। यह तो नितान्त असम्भव है कि कोई व्यक्ति अपूर्ण समाज में पूर्ण बन सके। क्या हाथ अपने शरीर से पृथक् रहकर बलशाली बन सकता है ? कदापि नहीं।" समाज के साथ ही हमारी स्थिति भी चलती है।

जिस समाज में व्यक्ति अपने-अपने लाभ, अपने सुख, अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं की प्रेरणा से जीते हैं, अपनी व्यक्तिगत जरूरतें पूर्ण करने में ही जीवन बिताते हैं, वह समाज विश्रंखलित हो जाता है। सामूहिक ध्येय के अभाव में व्यक्ति की गति स्वकेन्द्रित रहती है तो वह समाज नष्ट हो जाता है। चाहे उसमें कितने ही बड़े विद्वान्, योद्धा, राजनीतिज्ञ, शक्तिशाली व्यक्तित्व क्यों न हों ? शास्त्रकार ने लिखा—

बहवो यत्र नेतारः सर्वे पण्डित-मानिनः।
सर्वे महत्वमिच्छन्ति तद्वृन्दमवसीदति।।

"जहाँ बहुत से नेता हैं, सभी अपने को पण्डित मानने वाले अहंकारी हैं और सभी अपनी-अपनी महत्ता चाहते हैं वह समाज नष्ट हो जाता है।"

अपने ही हित की बात, अपनी महत्वाकांक्षा, अपना लाभ, अपनी उन्नति की बात चाहे वह धार्मिक हो या भौतिक, सामाजिक जीवन के लिए घातक है। हम जो कुछ भी करते हैं, सोचते हैं उसका आधार समष्टिगत न होकर जब व्यक्तिगत होता है तो अनेकों सामाजिक विषमतायें एवं संघर्ष पैदा हो जाते हैं और सार्वजनिक अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत जीवन भी खतरे में पड़ जाता है।

स्मरण रहे व्यक्ति और समाज की उन्नति साथ-साथ चलती है। यदि समाज कमजोर, विशृंखल, अव्यवस्थित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होगा तो व्यक्ति के विकास में समर्थ न हो सकेगा। न वह व्यक्ति की रक्षा कर सकेगा। सामूहिक शक्ति के अभाव में व्यक्ति भी दूसरों द्वारा शोषित होगा। उसे अन्याय, अत्याचार का सामना करना पड़ेगा। इतिहास इस बात का साक्षी है कि इसी कमजोरी के कारण, सामाजिक चेतना के अभाव में, अपने ही लाभ और सुख को मान्यता देने के कारण हमें विदेशियों के आक्रमण तथा अत्याचार के दिन देखने पड़े। महमूद गौरी, गजनवी, तैमूरलंग, नादिरशाह को हमारी सामाजिक विशृंखलता, व्यक्तिवाद के कारण ही सफलता मिली अपने पैर जमाने में। हमारी धार्मिक, सामाजिक आस्थाओं को इसीलिए नष्ट-भ्रष्ट होना पड़ा। हमारी अपार सम्पत्ति इसी कारण विदेशों में चली गई और यही प्रमुख कारण था कि हमें शताब्दियों तक गुलामी का जीवन बिताना पड़ा। हम अपने ही मसलों में उलझे रहे। अपने स्वार्थ की पूर्ति में लगे रहे। हमारा कोई सामूहिक ध्येय नहीं था, उस समय। हालांकि उस समय कई विद्वान् भी थे, धनी सम्पत्तिशाली भी थे किन्तु सामाजिक चेतना के अभाव में अपना तथा जन-जीवन का अपमान-शोषण वे नहीं रोक सके। इस व्यक्तिवाद के कारण हमारी बहुत बड़ी पराजय हुई जिसकी क्षतिपूर्ति हमारा समाज अभी तक नहीं कर पा रहा है। सामूहिक ध्येय को भुलाकर व्यक्तिगत स्वार्थों में लिप्त रहने की त्रुटि का परिणाम हम बहुत समय से भोगते आये हैं।

जिस समाज की शक्तियाँ एक दिशा में मिलकर काम करती हैं, जहाँ समान ध्येय, समान आदर्श, परम्परायें, संस्कृति, सभ्यता एक होती हैं वह समाज जल्दी ही विकसित और समृद्धिवान् हो जाता है।

हममें से प्रत्येक का ध्येय समष्टि जीवन को पुष्ट और समृद्ध बनाने का हो। समाज सेवा का ऐसा व्रत, जिससे सामाजिक आदर्श श्रद्धा को बल मिले, परस्पर के संघर्ष और विग्रह दूर होवें, समता एकता बढ़े और सभी लोग सुख-शान्ति, वैभवपूर्ण जीवन बितायें, लेना चाहिए कि आवश्यकता पड़ने पर समष्टि के हितार्थ व्यक्तिगत लाभ का त्याग करने में भी न चूकें हम।

सामूहिक हित चिन्तन का भी ध्यान रखें

दो के युग्म इसलिए बने हैं कि वे दोनों मिलकर अपूर्णता को पूरी करने में समर्थ हो सकें। एक आँख का काना, एक हाथ का टूटा, एक पैर का लँगड़ा कहलाता है। वे किसी प्रकार काम तो चला लेते हैं, पर उस शोभा और सुविधा को गँवा बैठते हैं, जो मिल-जुलकर सहयोग के सहारे बन पड़ती है। एक पहिए की गाड़ी लम्बी मंजिल ठीक तरह पार नहीं कर पाती। नर-नारी का युग्म इसीलिए बना है कि एकाकीपन में जो कमी रह जाती है, उसे पूरा किया जा सके।

'मित्र' शब्द वहीं प्रयुक्त होता है, जहाँ एक-दूसरे को उठाने-बढ़ाने और समग्र बनाने में सहायता करे। इसके विपरीत आचरण जहाँ भी होता दिखाई पड़े, समझना चाहिए कि चालू समय की वही प्रथा कार्यान्वित हो रही है, जिसमें मित्र के नाम पर शत्रुता का आचरण किया जाता है। कोई समय था जब लोग अपना अभिप्राय स्पष्ट कर देते थे। शत्रु से शत्रुवत् व्यवहार करते थे और मित्र के साथ मित्रवत्। मित्र के साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिए, जो उसके तात्पर्य को सच्चे अर्थों में पूरा करता हो। छल और प्रपंच की प्रधानता के इस जमाने में ठीक इसका उल्टा व्यवहार देखा जाता है। किसी को मित्रता का आश्वासन देकर उसे ठग लेना, विश्वासघाती प्रयोजन पूरा करना सरल पड़ता है। दूसरा पक्ष धोखे में रहता है, तो सतर्कता बरतनी चाहिए, उसे नहीं बरत पाता। किसी को मित्र बनाकर उसे सरलतापूर्वक ठगा जा सकता है, कारण कि उसे आशंका न रहने पर सतर्कता बरतने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती। इस भ्रम में विश्वासी मारा जाता है। नये समय का इसे एक प्रचलन ही समझना चाहिए कि शत्रुता का उद्देश्य पूरा करने के लिए उसे मित्रता के जाल में फँसाया जाता है और पीछे निश्चिन्ततापूर्वक हलाल किया जाता है।

स्त्री पक्ष शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अपेक्षाकृत दुर्बल पाया जाता है। उसमें भावुकता की मात्रा भी अधिक होती है। इन दोनों की पूर्ति का आश्वासन देकर पुरुष द्वारा स्त्रियाँ प्रायः अधिक ठगी जाती हैं। उनके साथ अधिक अत्याचार होता है। किशोरावस्था अधिक सुन्दर लगती है और भावुकता की मात्रा भी अधिक होती है। इन दोनों सरलताओं को देखकर आमतौर से किशोरियों को जाल में फँसाने, बदनाम करने और भविष्य को अन्धकारमय बनाने का पुरुषों को अधिक सरलतापूर्वक अवसर मिल जाता है। पता तब चलता है, जब हानि का प्रत्यक्ष स्वरूप सामने आ खड़ा होता है। तब पछताना और कोसना ही हाथ रह जाता है। प्रतिशोध लेने और प्रत्याक्रमण करने की बात भी उस दुर्बल मनोबल की स्थिति में बन नहीं पाती।

मित्रता का पवित्र और सही कर्तव्य यह है कि दुर्बल पक्ष में जो कमी हो, साथी में जो कमी हो उसकी पूर्ति के लिए पूरी सच्चाई के साथ प्रयत्न करे। स्त्रियाँ शरीर से अपेक्षाकृत दुर्बल होती हैं। साथी पुरुष का कर्तव्य है कि उसकी पूर्ति उचित आहार और संतुलित श्रम की व्यवस्था बनाकर पूरी करे। गर्भधारण में नारी को कितनी क्षति पहुँचती है, यह सर्वविदित है। कई बार तो उसके प्राणों पर आ बनती है। बहुमूल्य जीवन तत्वों का निचुड़ जाना और स्वस्थता की दृष्टि से अधिक कमजोर होना, इसके अतिरिक्त हैं। इस क्षति से जिस प्रकार साथी को बचाया जा सके, बचाना चाहिए। सद्भावना का यही सच्चा स्वरूप हो सकता है। इस हेतु अपनी कुदृष्टि और कामुकता पर संयम लगाया जाना चाहिए, ताकि वासना का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राई-रत्ती प्रलोभन देकर नारी को सामयिक और दीर्घजीवी हानि उठाते हुए भविष्य में पश्चात्ताप न करना पड़े। ठीक यही नीति नारी की भी नर के सम्बन्ध में होनी चाहिए। भूखी कामुकता का प्रदर्शन करके उसे वासना के कुचक्र से यथासंभव दूर ही रखना चाहिए। संयम स्थिर स्वास्थ्य का सुनिश्चित आधार है, इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए। वासना उत्तेजित करके साथी की जीवनी शक्ति का क्षरण करना किसी भी प्रकार मित्रता का चिन्ह नहीं है। यह प्रलोभन के चंगुल में फँसाकर साथी के ऊपर अनेकों मुसीबतें डाल देना ही है। स्त्री की जो हानि होती है, वह तो आँखों से भी देखी जा सकती है, पर ध्यान यह भी रखना चाहिए कि पुरुष भी उस प्रलोभन में आकर किसी प्रकार फँसे नहीं। उसे भी मछुआरे के जाल में फँसी मछली एवं चिड़ीमार के प्रपंच से आकर्षित होने वाले पक्षी की तरह दुर्गति का भाजन ही होना पड़ता है। आयु में पुरुष से छोटी होने और मानसिक दृष्टि से अनुभवहीन रहने के कारण इस प्रपंच में लड़कियों को अधिक फँसना पड़ता है और वे ही उस विश्वासघात के कष्ट आजीवन भुगतती हैं।

यदि पुरुष की समझदारी बढ़ी-चढ़ी हो, तो उसका कर्तव्य बनता है कि अपेक्षाकृत दुर्बल और कम समझ वाली साथी को ऐसे ही मार्ग पर चलाये, जिसके झूठे प्रलोभन के प्रपंच में फँसकर भविष्य में उसे रुग्णता, दुर्बलता और अकाल मृत्यु जैसे प्रपंच में न फँसना पड़े। सभी जानते हैं कि अपरिपक्व माता के बच्चे दुर्बल तो होते ही हैं, साथ ही उनकी अकाल मृत्यु भी अपेक्षाकृत कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी होती है। बचपन भावुकता प्रधान होने के कारण बाल मृत्यु का दुःख भी उन्हें अपेक्षाकृत कहीं अधिक होता है। इस प्रपंच में तो अपना मनोबल और भावुकता का उपयोगी अंश बुरी तरह नष्ट होता है।

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए पुरुष का विशेष कर्तव्य होता है कि जिस नारी के प्रति बराबर स्तर की दुहाई दी जाती है, उसे इस प्रकार छलावे में फुसलाकर कामुकता की ओर अग्रसर न करें।

एकान्त का जितना भी समय जिन दम्पत्ति को मिलता है, उनके लिए यही पावन कर्त्तव्य बनता है कि पत्नी जितनी पूर्व पढ़ी है, उसकी तुलना में उसे अधिक सुयोग्य, सुशिक्षित बनाने में उस समय का उपयोग करें, जिसका कि आमतौर से क्रीड़ा-विनोद में अपव्यय होता रहता है। इसी प्रकार बचे हुए समय को व्यायाम, मालिश आदि के श्रम-साधन में नियोजित करके यह प्रयत्न करें कि वह अधिक संयम बरते और अधिक स्वस्थ-समर्थ बनती रहे। प्रेम-प्रदर्शन का सच्चा मार्ग यही है, जिसमें साथी की क्षमता और योग्यता बढ़े। यदि प्यार के नाम पर जिस समय को नियत किया गया है, उसे नारी की योग्यता, क्षमता, दक्षता की अभिवृद्धि में लगाया गया हो, तो ही यह समझना चाहिए कि सद्भावना का सही उपयोग हुआ, अन्यथा वाक्जाल में फँसाने, उत्तेजित करके जीवनी शक्ति को निचोड़ने का यह कुचक्र ही होगा। इसी प्रेम-प्रदर्शन के नाम पर उसे क्षीण करते रहने का ही कुचक्र अपनाना कहा जायेगा और इसका दुष्परिणाम दोनों ही पक्षों को भुगतना पड़ेगा।

यदि नारी अधिक समझदार है, तो उसके लिए भी दूरदर्शितापूर्ण कर्तव्य यही बनता है कि साथी को अधिक संयमशील रहने के लिए समझाये और हानिकारक अनीति से बचने के लिए अपने प्रभाव का उपयोग करे।

शरीर को परिपक्व करने के लिए औसतन पच्चीस वर्ष का समय लगता है। नर और नारी दोनों को ही रज-वीर्य अथवा बल-वीर्य आदि को परिपक्व स्थिति तक पहुँचाने के लिए समान समय चाहिए। किसी का मासिक धर्म छोटी आयु में ही होने लगता है, इस आधार पर यह अनुमान नहीं लगाना चाहिए कि वह परिपक्व हो गई और गर्भधारण करने की स्थिति में पहुँच गई। विवाह-बन्धन से लेकर शरीर की परिपुष्टि में दोनों को ही प्रायः एक जितना समय लगता है। इसलिए यौनाचार के सम्बन्ध में यह प्रतिबन्ध दोनों पर ही समान रूप से लागू होता है कि पच्चीस वर्ष की आयु तक इस हानिकारक कुचक्र में न फँसे और समय से पूर्व अपनी जीवनी शक्ति का दुरुपयोग न होने दें।

नीम, बबूल, शहजन आदि के अपरिपक्व पौधों को कौतुकी लड़के किसी औजार से गोद देते हैं, फल यह होता है कि उस क्षत-विक्षत स्थान से गोंद निकलने लगता है। इस गोंद को कोई नासमझ अतिरिक्त उपलब्धि समझ सकता है, परन्तु वास्तविकता यह है कि उन पौधों का बढ़ना रुक जाता है और वे सूखने-कुम्हलाने लगते हैं। इस लाभ को पूरी तरह हानि ही समझना चाहिए। बाल-विवाह या अपरिपक्व यौनाचार को ही समझना चाहिए, जिसका प्रतिफल कुछ ही समय में भयंकर हानि के रूप में सामने आने लगता है। मूर्खता और समझदारी में यही प्रमुख अन्तर है कि मूर्ख तुरन्त के, तनिक से लाभ के लिए दूरवर्ती एवं अधिक मात्रा में होने वाली हानि पर ध्यान नहीं देते, जबकि समझदारी एक ही परामर्श देती है कि शक्ति को संचित करके रखा जाय और उसे महत्वपूर्ण प्रयोजनों के लिए खर्च किया जाय। कहना न होगा कि शारीरिक विकास और बौद्धिक परिपक्वता के लिए उचित, उपयुक्त और निर्धारित समय चाहिए। समय से पूर्व बर्बादी का क्रम अपना लेना अपने पैरों कुल्हाड़ी मारने के समान है। क्षुद्र प्रयोजन के लिए, चिरस्थाई हानि के लिए आतुर हो उठना ऐसा ही निर्णय है, जिसकी हर प्रकार निन्दा ही करनी चाहिए।

इन दिनों जनसंख्या की वृद्धि असाधारण स्तर पर बढ़ रही है। इसमें उत्पादनकर्त्ताओं की प्रत्यक्ष शक्ति तो है ही, साथ ही उससे भी बड़ी हानि यह होती है कि उपभोक्ताओं का बढ़ना और तदनुरूप उपभोग सामग्री की पूर्ति न हो सकना समग्र देश को दुर्बल, अभावग्रस्त बनाने के समान है। अभावग्रस्त दुर्बल नागरिकों का देश कभी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्थ एवं सुखी नहीं हो सकता। उसका विकास रुकता है और संकट बढ़ता है, इसलिए अनावश्यक जनसंख्या वृद्धि को एक प्रकार का देश-द्रोह ही माना जाता है। उस दुर्बलता का व्यापक प्रभाव होता है। आर्थिक, सामाजिक, शारीरिक, मानसिक, साहित्यिक सभी प्रकार की क्षति बढ़ती चलती है। फलतः ऐसा देश दुर्बल बनता, जाता और अनेक प्रकार के अभावों को सदा सहता है। इस प्रकार की क्षति का निरांकरण करते हुए हर व्यक्ति को इसकी हानि को अनुभव करना चाहिए। जिन्हें देश, धर्म, समाज और संस्कृति की समर्थता का, अभिवृद्धि का ध्यान है उन्हें परिपक्व आयु होने तक विवाह की दशा में कदम नहीं बढ़ाना चाहिए। इसका दुष्प्रभाव समूचे समाज पर पड़ता है और भावी पीढ़ियाँ क्रमशः अधिक दुर्बल होती चलती हैं। यह व्यक्तिगत स्वेच्छाचार न केवल निज को वरन् समूचे देश, समाज को कमजोर करता है, जिसका दुष्परिणाम मात्र अपराधकर्त्ताओं को ही नहीं, समूचे समुदाय को भुगतना पड़ता है और सार्वजनिक अहित ही होता है। समझदारी इसी में है कि हम सामूहिक हित को ध्यान रखते हुए समाज परिकर में रहें, अपना व सबका समान विकास होने की भावना मन में रखते हुए पारिवारिक जीवन जिएँ।

सामूहिकता ही मानवीय प्रगति का आधार है

मनुष्य एक सहकारी प्राणी है। सहकारिता ही उसकी अद्यावधि प्रगति का केन्द्रीय कारण एवं आधार है। एकाकी मनुष्य की तो अस्तित्व-रक्षा भी असम्भव है। जन्म से लेकर विकास की विभिन्न मंजिलों को पार करते हुए मृत्यु की गोद में सोने तक मनुष्य औरों का मुहताज होता है। फिर प्रेम, सदाचार, सेवा, न्याय-नीति सौजन्य, सौहार्द्र, उदारता, सहानुभूति आदि आनन्ददायक प्रवृत्तियों की तो बात ही क्या ? एकाकी मनुष्य के लिए तो उनसे परिचित हो पाना भी सम्भव नहीं। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, औद्योगिक, वैज्ञानिक विकास के आधार सामूहिक प्रयत्नों से ही एकत्र होते रहे हैं। मनुष्य के सुख-दुःख का बहुलांश दूसरों की क्रिया एवं व्यवस्था पर अवलम्बित है।

मनुष्य ही क्यों, वृक्ष-वनस्पतियों, कीट-पतंगों में भी सामूहिकता एवं सहयोग की प्रवृत्ति भरपूर है। धान के खेतों में चने के पौधों की उपयोगी शक्ति अंश मिलता है जो कि धान के पौधे छोड़ जाते हैं। चना की फसल उस अंश का सदुपयोग कर बढ़िया बनती है। फिर चने के पौधे भी धान के लिए उपयोगी अंश छोड़ देते हैं। अरहर ज्वार साथ-साथ बोए जाते हैं। अरहर नाइट्रोजन खींचकर ज्वार को भी उसका समुचित अंश देती रहती है और दोनों विकसित होते हैं। आम की सघन छाया में पान की बेलें और नारियल की छाया में इलायची फूलती-फलती हैं। चीकू का एक पेड़ अकेले में जितने फल देता है समूह में होने पर प्रत्येक पेड़ उससे अधिक फल देता है।

कीट-पतंगों के जीवन में सामाजिकता भरपूर होती है। चींटी की सामूहिकता प्रसिद्ध है। मधुमक्खियाँ द्वारा मधु संचय सामूहिकता की शक्ति द्वारा ही सम्पन्न होता है। कोई चूहा जब किसी दीमक के किले में घुसता है तो सैकड़ों दीमक संगठित आक्रमण कर अपने डंकों के प्रहार से उसे मार डालते हैं। पशु-पक्षियों में भी सामूहिकता की प्रवृत्ति के सुन्दर स्वरूप की झाँकी दिखाई पड़ती है। हाथी, हिरन, गाय आदि सामूहिकता के लाभों से भली-भाँति परिचित होते हैं और लाभ उठाते हैं।

जीवाणुओं की सामूहिक हलचल ही जीवन गति है। एकाकी जीवन असंभव ही है। यह समस्त विश्व एक शरीर की ही तरह है। मनुष्य इसी का एक अंग मात्र है। इसलिए सामूहिकता उसकी नियत ही है। अहंकार में की गई सामूहिकता की अवहेलना घातक सिद्ध होती है। समाज से अलगाव व्यक्ति को एकाकीपन तथा अभावों की पीड़क अनुभूति प्रदान करता है। सामूहिकता के अनेक अनुदान मनुष्य को विभूतिवान बनाते हैं। जो इन सम्पदाओं का सदुपयोग नहीं जानता वह दरिद्र ही रह जाता है।

यों फूल का अपना अलग महत्व भी है। पर महापुरुष या देवता के गले में लिपटने का सौभाग्य माला में गूँथने पर ही प्राप्त होता है। यह गूँथना तभी संभव है जब फूल सूत्रात्मा को आत्मसमर्पण कर दे। इस समस्त विश्व का सूत्रात्मा परमात्मा है। माला की मणियों या पुष्पों के मध्य पिरोए हुए धागे की तरह वही समस्त प्राणियों को परस्पर एक सूत्र में बाँधे है। बसन्त में वही प्रतिभासित हो रहा है। उस परमात्म सत्ता के बंधन में बँधे रहना ही श्रेयस्कर है। पृथकता के अहंकार से एकाकीपन की तुच्छता ही हाथ लगने वाली है।

विशाल सागर की हिलोरों में से प्रत्येक लहर का अस्तित्व भिन्न दिखाई तो पड़ सकता है पर अलगाव की आकांक्षा उन्हें बिखराव ही देगी, वे क्षणभर में प्रचंड सूर्य किरणों से वाष्पीकृत हो जायेंगी या किसी गड्ढे में पड़कर सूख जाएँगी। उनकी सरसता समाप्त हो जाएगी। ज्वार-भाटे का दृश्य वे सामूहिकता द्वारा ही पैदा करती-रहती हैं तथा स्वयं भी उन जीवन क्रीड़ाओं का आनन्द लेती रह सकती हैं। गरजती हुई ध्वनि नौकाओं को उलट देने वाली शक्ति भी तभी तक है जब तक वे अपने पृथक् अस्तित्व की मूढ़ आकांक्षा नहीं पालतीं।

ईंटों की सामूहिकता विशाल और आकर्षक भवन के रूप में गरिमा मंडित होती है। बादल की अंशभूत बूँदें मुक्त विहार तथा लोकजीवन में रस संचार की सुविधा एवं गौरव अर्जित करती हैं। पुर्जों का समन्वय ही मशीन के रूप में बड़े-बड़े क्रिया-कलाप सम्पादित करता है। योद्धाओं का समूह ही सेना कहलाता है और कर्मचारियों का संगठित स्वरूप विशेष ही शासन तंत्र बनता है। अन्तरिक्ष-यात्राएँ वैज्ञानिकों के सामूहिक प्रयासों का ही परिणाम हैं। मानव को उपलब्ध सम्पूर्ण ज्ञान-राशि की सामूहिक साधना और अनुभूति का परिणाम है। ज्ञान-विज्ञान और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रियाशीलता का एकमेव आधार सामूहिकता ही है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वस्तुतः व्यक्ति समूह का एक अविच्छिन्न घटक मात्र है। सामूहिकता में ही उसका विकास सम्भव है। व्यक्तिवाद, संकीर्णता से प्रेरित क्षुद्र स्वार्थ-साधनाएँ उसे दरिद्र और दयनीय ही बनाती हैं। दूसरों को पीछे छोड़कर एकाकी आगे बढ़ जाने की योजनाएँ अन्ततः अप्रत्याशित आपत्तियों से घिरी असफलता में ही जाकर समाप्त होती हैं। पृथकता तभी तक लाभदायक दीखती है, जब तक वह कल्पना में सीमित है, व्यावहारिक क्षेत्र में उतरने पर उसका खोखलापन ही सामने आता है।

समाज से अपने को पृथक् मानने की परिणति आशंका अनिश्चित और भय से भरी मनःस्थिति में ही होती है। निजी स्वार्थों के लिए नीति-मर्यादाओं का उल्लंघन कर समूह-स्वार्थ की उपेक्षा करते चलने पर उसे समष्टि सहयोग से तो वंचित रहना ही पड़ता है, जो आनन्द, उल्लास और सन्तोष का प्रमुख आधार है साथ ही प्रतिक्रिया स्वरूप न केवल लोकनिन्दा ही मिलती है, अपितु अन्ततः सामाजिक दंड भी भोगना ही पड़ता है। यदि धूर्ततापूर्ण छीना-झपटी से समाज में प्रतिष्ठा बना ली जाए तो भीतर असुरक्षा, आत्मीयता, आत्महीनता, अशान्ति और असन्तोष ही बढ़ता जाता है।

समिधाओं का एकाकी उपयोग विकृतियों को ही पैदा करता है। भीतर आत्मग्लानि से परिवार में आपाधापी मचती है, बाहर ईर्ष्या-द्वेष की वृद्धि होगी। अन्त में तिरस्कार, पतन और एकाकीपन ही हाथ लगता है। उस समय सामूहिकता की तीव्रतम इच्छा मन को मथती, ललचाती है पर समूह का विश्वास खो दिया गया है और एकाकीपन की घुटन बढ़ती ही जाती है।

व्यक्तिगत बड़प्पन का फेर हमें अन्ततः संकीर्णताओं में ही घेरकर रख देता है। आनन्दउल्लास का मार्ग यही है कि अपने आपको समाज का एक घटक अनुभव किया जाए। समूह का एक अंग हम हैं ही अतः उसी रूप में रहें। सबकी उन्नति में ही हमारी उन्नति है। यह तथ्य पहचानने पर ही प्रगति और उत्कर्ष सम्भव है। उपलब्ध प्रतिभा, सम्पदा एवं गरिमा समाज का ही अनुदान है, उसे सज्जनतापूर्वक समाज को लौटा देना ही कर्तव्य भी है और वही सच्ची उपलब्धियाँ भी बनता है।

राष्ट्र के प्रति हमारे दायित्व

पशु डण्डे के बल पर हाँके जाते हैं अतः उन्हें अपने उत्तरदायित्वों को समझने और निबाहने की आवश्यकता नहीं पड़ती, उनका स्वामी उनसे उनके दायित्वों का पालन करवाता रहता है। परतन्त्र राष्ट्र के नागरिकों को भी अपने राष्ट्रीय दायित्वों के प्रति सजग व सचेत रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि वे अपने शासकों द्वारा नियन्त्रित होते रहते हैं। उस समय तो उन्हें एक ही बात सूझ सकती है वह है स्वाधीन होने की।

स्वाधीन होने के साथ ही स्वतन्त्रता प्राप्त करने के साथ ही राष्ट्र के नागरिकों को जहाँ कई नये अधिकार मिलते हैं, वहीं उन पर स्वेच्छया पालन किये जाने वाले उत्तरदायित्वों का भार भी आ जाता है। इन उत्तरदायित्वों का पालन करना ही उनके लिये स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिकों का पात्रत्व सिद्ध करना है। किसी स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिक अपने अधिकारों को भोगने के लिये तो तैयार रहें पर अपने उत्तरदायित्वों की ओर ध्यान न दें तो समझना कि वे इस योग्य नहीं हुए हैं कि उन्हें स्वतन्त्रता दी जाय।

स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार तभी हो सकता है कि जब हम उसके लिये पात्रत्व सिद्ध करें। जानवरों के लिए स्वतन्त्रता का कोई अर्थ नहीं होता क्योंकि उनमें वह योग्यता ही नहीं कि वे स्वतन्त्र रह सकें। उन्हें खुला छोड़ा जाय तो वे नुक्सान ही करेंगे। उसी प्रकार किसी ऐसे देश के नागरिकों को स्वतन्त्रता मिल जाय कि जो उसके लिये योग्य नहीं है तो उनके लिये यह स्वतन्त्रता अनिष्टकारी ही सिद्ध होगी।

सन्तपाल ने अपने अनुयायियों को कहा था—'मेरे दोस्तो, तुम लोग स्वतन्त्र हो पर अपने स्वार्थ के लिए अपनी इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग मत करो।" स्वतन्त्र वही व्यक्ति रह सकता है, जिसने उसके साथ जुड़े अपने उत्तरदायित्वों को समझ लिया है। उसका अपने आप पर अनुशासन है, नियन्त्रण है, उसे किसी अन्य व्यक्ति के नियन्त्रण की आवश्यकता नहीं है। यही बात स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिकों पर भी लागू होती है।

प्रकृति की अपनी व्यवस्था को ही देखिये। उसने उन सब जीवों पर अपना नियन्त्रण रखा है, जो अपने आप पर नियन्त्रण नहीं रख सकते। उनको उसने मनुष्य की तरह स्वतन्त्र नहीं रखा। उन्हें न तो इतने साधन दिये, न सुविधाएँ और न सामर्थ्य। मनुष्य को यह सब इसलिये दिये गये कि वह अपने आप पर स्वयमेव नियन्त्रण रख सकता है। स्वतन्त्र और परतन्त्र राष्ट्र के नागरिकों की जिम्मेदारियों में भी इसी प्रकार का अन्तर रहता है।

चार्ल्स किंग्सले ने लिखा रहता है—स्वतन्त्रता दो प्रकार की होती है (१) गलत स्वतन्त्रता—जहाँ व्यक्ति अपनी इच्छानुसार कुछ भी कर सके (२) सही स्वतन्त्रता—जहाँ व्यक्ति जो वह कर सके, उसके लिये वह स्वतन्त्र हो। स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता में बड़ा अन्तर है। स्वतन्त्रता में तन्त्र अर्थात् व्यवस्था ज्यों की त्यों मौजूद है। 'स्वतन्त्रता शब्द के अर्थ को समझने का प्रयास करें तो बात समझ में आ जाती है। "अपने आप द्वारा व्यवस्था या अनुशासन में रहना" यही है स्वतन्त्रता का अर्थ। सच्ची आजादी वही है, जो दूसरों के अधिकारों में हस्तक्षेप न करे। दूसरों के अधिकारों में कोई हस्तक्षेप न करे इस बात की चिन्ता स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिक को स्वयं करनी होती है। परतन्त्रता के समय शासक उस पर नियन्त्रण रखकर यह सब करवाता था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वतन्त्रता, स्वच्छन्दता नहीं है। दूसरों के साथ खिलवाड़ करने और अपने स्वार्थ के लिये, अपने अनेकों देशवासियों का अहित करने का नाम स्वतन्त्रता नहीं है। व्यक्तिगत आजादी अपनी जगह बहुत बड़ी वस्तु है पर उसकी सीमा वहीं समाप्त हो जाती है, जहाँ दूसरे का हित और अधिकार आ जाता है। स्वतन्त्रता का अर्थ आत्मानुशासन है। वह किसी को इस शर्त पर मिलती है कि वह उसके लिये पात्रत्व विकसित कर ले।

हम स्वतन्त्र राष्ट्र के स्वतन्त्र नागरिक हैं। किन्तु देखने में यही आता है कि हम अभी उसके लिये अपना पात्रत्व विकसित नहीं कर पाये हैं। 'स्वतन्त्रता' का अर्थ हमने 'स्वच्छन्दता' ही लगाया है। हम कितना अपने पड़ोसी का ध्यान रखते हैं ? हमें अपने देशवासियों के साथ कितनी सहानुभूति है ? राष्ट्रीय सम्पत्ति के सदुपयोग का हम कितना ध्यान रखते हैं ? राष्ट्रहित के लिये हम अपने स्वार्थों पर कितना अंकुश रखते हैं ? हम अपने गरीब और विकासशील देश के सामान्य से सामान्य नागरिक के हितों का कितना ख्याल रखते हैं ? इन सब प्रश्नों का उत्तर देते समय हम अपने आप समझ जायेंगे कि हम अपनी आजादी के उत्तरदायित्व को कितना समझ पाये है ? कितना निभा पाये हैं ?

बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि हम आजाद देश के जिम्मेदार नागरिक की परीक्षा में प्रायः अनुत्तीर्ण ही रहते आये हैं। हमारा अपना एक राष्ट्र है। उसका अपना राष्ट्रीय ध्वज है। राष्ट्रीय गीत है। उनके सम्मान के लिये हमीं ने कुछ नियम बनाये हैं। हम उन नियमों का पालन कर अपने राष्ट्रीय भावना को कितना विकसित और उत्तेजित करते हैं, वह सबसे छिपा नहीं है। राष्ट्रगान बजने के अवसर पर हम में से कितने व्यक्ति ऐसे हैं, जो उसके प्रति सम्मान प्रकट करने के लिये सावधान की स्थिति में खड़े रहते हैं ?

राष्ट्र की सम्पदा को अपनी सम्पदा की तरह समझ कर उसकी रक्षा करना कितने लोग अपना दायित्व समझते हैं। यह बताने की आवश्यकता नहीं। राष्ट्रीय सम्पदा जिसे हम अपनी भाषा में सरकारी माल कहते हैं, उसके प्रति हमारी क्या दृष्टि रहती है ? यह सभी जानते हैं। सरकारी माल को जितना अधिक लूटा जाय उतना ही अच्छा, यही अधिकांश लोग सोचते हैं और वैसा ही आचरण भी करते हैं। कभी यह भी सोचने का प्रयास नहीं करते कि सरकार आखिर है किसकी ? हमीं लोगों को तो सरकार है।

हमारी राष्ट्रनिष्ठा का उदाहरण सामने है। सौ में से नब्बे प्रतिशत राष्ट्रीय उद्योग और कल-कारखाने घाटे में चल रहे हैं। इसका बहुत बड़ा कारण राष्ट्र की सम्पत्ति को अपनी सम्पत्ति से कम महत्व देने की हमारी हीन मनोवृत्ति ही है। राष्ट्र भवन की ईंटें चुरा-चुराकर अपने घर की दीवार में लगाते हुए हमें कतई शर्म नहीं आती।

एक प्राइवेट बस का मालिक यदि उसके पास एक 'मर्सिडिस' बस है, तो एक वर्ष में उससे इतनी कमाई कर लेता है कि दूसरे वर्ष वह एक वैसी ही बस और चला लेता है। लेकिन सरकारी रोडवेज विभाग के पास हजारों बसें होने, उनके अपने सुधार गृह और पेट्रोल पम्प होते हुए भी उनमें लाखों रुपयों का घाटा होता है। आखिर क्यों ? इसका एक ही कारण है और वह है हमारे लिये सरकारी माल-राष्ट्र की सम्पत्ति का कोई महत्व नहीं। हमें तो अपने घर से ही मतलब है। हम अनैतिक तरीके से राष्ट्र की सम्पत्ति को अपनी सम्पत्ति बनाने में हिचकिचाते नहीं।

जो लोग अपना घर भरने के लिये देश और समाज का बड़ा अहित करने से नहीं चूकते, ऐसे लोगों के विरुद्ध आवाज उठाने और उनकी अनीति का प्रतिकार करने का साहस कितने लोग करते हैं। आज हर क्षेत्र में बेईमानी, अनैतिकता, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, चोर-बाजारी आदि का बोलबाला है। राजनीतिज्ञों को देखें या सरकारी कर्मचारियों को देखें, व्यापारी वर्ग को देखें या आम जनता को सभी बस अपनी प्रगति चाहते हैं। अपने पड़ोसी की, अपने देश की, अपने समाज की प्रगति की कोई चिन्ता नहीं करता। इस गलत दृष्टि को सुधारने का प्रयत्न करने वाले दिखलाई नहीं देते। कितने व्यक्ति हैं जो इस भेड़चाल के विरुद्ध आवाज बुलन्द करते हैं या नैतिक पुनरुत्थान के कार्यों में सहयोग देते हैं ?

यहाँ एक अँग्रेजी कविता के हिन्दी रूपान्तर को प्रस्तुत कर देना अप्रासंगिक न होगा- "ऐसे गुलाम हैं, जो डरते हैं—बोलने से, दलितों और कमजोरों के पक्ष में। ऐसे गुलाम हैं जो आह्वान करते हैं घृणा, तिरस्कार और अपमान का और इस तरह चुप रह जाते हैं सच्चाई के लिए बोलने के वक्त। वे बस गुलाम हैं जो साथ नहीं देते सिर्फ सच्चे इन्सानों का इसलिये कि सच्चे लोग इने-गिने ही हैं।" कवि द्वारा प्रस्तुत गुलामी की कसौटी पर हम लोग खरे नहीं उतरते हैं क्या ? फिर किस मुँह से हम स्वतन्त्र होने का दम भरते हैं ?

आजादी आने के कई वर्ष बाद भी हमारे देश में गरीबी ज्यों की त्यों विद्यमान है। पाँचवी पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में बताया गया कि हमारे देश में पन्द्रह करोड़ लोग ऐसे हैं कि जो पैंतीस रुपये माहवार में अपना गुजारा करते हैं। क्या ऐसे लोगों के प्रति हम अपना दायित्व अनुभव करते हैं ?

राष्ट्रीयता की भावना हमारे में कितनी है ? इस प्रश्न के उत्तर में जो प्रतिशत आ सकता है, वह पाँच से आगे बढ़ने वाला नहीं है। हमारा व्यक्तिवाद हमें दिन पर दिन कमजोर और असहाय बनाता चला आ रहा है। हमारे देश के पास साधनों की जितनी कमी नहीं है, उतनी भावनाओं की है। हमारे विपरीत साधनों में हम से भी गरीब छोटा सा घना बसा हुआ देश, जिसकी राजधानी में ही सवा करोड़ लोग आबाद हैं, जापान अपने देशवासियों की राष्ट्रीयता की भावना के कारण ही आज विश्व की तीसरी शक्ति बना हुआ है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उन्हें अपने देश को आगे बढ़ाना है, इसलिये वे खूब मेहनत करते हैं। अपने पास जो कुछ साधन हैं, उनका एक-एक कण काम में लाते हैं। उनके लिये एक कागज की छोटी-सी चिन्दी भी फालूत नहीं होती। बाहर से कच्चा माल मँगाकर तैयार माल बाहर भेजने वाला जापान आज सुखी और समृद्ध है किन्तु भारत जैसा विशाल देश दूसरों का मुँह जोहता है।

पचपन करोड़ की जनशक्ति भी अपने आप में कम महत्वपूर्ण नहीं है—यदि वह अपने आपको एक राष्ट्र की भावना में पिरो दे तो। साधनों में भी हम समृद्ध न सही पर गरीब भी नहीं हैं। लेकिन हमारा व्यक्तिवादी दृष्टिकोण हमें पनपने नहीं देता। हम स्वतन्त्र नागरिक का दायित्व निभाते रहे होते तो हमें आजादी मिलने के इतने वर्ष बाद तक तो आर्थिक, सामाजिक व बौद्धिक स्वतन्त्रता भी मिल गयी होती।

अपने अधिकारों के लिये तो हम लोग हड़तालें करने में सबसे आगे हैं। इण्डियन एयर लाइन्स के कर्मचारियों को जो वेतन मिलता है, उसकी दूसरे कर्मचारी कल्पना भी नहीं कर सकते फिर भी वे हड़ताल करते हैं। काम कम से कम करें और वेतन अधिक से अधिक लेने का प्रयास करें तो यह गाड़ी कहाँ तक चल सकती है। समृद्धि का सम्बन्ध उत्पादन से है न कि मुद्रा प्रसार से। इसका अर्थ हम समझना ही नहीं चाहते।

हम यदि स्वतन्त्र राष्ट्र के जिम्मेदार नागरिक की तरह सोचने का प्रयास नहीं करते, वैसा आचरण नहीं करते तो हमें इस स्वतन्त्रता का कोई विशेष लाभ मिलने वाला नहीं है। यह बात आज भी सच है और हजार वर्षों बाद भी।

स्वतन्त्रता का अर्थ उच्छृंखलता नहीं है

स्वतंत्रता हर किसी को प्रिय होती है, परतंत्रता उतनी ही कष्टकारक अनुभव होती है। पराधीनता की जंजीरों में जकड़े समाज अथवा राष्ट्र का विकास अवरुद्ध हो जाता है। जिन जातियों अथवा देश पर किसी अन्य देश का प्रभुत्व-वर्चस्व होता है वे विकसित नहीं हो पाते। शोषण एवं दमन का चक्र चलता है। जिन देशों को अधिक समय तक गुलामी की बेड़ियाँ पहननी पड़ी हैं, वे प्रगति पथ पर उतना ही पिछड़ गये हैं, विश्व का राजनैतिक इतिहास इस बात का साक्षी है। अस्तु, पराधीनता की सर्वत्र भर्त्सना की जाती है और उसे एक अभिशाप माना जाता है।

कभी अपना देश प्रगति के शिखर पर था। यहाँ दूध-दही की नदियाँ बहती थीं। विदेशी इस देश को सोने की चिड़िया कहते थे। विश्व भर में भारत का वर्चस्व था। दुर्भाग्यवश राज्यों की आपसी फूट के कारण विदेशी आक्रमणकारियों एवं आतताइयों ने इस देश को कितनी ही बार रौंदा ? विपुल धन-सम्पत्ति लूटकर वे चलते बने। फूट के कारण ही देश को हजार वर्ष तक गुलाम रहना पड़ा। कभी मुगलों का आधिपत्य रहा, तो कभी अँग्रेजों का। शोषण एवं दमन के चक्र में भारतवासी एक हजार वर्ष तक पिसते रहे। यदि यह कहा जाय कि भारत अन्य मुल्कों की अपेक्षा इसी कारण हजार वर्ष पीछे रह गया तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस अवधि में देशवासियों का आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से बुरी तरह से शोषण हुआ और सांस्कृतिक दृष्टि से अवमूल्यन भी। इस अवधि को भारतवासियों के पतन और पराभव का युग कहा जा सकता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए देश की युवा चेतना ने एक करवट उन्नीसवीं सदी के अन्त में ली। प्रचण्ड आवेग एवं आवेश के तूफान ने गुलामी की सुदृढ़ जंजीरों को एक झटके में तोड़ दिया। राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्ति में कितनी ही माँगों के सिन्दूर पुँछे, कितनी ही माताओं की कोख खाली हुई और कितने ही आश्रितों के एकमात्र आश्रय टूटे। उन सभी घटनाओं का इतिहास पढ़ने-सुनने पर शरीर रोमांचित हो उठता है तथा अमर शहीदों के प्रति सिर श्रद्धा से झुक जाता है। अपनी आजादी की जो भारी कीमत चुकानी पड़ी है वह खून की कीमत पर ही प्राप्त हुई।

प्राप्त स्वतंत्रता की सार्थकता तब है जब हम उसका सही अर्थ समझें तथा स्वाधीनता का ठीक प्रकार उपयोग करें। स्वतंत्रता का अर्थ है सामाजिक नियमों एवं निर्धारित कानून व्यवस्था के अन्तर्गत रहते हुए, उनका परिपालन करते हुए विचारों की अभिव्यक्ति एवं स्वतंत्र रूप से कार्य करने की सुविधा। पर इस स्वतंत्रता की भी सीमाएँ हैं। ऐसे विचार अथवा क्रिया-कलाप जो समाज की सुव्यवस्था को तथा निर्धारित मर्यादाओं का उल्लंघन करते हैं, स्वतंत्रता की परिधि में नहीं आते। वे उच्छृंखलता को ही जन्म देते हैं। अनियंत्रित तथा अमर्यादित आचरण स्वतंत्रता का परिचायक नहीं है।

दुर्भाग्यवश अपने देश में स्वतंत्रता का अर्थ गलत लगाया गया। स्वतंत्रता के साथ अनुशासन अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है, जो निर्धारित कर्तव्यों का सतत् बोध कराता है। भ्रान्तिवश अधिकांश व्यक्ति अनुशासन को स्वतंत्रता का अंग नहीं मानते, फलतः वैयक्तिक स्वतंत्रता के नाम पर अनुशासनहीनता को बढ़ावा देते हैं। अपने देश में यह स्थिति इन दिनों चरम सीमा पर है, जो सर्वत्र देखी जा सकती है। इसका एक कारण यह है कि इतने वर्षों की गुलामी से मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानसिक पराधीनता की स्थिति आज भी किसी न किसी रूप में बनी हुई है। स्वतंत्रता का सही अर्थों में उपयोग करने की मानसिकता आज भी विकसित नहीं हो पायी है। दूसरा कारण देश में व्यापक स्तर पर फैली अशिक्षा है। अशिक्षा अज्ञान की जननी है, जिसके रहते प्रगति का पथ कभी भी प्रशस्त नहीं हो सकता।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गाँधीजी ने १९३०-४० के दशक में एक बार कहा था कि भारत को अभी स्वतंत्रता नहीं मिलनी चाहिए क्योंकि स्वतंत्रता के सदुपयोग की मानसिक एवं बौद्धिक पृष्ठभूमि अभी देशवासियों में नहीं विकसित हो पायी है। इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि वे पराधीनता के समर्थक थे बल्कि यह था कि वे इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे कि वर्षों की गुलामी ने भारतीय समाज एवं सम्बद्ध नागरिकों के मानसिक धरातल को बुरी तरह तहस-नहस किया है, जिसकी क्षतिपूर्ति न की गयी तो मात्र राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने से देश की प्रगति सम्भव नहीं है। आत्मानुशासन के अभाव में स्वतंत्रता का लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता।

एक सामाजिक प्राणी होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से अन्योन्याश्रित रूप से जुड़ा है। समाज से पृथक् उसका एकाकी विकास सम्भव नहीं। समाज में रहकर ही वह पल्लवित और पुष्पित होता है प्राप्त स्वतंत्रता जहाँ उसे अनेकानेक अधिकार देती है, वहाँ अनिवार्य रूप से जुड़े कर्तव्यों का भी बोध कराती है। अधिकारों की निर्धारित सीमा में रहना तथा वैयक्तिक तथा सामाजिक कर्तव्यों का भली भाँति पालन करना ही 'अनुशासन' है। अनुशासन के बिना स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं निकलता। सुसंचालन एवं सुव्यवस्था के लिए अनुशासन का महत्व सर्वोपरि है। समस्त सृष्टि का व्यापार ही अनुशासन के आधार पर चल रहा है। अपनी वैयक्तिक स्वतन्त्रता को अभिव्यक्त करते हुए भी ग्रह-नक्षत्र एक निश्चित कक्षा, मर्यादा में घूमते रहते तथा परिभ्रमण चक्र को सुसंतुलित बनाये रखते हैं। अनुशासन का उल्लंघन करने वाले अपनी स्वतंत्रता का मनमाना उपयोग करने वाले ग्रह-नक्षत्र एक-दूसरे से टकराकर अपना अस्तित्व तो गँवाते ही हैं दूसरे के लिए भी संकट पैदा करते हैं। ठीक इसी प्रकार स्वतंत्रता के नाम पर अनुशासन से रहित अपनायी गयी उच्छृंखलता व्यक्ति एवं समाज दोनों ही के लिए अन्ततः हानिकारक सिद्ध होती है।

किसी विद्वान की यह उक्ति वैयक्तिक स्वतंत्रता की सीमा तथा पारस्परिक व्यवहार के आचार शास्त्र को अधिक अच्छी प्रकार स्पष्ट करती है कि "मुट्ठियाँ भीच कर हवा में घूँसे चलाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है, लेकिन उसकी स्वतंत्रता की सीमा वहाँ जाकर समाप्त हो जाती है जहाँ कि किसी दूसरे व्यक्ति की नाक शुरू होती है।" व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं का नियमन वस्तुतः समाजगत अनुशासन से होता है। समाजगत अनुशासन का अर्थ है जिस समाज में हम रहते हैं, उसकी सुविधाओं का भी ध्यान रखें। उसके विकास की भी बात सोचें। नीति, मर्यादाओं एवं नागरिक नियमों का पालन करें। यह बात दीखने में छोटी लगते हुए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जिसके बिना हम सही अर्थों में सभ्य कहलाने के अधिकारी नहीं बन सकते।

स्वतंत्रता की सीमाओं का उल्लंघन करना उचित नहीं है। सनक उठते ही मर्यादाओं, सामाजिक नियमों तथा कानून व्यवस्था को तोड़ने तथा मनमाने ढंग से रौंदने की छूट दुनिया में केवल विक्षिप्तों को प्राप्त है। स्वतंत्र देश के सभ्य नागरिक को नहीं। इस तथ्य से अनभिज्ञ होने के कारण उच्छृंखलता बरतने वाले स्वयं तो कष्ट उठाते ही हैं, समाज की व्यवस्था भंग करने से कितनों को त्रास देते देखे जाते हैं।

स्वतंत्रता और परतंत्रता में जितना अन्तर है उतना ही अन्तर वस्तुतः स्वतंत्रता और उच्छृंखलता के बीच भी है। सही अर्थों में स्वतंत्रता मनुष्य के भीतर उस आत्म-नियंत्रण का विकास करती है, जिसके सहारे उसका व्यवहार अधिक सामाजिक बनता जाता है। जबकि उच्छृंखलता व्यक्ति में अनेकों प्रकार की मानसिक कुण्ठाओं तथा समाजगत अव्यवस्थाओं को जन्म देती है।

वस्तुतः स्वतंत्रता की सार्थकता तभी सिद्ध हो सकती है जब देश का प्रत्येक नागरिक अपने आचरण को अधिक सुसंस्कृत एवं अनुशासन परायण बनाये तथा वैयक्तिक एवं सामाजिक दायित्वों के निर्वाह के लिए हर सम्भव प्रयास करे।

सेवाभावी संगठन करें और दूसरा मार्ग अपनायें

एकाकी मनुष्य कितना ही परिपुष्ट क्यों न हो, वह प्रगति और सुरक्षा के क्षेत्र में सदा दुर्बल ही रहेगा। सामुदायिकता ही बलिष्ठता उत्पन्न करती है। भारत के बुद्धिमानों ने इसलिये संयुक्त परिवार का लाभदायक प्रचलन इस देश में रखा है। उसमें यदि कुछ खामियाँ न घुस पड़ीं तो अपने सुदृढ़ और सुव्यवस्थित परिवार मिल-जुलकर ऐसे राष्ट्र की रचना कर सकने में समर्थ रहे होते, जो सब प्रकार प्रगतिशील रहे होते। प्राचीन भारत की यह एकता-एकजुटता ही इतनी बड़ी सम्पदा थी, जिसके कारण वह स्वयं समर्थ रहा और अपनी क्षमता से सुदूर देशों को प्रगतिशील बनाने का श्रेय उपलब्ध करता रहा।

पाश्चात्य देशों में पारिवारिकता को महत्व नहीं दिया जाता। वहाँ समर्थ होते लड़के अपना अलग घर बसाते हैं और छोटे बच्चों तक ही अपना परिवार सीमित रखते हैं। वे बच्चे भी बड़े होते ही अपना अलग घर बसाते हैं। ऐसी दशा में किसी पर कोई हारी-बीमारी, अपगंता, दुर्घटना या अन्य प्रकार की विपत्ति आये तो फिर परिवार की सेवा-सहानुभूति नहीं मिलती। इस अनिश्चितता की स्थिति में उन्हें सदा असुरक्षा ही घेरे रहती है, जबकि भारत में किसी विधवा के बच्चे भी संयुक्त परिवार व्यवस्था के अन्तर्गत पढ़-लिख जाते और विवाह-शादी से लेकर स्वावलम्बी बनने तक का लाभ उठा लेते हैं। कृषि प्रधान होने के कारण यहाँ संयुक्त परिवार प्रथा चली और जीवित रही—ऐसा कहा जाता है तो भी यह निश्चित है कि एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संगठित परिवार के अन्तर्गत रहकर उसके हर सदस्य को भावनात्मक और सुरक्षात्मक लाभ मिलता है। यह पारिवारिकता संगठन विद्या का ही एक चमत्कार है। इसलिये उसे विकसित होना ही चाहिए।

हर वर्ग के अपने-अपने संगठन हैं। श्रमिकों की यूनियनें बनी हुई हैं। यह अच्छी बात है पर कमी इतनी ही है कि उसका लाभ केवल श्रमिकों के आर्थिक स्वार्थों की रक्षा करने भर तक सीमित रहता है। होना यह चाहिए कि उस समुदाय को वह पैसा उपयुक्त कार्मों में ही खर्च करने की सीख दें। नशा, जुआ आदि से बचायें। साथ ही रात्रि पाठशाला जैसे माध्यमों के द्वारा उनमें बौद्धिक उन्नति का उत्साह भरें। खेलकूद से लेकर स्वास्थ्य रक्षा क्षेत्र की न केवल जानकारियाँ दें, वरन् उन्हें क्रियान्वित करने के लिये भी अपने प्रभाव का उपयोग करें।

सेना एक संगठन ही है, जिसके सहारे राष्ट्र को सुरक्षात्मक निश्चिन्तता मिलती है। यदि वैसा प्रबन्ध न हो और ठीक विदेशी आक्रमण के समय योद्धाओं की पुकार की जाए, तो सीमित सहायता ही मिलेगी।

राजनैतिक पार्टियाँ भी अपने-अपने संगठन खड़े करती हैं और जनता का मानस अपने उद्देश्यों की ओर मोड़ने से लेकर चुनावों में वोट प्राप्त करने तक की तैयारी में लगी रहती हैं। यह संगठन उन्हें समय पर काम भी देते हैं।

राष्ट्र के नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक उत्कर्ष के लिये युग निर्माण योजना जैसे स्वयंसेवी संगठनों के और भी बनने और बढ़ने की आवश्यकता है। सरकार का ध्यान प्रधानतया 'गरीबी हटाओ' योजना के अन्तर्गत ऐसी सभायें या पंचायतें स्थापित करने की ओर है, जो आर्थिक प्रगति में सहयोग दे सकें। चूँकि आर्थिक प्रगति के लिये औद्योगिक या दूसरे प्रकार के धंधे आरम्भ करने या बढ़ाने की आवश्यकता होती है। इसलिये सरकारी ऋणों या अनुदानों की ही प्रधान भूमिका रहती है। इस कार्य के लिये यों सीधे सरकारी कर्मचारी ही पर्याप्त माने जाते रहे हैं, पर अब यह भी अनुभव किया जा रहा है कि अनुदान उपयुक्त हाथों में ही पहुँचे और उनका सही सुदपयोग हो। इसके लिये स्थान-स्थान पर स्वयंसेवी संगठनों का ऐसा निर्माण भी होना चाहिए जो देने वाले और लेने वाले के मध्य सदुपयोग की सुव्यवस्था कर सकें।

कुछ समय पूर्व "भारत सेवक समाज" का संगठन इसी निमित्त हुआ था। पर वह कुछ ही समय चलकर फेल हो गया। कारण कि सरकारी अनुदान प्राप्त करने वालों से लोग कुछ चाहते हैं। साथ ही मध्यवर्ती संगठनों के हाथ में कुछ अधिकार और आर्थिक हेरा-फेरी में हाथ गरम करने का अवसर देखकर दादा लोग उस संगठन में घुस जाते हैं। फलतः उस खींचतान में फजीहत ही होती है। सर्व सेवा संघ और खादी ग्रामोद्योग जैसे संगठन अभी भी जीवित हैं किन्तु प्रामाणिक व्यक्तियों की गहरी सेवाभावी लगन में कमी पड़ने से वे भी ज्यों-त्यों करके ही चल रहे हैं। पंचायतों को भी कई अधिकार मिले हैं। वे भी कुछ करने में समर्थ हैं, किन्तु संगठनों पर हावी दादा लोग और सरकारी कर्मचारियों में नोंच-खसोट की प्रवृत्ति का समाधान न निकल सकने में वे भी संघर्ष के अखाड़े ही बनकर रह रहीं हैं।

देखना यह है कि सरकारी तन्त्र पर निर्भर आर्थिक प्रयोजनों की पूर्ति करने वाले-गरीबी हटाओ जैसे उद्देश्यों की पूर्ति करने वाले अन्य विषय भी हैं क्या ? यदि हैं तो उनका प्रभाव आर्थिक उन्नति के समकक्ष न रुके। न्यूनाधिक मात्रा में ही सही, उन कार्यों को सरलतापूर्वक हाथ में लिया जा सकता है। भले ही वे कम महत्व के हों पर उनमें दादाओं से भिड़ने और सरकारी कर्मचारियों को प्रसन्न करने का झंझट नहीं है। वे लोग तो परस्पर अपनी गोटी बिठा लेते हैं, पर सरल स्वभाव, सीधे रास्ते के चलने वालों के लिये वह कठिन है। आर्थिक कार्यों को हाथ में लेने के लिये कितने लोग आतुर भी रहते हैं। इसलिये उस कीचड़ में फँसने की अपेक्षा हमें दूसरे ही काम हाथ में लेने चाहिए, जो दीखने में कम महत्व के प्रतीत होते हुए भी वस्तुतः वैसे हैं नहीं।

देश की आर्थिक ही नहीं, नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक समस्यायें भी कम भयावह नहीं हैं। इनके कारण जो प्रचलन चल पड़े हैं, उन्होंने भी गरीबी बढ़ाने में कम भूमिका नहीं निबाही है। उदाहरणार्थ, सामाजिक समस्याओं की ओर ध्यान दें तो पता चलेगा कि शादियों की धूमधाम में होने वाले खर्च और दहेज की संयुक्त राशि को मिलाकर देखा जाय तो वह गरीब परिवारों को भी हर शादी में हजारों का-दचका लगाती हैं। एक परिवार को चार शादियाँ भी करनी पड़ीं तो उसका खर्च पचास हजार से कम नहीं आता। यदि समाज सुधार आन्दोलन के अन्तर्गत इसे रोका जा सके तो वह भी सरकारी अनुदान में मिलने वाली राशि से कम नहीं अधिक ही बैठती है। फिर सरकार देगी कहाँ से ? उसे भी तो टैक्स लगाने एवं बढ़ाने पड़ेंगे। यह तो एक हाथ लेकर दूसरे हाथ में देने जैसा हुआ।

हमें मात्र गरीबों को ही नहीं, उसके कारणों को भी देखना चाहिए। इसके अतिरिक्त पिछड़ेपन के अन्यान्य पहलुओं पर भी दृष्टिपात करना चाहिए। चर्चा सामाजिक विकृतियों की चल रही है। इसमें मृतकभोज, देवी-देवताओं की मनौती, कितने ही व्यर्थ लोकाचार एवं तीर्थयात्रा पर खर्च होने वाली राशि भी दृष्टव्य है। यदि इसे दूसरी ओर मोड़ा जा सके तो प्रौढ़ शिक्षा की समस्या उतने ही धन से भली प्रकार पूरी हो सकती है।

देश में ३० प्रतिशत शिक्षित हैं और ७० प्रतिशत प्रौढ़ अशिक्षित। इस अशिक्षा के निवारणार्थ अपरान्ह-कालीन एवं रात्रि पाठशालाएँ चल सकती हैं। अध्यापन के लिये बैठे-ठाले शिक्षितों से विद्या ऋण चुकाने का आग्रह किया जा सकता है और उसी के सहारे बिना कोई बड़ी राशि एकत्रित किये उस महती समस्या का समाधान किया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रमदान और अंशदान की प्रवृत्ति यदि लोकसेवी संस्थाओं द्वारा चलाई जा सके तो भावनाशील श्रमदानी भी नित्य एक-दो घण्टे का समय देकर सामूहिक प्रयास से कितने ही उपयोगी कार्य कर सकते हैं। स्वच्छता का सर्वत्र अभाव दूर हो सकता है और मल-मूत्र की बर्बादी को खाद में बदलकर कृषि उपज को बढ़ाने का एक नया द्वार खुल सकता है। एक मुट्ठी अन्न यदि हर घर पीछे सृजन कार्यों में निकालने का आन्दोलन चल पड़े तो उतने भर से चल सकने वाली ढेरों सत्प्रवृत्तियाँ गिनाई जा सकती हैं।

सामाजिक समस्याओं का स्वरूप और समाधान समझाने के लिये जिन प्रचार साधनों की आवश्यकता है, उनको जुटाने में सरकारी अनुदान का झंझट नहीं है। युग निर्माण योजना द्वारा चलने वाले झोला पुस्तकालय इसके उदाहरण हैं। मुट्ठी फण्ड में इनका खर्च चल सकता है। पढ़ों को पढ़ाने और बिना पढ़ों को सुनाने की व्यवस्था के अन्तर्गत जन-जन को समय की माँग से अवगत किया जा सकता है। गाँव-गाँव संगीत मंडलियाँ गठित एवं शिक्षित करके उनके द्वारा होने वाले आयोजन देश के नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक पिछड़ेपन पर करारे प्रहार कर सकते हैं।

सेवाभावी लोगों को तलाश निकालना कठिन नहीं है। गाँधीजी ने लाखों सत्याग्रही जेल जाने के लिये ढूँढ़ निकाले थे। विनोबा ने लाखों एकड़ भूमि प्राप्त कर ली थी। धार्मिक मेलों में—रामलीला आदि में समय और पैसा खर्च करने वालों की कमी नहीं है। सद्भावनासम्पन्न व्यक्ति इस देश में कहीं अन्यत्र की तुलना में कम नहीं, अधिक ही हैं। आवश्यकता उनसे सम्पर्क साधने और घसीटकर मैदान में उतारने—दिशा मोड़ने भर की है। इस कार्य में जुटा जा सके तो सरकारी अनुदान प्राप्त करने के लिये भिक्षुकों की तरह गिड़गिड़ाने और जिस-तिस से जेब कटाने की आवश्यकता न पड़ेगी।

बेकारी की समस्या प्रेत-पिशाच जैसी लगती तो है पर देहात में काम आने वाली वस्तुओं को देहात में बनाने और इसके लिये एक-एक दो-दो हार्स पावर से चलने वाली मशीनें बनाने का प्रबन्ध करने भर से समस्या का समाधान हो सकता है। इसके लिये उन सहकारी संगठनों की आवश्यकता है, जो कच्चा माल बेचने और बना माल खरीदकर उसे उपयुक्त मण्डियों में खपा सकें। इतना कर गुजरने पर स्वयंसेवी संस्थाएँ 'गरीबी हटाओ' आन्दोलन को भी सफल बना सकती हैं। इससे हर हाथ को काम भी मिल सकता है।

युग निर्माण योजना संगठन द्वारा इन कार्यों में कितनी प्रगति हो सकी है, कितनी समस्याओं का कितना समाधान हुआ है, यह देखा और समझा जा सके तो सरकारी ऋण, अनुदान और रिश्वत का, दादाओं की चौधराई का झंझट सहज ही मिट सकता है और देश एवं समाज को वैसा प्रगतिशील बनाया जा सकता है, जिसकी कि कामना हर देशवासी को है।

बुद्धिजीवी अपने महत्त्व और दायित्व को पहिचानें

जनसाधारण उन्हीं बातों को मानते और अपनाते हैं जो उनकी समझ में आ जाती हैं। पर प्रत्येक बात को समझने और उसकी तह में जाकर वस्तुस्थिति का विश्लेषण करने की सामर्थ्य व्यक्ति में नहीं होती। इसके बावजूद भी मानदण्ड बदलते रहते हैं, व्यवस्थाओं का ढाँचा बदलता है और ऐसी भारी उथल-पुथल समय-समय पर मचती रहती है, जिसे क्रान्ति की संज्ञा दी जाती है। राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन की धारा मोड़ने वाली न जाने कितनी क्रांतियाँ हुई हैं और होती रहेंगी ? उन क्रान्तियों का केन्द्रीय तत्व यह रहा है कि लोगों ने प्रचलित मानदण्डों को व्यर्थ समझ लिया तथा उन्हें नकार दिया। एक अर्थ में लोगों ने नये जीवन मूल्यों को अपनाया।

जब सामान्य आदमी वस्तुस्थिति का विश्लेषण करने तथा प्रचलित मान्यताओं और परम्पराओं की उपयोगिता, अनुपयोगिता को समझने में समर्थ नहीं है तो प्रश्न उठता है कि अब तक इतने परिवर्तन, इतनी क्रान्तियाँ किस प्रकार सम्भव हो सकीं ? इसका उत्तर यह है कि समाज के मस्तिष्क कहे जाने वाले बुद्धिजीवी जनसमाज को जिस प्रकार का मार्गदर्शन देते हैं। लोकजीवन तब वैसी ही धारा अपनाता है। दुनिया के अन्य देशों का इतिहास न भी देखें तो अपने ही देश का इतिहास लें। आर्य युग से लेकर ब्रिटिश काल तक और अब भी समाज का मार्गदर्शन चन्द बुद्धिजीवियों ने किया है। प्राचीनकाल में तो बुद्धिजीवियों का एक वर्ग विशेष ही बना हुआ था जिसे समाज में सर्वोपरि महत्व का स्थान मिला हुआ था, समाज को एक शरीर की उपमा देते हुए उसका सिर ब्राह्मण को बताया गया था, जो सोचता-विचारता है तथा शरीर के अंग-प्रत्यंगों की गतिविधियों का संचालन और नियंत्रण करता है। ब्राह्मण तब जन्म से पैदा होने वाले वंश परम्परा के व्यक्ति का नाम नहीं था, वह पदवी तो हर उस व्यक्ति को मिल जाती थी, जो समाज का मार्गदर्शन करने की बौद्धिक क्षमता से सम्पन्न होता था।

समाज का वैचारिक दिशा निर्देश करने वाले व्यक्ति को चाहें ब्राह्मण कह लें, चाहे विचारक, चाहे बुद्धिजीवी कह लें, चाहें प्रबुद्ध व्यक्ति समाज को ऊँचा उठाने का श्रेय उन्हीं को रहता है। संसार में आज जितने भी उन्नत और विकासशील देश हैं, वे सब यकायक ही उन्नत या समृद्ध नहीं हो गये वरन् उन्हें ऊँचा उठाने के लिए कितने ही प्रबुद्ध व्यक्तियों ने काम किया है तथा अपना असाधारण योगदान दिया है।

इस प्रसंग में रूस की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और वैज्ञानिक प्रगति की मिसाल दी जाती है। बहुत कम लोग जानते होंगे कि इस शताब्दी से पूर्व उन्नीसवीं शताब्दी तक यहाँ तक कि बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पच्चीस-तीस वर्षों तक वहाँ की तीन चौथाई जनसंख्या से भी अधिक लोग अशिक्षित थे। फिर १९१८ में एक क्रान्ति हुई जिसे सफल बनाने में रूस के बुद्धिजीवियों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी और उसकी पृष्ठभूमि बनाने के लिए अनथक प्रयास किया था। उस क्रान्ति की सफलता के पीछे पढ़े-लिखे और बुद्धिजीवी व्यक्तियों की लगन, उनकी परिश्रम-निष्ठा तथा त्याग का एक स्वर्णिम अध्याय जुड़ा हुआ है।

अकेले शिक्षा के क्षेत्र में ही चालीस वर्षों के भीतर जो प्रगति हुई उसका लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए विद्वान रूसी लेखक ए. पुत्को ने एक स्थान पर बताया है कि १९२० में रूस के १० लाख लोगों में से कुल ३ हजार व्यक्ति ऐसे थे, जिन्हें उच्चतर स्कूल की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिल सका था। इसके साथ ही सरकार ने शिक्षित और बुद्धिजीवियों के सहयोग से निरक्षरता के उन्मूलन का अभियान युद्ध स्तर पर चलाया तथा देश में एक ऐसी सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली का गठन हुआ, जिससे अकाल और विनाश की परिस्थितियों में भी निरक्षरता उन्मूलन का कार्य अबाध गति से चलता रहे। इस अभियान को सांस्कृतिक क्रान्ति का नाम दिया गया। इसका एक उद्देश्य राष्ट्र में वैज्ञानिकों, लेखकों, कलाकारों तथा विशेषज्ञों के अभाव की पूर्ति करना भी था। इस आन्दोलन में लेनिन, कोंसतान्तिन, त्सियोल्कोवस्की एवं इवान पवलोव जैसे व्यक्ति अगुआ थे। जिन्होंने सम विचारक और विशेषज्ञ पैदा करने के साथ-साथ सांस्कृतिक क्रान्ति का प्रसार करने में अथक् परिश्रम और अपूर्व त्याग किया। परिणाम यह हुआ कि १९६० तक प्रत्येक व्यक्ति औसतन उच्चतर शिक्षा प्राप्त कर चुका था, हरेक आदमी अपने-अपने कार्य में विशेषज्ञ था।

रूस द्वारा शैक्षणिक क्षेत्र में की गयी प्रगति की ही यह झलक है। विज्ञान, उद्योग, इन्जीनियरिंग, कला तथा संस्कृति के क्षेत्र में रूस ने जो प्रगति की है, वह आज सारी दुनिया के सामने है और रूस की सरकार यह मानती है कि यह उपलब्धि श्रमजीवियों तथा कलाकारों के परस्पर सहयोग से ही सम्भव हो सकी है। रूस के बाद विश्व के समृद्धतम और धनी देश अमेरिका को देखें। अब से दो सौ वर्ष पूर्व वहाँ के लोग असभ्य और असंस्कृत थे पर वहाँ के बुद्धिजीवियों तथा प्रबुद्ध व्यक्तियों ने अपने धर्म कर्तव्य को पहचाना और राष्ट्र के नवनिर्माण यज्ञ में संलग्न हुये।

पूर्व की स्थिति और बाद की उपलब्धियों के तथ्य इस प्रकार हैं—"सन् १९१० में अमेरिका के कुल ९ व्यक्ति वहाँ की राजधानी वाशिंगटन में सरकारी अनुसंधान संस्थान की रूपरेखा लेकर एकत्र हुए। उन्होंने 'बुकिंग इन्स्टीट्यूट' नामक एक संस्था की स्थापना की। इसका उद्देश्य शान्तिपूर्ण ढंग से अमेरिकी समाज का व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना था। संस्थान ने प्रशासन, शिक्षण संस्थान, उद्योग-धन्धों तथा कला और विज्ञान के सभी क्षेत्रों को अपना कार्यक्षेत्र बनाया था तथा उसे दृष्टिगत रखते हुए कार्यक्रम बनाये थे। इन कार्यक्रमों की बुकिंग इन्स्टीट्यूट ने न केवल व्यवस्थित ढाँचा देकर उनका प्रचार किया वरन् वहाँ के प्रबुद्ध व्यक्तियों तक भी उन्हें पहुँचाया। अमेरिका के बुद्धिजीवियों ने इन कार्यक्रमों को एकमत से स्वीकार किया। इस अभियान में बॉव बुड, जौन गार्डिनर, चार्ली हैन जैसे प्रख्यात विचारक संलग्न हुए और कार्यक्रमों को आगे बढ़ाया। कहा जाता है कि बुकिंग इन्स्टीट्यूट ने लोगों के चिन्तन-प्रवाह को ऐसा मोड़ दिया जैसा कि वर्षों पूर्व ब्रिटेन में प्रोटेस्टेण्ट चर्च के अनुयायियों ने लोक-चिन्तन की दिशा मोड़ी थी।"

"चूँकि संस्थान ने अपने कार्यक्रमों का निर्धारण जनजीवन के प्रत्येक अंग को दृष्टिगत रखकर किया था। इसलिए सार्वजनिक नीति, अर्थ-व्यवस्था, परिवहन, निर्वाचन कानून, सरकारी नौकरी, मजदूर मालिकों के सम्बन्ध जैसे सभी क्षेत्र इस अभियान से प्रभावित हुए। कोई भी क्षेत्र परिवर्तन की इस लहर से अछूता नहीं रहा और न केवल कानूनी-प्रसंग वरन् सामाजिक रहन-सहन तथा राष्ट्रीय कार्यक्रम जैसे सभी क्षेत्रों में प्रगतिशील ठोस परिवर्तन हुए। अमेरिका की इस वैचारिक प्रगति का श्रेय मूल्यांकन करने वालों ने असंदिग्ध रूप से प्रबुद्ध व्यक्तियों को दिया।"

न केवल रूस और अमेरिका वरन् विश्व में जितने भी उन्नत देश हैं, उन सभी देशों में राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान, नये सृजन और नये अन्वेषण कार्यों के लिए बुद्धिजीवियों ने ही अगुआई की और अपनी बौद्धिक शक्ति का उपयोग किया। क्यूबा एक छोटा-सा देश है। वहाँ थोड़ी-सी जनसंख्या है और साधन स्रोत भी अपर्याप्त हैं। कुछ वर्ष पूर्व तक वहाँ के निवासियों का बौद्धिक स्तर भी काफी गिरा हुआ था तथा भावनाओं का दायरा भी संकुचित था। फलस्वरूप राष्ट्रीय हित, सामाजिकता और नागरिक कर्तव्य जैसी कोई भावना उनके हृदय को छूती नहीं थी। वहाँ का स्तर ऊँचा उठाने तथा लोगों की निरक्षरता दूर करने के लिए बुद्धिजीवियों ने अग्रणी भूमिका निबाही। यह निश्चित किया गया कि जितने भी पढ़े-लिखे लोग हैं, वे निरक्षरता निवारण तथा लोक शिक्षण की मुहिम सम्हालें। जितने भी शिक्षित व्यक्ति थे वे निरक्षर लोगों को ढूँढ़-ढूँढ़कर पढ़ाने लगे। कुछ ही वर्षों में इन प्रयासों के चमत्कारी परिणाम सामने आये। क्यूबा से निरक्षरता एकदम मिट गयी और देश के प्रति लोगों में भक्तिभाव इस कदर जागा कि हर कोई राष्ट्रीय स्वाभिमान की रक्षा के लिए मरने-मिटने पर उतारू हो गये।

सभी उदाहरणों और राष्ट्रीय सामाजिक प्रगति के मूल में बुद्धिजीवी व्यक्तियों का आधारभूत योगदान रहा है। लेकिन वे यह महान् साधना तभी सम्पन्न कर सके हैं जबकि उन्होंने अपने निजी स्वार्थों को तिलांजलि दे डाली हो। जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक प्रयासों को निजी स्वार्थ की संज्ञा नहीं दी जा सकती। पर जब व्यक्ति अपनी सुख-सुविधा को ही महत्व देने लगे, विलासितापूर्ण जीवन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को अपना लक्ष्य बना ले तथा उसके लिए अपनी बौद्धिक शक्ति का दुरुपयोग करने लगे तो न केवल समाज की हानि होती है वरन् व्यक्तिगत रूप से उसे भी घाटे में ही रहना पड़ता।

प्राचीनकाल में ब्राह्मण जीवन की निश्चित निर्धारित मर्यादायें थीं। समाज का मस्तिष्क कहे जाने वाले इस वर्ग के व्यक्ति अपने घर में अगले दिन का धान्य नहीं रखते थे। अपरिग्रह व्रत का कठोरतापूर्वक पालन करने वाले ब्राह्मणों को क्या किन्हीं अभावों का सामना करना पड़ा ? नहीं ! समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने उपार्जन में ब्राह्मण का एक भाग अलग रखता था और उसके निर्वाह के लिए सौंपता था। पर ब्राह्मणों के मस्तिष्क में जब स्वार्थ-लिप्सा ने प्रवेश किया तो वे लोगों को दिग्भ्रान्त करने लगे। दान-पुण्य की महिमा बताकर जनता का अनुचित शोषण किया गया, नैतिक नियमों को ढीलाकर दान से ही सब का सब प्रकार कल्याण होने की बातें समझायी जाने लगीं। परिणाम यह हुआ कि जनसाधारण नैतिक आदर्शों की उपेक्षा करने लगा। निष्ठा और समाज देवता के प्रति भक्ति-भाव में इससे जो कमजोरी आयी उसका फल हजार वर्षों की गुलामी के रूप में भुगतना पड़ा। तब क्या ब्राह्मण सुरक्षित रह सके ? नहीं ! आक्रान्ताओं ने सर्वप्रथम उन्हें ही कमजोर करने की ओर ध्यान केन्द्रित किया।

अभी पिछले पचास वर्ष में स्वतन्त्रता की जो लड़ाई लड़ी गयी उसमें ब्राह्मणों ने, बुद्धिजीवियों ने अपनी गल्ती को समझा और सही दिशा में प्रयास किये। वे जन-जागरण के लिए प्रयत्नशील हुए तथा जनता के रक्त में उबाल लाने के लिए संघर्ष करते रहे तो उसके सुखद परिणाम भी सामने आये। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही यह आवश्यकता अनुभव की जाने लगी कि लक्ष्य प्राप्ति का यह तो एक पड़ाव भर है अभी बहुत कुछ करना है। उदाहरण के लिए, सामाजिक परिवर्तन, कुरीतियों और कुप्रथाओं का संशोधन जैसे अनेकानेक लक्ष्य हैं, जिन्हें प्राप्त किये बिना राष्ट्र सुखी और समुन्नत नहीं बन सकता।

पर यह पहलू खेदजनक ही है कि प्रबुद्ध व्यक्ति पुनः तन्द्राग्रस्त हो गये और स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् स्वार्थ-लिप्सा की गिरफ्त में जकड़े जाने लगे। यह कोई शुभ लक्षण नहीं है और जल्दी ही इस तन्द्रा को तोड़ा नहीं गया तो और भी भयावह परिणाम सामने आ सकते हैं। कहा जा चुका है कि प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक देश में होने वाले परिवर्तन में बुद्धिजीवियों की भूमिका प्रमुख रहती है। आदि काल से लेकर अब तक समाज व्यवस्था, रीति-रिवाज और प्रथा-परम्पराओं का निर्धारण तथा संचालन प्रबुद्ध व्यक्तियों के ही हाथ में रहा है। होने वाले परिवर्तनों के परिणाम की सम्भावना इस अध्ययन से आँकी जा सकती है कि प्रबुद्ध व्यक्तियों की मनोदशा कैसी रही ? उपलब्धियों का स्वरूप क्या रहा और बुद्धिजीवियों का झुकाव किस ओर रहा ?

यह निर्विवाद सत्य है कि विवेचन और विश्लेषण के रूप में ही मनुष्य अपनी शक्ति का सार्थक, अनर्थक और निरर्थक उपयोग कर सकता है। इस उपयोग का नेतृत्व वे लोग करते हैं, जो बौद्धिक दृष्टि से प्रतिभासम्पन्न है। इसलिए प्रबुद्ध व्यक्तियों को चाहिए कि वे अपने स्वरूप तथा स्थान के अनुसार अपने दायित्व को पहचानें तथा अपने आस-पास के वातावरण, जनसमाज की मानसिक बनावट, उनके रहन-सहन और रीति-रिवाजों का अध्ययन करें तथा अपना कर्तव्य निबाहें ताकि समाज में सुखद परिवर्तन लाये जा सकें।

प्रतिभाएँ अपना ही नहीं, देश का भविष्य भी सोचें

कम समय और श्रम में अधिक उपार्जन की लालसा के कारण प्रतिवर्ष लाखों शिक्षित तथा अशिक्षित ग्रामीण युवक गाँवों से शहरों की ओर भागते हैं। सर्वविदित है कि भारत एक गाँव प्रधान देश है। अभी भी देश की ७५ प्रतिशत आबादी गाँवों में रहती है। अधिकांश गाँव पिछड़ेपन से ग्रस्त हैं। शिक्षा स्वास्थ्य, स्वच्छता, बेकारी-बेरोजगारी की कितनी ही समस्याएँ मुँह फाड़े खड़ी हैं। ऐसी स्थिति में सुशिक्षित ग्रामीण युवा वर्ग का नगरों की ओर पैसे के लोभ में पलायन एक चिन्ताजनक बात है। दोष मात्र उनका ही नहीं, उन योजनाओं का भी है, जिनके कारण उन्हें गाँवों में ही रहकर रोजगार का अवसर नहीं मिल पाता। फलस्वरूप वे शहरों की धूल फाँकते रहते हैं। पलायन करने वाला यह वर्ग प्रायः सामान्य ग्रामवासियों की तुलना में अधिक समझदार, विद्वान और सुशिक्षित होता है। नगरों में उनका श्रम नियोजित होकर समृद्धि बढ़ाता। उनमें थोड़ा भी यदि पिछड़ेपन से ग्रस्त गाँवों के लोगों के प्रति दर्द रहा होता तथा सामाजिक कर्तव्यों के निर्वाह के प्रति अन्तःप्रेरणा उठती तो वे नगरों की ओर नहीं भागते और गाँवों के विकास की बात सोचते। इस कर्तव्य बोध के अभाव में उन्हें मात्र अपना ही स्वार्थ सूझता है। शहरी सभ्यता की चकाचौंध तथा अधिक पैसे का लोभ उन्हें जबरन गाँवों से खींच ले जाता है। रोजगार के साधन नगरों में अधिक हैं। इसलिए छोटी-मोटी काम चलाऊ नौकरी प्राप्त करने में उन्हें विशेष कठिनाई नहीं होती।

इस मनोवृत्ति के कारण गाँवों का पिछड़ापन और भी बढ़ता जा रहा है, जबकि समृद्धि अल्पसंख्यक नगरों में श्रम एवं प्रतिभा के केन्द्रियभूत हो जाने से केन्द्रित होती जा रही है। गाँधीजी ने देशवासियों को सतर्क किया था कि यदि अस्सी प्रतिशत आबादी वाले गाँव पिछड़े रहे तो देश का कभी भी विकास सम्भव नहीं होगा। ग्रामोत्थान के लिए उन्होंने अभियान भी छेड़ा था तथा उन मूर्धन्य विचारशीलों का आह्वान भी किया था जो समाज के लिए कुछ कर पाने में सक्षम थे। सामयिक उमंग और उत्साह भी उमड़ा था पर गाँधी युग के बाद वह भी ठप्प हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गया। आजादी के कई वर्षों बाद भी गाँवों की आशातीत प्रगति नहीं हो सकी। मूलभूत कारण वहाँ ग्रामीण प्रतिभाओं का गाँव के विकास में समुचित योगदान न मिल पाना तथा देश के मूर्धन्य वर्ग की उपेक्षा।

दुर्भाग्यवश यह मनोवृति देश की अधिकांश युवा पीढ़ी में बनी हुई है कि व्यक्तिगत सम्पन्नता बढ़नी चाहिए। देश की प्रगति में ही अपनी भी प्रगति एवं उन्नति सन्निहित है। यह उदात्त दृष्टिकोण रहा होता तो व्यक्ति और राष्ट्र दोनों ही की समृद्धि बढ़ती पर मात्र अपने उत्थान की बात सोचते रहने से समाज और देश की प्रगति अवरुद्ध हो गयी। कितने ही देशों के उदाहरण सामने हैं, जिन्होंने थोड़े समय में द्रुतगति से प्रगति की है। जापान, कम्बोडिया, डेनमार्क, क्यूबा, चीन, कनाडा आदि कल परसों तक घोर विपन्नताओं से घिरे थे। पर देश की प्रतिभाओं ने युवा पीढ़ी ने थोड़े समय के लिए अपने स्वार्थों को ताक पर रखकर देश के विकास का संकल्प लिया। उनका संकल्प सामूहिक पुरुषार्थ के रूप में फलीभूत हुआ और कुछ ही दशकों में भौतिक समृद्धि की दृष्टि से सम्पन्न राष्ट्रों की श्रेणी में जा पहुँचे। यह चमत्कार कैसे हुआ, कारण ढूँढ़ने पर एक ही तथ्य उभरकर सामने आता है कि देश की युवा शक्ति और प्रतिभाशाली लोगों का मुक्तहस्त से सहयोग मिला। वे स्वयं भी घाटे में नहीं रहे। समाज एवं देश की समृद्धि बढ़ने पर उनकी व्यक्तिगत सम्पन्नता भी बढ़ी।

ऐसी राष्ट्रीय भावना का अकाल देश की नयी पीढ़ी में पड़ता जा रहा है। हर सुशिक्षित व्यक्ति अपनी योग्यता की तत्काल कीमत पैसे के रूप में पाना चाहता है। ऊँची शिक्षा का भी एकमात्र लक्ष्य उपार्जन रह गया है तथा यह मान्यता अधिकांश प्रतिभाओं के मन में जोर पकड़ती जा रही है कि उन्हें अपनी योग्यता को पैसे के रूप में भुनाने का मनमाना हक है। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में समाज एवं देश का भी ऋण उनके ऊपर चढ़ा हुआ है, उसे चुकाने का भी प्रयत्न करना चाहिए, ऐसा बिरले ही सोचते हैं।

देश की परिस्थितियों के अनुरूप ही श्रम के बदले पारिश्रमिक दिया जाता है। इस दृष्टि से हर देश की अलग-अलग स्थिति है। समृद्ध देशों में स्वाभाविक रूप से श्रम की कीमत अधिक है तथा गरीब देशों में कम है। एक ही तरह के श्रम एवं क्षमता के बदले गरीब एवं समृद्ध राष्ट्रों द्वारा दिये जाने वाले पारिश्रमिक में भी भारी अन्तर होता है। प्रतिभाओं का एक बड़ा वर्ग देश में से दूसरे विकसित देशों में अधिक उपार्जन के लोभ में प्रतिवर्ष भागता जा रहा है। उल्लेखनीय है कि किसी भी देश का विकास बहुसंख्यक भीड़ के सहारे नहीं, मूर्धन्य प्रतिभाओं के सहयोग से होता है। सहयोग की यह मात्रा जितनी अधिक होगी समाज और देश उतनी ही तीव्र गति से प्रगति करेंगे। मूर्धन्य स्तर के विशेषज्ञों की बड़ी संख्या प्रतिवर्ष विदेश चली जा रही है। फलतः देश विविध तकनीकी कार्यों एवं विषयों में दक्ष विद्वानों को गँवाता जा रहा है। प्राप्त आँकड़ों के अनुसार भारत विश्व का सबसे बड़ा चिकित्सकों का निर्यातक है। विदेशों में भारत के पन्द्रह हजार एम. डी. डाक्टर कार्यरत हैं, जो कि कुल भारत में कार्य कर रहे चिकित्सकों का तेरह प्रतिशत है। 'इन्टरनेशनल डेवलपमेन्ट रिसर्च सेन्टर' ने एक मोटा आँकड़ा प्रस्तुत किया है कि इन चिकित्सकों के विदेशों में प्रव्रजन से भारत को १४ करोड़ ४० लाख डालर अर्थात् १ अरब १५ करोड़ २० लाख रुपये की क्षति हुई।

पिछले एक दशक में अन्य क्षेत्रों के विशेषज्ञों की बहुत बड़ी संख्या विदेशों में जा बसी है। अनुमान है कि १८०० वैज्ञानिक, ७००० इन्जीनियर तथा ७० हजार से भी अधिक टेकनीशियन प्रभृति प्रतिभाओं ने विदेशों में स्थायी रूप से शरण ली। इनका सहयोग यदि देश के विकास में मिला होता तो देश के सामने मुँह फाड़े खड़ी विविध समस्याओं के हल में विशेष मदद मिलती। कुशल टेकनीशियनों एवं वैज्ञानिकों के अभाव के कारण कितने ही तकनीकी कार्यों में देश को दूसरे देशों के सहयोग का मुँह ताकना पड़ता है, साथ ही उसके लिए भारी कीमत चुकानी पड़ती है। कहा यह जाता है कि देश में आवश्यकता से अधिक मेडिकल विशेषज्ञों, टेकनिशियनों तथा इन्जीनियरों का प्रतिवर्ष उत्पादन होता है। जितनी माँग सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं में होती है, उतनी खपत हो जाने पर अवशेष को बेकार बैठना पड़ता है तथा रोजगार के लिए विदेशों की शरण लेनी पड़ती है। थोड़ी गम्भीरता से विचार करें तो यह बात सही नहीं जान पड़ती क्योंकि विशेषज्ञों की सरकारी तथा गैर सरकारी विविध प्रतिष्ठानों में निर्धारित संख्या में माँग इसका परिचायक नहीं है कि पूरे देश को उतनी ही मात्रा में इन विशेषज्ञों की जरूरत है। सरकार तो अपनी योजना एवं बजट के अनुरूप यह निश्चय करती है कि अमुक परिमाण में विभिन्न प्रकार की विशिष्ट सेवाओं में विशेषज्ञों की आवश्यकता है। गैर सरकारी प्रतिष्ठानों की भी यही नीति होती है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि देश को उनकी सेवाएँ अभीष्ट नहीं हैं।

उदाहरणार्थ, सन् १९७० के आँकड़ों में देश में कुल मेडिकल विशेषज्ञों की संख्या एक लाख पन्द्रह हजार चार सौ थी। भारत की कुल आबादी लगभग साढ़े अड़सठ करोड़ थी। सात लाख गाँवों की संख्या है। शहर कस्बे तथा छोटे शहरों की संख्या इनके अतिरिक्त है। कुल एम. डी. स्तर के चिकित्सकों की संख्या डेढ़ लाख थी। आज भी औसतन ४५६६ व्यक्ति पीछे एक चिकित्सक आता है। एक डाक्टर लगभग साढ़े चार हजार व्यक्तियों के स्वास्थ्य की समुचित देख-रेख करता रहे यह कठिन ही नहीं असम्भव है। एक चिकित्सक अपने अन्य सहयोगियों के साथ अधिकतम एक हजार व्यक्तियों की देखभाल करता रह सकता है। इस औसत से देश में वर्तमान चिकित्सकों की संख्या से चार गुने अधिक चिकित्सक चाहिए। अर्थात् कम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से कम देश को छः लाख पच्चीस हजार चिकित्सकों की आवश्यकता है। इस तरह देश की कुल आबादी के स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए पाँच लाख पचहत्तर हजार चिकित्सकों की जरूरत है। प्राप्त आँकड़ों का निष्कर्ष है कि ग्रामीण क्षेत्र में मात्र दस हजार की संख्या में चिकित्सक सेवारत हैं। जबकि शहरों में एक लाख हैं। गाँवों में देश की तीन चौथाई आबादी केन्द्रित है तथा शहरों में एक-चौथाई। देहातों की जनसंख्या ५५ करोड़ ३७ लाख ५० हजार है, जबकि मात्र १० हजार डाक्टर ग्रामीण क्षेत्रों में सेवारत हैं। गाँवों के लिए वर्तमान समय में पाँच लाख ५३ हजार ७५० चिकित्सक और चाहिए। ऐसी स्थिति में यह कहा जाना कि देश की आवश्यकता से अधिक चिकित्सकों का उत्पादन होता है और इस कारण से वे विदेशों में रोजगार प्राप्त करने के लिए चले जाते हैं, विवेकसम्मत नहीं जान पड़ता। चाहते तो वे देश में रहकर भी अपनी दक्षता एवं प्रवीणता के सहारे कितने ही रोजगार के छोटे-मोटे साधन निकाल लेते तथा स्वावलम्बन के साथ-साथ देश की भी समृद्धि बढ़ाते।

वस्तुतः धन का लोभ तथा इस प्रवृत्ति को पोषण एवं प्रोत्साहन देने की समृद्ध एवं प्रगतिशील राष्ट्रों की मनोवैज्ञानिक नीति ही वह प्रधान कारण है, जो गरीब देशों की प्रतिभाओं को विदेश प्रव्रजन के लिए आकर्षित करती है। समृद्धिशाली राष्ट्र दूसरे देशों से विशेषज्ञों को बुलाने तथा उन्हें अपने देश में स्थायी रूप से बसाने के लिए विपुल धन राशि भी खर्च करते हैं। वे जानते हैं कि प्रतिभाएँ भौतिक समृद्धि की मेरुदण्ड हैं। उन पर किया गया आरम्भिक खर्च सूद ब्याज सहित वापिस लेकर लौटेगा। ब्रेनड्रेन-प्रतिभा पलायन की मनोवैज्ञानिक कूटनीति विकासशील तथा गरीब राष्ट्रों के लिए वर्तमान समय में एक संकट बनकर प्रस्तुत हुई है। आश्चर्य तब और भी अधिक होता है, जब यह देखा जाता है कि विश्व शान्ति एवं सुरक्षा की घोषणा करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की संस्थाएँ तक समृद्धतम राष्ट्रों के लिए ब्रेन ड्रेन की नीति का समर्थन मनोवैज्ञानिक ढंग से करती हैं। डब्ल्यू. एच. ओ. (वर्ल्ड हेल्थ आरगेनाइजेशन) संस्था द्वारा यह कहा जाना सचमुच ही उपरोक्त तथ्य की पुष्टि करता है कि "भारत के प्रत्येक व्यक्ति की औसत वार्षिक आय १२० डालर प्रतिवर्ष है तथा १-५ प्रतिशत की रफ्तार से प्रतिवर्ष बढ़ रही है। ऐसी स्थिति में भारत पैंतीस हजार से अधिक फिजिशियनों को देश में खपा पाने में असमर्थ है"।

ब्रेन ड्रेन के क्षेत्र में अमेरिका विश्व के सभी देशों में अग्रणी है। मूलतः तो अमेरिका की अपनी कोई मौलिक संस्कृति नहीं है। प्रकृति सम्पदाओं का जखीरा उस क्षेत्र में जमा था। विभिन्न देशों के नागरिक वहाँ आकर बसते गये। एक सशक्त राष्ट्र के रूप में उदय होते ही उसने प्रतिभाओं के शोषण की पद्धति अपनायी। कुल ७७ हजार फिजिशियन वर्तमान समय में विभिन्न गरीब राष्ट्रों से आकर यहाँ काम कर रहे हैं। इंग्लैण्ड का नम्बर ब्रेन ड्रेन में दूसरा है। वहाँ २१ हजार विदेशी फिजिशियन कार्यरत हैं। कनाडा में इनकी संख्या ११ हजार, पश्चिम जर्मनी में ४ हजार तथा आस्ट्रेलिया में ४ हजार है। इस तरह एक लाख ४० हजार की संख्या में फिजिशियन गरीब देशों से जाकर अपनी सेवाएँ विकसित देशों को अर्पित कर रहे हैं। एक सोवियत विशेषज्ञ श्री आई. इवानोव के अनुसार, सातवें दशक के प्रारम्भ तक आठवें दशक के मध्य तक विकासशील देशों से लगभग चार लाख वैज्ञानिकों, चिकित्सकों तथा टेकनिशियनों का पलायन विदेशों को हुआ। तेल निर्यातक देश भी अब पश्चिमी देशों की भाँति ब्रेन ड्रेन करने वाले देशों की श्रेणी में आ गये हैं। अनुमान है कि मात्र अरब देशों में प्रतिवर्ष एक हजार की संख्या में विभिन्न स्तर के भारतीय विशेषज्ञ चले जा रहे हैं।

समाज और सरकार उनकी शिक्षा-दीक्षा में विपुल धनराशि खर्च करती तथा अनेकों प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करती है, पर सुशिक्षित तथा प्रवीण होकर विदेशों में स्थायी रूप से बसने से देश को चन्द विदेशी मुद्रा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिल पाता। पलायन की इस प्रवृत्ति पर रोकथाम के लिए अविलम्ब व्यवस्था बनानी चाहिए। साथ ही शिक्षण के साथ-साथ हर छात्र को ऐसी शिक्षा भी मिलनी चाहिए कि वह व्यक्तिगत सम्पन्नता की अपेक्षा समाज एवं राष्ट्र के हितों को सक्षम होने पर प्रधानता दें।

व्यक्तिवाद के ओछेपन से लड़ना ही पड़ेगा

सहज सुलभ वस्तु का मूल्य हम तब तक नहीं जान पाते जब तक उससे विलग नहीं हो जाते। सूर्य का प्रकाश वायु के हलचल आदि हमें इतनी मात्रा में सुलभ है कि हम उसके द्वारा जो लाभ उठाते रहने पर भी कुछ विशेष अनुभव नहीं करते; इसे सहज स्वाभाविक मान लेते हैं। किन्तु कभी ऐसी स्थिति आ जाय कि हम उनसे वंचित रह जायँ तब इनका महत्व हमें ज्ञात हो सकता है। यही बात समाज के साथ लागू होती है।

पानी में रहने वाली मछली को पानी की महत्ता तब ज्ञात होती है, जब वह जाल में फँसकर पानी से विलग कर दी जाती है। ठीक यही तथ्य मनुष्य तथा समाज के बीच लागू होता है। मनुष्य यदि समाज से विलग कर दिया जाय तो उसे पशुओं से भी गया-गुजरा जीवन व्यतीत करना पड़े। समाज का कितना ऋण मनुष्य पर है, उसका सही अनुमान लगाया जाय तो उसे चुकाने के लिए कितने ही जन्म लेने पड़ें ? जो भोजन हम खाते हैं, जो वस्त्र हम पहनते हैं, जो पुस्तकें हम पढ़ते हैं तथा नित्यप्रति जीवन में जो वस्तुएँ प्रयोग में लाते हैं ? उसमें कितने ही मनुष्यों का श्रम व सहयोग लगा है। एक माचिस की डिबिया हमें पचास पैसे में बाजार में मिलती है, जिससे पचास बार हम आग जला लेते हैं। पचास पैसे कमाने में हमें मुश्किल से दस मिनट लगते हैं किन्तु वही डिबिया हम पूरे दिन में नहीं बना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकते। यह सब समाज की देन है। इसके पीछे कितनी ही पीढ़ियों का श्रम व ज्ञान लगा है।

हमारा अस्तित्व समाज पर टिका है। हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम समाजवादी दृष्टिकोण अपनाएँ। अपने लिये ही न जिएँ समाज के लिये जिएँ। हमारा हर क्रिया कलाप इस प्रकार का होना चाहिए कि उस ऋण का कुछ अंश चुकावें। उपार्जन सही तरीके का हो तथा उपार्जित सभ्यता का उपयोग स्वयं के लिये कम से कम होना चाहिए।

समाज का इतना ऋण तथा इतने बड़े विश्व-मानव परिवार का सदस्य होकर भी मनुष्य अपने मन को अपने आप तक तथा अपने बेटों-पोतों तक सीमित कर लेता है। यह कितनी ओछी बात है। आज की ये अगणित विभीषिकाएँ व्यक्ति का व्यक्तिवाद उग्र हो उठने के कारण ही पनपी हैं। विशाल वट वृक्ष के पत्ते और डालियाँ यह कहें कि हम तो अलग हैं, वट वृक्ष से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं। वैसी ही हास्यास्पद स्थिति मानव ने निमित्त कर ली है।

हमारे चिन्तन में, हमारी मान्यता में बैठी हुई यह विकृति दूर हो जाय तो हमें जिन समस्याओं से जूझना पड़ रहा है वे चुटकी बजाते हुए समाप्त हो जायँ। गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, महँगाई, चारित्रिक पतन आदि जो संकट हमारे समाज को निरन्तर जर्जरित कर रहे हैं यह इसी का परिणाम है। प्रत्येक व्यक्ति यदि अपनी आकांक्षाओं को इतने तक ही सीमित रखे जिससे समाज का अहित न हो। हम उसके लिए भार या अवरोध न बनें तो ये समस्याएँ स्वतः समाप्त हो जायेंगी।

हर क्षेत्र में फैला व्यक्तिवाद हमें मिटाना होगा। राजनीति में घुसे हुए अवसरवादी तत्वों, अर्थतन्त्र सम्हालने वाले स्वार्थी धन्ना सेठों, महँगाई बढ़ाने वाले व्यापारियों, चरित्र को खोखला करने वाली साहित्य एवं कलात्मक प्रवृत्तियाँ जन्म देने वालों से लड़ने वाले संगठनों की आज देश में बड़ी आवश्यकता है। इन विकृतियों से जूझने के लिए समाजसेवियों की एक सेना चाहिये। जिनकी डाढ़ों में रक्त लग चुका है वे यों ही अपना स्वार्थ साधन छोड़ने वाले नहीं है। इसके लिए हमें व्यापक संघर्ष खड़ा करना पड़ेगा।

यह लड़ाई तोप और तलवार से नहीं विचारों के अस्त्र-शस्त्रों से लड़ी जानी है। व्यक्तिवाद का असुर हर व्यक्ति पर छाया हुआ है, उससे लड़ने के लिये चिन्तन को प्रखर बनाना पड़ेगा। प्रखर चिंतन युक्त जीवित जाग्रत आत्माओं की सृजन सेना ही व्यक्तिवाद को सर्वनाशी विभीषिका से लड़ने को प्रस्तुत होगी—तब पृथ्वी पर भव्य समाज का निर्माण होगा एवं इस धरती पर स्वर्ग का अवतरण होते देर न लगेगी।

उत्कृष्टता का अभिनव उद्भव

एकता और समता नये युग का, नये विश्व का नया लक्ष्य है। यों सर्वत्र विषमता का इन दिनों बोलबाला है। गरीबों-अमीरों की, शिक्षित-अशिक्षितों की, समर्थ-असमर्थों की, नर और नारियों की, दुर्बल और सशक्तों की, शोषक-शोषितों की विरादरियाँ स्पष्ट रूप से बढ़ी देखी जा सकती हैं और उनके बीच पाया जाने वाला अन्तर इतना बड़ा प्रतीत होता है कि एक को खाई और दूसरे को टीले की उपमा दी जा सके। यह खाइयाँ किस प्रकार पटेंगी और हर क्षेत्र में फैली हुई विषमताएँ किस प्रकार मिटेंगी ? यह समझना साधारण बुद्धि के लिए कठिन हो जाता है।

असमंजस इस बात का है कि मनुष्य की संकल्प शक्ति, उत्कण्ठा और तत्परता अभीष्ट परिवर्तन का पक्ष यत्किंचित ही लेती है। समर्थ प्रयत्न भी योजनाबद्ध रूप से बड़े परिमाण में नहीं हो पा रहे हैं। छुट-पुट आवाजें उठतीं और छोटे स्तर की क्रिया-प्रक्रिया ही बन पड़ती दीख पड़ती है। मोटा अनुमान यही लगता है कि छुटपुट प्रयत्नों का प्रतिफल यत्किंचित ही होना चाहिए और उसे सुगठित होने में बड़ा समय लगना चाहिए।

सार्थक मापदण्ड में इस प्रकार का असमंजस स्वाभाविक है क्योंकि लोक-व्यवहार में छोटे प्रयासों की थोड़ी प्रतिक्रिया ही होती देखी गई है किन्तु यदि युग निर्माण जैसे विश्वव्यापी और ६०० करोड़ मनुष्यों का चिन्तन, चरित्र और व्यवहार बदलना है, उनका स्वभाव अभ्यास जिस दिशा में बह रहा है, उसके लिए कोई अति समर्थ प्रयास सामने आना चाहिए। आतंक के दबाव में हुए परिवर्तनों का प्रतिफल देखा जा चुका है। उनसे नये प्रकार के आतंक फूटे हैं और परिणाम नफे के स्थान पर घाटे का ही रहा है।

तब इस प्रकार का असाधारण परिवर्तन कैसे संभव होगा ? इसके लिए इस तथ्य और सत्य को ध्यान में रखना होगा कि इस वसुधा का निर्माता एवं नियन्ता कोई दूसरा है। मनुष्य की क्षमता बड़ी है पर ऐसा नहीं कि इसी के सहारे सारी विश्व व्यवस्था चलती रही है या चलेगी।

बड़े प्रयास मनुष्यों के प्रयत्नों से ही सम्पन्न हुए हैं यह भी ठीक है, पर यह मान बैठना भी ठीक नहीं कि जिस सम्बन्ध में उसने उपेक्षा दिखाई है, वह बन ही नहीं पाता। दास-दासियों का क्रय-विक्रय लम्बी अवधि से चला आ रहा था। यह भी आशा नहीं थी कि वे उत्पीड़ित व्यक्ति मिल-जुलकर समर्थों से टक्कर लेने और उन्हें परास्त करने में सफल होकर ही रहेंगे। उनकी किसी ने बड़ी वकालत भी नहीं की। उनके पक्ष में कोई युद्ध भी नहीं लड़ा गया। इतने पर भी इतिहासकारों ने आश्चर्यचकित होकर देखा कि जाग्रत विश्वात्मा के दबाव से वे निविड़-बन्धन अपने आप ही छूटते गये और बिना युद्ध का सरंजाम जुटाये, क्रान्तिकारी योजनाएँ बनीं, दुनिया में से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दास प्रथा उठ गई। उसका समर्थन अपनी मौत मर गया यद्यपि अमीरों को इससे कम हानि नहीं हुई फिर भी वे मन मारकर बैठे रहने के सिवाय और कुछ कर नहीं सके। दैवेच्छा अपने ढंग से अपने समय पर पूरी होकर रही।

राजतंत्र की परम्परा युग-युगान्तरों से चली आई है। राजा को भगवान मानने की बात न जाने क्यों सीखी और सिखाई जाती रही है ? उस समुदाय के पास शक्ति, क्षेत्र, सैनिक और साधनों की कमी नहीं। फिर भी न जाने क्या हुआ कि राजमुकुट धरती पर लोटते और धूल-धूसरित होते चले गये। उन्हें अपने वैभव की रक्षा करने का समय भी नहीं मिला और राज्य में राजा के रूप में सोये हुए सत्ताधारी भोर होते ही अपना समस्त वर्चस्व गँवा कर साधारण नागरिकों जैसे होकर रह गये।

जमींदारों, साहूकारों, सामन्तों का भी एक वर्ग था जो प्रजाजनों की खुशहाली का अपने आप को स्वामी मानता था। जिस तरह चाहे उस तरह निचोड़ता रहता था, पर देखते-देखते वे परिस्थितियाँ न जाने किस हवा में विलीन हो गईं ? कर्ज की सुविधा बैंकों के माध्यम से सरलतापूर्वक ली जा सकती है।

और भी कई क्रान्तियाँ अपने-अपने ढंग से हुई हैं। मनुष्य का पुरुषार्थ नगण्य और दैवी इच्छा के माध्यम से बन पड़ा संयोग अत्यधिक महत्वपूर्ण है। पर्दा प्रथा अब कहीं किन्हीं कौतरों में ही अपने नाममात्र के अस्तित्व की झलक-झाँकी देती देखी जाती है, अन्यथा संसार में से उसका प्रचलन एक प्रकार से उठ गया ही समझा जा सकता है। जाति-पाँति, ऊँच-नीच की मान्यता किन्हीं गिरे हुए खंडहरों में ही छिपी जब कभी दीख जाती है। पर उसका संवैधानिक और लोक-व्यवहार में प्रचलन समाप्त हुआ ही समझा जाना चाहिए। सती प्रथा कभी गौरवान्वित रही है पर अब तो उस पर कानूनी प्रतिबंध है और इसके लिए उकसाने तथा महिमामंडित करने पर कोई भी जेल की हवा खा सकता है।

अँग्रेजी साम्राज्य जिसके क्षेत्र में कभी सूर्य अस्त नहीं होता था, ऐसी परिस्थितियों से घिरा कि अपने बोरिया बिस्तर हर कहीं से समेटकर अपने छोटे दायरे में सीमित रहने के लिए ही विवश हो गया। नेपोलियन, सिकन्दर, चंगेजखाँ जैसे आततायियों की करतूतें अपनी परम्परा देर तक नहीं निभा सकीं। आक्रान्ताओं की अपनी फूट ने ही उन गिरोहों का अस्तित्व समाप्त कर दिया, जो कभी अजेय समझे जाते थे। चन्द्रमा पर मनुष्य चहलकदमी करेगा, इसकी कल्पना कभी किसी ने नहीं की थी ? अब तो अन्तरिक्ष में बस्तियाँ बसाने की योजना कार्यान्वित होने जा रही है।

पुराण गाथाओं का अधिकांश कलेवर दैवी शक्तियों के चमत्कारी वर्णनों से ही भरा पड़ा है। अवतारों, सन्त, सिद्धों में से अधिकांश ऐसे हैं जिनके द्वारा स्वयं ऐसे कार्य सम्पन्न किये तथा दूसरों से कराये गये हैं, जो मनुष्य की साधारण शक्ति के सहारे बन पड़े, ऐसा संभव प्रतीत नहीं होता। फिर भी वे हुए हैं। इसे देखते हुए इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि उन्हें किसी अदृश्य शक्ति का अवलम्बन मिला और उसके सहारे उनने प्रतिकूलताओं को अनुकूलताओं में परिवर्तित करने में विजय पाई।

दार्शनिकों, वैज्ञानिकों को प्रायः ऐसी ही अन्तःस्फुरणा होती रही है, जिसके मार्गदर्शन में उनका अन्तस् उस दिशा में चल पड़ा जो उनके लिए ही नहीं, अन्य असंख्यों के लिए भी श्रेयस्कर सिद्ध हुआ। वस्तुतः दैवी अनुकम्पा का दार्शनिक रूप यही है।

अदृश्य ईश्वर का दर्शन कर सकना किसी प्रकार भी संभव नहीं। इन्द्रियों की सहायता से तो जड़ पदार्थ ही देखे जाते हैं। ईश्वर की भी यदि कोई छवि कल्पित की जाय तो भी वह किसी प्राणी या पदार्थ से मिलती-जुलती होने के कारण भौतिक ही कही जायेगी। जबकि सृष्टा की सत्ता अदृश्य एवं निराकार है। भक्तों की कल्पना उनकी इच्छानुसार भी ध्यान स्थिति में साकार रूप धारण कर सकती है पर तत्वदर्शी उसे विराट् ब्रह्म के रूप में देखते और विश्व-वसुधा में विद्यमान सत्प्रवृत्तियों के समर्थन में अपनी सेवा अर्पित करते हैं। यही वास्तविक पूजा-अर्चना है। उसका उपयोग एवं स्वरूप यही है कि उच्चस्तरीय आदर्शों का अवलम्बन लेने के लिए भावना और क्षमता को पूरी तरह नियोजित कर सकने जैसी अदम्य उमंगें मन में उठें। इक्कीसवीं सदी में ऐसे ही अवलम्बन के धनी अनेक प्रतिभाशाली उत्पन्न होंगे और वे नव-सृजन की दिव्य योजना को पूरा करने में कार्यरत दिखाई पड़ेंगे।

विषमता मिटेगी, समता का युग आएगा

समता वह प्रमुख आधार है, जिस पर नए युग की इमारत खड़ी होनी है। मनुष्य-मनुष्य के बीच जो आकाश-पाताल जैसा अन्तर आज दिखलाई पड़ रहा है, उसे मिटाने और घटाने का समय अब आ गया है। असमानता ईर्ष्या-द्वेष पैदा करती है। उससे गिरे हुए वर्ग में हीनता-दीनता एवं पतनोन्मुख प्रवृत्तियाँ बढ़ती हैं और उठे हुए वर्ग में विलासिता, अहंकार, लोभ एवं अनुदारता जैसे दोष-दुर्गुणों की बाढ़ आती चली जाती है। असमानता इतनी ही सह्य और क्षम्य है—जितनी हाथ की पाँच उँगलियों में होती है। परिस्थिति और आवश्यकता में अन्तर होने से मनुष्यों का स्तर थोड़ा नीचा-ऊँचा भी रखा जा सकता है, पर उसकी वैसी अति नहीं होनी चाहिए जैसी आज है।

असमानता ने मनुष्य जाति के बीच भारी खाई उत्पन्न की है और एकता की जड़ पर भयानक कुठाराघात किया है। ईर्ष्या-द्वेष की आग भड़काने का, अलगाव, आतंक, युद्धों और संघर्ष की विभीषिकाएँ उत्पन्न करने का कारण यह असमानता ही है, जिसने समाज को अपराध और पाप की आग में झोंक दिया। जिसकी वजह से एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही समाज को असंख्य गुटों में बँटना पड़ा। परिणाम में उत्पन्न ढेर की ढेर विकृतियों ने सरलता-सौजन्यता को बुरी-तरह कुचल-मसल डाला। सभी मनुष्य भगवान के समान रूप से प्रिय पुत्र हैं। हरेक के कर्तव्य और अधिकार एक से हैं। सभी को प्रकृतिप्रदत्त अनुदानों का समान रूप से लाभ उठाने का अधिकार है। असमानता प्राकृतिक नहीं है, ईश्वरप्रदत्त नहीं है, मानवी दुर्बुद्धिजन्य है।

इन दिनों इन्सान-इन्सान के बीच असमानता जिन आधारों पर टिकी है, मनीषी एरिक फ्राम ने उनका संकेत अपने ग्रन्थ 'द सेन सोसाइटी' में किया है उसके अनुसार आधार ये हैं—(१) जाति (२) लिंग (३) धन (४) पद। तनिक हम भी अपनी व्यस्तता में से कुछ पल उबरकर सोचें तो सही कि क्या प्रचिलित मान्यताएँ सही हैं ? यदि वे अनावश्यक, अनुपयुक्त और असत्य सिद्ध होती हों, तो विवेक का तकाजा यही है कि बिना किसी पूर्वाग्रह का मोह पाले, इन्हें परे फेंक दिया जाय। ऐसा करके हम समता की उस प्रक्रिया को जन्म देंगे—जिससे प्रेम और प्रसन्नता की—सुख और सन्तोष की धारा बह निकले।

जिस नवयुग-सतयुग के अवतरण के लिए युग ऋषि की साधना रही है, जिसके लिए वह स्वयं को तिल-तिल तपाते-गलाते रहे, जिसके लिए उन्होंने अपनी समस्त साधन-क्षमताओं की आहुति दी और जिसके लिए वह आज भी सूक्ष्म जगत् में सतत् सक्रिय हैं—उसकी आधार भूमि समता ही है। ऊँच-नीच की खाइयाँ-खड्डे जब तक हैं, दुनिया में अशान्ति ही रहेगी। अज्ञान और अन्याय का सम्मिश्रित स्वरूप असमानता के रूप में प्रकट होता है। इस दो जीभ वाली विश्व विभीषिका को आस्तीन में छिपी सर्पिणी की तरह साथ रखकर हम चैन से नहीं बैठ सकते।

गाय, घोड़ा, बन्दर, कबूतर, मोर, तीतर की भाँति मनुष्य भी एक जाति है। नृतत्व विज्ञानी अर्नेस्ट फिशर के ग्रन्थ 'सोशल आर्गेनाइजेशन' के पन्ने पलटें तो पता चलता है कि ऋतु और परिस्थिति के कारण मनुष्यों के रंग-रूप, आकृति-प्रकृति में थोड़ा-बहुत अन्तर हो सकता है, पर उससे उसके स्तर में कोई फर्क नहीं पड़ता। भेड़ों की आकृति, रंग-रूप में थोड़ा अन्तर हो सकता है, पर इससे उनके दरजे में कोई फर्क नहीं पड़ता। इन्सान भी एक प्राणी है और उस प्रकार के समस्त जीवों की एक ही जाति एवं स्थिति है। यह एक तथ्य है कि गरम देशों में जन्म लेने वाले काली चमड़ी के होते हैं। ठण्डे देशों में जो पैदा होते हैं—उनकी चमड़ी गोरी होती है। मध्य एशिया के मंगोल नस्ल के पीले रंग-तिरछी आँखों और चपटी नाक वाले पाए जाते हैं।

यह रंग भेद केवल उत्पत्ति स्थान की जलवायु का अन्तर बताता है। किन्तु इस आधार पर उनके स्तर को नीचा-ऊँचा नहीं माना जा सकता। गोरे लोग, काली चमड़ी वालों को, केवल रंग के आधार पर अपने से नीचा समझें, घृणा करें, मानवीय अधिकारों से उन्हें वंचित कर दें यह अन्याय के सिवा और क्या है ? संसार में रंगभेद को लेकर नीच-ऊँच की मान्यता बुरी तरह फैली हुई है। दक्षिण अफ्रीका के मूल निवासियों तथा भारतीयों के साथ वहाँ के गोरे निवासी जो घृणा, बैर-भाव की नीति अपनाए हुए थे, उसके विरुद्ध महात्मा गान्धी ने सत्याग्रह चलाया था। अमेरिका में अभी भी संघर्ष की स्थिति बनी हुई है। राष्ट्र संघ ने तथा विश्व के सभी विचारशील लोगों ने इसे अन्यायमूलक और अवांछनीय घोषित किया है। अब्राहम लिंकन, केनेडी आदि गोरे विचारशीलों ने आगे बढ़कर अपने वर्ग की इस संदर्भ में घोर निन्दा की और प्रतिरोध में भारी त्याग भी किए। फिर भी गोरों का आग्रह अपनी सफेद चमड़ी के आधार पर उच्चता सिद्ध करने का ही है।

संसार में दूसरी जगहों पर तो गोरी-काली चमड़ी के आधार पर असमानता चल रही है, पर अपने देश में (भारतवासियों ने) तो इस दिशा में गजब ही कर दिया। एक परम्परा, एक ही रक्त, एक ही अंश, एक ही रंग के लोग कल्पित जाति-पाँति के आधार पर एक-दूसरे को नीचा-ऊँचा मानने लगे हैं। विषमता की अति इस सीमा तक पहुँच गई है कि तथाकथित ऊँची जाति वाले तथाकथित नीची जाति वालों को पास बिठाने तक में, मानवीय सामाजिकता के सामान्य शिष्टाचार एवं अधिकार तक से इन्कार करते हैं। आदर्शवादी, धार्मिक और आध्यात्मिक कहे जाने वाले भारतीय समाज के माथे पर एक अति व्यंग्य और उपहास भरा ऐसा लांछन है, जिसने उनकी गरिमा का मूल्य बुरी तरह गिरा दिया है।

किसी समय चार वर्णों का सृजन गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर व्यवसायों के विभाजन की दृष्टि से किया गया था। उस व्यवस्था के निर्माताओं ने आज की दशा की कल्पना तक न की होगी। जातियाँ ही नहीं उपजातियों तक में बँटा हुआ भारतवर्ष बुरी तरह से विलगाव के रोग से ग्रसित हर दृष्टि से दीन-दुर्बल होता चला जा रहा है। देखने भर के लिए हम एक हैं, पर असलियत में जिस प्रकार संतरे के भीतर टुकड़े-टुकड़े के भीतर छोटे-छोटे टुकड़े भरे रहते हैं, उसी प्रकार हम जातियों-उपजातियों और नीच-ऊँच की मूढ़-मान्यताओं में बुरी तरह चिपके हुए हैं। बात इतने तक सीमित नहीं—यह विष राजनीति तक में प्रवेश कर चुका है। चुनावों में जीतने के लिए जाति-पाँति के आधार पर वोटरों का समर्थन प्राप्त करना एक प्रमुख तथ्य बन गया है। भीतर-भीतर पनपती इस दुर्बुद्धि के कारण—देश के टुकड़े-टुकड़े होने, गृह युद्ध खड़ा होने-जैसे अनेकों खतरे आए दिन मँड़राते रहते हैं।

असमानताओं में दूसरी असमानता लिंग-भेद की है। पिछले दिनों सामन्तवादी अंधकार युग में नर-नारी के बीच जो आकाश-पाताल जैसी खाई उत्पन्न हो गई थी। वह धीरे-धीरे कम तो हो गई है, पर अभी वह मूढ़ता अवांछनीय रूप में विद्यमान है। पिछले दिनों तो नारी का मूल्य भेड़-बकरी जितना रह गया था। पति कभी भी पत्नी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का परित्याग कर सकता था। पशुओं के मुँह पर नकाब नहीं चढ़ाए जाते, पर स्त्रियाँ मुँह पर नकाब चढ़ाकर पुरुषों के आगे निकल सकती थीं। पति के मर जाने पर स्त्रियों के लिए आजीवन वैधव्य भोगना या सती बनकर जल जाना ही मार्ग था, पर पुरुष पत्नी के मरने के बाद ही नहीं, उसके जीवित रहते भी अनेकों पत्नियाँ रख सकते थे। कन्या का जन्म दुर्भाग्य, पुत्र का जन्म सौभाग्य माना जाता था। कन्या को शिक्षा से, स्वावलम्बन से वंचित रहना पड़ता था। एक तरह से अपाहिज एवं घर के पिंजड़े में बन्द पंछी जैसी स्थिति उनकी थी। यद्यपि समय ने थोड़ा सुधार किया है। बड़े नगरों में स्थिति कुछ ठीक है, पर पिछड़े हुए देहातों में तो अभी भी वही दुर्दशा है।

नर और नारी—दो घटकों से मिलकर समाज बना है। दोनों की स्थिति, उपयोगिता, कर्तव्य एवं अधिकार समान हैं। इनमें से न कोई महत्वहीन है, न महत्वपूर्ण। न्याय की पुकार है कि दोनों को अपने व्यक्तित्व को समान रूप से विकसित करने का अवसर मिले। एकांगी, पक्षपातपूर्ण कानून, प्रतिबन्ध, न्याय की कसौटी पर खरे न उतरेंगे। आज भले ही यह बात गले न उतरे पर कल तो इसे अनिवार्य शर्त के रूप में मानना होगा। जिस तरह जातीय जीवन में मनुष्य मात्र के नैसर्गिक और नागरिक अधिकारों को सम्मान के स्तर पर मान्यता देनी पड़ेगी। ठीक उसी तरह नारियाँ सिर्फ सम्मान की ही नहीं, वर्चस्व की अधिकारिणी होंगी। राजतन्त्र समाप्त हो गए, अब वर्ग तन्त्र भी समाप्त होने जा रहा है। नए युग में किसी को इस आधार पर ऊँचा-नीचा न माना जाएगा कि उसका अमुक वंश में जन्म हुआ। रंग, जाति या वंश के कारण किसी को न अहंकार जताने का अवसर रहेगा और न इस वजह से किसी को हीनता-दीनता अनुभव होगी।

तीसरी असमानता धन के आधार पर है। धनी और निर्धन की इसी असमानता के कारण एक व्यक्ति देवताओं जैसी सुख-सुविधाएँ भोगता है और अप्रत्याशित सम्मान पाता है, जबकि निर्धन—भोजन, वस्त्र, चिकित्सा जैसी अनिवार्य आवश्यकताओं से वंचित हो जाता है। प्रख्यात रशियन मनीषी प्रिंस कोपाटिकन 'क्रान्ति की भावना' में संकेत करते हैं, यह विषमता न तो ईश्वर प्रदत्त है, न भाग्य का खेल। यह समाज में प्रचलित अर्थ प्रणाली के दोषपूर्ण होने का परिणाम है। पूँजी पर व्यक्ति का अधिकार न होकर समाज का स्वामित्व हो। हर व्यक्ति को अपनी क्षमता के मुताबिक श्रम करने को बाध्य होना पड़े और आवश्यकता के अनुरूप साधन मिलें तो गरीबी-अमीरी का वर्तमान भेद देखते-देखते नष्ट हो सकता है। संग्रह पर उत्तराधिकार नियंत्रण रहे तो एक जगह पहाड़ जैसी अमीरी—दूसरी जगह खाई जैसी गरीबी के विक्षोभ उत्पन्न करने वाले दृश्य देखने को न मिलें। निःसन्देह प्रचलित अर्थतन्त्र दोषपूर्ण है। उसी के कारण ठगी, चोरी, जुआ, शेयर घोटाला, शोषण, विलासिता जैसे अनेकों अपराध उत्पन्न होते हैं। इसे बदलना ही होगा।

प्राचीनकाल में ऐसा न था। तब आध्यात्मिक समाजवाद प्रचलित था। नियम-कानूनों के बल पर नहीं—विकसित संवेदनाओं के आधार पर परिग्रह को, अतिरिक्त उपभोग, विलासिता को पाप की मान्यता प्राप्त थी। अब वे परम्पराएँ नहीं रहीं तो राजसत्ता के नियंत्रण में धन के ऊपर समाज का स्वामित्व एवं वितरण व्यवस्था रहने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। अगले दिनों यही प्रणाली प्रचलित होगी। लेकिन इसका ढाँचा मार्क्स की प्रणाली से पर्याप्त भिन्न और अलग होगा।

जिस नवयुग की आराधना में विचार क्रान्ति अभियान संलग्न है। उसकी अर्थ प्रणाली में समानता को ही आधार माना जाएगा। प्रस्तुत परिस्थितियों के अनुरूप साधनों से काम चलाकर हर किसी को सन्तोष करना पड़ेगा। तब लालच से प्रेरित असंख्य अपराधों की तथा ईर्ष्या-द्वेष के कारण उत्पन्न होने वाली आत्मिक अशान्ति की कोई गुंजाइश न रहेगी। न कोई निठल्ला रहेगा, न किसी को बेतरह पिसना पड़ेगा। जरूरत इस बात की है कि हममें से प्रत्येक जन-जन को इस नजदीकी परिवर्तन से अवगत कराएँ। सम्पन्न लोगों में अभी से भविष्य के अनुरूप ढलने की, नाती-पोतों के लिए जोड़ने-गाँठने की, ममता छोड़ने, धन को उपयोगी सत्प्रयोजनों में खर्च करने की प्रवृत्ति आ जाए। राजतन्त्र भी इसके अनुरूप स्वयं बदल डाले—जिससे आर्थिक समानता समाज में स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे।

चौथी असमानता 'पद' की है। प्रतिभाशील एवं सुयोग्य व्यक्तियों को उनकी क्षमता के अनुरूप काम सौंपे जायँ, यह ठीक है। उन्हें अपनी ईश्वर प्रदत्त विशेषताओं, विभूतियों का लाभ जनसाधारण को देते हुए अपना भाग्य सराहना चाहिए एवं महत्वपूर्ण कार्य करने का अवसर पाने का सन्तोष करना चाहिए। पद के कारण सरकारी अफसरों को जो ठाटबाट, असाधारण वेतन, अस्वाभाविक, अनावश्यक सम्मान मिलना गलत है। इस प्रलोभन में 'पद' प्राप्त करने के लिए अयोग्य लोगों में भी लिप्सा एवं प्रतिद्वन्द्विता पैदा होती है। यदि उच्च पदों पर शान्त, सन्तोष एवं सेवा के अनुपात से उपलब्ध लोकश्रद्धा मात्र का ही लाभ मिले और आज जो आर्थिक लाभ, अहंकार पूर्ति के अवसर अकारण मिलते हैं वे न मिलें तो अवांछनीय व्यक्तियों को उसके लिए धमाचौकड़ी मचाने का आकर्षण न रह जाय। फिर तो सिर्फ उदात्त व्यक्ति ही श्रेष्ठ आदर्श लेकर उन महान् उत्तरदायित्वों को अपने कन्धों पर उठाने के लिए तैयार हों।

राजा जनक, चक्रवर्ती नरेश चक्कवेण—राज्य प्रमुख तो थे, पर उनकी आजीविका हल चलाकर, थोड़ी-सी कृषि द्वारा उपार्जित करते थे। महाराज रघु भारत सम्राट होने पर भी सामान्य मिट्टी के बर्तनों में अपना काम चला लेते थे। मौर्य साम्राज्य के संस्थापक और राष्ट्र के महामंत्री चाणक्य संतों-तपस्वियों जैसी सादगी अपनाते थे। महर्षि वशिष्ठ रघुवंशियों के राज्य संचालक एवं पुरोहित थे, पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन्होंने अतिरिक्त सुविधाएँ नहीं लीं। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ५०० रुपया मासिक वेतन पाकर भी सिर्फ ५० रुपए में अपना गुजारा करके शेष धन असमर्थ छात्रों की शिक्षा व्यवस्था में लगाते थे। उच्च पदों के महान् दायित्व को ठीक तरह से समझ सकने की क्षमता इस प्रकार के उदार, उच्च चरित्र व्यक्तियों में ही हो सकती है।

प्राचीनकाल की ब्राह्मण परम्परा की यही विशेषता थी कि मूर्धन्य व्यक्तियों को—वर्चस्व सम्पन्न पदाधिकारियों को साधारण जनता के स्तर का ही नहीं वरन् उससे भी कुछ कम—भौतिक सुविधाएँ लेकर सन्तुष्ट होना चाहिए। पदों के कारण उत्पन्न विषमता यदि समाप्त न की जाएगी तो समाज का नेतृत्व अवांछनीय व्यक्तियों के ही हाथ में रहेगा। धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक हर क्षेत्र में पद का गौरव तभी रहेगा, जब उसका भार सुयोग्य व्यक्ति वहन करें और नैतिक सुयोग्यता की एक महत्वपूर्ण कसौटी यह है कि पदाधिकारी जनसाधारण को उपलब्ध होने वाली अथवा अपने लोक कार्यों के लिए मिली अनिवार्य सुविधाओं के अलावा व्यक्तिगत लाभ देने वाली सभी सुविधाओं से इन्कार कर दें। अगले दिनों वर्ण, धन, लिंग की ही तरह पदों से उपजी विषमता को समाप्त होता देखा जा सकेगा।

इन पंक्तियों के द्वारा यह स्पष्ट किया जा रहा है कि नया युग तेजी से बढ़ता चला आ रहा है, उसे कोई रोक न सकेगा। प्राचीनकाल की महान् परम्पराओं को अब पुनः प्रतिष्ठित किया जाना है। अन्धकार युग की क्रूर विषमताएँ तिरोहित होने वाली हैं। विचार क्रान्ति आन्दोलन इसी का व्यापक उद्घोष-जन-जन को दी जाने वाली सूचना है। परिस्थिति के अनुरूप जो समय रहते बदल सकेंगे, वे सन्तोष और सम्मान प्राप्त करेंगे और जो बदलेंगे नहीं, मूढ़ता के लिए दुराग्रह करेंगे, उनके हाथ अपयश, असन्तोष एवं पश्चाताप के अतिरिक्त और कुछ न लगेगा।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समग्र प्रगति सहयोग-सहकार पर निर्भर

जर्रा-जर्रा बोल रहा है—"जियो और जीने दो"

राइजोबियम जाति के जीवाणु बैक्टीरिया और दलहन जाति के पौधों ने परस्पर समझौता कर लिया है। दलहन पौधों की जड़ें इन जीवाणुओं को रहने के लिये स्थान और शरण देती हैं। यह जीवाणु वायुमण्डल से नत्रजन (नाइट्रोजन) खींचकर पौधों को देते हैं, जिससे पौधों को पोषण मिलता है। दोनों बढ़ते और विकसित होते रहते हैं। प्रकृति की इस परोपकारी वृत्ति को (१) 'सिम्बायोसिस' कहते हैं।

किसी गाँव में आग लग गई। सब लोग सकुशल निकल गये पर एक अन्धा, एक लँगड़ा व्यक्ति दो ही रह गये। वे भाग नहीं सकते थे। अन्धा देख नहीं सकता था, लँगड़ा चल नहीं सकता था। दोनों ने ऊपर के सिद्धान्त को अपनाया। अन्धे ने लँगड़े को कन्धे पर बिठा लिया। लँगड़ा अन्धे को रास्ता बताने लगा और परस्पर सहयोग के आधार पर वह दोनों भी सकुशल बाहर निकल आये। एक-दूसरे के हित में परस्पर सहयोगी होने के इस सिद्धान्त को मनुष्य ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लागू कर लिया होता तो छोटी-छोटी क्षमताओं के लोग भी सन्तोष और सुविधा का जीवन जीते हुये अन्धे और लँगड़े की तरह सांसारिक कठिनाइयों से पार हो जाते।

सेलूलाइटिक फफूँद की दो जातियों में एक जाति बलवान होती है दूसरी निर्बल। जो निर्बल होते हैं वह अपने आहार 'सेलूलोज' को तोड़-फोड़ नहीं सकते। अब शक्तिशाली फफूँद सेलूलोज को तोड़ना प्रारम्भ करते हैं और उसमें कार्बनिक-अम्ल पैदा कर देते हैं, यह कमजोर सेलूलाइटिक फफूँद के लिये आहार का काम देता है। यदि वलवान फफूँद इन निर्बलों को सहारा न देते तो उनकी एक जाति कभी की नष्ट हो गई होती।

परिवार में बच्चे, बूढ़े, विधवायें और कई लोग बीमार तथा अपाहिज भी होते हैं, समाज में कई निर्धन, रोगी, अभावग्रस्त लोग होते हैं, उनके प्रति साधन सम्पन्न और शक्तिशाली लोगों का कर्त्तव्य भी ऐसा ही होता है। यदि सम्पन्न और सशक्त लोग कमजोर और निर्बलों की असुविधायें और अभाव दूर करने में थोड़ी-सी भी शक्ति खर्च कर सके होते तो आज समाज में कहीं भी विषमता न होती। प्रकृति का यह (२) 'प्रोटो कोआपरेशन' सिद्धान्त ही विश्व शान्ति का आधार बन सकता है।

जीव जगत् में (३) कमेन्सलिज्म का एक सिद्धान्त भी 'जियो और जीने दो' की समाजवादी व्यवस्था का आदर्श उदाहरण है। कुछ खास किस्म के सूक्ष्म जीवाणुओं में अपने विकास के साधनों का ज्ञान नहीं होता। उन्हें अपनी आजीविका और विकास के लिये साधनों की वैसे ही आवश्यकता पड़ती है जैसे समाज के अनेक पिछड़े, पद-दलित, अपंग, आदिवासी, स्त्रियों व हरिजनों को शिक्षा, ज्ञान संवर्द्धन, स्वास्थ्य, उद्यम-उद्योग आदि के साधनों की आवश्यकता होती है। इस आवश्यकता को दूसरे महत्वपूर्ण जीवाणु 'विटामिन' और 'एमीनो एसिड' बनाकर पूरा कर देते हैं। शिक्षित, सम्पन्न और प्रतिभावान् लोगों ने पिछड़े समाज को ऊपर उठाने के लिये इस सिद्धान्त के आधार पर अपने साधनों का एक अंश भी जुटा दिया होता तो आज संसार में कोई भी पिछड़ा और पददलित नहीं होता। सब लोग सुखी होते।

वस्तुतः प्रकृति में सर्वत्र सह-अस्तित्व का नियम काम कर रहा है। जर्मन प्राणिशास्त्रवेत्ता हेकल लगभग एक शताब्दी पूर्व इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि सृष्टि क्रम विविध इकाइयों के सहयोग-सन्तुलन पर चल रहा है। जिस प्रकार शरीर के कलपुर्जे कोशिकाएँ और ऊतक—मिल-जुलकर जीवन की गतिविधियों का संचालन करते हैं, उसी प्रकार संसार के विविध घटक एक-दूसरे के पूरक बनकर सृष्टि सन्तुलन को यथाक्रम बनाये हुए हैं। यह अन्यान्योश्रय व्यवस्था सृष्टिकर्ता ने बहुत ही समझ-सोचकर बनाई है और आशा रखी है कि सामान्य उपयोग के समय मामूली हेर-फेरों के अतिरिक्त किसी के द्वारा इसमें भारी उलट-पुलट नहीं की जायेगी। सृष्टा की यह इच्छा और व्यवस्था जब तक बनी रहेगी, तब तक इस धरती का अद्भुत सौन्दर्य और मनोरम क्रिया-कलाप भी जारी रहेगा।

उपरोक्त प्रतिपादन को हेकल ने 'इकालोजी' नाम दिया है। तब से लेकर अब तक इस ओर विज्ञानवेत्ताओं की रुचि घटी नहीं, वरन् बढ़ी ही है और शोध क्षेत्र के इस नये पक्ष को एक स्वतन्त्र शास्त्र ही मान लिया गया है। अब सृष्टि-सन्तुलन विज्ञान को इकालोजी शब्द के अन्तर्गत लिया जाता है।

इकालोजी शोध प्रयासों द्वारा निष्कर्ष पर अधिकाधिक मजबूती के साथ पहुँचा जा रहा है कि प्रकृति की हर वस्तु एक-दूसरे के साथ घनिष्ठतापूर्वक जुड़ी हुई है। आक्सिजन, पानी, रोशनी, पेड़-पौधे, कीटाणु, पशु-पक्षी और मनुष्य यह सब एक ही धारा-प्रवाह की अलग-अलग दीखने वाली लहरें हैं, जो वस्तुतः एक-दूसरे के साथ विविध सूत्रों द्वारा आबद्ध हो रही हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

५.२ भव्य समाज का अभिनव निर्माण

सृष्टि सन्तुलन शास्त्र के अन्वेषक तीन ऐसे सिद्धान्त निश्चित कर चुके हैं, जिनके आधार पर प्रकृति-गत सहयोग शृंखला इस जगत् की व्यवस्था को धारण कर रही है। पहला सिद्धान्त है—परस्परावलम्बन—इन्टरडिपेन्डेंस, दूसरा है— मर्यादा—लिमिटेशन और तीसरा—सम्मिश्रता—काम्प्लेक्सिटी। यही तीनों भौतिक सिद्धान्त अपने मिले-जुले क्रम से विश्व प्रवाह को गतिशील कर रहे हैं। जिस प्रकार अध्यात्म जगत् में सत्‌चित आनन्द की, सत्यं शिवं सुन्दरम् की, सत-रज-तम की, ईश्वर, जीव, प्रकृति की—मान्यता है और माना जाता है कि इन्हीं चेतन तत्वों के आधार पर जीवधारियों की प्रवृत्ति, मनोवृत्ति की क्रम-व्यवस्था चलती है। ठीक इसी तरह सन्तुलन शास्त्री यह मानते हैं कि सृष्टि क्रम की सुव्यवस्था इन्टरडिपेन्डेंस, लिमिटेशन और काम्प्लोक्सिटी पर निर्भर है।

परस्परावलम्बन, (इन्टरडिपेन्डेंस) का सिद्धान्त यह बताता है कि प्रकृति की हर चीज अन्य सब वस्तुओं के साथ जुड़ी-बँधी है। किसी भी जीव की सत्ता अन्य असंख्य जीवों के अस्तित्व पर निर्भर है। मानवी सत्ता स्वतन्त्र नहीं है। यदि पेड़-पौधे आक्सिजन पैदा करना बन्द कर दें तो वह बेमौत मर जायगा। विशालकाय वृक्ष का जीवन उन छोटे कीटाणुओं पर निर्भर है, जो सूखे पत्तों को विघटन कर उन्हें खाद के रूप में परिणत करते हैं और जड़ों के पोषण की व्यवस्था जुटाते हैं। जमीन में रहने वाले बैक्टीरिया किस प्रकार जड़ों को खुराक पहुँचाते हैं और चींटी, दीमक आदि छोटे कीड़े किस प्रकार जड़ों तक हवा, रोशनी और नमी पहुँचाने में अधिक परिश्रम करते हैं इसे जाने बिना हम वृक्ष के जीवन आधार का सही मूल्यांकन कर ही नहीं सकते। वृक्ष अपने आप में स्वतन्त्र नहीं है, वह कोटि-कोटि जीवन-घटकों के अनुग्रह पर आश्रित और जीवित है।

अफ्रीकी वन जन्तुओं की प्रमुख खाद्य आवश्यकता जो पौधा पूरी करता है, वह भी पराश्रयी पाया गया है। छोटे कीड़े कई तरह के बीज और खाद इधर से उधर लिए फिरते हैं। यह पौधा उसी से अपना जीवन ग्रहण करता है। कीड़ों की हरकतें बन्द करने के उपरान्त प्रयोगकर्ताओं ने देखा कि खाद, पानी की सुविधा देने के बाद पौधा उगने और बढ़ने की क्षमता खोता चला गया।

सन्तुलन शास्त्र का दूसरा नियम मर्यादा-लिमिटेशन—यह सिद्ध करता है कि हर प्राणी और हर पदार्थ की एक मर्यादा है, जब वह उससे आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है, तभी रोक दिया जाता है। वंश वृद्धि की क्षमता प्राणियों में निस्संदेह अद्‌भुत है, पर इससे भी तेज कुल्हाड़ी इस अभिवर्धन को नियन्त्रित करने के लिए कोई अदृश्य सत्ता सहज ही चलाती रहती है। प्राणी सृजन कितना ही क्यों न करे पर दौड़ में मृत्यु को नहीं जीत सकता है। जैसे ही जन्म दर की दौड़ बढ़ती है वैसे ही मृत्यु की बाधिन उसे दबोचकर रख देती है। प्राणियों का शरीर—पेड़ों का विस्तार एक सीमा पर जाकर रुक जाता है। पौधे एक सीमा तक ही सूर्य किरणों को सोखते हैं और निर्धारित मात्रा में ही आक्सिजन पैदा करते हैं। उपभोक्ताओं की संख्या और उपयोग की मात्रा जब तक उत्पादन के अनुरूप रहती है, तब ढर्रा ठीक तरह चलता रहता है, पर जब उत्पादन से उपभोग की तैयारी की जाती है तो विनाश का देवता उन उपभोक्ताओं के गले मरोड़ देता है। सन्तुलन जब तक रहेगा, तब तक शान्ति रहेगी, पर जहाँ भी, जिसमें भी मर्यादा का उल्लंघन करने वाला सिर उठाया वहीं कोई छिपा हुआ भैरव वैताल उठे हुए सिर को पत्थर मारकर कुचल देता है। आततायी और उच्छृंखल मनुष्यों के अहंकार को किसी न किसी कोने से उभर पड़ने वाली प्रतिक्रिया का शिकार बनना पड़ता है। पेट की आवश्यकता से अधिक आहार करने वाले अपच और उदर शूल का कष्ट सहते हैं। प्रकृति उल्टी और दस्त कराकर उस अपहरण को वापिस करने के लिए बाध्य करती है।

सम्मिश्रता–काम्प्लेक्सिटी का सिद्धान्त बताता है कि जिनके साथ हमारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं दीखता उनके साथ भी दूर का सम्बन्ध रहता है और घटनाक्रम प्रकारान्तर से—परोक्ष रूप में उन्हें भी प्रभावित करता है, जो उससे सीधा सम्बन्ध नहीं समझते। विश्व में कहीं भी घटित होने वाले घटनाक्रम को हम यह कहकर उपेक्षित नहीं कर सकते कि इससे हमारा क्या सम्बन्ध है ? प्रत्यक्ष न सही परोक्ष रूप से सही हम कहीं भी—किसी भी स्तर की घटना से अवश्यमेव प्रभावित होते हैं।

अमेरिका का राष्ट्रीय पक्षी गरुड़ अब तक अपना अस्तित्व गँवाने की ही तैयारी में है। इस आत्म-हत्या जैसी सत्ता निसृति का क्या कारण हुआ ? इसकी खोज करने वाले जीवशास्त्री इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पौधों को कीड़ों से बचाने के लिए जिन डी. डी. टी. सरीखे रासायनिक द्रवों का उपयोग होता रहा है, उससे गरुड़ के स्वाभाविक आहार में प्रतिकूलता भर गई फलस्वरूप वह प्रजनन क्षमता खो बैठा। अब वह पक्षी वंशवृद्धि की दृष्टि से प्रायः निखट्टू ही बनकर रह गया है। ऐसी दशा में इसके अस्तित्व का अन्त होना स्वाभाविक ही था। यों रासायनिक घोलों का गरुड़ की प्रजनन शक्ति से सीधा सम्बन्ध नहीं बैठता, पर सम्बन्ध सूत्र मिलाने पर एक के लिए किया गया प्रयोग दूसरे के लिए वंशनाश जैसी विपत्ति का कारण बन गया। इसी प्रकार की सम्बन्ध सूत्रता हमें अन्य प्राणियों की हलचलों अथवा अन्यत्र होने वाली घटनाओं के साथ जोड़ती है।

साइक्लोजी विशेषज्ञ वरी कामगर यह कहते हैं—देश और जाति का अन्तर कृत्रिम है। मनुष्य-मनुष्य के बीच की दीवार निरर्थक है। इतना ही नहीं प्राणधारियों और जड़ समझे जाने वाले पदार्थों को एक-दूसरे से स्वतन्त्र समझना भूल है। हम सब एक ऐसी नाव पर सवार हैं, जिसके डूबने, उतारने का परिणाम सभी को समान रूप से भुगतना पड़ेगा।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इकोलॉजी का सिद्धान्त बताता है कि जीव जगत् एवं जड़ जगत् परस्पर मिले हुए हैं, अतः हमें अपने ही नहीं, दूसरों के विकास का भी सदैव ध्यान रखना चाहिए।

कर्मों का सामूहिक फल

कर्म-फल के सम्बन्ध में मनीषियों का विचार है कि हम जो कर्म करते हैं, उनका फल हम को तो भोगना पड़ता ही है, साथ ही अन्य प्राणियों को भी भोगना पड़ता है। मनुष्य सामाजिक पद्धति पर चलने वाला प्राणी है और उसे अधिकांश नियमों का पालन सामूहिक रूप से करना पड़ता है। इसलिए हमारे कर्मों का फल समूह को मिलेगा और समूह द्वारा किये गए कर्मों के फल भोग में हमारा भी भाग होगा।

समाज व्यवस्था द्वारा उत्पन्न दोषों या श्रेष्ठ कर्मों का फल सभी व्यक्तियों को बाँटकर भोगना है। परन्तु, जिस व्यक्ति द्वारा जो कर्म किये जाते हैं, उसे अपने कर्म का अधिकांश भाग भोगना पड़ेगा। कुछ स्वल्प भाग ही समूह में जायेगा। इस प्रकार व्यक्ति का हित समष्टि में और समष्टि का व्यक्ति में निहित है।

यह विश्वास इसलिए भी आवश्यक है कि इससे परस्पर प्रेम, विश्वास और समत्व-भाव उत्पन्न होता है। इससे हम मानवता की ओर दृढ़तापूर्वक बढ़ेंगे। इसीलिए हमें श्रेष्ठ कर्मों में स्वयं तो प्रवृत्त होना ही चाहिए, साथ ही अन्य लोगों को भी वैसा करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

पृथ्वी के एक भाग में दुर्भिक्ष पड़े और सुभिक्ष की स्थिति उत्पन्न करने के लिए यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म किये जायें तो उसका फल—सुभिक्ष द्वारा अन्न की उत्पत्ति का लाभ सभी उठायेंगे। केवल कर्ता को ही उस अन्न का लाभ नहीं मिलेगा, हाँ उसके शुभ कर्म का फल परोक्ष रूप से उसे अवश्य प्राप्त होगा, जिसकी प्राप्ति इस जन्म अथवा अन्य जन्मों में भी सम्भव है।

एक व्यक्ति ने कोई धर्मशाला बनवाई तो उसके उस श्रेष्ठ कार्य का थोड़ा-थोड़ा फल वे लोग भी प्राप्त करेंगे, जो उसमें कुछ समय के लिए ठहरेंगे। उसका अप्रत्यक्ष लाभ, धर्मशाला बनवाने वाले को होगा। कुछ भी हो, परन्तु प्रत्यक्ष लाभ उसमें ठहरने वालों को तो हुआ ही। इस प्रकार उस शुभ कर्म के फल में सामूहिक भाग स्पष्ट है।

विद्यालय, औषधालय, कुँआ, तालाब, छात्रावास, अन्नक्षेत्र, गौशाला, अनाथालय, धर्म प्रचार आदि शुभ कार्य यद्यपि कर्ता ने अपने आत्म-कल्याण के लिए किए थे, पर उनका लाभ उन कार्यों के सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को भी मिलता है और वह कर्ता जिस जाति, समाज, देश या सम्प्रदाय से सम्बन्धित होता है, उसकी भी प्रशंसा होती है। संसार में समय-समय पर अनेक महापुरुष होते रहे हैं, उनके कारण उस युग, देश और समाज की भी प्रतिष्ठा बढ़ी है जिसमें वे जन्मे। राम के जन्म से अयोध्या और कृष्ण के जन्म से मथुरा का गौरव बढ़ा। गीता-ज्ञान ने संसार में सारे भारतवर्ष का गौरव बढ़ाया।

जिन वैज्ञानिकों ने रेल, तार, रेडियो, बिजली, कारखाने के यंत्र, वायुयान, चिकित्सा आदि के आविष्कार किये उनसे सारी मानव-जाति को लाभ पहुँचा। धर्म, सदाचार, अध्यात्म, सहयोग, सहिष्णुता, संयम, समानता आदि के आदर्शों का जिन विद्वानों ने प्रतिपादन और प्रसार किया, उनने भी समस्त मानव-जाति के उत्कर्ष में महत्वपूर्ण योग दिया है। स्वतन्त्रता युद्ध के संयोजकों और बलिदानियों के प्रयत्न का फल आज समस्त भारतवासी राजनैतिक स्वाधीनता के रूप में उपलब्ध कर रहे हैं।

जिस प्रकार व्यक्ति के सत्कर्मों का लाभ सारे समाज को मिलता है वैसे ही उसके दुष्कर्मों का परिणाम भी दूसरों को भुगतना पड़ता है। डाकू, चोर और जेबकट अपने कृत्यों से अगणित मनुष्यों को हानि पहुँचाते और क्षुभित करते हैं। गुण्डों की उद्दण्डता का फल अगणित शान्तिप्रिय नागरिकों को भुगतना पड़ता है। गन्दे लोग हमेशा हैजा आदि रोगों से ग्रसित होते हैं और उनकी छूत से बीमारी दूर-दूर तक फैलकर अनेकों के लिए प्राणघातक संकट उत्पन्न कर देती है। व्यसनी, व्यभिचारी, नशेबाज, जुआरी, अपनी बुरी आदतें दुर्बल मस्तिष्क के अनेक लोगों को सिखाकर उन्हें भी अपने जैसा ही बना लेते हैं।

व्यक्ति सर्वथा एकाकी नहीं है। वह समाज का एक अंग है। इसलिए उसके भले-बुरे कार्यों का प्रभाव केवल उसी तक सीमित नहीं रहता वरन् सारे समाज को भुगतना पड़ता है। पेट में विकार हो जाय, दर्द होने लगे तो उससे केवल पेट की ही हानि नहीं है वरन् सारे शरीर की ही व्यवस्था बिगड़ती है। मस्तिष्क यदि प्रचुर विद्या और ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो उसका लाभ केवल सिर को ही नहीं मिलता, वरन् उस ज्ञान के फलस्वरूप सभी अंगों के लिए सुख-साधन उपलब्ध होते हैं। यही बात व्यक्ति के सम्बन्ध में भी है।

इसलिए दूसरों के भले-बुरे कार्यों की ओर ध्यान रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। हमें अपने काम से काम, अपने मतलब से मतलब कहने मात्र से काम नहीं चल सकता। ऐसा करने से बुरों का विरोध न हो सकेगा और वे मनमानी करके अपनी दुष्टता बढ़ाते हुए दूसरे लोगों के लिये दिन-दिन अधिक भयंकर बनते चलेंगे। उसी प्रकार सज्जनों के कार्यों में प्रोत्साहन या सहयोग न दिया जाय तो वे भी निराश होकर चुप बैठ रहेंगे और उनके कार्यों से अनेकों को जो लाभ हो सकते थे वे न हो सकेंगे।

बाढ़, भूकम्प, दुर्भिक्ष, महामारी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, युद्ध आदि दैवी प्रकोपों को मानव-जाति के सामूहिक पापों का परिणाम माना गया है। निर्दोष व्यक्ति भी गेहूँ के साथ घुन की तरह पिसते हैं। वस्तुतः वे भी निर्दोष नहीं होते। सामूहिक दोषों को हटाने और घटाने का प्रयत्न न करना, उनकी ओर उपेक्षा दृष्टि रखना भी एक पाप है। इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दृष्टि से निर्दोष दीखने वाले व्यक्ति भी सदोष सिद्ध होते हैं और उन्हें सामूहिक दण्ड का भागी बनना पड़ता है।

किसी नगर में बड़े पैमाने पर उपद्रव होने पर उस सारे नगर पर सरकार सामूहिक आर्थिक दण्ड लगाती है और निर्दोषों से भी जुर्माना वसूल करती है। उन निर्दोषों का कसूर यह माना जाता है कि उन्होंने अपने क्षेत्र में दुष्कर्म होते हुए भी उसे रोकने में उपेक्षा बरती, कायरता दिखाई, शान्ति स्थापना के लिए प्रयत्न न किया इसलिए वे भी अपराधी हैं।

समाज में हो रही बुराइयों को रोकने के लिए ईश्वर ने ऐसी ही सामूहिक जिम्मेदारी हर व्यक्ति को सौंपी है। उसका कर्तव्य है कि अनीति जहाँ कहीं हो रही है उसे रोके, घटाने का प्रयत्न करे, विरोध करे, असहयोग बरते। जो भी तरीका उसको अनुकूल जँचे उसे अपनाये, पर कम से कम इतना तो होना ही चाहिए कि उस बुराई में अपना सहयोग प्रत्यक्ष और परोक्ष किसी भी रूप से न हो। बुरे कामों की प्रशंसा तो कदापि न की जाय, उनके प्रति भर्त्सना, घृणा और विरोध की भावना तो अवश्य ही रखी जाय।

इसी प्रकार सत्कार्यों के समर्थन, सज्जनों के सम्मान एवं प्रोत्साहन के लिए हम में हर व्यक्ति को कुछ न कुछ करना चाहिए। ऐसे लोकोपयोगी कार्यों में यथासम्भव योगदान देना चाहिए। कम से कम उनकी प्रशंसा करना और सद्भाव रखना तो नितान्त आवश्यक ही है।

हम सब अलग-अलग होते हुए भी एक समाज के अंग हैं। एक नाव में बैठे हैं। यदि एक व्यक्ति नाव के पैंदे में छेद करे तो अन्य यात्रियों का कर्त्तव्य है कि उसे ऐसा करने से रोकें क्योंकि उसके छेद करने से औरों का जीवन भी संकट में पड़ जायेगा। सामाजिक सुव्यवस्था एवं धर्म मर्यादाओं के स्वयं पालन करने और दूसरों से पालन कराने में भी हमारा यही दृष्टिकोण रहना चाहिए।

समाज को उठाये बिना स्वयं उठे तो क्या उठे ?

यह खेद करने से पूर्व कि हमारा वास्तविक विकास नहीं हो रहा है, हम विकास से वंचित है, प्रगति के अर्थ में कुछ भी आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं—यह सोचना चाहिए कि हमारी उन्नति और प्रगति हो क्यों नहीं रही है, हम उन्नति से वंचित हैं क्यों ?

यदि अपनी स्थिति पर खेद करते रहने के बजाय उसके कारणों पर विचार किया जाये, तो पता चलेगा कि हमने जो विचार और कार्य पद्धति अपना रखी है, वह ही ठीक नहीं है और इसलिये हम उन्नति और विकास से वंचित बने हुये हैं। हम सोचते यह हैं कि संसार की सारी सम्पदा, सारा वैभव और सारे सुख-साधन हमें ही प्राप्त हो जायें। हमें हास-विलास और आमोद-प्रमोद की परिस्थितियाँ मिलें, हम समाज में सबसे अधिक धनवान् और शक्तिशाली बनें, समाज में हमारी पूजा, प्रतिष्ठा हो।

न केवल इस प्रकार ही सोचते हैं, बल्कि उसके अनुरूप अपने आचरण का भी व्यवहार करते हैं। व्यापार में अधिक से अधिक मुनाफा कमाना चाहते हैं। नौकरियों में दूसरों को पीछे धकेलकर आगे बढ़ जाना चाहते हैं। सार्वजनिक स्थानों पर दूसरों की चिन्ता नहीं करते। जहाँ भी रहते और जहाँ भी जाते हैं, अपनी ही सुख-सुविधा और लाभ पर ध्यान रखते हैं। दूसरे की सुविधा-असुविधा अथवा सुख-दुःख का कोई ध्यान नहीं रखते। हमारे ये स्वार्थपरक विचार और कार्य ही हमारी उन्नति एवं प्रगति में बाधक बने हुए हैं।

हम यह नहीं सोच पाते कि हम केवल एक अकेले व्यक्ति नहीं हैं। हमारा अस्तित्व सामाजिक है। हमारा सर्वस्व अभिन्न रूप से हमारे समाज के साथ जुड़ा हुआ है। जितनी देर तक हम अपने को एक अलग इकाई मानकर अपनी उन्नति और विकास के लिये सोचते और कार्य करते रहेंगे, हमें निराश ही रहना पड़ेगा। जब तक हमारा जीवन-कोण और कार्य-पद्धति समष्टिगत न होकर व्यक्तिगत रहेगा, हमें अपनी स्थिति पर इसी प्रकार खेद करते रहने पर विवश होना पड़ेगा।

हमें न केवल सोचना ही होगा, बल्कि यह आस्था लानी होगी कि हमारा जीवन व्यक्तिगत नहीं, समष्टिगत है। हमें केवल अपने को आगे रखकर सोचने का कोई अधिकार नहीं है। समष्टिगत सोचना और उसी के अनुसार आचरण करना ही हमारा कर्तव्य भी है और अधिकार भी। जिस दिन से हम अपनी यह आस्था बनाकर उसके आधार पर अपने आचरण का सुधार कर लेंगे, हमारी प्रगति के द्वार आपसे-आप खुलने लगेंगे।

हमारा जीवन समाज का दिया हुआ है। वह हमारी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है। समाज की एक धरोहर है। इसका उपयोग समाज के कल्याण और उसके हित के लिये ही होना चाहिए। इस तथ्य को तब ही चरितार्थ किया जा सकता है, जब हम यह आधार लेकर चलें कि हमारा जीवन अपने व्यक्तिगत रूप में भले ही कुछ कष्टपूर्ण क्यों न हो पर दूसरों के लिये यह हितकारी है। दूसरों का सुख और दूसरों की सुविधा ही हमारी सुख-सुविधा है और दूसरों का दुःख-क्लेश, हमारा दुःख-क्लेश है—यह परमार्थ भाव मनुष्य में जिस व्यक्तित्व का विकास करता है, वह बड़ा आकर्षक होता है। इतना आकर्षक कि समाज की शक्ति और विकास मूलक सद्भावनायें आपसे-आप खिंचती चली आती हैं। पूरा समाज उसका अपना परिवार बन जाता है, कुटुम्ब के रूप में बदल जाता है। ऐसी बड़ी उपलब्धि मनुष्य को किस ऊँचाई पर नहीं पहुँचा सकती ?

किन्तु यहाँ पर भी एक सावधानी बर्तने की आवश्यकता है। बहुत बार लोग प्रारम्भ में सामाजिक बने रहते हैं। समाज के लिये सोचते और बहुत कुछ करते हैं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किन्तु जब उस परमार्थ के परिणामस्वरूप किसी पद पर पहुँच जाते हैं, तो स्वार्थ में पड़ जाते हैं। लोभ में आकर अपने लिये संचय एवं संग्रह करने लगते हैं। वे समाज के उस अनुग्रह को अपना अधिकार और अपनी सम्पत्ति मानकर चलने लगते हैं। बस यहीं से उनका पतन प्रारम्भ हो जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि कोई भी शक्ति, सम्पदा, पद अथवा प्रतिष्ठा, वह चाहे सद्व्यवहार के परिणामस्वरूप समाज के बीच से अर्जित हुई हो अथवा संयोगवश उत्तराधिकार में मिल गई हो, कभी भी अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति न मानी जानी चाहिए।

किसी भी क्षेत्र में पाई शक्ति, पद अथवा प्रतिष्ठा, होती तो अपने ही हाथ में है, उसका आवश्यकता भर व्यक्तिगत रूप में उपयोग भी किया जा सकता है तथापि यह कभी न भूलना चाहिए कि उस पर अन्ततः अधिकार समाज का ही है। उसे उसके लाभ से वंचित रखकर केवल अपने तक सीमित कर लेने का हमें कोई अधिकार नहीं है और यदि हम ऐसा करते हैं, तो गलती करते हैं, अनधिकार चेष्टा करते हैं, जिसका दण्ड हमें अधिकार-वंचना के रूप में किसी समय मिल सकता है।

हम जियें, खूब हँसी-खुशी और आनन्दपूर्वक जियें, यह ठीक भी है और इसका हमें अधिकार भी है। तथापि हमें अपनी हँसी-खुशी में दूसरों को भी भाग देना चाहिए। हम तो आमोद-प्रमोद और आनन्द-मंगल मनाते चलें और हमारे आस-पास का समाज दुःख के आँसुओं से भीगता रहे, तो हमारी हँसी-खुशी एक सामाजिक अपराध है। हमें अपने व्यक्तिगत आमोद-प्रमोद में इस सीमा तक नहीं डूबा रहना चाहिए कि आस-पास का क्रन्दन ही सुनाई न दे। आस-पास के क्रन्दन के बीच में भी जो उपेक्षा-भाव से खुशियाँ मनाता रहता है, उसे तो क्रूर और अकरुण व्यक्ति मानना होगा। ऐसे समाज के विरोधी व्यक्ति को समझ लेना चाहिए कि उसकी यह क्रूर पाशविक वृत्ति शीघ्र ही उसकी सारी हँसी-खुशी छीन लेगी। हँसी-खुशी तो उसी की स्थायी और सुरक्षित रह पाती है, जो अपने साथ दूसरों को भी उसमें भागीदार बनाकर मंगल मनाया करता है।

संसार के अन्य समाजों की बात तो नहीं कही जा सकती पर अपने भारतीय समाज की यह पद्धति कभी नहीं रही कि दूसरों के कष्ट-क्लेशों की उपेक्षा करके आनन्द मनाया जाये। आनन्द जीवन की सहज प्रवृत्ति है। यह सुर-दुर्लभ मानव शरीर मिला ही अनन्त आनन्द को पाने और मानने के लिए है। फिर भी एकाकी आनन्द मनाने का निषेध भी है। दूसरों के साथ मिलकर ही आनन्द का उपभोग वास्तविक उपभोग है। अन्यथा वह एक अन्याय है, अनुचित है और चोरी जैसी बात है। हमें आनन्द का संयोग मिला है, उसकी सुविधा उपलब्ध है, तो हमें उसे जन-जन को साथ लेकर मनाना चाहिए। भारतीय संस्कृति और धर्म में सामूहिक मेले, त्यौहार, पर्व और पारिवारिक उत्सव मिल-जुलकर मनाने का नियम है। नीतिकारों ने व्यक्तिगत, एकाकी आनन्दोपभोग को अनुचित कहा है। भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत जिन पर्वों, त्यौहारों मेलों एवं उत्सवों की व्यवस्था की गई है, उन सबको सामाजिक आधार पर मनाने का निर्देश भी किया गया है।

इस सामूहिक आनन्दोपभोग के पीछे एक बड़ा कल्याणकारी मन्तव्य सन्निहित है। वह यह कि इससे समाज में संगठन, सद्भावना, शक्ति और पारस्परिक प्रेम की वृद्धि होती है। लोगों में बन्धुत्व की भावना का विकास होता है। समाज को पीछे ढकेलने वाली ईर्ष्या-द्वेष और स्वार्थ की विकृतियों का हतोत्साहन होता है। समाज में अमन-चैन और सुख-शांति का वातावरण स्थित होता है। व्यक्ति, व्यक्ति और व्यक्तियों के साथ पूरा समाज उन्नति और प्रगति की ओर अग्रसर होता चलता है। संसार में प्रतिष्ठा और नेकनामी का गौरव प्राप्त होता है।

यदि हमारी उन्नति नहीं हो रही है, हम विकास के पथ पर नहीं बढ़ पा रहे हैं, तो इसका कारण यही हो सकता है कि हम सम्पूर्ण समाज को सामने न रखकर केवल अपने लिए ही सोचने और आचरण करने की गलती करते हैं। उन्नति और विकास की आधार-शिला सामूहिक भावना है। व्यक्तिगत विचार संकीर्णता का द्योतक है और संकीर्ण व्यक्ति संसार में कभी उन्नति नहीं कर सकता। यदि उन्नति की इच्छा यथार्थ है और निश्चय ही हम जीवन में कुछ उल्लेखनीय कार्य करना चाहते हैं तो व्यक्तिगत—के संकीर्ण दायरे से बाहर आकर समष्टिगत भावों में विस्तार लाना होगा। हमें वही कुछ करना होगा जो रचनात्मक और समाज के लिये हितकारी हो। हमें केवल अपने व्यक्ति के लिए नहीं सम्पूर्ण समाज के लिए जीना होगा और यह मानकर चलना होगा कि हमारे पास आज जो कुछ है, वह समाज के लिए, उसका हित करने के लिए ही है और आगे भी भविष्य में जो कुछ उपलब्ध होगा, वह सब भी समाज का अनुग्रह होने से उसी का होगा। जिसे उसी के हित और कल्याण में लगाना होगा।

इस प्रकार जिस दिन हमारे प्रयत्नों और प्रवृत्तियों का आधार 'बहुजन हिताय' की भावना बन जायेगा, हमें अपनी प्रगति एवं विकास के लिए विचलित न होना होगा समाज स्वयं ही हमे हाथों-हाथ ऊपर उठा लेगा। हमें सहयोग और सहायता की कमी न रहेगी। हम न स्वयं एकाकी रह जायेंगे और न हमारे प्रश्न और हमारी समस्यायें ही हमारी मात्र रह जायेंगी। वे सबकी, पूरे समाज की बन जायेंगी और पूरा समाज उन्हें हल करने में हमारा साथ देने लगेगा। इसीलिए तो वेदों में स्थान-स्थान पर कहा गया है—

'समानी प्रपा सहवोऽन्नभागः'—तुम्हारे खाने-पीने के स्थान और एक जैसा हो। **'समानी व आकूतिः समानी हृदयानिव'**—तुम्हारे हृदय के संकल्प, भावनायें एक जैसी हों। **'संगच्छध्वम् सम्बदध्वम्'**—तुम्हारी गति और वाणी में एकता हो—आदि-आदि।

इस प्रकार सामूहिक और सामाजिक भावना को जीवन में स्थान देने पर व्यक्ति एवं समाज दोनों की उन्नति एक साथ एक समान होती चलती है। अस्तु व्यक्तिगत विकास के लिए भी सामाजिक वृत्ति का विकास करना होगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुनिया छोटी हो रही है—मनुष्य घनिष्ट हो रहा है

अब दुनिया बहुत छोटी और सघन हो गई है। देश-देश के बीच मीलों में गिनी जाने वाली दूरी अब द्रुतगामी जल, थल और नभ में चलने वाले वाहनों ने दूर कर दी है। हिन्दुस्तान और अमेरिका के बीच की दूरी, मात्र चौदह घण्टे रह गई है। दूसरे अधिक चाल से चलने वाले ऐसे वायुयान अब सामने आने ही वाले हैं, जो इसे भी घटाकर आधी कर देंगे। प्रक्षेपणास्त्रों के लिए तो दुनिया के एक सिरे से दूसरे तक पहुँचने का रास्ता, कुछ ही मिनटों में पार हो सकता है।

यह तो यातायात की बात रही। राजनैतिक शतरंजों को ही लें, उसके प्रमुख खिलाड़ी अपनी मर्जी के मुताबिक दूसरे छोटे देशों को लड़ मरने के लिए बाध्य कर सकते हैं। जब उनकी मर्जी—जहाँ भी विश्वयुद्ध खड़ा करने को हो वे वहीं उसे लाकर थोप सकते हैं। स्पष्ट है कि पिछले दिनों वियतनाम, इस्राइल, कश्मीर, बंगाल देश में जो लड़ाइयाँ हुईं उनके पीछे बड़ी शक्तियों का हाथ था। रूस, अमेरिका के अतिरिक्त अब चीन भी इसी वर्ग में सम्मिलित हो गया है जिसके द्वारा उत्पन्न की गई विवशतायें कहीं भी युद्ध या महायुद्ध खड़ा कर सकती हैं।

एक देश में घटित हुई घटनायें सारे विश्व को प्रभावित करती हैं। पिछले दो महायुद्धों ने सारे संसार की राजनीति को प्रभावित किया और अनेक देशों के भाग्य का फैसला अनायास ही हो गया। कितने ही ऐसे देशों को अनायास ही आजादी मिल गई, जो लड़कर शायद ही स्वतन्त्रता प्राप्त कर पाते। एक देश को किसी कार्य में सफलता-असफलता मिलने पर दूसरे देश वालों पर उसकी उत्साहवर्धक एवं निराशाजनक प्रतिक्रिया होती है। एक के अनुभवों से दूसरा लाभ उठाता है। समय-समय पर एक-दूसरे की सहायता भी करते हैं। अपने सीमावर्ती राज्यों को हर देश ऐसी स्थिति में रखना चाहता है, जो उसके मार्ग का कंटक न बने वरन् सुरक्षा की दृष्टि से सहायक ही सिद्ध हो। इस दृष्टि से समर्थ देश अपने सीमावर्ती छोटे देशों की कई प्रकार से सहायता करके उन्हें सुदृढ़ बनाने का प्रयास करते हैं।

प्रतिद्वन्द्वी गुट में तोड़-फोड़ करने और उनमें कमजोरियाँ पैदा करने के लिए बड़ी शक्तियाँ आये दिन षड़यन्त्र करती रहती हैं। इसी प्रकार अपने गुट वालों की हर हालत में लाभदायक स्थिति बनाये रखने के लिए अनुचित का भी समर्थन किया जाता है। इन कूटनीतिक चालों से एक बात साफ तरह समझी जा सकती है कि किसी देश की सीमाएँ मात्र उसकी भौगोलिक सीमा तक बँधी नहीं हैं। वरन् यहाँ तक फैली हुई हैं, जहाँ तक कि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उसके स्वार्थ प्रभावित होते हैं।

कितनी ही सरकारों के तख्ते उनकी आन्तरिक क्रान्तियों के आधार पर उलटते हैं और नई सरकारें बनती हैं। इन्हें मात्र उसे देशवासियों का ही प्रयास नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः उनका असली सूत्र संचालन निहित स्वार्थी बड़ी-बड़ी शक्तियाँ करती हैं। चलते तो मुहरे ही हैं पर उन्हें चलाने वाली उँगलियाँ दूसरी होती हैं। आज शीत युद्ध विज्ञान का जो विकास-विस्तार हुआ है। उसमें असली लड़ने वाले पर्दे के पीछे रहते हैं और मञ्च पर कठपुतलियाँ उछलती-कूदती हैं।

राजनीति के विद्यार्थी भली प्रकार जानते हैं कि निहित स्वार्थ किस प्रकार सुदूर के देशों की शान्ति अथवा अशान्ति के लिए उत्तरदायी होते हैं। संचार विज्ञान के विद्यार्थी जानते हैं कि रेडियो, तार, टेलीविजन आदि के सुधरे हुए नवीनतम यन्त्रों ने एक स्थान की बात दूसरे स्थान तक पहुँचाने में समय सम्बन्धी देरी को कितना कम कर दिया है। कुछ ही सैकिण्डों में हम पृथ्वी के एक ओर से दूसरे ओर तक संचार भेज सकते हैं। इतना ही नहीं अन्तरिक्ष यात्रा का नियन्त्रण तथा निर्देशन पृथ्वी पर बने केन्द्रों से होता है। इस दृष्टि से संवाद-संचार की परिधि अब अन्तर्ग्रहीय हो चली है। दुनिया कितनी छोटी होती चली जा रही है। द्रुतगामी वाहन व्यक्तियों और वस्तुओं को कितनी शीघ्रतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाते हैं यह सर्वविदित है।

एक देश की सभ्यता, संस्कृति, कला, शिक्षा, शोध आदि से दूसरे देश प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। योरोपीय पोशाक तथा फैशन की गति अनजाने ही भारत के छोटे देहातों तक हो गई है। अँग्रेजी ढंग के बाल रखाना—कोट-कमीज पहनना देहाती बच्चे भी पसन्द करते हैं। चाय और सिगरेट का आविष्कार उत्पादन कहीं से भी हुआ हो अब उसका प्रचलन विश्वव्यापी है। विज्ञान की विभिन्न धाराओं के आविष्कर्ता कोई भी क्यों न रहे हों उनका लाभ सर्वत्र समान रूप से उठाया जाता है। यही बात विचारधाराओं के सम्बन्ध में लागू होती है। रूसो द्वारा प्रतिपादित प्रजातन्त्री सिद्धान्त और कार्लमार्क्स द्वारा प्रस्तुत साम्यवादी विचारधारा उन्हीं देशों तक सीमित नहीं रही जहाँ उनका उद्भव हुआ था। इन प्रतिपादनों ने समस्त विश्व में हलचल उत्पन्न की और शासन तन्त्र की पुरानी परम्पराएँ ही उलटकर रख दीं। नीत्से का नास्तिकवाद प्रबुद्ध वर्ग के मस्तिष्कों को प्रभावित करता है।

फ्राइड के काम मनोविज्ञान सिद्धान्त अब यौन स्वेच्छाचार के रूप में सर्वत्र फल-फूल रहे हैं। किसी समय फ्रांस, अमेरिका, आयरलैण्ड, इटली में स्वतन्त्रता की लड़ाइयाँ जीती गईं थीं, उस सफलता ने संसार भर के पराधीन-देशों को आजादी की जंग छेड़ने का माहौल उत्पन्न किया था। भ्रष्टाचार, रिश्वत, धोखाधड़ी, अपराधों की बाढ़, स्वच्छन्द विलासिता अब किसी देश विशेष की बपौती नहीं है। छूत की बीमारियों पर किसी देश की परिधि में ही रहने का प्रतिबन्ध नहीं है, इसी प्रकार कुछ देशों में पनपने वाला

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वेच्छाचार दूसरे देशों को अनायास ही उस दिशा में प्रोत्साहित और प्रशिक्षित कर देता है। तस्कर व्यापार अब एक प्रकार का अन्तर्राष्ट्रीय प्रचलन हो गया है। तस्करों के बीच एक प्रकार से ऐसा सुगठित सहयोग है, जिसे किसी भी अच्छे विश्व संघ की तुलना में अधिक मजबूत और सफल कहा जा सकता है।

कानून, शिक्षा, चिकित्सा, कला, युद्ध, विद्या, कृषि, पशु पालन, व्यवसाय आदि की प्रक्रियाएँ एक देश से दूसरे देश तक पहुँचती हैं और परस्पर एक-दूसरे से बहुत कुछ सीखते हैं। समाज गठना से लेकर आहार-विहार तक की विधि-व्यवस्था देशों की सीमाओं का उल्लंघन करके स्वच्छन्द विचरण करती हैं। हिप्पीवाद अब एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्प्रदाय बनता चला जा रहा है।

अमेरिका के अणु बम सज्जित वायुयान अब रूस के निकटवर्ती आसमान पर हर घड़ी उड़ते रहते हैं और निर्देश मिलने पर किसी भी क्षण सर्वनाश कर सकते हैं। रूस ने भी इसी से मिलती-जुलती व्यवस्था की है। इस प्रकार युद्ध की दृष्टि से बड़ी शक्तियों के बीच कोई सुरक्षा सीमा नहीं है। भूगोल के हिसाब से नक्शों पर सीमांकन अभी भी छपा रहता है और जहाँ-तहाँ नाका चौकियाँ बनी रहती हैं पर यह सब खोखली जानकारी है। वास्तविकता इससे कहीं अधिक आगे, टेड़ी-मेड़ी और बढ़ी-चढ़ी है।

यह तो हुई राज सत्ता, विज्ञान, शिक्षा, संचार आदि व्यवस्थाओं की बात—व्यक्ति की दृष्टि से सोचें तो भी हम इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि मनुष्य-मनुष्य के बीच जो खाइयाँ देश, जाति-धर्म, सम्प्रदाय आदि के नाम पर खोदी गई थीं, वे अब क्रमशः पटती चली जा रही हैं। आदमी आदमी के अधिक निकट आ रहा है। एक-दूसरे को समझने की अधिक सावधानी से चेष्टा की जा रही है और एक की हलचलों को दूसरे के द्वारा दिलचस्पी के साथ देखा जा रहा है। दैनिक समाचार पढ़ने में—रेडियो न्यूज सुनने में लोगों की बढ़ती हुई दिलचस्पी यह प्रकट करती है कि व्यक्तिगत लाभ-हानि तक सीमित न रह कर अन्यान्यों द्वारा अन्यत्र होने वाले क्रिया-कलापों एवं घटना क्रमों में किस प्रकार अभिरुचि उत्पन्न हो रही है और महत्वपूर्ण समाचार किस प्रकार दूर-दूर तक अपना गहरा प्रभाव छोड़ रहे हैं ? संकटग्रस्त लोगों की सहायता के लिये किस प्रकार दूर स्थानों के निवासी धन-जन की सहायता लेकर दौड़ते हैं, इसका लेखा-जोखा बहुत ही उत्साहवर्धक है। यह स्नेह-सहयोग प्रकट करता है कि अब दुनिया बहुत छोटी नहीं रही। लोकमानस, लोकमत के साथ-साथ लोकमंगल, लोकरंजन, लोक सत्ता की सामर्थ्य अधिकाधिक प्रचण्ड होने लगी है। संस्थाओं और संगठनों का विस्तार और उनमें भाग लेने वालों का बाहुल्य यही प्रकट करता है कि एकाकीपन की पुरानी मनोवृत्ति अब असामयिक होती जा रही है और सहयोग विस्तार को युग की आवश्यकता के रूप में मान्यता मिल रही है। प्रजातन्त्री शासन इसी प्रकार की एक साझेदारी है। घर-परिवार अब क्रमशः सहयोग समितियों के रूप में विकसित हो रहे हैं। मनुष्य एक-दूसरे पर अधिकाधिक निर्भर हो चले हैं। इंग्लैण्ड जैसी सोशल बैलफेयर स्टेटें अपने समस्त प्रजाजनों की असमर्थ स्थिति में सहायता करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर उठा रही हैं। बेकारी का भत्ता, बुढ़ापे की व्यवस्था, निःशुल्क शिक्षा और चिकित्सा, अपंगों की साज-सँभाल, अनाथों का पालन जैसी जिम्मेदारियाँ समाज या सरकारों द्वारा उठाये जाने का अप्रत्यक्ष अर्थ यही होता है कि जनता ने एक कुटुम्ब के रूप में अपनी स्थिति स्वीकार करली है और एक-दूसरे के सुख-दुख में भागीदार रहने की यथार्थता को अंगीकार कर लिया है। जो उत्तरदायित्व पिछले जमाने में कुटम्बियों द्वारा सँभाले जाते थे अब उन्हें सारे समाज ने अपने कन्धे पर लेने की आवश्यकता मानी है। इस दिशा में न्यूनाधिक प्रयास पिछड़े देशों में भी हो रहे हैं। विकसित देश तो उस प्रक्रिया को देर से अपने यहाँ कार्यान्वित कर रहे हैं।

विज्ञान, अर्थतन्त्र, शासन, शिक्षा, जनसंख्या आदि के विस्तार को कारण माना जाय अथवा उसे युग प्रवाह कहा जाय, यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि परिस्थितियाँ मनुष्य को अधिक समीप लाकर खड़ा कर रही हैं। स्वार्थ-परता और संकीर्णता भरा व्यक्तिवाद अब पिछड़ापन बन रहा है। इस स्तर के तत्व समाज द्वारा प्रताड़ित किये जा रहे हैं और उनकी गतिविधियों पर अंकुश लगाया जा रहा है। आयकर, सम्पत्तिकर, मृत्युकर आदि के द्वारा व्यक्ति को अपनी अधिक कमाई समाज को वापिस करने के लिए बाध्य किया जा रहा है और उसे बाधित रूप से समाज सेवा के लिए दानदाताओं की पंक्ति में खड़ा किया जा रहा है। राजाओं, जागीरदार और जमींदारों का उन्मूलन हमारी आँखों के सामने ही हुआ है। बैंक बीमा से लेकर विविध व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण करने के लिये सरकारों द्वारा उठाये गये कदम यह बताते हैं कि हवा का रुख किधर है ? व्यवसाय पर व्यक्तिगत आधिपत्य और मन चाहे लाभ का उपार्जन अब सरल-स्वाभाविक नहीं माना जाता वरन् इस सब पर सरकार द्वारा—समाज द्वारा—तरह-तरह के प्रतिबन्ध एवं कर लगाये जा रहे हैं। यह प्रयास सफल रहे या असफल, प्रश्न यह नहीं है। सुयोग्य संचालन के अभाव में उनमें घाटा होगा ही। पर इस रुझान के पीछे यह तथ्य स्पष्ट है कि अब व्यक्ति को आर्थिक दृष्टि से भी स्वच्छन्द गतिविधियाँ अपनाने नहीं दी जा सकती हैं। न्याय और कानून की पकड़ में तो वह पहले भी था। अब क्रमशः यह विकास उस समाजवादी व्यवस्था के रूप में होगा जिसमें व्यक्ति का अस्तित्व समाज के एक घटक जितना ही रह जायगा। दूसरों की तरह कठोर श्रम करने के लिये हर किसी को बाध्य होना पड़ेगा और उतने में ही निर्वाह करना पड़ेगा जितना कि हर किसी को सहज उपलब्ध हो सकता है। इस प्रणाली के प्रचलन का आरम्भ कितना ही कष्टसाध्य, कितना ही असफल और कितना ही उपहासास्पद क्यों न रहे अन्ततः समाधान यही रहेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यवस्था यही चलेगी। कठिनाइयाँ हल होने में देर लग सकती है पर मनुष्य को स्वेच्छाचार छोड़ने और समाज की एक इकाई बनकर रहने के लिए ही अपने को ढालना पड़ेगा। दार्शनिक दृष्टि से विचार करें तो इसी तथ्य को व्यक्ति का समाज के प्रति समर्पण—परस्पर एक-दूसरे से अधिक घनिष्ठ स्नेह बँधन भी कह सकते हैं। अध्यात्म की भाषा में कहें तो इसे 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की दिशा में अनुगमन भी माना जा सकता है।

दुनिया छोटी हो रही है और मनुष्य एक-दूसरे के समीप आ रहा है यह एक तथ्य है। नियति अपने विकास क्रम की इस भूमिका को अगले दिनों निबाहती ही चलेगी, तदनुरूप विश्व परिवार का, विश्व मानव का यह स्वरूप अगले दिनों देखने को मिलेगा ही जिसे उपनिषदों में पग-पग पर मानवी सुख-शान्ति का एकमात्र आधार माना गया है। संकीर्ण स्वार्थों का विष सदा से समाज में विग्रह उत्पन्न करता रहा है पर जबकि दुनिया अधिक छोटी बनने जा रही है और मनुष्य-मनुष्य की दूरी का अन्त हो रहा है तब तो निष्कृष्ट व्यक्तिवाद की उद्धत महत्वाकांक्षाओं को समर्थन मिल ही सकता है। वे जितनी मात्रा में अपनी जड़ जमाये रहेंगी, उतनी ही अधिक कष्ट-क्लेशों की विभीषिका मानव समाज को दुसह त्रास देती रहेंगी।

युग प्रवाह के साथ चलने में ही लाभ है। तूफान का प्रतिरोध करने वाले उखड़ जाते हैं। अच्छा हो समय रहते हम अपना दृष्टिकोण बदलें और गतिविधियों में अन्तर लायें। व्यक्तिवादी गतिविधियों और महत्वाकांक्षाओं को समूहवाद के अनुरूप बनाये। सबके हित में अपना हित समझें और अपने सुखों को बाँटने तथा दूसरों के सुख बँटाने में प्रसन्नता अनुभव करें। अपनी सुविधाओं को बढ़ाने और एकाकी उपयोग करने की रीति-नीति जब अगले दिनों चल ही नहीं सकती तो उसके लिए आग्रह करके समय के थपेड़े सहने का संकट क्यों गले बाँधें ? वृहत्तर मानव परिवार बनकर ही रहेगा तो फिर विशाल दृष्टिकोण अपनाने और तदनुरूप ढलने-ढालने में विलम्ब क्यों किया जाय ? प्रगति के साथ-साथ जिन सर्वनाशी विभीषिकाओं का अभिवर्धन हुआ है, उनका सामना भी तो बिना स्नेह-सहयोग के आधार पर विनिर्मित लोकशक्ति के बिना नहीं हो सकता। कहना न होगा कि परिष्कृत लोकशक्ति का आधार मनुष्य को मनुष्य के प्रति अधिक निकटता, घनिष्टता और आत्मीयता की गतिविधियाँ अपनाने से ही हो सकता है। हमारी वैयक्तिक और सामूहिक प्रगति इसी दिशा में होनी चाहिए।

सहयोग भावना मानवता की प्रतीक है

सांसारिक उन्नति और सुखपूर्वक जीवन निर्वाह करने के लिए तो सहयोग की आवश्यकता सभी स्वीकार करते हैं, पर यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये तो यह भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि अधिकांश मानवीय सद्गुणों और धर्म का मूल मानी जाने वाली सद्वृत्तियों का भी इससे बहुत अधिक सम्बन्ध है। जिन व्यक्तियों में सहयोग की वृत्ति का उचित रूप में विकास हो जाता है, उनमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना भी जाग्रत हो जाती है। वे अनुभव करने लगते हैं कि संसार में जितने प्राणी हैं वे वास्तव में एक ही वृहत् परिवार के अंग-स्वरूप हैं और उनमें जितना अधिक सहयोग, ऐक्य, मित्रता की भावना का प्रसार होगा उतना ही लौकिक-पारलौकिक हित-साधन हो सकेगा।

यों तो आरम्भ से ही मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसने जो कुछ उन्नति-प्रगति की है, उसका श्रेय अधिकांश में उसकी सहयोग वृत्ति को ही है। मनुष्य ने इस पृथ्वी को जो अपने निवास योग्य बनाया है, बड़े-बड़े पर्वतों, जंगलों, सागरों में घुसकर जो निर्वाह के साधन खोज निकाले हैं, जिन लाखों की आबादी वाले सुख-सुविधापूर्ण नगरों का निर्माण किया है और सड़कें, रेल, तार, जहाज आदि का विस्तार करके सारी दुनिया को एक घर के समान बना दिया है, इस सबका मूल आधार सहयोग की प्रवृत्ति ही है। व्यापार-व्यवस्था, उद्योग-धन्धे, शिक्षा-प्रचार, सुरक्षा की व्यवस्था के क्षेत्रों में भी आज जो बड़ी-बड़ी योजनायें सफल होती दिखाई पड़ रही हैं, वे सहयोगमूलक प्रवृत्तियों का ही परिणाम हैं। इतना ही क्यों विज्ञान की आश्चर्यजनक उन्नति, जनसेवा करने वाली विशाल संस्थायें, लोक-कल्याण के लिए की जाने वाली युग परिवर्तनकारी योजनायें सभी की सफलता का आधार मनुष्यों का पारस्परिक सहयोग ही होता है। मनुष्य जितने अधिक परिमाण में और जैसी हार्दिकता के साथ सहयोग भावना का परिचय देते हैं उतनी ही अधिक सफलता इन विषयों में मिलती है।

पर इस सांसारिक सफलता से भी बढ़कर महत्वपूर्ण मानवता की भावना है, जो क्रमशः मनुष्य के अन्तर में विकसित हो रही है और जिसके प्रभाव से एक ऐसी मानव जाति का उदय हो रहा है जो भविष्य में वैसे ही पारस्परिक प्रेम और सौहार्द्र के साथ रह सकेगी जैसे आज एक कुटुम्ब या परिवार के व्यक्ति रहते हैं। कुछ लोगों को यह एक असम्भव कल्पना जान पड़ेगी और वे वर्तमान विश्वव्यापी संघर्ष की घटनाओं को देखकर इसे एक सुहावना स्वप्न मात्र बतलायेंगे, पर वास्तव में वे एक विचारक की दृष्टि से देखना नहीं जानते। एक समय था कि सभी मनुष्य बहुत छोटे-छोटे समुदायों में बँटे थे और वे आपस में लड़ते-झगड़ते, एक-दूसरे की हत्या ही नहीं करते रहते थे वरन् एक-दूसरे को मारकर खा जाने में भी कोई दोष नहीं समझते थे। उस अवस्था से परिवर्तन होते-होते मनुष्य अब ऐसी स्थिति में आ पहुँचे हैं कि संसार में प्रतिवर्ष सैकड़ों-हजारों व्यक्ति ऐसे निकल आते हैं जो बिना किसी स्वार्थ या सम्बन्ध के अपरिचित व्यक्तियों की रक्षार्थ प्राण दे देते हैं। आज ऐसे पुरुषों की भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नितान्त कमी नहीं जो मानवता के हित को अपने स्वार्थ या सुख की अपेक्षा अधिक महत्व का मानते हैं और संसार की भलाई के कामों में सच्चे हृदय और निःस्वार्थ भाव से योग देते हैं। इन सब बातों को देखकर निश्चय होता है कि सहयोग कृत्रिम या क्षणस्थाई चीज नहीं है वरन् यह उसकी आंतरिक प्रकृति का एक अंश ही है और जैसे-जैसे मनुष्य का आत्मिक विकास होता जायेगा वैसे-वैसे ही उसकी भी वृद्धि होती जायेगी और एक दिन ऐसा भी आ सकता है, जबकि वह दरअसल एक सार्वभौम स्वाभाविक प्रवृत्ति का रूप ग्रहण कर ले।

सहयोग की प्रवृत्ति से मनुष्य के हृदय में जो मैत्री-भावना उत्पन्न होती है वह वास्तव में और दूसरों के कल्याण की दृष्टि से मनुष्य का सबसे बड़ा सद्गुण है। संसार में कृष्ण, वेद व्यास, गौतम बुद्ध, महावीर, ईसा आदि मानवता के त्राता महापुरुष हुए हैं, उनकी सबसे बड़ी विशेषता मैत्री-भावना ही थी। वे समस्त प्राणियों को आत्मवत् दृष्टि से देखते थे और उनके कष्टों को दूर करने के लिए ही अपनी समस्त शक्ति लगाते थे। इन्हीं महापुरुषों की शिक्षा का परिणाम है कि मनुष्य देश और काल के अन्तर को भुलाकर धीरे-धीरे मनुष्य मात्र को अपना भाई या सम्बन्धी समझने की तरफ अग्रसर हो रहा है और आज उसके दिमाग में यह विचार पैदा हो चुका है कि संसार के समस्त देशों के भेद-भावों को प्रत्यक्ष रूप से मिटाकर एक मानव-समाज की स्थापना की जाये।

यह मानव मात्र की एकता का सिद्धांत कोई नई बात नहीं है। भारतीय मनीषी तो इसे हजारों वर्ष पूर्व 'वसुधैव कुटुम्बकम्' अथवा 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' जैसे सूत्रों द्वारा प्रकट कर चुके थे और यहाँ के हजारों भक्तों तथा सन्तों ने उनके अनुसार आचरण करके भी दिखा दिया था। आज भी भारत और अन्य देशों के महापुरुष इसी सत्य का अनुभव करके, उसे संसारव्यापी रूप देने का प्रयत्न कर रहे हैं। यद्यपि ऊपरी दृष्टि से अधिकांश मनुष्य घोर स्वार्थ की तरफ प्रेरित जान पड़ते हैं और एक ऐसे संघर्ष की तैयारी में संलग्न हो रहे हैं, जिससे मानवी सभ्यता का सर्वनाश ही सम्भव जान पड़ता है, पर इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि मानवता की एकता का सन्देश इस समय सबके कानों तक पहुँच गया है और वह उनकी आत्मा को झकझोर रहा है। जिस बात को पहले केवल थोड़े-से मनीषी ही कहते और समझते थे, वह अब साधारण लोगों के दिमाग में भी उठने लग गई है। इससे आशा होती है कि विनाश के काले बादलों के होते हुए भी अन्त में सहयोग का सूर्य ही अधिक शक्तिशाली सिद्ध होगा और संसार अन्धकारमय प्रदेश से निकलकर सार्वजनिक सुख-शांति के सुप्रकाशित युग में जा पहुँचेगा।

सहयोग तथा मैत्री की यह भावना सामूहिक रूप से संसार का कल्याण करने वाली ही नहीं है वरन् व्यक्तिगत दृष्टि से भी वह मनुष्य मात्र के लिए हितकारी है। इसके प्रभाव से मैत्री-भाव रखने वाला व्यक्ति सब प्राणियों का सुहृदय बन जाता है। जब वह अपने हृदय में किसी के प्रति शत्रुता का भाव नहीं रखता तो किसी अन्य के मन में भी उसके प्रति विरोध की भावना उत्पन्न नहीं होती और दुनिया की तरफ से निर्भय बन जाता है। यदि संयोगवश उसे कोई कष्ट भी उठाना पड़ता है तो उसे दैवी विधान या आकस्मिक दुर्घटना समझकर जरा भी क्षुब्ध नहीं होता। वह किसी अन्य मनुष्य को इसका कारण नहीं समझता और इसलिए सब प्रकार की चिन्ताओं और भयों से मुक्त रहता है। पारस्परिक वैमनस्य या मनोमालिन्य के भावों के निरन्तर बढ़ते रहने के कारण जो अगणित कठिनाई उत्पन्न होकर मानव जीवन को कष्टपूर्ण बना देती हैं, वह उस सबसे मैत्री-भावना द्वारा ही बच जाता है।

इतना ही नहीं, इस प्रकार की मनःस्थिति बन जाने पर मनुष्य की आंतरिक प्रसन्नता, आह्लाद की भावना स्थाई हो जाती है और समयानुसार व्यावहारिक रूप में प्रकट होकर उसको दिनोंदिन ऊँचा उठाती जाती है। इस भावना की प्रेरणा से मनुष्य सबके सुख-दुःख में आगे बढ़कर भाग लेने लगता है, दीन-दुःखी और अभावग्रस्तों की हर तरह से सहायता करने लगता है, सदैव दूसरों की सेवा और सहायता के लिए प्रस्तुत रहता है। ऐसी स्थिति में पहुँच जाने पर अन्य सब लोग भी उसके प्रति प्रेम और आदर की भावना रखने लगते हैं, उसकी बातों को ध्यानपूर्वक सुनते हैं और उसे अपनी शक्ति के अनुसार सहयोग भी देने लगते हैं। संसार में जितने भी बड़े और छोटे महापुरुष हुए हैं, उन सबका यही जीवनक्रम रहा है, ऐसे ही लोग सर्वसाधारण द्वारा नेता, अगुआ या माननीय माने जाते हैं।

सहयोग-भावना वाला मनुष्य जिस प्रकार भीतर से शुद्ध भावयुक्त और सबका हित-चिंतन करने वाला होता है, उसी प्रकार बाहर से भी सदैव सबके साथ मधुर व्यवहार करने वाला, सहानुभूति रखने वाला तथा विनीत होता है। वास्तव में उसकी आंतरिक मैत्री-भावना के परिणामस्वरूप उसका स्वभाव रूखा व्यवहार नहीं कर सकता और जहाँ तक सम्भव होता है, प्रत्येक की सहायता के लिए हमेशा तैयार रहता है। इस कारण अन्य लोगों के हृदय पर भी उसका प्रभाव पड़ता है और सज्जनों का तो कहना ही क्या ? दुर्जन व्यक्ति भी अधिक समय तक उसके प्रतिकूल नहीं रह सकते।

पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता

कई लोग कहते हैं कि मुझे किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं, मुझे किसी का परामर्श नहीं चाहिए, मेरे पास दिमाग है, शक्ति हाथों में है, मैं सब अपने आप कर लूँगा। इस तरह की डींग हाँकते हुए बहुत-से लोग देखे जा सकते हैं, जो अपने आपको सर्वगुण सम्पन्न समझते हैं। वैसे स्वावलम्बी, आत्मविश्वासी, साहसी होना एक अनिवार्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गुण है, किन्तु सही-सही सूझ-बूझ के और विवेक के अभाव में गुण भी भयंकर दोष बन जाते हैं, जो मनुष्य को पतन और विनाश के गर्त में ढकेल देते हैं। अनाड़ी और अविवेकी ड्राइवर कीमती गाड़ी को भी टकराकर चूर-चूर कर देता है। इसके विपरीत संतुलित, समझदार ड्राइवर खराब गाड़ी को मंजिल तक पहुँचा देता है। दूसरों के परामर्श, अनुभवों से लाभ न उठाकर अपनी बुद्धि को ही सबसे अधिक समझने वाले उन अनाड़ी व्यक्तियों में से हैं जो अपनी मूर्खता की कुल्हाड़ी अपने भविष्य रूपी पैरों में स्वयं ही मारते हैं।

ईंट से ईंट जोड़कर ही विशाल भवन का निर्माण होता है। बूँद-बूँद मिलकर ही नदी, सरोवर सागर बनते हैं। जल का प्रत्येक कण अपना अस्तित्व अलग रखेगा तो उसकी कितनी हस्ती होगी इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। एक मिट्टी का कण, सूरज की क्षीण-सी रोशनी उसे सुखा देगी, हवा का एक झोंका उसे छिन्न-भिन्न कर देगा। अनेकों व्यक्तियों के परस्पर सहयोग से ही एक-दूसरे की उन्नति एवं विकास सम्भव है और इसी पर समाज राष्ट्र की समृद्धि निर्भर करती है। प्रत्येक निर्माण कार्य में अनेकों मजदूरों के खून-पसीने का योग होता है।

प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक सीमा होती है। डाक्टर चिकित्सा क्षेत्र में विज्ञ होता है तो एक कलाकार अपनी कला में, राजनीति में राजनेता, तो साहित्य में साहित्यकार। कोई भी व्यक्ति सर्वज्ञ नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति अपने समाज में एक-दूसरे से नीचा है, दूसरे से अयोग्य है। कलाकार के सामने डाक्टर अयोग्य है तो डाक्टर के सामने इन्जीनियर और साहित्यकार के सामने व्यापारी। इस तरह एक क्षेत्र में पूर्ण होकर भी मनुष्य अन्य क्षेत्रों में अपूर्ण-अयोग्य ही है। अतः उन अंगों की पूर्ति बिना दूसरों के परामर्श-सहयोग के नहीं हो सकती। स्वयं अपने ही क्षेत्र में विकास-उन्नति के लिए मनुष्य के सहयोग-परामर्श की आवश्यकता होती है। डाक्टर बनने के लिए कितने ही डाक्टरों के ज्ञान, सहयोग, मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है। विचारक को अन्य अनेक की विचारधारा का ज्ञान रखना पड़ता है।

विकास सहयोग से ही होता है। एक पीढ़ी के उपार्जित ज्ञान-अनुभव, सफलताओं की जानकारियों से लाभ उठाकर दूसरी पीढ़ी उससे अनुसंधान का सहारा लेकर नये तथ्यों की खोज करती है।

समन्वय, सहयोग, समाज के साथ मिलकर कदम बढ़ाने में ही एक-दूसरे की उन्नति एवं विकास निर्भर करते हैं। जो जीवन में इसे स्वीकार नहीं करता, अपने हठ और अनाड़ीपन को महत्व देता है उसकी दुर्गति निश्चित है। यह बौद्धिक दिवालियापन है और यही रोग आगे बढ़कर देश और समाज दोनों को ही नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। जाति-भेद, वर्ण-भेद, लिंग-भेद, विभिन्न दल, साम्प्रदायिकता, भाषा, भेदभाव के रूप में होने वाले संघर्ष, व्यक्ति-व्यक्ति में होने वाली तनातनी आदि विसंगतियाँ इसी बौद्धिक दिवालियेपन की निशानी हैं। परस्पर के सहयोग, समझौते, समन्वय से असंभव को सम्भव बनाया जा सकता है और इसके अभाव में हम परस्पर टकराकर नष्ट भी हो सकते हैं।

पारस्परिक सहयोग का मानव जीवन में अत्यधिक महत्व माना गया है। हमें दूसरों के सहयोग से लाभ उठाना चाहिए और अपनी क्षमताओं को दूसरे के काम आने देने के लिए उदार बुद्धि रखनी चाहिए। एकाकीपन एवं स्वार्थपरता तुच्छता का चिन्ह है। यह मानसिक संकीर्णता भीरूता और घृणा की अभिव्यक्ति मात्र है।

व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण इसी पर निर्भर है कि लोग व्यक्तिवाद की संकीर्णता छोड़कर समूहगत लाभ को ही अपना वास्तविक लाभ समझें। एक व्यक्ति समाज को हानि पहुँचाकर अपना कुछ लाभ कर भी ले तो वह देर तक टिक न सकेगा। किन्तु यदि समाज समर्थ, सशक्त, समृद्ध हुआ तो उसका लाभ हर नागरिक को, हर व्यक्ति को मिलेगा। इस तथ्य को हम जितनी जल्दी समझ लें और सामूहिक भावना का विकास करें उतना ही उत्तम है।

सहकारिता अर्थात् समृद्धि और प्रगति

पिछले युगों में ज्ञान की, शास्त्र की, धन की, श्रम की शक्तियाँ प्रबल रही होंगी, सो ठीक है। उनने अपने स्तर के अनुरूप सफलताएँ भी पायीं; पर अपनें युग में सामूहिक समस्याओं के समाधान में संगठन की, साहसिकता की शक्ति ही सबसे प्रबल है। कहा भी है—**"संघे शक्तिः कलियुगे"** इस युग में संगठन शक्ति ही सबसे प्रबल है।

यह उक्ति जीवन के हर क्षेत्र में लागू होती है। कमजोर तिनकों से मिलकर बने हुए रस्से से हाथी बाँधे जाते हैं और कमजोर धागे मिलकर कपड़ा बनाते हैं। सेना का संगठित समुदाय शत्रु के छक्के छुड़ा देते हैं; किन्तु यदि वे बिखरे हुए हैं तो अकेले की शक्ति क्या काम करेगी ? अकेली सींक टूट जाती है; पर उनका मिलकर बना हुआ बुहारा मुद्दतों तक घर की सफाई करता रहता है। संगठित समुदाय चुनाव में विजयी होते हैं; पर जिनमें विशृंखलता है, उनकी हार ही होती है। बन्दरों के झुण्ड को कोई नहीं छेड़ता; पर अकेला फिरने वाला खरगोश किसी भी शिकारी के जाल में फँस जाता है। कहते हैं कि एक बार चिड़ियों का झुण्ड शिकारी के जाल में फँस गया। सबने मिलकर जोर लगाया तो जाल को उखाड़ ले गये। पीछे जब सभी अपनी-अपनी दिशा में खींचतान करने लगे तो शक्ति का अपव्यय हुआ और वे सब जाल समेत जमीन पर गिर पड़े और शिकारी के चंगुल में फँस गये।

समय के परिवर्तन से दुनिया छोटी हो गई है। समस्याएँ आती हैं तो एक को हैरान नहीं करतीं समूचे समुदाय को जाल में कसती हैं। विदेशियों ने देश के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक-एक भाग पर कब्जा जमाया और फिर समूचा देश पराधीन हो गया। उस नागपाश से छुड़ाने के लिए गाँधी जी ने काँग्रेस के नेतृत्व में देशभक्तों के एकत्रित किया और उनके सामूहिक प्रभाव से स्वाधीनता मिली। संगठन के अभाव में यह सब नहीं हो पाता। तिलक के समय संगठन इतना मजबूत था कि उन्हें पकड़कर मांडले की जेल में भेज दिया गया; पर जब आन्दोलन के समय जेल भर गई तो सभी की आम रिहाई हुई। ब्रिटेन का कभी मजबूत राष्ट्र मंडल था; पर उसमें दरारें पड़ जाने से बेचारा गई गुजरी स्थिति में पहुँच गया। रूस का संगठन मजबूत बना हुआ है। उसका समूह अभी भी दुनिया की बड़ी शक्ति है।

संगठन ही शक्ति का स्रोत है। न केवल राजनैतिक क्षेत्र में, वरन् आर्थिक, सामाजिक, श्रमिक आदि वर्गों के भी अपने मजबूत संगठन हैं और उनके माध्यम से उन समुदाय के हितों की रक्षा होती है। डाकुओं का गिरोह तक जनता और पुलिस के नाकों दम कर देता है।

अगले दिनों व्यवसाय और उत्पादन संगठित रूप में अपने प्रयास जारी करेंगे। कृषि से लेकर उद्योग तक का एकीकरण राष्ट्रीयकरण होने जा रहा है। इसी माध्यम से बिखरी पूँजी एकत्रित होती और जो कार्य व्यक्तिगत प्रयासों से दस वर्ष में हो सकते थे, वे एक वर्ष में पूरे हो जाते हैं। छुटभैये ही अपनी ढपली अपना राग पीटते हैं; डेढ़ चावल की खिचड़ी पकाते और ढाई ईंट की मसजिद जुटाते हैं; किन्तु समझदार और दूरदर्शी लोग सामूहिक संगठन बनाते हैं, लिमिटेड कम्पनियाँ खोलते हैं, अच्छा मुनाफा कमाते और शेयर होल्डरों को उसकी अपेक्षा अधिक लाभांश देते हैं, जितना कि वे एकाकी प्रयत्न से कमा पाते।

इन दिनों सहकारिता आन्दोलन की उपयोगिता सभी क्षेत्रों में समझी जा रही है। सरकार उसे प्रोत्साहन दे रही है और जनता उसमें अधिक उत्साह से भाग ले रही है। अगले दिनों उन आन्दोलनों का प्रबल होना निश्चित है; क्योंकि उत्पादन और उपभोक्ता दोनों का ही लाभ है। एक पक्ष अच्छी पूँजी में बढ़-चढ़कर उत्पादन करता और अपेक्षाकृत अधिक लाभ लेता है। दूसरे की सस्ते दाम में चीजें बनती हैं। एक-एक पुर्जा अलग-अलग बनाने में कितना महँगा पड़ेगा, पर यदि वे एक साथ बनते हैं, तो सुई, माचिस जैसी वस्तुएँ कितनी सस्ती पड़ती हैं ?

अब व्यक्तिवाद का समय जा रहा है, समूहवाद का, समाजवाद का समय आ रहा है। सब लोग मिलजुल कर काम करेंगे, तो न कोई अन्धाधुन्ध लाभ कमा पायेगा, न किसी को भूखा रहना पड़ेगा। पिछले दिनों जुलाहे, तेली अपने उत्पादित माल को सिर पर लादकर गाँव-गाँव फिरते थे, उनमें ढेरों समय बीत जाता था और लाभांश नाम मात्र का रह जाता था। अब सहकारी समितियाँ कच्चा माल देती और बना माल खरीद लेती हैं। उपयुक्त समय पर उपयुक्त मण्डी में वह उचित दाम पर बिकता है और निर्माणकर्त्ता घर बैठे आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त कर लेता है। व्यवसाय क्षेत्र में जिस तेजी से सहकारी समितियाँ और कंज्यूमर स्टोर बन रहे हैं, उसे देखते हुए लगता है कि प्रतिस्पर्धा में व्यक्तिगत व्यवसाय चौकड़ी भूल जायेगा। समितियों में भ्रष्टाचार न पनपने पाता तो इन माध्यमों से अब तक देश का आर्थिक कायाकल्प हो गया होता। व्यक्ति गलत हो सकते हैं, सिद्धान्त नहीं। सहकारिता का सिद्धान्त इतना सही है कि अगले दिनों हर क्षेत्र में उसी का बोलबाला होगा।

जिस प्रकार बड़े परिवार का सदस्य होने में गर्व और गौरव अनुभव होता है, उसी प्रकार बड़ी सहकारी संस्था का सदस्य होने में भी हर सदस्य को गर्व होता है। दृष्टिकोण विकसित होता, साहस बढ़ता है और बड़े कामों में हाथ डालने का उत्साह बनता है। इतने सदस्यों की दृष्टि रहने से संचालक गड़बड़ियाँ भी कम कर पाते हैं। इतने सदस्यों के सामने प्रबंध-कुप्रबंध का जबाव देना पड़ेगा, यह सोचकर व्यवस्थापक मण्डल फूँक-फूँक कर कदम उठाता है। सहकारिता समय की माँग है। आन्दोलन की दृष्टि से उसकी वैज्ञानिकता में कोई खोट नहीं है। व्यक्तियों की धूर्तता हर क्षेत्र में चलती है। उसे इस ढंग से परखा और दबोचा जाना चाहिए कि अवांछनीयता की दाल न गलने पाये।

सहकारी समितियों के सदस्यों द्वारा इकट्ठी हुई पूँजी से जो व्यवसाय करना हो उस पर सरकार से 80 प्रतिशत तक ऋण मिल जाता है, ताकि बड़ी पूँजी से बड़ा व्यवसाय हो सके। इसमें सभी सदस्यों की संयुक्त जिम्मेदारी होती है कि जिस कार्य को चलाना है वह ठीक प्रकार चले, उसमें कोई गड़बड़ी और गैर-जिम्मेदारी न होने पाये, अन्यथा सरकार जिससे भी चाहे उस सदस्य से पूरा ऋण वसूल कर सकती है। इस भय से सदस्य ही उसकी जिम्मेदारी और प्रबन्ध व्यवस्था की देखभाल स्वयं करते हैं।

सहकार और सहयोग एक ही बात है। समाजवाद इसी व्यवस्था का नाम है। सभी लोग मिलजुल कर रहें और हिलमिल कर समुचित व्यवस्थापूर्वक कार्य संचालन करें। समूचे देश का, समाज का संचालन इसी दृष्टिकोण को अपनाने से उसकी व्यवस्था ठीक बन पड़ती है।

सार्वजनिक संस्थाओं का संगठन भी इसी आधार पर होता है। यह ऋण तो नहीं लेती, व्यवसाय भी नहीं करती; पर जो पैसा जनता से उगाहा जाता है, उसका नियत उद्देश्य में ही उपयोग हो—इसका ध्यान सभी को रहता है। सदस्य ही अपने प्रतिनिधि-पदाधिकारी सहित उस प्रयास में अधिक तत्परतापूर्वक संलग्न रहते हैं। सरकार इस प्रकार के संगठनों का पंजीकरण भी करती है और उनके हिसाब-किताब की जाँच-पड़ताल भी करती है। सार्वजनिक संस्थाओं को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए तत्परतापूर्वक संलग्न रहना पड़ता है।

संयुक्त परिवार भी इसी प्रकार की एक संस्था है। उसका पंजीकरण तो नहीं करना पड़ता; पर नैतिकता के आधार पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यही विधा अपनानी पड़ती है कि सदस्यगण सामर्थ्य के अनुसार काम करें और आवश्यकता के अनुरूप लें।

बढ़ती हुई जनसंख्या की दृष्टि से व्यावसायिक ही नहीं; घरेलू रहन-सहन व्यवस्था में भी एकत्रित की नीति अपनानी पड़ेगी। संयुक्त परिवार प्रथा का प्रचलन तो पहले से भी था, पर उसमें लोगों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता छिनने की शिकायत थी। अब उसका नया रूप खोजा है, जिसमें छोटे मकानों से बिना निजी नौकरों के काम चल जाया करेगा। इसका नाम है—'कम्यून पद्धति'। कम्युनिस्टों के दिमाग में सर्वप्रथम यह योजना आई थी और उनने कितने ही क्षेत्रों में कम्यून चलाये भी थे। इसमें घरेलू काम-काज संयुक्त रहते थे। जितने लोग उसके सदस्य हों उनके खाने-पीने की व्यवस्था एक जगह रहती थी। कपड़े आदि धोने का काम नियत कर्मचारी करते थे। स्त्री-पुरुष दोनों के ही अपने काम-काज पर चले जाने के उपरान्त बच्चों को खिलाने और पढ़ाने का काम एक जगह होता था। सहकारी स्तर से कपड़े, जूते, साबुन आदि दैनिक उपयोग की वस्तुएँ खरीदी जा सकती थी। यह प्रथा विशेषतया कम्युनिस्ट देशों में प्रचलित हुई। उन्हीं में मनोरंजन के लिए क्लब बने। रहन-सहन के लिए छोटे परिवार के लिए थोड़ी-सी जगह में काम चल जाता है और घरेलू काम में सारा दिन खर्च करने की अपेक्षा ज्ञानवृद्धि, व्यवसाय, मनोरंजन के लिए सुविधा मिलती है। अगले दिनों मितव्ययिता तथा सुविधा की दृष्टि से यह प्रणाली व्यापक रूप धारण कर ले और सर्वत्र इसी आधार पर कुटुम्बियों का व्यवस्था क्रम चले तो किसी को आश्चर्य नहीं करना चाहिए। बढ़ते हुए जनसमुदाय और उसके कम पड़ते हुए साधनों को देखते हुए मिलजुल कर रहने में हर किसी को सुविधा होगी। भारत की संयुक्त परिवार प्रथा इसी आधार पर बनी और चली।

उसमें खामी इतनी ही रही कि कर्त्तव्य और अधिकार का समुचित समावेश नहीं हो सका। बड़ों का निर्णय ही सब सदस्यों पर छाया रहा, फलतः स्वतंत्रता की इच्छा में बाधा पड़ने लगी और लोग पाश्चात्य देशों की तरह अलग-अलग छोटे कुटुम्ब बनाकर रहने लगे। इसमें स्वच्छन्दता का आभास आरंभिक दिनों में तो हुआ; पर पीछे प्रतीत हुआ कि इससे खर्च भी बढ़ता है और पत्नी को मात्र पति और एकाध बच्चों के लिए सारे दिन घिरा-घिरा रहना पड़ता है। इस प्रकार आरम्भ में अच्छा लगने वाला अलग घर बसाना पीछे संयुक्त परिवार से भी अधिक बाधक और असुविधाजनक लगने लगा।

बाजार से अलग-अलग प्रकार की वस्तुएँ खरीदने के लिए दूर-दूर मारे-मारे फिरने की अपेक्षा यह अच्छा समझा जाता है कि एक कंज्यूमर स्टोर बना लिया जाय और उसी से दैनिक आवश्यकता की वस्तु प्राप्त की जाने लगे।

सहकारिता आत्मीयता का विस्तार करती है, संयुक्त शक्ति का विकास करती है और बताती है कि एकाकी व्यक्ति अपने दैनिक गृहकार्यों तक को ठीक तरह सम्भाल नहीं पाता। उसे भी सेवकों, सहायकों की आवश्यकता पड़ती है फिर थोड़े-से भी बड़े एवम् महत्वपूर्ण कार्य करने के लिए तदनुरूप योग्यता के व्यक्ति जुटाने पड़ते हैं। जो इस प्रकार सुयोग नहीं बिठा पाते, उनके कार्य में अनावश्यक विलम्ब लगता है और काम भी घटिया स्तर के होते हैं।

दीमक, चींटी, मधुमक्खी जैसे जानवरों की कार्यप्रणाली देखी जाय तो प्रतीत होगा कि वे अपने कार्यों में कितनी अधिक सुव्यवस्था, अनुशासन एवम् व्यवस्थाक्रम बनाकर अपनी गतिविधियों को समग्र करती हैं। आकार में छोटी होने पर भी वे आड़े समय के लिए खाद्य जमा कर लेती और रहने के लिए सुविधा सम्पन्न घर बना लेती हैं। यदि वह सब पृथक्-पृथक् रहने लगें तो उन सबका खेल बिगड़ जाय और जीवित रहना तक कठिन पड़े।

समझदार वर्ग के पशु-पक्षी ही नहीं, कीड़े-मकोड़े तक सहकारी जीवन जीने लगे हैं। जंगली भैंसे, वन गायें, हिरन, बन्दर आदि झुण्ड बनाकर रहते हैं, फलस्वरूप आक्रमणकारी हिंसकों के मनसूबे असफल कर देते हैं।

एक समुदाय के पशु, एक समुदाय के पक्षी एक पेड़ पर या एक बाग में घोंसले बनाते हैं, ताकि वनविलाव, साँप, नेवला आदि आक्रमणकारी उनके बच्चों पर आक्रमण करें तो एक साथ चिल्लाकर सबको सावधान कर दें। आक्रमणकारी को डराकर वापिस लौटने के लिए विवश कर दें। बर्रे, ततैये इसीलिए इकट्ठे छत्ते बनाते हैं कि किसी के छेड़खानी किये जाने पर वे सभी मिलकर टूट पड़ें और छेड़ने वालों को मजा चखा दें।

समुदाय का सबसे बड़ा दुर्गुण संकीर्ण स्वार्थपरता है। इसके बढ़ने पर वह निर्दय, निष्ठुर और क्रूर प्रकृति का बन जाता है। सहकारी जीवन में यह विशेषता है कि उस वातावरण में रहते हुए स्नेह, सद्भाव, उदारता, सहनशीलता, सेवा, आत्मीयता, करुणा, ममता आदि गुणों का विकास होता है और अपूर्णता से प्रगतिशीलता एवम् पूर्णता की ओर बढ़ता है।

आदिमकाल का मनुष्य असभ्य था। उसे नीति मर्यादाओं को समझने और अपनाने का अवसर ही नहीं मिलता था। इसलिए वनमानुषों जैसा असभ्य, अविकसित जीवन जीता था। क्रमशः उसने सहजीवन की आवश्यकता समझी। परिवार बनाने, बस्तियाँ बसाने और एक-दूसरे की सुविधा-सहायता का ध्यान रखना सीखा।

मानवी सभ्यता की व्याख्या संक्षेप में इतने शब्दों में की जा सकती है कि—"दूसरों के दुःख को बाँट लेना और अपने सुख को बाँट देना।" आत्मिक आनन्द भी इसी प्रक्रिया को अपनाने में आता है और सिर पर लदा हुआ बोझ भी हल्का होता है। एक-दूसरे पर अहसान करते चलें, परस्पर हाथ बँटाते चलें तो पारस्परिक घनिष्ठता भी बढ़ती है और सद्भावना भी। ऐसे भावनात्मक वातावरण में रहकर व्यक्ति दुःख के दिन भी गुजार लेता है और असुविधाओं के बीच भी सुविधा अनुभव करता है। यही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कारण है कि लोग आमतौर से अपनी जन्मभूमि छोड़कर अन्यत्र नहीं जाना चाहते, भले ही वहाँ कठिनाइयों में दिन गुजारने पड़ें। इस मानवी सत्प्रवृत्ति के बढ़ने से ही उन अनाचारों का अन्त हो सकता है, जिन्हें अपराध या पाप के नाम से जाना जाता है। कहावत है कि—"कुत्ते आपस में लड़ते हैं और हाथी झुण्ड बनाकर रहते हैं।" हाथी समझदार है, इसलिए झुण्ड के बच्चों को दुलार और संरक्षण समूचा झुण्ड मिलकर प्रदान करता है और वे छोटे बच्चे भी समूह के संरक्षण में अपनी अच्छी-खासी प्रगति कर लेते हैं। विपत्ति भरी संकट घड़ी आने पर वे भाग नहीं जाते, वरन् कठिनाई में फँसे साथी को निकालने के लिए भरसक प्रयत्न करते हैं और उसे उबारकर ही दम लेते हैं। यही कारण है कि वे सघन वनों में निर्द्वन्द्व विचरते हैं और अपने बड़प्पन से भी अधिक सहयोग का सम्मान पाते हैं। मालिक और महावत के प्रति अपनी वफादारी का जैसा परिचय देते हैं, उसे देखते हुए उसे बड़प्पन का पद मिलता है। शारीरिक बलिष्ठता की दृष्टि से तो व्हेल, गैंड़ा, चीता, शेर आदि भी कम नहीं होते; पर हाथी बुद्धिमत्ता, वफादारी, उदारता जैसे सद्गुणों के कारण सम्मानीय बने हैं। हाथी ने मनुष्य का गौरव बनाया है।

सभी जानते हैं कि टिड्डी दल जब एक दिशा में चल पड़ता है तो खेती का सफाया करता जाता है। मनुष्य द्वारा किये हुए बचाव के प्रयत्न धरे ही रह जाते हैं। यदि वे असंगठित रहें, अपने-अपने घर अलग-अलग बनायें और यात्रा स्वेच्छानुसार करें तो उनमें मनुष्य को भयभीत करने की क्षमता न रहे और अपना अस्तित्व भी मनुष्य के साथ शत्रुता मोल लेकर बनाये न रह सकें।

आकाश में ग्रह-नक्षत्र तक दूसरे को सहारा देते हैं। अपनी आकर्षण शक्ति से एक-दूसरे को खींचे रहते हैं। फलस्वरूप अधर में लटके हुए अपनी गतिविधियाँ क्रमबद्ध रूप से चलाते रहते हैं। यदि एक दूसरे को पकड़ने-सँभालने की विशेषता न रही होती तो, सभी भटकते और परस्पर टकराकर नष्ट हो जाते। मानवी प्रगति का इतिहास भी यही है। जबकि सृष्टि के आरंभिक दिनों में उत्पन्न हुए महागज, महासरीसृप, महागरुड़ जैसे जीवधारी पारस्परिक सहयोग के अभाव में अपना अस्तित्व गवाँ बैठे तो बेचारे मनुष्य की क्या विसात, न वह हिरन की तरह दौड़ सकता है, न पक्षियों की तरह उड़ सकता है, न मछली की तरह तैर सकता है। इतने में भी उसने सृष्टि के मुकुटमणि का स्थान प्राप्त कर लिया है।

मानवी प्रगति का कारण उसकी बुद्धिमत्ता को बताया जाता है। पर सही बात यह है कि सहकारिता पहले उपजी और बुद्धिमत्ता का जन्म पीछे हुआ। सहकार के अभाव में जो ज्ञान एक व्यक्ति पाता, वह दूसरे बताने की अपेक्षा अपने साथ ही लेकर जाता है। ऐसी दशा में भाषा का, लिपि का, आदान-प्रदान माध्यम विकसित नहीं होता और ज्ञान-विज्ञान की बात तो दूर, वह भी बन्दरों की तरह चीं-चीं-खों-खों बोल लेने भर में संतोष कर रहा होता। सहयोग के कारण ही एक के ज्ञान ने दूसरे को लाभान्वित किया और दूसरे ने तीसरे को, तीसरे ने चौथे को। इस प्रकार विज्ञान की अनेक धारायें विकसित होती चली गईं और मनुष्य शरीर की दृष्टि से दुर्बल होने पर भी दिन-दिन आगे बढ़ता गया और आज प्रगति के उस शिखर तक जा पहुँचा जिसके कारण उसे सृष्टि का मुकुटमणि कहा जाता है।

मनुष्य में जितनी भी श्रेष्ठता, सभ्यता, प्रगतिशीलता, वरिष्ठता है यह उसकी मौलिक प्रवृत्ति सहकारिता के आधार पर ही बनी है। सामूहिक श्रम का उपयोग कर खाने बनाये, स्कूल चलाये, व्यावसायिक आदान-प्रदान किये और विपत्ति के समय उदार वर्ग को उसे टालने के लिए उदारता बरतते, अपने को जोखिम में डालते देखा गया। यदि सूझ-बूझ न उगी होती तो लोमड़ी-खरगोशों की तरह सभी लोग अपनी-अपनी चिन्ता करते, अपने-अपने साधन जुटाते हुए फिर रहे होते।

संसार के बड़े काम मिल-जुलकर ही सम्पन्न किये गये हैं। चीन की दीवार, मिश्र के पिरामिड, पनामा और स्वेज नहरें सामूहिक श्रम का ही परिणाम हैं। मानवी कौशल और श्रम को संगठित किया गया होता तो इन महत्वपूर्ण कार्यों में से एक भी सम्पन्न नहीं हो पाता।

संयम, नीति, धर्म, अध्यात्म, पुण्य, उपकार, सेवा आदि महान् गुणों की उपयोगिता समझी जाती है और इनका प्रचलन भी सभी चाहते हैं। इसके लिए आमतौर से दो ही उपाय काम में लाये जाते हैं—एक लेखन, दूसरा भाषण। इन दोनों उपायों से जानकारी भर मिल सकती है। उन शिष्टताओं की उपयोगिता-आवश्यकता समझ में आ सकती है; किन्तु उन्हें अभ्यास में उतारना, स्वभाव का अंग बनाना संभव नहीं। यदि सुनने और पढ़ने से ही व्यक्तित्व ढल गये होते, तो उत्कर्ष कितना सरल हो गया होता पर ऐसा है नहीं। संगीत, शिल्प, कला, उद्योग, शल्य-चिकित्सा आदि के अनुभव सम्पादित करने और वातावरण के साथ जुड़ने की आवश्यकता पड़ती है। इन्जीनियर, डॉक्टर, वैज्ञानिक, कलाकार तब बनते हैं, जब उन्हें अपने विषय का अनुभव सम्पादित करने के लिए उस प्रयोजन के लिए बड़ी प्रयोगशालाओं में रहना एवम् उस वातावरण में अनुभव प्राप्त करने की प्रवीणता हस्तगत हो जाती है।

ऊँचे दर्जे की कलाएँ जनसम्पर्क से दस कदम आगे बढ़कर कला निष्णातों के स्नेह, समर्थन एवम् सहयोग से प्राप्त करें, तो सफलता मिलने लगे। इस अभ्यास में घनिष्ठ लोगों के बीच रहकर उनके साथ आदान-प्रदान का क्रम चलाना पड़ता है। परिवार की महिमा इसी दृष्टि से बताई गई है। उसमें एक-दूसरे के माध्यम से सुविधाएँ तो मिली ही हैं, सबसे बड़ी बात यह है कि विभिन्न स्तर के व्यक्तियों के साथ उनकी मनोभूमि को देखते हुए अपने आपको उतने समय तक उस स्तर का बनाना पड़ता है, जिसमें सामने वाला अपनी बात समझा सके। किसी छोटे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चे को दर्शन शास्त्र पढ़ाया जाय तो घंटों सिर खपाने पर भी उसकी समझ में कुछ भी न आयेगा। उसकी मनोभूमि किस्से-कहानियाँ सुनने-समझने जितनी ही विकसित हुई है। ऐसी दशा में कहानियों के माध्यम से जितना सम्भव हो सके उतना दर्शन शास्त्र पढ़ाया जाय तो परिश्रम सार्थक होगा। यही बात परिवार या उस समुदाय के सम्बन्ध में भी है, जिसे ऊँची आदर्शवादिता या दार्शनिकता के सिद्धान्त समझने पड़ते हैं। वे हमारे जितना परिष्कृत बन जायँ, यह संभव नहीं। सरल यही पड़ता है कि दूसरे के व्यक्तित्व का सही अनुमान लगायें और उसी पृष्ठभूमि पर प्रभावित करने का प्रयत्न करें। इसमें दूसरे को अपना बना लेने की अपेक्षा अपने को इस स्तर पर झुकना पड़ता है, जिसमें अपनी बात दूसरे के गले उतर सके। व्यवहार कुशलता इसी को कहते हैं।

इससे भी बड़ी बात है सम्पर्क एवम् आदान-प्रदान। सूखी शिक्षा जानकारी भर देती है। किसी को ढालने के लिए दूसरे औजार-उपकरण चाहिए। परिवार के सदस्यों को किसी दिशा में बढ़ाने या रोकने का प्रभाव इसीलिए पड़ता है कि उनके साथ आत्मीयता जुड़ जाती है और उस जुड़ने के पीछे आदान-प्रदान के क्रम का बना रहना है। आदान-प्रदान वार्त्ता का नहीं—व्यवहार का। सहायता देने के साथ-साथ लेने का भी क्रम चलता है। एक-दूसरे पर एक-दूसरे का अहसान होता है। एक से दूसरा लाभ उठाता है और दूसरा पहले से। इस प्रकार यह चक्र बड़ा होता जाता है और बहुत लोग मिल-जुलकर एक काम को सँभालते, पूरा करते हैं। साथी भी उस आधार पर मिलने वाले लाभों से लाभान्वित भी होते हैं। इतने भर से मैत्री घनिष्ठ हो जाती है। आत्मभाव सघन होता है और वह मूल उद्देश्य पूरा होता है, जिससे सहकारिता विकसित होती है और साथ ही अपने बाल-बच्चों को, सद्गुणों को समेट कर लाती है।

सहयोग का स्थायी निर्वाह करने के लिए मनुष्य को सहिष्णु, मृदुभाषी और सेवाभावी बनना पड़ता है। यही विशेषताएँ हैं जिनके साथ शिष्टाचार, सदाचार, अनुशासन आदि सद्गुणों का अभ्यास करना पड़ता है। सुख बाँटने और दुःख बँटाने की साझेदारी अपनानी पड़ती है। इसी को धर्म और अध्यात्म का—पुण्य-परमार्थ का वास्तविक स्वरूप कहा जा सकता है अन्यथा कथन, श्रवण, लेखन, पठन तक सीमित रहने वाली अध्यात्मवादी शिक्षा मात्र विनोद, व्यसन और समयक्षेप बनकर रह जाती है।

मनुष्य ने आदिम काल से लेकर अब तक सभ्यता की दिशा में काफी प्रगति की है और उस आधार पर आविष्कार, उत्पादन और साधन भी कम उपलब्ध नहीं किये हैं। पर वह सब हुआ भौतिक क्षेत्र में ही है। अध्यात्म क्षेत्र में शिष्टाचार का कौशल भर सीखा गया। गहराई में उतरकर संयमशीलता, उदारता, आत्मीयता, एकता, सहकारिता जैसे गुणों का विकास-विस्तार नहीं हुआ है। अभी समाज में रहते हुए भी वह असामाजिक, स्वार्थी, संकीर्ण अधिक है। यह दुर्गुण वैयक्तिक और सामाजिक क्षेत्र में अनेकानेक विग्रह, छद्म और अपराध खड़े करते हैं। उनका निवारण राजकीय प्रताड़ना से एक बहुत छोटी सीमा तक ही हो सकता है। उन्हें संतोषजनक स्तर तक काबू में लाने के लिए सहकारिता को प्रश्रय देना होगा; क्योंकि वह समस्त सद्गुणों की जननी है। भौतिक क्षेत्र की प्रगति भी उसी के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है। यह सहकारिता मात्र व्यवसाय स्तर की उथली न हो, वरन् उसे उस कौटुम्बिकता स्तर की होनी चाहिए, जिसमें आत्मीयता भी जुड़ती है और आध्यात्मिक तथा भौतिक आदान-प्रदान भी सम्मिलित रहता है।

दान का वास्तविक उद्देश्य सस्ती वाहवाही लूटना या स्वर्ग में सीट रिजर्व करना नहीं है, वरन् यह है कि हम समूचे समाज को अपनत्व के घेरे में बटोरें और जहाँ कहीं पीड़ा, पतन का आभास मिले, उसे दूर करने का प्रयत्न करें। पैर में ठोकर लगने पर मस्तिष्क और हाथ उसका उपाय-उपचार करने के लिए अनायास ही दौड़ पड़ते हैं। ठीक इसी प्रकार समूचा समाज आत्मभाव के दायरे में बाँधना चाहिए और जहाँ कहीं भी पिछड़ापन दीख पड़े, उसे विरानी नहीं, निज की पीड़ा समझी जाय और जो भी साधन हाथ में है, जितना भी समय, श्रम एवम् समझ अपने पास है, उसे लेकर उस आग को बुझाने के लिए दौड़ना चाहिए। गड्ढे में गिरे को उबारा जाना चाहिए। यही मानवी गरिमा की वरिष्ठता है। अकाल, बाढ़, अग्निकाण्ड जैसी विपत्तियाँ आने पर उदारमना लोग अपना काम हर्ज करके भी—आर्थिक हानि उठाकर भी उन पीड़ितों की सहायता के लिए दौड़ पड़ते हैं। यह आत्मा की पुकार है। इसी को मानवी वरिष्ठता भी कह सकते हैं।

यह सब जिस प्रकार दृश्य घटनाओं से बन पड़ता है, उसी प्रकार कल्पना और दूरदर्शिता के सहारे यह भी देखा, समझा जाना चाहिए कि समस्त विपत्तियों से बढ़कर अनाड़ीपन, पिछड़ापन कहाँ है ? स्वार्थ और अपराध कहाँ पनप रहे हैं ? आलस्य, प्रमाद, दुर्बुद्धि और कुरीतियों ने कहाँ अपना सर्वनाशी परिकर जमाया हुआ है ? इनके रहते न कोई व्यक्ति चैन से रह सकता और न रहने दे सकता है। वह स्वयं जलेगा और दूसरों को जलावेगा।

इन परिस्थितियों से उबारने के लिए सहकारिता को कार्यान्वित करने के अवसर ढूँढ़े जाने चाहिए, अनगढ़ वर्ग को उस शिकंजे में कसकर टेढ़े से सीधा किया जाना चाहिए। वातावरण की असाधारण शक्ति होती है। वह भले को बुरा और बुरे को भला बना सकती है।

इस हेतु परिवार की संरचना अपने आप में एक प्रकृति प्रदत्त सुव्यवस्था है। समूह में रहकर मनुष्य की स्वार्थपरता और अहंकार पर अंकुश लगाना पड़ता है। स्नेह और सद्भावना—मिल बाँटकर खाने का—एक-दूसरे की सेवा-सहायता करने का अवसर पग-पग पर खड़ा रहता है। इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि अपना निज का विवाह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करना ही पड़े और निज के बच्चे जनने ही पड़ें। परिवार में दूसरे लोग भी रहते हैं और उनके साथ सेवा-सद्भावना का परिचय देने पर निःस्वार्थता की मात्रा अधिक विस्तृत है और उस आधार पर श्रेय एवम् संतोष भी अधिक मात्रा में सम्पादित करता है। इसलिए निजी स्त्री-बच्चों की तुलना में परिवार के, पड़ौस के लोगों के साथ स्नेह-सद्भाव का विस्तार करना अधिक उच्चस्तरीय माना जाता है।

इससे भी कुछ अधिक आगे बढ़ा जा सके, तो पारिवारिकता को और भी बड़े रूप में विकसित करना चाहिए। उसमें सभी को हानि-लाभ समान होने की निश्चिन्तता तो रहती ही है, गिरे व्यवसाय को बाहर से ऋण मिल जाने की आशा तो रहती है, साथ ही यह संतोष भी रहता है कि जिस तरह अन्य साथी गुजारा करेंगे, उसी प्रकार हम भी किसी प्रकार मितव्ययितापूर्वक काम चलायेंगे। निजी लाभ के लिए तो सभी परिश्रम करते, सतर्कता बरतते और सूझ-बूझ का उपयोग करते हैं। उसी भावना का बड़े क्षेत्र में विस्तार होने से यह सोचना भी बन पड़ता है कि अन्य साथियों को भी हानि से बचाने और लाभ दिखाने का प्रयत्न किया जाय, क्योंकि दूसरों के लाभ के साथ ही अपना लाभ भी जुड़ा रहता है। इस बहाने संकीर्णता घटती और उदार आत्मीयता विकसित होती है। यह वह प्रक्रिया है, जिसके आधार पर स्वार्थ पर अंकुश लगता है और परमार्थ की दिशा में कदम बढ़ता है। यही है वह आधार, जिससे देव संस्कृति का मनुष्यों में अवतार होता है और एक-एक करके अनेकानेक सद्गुणों का समुदाय अनायास ही इर्द-गिर्द एकत्रित होता रहता है। समस्त दुर्गुणों और अपराधों का एक ही उत्पादन केन्द्र है—संकीर्ण स्वार्थपरता। इसी से जो जितना ग्रस्त है, उसे उतना ही क्षुद्र, निकृष्ट और पतित कहना चाहिए। जिसमें स्वार्थपरता जितनी बढ़ी-चढ़ी है, वह उतने ही बढ़े-चढ़े दुष्कर्म कर सकता है और समाज का उतना ही बड़ा अहित कर सकता है।

सबके सुख में अपना सुख और सबके दुःख में अपना दुःख मनाना ही नीति और धर्म का मूलभूत आधार है; पर यह स्वभाव का अंश कैसे बने ? इसका सीधा-सा उत्तर है कि सहकारिता को, सद्भावना को जिस आधार पर बढ़ाया जा सके—बढ़ाना चाहिए।

सहकारिता के आधार पर कम सामर्थ्य में अधिक आर्थिकता होने और अच्छी सही वस्तुएँ उपलब्ध होने की बात तो सर्वविदित होती जा रही है। इसलिए सहकारी समितियाँ बनाने के लिए सरकारी और गैर-सरकारी प्रयत्न चल रहे हैं। स्वल्प पूँजी और एकाकी प्रबंध में श्रम-स्तर के काम ही चल सकते हैं। बड़े व्यावसायिक फार्म खड़े नहीं हो सकते और न बड़े परिणाम में उत्पादन ही संभव है। इस तथ्य को विदेशों में तो बहुत पहले ही समझ लिया गया है और लिमिटेड कम्पनियाँ अथवा सहकारी आधार पर उद्योग क्षेत्र पूरा प्रश्रय मिलने लगा है। अब भारत जैसे पिछड़े देशों की बारी है, जो अपने परिवारों को सहकारी प्रयासों में जुटाकर अपना काम करने में जिस प्रकार स्वाभिमान आड़े नहीं आता, उसी प्रकार सहकारिता को प्रश्रय दें और यह निश्चय करें कि जो भी उद्योग-व्यवसाय करेंगे वह सहकारिता के, पारिवारिकता के आधार पर करेंगे। एकाकीपन की अहंकारिता को आड़े न आने देंगे। इससे आर्थिक लाभ से भी अधिक सामूहिकता की, सामाजिकता की अभिवृद्धि होगी। अब तक जाति-विरादरी वंश परम्परा के आधार पर बनती थी, अब व्यवसाय के आधार पर एक जैसा रहन-सहन और जीवन क्रम होने के कारण बनने लगेगी। इससे सामाजिक क्रान्ति का एक बड़ा आधार खड़ा होगा और पीढ़ियों के लिए आजीविका का एक सुनिश्चित आधार पूँजी बढ़ते रहने और संतान बढ़ाते रहने से सभी के छिन्न-भिन्न हो जाने की कठिनाई न रहेगी। चालू उद्योग के फैलने की गुंजायश न होगी, तो स्थानीय क्षेत्र में खप सकने वाला दूसरा उद्योग खड़ा हो सकेगा। लोग मिलजुल कर एक-एक काम को अपने स्वामित्व में कर रहे हैं, उनमें नौकर मालिक जैसा हेय भाव भी न बनेगा और तत्परतापूर्वक काम करने में भी संकोच न होगा। बेगार वहाँ भुगती जाती है, आलस्य वहाँ अपनाया जाता है, जहाँ यह प्रतीत होता है कि हमारे श्रम का लाभ कोई और उठाने वाला है। जब अपना लाभ अपने को ही मिलने वाला है तो आलस्य, प्रमाद क्यों करेगा ? फिर जहाँ नुकसान होने की आशंका है, वहाँ सभी की नजर रहेगी तो लापरवाही के कारण जो हानि होती रहती है उसकी भी गुंजायश न रहेगी, जिस कार्य का इतने लोग पर्यवेक्षण करें, उसमें हानि करने वाली बातों का समावेश करना संभव ही नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर नियत समय से अधिक काम भी किया जा सकता है। कृषि के साथ शाकभाजी का, फलों का उत्पादन भी सम्भव है। पशुपालन तो आसानी से चल ही सकता है। इसमें आर्थिक लाभ के अतिरिक्त यह सुविधा भी है कि स्वास्थ्यवर्धक आधार, जो बाजार में महँगे दाम का और सड़ा-गला मिलता था, वह घर पर ही अच्छी स्थिति में—सस्ता मिलने लगेगा और उस प्रयास से सभी को लाभ मिलेगा।

अभी प्रचलन आर्थिक आधार पर उद्योग, व्यवसाय, उत्पादन का ही चला है; पर आगे चलकर इस आधार पर गृह व्यवस्था सम्बन्धी नये आधार भी उसी आजीविका के सहारे संयुक्त रूप से खड़े किए जा सकेंगे।

भोजन पकाने, कपड़े धोने, बच्चों को लिखाने-पढ़ाने का, दैनिक उपयोग की वस्तुयें एक ही जगह से उपलब्ध करा सकने के तन्त्र भी इसी विकसित सहायता के अंग बन सकते हैं। सामूहिक मनोरंजनों के भी टेलीविजन जैसे आधार एक ही जगह लगाए जा सकते हैं, जिनको पृथक्-पृथक् घरों में सामान्य आर्थिक स्थिति रहते नहीं लगाया जा सकता। संयुक्त कृषि व्यवस्था यदि बड़े रूप में चल पड़े तो ट्रैक्टर, पम्प, वाहन जैसी उपयोगी वस्तुयें भी आसानी से लग सकती हैं। गोबर गैस प्लान्ट भी लग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकते हैं, जिससे खादें ज्यों-की-त्यों बनी रहें और ईंधन की समस्या मुफ्त में हल हो जाय। इन लाभों में से एक भी उस स्थिति में नहीं उठाया जा सकता, जब लोग पृथक्-पृथक् छोटे-छोटे रूप में अपने व्यवसाय चलायें। ऐसी दशा में पूँजी के अभाव में तो जहाँ-तहाँ नौकरी के लिए ही मारा-मारा फिरना पड़ता है। कुटुम्ब भी बिछुड़ जाते हैं और कम आजीविका में स्वतन्त्र गृह-व्यवस्था बनाने में अड़चनें भी असाधारण पड़ती हैं। अनजानों के साथ रहने में बिरानापन भी अखरता रहता है। समय पड़ने पर उधार देन-लेन या आड़े वक्त में सेवा-सहायता के लिए भी अपरिचित लोगों से कोई बड़ी आशा नहीं की जा सकती। बच्चों की पढ़ाई-लिखाई में उन लोगों को भारी कठिनाई आती है, जो नौकरी के सिलसिले में यहाँ-वहाँ स्थान बदलते रहते हों। घर में बच्चों को अकेला छोड़ देने और स्वयं नौकरी के सिलसिले में देश-विदेश मारे-मारे फिरने में भी दोनों ओर कलपता रहता है। यदि श्रमिकों में भी एक संगत बना लिया होता और सहकारी आधार पर मकान बनाने, हैण्डपम्प लगाने, सुगम शौचालय बनाने, मरम्मत करने जैसे काम हाथ में लिये होते तो शान और साख भी बनती। श्रम के अतिरिक्त मुनाफे का भी अंश मिलता।

यह एक आर्थिक प्रसंग को लेकर विभिन्न प्रकार की बातें सोची, योजनायें बनाई गई हैं। इन सब से भी बढ़कर है मिल-जुलकर काम करने की प्रवृत्ति। यह भावना अपने आप में इतनी महत्वपूर्ण है कि जहाँ-जहाँ भी इसे अपनाया जाएगा, वहीं उसका चमत्कारी प्रतिफल दृष्टिगोचर होगा। समाज सेवा के अनेक कार्य ऐसे हैं, जिन्हें एक व्यक्ति नहीं कर सकता। उनके लिए अनेकों का समर्थन और सहयोग चाहिए। सार्वजनिक संस्थायें बड़े-बड़े उपयोगी कार्य कर दिखाती हैं। संसार में उनके द्वारा बड़े उपयोगी कार्य सम्पन्न हुए हैं पर यह सब बन पड़ना तभी संभव हुआ है जब उस संस्था के सदस्यों की संख्या बढ़ी-चढ़ी रही है और उसका व्यापक क्षेत्र में विस्तार हुआ है। परिवर्तनकारी सुधार कार्य भी उन्हीं के द्वारा सम्पन्न हुए हैं। एक व्यक्ति तो बैठे-बैठे योजनाएँ बना सकता है, अधिक-से-अधिक कुछ लिख या छाप सकता है। वे काम नहीं कर सकता, जो कुरीतियों को उखाड़ दें और उनके स्थान पर नई सृजनात्मक व्यवस्थायें खड़ी करे। संसार के इतिहास में बड़ी-बड़ी राजक्रान्तियाँ और सामाजिक क्रान्तियाँ हुई हैं, उसके पीछे संगठित प्रयास ही रहे हैं और मिलजुल कर लोगों ने गोवर्धन पर्वत उठाया और समुद्र पर पुल बनाया है। इसे संगठन की शक्ति ही कह सकते हैं, उसमें चाहे छोटी योग्यता या शक्ति के लोग ही क्यों न रहे हों ? ग्वालबालों और रीछ-वानरों की बात इसीलिए बार-बार स्मरण की जाती है। गाँधी के सत्याग्रही, विनोबा के सर्वोदयी और बुद्ध के भिक्षु-भिक्षुणी मिलकर कितने बड़े काम कर सके। ईसाई मिशनरियों ने दो सहस्राब्दियों से कम समय में एक तिहाई जनसंख्या को अपने धर्म में दीक्षित कर लिया। इसे सार्वजनिक क्षेत्र के स्वयंसेवी कार्य कार्यकर्ताओं का चमत्कार ही कहना चाहिए। सेवाभावी सार्वजनिक संस्थायें भी एक प्रकार सहकारी समितियाँ ही हैं। उनका उद्देश्य व्यावसायिक न होकर लोकमंगल भर होता है पर गठन का आधार वही है। सफलतायें संगठन में ही सन्निहित रहती हैं। धर्मों, समुदायों, दर्शनों, विचार विस्तारों के बड़े-बड़े काम मिलजुल कर ही प्रतिभाशाली लोगों ने सम्पन्न किये हैं। जिस वर्ग पर स्वार्थपरता छाई रहती है, जो अनुशासन में नहीं रहना चाहते, अपनी-अपनी निजी महत्वाकांक्षाओं को ही प्रधानता देते हैं, वे हर क्षेत्र में स्वार्थ-संघर्ष खड़े करते हैं और अन्ततः उनके परिणाम विनाशकारी ही होते हैं। सभी जानते हैं कि चोर-उचक्के विपत्ति खड़ी करते और उसी आग में स्वयं भी जल मरते हैं।

दुष्ट-दुराचारी भी इसीलिए पनपते हैं कि लोगों में विरोध या मुकाबला करने की सामूहिक बहादुरी नहीं होती है। एक पिटता रहता है, दूसरा तमाशा देखता है। दूसरा पिटता है, तीसरा मौन दर्शक बना रहता है। यदि एक पर आक्रमण को सभी लोग अपने ऊपर हुआ आक्रमण समझें और आततायी पर टूट पड़ें तो उसका कचूमर निकाल सकते हैं। झुण्डों के छोटे-छोटे गिरोह बड़े समुदाय को हैरान करते रहते हैं। वे जान लेते हैं कि लोगों में सामूहिक विरोध की शक्ति नहीं है। ऐसी दशा में उनके हौंसले बढ़ते रहते हैं और वह अनर्थ करते रहते हैं, जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है कि इतने थोड़े लोग इतने अधिक लोगों की नाकों दम कैसे किये हुए हैं ?

कोई समय था जब हर कुटुम्ब पीछे एक सदस्य को सेना में भरती होने या धर्म प्रचार प्रयोजन के लिए संकल्पित करते थे। उसके पारिवारिक दायित्वों को संयुक्त कुटुम्ब के अन्य लोग मिलजुल कर उठाते थे। उसके परिवार को न कमाने का उलाहना नहीं देते थे, अपितु उस मर्द द्वारा किये गये त्याग, बलिदान के बदले दूना सम्मान देते थे। वही स्थिति भी जिसने इस देश को विश्व का चक्रवर्ती शासक बनाया और संसार के कोने-कोने में सत्प्रवृत्तियाँ जमाने-बढ़ाने के कारण जगद्गुरु कहा गया। यहाँ के नागरिकों को देवमानव कहा गया और इस धरती को 'स्वर्गादपि गरीयसी'।

आज हर व्यक्ति के गले से एक छोटा परिवार बँधा है। संयुक्त परिवार की प्रथा को संकीर्ण स्वार्थपरता की ललक ने तोड़-मरोड़ कर रख दिया। ऐसी दशा में वही माहौल सर्वत्र छा गया। अब यदि भाइयों में से कोई मर जाय और उसकी कमायी पर्याप्त सम्पदा न हो तो भाई-भतीजे उस विधवा के कपड़े भी उतरवा लेना चाहते हैं, सहायता करना तो दूर। उस स्थिति में विधवा की तथा उसके बच्चों की कैसी दुर्दशा होती है, यह हृदय-विदारक दृश्य होता है।

आखिर वह स्वर्ग कहाँ गया और यह नरक कहाँ से आ गया ? इसका विचार करने पर एक ही बात समझ में आती है कि आदमी पर संकीर्ण स्वार्थपरता चढ़ती चली

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गई। किसी को किसी की सहानुभूति नहीं रही और मिलजुल कर काम करने में यही संदेह काम करता रहा कि आज का साथी कल विश्वासघाती न बन बैठे। दो मित्र मिलकर दुकान खोलते हैं तो दूसरे दिन से ही यह सोचने लगते हैं कि नफा हुआ तो इस व्यवसाय को मैं हथिया लूँगा और घाटा रहे तो दूसरे के मत्थे मढ़ूँगा। चोरी और छल की प्रवृत्ति आरम्भ से ही उठ खड़ी हो तो वह साझा कैसे चले ?

इन समस्त बुराइयों की जड़ व्यक्तिवाद की संकीर्ण अनुदारता है, जो मानवी प्रगति के इतिहास से तनिक भी तालमेल नहीं खाती। उन्नति, सुख-शान्ति, सुरक्षा और प्रतिष्ठा के लिए सहकारी प्रचलन ही एकमात्र उपाय-उपचार है, उसे भले ही अब अपनाया जाय या फिर कभी।

सहकारिता के प्रचलन में दो पहिये जुड़े हुए हैं—पारिवारिकता स्तर की उदारता और आत्मीयता। यह दोनों एक साथ ही चलती हैं। इनमें से एक भी कम पड़ेगी तो स्थिति लड़खड़ा जाएगी और स्थिति सुधरने की अपेक्षा और अधिक बिगड़ेगी। बेईमानी, बदनीयती मन में आने पर सहकारिता का आधार ही डगमगा जाता है और वह उच्छृंखल परिवारों की तरह अस्तव्यस्त होती और दुर्व्यवस्था तथा बदनामी भी फैलाती है।

समय की माँग है कि पुरातन काल जैसी सहकारिता फिर प्रयत्नपूर्वक वापस बुलाई जाय। मनुष्य, मनुष्य के साथ सच्चे मन और पूरे विश्वास के साथ मिले। एक दूसरे की भूल को सद्भावना और मिठास भरे शब्दों में समझाते रहें। घुटन, आशंका और अविश्वास पनपने देने की अपेक्षा यह स्पष्टवादिता अधिक उत्तम है। उससे भावी विग्रह की जड़ कट जाती है और भूल करने वाला उसे दुबारा नहीं दुहराता।

परिवार संचालन में जिस दूरदर्शिता की आवश्यकता पड़ती है, ठीक वही सहकारिता के लिए चाहिए। संकोच में गलतियों की उपेक्षा करना और स्पष्टवादिता का साहस न जुटा पाना मनमुटाव का कारण हो सकता है। इतने पर भी वह उत्तम और आवश्यक है क्योंकि उस आधार पर गलतियाँ रुकने की सम्भावना रहती है और सहकारी समिति के सभी सदस्यों का हित साधन होता है। अच्छा यही है कि उस प्रयास को आरम्भ करते ही एक आचारसंहिता बना ली जाय, जिसको सब लोग ईमानदारी और तत्परता के साथ निबाहते रहें। इसके लिए उथली मनोभूमि को चौड़ा, विशाल एवं उदार बनाना पड़ेगा। इन सद्गुणों का प्रशिक्षण सभी परिजनों को परिवार की आचार संहिता समझ लेने के साथ मिलता रहता है। उनमें भी भूल सुधार की बार-बार आवश्यकता पड़ती है, किन्तु प्रसन्न-अप्रसन्न होते हुए भी आत्मीयता हाथ से नहीं जाने दी जाती। यही प्रयास सहकारिता के आधार पर खड़े किए गए कार्यों में करना होता है। भले ही वह व्यावसायिक हो या सार्वजनिक सेवाभावी। दोनों में एक ही नीति अपनानी पड़ती है कि जहाँ तक सम्भव हो सदस्यता को निभाया जाय। उनके हितों को आँच न आने दी जाय, किन्तु साथ ही इतनी बेधक दृष्टि भी रखी जाय कि जहाँ खोट या भूल पनपने लगे, वहाँ उसका समाधान भी साथ का साथ होता चले। बहुत-सी शिकायतें जमा कर लेने और फिर उन्हें एक साथ उगलने से बात बढ़ती है, घटती नहीं।

सहकारिता के आधार पर आर्थिक और सामाजिक समस्याओं से निपटा जा सकता है। व्यक्तिगत दोष-दुर्गुणों को भी दूर किया जा सकता है और ऐसा वातावरण बनता है, जिसे बहुत समय से भुला देने के कारण अनेकानेक समस्यायें पैदा हुई हैं। हम बिखरे हैं, विग्रही बने हैं और आर्थिक समस्याओं के जाल में फँसे हैं। उदार सहकारिता ही वह एकमात्र उपाय है, जिसके सहारे अनेकों खाइयाँ पाटी जा सकती हैं और प्रगति के पथ पर ले जाने वाली राह खुलती है।

सहकारिता एक अमोघ शक्ति

शरीर के कल-पुर्जे मिल-जुलकर काम करते हैं। तभी जीवनक्रम सुव्यवस्थित रीति से चलता है, कोई एक अवयव अपने बलबूते कोई उपयोगिता सिद्ध नहीं कर सकता, भले ही कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो। मशीन में सभी कल-पुर्जे अपने स्थान पर सही रीति से लगें और चलें, तभी वह अपना प्रयोजन पूर्ण कर पाती है। यदि पुर्जे अलग-अलग बिखर जायँ तो वे सभी कबाड़िये की दुकान पर कौड़ी मोल बिकेंगे। कीमती घड़ी की उपयोगिता तभी तक है, जब तक उसके पुर्जे सही स्थान पर लगे और सही रीति से सही काम करते हैं। यदि वे अलग-अलग होकर बिखर जायँ, तो फिर उन टुकड़ों का कोई महत्व न रह जायगा।

तिनके मिलकर मजबूत रस्सा बनता है। धागों के समन्वय से कपड़ा बनता है। पतली सीकें मिलकर बुहारी बनती है और घर के आँगन को साफ-सुथरा रखती हैं। यदि सींकें बिखर जायँ तो उनमें से अकेली अपनी कोई कुछ भी उपयोगिता सिद्ध न कर सकेगी। मनके एक धागे में पिरोये रहें, तभी माला बनती है। यदि वे अलग-अलग रहें तो कूड़े-कचरे भर में गिने जायेंगे।

परिवार के छोटे-बड़े सदस्यगण मिल-जुलकर एक-दूसरे के लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं, पोषण पाते, विकसित होते और सुखी रहते हैं। यदि उन सभी के अलग-अलग रहने का सिलसिला चल पड़े, तो गुलदस्ते की तरह परिवार की शोभा तो नष्ट होगी ही, साथ ही वे अलग रहने वाले घटक हर दृष्टि से दीन-दुर्बल होते जायेंगे, दुःखी रहेंगे और उनमें से कितनों का ही सहारा छूट जाने पर जीवित रह सकना भी संभव न होगा।

चिड़ियाँ झुण्ड बनाकर रहती, उड़ती और चहकती-फुदकती हैं। यदि वे अलग-अलग रहने लगें, तो जीवन का सारा आनन्द खो बैठें। वन्य पशु समूह बनाकर रहते हैं। यदि वे ऐसा न करें, तो एकाकी रहने वाला

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

'इक्कड़' कहलाने लगें और सामूहिकता के कारण उपलब्ध होने वाले गुणों से वंचित रहने लगें। हँसना-खेलना मिल-जुलकर ही बन पड़ता है। एकाकीपन के साथ तो नीरसता, निस्तब्धता जुड़ जाती है और समय काटना मुश्किल पड़ता है। जेल की काल कोठरी में जिन्हें एकाकी रहना पड़ता है, वे जानते हैं कि उस अवधि में कोई श्रम न करने पर भी वे दिन कितना भारी मन बनाकर काटने पड़ते हैं।

जंजीरों की कड़ियाँ मिलकर ही एक उपयोगी श्रृंखला बनाती हैं। यदि उनके घटक बिखर जायँ, तो फिर उनकी क्या तो उपयोगिता रहे और क्या शोभा ? मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा जाता है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि मिल-जुलकर रहने और एक-दूसरे का सहयोग करते हुए प्रगति पथ पर बढ़ चलने की कला उसने प्राप्त की है। यदि स्वभाव में यह विशेषता न रही होती, तो शारीरिक दृष्टि से लगभग समान स्तर के बन्दर, चिंपैंजी, गौरिल्ला, वनमानुष आदि की तरह उसे भी गई-गुजरी स्थिति में दिन गुजारने पड़ते। अभी भी आदिवासी-वनवासी कबीले जहाँ कहीं बिखरे-बिखरे रहते हैं, वहाँ उन्हें पिछड़ी स्थिति का, अभावग्रस्त और अनगढ़ स्तर का जीवन-यापन करना पड़ता है। उत्तरी ध्रुव के एस्किमो कबीले वन्य स्तर का जीवन जीते हैं, पर जब उनमें से कुछ कनाडा जाकर बस गये, तो उनने वहीं के सभ्य निवासियों की तरह जीवन अपना लिया।

बहुत समय पूर्व भेड़ियों की माँद में कुछ मनुष्य बालक पाये गये थे। पकड़े जाने पर पाया गया कि वे भेड़िये जैसा ही स्वभाव अपना चुके थे। यही बात किसी के प्रति भी लागू हो सकती है। कारण एक ही था कि बच्चों को जिस प्रकार के सम्पर्क में रहना पड़ा, उसी की वे अनुकृति बन गये।

कहा जाता है कि मनुष्य बुद्धि प्रधान है, पर यह बुद्धि उसका निज का उपार्जन नहीं है। सम्पर्क-सान्निध्य से बन पड़ने वाले आदान-प्रदान की ही वह परिणति है। छोटे बच्चे जिस परिकर में रहते हैं, उसी की भाषा सीख जाते हैं। जो सुन नहीं पाते वे बहरे बोलने में असमर्थ गूँगे बने रहते हैं। ज्ञान वृद्धि के लिए अध्ययन, सम्पर्क, दृश्य, अनुभव ही प्रधान आधार होते हैं। वह जिस भी स्तर का उपलब्ध होता है, मनुष्य उसी ढाँचे में ढल जाता है। कोरे कागज पर जैसी-जैसी जो बात अंकित की जाती है, वह आलेख बन जाती है। दर्पण के सामने जैसी छवि उपस्थित होती है, वैसी ही प्रतिच्छाया दीख पड़ती है। समीपवर्ती वातावरण ही मनुष्य को किसी ढाँचे में ढालता है। यही कारण है कि पुराने समय में जिन्हें अपने बालकों का व्यक्तित्व उत्कृष्टता के ढाँचे में ढालना होता था, वे उन्हें उस स्तर वाले गुरुकुलों में ही आरम्भ से रहने और पढ़ने के लिए भेज देते थे। घरेलू वातावरण में तो वैसी सुविधा होती नहीं थी। जिनका लालन-पालन हेय वातावरण में होता था, उनकी प्रकृति भी उसी ढाँचे में ढल जाती थी।

इससे सिद्ध है कि मनुष्य को जिस विशेषता से सम्पन्न माना जाता है, वह बुद्धिमत्ता उसकी अपनी सम्पदा नहीं है। उसे कहीं अन्यत्र से ही प्राप्त करना पड़ता है। कहना न होगा कि मनुष्य की प्रमुख प्रवृत्ति सहकारिता की पक्षधर है। सुव्यवस्थित परिवारों की संरचना इसी आधार पर बन सकी। समाज संरचना का उद्गम भी वही है। आदान-प्रदान ही वह आधार है, जिससे वस्तुओं का विनिमय और जानकारियों का हस्तान्तरण होता है। यदि मनुष्य में सामाजिकता-सहकारिता की वृत्ति न रही होती, तो निश्चित रूप से वह वनमानुष जैसे वन्य प्राणियों से अधिक अच्छी स्थिति में न पहुँच सका होता। वन्य प्रदेशों में रहने वाले कबीले अभी भी मात्र उतनी ही प्रगति कर पाये हैं, जितना कि उन्हें सम्पर्क-सहकार मिलता रहा है।

प्रगतिक्रम का सिलसिला मनुष्य ने अपने आदिम विकास से ही जारी रखा है। अग्नि प्रज्ज्वलन, कृषि, पशुपालन, वस्त्र, आवास, व्यवसाय, शिक्षा, चिकित्सा, परिवहन आदि की सुविधायें किसी एक की अनुकृति नहीं हैं। वह प्रक्रिया क्रमिक गति से ही चली है। क्रमिक गति से ही यह उपलब्धियाँ हस्तगत होती रही हैं और उन्हें पिछले वालों ने अगले वालों के हाथ सौंपने का सिलसिला जारी रखा है। इसी क्रम से एक-एक सीढ़ी चढ़ते हुए, एक-एक कदम आगे बढ़ाते हुए यह स्थिति आ पायी है, जिसमें कि आज मनुष्य है। यदि सहकारिता की उपलब्धियों से रहित हुआ होता, तो आज मनुष्य उतना ऊँचा नहीं उठ सका होता, जितना कि आज है।

अभी भी जितने सुविधा-साधन उपलब्ध हैं, उनमें से कदाचित् ही कोई किसी मात्रा में अपने हाथ से—अपने बुद्धि बल से उपार्जित करता है, अनेकों के अनुदान मिलकर ही एक छोटी वस्तु समग्र रूप में हमारे हाथ तक पहुँच पाती है। उदाहरण के लिए, एक माचिस की डिब्बी को लें। वह चीड़ के पेड़ का एक टुकड़ा है। उसे किसी ने काटा होगा। किसी वाहन में रखकर कारखाने तक पहुँचाया होगा। ढोने वाले वाहन को बनाने में जिस कारखाने का उपयोग हुआ, वह भी अनेकों कारीगरों, इन्जीनियरों, धातु खोदने-पकाने वालों के सहयोग से बना होगा। तभी वह लकड़ी माचिस कारखाने तक पहुँची होगी। वहाँ छोटी तीली का रूप देने में कितनी मशीनों का उपयोग हुआ होगा ? गन्धक, फास्फोरस आदि रसायन लगाने और उन्हें माचिस में लगाने योग्य बनाने में कितनों का कितनी प्रकार का सहयोग लगा होगा। तीलियाँ रखने की डिब्बी बनाने में, उसके लेबिल छापने, चिपकाने में कितनों का श्रम और कौशल लगा होगा इसका अनुमान सहज लगाया जा सकता है। उतने भर काम में हजारों का श्रम, कौशल लगा हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दैनिक जीवन में हम सैकड़ों वस्तुओं का उपयोग करते हैं। इनका निर्माण स्वयं हमने नहीं किया होता। उसके निर्माण में भी लम्बे जनसहयोग की शृंखला जुड़ी होती है। यहाँ तक कि जिन माता-पिता के द्वारा अपना जन्म हुआ है, जो पत्नी सहचरी बनी है, जिनके माध्यम से आजीविका कमाते हैं, जो विनोद के साधन बने हुए हैं वे हमारी स्वयं की कृति नहीं हैं। मित्र मण्डली से लेकर विनोद साधनों, शिक्षा, चिकित्सा जैसे उपकरणों में भी उनका योगदान रहा होता है। कपड़ों की बुनाई, सिलाई, धुलाई आदि में भी न जाने कितना अपना न्यूनाधिक योगदान लगा चुके होते हैं। इस प्रकार समूचा जीवन जिन वस्तुओं और व्यक्तियों के माध्यम से चलता है, वे सभी असंख्यों के सहयोग से विनिर्मित हुए होते हैं। यह लाभ भी मानवी प्रगति का प्रधान कारण है। बुद्धिमत्ता, प्रतिभा, बलिष्ठता, सम्पन्नता, विशिष्टता से अलंकृत व्यक्ति भी यह नहीं कह सकते कि साधनों से लेकर प्रतिभाओं तक को उनने एकाकी उपार्जित किया है। मनुष्य समुदाय को जो अनेकानेक सुविधायें प्राप्त हैं, वे वस्तुतः पारस्परिक आदान-प्रदान के आधार पर ही बन पड़ी और उपलब्ध हुई हैं।

पशु और मनुष्य के बीच जो अन्तर है, उसे बौद्धिक विशेषता कहा जाता है। यदि इसे सही माना जाय तो भी यही कहा जायगा कि उस बुद्धिमत्ता ने सर्वप्रथम सहकारिता के तत्व को जाना और अपनाया होगा, अन्यथा काया की दृष्टि से अनेक बातों में पशु-पक्षियों से गया-गुजरा होने पर भी उसने जो सृष्टि के मुकुटमणि की पदवी प्राप्त कर ली है, उसका किसी भी प्रकार सुयोग न बन पड़ा होता। सच तो यह है कि वह वन्य जीवन की कठिनाइयों और प्रतिस्पर्द्धाओं से जूझता हुआ कबका अपना अस्तित्व गँवा बैठा होता।

शासन, समाज, उद्योग, शिक्षा, शोध आदि के अनेकों ऐसे पक्ष हैं, जिनमें निकट भविष्य में और भी बहुत कुछ उपलब्ध होने की आशा तथा संभावना है। उनकी योजना, संभावना और सफलता मात्र इस बात पर टिकी हुई है कि उन प्रयोजनों में कितने सुयोग्यों का कितना घनिष्ठ सहयोग हस्तगत होता है। भूतकाल की ऐतिहासिक प्रगति का आधार भी यही रहा है और भविष्य में भी जो कुछ कहने लायक बन पड़ेगा, उसमें वरिष्ठों का सघन सहयोग ही काम कर रहा होगा।

सहयोग प्राणियों को अपने प्रभाव का परिचय देता है। बन्दर झुण्ड बनाकर रहते हैं, परस्पर सहयोग करते हैं। एक को छेड़ने पर समूची मण्डली बदला लेने के लिए दौड़ पड़ती है। फलस्वरूप वे सभी के लिए अनुपयोगी होते हुए भी अपना अस्तित्व यथावत् बनाये हुए हैं। यहाँ तक कि हनुमान के वंशज कहलाते हुए चना-गुड़ जैसा भोग प्रसाद भी पाते रहते हैं। इसके ठीक विपरीत कुत्तों का उदाहरण है। वे आपस में लड़ते रहते हैं। दूसरे को अपने क्षेत्र में नहीं आने देते, फलस्वरूप एक पर मुसीबत आये तो दूसरे उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं करते। फलस्वरूप उसे अकेले ही पिटते रहना पड़ता है। रखवाली तथा दूसरी दृष्टि से उपयोगी होते हुए भी कुत्ता शब्द अपमान का बोधक माना जाता है। शहद की मक्खियाँ, दीमक, चींटी आदि की सहकारिता ही उन्हें समर्थ वर्ग में गिने जाने पर योग्य बनाती हैं, जबकि सामान्य कीड़े-मकोड़े बहुत संख्या में जन्मने पर भी दुर्गति को ही प्राप्त होते रहते हैं। सहकारिता प्राणि जगत् की अत्यन्त उच्चकोटि की उपलब्धि है। झुण्ड में रहने वाले प्राणी अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित रहते हैं।

सहयोग अनिवार्य भी, आवश्यक भी

सहकारिता का शुभारम्भ परिवार परिकर से होता है। यह मनुष्य में ही नहीं, सृष्टि के अधिकांश विकसित प्राणियों का प्रचलन है। पशु वर्ग के प्राणी अपने बच्चों को जनते ही उन्हें चाटकर गर्भकाल के साथ आने वाली गन्दगी को साफ करते हैं, दूध पिलाते हैं, उनके साथ पूरी मोह-ममता दिखाते हैं। समीप ही रखना चाहते हैं, बिछुड़ना सहन नहीं करते, जब तक बच्चा अपने पैरों खड़ा होकर स्वावलम्बी होने योग्य नहीं बन जाता, तब तक उसकी देखभाल में कमी नहीं आने देते। दुधारू पशु प्रायः तभी थनों में दूध उतारते हैं जब बच्चा सामने होता है। बिना बच्चे के तो उन्हें डरा-धमकाकर ही अनिच्छापूर्वक दूध उतारा जाता है। पक्षियों की ममता तो और भी अधिक होती है, उनमें मादा अण्डों को सेती है, उन पर छाती लगाकर बैठी रहती है। गर्मी से अण्डे पकते हैं, जब वे फूटते हैं और चूजे निकलते हैं तब भी उनके लिए चारा जुटाने का काम उसी का होता है। नर भी इसमें मदद करता है, दोनों मिलकर घोंसला तो प्रसव से पहले ही बना लेते हैं। किस ऋतु में प्रजनन सुविधाजनक रहेगा, इसका उन्हें पहले से ही ध्यान रहता है। बच्चों के प्रति यदि उनके जन्मदाताओं का इतना लगाव न रहे तो उनकी अति दुर्बल स्थिति में उबरकर समर्थ बन सकना सम्भव ही न बन पड़े। आपत्ति आने या आक्रमण होने की दशा में उनके संरक्षक डटकर मुकाबला करते हैं और कई बार तो उसमें अपने प्राण हथेली पर रखकर भी सुरक्षा का प्रबन्ध करते हैं। घोंसला या माँद बनाकर बच्चों की अनुकूलता के प्रबन्ध वे प्रजनन काल आने से पूर्व ही कर लेते हैं।

यह प्रवृत्ति बताती है कि प्रकृति ने प्राणियों की वंश परम्परा चालू रखने के लिए कामुकता में उत्साह और बच्चों के प्रति सहज स्नेह की भावना उत्पन्न कर रखी है। यदि इस मनोवृत्ति का अभाव रहा होता तो प्रजनन और बाल पोषण जैसे झंझट भरे काम में कोई भी प्राणी प्रवृत्त न होता। मक्खी-मच्छर जैसे अति क्षुद्र प्राणियों का वंश विस्तार तो प्रकृति अपने ढंग से करती है, पर जिनकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थिति पशु-पक्षी स्तर की भी विकसित हो गई है, उन्हें वंश वृद्धि अथवा परिवार-पोषण का उत्साह सहज स्वाभाविक रूप से मिला है। मनुष्य उन सबसे विकसित स्तर का है, इसलिए उसमें यह प्रवृत्तियाँ और भी बढ़-चढ़कर पाई जाती हैं। कई बार तो वे सीमा-मर्यादा से भी आगे निकल जाती हैं। यौनाचार के प्रति अति उत्साह कामुकता से सम्बन्धित अनेक कौतुक कराता है। बच्चों का पालन तो स्वाभाविक है, पर मनुष्य में उनके प्रति और भी अधिक लगाव पाया जाता है। उनकी साज-सज्जा से लेकर अधिक कमाऊ बनाने और विवाह संयोग बिठाने में अपना दायित्व मानता है, इतना ही नहीं उनके लिए उत्तराधिकार में अधिक से अधिक पूँजी छोड़ मरने के लिए भी आतुर रहता है। वंश-परम्परा के रूप में चलती रहने वाली यह प्रवृत्तियाँ मूलतः सहकारिता की ही शाखा-प्रशाखा हैं। विवाह स्वयं में एक बहुत बड़ा सहकार है, पति-पत्नी एक-दूसरे के साथ अति घनिष्ठतापूर्वक बँधते हैं और प्रयत्न करते हैं कि वह सम्बन्ध-सूत्र आजीवन यथावत् बना रहे। इस प्रचलन को सहकारिता की ही एक सुविकसित भाव-संवेदना कहा जा सकता है। भले ही उसमें मोटे रूप से कामुकता की उमंग का प्रधान रोल दिखाई पड़ता है।

परिवार एक सर्वांगपूर्ण सहकारी समिति है, उसके सभी छोटे-बड़े सदस्य मिल-जुलकर एक-दूसरे के लिए साधन जुटाते हैं। सुख-दुःख में भागीदार रहते हैं, एक-दूसरे से सीखते और सिखाते हैं। सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से परिवार गठन एक आदर्श है, जिसमें चलने वाली विधि-व्यवस्था को देखकर यह सीखा जा सकता है कि बड़े रूप में समाज समुदाय की संगठना किस आधार पर होनी चाहिए और उसकी व्यवस्था का गठन किस प्रकार किया जाना चाहिए ?

सामर्थ्य भर अनुदान प्रस्तुत करे और आवश्यकता भर उस तन्त्र की क्षमता में से अपने लिए ग्रहण करे—यह साम्यवादी सिद्धांत परिवार परिकर में सहज स्वभाविक रूप से क्रियान्वित होता रहता है। समर्थ-असमर्थों की सहायता करने में कोताही नहीं करते, असमर्थ अपने से बड़ों की स्नेह-संवेदना की तृप्ति में अपने ढंग का योगदान करते हैं। गुलदस्ते में कई प्रकार के फूल होने पर ही शोभा पाते हैं। भोजन में अनेक व्यंजनों की उपस्थिति से तृप्ति मिलती है। उद्यान में अनेक तरह के फल-फूल उगे होते हैं। वन प्रदेश में अनेक जाति के प्राणी अपने चित्र-विचित्र क्रिया-कलापों के द्वारा उस क्षेत्र को मनोरम बनाते हैं। यही प्रकृति की सुरम्य व्यवस्था परिवार के छोटे परिकर में भी सुरम्य और सुव्यवस्थित रूप से देखी जा सकती है। मनुष्य मनुष्य के बीच कितने प्रकार के रिश्ते चल सकते हैं और इस कारण कितनी आवश्यक प्रवृत्तियों का सुनियोजित ढंग से विकास हो सकता है, इसका एक अच्छा नमूना परिवार के बीच देखा जाता है। माता-पिता और संतान के बीच, भाई-भाई के बीच, बहिन-बहिन के बीच, चाची-चाचा, दादी-बाबा आदि के उस परिकर के सदस्यों के साथ कितने प्रकार के कितने भिन्न और कितने पूरक सम्बन्ध होते हैं, उनके कारण मनुष्य की विभिन्न प्रवृत्तियों को कितना पोषण मिलता है ? इसका सुरम्य दृश्य देखना हो तो परिवार के बीच चलने वाली भाव संवेदनाओं और सहयोग की विभिन्न विधाओं का गम्भीरतापूर्वक निरीक्षण करके जाना जा सकता है। घर-घरौंदे के छोटे-से आँगन में कितने प्रकार की रीति-नीति विकसित होती और घटकों को मिलाकर एक पूर्ण मनुष्यत्व के अंग-प्रत्यंगों की पूर्ति करती है। सुनियोजित गृहस्थ में वे सभी विशेषतायें पाई जाती हैं, जिन्हें यदि तात्विक रीति से समझा जा सके और विचारपूर्वक अभ्यास में उतारा जा सके तो यह समझा जा सकता है कि उन्हीं प्रवृत्तियों को विकसित रूप में प्रयोग करके समूचे समाज समुदाय का सुव्यवस्थित गठन किस प्रकार हो सकता है ? सहकारिता सुनियोजित रीति से व्यवहृत होने पर किस प्रकार शान्ति, सद्भाव और प्रगति का आधार बन सकती है।

मानवी सौहार्द्र का एक सारगर्भित मन्त्र है—'वसुधैव कुटुम्बकम्' अर्थात् समस्त विश्व को एक कुटुम्ब माना जाय। समर्थ-असमर्थों के प्रति उदारता बरतें और असमर्थ उस उपलब्धि पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए कृतज्ञता की अभिव्यक्ति करें। हँसते-हँसाते जीने, मिल-बाँटकर खाने की नीति परिवार में तो चलती ही है, यदि उसी को बड़े रूप में समस्त समुदाय के बीच क्रियान्वित किया जा सके तो फिर समझना चाहिए कि सीमित साधन के रहते हुए भी सघन सहकारिता अपनाते हुए जिओ और जीने दो का उद्देश्य भली प्रकार प्राप्त किया जा सकता है।

परिवार में अवांछनीयता पनपने पर उससे निबटने के अनेक उपाय हैं। उचित-अनुचित का भेद करने का विवेक यदि जगा सकें और जगाया जा सके तो भूलें बताने और समझने का उपक्रम चल सकता है। इस विधा को अपनाने पर मनोमालिन्य और कलह के अनेकों अवसर टल सकते हैं, उद्दण्डता बरतने पर आतुर सदस्यों के साथ असहयोग, उपेक्षा जैसे साधारण दीखने वाले हथियार भी करारी चोट कर सकते हैं और मनमानी करने वाले को नीति पर चलने के लिए बाधित कर सकते हैं। भर्त्सना अपने आप में एक बड़ा दण्ड है, पर वह पीठ पीछे नहीं सामने प्रयोग किया जाना चाहिए। प्रताड़ना के यह सहज तरीके हैं जो वहाँ अच्छा खासा प्रभाव दिखाते हैं, जहाँ पहले से ही आत्मभाव का सूत्र किसी सीमा तक विद्यमान है।

आवश्यक नहीं कि हर कोई निजी वंशवृद्धि करे और अपना अलग परिवार बसाये। पुरातनकाल में भी यह आवश्यक नहीं था। अब भी उद्देश्य विशेष में लगे हुए व्यक्ति इतना समय नहीं निकाल पाते कि परिवारीजनों को अपेक्षित स्नेह, सहयोग, समय दे सकें और पर्याप्त साधन जुटा सकें—ऐसी दशा में यही उचित समझते हैं कि अलग से निजी परिवार न बढ़ाया जाय। इन दिनों असाधारण रूप से बढ़ती जनसंख्या और उस कारण बढ़ती समस्याओं को देखते हुए बुद्धिमान यही समझते हैं कि वर्तमान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिस्थितियों से विद्यमान परिवार के सदस्यों के प्रति अपने कर्तव्यों का परिपालन ही पर्याप्त है। निजी विवाह करके निजी बच्चे पैदा करने में विद्यमान परिवार की सुविधाओं में कटौती होती है, अपनी जिम्मेदारियाँ अतिरिक्त रूप से बढ़ती हैं और समाज की प्रगति में अड़चन उत्पन्न होती है। इसलिए अच्छा यही है कि पहले से ही जिन परिवारों के साथ सम्बन्ध जुड़े हैं, उन्हीं को अधिक सुविकसित करते हुए एक आदर्श की स्थापना की जाय।

सन्त प्रकृति के लोकसेवी आमतौर से अविवाहित ही रहते हैं क्योंकि निजी परिवार का बोझ लाद लेने पर फिर लोकमंगल के लिए उतना समय नहीं मिल पाता, जिसमें आत्मसंतोष मिल सके और अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बढ़-चढ़कर कुछ कहने लायक काम बन सके। ऐसे सुयोग अपवाद रूप में ही कभी नहीं मिलते हैं, जिनमें पति-पत्नी, कुटुम्बी-सम्बन्धी आदि के विचार परमार्थ प्रयोजनों का समर्थन कर सकें या सहयोग दे सकें। आमतौर से उनकी दृष्टि निजी समृद्धि बढ़ाने में ही बुद्धिमत्ता अनुभव करती है और उसी के लिए परामर्श देती एवं दबाव डालती है। खींचतान में न परिजन ही संतुष्ट रह पाते हैं और न उच्च उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कुछ ऐसा करते बन पड़ता है, जिसके बल पर आंतरिक प्रफुल्लता उपलब्ध हो सके। मनुष्य जीवन की महत्ता, उपलब्ध शक्तियों के समग्र उपयोग से बन पड़ने वाली संभावना तथा समय की असाधारण माँग को देखते हुए उच्चस्तरीय आत्मायें सोचती हैं कि इतने महत्वपूर्ण प्रयोजनों को तिलाञ्जलि देकर क्यों नया परिवार बसाने का जंजाल मोल लें जबकि पहले ही अनेकों समूह सेवा-सहायता की माँग के लिए हाथ पसारे खड़े हैं।

प्रश्न यह नहीं कि अपना निजी परिवार बसाया जाय या जो पहले से ही विद्यमान हैं, उनकी सेवा-सहायता में लगा जाय। यह अपनी सूझ-बूझ के ऊपर निर्भर है और अपनी परिस्थितियों के ऊपर भी। प्राचीनकाल में परिव्राजक अविवाहित रहते थे और गुरुकुल चलाने वाले उपाध्यायों को उस सुविस्तृत कार्य के लिए सहधर्मिणी के सहयोग की आवश्यकता पड़ती थी। यह अपनी मनःस्थिति और परिस्थिति पर निर्भर है कि कौन किस प्रकार का जीवनयापन करे, पर इतना निश्चित है कि हर किसी को समुदाय के बीच ही रहना पड़ता है। सन्तों के भी अपने-अपने वर्ग, संगठन और आश्रम होते हैं। वे मिलजुल कर ही किसी प्रयोजन को पूरी तरह सम्पन्न कर पाते हैं।

एकाकी व्यक्ति कितना ही समर्थ एवं सुयोग्य क्यों न हो अपने स्तर का सहकार एकत्रित किये बिना कोई बड़ा काम नहीं कर सकता। अकेला चान भाड़ नहीं फोड़ सकता। एक चावल की खिचड़ी नहीं पक सकती, एक ईंट की मस्जिद नहीं चुनी जा सकती है। एक हाथ से ताली नहीं बजती, एक पहिये की गाड़ी नहीं चलती। संगठन हर बड़े काम के लिए खड़ा करना पड़ता है। यहाँ तक कि सामान्य जीवनयापन के लिए भी कईयों के समूह में रहना आवश्यक है। आदान-प्रदान का उपक्रम इसी आधार पर बनता है, शक्ति के उद्भव का यही सुनिश्चित आधार भी है। ईसा, बुद्ध, गाँधी, राम, कृष्ण आदि से लेकर सन्त समुदायों तक को अपने स्तर के लोगों को ढूँढ़ना, उभारना, निखारना और संघबद्धता अपनाने के लिए सहमत करना पड़ा था। विषय-निजी निर्वाह ही उच्चस्तरीय आदर्शों के निर्वाह का तारतम्य बिठाना, हर हालत में समुदाय में सम्मिलित होने या अनेकों को आमन्त्रित करके एकजुट होने की प्रक्रिया है। हर हालत में सहकारिता आवश्यक है, सांसारिक व्यवस्था से लेकर निर्माण कार्यों में इसकी महती आवश्यकता पड़ती है। इस तथ्य को समझते हुए हर किसी को सहकारी जीवन की उपयोगिता समझनी चाहिए और इस कला का अभ्यस्त होना चाहिए कि सामूहिकता को चरितार्थ करने के लिए किस रीति-नीति को अपनाया जाय और उसे सुव्यवस्थित कैसे बनाया जाय ?

सहकारिता में सुविधा भी, सफलता भी

एकता, संगठन, सहकारिता, पारिवारिकता लगभग मिलते-जुलते शब्द हैं, इनकी उपेक्षा करके न सुख-चैन से रहा जा सकता है और न प्रगति का कोई कहने लायक सरंजाम जुट सकता है। अस्तु, हर व्यक्ति को न केवल इस तन्त्र का महत्व समझना चाहिए वरन् उसके उपयोग का यथासम्भव पूरे उत्साह के साथ प्रयत्न भी करना चाहिए।

घर-परिवार से इसका शुभारम्भ होता है, परिवार का अस्तित्व हर किसी के जन्म से पहले ही बना हुआ होता है। बालकों को यही सिखाया जाता है कि सामर्थ्य और बुद्धि का समुचित विकास न होने की स्थिति में वे बड़ों का अनुशासन मानें, उनका सहयोग करें और इस प्रकार रहें, जिससे उन्हें अधिक दुलार मिल सके और वे किसी के लिए भारी न पड़ें। यही आरम्भिक शिष्टाचार आजीवन निभाना पड़ता है। कितने ही व्यक्ति कई बातों में अपनी अपेक्षा अधिक कुशल, अनुभवी एवं समर्थ होते हैं, उनके साथ सहयोग बरतने में लाभ ही लाभ है। बच्चे इसी आधार पर लाभान्वित होते हैं। आयु तथा अन्य अनेक विषयों में मनुष्य कितनी ही बातों में दूसरों से पिछड़ा हो सकता है ? इस कमी की पूर्ति के लिए अध्ययन-अध्यापन स्तर का क्रम अपनाया जाता है। साहित्य, कला, इतिहास आदि अन्य उपाय भी ज्ञान वृद्धि के हैं, इनका लाभ देने और लाभ लेने की परम्परा अबकी अपेक्षा और भी अधिक उत्साह के साथ चलने की आवश्यकता है। ध्यान इतना ही रखा जाना चाहिए कि कोई दिग्भ्रान्त व्यक्ति अपने बड़प्पन का रौब जताकर अन्य भावनाशीलों को भटकाने में सफल न होने पाये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संयुक्त परिवार जीवनचर्या की आरम्भिक आवश्यकता है। बड़े यदि छोटों को दुलार, मार्गदर्शन और सहयोग न दें तो उनका प्रगति पथ पर अग्रसर होना तो दूर जीवित रहना तक कठिन हो जाय। औचित्य यह है कि जिस परिवार से सहयोग पाकर समर्थ बना गया है उसे सुखी, स्वावलम्बी, समुन्नत बनाने के लिए अपनी अभिवृद्धि के साथ-साथ योगदान बढ़ाते चला जाय। पितृऋण की मुक्ति इसी को कहते हैं। बचपन की तरह बुढ़ापा भी असमर्थता से जुड़ जाता है, बालकों की तरह वृद्धों को भी सहायता की आवश्यकता होती है। छोटे भी अपने से बड़ों से सहयोग की अपेक्षा करते हैं, बराबर वाले भी आदान-प्रदान की अपेक्षा रखते हैं—पारिवारिकता का तकाजा यही है। नया परिवार बसाने में जब तक उतावली न बरती जाय जब तक कि पिछले परिवार को सुविकसित-स्वावलम्बी न बना लिया जाय। यह कार्य इतना बड़ा और विस्तृत है कि यदि कोई समझदार व्यक्ति अपना विवाह न करे और प्रस्तुत परिवार को ही समुन्नत बनाने में लगा रहे तो यह उसकी दूरदर्शिता ही होगी।

जिन्हें नया परिवार बसाना है, विवाह करना है उन्हें भी इतना ध्यान तो रखना ही चाहिए कि आजीविका उपार्जन कर सकने योग्य होने के उपरान्त मात्र पति-पत्नी तक ही शौक-मौज में निरत-सीमित नहीं हो जाना चाहिए। जिनके सहयोग से अपनी समर्थता सम्भव हुई उनकी ओर से सर्वथा मुँह मोड़ लेना कृतघ्नता भी है और अनैतिकता भी। नये उत्साह में, नई उपलब्धि में, नई कमाई में प्रायः यही भूल होती है। समय और धन का उपयोग दो तक सीमित रहे तो अधिक असुविधा बन पड़ती है, लोग उसी ओर ढुलक जाते हैं। फलतः समूचा परिवार घाटे में रहता है, यह एक प्रकार का प्रतिभा पलायन है। अपने देश में उच्च शिक्षा प्राप्त करने में जनता का प्रचुर धन खर्च कराने के उपरान्त विदेश में जा बसने पर स्वयं तो अधिक सुविधा उपार्जित कर ली जाती है, पर जिस परिवार ने, जिस देश ने उन्हें सुयोग्य बनाया था उसके लिए प्रतिदान कुछ भी नहीं मिल पाता, इसलिए प्रतिभा पलायन की भर्त्सना होती रहती है। यही बात उन पर भी लागू होती है, जो कमाने योग्य होते हैं, वे अपनी सुविधा ही सब कुछ मान लेते हैं और जिनका ऋण सिर पर चढ़ा था उन्हें अँगूठा दिखा देते हैं।

संयुक्त परिवार में नैतिकता का निर्वाह अधिक अच्छी तरह बन पड़ता है। सामाजिकता इस छोटे क्षेत्र में विकसित होकर सम्बन्धियों, पड़ोसियों और परिचितों को प्रभावित करती है। यह अच्छी परम्परा है और इसमें कमाने और बिना कमाने वाले सभी की गाड़ी न्यायोचित ढंग से खिंचती चली जाती है और किसी भी वर्ग को पिछड़ी स्थिति में पड़े रहने का दुःख सहन नहीं करना पड़ता, यही उचित है और यही आवश्यक। संयुक्त परिवार प्रथा में मुँह मोड़ लेने के उपरान्त पाश्चात्य देशों में बालकों, वृद्धों और पिछड़ों को अपने भाग्य पर अवलम्बित रहकर बुरे दिन गुजारने पड़ रहे हैं। यह प्रचलन जहाँ भी चलेगा वहाँ दुर्दिन देखने पड़ेंगे।

परिवार का विस्तार इतना होना चाहिए, जिसकी सुव्यवस्था भली प्रकार बन सके। यह एक-दो पीढ़ियों तक ही चल पाता है। बाद में सदस्य संख्या अधिक बढ़ जाने पर उन्हें छोटे टुकड़ों में विभक्त होना पड़ता है। निर्वाह, भोजन, देखभाल, कर्तव्यों का परिपालन सीमित क्षेत्र में ही बन पड़ता है, इसलिए अपनी स्थिति के अनुरूप संयुक्त परिवार भी सीमित सदस्यों के ही होने चाहिए।

सहकारिता के अधिक लाभों को देखते हुए विचारशील वर्ग में पारिवारिकता को भी सहकारिता के आधार पर नई पद्धति से गठित किया जा रहा है। इसे 'लार्जर फैमिली' कहा जाता है और 'वृहत्तर परिवार' का नाम दिया जाता है—यह प्रयोग जहाँ भी हुए हैं सफल रहे हैं।

एक संगठन के अन्तर्गत उसके सदस्यों के लिए एक जगह सेना की छावनी जैसा, छात्रावासों जैसा संयुक्त भोजनालय चले तो इसमें समय, श्रम और धन की भारी बचत होती है। छोटे परिवार के लिए एक या कई महिलायें मात्र भोजन पकाने, सफाई करने में लगी रहें तो उनकी सामर्थ्य का यह अत्यन्त दुरुपयोग हुआ। शेष खाली बचे समय का ही अपव्यय ही हुआ—यह बुरी बात है। आर्थिक, सामाजिक और राष्ट्रीय सभी दृष्टियों से छोटे परिवार हानिकारक बैठते हैं। अपवाद रूप में वे भी तभी ठीक बैठते हैं, जब होटल में रहने और वहीं खाने की व्यवस्था बने, उसमें भी सामाजिकता का अभाव ही रहता है।

वृहत्तर कुटुम्ब में, उस संगठन के सदस्यों के लिए एक ही जगह भोजन बनने, कपड़ों की धुलाई का तन्त्र एक रहने, छोटे बच्चों को खिलाने और पढ़ाने के लिए एक व्यवस्था रहने से सभी को सुविधा रहती है। कुछ को इस व्यवस्था के अन्तर्गत स्वतन्त्र काम मिलता है, शेष सब लोगों के लिए पर्याप्त समय खाली बचता है, जिसका उपयोग अन्य अधिक महत्वपूर्ण कार्यों में हो सकता है। अगले दिनों समझदारी और सुव्यवस्था का तकाजा यही होगा कि ऐसे मुहल्ले या गाँव बसें, जिनकी घरेलू व्यवस्था एक छोटे तन्त्र के अन्तर्गत सँभाली जाती रहे और शेष सभी वयस्क एवं समर्थ लोग अधिक महत्वपूर्ण कार्यों में संलग्न रहकर अपने समाज की अधिक प्रगति कर सकने का सुयोग बना सकें। एक बच्चे की देखभाल पर एक महिला घिरी रहे, मर्द का खाना पकाने भर में उसकी दिनचर्या खप जाय—यह प्रचलन किसी के लिए भी, किसी भी प्रकार सुविधाजनक नहीं हो सकता। अस्तु, यह बदलना ही होगा। वृहत्तर परिवारों की सहकारी समिति बनाकर रहने में ही हर किसी को, हर दृष्टि से अधिक लाभ मिल सकेगा। इस परिपाटी को वर्तमान में 'कम्यून' नाम दिया गया है, इस मान्यता को अपनाने वाले 'कम्युनिस्ट' कहलाये। अब तो उसका स्वरूप राजनैतिक बन गया है, पर जब कभी लोगों का ध्यान जीवन-निर्वाह पद्धति को अधिक सुविधाजनक बनाने की ओर जायेगा तब उन्हें वृहत्तर परिवार की योजना ही बनानी पड़ेगी। मिल-जुलकर रहने की सामाजिकता का, अनुशासन और संयम का निर्वाह भी इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत हो सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आर्थिक क्षेत्र में अधिक सुविधापूर्वक अधिक लोगों के लिए समान स्तर की आजीविका उपलब्ध कराने के लिए सहकारी समितियों का गठन किया जाता है। सहकारी स्टोरों पर शुद्ध खाद्य पदार्थ मिलने और अन्य आवश्यक वस्तुयें उचित मूल्य पर सही स्तर की मिलने की सुविधा बन सकती है। 'सुपर मार्केट' सफल हो रहे हैं, उनकी उपयोगिता और सुविधा हर किसी को आकर्षित एवं प्रभावित कर रही है। यदि ऐसे स्टोर गाँव-गाँव, मुहल्ले-मुहल्ले खुल सकें तो आज जो महँगे मोल में खराब चीजें मिलने की उपभोक्ताओं की शिकायत रहती है—वह न रहे। अनेक स्थानों पर भटकने की अपेक्षा लोग एक ही स्थान पर सभी आवश्यक वस्तुयें खरीद सकें और मूल्य भी औचित्य की सीमा के अन्तर्गत ही देना पड़े।

कितने ही प्रकार के छोटे-बड़े व्यवसाय और निर्माण जगह-जगह चलते हैं, उनका लाभांश व्यक्ति विशेष को ही मिलता है। दृष्टिकोण सीमित रहने से कर्मचारियों को सदा काम और उचित वेतन मिलता रहे, इसका प्रबन्ध नहीं हो पाता। यदि सहकारी समिति के अन्तर्गत उसके संचालक न केवल उत्पादन का वरन् उपभोक्ताओं और श्रमिकों का हित-साधन भी जोड़कर रखें तो निश्चय ही जहाँ सम्बन्धित लोगों को अधिक सुविधा रहेगी, वहाँ नये-नये उद्योगों की शृंखला भी इस आधार पर चल सकती है। कुटीर उद्योग अगले दिनों देश की बेकारी, बेरोजगारी और गरीबी की समस्या का हल करेंगे। उनका सुव्यवस्थित संचालन सहकारिता के आधार पर ही संभव है। कच्चा माल देना और बना माल खरीदकर मण्डियों में खपाना सहकारी संगठनों के आधार पर ही सम्भव हो सकता है। पूँजी की आवश्यकता पड़ने पर उन्हें बैंकों द्वारा आवश्यक ऋण भी अधिक सुविधापूर्वक मिल सकता है। इस प्रकार बिखरे देहातों में कुटीर उद्योगों का विस्तार भी सहकारिता को अपनाये बिना सम्भव नहीं।

बड़े व्यापारों में भी अब लिमिटेड कम्पनियों के आधार पर सहकारी संस्थायें ही एकमात्र आधार रह गई हैं। शेयर खरीदने वाले भी अपनी पूँजी का अच्छा लाभ कमा लेते हैं और देश में नये व्यवसाय बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध होते हैं। व्यक्ति विशेष निजी लाभ के लिए दिवालिया निकालने जैसी अवांछनीयता भी बरत सकता है, पर सहकारी अर्थ संस्थानों में संचालक समितियों के तत्वाधान में ऐसी भूलें कम ही होती हैं।

निजी उद्योग अपनी विश्वसनीयता अधिक लालच के वशीभूत होकर गँवाते चले जा रहे हैं। ऐसी दशा में प्रामाणिकता, सामाजिकता और सफलता बनाये रखने के लिए सहकारी व्यवसायों को बड़े रूप में चलाना ही उपयोगी रह जायेगा। तब यह कठिनाई न रहेगी कि छोटे व्यवसाय में बड़ा परिवार चलाने के लिए उसमें अनौचित्य का समावेश करके अधिक लाभ कमाने की बात सोचनी पड़े।

छोटे उद्योग चलाने वाले यदि मिल-जुलकर एक संयुक्त तन्त्र बना लें तो उन्हें पूँजी की, मार्केट ढूँढ़ने की कठिनाई का सामना न करना पड़े। किसानों की छोटी जोतें मिलकर एक बड़ा संयुक्त फार्म बना लें तो उनके सभी भागीदारों को अपेक्षाकृत अधिक लाभ मिलेगा और अधिक निश्चिन्तता रहेगी। पशुपालन अपने देश का एक बड़ा उद्योग है, पर पशु शक्ति का, उनके उत्पादनों का सदुपयोग न बन पड़ने से वह भी घाटे में ही चला जाता है। पशुओं का स्तर न बढ़ पाने के कारण वे पालने वालों के लिए उत्साहवर्धक भी नहीं रह जाते। ऐसी दशा में यदि बड़े पैमाने पर पशुपालन चले तो उनके दूध, ऊन, गोबर आदि का अधिक लाभदायक उद्योग चल सकता है। चारे के बड़े उत्पादन केन्द्र बन जाने से उनके दुर्बल, कमजोर रह जाने की शिकायत भी न रहे। पशुओं द्वारा परिवहन भले ही अमेरिका जैसे धनवान देशों के लिए व्यर्थ हो गया हो, पर भारत जैसे निर्धन देश में अभी भी माल ढोने और वाहनों का उपयोग करने की पूरी गुंजायश है। वे ट्रक, ट्रैक्टर, बस आदि का किसी सीमा तक अभी भी मुकाबला कर सकते हैं, पर यह सब एकाकी प्रयोगों से नहीं—मिल-जुलकर की जाने वाली व्यवस्था से ही सम्भव है।

सभी जानते हैं कि स्कूल में भर्ती करके विद्यार्थी का पढ़ना सुविधाजनक पड़ता है। यदि हर विद्यार्थी के लिए पढ़ाई की अलग-अलग व्यवस्था की जाय तो वह अत्यधिक कठिन पड़ेगी। ठीक इसी प्रकार उद्योग व्यवसाय के क्षेत्र में संयुक्त शक्ति वाले सरंजाम जुटाये जा सकें तो आर्थिक और सामाजिक पिछड़ेपन से बहुत हद तक छुटकारा पाया जा सकता है। जहाँ पूँजी का, साधनों का अभाव नहीं वहाँ तो कोई एकाकी व्यक्ति भी अपना व्यवसाय सफलतापूर्वक चला सकता है, पर जहाँ साधनों का, दक्षता का अभाव है वहाँ तो साझेदारी ही अभीष्ट प्रयोजन सिद्ध कर सकती है, समाजवाद इसी चिन्तन पद्धति का नाम है।

एक नाव में इकट्ठे बैठकर लोग बड़ी नदियों को भी आसानी से पार कर लेते हैं, हर व्यक्ति का अलग-अलग तैरकर पार होना कठिन है। इस तथ्य को जीवन के हर क्षेत्र में प्रयुक्त किया जाना चाहिए। व्यक्तिवादी संकीर्णता की प्रवृत्ति को स्वार्थपरता कहा जाता है, स्वार्थ को नैतिक दृष्टि से तो हेय माना ही गया है, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से भी वह घाटे का सौदा है। चोर-डाकू तक गिरोह बनाकर ही सफल हो पाते हैं। एकाकी स्थिति में तो उनके लिए भी कुछ करते-धरते बन पड़ना कठिन है। अतः अधिक लाभप्रद और अधिक सफल प्रयोगों के लिए सहकारिता का दृष्टिकोण अपनाना और वैसी ही व्यवस्था बनाना और भी अधिक आवश्यक हो जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहकार से ही उद्धार

समान विचारों और समान क्रिया-कलापों के लिए सम्मिलित चिन्तन और सामूहिक रीति-नीति अपनायें तो बौद्धिक और भौतिक दोनों ही दृष्टि से प्रगति का अवसर मिलता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए भारतीय समाज संरचना में वर्णाश्रम व्यवस्था को प्रमुखता दी गयी है।

अध्यापक, विचारक, साहित्य-सृजेता, उपदेशक, समाज-सेवी, सत्प्रवृत्ति संवर्धन में निरत स्तर के लोग ब्राह्मण कहे जाते हैं। वे यों एकाकी रहकर भी कुछ न कुछ तो करते ही रह सकते हैं, पर यदि उनका सुव्यवस्थित समूह-संगठन हो, तो एक-दूसरे के सहयोग एवं आदान-प्रदान से उनकी विधा और भी अधिक समुन्नत हो सकती है। घर का वातावरण उसी स्तर का बने, तो बच्चे को भी उस पैतृक परम्परा का लाभ अनायास ही मिल सकता है। एक के बाद दूसरी पीढ़ी को भी अधिक प्रगति का अवसर मिल सकता है। संभवतः इसी आधार पर ब्राह्मण वर्ग के बीच घनिष्ठता और अधिक सान्निध्य रखने को ध्यान में रखते हुए वह वर्ग बना होगा।

यही बात क्षत्रिय, वैश्य, श्रमजीवी आदि के सम्बन्ध में भी लागू होती है। कई जातियाँ फौज और पुलिस में रहकर अपना कौशल जितना अच्छी तरह दिखा पाती हैं, उतना अन्य कार्यों में सफल नहीं होतीं। व्यवसाय क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने वालों में मारवाड़ी, पंजाबी अधिक सफल देखे गये हैं। इसी प्रकार कारीगर वर्ग के परिवारों में वह कौशल आरम्भ से ही सीखने को मिलता है इसलिए अधिक सफल होने की गुंजायश उनमें रहती है।

पिछले दिनों जब समाज की संगठना व्यवसायों के आधार पर संगठित होने की थी, तब वर्णाश्रम धर्म का सहज प्रचलन था, पर अब स्थिति बदल गयी है। पिता का—पूर्वजों का व्यवसाय उसके वंशज करें ही, यह अनिवार्य नहीं रहा। अब इच्छानुसार व्यवसाय अपनाने की छूट है। ऐसी दशा में जन्म-जाति की भी कोई तुक नहीं रह गयी, फिर भी कर्म-कौशल में यह तथ्य यथावत् है कि यदि एक प्रकृति या प्रवृत्ति के लोग अधिक घनिष्ठ होकर रहें, तो उन्हें सुविधा भी अधिक रहेगी और सफलता भी अधिक मिलेगी। इन दिनों जन्म के आधार पर तो नहीं, पर वर्ण का मूल आधार 'व्यवसाय' अब भी यह अपेक्षा रखता है कि उस वर्ग के लिए पारस्परिक घनिष्ठता का अनुपात अधिक रखें। इससे उनका कौशल भी निखरता है और हितों के संरक्षण का भी अधिक सुयोग बनता है। अब प्रायः सभी प्रगतिशील क्षेत्रों में वर्गों के आधार पर सभायें, समितियाँ, यूनियनें तो प्रसिद्ध हैं ही। व्यापारी भी अपने-अपने व्यवसाय के दायरे में सभा-समितियाँ बनाते हैं।

धार्मिक मान्यताओं के अनुरूप सम्प्रदाय बने हैं। विद्वानों के विद्वत्-परिषदों का गठन होता रहता है। कलाकार भी अपने वर्ग गठन करते हैं। विकृतियाँ तो हर क्षेत्र में प्रवेश करतीं और सुधरती रहती हैं। इस दृष्टि से इन संगठनों में भी कुछ न कुछ, कहीं न कहीं गड़बड़ियाँ देखी जा सकती हैं। उनके बीच पारस्परिक विग्रह भी स्वार्थ को लेकर होता रहता है। इतने पर भी संगठन की उपयोगिता कम नहीं होती। उनका प्रचलन बढ़ता ही जा रहा है। यदि उनमें टकराव की विसंगतियाँ न हों, तो उनसे लाभ भी है। मिल-जुल कर सोचने, काम करने और प्रचलन में सुधार-परिवर्तन करने से अन्ततः प्रगति की संभावनायें ही बढ़ती हैं। यह तथ्य बताते हैं कि सामाजिक प्रगति में, कौशल की अभिवृद्धि के क्षेत्र में संगठन की कितनी भूमिका हो सकती है ? इस तथ्य को एक प्रकार से सार्वभौम मान्यता मिल चुकी है, मिलती जा रही है।

शासन क्या है ? एक प्रकार से प्रजाजनों की बहुमुखी व्यवस्था बनाने का संगठन ही है। समाज क्या है ? एक क्षेत्र में रहने वाले एक प्रकार की मान्यता वालों का एकत्रीकरण ही है। यह विधा अब सार्वभौम रूप धारण कर चुकी है। राष्ट्रसंघ की संगठना यही है। भविष्य की कल्पनाओं में यह मान्यता सम्मिलित होती जाती है कि समस्त विश्व अगले दिनों एकता और समता के केन्द्र पर केन्द्रित होकर रहेगा।

एक क्षेत्र में किसी वस्तु का उत्पादन बड़ी मात्रा में होता है, किन्तु दूसरे क्षेत्र में उसका अभाव रहने से बाहर से मँगाने की आवश्यकता पड़ती है। यह परिवहन क्रम प्रायः हर क्षेत्र में छोटे-बड़े रूप में चलता ही रहता है। इसके लिए ढुलाई का सरंजाम भी जुटाना पड़ता है। यह कार्य इन दिनों व्यक्तिगत रूप से ही सम्पन्न होता है। व्यक्तिगत स्वार्थ की जहाँ भी प्रमुखता रहती है, वहाँ अधिक मुनाफा कमाने की प्रवृत्ति ही सहज पनपती है। आवागमन के सिलसिले में नकली चीजों की मिलावट कर लेना भी सरल पड़ता है। इन गड़बड़ियों को रोकने के लिए सामूहिकता का क्रियान्वयन सरल पड़ता है। मिल-जुलकर चोरी, बेईमानी करने में कम गुंजायश रहती है। भेद जल्दी-फूटता है, जबकि एकाकी व्यवसाय में निरत एकाकी व्यक्ति अपनी चालाकी छिपाये भी रह सकता है। साथ ही लागत मूल्य की जानकारी न रहने पर कीमतें भी खरीदारों से मनमानी वसूल की जा सकती हैं। उपभोक्ताओं पर यह दुहरी मार न पड़े, इसके लिए आवश्यक है कि परिवहन व्यवसाय में सामूहिकता का समावेश किया जाय, उसे सहकारिता के सहारे चलाया जाय। तब यदि कुछ लाभांश रहता होगा, तो वह उस सहकारी समूह में बँट जाया करेगा और एक के स्थान पर अनेक लोग लाभान्वित होंगे। सही दाम पर सही चीज मिलने की सम्भावना तो निश्चित रूप से रहेगी ही।

देखा गया है कि बड़ी पूँजी वाले किसी व्यवसाय पर अपना अधिकार जमा लेते हैं। उनकी प्रतिस्पर्द्धा में छोटी पूँजी वाले ठहर नहीं पाते। ऐसी दशा में अनेकों को काम या लाभ मिलने का द्वार रुकता है और एकाधिकार पनपता है। इस कुप्रचलन को रोकने के लिए आवश्यक है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि वस्तुओं की खरीद, बिक्री, ढुलाई, भण्डारण जैसे सभी कार्यों में सहकारिता का समावेश हो, यह उपभोक्ता के हित में है। सीमित मुनाफा, सही चीज और ढुलाई व्यवसाय में साझेदारी की प्रवृत्ति का बढ़ना हर किसी के हित में है। ऐसे प्रयोजनों के लिए मिल-जुलकर पूँजी का एकत्रीकरण भी कठिन नहीं रहता। सहकारी संगठनों को सरकारी ऋण भी सरलतापूर्वक मिल जाता है। इस प्रकार एकाधिकार का विकेन्द्रीकरण होना एक अच्छी परम्परा की शुरूआत है।

भारत में पशुधन की कमी नहीं, पर बैल, भैंसों, घोड़ों, ऊँटों की खेती में कम समय का काम मिलने से वे शेष समय में बेकार बैठे रहते हैं। खर्च न पुजाने से उनकी उपयोगिता घटती है और कसाईखानों की गोटी लाल होती है। पशुधन की संख्या तथा उपयोगिता बढ़ी रहने से गोबर की जो बहुमूल्य सम्पदा हस्तगत होती है, उससे भूमि की उर्वरता बढ़ती है। यदि वे घटेंगे तो ट्रक, ट्रैक्टर जैसे महँगे वाहनों के आधार पर ढुलाई करानी पड़ेगी, जो देहाती क्षेत्र के लिए तो और भी अधिक महँगी होती है। कई बार तो कच्चे रास्ते होने के कारण थोड़ा काम होने पर खर्चीले वाहन उपलब्ध भी नहीं होते। इन सभी कठिनाइयों का निराकरण यही है कि पशु वाहनों के माध्यम से ढुलाई कराई जाय। यह एक स्वतन्त्र एवं सुविस्तृत उद्योग है, जो व्यक्ति विशेष के हाथों में न रहकर सहकारी विधा से चलने में अधिक विस्तार होने तथा प्रामाणिकता बनी रहने की सम्भावना है। पशुपालन भी इस आधार पर अधिक सुनिश्चित होगा और उसके द्वारा उपलब्ध होने वाला खाद उर्वरता की अभिवृद्धि में सहायक होने पर राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था में बढ़-चढ़कर योगदान ही दे सकेगा।

सरकारी निर्माण कार्य हर साल बड़े पैमाने पर होते हैं। इनके ठेके बड़े साधन वाले अमीरों को मिलते हैं। मोटा लाभ भी वे कमाते हैं। इस प्रचलन में रिश्वत की भी पूरी गुंजायश रहती है, खराब माल लगाने और कमजोर निर्माण बन पड़ने की भी। इसके स्थान पर यह कहीं अच्छा है कि स्थानीय या क्षेत्रीय सहकारी समितियाँ अपने-अपने इलाके के निर्माण कार्यों के ठेके स्वयं ही लें और स्वयं ही मिल-जुलकर उन्हें सम्पन्न करें। ऐसी दशा में दुर्बलों, महिलाओं और वृद्धों को भी उनकी शक्ति के अनुसार थोड़ा-थोड़ा काम मिल सकता है। प्रतिभा और प्रामाणिकता की प्रतिस्पर्धा सभी सहकारी समितियों के बीच ठनी रहने से काम किफायत से भी होगा और काम भी अधिक लोगों को मिलेगा, जबकि आमतौर से किसानों और मजदूरों के पास कुछ महीने ही पूरा काम मिलने के रहते हैं। शेष समय ठाले-बैठे गँवाना पड़ता है। यदि सरकारी निर्माण कार्य भर सहकारी समितियों के द्वारा किया जाने लगे, तो देहाती क्षेत्र की गरीबी और बेकारी के निराकरण में असाधारण योगदान मिल सकता है। यहाँ तक कि ट्रकों की प्रतिस्पर्द्धा में ग्रामीण बैलगाड़ियों का धन्धा भी चल निकलने में उपार्जन एवं सुविधाओं के कितने ही नये स्रोत खुल सकते हैं ?

बड़ी जोतों की बात दूसरी है, पर जिनके पास थोड़ी-थोड़ी जमीन है, उतने भर के लिए जो हल, बैल एवं सिंचाई के साधन नहीं जुटा सकते, उनके लिए सुविधा इसी में है कि मिल-जुलकर अपना काम चलायें। बारी-बारी से बैलों तथा सिंचाई के साधनों का उपयोग करते हुए वे अधिक सुविधा एवं अधिक उत्पादन का लाभ उठा सकते हैं।

सहकारी क्षेत्रों में आर्थिक लाभ के कितने ही काम चल पड़ने संभव हैं ? अब कपड़ा खरीदकर उसे मनमर्जी के डिजायन का सिलवाना केवल अमीर लोगों या मनचलों के लिए ही सम्भव रह गया है। गरीबों को उस अनुकरण में काफी झंझट खड़ा रहता है। 'रेडीमेड' कपड़े ही सस्ते पड़ते हैं। बजाज की, दर्जी की दुकानों पर चक्कर लगाते रहने की अपेक्षा आवश्यक वस्तुयें हाथों-हाथ खरीदी जा सकती हैं। रेडीमेड कपड़ों के फर्मे कटे हुए होने पर सामान्य घरों की महिलायें भी उनकी सिलाई करती रह सकती हैं। इस प्रकार यह सहकारी उद्योग सस्ते मोल में बिना समय गँवाये आवश्यक वस्तुयें उपलब्ध करा सकता है और सिलाई का धन्धा भी घर-घर आजीविका देने में सफल हो सकता है।

ऊपर कुछ एक वस्तुओं एवं व्यवसायों की ओर ही संकेत किया गया है यदि बारीकी से दृष्टि पसारकर इस संदर्भ में विचार किया जाय, तो प्रतीत होगा कि ऐसे अनेकों काम हैं, जिन्हें सहकारी क्षेत्र में लिया, बढ़ाया या सम्मिलित किया जा सकता है। इन दिनों तो सम्पत्तिवानों और चतुर विद्वानों से ही आर्थिक लाभ उठाते बन पड़ता है और थोड़ों को समृद्धि मिलने भर से सन्तुष्ट होना पड़ता है। सहकारिता काम का विस्तार और वितरण का दुहरा लाभ दे सकती है।

सबसे बड़ी बात मिल-जुलकर काम करने की प्रवृत्ति का उभरना है। इस दिशा में बढ़ा हुआ उत्साह न केवल आर्थिक लाभ का द्वार खोलता है, वरन् पारस्परिक घनिष्ठता, सद्भावना बढ़ाने की दिशा में भी कारगर सिद्ध होता है। व्यक्तिवाद के स्थान पर समूहवाद की प्रतिष्ठापना करने में ही सब का सब प्रकार कल्याण है। स्वस्थ समाज की संरचना इसी आधार पर हो सकती है। उसके लिए आरम्भ में मिल-जुलकर आर्थिक सुविधा सम्पादन को प्रमुखता दी जाय, तो आगे अन्यान्य क्षेत्रों में भी प्रगतिशीलता के बढ़े कदम उठ सकते हैं। कहना न होगा कि मिल-जुलकर काम करने और हिल-मिलकर बाँट खाने में ही सर्वतोमुखी प्रगति का रहस्य छिपा पड़ा है।

प्रगतिशीलता कार्यक्षेत्र में उतरे

आमतौर से मनुष्य अपनी बुद्धि, समृद्धि, दक्षता एवं श्रमशीलता आदि का उपयोग मात्र छोटी परिधि तक सीमित स्वार्थपरता के लिए ही करते रहते हैं। इससे अधिक कुछ बनता है तो दौलत बढ़ाने में, ठाठ-बाट दिखाने में, उत्तराधिकारियों को कुबेर से धनी और इन्द्र-सा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बड़प्पन दिलाने में लगे रहते हैं और भी जो कुछ बच जाता है उसे फिजूलखर्ची में गँवा देते हैं। भोजन, वस्त्र और मकान जैसी मौलिक आवश्यकतायें यदि औसत नागरिक स्तर की स्वीकार कर ली जायें तो जनसाधारण के लिए यह संभव हो सकता है कि अपने वैभव, श्रम और कौशल का एक महत्वपूर्ण भाग बचा ले और उसे उन कार्यों में लगाये, जिनसे सार्वजनीन स्नेह, सद्भाव की अभिवृद्धि होती, सत्प्रवृत्तियों के प्रचलन में योगदान मिलता हो।

गुजारा ठीक तरह चल पड़ने पर कई व्यक्ति अधिक श्रम करने की आवश्यकता नहीं समझते, आराम के साथ समय काटना चाहते हैं। आयु ढलने पर लोग सोचने लगते हैं कि जो कुछ करना था सो कर लिया, अब बैठे-ठाले मौज के दिन काटने चाहिए। नौकरी से रिटायर होने का अर्थ भी यही माना जाता है। लड़के-बच्चे कमाने-धमाने लायक हो जायें और समय पर रोटी मिल जाय तो समझा जाता है कि जो करना था वह कर लिया, अब तो मौज करने के दिन हैं। इधर-उधर उठ-बैठकर, घूम-फिर कर जिन्दगी के दिन काट लेने चाहिए।

इस क्षुद्रता से घिरे-बँधे हेय दृष्टिकोण से हर किसी को अपना पीछा छुड़ाना चाहिए। जो इस प्रकार सोचते हों उन्हें कूपमण्डूक बनने, गूलर के भुनगों की तरह सीमित दायरे में किसी प्रकार दिन काटने से रोकना चाहिए। शास्त्र का वह उद्बोधन ध्यान में रखना चाहिए, जिसमें कहा गया है कि 'सौ हाथों से कमा और हजार हाथों से (सत्कर्मों में) खर्च कर।'

कन्या का विवाह करने, बीमारी का इलाज कराने, मुकदमों से निपटने, कर्ज चुकाने जैसे आवश्यक कार्य सिर पर आ जाते हैं तो मनुष्य इनकी पूर्ति के लिए पूरी-पूरी चेष्टा करते हैं। गम्भीरतापूर्वक सोचते हैं, पूरी भाग-दौड़ करते हैं, साधन जुटाने में कोर-कसर नहीं रहने देते। इसी स्तर का एक और कार्य सामने खड़ा देखना चाहिए, वह है—समाज के स्तर को ऊँचा उठाना, सत्प्रवृत्तियों को सुविकसित करना। इस मार्ग में जो अवांछनीयतायें आड़े आती हैं उन्हें उखाड़कर निरस्त करना।

एकाकीपन की सीमा में सीमित हो जाना एक बौद्धिक ओछापन है, भावना क्षेत्र का अपराध भी। कारण कि मनुष्य को जो कुछ प्राप्त होता है उसमें निज के पुरुषार्थ का तो एक सीमित अंश ही रहता है, शेष तो अन्यान्यों के सहयोग से ही उपलब्ध हुआ होता है। इस प्रवाह-परम्परा को न तो रोका जाना चाहिए और न तोड़ा। पिछड़े और दुःखियारों के बीच रहकर कोई व्यक्ति एकाकी सुविधा सम्पादन से सुखी नहीं रह सकता। मुहल्ले में आग लगी हो तो अपना घर भी सुरक्षित कहाँ रहता है ? गाँव में हैजा फैला हो तो उसके कीटाणु अपने घर पर भी धावा बोल सकते हैं। गुण्डों और अनाचारियों से घिरे रहने पर अपनी भी खैर नहीं, भले ही निजी व्यवहार सज्जनों जैसा ही क्यों न हो ?

उन्नति का अर्थ मात्र शरीर को मोटा बनाना ही नहीं होता वरन् उससे परिवार की, सहकर्मी-सम्बन्धियों की उन्नति जुड़ी हुई है तभी वह समग्र उन्नति कही जायेगी। यदि परिवार में कलह मचा रहता है, रोगों की भरमार हो, दुर्बुद्धि का दौर हो तो फिर कितनी ही खाने-सोने की सुविधा होने पर भी अपने को सुखी नहीं कह सकते ? ठीक इसी प्रकार जिस समाज के साथ हम जुड़े हुए हैं उसे सुखी-सन्तुलित रखे बिना भी गुजारा नहीं। कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों में एक यह तथ्य भी अत्यन्त घनिष्ठतापूर्वक जुड़ा हुआ है कि अपने परिचय एवं प्रभाव क्षेत्र को भी सुखी, समुन्नत और सुसंस्कृत बनाने में भी किसी प्रकार की कमी न रहने दी जाय। भूख पेट में लगती है, पर पेट भरना ही जीवन निर्वाह का निमित्त नहीं हो सकता। भोजन का पचाना, रक्त बनाना और उस माध्यम से विनिर्मित ऊर्जा को समूचे शरीर में भी तो फैलना चाहिए। यदि भोजन पेट की थैली में भरा रहे, आगे न बढ़े तो फिर समझना चाहिए कि प्राण संकट ही बनकर खड़ा होगा।

मानवता की गरिमा, स्थिति, नियति और सम्भावना पर विचार कर सकने वाले हर व्यक्ति की मान्यता यह होनी चाहिए कि अपने अंग-अवयवों की तरह, परिवार के सदस्यों की तरह ही सम्बद्ध समाज को भी सुखी-समुन्नत बनाना अनिवार्य स्तर का कर्तव्य है। उसकी पूर्ति किये बिना कोई न तो आत्मसन्तोष प्राप्त कर सकता है और न जनसम्मान का अधिकारी बन सकता है। अविकसित समुदाय के बीच रहकर कोई श्रेयाधिकारी नहीं बन सकता, भले ही उसने निजी क्षेत्र में कितना ही बड़प्पन क्यों न एकत्रित कर लिया हो ?

किसी की समग्र सफलता के साथ यह प्रश्नचिन्ह भी जुड़ा हुआ है कि उसने अपने सम्पर्क क्षेत्र में प्रगतिशीलता के अभिवर्धन में क्या कुछ योगदान दिया। इस पहेली को अनबूझी स्थिति में नहीं पड़े रहने देना चाहिए। शरीर और परिवार तक ही अपने कर्तव्यों को सीमित न रखकर समाज को भी इसी परिधि में सम्मिलित अनुभव करना चाहिए। अपने उपार्जन में से एक बड़ा अंश सामाजिक उत्कर्ष के लिए भी सुरक्षित रखना चाहिए, लोकमंगल के लिए भी अपनी दक्षता का एक अंश नियोजित किये रहना चाहिए। सबकी उन्नति के साथ अपनी उन्नति को अविच्छिन्न रूप से जुड़ी अनुभव करना चाहिए। अतएव अपना जो उपार्जन, वैभव, बड़प्पन है उसका एक महत्वपूर्ण अंश समाज कल्याण के लिए भी सुरक्षित रखना चाहिए—स्वार्थ के साथ परमार्थ भी समुचित अनुपात में जुड़ा रहना चाहिए।

देखा जाता है कि सार्वजनिक हित के कार्य करने के लिए सरकार से आशा-अपेक्षा की जाती है। इस आधार पर जो बन पड़ता है वह सीमित भी होता है और अधूरा भी, क्योंकि उन्हें करने वाले वैतनिक आधार पर निपटाते हैं। उनका निजी व्यक्तित्व, भाव संवेदना, उत्साह उस सीमा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक जुड़ा नहीं रहता जितना कि किसी परमार्थ परायण पुण्यात्मा का होना चाहिए। ऐसी दशा में उसका अधूरा रहना स्वाभाविक है, कभी-कभी कुछ धनी-मानी भी यशकामना से प्रेरित होकर दान-पुण्य करते और सार्वजनिक हित के कार्यों में हाथ बँटाते देखे गये हैं, पर वह उतने ही क्षेत्र तक या कार्यों तक सीमित रहते हैं, जो उन्हें हाथोंहाथ प्रशंसा उपलब्ध करा सकें। कुछ को देवी-देवताओं की प्रसन्नता ही अभीष्ट होती है ताकि बदले में स्वर्ग सोपान पर भौतिक वरदान उपलब्ध हो सकें—ये सभी उथले आधार हैं और अस्थाई भी।

व्यक्ति और समाज की सर्वतोमुखी प्रगति का ठोस, वास्तविक चिरस्थाई और अनवरत्-अक्षुण्ण उपाय एक ही है कि हर व्यक्ति अपने निजी निर्वाह की तरह समाजोत्थान को भी अनिवार्य कर्तव्य माने और उसके लिए उदारतापूर्वक अंशदान प्रस्तुत करे। यह अपवाद रूप से नहीं वरन् एक सार्वजनिक प्रथा-प्रचलन के रूप में क्रियान्वित होना चाहिए। समय, श्रम, साधन, कौशल एवं चिन्तन का जो जितना बड़ा अंश लोकहित के लिए अनवरत् रूप से नियोजित करता रहे, उसी को यह श्रेय मिलना चाहिए कि उसने मानवी गरिमा को पहचाना और तद्नुरूप नीति-निर्वाह के लिए आवश्यक कर्तव्य निबाहा।

यह प्रकृति इन दिनों सूखी, कुम्हलाई, मरी-मुरझाई दीखती है। होना यह चाहिए कि यह उत्साह जन-जन में जगाया जाय और उसे उल्लास स्तर तक पहुँचाया जाय। सभी को इस अनिवार्यता का बोध रहे।

समाजोपयोगी कार्यों में से कुछ ही सरकार कर पाती है। जितना करती है उसके लिए भी जनता को भारी टैक्स अदा करना पड़ता है। यदि सारे कार्य उसी के जिम्मे रहें तो समूचा उत्पादन उसी में खप जाय और लोगों की साधनशक्ति ही समाप्त हो जाय। उपयुक्त यही है कि लोग स्वयं उत्साहपूर्वक उन कार्यों को अपने प्रयत्न से सम्पन्न करें, जो देखने में सामान्य किन्तु वस्तुतः अति महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए, सफाई के प्रश्न को ही लें, उसे सही स्थिति में न रख पाने के कारण सर्वत्र कुरूपता, असभ्यता दीखती है और बीमारियाँ धीमी गति से पनपकर असंख्यों के अकाल मृत्यु का कारण बनती हैं।

घर के भीतर तो लोग किसी कदर सफाई कर भी लेते हैं, पर बाहर निकलते ही सब ओर गन्दगी का माहौल दीख पड़ता है, उसे साफ करने के लिए पग-पग पर सफाई कर्मचारियों की आवश्यकता प्रतीत होती है, उसे जुटाने के लिए जनशक्ति और धनशक्ति कहाँ से आये ? उपाय एक ही है कि स्वयंसेवी स्तर के व्यक्ति मिल-जुलकर अपने-अपने घर' को स्वच्छ रखने का दायित्व उठावें और उसके लिए नियमित रूप से प्रतिदिन समयदान करें। कचरे का यदि सदुपयोग किया जा सके तो उसे बहुमूल्य खाद में बदला जा सकता है, उससे वनस्पतियों के उत्पादन-अभिवर्धन में भारी सहायता मिल सकती है। गाँधीजी ने सार्वजनिक सेवा में स्वच्छता को प्रथम स्थान दिया था। वे टोली बनाकर आसपास के क्षेत्र में सफाई करने के लिए झाड़ू-टोकरा लेकर निकलते थे और उस प्रदर्शन से जन-जन में यह चेतना जगाते थे कि स्वच्छता पर अधिकाधिक ध्यान देकर सभ्य कहलाने का अधिकारी बनना चाहिए। स्वास्थ्य ही नहीं, सुरुचि से भी इसका सीधा सम्बन्ध है। गली-कूचे, सड़क-नालियाँ, कुओं के इर्द-गिर्द की कीचड़, उथले तालाब अपने समीप से निकलने वालों से पुकार करते हैं कि उन्हें गन्दगी की दुर्दशा से उबारा जाय। इतने सफाई कर्मचारी नियुक्त किया जाना असम्भव है, जिसमें हर गली-कूचे को साफ-सुथरा रखा जा सके। ऐसी दशा में सफाई सेना के रूप में लोकसेवी कार्यकर्ताओं को अपने अभियान की शुरूआत करना चाहिए। दरिद्रता, रुग्णता और पिछड़ेपन का निमित्त कारण आलस्य और प्रमाद है। वह कहाँ-किस रूप में विद्यमान है ? इसे जाँचना हो तो उस क्षेत्र की गन्दगी या सफाई को देखकर सरलतापूर्वक निष्कर्ष निकाला जा सकता है। समयदान का प्रथम प्रयोग यह है कि अपने शरीर, वस्त्र, आवास, उपकरण से लेकर मुहल्ला-पड़ौस, गाँव-गाँव के अपनी पहुँच वाले स्थानों की सफाई रखे जाने का व्यापक अभियान चलाया जाय।

अशिक्षा दूसरी विपत्ति है, उससे भी जन-जन की गर्दन को बन्धनमुक्त किया जाना चाहिए। अपने देश में दो तिहाई अशिक्षित हैं, उन सभी को स्कूलों में भरती कर सकना असम्भव है। उपाय एक ही है कि हर शिक्षित अपने समीपवर्ती दो अशिक्षितों को शिक्षित बनाने के लिए उनके घर पहुँचने या अपने घर बुलाने का व्रत लें। निरक्षरता से जुड़ी अनगढ़ता भी है, उसे दूर करने के लिए स्वाध्याय और सत्संग का प्रचलन निरन्तर चलते रहना चाहिए। लम्बे समय से चली आ रही मूढ़मान्यताओं, कुरीतियों, अवांछनीयताओं, अशिष्टताओं को दूर करने के लिए एक सुधारवादी आन्दोलन चलना चाहिए। उसके लिए गोष्ठी-आयोजनों की भी आवश्यकता है, पर उससे भी अधिक आवश्यकता यह है कि निरक्षरता हटते ही आगे की पढ़ाई दुश्चिन्तन और अनाचरण के विरुद्ध आरम्भिक पुस्तकों से की जाय। इसके लिए पुस्तकालय खुलें, तद्नुरूप साहित्य छपें और उसे पढ़ाने के लिए उसी स्तर का प्रयत्न किया जाय—जैसा कि साक्षरता के सम्बन्ध में सोचा गया है। मात्र अक्षर ज्ञान ही साक्षरता नहीं है, उसके साथ व्यक्ति, परिवार और समाज में प्रगतिशीलता लाने वाले सर्वतोमुखी ज्ञान विस्तार की मुहिम भी सँभाली जानी चाहिए।

यह कुछ छोटे उदाहरण हैं। सत्प्रवृत्ति संवर्धन और दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन के अगणित कार्य इन दिनों अपने देश में सर्वत्र बिखरे पड़े हैं। नशेबाजी, भिक्षा व्यवसाय, खर्चीली शादियाँ, नारी का पिछड़ापन, जाति और सम्प्रदायों के आधार पर जड़ जमाये बैठा पिछड़ापन दूर किये जाने की इन्हीं दिनों आवश्यकता है अन्यथा जनशक्ति और धनशक्ति का निरन्तर अपव्यय ही होता रहेगा और आजीविका बढ़ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर भी दुष्प्रचलनों के रहते खुशहाली के दर्शन न हो सकेंगे। इस प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करने के लिए सेवाभावियों के ऐसे वर्ग को आगे आना चाहिए, जो सामूहिकता के सूत्र में संघबद्ध होकर कार्य करें। ऐसा समुदाय खड़ा करना एक ऐसा कार्य है जिस पर प्रगति की सर्वतोमुखी संभावनायें अवलम्बित हैं।

नजर उठाकर अपने इर्द-गिर्द ही देखा जाय तो ऐसे असंख्यों सेवा कार्य दीख और सूझ पड़ेंगे, जिन्हें करने के लिए कुछ लोग संगठित रूप से आगे बढ़ें तो न केवल सामयिक आवश्यकतायें ही पूरी हों वरन् प्रसुप्त मानस वाले असंख्यों को सृजनात्मक प्रयोजनों के लिए कुछ करने की प्रेरणा मिले।

कितने ही प्रकार के संगठन जहाँ-तहाँ दीख पड़ते हैं, पर स्वयंसेवी समुदाय को कार्यक्षेत्र में उतरते जहाँ-तहाँ ही देखा जाता है। इस अभाव की पूर्ति किये जाने का यही समय है। इसका शुभारम्भ कुछ उत्साहीजनों को समयदान और अंशदान के लिए नियमित रूप से संलग्न रहने का व्रत लेकर करना चाहिए। अग्रगामी अपने पीछे चलने वाले अनुयायी सहज ही बना लेते हैं।

असुरता क्यों भारी पड़ती है ?

संगठन का मूल्य लोग न समझते हों ऐसी बात नहीं है। यदि उससे अनजान रहे होते तो कबीले और गिरोह कैसे बनते ? अनेकों जातीय पंचायतें, राजनैतिक पार्टियाँ दीख पड़ती हैं, उनका अस्तित्व प्रकाश में कैसे आता ? साम्प्रदायिक कर्मकाण्डों के धूम-धड़ाके किस आधार पर विनिर्मित होते ? इतना ही नहीं चिड़ियाँ और वन पशुओं के झुण्ड जहाँ-तहाँ विचरते क्यों दीख पड़ते ?

शोचनीय और चिन्ताजनक बात एक ही है कि सज्जनों, सेवाभावियों के सत्साहस से सँजोये हुए परिकर संगठित रूप से काम करते दिखलाई नहीं पड़ते। इस असंगठन का ही परिणाम यह है कि भ्रष्टता और दुष्टता हर क्षेत्र में पनपती और पैर पसारती दृष्टिगोचर होती है। कारण यह नहीं है कि अनाचार में—असुरता में अधिक शक्ति होती है। अनीति तो दुर्बल ही रही है और रहेगी। अन्धकार का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। उसे नापा-तौला नहीं जा सकता है, पकड़ा-बाँधा नहीं जा सकता। उसका कोई कर्तव्य पुरुषार्थ भी नहीं देखा जाता। प्रकाश के अभाव का नाम ही अन्धकार है। प्रकाश का अस्तित्व नापा, तौला, जाँचा और काम में लाया जा सकता है। प्रकाश की एक छोटी माचिस जला देने पर कमरे भर की वस्तुयें दीखने लगती हैं, पर अन्धकार का कहीं कोई ऐसा मापदण्ड नहीं है, जिसे किसी प्रकाशवान क्षेत्र में छोड़कर अन्धेरा किया जा सके। प्रकाश को सत् और अन्धकार को असत् माना गया है। असत् अर्थात् अस्तित्व रहित। किसी वस्तु का अभाव ही असत् है। असुरता को, अनाचार को भी इसी श्रेणी में गिना जा सकता है। वह तब तक बना ही रहेगा जब तक कि खाई को पाटा न जाय, अन्धकार का प्रतिपक्षी प्रकाश उत्पन्न न किया जाय।

इतने पर भी आश्चर्य यह है कि अनाचारी बहुसंख्यक दीखते हैं। इतना ही नहीं वे प्रथम आक्रमण की नीति अपनाकर तात्कालिक सफलता भी पाते हैं, आतंक भी उत्पन्न करते हैं और बहुसंख्यकों को डराने, हावी होने एवं दबाव देकर कुछ भी करा लेने में भी सफल होते हैं। कुछ ही गुण्डे सारे मुहल्ले को आतंकित कर देते हैं। कुछ ही अनाचारी सारे गाँव के क्षेत्र की शांति और इज्जत को धूल में मिला देते हैं।

किसी भी छोटे-बड़े क्षेत्र की गणना की जाय तो वहाँ दुष्ट-दुराचारी थोड़े-से ही पाये जा सकेंगे। शेष तो शान्तिप्रिय, साधारण लोग ही रहते हैं। इस संसार में बहुमत सज्जनता का ही है। अन्धकार कितना ही अधिक क्यों न हो वह प्रकाश की तुलना में व्यापक और समर्थ नहीं हो सकता। यही बात अनाचारियों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। न तो वे बलिष्ठ होते हैं और न अतिरिक्त शक्ति-सम्पन्न। न साहसी न पराक्रमी। पग-पग पर वे छल, दुराव और लुक-छिप का आश्रय लेते हैं। कभी पकड़े जाते हैं तो दण्ड-भय से बुरी तरह, कायरों की तरह कातर होकर गिड़गिड़ाते हैं और छुटकारा पाने के लिए त्राहि-त्राहि करते हैं। इससे वह उक्ति सर्वथा सार्थक दीखती है "गुण्डा, पहले दर्जे का कायर होता है।" उसके किसी मोर्चे पर पैर नहीं टिकते। जोखिम सामने आते ही उखड़ जाता है और भाग खड़ा होता है। छल ही उसकी एक मात्र ढाल होती है। कुटिलता का आश्रय लेकर ही वह किसी प्रकार गुजारा करता और जान बचाता है। यह तथ्य किसी भी पुलिसमैन से पूछकर जाना जा सकता है, जिन्हें कि एक दो होने पर भी गुण्डों के गिरोह का सामना और उन पर काबू पाना पड़ता है। जेल के कर्मचारी भी जानते हैं कि जिनने छुट्टल होने पर सर्वत्र आतंक मचा रखा था, वे बाड़े में बन्द होने के उपरान्त कैस निरीह बन जाते हैं और डण्डे के भय से थर-थर काँपते हैं।

वस्तुस्थिति यही है, फिर क्या कारण है कि शांतिप्रिय सज्जन स्तर के लोग बार-बार मार खाते हैं और अनाचारियों के भय से डरते, घबराते और भयभीत रहते हैं ? इसका कारण एक ही है कि बहुसंख्यक समर्थ एवं सौम्य होते हुए भी वे संगठन से कतराते हैं। मिल-जुलकर रहने, संगठित बनने और संयुक्त शक्ति का विकास करने के लिए उनका उत्साह नहीं उभरता। अपने व्यक्तिगत कामों एवं विचारों में ही सामर्थ्य खपा देते हैं, इस ओर ध्यान नहीं देते कि महत्वपूर्ण स्तर की प्रगति के लिए, बड़ी सफलता पाने के लिए संघ-शक्ति का प्रकटीकरण एवं संवर्धन आवश्यक है। दुष्टता से जूझने के लिये भी सज्जनों की पारस्परिक संघबद्धता ही नहीं वह समर्थता भी विकसित करने की आवश्यकता है, जो अनाचार से लोहा ले सके। यह उपेक्षा या भूल ही भारी पड़ती है और समर्थ होते हुए भी वह पिटते-हारते देखे जाते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देवासुर संग्राम में अनेकानेक पौराणिक उपाख्यान पढ़ने-सुनने को मिलते हैं, उन सब का एक ही उपक्रम है—असुरों ने आक्रमण किया, देवता हारे और भागे। इसके उपरान्त उन्हें अकल आई, संगठित हुये और संयुक्त शक्ति का विकास किया। भीतर से नया विश्वास और साहस उपजा, सूझ-बूझ ने काम दिया और उपयुक्त स्थिति बनी। इतना होते ही दैवी शक्ति का अनुदान भी उन्हें उपलब्ध हुआ। सही समझ आने पर सही मार्ग का अवलम्बन किया, प्रत्याक्रमण सँजोया गया। अबकी बार सारी स्थिति बदल गई, असुरों को परास्त होना पड़ा और देवताओं ने अपना खोया वर्चस्व पुनः उपलब्ध किया।

इस प्रकार के ही समस्त देवासुर संग्राम वाले कथानक हैं। सभी का एक ही निष्कर्ष निकलता है कि मात्र सज्जन या सौम्य होना ही पर्याप्त नहीं, साथ ही समर्थ और बलिष्ठ भी होना चाहिए। यहाँ एक बात और भी स्मरणीय है कि शरीर बल एवं शस्त्रबल गिने तो बलिष्ठता में ही जाते हैं, पर वास्तविक चिरस्थाई बल संगठन ही होता है। संयुक्त शक्ति ही वास्तविक शक्ति है। मिल-जुल कर रहने, एक-दूसरे की कठिनाई में सहायता करने, अनीति के विरुद्ध मोर्चा लगाने और अनाचारियों की दाल न गलने देने के लिए एकजुट होकर, तनकर खड़े हो जाने की प्रक्रिया भी ऐसी है, जिससे दुष्टता को एक कदम आगे बढ़ने के लिये सौ बार विचार करना पड़ता है।

संगठन का प्रदर्शन तो एक साथ या इकट्ठे जन समुदाय को देखकर भी हो जाता है, पर वास्तविकता तब बन पड़ती है, जब एक-दूसरे के साथ संयुक्त शक्ति के रूप में उभरे, एक-दूसरे को यह विश्वास दिलाये कि कठिन समय में हम सब विशेष रूप से एक रहेंगे और एक-दूसरे की सहायता करने में पीछे न रहेंगे। इसके लिये बिना उद्देश्य की, मात्र कौतूहलवश एकत्रित हुई भीड़ जन समुदाय भर ही कही जा सकती है। उसके पीछे कोई शक्ति न होने से अभीष्ट प्रयोजन की सिद्धि सफल नहीं हो पाती। संगठन की शर्त है—एक विचारधारा और लक्ष्य निर्धारण की स्थिति होना। इस प्रकार का एकत्रीकरण भी सशक्त समारोह का स्वरूप प्रदर्शित करता है। जुलूस, समारोह, रैली, आयोजन, प्रदर्शन, हड़ताल आदि के पीछे यही भावना प्रदर्शित होती है कि एक विचारणा के आधार पर एक उद्देश्य के लिए कितने लोग एक साथ हैं और वे कुछ करने के लिये अपना निश्चय कितने साहस के साथ प्रदर्शित करते हैं। जब सामान्य प्रदर्शन हवा को इधर से उधर मोड़ने में बड़ी भूमिका निभा सकते हैं तो जहाँ वस्तुतः किसी बड़े उद्देश्य के लिये ठोस संगठन और सुनिश्चित कार्यक्रम हो तो जनता का रुख बनाने-बदलने में उसका अच्छा-खासा महत्व हो सकता है।

एक पर अनीति होती रहे और अन्य सब इसका तमाशा देखते रहें, रोकथाम के लिये मिल-जुलकर आगे न बढ़ें तो जब अपनी बारी आयेगी, तब दूसरे लोग भी क्यों किसी प्रकार की मदद देंगे। उनका समर्थन किस आधार पर प्राप्त होगा—यह उपेक्षा और असहयोग की प्रवृत्ति दीन-दुर्बलों, असहाय-असमर्थों में पाई जाय तो उन्हें क्षम्य-विवश भी कहा जा सकता है, पर जब सुयोग्य व्यक्ति भी अपने स्तर के लोगों के साथ सम्पर्क बढ़ाने और संगठित होकर दैवी शक्ति का उद्भव करने की आवश्यकता नहीं समझते, उस दिशा में कुछ करने के लिए तत्पर नहीं होते तो फिर तथाकथित दुर्जन-सज्जन में किसे उत्कृष्ट और निकृष्ट बताया जाय ? यह सूझ नहीं पड़ता। संगठन की तराजू पर बुरे लोग भारी पड़ते हैं और वे इसी आधार पर सज्जनों को त्रास देते और दबाते-दबोचते रहते हैं।

संगठन का मेरुदण्ड स्वयं बनें

"एक की तुलना में दो भारी पड़ते हैं"—इस तथ्य को हर कहीं जाँचा-परखा जाता है। दो पहिये की गाड़ी चलती और वजन ढोती है। एक पहिये का वाहन तो सरकस में कौतुक दिखाने के अतिरिक्त और कहीं कदाचित् ही सफल होता है। एक पलड़े की तराजू एक प्रकार से निरर्थक ही होती है।

बात यहीं पर समाप्त नहीं हो जाती। एक मन के भावनाशील यदि मिलते तो अंक विद्या के आधार पर एक और एक आमने-सामने बैठकर ग्यारह की संख्या बनाते हैं। घनिष्ठता-सम्पन्न मनुष्यों की स्थिति भी ग्यारह गुनी बन जाती है। पति और पत्नी यदि एक मन हों तो उनके द्वारा बन पड़ने वाले कार्य और सहयोगजन्य आनन्द ग्यारह गुना बन जाता है। राम-लक्ष्मण के, अंगद-हनुमान के, कृष्ण-अर्जुन के युग्म वह कर सके जो एकाकी रहने की स्थिति में कदाचित् ही कर पाते। एक-दूसरे के प्रति वफादार-ईमानदार रहने की स्थिति में मात्र यों भी साहस और पराक्रम के क्षेत्र में ग्यारह गुनी उपलब्धियाँ अर्जित करते देखे गये हैं। बड़े समूहों का प्रभाव तो और भी बढ़-चढ़कर होता है, पाँच पाण्डवों का समूह महाभारत जीतने में सफल हुआ था। संसार के महामानवों द्वारा किये गये महान् कार्यों की सफलता के पीछे जहाँ अनेक अन्य सुयोगों की भूमिका रही है वहाँ एक बड़ी बात निश्चित रूप से रही है कि वे अपने स्तर के अनेक साथी-सहयोगी जुटाने में भी सफल हुए हैं। संयुक्त शक्ति ने एक-दूसरे का साहस बढ़ाया है। लोगों की दृष्टि में उनके प्रामाणिक, वजनदार होने का विश्वास जगाया है।

क्षुद्रता का एक बड़ा घातक दुर्गुण यह होता है कि वह एकाकी श्रेय-लाभ के लिए आतुर रहती है। दूसरों के द्वारा दिये गये सहयोग का मूल्यांकन नहीं करती। श्रेय की लालसा जब अति की सीमा तक पहुँचती है तो मण्डली का गुणगान करने की अपेक्षा स्वयं के कौशल का ही बखान करने लगती है। विग्रह यहीं से खड़ा होता है और संगठनों में टूट-फूट हो जाती है—इस खतरे को समझते हुए दूरदर्शी लोगों का दृष्टिकोण यह रहता है कि वे 'मैं' के स्थान पर 'हम' का ही प्रयोग करते हैं। इससे श्रेय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विभाजित होकर प्रकारान्तर से सभी के हिस्से में आ जाता है और अपने को पीछे रखने की स्थिति में साथियों की गौरावान्वित होने की लालसा का पोषण हो जाता है। सत्प्रयोजनों के लिए खड़े किये गये संगठनों के स्थायित्व में यह एक बहुत बड़ा कारण है कि श्रेय के लिए छीना-झपटी का अवसर न आने पाये, वास्तविक संगठक एक कदम पीछे रहें।

क्षुद्रता का एक दूसरा पक्ष भी है कि किसी प्रयास का संचालक-संयोजक बनने के लिए आतुरतापूर्वक लालायित होना। जब समूह का हर व्यक्ति अपनी प्रमुखता दिखाने का प्रयत्न करता है तो अन्य साथियों में भी वैसी ही ईर्ष्या जगना स्वाभाविक है। संस्थाओं में पदाधिकारी बनने के प्रश्न पर प्रायः खींचतान-पार्टीबन्दी चल पड़ती है। यही खींचतान आगे चलकर पार्टीबन्दी में, शत्रुता में परिणत हो जाती है और उस उद्देश्य को ही नष्ट करती है जिसके लिए संगठित या एकत्रित हुये थे।

सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने वालों को तीन ऐषणाओं से बचे रहने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए—पुत्रेषणा, वित्तेषणा और लोकेषणा। पुत्रेषणा का अर्थ है—संतान की संख्या अधिक बढ़ा लेना और उन्हीं को सुसम्पन्न बनाने का ताना-बाना बुनते रहना। मोह इसी स्थिति का नाम है। दूसरा दुर्गुण है—वित्तेषणा, धन-वैभव की लिप्सा। इस कारण लोकसेवी का चरित्र गिरता है, विश्वास उठता है और आत्मबल में कमी आती है। लोकसेवा के क्षेत्र में प्रवेश करने वालों को औसत नागरिक स्तर का ही निर्वाह अपनाना चाहिए अन्यथा लोग अनुमान लगाते हैं कि सार्वजनिक क्षेत्र से ही कुछ कमाया और जमा किया गया है। इस प्रकार के सन्देह की गुंजायश न रहे, इसी में सेवा-संगठनों में काम करने वालों की शान है। तीसरी सबसे भयंकर है—लोकेषणा। यश, लालसा, बड़प्पन सिद्ध करने के लिये रचे गये प्रपंच। अपने को समुदाय का वरिष्ठ सिद्ध करने के लिए अपनी ओर से किया गया प्रयास इसी श्रेणी में आता है, उससे लाभ के स्थान पर हानि होती है। लोग इस दुर्बलता को सहज भाँप लेते हैं और किये गये सेवा कार्यों को भी विज्ञापनबाजी कहकर व्यंग्य-उपहास करने लगते हैं। श्रद्धा चली जाती है और सम्मान तथा विश्वास घट जाता है, सेवा कार्यों के लिये जो समयदान-अंशदान आदि किया गया था, उसके बदले श्रेय लूट लेने पर लोग आरोप लगाते और आक्षेप लगाने लगते हैं। इसीलिये दूरदर्शी लोग अपना सम्मान बनाये रखने के लिए दूसरों को यश देने और स्वयं पीछे रहने की नीति अपनाते हैं।

समूहों का स्वरूप प्रकारान्तर से संगठन जैसा बन जाता है। उसमें कार्य संचालन के लिये पैसा भी किसी न किसी प्रयोजन के लिए जमा होता है। इसका हिसाब-किताब ऐसा रखा जाय जिसमें किसी शंकाशील को भी अँगुली उठाने का अवसर न मिले। यदि अपना कुछ वास्ता हिसाब से हो तो उस आय-व्यय को बिना पूछे ही इस प्रकार बताते रहना चाहिए, जिससे चर्चा का विषय बनने से पूर्व ही स्थिति का समाधान होता रहे। किसी के द्वारा किया गया सेवा कार्य कितना ही बड़ा क्यों न हो, पर यदि यश, लिप्सा और पैसे के घोटाले सम्बन्धी आक्षेप लगने लगें तो अपनी और संगठन दोनों की ही प्रकारान्तर से क्षति होती है—इस सन्दर्भ में जितना अधिक पाक-साफ रहा जाय उतना ही अच्छा है।

सेवा मार्ग में एक और पक्ष भी ध्यान रखने योग्य है, वह यह कि सत्प्रवृत्ति संवर्धन जैसे पुनीत कार्य में भी किसी न किसी प्रकार दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन जुड़ जाता है। इसमें निहित स्वार्थों की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हानि होती है, हानि के बदले प्रत्याक्रमण होने लगना कुछ अप्रत्याशित नहीं है। इसलिए यह मानकर चलना चाहिए कि सज्जनों के संगठन भी अनीति पक्ष को रुष्ट या क्रुद्ध किये बिना नहीं रहते। यदि वे हानि पहुँचाने पर उतारू दीख पड़ें तो उसे स्वाभाविक ही मानना चाहिए। देवताओं पर भी असुर किसी न किसी प्रकार प्रत्यक्ष-परोक्ष आक्रमण करते रहे हैं, अपने ऊपर भी ऐसा हो सकता है।

देखा गया है कि जब तक सेवा-संगठन मजबूत या प्रभावशाली नहीं होते तब तक उनकी उपेक्षा होती रहती है—कोई चर्चा तक नहीं करता। जब जड़ जमने लगती हैं और सत्प्रयासों का प्रयत्न दीख पड़ने लगता है तो मनोबल तोड़ने के लिए विरोधियों द्वारा उपहास उड़ाये जाने का सिलसिला चल पड़ता है। बात और भी आगे बढ़े और अनीति पर सीधे चोट पहुँचे एवं चरित्र हनन जैसे परोक्ष अथवा आक्रमणों जैसे प्रत्यक्ष प्रतिशोध क्रियान्वित होने लगते हैं, इन्हें अग्नि परीक्षा ही समझा जाना चाहिए। साहस और उत्साह में कमी आते देखकर प्रकारान्तर में अपनी दुर्बलता या पराजय स्वीकार नहीं करनी चाहिए। साथियों के छूटने या टूटने पर भी एकाकी चलते रहने की धीर-वीर, गम्भीर स्तर की बलिष्ठता का परिचय देना चाहिए। अन्त में सत्य की ही विजय होती है। एक दिन वह भी आता है जब सत्य-निष्ठा के साथ विरोधी भी नतमस्तक होते हैं। निन्दा के स्थान पर प्रशंसा करने और विरोध छोड़कर सहयोग करने लगते हैं।

दूसरे आगे चलें तब हम अनुकरण करें—इस प्रतीक्षा में बैठे रहने वालों के लिए वैसा सुयोग कदाचित् ही कभी आता है, कारण कि हेय मार्ग पर चलने वाले ही प्रायः अपने कुसंस्कारों को दृढ़तापूर्वक देर तक अपनाते देखे गये हैं। आदर्शवादियों का उत्साह अल्प समय टिकता है, कारण कि उन्हें न तो सच्चे मन से परामर्श देने वाले ही मिलते हैं और न ऐसे लोगों का बाहुल्य दीख पड़ता है, जिनके कदम से कदम मिलाकर चलना बन पड़े। निजी आत्मबल के अभाव में प्रायः लोग दूसरों का सहारा ही ताकते देखे जाते हैं। वह ऐसा कहीं मिल नहीं पाता जो स्थिरता और दृढ़ता लिए हुए हो। ऐसी दशा में जिन्हें सज्जनों का संगठन विकसित होते देखना है, उन्हें उस कार्य में स्वयं ही अग्रगामी बनना और दृढ़ता के प्रतीक रूप में अपना

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साहस विकसित करना होता है। यह कार्य किसी और को न सौंपकर भावनाशीलों को स्वयं ही अपने कन्धों पर उठाना चाहिए।

चुम्बक अपनी समर्थता बनाये रहता है और इर्द-गिर्द बिखरे छोटे लौह कणों को खींचने की प्रक्रिया में सतत् संलग्न रहकर अपना समुदाय बढ़ाता रहता है। शहद के छत्ते में बैठी हुई रानी मक्खी अपना समुदाय बनाती-बढ़ाती और अनुशासन पालन के लिए प्रशिक्षित करती रहती है। सज्जनों का संगठन बनाने के इच्छुकों को भी यही रीति-नीति अपनानी चाहिए।

सहकारी प्रयासों का अभिवर्धन किया जाय

मिल-जुलकर काम करने की मानवी प्रवृत्ति की विशेषता ने ही उसे उन्नति के उच्चशिखर पर पहुँचाया है। यों मनुष्य की बुद्धि को श्रेय दिया जाता है पर उसका सूक्ष्म विश्लेषण किया जाय तो उसकी भाव सम्पन्नता को ही प्रधानता देनी पड़ेगी। एकता, आत्मीयता, सेवा, सहायता, स्नेह, सद्भाव जैसे उच्चगुणों ने ही उसकी बुद्धि को क्रमशः विकसित किया है। एक ने दूसरे को अपने अनुभव का, श्रेय का लाभ देकर इस योग्य बनाया कि वह अपनी मस्तिष्कीय क्षमता का विकास कर सके और श्रम तथा ज्ञान का समन्वय करके विविध-विधि उपलब्धियाँ प्राप्त कर सके।

इस विशेषता के अभाव में उसमें यदि कुछ अतिरिक्त बुद्धिमत्ता होती भी और अन्य प्राणियों की तरह अपने व्यक्तिगत क्षेत्र में ही सीमित बनी रहती तो फिर जितना कुछ प्रकृति प्रदत्त था, उतना ही हाथ रहता। अपने प्रयत्नों से उसमें और कोई कड़ी न जुड़ी होती। अन्य प्राणियों में भी बुद्धिमत्ता का अभाव नहीं, पर उनमें सहकारिता का, आदान-प्रदान का वैसा क्रम प्रचलन नहीं जैसा मनुष्यों में है। यही कारण है कि वे सृष्टि के आदि से लेकर अब तक लगभग उतना ही सँजोये-सँभाले बैठे हैं जितना प्रकृति ने उन्हें दिया था। निजी प्रयास तो उनके तब सफल होते जब सहकारिता का-आत्मीयता का-मिल जुल कर कार्य करने और आदान-प्रदान में प्रसन्नता अनुभव करने का विशेष गुण भी उनमें रहा होता। मनुष्य ही है जिसने सहयोग का महत्व समझा और उस सीढ़ी पर चढ़ता हुआ कहाँ से कहाँ जा पहुँचा।

संसार में जिधर भी दृष्टि उठाकर देखा जाय, मानवी प्रकृति के किसी भी पहलू की समीक्षा की जाय, उसके पीछे सहकारिता की प्रवृत्ति का चमत्कार ही झाँकता दिखाई पड़ता है। वस्त्र जिन्हें हम पहनते हैं, एकाकी प्रयत्न का फल नहीं है। किन्हीं ने कपास बोई, उस कृषि को संभव बनाने के लिए हल, फाल, कुदाल बनाये, कपास को ओटने पींजने के साधन बनाने के लिए कारीगरों ने कार्य किया। कारीगरों के औजार बनाने के कारखाने किन्हीं के सहयोग से बने। उस रूई को कातने-बुनने का काम मील ने किया। उस मील की मशीनें किसी बड़े कारखाने में बनीं, उनके बनाने वाले इंजीनियर थे। इन्जीनियरों को इस लायक बनाने में पुस्तकों ने योगदान दिया। उन पुस्तकों के लिए कागज, स्याही, छपाई के साधन जुटाने वाले दूसरे थे। मील को चलाने के लिए कोयलों की जरूरत पड़ी, वह रेल मोटरों से भर कर आया आदि-आदि।

इस तरह अन्यान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कहाँ-कहाँ से किन-किन का सहयोग जुटा तो प्रतीत होगा कि सृष्टि के आदि से लेकर अब तक के लगभग सभी मनुष्यों का परस्पर किसी न किसी रूप में सहयोग जुड़ता चला आया है। यदि यह व्यवस्था न बनी होती तो भले ही मनुष्य कितना ही बुद्धिमान रहता, उसे उन सुख-सुविधाओं की प्राप्ति किसी प्रकार भी संभव न होती, जो उसके सामने आज प्रचुर परिमाण में मौजूद हैं।

इस सहयोग प्रवृत्ति का महत्व हमें समझना चाहिए और भविष्य में यदि उपलब्ध सुख-शान्ति को स्थिर रखना, उलझनें सुलझानी हों और प्रगति के पथ पर आगे बढ़ना हो तो इस बात के लिए तत्पर होना चाहिए कि सहकारिता के प्रवाह को निरन्तर आगे बढ़ायेंगे और उसे जीवन की प्रधान रीति-नीति में सम्मिलित करके रखेंगे।

आर्थिक उन्नति की दृष्टि से भी सहकारिता आवश्यक है। सहयोगी समितियाँ बनाकर हम अनुचित शोषणों से सहज ही बच सकते हैं। मिल-जुलकर एक सहकारी भंडार खोल लें, उसमें दैनिक जीवन की सभी आवश्यक वस्तुयें अच्छे स्तर और उचित मूल्य पर इकट्ठी मँगाकर रखें और उसमें से अपनी आवश्यकतानुसार खरीदते रहें तो चीज भी अच्छी मिलेगी, नाप-तौल भी सही होगी और मूल्य भी औचित्य की सीमा में ही देना पड़ेगा। खरीदने के लिए मोल भाव, देखभाल, जाँच-परख करने में दुकान-दुकान ठोकर खानी पड़ती है, उससे बचत होगी सो अलग। उससे भी बड़ा लाभ यह होगा कि उस सहकारी समिति के गठनकर्ताओं को इसी बहाने मिल-जुलकर सोचने, बैठने, विचार करने का अवसर मिलेगा और व्यक्तिगत घनिष्ठता की दृष्टि से अनेकों प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष लाभ प्राप्त करने का अवसर मिलेगा।

छुट-पुट अलग-अलग काम करने में लागत अधिक आती है और उत्पादन की खपत में अलग अधिक प्रयत्न करना पड़ता है। सब कपड़े बुनने वाले एक सहयोगी समिति बना लें। थोक में वह समिति सूत खरीदे, उत्पादन को यह समिति जमा करले और विक्रय के लिये बड़े व्यापारियों से सम्बन्ध बनाकर इकट्ठा बेचे। हर व्यक्ति को उसे खरीदने-बेचने के लिये जो आधा समय लगाना पड़ता था, उसे बचाकर यदि यह पूरा ध्यान केवल निर्माण पर ही केन्द्रित करता है तो निश्चित रूप से वह नफे में रहेगा। जो बात बुनने वाले कारीगरों के बारे में कही गई है, वह हर वर्ग के ऊपर लागू होती है। दस-दस बीघे अलग-अलग कृषि करने वाले किसान, अलग-अलग हल-बैल रखें,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अलग-अलग सिंचाई, खलिहान आदि का प्रबन्ध करें तो उसमें काफी शक्ति खर्च होगी। यदि वे दसों किसान मिल जायें और सौ बीघे का एक ही फार्म बना लें, सब लोग योजनाबद्ध काम करें तो साधन भी कम लगेंगे, श्रम भी कम पड़ेगा और मुनाफा भी अधिक होगा।

बचत की अलग-अलग पड़ी हुई थोड़ी-थोड़ी पूँजी को यदि इकट्ठा कर लिया जाय और उससे सहकारिता के आधार पर कोई व्यापार-उद्योग चलाया जाय, तो उससे कितनों को ही काम मिल सकता है ? लोगों की कितनी ही आवश्यकतायें पूरी हो सकती हैं और पूँजी लगाने वालों को ब्याज मुनाफा घर बैठे मिल सकता है। अलग-अलग पड़ा हुआ थोड़ा-थोड़ा धन, निरर्थक पड़ा रहने, अपव्यय, चोरी, ठगी द्वारा ग्रसा जाने की अपेक्षा इस प्रकार लाभकारी बने यह उचित ही है।

विदेशों में अब कम पूँजी के छुट-पुट व्यापार नहीं चल पाते, हर दुकान, हर व्यापार बड़े पैमाने पर ही खोलना पड़ता है। अन्यथा मजदूरी, दुकान भाड़ा आदि का खर्च ही छोटी दुकानें न जुटा सकें और कम साधनों में कम बिक्री वाले काम से उसे चलाने वाले का गुजारा ही न हो। इस कठिनाई का सामना करने के लिये वहाँ सहकारिता का ही आश्रय लेना पड़ता है। पूँजी वाले पूँजी एकत्रित करके व्यापार खोलते हैं, श्रमिक अपना संघ बनाकर कामों के ठेके लेते हैं। साधनहीन लोग उन्हीं संगठनों के माध्यम से मजदूरी प्राप्त करने का अवसर सुविधापूर्वक प्राप्त करते हैं। भोजन पकाने तक का प्रबन्ध सहकारिता के आधार पर किया जाता है। फलस्वरूप चार-छह व्यक्ति मिलकर सौ आदमियों की व्यवस्था कर लेते हैं। पहले इसी कार्य में अलग-अलग चौका जलाने पर पचास आदमियों का श्रम लगता था, जगह घिरती थी और लागत बढ़ती थी, अब सामूहिकता अपनाकर, छह व्यक्ति सारा प्रबन्ध कर देते हैं। शेष ४४ को अवकाश मिलता है। वे दूसरा काम करते हैं।

इस प्रवृत्ति को हर जगह हर क्षेत्र में प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। कृषि, व्यापार, उद्योग, श्रम आदि हर कार्य को मिलजुल कर करने की बात सोचनी चाहिए और जहाँ जो कुछ करने की सम्भावना हो, वहाँ उसके लिये कदम बढ़ाना चाहिए। सहकारी समितियों की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देने की सरकारी नीति भी है। उसका सहयोग भी जहाँ जितना हो लेने का प्रयत्न करना चाहिए। इससे राष्ट्रीय सम्पदा की वृद्धि होती है और परस्पर मिल-जुलकर कार्य करने की मनोवृत्ति पनपती है जो हर दृष्टि में श्रेयस्कर ही है।

आर्थिक क्षेत्र में यह प्रयोग सारे विश्व में हो रहे हैं। हमें उसमें पिछड़ना नहीं चाहिए। अपनी आवश्यकता की वस्तुयें खरीदने की तथा अपने उत्पादन की निकासी की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये सहकारी समितियों का गठन हर जगह किया जा सकता है। गृह उद्योगों की सफलता बहुत कुछ इसी आधार पर सम्भव है। बिक्री के लिये क्षेत्र ढूँढ़ना—मारे-मारे फिरना और अपनी गरज के कारण चीजें कम मूल्य पर बेचना ऐसा अवरोध है, जिसके कारण कुशल कारीगर भी किसी उत्पादन में सफल नहीं हो सकें। जापान में कुटीर उद्योग इसी प्रकार घर-घर में चल पाते हैं। काम घरों में होते रहते हैं और कच्चा माल पहुँचाने और बनी वस्तुयें इकट्ठी करने का काम समिति करती है। हर वर्ग अपने कार्य में निश्चित एवं दत्तचित्त होकर लगा रहता है। संयुक्त परिवार प्रणाली भी विशुद्ध रूप से सहकारिता सिद्धान्त का एक कौटुम्बिक प्रयोग है। स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये हमें किसी न किसी स्तर पर सहकारी प्रयत्नों का शुभारम्भ और अभिवर्धन करने के लिये सदा प्रयास करते रहना चाहिए।

आप अकेले नहीं हैं, समाज की एक इकाई हैं

सामाजिक सहयोग से ही मानवी प्रगति सम्भव हुई है। एकाकी श्रम प्रयासों से तो वह अन्न, निवास, शिक्षा, चिकित्सा, आजीविका जैसी दैनिक जीवन की आवश्यकता तक पूरी नहीं कर सकता। निर्वाह से लेकर उल्लास तक की सभी आवश्यकतायें जिसे सामूहिक सहयोग से उपलब्ध होती हैं, उसमें मनुष्य का यह कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व है कि समाज को सुखी बनाने वाले परमार्थ प्रयोजनों को भी जीवनक्रम में सम्मिलित रखे। परमार्थ की बात सोचे। लोक-कल्याण में रुचि ले और उपकारों का ऋण चुकाये। जब अपने को असंख्यों का सहयोग मिला है तो कृतज्ञता की अभिव्यक्ति भी आवश्यक है इसके लिये दाँत निपोर देने या शब्द जंजाल बुन देने से काम नहीं चलेगा। सक्रिय प्रयासों की आवश्यकता पड़ेगी। इन्हीं प्रयासों को लोक मंगल की साधना कहते हैं। धर्मशास्त्रों में इसी को पुण्य परमार्थ कहा गया है और स्वर्ग मुक्ति का—जीवन लक्ष्य की पूर्ति का—आधारभूत कारण माना गया है। पूजा-पाठ, स्वाध्याय-सत्संग आदि कृत्यों का उद्देश्य इसी सत्प्रवृत्ति को प्रसुप्ति से उबारकर प्रखर बनाने की भूमिका निभाना है।

वस्तुतः भाग्य या किस्मत जैसी चीज न तो कोई मनुष्य लिखाकर आता है और न ही ऐसी कोई सत्ता है जो विधाता के रूप में प्रत्येक मानव-शिशु के कपाल पर उसके सारे जीवन की घटनायें लिखती हो। मनुष्य प्रयत्नों से ही सफल होता है और पुरुषार्थ के बल पर ही अपने भाग्य का निर्माण करता है। लेकिन अपनी मान्यताओं को यहीं तक रखकर दूसरों के हित की अपेक्षा करना या समाज का जरा भी ध्यान रखना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है।

यह ठीक है कि मनुष्य अपने प्रयत्नों से ही अपना निर्माण करता है। पर यह भी ठीक है कि उसके प्रयत्न तभी सफल होते हैं जबकि उसका समाज जिसमें कि वह रहता है, उसे इस योग्य बना दे। जहाँ तक कि दूसरों के सहयोग के बिना तो वह प्रयत्न करने लायक भी नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहता। मनुष्य को छोड़कर शेष सभी प्राणी ऐसे हैं, जो जन्म के तुरन्त बाद या थोड़े समय में ही स्वावलम्बी बन जाते हैं। पर मनुष्य को लम्बे समय तक अपने माता-पिता, परिवार के सदस्य तथा समाज के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है। जन्मते ही तो वह पैरों पर खड़ा होना तो दूर रहा, बैठना या करवट बदलना भी अपने आप नहीं सीखता। काफी समय तक उसे माँ की देख-भाल की जरूरत रहती है। अपने पैरों पर खड़े होने की बात को स्वावलम्बन के सन्दर्भ में लें तब तो १०-१२ वर्ष की आयु तक वह इस स्थिति में नहीं आता।

खुद कमाने खाने लायक बन जाने के बाद भी वह इस योग्य नहीं कि उसे किसी और की सहायता आवश्यक न लगे। अभिभावकों पर अवलम्बित रहने से निवृत्त होने के बाद उसे समाज की सहायता-निर्भरता लेनी पड़ती है। अभिभावकों पर निर्भरता छोड़ने के बाद यदि उसे किसी की सहायता न मिले तो जीवन को कुछ समय तक चला पाना भी कठिन हो जायेगा।

अन्य प्राणियों की आवश्यकतायें तो सीमित हैं। माँसाहारी जीव कहीं शिकार करके या मरे हुये जानवर पाकर अपना पेट भर लेते हैं। वनस्पतियों पर जीवित रहने वाले जीव-जन्तु जंगल में उगी घास, पत्तियाँ या फल आदि खाकर अपना गुजारा चला लेते हैं, पर मनुष्य की आवश्यकतायें तो केवल भोजन तक ही सीमित नहीं हैं। उसे और भी बहुत कुछ चाहिए। जैसे पहनने के लिये कपड़े, रहने के लिये मकान, चिकित्सा, शिक्षा, पुस्तकें, मनोरंजन आदि।

अकेले भोजन को ही लें जो जीवन को जाग्रत रखने और शरीर की रक्षा करने के लिये आवश्यक है। मनुष्य का भोजन उन जीव-जन्तुओं की तरह प्राकृतिक नहीं होता, जो जिस रूप में मिले उसी रूप में ग्रहण करके अपना काम चला लेते हैं। मनुष्य को अपना भोजन एक खास ढंग से तैयार करना और खाना पड़ता है। इस खास ढंग को अकेला आदमी अपने बलबूते पर तैयार नहीं कर पाता। इसके लिये भी मनुष्य को समाज के अन्य लोगों पर आश्रित रहना पड़ता है।

सबसे पहली निर्भरता है किसान पर, जो अन्न उगाता है। वह बीज कहीं से लाता है, हल और बैल कहीं से जुटाता है। कितने ही लोगों को श्रम करना पड़ता है तब एक दाना हजार दानों में विकसित होता है। फिर अनाज उगाकर उसे वह व्यापारी के हाथों बेचता है। व्यापारी उस अन्न को बाजार में उपस्थित करता है। आदमी व्यापारी से खरीदकर घर लाता है, उसे पिसवाता है।

जिस चक्की में वह आटा पिसवाता है वह किसी दूसरे की होती है, जो फैक्ट्रियों में तैयार होती है और उसके निर्माण से भी सैकड़ों लोगों के हाथ लगते हैं। अनाज पिसवाने के बाद उसकी रोटियाँ बनाने, भोजन तैयार करने के लिये प्रयुक्त किये जाने वाले बर्तनों को भी कितने ही लोगों का श्रम तैयार करता है ? इस प्रकार अगणित लोगों के सौजन्य से मनुष्य अपना भोजन तैयार कर पाता है।

माना कि ये सब वस्तुयें इनकी कीमत चुकाकर प्राप्त की जाती हैं, पर कीमत चुकाने के लिये पैसा भी तो कोई आदमी अपने घर में गढ़कर तैयार नहीं करता। वह भी कहीं मेहनत-मजदूरी कर या नौकरी-धन्धे से ही अर्जित किया जाता है। इस प्रकार पैसा प्राप्त करने के लिये भी तो मनुष्यों को अनेकानेक लोगों का सहयोग प्राप्त करना पड़ता है।

यह तो हुई केवल भोजन की बात। भोजन की तरह ही मनुष्य को सर्दी से बचाव के लिये वस्त्र और मकान की जरूरत पड़ती है। यदि व्यक्ति स्वयं खेत में उगाकर अनाज को किसी तरह कूट-पीसकर खाने योग्य बनाये, तो भी वस्त्रों के लिये उसे समाज पर निर्भर रहना पड़ता है। सोच लिया जाय कि कपास, जिससे निकली रूई से कपड़ा तैयार होता है, यदि आदमी खेत में ही उगाने लगे तो भी उसे कातने, बुनने, सिलने का समय आदमी कहाँ से निकालेगा ? यह सब भी हो जाय, जो कि लगभग असाध्य ही है, तो भी खेती में काम आने वाले औजार-उपकरणों को बाजार से ही लाना पड़ता है। हल, फाल, दराती, गाड़ी, बीज आदि के लिये तो समाज की ओर ही देखना पड़ता है।

और जिस मकान में आदमी रहता है, वह मकान ईंट, चूने या सीमेण्ट से तैयार होता है। जो सब समाज के द्वारा ही मिलते हैं। सर्दी के दिनों में जाड़ा दूर भगाने के लिये गर्म कपड़े पहनने और अँगीठी तापने की सुविधायें व्यक्ति अकेले अपने बलबूते पर किस प्रकार अर्जित कर सकता है ? इन सुविधाओं को अन्य लोगों के सहयोग से ही प्राप्त किया जा सकता है।

यह सोचना नितान्त एकपक्षीय होगा कि प्राप्त सारी सुविधायें और उपलब्ध समस्त साधन हम अपने बलबूते पर ही अर्जित करते हैं क्योंकि उनका मूल्य चुकाते हैं। प्रतिदान देकर भी कोई वस्तु प्राप्त करते समय प्रतिपक्षी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन सामान्य शिष्टाचार का नियम है। सामान्य शिष्टाचार जिसके बिना कोई व्यक्ति महान् नहीं बनता, केवल औसत सभ्यता में दीक्षित ही समझा जाता है। तो जिस समाज के हम पर इतने उपकार हैं क्या उसके प्रति हम इतने अकृतज्ञ हो जायें कि उसे धन्यवाद भी न दें। धन्यवाद देना तो दूर रहा उल्टे उसका शोषण करें, उसके लिये भी कुछ किये बिना उसे दोनों हाथों से दुहते चलें। यदि सीखना ही हो तो हमें सहकार-परोपकार का शिक्षण अन्य प्राणियों से लेना चाहिए जो समाज निष्ठा का धर्म भली भाँति निबाहते हैं।

सृष्टि में जहाँ भी दृष्टि दौड़ाते हैं, संघर्ष का नहीं—सहयोग का ही अस्तित्व नजर आता है। संघर्ष से तो अराजकता, अव्यवस्था फैलती और विकसित जातियाँ भी पतन के गर्त में मिल जाती हैं। सतत् लड़ने-मरने पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उतारू जातियाँ आपस में ही भिड़कर समाप्त हो जाती हैं। इस तथ्य को प्राणी जगत् के पिछले इतिहास के विकास एवं अवसान की घटनाओं के अध्ययन से भली-भाँति समझा जा सकता है। मनुष्येत्तर जीवों की कितनी ही बलिष्ठ एवं समर्थ जातियाँ केवल उस कारण लुप्त हो गईं कि उनमें मरने-मारने की हिंसात्मक प्रवृत्ति अधिक थी। उन्होंने आपस में ही लड़कर अपना अस्तित्व समाप्त कर लिया। पूर्वकाल में शक्ति एवं सामर्थ्य की दृष्टि से एक से बढ़कर एक जीव थे। पर उनके आपसी संघर्ष ने उन्हें जीवित नहीं रहने दिया, 'डायनॉसोर' विशालकाय जीव था। 'डिप्लोडोकस' नब्बे फीट लम्बा था। 'ब्रेकियोसोरस' का बजन पचास टन था तथा ऊँचाई बीस फीट थी जो लगभग मकान के दूसरी मंजिल तक ऊँचा दिखाई पड़ता था। टाथनोसॉरस के शरीर की लम्बाई बीस फीट तथा दाँत की लम्बाई ६ फीट थी।

ये सभी सरीसृप समूह के नाम से विख्यात थे तथा सारे भूमण्डल पर छाये हुये थे। इनमें से कुछ पानी में, कुछ पृथ्वी पर तथा कुछ आकाश में भी उड़ने वाले जीव थे। शक्ति की दृष्टि से यह महादानव थे। किन्तु आपसी संघर्ष के कारण लुप्त होते चले गये। कुछ तो परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण अपना सामंजस्य बिठा पाने में असमर्थ रहे। इसका प्रधान कारण परिस्थितियों की प्रतिकूलता नहीं आपसी सहयोग का अभाव था। एक तो वातावरण की प्रतिकूलता, दूसरे संघर्ष की प्रकृति दोनों के सम्मिलित प्रहार ने उनका अस्तित्व ही समाप्त कर दिया। विकासवादी एकमात्र इसका कारण परिस्थितियों को बताते हैं पर इसे पूर्णतया सही नहीं माना जा सकता है।

वैज्ञानिक शोध इस बात की प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जीवों में विषम से विषम स्थिति में सामंजस्य स्थापित करने की अद्भुत सामर्थ्य विद्यमान है। स्पष्ट है कि आपसी सहयोग रहा होता तो विषमताओं में भी अपना अस्तित्व सुरक्षित रखा जा सकता था। किन्तु ऐसा सम्भव न हो सका, जबकि शक्ति सामर्थ्य की दृष्टि से नगण्य जीव आपसी सहयोग के कारण जीवित बने रहे। मनुष्य का स्वरूप भूत में जो भी रहा हो पर यह तो सुनिश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसमें आपसी सहयोग-सहकार की प्रवृत्ति थी, उसी कारण उसने अपना अस्तित्व बनाये रखा। अपनी इस विशेषता के कारण वह न केवल समूह रूप में सुरक्षित रहा वरन् प्रगति के सोपानों पर क्रमशः चढ़ता गया। तर्कशील इस प्रगति को बुद्धि एवं विचारशीलता की परिणिति कहकर सन्तोष कर सकते हैं, पर तथ्य यह है कि सहयोग एवं सहकार रूपी विचारशीलता ने ही उसे वर्तमान स्थिति तक पहुँचाया है।

अन्य जीवों की तरह मनुष्य ने भी संघर्ष को ही महत्त्व दिया होता तो वह भी आपस में लड़-मरकर समाप्त हो गया होता। विकासवाद के जनक 'डार्विन' ने जीवन के लिये संघर्ष का जो सिद्धान्त दिया, उसका अर्थ संकुचित रूप में लिया गया। इस सिद्धान्त की समग्रता भी तभी बनती है, जब उसे स्थूल संघर्षों के अर्थ में नहीं जीवन संघर्ष एवं विकास के लिये सतत् प्रयास के रूप में लिया जाय। संघर्ष का व्यापक अर्थ यह है कि 'विभिन्न प्राणी एवं मनुष्य मजबूत एवं समर्थ बनें। यह तथ्य स्थूल कम सूक्ष्म अधिक है। तात्पर्य व्यक्ति से नहीं परिस्थिति से है।"

डार्विन ने स्वयं भी यह सिद्धान्त स्वीकार किया है कि "प्राणियों का अस्तित्व परस्पर एक-दूसरे के ऊपर निर्भर है।" व्याख्याकारों ने इसका अर्थ संघर्ष के रूप में लिया तथा कहा कि अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये शक्तिशाली जीव असमर्थों को समाप्त कर देते हैं। परिस्थितियों की महत्ता प्रतिपादित करने की दृष्टि से सम्भव है 'डार्विन' ने भी इस सिद्धान्त को संकुचित अर्थों में प्रयुक्त किया हो, पर वह एकपक्षीय एवं एकांगी है। उसे शाश्वत सिद्धान्त के रूप में तो सभी स्वीकारा जा सकता है, जबकि वह सर्वत्र शाश्वत सत्य के रूप में लागू होता हो।

'जीवन संघर्ष का अर्थ आपसी टकराव से नहीं था। इसकी पुष्टि स्वयं डार्विन ने "मनुष्य का अवतरण" नामक पुस्तक में की है। वे लिखते हैं कि "विकास के क्रम में असंख्य प्राणि समूहों में पृथक्-पृथक् प्राणियों का आपसी संघर्ष मिट जाता है—संघर्ष का स्थान सहयोग ले लेता है और इसके फलस्वरूप उनका बौद्धिक एवं नैतिक विकास होता है। इस विकास से ही उन प्राणियों का अस्तित्व बने रहने के लिये अत्यन्त अनुकूल अवस्था पैदा होती है।" सरवाइवल ऑफ दी फिटेस्ट' की व्याख्या करते हुये डार्विन इस पुस्तक में स्वयं कहते हैं कि "ऐसे समुदायों में योग्यतम वे नहीं कहे जाते जो सबसे अधिक बलवान या चालाक हैं वरन् समर्थ वे हैं जो अपने समाज के हित के लिये—निर्बल एवं बलवान सभी की शक्ति को इस तरह संगठित करना जानते हों कि वे एक-दूसरे के पोषक हों। जिन समुदायों में एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति रखने वाले प्राणियों की अधिकता होगी, वे ही सबसे अधिक उन्नत होंगे और फलेंगे-फूलेंगे।" वर्तमान में सर्वाधिक विकसित एवं प्रगतिशील समाज के विशद् अध्ययन से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि उनके परस्पर स्नेह-सहयोग एवं सहकार की भावना ने ही उन्हें उस स्तर तक बढ़ाया है। अविकसित, पिछड़ी, असभ्य जातियों का गहराई से अध्ययन करने पर एक ही तथ्य हाथ लगता है कि पिछड़ेपन का एकमात्र कारण है—आपसी सहयोग, स्नेह एवं सहकार का अभाव।

जो पशु अपना अस्तित्व बनाये हुये हैं उसका कारण भी उनकी सहयोग भावना है। रूसो का कहना है कि "प्रकृति में प्रेम, शान्ति और सहयोग कूट-कूटकर भरा है पशुओं को इन प्रवृत्तियों से रहित समझने वाले व्यक्तियों को जंगलों का पर्यवेक्षण करना चाहिए। उनकी यह विचारधारा निर्मूल सिद्ध होगी कि पशुओं में सामाजिकता का अभाव है।" डार्विन के सिद्धान्त की सर्वश्रेष्ठ व्याख्या रूसी प्रोफेसर 'केसलर' ने की है। उन्होंने माना है कि

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"सहयोग प्रकृति का नियम और विकास का मूल अंग है।" जनवरी १८८० में अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व रूसी प्रकृतिवादियों के समक्ष उन्होंने अपने ये विचार व्यक्त किये थे।

'जीवन-संघर्ष' के सिद्धान्त का दुरुपयोग ही देखकर 'केसलर' ने उसका वास्तविक स्वरूप जन-सामान्य के समक्ष रखना कर्त्तव्य समझा। उनका कहना था कि "प्राणी शास्त्र और मनुष्य सम्बन्धी अन्य दूसरे शास्त्र सदा उस नियम पर जोर देते हैं, जिसे वे अपनी भाषा में जीवन-संघर्ष का निष्ठुर नियम कहते हैं। किन्तु ऐसे व्यक्ति एक-दूसरे नियम के अस्तित्व को भूल जाते हैं, जिसे हम पारस्परिक सहयोग का नियम कह सकते हैं।" प्रो. केसलर ने बताया कि "किस प्रकार वन्य प्राणी भी परस्पर सहकार की भावना से समूहों में रहते, बच्चे पैदा करते तथा उनके लिये व्यवस्था जुटाते हैं। एक साथ रहने पर वे अपने साथियों को सहयोग भी करते हैं।"

अपने भाषण के अन्त में प्रो. केसलर ने कहा कि मैं जीवन संघर्ष के अस्तित्व से इन्कार नहीं करता। किन्तु मेरा कहना यह है कि पारस्परिक संघर्ष द्वारा नहीं बल्कि सहयोग द्वारा प्राणी संसार एवं मानव जाति का विकास सम्भव हुआ है। प्राणियों की दो प्रमुख आवश्यकतायें हैं। एक तो भोजन प्राप्त करना दूसरा अपनी जाति की वृद्धि करना। इसमें पहली आवश्यकता संघर्ष को जन्म देती है, जबकि दूसरी परस्पर सहयोग के लिये प्रेरित करती है। किन्तु मेरा विश्वास है कि विकास के लिये दूसरी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण एवं शाश्वत है।

प्रो. केसलर' के विचारों का उल्लेख रूस के प्रसिद्ध विचारक 'प्रिंस क्रोपाटकिन' ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में किया है। जीव संघर्ष की तथाकथित व्याख्या पर व्यंग्य करते हुये वे लिखते हैं कि 'मैं अपने मित्र प्राणि विशेषज्ञ 'पोलियाकोफ' के साथ साइबेरिया के घने जंगलों में गया। डार्विन के सिद्धान्तों का हम दोनों पर नया-नया असर था। हम दोनों यह आशा लगाये बैठे थे कि हमें एक ही जाति के प्राणियों में तीव्र प्रतिस्पर्द्धा देखने को मिलेगी किन्तु वहाँ इसका कोई नामोनिशान नहीं था।"

जीवन में संघर्ष की स्थिति आ जाती है, इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता किन्तु वह सृष्टि के सिद्धान्त का रूप नहीं ले सकता। हिंसक जीवों से लेकर चोर, डाकुओं, आताताइयों से सामना करने के लिये संघर्ष का रास्ता अपनाना पड़ता है। यह उचित है और आवश्यक भी। पर यह अपवाद है। आपत्ति कालीन परिस्थितियों में ही इसका अवलम्बन लिया जाता है। संघर्ष जीवन का 'दर्शन' नहीं बन सकता। यदि ऐसा होगा भी तो अन्तःदुष्प्रवृत्तियों के लिये। अपनी दुष्प्रवृत्तियों से तो मनुष्य को सतत् लड़ना होता है। परिस्थितियों के अनुकूलन के लिये भी अथक् प्रयत्न करना होता है। चाहें तो इसी को जीवन-संघर्ष की संज्ञा दी जा सकती है। किन्तु यही जब बाह्य जीवन में अपने सजातियों के प्रति प्रकट होने लगेगा तो भारी संकट उत्पन्न हो जायेगा। उस स्थिति की कल्पना करें कि संघर्ष को जीवन का सिद्धान्त मानकर हर व्यक्ति अपनाने लगे तो कैसी स्थिति होगी। निश्चित ही "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली उक्ति चरितार्थ होगी ? 'मत्स्य न्याय' की यह परम्परा मनुष्य को पाषण युग के आदमखोर मनुष्य के तुल्य बना देगी और कुछ दिनों में सभ्यता लड़-मरकर समाप्त हो जायेगी।

पारिवारिक जीवन में यह परम्परा चल पड़े तो स्नेह आत्मीयता के पावन सूत्रों में बँधे रिश्तों को टूटते देर न लगेगी। जो शारीरिक दृष्टि से बलवान होगा, वह कमजोरों पर अपना स्वार्थ साधने के लिये अनेकों प्रकार के अत्याचार करेगा। 'संघर्ष के जीवन दर्शन बन जाने पर कौन माँ निरीह बच्चों का, कौन पिता अनाथ सदस्यों का पालन-पोषण करेंगे ? बच्चे की सुरक्षा के लिये अपनी जान की बाजी लगा देने वाली माँ क्यों कर यह उदात्त त्याग करेगी ? बच्चों के हितों के लिये अपने सुखों पर लात मारने वाला पिता कभी भी त्याग-बलिदान से भरा कष्टसाध्य जीवन स्वीकार न करेगा। क्रूरता मानवी भाव-संवेदनाओं की—सेवा, दया, करुणा की प्रवृत्तियों को रौंदती हुई चली जायेगी। स्थूल परिप्रेक्ष्य में जीवन-संघर्ष को सृष्टि का अनिवार्य नियम मान लेने पर तो हृदय-विदारक स्थिति ही प्रस्तुत होगी।

समाज की प्रगति एवं सुव्यवस्था आपसी सहयोग एवं सहकार पर टिकी हुई है। संघर्ष यानि सफलता का आधार बन जाय तो सामाजिक व्यवस्था को विश्रृंखलित होते देर न लगेगी। अनीति अत्याचार से, शरीर बल से हर व्यक्ति अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न करेगा। नैतिक पुरुषार्थ की कोई महत्ता न होगी। फलतः प्रगतिशील मानव समाज की भी वह दुर्दशा होगी, जो विलुप्त जीवों एवं आदिम जातियों की हुई। स्पष्ट है कि अस्तित्व संघर्ष का नहीं सहयोग का है, सहकार का है। मनुष्य जाति को सभ्यता एवं संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये जीवन दर्शन के रूप में सहयोग एवं सहकार को स्वीकार करना होगा न कि संघर्ष को। जीवों के विकास एवं अवसान के तथ्यों के पर्यवेक्षण से भी यही तथ्य स्पष्ट होता है कि जिनमें यह प्रवृत्ति जितनी अधिक रही वह उतना ही आगे बढ़ते गये और प्रगति के उच्चतम सोपानों पर चढ़ते गये। सहयोग एवं सहकारिता रूपी उत्कृष्ट जीवन दर्शन को विचारशील मनुष्य जाति को अपनाना ही होगा, तभी वह अपना अस्तित्व अक्षुण्ण बनाये रख सकती है। इसके लिये कोई क्या करे ? यदि यही जानना हो तो पहले स्वयं से सहयोग वृत्ति का शुभारम्भ करे। सामान्य शिष्टाचार का ही यह तकाजा है कि इतने अधिक उपकारों से उपकृत होने के बाद उस ऋण से उऋण होने के लिये हम समाज के प्रति कुछ करें, अन्यथा नैतिकता तो अपना कुछ माँगने की अनुमति भी नहीं देती है। वस्तुतः है ही क्या अपना, जो कुछ मिलता है वह समाज की उदारता से ही। जीवन भर भले ही हम अपना कहते रहें। मिले हुये पर कुण्डली मारकर बैठे रहें पर मरने के बाद वह जहाँ का तहाँ ही रह जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रश्न उठता है कि समाज के ऋण से उऋण होने के लिये किस प्रकार और क्या किया जाय ? पहला समाधान तो यही है कि समाज के प्रति हम अपने कर्त्तव्यों को निष्ठापूर्वक पूरा करते चलें। हमारे जीवन में कितने ही ऐसे व्यक्ति आते हैं, जिन्हें कि हमारी सहायता की जरूरत होती है। हमें स्वयं भी अपने जीवन में अब तक की सफल जिन्दगी के लिये कई एक व्यक्तियों की सहायता लेनी पड़ी है। परोक्ष और अपरोक्ष दोनों ही रूपों में। इसलिये उचित यही है कि जिन्हें सहायता की आवश्यकता है उन्हें सम्भव सहयोग देते रहा जाय।

प्रत्युपकार के इस आदर्श को अपनाने के साथ कुछ सेवापरायण गतिविधियाँ भी अपनाते चलना चाहिए। अपने उपार्जन का एक अंश निश्चित रूप से समाज कल्याण के, लोकमंगल के कार्यों में खर्च करते रहना चाहिए। इतिहास में ऐसे व्यक्तियों के नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं, जो समाज के ऋणी नहीं रहे, वरन् समाज को उनका ऋणी बनना पड़ा। कारण कि उन्होंने समाज से जो लिया उससे अधिक ही समाज को दिया। हम यदि उनका अंश-अंश अनुकरण न कर सकें तो कम से कम अपने श्रम, प्रतिभा और उपार्जन का एक अंश समाज के लिये तो लगा ही सकते हैं। वह होना चाहिए निरहंकार भाव से ही। क्योंकि इस प्रकार हम स्वयं को उऋण तो कर रहे हैं साथ ही प्रत्युपकार द्वारा एक ही तथ्य आत्मसात् किया जा रहा है कि व्यक्ति स्वयं एकाकी रूप से अपने ही बलबूते पर नहीं जी रहा है। परमार्थ के कई स्वरूप हो सकते हैं। दान पुण्य मात्र ही उसमें नहीं आता। आंतरिक उदारता से आरम्भ होकर उनकी परिधि क्रमशः विस्तृत होती चली जाती है।

परमार्थों में मूर्धन्य है, चिन्तन और चरित्र में उत्कृष्टता का समावेश करने में प्रयत्नरत रहना। मनुष्य की संरचना ऐसी नहीं है कि उसे दुःखी-दरिद्र रहना पड़े। यह तो मात्र दृष्टिकोण की विकृति मात्र है, जो रुझान, चिन्तन और व्यवहार में विकृतियाँ भरते-भरते संकटों के पहाड़ सामने ला खड़े करती हैं। मनःस्थिति सुधरे तो परिस्थिति सुधारने में तनिक भी देर न लगे। विचारणा यदि कुपथगामिनी हो तो सोने की लंका जैसा वैभव, दस सिरों जितना ज्ञान और कुम्भकर्ण जैसा बलिष्ठ रहते हुये भी वह समूचा परिकर कुकर्म करेगा और बेमौत मरेगा। तथ्यों को देखते हुये आधारभूत परमार्थ एक ही ठहरता है—सद्ज्ञान सम्वर्धन। लोक-मानस का परिष्कार यदि बन पड़े तो सीमित साधनों से ही स्वर्गीय सुख-शान्ति का रसास्वादन करते जिया जा सकता है। विग्रहों, अपराधों से संत्रस्त जन समुदाय को अभयदान देने के लिये न शस्त्र कारगर होते हैं और दमन समाधान के दायरे में भटकते रहने से आत्यन्तिक हल निकलता है। इस सन्दर्भ में अपनाया जाने वाला एक ही उपाय है कि चिन्तन की निकृष्टता उलट देने वाले प्रयासों को अपनाया जाय। अन्धकार से लड़कर नहीं जीता जा सकता। प्रकाश का प्रज्वलन और वितरण ही वह आधार है, जिसमें तमिस्राजन्य भटकाव एवं आतंक को परास्त कर सकना सम्भव हो सकता है। तथ्य तो सनातन है, पर आज तो उसे प्रस्तुत विभीषिकाओं का सामयिक समाधान भी माना जा सकता है। आत्मघात पर उतारू जनसमुदाय को विनाश के गर्त से बचाने का एक ही उपाय है कि हर किसी को नये सिरे से सोचने के लिये वातावरण एवं आधार दिया जाय। उलटे को उलटकर सीधा करना ही विचारक्रान्ति है। इसी प्रयास में इन दिनों प्रज्ञा अभियान अपनी समूची शक्ति लगाकर नव सृजन की प्रक्रिया अग्रसर बनाने में प्राण-पण से संलग्न है। विश्वास किया जाना चाहिए कि दुर्गति के रहते दुर्गति से पिण्ड छूटेगा नहीं। विश्वास किया जाना चाहिए कि सद्भाव सम्वर्धन में यदि सफलता मिले—व्यवहार में सत्प्रवृत्तियों का समावेश हो सके तो वातावरण में कायाकल्प जैसा अन्तर दिखाई देगा। सम्पन्नता, सुरक्षा, शान्ति और प्रगति के लिये बहुत कुछ करने की आवश्यकता है किन्तु यह स्मरण रखा जाने योग्य है कि उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना लोक-चिन्तन में सदाशयता का समावेश बन पड़ने पर ही मूर्तिमान हो सकेगी। घिनौना चिन्तन, कमीना आचरण यदि यथास्थान बना रहा तो फिर समझना चाहिए कि प्रगति और शान्ति की कल्पना, बिना पंख की उड़ान ही बनी रहेगी।

निदान के उपरान्त ही उपचार बन पड़ता है। प्रस्तुत समस्याओं, विग्रहों, संकटों और विभीषिकाओं का एक ही कारण है—जनमानस में निकृष्टता की भरमार। लोक व्यवहार में अवांछनीयताओं के बढ़ते जाने से उसकी प्रतिक्रिया चित्र-विचित्र प्रकार की कठिनाइयाँ आगे खड़ी करती रहती हैं। जड़ न काटने पर विष वृक्ष के पत्ते तोड़ते, कोपल पोंछते रहने से कुछ बनने वाला है नहीं। तथ्य को जितनी जल्दी समझा जा सके उतना अपना और सबका भला है। आज का सर्वोपरि परमार्थ है—आलोक वितरण। आलोक वितरण अर्थात् वह प्रयास जिसका विचार क्रान्ति आन्दोलन, सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन, लोकमानस का परिशोधन आदि नामों से प्रतिपादन एवं प्रस्तुत किया जाता है।

सदाशयता का विकास ही दुर्बुद्धि का निवारण कर सकता है

भौतिक सामर्थ्यों में शरीरबल, धनबल, शस्त्रबल आदि की चर्चा की जाती है। प्राचीनकाल में इनको ही अधिक महत्त्व मिला हुआ था। प्रगति सोपानों पर बढ़ते हुये विकास पथ के पथिक मनुष्य के हाथों सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शक्ति हाथ लगी बुद्धिबल की। आज की तुलना में प्राचीनकाल में बुद्धि का इतना विकास भी नहीं हुआ था। फलस्वरूप पिछड़ी तथा अविकसित स्थिति में पड़ा था। जैसे-जैसे बुद्धि का विकास हुआ, मनुष्य उत्तरोत्तर गति से प्रगति की ओर बढ़ता गया और आज वहाँ जा पहुँचा जिसे परमाणु युग के रूप में जाना जाता है। जो कुछ भी भौतिक उपलब्धियाँ एवं आविष्कार आज सर्वत्र दिखाई पड़ रहे हैं। वह सब बुद्धि की ही चमत्कारी परिणति है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शरीर के हर अवयव और संसार के हर पदार्थ के भले-बुरे परिणाम प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं। दुरुपयोग सदा कष्टकारक होता है। जिह्वा इन्द्रियों का चटोरापन अपनाने और कामेन्द्रियों का विषय-लिप्सा में उपभोग करने से स्वास्थ्य की जड़ें खोखली हो जाती हैं। फलस्वरूप रुग्णता एवं दुर्बलता का कष्ट भोगते हुये अकाल ही काल-कवलित होना पड़ता है। धन का दुरुपयोग करने से कंगाली पल्ले बँधती और दुष्प्रवृत्तियों का कष्टप्रद प्रतिफल अतिरिक्ति रूप से भुगतना होता है। दुरुपयोग सर्वत्र हानिकारक एवं निन्दनीय माना जाता है। परन्तु बुद्धि का दुरुपयोग तो और भी अधिक भयावह है। दुरुपयोगकर्त्ता मनुष्य अपने लिये तथा समस्त समाज के लिये एक अभिशाप सिद्ध होता है।

आर्षकालीन ऋषिगण बुद्धि की अद्भुत सामर्थ्य से अवगत थे तथा उसे मनुष्य के विकास अथवा पतन का कारण मानते थे। बुद्धि संयत बनी रहे, सदुद्देश्यों में निरत रहे, उच्छृंखल न हो जाय, ऐसे आत्म-नियन्त्रण हेतु बालक अनेकों बार सुसंस्कारित बनाने की परिपाटी भी इसी कारण थी। परिवार एवं समाज का वातावरण भी ऐसा बनाये रखने का प्रयत्न किया जाता था, ताकि दुष्प्रवृत्तियों को पनपने का अवसर न मिले। सद्बुद्धि के प्रकाश में व्यक्ति बौद्धिक एवं चारित्रिक स्तर देवापम बना रहता था। फलतः सर्वत्र सुख-शान्ति की निर्झरिणी प्रवाहित होती थी, जिसमें अवगाहन करके भारतवासी स्वयं तो पवित्र रहते ही थे अपनी नैतिक एवं आध्यात्मिक विशेषताओं का लाभ समस्त विश्व को देते थे। अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं के प्रकाश से भारत ने समय-समय पर विश्व-वसुधा को आलोकित, प्रकाशित किया है।

पिछली शताब्दी से बुद्धिवाद ने एक नई करवट ली। तर्क और प्रत्यक्षवाद ने श्रद्धा का भाव एवं सदाशयता भरा क्षेत्र छीन लिया। तर्क और प्रमाण के समर्थकों ने मानवी आस्थाओं एवं संवेदनाओं पर गहरा कुठाराघात किया। बुद्धिवाद ने उच्चस्तरीय आदर्शों एवं सिद्धान्तों को उपयोगी ठहराया। फिर परमार्थ की बात का—सेवा और सदाशयता का—करुणा और दया की सद्भाव भरी प्रवृत्तियों का समर्थन कैसे हो ? स्वच्छन्दता की दिशा में अपने एक-एक चरण बढ़ते हुये बुद्धिवाद आज हमें वहाँ ले जा पहुँचा है, जहाँ उत्कृष्टता के प्रति आस्था भी अनुपयोगी और अनावश्यक बनकर रह गयी है। निरंकुश बुद्धिवाद घुमा-फिराकर संकीर्ण स्वार्थपरता का ही समर्थन करता है। खाओ-पीओ मौज उड़ाओ की पशु-प्रवृत्तियों को ही सार्थक बताया जाता है। जब कर्म फल, ईश्वर, आत्मा, परलोक के अस्तित्व को ही अप्रामाणिक ठहरा दिया गया, फिर स्वच्छन्द आचरण से क्या हानि ? कानूनी पकड़ से बचते हुये अनाचार करने की छूट ने मनुष्य को अनास्थावान, दुराचारी बनाकर रख दिया है। आज का औसत बुद्धिमान मनुष्य इसी पिछड़े स्तर का है। इस गुजरे स्तर की मान्यताओं को अपनाने वाला मनुष्य कोई ऊँची बात नहीं सोच सकता—ऊँचे काम भी नहीं कर सकता। मान्यतायें बदलने पर क्रिया-कलाप बदलना स्वाभाविक है। जैसा सोचा जायेगा वैसा ही किया भी जायेगा। आधुनिक बुद्धिवाद की तथाकथित प्रगति ने न केवल अनास्था का दृष्टिकोण दिया, वरन् अनैतिक आचरण की खुली छूट दे दी। परिणाम सामने है पतनोन्मुखी प्रकृति का नर-पशु आदर्शों के समस्त बन्धनों को तोड़ता हुआ, उच्छृंखल गतिविधियों को अपनाता हुआ वैयक्तिक एवं सामूहिक जीवन में घोर अशान्ति उत्पन्न करने की दुःखद भूमिका एवं भविष्य बनाने में संलग्न है।

ऐसी स्थिति में आज कुछ हो रहा है, जो गुजर रहा है—सो सामने है। पशु-पक्षियों के अण्डे, बच्चे, रक्त, माँस, चटकर जाने का जो व्यापक समर्थन किया गया उससे क्रूरता का खुला खेल खेलने का अवसर मिला। दूसरों की असह्य पीड़ा को अपने जीभ के स्वाद की तृप्ति अथवा बल वृद्धि की मृगतृष्णा के समक्ष नगण्य समझा गया। बिलखते और चीत्कार करते निरीह प्राणी का आर्तनाद जब अपनी मेज पर रखी जायकेदार प्लेट से टकराकर वापस लौटा तो साथ ही मनुष्य के अन्तरंग में रहने वाली करुणा को समेटता-घसीटता ले गया। निर्दयता आहार के सहारे बढ़ी और अपना क्षेत्र बढ़ाते हुये उसने मनुष्यता को भी लपेट में ले लिया। पशु-पक्षी जब सताये मारे जा सकते हैं तो इस दुष्प्रवृत्ति की लपेट से मनुष्य ही क्यों कर बचे ? मनुष्य भी आखिर एक प्राणी है उसके साथ भिन्न ढंग से सोचने की क्या आवश्यकता ?

निरंकुश बुद्धिवाद के बढ़ते हुये प्रभाव ने मनुष्य का भी मूल्यांकन अन्य प्राणियों की ही भाँति किया है। फलस्वरूप निर्दयता एवं निष्ठुरता का वातावरण बढ़ रहा है। एक-दूसरे का रक्त-माँस खाने का अभ्यस्त तो अभी मनुष्य नहीं हो सका है पर अनीति और अनाचार से किसी को सताने में जो झिझक होती है, उसे बहुत अंशों तक त्याग दिया है। एक तो वैसे ही मनुष्य की प्रवृत्ति स्वभावतः पाप और पतन की ओर बढ़ रही थी। बुद्धिवाद द्वारा उसे समर्थन मिल जाने पर अनाचार के लिये खुली छूट मिल गयी। नीति, सदाचार, सामूहिकता, नागरिकता, सज्जनता आदि उत्कृष्टतायें मात्र वाक्चर्चा की विषय-वस्तु बनकर रह गयी हैं। व्यक्ति और समाज इसी प्रभाव से प्रभावित होता—इसी रंग में रंगता चलता जा रहा है। फलस्वरूप मनुष्य की स्थिति विचित्र हो गई है। भोगवाद की वासना, तृष्णा एवं अहंता की संकीर्ण परिधि में ही इच्छाएँ, आकांक्षाएँ परिश्रम करती रहती हैं तथा उनकी पूर्ति के निमित्त जाल-जंजाल रचती रहती हैं।

इन परिस्थितियों में दुष्प्रवृत्तियों का संसार में बढ़ते चलना स्वाभाविक है। प्रकृति पर भी मनुष्य इतना नियंत्रण नहीं प्राप्त कर सका है कि दुष्प्रवृत्तियाँ तो बढ़ती रहें, पर उनके रोग, शोक, कष्ट, सन्ताप, कलह-विग्रह अपराध, अनाचार, उत्पीड़न, चीत्कार न बढ़े। प्रकृति अपना धर्म जोड़ने से रुकी नहीं है। क्रिया की प्रतिक्रिया न हो ऐसा कोई तर्क या विज्ञान नहीं निकला है। असन्तुष्ट,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुष्प्रवृत्तियों के साथ-साथ आन्तरिक क्षोभ, बाह्य विद्वेष आक्रमण-अवरोध, हिंसा-प्रतिहिंसा, क्षोभ-असंतोष का कुचक्र भी चल रहा है। समाज व्यवस्था में इतनी विकृतियाँ आ गई हैं कि न तो व्यक्ति समूह के लिये उपयोगी रहा है और न समुदाय की घुटन व्यक्ति का सन्तोष की साँस लेने दे रही है। अगले दिन और भी दुखद भयंकर हो सकते हैं। यदि दुर्बुद्धि का कुचक्र भी इसी प्रकार चलता रहा तो कुमार्गगामी बुद्धि विपत्तियों का घटाटोप ही प्रस्तुत करती रहेगी। स्वास्थ्य, सन्तोष, सद्भाव, सज्जनता, प्रेम, विश्वास, अर्थ-सन्तुलन एक-एक करके विलीन होते चले जा रहे हैं। चिन्ता, भय, आशंका, निराशा, विक्षोभ, उद्वेग, घृणा और ईर्ष्या की आग में अन्तःकरण सदा जलते रहते हैं। हर घड़ी असन्तोष और खीज के कारण जीवन जलता हुआ दीखता है।

यह तो व्यक्ति की निज की आन्तरिक स्थिति हुई है। समूहगत परिस्थितियाँ और भी भयावह हैं। बेकारी, बेरोजगारी, महँगाई, चोरी, ठगी, जालसाजी, बेईमानी की प्रबलता जीवन को असह्य बनाये दे रही है। सर्वत्र शोषण का जाल बिछा है। बाजार में नकली वस्तुओं एवं मिलावट का बाहुल्य है। ऊँची कीमत देने पर भी खरी वस्तुयें मिल जायँ इसकी कोई गारंटी नहीं है। राजनीति और शासन तन्त्र में हेय व्यक्तित्वों की भरमार है। इस वातावरण में न तो व्यक्ति सुखी रह सकता है और न ही समाज का ढाँचा स्थिर रह सकता है। आज की विषम परिस्थितियों से कोई संतुष्ट नहीं है। क्षोभ और असन्तोष की प्रवृत्ति व्यक्ति से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति तक में चरम सीमा पर पहुँचती जा रही है। अनीति की, अनाचार की शिकायत तो सभी करते हैं। सभी उनसे सन्त्रस्त भी हैं पर आश्चर्य यह कि अधिकांश उन्हें ही अपनाये हुये हैं। इसे एक विडम्बना ही कहा जायेगा।

प्रश्न यह है कि इन परिस्थितियों को ज्यों का त्यों बना रहने दिया जाय ? इन्हें यथाक्रम बढ़ने ही दिया जाय। प्रबुद्ध वर्ग ने यदि आँखें मींच लीं तो न चाहते हुये भी उपरोक्त परिस्थितियाँ और भी अधिक उग्र एवं विस्फोटक होती चली जायेंगी। समझदारी और जिम्मेदारी सदा अनुपयुक्त को सम्भालने और अनावश्यक को रोकने के लिये आगे बढ़ने की, सामना करने की प्रेरणा देती रही हैं। आज भी यही बात है, जो अपने अन्तःकरण में दूरदर्शिता, सहृदयता, विवेकशीलता एवं समर्थता अनुभव करते हों, उन्हें अन्तःप्रेरणा भी कचोटेगी और मानवता की पुकार भी विवश करेगी कि वासना-तृष्णा के लिये मरते-खपते रहने तक सीमित न रहकर कुछ अधिक करने के लिये आगे बढ़ा जाय और विश्व की बिगड़ती हुई परिस्थितियों को सँभालने के लिये कुछ आत्मबल, साहस एवं त्याग का परिचय भी दिया जाय।

कहा जा चुका है कि बुद्धिबल इस युग की सबसे बड़ी शक्ति है, जिसके सदुपयोग से मानवजाति का भविष्य आधारित है। आज की विषम परिस्थितियों की उत्तरदायी मानवी दुर्बुद्धि ही है। जिसने चिर अतीत से चली आ रही स्वर्गीय परिस्थितियों का नरक में बदलकर देवत्व का वरण करने वाले मनुष्य को नर-पशु और नर-पिशाच में परिवर्तित कर डाला। यह दुर्बुद्धि ही है जो सुख-शान्ति की परम्परा को सर्वनाश की परिस्थितियों में परिणत कर रही है। व्यक्तिगत जीवन में अनाचार और सामूहिक जीवन में भ्रष्टाचार उसी के द्वारा उत्पन्न किये गये हैं। मूढ़ मान्यतायें, कुरीतियाँ, दुष्प्रवृत्तियाँ जिस एक माँ की सहोदर बेटियाँ हैं, उसका नाम है दुर्बुद्धि।

इसे यथाक्रम में चलने दिया गया तो कठिनाइयाँ और भी अधिक बढ़ेंगी और कुछ ही दिन में संसार दुःख-दारिद्र्य के दावानल में जलने लगेगा। आपत्तिकालीन परिस्थितियों में हर समझदार व्यक्ति को आपत्ति धर्म का पालन करना पड़ता है। पड़ौस में आग लगी हो, कोई दुर्घटना घटी हो, तो अपना सामान्य दैनिक क्रम हर्ज करके भी आपत्तिग्रस्तों की सहायता करनी पड़ती है। जिनकी अन्तरात्मा कहती है कि आज विश्वव्यापी आपदा की घड़ी है, इस विषम समय में हमें भी कुछ करना चाहिए, उन्हें लोभ, मोह के संकीर्ण बन्धनों से बाहर निकलना होगा। विवेकवान् होते हुये भी अन्तः की पुकार की जो उपेक्षा करते हैं, उन्हें आत्मघाती ही कहा जा सकता है।

परिस्थितियों की प्रस्तुत विभीषिकाओं का रोना रोने से काम नहीं चलेगा। समस्यायें दुर्बुद्धि द्वारा उत्पन्न की गई हैं, समाधान सद्बुद्धि द्वारा ही निकलेगा। उच्छृंखलता की ओर बढ़ते दुर्बुद्धि के बेलगाम घोड़े पर सद्भावना एवं सदाशयता का अंकुश लगाना होगा। यह वे ही कर सकते हैं जिनके अन्तःकरण की संवेदनायें जीवन्त हैं। आवश्यकता भाव संवेदनाओं से अनुप्राणित ऐसे बुद्धिमानों-विचारशीलों की पड़ेगी जो मनुष्य की महानता को आस्थावान, आदर्श एवं सिद्धान्तनिष्ठ जीवन को सर्वोपरि महत्त्व देते हैं तथा उसे व्यक्ति एवं समाज की स्थायी सुख-शान्ति का आधार मानते हैं। इस युग की सर्वोपरि शक्ति 'बुद्धि' यदि सृजन की दिशा में चल पड़े तो प्रस्तुत समस्त संकटों का निवारण पूर्णरूपेण सम्भव है।

निरंकुश बुद्धिवाद के अतिरिक्त एक और बुद्धि की विकृति इन दिनों जनमानस में संव्याप्त है कि एकाकी रहने अपना ही अपना लाभ सोचने, अनीति बरतने में ही लाभ है। नीति का, सहकार का मार्ग हर दृष्टि से घाटे का सौदा है। तथ्यों की गहराई में जाने पर यह मान्यता सही नहीं उतरती। सच्चाई यह है कि बेईमान व्यक्ति भी प्रत्यक्ष में ईमानदारी का समर्थक एवं प्रशंसक पाया जाता है। बेईमान व्यक्ति भी ईमानदार साथी चाहता है। प्रामाणिक व्यक्तियों की सरकारी गैर-सरकारी सेवाओं में सर्वत्र माँग है। यह इस बात का परिचायक है कि ईमानदारी वरणीय है। ईमानदार व्यक्ति केवल अपने आत्मीय परिजनों में ही नहीं सम्मान पाता वरन् शत्रु तक उसकी सच्चाई एवं ईमानदारी की प्रशंसा किये बिना नहीं रहते।

समाज में प्रामाणिक व्यक्तियों की कमी होने से ईमानदारी का महत्त्व कम नहीं हो जाता प्रकृति के भण्डार में सोना, हीरे, मोती, रत्न कम ही परिमाण में मिलते हैं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सर्वत्र नहीं पाये जाते, उनका मूल्य प्रचुर मात्रा में हर जगह पाये जाने वाले पदार्थ, लकड़ी, कोयला पत्थर आदि की तुलना में कहीं अधिक होता है। ईमानदार व्यक्ति को हजारों मनकों के बीच अलग चमकने वाला हीरे सदृश कहा गया है। जिसका मूल्य अन्य सभी मनकों की अपेक्षा अधिक आँका जाता है, वर्तमान समय में ईमानदारी के उदाहरण मिलने में कठिनाई तो है, वे कम ही देखने में आते हैं, फिर भी उनका सर्वथा अभाव नहीं है। समाचार पत्रों में समय-समय पर ऐसे अनुकरणीय आदर्श प्रकाशित होते रहते हैं। हाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनकी संख्या चोरी, बेईमानी, लूट-खसोट, हत्या, डकैती आदि अनैतिक घटनाओं की तुलना में अत्यल्प होती है। न्यूनता होने पर भी ईमानदारी की महत्ता एवं गरिमा कम नहीं होती। खोजे जाने पर ईमानदार एवं कर्त्तव्यनिष्ठों के उदाहरण मिलते रहते हैं।

२४ जून, १९८२ के दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित ईमानदारी एवं कर्त्तव्यनिष्ठा की घटना बड़ी ही प्रेरक है। २१ मई को ७५ वर्षीया श्रीमती कमरून्निसा अपने पौत्र-पौत्री के साथ भोपाल जबलपुर बस से यात्रा कर रही थी। उनका एक थैला बस में छूट गया, जिसमें लगभग २२ हजार रुपये के आभूषण आदि थे। बस के चालक परिचालक ने अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा एवं ईमानदारी का परिचय देते हुये उस थैले को भोपाल-डिपो की सुरक्षा-शाखा में जमा करा दिया। पूछताछ के उपरान्त वह थैला श्रीमती कमरुन्निसा को वापस कर दिया गया। २३ जून को भोपाल से १२० किलोमीटर दूर बरेली में विधायक जसवन्त सिंह की अध्यक्षता में एक समारोह आयोजित किया गया, जिसमें उक्त बस के चालक श्रीराम यादव और परिचालक श्री रियाज मियाँ को उनकी ईमानदारी और कर्त्तव्यनिष्ठा के लिये सार्वजनिक रूप से सम्मानित किया गया। समारोह के अध्यक्ष की ओर से उन्हें प्रशस्ति-पत्र एवं दीवाल घड़ी भेंट की गयी। मध्यप्रदेश राज्य-परिवहन निगम द्वारा प्रत्येक को १०१ रुपये का नकद पुरस्कार प्रदान करने की घोषणा की गई।

कुछ लोगों ने उनकी निष्ठा को परखने के लिये चुटकी लेते हुये पूछा कि सौ-दो-सौ रुपये के इनाम से आपको क्या फायदा हुआ ? २२ हजार का माल रख लेते तो कुछ काम भी आता। उन्होंने बड़ी सहजता से उत्तर दिया कि मुझे कर्त्तव्य निर्वाह से जो आत्म-सन्तोष और आन्तरिक आनन्द मिला उसे २२ हजार क्या २२ लाख रुपयों से भी कोई नहीं प्राप्त कर सकता। सच पूछिये तो हममें न कोई पुरस्कार पाने की लालसा रही और न समारोह में सम्मानित किये जाने की। हमने अपना कर्त्तव्य पूरा किया। इसी से मैं पूर्ण सन्तुष्ट हूँ।

इस भ्रष्टाचार के जमाने में भी ऐसे ईमानदार लोग हैं, जो अत्यन्त निर्धन होने के बावजूद किसी की चीज या धन पर अपना ईमान नहीं डिगाते और पाई गई वस्तु को उसके मालिक को लौटाने में प्रसन्नता अनुभव करते हैं। गतवर्ष २३ जुलाई को मोरिण्डा पंजाब के पास की घटना है। श्रीमती शान्तिदेवी नामक महिला ने भैंस खरीदने के लिये पाँच सौ रुपये बैंक से ऋण लिये थे। रास्ते में बैंक की पास-बुक सहित स्थानीय बस अड्डे के समीप गिर गये। वहाँ से गुजर रहे मिल्क को-आपरेटिव यूनियन के श्री गुरुचरण सिंह को वह पास-बुक पाँच सौ रुपयों सहित मिली। बाद में श्री गुरुचरण सिंह ने श्रीमती शान्ति देवी के घर का पता लगाकर उसे उसकी खोई हुई पास बुक एवं धनराशि वापस कर दी। उक्त घटना २४ जुलाई, १९८१ के पंजाब केशरी दैनिक में छपी थी।

२२ जुलाई, १९८१ के वीर अर्जुन दैनिक समाचार पत्र में ईमानदारी का अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करने वाली एक और घटना प्रकाशित हुई थी। ठेले पर चाय बेचने वाले श्री ब्रजमोहन ने एक १२ वर्षीय लड़के के कब्जे से ५१,४५० रुपये के नोट पुलिस को सौंप दिये। ब्रजमोहन को इस कार्य के लिये एक प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया। पुलिस अधिकारियों ने बताया कि भिवानी जिले के भादेरा गाँव का धर्मवीर नामक किशोर वय का लड़का अपने पिता के घर से ये रुपये निकालकर भाग आया था। उसने ब्रजमोहन से नौकर रख लेने को कहा था।

इसी तरह १ सितम्बर, १९८० का समाचार है। बम्बई जैसी आधुनिकतम नगरी में भी ईमानदार व्यक्ति रहते हैं। इस बात का परिचय वहाँ के एक बस परिचालक श्री बी. आई. बब्लाल ने अपनी ईमानदारी एवं कर्त्तव्यनिष्ठा प्रस्तुत करते हुये दिया। उक्त बस परिचालक को अपनी बस में ३२ हजार रुपये की कीमत के आभूषण तथा दस्तावेजों सहित एक सन्दूक मिला। इस सन्दूक के बारे में मालिक के अलावा केवल उसे ही मालूम था। उसने सन्दूक को प्रतिष्ठान के गुमशुदा सम्पत्ति कार्यालय में जमा करा दिया।

अगले दिन सन्दूक का मालिक एक स्वर्णकार आया, पूछताछ के बाद उसे दे दिया गया। अपने सन्दूक में आभूषण एवं दस्तावेज ज्यों के त्यों रखे पाकर उसका हृदय बस परिचालक के प्रति कृतज्ञता से भर गया। उसने १०१ रुपये उसे इनाम स्वरूप देने चाहे किन्तु श्री बब्लाल ने उन्हें लेने से इन्कार कर दिया और कहा यह तो मेरा छोटा-सा उत्तरदायित्व था। मैंने कोई अहसान का कार्य थोड़े ही किया।

इसी से मिलती-जुलती ईमानदारी का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करने वाली घटना चमोली जिले की है। दिल्ली के एक उद्योगपति श्री हंसराज गढ़वाल मोटर्स लिमिटेड की बस में चमोली से गोपेश्वर आ रहे थे, उनका पर्स बस में छूट गया किसमें १५,००० रुपये व अन्य जरूरी कागजात थे। अगले दिन जी. एम. ओ. कम्पनी के श्री रघुवीर सिंह नेगी को वह पर्स मिला। काफी ढूँढ़-खोज करने पर पर्स के स्वामी का पता चला। श्री नेगी ने उसे श्री हंसराज को वापस कर दिया। श्री हंसराज ने उन्हें पुरस्कार स्वरूप ५०० रुपये देने चाहे परन्तु श्री नेगी ने इसे अपना कर्त्तव्य कह कर मना कर दिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वस्तुतः ईमानदारी व्यक्ति के भीतर से पैदा होने वाला आध्यात्मिक गुण है, जिसे ऊपर से थोपा नहीं जा सकता। यह तो उच्चस्तरीय दृष्टिकोण और श्रेष्ठ व्यक्तित्व का प्रमाण है। कुछ वर्ष पूर्व की बात है। दिल्ली सुभाष नगर के श्री विजयवीर और कृष्णनगर निवासी श्री प्रेमसागर नामक दो व्यापारी मित्रों ने ईमानदारी का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। दोनों मित्र किसी कार्यवश साथ-साथ बात-चीत करते हुये जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक थैली पड़ी मिली, जिसमें ४००० रुपये थे। उस राशि को अविलम्ब दरियागंज थाने में जमा करा दिया गया। कहा जाता है कि व्यापारी धन के लोभी होते हैं लेकिन उक्त मित्रों ने लोगों की इस मान्यता को निरस्त कर दिखाया। थानाध्यक्ष के द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने बताया कि अपने व्यवसाय में वे लाभांश अवश्य लेते हैं तो किसी दूसरे की चीज पर नियत खराब नहीं करते।

बस कण्डक्टरों के बारे में आमतौर से लोगों की राय यह पाई जाती है कि चन्द पैसों के लिये हेरफेर करते हैं पर दो-तीन वर्ष पूर्व लखनऊ में रोडवेज के कण्डक्टर श्री उमानाथ मिश्र ने जिस राष्ट्रीय चरित्र का परिचय दिया वह अनुकरणीय एवं अभिनन्दनीय है। उन्हें उनकी ईमानदारी के कृत्य के उपलक्ष्य में सार्वजनिक रूप से अभिनन्दित भी किया गया। उनकी बस में छूटे हुए ८६००० रुपयों के थैले, जिसके मालिक को उन्होंने निःस्पृह भाव से लौटा दिया। मालिक द्वारा पुरस्कार के प्रस्ताव को भी उन्होंने अस्वीकार कर दिया और कहा—"मुझे तो पुरस्कार मिल गया। जो आत्म-सन्तोष और आत्म-गौरव मुझे मिला, उसकी बराबरी दुनिया का कोई भी इनाम नहीं कर सकता।"

ऐसे व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में आगे बढ़ने पर उतारू हो जायें तो अपनी मौलिक विशेषता के कारण शिखर पर जा पहुँचते हैं। उल्लेखनीय है कि प्रामाणिक एवं ईमानदार दुकान व्यवसायियों की खोज सभी व्यक्ति करते हैं। एक बार विश्वास जम जाने पर ग्राहक टूटते नहीं। बेईमान व्यक्ति प्रारम्भ में भले ही कुछ अधिक कमा लें लेकिन एक बार पोल खुलते ही ग्राहक टूटने लगते हैं। वस्तुतः बेईमानी भी ईमानदारी का लबादा ओढ़कर ही सफल होती है, यदि ऐसा न हो तो उसकी सफलता सन्दिग्ध ही रहेगी। सरकारी अथवा गैर-सरकारी सेवाओं में कार्यरत व्यक्ति भी अपनी ईमानदारी, कार्यकुशलता एवं प्रामाणिकता के बलबूते निरन्तर आगे बढ़ते जाते हैं।

ईमानदारी का अवलम्बन सभी के लिये सुगम है, बेईमानी के लिये बड़ी चतुरता अपनानी पड़ती है। थोड़ी-सी बेईमानी को छिपाने के लिये अति चातुर्य की आवश्यकता होती है। बेईमानी की दुर्गन्ध अपने आप फैलती रहती है और समीपवर्ती वातावरण में स्वतः भरती रहती है। चतुराई बहुत दिनों तक चल नहीं पाती, धीरे-धीरे यथार्थता प्रकट होती ही चली जाती है। वस्तु-स्थिति प्रकट होते ही लोगों की दोहरी प्रतिक्रिया आरम्भ हो जाती है। जिस व्यक्ति का जुआरी, लुच्चा, उचक्का होना सर्वविदित है, उसका परिचय तो लोग सहन भी कर लेते हैं। किन्तु जब भले आदमी का नाम से प्रख्यात मनुष्य की पोलपट्टी सामने आती है तो उस भलमनसाहत या सफेदपोशी की आड़ में चल रही बेईमानी के सम्बन्ध में जानकर लोग दुहरी घृणा करने लगते हैं, उस व्यक्ति पर 'काठ की हाँडी दुबारा नहीं चढ़ती' की उक्ति चरितार्थ होने लगती है। उसकी धूर्तता का परिचय पाकर लोग सदा के लिये सतर्क हो जाते हैं और फिर ईमानदारी बरतने पर सहज ही उसका विश्वास नहीं करते। इस प्रकार बेईमानी या धूर्तता का अवलम्बन लेने वाला व्यक्ति अपने सच्चे सहयोगी, समर्थकों से रहित हो जाता है, कुछ चापलूस लोग भले ही उसको चापलूसी करते रहें। जिसके सच्चे सहयोगी कम होते जायेंगे, उसके क्रिया-कलापों में उतनी सी कठिनता बढ़ती जायेगी और लाभ के स्थान पर हानि होने लगेगी। एक दिन ऐसा आता है, जब बेईमान व्यक्ति को स्वयं अपने अनुभव के आधार पर यह सोचना पड़ता है कि बेईमानी पहले सिरे की मूर्खता है उसका अन्तिम परिणाम हानिकार ही होता है।

क्षुद्र या बचकाने लोग ही यह सोचते हैं कि बेईमानी या धूर्तता भरी अनीति के मार्ग से जल्दी धन कमाया जा सकता है। वे यह भूल जाते हैं कि ईमानदारी एवं आदर्शवादिता अपनाने पर प्रारम्भ में भले ही कुछ कठिनाई से होकर गुजरना पड़े लेकिन जब व्यक्ति की प्रामाणिकता को समाज परख लेता है, तो सर्वत्र उसका सम्मान बढ़ जाता है, फलतः उसके सच्चे समर्थक एवं सहयोगी बढ़ते जाते हैं और वह सफलता एवं समृद्धि की मंजिल तक पहुँच जाता है। बेईमानी का तो पर्दाफाश होने पर उसकी कोई पूछ नहीं रहती। लोगों की दृष्टि में बेईमान का मूल्य गिर जाता है, फिर वे उसके ईमानदारी अपनाने पर भी उसका विश्वास नहीं करते। जिन्हें ईमानदारी घाटे का सौदा जान पड़ता था अन्ततः वे भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ईमानदारी की नीति ही अन्ततोगत्वा लाभदायक होती है। बेईमानी की प्रारम्भिक चकाचौंध भले ही प्रारम्भ में भटका भर दे। यदि सब इस तथ्य को जान लें तो नहीं अपराध नजर आयें न अशान्ति। बेईमानी की वृत्ति संकीर्ण स्वार्थपरता की ही परिणति है, जो व्यक्ति को एकाकी व अपराधी बनाती है। यदि सब समष्टि का हित सोचने लगें, नीति के मार्ग पर चलें, सहकार, औदार्य की वृत्ति का विकास करें तो समाज में निश्चित ही सुख-शान्ति बन सकती है।

सहकारिता ही प्रगति का आधार खड़ा करती है

यह सारा संसार सहकारिता के सिद्धान्त पर काम कर रहा है। यदि कोई यह विचार करे कि वह इस जीवन यात्रा में एकाकी ही रहकर अपना लक्ष्य पा लेगा तो यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असम्भव ही माना जाना चाहिए। सृष्टा ने इसी कारण असंख्यों ग्रह-नक्षत्रों, तारामण्डलों एवं गुच्छकों का एक परिवार बसाया है। आपसी सहकार के आधार पर ही उनकी विधि-व्यवस्था टिकी हुई है। यदि इनमें से एक भी ग्रह बिना दूसरे की चिन्ता किये अपनी दिशा स्वयं निर्धारित करने लगे तो अन्त विनाशकारी ही होगा।

विश्व का एक छोटा-सा संस्करण परिवार व्यवस्था के रूप में दीख पड़ता है। समाज की यह इकाई अपने आप में समग्र हो पाती है तो मात्र उसके सदस्यों की परस्पर सहजीवी भावना के कारण। परस्पर स्नेह, सौहार्द्र एवं सहयोग जिन्दा न रहे तो देखते-देखते बने बनाये संयुक्त कुटुम्ब विघटित होते चले जाते हैं। ऐसी ही कुछ व्यवस्था विश्व नियन्ता ने प्रकृति के अपने साम्राज्य में की है। कीट-पक्षी, वृक्ष-पुष्प, मानव-वनस्पति इत्यादि परम्परा सहकारिता के आधार पर ही जीवन जीते हैं। अध्यात्म प्रतिपादन यह बताते हैं कि विराट् ब्रह्म की असीम चेतना ही चारों ओर व्याप्त है। लघुतम इकाई में संव्याप्त चेतना का सहज स्वभाव है स्नेह-सहयोग। 'इकोलॉजी' विज्ञान के अध्येता बताते हैं कि प्रकृतिगत सन्तुलन इसी स्नेह-सहयोग पर आधारित है।

मनुष्य का प्रतिक्षण साँस से प्राणवायु ग्रहण करना, उन वृक्षों के कारण सम्भव हो पाता है, जो वातावरण में निरन्तर इसे उत्सर्जित करते रहते हैं। भले ही इसके लिये उन्हें बदले में कार्बन डाइआक्साइड के रूप में विष क्यों न पीना पड़े। वृक्षों का स्वयं का विकास, उनका फलना-फूलना भी कीट-पतंगों तथा पशु-पक्षियों के समुदाय के सहयोग पर निर्भर है। सह-अस्तित्व के ऐसे अनौखे उदाहरण मनुष्य को प्रेरणा देते रहते हैं कि वह भी अकेला न रहकर परस्पर सहयोग की अपनी अन्तःवृत्ति का विकास करे।

सृष्टा ने प्रकृति को अनगिनत रंगों से भर दिया है। दिन-रात फूलों के बीच रहकर भी क्या कोई ऐसा बना सकता है। फूलों में खुशनुमा रंग, मनमोहक गन्ध और मादक रस क्यों होते हैं ? इसका समाधान हमें मिलता है फूल कीटों के उस अद्‌भुत साहचर्य को देखकर, जिसके कारण कीट उनकी वृद्धि में सहायक होते हैं। परागण प्रक्रिया के लिये फूलों को पक्षियों, पतंगों, कीटों की आवश्यकता होती है। पर यह सेवा एकांगी नहीं है। बदले में वह अपना मधुर मधु उन्हें छानकर पीने को देते हैं। तितलियाँ इस रस को पीने हेतु एक से दूसरे पौधे पर जाती हैं। साथ ही अपने पैरों और परों में उनका पराग लपेटकर यहाँ से वहाँ बिखेरती जाती हैं। फूलों का परिवार अपनी वंश वृद्धि इसी प्रकार करता है। शहद की मक्खी इसी पराग को अपने पुरुषार्थ से मधु में बदल देती है, जो मानव के लिये उपयोगी होता है। संगठन और सहयोग की इसी प्रक्रिया को अपनाकर प्रत्येक घटक उत्कर्ष के पथ पर बढ़ता है।

फूल अपने मित्रों को रिझाने के लिये तरह-तरह के रंगरूप एवं गन्धों से अपने को सुसज्जित करते हैं। कई तो चटकीले रंगों की सज-धज दिखाते हैं और कई खुशबू फुहारें उड़ाते हैं। फूलों के खिलने के अलग-अलग समय निर्धारित हैं। तेज आँधी-तूफान में फूल स्वयं अपने पट बन्द कर लेते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि आँधी-तूफान में उनके सखा ये जन्तु टिक नहीं सकेंगे। कीटों तथा पक्षियों की घ्राणेन्द्रिय इतनी तीव्र होती है कि मीलों दूर से अपने पुष्प मित्रों का निमन्त्रण पाकर प्रेम की डोर से खिंचे चले आते हैं। जिन पेड़ों पर कभी फूल नहीं आते, वे पक्षियों, कीटों के द्वारा अवहेलना के ही पात्र होते हैं। 'पाँपलर' ऐसा ही एक भाग्यहीन वृक्ष है, जिस पर किसी भी पक्षी को नाज नहीं है। इसमें बसन्त में पत्ते तो नये आते हैं, पर फूल कभी नहीं आते ऐसे वृक्ष एकाकी एवं मनहूस व्यक्ति की तरह अर्ध विकसित रह जाते हैं। देने की वृत्ति के अभाव, असहयोग के कारण ही अपने प्रकृति परिवार के सदस्यों से उन्हें अवमानना का ही मुख देखना पड़ता है।

बुलबुल को गुलाब पर एवं कुपरी को अशोक वृक्ष पर ही बैठना अच्छा लगता है। दोनों को ही अपने सखाओं पर नाज है। वृक्ष पर बैठा पक्षी—परिवार देखने में तो सुन्दर लगता है, उनका गाना, चहकना प्रकृति में प्रसन्नता की लहर फैला देता है। ये पक्षीगण मात्र प्रकृति में सौन्दर्य वृद्धि के लिये ही नहीं बल्कि अपनी पसन्द के वृक्षों की वंश-वृद्धि हेतु भी मित्रता का सूत्र जोड़े हुये हैं। सूक्ष्म, अल्प जीवनकाल वाले पराग कणों को कम से कम समय में मीलों दूर तक इसी जाति के अन्य पुष्पों तक पहुँचाने का कार्य ये पक्षीगण करते हैं। मधुमक्खियाँ 'क्रास पालिनेशन' की प्रक्रिया में विशेष कार्य करती हैं। वे सामान्यतया प्रति मिनट तीस फूलों से पराग लेती हैं और अपने पिछले पैरों से एक लाख परागकण चिपका लेती हैं।

बहुत-से वृक्ष ऐसे हैं जिनके फल जमीन पर गिरकर या बोये जाने पर मुश्किल से अंकुरित होते हैं। ये बीज जब पक्षी मित्र के उदर में प्रवेश कर लेते हैं, तो बीट के साथ बाहर निकालने पर सहज ही अंकुरित हो जाते हैं। बीजों पर पक्षी के पेट में जो प्रतिक्रिया होती है, उससे उनकी उर्वरकता में अत्यधिक वृद्धि होती देखी गई है। ऐसे बीजों से उत्पन्न वृक्ष पीपल, वट, नीम के रूप में कई बार ऐसे स्थानों पर पाये जाते हैं, जहाँ उनके उगने की कोई सम्भावना नहीं होती है।

जीव जगत् में कमेन्सल्स के रूप कुछ खास किस्म के सूक्ष्म जीवाणु होते हैं। इनकी जीवन व्यवस्था भी जीयो और जीने दो की समाजवादी व्यवस्था का आदर्श उदाहरण है। इन्हें अपने विकास के साधनों का कुछ ज्ञान नहीं होता। इसीलिये अपने आपको जीवित रखने एवं आजीविका के लिये इन्हें समाज के परिगणित, पिछड़े, पददलित व्यक्तियों की तरह साधनों की आवश्यकता होती है। इसे-दूसरे सहयोगी महत्त्वपूर्ण जीवाणु 'एमीनो एसिड' का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्माण कर पूरा करते हैं। ये एरोब्ज जीवाणु इस तथ्य का उद्घाटन करते हैं कि मनुष्य को अपने ही नहीं, दूसरों के विकास का भी ध्यान रखना चाहिए।

कुछ पौधों की जड़ों में अत्यन्त सूक्ष्म बैक्टीरिया होते हैं। ये वायुमण्डल के नाइट्रोजन साइकल से सीधे नाइट्रोजन खींचकर उसे नाइट्रेट के रूप में बदल देते हैं। इस परिवर्धित तत्व को पौधे आसानी से आत्मसात् कर लेते हैं। रेंगने वाले केंचुऐ इसी तरह मिट्टी को निगलकर उसे शरीर के अन्दर रासायनिक प्रक्रिया द्वारा विशिष्ट बनाकर मलद्वार से निकाल देते हैं, जो बड़ी उपजाऊ हो जाती है।

प्रकृति जगत् के ये अनेकानेक उदाहरण सहकारिता द्वारा एक-दूसरे के विकास के सिद्धान्त का ही समर्थन करते हैं। पक्षी एवं वृक्षों का परस्पर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध पृथ्वी के सूक्ष्मजीवी बैक्टीरिया का वातावरण सन्तुलन को बनाये रखने में योगदान, वृक्षों द्वारा वातावरण संशोधन एवं प्राणवायु की वृद्धि से मानव के लिये अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण—ऐसे प्रसंग हैं जिन्हें इकालॉजी विज्ञानी पृथ्वी पर जीवन के लिये आवश्यक मानते हैं। सहअस्तित्व एवं परस्पर सहकार के ये ज्वलन्त उदाहरण मानव को सामाजिक जीवन में भी इन्हीं गुणों को उतारने के लिये अभिप्रेरित करते हैं।

चाहे जनसमुदाय की बात हो, चाहे प्रकृतिगत जड़ समझे जाने वाले पदार्थों की, सबके मूल में एक ही तथ्य काम करता है, वह है संगठन और सहयोग। व्यक्तिगत विकास के साथ ही सामूहिक उत्कर्ष भी अनिवार्य है। इस प्रक्रिया को जितना अधिक अपनाया जा सकेगा—मनुष्य के लिये स्थायी सुख-शान्ति, वांछनीय एवं सुखकर परिस्थितियों के आधार ढूँढ़े जा सकेंगे। विश्व परिवार की कल्पना को साकार किया जा सकना तभी सम्भव है, जब प्रत्येक व्यक्ति अन्दर से एक-दूसरे के प्रति उदारता, आत्मीयता-सहकारिता के भाव उमड़ें, अपनी नहीं सबकी प्रगति की कामना जन्म लेने लगे।

सहकारिता का सिद्धान्त सब जगह लागू होता है। व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्रों, जीव-जगत्, पर्यावरण सभी इसी सिद्धान्त पर कार्य करते हैं। संरक्षण और अनुशासन दो वे प्रमुख आधार हैं जो प्रगति की नींव खड़ी करते हैं।

शरीर पर जो चमड़ी की परत चढ़ी है, उसे संरक्षक कह सकते हैं। इससे भीतर की रक्त, माँस सम्पदा को अपने स्थान पर बने रहने की सुरक्षा मिलती है। हवा में उड़ती रहने वाली विषाक्तता त्वचा के आवरण से ही भीतर नहीं पहुँच पाती अन्यथा धूलिकणों का सीधा प्रवेश रक्त माँस तक जा पहुँचता और उस कोमल शरीर सम्पदा को देखते-देखते विषाक्त एवं रुग्ण बनाकर रख देता है। साथ ही यह भी आशंका बनी रहती है कि भीतर की वस्तु तनिक सा दबाव पड़ते ही बाहर निकलकर इधर-उधर छितराने लगती। त्वचा का संरक्षण ही है, जो बहुमूल्य कायिक ढाँचे को सुसंचालित रख रहा है।

अभिभावकों का संरक्षण न हो तो शिशुओं का निर्वाह एवं भरण-पोषण किस प्रकार सम्भव हो ? अनुशासन सिखाये बिना वे सभ्यता और शिक्षा का लाभ कैसे ले सकें ?

शासन देश का संरक्षण करता है और प्रजाजनों पर अनुशासन रखता है। नागरिकों को दुष्प्रवृत्तियों से रोकने और उपयुक्त क्रिया-कलाप अपनाने की प्रेरणा देना एवं व्यवस्था जुटाना शासन का काम है। यदि वह इतना न कर सके तो स्वयं नष्ट होगा और समूचे प्रजाजनों को ले डूबेगा। अनुशासन और संरक्षण की व्यवस्था बने रहने से ही व्यक्ति और समाज को मर्यादा में रहने और प्रगति पथ पर अग्रसर होने का सुअवसर मिलता है। इन दो तत्वों को हटा दिया जाय तो फिर उच्छृंखलता, अव्यवस्था, विग्रह और विनाश के दृश्य ही उपस्थित होंगे।

न केवल मनुष्यों पर वरन् समूची सृष्टि व्यवस्था पर उन्हीं दो दबावों का आधिपत्य है। ब्रह्माण्ड के सभी ग्रह-तारक इसी आधार पर गतिशील रहते और अपने-अपने अस्तित्व की रक्षा करते हैं। इसमें तनिक भी शिथिलता आने लगे तो वे अपनी कक्षाओं से भटककर जिधर-तिधर दौड़ने लगें-उन्हें परस्पर बाँधे रहने वाले अनुशासन-आकर्षण समाप्त हो जायें। इस अराजकता में वे अपने अस्तित्व तक की रक्षा न कर सकेंगे। परस्पर टकराकर महाप्रलय का दृश्य उपस्थित करेंगे। ब्रह्माण्ड के सुसंचालन में अनेकानेक शक्तियाँ और व्यवस्थायें काम करती हैं। उन सब में मूर्धन्य आधार दो ही हैं, संरक्षण और अनुशासन। इनकी स्थापना के उपरान्त ही प्रगति एवं समृद्धि की अन्यान्य धाराओं का क्रियान्वित हो सकना सम्भव होता है।

अपनी पृथ्वी को ही लें। उसकी सत्ता और व्यवस्था के कण-कण में यही तथ्य दृष्टिगोचर होता है। जिधर भी दृष्टि डाली जाय उधर ही क्षण-क्षण में उसी संचालन-सूत्र का परिचय मिलता है। जीवधारियों की अपनी नीति मर्यादा है। जो उसे पालते हैं वे जवित रहते और प्रगति करते हैं। जो व्यतिक्रम पर उतारू होते हैं, उच्छृंखलता बरतते हैं वे स्वयं नष्ट होते हैं और सम्बद्ध प्राणियों तथा पदार्थों के लिये संकट उत्पन्न करते हैं। अणु-परमाणुओं से लेकर रासायनिक परिवर्तनों तक के मध्य में उसी व्यवस्था का आधिपत्य है। समूचा लोक व्यवहार इन्हीं सूत्रों पर आधारित है। शिथिलता एवं उच्छृंखलता उत्पन्न होते ही अनेकानेक समस्यायें और विभीषिकायें सामने आ खड़ी होती हैं।

ये सारे उदाहरण सत्यापित करते हैं कि मनुष्य इस समूचे ब्रह्माण्ड परिकर में अकेला नहीं है। वह उसकी एक अभिन्न इकाई भर है। अपना विकास तभी सम्भव है जब सबका सामूहिक रूप से विकास हो। इस दृष्टि को सदैव बनाये रखना सबके लिये अनिवार्य है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहयोग-सहकार की वृत्ति का विस्तार अत्यन्त अनिवार्य

व्यक्ति एवं समाज की प्रगति इस बात पर अवलम्बित है कि उसमें सहयोग-सहकार की प्रवृत्तियाँ हों। यह जिस भी समाज में जितनी ही अधिक मात्रा में होगी, वह उतना ही प्रगतिशील, सभ्य एवं सुसंस्कृत होगा। अलग दीखते हुये भी मनुष्य, समाज का अभिन्न अंग है। इस कारण उसकी प्रगति एवं अवगति भी समाज के साथ जुड़ी हुई है। वह जैसा भी सोचेगा एवं करेगा, उसका प्रभाव न केवल उसके ऊपर वरन् समाज पर भी पड़ेगा। मात्र अपना स्वार्थ साधने की बात सोचते रहने से वह समाज का भारी अहित करता है। शारीरिक निर्वाह के लिये आवश्यक साधन जुटाये जाने चाहिए। व्यक्तिगत स्वार्थ की मर्यादा सीमा यहीं तक है। इससें आगे की बात सोचने से सामाजिक हितों पर अतिक्रमण होता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य का चिन्तन एवं क्रियाकलाप मानवीय परिधि से निकलकर नर पशु की श्रेणी में जा पहुँचता है।

एकमात्र स्वार्थ-परायण व्यक्ति अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये ऐसे ऐसे अनुचित मार्गों का अवलम्बन लेने लगता है, जिसे देख, सुनकर मनुष्यता का सिर लज्जा से नीचा हो जाता है। जब उचित, अनुचित का विचार छोड़कर कोई मनुष्य जैसे भी बने अपना स्वार्थ सिद्ध करने की नीति अपनाने लगता है, तब समाज की सुख-शान्ति में आग लगने लगती है। किसी एक व्यक्ति की देखा-देखी दूसरे व्यक्ति भी स्वार्थ-परायण होकर उसकी अनुचित नीति का अनुसरण करने लगते हैं। धीरे-धीरे स्वार्थी व्यक्तियों की संख्या बढ़ने लगती है और कोई भी सभ्य समाज असभ्यता की ओर बढ़ने लगता है। समाज में छीना-झपटी, आपा-धापी, छल-कपट, शोषण-संघर्ष की परिस्थितियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। जिसके परिणामस्वरूप समाज विश्रृंखल, निर्बल और अरक्षित हो जाता है। दूसरे समुदाय ऐसे अवसर का लाभ उठाते हैं और प्रयत्न करते हैं कि उस मूर्ख समाज को अपने अधीन कर लें, उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लें।

इतिहास साक्षी है कि हमारे अपने समाज में जब-जब स्वार्थपरता का घातक विष फैला तब-तब इसी प्रकार दुर्दिन देखने पड़े। स्वार्थी और दम्भी लोगों ने अपनी भयंकर नीति से समाज में संघर्ष उत्पन्न किया, उसकी एकता और संगठन शक्ति को नष्ट किया। समाज निर्बल बना और उस पर आपत्तियों के पहाड़ टूटने लगे। विदेशियों ने समाज की इस निर्बलता से लाभ उठाकर ही हमारे देश को लूटा और उस पर अपनी सत्ता स्थापित की।

इस दीर्घजीवी आपत्ति के कारण समाज के वे थोड़े-से स्वार्थी व्यक्ति ही तो थे, जिन्हें अपने व्यक्तिगत लाभ की अन्धता में न तो देश का भविष्य दिखलाई दिया और न समाज का अमंगल। स्वार्थपरता का विष इतना भयानक होता है कि किसी भी क्षेत्र में उसका अस्तित्व सम्पूर्ण समाज को विषाक्त बनाकर जर्जर कर देता है।

पता नहीं स्वार्थान्ध व्यक्ति यह क्यों नहीं सोच पाते कि जब वे अपनी अनुचित रीति से समाज को निर्बल, विश्रृंखल और अव्यवस्थित बना देंगे तो उसकी सुरक्षा खतरे में पड़ जायेगी और तब उसके साथ ही उनका अस्तित्व भी सुरक्षित न रह पायेगा। कमजोर और असमर्थ समाज न अपनी ही सामूहिक रक्षा कर पाता है और न व्यक्ति की। अपने निम्न स्वार्थ के लिये समाज की इतनी बड़ी हानि करने वाले व्यक्ति को और कुछ भले ही कहा जाय, मनुष्य नहीं कहा जा सकता।

स्वार्थ से प्रेरित जब किसी एक दिशा में शोषण-चक्र चलता है, तब उसके कुत्सित प्रभाव से कोई भी दिशा नहीं बच पाती। बुराई एक संक्रामक रोग की तरह होती है। अंकुर पाते ही यह बरसाती वनस्पति की तरह फैलकर शीघ्र ही पूरे समाज को ग्रसित कर लिया करती है। सामूहिक भावना अथवा सामाजिक चेतना से शून्य होकर जब कोई स्वार्थी व्यक्ति किसी एक का शोषण करता है, तब वह शोषित व्यक्ति उसके बदले में अपने से कमजोर का शोषण करने लगता है और इस प्रकार यह शोषण एक सामाजिक परम्परा बन जाती है। फलतः समाज के सदस्यों के बीच परस्पर विश्वास तथा सहयोग की भावना उठ जाती है।

उन्नति के इन स्तम्भों के टूटते ही समाज खण्डहर की तरह भर-भरा कर गिर पड़ता है। उसकी बहुमूल्य विचारधारायें, सुन्दर संस्कृति और उज्ज्वल सभ्यता या तो नष्ट हो जाती है या संसार में उपहासास्पद बन जाती है। सामाजिक जीवन में स्वार्थ बड़ा घातक विष है। इससे सदैव ही समाज की रक्षा करते रहना चाहिए अन्यथा वह स्वार्थी को तो मिटा ही देता है, समाज को भी कहीं का नहीं रखता।

स्वार्थ के दोष से बड़े-बड़े बलवानों और शक्तिवानों को धूल में मिलते देर नहीं लगी। कंस, जरासंध, हिरण्यकश्यप, हिरण्याक्ष, नहुष, वेन आदि न जाने कितने प्रतापी राजा बात की बात में नष्ट हो गये। इतना ही नहीं, स्वार्थ ने इस सीमा तक उनका पतन कर दिया कि वे मनुष्य शरीर में भी असुर और राक्षस बन गये। स्वार्थ सिद्धि के लिये ऐसे-ऐसे जघन्य काम किये जिसके लिये आज तक जन-भर्त्सना के पात्र बने हुये हैं। लोभ और स्वार्थ सभी पापों की जड़ मानी गयी है। इसका कुचक्र जिस पर भी चलता है, वह सदा के लिये मिट जाता है फिर चाहे वह व्यक्ति हो, समाज हो अथवा राष्ट्र।

जिस परमात्मा ने मनुष्य को जन्म दिया उसी ने उसके जीवन के साधन भी संसार में उत्पन्न किये। उसका इस निर्माण में कभी भी यह अन्यायपूर्ण मन्तव्य नहीं रहा है कि कुछ व्यक्ति तो साधनों को प्रचुर मात्रा में बिना किसी आवश्यकता के अपने अधिकार में कर लें और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्य बहुसंख्यक जीवनयापन की अनिवार्य वस्तुओं से भी वंचित रहें। परमात्मा को तो अपनी सभी सन्तान समान रूप से प्रिय हैं। वह क्यों न चाहेगा कि जन-जन समान रूप से उसके दिये साधनों का उपभोग करे। किन्तु खेद है कि समाज के स्वार्थी व्यक्ति प्रभु की इस मंगल इच्छा में भी विघ्न डालते हैं। यद्यपि वे अपने इस अपराध के लिये रोगों, दोषों, घोर-संतापों, निन्दा, भर्त्सना और राजनियमों द्वारा दण्डित होते रहते हैं, तथापि अपनी करनी से बाज नहीं आते।

स्वार्थी व्यक्ति मानवाकार में पशुवत् होता है। उसका न तो कोई आदर्श होता है और न सिद्धान्त। नैतिक गुणों से भी उसका जीवन शून्य होता है। जिस व्यक्ति से उसका स्वार्थ सिद्ध होने की आशा होती है, उसकी पगधूलि भी वह अपने सिर पर चढ़ा लेने में संकोच नहीं करता, फिर चाहे वह व्यक्ति कितना ही निकृष्ट तथा दुराचारी क्यों न हो ? कोई भी बुरे से बुरा मार्ग स्वार्थी व्यक्ति अपने लाभ के लिये अपना सकता है, चाहे वह विशुद्ध पापमय ही क्यों न हो। स्वार्थी में न केवल दीनता का ही दोष होता है उसमें छल, कपट, झूठ-फरेब, मक्कारी और विश्वासघात जैसे और भी न जाने कितने दोष होते हैं ? स्वार्थी व्यक्ति अपने धर्म, देश, राष्ट्र और समाज तक को बेच डालने में संकोच नहीं करता।

स्वार्थवृत्ति एक जहरीले साँप की तरह होती है। यह जब अपना फन फैलाती है तो शत्रु-मित्र का विचार किये बिना समान रूप से सबको डस लेती है। एक स्वार्थवृत्ति से ही मनुष्य में न जाने और कितनी दूषित वृत्तियाँ आ जाती हैं। ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ और मोह आदि के अनर्थकारी विकार एक स्वार्थ की ही सन्तति समझना चाहिए।

इतिहास के पर्यवेक्षण, अवलोकन करने पर इस तथ्य की पुष्टि होती है कि व्यक्ति की संकीर्ण स्वार्थपरता समाज के अधःपतन का कारण बनी है। स्वार्थों से अभिप्रेरित व्यक्तियों ने सामाजिक भावनाओं को बुरी तरह रौंदा और वह मार्ग अपनाया जिसे अमानवीय अथवा दानवी स्तर का कहा जा सकता है। लाभ अन्ततः उन्हें भी नहीं हुआ। सामाजिक प्रताड़ना एवं असन्तोष को साथ लेकर मरे। स्वार्थपरता न उनके लिये लाभकारी सिद्ध हुई और न ही समाज के लिये।

जिसमें समाज का भी हित जुड़ा हो—मनुष्य को वह मार्ग अपनाना होगा। इसके लिये संकीर्ण स्वार्थों की परिधि से निकलकर सहयोग एवं सहकार की प्रवृत्ति को अपनाने से ही व्यक्ति एवं समाज दोनों की प्रगति सम्भव है।

मानव जाति के विकास में सहयोग अथवा संघर्ष में से किसने अधिक योगदान दिया है, इसकी ढूँढ़-खोज करने पर निष्कर्ष सहयोग के पक्ष में ही जाते हैं। इतने पर भी संघर्ष की सर्वथा अनुपयोगिता नहीं सिद्ध की जा सकती। संघर्ष भी अपवाद के रूप में आवश्यक है। पर यह कभी-कभी चलने वाली प्रक्रिया है जो विशेष परिस्थितियों में उपयोगी एवं सहायक हो सकती है। चोर, डाकुओं, आततायियों की दुष्टता का दमन करने में संघर्ष की नीति ही सफल होती है। पर ऐसे अवसर तो कभी-कभी आते हैं। जब संघर्ष का मार्ग अपनाना आवश्यक हो जाता है। युद्धकालीन परिस्थितियाँ तो यदा-कदा ही आती हैं।

आदिम युग की पिछड़ी स्थिति से आज की सभ्य स्थिति में मानव जाति को पहुँचाने में सहयोग एवं सहकार की ही प्रमुख भूमिका रही है। "जीवन संघर्षमय है। संसार में पग-पग पर संघर्ष करना पड़ता है, प्रायः इस सिद्धान्त को समझने में भ्रम हो जाता है।" वहाँ संघर्ष का अर्थ परिस्थितियों एवं स्वयं की मनःस्थिति के संघर्ष से है न कि व्यक्तियों के चलने वाले आपसी संघर्ष से है। अस्तु, संघर्ष को सामाजिक सुव्यवस्था एवं विनाश के अनिवार्य साधन के रूप में नहीं स्वीकार किया जा सकता। उसकी सीमित आवश्यकता एवं सीमित भूमिका होती है।

कार्लमार्क्स द्वारा प्रतिपादित साम्यवादी विचारधारा का उदय ऐसी ही आपत्तिकालीन परिस्थितियों में हुआ जब मालिकों, पूँजीपतियों का शोषण एवं दमन का चक्र अपनी चरम सीमा पर था। ऐसे समय में विद्रोह का उठना स्वाभाविक था। समाज दो वर्गों में विभाजित था—एक शोषक पूँजीपतियों का वर्ग जिसके हाथों में सत्ता थी—उत्पादन के साधनों पर जिसका आधिपत्य था। दूसरा वर्ग था शोषितों का। मजदूर किसान कर्मचारी इसी के अन्तर्गत आते थे। शोषण एवं दमन की नीति के कारण दोनों वर्गों के बीच खाई बढ़ती गई। पूँजीपति और भी समृद्ध होते गये और मजदूर की श्रेणी में आने वालों की स्थिति बदतर होती गई। ऐसी ही विषम परिस्थिति में आपत्ति धर्म के रूप में साम्यवादी विचारधारा का उदय हुआ जिसका लक्ष्य था—समता के आधार पर एक ऐसे वर्गहीन समाज की रचना करना, जिसमें सबको समान न्याय एवं अधिकार मिले। लक्ष्य श्रेष्ठ होते हुये भी उसकी प्रगति के लिये साम्यवाद जिस हिंसक क्रान्ति का—वर्ग संघर्ष का समर्थन करता है वह हर दृष्टि से अहितकर तथा मनुष्य एवं समाज के विकास में अवरोधक है।

संघर्ष-संघर्ष को ही जन्म देता है और इस शृंखला का कोई अन्त नहीं होता अतएव 'वर्गसंघर्ष' को वर्गहीन समाज की स्थापना में एक श्रेष्ठ सिद्धान्त के रूप में नहीं अपनाया जा सकता। इतिहास साक्षी है कि अपवादों को छोड़कर संघर्ष द्वारा कोई स्थायी समाधान नहीं निकला। उल्टे समाज में विघटन, विग्रह, मनोमालिन्य, ईर्ष्या एवं द्वेष का दौर चल पड़ता है। शोषण की प्रवृत्ति को जड़ से समाप्त करने के लिये आत्म नियन्त्रण के वे वैचारिक आधार देने होंगे, जिनसे अभिप्रेरित होकर मनुष्य स्वयं अपरिग्रह को मानवी धर्म के रूप में अपनाने के लिये बाध्य हो जाय।

यह मान्यता निराधार है कि मालिक, मजदूर के बीच, पूँजीपति और कर्मचारी के बीच परस्पर सहयोग, सहकार के आदान-प्रदान से समस्याओं का हल नहीं निकल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकता और इसी नीति में अन्ततः मालिक ही नफे में रहता है। वास्तविकता की खोज-बीन की जाय तो निष्कर्ष यह निकलते हैं कि दोनों यदि एक-दूसरे की कठिनाइयों को समझने एवं सच्चे हमदर्द की भाँति सहयोग की नीति अपना लें तो दोनों ही लाभ में रहते हैं और समाज की सुव्यवस्था भी बनी रहती है, सर्वतोमुखी विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। आवश्यकता इस दिशा में बस इतनी भर होती है कि दोनों ही अपने-अपने दायित्वों को समझें तथा उनके निर्वाह के लिये भरपूर प्रयत्न करें।

उत्पादन कार्यों का संचालन करने वाले उद्योगपतियों को उनके महान् दायित्वों का बोध कराने के लिये मैंचेस्टर के उद्योगपति 'राबर्ट ओबिन' का उदाहरण देना अनुपयुक्त न होगा। स्काटलैण्ड के एक कस्बे न्यूलैनार्क में उसने एक कपास का कारखाना खरीदा। उन दिनों इंग्लैण्ड में कारखाने तेजी से बढ़ रहे थे। अन्य मिल मालिकों की भाँति अधिक से अधिक धन संग्रह करना उसका लक्ष्य न था। मजदूरों की दयनीय स्थिति के प्रति उसके हृदय में पीड़ा थी। न्यूलैनार्क कालोनी में मजदूरों के चौदह सौ परिवार थे जो गन्दी बस्तियों में रहते थे। उनके उपार्जन का अधिकांश भाग मद्यपान एवं जुआ खेलने में व्यर्थ चला जाता था। ओबिन ने कारखाने का चार्ज लेते ही यह निश्चय किया कि हमारा लक्ष्य मात्र उपार्जन नहीं है। रोग-शोक, पीड़ा एवं पतन के गर्त में पड़े किन्तु उत्पादन के मेरुदण्ड मजदूर वर्ग की स्थिति न सुधारी गई तो नैतिक एवं सामाजिक दृष्टि से अपराध होगा। मजदूरों का कायाकल्प करने के लिये उन्होंने एक योजना बनाई। मिल की आय का बड़ा हिस्सा उसने मजदूरों के विकास के कार्यक्रमों के लिये निर्धारित किया। सस्ते दाम पर उपलब्ध होने वाले सामानों के लिये उसने सहकारी स्टोर खुलवाये, ऐसे मकानों का निर्माण कराया जिसमें प्रकाश एवं वायु की समुचित व्यवस्था हो। बच्चों की शिक्षा के लिये विद्यालय खोले गये। मद्यपान एवं जुआ, सट्टा पर पूर्ण पाबन्दी लगा दी गई। मजदूरों के सदाचार सम्बन्धी रजिस्टर रखे गये। उनकी वेतन वृद्धि 'चरित्र रिकार्ड' के आधार पर होती थी। विविध अवसरों पर ऐसे चरित्रनिष्ठ मजदूरों, कर्मचारियों को पुरस्कृत भी किया जाता था। ओबिन के इन प्रयासों का प्रतिफल यह हुआ कि मजदूरों की स्थिति दिन-प्रतिदिन सुधरने लगी। कितने ही व्यक्तियों ने ओबिन को परामर्श दिया कि इस प्रयास में उसे भारी घाटा उठाना पड़ सकता है पर ओबिन ने किसी की बात न मानी। सबसे आश्चर्य की बात यह हुई कि जैसे-जैसे मजदूरों की स्थिति सुधरी, उसी अनुपात में कारखाने का उत्पादन भी बढ़ता गया। अपनी चरित्रनिष्ठा एवं कर्मठता के लिये कारखाने के मजदूर पूरे योरोप में प्रख्यात हुये। समाज सुधार कार्यों में अभिरुचि रखने वाली कितनी सामाजिक संस्थायें 'न्यूलैनार्क' मजदूर दल का अवलोकन करने के लिये आती रहीं और सबने एक स्वर के 'ओविन' की दूरदर्शिता की प्रशंसा की।

यह परम्परा सहयोग एवं सहकार की स्वर्णिम परिणिति है। एक की उदारता से दूसरे वर्ग की स्थिति सुधरी। दूसरे ने उस उदारता का प्रतिदान अपनी श्रमशीलता एवं कर्मठता के रूप में चुकाया, फलतः कारखाने के उत्पादन में भारी बढ़ोत्तरी हुई। यह अनुकरणीय उदाहरण अन्य उद्योगपति, मिल मालिक अपनाने लगें तो इससे दोनों को ही लाभ होगा दोनों के बीच बढ़ता हुआ मनोमालिन्य घटेगा तथा परस्पर सहयोग एवं सहकार का दौर चल पड़ेगा। विग्रह, विघटन एवं संघर्ष की परिस्थितियाँ न आने पायेंगी। अधिकारों की माँग को लेकर आये दिन हड़तालों की श्रृंखला चलती तथा प्रतिवर्ष कितनी हानि उठानी पड़ती है, विश्व भर का लेखा-जोखा लेने पर यह पता चलता है कि मानवी श्रम का एक बड़ा भाग यों ही व्यर्थ चला गया। यदि उसकी रोकथाम की जा सकी होती तो भौतिक प्रगति में असामान्य योगदान मिल सकता था।

गलती दोनों ही ओर से होती है। मालिक की नीति अपना स्वार्थ साधने की अधिक और मजदूर, कर्मचारियों का दुःख-दर्द समझने की कम रहती है। शोषण एवं दमन के कारण आक्रोश एवं विद्रोह की आग मजदूर के भीतर ही भीतर धधकती रहती है, जो कभी-कभी हड़तालों के रूप में निकलती है। फलतः प्रतिवर्ष भारी क्षति उठानी पड़ती है। दोनों के बीच परस्पर सघन सहकार का क्रम चले पड़े तो आपत्तिकालीन परिस्थितियों में भी आपसी सद्भाव के कारण ऐसे समाधान निकल आते हैं, जो एक-दूसरे के बीच मनोमालिन्य के रहते प्रायः असम्भव ही होते हैं। दो दशकों पूर्व इंग्लैण्ड में एक ऐसा ही भावभरा उदाहरण प्रस्तुत हुआ।

इंग्लैण्ड के कारखाने में दो हजार व्यक्ति काम करते थे। कारखाने के मजदूर अपनी कर्मठता के लिये विख्यात थे। समकक्ष अन्य कारखानों की तुलना में इसका उत्पादन भी सर्वाधिक होता था। कुछ कारणों से अकस्मात् मिल को भारी घाटा उठाना पड़ा और धीरे-धीरे कर्ज चढ़ने लगा। स्थिति यहाँ तक आ पहुँची कि कर्ज चुकाने के लिये मिल के बेचने की नौबत आ गई। मैनेजर ने इस स्थिति से सभी कर्मचारियों को अवगत कराने के लिये एक सूचना प्रसारित कराई कि "कर्ज अधिक हो जाने के कारण मिल को बेचना होगा। कर्मचारियों में जितना पैसा मिल के ऊपर बाकी हो उसका हिसाब दे जायें ताकि मिल बेचकर कर्ज के साथ ही उनका भी भुगतान किया जा सके।" मजदूरों एवं कर्मचारियों के लिये यह अप्रत्याशित घटना थी। जिसके माध्यम से अब तक रोजी-रोटी मिलती रही वह आधार टूट जायेगा, यह सोचकर सभी चिन्तित हुये। मजदूर यूनियन द्वारा एक मीटिंग बुलाई गई ताकि इस समस्या पर विचार-विमर्श किया जा सके। यूनियन के मन्त्री ने यह प्रस्ताव रखा कि क्या मिल के दो हजार कर्मचारी जिनको कारखाने से आजीविका मिलती रही है, इसे बिक्री से रोक नहीं सकते ? विचार मन्थन के उपरान्त निष्कर्ष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निकला कि यदि हर कर्मचारी अपने प्रॉविडेन्ट फण्ड की राशि उधार के रूप में मिल को कर्ज चुकाने के लिये दे दे तो प्रस्तुत समस्या का हल निकल सकता है। सबने इस प्रस्ताव को मानकर "स्थायी निधि" की राशि मिल को देना स्वीकार कर लिया और अपने इस प्रतिवेदन से मैनेजर को अवगत कराया। इस भावभरी उदारता से कारखाना नीलाम होने से बच गया। कुछ ही वर्षों में मजदूरों की कर्मठता से मिल की स्थिति में उत्तरोत्तर सुधार होता गया। अपनी सामान्य व्यवस्था में आते ही मिल के व्यवस्थापक ने अतिरिक्त बोनस राशि के साथ सभी कर्मचारियों के पैसे वापिस लौटा दिये।

सहयोग की भावभरी उदारता का यह क्रम मालिक मजदूर के बीच सर्वत्र चल पड़े तो इससे अन्ततः दोनों ही नफे में रहेंगे। उत्पादन बढ़ेगा। फलतः देश की प्रगति में योगदान मिलेगा ? जबकि इसके विपरीत वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त को मानने एवं मान्यता देने से मनोमालिन्य और विग्रह बढ़ता ही जायेगा। अस्तु, संघर्ष को नहीं सहयोग एवं सद्व्यवहार के सिद्धान्त को मान्यता देने और अपनाने से ही समस्त समाज की प्रगति एवं समृद्धि सम्भव है।

व्यक्तिगत स्तर पर सेवा-साधना की आवश्यकता और उपयोगिता सभी समझते हैं। यह भी जानते हैं कि इससे क्या भौतिक, क्या आत्मिक, क्या सामाजिक विकास सहजता से होने लगता है। इस दृष्टि से सेवा के महत्त्व को लगभग सभी स्वीकार करते हैं और कभी-कभी यह मार्ग अपनाने की उमंग भी उठती है। फिर भी प्रायः लोगों के मन में यह उमंग बिजली की चमक के समान उत्पन्न होती है और लुप्त हो जाती है। इसका क्या कारण है ? इस पर विचार किया जाना चाहिए।

बिजली की चमक के समान सेवा की उमंग उठने और इसी तरह लुप्त हो जाने का प्रमुख कारण है कि इसके प्रति आवश्यक निष्ठा और उत्साह का जागरण नहीं हो पाता। यही कारण है कि थोड़े-बहुत लोग जो सेवा मार्ग पर कदम रखते हैं, थोड़े-से पग बढ़ाते हैं किन्तु थोड़ी-सी कठिनाइयाँ आती देखकर वापस लौट आते हैं। सोचने लगते हैं कि यह तो व्यर्थ का झमेला है, इसमें क्यों माथापच्ची की जाय ? जिनमें इससे आगे तक निष्ठा और उत्साह विद्यमान रहता है वे थोड़ा आगे चलकर जरा-सी और कठिनाइयों को देखकर चुप बैठ जाते हैं।

असफलता, कठिनाइयाँ, बाधायें और भी कई कारण ऐसे हो सकते हैं, जिनकी वजह से सेवा पथ पर अधिक गति के साथ नहीं बढ़ा जा सकता। उनमें प्रमुख कारण यही है कि सेवा के प्रति निष्ठा नहीं होती। प्रश्न उठता है कि सेवा के प्रति निष्ठा नहीं होती तो लोग उस दिशा में अग्रसर ही क्यों होते और क्यों सेवा-धर्म अपनाने की बात सोचते। बात ठीक भी है। सवाल निष्ठा या रुचि का नहीं, निष्ठा और रुचि की प्रखरता का है। यदि सेवा-धर्म के प्रति अपनी निष्ठा प्रखर हो तो हजार असफलतायें और लाख बाधायें आने पर भी उससे विरत नहीं हुआ जा सकता। अन्यथा ऐसा कौन-सा कार्य है जिसमें सदैव अनुकूल और अपेक्षित परिणाम ही प्राप्त होते हों।

प्रत्येक कार्य के वही परिणाम आयें जो हम चाहें ऐसा न तो हमेशा सम्भव है और न ही कभी सम्भव है हालांकि कोई व्यक्ति यह सोचकर काम शुरू नहीं करता कि असफलता मिलेगी। सफलता प्राप्त करने के लिये सभी व्यक्ति प्रयत्न करते हैं फिर भी असफलता की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता और न ही इस सम्भावना के कारण कोई अपना काम रोक देता है, विद्यार्थी जानता है कि मैं फैल भी हो सकता हूँ, व्यापारी के लिये भी घाटा होने की सम्भावना हर घड़ी मौजूद रहती है लेकिन इस कारण विद्यार्थी पढ़ना या परीक्षा देना नहीं छोड़ देता और न ही घाटे के डर से व्यापारी व्यापार करना छोड़ देता है। सफलता की और असफलता की दोनों ही सम्भावनाएँ प्रत्येक कार्य के साथ जुड़ी होती हैं, इसे सब जानते हैं और यह भी जानते हैं कि आरम्भ में किया गया कार्य निर्विवाद सम्पन्न हो जाय यह कोई आवश्यक नहीं है। फिर भी असफलता या कठिनाइयों के डर से कोई निर्णय, निचेष्ट नहीं हो जाता।

जब सामान्य कार्य ही असफलता की सम्भावना को देखते हुये रोके नहीं जाते तो सेवा-साधना जैसा महत्त्वपूर्ण कार्य क्यों छोड़ दिया जाता है। स्पष्ट ही इसका कारण निष्ठा और आस्था का अभाव अथवा उथलापन कहा जायेगा। इसके अतिरिक्त जब लोकसेवा को ही अपना धर्म कर्त्तव्य मान लिया जाय तो असफलता की सम्भावना से और भी नहीं हिचकना चाहिए। लोकसेवी का दृष्टिकोण जनसामान्य से ऊँचा रहना चाहिए, इसी प्रकार इसके आदर्श और संकल्प भी उच्च तथा प्रखर होने चाहिए। उसे तो सफलता-असफलता की चिन्ता किये बिना ही अपने कर्त्तव्य पथ पर, सेवा मार्ग पर चुपचाप चलते रहना चाहिए। इस सम्बन्ध में भगवान बुद्ध और उनके शिष्य का एक प्रसंग बड़ा ही प्रेरणादायक है। भगवान बुद्ध ने अपने एक शिष्य से पूछा, "तुम धर्मप्रचार के लिये जा रहे हो, अगर लोगों ने तुम्हारी बातें नहीं सुनी तो ?"

शिष्य ने कहा, "मैं उनका कृतज्ञ होऊँगा कि उन्होंने भले ही मेरी बातें न सुनी हो। पर मुझे गालियाँ तो नहीं दीं।" बुद्ध ने आगे पूछा, "अगर वे तुम्हें गालियाँ देने लगें तो ?" तब शिष्य ने कहा, "मैं फिर भी उनका कृतज्ञ होऊँगा कि उन्होंने मुझे मारा नहीं।"

"मान लो अगर वे तुम्हारे साथ मारपीट भी करने लगें तो ?" बुद्ध अपने शिष्य की निष्ठा को अच्छी तरह परख लेना चाहते थे। शिष्य की निष्ठा भी अधकचरी नहीं थी। उसने कहा, "भगवन् ! उस स्थिति में भी मैं उनका आभार मानूँगा कि उन्होंने मेरे साथ केवल मारपीट ही की मुझे जान से नहीं मारा।"

इसके बाद बुद्ध ने पूछा, "और यदि जान से ही मार डालें तो ? ऐसी स्थिति में तुम्हारी आत्मा क्या कहेगी ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"मेरी आत्मा उन्हें धन्यवाद देगी भन्ते।" शिष्य ने कहा, "क्योंकि तब भी वे मेरा उपकार ही करेंगे कि उन्होंने मुझे इस दुःखमय संसार से त्राण दिला दिया।" इस स्तर की निष्ठा का विकास ही सेवा धर्म को पूर्णता अंगीकार करने में समक्ष और सबल बनाता है। प्राचीन काल से अब तक के इतिहास में जितने भी लोकसेवी हुये हैं, उन्होंने अपनी निष्ठा को परिपक्व बनाया उसे शान पर चढ़कर चमकाया और प्रखर बनाया है। यद्यपि जो भी लोग सेवा क्षेत्र में आते हैं उनमें थोड़ी-बहुत निष्ठा तो होती ही है, लेकिन केवल निष्ठा का होना ही आवश्यक नहीं है, इससे भी ज्यादा उसका प्रखर बनाना आवश्यक है।

लोकसेवियों में निष्ठा का सर्वथा अभाव रहता हो, ऐसी बात भी नहीं है। यदि उनमें निष्ठा न रही होती तो वे सेवा के क्षेत्र में आते ही क्यों ? किन्तु निष्ठा जब दुर्बल होती है तो व्यक्ति सेवा धर्म को कष्टसाध्य या दुःसाहस समझकर बीच में ही छोड़ देते हैं। उदाहरण के लिये, प्रारम्भिक असफलताओं को ही लें। बहुत-से लोग प्रारम्भिक असफलताओं के कारण सेवा धर्म से विमुख हो जाते हैं। जबकि यही असफलतायें यदि जीवन के अन्य क्षेत्रों में आयें तो उनकी कार्यावधि में कोई अन्तर नहीं आता और न वे रुकते ही हैं। फिर सेवा-साधना में मिलने वाली असफलताओं से ही असन्तोष क्यों ? यदि कार्य को ही अपने जीवन का ध्येय बना लिया जाय और सफलता-असफलता की चिन्ता न की जाय तो सेवा मार्ग पर बिना किसी अवरोध के बिना कहीं रुके, झुके चला जा सकता है।

स्मरण रखा जाना चाहिए कि कार्य चाहे जो भी हो उसके दो ही परिणाम हो सकते हैं—सफलता या असफलता और जब किन्हीं उच्च प्रयोजनों के लिये काम किया जा रहा हो तब तो सफलता की अपेक्षा आरम्भ में असफलतायें ही ज्यादा हाथ लगती हैं। महापुरुषों को अपने जीवनकाल में कदाचित् ही आशाजनक सफलतायें मिल सकी हों। महात्मा ईसा ने ४० वर्ष तक धर्म का प्रचार किया और इस पूरे समय में उनके केवल २ शिष्य बने। वे भी इतने कच्चे कि उनमें से एक ने तो दुश्मनों से मिलकर उन्हें पकड़वा दिया और बाकी के लोग भी ईसा पर आई इस विपत्ति के समय उनका साथ छोड़ गये। सुकरात को जहर का प्याला पीना पड़ा, महावीर स्वामी के कानों में कीलें ठोंकी गईं और उन्हें चोर समझा गया, बाल्टेयर को तो मरते समय भी उपेक्षा सहनी पड़ी और यहाँ तक कि मरने के बाद उनका विधिवत् संस्कार भी नहीं करने दिया गया। इस तरह के जितने भी महापुरुष हुये हैं, जिन्होंने संसार की कुछ उल्लेखनीय सेवायें की हैं, उन्हें अपने जीवन काल में कदाचित् ही सफलता मिली हो। पर वे हताश न हुये और न निराश। कारण अपने कार्य के प्रति, अपने लक्ष्य के प्रति उनमें इतनी प्रगाढ़ निष्ठा थी कि असफलता, प्रतिकूल परिणाम और घनघोर विरोध भी उन्हें अपने पथ से विचलित नहीं कर सका।

ऐसा भी नहीं है कि उनके किये गये प्रयास व्यर्थ गये हों। उनके चमत्कारी परिणाम इतने प्रभावशाली रहे हैं कि सारा विश्व, समूचा मानव समाज उनके सामने नतमस्तक हो गया। ईसा के शूली पर चढ़ाये जाने के ३०० वर्ष बाद उनका धर्म सारी दुनिया में फैलने लगा। सुकरात ने जो बीज बोये उसने सत्य के प्रति एक ऐसी दृष्टि विचारशील व्यक्तियों को दी जो पूर्वाग्रहों और पूर्व मान्यताओं के स्थान पर विवेक को महत्त्व देने लगी। इस प्रकार लोकसेवा का, उच्च उद्देश्यों के लिये त्याग और बलिदान का तत्काल कोई परिणाम भले ही देखने में नहीं आता हो, लेकिन वे प्रयास सामान्य प्रयासों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली और व्यापक परिणाम प्रस्तुत करने वाले होते हैं।

यह एक सामाजिक एवं सुविदित तथ्य है कि सामाजिक प्राणी होने के नाते अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु भी मनुष्य को समाज पर ही अवलम्बित रहना होगा एवं जिस समाज पर उनका जीवन क्रम पूर्णरूपेण निर्भर है वह सहकार प्रेरित सेवा धर्म की नींव पर ही खड़ा है। एक-एक ईंट मिलाकर पूरा भवन बनता है। मनुष्य स्वयं में पूर्ण नहीं, न उसकी भावी प्रगति एकाकी रहने से सम्भव है। मानवीय समाज परस्पर स्नेह, सहयोग, सद्भावना, जैसे सद्गुणों पर आधारित है। सुव्यवस्थित समाज के मूल में इसी गुण को कार्यरत देखा जा सकता है। जहाँ लोगों में न तो परस्पर सहयोग है और न स्नेह, न सद्भावना है और न सद्विचार, वहाँ नित्य प्रति कलह, ईर्ष्या-द्वेष, मार-काट, अशान्ति से भरा वातावरण होता है। इस वातावरण में न तो जीवन की सुरक्षा हो पाती है और न विकास। उल्टे व्यक्तित्व में अवांछनीय तत्व प्रविष्ट होकर विकास की जड़ों को छिन्न-विच्छिन्न कर देते हैं। इसके विपरीत सहयोग और सहकारिता भरे वातावरण में भय, आशंका, आतंक आदि के लिये स्थान ही नहीं बचता। सभी प्रसन्नता से रहते और निश्चिन्तता से जीवनयापन करते हैं।

इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ सहयोगपूर्ण-विकास क्रम के प्रमाण प्रस्तुत करता है। मानवीय-संस्कृति और सभ्यता को आदिकालीन पाषाण युग से वर्तमान में उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचाने का श्रेय परस्पर सहकारिता और सौजन्य पूर्ण सद्व्यवहार को ही है। प्रस्तुत समाज-व्यवस्था, कल-कारखाने, शासन तन्त्र, कृषि, व्यवसाय वैज्ञानिक-आविष्कार इत्यादि सभी अद्यावधि उपलब्ध प्रगति-सम्पदा इसी के सुपरिणाम हैं।

परस्पर मिल-जुल कर रहने, खाने-खेलने, द्वेष न करने, किसी का भी बुरा न चाहने आदि विधि-निषेधों का पग-पग पर निर्देश देने वाले शास्त्र वचनों की दूरदर्शिता देखते ही बनती है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जनाना उपासते ।।

—ऋग्वेद १०/१९१/२

हे मनुष्य ! तुम मिलजुल कर रहो, मिल-जुल कर वार्तालाप करो, तुम सबके मन में एक जैसे संकल्प-विकल्प हों। देवतागण इन्हीं गुणों के आधार पर पूजनीय और उपासनीय बने हुये हैं।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो ह विषा जुहोमि ।।

ऋ. १०/१९१/३

तुम सबके विचार समान हों, तुम्हारी सभा एक हो, तुम्हारे अन्तःकरण एक हों, सभी के चित्त (हृदय) एक जैसे हों। मैं (परमेश्वर) तुम्हारे लिये एक से मन्त्र—वेद ज्ञान तथा एक समान आवश्यक वस्तु प्रदान करता हूँ।

'सहजीविता' का सिद्धान्त पारस्परिक स्नेह-सद्भावना पर ही आधारित है। "जियो और जीने दो"—उसका आदर्श है। श्रुतियाँ इसी का प्रतिपादन करती हैं—

'सम्प्रच्यध्वमुप सम्प्रयात् । —यजु. १५/५३

हे मनुष्यो ! सभी लोग मिल-जुलकर (आत्मोत्कर्ष एवं सत्प्रयोजनों के लिये) प्रस्थान करो।

सं जीवास्थ । —अथर्व १९/६६/३

एक साथ अर्थात् मिल-जुलकर कर जियो।

'पुमान पुमांसं परिपातु विश्वतः ।'

यजु. २९/५१

'एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की सब प्रकार से रक्षा करें।'

आत्मिक-प्रगति और सामाजिक समृद्धि के मूल में कार्यरत इस सहयोग, स्नेह और सद्भावना को सर्वत्र देखा जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि विकास के इस मूलमन्त्र को समझकर जीवन के प्रत्येक गतिविधियों में इसे प्रमुखता दी जाय। जीवन में सुख-सुविधा के साधनों से लेकर शान्ति और सुव्यवस्था का समावेश हो पाना इसी साधना द्वारा सम्भव हो सकेगा। सामाजिक उन्नति और प्रगति का लक्ष्य इन्हीं माध्यमों से प्राप्त हो सकेगा। इसी से स्वर्गीय वातावरण का सृजन हो सकेगा।

अनुदारता मिटेगी तो सभी समस्याएँ स्वतः हल होंगी

इन दिनों व्यक्ति और समाज के सामने प्रस्तुत अगणित समस्याओं और भयावह विभीषिकाओं के सम्बन्ध में विचार करते हुये आश्चर्य होता है कि पदार्थ समुच्चय और प्राणी समुदाय में जब हिलमिल कर सहयोगपूर्वक रहते हैं तब एक-दूसरे के पूरक बनने की सृष्टि व्यवस्था का व्यतिरेक क्यों हो रहा है ? इसका मूलभूत कारण क्या है ?

खोजने पर पता चलता है कि नीति-नियमों की मर्यादा का उल्लंघन ही व्यक्ति के निजी जीवन में अनेकानेक आधि-व्याधियों, क्लेश-कलहों, विक्षोभ-विद्रोह, अभाव-अतिक्रमणों का निमित्त कारण बना हुआ है। असंयम शरीर का, असंतुलन मस्तिष्क का, आलस्य उत्कर्ष का, अपव्यय समृद्धि का, अनाचार सहयोग का मार्ग अवरुद्ध करता है। संकटों की उत्पत्ति इसी प्रकार होती है। सड़ी कीचड़ में मक्खी-मच्छर, कृमिकीटक एवं विषाणु उत्पन्न होते हैं। इनमें से एक-एक करके अलग-अलग निपटना कठिन है। नाली की कीचड़ साफ कर डालने से ही वे सभी उपद्रव शान्त होते हैं, जो अलग-अलग आकार-प्रकार में भिन्न-भिन्न प्रकार के कष्ट देते हैं। पेट का अपच अधिकांश रोगों का उद्गम केन्द्र है। रक्त दूषित होने पर अनेक नाम, रूप वाले चर्म रोग, रक्त दोष उत्पन्न होते हैं। यदि निपटना ही हो तो विष वृक्ष की जड़ काटनी चाहिए। टहनियाँ काटने से तो फिर नई कोंपलें फूटेंगी और स्थिति कुछ ही समय बाद फिर वैसी ही बन जायेगी।

पौराणिक रक्तबीज असुर का रक्त जहाँ भी गिरता था, हर बूँद से एक नया दैत्य उपज पड़ता था। सहस्रबाहु के बारे में कहा जाता है कि उसकी एक भुजा काटने पर दूसरी उसी स्थान पर तत्काल उग आती थी। प्रस्तुत समस्याओं के सम्बन्ध में भी यही बात है। न व्यक्ति के लिये अपनी उलझनें सुलझा सकना शक्य हो रहा है और न सामूहिक समस्याओं के, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के कोई हल निकल रहे हैं। प्रायः राजनैतिक आधार पर ही हल खोजे जाते हैं। सुविधायें बढ़ाने या दबाने, दण्ड देने की कूटनीति ही हर समस्या के समाधान में चित्र-विचित्र तरीकों से प्रयुक्त होती रहती हैं। फलतः कभी-कभी तात्कालिक हल भी निकलते से लगते हैं। किन्तु आकर्षण का दबाव घटते ही फिर सारी परिस्थितियाँ ज्यों की त्यों हो जाती हैं।

व्यक्ति के सामने अस्वस्थता, दरिद्रता, परिवार कलह, असन्तोष, आशंका, छल, आक्रमण जैसी चिन्तायें ही सिर पर चढ़ी रहती हैं और नारकीय स्तर का खिन्न, उद्विग्न वातावरण बनाये रहती हैं। भारतीय समाज में महँगाई, चोर-बाजारी, हरामखोरी, रिश्वतखोरी, धोखाधड़ी, कुरीतियाँ मूढ़तायें, गुण्डागर्दी जैसे कारणों से जन-जीवन दुष्कर हो रहा है। हर क्षेत्र में नेता लोग अपनी वरिष्ठता सिद्ध करने के लिये कुछ न कुछ सही गलत उपद्रव खड़े करते-कराते रहते हैं। वर्ग विद्वेष उभारने में उन्हीं के कुचक्र, षड़यन्त्र कार्यान्वित होते रहते हैं। साहित्यकार, कलाकार, सम्पत्तिवान, बुद्धिजीवी, प्रतिभाशाली लोग किसी भी समाज के हृदय, मस्तिष्क माने जाते हैं। उनके हाथ की सामर्थ्य यदि विष व्यवसाय से बचकर अपनी क्षमता आदर्शवादी उत्कर्ष में लगा सके तो बिना किसी शासकीय सहायता के मात्र जन सहयोग से ही सृजन का इतना बड़ा काम हो सकता है कि समूचे समाज को स्वल्प साधनों से भी उत्कर्ष के उच्च शिखर पर पहुँचाया जा सके। किन्तु देखा ठीक विपरीत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जा रहा है। प्रतिभायें अपने साधनों समेत पतन-पराभव की खाई इसलिये खोदने में लगी हुई हैं कि उनका वैभव कामचलाऊ न रहकर कुबेर, सिकन्दर के समतुल्य बन सके। यही रीति-नीति है जिसे बड़ों की देखा-देखी छोटे भी अपना रहे हैं और शिक्षित-अशिक्षित, धनी-दरिद्र सभी अनाचारी घुड़दौड़ में एक-दूसरे से आगे निकलने की बाजी बद रहे हैं।

संकटों और विग्रहों के मूल में साधनों की कमी कारण लगती है पर वस्तुतः व्यक्तियों का पिछड़ापन एवं निकृष्टता से सना हुआ दृष्टिकोण ही आधारभूत कारण है। उसी ने श्रम, साधन और बुद्धि-वैभव को हेय प्रयोजनों के साथ जोड़ा है फलतः विष बीज बोने पर अमृत फल पाने का स्वप्न कहीं भी साकार नहीं हो रहा। अशिक्षा, गरीबी, बीमारी, बेकारी आदि की आदतें जितनी जल्दी दूर की जा सकें उतना ही अच्छा। इन्हें भगाने के लिये जितना योजनाबद्ध पुरुषार्थ बन सके उतना ही उत्तम, किन्तु साथ ही एक बात और भी नोट करके रखी जानी चाहिए कि इन चारों का निराकरण कर देने पर भी व्यक्ति या समाज के सुखी-समुन्नत होने की आशा नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिये, फ्रान्स, अमेरिका जैसे समृद्ध देशों का उदाहरण सामने है। वहाँ साधनों की प्रचुरता रहते हुये भी कुत्सायें और कुण्ठायें पिछड़े देशों की तुलना में कम नहीं अधिक ही हैं। इसके विपरीत जापान, इस्राइल जैसे छोटे देश अपनी नैतिक विशिष्टता के कारण स्वल्प साधनों से ही समुन्नत जीवन जी रहे हैं। अस्तु, साधनों की बहुलता को महत्त्व देते हुये भी यह भुलाया नहीं जाना चाहिए कि अन्ततः मनुष्य का व्यक्तित्व ही उपार्जन और उपभोग का आधारभूत कारण है। यदि उस केन्द्र में पिछड़ापन घुसा बैठा रहा तो भ्रष्ट चिन्तन एवं दुष्ट आचरण के नजारे दीखते रहेंगे और सामर्थ्य का अवांछनीय प्रयोजनों में उपयोग होने से अनेकानेक संकट उत्पन्न होते रहेंगे। पानी का स्रोत रुके नहीं तो मेड़ बाँधने से क्या काम चलेगा ? एक जगह रोकने पर दूसरी जगह फूटेगा। एक समस्या सुलझ न पाये और दूसरी उठ खड़ी हो तो समझना चाहिए कि फोड़ा नासूर हो गया और सूजन के भीतर कैन्सर जड़ पकड़ गया।

व्यक्ति, समाज और विश्व के सम्मुख उपस्थित छोटी-बड़ी अनेकानेक समस्याओं, विपत्तियों और विभीषिकाओं का आधारभूत कारण एक है मानव-मानव में विग्रह, सहयोग का अभाव तथा चेतना का पथ भ्रष्ट होना। दृष्टिकोण के दूषित होने से हेय स्तर की ललक-लिप्सायें उभरती हैं और उनकी पूर्ति के लिये संकीर्ण स्वार्थपरता, निष्ठुर अनुदारता एवं अनीति-आक्रामकता के तौर-तरीके अख्तियार करने पड़ते हैं। अनीति भरे स्वार्थ साधन के लिये दूसरों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सताना ही होगा। छद्म छुपा नहीं रहता फिर आक्रमण का घाव तो बनेगा ही। घृणा, विक्षोभ से लेकर विग्रह जैसी अनेकों कष्टकारक, दुर्भाग्यपूर्ण प्रतिक्रियायें उत्पन्न होती हैं और प्रतिशोधों का सिलसिला ऐसा चल पड़ता है, जिसका कहीं अन्त नहीं। अनाचारी पहले आक्रमण में ही कुछ कमा लेता है। इसके बाद तो चिरकाल तक अविश्वासी, असहयोग और प्रतिशोध ही समय-समय पर उभरते हैं। ऐसे वातावरण में किसी को स्नेह, सद्भाव और सहयोग का प्रगति एवं प्रसन्नता के लिये नितान्त आवश्यक वातावरण तो मिलेगा ही कैसे ? आशंका और आत्मरक्षा के लिये ही मन सदा भयभीत, आतंकित बना रहेगा। यही है वह विश्लेषण-पर्यवेक्षण जिसे आज व्यष्टि और समष्टि के सामने प्रस्तुत असंख्यों समस्याओं का एकमात्र कारण कहा जा सकता है।

यदि संकीर्ण स्वार्थपरता के स्थान पर उदार आत्मीयता की प्रतिष्ठापना की जा सके तो इतने भर से व्यक्ति और समाज की अनेकानेक समस्याओं का समाधान निकल आयेगा। इसका शुभारम्भ अपने से ही किया जाय। योग्यता बढ़ाते चलने, काम में श्रम और मनोयोग जोड़े रहने, प्रामाणिकता सिद्ध करते रहने, आमदनी से खर्च घटाकर रखने जैसे मोटे-मोटे अर्थ सिद्धान्त अपना लिये जायें और विलासी ठाठ-बाट से, कुरीतियों के जंजाल से, बड़े लोगों का अन्धानुकरण करने से बचते हुये सादा जीवन उच्च विचार की नीति अपनाई जा सके तो कम आमदानी वाले व्यक्ति भी सुखी-सन्तुष्ट जीवन जी सकते हैं।

परिवार की संख्या वृद्धि और प्रसन्न करने के लिये कुछ भी करते रहने की प्रवृत्ति निश्चित रूप से भारभूत सिद्ध होती है। धनी और निर्धन दोनों ही इस मोहग्रस्तता से अपना परिवार का अहित करते हैं। होना यह चाहिए कि जिन परिजनों की जिम्मेदारियाँ अपने ऊपर हैं, उन्हें प्रसन्न, सम्पन्न ही नहीं, सुसंस्कृत, स्वावलम्बी, सद्गुणी भी बनाने का प्रयत्न किया जाय। एक आँख दुलार की, दूसरी सुधार की रखी जाय। पारिवारिकता एक आध्यात्मिक गुण है जिसका अभ्यास घर-कुटुम्ब में किया जाता है और व्यवहार समूचे प्राणी जगत् के लिये। यह सभी निर्धारण विशुद्ध आध्यात्मिक हैं, जिन्हें अपनाकर कोई भी व्यक्ति शरीर को स्वस्थ, मन को प्रफुल्ल, धन को सन्तोषजनक, परिवार को सुविकसित उद्यान की तरह मनोरम, शान्तिदायक देख सकता है। सामाजिक, राष्ट्रीय, धार्मिक, आध्यात्मिक क्षेत्र भी दैनिक जीवन के साथ जुड़े हुये हैं। यदि दृष्टिकोण में आध्यात्मिकता का समावेश रहे, तो जीवन की सभी दिशाधारा हरी-भरी, फल-फूलों से लदी हुई, उत्साहवर्धक, सन्तोषजनक एवं आनन्ददायक बनकर रहेंगी। परिस्थितियाँ मनचाही न होने पर भी मनःस्थिति की उत्कृष्टता अपनाकर व्यक्ति सदा सर्वदा हँसता-हँसाता, उठता-उठाता दृष्टिगोचर हो सकता है। अध्यात्म नकद धर्म है। उसे अपनाकर इस हाथ दे उस हाथ ले का अनुभव विश्वासपूर्वक किया जा सकता है।

सामाजिक, राष्ट्रीय स्तर की व्यापक समस्यायें भी नैतिक दृष्टि से धूमिल होने और निकृष्टता की मात्रा बढ़

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाने के कारण ही उत्पन्न होती हैं। आत्मीयता, उदारता, सहकारिता, सद्भावना की उदात्त दृष्टि रखी जा सके-अधिकार की तुलना में कर्त्तव्य को प्राथमिकता मिल सके—मिल-बाँटकर खाने की आदत पड़ सके तो कोई कारण नहीं कि राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की जटिलता चुटकी बजाते हल न हो सके। मनुष्यों की अनुदारता की तरह राष्ट्रों की संकीर्णता ही दूसरों की उपेक्षा करके अपना विलास बढ़ाने में लगेगी तो विग्रह एवं संघर्ष को जन्म देगी ही। इन उलझनों को न कूटनीतिक चतुरता सुलझा सकती है, न प्रलोभनों, आदर्तों का माहौल ही चिरस्थायी समाधान प्रस्तुत कर सकता है। विश्व संकट के विभिन्न नाम, रूपों के पीछे संकीर्ण स्वार्थपरता की असुरता ही डरावने कुचक्र रचती रहती है। आत्मिकी द्वारा अनुप्राणित दृष्टिकोण व्यापक बनाने जन-जन के मन-मन में उतारने का एक काम सम्पन्न किया जा सके तो समस्त संसार को यह विश्वास दिलाया जा सकता है कि चिरकाल से उलझी हुई समस्त समस्याओं का स्थायी समाधान निकल आया।

संयुक्त रूप से सत्प्रयत्न किये जायँ तो कितने लाभकारी परिणाम मिल सकते हैं, इसके अगणित उदाहरण देखे जा सकते हैं। किसी भी राष्ट्र के नागरिकों का स्वास्थ्य, सम्पन्नता, समर्थता, सौहार्द्र एक ही तथ्य पर निर्भर करता है—प्रयास सामूहिक स्तर पर चले कि नहीं। संकीर्ण स्वार्थपरता ही गिराती है एवं उदार अत्मीयता उठाती है। प्रकृति जगत् में भी सद्भाव-सम्पन्न सहकारिता का उदाहरण हिमालय सुता गंगा के रूप में स्पष्ट देखा जा सकता है। गंगा जब गोमुख से निकलती है, तब उसका स्वरूप बहुत छोटा होता है। उद्गम से प्रकट होने वाला उपहासास्पद निर्झर जब अग्रगामी होता है तो लगता है—उसकी पतली-सी जलधारा सूखी धरती द्वारा बहुत आगे तक न चलने दी जायेगी और उसकी स्वल्प सम्पदा को कुछ ही मील का भू-भाग आत्मसात् कर लेगा। हवा के झोंके उस छोटी-सी जलराशि को सुखा देने में देर न लगने देंगे। उद्गम पर खड़ा व्यक्ति ऐसे ही अनुमान लगा सकता है। उद्भूत जल-प्रवाह का छोटा-सा अस्तित्व किसी बड़ी सम्भावना का आश्वासन नहीं देता।

वस्तुस्थिति में भारी परिवर्तन होता है। निर्झर उदारचेता बनते हैं। महान् उद्देश्य के लिये समवेत् होने की देव परम्परा स्वीकार करते हैं और नाम, रूप का—पृथक् के मोह का विसर्जन करके पुण्य प्रयोजन के लिये संयुक्त प्रयत्न करने की बात अपनाते हैं। हिम-प्रदेश के अनेकानेक निर्झरों की संघबद्ध प्रक्रिया अग्रगामी बनती है तो विशाल कलेवर धारण करती है। गंगा क्रमशः थोड़ी गहरी और गतिगामिनी बनती हैं। समर्पण और समन्वय यही है—वह तत्वज्ञान जिसके आधार पर महान् प्रयोजन सधते हैं। आशंका व्यर्थ सिद्ध होती है। उस जलधारा को न भूमि सोख पाती है और न हवा को सुखाने में सफलता मिलती है। यद्यपि दोनों की चुनौती और चेष्टा में कोई कमी नहीं आती। उनका वश चलता तो उस नन्हीं-सी जलधारा का अस्तित्व देर तक, दूर तक ठहर ही न पाता। एक तीसरी चुनौती और भी बड़ी है। यदि हिम-पुत्रों की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा अपना अलग अस्तित्व बनाये रहने, स्वयं सम्पन्न रहने और यशस्वी होने के लिये मचलती तो अवरोध निश्चित था। संकीर्ण-स्वार्थपरता, व्यक्तिवादी अहमन्यता उन्हें समन्वित न होने देती। हर निर्झर अपने निजी वैभव की बात सोचता और कमाने के लिये आग्रह करता। ऐसी दशा में गंगा की विशालता तो बनती ही नहीं। संकट यह भी था कि वे क्षुद्र निर्झर अपना अस्तित्व तक बनाये न रह पाते और किसी गर्त में गिरकर भू-गर्भ में विलीन हो जाते। यदि यह अवरोध बनता तो इसे गंगा, हिमालय और निर्झर समुदाय के तीनों वर्ग घाटे ही घाटे में रहते। उनके दुर्भाग्य पर दर्शकों को आँसू ही बहाने पड़ते। सुखाने वाली शक्तियाँ अट्टहास करतीं और धरती को हरितमा, सुषमा का और जन-समुदाय को जो पवित्रता, प्रसन्नता का सुअवसर मिलता है, उसका कहीं दर्शन भी न हो पाता।

जलनदों की छोटी-छोटी इकाइयाँ मिलती चली जाती हैं। हिमालय छोड़ने तक गंगा गौरवशालिनी बन जाती है। मैदानी नदियाँ भी इसी नीति को अपनाती हैं और गंगा के सहकार में घाटा नहीं, लाभ सोचती हैं। समन्वय क्रम चलता है। गंगा का आकार, विस्तार बढ़ता है और उस समर्थता से संसार लाभान्वित होता है। घटता कुछ नहीं, वैभव बढ़ता है। गंगा बिहार प्रान्त में पहुँचकर मूल उद्गम की तुलना में हजारों गुनी बढ़ जाती है। अजस्र अनुदानों के कारण जिसे घाटे की आशंका थी, वह निर्मूल हो जाती है। बंगाल में पहुँचने पर गंगा हजार रूपों में विभाजित होती है और वह समस्त भूखण्ड हरितमा और सम्पन्नता से शोभायमान होता है। अन्ततः वह समन्वित चेतना समुद्र में विलय होती और तदनुरूप विशाल जल-राशि में परिणित होती है। निरीक्षक देखता है और इसे सदुद्देश्य के लिये समर्पण समन्वित की गरिमा के रूप में प्रतिपादित करता है। मनोबल प्रवाह का नाम नहीं, उस उदार सदाशयता का नाम है, जिसे अपनाकर प्रत्येक जल-नद धन्य बना और उनका संयुक्त देवोपम बनकर जन-जन की श्रद्धा का पात्र बना। कृपण अहमन्यता को अवसर मिला होता और संकीर्ण स्वार्थपरता को अवसर मिला होता तो यह समन्वय सम्भव न हो पाता और गंगा नाम की गरिमा का अस्तित्व तक दृष्टिगोचर न होता।

यही है वह तत्व दर्शन जो व्यक्ति को सदाशयता अपनाने, स्वार्थपरता छोड़ने और सृष्टा के राजकुमार वाली अपनी श्रेष्ठ भूमिका को निभाने के लिये सतत् प्रेरणा देता रहता है। सोद्देश्य जिया गया जीवन इसी को कहते हैं। ऐसे उदारमना व्यक्ति ही जनसहयोग, सम्मान एवं दैवी अनुग्रह पाते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहकारी वृत्ति पनपे, लोकसेवी इसकी जिम्मेदारी अपने कन्धों पर लें

यदि यह पूछा जाय कि बुद्धि किस प्रकार विकसित हुई ? तो उसका उत्तर एक ही हो सकता है—पारस्परिक सहयोग से। आदिम काल का मनुष्य अपने युग के उन विशालकाय प्राणियों की तुलना में कहीं अधिक दुर्बल था, जो प्रकृति प्रकोपों के आगे ठहर न सके और अपना अस्तित्व तक गवाँ बैठे। मनुष्य ही है, जो अनेक उतार-चढ़ावों, आघात-प्रतिघात, अभाव-संकटों का सामना करते हुये क्रमशः प्रगति पथ पर आगे बढ़ा है। अधिकाधिक सुविधा-साधन अर्जित करते हुये सभ्य एवं सम्पन्न बना है। यह कैसे बन पड़ा ? इसकी खोज में गहराई तक उतरा जा सके तो इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि मानवी प्रगति का समूचा श्रेय उसकी सहकारी प्रवृत्ति को दिया जा सकता है! यदि स्नेह-सौजन्य का, हिल-मिल कर रहने का, मिल-बाँट कर खाने का उदार आदान-प्रदान का स्वभाव बना होता तो संकीर्ण स्वार्थपरता में निरत अन्य प्राणियों की तरह मनुष्य को भी दयनीय स्थिति में ही निर्वाह करना पड़ता। समूह बनाकर परिवार बसाकर रहने और समुदाय को सुदृढ़ बनाने वाली आचार संहिता पालने का ही प्रतिफल है, जिसने बुद्धिमत्ता का वरदान प्रदान किया। सहयोग और विवेक के ये दो रथ चक्र ही मानवी जीवन यात्रा को इतनी दूर तक घसीटकर लाये हैं।

सामाजिक और आर्थिक समस्यायें ही इन दिनों प्रधान हैं। उनकी उलझनें ही व्यक्ति और समुदाय को अनेकानेक संकटों से ग्रस्त रख रही हैं। इनके उपाय-उपचार अनेकों सोचे और अपनाये जा रहे हैं। पर उन सबकी सफलता इस इस बात पर निर्भर है कि सहयोग तन्त्र कितना विकसित हुआ ? यह न बन पड़ा तो निष्ठुरता और निर्दयता का बोलबाला ही रहेगा। छल अथवा आक्रमण द्वारा शोषण-उत्पीड़न का ऐसा दौर चलता रहेगा जैसा कि इन दिनों चल रहा है।

राजा और प्रजा की पुरानी शासन व्यवस्था अब समाप्त हो गयी। प्रजातन्त्री सहकार को आधार मानकर सरकार बनाने और चलाने का उपक्रम चल रहा है। पंचायतों, यूनियनों, संघ समितियों की स्थापना के बढ़ते हुये उत्साह से प्रतीत होता है कि लोकमानस ने सहकारी प्रयासों को मान्यता दी है। आर्थिक क्षेत्र में उत्पादन, वितरण का उत्तरदायित्व सहकारी समितियों को सौंपा जाता है। यह अच्छा लक्षण है। बेकारी की समस्या हल करने के लिये अपने देश में सहकारिता के आधार पर चलने वाले गृह उद्योग ही प्रमुख आधार हैं। कृषि भूमि सीमित है। सबको नौकरी कहाँ मिले ? गरीबी और बेकारी से जूझने के लिये गृह उद्योगों को पनपाने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। किन्तु वे एकाकी प्रयत्न से नहीं चल सकते। पूँजी, कच्चा माल, उत्पादन विक्रय का सारा काम अपने कन्धों पर ओढ़ने वाला किसी उत्पादन, व्यवसाय में सफल नहीं हो सकता। यह कार्य सहकारी प्रयत्नों से ही सम्भव है। बढ़ती बेकारी और गरीबी से छूटने के लिये सहकारी प्रयत्नों का आश्रय लेना ही कारगर सिद्ध हो सकता है। न केवल उत्पादन वरन् विक्रय वितरण को भी इसी तन्त्र के सुपुर्द करने से बात बनेगी।

कुटुम्ब एक प्रकार की नैतिकता प्रधान सहकारी समिति ही है और उसका सुसंचालन कर्त्तव्य और अधिकार का उभयपक्षीय परिपालन किये जाने पर ही बन पड़ता है। व्यक्ति और समाज की मध्यवर्ती धुरी परिवार है। परिवार क्या है ? उसका सीधा-सा अर्थ है व्यावहारिक सरकार ? इसी में नीति, धर्म, सौजन्य, प्रगति और सुरक्षा की समस्त सम्भावनायें केन्द्रीभूत हैं। परिवार पुराने ढर्रे पर भी बहुत समय से चलते आ रहे हैं पर अब उन्हें वैज्ञानिक रूप दिया जा रहा है। 'कम्यून' इसी पद्धति का नाम है। इसमें वंश का एकत्रीकरण आवश्यक नहीं। समीपवर्ती लोग एक संयुक्त परिवार का गठन तो कर लेते हैं और भोजन, शिशुपालन, क्रय-विक्रय जैसे अनेक कार्य मिल-जुलकर कर लेते हैं तो उससे ढेरों समय तथा पैसा बचा लेते हैं। उस बचत को उपयोगी कार्यों में लगाने से सामूहिक प्रगति, प्रसन्नता एवं घनिष्ठता का एक नया मार्ग खुलता है।

प्रसन्नता की बात है कि सहकारिता का महत्त्व दिन-दिन अधिक अच्छी तरह समझा जा रहा है। विचारशील लोग उसे अपना रहे हैं। न केवल आर्थिक क्षेत्र में वरन् जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी उसका सफल प्रयोग करते जा रहे हैं। समाज के मूर्धन्य लोगों ने इस पक्ष में वातावरण बनाया और लोकमानस तैयार किया है। सरकारें भी अनुभव करती हैं कि उनके प्रजाजन इस आधार को अपनाने से ही सुखी-समुन्नत रह सकेंगे। इसलिये विभिन्न देशों में सरकारी तथा गैर सरकारी समर्थन सहकारिता आन्दोलन को मिल रहा है। समर्थकों ने अपनी वाणी मुखर की और प्रभावी लोगों ने उसे व्यावहारिक बनाने के लिये कदम बढ़ाये हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के अनुसार पूरे विश्व में सहकारी समितियाँ किसी न किसी रूप में अवश्य क्रियाशील हैं। इजराइल में इस प्रकार की समितियाँ राष्ट्रीय व्यापार की ७५ प्रतिशत कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। पश्चिम यूरोप में ऐसी कोऑपरेटिव संस्थायें ५० से ६० प्रतिशत रासायनिक खाद व खाद्यान्नों की आपूर्ति करती हैं। उत्तरी अमेरिका में यद्यपि ऐसी समितियों द्वारा उपलब्ध की गई वस्तुओं का अनुपात अन्य देशों की तुलना में कम है।

विशेषकर कृषि एवं औद्योगिक बचत के क्षेत्र में सहकारी समितियों का विशेष योगदान है। जापान में यह ३० प्रतिशत वस्तुओं की आपूर्ति करती एवं स्वीडेन में २६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिशत, जबकि ताइवान एवं टर्की में ऐसी समितियाँ मात्र २० प्रतिशत वस्तुयें उपलब्ध करा पाती हैं।

कुछ गिने-चुने देशों में कृषि को इन समितियों द्वारा बड़े पैमाने पर सहायता मिलती है जैसे जर्मनी में ६३ प्रतिशत, फ्रांस में ६०, स्वीडन में ५० और जापान में ४२ प्रतिशत। बीमा के क्षेत्र में भी कोऑपरेटिव सोसायटी का अभूतपूर्व योगदान है। अमरीका में यह समिति कृति सम्बन्धी ५० प्रतिशत हानियों की क्षति पूर्ति करती है, जबकि जर्मन में धन सम्पत्ति की २८ प्रतिशत हानि का मुआवजा देती है।

इजराइल में ६० प्रतिशत खेती सहकारी तन्त्र पर आधारित है। मिश्र में भूमि व कृषि सुधार योजना के अन्तर्गत ४० प्रतिशत कृषि सहकारिता होती है। जर्मनी में कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी इस प्रकार की सहकारी समितियों को क्रियाशील देखा जा सकता है। आवास एवं गृह निर्माण सम्बन्धी ११ प्रतिशत मामले यहाँ पूरी तरह सहकारी समितियाँ सँभालती हैं, जबकि ३५ प्रतिशत मामलों में इन्हें सहकारी सहायता प्राप्त होती है। नार्वे में १५ से १८ प्रतिशत आवास सम्बन्धी कार्य पूर्ण रूपेण सहकारी समितियों के जिम्मे रहता है। उत्तरी यूरोप में सभी समितियाँ औद्योगिक क्षेत्र में भी क्रियाशील रहती हैं। चेकोस्लोवाकिया में १५ प्रतिशत उद्योगों को इन समितियों की सहायता प्राप्त होती है, जबकि पोलैण्ड में १३ प्रतिशत औद्योगिक प्रतिष्ठानों को इनकी सहायता मिलती है।

ऐसी सहकारी समितियाँ न सिर्फ कृषि, उद्योग एवं गृह निर्माण के क्षेत्र में ही काम करती हैं वरन् शैक्षणिक प्रतिष्ठानों में भी इन्हें गतिशील देखा जा सकता है। स्कूल-कॉलेजों में ऐसी समितियाँ सदस्यों व शिक्षकों के संयुक्त तत्वावधान में काम करती हैं। मानवी उत्थान को ध्यान में रखते हुये इन समितियों का प्रधान लक्ष्य छात्रों को नैतिक, बौद्धिक शिक्षा देना है। इस लक्ष्य को पूरा करने में ये पूर्णरूपेण सफल रही हैं। डेनमार्क, स्वीडन, इंग्लैण्ड, फ्रांस, पोलैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, भारत, पाकिस्तान जापान, श्रीलंका, मलेशिया, कोस्टारिका, रूस, बेल्जियम, यूगोस्लाविया और हंगरी में से प्रत्येक में छात्र सहकारी समितियाँ काम कर रही हैं और दिनों-दिन उनकी गतिविधियाँ बढ़ती जा रही हैं। फ्रांस और पोलैण्ड में यह तन्त्र काफी सुविकसित है एवं वहाँ की प्राथमिक व माध्यमिक-शालायें इस प्रकार के संगठन बनाने में प्रमुख भूमिका निभाती हैं।

विश्व भर के मूर्धन्य विचारक सहकारिता अभियान का अब मुक्त कण्ठ से समर्थन कर रहे हैं। अधिकांश का कहना है कि इससे विश्व मानव की परिकल्पना को काफी सीमा तक सार्थक किया जा सकता है। शीत युद्ध के दबाव को कम करने परस्पर स्नेह-सौहार्द्र बढ़ाने में उसकी अगले दिनों महती भूमिका होगी।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री डा. फाऊकेत का मत है कि "सहकार का मुख्य उद्देश्य है "व्यक्तित्व निर्माण"। व्यक्तित्व निर्माण समष्टिगत एवं व्यष्टिगत दोनों ही अर्थों में होना चाहिए। ताकि हर व्यक्ति अपने व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन स्तर को समग्र एवं पूर्ण बना सके।"

पॉल ह्यूबर्ट कैसलमैन का कथन है "सहकारी शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य व्यक्ति को सहकारिता का पाठ पढ़ाना है। साथ ही उनमें ऐसी भावनाओं का विकास करना भी है, जो सहकारी समितियों के प्रति उनकी वफादारी को ठोस बना सके और यह बता सके कि सच्ची वफादारी न सिर्फ समाज के लिये अपितु उनके लिये लाभदायक होगी।"

सहकारी समितियों के अभ्युदय काल में लोगों ने सहकार की महत्ता समझी और इसकी आवश्यकता अनुभव की। एतदर्थ उन्होंने एक ऐसी समाज व्यवस्था की कल्पना की जो मानवी नैतिक मूल्यों पर आधारित हो तथा व्यक्तियों में सद्गुणों का विकास कर सके और खुशियाँ बाँट सके। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये सहकारी समितियों का गठन हुआ। ऐसे सहकारी संगठन व्यक्तित्व-निर्माण में सहायक होते हैं और अन्ततः एक ऐसी मानव जाति को जन्म दे डालते हैं, जो सद्गुण सम्पन्न हो 'इच फॉर ऑल, एण्ड ऑल फॉर इच' यह इसका मूल सिद्धान्त है, अर्थात् प्रत्येक दूसरे के सुख-दुःख का ख्याल करे, उन्हें सहयोग सहकार दे और समाज भी प्रत्येक व्यक्ति को अपना समझे। इस दृष्टिकोण से 'सहकार' विश्व धर्म-मानव धर्म बन जाता है।

इस प्रकार की सहकारिता से एकता के बन्धन मजबूत होंगे और विश्व-बन्धुत्व की भावना बढ़ेगी। सामाजिक संस्थान के रूप में लोगों के अन्तःकरण में शालीनता, बलिदान और उत्कृष्टता की भावना विकसित कर यह सामाजिक धरातल में सुधार-संशोधन लाने में मदद कर सकती है।

विश्व के अनेक देशों में इस प्रकार के सामाजिक संगठन क्रियाशील हैं और धीरे-धीरे जन समर्थन प्राप्त कर लोकप्रिय बनते जा रहे हैं। संख्या में भी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। इस सन्दर्भ में जापान के घरेलू 'जीवन के विकास से सम्बन्धित समितियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। ये समितियाँ गृह-व्यवस्था सम्बन्धी हर प्रकार का प्रशिक्षण व मार्गदर्शन महिलाओं को प्रदान करती हैं। उनके प्रशिक्षण में उन सारे विषयों का समावेश रहता है, जिसकी कि किसी सुगृहिणी को आवश्यकता है। इनमें प्रमुख है—पाक विद्या, सिलाई, फलों एवं सब्जियों की सुरक्षा, गुलदस्ते बनाना व फूल सजाना, फर्नीचर एवं घर की साज-सज्जा। वस्त्र धोने की मशीन, रेफ्रिजरेटर, रेडियो, टी. वी. आदि यन्त्रों के संचालन एवं दैनिक जीवन में इसकी उपयोगिता सम्बन्धी सुमूल्य परामर्श भी इन समितियों से प्राप्त किये जा सकते हैं। साथ ही आवश्यकता पड़ने पर व्यक्तियों को ये रुपये उधार भी देती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विकासशील देशों में ऐसी समितियों का कार्य क्षेत्र अत्यन्त सुरक्षित है। वहाँ पूरे समाज को इससे लाभान्वित किया जा सकता है। भारत जैसे देश के देहाती क्षेत्र में ऐसी सामाजिक समितियाँ विशेष प्रभावशाली सिद्ध हो सकती हैं। ऐसे संगठनों के द्वारा विभिन्न भाषा-भाषी लोगों, वर्णों, सम्प्रदायों, वर्गों एवं प्रान्तों के लोगों को एक ही कंगूरे के नीचे एकत्रित कर उनमें सद्भाव-प्रेम बढ़ाकर सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। साथ ही सेवा समितियाँ विभिन्न प्रकार की शैक्षणिक व सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित शिविर आयोजित कर विभिन्न पंथों व धर्मों के अनुयायियों को एक साथ इकट्ठा कर उनकी समस्याओं का हल प्रस्तुत कर सकती हैं। इससे उनके बीच पारस्परिक प्रेम-भावना का विकास होगा और वर्ग, भाषा, धर्म आदि के आधार पर विभेद कर विद्वेष उत्पन्न करने वाली प्रवृत्ति समाप्त होती जायेगी। सहकारिता को बड़े व्यापक अर्थों में लिया जाना चाहिए। मात्र भौतिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है। इसकी गहराई में प्रवेश करें तो सबसे पहला प्रश्न उठता है सहकारी आन्दोलन चलाये कौन ? इसका उत्तर खोजते हैं तो सारा ध्यान ऐसे समुदाय पर ही जाता है जो अपनी दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त कर, निर्वाह आदि की जिम्मेदारियों से मुक्त होकर समाज के पुनर्निर्माण में नियोजित होने को कृत संकल्प हो। ऐसे व्यक्तियों को लोकसेवी की संज्ञा दी जा सकती है। व्यक्ति परिवार निर्माण तथा समाज में सत्प्रवृत्तियों का प्रचलन इन्हीं नर पुंगवों पर निर्भर है। उनकी ही सत्ता समाज का स्तर ऊपर उठाती है व राष्ट्र को आगे बढ़ाती है। आज ऐसे व्यक्तियों का तो नितान्त अभाव नजर आता है। राष्ट्रीय चरित्र सुधारे बिना किसी भी उच्चस्तरीय प्रयास को पूरा नहीं किया जा सकता। आज संकट श्रेष्ठ स्तर के व्यक्तित्वों के अभाव का ही है। संस्कृति का इतिहास क्रम बताता है कि प्राचीनकाल में देश का गौरव उच्च शिखर पर था। इसका श्रेय उस समय के लोकसेवियों को ही दिया जाता है। वे अपना सारा समय दो कार्यों में खर्च करते थे एक तो अपना स्वयं का व्यक्तित्व उच्चकोटि का विनिर्मित करना ताकि लोगों पर उसका समुचित प्रभाव पड़ सके और दूसरे निरन्तर अनथक परिश्रम तथा अनवरत उत्साहपूर्वक जनमानस में उत्कृष्टता का समावेश करने के लिये संलग्न रहना। इसी वर्ग को साधु-ब्राह्मण कहा जाता था। वानप्रस्थों की यह परम्परा थी। प्रत्येक व्यक्ति को जीवन का एक निश्चित भाग लोकमानस में उत्कृष्टता सम्वर्धन के लिये सुरक्षित रखना पड़ता था और उस प्रयोजन में लगाना होता था। उनकी संख्या जितनी बढ़ती जाती थी, उसी अनुपात से राष्ट्रीय जीवन समृद्ध होता चलता था। अपने प्राचीन गौरव का यही रहस्य था। इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि अब ये तीनों संस्थायें नष्ट हो गई।

आजकल साधु, ब्राह्मण और वानप्रस्थ तीनों ही कहीं दिखाई नहीं देते उनके वेश और चोला में बड़ी संख्या में यत्र-तत्र अपना दरबार लगाये, घूमते-फिरते देखा जाता है परन्तु उनका लक्ष्य, आदर्श और कर्तृत्व सर्वथा विपरीत हो गया है फलतः उनकी उपयोगिता भी नष्ट हो गई है। इस विपर्यय पर पश्चाताप करने और रोना रोते रहने से काम नहीं चलेगा। आवश्यकता की पूर्ति उस अभाव को पूरा करने से ही सम्भव होगी। युग निर्माण योजना ने इन संस्थाओं में से वानप्रस्थ संस्था का उद्धार करने का काम हाथ में लिया है और बड़ी संख्या में वानप्रस्थों को प्रशिक्षित कर जन जागरण का, लोकमानस का परिष्कार करने में प्रवृत्त करने का अभियान चलाया है।

इस अभियान को बहुत कुछ सफलता भी मिली है। परन्तु काम इतने भर से नहीं चलेगा। अभाव की पूर्ति एक दूसरे ढंग से करना भी आवश्यक है। वानप्रस्थ तो वही लोग ले सकते हैं, जो पारिवारिक उत्तरदायित्वों से मुक्त हो चुके हैं, उनकी संख्या इतनी पर्याप्त नहीं हो सकती कि बुरी तरह बिगड़ी हुई स्थिति को सुधारा जा सके। अतः प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को अपने व्यस्त जीवन में से थोड़ा-थोड़ा समय निकालकर सत्प्रवृत्तियों के सम्वर्धन तथा लोकमानस के परिष्कार में लगाना चाहिए। सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन सामाजिकता, विचारशीलता और दूरदर्शिता जैसे गुणों का विकास ही वह आधार है जिस पर प्रगति की सारी सम्भावनायें निर्भर हैं।

समय न मिलने की शिकायत उन्हीं लोगों की हो सकती है जो इस आवश्यकता को गम्भीरता से नहीं समझते हों या समझना नहीं चाहते हों। यदि अपने मन में राष्ट्रीय प्रगति और सामाजिक उन्नति जैसे कार्यों के लिये व्यक्तिगत लाभों जैसी ही दिलचस्पी उत्पन्न की जा सके तो व्यस्त दिखाई देने वाले थोड़े-से लोग भी थोड़ा-थोड़ा योगदान देकर ऐसा अभियान चला सकते हैं, जिससे वर्तमान दुर्दशा दूर होने में तनिक भी देर न लगे। आवश्यकता केवल ऐसे लोगों की है, जिनके मन में देश-भक्ति, समाज सेवा, परमार्थ एवं लोकमंगल के लिये कुछ करने की भावनायें उमंग की तरह लहरा रही हों, ऐसे व्यक्ति ही देश और समाज के नवनिर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाह सकते हैं।

समाज निर्माण में निःस्वार्थ भाव से कार्यकर्त्ता के रूप में उतरने वाले सेवाभावी व्यक्ति ही कुछ उल्लेखनीय कर दिखा सकते हैं। यों कार्यकर्त्ता तो राजनैतिक पार्टियों के पास भी कम नहीं हैं किन्तु वे राजनीति को ही सब मान बैठे हैं। सत्ता संघर्ष में यश और पद पाने में ही उनकी प्रधान रुचि है। कूटनीति के क्षेत्र में जिस तरह की तिकड़में भिड़ानी और शतरंज की चालों की तरह अपनी गोटियाँ बिठानी पड़ती हैं, उन सबके अभ्यस्त होने के कारण इस स्तर के लोग अपना निज का आत्मबल भी खो बैठते हैं और इस तरह के रचनात्मक कार्यों में भी उनकी रुचि नहीं रहती। उनका ढर्रा भी सन्त-महन्तों की तरह अपनी पूजा महिमा और कुर्सी बनाये रखने के रूप में ही चलता और लुढ़कता रहता है। वे जिस साँचे में ढल गये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

होते हैं, उसको बदलना उनके स्वयं के लिये मुश्किल है अतएव ऐसे व्यक्तियों से कोई आशा नहीं की जानी चाहिए कि उस क्षेत्र में लगे लोग देश की प्रगति के लिये नितान्त आवश्यक कार्य जनमानस का परिष्कार करने में लगेंगे एवं सत्प्रयोजन हेतु समूहबद्ध होंगे।

यह काम नया है और इस काम को करने के लिये एक नया वर्ग ही तैयार होना चाहिए। गृहस्थ में रहते हुये भी जो साधु-ब्राह्मण की परम्परा निबाह सकें, ऐसे भावनाशील व्यक्तियों की आज नितान्त आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये हर उन व्यक्ति को आगे आना चाहिए जो अपने राष्ट्र, जाति और समाज की प्रगति के लिये शताब्दियों से जनमानस में घुसी बैठी विकृतियों और प्रतिगामिता को हटाने की आवश्यकता अनुभव करते हों। यदि ऐसे व्यक्ति आगे आयें और एक आदर्श उपस्थित करें तो अन्य क्षेत्रों में लगे लोगों का भी ध्यान उस ओर जायेगा वे भी इन प्रयत्नों का महत्त्व समझेंगे, उनमें भी सेवा बुद्धि जागेगी और वे भी इन प्रयत्नों का अनुगमन करने की प्रेरणायें प्राप्त करेंगे।

प्रस्तुत प्रयोजन के लिये जनमानस के परिष्कार की, सहकार-व्यवहार की आवश्यकता समझने वाले व्यक्तियों को सामूहिक तौर पर संगठित रूप से काम करने के लिये उठ खड़े होना चाहिए, तथा ऐसे प्रयास किये जाने चाहिए जिनसे लोगों के सोचने-समझने का ढंग बदले। वे सही ढंग से प्रगतिशीलता की ओर अग्रसर होने के लिये तत्पर हो उठें। इस प्रकार शताब्दियों से जड़ जमाये बैठी दुर्बलता दूर होगी तभी एक नये सुसंस्कृत समाज और उन्नत राष्ट्र का निर्माण हो सकेगा।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवनकाल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण, उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युग निर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी, जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्र निर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़, पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद काँग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं-सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति-स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रँगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका- मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोवाजी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण, आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि.संवत् २०८६ में जन्मे, राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराममत्त कहलाने वाले, आचार्यश्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रान्ति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माताजी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका अपनी लेखनी से लिखी, ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उन्होंने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्त्वदर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में सम्पन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरुसत्ता को त्याग करने की, यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उन्होंने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेध के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से सम्पन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक अपनी जन्मभूमि आँवलखेड़ा से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी १२ वर्ष पूर्व आरम्भ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंत:स्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा हवेली कहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जो कि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ में बनाई गई। १९५३ में क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों, प्रज्ञा संस्थानों, भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों का महत्त्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं, ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत् उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्यपूर्ण था।

परमपूज्य गुरुदेव की महत्त्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ इस प्रकार हैं–

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शान्तिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार ।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन, ब्राह्ममुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर, १९११ के दिन आती थी, में जन्मा। एक श्रीमंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित, पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित, बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलालेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थीं। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुँआ जिसे पूरे गाँव का एकमात्र मीठे जल वाला कुँआ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीरधारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशाधारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क-पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इण्टर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धनराशि द्वारा विनिर्मित है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म-निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ एवं कन्या इंटर कॉलेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा जो एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित, संस्कारवान, आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव-निर्माण की सांस्कृतिक व भावनात्मक क्रान्ति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये, जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा में स्थित है। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रान्तिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरम्भ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ व अन्यान्य लेखों की पंक्तियों के माध्यम से सम्पन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतःस्थल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुःखी, तनावग्रसित

व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परमवंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी ट्रेडिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी-सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजाघर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में १९४२-४३ में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ में सहस्र कुण्डी यज्ञ की आधारशिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परमवंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं सम्पन्न हुआ। जनसम्मेलनों, छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट् यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन, विस्तार, डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू. गुरुदेव की साधनास्थली व प्रातःकाल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन सम्पन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा सम्पन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्यश्री ने युग निर्माण योजना के शत-सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युग निर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरम्भ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युग निर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शान्तिकुंज, हरिद्वार ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड ज्योति दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुनः एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने, सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया। इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने २४ कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़

गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था। पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्तन सत्र, जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े। यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का ताँता लगा रहता है। पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्तऋषियों की मूर्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को सम्पन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत् चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार सम्पन्न होते हैं। इस बीच परमवंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ सम्पन्न करना आरम्भ रखा। देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया। इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक एकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं, १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी-बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थस्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया। यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी। स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता-जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवीं स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७१ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था। वर्तमान शांतिकुंज- गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फलश्रुतियों सहित स्थापित हैं। द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच-पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये। इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है। यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों, जैव विद्युत आदि पर पड़ा, यह देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं। तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित है, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं। यहाँ प्रायः ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं। यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीली संदोह रचकर चली गयी। प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान ४००००० से अधिक प्रज्ञामण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जाएँ तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है। ❑❑❑

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६.ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे—

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

❑❑❑

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org